

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्त काण्डका विज्ञापन ॥



षाठक महाशयो की घातय्य से कि हम यय की रचना और द्वापेद्वारा प्रकाश होने मध्ये यद्यपि राजा महापत्ने आदि अनेक सज्जनों की कृपा दृष्टि धन दान की सहायता द्वारा फाट्ट हुई परच अन्तिम सिद्धि की फतेर (विजय) केवल मुशोनयनक्रियार साहय (सो पाई है) ईश्वरपर लखनऊ के हाय होनहार थी से अब हुई विक्रमादित्य के सन्त् १६४४ उन्नीसवो अयालिस में मुगी साहय ने पूरा करारकर प्रकाश किया आगे को मुशोनयनक्रियार जय पाई तमो वारववार इसको द्वापे कि जिससे उन सय सामान्य विद्वानों का उपकार हो। यजनको ऐसा यय अनभ्य रव हाय नहीं आसता या—इसकी रचना का प्रारभ सन्त् १७०२ ईसवी में मयादा प्रिय पंडित दुर्गाप्रसाद गुरु कान्यकुरुज ने निज हृच्छाकार से आगरा बेलनगज में श्री यमुना तटपर किया जिन की जन्मभूमि शहर शाहाबाद जिना हर्दीई मुल्क अथव राज लखनऊ में थी ताको बाल अथव्या में विद्याध्य-सन से सत्यक करि आगरा में मुद्रयासो हुये—अपने रचेहुये पाठुलेख (मसौदा) की प्रशंति होनी चाहिके द्वापे का ययस्थान कल्पना करिके सन अठारह सोउत्तसो अस्सो तक सात षाठवर्ष में जैसे जैसे आचार व्यवहार दो काडो का स्वाधीनता से द्वापेने कुछ पुस्तकें प्रकाश करि पाई—उसी अचसर में श्रीमन्महाराजा मेद पाटेश्वर श्री सज्जनसिंह उदयपुर अधिष्ठित धोरैय ने धन दान बी सहायता देकर व्यवहार मयादा परिपाटी वृहत्काड पूरा करवाया किंतु उस समय व्यवहार शास्त्र अयनोक्त की आलावा उनको विशेष थी चाहते थे कि शीघ्र पूरा जाय इसी हेतु मध्यम काल में सहायता उदय हुई थी—इसी प्रकार पहिला आचार काड राजाधिराज शाह पूरा मेवाड ने पूरा करवाया—तयापि सात वर्ष में दो काडो की समाप्ति करके कर्ता के चितने उपराम लिया और व्यवहार काड के अन्त में समस्या लिखी कि अग्निने बहुत बडे प्रायश्चित्त काड का प्रारभ नहीं करेंगे कि जब तक कोई धरती बाल अपने ऊपर इसका पूरा भार न केने—किंतु वही पूरा भार आज मुगी नयलक्रियार ने अपने ऊपर स्वीकार सहित भेना अर्थात् उक्त समस्या निखे पीछे यय कर्तने इस काडका रीकियोभि सन्त् १७६० तक पाच वर्ष छोटै मेठे वैद्यक आदि विद्याओं के अद्भुत ययो का पाडु लेव निर्माय करते हुये पूरे तुन्व्य प्कासन पुति से कालक्षेप किश—यदापि इसी मध्यम काव में परीपकारी मुगी नयल क्रियार ने यशोश्रुति का यिप्ता करतैहुये यंय कर्ता को अपने सन्मिर्षों के द्वारा तथा धिट्टियो से आवाहनका सघोधन भेलिके अग्निपाष प्रकट करी थी कि लखनऊ में आकर अपना अधूरा यय पूरा करी तयापि (मत्यप्रतिबेनपुन प्रतिज्ञा) इस आयह में रचयिता ने यही उतर भेजा कि आगरा में प्रारभ होयुका या समाप्ति भी इसी जगह होनी चाहते है चल्कि उदयपुर क महाराजा धोरैयो ने जब सब आवाहन के आवापच भेजे कि राजकीय यथायय का अधिष्ठात् पद स्वीकार हो तो शंघ्र चले आये या अपने इष्ट मिचो को भेजो जो इस कार्य को करसके—तबहू केवल इसी प्रतिज्ञा के प्रतिबध से अपने मिच वशीधर बाजवेया जिनकी नेकरी यहां छुट्टियुकी थी सेहसे उनकी कैकियत की रिपोट भेजि मज्जी करारकर उस पदपर उदयपुर भेजिदिया आगरा नहीं छोडा—तिसवे आप जो लखनऊ बुगाने बिना यहां बैठेही प्रतिज्ञा पूरी करै तो प छे कोई अटक न रहेगी—इस पर श्रीमान् मुगी नयलक्रियारने ययकर्ता के साथ अपने दो सयध माने कि जहां पर रासनी मुस्लान होने से जिस आगरा का में पहिला निवासी और जहा भेरे बहुत यक्रिया स्वजन इष्ट मिच वकीन व रईम मुगी गिरिधर लाल आदि इष्टवर्ग भी उपस्थित है और जहा भेने (भागवत विद्याधम नाम) महत् पाठशाला का आरभ निज घातैभागवत घने के निमित्त से करवाया जिसके प्रबध में श्री मुगी गिरिधरलाल साहय वकील अदालत आगरा आदि सब वी

सितासरा स० प्रायश्चित्तकांड का विज्ञापन ।

कुछ निचे छपे—इसोलिए तोनि वार शोधिके व्यर्थ विदुमाच को भी हरिताल से भ्रान्ति भेटि देता है कि दर्पण क तुय पडाजाय (यद्यपि विदुमाने के निकट किसी पत्र अक्षर या माचा का भूनेसे रहिजाता कुछ अशुद्धिमें नही माना जागा क्योंकि रतना तो अत्यन्त शोचने पर भी कही दृष्टिकर से रहिजाता है) परब वेशी दया पर भी निम्ने उदासी केयन हम यापे ठाहरी कि प्रायण वैतनिक लोग कुछ माचा वा अक्षर अपनी शीर से अधिक धर देत और कही विरले अक्षर का निज प्रमाद या चानुर्थ से पनाटि भी देते है—इसका दृष्टान्त जैसा इस कांड के पहिले पृष्ठ में भूमिका के श्लोक मात है उनक द्वितीय श्लोक में (जोहस्यसगत सृष्टा) यही तीसरा पाद है तहा सृष्ट के स्थान पर श्रुत बदलि के धर दिया—

पृष्ठ	श्लोक	अनुद्ध जायेतनिगुदुपाठनामयो	कप्रमाद मे दृषादा मे दृषणतुल्य
४	७५	अथराये	अक्षराये
४	१८	अनसूतक	अनसूतक
८	२४	मुदांनजायं	मुदांनलजायं
६	०	चिराचि	चिराच
६	१०	दिमुत्वा	दिदुम्पा
१६	०	मास	मास
२०	७८	का स्थिरत्व	का अस्थिरत्व
२०	३	चिद्व्यापि	चिद्व्यापि
२३	३	चिद्व्यापि	चिद्व्यापि
२३	१२	मातापितोरिति	मातापितोरिति
२४	२४	सर्वज्ञानादादेव	सर्वज्ञानादादेव
२४	०	अविभक्तवन	अविभक्तवन
२५	१८	सिद्धिक्रिये	सिद्धिक्रिये
२२	१८	बहुत काल	बहुत काल
२०	१८	सम्पन्ननिनिधि	सम्पन्ननिधि
		ध्याते	विध्यते
२०	१८	सम्पन्नसूतिका	सम्पन्नसूतिका
		यास्तु	यास्तु
२०	२४	द्विजराचदायण	द्विजराचदायण
२०	३०	चिद्व्यतेषु	चिद्व्यतेषु
२०	१५	ये श्या	अयेश्या
		ब्रह्मज्ञान	ब्रह्मज्ञानता

इसी तरह बहुधा प्राचान ऋषि वाक्यों में अक्षर माचा को अविभक्तता और व्यत्यय देखिपरा इसका भी प्रमाण यहा बौंस कांठे का चक्र देखो जो विदुमाने क समझने को अनुद्ध शुद्ध पत्रों से जुनिकर जुदा बना— यह नमूना केजन इस प्रेरणा (ताकीद) के निमित्त से इस सगह धरा गया है कि येनाही अनुद्ध शुद्ध पत्रों में सर्वत्र समुक्तिने अपनी अपनी जिल्दों गोविलेना—तहा प्रतिपृष्ठके केवल एक अनुद्धि शोचने का परिश्रम शक्ति छोटी बात समुक्ति—प्रमादादर मुशी नयनकिशोर के महान् गुणपर यह धन्यवाद करना चाहिये कि जिसने ऐसे अनभ्य रत्न यद्य वा पूरा करवाकर छोडे मुच्य से प्रकाश किया जो पहिले बहुत मोल देने की शक्ति या इच्छा हाते हुयेमो हाय नही आता या संस्कृत मूल रूप हाय आगा तो समुक्ति नही जाता था—उक्त मुशी परेशक येसही उदार चरितो सहित सर्वत्रयं सदा परिजीव रहे। श्रेय पायात् इति—

सन् १८४४ विक्रमी ॥

सन् १८८६ ई० जनवरी ॥

परिचित दुगाप्रसाद चमंगराखी

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ॥

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	पंक्ति	परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	पंक्ति
०	मंगलाचरण—यथस्यास्य प्रयोजनं च	१	३		(इति अध्यात्मप्रकरणं चिदश)		
०	यथस्यास्य भूमिकाच—तत्र किंकिं वस्तुवश्यते				(परिच्छेदमयं समाप्तं)	२३६	
१	मृतबाल वृद्धादीनां दाहादिकर्म विवेकः	१	१०	२१	कर्मविपाकानां सर्वेषां विवेकः	२४०	५
	प्रथमः परिच्छेदः	२	२५	२२	सदाःकर्तव्यप्रायश्चित्ताधिकारिणालक्षणानि	२५२	१८
२	जन्ममरणयोःसूतकभेदाप्रचवर्षं भेदात्			२३	अकृतप्रायश्चित्तपुसाभायिनकनामलक्षणानि	२५०	२
	द्वितीयः परिच्छेदः	३३	१		(इति नरकादिगति विषयिकंचिपरिच्छेद)		
३	सदाःशौचानां व्यवस्थाभेदाःतृतीयः परिच्छेदः				(मयं प्रकरणं समाप्तं)	२६३	
४	मृतकं विनापि अशुचिस्पर्शं दोषभेदाः	००	१	२४	पंचमहापातकानां नाम लक्षणनिर्णयः	२६४	२
५	शुद्धिसम्पादनहेतु सामान्यानां स्वरूपसख्या भेदाः	८१	१	२५	ऋतिपातक पातकादीनां लक्षण भेदाः	२०२	२
	(इत्याशौचप्रकरणं पंचपरिच्छेदमयं समाप्तं)	८६	१३	२६	उपपातकादीनां सर्वपापानां लक्षणभेदाः	२८०	११
६	आपत्कालिकजीविकादि वृत्त्यंतर धर्मभेदाः	६३			(इति महापातकादि सर्वनिमित्तानां)		
७	वानप्रस्थ्याश्रम धर्मभेदाः	६३	११	२०	(प्रकरणंच परिच्छेद मयं समाप्तं)	२६०	
	(इति प्रकरणं द्विपरिच्छेदमयं समाप्तं)	१०१	१०		ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त भेदाः	२६०	१५
	आपद्दुर्मसंहर्तं			१८	ऋतमात्रेणैव द्वादशवर्षं कृत्स्नकर्म सिद्धि		
८	संन्यासग्रहणे परिब्राजकस्वरूप लक्षणभेदाः	११८		२६	कारणानि	३०६	२०
९	संन्यासि वृद्धिज्ञानैत्यन्तिप्रकारनिर्णयः	११८	१५	३०	उक्तप्रायश्चित्तस्य विध्यन्तपानुकल्प भेदाः	३१५	१४
१०	पामात्मनः मृष्टिग्रहण प्रकाराः	११३	४		अन्यवर्षे ब्रह्मव्य प्रायश्चित्तस्यातिदेशः	३२८	२
११	गर्भस्थस्य शारीरक व्यवस्थाज्ञान	१४३	४		(इति ब्रह्महत्याप्रकरणं अतुःपरिच्छेद)		
१२	ब्रह्मोपासनायाः प्रकार भेदाः	१६०	५	३५	(मयं समाप्तं)	३३६	
१३	शंखरस्य विषयरूपपिताया निरूपणं	१८०	१४	३२	सुरापाने सकामकृतपापे प्रायश्चित्त भेदाः	३३४	२
१४	पृथोक्ताया जगदुत्पत्तेः प्रपंच विस्तारः	८५	८	३३	ऋतमत्तःसुरामवादीनाप्रायश्चित्तभेदाः	३४०	१५
१५	कर्मबोजाना विषयक प्रपंच विवेकः	१६१	२३		सुरेतर गदजाताना प्रायश्चित्त भेदाः	३४६	३
१६	बीजव्याप्यादिकमानन्तर सर्वव्यापित्वप्रकारा	१६०	६		(इति सुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं)		
१७	मोचपदत्वं देवादिद्योनिव्यं वागच्छतित्या दि विवेकः	२०४	१५	३४	(समाप्तंचिपरिच्छेदमयं)	३५१	
१८	शंखरस्य सर्वगतस्य प्रत्यक्ष लक्षणनिर्णय	१११	१२		सुवर्णवहारे प्रायश्चित्तभेदाः	३५१	१६
१९	वत्त्वानामुत्पत्तिक्रमः स्वर्गादिमार्गं विवेक	२१०	२		ऋत्तानाम् सुवर्णवहारे प्रायश्चित्तं	३५६	०
	पश्चात्स्मिन्	२२३	२	३६	(इति सुवर्णवहारे प्रायश्चित्त प्रकरणं)		
२०	ऋषिमादाष्ट विभूति प्रापक योगाभ्यासेन मोक्षसाधन	२२३	११	३०	(समाप्तं द्विपरिच्छेदमयं)	३६४	
					जनन्यादि शुद्धारागमन प्रायश्चित्तभेदाः	३६४	०
					(इति गुरुतन्त्रप्रकरणं परिच्छेदकमयं समाप्तं)	३७५	
					संभर्गिना प्रायश्चित्तभेदाः	३७५	६

मिताक्षरा सं. प्रायश्चित्तकांड का प्रथम सूचीपत्र ।

परिच्छेद	विषय	पृष्ठ	श्लोकां	श्लोकसंख्या	विषय	पृष्ठ	श्लोकां
३८	पतितस्य क्रम्यायाः पान्थेति प्रपञ्चधर्मः (शतिसंज्ञं प्रायश्चित्त प्रकारं) (समाप्त द्विपरिच्छेदमथ)	३६४	१४	५१	परिवित प्रायश्चित्तं दायुष्य प्रायश्चित्तं लव्यक्रियाच प्रायश्चित्तं (शत्युपपातकथं) (शत्युपपातक चयायाप्रकरणं समाप्त) (परिच्छेदकमथं)	४०६	१६
३९	स्त्रीयूदादि प्रायश्चित्त विधानं—प्रतिलोम जातिवध प्रायश्चित्तानिच (इ तप्रकरणं परिच्छेदकमथं समाप्त) (शत्युपपातकहापातकादीना वृहत्प्रकरणं) (चोत्पद्य १६ परिच्छेदमथ समाप्त)	३६८	२	५०	अबुलटा कुलटादिमन्द स्त्री वध भेदाना प्रायश्चित्त भेदाः (इति ब्राह्मणेतर नरहिंसाथ प्रक.) (रथं समाप्त द्विपरिच्छेदात्मकं) नरेतर सर्वशक्ति हिंसाया प्रायश्चित्तभेदाः (इति नरेतर सर्वशक्तिहिंसा प्रकरणं) (समाप्त परिच्छेदकमथ)	४०८	२
४०	गोहत्यायाः प्रायश्चित्तं कदेश विभागः	४०२	२	५३	सुत्तादि सर्ववचनस्यति विनाशन प्रायश्चित्त भेदाः पुश्वल्यादृष्टिभिर्वाद्यपुश्वल्याप्रायश्चित्तभेदाः (इति स्थावर हिंसादि प्रकरणं) (समाप्त द्विपरिच्छेदमथं)	४११	४
४१	सजाम गोवधादि प्रायश्चित्ताना भेदाः	४००	१६	५४	वोयस्त्वंदनस्यजन प्रतिनिवालोकादेः नि- दितोपशोषनस्यनास्तिक्यच प्रायश्चित्तभेदाः अपकीर्ण ब्रह्मचर्यादीना प्रायश्चित्त भेदाः (सब ल हिंसा पवाद्यश्च)	४११	०
४२	बहुकर्तृभिर्हन्नादि गोवध भेदाना प्राय- श्चित्तभेदाः	४१६	४	५५	ब्रह्मचारिणो दत्त नियम भगेवि प्रायश्चित्त भेदाः मिथ्यादोषा रोपकस्य-निव्यामियदतस्यच प्रायश्चित्त भेदाः रजस्वलाद्यगम्यागमने-रजस्वलायागच नियम भगेवि प्रायश्चित्त भेदाः (इति व्रतनोप प्रकरणं पञ्चपरिच्छेद मथसमाप्तम्)	४१२	१४
४३	बन्धन दाहवाहादिकर्म देविर्गोवध भेदाना प्रायश्चित्त भेदाः (इति गोवध प्रायश्चित्त प्रकरणं चतुः) (परिच्छेदमथं समाप्त)	४२३	०	५६	सुतविक्रयाद्यानिष्ट विप्रयोःपजीवनस्य प्राय- श्चित्त भेदाः अयाव्य ब्राह्म्यादि याजन-वेदप्रायश्चित्त- भेदाः सुटनाद्याभिचर्य-यथागतस्याग रुपाया	४१२	०
४४	गोवध प्रायश्चित्तस्ये वातिदेशिक विषयाः सर्वेषूपपातकेष्वेव । (प्रकरणांशो स्वयमेव)	४३२	५	५७	वोयस्त्वंदनस्यजन प्रतिनिवालोकादेः नि- दितोपशोषनस्यनास्तिक्यच प्रायश्चित्तभेदाः अपकीर्ण ब्रह्मचर्यादीना प्रायश्चित्त भेदाः (सब ल हिंसा पवाद्यश्च)	४१२	०
४५	संस्कार विहीन ब्राह्म्याना प्रायश्चित्तानि (प्रकरणांशो स्वयमेव)	४३६	५	५८	मिथ्यादोषा रोपकस्य-निव्यामियदतस्यच प्रायश्चित्त भेदाः रजस्वलाद्यगम्यागमने-रजस्वलायागच नियम भगेवि प्रायश्चित्त भेदाः (इति व्रतनोप प्रकरणं पञ्चपरिच्छेद मथसमाप्तम्)	४१३	०
४६	चौर्योपपातकप्रायश्चित्तं—स्वर्हन्त्येव्याति रिक्तचौर्यस्यापमानः (प्रकरणांशो स्वयमेव)	४६६	५	५९	सुतविक्रयाद्यानिष्ट विप्रयोःपजीवनस्य प्राय- श्चित्त भेदाः अयाव्य ब्राह्म्यादि याजन-वेदप्रायश्चित्त- भेदाः सुटनाद्याभिचर्य-यथागतस्याग रुपाया	४१३	०
४७	अपयथाविक्रय कृत्वाणपाक्रियोगेः प्रायश्चित्त अनाहिताग्निता यादश्च (प्रकरणांशो स्वयमेव)	४७५	०	६०	मिथ्यादोषा रोपकस्य-निव्यामियदतस्यच प्रायश्चित्त भेदाः रजस्वलाद्यगम्यागमने-रजस्वलायागच नियम भगेवि प्रायश्चित्त भेदाः (इति व्रतनोप प्रकरणं पञ्चपरिच्छेद मथसमाप्तम्)	४१३	०
४८	परिवेचादीना भूतका ध्यापकादीनाच प्राय- श्चित्तभेदाः (प्रकरणांशो स्वयमेव)	४८८	६	६१	सुतविक्रयाद्यानिष्ट विप्रयोःपजीवनस्य प्राय- श्चित्त भेदाः अयाव्य ब्राह्म्यादि याजन-वेदप्रायश्चित्त- भेदाः सुटनाद्याभिचर्य-यथागतस्याग रुपाया	४१३	०
४९	नधेत्युपपन्न प्रकरणाव्य नियमः						
५०	परदार गमन प्रायश्चित्तभेदाः—जनन्याद्य गम्यागमन व्यतिरिक्त विषयोऽप्यधेयः	४७३	२	६२			
५०	स्त्रीकांच व्यभिचरिताना प्रायश्चित्तप्रकारा (इतिपाठ्याय प्रायश्चित्त प्रकरण) (समाप्त द्विपरिच्छेदमथ)	४६०	६	६३			

मितासरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड का प्रथम सूचीपत्र ।

परिच्छे०	विषय	श्रु	पंक्ति	परिच्छे०	विषय	श्रु	पंक्ति
	निमित्तानां प्रायश्चित्त भेदाः	५४३	३		सत्कार विधिश्च	६४६	४
६४	पितृमातृ सुतत्याग कन्यादूषणादि दशोपपातक विशेषाणां प्रायश्चित्त भेदाः	५४३	१८	०८	एवंदीनुमत प्रायश्चित्त पक्षे विधानं (इति सर्वप्रायश्चित्तानां साधारण विधि प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	६५०	२
६२	स्वाध्याय त्यागाद्युपपातकाष्टक निमित्त विशेषाणां प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यौचित्य त्यागप्रकरणं चतुःपरिच्छेदमर्थं समाप्तम्)	५६९	२०	०८	गुरुपापानां रहस्य प्रायश्चित्त विचार— ब्रह्मवध प्रायश्चित्त विधान महत्तमः	६६३	
		५६५		०६	ब्रह्मवध व्यतिरिक्त महापातकानां रहस्य प्रायश्चित्त विधानं	६६४	४
६६	दुर्व्यसनासक्तिनामोपपातकस्य प्रायश्चित्त भेदाः	५६६	२	०७	उपपातकादीनां रहस्य प्रायश्चित्त भेदाः	६६५	५
६०	आरमंभिक्रियानुपपातक चतुष्टयस्य प्रायश्चित्त भेदाः	५७०	२	०९	सर्वपातकादि हरसाधारणविषयस्य जगत्स्योपादानां स्वरूप प्रकाशः (इति सर्वरहस्य प्रायश्चित्तप्रकरणं चतुःपरिच्छेदमर्थं समाप्तम्)	६६७	२
६८	असहस्रियह भार्याविक्रय अनाश्रमवासाद्युपपातक षट्कस्य प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यनिष्टयंग चेचनादि प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	५८६	०	०२	सातपथ कृच्छ्रायानेकप्रत भेदानालक्षणानि पर्यंकृच्छ्र-साप्तकृच्छ्र-पादकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्रव्रत भेदानां लक्षणानि	७०३	२
६६	आत्मेव स्वभावेन वा द्रुपान्नपानादीनाम-उत्प्रेषणप्रायश्चित्तभेदाः	५८९	२३	०३	प्राजापत्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानां स्वरूपादि विधानस्य	७०५	१३
७०	अनुचित्तिः संसृष्ट्यान्नपानादेर्भक्षणे प्रायश्चित्त भेदाः	५९१	१०	०४	वैशाखाद्यसोमायान मासिकप्रतभेदानां विधानं पूर्णतः व्रतादीनां सर्वेषां अनुष्ठान समये चित्तविक्षयाविधि प्रकाशः (इति सर्वकृच्छ्रादिव्रत भेदानां-दानजप होमादीनांच स्वरूप विधायकं प्रकरणं पंच परिच्छेदमर्थं समाप्तम्)	७०६	४
७१	भावेन कालेन वा दूषिताद्यन्न भोजन प्रायश्चित्त भेदाः	६०३	१६	०६	सर्वेषु सर्वेषु परिच्छेदभेदेः समस्तोपपत्तेर्वास्तु साधितेः शुद्धिर्भावेतीति व्रतहोम जपदानादीनां सर्वसाधारण विचारः (इत्यनादिशुद्धिद्वय प्रायश्चित्तोपायेषु—आ-देहिक प्रत्याश्रयानां युक्ति विचार प्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	७०९	१४
७२	आह्लास्यभोजन दोषस्य प्रायश्चित्त भेदाः	६११	१०	०७	केवलं धर्मार्थेषु चाट्यायण कृच्छ्रादीनां स्-हामुचपानसाधनत्व प्रकाशः—धर्मशास्त्रस्य फल वर्णनं च	७१३	२२
७३	परिग्रहदोष दूषितान्नभोजनस्य प्रायश्चित्त भेदाः (इत्यभक्ष्य भक्षण प्रकरणं समाप्तं पंच परिच्छेदमर्थं)	६२५		०८			
७४	जातिभ्रंश करणीनां—अनुकानांच पापानां प्रायश्चित्त भेदाः (इतिप्रकोषं मिश्रोपपातनाप्रकरणं समाप्तं परिच्छेदमर्थं)	६४०					
७५	सर्वत्रेक प्रायश्चित्तस्य लेटु—अनुक्तप्रायश्चित्तस्य लेटु—न्यायात्मक युक्तिविचारः	६४९	५	०९			
७६	पतितस्य त्यागविधिः—कृतप्रायश्चित्तस्य						

इति श्रीमर्यादाप्रियहृतेवमंशास्त्रे प्रायश्चित्तकाण्डस्य लघुसूचीपत्रसमाप्तम् ॥

अथ मितासरा स० प्रायश्चित्त कांडस्य दृहत्सूचनं द्वितीयं ॥

आश्रयानां व्यवस्थारूपः	पृष्ठ	पंक्ति
मगलाक्षरं । यद्यस्य प्रयोजनं च	१	३
यद्य की भूमिका । इष यद्यमे क्वा वस्तु वर्णनं होगो ॥	१	१०
दाहादि कर्म त्रिविक्रमः । प्रथमः परिच्छेदः	२	२५
दो वर्षसे ओछे प्रेतको गन्धमाला आदि अलकृत करे • यामसे बाहर छोदि गाडे ॥	३	२६
अगुदु अग्नियो से दाहका निषेध ॥	४	१३
चोटोरखे बालको को अग्निदाह दियाजाय ॥	४	२०
तौनियर्ष के भीतर चोटोरखे बिना भी अग्निदाह जलदान होय ॥	४	२२
तौन वर्षके भीतर भी दात कमिआने मे क्रियाकर्म का विकल्प ॥	५	२
यथोपधीत होने बादि मरनेसे पूरा कर्म क्रियाजाय ॥	५	१८
अग्निहोत्री आदि कुलिके भेदसे भी जुदे विधान है ॥	५	१८
दाह क्रिया मे भी जुदे जुदे भेद है ॥	५	२०
किन् अग्नियो से केन पुरुष जलाय जाय ॥	६	१२
अग्नि या लकडी आदि में शूद्रका हाथ न लगनेदें ॥	७	२६
प्रेतको छान कराके चन्दन फूल आदिसे सस्कृत किये पीछे पुषादि अधिकारी लोग जलावें ॥	८	२
मगोची वा सजाती लोग मुर्देको लेजावें गेर नहीं ॥	८	८
किम् वर्षका मुर्दा किच दिग्द्वारसे निकाला जाय ॥	८	१६
मृतकदेह न मिलने मे पुतलविधान से दाहदेना ॥	८	२४
जनाजली दान करनेके प्रकार भेद भी अनेक हैं ॥	९	१६
नाना • आच यं मरेहे। या समुद्र भानजा अत्यिम् मिच मरेहे। तिनको जल देनेका अतिदेश धर्म ॥	१०	२५
उक्त जलदान का विधान प्रेतके नाम सहित होय ॥	११	७
ब्रह्मचारी और पतिता आदि किसीको जलाजली नदें ॥	११	५
पतिता आदि मरे प्रेतको जलदान कोई भी न करे ॥	१२	२६
(आत्मघाती आदि अनेक पतिताके लक्षणभेद)		
अग्निहोत्री जो अर्धमाससे मरे तिसकी यज्ञशाना आदि क्या करीजाय ॥	१३	२
इन सब निषिद्धीका कर्म करनेवाला के प्रायश्चित्त	१३	१८
दिले आत्मघातियो का कर्म भी क्रतोय्य है—तहा कर्मकर्ता प्रायश्चित्तो भी न ठहरे ॥	१६	१९
पतिता आदि कुछ निषिद्धी का दाहकर्म नारायणबलि करनेसे होसका है तिसका विधान यहा देखो ॥	१६	२४
घाँकटे मरकाय तिसका जुदा विधान होने बाद नारायणबलि ॥	१८	०
नारायणबलि कर्मका पूरा विधान ॥	१८	५
मुटो फूलेने आदि घमयो में गोक उठा करता है तिसकी शान्तिजा उपाय ॥	१६	२४
फूलेने बादि छान करके घरमें किस रीति से छुमें ॥	२१	६
मुर्दके घायो जो गेरहे। तिनकी शुद्धि इन प्रकारों से होती है ॥	२१	१८
ब्रह्मचारी भी दिले प्रेतके काये धारमला है निज नियमो साथ ॥	२२	२

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

शुद्ध पान्क्ति

मृतकी धारमें मृतकभर क्या क्या नियम साधेजायें कितने पिंड द्वियेजायें ।
 दूधपर हीकमें जल दूध आदि लटकाने के नियम ।
 मृतकी धाल मुडाने के नियम ।
 बिरले कर्म धर्म मृतकमें भी होते रहिते हैं सो किस ढंगसे ।
 अमोघी के मृतकमें जानिके और बिना जाने अन्नखाने के दोषदोष ।
 विवाह आदि बड़ेउत्सव और यद्यमें मृतक होजाने पर भी अन्नखानेका प्रति प्रयत्नकूपी आदेशविधान ।
 मृतकमें किन चीजेकी मृतकदोष नहीं लगता हे ।
 बिरानेमुदके संसर्गसे कितना मृतक अवशर्था या अमोघाचोकि लगता और किन कर्मकोहानि उचके होतीहे ।
 विदेशका मृतक अपनी अथधि ब्रौतियाने बाद जो मुनियये तिसको कितना मृतक लगता हे ।
 जनन मरण दोनोके मृतकमें सब तरहकी अवधो जो होताहै सो सब आगेदूधरे परिच्छेदमें ठुंडना ।
 बिदेशमें रहिते हुयेका जन्ममृतक या मृतकमृतक मुनियाने से कितने दिन मृतक मानाजाय ।
 गर्भहीमें बालकनरे या पैदाहोके मरे तिसका मृतक कितना किसको ।
 पुत्रजन्म होनेमें माता या पिताको कितनी अशुद्धि और उनके उपरान्त सपिंडोका कितना मृतक होताहे ।
 कन्या नहीं केवल पुत्रही पैदा होनेमें पहिला दिवस पवित्र होताहै ऐसे मृतकमें प्रथमदिवस दान आदि
 वास्य भी लेचके हैं ।
 जन्मके मृतकमें भी पक्का भोजन करलेवे तिसको पान्द्रायण शत एकमहानि भरकरना चाहिये ।
 पुत्रजन्मका पहिला छठा दशमा दिन भी उतम कहागा इनमे साय (य और चन्मदानाम देवताओका
 यागपूजन भी होता हे ।
 एक मृतक होतेहुये बीचमें दूसरा मृतक मरण या जन्मका आपरे तत्र कितने दिनमें मृतक शुद्धहोये ।
 गर्भ गिरिजाने या मराजन्म होने या जन्म लेके मरजानेमें माता यापिता आदि किशकिशको कितना मृतक ।
 अग्निहोत्र आदि घेदोक्त शौतकती के निमित्तघटाः शौचकी व्यवस्था ।
 नालच्छेदन कर्मसे अनन्तर मृतक लगिजाता किन्तु पहिले नहीं ।
 रजस्वला स्त्रियोका मृतक के दिनमें शुद्ध होता हे कि जिनके थोड़ेदिनका गर्भ निशुद्ध गया तिससे या
 इसके दिन भी रजोपक्त जाय ।
 भयानक उपरसे पीडित रजस्वलाको ज्ञान शुद्धि कैसे होय या अन्य कोई रोगो जो मृतकसे ज्ञान करना
 चाहे तिसका क्या प्रकार ।
 रजस्वला या प्रसूतीनारीमरणजाय तर्हाउचकी क्रिया कैसेहोय और घरके यत्र करनेवालीका नियमकैसेचले ।
 प्रसूती या मेल या रजोधर्म होजाने में किसदिन किस वेरासे मृतक लगा करता हे ।
 बिरले प्रेतोका मृतक नहीं मानाजाता किन्तु भयः शौच होजाता हे ।
 देशान्तरमें मरणप सपिंडका चर्चा बहुकाल पीछे मुनियाने या शीघ्र भी मुनियानेमें क्रियकेलिसे कितना
 मृतक माना जाय ।
 देशान्तर कितनी दूर कहाला हे तिसके लक्षण अहां देलो ।
 जनेउदार चाहे किसे अवस्था का भरे तिसके मृतक मानने की व्यवस्था ऊपर कही गई सो संपन्न
 वास्य की समुक्तनी ।
 चर्चा आदि तीनों वर्गके मरने मध्ये कितने दिन मृतक होय ।

२३	१५
२६	८
२७	२१
२८	०
२९	२
३०	१३
३१	२६
३२	१८
३३	२४
३४	१
३५	१५
३६	२२
३७	२१
३८	१८
३९	२०
४०	१६
४१	२०
४२	१५
४३	१७
४४	२२
४५	४
४६	८
४७	२६
४८	१२
४९	२१
५०	५
५१	२०
५२	१०
५३	१०
५४	१०

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	शृ	पंक्ति
तीर्थसंप्रतिच्छेदमें सजनत्केकेनाम लक्षण कहेजायेंगे कि जो जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको मिलते हैं ।	२५०	२
पाप को धिनाचाहे अज्ञानतामें होगया तिसका दोष प्रायश्चित्तसे मिटिजाता किंतु चाहना से किये पाप का प्रायश्चित्त करनेसे दतनाही फलहे कि संसारमे शुद्धि मानीजायगी परलोकमें नरकभोग बनारहेगा । इसी बातपर सन्देहसे ब्रितकेवाट का समाधान ।	२५१-२५२	१३-६
(इति नरकादिनां प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं)		
बीषोषसंप्रतिच्छेदमें पापों महापातकियेके जुदेनाम और लक्षणभेद उनके पातकोंसहित निष्पद्य किये जायेंगे-इति महापातकानि ।	२५३-२५४	२४-२
पशुमर्षेपरिच्छेदमें महापातकमे कुछ नीचे अतिपातक और इनमेंनीचे पातक नामके पाप इन दोनो के लक्षणभेद कहेजायेंगे जिनसे अतिपातको और पातको पुरुष पहिंचाने जायें ।	२५५-२५६	२-६
ब्रह्महत्याके समान पातकों का लक्षण ।	२५७	६
सुरापान के समान पातकों का लक्षण ।	२५८	१५
सुर्य को चोरी के समान पातकों का लक्षण ।	२५९	४
शुद्धदार संगम के समान पातकों का लक्षण ।	२६०	६
सुन्दार संगमके समान पातकोंका अतिदेश जिन पातकों पर दियागया तिनके लक्षण ।	२६१	१३
शत्रुसंप्रतिच्छेदमें तीमरेदलेवाल पचासकेलगभग उपपातक और उनसेभीदोटे अनुपातक आदि सबके लक्षण कहे जायेंगे ।	२६२-२६३	१२-१६
गोहत्या आदि अनेक उपपातकों के लक्षण ।	२६४	१६
सर्प आदि वर्णोंका बध करना और पराई दाप संगम करना स्त्रियोंका बधकरना आदि अनेक उपपातकों के लक्षण ।	२६५-२६६	२३-२३
धान्य आदिको चोरी • दिता माता पुर्षोंका त्यागदेना और कन्या को दुष्टि करना आदि अनेक उपपातकों के लक्षण ।	२६७-२६८	१६-१६
सुर्य आदि बहुशासनाती यथोक्तयाना • मद्यपस्त्रोसेवन • नियम त्यागदेना • स्त्रियोंसे जीविकाकरना • हानियोगिनियम • नीचमे मेवी आदि अनेक उपपातक ।	२६९-२७०	२१-२१
अभिचार आदिको निवारणने अमृतगानो का विचारना या भार्याबंधिदेना आदि अनेक उपपातकोंके लक्षण ।	२७१-२७२	१७-१७
घडे छेले ममी पातकोंके छुटेछुटे संघामेड शकटे करिके पूरदृष्ट्युनेकहे सो मय चोदहमेड होजातेहैं । कार्यासनने उन्नीं पादरके मुख्य पाशहोमिद माने और उन्नीं पावका धर्माया टीक टाक ममुकम आनाते ।	२७३-२७४	१८-१८
यहां एक शास्त्रार्थका विशाद हे इममें छे टे पातक भी घडे पातकोंके तुल्य होजातेहैं जम छोटोका अभ्यास धाम्यार कियाजाय तिमको माप तेमहे ।	२७५-२७६	१९-२५
(इति महापातकानां लक्षण प्रकरणं त्रिपरिच्छेदमयं)		
मर्षासंप्रतिच्छेदमें ब्रह्मण त्रियो कशाशिवन अनेकवाति कहेजायेंगे क्योंकि अल्पतया महापातक जो अनेक शास्त्र का होनासे तिमके छुटे छुटे कर्मायेंके प्रायश्चित्त भी अनेक हे ।	२७७-२७८	१९-१९
इत्यार के मायायक नेग रगना प्रायश्चित्त हों ।	२७९	७
विशिषी दायता (जकने हाप मे माप नहीं न मनसे मेरयाना चाहा किंतु ऐसा कुछ अबमान कि या	२८०	२०

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पङ्
विषयपर आपत्ती वह मरणया तिसका प्रायश्चित्त ॥	१६८	६
सहायका से उपराल धरने समतिदेने या उत्साह दिलानेवाले आदि शेर भी अपरधी हेनेहे तिन समयके सहित सहायकेके लक्षण यहा देखे ॥	१६९	४
बालक बूटे रोमी आदि हत्यारे को बुरका आधा प्रायश्चित्त ॥	१७०	१३
जहाँ देा तीन आदि पालके का सन्निपात एकसाथ आनिपरे तहा प्रायश्चित्तके सन्निपातका निर्वाह निर्णय ॥	१७१	१७
बसायती व्यवस्था को अनेक मुनि बचनेसे निर्णय करी जायगी ॥	१७२	१७
व्यवस्था बसायत का तोड़निघोड ॥	१७०	१२
अदुर्दैववैपरिच्छेदमें उनकारणोंकेरूप कहैजायै जिनसे बारहवै आदिके नधेहुये प्रायश्चित्त किसी समय बीचही में समाप्त होजाते और पूरी साधना के समान फल देते हैं ॥	१७६	२०
उत्तमवैपरिच्छेदमें उद्योगहत्याके बारहवैजाने प्रायश्चित्त के बदले कहे प्रकार और भी दर्शवैने कि जिनमें प्रायश्चित्तके स्वाधीनता योगी किसी एक प्रकारका स्वीकार करें ॥	१७५	१४
अनिप्रेषण रूप प्राणांतिक प्रायश्चित्तका विधान है कि जिसका बलाया समाप्त नहीं रहा ॥	१७५	१७
एक यह प्रायश्चित्त है कि जहा दुतफा शस्त्र चलतेहे। तिनके बीच में बैठिके प्राण देदे पढा मरने के तुल्य होकर देवसे छोटा रहजाय ॥	१७८	२३
तोसरा यह प्रायश्चित्त है कि जो बंद पडा बिदुान्दो से धनमें रहिके सहिताका पाठ करे ॥	१७९	९
चौथा यह प्रायश्चित्त है कि जो धनवान्दो से १४ प्रकारके दानकरे ॥	१२९	५
पेनुबधरामेय्यर की याचा करना यह भी एक निमित्त भेदी प्रायश्चित्त है ॥	१२२	२
यहाँतक ब्राह्मण हत्यारे के प्रायश्चित्त कहेगये चर्चो आदि हत्यारे बन्दों को दूनी आदि अवधिसे। से स्वीकार करें ॥	१७४	१४
चर्चो आदि वर्यैके प्रायश्चित्तो का विशेष निर्णय ॥	१२१	१६
प्रतिलोमितपत्र जाते। का प्रायश्चित्त निर्णय-शेर गृहस्थोसे उपराल आशयो के लेग जो हत्यारे छुये है। तिनके प्रायश्चित्त ॥	१२६	१३
तीसवें परिच्छेद में ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त बिरजे उन पालके पर भी अतिदेश उतार जायगा जो यात्तात् ब्रह्मबध मही है ॥	१२८	२
यचमें लगेहुये लुबी या वैश्य को मारे से। ब्रह्महत्या जाने प्रायश्चित्त करे-जिसने गर्भका बधकिया या आवेयी स्त्री का बध कियाहै ॥	१२८	०
शस्त्र आदि लेआकर मार डालनेपर समुदात हुआ किसी हेतुसे जिना बध किये लोटिबादे सोभी यदी प्रायश्चित्तकरे ॥	१३२	४
लिखे नियमसे दून प्रायश्चित्त चाहिये जिसने प्रश्नमें लगेहुये पुरुष व स्त्रिया बध करीहै ॥	१३५	१८
(इति ब्रह्महत्या प्रायश्चित्त ब्रह्मण चतु परिच्छेदमय)	१३२	१७
{ इति साधारण ब्रह्मण च दशपरिच्छेदमय }	१३३	२०
एकतोसवें परिच्छेदमें उन महापातकेके प्रायश्चित्त जानेजायने की रच्योसहित निम्दि मदिदा योजर उपपन्न होयै ॥	१३४	२
असकृत बालक मुरापानकरें तिनके माता पिता आदि प्रतिनिधि होके प्रायश्चित्तकरें ॥	१३६	१३
बतीसवपरिच्छेदमें रच्योकेविना घोले आदिसे मुरा पीजानेके प्रायश्चित्त अनेक भेद है ॥	१३७	१५

आशयाना व्यनस्याक्रम*	पृष्ठ	पंक्ति
तेईसवेंपरिच्छेदमें सबनरकोकेनाम लच्छव कहेजायेंगे कि जोजो प्रायश्चित्त न करनेवालाका मिलते हैं । याप जो बिनाचाहे अज्ञानतामें होगया तिसका दोष प्रायश्चित्तसे मिटिजाता किंतु चाहनासे क्रिये याप का प्रायश्चित्त करनेसे इतनाही फलहे कि सप्तारसे शुद्धि मानीजायगी परलोकमें नरकभोगे वनाहोगे । इसी बातपर सन्देहसे बितर्कबाद का समाधान ।	२५० २५६ २५७ २५८	२ १३ ६ ४
(इति नरकादिगति प्रकरण विपरिच्छेदमथ)		
चौबीसवेंपरिच्छेदमें पांचो महापातक्रियेके जुदेनाम और लच्छवभेद उनके पातकोसहित नियेय क्रिये जायेंगे—इति महापातक्रानि ।	२५९	२
पच्चीसवेंपरिच्छेदमें महापातकसे कुछ नीचे अतिपातक और इनसेनीचे पातक नामके प प इन दोनाके लच्छवभेद कहेजायेंगे जिनसे अतिपातको और पातको पुसप शहैचाने जायें ।	२६२ २६३	२ ६
ब्रह्महत्याके समान पातको का लच्छव ।	२६४	६
मुरापान के समान पातको का लच्छव ।	२६५	१३
सुवर्ष की चोरी के समान पातको का लच्छव ।	२६६	४
गुरुदारा मगम क समान पातको का लच्छव ।	२६७	६
गुरुदारा मगमके समान पातकोका अतिदोष जिन पातको पर दियागया तिनके लच्छव ।	२६८	१३
छत्तीसवेंपरिच्छेदमें तीसरेदोषके पाषाणकेतगमा उपपातक और उनसेभीछोटे अनुपातक आदि सयके लच्छव कहे जायेंगे ।	२६९ २७०	१० १६
गोहत्या आदि अनेक उपपातको के लच्छव ।	२७१	२३
चर्चो आदि वर्णोका बध करना और पराई दारा सपम करना स्त्रियोका बधकरना आदि अनेक उपपा- तको के लच्छव ।	२७२ २७३	१६ २३
धान्य आदिकी चोरी • पिता माता पुशोका त्यागिदेना और कन्या को दूषित करना आदि अनेक उप- पातको के लच्छव ।	२७४	१६
सुरुषआदि बहुप्राणघातो यचोक्रान्ताना • मद्यपस्त्रोपेधन • नियम त्यागिदेना • स्त्रियोसेजीविकाकरना • हीनियोगिनसेधन • नीचसे मैत्री आदि अनेक उपपातक ।	२७५ २७६	२९ २९
व्यभिचार आदिकी शिवावाने अपमत्याशो का जिघारना या भायावैधितेना अदि अनेक उपपातकोकेलच्छव । जातिभयकर स्कारकण्य आदि उपपातको के लच्छव ।	२७७ २७८	१० १६
बडे छोटो ममी पातकोके जुदेनुदे सपामेद इकट्टे करिने बृहद्विष्णुने कहे गो मय जोदहभेद होजातिहे । कात्यायनने उन्को सोदरके मुखे पाचरोमेद मान और उन्को पाचका धनोवा ठाक ठाक समुक्रम आताहे ।	२७९ २८०	३ १६
यहा एक शास्त्रादका विवाद हे मममें छे दे पातक भी बडे पातकोके तुल्य होनात हे जय छोटोका अध्यास बारम्बार क्रियाजाप तिसको माप नौनहे ।	२८१	२५
(इति महापातकादीना लच्छव प्रकरण विपरिच्छेदमथ)		
सत्तरवेंपरिच्छेदमें ब्रह्मघातियोकप्रायश्चित्त अनेकवार्ति कहेजायेंगे ध्योकि ब्रह्महत्या महापातक जो आक तपत्र का हाताहे तिनके जुदे जुदे कर्ताथेन प्रायश्चित्त भी अनेक हे ।	२८२ २८३	१४ १५
यहा एक अर्थ यादनाममें बहुत बडा शास्त्रार्थ हे ।	२८४	३
हत्यारे के सहायक लोग इतना प्रायश्चित्त करें ।	२८५	३
निमित्तो हत्यापर जिनसे हाथ से माप नहीं न मनसे मरवाना चाह्या किनु पेसा कुछ अपमान कि या	२८६	२०

आशयानो व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
जातिभ्रान्त्य के न होने पर भी चित्तले कर्मोंसे यह गति होता है ।	२१५	५२
अकालमृत्यु होजाने के संदेह मध्य समाधान ।	२१६	६०
मोक्षहोकर ब्रह्मलोक जानेकामार्ग एक होरी तनी मिलती है ।	२१७	६१
मुक्ति के अभाव में स्वर्ग प्राप्त होनेके मार्ग भी अनेक होरियां ।	२१८	६६
मृत्यु लोकही में आकर जन्म होनेके मार्गोंको बहिष्कार ।	२१९	६
अनीश्वरवादी भी इसी संसार में होते जो परलोक आदि भूँटा जानते हैं ।	२२०	६
अठारहवें परिच्छेदमें अनीश्वर वादियोंकामत खरडनाकियाजायगा जो पंचभूतों से बने देहको चेतन्य मानते और देहोंमें ईश्वर कोई नहीं—तानको ईश्वर के प्रत्यक्ष चिह्न समझावेंगे कि वही सब देहों आदि जगत् में सर्वत्र अपनी मत्ता से उपस्थित होरहा है ।	२२०	२
उन्नीसवें परिच्छेदमें वह ब्रह्मज्ञानहै कि भाषा के वाससे महत्तात्त्व बुद्धिआदि बोधोंस तत्त्व नियमके उत्पन्न होते और उसी क्रमसे प्रलय होताहै—तहा किसने लोक स्वर्गमें जाते या पृथ्वीलोक में या कितने किर लौटि लौटि दूसरी सृष्टिमें भी जातेहै इत्यादि प्रकारोंसे ईश्वरही अपनी याक्ति प्रकाश करनेको नानाद्वय धरता है ।	२२१	५
स्वर्गके भागों पुरुष प्रलयकाल में भी स्वर्गही को जाते हैं तिनके पुरुषानेका यह मार्गहै ।	२२२	६
उन्नीसवें परिच्छेदमें अनीश्वर शूद्रकोधर्म जाननेवाले प्रलय नहीं होते किन्तु अगमों सृष्टियोंकाधीन राखेजाते हैं वही लौटि जातेहैं ।	२२३	६
और भी अष्टासोहजार तपस्वी जो वेदशास्त्रादि वाणीका धीजराखे रहते अथवा प्रलयपर्यंतमानहो ।	२२४	२५
वेदही ब्रह्मज्ञान का मूलहै सब आशयों का जानना चाहिये ।	२२५	१६
परब्रह्म तक जातेहुये मार्गों में जेसा रूप होजाता और जिनकी रवा तथा सहायता से पहुँचते हैं ।	२२६	६
स्वर्ग भोगवालों को जेसा मार्ग मिलता और जेसे रूप चलते हैं ।	२२७	२७
बोसवें परिच्छेदमें योगाभ्यास का निरूपण किया जायगा जिससे अविमादि आठो सिद्धि प्राप्त होतीं और पूरा मोक्ष मिलता है ।	२२८	१५
साधन किया योग सिद्ध होजाने की बरीसा ।	२२९	१९
योगाभ्यास जिस पर न होयके तिसके लिये दूसरा सुगम उपाय देखो ।	२३०	५०
(इति चतुर्थ्यात्मज्ञानप्रकरणे १२ चिदशर्षिच्छेदमर्थ)	२३१	१७
बह्नीसवें परिच्छेदमें कर्मचिदादि फल दर्शावेंगे कि प्रायश्चित्त न करनेवाये महापातकी आदि कर्मों का फल भोगे पीछे जेसा जन्म लेते हैं ।	२३०	५
कर्मही के अनुसार नीचयोगि पशुपक्षी आदि या चंडाल आदिको मिलती है ।	२३०	१६
मनुष्य के अच्छे कुलमें जन्म होनेपर भी बहिने छोटे कर्म के बोधाय प्रभावही से अंग भंग मरना रोते आदि होते हैं ।	२३१	१९
अमुकामुक पाप कर्मों से अमुकामुक योगि मिलती है जो मनुष्य से उपातल योगि हो ।	२३२	०
और भी अल्पय योगि जेही किये दुर्बों के भेदसेही मिलती हैं ।	२३३	०
कहीं काशत्र में कुकर्मों का फल भोगि बुके पीछे अनेक जन्मांतर से घनी मुषी विद्वान् उत्तम कुनने भी उत्पन्न होगे है ।	२३४	२६
चारदशवें परिच्छेद में उन पुरुषोंके स्वहृदयकेवायों जो तत्कालही प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी होतेहै ।	२३५	१८

आशयाना व्यवस्थाक्रम*	पृष्ठ	पंक्ति
जीव और चेतना जिनका हृदय में निवास है पुनि इषा जगह रक्तप्रोहा आदि करनेका निवास है उन सबही की व्यवस्था वैद्यक शास्त्र से ।	१००	६
लठारानि और पित्तके परस्पर जो विरोधमय सदेह तिसका निर्णय निर्विकार है (इसी के प्रतीक भी देखो १०१ पृष्ठमें दशमे अक्षरे प्रारंभ पृष्ठे से ।	१०४	१०
शरीरका भीतरली नाहिया और दादी मूत्रके बालोको सख्या आदि और शक्यो सात मर्मस्थान सवस्य म देखो सन्धिमा भी ।	१०४	१३
रोमरूपे की सख्या और भीतरली यालु आदि द्रव्यरूपी टीली पतरी सब चीजके परिमाण ।	१०६	२
चारहथे परिच्छेदमे वह रूप दर्शावेगे जो योगीजनको हृदयमें ध्यान करना चाहिये जो दीर्घज्योति के समान अपने हृदय में रहता है ।	१०८	१४
योगध्यान की धारणा सीलपाने की चाहनामे इतने उपायकरे जो उत्तम दर्जेका योग साधा चाहे ।	१०९	१६
शब्दब्रह्म की उपासना इस रीतिसे करने चाहिये जो मध्यम दर्जेका योग है ।	१०९	१६
तेरहमें परिच्छेदमे ब्रह्मविद्या कही ज्ञायगी त्रिषधे परमेश्वर की विश्वरूपिता जानीजाय कि जगत् और परब्रह्मका परस्पर सबध कैसा ।	१०९	८
परमेश्वर आपही अन्नरूपसे धर्तोंका रूप होके फिर धर्तोंका रूप होके अन्नरूप होजाता है उगी अन्न के बीर्यसे मैथुनी सृष्टि होता है निरानो भी सब सृष्टि उसी धर्तों से ।	१०८	३
मोक्षपाने मध्ये सदिग्ध याका का समाधान ।	११०	५
बौदर्ये परिच्छेदमे पूर्ववत् जगत्की उत्पत्ति जो परमात्मासे हुई कहिदु के तिसके विस्तार का प्रपच कदा कामया कि इस तौर से होती है ।	१११	२३
यह सदेहहृषी प्रकृष्टे कि सेवा शक्तिमान् होके आपरूपी देहमें क्यों जन्मलेता और इन्द्रिया के होते भी पहिले जन्मोंका देहादि भोगयाद क्यों नहीं ।	११३	६
धरी प्रश्नका उत्तर समाधान सहित ।	११४	७
कर्मके परिपाकफल ब्रिलोके इसीदेहसे ब्रिलोके दोनो लोकमें पहुँचनेके परलोक ही में जाकर मिलाकरतेहै । पदहथेपरिच्छेदमें पूर्वोक्तकर्म से जोके फलप्राप्त होनेके प्रकार ध्योरेवार विस्तार से दर्शावेगे कि उनसे सेवी मोक्ष मिलता है ।	११६	१५
सतीगुणी रजोगुणी तमोगुणी तीनों भातिके मनुष्यों के लक्षण और वहा उनको जन्म जाकर मिलता है वे न्यान भी ।	११८	६
पहिले किये प्रश्नोंके सब उत्तर लुटे लुटे भागे समुकावेगे ।	२००	१८
मालहृषयपरिच्छेदमें यहज्ञान कहाजायगा कि परमात्मासृष्टि बीजवैति सायही आप सब जगत्में व्याप्त होजाता है तिससे कोई बस्तु या कोई जीव सेवा नहीं कि जिसमें श्वस्व न देखिपरे ।	२०१	२२
परमात्मा सर्ववस्तुको सम प्रकारसे बनाता रहता है	२०१	१५
जगत् के सब देहमें परमात्मा बैठा उसका पहिँचानना बड़ा मुसम है इन प्रमाणों या गोचों ।	२०१	१२
लिखजीवात्माका स्वभाव अहंकार मयहोकर परमात्माका नहीं पहिँचानता तिसकी सेवी गति होताहै ।	२०	२०
उसी विकृत जीवात्माकी सृष्टि त्री कालात् ८ में सेमी उपासनामे होसकती है जब साथे तभी ।	२०८	६
सबहथेपरिच्छेदमें यहदर्शावेगे बाध्यात्म विद्या जानने अपदि सन्मों से अनेक जीवात्मा पहिले जन्मों की दया भी जानते और ब्रिले मोक्षपद पातेहै शक्यादि ।	२११	१२

आशयानां व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
श्रुतिगत को आदिका संयोग भजे तिनके प्रायश्चित्त-भेद ।	३२३	१०
अद्वितीयपरिच्छेदमें योगबंधव्यवस्थाप्रति प्रसन्नकहायागमा कि पतितसे विषाह संबंधकरना मनेहेचुका उसमें इतनी आचाहे कि उसकी कन्या शरीरतिथे विवाहि लीजाय तोकुश्टोपनहीं ।	३२४	१४
पतितहोने का दशमं संतान लड़कीया लड़का उत्पन्नहोने की व्यवस्था ।	३२५	१६
(इति संयोग प्रायश्चित्त प्रकरणं द्विपरिच्छेदमर्थ)	३२६	१०
उन्तागोसर्वे परिच्छेदमें शरिर् बर्तीसे नान्चे प्रतिनीमज्जातो पुरुषोंका बंध करने के प्रायश्चित्त० और स्त्री शूद्रआदिका संबंध के बिना प्रायश्चित्त का विधान कहायागमा ।	३२८	२
शूद्र- स्त्री- मुख सब जातोंके लोग-अथकृप जातोलोग- इनकी संबंधे बिनाभी प्रायश्चित्त करनेका अधिकार ।	३२६	२५
(इति प्रकरणं परिच्छेदिकमर्थ)	३०१	६
(इत्यग्रेय महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकरणानां बृहत्प्रकरणं १६ कर्नाबंधाति परिच्छेदमर्थ)	४०१	१०
जातोसर्वेपरिच्छेदसे उपपातकोंके प्रायश्चित्त प्रारंभ किये जायगे -तनमें प्रथम गोहत्याके प्रायश्चित्त छेड़ते है जो अनेक भेदके होंगे सो सब इच्छा बिना देशयोगसे मरजाने मध्ये नियतहै ।	४०२	२
इकतानीसर्वे परिच्छेदमें उभी हत्याके प्रायश्चित्त होंगे जिसने इच्छा सहित जानि घूमि गाय मारी याजिसपर इच्छा बिना भी ऐसी गऊ मरजाय जो जिसका स्वामी उत्तम गृध्र वाला पुरुष हो या वह गाय आपही उत्तम गुणवालीहो ।	४०३	१६
अति बड़ा या दुर्बल या रोगिनि या वृद्धीयाय जिसने मारीहो तिसका प्रायश्चित्तभेद ।	४०४	२८
उत्तम स्वामीको गाय मारने मध्ये प्रायश्चित्त जुदाहै ।	४११	८
उत्तम स्वामीको गाय विधने इच्छासहित मारीहो तिसका प्रायश्चित्त विशेषहै ।	४१२	६
पूर्वांत सत्रनस्थ श्रेष्ठियकी गाय मारने मध्ये औरभी विशेष प्रायश्चित्तहै भाषकी उत्तमतासे ।	४१३	८
वेण्यकी इत्यादिका प्रायश्चित्त गोहत्यापर गौतमने उतार दिया ।	४१४	१६
किन शस्त्रोंमें गोहत्या करी इसके निर्वाण सेभी प्रायश्चित्तमें कुछ भेदहै ।	४१५	१३
घयालोसर्वे परिच्छेदमें गोवधके अनेक भेदोंवाले जुदे प्रायश्चित्त होंगे -किन्तु अति बड़की घानक आदिकाजुदा-गर्भ विपके भारदेनेका एक गायको अनेक मीन के मारने कृधि घेरिके एकही पुरुष अनेकमारने इत्यादि ।	४१६	३
अति बूढ़ा दुर्बल आदि मरजानेका आधा प्रायश्चित्तहै ।	४१६	१४
गामिन गाय मारने मेंगर्भ हत होनेसे दूधपानी प्रायश्चित्त कितना चाहिये ।	४१७	१४
कृधि घेरि अनेक गाय मारनेके प्रायश्चित्तभेद ।	४१८	१३
दाना पाप आदि बहुत खपाए देनेसे मारनेका प्रायश्चित्त ।	४१९	६
किन्नी उपाधि रूपी निमित्त के द्वारा गायमारनेका प्रायश्चित्त ।	४१९	२१
संतानलाभसे परिच्छेद में उस गोहत्याके प्रायश्चित्त होंगे जो बांधने छेदने जोगने दामने शिव ।		
देने आदि कामोंके व्यतिक्रमसे शफलतामें गाय घेन मरजाय ।	४२३	०
बधन जोग नाश लिडना आदिमें फौदके मरजानेके प्रायश्चित्त ।	४२२	२०
अति दामने शतिवाहने अति जोगने आदि कठिनतासे मरजानेका थडा प्रायश्चित्तहै ।	४२५	१५
इतने प्रकारके बंधनोंसे न बांधना चाहिये अथानक मर जातोहै ।	४२६	१२

आशयाना व्यक्त्याक्रम.	पृष्ठ	पंक्ति
बिना जाने घोखा से अनेकवार सगम किया हो • इत देना के प्रायश्चित्त ॥	३७१	०
इसी बनेनी बिमाता को इच्छा सहित भोगनेमध्ये प्रायश्चित्त यहाँ और तीनसे चौहतर के पृष्ठमें सातवाँ पंक्ति से चौदहवीं तक देखो ॥	३७६	१६
पिता की शूद्रा भार्या को ब्राह्मणों का घेटा बिना जाने किसी घोखाने भोगे तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७६	२१
जिसने उसी शूद्रा बिमाता को जाने बिना पकवार से उपरालु कईवार भोगा हो तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७८	३
इसी बिमाता शूद्रा को जानिकर कामना से भोगने मध्ये प्रायश्चित्त का विचार ॥	३७८	१०
ब्राह्मणों का पुत्र घोखधिया बिमाता को जानिबूझि इच्छा से भोगनेपर उताहूँहोके बीर्य सोचने से पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७९	१२
इसी अधिया बिमाता को समूँके बिना किसी के घोखेसे सगम करने पर उताहूँहोके बीर्यपात से पहिले लौटिजाने का प्रायश्चित्त ॥	३७८	२३
जो ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भार्या को जानतेहुये इच्छासे भोगने पर उताहूँ होके बीर्य सोचनेसे प्रथम लौटिजाय उसका प्रायश्चित्त ॥	३७८	६
इसीबनेनी बिमाताको नजानिक भोगन परउताहूँहोके बीर्यपातसे पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७८	१५
जो ब्राह्मण अपने पिताकी शूद्राभार्याको जानतेहुये इच्छासे भोगने पर उताहूँहोके मुख्यसगमसे पहिले लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७८	२३
इसी शूद्रा बिमाता को नजानिके इच्छा बिना भोगने पर उताहूँहोके बीर्य सोचि बिना लौटिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	३७८	२
स्त्रियो का भी पुरुष के तुल्य महापातक और प्रायश्चित्त ॥	३७९	१२
जो स्त्रियो अपना इच्छा बिना प्रवृत्तासे भोगीजाय तिनका प्रायश्चित्त जुटाहै ॥	३७९	२१
यहाँ तक महा पातको का निपटारा होगया—यहाँ से आगे बागे उनसे कुछ नीचे अतिपातको के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥	३८०	२८
महापातकोसे उपरालु अतिपातक और पातक दोभेटेकिप्रायश्चित्तएकसमानहै जिनमें पुरुषब्रह्म कुफोआदि रिपते की स्त्रियो ॥	३८०	२
चटानीअदि अत्यजाति की स्त्रियो से प्रसंग होनेका प्रायश्चित्त ॥	३८०	१५
इसी के बाधसे वतपनासे रिपते की स्त्रियोका प्रसंग • तिनमें रानी या सम्प्राप्तिनि स्वगोत्रा गुरु शिष्य की भार्या निशिप्रा सोप हुइ आदिमी गिनताँहै	३८२	८
कन्या दूषण आदि महापाप का अपराद (इस्तिजाऽ) कूट ॥	३८३	१८
(इति आगम्यागमनविपर्ययिक गुरुत्वप्रकरणे परिच्छेदेकमय)	३८३	६
सौतीसर्वेपरिच्छेदमें आगमोत्तरसपर्यामी भा महापातकोकीहोतेहैं तिनकेप्रायश्चित्त भेदकहेजायेंगे—इसोसेसर्गा के लक्षण भी—फिर टनचारिसे उपरालुभी सर्गा को होताहै तिनके भा प्रायश्चित्त—सर्गा नहीं कहाताहै जो एकसा पातको से हेनमेल करे ॥	३८५	६
सर्गों के सर्गोंको हेलमेल जाने से आपहेलमेल करें तिनकोभी प्रायश्चित्त भेद ॥	३८५	६
सर्गों हेलेमेन के कितने लक्षण भेदहैं ॥	३८६	१४
कितानोद्वैर या कितनेदिन सर्गा देने से सर्गा पतित होताहै ॥	३८८	२२
इच्छा सहित किये देलमेन का प्रायश्चित्त—प्रहातक महापातकियो के हेलमेनका प्रायश्चित्त है ॥	३९१	२४
	३९२	१४

आशयानां व्यवस्थाक्रम	पृष्ठ	पङ्
अतिपात का आदिका ससर्ग भर्जे तिनक प्रायश्चित्त भेद ।	३६३	१०
अतमीमवेपरिच्छेदमे योनिसवधकाप्रति प्रसवकहागामया कि पतितये विशाह सबधकरना मनेहोचुका उसम इतनी आचाटे कि उसकी कन्या इसरतिथे बिबाहि लाजाय तैकुहुदोयनही ।	३६४	१४
यतितहाने का दरामे सतान लडकीया लडका उपसहोने की व्यवस्था ।	३६५	१६
(इति ससर्ग प्रायश्चित्त प्रकारण द्विपरिच्छेदमय)	३६६	१०
उततानासये परिच्छेदमे चारि बंधोसे नाचे प्रतिनोमजाती पुष्टयोका बध करने के प्रायश्चित्त० और स्यो गूदआदिका मर्षा के बिना प्रायश्चित्त का विधान कहाजायगा ।	३६८	२
गूद० स्यो० मुखे सब जातो० लोग० अत्रकृष्ट जातीलोग० इनकी मर्षा बिनाभी प्रायश्चित्त करनेका अ- धिकार ।	३६९	२५
(इति प्रकारण परिच्छेदकमय)	३७०	३
(इत्यथेव महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकारणाना बृहत्प्रकरण १६ उर्नविशति परिच्छेदमय)	३७१	१०
चात्तोसर्वपरिच्छेदमे उपशातकोक प्रायश्चित्त प्रारम्भ क्रिये जायेगे -तनमे प्रथम गोहत्याके प्रायश्चित्त छेदते है जो अनेकभेदके होंगे सो सब इच्छा बिना देवमीगसे मरवाने मध्ये नियतहै ।	३७२	२
इकतानोमर्षे परिच्छेदमे उषी हत्यारे के प्रायश्चित्त होंगे जिसने इच्छा सहित जानि बूझि गाय मारी याजिसपर इच्छा बिना भी रोसो गज मरवाय जो जिसका स्वामी उतम गुण वाला पुष्ट हो या ब्रह्म गाय आपही उतम गुणवालीहो ।	३७३	१६
अति ब्रह्म या दुर्वेल या रोगिन या बूढीगाय जिसने मारीहो तिसका प्रायश्चित्तभेद ।	३७४	२८
उतम स्वामीकी गाय मारने मध्ये प्रायश्चित्त जुदाहै ।	३७५	८
उतम स्वामीकी गाय जिसने इच्छासहित मारीहो तिसका प्रायश्चित्त विगेपहै ।	३७६	३
पूर्वात सत्रनस्य श्रोत्रिप्रकी गाय मारने मध्ये औरभी विशेष प्रायश्चित्तहै गायकी उतनतासे ।	३७७	८
यैस्यको हत्यायात्रा प्रायश्चित्त गोहत्यापर गौतमने उतार दिया ।	३७८	१६
किन शस्योसे गोहत्या करी इसके निर्णय सेभी प्रायश्चित्तमें कुरु भेदहै ।	३७९	१३
अयालोसर्षे परिच्छेदमे गोव्रथके अनेक भेदोवाले जुदे प्रायश्चित्त होंगे -किन्तु कति बूढो वालक आदिकाजुवांगम गिरुके भारदेनेका० एक गायकी अनेक मिल के मार० हु धि देखिके एकही पुस्त अनेकमारै इत्यादि ।	३८०	५
अति बूढा दुर्वेल आदि मरवानेका आधा प्रायश्चित्तहै ।	३८१	१४
गभिन् गाय मारने मंगम हत होनेसे टुसराभी प्रायश्चित्त कितना चाहिये ।	३८२	१४
हु धि घेरि अनेक गाय मारनेके प्रायश्चित्तभेद ।	३८३	२३
दाना चारा आदि ब्रह्म खपाह देनेसे मारनेका प्रायश्चित्त ।	३८४	६
किमी उपाधि हुयी निमित्त के द्वारा गायमारनेका प्रायश्चित्त ।	३८५	२१
द्वेने आदि कामके व्यतिक्रमसे सफलतमे गाय बेल मरवाय ।	३८६	०
बधन जीत नाय लेउना आदिमें कौधिके मरवानेके प्रायश्चित्त ।	३८७	२०
अति दामने अतिबाहने अति जोगने आदि क टनतासे मरवानेका दण्ड प्रायश्चित्त० ।	३८८	१५
इतने प्रकारसे बधनीसे न बांधना चाहिये अथानक मर जातोहै ।	३८९	१२

सिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकारण्ड का द्वितीय सूचीपत्र ।

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
घंटा बाधने वा आभूषण पहिराने आदि उपाधसे यदि गाय मारीजाय तोभी प्रायश्चित्त है ।	४२६	००
मशाले देकर अतिशय दूध निचोड़ने या शिला में अति दमन करने या अनेकों को एकही बंधनमें बाधने आदि ध्यतिक्रमसे मरजानेका प्रायश्चित्त ।	४२७	३
जंगल आदिमें अयोधित रत्ना न करने आदि गफवत्से मरजानेका प्रायश्चित्त ।	४२७	११
बिरले काममें गाय मरजाने सेभी दोष नहोहे न प्रायश्चित्त है ऐसे अपवादोंको व्यवस्थाभी अनेक है ।	४२८	१०
उक्त अपवादों (छूटों) मेंभी एक विशेष नियम देखो ।	४२९	२०
राज आदि टूट जानेमें मरनेसे प्रायश्चित्त जाने परभी प्रायश्चित्त ।	४३१	२९
जिमकी गाय मारिगई तिसको वैशोग्राय या उराना मूल्य देनेका नियम ।	४३०	१३
सर्वप्रायश्चित्तोकाप्रधानशरीरवैशेष्यपर्यटनसमुक्तो-कर्मोक्त्यहांतकस्मरण प्रायश्चित्तोकोव्यवस्थाकहागई ।	४३०	०३
स्त्री वाचक बूढ़े रोगी आदिके प्रायश्चित्तों का विचार ।	४३१	११
(इति गौडय प्रायश्चित्त प्रकरणं चतुःपरिच्छेदमयं)	४३२	०
चयानोसर्व परिच्छेदमें सभी उपपातकोंपर गौडयके प्रायश्चित्तोंका अति देश उतारा जायगा कि येही प्रायश्चित्त अन्य उपपातकों में ।		
इच्छा महित क्रिये उपपातकों की व्यवस्था ।	४३५	१३
उपपातकों पर गौडय प्रायश्चित्त का अतिदेश उतारने मध्ये एक लक्ष्याददे ।	४३६	१६
पैतालोममें परिच्छेदमें प्रायश्चित्त कहाजायगा जो वैशेष्यकोके यज्ञोपधोत संस्कारसे निहीनहोय तिसको प्रायश्चित्त मितिअने ।	४३६	१०
जिनके वाप दादे आदि अनेक षोडशोपे संस्कार विनागत्यस्या अनीआतोहे तिनकेभी प्रायश्चित्त से फिर सत्कार होयकोहे ।	४३६	२
द्विचयानोसर्व परिच्छेदमें उनचौरीके प्रायश्चित्त होने का मुख्यस्तेपसे उपराल धान्य आदि सामान्य चारोकरें जिसके भेद अनेक है ।	४३८	११
ब्राह्मण की चोरी कनी या सपी आदि अन्यवर्गों की इस भेद से प्रायश्चित्तों में भेद है ।	४३९	५
छोटी बड़ी चोरी के अनुसार प्रायश्चित्तों के भेद ।	४४०	१६
कामनाके विना किसी धोये आदिसे चोरीकरी तिमका प्रायश्चित्त ।	४४०	२६
मुख्य मुख्यको चोरी के समान जो चोरियां कहातोहे तिनको व्यवस्था चौर प्रायश्चित्त का भेद ।	४४१	६
जानो पीना चनी तैयार भोजनकी चीसोके करनेमध्ये प्रायश्चित्त ।	४४१	१३
तृण काष्ठसूत्रा अन्न गुड तैवआदि अनेक चीसों कोहीहमनेका प्रायश्चित्त ।	४४२	४
सधि मुक्ता प्रवाल रत्नत रास आदि अनेक चीसों के प्रायश्चित्त ।	४४३	२०
पैतालोममें परिच्छेदमें रोमि उपपातकोंके प्रायश्चित्त करेजायेंगे एकचरणी के न गोपनेमरवे-टुसरा	४४४	५
अनाहिताग्निव्यथा • तीवरा अपराध विक्रय का ।		
देयतायोग्य चतुः चरिचोकापरव • विररी का चरण इतने माय मनुष्यों का अपराधो जानना इनके न उद्धार करने के प्रायश्चित्त ।	४४५	०
अनाहिताग्निताका प्रायश्चित्त • जिनके कर्ममें अग्नि का त्यागन चनापारा हो घड़ीमुख्य अग्निको त्यागना न जाने तिथिक ।	४४५	१९
अपराधवत्तय पर्याप्त जो शीर्ष वेदनी ब्राह्मण आदिके निषिद्ध है तिनके वेदने का प्रायश्चित्त ।	४४५	००
	४४६	२०

आशयाना व्यवस्थाक्रम

	श्ल	पंक्ति
अडतालीसपेरिच्छेदममुप्यतो दोहोऽपपातकहे जिनकेअनेकभेदहोतेहेअथोत्परिवेदनकर्मक उपपातक में परिवेत्ता परिश्रितो आदिबई पातको • और दूसरे भूतकाध्यापन के प्रायश्चित्त बहेजायेंगे ॥	४४८	८
परिवेत्ता वरुपुष्ये वा वडे भ्राता क विवाह मे पहिले अपनाकरे तिसका सवाई माच हो जान का प्रायश्चित्त ॥	४४८	१६
विवाह तकहेजाने कौदशमे परिवेदनी कन्या जो प्रथम छोटे को विवाहीजाय • परिदायी यह पुरुष जो येसो कन्याका दानकरे • परिग्रहण्डित जो येना विग्रह कराये इनसबके प्रायश्चित्त ॥	४४६	९
वड वहिनके विवाह से पहिलेछोटीवहिन विवाहीजाय से अयेदिधिपूककारां हे हत्यादि अनेको के प्रायश्चित्त एकसाधहो कहगये ॥	४४७	११
पर्याहित जेठ(भाई) जिनके अग्निस्थापनान होतेहुये छोटोभाई अग्निस्थापन करे तो यह छोटोभाई पर्याधानु कहावे देना के प्रायश्चित्त ॥	४४७	१०
दिधिपू बहजेठोवहिन जिसमे प्रथम छोटो विवाहीजाय • यहछोटो अयेदिधिपूकहातीहे • जिसको विवाहीगइ से अयेदिधिपूकहाया त ने के प्रायश्चित्त ॥	४४७	१०
भूतका ध्यापक • भ्राता ध्यापित • जो मजुरा देनेकर पठे पदाये तिनके प्रायश्चित्त यह दूसरा उपपातकहे उपर बकहाके अनेक भेदकहे ॥	४४२	१०
(स्ति वहुभेद विषयिक साधारण प्रकार पच परिच्छेदमय)	४४७	२६
उडू सदैपरिच्छेदमेपरस्त्रीगमन प्रायश्चित्तके अनेकभेदहोये • यह परस्त्रीगमन उपपातको में गिनताहे • उत्स्रियेका चर्चा इसमेंनहीहे जिनके प्रायश्चित्त गुरुदारागमन के नामसे महापातकोमेकहिपुके ॥	४४६	७
कामसे गमन करना पराई दारा सजातीके षत्रुकान आदि उत्तम मध्यम दशाके भेदोसे प्रायश्चित्तभेद ॥ ब्राह्मण चर्चा आदि शौचिय जो विदारुपह लगेहोया सयह करलुके हे। तिनकी दारा गमनकरने क प्रायश्चित्त भेद ॥	४४३	१०
आयिय ब्राह्मणका विवाहिता भार्या सचिया वा वनो वा शूद्राहे तिसके षत्रुकानमें सगम आदि भेदो से प्रायाश्चित्त ॥	४४४	६
कोई दानो किसी चर्चोकी विवाहिता भार्या सचिया वा वननी वा शूद्रा के षत्रुकाल आदि उत्तम सत्त्वदानो मे गमनकरे तिनके प्रायाश्चित्त भेद ॥	४४४	५०
कोई वैश्य किसी वैश्यकी विवाहिता वनेनी या शूद्रा जो पूजात उत्तम गुणवाली हो तिसमें गमन करे तमके प्रायश्चित्त भेद ॥	४४४	२३
कोई शूद्र किसी शूद्रकी विवाहिता शूद्रो भार्यामें बिनरै तिसका प्रायश्चित्त ॥	४४४	२१
इच्छा सहित एक रात्रिके सियार या दुगारा आदि सगम करे तिनके पूर्वोक्त श्रायश्चित्तोंकी अपय वदि जाती हे ॥	४४४	२६
इच्छा बिना घोवा आदिमे ठसो प्रकारकी उत्तम गुणवाली स्त्रिया जो श्रायश्चित्त विग्र चर्चो आदि को बहा भोगीजायें तारी पूर्णोक्त प्रायश्चित्तों में न्यूनता हाता हे ॥	४४७	११
पूर्वोक्त ब्राह्मण आदि उत्तरी स्त्रियोकी षत्रुकान के बिना कमकी इच्छा सहित भागे तिनके प्राय- श्चित्तोंमें कुछ भेद हे ॥	४४	११
इसमें भी तीनों बणक अपनेसे नीचे बर्षो की विवाहिता भार्यानी गिनन भोगो मध्ये प्रायश्चित्तो न कुछ औगं भेदो ॥	४४१	६०

आशयाना व्यन्याक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
तिष्ठते भी यदि इच्छा विना धोखेमें सगम हुयेहैं तिनके प्रायश्चित्त भी जुद्ध है ॥	४४७	२६
धर्म कर्म में बिहोना किसी सजातीकी भायां यदि जोशं सजाती ब्राह्मण आदि भोगे तिसमें जुदा पक नियमहै ॥	४४८	२६
व्यभिचारिणः स्त्रियः जो इन्हीं मेंने कींहे तिनमें सगम करने मध्ये प्रायश्चित्तों में कुछ भेदहै ॥	४४९	२७
उत्तम गुणवान् ब्राह्मणकीभायां जो व्यभिचारिणी या नहीं व्यभिचारिणीहो तिनमें सगम करने के दो तरह प्रायश्चित्त है—ब्राह्मणके समान अन्य वर्णको क्षामी सजाती के भोगमें समझना ॥	४५०	२७
गनी मन्वामिनि आदि उत्तम स्त्रियों के भोगमें प्रायश्चित्त ॥	४५०	२८
व्यभिचार से बदनाम रानी मन्वामिनि आदिके भोगमें छोटा प्रायश्चित्त है ॥	४५०	२८
गनी मन्वामिनि आदि जो निषट्ट स्त्रियोंहो। अर्थात् तौनि पुरुषसे बदनाम होकर चौथे आदि जा-रेसे धिगडो हों तिनके भोगमें अति छोटा प्रायश्चित्त ॥	४५१	२८
गर्भ रन्दिने का प्रायश्चित्त अनुलोम मैथु-की दशम अर्थात् जब वर्षके पुरुष ने नीचे वर्णको स्त्रीके गर्भ धरहो तिसका ॥	४५१	२९
प्रति-नेम टूटिन स्त्रिया जो नीचे वर्ण के पुरुषों से बदनाम होचुकी तिनमें जो पुरुष गर्भ धरे या चहाली आदि मन्वीन जातों की स्त्रियोंमें गर्भ धरे तिसका प्रायश्चित्त ॥	४५०	३०
गर्भ जाति जाने बादि उत्पन्न होजानेमें अधिक प्रायश्चित्तहै ॥	४५०	२९
शुद्धिनीके पेटसे गर्भ उत्पजाने मध्ये जुदा प्रायश्चित्तहै ॥	४५१	३०
प्रतिलोम व्यभिचार का प्रायश्चित्त जो ऊंचे वर्णको स्त्रियों में नीचे वर्णके पुरुष मैथुन करे ॥	४५१	३०
अप्यस्य व्यभिचारिणी ऊंचेवर्णकी स्त्रियोंमें प्रतिलोम मैथुन जो नीचे वर्णके पुरुषकरे तिनका प्रायश्चित्त घोरिनि रमरेकिनि बिडोमारिनि आदि अत्य जातोंकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण जो एक बार संगम करे	४५१	३१
या वर्षी आदि कामना से करैतनके प्रायश्चित्त ॥	४५१	३१
उन्हीं चहाली धोखिनि आदि में जो इच्छा विना धोखा आदि से सगम करे ऐसे तीन वर्णके प्रायश्चित्त यह एकवारके संगमको व्यन्या कहा ॥	४५२	३०
उन्हीं अत्य जातोंकी स्त्रियोंमें धोखेसे बारबार जिनसे भगमकिया तिसका यज्ञ प्रायश्चित्तहै—तथा चानि प्रभू एक वारके भोगमें भी ॥	४५४	३०
उन्हीं चहाली आदिमें सगमसे गर्भ रहिजाने का प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है जो भगिनि आदि अनि मनीनिमें चारों वर्णके पुरुषोंसे कहा गया ॥	४५४	३१
अत्यजाति भोग आदि जिधके धारमें किसी हेतुसे पुषा या कुछदिन बसाहो तिसके प्रायश्चित्त यह पर प्रथम से लिखे गये ॥	४५५	३१
पद्मस्ये परिच्छेद में उन्ही स्त्रियोंके प्रायश्चित्त करे जायगे जो परये पुम्पोंसे संगमकरे इच्छा या अनिच्छाके भेद से—यथा उन स्त्रियों का प्रथम नगाडे जिनका सर्वा २६ परिच्छेदमें आयुका ॥	४५०	३६
या स्त्रियां अपने सजाती पुरुष में या ऊंचे वर्णके पुरुष में भगम करे तिनका प्रायश्चित्त ॥	४५०	३१
जा स्त्री अपने में नीचे वर्णके पुरुष साथ भगम करे तिनका प्रायश्चित्त ॥	४५०	३६
इच्छा विना प्रयत्ना आदि कारणों में जो स्त्री नीचे वर्णों में भोगा जाय तिसके प्रायश्चित्त भेद गोनी बदकी स्त्रियां करी शुद्ध के संगम में भू शुद्ध होमकनी कही गई है ॥	४५०	३८
वर्षी गर्भ रहि जाने में भी स्त्रियों की शुद्धि होनी कही गई है ॥	४५१	३८

प्रायश्चित्तकारण्ड	पृष्ठ	पंक्ति
चहा शूद्र क वीज से रहकर पैदा होय तहा उत्तम जिवों का फिर प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् त्यागही करना कहाँ है ॥	४७१	२८
द्विजाती माचकी भार्या अपने पतिसे बीजसे सगर्भा होय तिसका यदि शूद्र आदिका प्रश्रुता से सगर्भ होय तिसका जुदा नियम है ॥	४७२	३
कहीं चढाल आदि अत्यन्तोंके सगर्भ से भी स्त्रियोंकी मुक्ति प्रायश्चित्त से होजानी कहरी है ॥	४७३	१६
चारों वर्षकी स्त्रियाँ जो पालके बीजसे सगर्भा हाँते हुये चढाल आदि अत्यन्तों से भोगानामें तिनके जुदे नियम है ॥	४७४	१०
जिस स्त्री ने कामया सहित अत्यन्तोंके मात्र मैथुन और भोजन किया तिसने जुदे नियम है ॥	४७५	१०
उन्होंने सनेवचनोका साभूत निवैय यह। देखी जो जो इसीपरिच्छेदमें प्रारम्भमे यहातक टियेगये ॥ (इति पारक्ष्य प्रायश्चित्त प्रकरण द्विपरिच्छेदमय)	४७६	११
शूद्रप्रायश्चित्तपरिच्छेदमें जुदेजुदे तीनउपपातकोंके प्रायश्चित्तकरेजायेंगे १ परिष्वित्तोपा० न चायुष्य टोप० २ लवणक्रिया टोप० ये तानि विषय छैटी व्यत्ययके हेतुसे एकही परिच्छेद में रखेगये ॥	४७७	१८
परिव्रित्तिका प्रायश्चित्त यहा। देखी जिसका स्वरूप ४३ के परिच्छेद में आदिका या कि जिस छेदे भाई के त्रिगह से पहिले छोटैका होजाय ॥	४७८	२२
चायुष्य यह पुण्य जो अनुचित पतिका व्याज बट्टा कियत लगाने आदि प्रकारों से जाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	४७९	३
लवणक्रिया का प्रायश्चित्त भी चायुष्य के मादही देखो ॥ (इति परिष्वित्यादि नियमचय प्रकरण परिच्छेदकमय)	४८०	१०
वाशनेये परिच्छेदमें चर्चो आदि शूद्रपर्मन्त तौनि वर्षोंमें किसीपुण्यका वधकरनेवाले के प्रायश्चित्त भेदछहे जायेंगे ॥	४८१	३
शिष्टाचार समुक्त सन्यास चर्चो आदिके मारनेका प्रायश्चित्त ॥	४८२	१०
दृष्ट्या सहित चर्चो आदिका वध किया हो। तिनने प्रायश्चित्त ॥	४८३	८
श्रीचिप चर्चो आदि जो विद्याके अध्ययन में लगे या पठितुक्त हो। तिनको दृष्ट्या सहित मारनेवाले के प्रायश्चित्त ॥	४८४	१८
दोनों गुणसे युक्त चर्चो आदि जो श्रीचिप लवण और शिष्टाचार आदि मद्गुण लक्षणसे भरे हुए हो। तिनका वध करने मध्ये प्रायश्चित्त भेद ॥	४८५	८
श्रीचिप चर्चो आदि जो यज्ञका आरम्भ किये हो। तिनका वध करने के प्रायश्चित्त भेद ॥	४८६	२०
निषट्ट यज्ञहो। में बैठे हुये श्रीचिप चर्चो आदि वध करने मध्ये प्रायश्चित्त का बडापन ॥	४८७	११
दुर्बल चर्चो आदि जो कुमार्गी विद्रित होयें तिनका वध करने के प्रायश्चित्त छोट्टेरे यहातक उर्भ क प्रायश्चित्त करे गये जो मालेजाला मुद प्राप्त हो ॥	४८८	२८
ब्राह्मण से उपाणू कोई चर्चो आदि वधकरना हो। तिसके प्रायश्चित्तों में कुछ भेदहै उन्हे पहिने पावैपर ॥	४८९	१०
तिरचननेपरिच्छेदमें चारौवर्षकी उनस्त्रियोंकेवधपर प्रायश्चित्तभेदकहेगे जो मन्द १ मध्यम २ दुर्हता ३ र्त्तम भाँति की हो-अर्थात्-सगर्भ पैदा करने के उत्तम गुणसे हीन रंध्याआदि या किचित् व्यभि चारसे कलकित या अत्यत स्त्रैरिणी आदि ॥	४९०	६

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
सबसे प्रथम अतिछोटी स्त्रियों के बधपर प्रायश्चित्त—स्त्रियः ॥	४८१	६
एक अङ्गुली व्यवस्थाका निर्णय जो चौथेमें आनिपप ॥	४८०	६२
किंचित् व्यभिचार से दृष्टिय जो अति छोटी न हो तिनका बध करने के प्रायश्चित्त भेद (इनके मध्यमा कहना चाहिये) ॥	४८४	६
निकम्पे या मंदा कहे जा लोनों में श्रेष्ठ है तिनके बध करने का प्रायश्चित्त हारीत के बचन से कुछ बड़ा है ॥	४८५	१३
इच्छाके बिना देवदेग से बधकिया हो तिनके लिये चाहे प्रायश्चित्तका नियम है ॥	४८५	२५
सर्वसिद्धांत हूयो निर्णय—इसमें आचर्यो • मंदा • मध्यमा • अति छोटी इन चारों को व्यवस्था समुक्ति लेना ॥	४८६	०
(इति ब्राह्मणेतरनरहिंसा प्रकरणं द्विपरिच्छेदमर्थ)	४८६	१०
चौपनवें परिच्छेद में मनुष्य से उपरालू सब जीवों की हिंसा मध्ये प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे जो हाथी से लेकर मच्छर लीख पर्यन्त होतेहैं ॥	४८८	१४
बिनहाइके जन्तु या हाइवांयले अतिमूढम जन्तुश्रेका समूह बध करने मध्ये प्रायश्चित्त ॥	४८८	१६
बिल्ली • गेहू • मेहक • नेउरा • और उड़नेवाले काकपक्षी आदि अनेक जीवोंका बध करनेके प्रायश्चित्त ॥	५००	१०
हाथी • गदहा • बकरा • आदि चौपाये • राया • तारा • कौंध • मारस आदि श्रेष्ठ पंचमके बध करनेका प्रायश्चित्त भेद ॥	५०१	१६
वानर • हंस • बाज • गिद्ध • और मांसमत्वी जीव जो जलमें या स्थलमें होतेहैं और भास नामकपक्षी आदि जीवोंके बधमध्ये प्रायश्चित्त ॥	५०२	०
साप आदि सर्पवृष • ऊँट • गाराह • घोडा आदि और मनुंस केवल हिलगें की जातिमात्र जो वे भी पशुगुण्य हैं • इनके बध करने के प्रायश्चित्त ॥	५०३	४
उन प्रायश्चित्तों की श्रुति में दूसरे प्रायश्चित्त बताते हैं ॥	५०५	३
अति मूढमजंतु जो फन फूल घने लकड़ों आदि में होतेहैं तिनके नाश करनेका प्रायश्चित्त ॥	५०६	०३
उन मत्त जीवोंके बधपर प्रायश्चित्त जो अपराध करने के प्रतिकार में मारेहैं (अपराधका दृष्टांत जैसे कुत्तेने काटिलामा • काकने ऊपर हंगिदिया ॥	५०८	०४
(इतिनेतार मयंश्राहिंसा प्रकरणं परिच्छेदिकमर्थ)	५१०	०४
षषपनवें परिच्छेद में सबतरफकी वनमति वृथा काटने या तोडने या उखाड़ि डारने आदि किसी प्रकार से विनाश करनेके प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे ॥	५११	४
दशमवें परिच्छेद में उष मनुष्य के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो किनी मनीन श्नुषवोआदि ज यमै या मनुष्यहो वे काटि खायाजाय—बरोकि मारनेका प्रबंध घना आताहै रहा मारनेवाला किसीसे काटि खाया भी जायहै ॥	५१२	००
पुरुषनां व्यभिचारिणी श्रेण्या आदिमी प्रायश्चित्तोक्त के समय काटि खातोहै या बन्दर गदहा ऊँट कारक आदिसे काटिखायाजाय तिनके प्रायश्चित्त ॥	५१३	०५
स्त्रियां जो कुत्ते आदिसे काटिजायें तिनके कुछे प्रायश्चित्त है उनमें जो दण नियम से संयुक्त हो गिनके लिये विशेष नियम है ॥	५१५	११
एष्वथा रोते ये स्त्रियां कुत्ता गदह कारक आदि काटिजायें तिनके कुछे प्रायश्चित्त है ॥	५१५	०४

आशयाना व्ययस्यारक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
पुरुष जो कुना आदि मलीन जीवैषि केवल सूचि लियाजाय या जोभमे चाटि लियाजाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त है ॥	११६	८
जिस पुरुष के देहमें कुता आदिके काटने न घोटने या चोरही किसी चाट फोडा आदि के मङ्गि- जानेसे राधिमं कोड़े भी परे तहाका जुटा प्रायश्चित्त है ॥	११८	१४
(इति स्यात्पर हिमादि प्रकर्यं द्विपरिच्छेदमयं)	११९	१३
सभारनवें परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तके भेद कहेजायेंगे जो देहका मातया धातुवीर्य कियोतरहसे त्रिगाडि देहमें लागते हैं या जलमं मुहकाया देखिलेने • या कोई अगुचि वस्तु देखिलेने • या नि- दित उपजीवन • या नास्तिकता प्रकट करने में लगते हैं ॥	११८	९
दूया योगपातन के प्रायश्चित्तभेद अनेक हैं ॥	११८	८
जन्मे दूया देखनेका प्रायश्चित्त १ अगुचिवस्तु देखनेकेका प्रायश्चित्त २ असत्य वचन जो केवल हासो ठट्टेकी चपलतासे बोला हो तिसका भी प्रायश्चित्त ३ तांनो एकसाय ॥	११८	१६
निन्दित अर्थसे उपजीवन कर्मका प्रायश्चित्त • इसमें स्त्री गुरुष बालकआदिका बेचना या बिकवाना दलानोलिना आदिमें शामिल है ॥	११९	२६
नास्तिकतापर आहूठहोने या उमकेट्टारा जीवनवृत्तिकरनेका प्रायश्चित्त उद्योगिन्दित अर्थकेसाधमें देहो ॥	११९	३
अष्टावनेपरिच्छेदमें ब्रह्मचारी आदि जो वीर्य खंडित करिके अशकीयो ठहरिंहे तिनके प्रायश्चित्त होगे—बौर वानप्रस्थ संन्यासी जो आयय डोडिभागे या फिरिके घर बसाये तिनके भी प्रायश्चित्त ॥	१२२	८
अशकीयो ब्रह्मचारी आदिका प्रायश्चित्त ॥	१२२	१८
ब्रह्मचारी जो स्त्री सगम के विना भी वीर्यका स्कन्दन करे या दिनमें सेवे या स्वयंमें वीर्य त्यागे तिसके प्रायश्चित्त ॥	१२६	२३
वानप्रस्थ या संन्यासी जो वीर्य खंडित करे या निजआयय के व्रत भंगकरे तिनके प्रायश्चित्त ॥	१२०	२६
संन्यासी जो संन्यास डोडि फिरिके घरबसाकर आप गृहस्थोवने तिसका प्रायश्चित्त पुनः संस्कार भी ॥	१२८	११
बिरले संन्यासी आदि भ्रमव्रत होकर पीछे प्रायश्चित्त करने से भी गृहस्थो में नहीं शामिल होसकेंहे (अर्थात् ऊपरके प्रायश्चित्तशाले शामिल होसकते हैं ॥	१२६	१३
शास्त्रीय मरणाहूठ प्रच्युतानां व्रतभंग प्रायश्चित्त भेदाः यह दोनोबात बकह्य है ॥	१२६	१४
अशास्त्रीय मरणाहूठस्य प्रायश्चित्तं—इसमें आत्मघातियोगे प्रायश्चित्त भेदही कि जे कोई विनमोत मनेपर उताहू होकर राधिजाय ॥	१३०	१
आत्मघाती जो निपट किसी वदनेसे आपही मरगये तिनके प्रायश्चित्त उनके पुपादिष्य अधिकारीकरे ॥	१३१	३
व्रतलेप शब्दके अर्थका निर्णय जो अनेक वातोपर जैनता है ॥	१३१	२८
वनमठिषें परिच्छेद में ब्रह्मचारीके व्रतभंग होने मध्ये प्रायश्चित्तहोगे कि जिनमज्जबचारीके यथोक्त नियम खंडित होजायें—बौर ब्रह्मचारी विद्यार्थी के मग्ने से गुरुकोभी प्रायश्चित्त कहाजाया ॥	१३३	७
ब्रह्मचारी जो मांस आदि भक्षण करे तिसके प्रायश्चित्त ॥	१३३	७५
गुरुने प्रतिज्ञा करे आशयकरे तिसके प्रायश्चित्त ॥	१३४	४
यज्ञोपवीत आदि खंडित होजाय तिसके प्रायश्चित्त ॥	१३४	३०
यज्ञोपवीत काधेपर लुये विना भोजन या शका लघुशुका आदि कर्म करे तिसका प्रायश्चित्त ॥	१३६	७
असत्य जीवोकेमाय घोषामेखाने या जानिकि रच्छासहित श्रेयुमास दाहनेनेके यहप्रायश्चित्तहै ॥	१३६	१६

आश्रयानां ध्ययस्वाक्रमः	श्रु	पति
रोगहानेकी दशमे जो वेदा आषाढे रोग दसरोगकी शक्ति चर्तहके सामकानेका दोष नहीं पर गुरूक आश्रयाने ।	५२६	५४
प्रसवकारके यदि कुता आदि मनीनजीय काटिखाय तिमके प्रायश्चित्तका प्रसंग ।	१६०	१६
गुरूका भेजानुआ शिष्य कहीं वेहह आदिमें मरवाय शिमका प्रायश्चित्त गुरूपर ।	५३०	२२
प्राणहिंसाहोलापर भी हिंसाकादोष बिरले स्थानपर नहींहे तिमकेसर्ज हिंसामाषका अपथाद यहादेपो नाटिसे परिच्छेदमें उभवापीका प्रायश्चित्त कहांजायगा जिनसे किमोपर भूटा दोष लगाया हो-भोर उभका भी कि जिनपर भूटा दोष लगाया जाय ।	५३८	२०
मिथ्याभिज्ञान प्रायश्चित्त-भूटा दोष लगाने का प्रायश्चित्त ।	५४०	२
मिथ्याभिज्ञानस्य प्रायश्चित्त-चिमपर भूटा दोषलगाया तिमके भी प्रायश्चित्तकी चक्रुरता होतीहे ।	५४०	८
इसके प्रायश्चित्त श्रुता क्यों करना चाहिए इसी संदेशका निषेध ।	५४२	२२
रक्तमहिंसेपरिच्छेदमें उनवापेके प्रायश्चित्तहोगे जो पुरुषके रक्तस्वना संगत करनेमें या भारेकी भार्या गमन करने से लगते-भोर स्त्री के उस दशा में लगते हैं जो रक्तस्वना होते दूसरी रक्तस्वना से मिडजाय या चंडाल कुत्ते आदिमें छुड़जाय ।	५४४	४
अभयगमनके प्रायश्चित्त-यहां अगम्य भार्ये की भार्या • या अपनी भार्या जो रक्तस्वनाहो • या गर्भिकी हो • या पतिता • या मद्यपा • या चंडाली आदि रक्तस्वना हो ।	५४४	१०
रक्तस्वना संगत करने का विशेषनियम • हममेंगर्भिकी भोर पतिता भोर चंडाली आदि भी शामिलहे ।	५४४	२६
भार्ये की भार्या गमन करने पर छेडा प्रायश्चित्त कटा जानेका निर्दय परम कारण के साथ ।	५४४	२८
रक्तस्वना स्त्री जो दूसरी रक्तस्वना अपनी सयोगी आदि किसीके छुड़जाय तिमके प्रायश्चित्त ।	५४६	१८
जुदे जुदे सर्षीकी दो स्त्री रक्तस्वना होते परस्पर छुड़जायें तिन दोनो के प्रायश्चित्त ।	५४७	४
चंडाल आदि मनीन प्राणीसे जो कोई रक्तस्वना छुड़जाय तिमके प्रायश्चित्त भेद ।	५४८	५
गैगिनी अगम्य रक्तस्वना यदि कुता मूकर काक आदि से छुड़जाय तिमके जुदे प्रायश्चित्त हे ।	५४८	७५
रक्तस्वना भोजन करते हुये कुता या चण्डाल आदिमनीनोको छुड़जाय तिमका जुदा प्रायश्चित्तहे ।	५४८	८०
दो रक्तस्वना भोजन करते समय आपसमें मिडजायें उन दोनोके प्रायश्चित्त भेद ।	५४९	१४
भोजन के बिना किसी रक्तस्वना को यदि कुता गर्दभ आदि काटि ग्याय या नाक से सूत्रिजाय या चिमपात्र आदि नोष पपी छुड़जाय तिमके प्रायश्चित्त का प्रसंग ।	५४८	८८
(इति व्रतनोष प्रकरणं पंच परिच्छेद मय)	५४०	४
बाण्टिमें परिच्छेदमें मुतायिक्य आदि सौते विक्रये में उपजीवन करनेके प्रायश्चित्त कहेयारथे-आदि शब्दके-स्त्री-कन्या-पुंस-गण • पुण्य-योगीश-देवानय-तानाय-तीर्थआदिकाविक्रयभी जानना ।	५४०	९०
सूनादि विक्रय का प्रायश्चित्त • जहां अज्ञान आदि बिचस्तिसे बिना विक्रय किया हो ।	५४०	९६
अज्ञान आदि प्रश्न बिचस्तिमें जो मुग आदिका विक्रय किया तिमका प्रायश्चित्त ।	५४१	५
जहां आदि शब्दके देवानय योगीश पुण्य तीर्थ आदि भी समकने भोर सत्र तरतकी मगन मगन का विक्रय समझिनेना ।	५४१	८
मग भोर कन्यापुत्र पुंस आदिका विक्रय रोग इच्छा महित लेभ जानवसे कियागे तिमका प्रायश्चित्त ।	५४१	८८
बिचस्ति के शोभे बिना व्यर्थ व्यय करने के निमित्त बिगने ऊप्योक्त कोई वस्तु या श्रादी देया हो तिमके प्रायश्चित्त ।	५४२	४

श्रायणानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पं क्र
पारसठवें परिच्छेद में चारि उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—उनमें एक अयाज्यपात्रक पाथा पण्डितके १ दूसरे वैदकी वृथा बखिर करनेवाले वैदपाठीका २ तीसरे मारुड ऊत्पादन आदि प्रयोगी मंत्रशास्त्री का ३ चौथे शरागतका रक्षा न करनेवाले धनधान्य जनान् का ।	५५३	७
इन चारों उपपातकियोंके मिले मुने प्रायश्चित्तों के लक्षण भेद ।	५५३	१०
इनमें प्रथमके दो दूषणोंका एकही प्रायश्चित्त है और दोनाका एकहीसा पापहो जा मंत्रयोगी संघघरकता है। इन्हीं चारोंमें पिछले दोदूषणोंका प्रायश्चित्त एकहीसा अभेदहै अथांशुवैदशाही और शरागतके त्वागोका पाठने पढ़ाने समय गुरु शिष्य दोनोंके वाचमें यदि मूया आदि कोई जोष निरपिचाम तदा अनध्याय होकर प्रायश्चित्त होना कहा है ।	५५५	११
चौसठवें परिच्छेद में १० दण्ड उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—उनमें प्रथम पितृ मातृ मुत गुरु त्याग • कन्यादूषण • परिबंदकयाजन • कुटिलता • निजव्रतोंके नियम तोड़दिना • मद्यप स्त्री का सेवन • परिबंदक को कन्या देना आदि ।	५५७	६
पिता माता पुत्र गुरु आदि को बिना त्यागि देनेजाने का प्रायश्चित्त ।	५५७	१२
किसी कुमारा कन्याको दूषित करने या उसमें कोई दूषण आरोपित करनेवालेका प्रायश्चित्त ।	५५८	८
कौमार अवस्था में द्वारा त्यागदेनेवाले • वृषणी के पातहोनेवाले • कूट व्यवहारी आदि अनेक पापी लोगोंके प्रायश्चित्त प्रसंगमात्र में दर्शाये गये ।	५५८	१२
कुटिलता और परिबंदक को कन्या देना या उसको यजन काना और मद्यप स्त्रीका सेवन करना और स्वीकृत व्रतोंके नियम तोड़दिना आदि ३ प्रकारके प्रायश्चित्त एक साधही यहाँ देखे ।	५५९	९
पैसठवें परिच्छेद में आठउपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—प्रथम स्वाध्यायकात्यायन • अग्निहोत्र कात्यायन • मुतादि संस्कारकी उपेक्षा • वन्द्युओं का अपानन आदि आठनाम जुड़े जुड़े जायेंगे ।	५६१	२०
स्वाध्याय को पढ़ा वेद शास्त्र या नद्यापाठ आदि हो तिसके निपट त्यागदिने या भुनाइ देनेका प्रायश्चित्त ।	५६२	४
अग्निहोत्रकी स्थापना जिसके कुलमें चली आतीहो वही उसके त्यागिदिने तिसके प्रायश्चित्त ।	५६२	२०
पुत्री पुत्र आदि का विवाह द्विरागमन यद्योपवीत मुण्डन आदि संस्कारों के योग्य हो तिनके करणे में अनिच्छा या निपट उपादा करे तिसके प्रायश्चित्त ।	५६३	२१
चाक्षुष रिशतें द्वार समोषी के अक्षमयंही तिनका पानन को समर्थ होतिहुये नकरे तिसका प्रायश्चित्त । स्थितोकेकर्म द्वारा निहितबौदिक करे या हिंसाकर्म के प्रसंगमें जाँघका करे या शरीरकरव विषय भोग आदि सबधी शौचधियो से जोषिका करे तिनके प्रायश्चित्त भेद ।	५६४	२१
(इति शौचधियोनां परित्याग प्रकारण चतुःपरिच्छेदमथ)	५६५	२०
छ द्रष्टव्य परिच्छेद में दुष्यसना को अत लमिजान के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे और उनमें प्रथम में दुष्यसनाका भी विशेष क्रिया जायगा ।	५६६	३
द्वितीयका ब्राह्मणेयैःशुद्धस उपपातकी जो प्रचिनाने कहे तिनका प्रायश्चित्त यहाँ द्यसनों के प्रसंग में दर्शाया गया ।	५६८	६
छसठवें परिच्छेद में चारि उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—उनमें प्रथम आत्मनिन्द्या • गुरुद्वेषना • स्त्रीनजाति वा स्त्रीन पठने गुरुद्वेष मेवा ३ स्त्रीनजातिका सेवन ४ ।	५७०	७
आत्मनिन्द्या और गुरुद्वेषो इन दोनोंके प्रायश्चित्त ।	५७०	७

आशयाना व्यवस्थाक्रमः

भोजन में बाल लकड़ी जाना आदि परिजाय या कोई अपवित्रवस्तु मिडिजाय तिसके खाइनेने का
 प्रायश्चित्त या पशु पक्षी आदिका जूटा सूधा खाइ तिसके भी ।
 विष्णु मूत्र आदिसे दूधित फलमूल आदि चीजे खाइनेनेक प्रायश्चित्त ।
 भोजनका तैयारपत्र जो किसी अपवित्र प्राणीमाचने स्वयं क्रिया हो या बनाने वालेने क्रिया भ्रष्टकी
 रीतिसे बनाया हो । तिसके खाइनेनेके प्रायश्चित्त ।
 रजस्वला या चयडाल आदि अति मलानका लुभ्या अन्न भक्षण करनेका प्रायश्चित्त ।
 गूद आदि नीचका लुभ्या बिगाडा अन्न खानेके प्रायश्चित्त ।
 चूटो पाणिमे घेठि भोजन करनेका प्रायश्चित्त ।
 परीसो हुई रघोई पतन आदि पर मर्चाबधि क्रिये बिना भोजन करनेका प्रायश्चित्त • या धार्येहाय
 से परीसे या फूटे पाचमे परीसे या खडे भोजन करे इत्यादि अनेक प्रायश्चित्त ।
 मृतक आदि परेहुये जलाशय क्षुप आदिका जलपीने वा स्नान करनेके प्रायश्चित्त ।
 चाडान आदिके क्षुप कुण्ड आदिमें जलपीने वा स्नान करनेका प्रायश्चित्त ।
 गुफरिषी तलेया घडे गडहिले आदिके पानी पर यह जुदो व्यग्रथा हो ।
 चयडाल अल्पज आदिके सामनमें धरेहुये पानी दही दूध आदि खानेपीने का प्रायश्चित्त ।
 पिन्नाड आदिके जलमें जाकर देह घोये या नाबिक जलपीये तिसके जूटा प्रायश्चित्त है ।
 उपवासके लक्षण समुक्ति पानिमें भाति खडी होय तय यहा ग्निष्य देवो ।
 शकहतारिषं परिच्छेदमे उस अन्न का भोजन करनेके प्रायश्चित्त भेद होय जो भायदुष्ट • कालदुष्ट
 बासो आदि • शकितभोजन • यहूष आदि समयपर कालदूषित • अनुक्तप्रायश्चित्त • फूटेपाच आदि
 का भोजन • क्रियादुष्ट • ।
 भावदुष्ट अन्न आदि चीजेका भक्षण करिलेने के प्रायश्चित्त ।
 शकित भोजन जो भातिकूप शकासे दूधित होय तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ।
 कालदूषित अन्न जो वामी तिजासो आदि अतिकाल धरा रहिने मे कोई चीज बिगडजाय तियके
 भोजन का प्रायश्चित्त ।
 यहूषकी वेप या यहूषके मूलकमे या बौर किसी अशुक्तिकाल में या मघ्या आदि समयो पर मभी
 अन्नकाय दूषित होजाते हैं उस वेना पर खानेके प्रायश्चित्त भेद ।
 गुणदुष्ट चीजेके प्रायश्चित्त जो काजो चिको आदि अनेक भाति होते हैं जिनके दबाइमे उपरानू
 खाने में बुरा गुण होता हो ।
 फूटे टूटे फटे आदि पाचोमे या बहुतरे सजे पाचोमे भी भोजन का निषेध है तिनमें चार सेने
 का प्रायश्चित्त ।
 हाथ घुमेडिके देने आदि क्रियादुष्ट भोजन भी अनेक भाति होते हैं तिनके टारनेनेका प्रायश्चित्त ।
 गूदके हाथसे दिया परीसा अन्न चाहे बालकका हो या बपना हो या गूदका अन्न बाह्यार्थके हाथ
 से भी दियाजाय इनके खानेसे प्रायश्चित्त ।
 यहूषरघं परिच्छेदमे सय तरहेके पाटोका नेता आदि कुण्डितान्न खानेखाने वास्योके प्रायश्चित्त
 कहेवायोगे जिनके भेद अनेक हैं ।
 नशोन आलू जो मरे पुरुष के मूलकमे रोज रोज होते हैं उनको आदि लेबर याषिके बौर पाच
 पर्यन्त आटोके जुदे जुदे प्रायश्चित्त है ।

पृष्ठ	पंक्ति
५२६	७०
५३०	६
५६०	३०
५६८	२
५६८	१६
५६९	६
५६९	१६
५६९	७३
६००	२१
६०१	१२
६०१	२०
६०२	१८
६०२	३०
६०३	११
६०३	२२
६०४	२१
६०४	१४
६०८	१६
१०	८
६०६	२०
६१०	८
६१०	७४
६११	१०
६११	१८

आशयानां व्ययथाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
अतिथि अभ्यागत विनये द्वारपर भूला बैठाने [तबको भोजन करनेसे ये महा प्रायश्चित्त लंगता है यह बंधमें प्रसंगसे कहागया ।	६९०	१८
अपमैतमे मरेहुयेका श्राद्ध खादलेने के प्रायश्चित्त विशेष ।	६९४	३
अपान्तेय पुरुष को पानिसे बाहर क्रियेगये है। तिनके मरेका यद्द्वारा खादलेनेके प्रायश्चित्त विशेष ।	६९४	१६
अम श्राद्धके लक्षण को कबु अन्न देके श्राद्ध होताहै उम दशमे कि जिसको पयो रजस्वलाहोय या पयो निषट न होय इत्यादि में ।	६९५	१०
महाचारी या कोई ब्राह्मण को किसी मन्न दि अनुष्ठान में लगाहो वही यदि श्राद्धका नैता दिया अन्न खाय तिसका प्रायश्चित्त ।	६९५	१६
आमश्राद्धमें कच्चा सोधा अन्न दिया हुआ को पाये तिनको सभी प्रायश्चित्तों का आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये ।	६९५	३०
अनुक श्राद्धानुका प्रायश्चित्त—अर्थात् जिस किसी श्राद्धके नामसे कोई प्रायश्चित्त कहीं न लिखादेखा जाय तिसके भोजन का यह छोटा प्रायश्चित्त ।	६९६	६
घातकर्म आदि संस्कारों के अंगभूत को अभ्युदय श्राद्ध नैतेहै तिनमे भोजन करनेका प्रायश्चित्त ।	६९६	१०
संबंधी आदि परो मे बरस्पर व्यवहार को लचारी से जिसमे निंद्य भोजन करना पराहो तिसका प्रायश्चित्त किसी मुक्तारके द्वारा मो रीता है ।	६९६	२१
सोमतीक्ष्णयन कर्म को गर्भाधानसे छठे आठवें-मास होताहै इत्यादि संस्कारों के अन्नभोजन करने का प्रायश्चित्त ।	६९०	३
विहृतवर्षे परिच्छेद में उन्नीके प्रायश्चित्त नेगे जिन्हींने परित्यक्त दीपमय अन्न पाया हो—किंतु यहूधः मनुष्यों के कङ्केश्राला अन्न या उनकी हकीयत का अन्न दूषित कहाता है तिसके भोजन का प्रायश्चित्त ।	६९०	१५
अभोध्य भोजन करने का प्रायश्चित्त ।	६९०	२४
अयदेस्ती विनको चरडाल सूँच्च आदिने अन्नादि भोजन या कोई युगी चीज खराई या गोहत्या आदि करवाई तिनके प्रायश्चित्त विशेष ।	६९१	१०
मृतको नेगेके परित्यक्त (कङ्केश्र) मे रहिते अन्नका भोजन करने के प्रायश्चित्त ।	६९२	१५
अपुषटिकेका अन्न खानेवाले के प्रायश्चित्त विशेष • आदि कहिने से अनेक पुरुष शामिल है उन सबही का अन्न पाया मने है ।	६९३	२४
(इति अमक्ष प्रायश्चित्त प्रकार्यं पंचपरिच्छेदमयं समाप्तम्)	६९५	११
बोहनपर्यं परिच्छेद में प्रकार्यं पापके प्रायश्चित्त को प्रधान है ना तो। यह कहे जायेंगे—प्रथम-जाति अंगकर्म • अकरो करणं • अवाची करणं • अनिना करणं • इन नामिक उपपारतकेना प्रायश्चित्त कहा जायगा ।	६९६	०
जाति अ अन्नर आदि पापे भाति उपपारतकोके लक्षण और प्रायश्चित्त यकहीमाय ।	६९६	१०
इकोपेक नाग अनेकछोट उपपारतके के लक्षण और प्रायश्चित्तों का भेद भी यकहीमाय ।	६९६	१२
छोट गडगा क सारापर घेटने और मने घेठि नहामे या भोजन करने 'म' दिनमें स्याः से मैगुन दानेका प्रायश्चित्त ।	६९३	०
गुरुने अपमानमें उपपारत विना घालपेरा घातों विघाटने एराने किंतु चीतनेके पापका प्रायश्चित्त ।	६९६	१५

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकाराड का द्वितीय सूचीपत्र ।

२५

आशयानां व्यवस्थाक्रमः

	पृष्ठ	पंक्ति
ब्राह्मणके दण्डा मारनेकी उठाने या मारदेने या रक्त धलाइदेने या भीतरी चोटकोबोझा रोदाकरि देने मध्ये जुदे जुदे प्रायश्चित्त है ॥	६६६	२३
मलमुत्र लगी देहको एक दिन राति भर जो कोई घेघन करे चाहेजलके न मिननेसे या चलहोते हुये बीमारो आदि किसी हेतुसे बिना शौचकिये रहिजाय तिसका प्रायश्चित्त ॥	६२०	६
अग्नि या जलमें मूलने, घगने, धूकने आदि का प्रायश्चित्त ॥	६६०	११
श्रोत वेदाक्त अग्निहोच आदि कर्म और स्मार्तकर्म जो स्मृतिमेंके अनुचार नित्यहीमथादि होते हैं और ज्ञातक पुत्रके नियम जो आचारमें कहिषुके इनका लोप या भंग करनेवालेके प्रायश्चित्त पंचमहायज्ञ जो गृहस्थों के नित्य नियम होते हैं तिनको मेठिदेने या कुछ दिन छोड़िदेने का प्रायश्चित्त ॥	६२०	२५
अग्निहोच कर्मवान् पुत्रके छेटीभार्या कीतोरहिते यदि छोटी कोईमरे तिसकोअग्निहोच की अग्नि से जलाने वाले का प्रायश्चित्त ॥	६३१	१४
क्रोधसे कोई पुत्र अथवा भार्या को अगम्या कहिके दोष लगाये तिसका प्रायश्चित्त ॥	६३१	२४
स्नान किये बिना जो भोजन आदि करे या स्नातक होके जलके बिना रोतालीतालियेकरे तिसका प्रायश्चित्त ॥	६२१	२०
ज्यौनार की पातिमें विषमरीति से परोसे कि बिरलोंको और चीज बहुतोंको अन्वयस्तु इत्यादिभेद करनेके प्रायश्चित्त ॥	६३२	६
जलका वांध या धूल तोड़ेया कन्याके विद्याहमें मांजीमारै या समान धरतीमार्ग आदि पर लंका नीचाकरे तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३२	१०
आकाश में इंद्रधनुष देखे या ओरोंको दिखाये इत्यादि कई बातोंको छोटाया प्रायश्चित्त ॥	६३५	१०
धर्मवान् पुत्रपुत्री च्छर्पित खंडाल अपविचोपे वातचोत न करे यदि प्रयोजनसे थोडी बहुतकरनी परे तिसका प्रायश्चित्त करे ॥	६३६	६
अपने घरहोके धन लाभ स्त्री आदिसे उपद्रव करे या उनकामों में घिघ्रारै तिसका प्रायश्चित्त ॥	६३६	२०
यज्ञोपवीत कांधे या कानपरहीनेबिना जो स्नान भोजन या मगमूचआदि कर्मकरे तिसका प्रायश्चित्त भोजन के अन्तमें जल पियेबिना उठि खड़ाहोय या कुल्ला आदि शौचापमन कियेबिना रहिजाय तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३४	१०
राजा और प्रधान मंत्री हाकिमका प्रायश्चित्त जो दण्डदेने योग्य अपराधको छोड़िदे या अदंडको दण्डकरे ॥	६३६	२५
दूषित पातिमें भोजनकरे कि जिसमें कोई चोर पाति आदि बैठारहे तो उनभोजनकर्ता सपनीगी का प्रायश्चित्त ॥	६३६	३०
नीले घट्ट पहिरने या नीलका कोई काम करने आदि के प्रायश्चित्त-जिसमें सौभाग्यवती स्त्रियोंके मध्ये योडी दूटहे सो प्रतिप्रथय जानना ॥	६३६	१०
स्त्रियों से उपपलु बिरले पुत्रपुत्री बिरले काम और बिरले घस्त्र भी सेवेहै कि जिनकेनिये नील का प्रतिप्रथय टियानया है ॥	६३६	१६
शास्त्र्य होके ठाव लकड़ी की छाट या खड़ाके या चौकी पीठी या सवारी का ठांच माषानमें तिसके प्रायश्चित्त ॥	६३६	१३
	६३८	२

आशयाना ध्यवस्थाक्रमः	श्रु	पति
ब्राह्मण वा शस्त्रार्थधनेकी श्रुति रखता हो सो चर्चके साथ किरी रणमें प्राणोंके लोभसे पीठि देकर भागे• या फलदेनेवाले वृक्षको काटे ये दोनों पाप बराबरहैं दोनोंका एकही प्रायश्चित्त ॥	६२०	६
परस्पर दो चर्चते या चोटे घातकरते विशेषेके बीचमें जो निकसजाय• या ब्राह्मण अग्नि इन दो के बीच या पति पत्नीके बीच• या गज ब्राह्मणके बीचसे• तिसके प्रायश्चित्त ॥	६२०	११
चहाली यदि मूर्खोंमें बिरलेदेय विशेषोंकी याचा करनेवालोंका प्रायश्चित्त (कवल तीर्थका निमित्त एक छोट्टिके समुहना)	६२०	३०
सूय में चिद्र देखपरना या खोटा स्वप्न दिखादेना आदि निमित्तोंके प्रायश्चित्त ॥	६२०	८
सूय के समुह जो सूते या विष्णु जो अपनाभी देखिले या अग्नि में परसेके या घाटके नीचेअग्नि धरि सोये या कुशासे पैराजाके इनके प्रायश्चित्त ॥	६२०	१०
नमस्कार पानासन रामरमौचर आदि अभिवादन के मुख्य कृत्यदे छोट्टिके अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त और मुख्य नियमों का नियोग ॥	६२०	१६
(इति प्रकीर्ण प्रायश्चित्तप्रकरणं परिच्छेदोत्क्रमण)	६४०	१२
०५ परिच्छेद एक फालतू हे इसलिये कि इसमें उक्त अनुक्त सभीप्रायश्चित्तों का न्याय विचारान्याय तिससे सभी प्रायश्चित्तोंके विचार समग्र इसमेंसे युक्त शोधनों चाहिये ॥	६४१	१
इसपरिच्छेदमें द्वाविधो जानीआयोगों-एक तो जेपुरुष प्रायश्चित्त न कानाचाहे तिसकेद्वयरीति से त्वादिदेना ॥	६४६	४
दूसरे जो प्रायश्चित्त पुराकरिआवे तिसका इयरीतिसे सत्कारकरना तिसकेछे घरके कामोंमें शामिल करना दासो छट विधान ॥	६४६	१३
कृत प्रायश्चित्त पुरुषस्य प्रत्यावर्तनीयधिः—तत्र नूतनघटविधानम् ॥	६४८	२८
स्त्रीपुण्यातिदेशः—पूर्वोक्त दिने विधानका अतिदेश पातकिनी स्त्रियोपर भों उत्तरते है ॥	६४९	५
तथापि स्त्रियोके निमित्त पर कुछ और विशेष धर्म है ॥	६४९	१२
अतिपतिता भी स्त्रिया कुछ होनीहैं तिनके लक्षण महा देखे ॥	६४२	९
बिन्ने बेषे पतिता भी हैतिहैं कि प्रायश्चित्त कर्मबानेपर भी हैत मेल उनसे न करे• न उनकेजिये नूतनघट परवाना चाहिये ॥	६४३	२८
नूतन घटकीधिधि होजानेनादि पापीकी परीचा कर्नी ऐता हे कि प्रायश्चित्त करने से यह शुद्ध भया कथना नहीं ॥	६४५	१५
सतहततये परिच्छेदमें यह आत्मादीजायगी कि पापीनेम प्रायश्चित्तका विचार अपने आप न करे किन्तु यडा दौटा जेमा पापहो तेसी यडा छोटो सभामेहो निर्णय करवाये• उन सजसभाके डेलनयागदेयो ॥	६५०	०
सभादपास किमग्रजार से कर्कनेजाय तिसका निर्णय ॥	६५०	०६
परपुं धर्मसभाका डेलन कैगिहो निममें बकनेजाय• येसा होय ॥	६५६	१८
येसा सभा न डेलनेमें दुसरा डेलन महामें हे—इसके भी न मिगने में एकहो पविडत जो धर्मशास्त्र में अति निर्णय होय सभा स्वरूप मानाजाय ॥	६६०	२०
सभाके बंधापत छोट्टापन पर तर्कनाये निर्णयमाग ॥	६६१	१
प्रायश्चित्त निवृत्त कर्मनेमध्यं द्यामवेति राजा जिना दितानी म्वाधीनता हे ॥	६६१	२८
इयरेनेय छे शीकरतानिय श्रुमें (तस्युपुन्याधयन्) इत्यादि सपुत्रा यचन देयो ॥	६६२	०

आशयानां व्यवस्थाक्रमः	पृष्ठ	पंक्ति
(इति सर्वप्रकाश प्रायश्चित्तानां साधारण विधिप्रकरणं चित्रच्छेदमयं)	६६२	२०
अठहत्तर्वे परिच्छेद मे रहस्य प्रायश्चित्तोका साधारण प्रकार कहालायगा कि जिनसे द्विपेपाप	६६४	५
क्रियेहो प्रायश्चित्त भी द्विपेपेकरे • उनमें एक द्विपे ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त भी इसी में ।	६६४	१०
द्विपे पापोंके प्रायश्चित्तका विचारमात्र ।	६६६	२३
सुगुण ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विधान ।	६६६	२३
उन्नासोपे परिच्छेद मे ब्रह्महत्या से उपरालू महापातक जो गुण क्रियेहो तिनके जुदे जुदे रहस्य	६७२	५
प्रायश्चित्त कहेलायगे ।	६७२	५
सुरामदापान का रहस्य प्रायश्चित्त जो द्विपेके विनाजाने घोषा आदिसे पीगया हो या जानि वृत्ति	६७२	८
पीकर पछित्तावा क्रिया जो तिसके ।	६७५	१०
सुरासोपे कर्मका रहस्य प्रायश्चित्त • जिनसे ब्राह्मणका सुवर्णहरिके गुणपछित्तावा क्रियाहो तिसके ।	६७५	१०
गुरुदारगमनका रहस्य प्रायश्चित्त • जिनसे गुणही घोषा आदिमें जननी आदि गुरुदारा संगम करीहो	६७७	१६
तिसके (इति महापातकानि)	६७७	१६
असोपरिच्छेद में उपपातको के रहस्य प्रायश्चित्त कहेलायगे जो किमोने द्विपे के कोई उपपातक	६८२	८
क्रिया हो तिसके—उपपातकोके सब लक्षण वहाँ समुक्तने जो गायध आदि प्रकीर्ण पर्यन्त पहिले	६८२	८
प्रकाश प्रायश्चित्तके निमित्त वर्णन होचुके ।	६८२	८
सभी उपपातक आदि पाप जो गुपतीरर होगयेहो तिनके प्रायश्चित्त एक साथही देखो इसमें भेद	६८२	१६
भी पातक पतनीय आदि अनेक हैं ।	६८२	१६
अथवा भक्तवशादि अनेक अनुपातक जो द्विपे होगये तिनके प्रायश्चित्त रहस्योंका भेद यहा देखो ।	६८१	१३
अनिशयतुच्छपाप जो दिनरातिमें चलते किरते आदि अज्ञानतासे अनेक होजातेहैं तिनकाप्रायश्चित्त	६८३	४
इत्यासोके परिच्छेद में उनमेंकेनि नाम चिह्न दर्शविये कि जिनका जप करना रहस्य प्रायश्चित्तो में	६८४	२
कहिलुने—जो बहुधा मच सेसे भी दर्शविये जिनका चर्चा करीं नहोआया तो भी उनके जपने में	६८४	१०
सर्व पापोंका नाशहासक है—इसमें वेदाभ्यास और पूरे ज्ञानी ध्यानीका रहस्य प्रायश्चित्त साधारण	६८४	२
पापोंपर एकही रूपसे ।	६८४	१०
सर्व पापोंक हरनेवाले अतिसमर्थ जो मचहै तिनके नाम लक्षण ।	६८६	२३
गायत्रीसे तिनकाहोम होना भी सब पापोंके हरने में समर्थहै इसकेसाथ तिन आदि उत्तम दानोंके	६८६	२३
स्वरूप भी देचना ।	६८६	२३
वेदका अध्ययन रखनेवाला या अन्य सपथमें में मुनिपुत्र ज्ञानी ध्यानी पुत्र को किसीपै पीडा देना	६८८	८
नहो चाहता • देवयोग से कदाचित् कोई महापातक भी अनिच्छा से होजाय • तिसका जुदा एक	६८८	८
प्रायश्चित्त ।	६८८	१३
(इति सर्वरहस्य प्रायश्चित्त प्रकरणं चतु परिच्छेदमयं)	६८८	८
प्रायश्चित्तोंके व्रतादिक स्वरूपों में संदेह खडाहोनेका सरोध ।	६८८	१३
पयासोनि परिच्छेद म • शृङ्ग आदि व्रताका एक भेद जो सातठन कहाला है तिसकेरूपभेद जाने	७०४	५
आयेंगे कि येविधायीसे जुदेनामयी होजातेहैं—और समन्तत्रतमके जहुरीनिग्रमभी इसमें ।	७०४	६
सभी प्रायश्चित्तोंके आरम्भ म चहुरी नियमोंके नाम लक्षण ।	७०४	६
सोतवन त्रसोविधि और उसका भेद यतिसातपन आदिब्रत इतनी रीतसे होलाहै • इसके जोच		

श्रु	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयमेवाः
१६०	१४	<p align="center">इति प्रायश्चित्त निमित्तानां सहापातकादीनां नाम लक्षणा विवेक प्रकरणां त्रिपरिच्छेदमयं ॥</p> <p>इस प्रकार में १४ । २५ । २६ ये तीन परिच्छेद हैं इन तीनों में महापातकों से लेकर तुच्छ उपपापों पर्यन्त सब तरहके निमित्तोंका निर्णयनाम लक्ष्यो। सहित कियागयाहै—यद्यपि तीसवें परिच्छेदके अन्तमें दशपरिच्छेदोंका प्रकरण कहाजायगा तिसको महाप्रकरण समझिलेना कि वहतीन प्रकारोंका एक बड़ा प्रकरण है तिसमें कुछ दोषनहीं (इसचुटिको चौदहवों पंक्तिसे साथही लिखिलेना)</p>
१६६	२५	<p>भ्रामकता—इन तीन पंक्तिभोकापाठ जो भ्रामकता प्रतीत होताहै उस भ्रामिका भंजन आगे ६३० पृष्ठमें दशवीं १० पंक्तिसे विचारें किन्तु उसीके अनुसारपाठ यहा भी समझो—यहा जो वशिष्ठ के वचन में—रजस्वला शब्द बुझाहोनेसे कुछ भ्रामिकी प्रतीत होतीहै उसका भी समाप्त ऐसा मानना कि (रजस्वलां च स्तुस्त्राताच आचेषोमाहुः) अर्थात् जुदी जुदी रजस्वलाके तथैव स्तुस्त्राताके भी आचेषी कहिते हैं- तहाँ मुख्यतो स्तुस्त्रातानाम स्तुस्त्रमतीसे प्रयोजन है उसीके अन्तगत रजस्वला होनेके दिवस भी अपेक्षित ठाहुरे किन्तु केवल रजस्वला या उससे ज्ञान के समीपी दिवसों से तात्पर्य यहाँ नहीहै स्तुस्त्रमतीसे प्रयोजन ठीकहै उसीका प्रमाणदेखो प्रचेताके वचनसे ४६४ पृष्ठको मध्यसे निचली पंक्तिमें जेसी अनुस्त्रमती कही तैसी उसके विपरीत यहा अनुस्त्रमती जानना—यह सब साधारणके बोध हेतु लिखनापरा अन्यथा धियेकीजन आपही जानमानहै (इन्हीं तीन पंक्तिभोका पाठ परिवर्तन भी अगुद्ध गुद्ध चक्रोंका देखो)</p>
१६५	२५	<p align="center">चतुः परिच्छेदमयं ॥</p> <p>इस प्रकार में सत्ताइसकी आदिसे तीसके अन्ततक चारिहो परिच्छेद हैं जिनमें केवल दश-हत्याकी व्यवस्था करीगई (इस चुटिको चारैसवों पंक्तिसे साथही मिलाकर आशुपर लिखिलेना) ॥</p>
१६५	२६	<p align="center">इति साधारणा प्रकरणांच दशपरिच्छेदमयं ॥</p>
		<p align="center">(इस चुटिके चारैस पंक्तिसे नीचे चार संक्षेपोंके उपर दोनेके बीचमें स्थापन करना)</p>
१६६	१६	<p>अर्थ विशेष—ये दोनो पंक्तिदेखो उनमें वशिष्ठने कहाहै कि राजा आप न आरिखके तो चारों श्रोतुम्बर(एक श्रोपिडे तिसमें अपने आपही चार मरिचाय—इस कथनसे साफ यही अर्थ मिलता है कि तमंधा हुपंधा आदि गोलो बाहुदयाला आग्नेयशस्त्र श्रोपिडे जिसको चार अपने हाथमें भोक्तिते राज गुहृहोय —यद्यपि मिलावरा में (श्रोतुम्बरांताग्रमयं) श्रोतुम्बर ताविकाशस्त्र सेसाकहाहै क्योंकि श्रोतुम्बर तांजा तिमकायना श्रोतुम्बर कहाये—तथापि यह ध्योरा नहीं खोलाहै कि ताविका शेषा कोरं शस्त्र भंगार में होताहै यानही जो अपने किसी विशेष नामसे विख्यात हो चौर जिसकेद्वारा चौर अपने हाथसे अरमके परं च तुषसा आदि आग्नेयशस्त्र यद्यपि लोहके होतेहैं तौभी उनकानाम श्रोतुम्बर इस मतमें वशिष्ठजीने माना होगा कि गुलरका फलभी श्रोतुम्बर कहाता है जिसके समान गोत्रो भी गोत्रहोता जो गुपंधा आदिमें भरीचोनी चौर गुलिका गुटिका नामिनि या वधो हो सो गोल गोल्क नामोमे प्रसिद्ध है तथा ताविकाच सचाधर्म भी शाब्दमें अतिशय भाश्ये प्रयतिरते (इसचुटिको मान्नु मानिके ३५० पृष्ठ में मध्यसे नीचे खानी जगहपर स्थापनकरना)</p>

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदाः
४५२	२३	<p>इति साधारणां प्रकरणा पंचपरिच्छेदमयं नचैतेषु पंचसुपरिच्छेदेषु प्रकरणात्वं नियमः ॥</p>
४६३	१६ २४	<p>अर्थात् चत्वारिंश परिच्छेदकी आदिषे यहां अरत्वारिंश परिच्छेद के अन्ततक पाच परिच्छेदोका साधारण मिलः मुला प्रकरण सेवानाम यद्यपि बोधमात्र के निमित्तसे लिखि दिवामया तो भी इन पाचोमे विषय अपना अपना जुदावे तिसरे प्रकरणकानाम अर्थो सहित नहीं सिद्ध होताहै क्योंकि प्रकरण उन्ही सबका एक होताहै जिनके विषय एक समान हो—इसीलिये इन पाचोके छुटे छुटे पाच प्रकरण समझने चाहिये—इसका व्योरा पारद्वार्य प्रकरणके ठिकानेपर फिर भी दर्शावेगे तब समुक्ति लेना • इसके लिये ४८६ प्रष्टुदेखो (इस चुटिको तैरेच २३ पंक्तिने नीचे लिखिनेना)</p>
४६०	२८	<p>अर्थवाद—इन दोनो पंक्तिओ देखो • तहां कर्मसाधन होसकने आदि गुणका सात्पर्य केवल यहीदे कि धरने काम धन्योमें समर्थ और निष्कण्डोय तथा पतिके मैथुन और सेवा आदि प्रयोजन वालीहो निचिंया या योनिहोना या भूमी पहरी केठिन आदि होनेसे निकम्मी न हो (परतु उम उत्तम गुणसे रहित होय तो स्थियोका मासिकधर्म प्रसिद्धहै जिसके द्वारा सन्तानरूपो रथ पैदाहोति है वहां आचैयो कहाती है उधके धषपर इनसे भी बडे प्रायःवचत चाहिये सो तीसर्व परिच्छेद मे लिखिचुके तहा देखो (इस पाठको ४६१ प्रष्टुमें सबसे नीचे स्थापन करना चाहिये यह किंसी की चुटि नहींहै ॥</p>
४७८	२१	<p>यहा मधेह गेपरहा कि जिनको यहा निकम्मी कहा उन्हीके ४९० प्रष्टुमें—तदपि (कर्मसाधन त्वादि गुणयोगिनी) यह कहिचुके तो फिर कर्मसाधन होसकने की सम्मानना आदि उत्तम गुणसे युक्त होनेपरभी निकम्मी उनके क्वोक्हा—मुनो निकम्मी उनका परम उत्तम गुण समुक्तानेके निमित्त सेही कहामया तहा मदा मध्यमा कहिके भी समुक्तिनेना क्योंकि कर्मका साधनत्व आदि गुणसेयुक्त होनेका व्योरा ठसी ४६३ पृष्ठकी अपेक्षा ऊपर लिखामया तिसके देखो वेसे गुणोसे मयुक्त होनेपरभी निकम्मी या मदा मध्यमा कहाती है क्योंकि आचैयोसे मद होताहै (इस पाठको २८ पंक्तिने बीच में एकहुँदो इन चारिअद्वैतोके आगे चुटिमानिके हाशियेपर लिखना तिसके आगे ॥ ४६६ ॥ यहाँ अकट्टे भ्रामकपाठ—पचोसर्वां भक्तिसे लेकर परयाए के आठ नव अणोकेहै, यद्यपि उनमें अष्टगुट्टे कोई पद नहीं है तथापि उनके विश्राम अलाय्यन्ता हैं कि प्रायय अर्जुनोका दूसरे अर्जुंसे भिटाएदिये और चरख वा आधे चरखपर व्यर्थ बिचामहै कि जहापर विश्राम न होना चाहिये यह मनमे चडो भ्रामकता होतीहै पकते समय दुखदेतोहै—सो यह यज्ञ निदनेनका नमुनामात्र नतानाते हैं कि वेसो पाचमे आठके प्रष्टुमें भ्रामकता हुँदे तसो और भी बहुधा स्यनोपर शक्तिको में दिवारे,देती चा पाहु- लिपिके निमित्त डैलसे अन्य या द्यपी परन्तु अब कोई उमका उपाय सेवा गही है तिसकी समन्या किंसी चक्रमं स्थापन करीजामके—केथन यही श्लोक है कि जेणे निर्मांताने यज्ञ पुण्यक में स्थारो मे देयादेकर अष्टे जुडे किये और व्यर्थ बिचामेन मन्त्रक थापस में जोडिके पुनःपुन किये तेमे गभी मध्यस्थनी सुाहुमान अपनी जिव्दामि सुधारिने ॥</p>
४४८	२३	<p>जानेकरा—इसो इमोअरत्वारिंशके प्रष्टुमें सातशोपंक्ति देखो उसमे गंधर्षोके यचन से राज अदानन में आदि करनकहा सो सेवा उन्ती पापोम समुक्तना कि निनमें राजयादो (राजमुट्टे) शोगा हो किनु समही अपराधो में न जाहिरकरे—इस लिये ६२१ इयो इकठिके प्रष्टुमें २० चत्वारिपंक्ति देखो</p>

आशयाना व्यनस्याक्रमः	शु	पति
पंचगव्योंक लक्षण भी देखो ॥	००५	२०
महासातपन व्रत कई रीतियों होता है सात धारह पंद्रह ब्रह्मीय दिनके भेदसे जुदेजुदे रूप हैं तिनमें एक अति सातपन भी कहा जाता है ॥	००६	२०
तिरासांसे परिच्छेदमें अनेक कृच्छ्रों के रूपकहेजायेंगे । तिनमें एकपण कृच्छ्र • पादकृच्छ्र • तपकृच्छ्र • शीतकृच्छ्र • अर्धकृच्छ्र • दिवाव्रत • नक्षत्रत • अयाचितभोजी • फिर इनके भी अनेकभेद होंगे ॥	००८	१५
पणकृच्छ्रके रूपमें अनेकभेद बनरीतांसे होते हैं ॥	००९	२३
तपकृच्छ्र भी अनेक भांतका इनरीतांसे होता है ॥	०१०	१८
पादकृच्छ्र—यहकईभांतके व्रतांमिलिके एकहोता है । तिनकेनाम दिवाव्रत • रात्रिव्रत • अयाचितव्रत • उपवास • इनके भी लक्षण उन्हींके साथ हैं ॥	०१०	१०
प्राजापत्य भी उभी पादकृच्छ्रसे बनता है फिर उसके चारिभेद हैं ॥	०१४	४
अर्धकृच्छ्र और पूराकृच्छ्र या पादैनकृच्छ्र इनके विरोधपर व्ययस्या कही ॥	०१४	२६
उपवास नामके सायास व्रतका स्वरूप निर्णय सहित ॥	०१५	१२
चोरासांसे परिच्छेद में प्राजापत्यकृच्छ्र आदि अनेक कृच्छ्रही इसक्रमसेकहेजायेंगे प्रथम प्राजापत्य-ही के लक्षण भेद • धोचर्म शिगुकृच्छ्र • अतिकृच्छ्र • कृच्छ्रातिकृच्छ्र • पराक • सौम्यकृच्छ्र • तुलापुरुष • इनके भेद अनेक हैं ॥	०१६	२
प्राजापत्यकृच्छ्रके लक्षणभेद इनरीतांसे अनेक होते हैं ॥	०१६	६
शिगुकृच्छ्रके लक्षण प्राजापत्यहीके प्रथम में आगये हैं ॥	०१७	५
अतिकृच्छ्र भी अनेकभांतिका इनप्रकारोंमें होता है ॥	०२०	७
कृच्छ्रातिकृच्छ्र और पराक इनरीतांसे होता है ॥	०२१	२
सौम्यकृच्छ्र भी द्वा तरहका होता है ॥	०२१	१०
तुला पुरुषनाम कृच्छ्रव्रतके लक्षण भी कईभांतसे होते हैं ॥	०२२	२३
पचासांसे परिच्छेद में चाद्रायण • सोमायन • सामिकव्रतिकाभेद कहेजायेंगे । प्रथम • यवमध्य चाद्रायण • विषालिकायचाद्रायण • साधारणचाद्रायण • यतिचाद्रायण • शिगुचाद्रायण • सृषिचाद्रायण • सोमायन इसी क्रमसे ॥	०२२	१४
चाद्रायण व्रतके कईभेद एकसाथही देखो ॥	०२२	२१
साधारण चाद्रायण के अनेक होत ॥	०२८	६
सृषि चाद्रायणका स्वरूप ॥	०२८	१५
सोमायन व्रत भी एक महीने में कईतरह से होता है ॥	०२८	२६
द्विमासीय परिच्छेद में अनुष्ठान विधिपर्यंत होगी जो सभी प्रायश्चित्तके आरंभ समयकामश्रान्तोंके कि प्रायश्चित्तके दिनोंमें रोज रोज बयाकरना चाहिये ॥	०३२	५
यवन मयेम चोला विधान जो प्रायश्चित्त के आरंभ में मूण्डन होता है ॥	०३०	१६
यवनकर्मक्रममें यजुस्तु भी न्याय कहागया है ॥	०३२	११
यह प्रायश्चित्तके क आरंभ और समाप्ति के समय भी व्याहृतिहोम आदि ॥	०३६	२८
पापका नाशकरनेवाले कुछ और भी आशय हैं जो प्रायश्चित्तके अगमानेगये ॥	०४०	४
इनपापरथोका त्याग प्रायश्चित्तके अन्त्य करना चाहिये ॥	०४१	८

आशयानां व्यवस्थाक्रमः		पृष्ठ	पंक्ति
सनासिर्वेपरिच्छेदमें वह व्यवस्थाकहीजायगी कि सभीपापोंपर सबतरहके ब्रत होम ठान आदिका बदले से बर्तावा होसकता है अर्थात् जिन ब्रतोंकोके जिनपापोंपर नहींलगाया तिनपरभी लगिसकते हैं ॥		०४२	१३
इसपरिच्छेद के सिद्धांत का अर्थवैक्यहिले शेष है ॥		०४३	२
जिन प्रकारों से बदला कियाजाता है सो यहाँ से देखो ॥		०४४	१८
प्रायश्चित्त और पापोंका योग जिसरीति से मिलाया जाताहै सो देखो ॥		०४८	६
कुच्छ्रुतिकुच्छ्रु ब्रतके (प्रत्याम्नाय) बदल यहाँ देखो ॥		०४९	११
ग्यारह ११ योदान वाले प्रायश्चित्त के (प्रत्याम्नाय) बदल यहाँ देखो ॥		०५६	५
महीनाभर दूधपीके रहनेवाले ब्रतपर (प्रत्याम्नाय) बदल देखो ॥		०५६	१५
पापके ब्रतके (प्रत्याम्नाय) बदल यहाँ देखो ॥		०५६	२०
तप्तकुच्छ्रुके प्रत्याम्नायो मध्ये संदेह का निवारण ॥		०५०	१३
परस्पर तुल्य ब्रतमेंदो की तुल्यता निरूपण करने का न्याय ॥		०५८	३
प्राजापत्यो के स्थान पर अन्यब्रतों का (प्रत्याम्नाय) बदल सर्वपापोंपर ॥		०५८	१०
प्राजापत्य आदि ब्रतोंके अभ्यासमें ब्रह्मभोजकाभी प्रत्याम्नाय कहाजाये जो अतिरोगी आदि ब्रतको न करसके और धनीहोय तिसके ॥		०६१	२२
चांद्रायणके अभ्यासमें उसके स्थानीभूत प्रत्याम्नायोका विचार ॥		०६२	१६

इति सूचीपत्रं समाप्तम् ॥

अथ संदेहनिवारणां पुनर्निर्मितभेदानां संग्रहचक्रं ॥

पृष्ठ	पंक्ति	वृत्तिषाठ या आसक षाठोंके बीच या विज्ञापन आदि षाठोंके जुड़े जुड़े भेद यहाँ सोचिनेना ॥
१४३	२५	अथ परमात्मनः शरीरग्रहणप्रकारप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः (१०) दशमः इस परिच्छेद में वृहस्पकार जानाजायगा कि ईश्वर काय अजन्मा होता है पुत्र्ये भी संयोग देहोंमें किसप्रकार जन्मनेताहै (यह इतनी वृत्ति देखेही बात भेदों और दारीक अवरो से चौबिसपंक्तिके गोचे लिखिलेना) ॥
१५६	२९	पुरुषको आदिकी व्यवस्थाका तात्पर्य आगे १२ अक्षर परिच्छेदमें २०० दोषोक्तहजार मूलरत्ना से समुच्चिनेना (इस वृत्तिके आरंभपंक्तिकेनेचि तैश्वरी के स्थानपर लिखिनेना)
२६२	१२	इतिपायात्मनां नरकादिताति विययिकं प्रकरणां त्रिपरिच्छेदमयं ॥ इस प्रकार में तीनही परिच्छेद हैं—प्रथम आगे तीसरे परिच्छेद के अन्तमें दशपरिच्छेदोंका एक प्रकार मानाजायगा कि जिसमें ये भी तीन गिनेजायेंगे—तथा उसके महाप्रकरण समुदाय चाहिये—तिसरे ब्रह्मोच्यके आरंभसे तैश्वरीके अन्ततक यहाँपर रहनी तीन परिच्छेदोंका बुद्धा प्रकार कहाजायगा कि इसमें सत्र तरहके पापियों को दसलोक और परलोक में नरक आदि भोग जो जो मिलते हैं उन्हींका वर्णन किया गयाहै (इसवृत्तिके तैश्वरी पंक्तिकेनेचि लिखिनेना)

पृष्ठ	पंक्ति	पुनर्निर्मितविषयभेदा
६६०	१०	<p>यदा देवलका वचन हे (स्वयत्पुत्राग्रगण्ययुः) इत्यादि इसकी व्याख्या जो कुछ पहलानिबोहो सो भी यदा शब्दकोके वचन से मीलान करिके काम चानाना क्योकि दोनो वचन का एकही तात्पर्य है— (यह इतना प्रियेपनेह लेटह्यो पक्तिमे पुटिमानिके आयुपर लिखिलेना)</p> <p>आहुत करेगा यह तात्पर्य है—इसैअरतालिषके पुष्टमे यातनीपक्ति देखे शब्दकोका वचनदे (तत्पुत्राग्रगण्ययुःजसमत्) इत्यादि इसी वचनकी व्याख्या बहा जो कुछ लिखी है विसका भी मीलान यदा देवल के वचन से करना चाहिये क्योंकि वहा जो शब्दकोका धन्यार्थ है वही यदा देवलका तात्पर्य है और सिट्टाल दोनोका यहोहे कि जिन पापोक अघराव में राजवादी (राजमुद्र) न हेताहो न होसका हो तिनके मध्ये प्रायश्चित्तका योक्तारनेजाली को राज अदालत में प्रकाय करना या करवाना कुछ आवश्यक नहोटे—परतु वहा पापी इच्छा सहित पापकरे और प्रायश्चित्त भी न करनाचाहे और मज्जनेकी मुशितासे अपनी प्रकृति को भी न मुधारै बल्कि बारम्बार पापकर्म का अभ्यास करे तो फिर सभी पाप सेमेहे कि राज अदालतके सम्मुख प्राणीके घडे घुटे दूधूजनेके समकानर प्रायश्चित्त करायाजाय । (यह इतना लेख प्रियेप दशमी पंक्तिकी पुटिमानिकर आयुपर लिखनेना चाहिये)</p>
६६२	११	<p>समुभलेना—अर्थात् जिस व्रतको साधना जितनेदिन होतीहो उसके बदले उतनेही दिनातक उक्तमथ्या रोज रोज जितने इसका दृशत जेमे चाद्रायय ने तांसदिनातक चोयोष चाद्रायय ॥ ० ॥ (यह इतना लेख ग्यारहवीं पंक्तिमें पुटिमानिके आयुपर लिखनेना चाहिये)</p>
६६२	१६	<p>ने समुकाया—परतु जैसा अति निर्धनको प्राणापत्य के बदली बारह ब्राह्मण कहैगये तैसा अन्यत्रकोके ऊपरले हिषाय से बित्तने होसके तित्तने उनमें भी इन्ही बारहके अनुसार लेखा जोडिके समुभलेना ॥ ० ॥ (यह इतनालेख उन्नीसवीं पंक्तिमें पुटिमानिके आयुपर लिखि लेना)</p> <p>मिताक्षरा सटीक प्रायश्चित्तकांड—इस यथकानाम निर्माताका निर्मात किया (मर्यादापरिपाटी समाधार), धर्मशास्त्र ठीक ठीकही जैसा सन् १७०३ ई० से लेकर आचार और व्यग्रार के देकाडेपर कृपिभुका जो प्राचीन ग्रहकोके पास वह मौजूद हैं उनके ऊपर यात्रयवृत्तव्युत्ति और मिताक्षरा मर्यादा परिपाटी से तर्जिनाम समस्या क्रियोगयेये अथके इसकाड प्रायश्चित्त के पृष्टेपर मिताक्षरा सटीक द्वापगया किसी अतिसे निर्माताके अनुपस्थित होनिमें जो इसयत्ता से कुछ देय वा गन्तरी न समकना कभी दुवाग मुद्रित होनिमें परिवर्तन क्रियाजायगा—अर्थात् ये मिताक्षराका पुत लेत इसमें प्रधानतासे लेकर चाकी और यथोका सारांग लियामगाटे कि जो जो बातें मिताक्षरा में भी नहीथीं उनको व्ययम्ना सम मर्यादा परिपाटी में मिनसके—और भी मिताक्षरा में प्रकरके क परिच्छेद आदि प्रत्यभेद जो कुछ नहोये सो सब इसमें अपने रचयिता के उदाग से निमाक क्रिये गये जिसे व्ययम्ना ठुठनेअने का सुगमता देय—शास्त्रीक विधि जो सकर्माकी होती है सो मर्यादा कहाती हे—और सब देनाअभिन्न भिन्न आचार्यकी रीतिहै वेदपरिपाटी कहातीहै जो शुद्धमूल पूर्वो से लेकर क्रमागतवनी आरंभः ये दोनो मिलिके (मर्यादापरिपाटी) बना इन्ही दोनोका अच्छा आनरद धर्ममान होय या यथा क्रियागया जिन धर्मशास्त्र में से (मर्यादा परिपाटी समाधार) धर्मशास्त्र इसनामसे अनाम तथा मुठ सायेनाम होताहै ॥</p>
		गति ।



मिताक्षरा सटीक ॥

तीसराप्रायश्चित्तकारण्ड ॥

श्रीगुरुंनुप्रणम्यादौ परमात्मपदाभिधम् । तद्वचोमंत्रपूतात्मा शुद्धिगत्वाविशेषतः १ ॥
 ध्यात्वातर्वाशरीरस्पर्शं जगदीशानिरञ्जनम् । योह्यस्यजगत अष्टा चराचरमपश्यतु २ ॥
 योगीश्वरंयाज्ञवल्क्यं मिथिलापतिपूजितम् । येनलोकोपकाराय रुतेयंधर्मसंहिता ३ ॥
 विज्ञानेश्वरनामानं प्रणम्यचपुनःपुनः । मिताक्षरारुतायेन विद्वज्जनप्रमोदिनी ४* ॥
 श्रीमर्यादाप्रियस्तस्या मर्यादापरिपाटिकाम् । भाषाटीकांप्रकुर्याणः शुक्लोदुर्गाप्रसादकः ५ ॥
 आचारव्यवहारभ्यां निवृत्त्याग्नेतनोत्तिच । प्रायश्चित्ताभिधकांडं क्रमप्राप्तमलापहम् ६ ॥
 प्रायश्चित्तमपेक्षुना मात्मशुद्ध्यभिलापिनाम् । सौगम्येनेववोधाय परार्थंवाविचारिणाम् ७ ॥

प्रायश्चित्त कारण्डका प्रारम्भ किया चाहते हैं तहां पहिले यहवात भी प्रकाश करनी आवश्यक ठाहरी कि प्रायश्चित्त कारण्डमें क्यावस्तु वरानकरंगे—ऐसे समझो कि आचारकारण्ड में गृहस्थायमीमात्र सबहीके नित्य और नैमित्तिकधर्म वरानक्तिये ये उनमें भी राजास्वतः गिनती होचुका क्योकिवहभी एक गृहस्थीहै—फिर उसी आचारकारण्ड में ३०८ श्लोक से लेकर व्यवहारकारण्ड पर्यंत एक गृहस्थी विशेष जो अभियेक आदि गुरांसि संयुक्तहोने कारके राजा प्रसिद्ध होताहै तिसके गुरा धर्म सबसे जुदेभी दशायिगये क्योकि सब गृहस्थियोंकी अपेक्षा उसमे राजसूयपीयूषा विशेषहै तिस गुराकेधर्म प्रजापालन आदि उसकेलिये अधिक होतेहैं—अब इस प्रायश्चित्तकारण्डमें उन्ही पूर्वोक्त सर्वधर्मोका अपवाद (अर्थात्छूट इस्तिस्नु॥२)वरानकरंगे—इसीलियेउन धर्मोका अधिकार संकुचितकरने (रोक्तिदेने)वाला आशीचका नियम पहिले कहेंगे ॥ तहां आशीचशब्दके अर्थसे वहकाल उतना समझना जिसमें अशुद्धहोने आदि कार-रांसि ज्ञान ध्यानआदि पूर्वोक्त धर्मोका अवरोधहो और यही उस अपवादका स्वरूप

करें इसका अग्निसंस्कार और जलदान क्रिया भी न करनी चाहिये किन्तु जैसे जंगलमें लकड़ी छोड़कर बेफिकर होजातेहैं तैसे इसे गडहिले में दाबकर तिस पीछे (आद्यआदि ऊर्ध्वदोहककर्म जो आचारकांडमें आद्य प्रकारोंके द्वाराकरने कहिचुके तिनसे) उदासीनहोकर तीनदिन उदासीमें बितावें (ध्यानसे सोचनाचाहिये इसकथन से अपवादकास्वरूप सिद्धहोगया कि जो आचार अध्यायमें करना कहाया वहइसको छोड़कर औरोंपर समझना इसीको हृतया इस्तिस्नाय कहतेहैं इसीतरह सर्वत्र प्रायश्चित्तकांड में आचार व्यवहार दोनोंके अपवाद अनेक भाँति बरान होते रहेंगे कि जहाँ जहाँ जिस जिसप्रकारके अपवादका प्रयोजन हो) ॥ दोबयसे कमअवस्थाके घृत लगाकर गाहना और यमगाथा पढ़तेहुये गाहना येदोनोंवात यमस्मृतिसे सिद्धहोतीहैं = यथाह यमः = ऊर्ध्वद्विर्वायिकंप्रेतं घृताक्तंनिखनेद्विहः यमगाथागायमानो यमसूक्त मनुस्मरन् = अर्थात्-दो बयसे ऊने प्रेतकोधीसेचुपडि यमगाथा गातेहुये ग्रामसे बाहर खोदिगाइँऔर यमसूक्तका स्मरणा उचारागा करतेहुयेतोरे ॥०॥ देवलः—चांडालाग्नि रमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्चकर्हिंचित पतितार्ग्निश्चतार्ग्निश्चनशिशुग्रहरोचिताः = अर्थात्-देवलमुनिका यहवचनहै कि जिसप्रेतको अरणीकायकी अग्नि न मिलनेसे लौकिक अग्नि लेनीपरै तहां उत्तमकुल जातिवालेको इतनी अग्नि न लेनीचाहिये. एकतो किसीचांडालसे दूसरे जो अग्निआपही प्रत्यक्षमें अपवित्रहो जैसे पजावेआदि में लगीहुई तीसरे सूतिकाकेपास जहां जमसूतक हुआहो तिसकीअग्नि चौथेपतित के हाथसे न लेनी पांचवें किसी चितासे भी न लेनीचाहिये॥अग्नि संस्कार और जलदानसव्ये लौगासिने यहअप्रोक्तविशेषता दर्शाईहै = यथाहलौगाक्षिः = तृणीमेवो दंक्तृयात्तृणींसंस्कारमेवच सर्वथांक्ततच्छानामन्यत्रापीच्छयाद्यम = अर्थात्-सभी बालक जिनका च्छाकर्म मुंडन होचुकाहो तिनको तो नियमसे अवश्यही अग्निदाह और जलदान करनाचाहिये लेकिन विनामंत्रके चुपके करनाचाहिये. अन्यत्रापिजहां च्छाकर्म नहोचुकाहो परन्तु नामकरणा होचुकाहो ऐसेबालकों के मरने में यदि कर्ता पुरुषोंकी इच्छाहो तो अग्निदाहऔर जलदान दोनोंविनामंत्रके करे अपनेप्रेतकाअभ्युदयचाहि सोविके अन्यथा कुछ आवश्यक नियमनहीं केवल इच्छापर आरूढ़हैचाहें करें या न करें ॥ इसीनियमके अनुरूपमनुने कुछ और विशेषता कही है = यथाह मनुः = नाशिवर्यस्यकर्तव्यानांथवैरुदकक्रिया जातदंतस्यवाकृत्यान्निवापिहातेस ति = अर्थात्-बिना तीनबय पूरेहुये की उदक दान क्रिया बांधवोंको न करनी चाहिये (केवल उदक क्रिया कदन से अग्निदाहभी समझलेना क्योंकि इन दोनों का

जोडा है) कहीं विकल्प से तीनवर्ष के भीतरभी जिसकेदोत जमिचुके हों अग्निदाह उदकदान करो या न करो इसी प्रकार नामकराज्ञानेवाले के तीनवर्ष भीतर करो या न करो किंतु कर्ता की इच्छापर आरूढ है आवश्यक नियम नहीं है परंतु तीन वर्षका जो नियम आवश्यक ठहराया तिससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है किचूडा कर्म यद्यपि किसी के कुलपरिपाटी से तीन वर्षके उपरांत पाँचसात वर्षतक होताहो तिससे न होनेपाया तौभी तीनवर्ष से उपरांत मरे प्रेत को अग्निदाह और जलदान अवश्य विना मंत्रोंके चूपके करदेनाचाहिये = मनुके इस वचनसेलौगासिके पूर्वोक्त वचन में इतना भेदहै कि लौगासिने तीन वर्षभीतरभी चूडाकर्महोजानेवादि अग्निदाह और जलदान का आवश्यकीय नियम किया और इसमें मनुने तीनवर्ष के उपरांत चूडा न होनेपरभी आवश्यक नियम ठहराया क्योंकि चूडाकर्मका विशेषकर कोई एकसमयटीकनहींहै तिसकोदेशकालवस्तुके अनुसारविवेचन करिलेनाचाहिये= ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंका अभिप्रायलेकरयहक्रम स्थापनहुआहै किजबतकनामकराज्ञानकर्मसंस्कार नहुआहो तिससे पहिलेमरें सो खोदिके गाडाजायउदकदानभी नकिया जाय फिर नामकराज्ञाने उपरांत तीनवर्ष भीतर विकल्पहै कि चाहें अग्निदाहजलदान करौ या न करौ तिसपीछे जबतक जनेऊ न हुआहो तिसकेमरनेमें अग्निदाह जलदान दोनों अवश्यकियेजायेंगे परंतु विनामंत्रके चूपके कियेजायेंगे और तीनवर्ष के भीतर जिसका चूडाकर्म होचुकाहो तिसकाभी यही नियम समुभता फिरजनेऊ होजानेवादि जोमरें तिसको (आहिताग्न्याहृत् विधिसे) जलायकर सब कर्म ऊर्ध्वदेहि कभी किये जायें जो कुछ लोकमें होतेहैं तिसजलानेमें कई भौतिका विचारहै कि जनेऊवाले कई तरहके होतेहैं उनका जुदाजुदा विधान अपनी कुल परपाटीसे होताहै अर्थात् एक ती सामान्य कुलका लड़का किजिसके कुलमें अग्निहोत्र नहींहोता औरदाहकर्मभी अग्नि होत्रियोंकी रीतिसे नहींहोताहो इसबावह लड़का किजिसकेघर अग्निहोत्र तौ नहींहै परंतु अग्निहोत्रियों की रीतिसे दाहकर्म की परिपाटी चली आतीहै तिसरा वहकि जिसकेघर अग्निहोत्रकी स्थापना रहतीहो चौथा वह कि जिसकेघर अग्निहोत्र की स्थापनाहै औरवह अपने आपभी आहिताग्निहो क्योंकि विवाहभी होचुका तिससे उसने अग्निकी स्थापनाभी जुदी अपनी करीहोगी—इन्हीं भेदोंके अनुसार दाहक्रियामेंभी कईभेदहोतेहैं क्योंकि जोपुरे अग्निहोत्री हैं तिनकादाह उसी अग्नि कुंडकी अग्निसे होता और यज्ञके पाव आदिभी मुर्दाके साथही जलायेनातेहैं इत्यादि विधान उनका कुल पद्धतियोंमें प्रसिद्धहै बिरलेकुलोंमें अग्निहोत्रके न होनेपरभी थोड़ीबातें

उसी रीतिकी चलीआतीहैं क्योंकि पहिले कभी अग्निहोत्र उनके होताथा इत्यादि सब भेदोंका तात्पर्य योगीश्वर ने (उपेतश्चेत्-आहितारन्यावृत्तार्थवत्) इतने अक्षरों से समुभायाहै कि जिसकी जैसी पगिपाटीहो उसीके प्रयोजनसे दाहकर्मकरै—इसका यह दृष्टांत है कि जिसके अग्निहोत्र का वितान हो और भूमिजोधरा प्रोक्षणा आदि विधि करनी आवश्यक हो तौ वही करना या जिसके अग्निहोत्र का वितान आदि न हो तौ वहलुप्त प्रयोजनहै कि पात्र योजन आदि विधान उसका न करनाहीगा • यह समस्तवार्ता प्रासंगिक है • अब उसी प्रकृतको दर्शाते हैं कि उपनीत जनेऊ होचुके का दाहलौकिक अग्निके विधानसे होताहैपरंतु जो अग्निहोत्रीकोकुलमेंउपनीत होनेपरभी अनाहितारिग्निएरुयसरै तौ गृह्यारिग्निसे और लौकिकारिग्निके दाहसेभी जलायाजाताहै किंतु उसका विवाह और यज्ञारिग्निसंबंध नहोनेसे आहवनीय आदि अग्नि नहीं हैं ॥ उसीअग्निसे या दूसरी अग्नि से भी • यह अनन्यंतर विधान भी वृद्ध याज्ञवल्क्य ने प्रकाश किया है = यथा—आहितारिग्निर्यथान्यायंदस्वव्यर्द्धिभिरग्निभिः अनाहि-
 तारिग्निरैकेन लौकिकेनापरोजनः=अर्थात्—आहितारिग्निसे अग्निहोत्री हो सो तीनों भाँति की अग्निओं में किसी अग्नि से यद्योचित न्याय के अनुसार जलायाजाय अर्थात् तीनों मौजूद होते जो उत्तमहो उसीसे जलाना चाहिये अनाहितारिग्निसे अग्निहोत्री के घर जन्म होतेहुये अग्निमान न हो सो एकही गृह्यारिग्निसे जलाया जाय और बाकी सामान्य जन लौकिक अग्निसेजलाया जाय ॥ अग्नीनां भेदाः—
 प्रसंग से आवश्यक जानिके अग्निओं के भेद भी दर्शाते हैं—यद्यपि अग्नि ती-
 नही मुख्य और प्रसिद्ध हैं तथापि उनके भेद अनेक हैं और यथार्थ में सर्वत्र अग्नि एकही है कि जिसके संस्कार भेद वा स्थान कर्म भेद से नामभेद भी हो-
 जातेहैं • इसका दृष्टांत है कि जैसे एक लौकिकअग्नि वहीकहाता जो लोकमें जहाँ-
 तहाँ प्रसिद्धरहता और कोईसा संस्कार उसका शाश्वोक्त विधानसे न किया गयाहो
 इसकेभी स्थानकर्म भेदसे अनेक नाम होतेहैं जैसे भाइ भट्ठी आदिमें होनेसे—फिर
 वही अग्नि जो निरंतर किसी के घर में रहिता हो तौ आवसथ्य यह नाम होजाता
 क्योंकि आवसथ्य नामहै घरका (परंतुघरमें रहते भी जबतक कोईसा संस्कार न किया
 जाय तबतकघोनों नाम रहतेहैं अर्थात् आवसथ्य और लौकिकभी कहाताहै) इसीतर
 ह लौकिक अग्निके स्थान भेदसे अनेक नाम होतेहैं—फिर उही आवसथ्यनाम अ-
 ग्निकी जब किसी यज्ञ विशेष के लिये यद्वा नैतिक पाक यज्ञोंके लिये घरका मा-
 लिक, संस्कारोंसे कल्पितकरै तत्र गार्हपत्य नाम कहाता है क्योंकि गृहपति जो घर

का स्वामी है वही उसका संस्कार यजन करनेसे यजमान ठाँहरा और उसी गार्हपत्य अग्नि को नामांतरसे गृह्याग्नि भी कहते हैं—फिर उसी गार्हपत्य में से थोड़ा अग्नि लेकर जब किसीके विवाह में होमसंस्कार से संयुक्त कियाजाय जिसे साक्षी बनाकर नर वधूको प्रतिज्ञा वचन दियेजाते हैं तब उसका और नाम भेद भी विवाहाग्नि ऐसा कहाने लगता और वही वैवाहिक अग्नि आगे को सदा सर्वदा उन नर वधू के घर में रक्षासे रहती है कि जबतक वह पत्नी जीवै किंतु मरजाने से उसी अग्निमें फंकी जाती है फिर अन्य विवाह करनेसे अग्नि स्थापन होता है (आचार मर्यादा परिपाटी में ८६ प्रलोक देखो)—फिर उसी गार्हपत्य अग्निमेंसे थोड़ी लेकर जुदेकुंड या वेदीमें वेद्योक्त कर्म अग्निहोत्र आदि किसी होमके निमित्तसे स्थापनकरके संस्कार करीजाय तो यह अग्निप्राह्वनीय कहाता और वैतानिक भी कहाता और इस भाँतिके वेद्योक्त अनेक अग्नि सब यौतारिण के नामसे प्रसिद्ध होते हैं—इसी प्रकार अनंतरोक्त वैवाहिक और गार्हपत्यभी स्मार्तअग्नि के नामसे प्रसिद्ध होते हैं • इसी प्रकार ऊपर कहे आवस्य पर्यंत लौकिक अग्नि के नामसे प्रसिद्ध होते सो लिख चुके हैं तिससे अग्नि के मुख्य भेद तीनही कहेजाते हैं (अन्यथा भेदतो अनेक अभी लिखने शेष हैं) इसीलिये आचार मर्यादा परिपाटी में योगीश्वरने यह कहाया कि (कर्मस्मार्तविवाहाग्नीकुर्वीत प्रत्यहंगृही दायकालाहतेवापिश्रोतवैतानिकादियु) अर्थात् गृहस्थीका सदायह धर्म है कि प्रतिदिन स्मार्त कर्मोंको विवाह की संचितकरी अग्नि में किया करै यथादाय भाग होनेके समय जो हिंसाघाँट में पाईहो तिस अग्निमें कौ और वेद्योक्त योतकर्मोंको वैतानिक आदि अग्निमें करै—और जो अनेक अग्नि लिखने शेष रहे तिन में एक दक्षिणाग्नि के नामसे कहाता उसका यहलक्षण है कि जो कहींसे माँगला को रसोई आदि पाकयज्ञ में प्रवृत्त कराजाय सो इस दक्षिणाग्नि जन्मकेवलमाँगि लाता है कि जो कई भाँतिसे होता है क्योंकि या तो किसी दूसरे गृहस्थीके गार्हपत्य में से लाईजाती है या घनवाय वैश्यके कुलसे या भाइमेंसे इत्यादि ले आनेका विधान है • यह सब चर्चा प्रासंगिकथा अबउसी प्रकृतका वर्णन करेगे जो चितासंबंधी होरहाया ॥ ० ॥ यमस्मृतिमें यह भी नियम कहा है कि शूद्रके हायसे आग या लकड़ी आदि प्रमग्नान भूमि तक न पहुँचावै = यथाह यमः = यस्याऽऽनयति शूद्रोऽग्निं तेषां काष्ठं हवींयिच । प्रेतत्वं हि सदा तस्य सचावर्त्तमानं लिप्यते = अर्थात्—जिस द्विजाती के शूद्र पुरुष अग्नि लाता है या फूस काय या हवींयि अर्थात् होम और पिंडोंकी सामग्री आदि लाता है तिसको सदा प्रेतत्व बना रहता और कर्त्वाने चाला या वह शूद्र भी

अधर्मसे लिप्त होता है ॥ ० ॥ दाहकर्म भी स्नान आदि कराने पीछे करना चाहिये
 जैसा यह वचन है = प्रेतदहेच्छुभैर्गंधैः स्नापितं स्रग्भयितम् = अर्थात्—प्रेतको स्नान
 कराये हुये माला आदिस विभूयित उत्तम गंध द्रव्यौ सहित जलावै ॥ प्रचेतस्सृति
 में प्रचेताने भी कहा है = यथा = स्नानंप्रेतस्य पुत्रार्थैर्वस्त्रार्थैः पूजनंततः । नग्नदेहं देहेनै
 र्वाकींचहे यंपरित्यजेत् = अर्थात्—पुत्रादिकोंके द्वारा प्रेतका स्नान और वस्त्रादि सा-
 मग्रीसे पूजन भी होय किंतु नगीदेह नहीं जलावै और चढाए हुये वस्त्रमें से कुछ देने
 योग्य फाड़िके छोड़िदे जो प्रमशान के निवासी पावेंगे ॥ ० ॥ मनुने प्रेतको लेजाने
 मध्ये भी विशेषता कही है = यथा—नविप्र स्वेयुति यत्सुमृतं शूट्रेणाहारयेत् । अस्त्रग्या
 ह्याहुतिः सास्याच्छूद्रसंपर्कद्रूयिता = अर्थात्—अपने जाती मौजूद होते हुये मरे ब्राह्मण
 को शूद्रके कंधे न पहुंचावै क्योंकि जो आहुति उसको स्वर्ग पहुंचाने हेतु दीजायगी
 वह शूद्रके संसर्गसे दूयित अस्वर्ग्य होजायगी (इस वचनमें अपनों के होते हुये यह
 कथन केवल गोवियों पर नहीं कहा समझना किंतु जातिमात्र पर विवक्षा
 करी है कि ब्राह्मण मात्र किसीकी होते हुये ऐसा अनर्थ न होनेदेवै क्योंकि अस्वर्ग्य
 दायके भागी वेभी होते हैं जो अनर्थ देखें इसी प्रकार अन्य वर्गोंमें समझना ॥ ० ॥
 जहाँ ग्रामके चारों खूंट मार्ग खुलेंगे या शहर पनाह के दरवाजे पुरमें बने हों तहाँ
 भी किस द्वारको कैसा मुर्दा निकास जाय यह भी नियम किया है = यथा—दक्षिणो
 नमृतं शूद्रं पुरद्वारैरानिर्हरेत । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यैर्द्विजातयः = अर्थात्—मरे
 हुये शूद्रको पुरके दक्षिण द्वारसे निकास और पश्चिम उत्तर पूर्व इन द्वारों से यथा
 क्रमके अनुसार द्विजातियों को मुर्दे निकासे जाय—किंतु पश्चिम द्वार से वैश्य और
 उत्तर द्वारसे क्षत्री और पूर्वद्वारसे ब्राह्मण निकास जाय' तात्पर्य इससे यही है कि
 बिना प्रकाश किये स्तंभः प्रकाश होसक्ता है कि अमुक वर्ग का मुर्दा निकास ॥ न
 ग्रामाभिमुखं प्रेतं हरि रित्तहारीतोपि = अर्थात्—हारीतने यहभी कहा कि ग्रामके स-
 न्मुख मुर्दा न लेजाय ॥ ० ॥ कदाचित् कोत्रे विदेश में रहिते मरजाय जिसका शरीर
 पुत्रादिकोंको न मिलसके परंतु दाह मिलेहों तो उन हाडोंमेंही प्रतिहृति पुतलविधान
 करे या दाह भी न मिले तो पराशरोंसेही पुतलविधान शौनकादि गृह्योक्तमार्गसे क-
 राकर दाह आदि संस्कार करे (पराशर अर्थात् हरेपत्ते और शरकराडोंसे नराकार मुर्दाकी
 नकल बनानी पुतल विधान कहाजाता है) और सुतक भी दगादिन आदि जैसा होता है
 सो सब इसमें नाने— इस नियम का प्रमाण आगे वाग्युजीका वचनदेखो = यथाह
 वाग्युः = आहिताग्निप्रचेत्प्रवसन्प्रियेत पुनः संस्कारं कृत्वा शववदागोचमिति =

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड ।

अर्थात्—जो आहिताग्निः पुरुष अग्निहोत्री होकर विदेश में रहिते मरजाय पुत्रादि कोंको अग्निदाह देनेका अवसर न मिले तिसका फिर पुत्तल विधानके द्वारा अग्नि संस्कार करके मुर्दा की तरह सूतक माने ॥ और जो अनाहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्री नहींहै सो विदेशमें मरे तिसका सूतक तीनरात्रि मानाजाय—इसके भी प्रसारामे यह वचनहै—यथा=सुषिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यप्रचतयाग्निना । असौत्सर्गायलोकायत्वाहे ल्युक्त्वामर्वावधैः ॥ एवंपर्याशरंदग्ध्वा विरात्रिमशुचिर्भवेत्—अर्थात्—पर्याशर नामक पुत्तल बनाने पीछे जल मिलायेहुये अच्छे तंदुल थव आदिके पिसानोंसे थोपिलीपि के अग्निसे जलाना योग्यहै और उन्हींमने पिसानोंके बने पिण्डसे (यहकाहिकर कि यहमृतक और पिण्ड स्वर्गलोक प्राप्त होनेके निमित्तत्वाहा) इस भाँति मंत्रसे स्वाहा कहिकर बांधवोंसहित कर्त्ता पुरुष पर्याशर को जलाइकर तीनरात्रितक अशुचिनाम सूतकीरहै ॥ यहाँतक मृतक संस्कारकहागया कि इसतरह गाड़े या जलावे ॥ संस्कार के आगे फिर क्या करना चाहिये सो नीचे अभी कहते हैं १ । २ परन्तु दाह के दिवसजो कुछ और करना होता है तिसकी व्यवस्था आगे पाँचमी अधिकोक्ति में व्यौरेचार देखना ॥ इतिश्रवदाहविधानं ॥

(अथ जलदानप्रकारः)

सप्तमाह्नमाहापि ज्ञातयोभ्युपयंत्यप । मपनःशोशुचदयमनेनपितृदिमुखाः ३ ॥

अर्थः—सातमें या दशमें दिवसके अनन्तर ज्ञातीयजन (अपनःशोशुचदयं) इस मंत्रसे दीक्षरामुख होकर जलका अभ्युपगम करतेहैं + इसमें अभ्युपगमन कहिनेसे उस के प्रयोजन अनुसार स्नान और जलदानकर्म समुभाजाताहै कोंकि चौथश्लोकमें इसी तीसरे और पाँचमेंका अति देशधर्म नाना आदिपर बताकर उदक क्रिया करनी कहेंगे और पाँचमें श्लोकमें भी जलदानविधि स्पष्ट भावसे कहेंगे (अतिदेश उसकानाम है कि जो कोई साधर्म किसी एक दोके नामसे कहिकर औरोंपर भी बतायाजाय कि जैसा यहाँ तैसा वहाँ भी होना चाहिये ॥ ३ ॥

३अधिकोक्तिः—उक्त जलदान विधि विषय तिथियों में करनाचाहिये समतिथियों में नहीं—यथाह सौतमः—प्रथमतृतीयपंचमसप्तमनवमेष्टकक्रिया=अर्थात्—पहिले तीसरे पाँचमें सातमें नवमें दिवसोंमें उदक क्रियाहोय ॥सो यह स्नानके अनन्तरकरना चाहिये—यथाहशातातपः—शरीरमर्गनोसंयोज्यानवेसमाराग्रापोभ्युपयंतोति=अर्थात् मृतकदेह को अग्नि में संयुक्त करके फिर उसकीतर्फ न देखते हुये जलका अभ्युपगम

करें ॥ प्रचेताने कुछ और भी विशेषता कही—यथा= प्रेतस्वर्वांधवीययावृद्धमुदकसव तीर्थचोद्धर्षयेयुरुदकांते प्रसिंचेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणाभिमुखो ब्राह्मणास्यो दक्षु खाः प्राङ्मुखाश्च राजन्य वैश्वयोरिति= अर्थात् प्रेतके बांधवलोभ जैसा उत्तमजलाशय या राहिरा जलमिले उसमें गोतालगाके शरीरको नमलें घिसें जलदे किनारे अंजलियाँसीचें दाहने कंधे जनेऊ अंगीछा से अपसव्य होकर दक्षिणामुख होकर यह नियम सबका सामान्य है उसमें यह विशेषता भी करसक्ते हैं कि ब्राह्मणाके मुर्दाको उत्तरमुखहोकर और क्षत्री वैश्यकेमुर्दाको पूर्वमुखहोकर • क्रिंतु शूद्रकेलियेकोईनियम यद्यपि नहीं कहा गयाहै तथापि शेष प्रायश्चित्तकी दिशा केवल बुद्धिसे कल्पनाहोती है तिसका निर्णय देशाचारसे कर्तव्यहै ॥ विष्णुकी स्मृतिमें तबतक रोजरोज अंजली देनीकहीहै कि जबतक सूतक मानजाय=यथाह विष्णुः=यावदाशौचं तावत्प्रेतस्यो दकांपिराडंचदधुरिति=अर्थात्—जबतक आशौच रहै तब तक प्रेतके लिये जल और पिराड भी देतेहैं ॥ प्रचेतस्मृतिमें रोजरोज अंजलियों की वृद्धि करनी कहीहै जैसा यह प्रचेताका वचन है—दिनेदिनेऽजलीवृष्याग्निप्रदद्यात्प्रेतकारणात् तावद्वृद्धिःप्रकर्तव्यायावत्पिराडःसमाप्यते=अर्थात्—प्रेतके निमित्तसे दिनदिन प्रति जलभरी हुई अंजलियाँदेवें और जबतक दशमापिराडपूराहै तबतक एकअंजलीरोजबढातारहै ॥०॥ ऊर्ध्वोक्त बोधकारोमें कुराईवडाईके हेतुसे यद्यपि तर्कावितर्करूपीशास्त्रार्थबडाहोताहै तथापिजो बडाअनुकल्पकहा तिसमें बहुत क्षीण उदानेकेहेतुसे बहुधा प्रवृत्तिनहीं सिद्ध होतीहै—परन्तु जिसको—यह अभिलायाहो कि मेरे प्रेतकाअभ्युदयहोगा सो इसबड़ेही अनुकल्प को साथै जिसपर न साधाजाय सो—उसीछोटे अनुकल्पका अवलम्बलेवें कि सकही—दिनमें निपटारा—हो जैसा याज्ञवल्क्य और शौतस के वचनों से लिखागया ॥ अंजलीदान दोनों हाथ मिलाकर करनाचाहिये=यथा वाश्लः= सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कूर्वीरिव=अर्थात्—वामे दाहने दोनों हाथोंसे उदक क्रियाकरें ॥३॥ दशमें दिनकी शुद्धक्रियाका विधान आगे १७ सबह के श्लोकसे देखें ॥

(उक्तस्यवक्ष्यमाणस्यचातिदेशः)

एवंमातामहाचार्य्यं प्रेतानामुदकक्रिया । कामेदकंतासिप्रत्तास्वस्वीयंश्मशुरत्विजाम् ४ ॥

अर्थः—जैसेही नाना आचार्य इन प्रेतोंकी उदकक्रिया • कामेदकनाम इच्छा से उदक देनाचाहें तो सव्या निच प्रत्ता विवाही वहिन बेटी आदि स्त्रीय भानजा यमुर इतिवज याग करानेवाला इनके भी प्रेतोंकी जलदेवें जो प्रेतका अभ्युदय चाहताहो किन्तु इच्छाके न होनेमें न देनेसे कुछ दोषभागी नहींहोता ४ ॥

अधिकोक्ति=जलदानके नियम ऊपर कहेगये सो किसप्रकारसे करना चाहिये तिसका प्रकार पाँचमें मूल प्रलोकसे कहेंगे और उसी पाँचमें अधिकोक्ति में सबिस्तर व्यौरा लिखेंगे कि जिससे कुछ संदेह न रहसके ॥

(उदकदाने गुणविधिः)

सकृत्प्रसिचत्युदकं नामगीत्रेष्वग्यताः । नब्रह्मचारिणः कुर्युदकंपतितस्तथा ५ ॥

अर्थः—सकृत् एकही बार सींचते हैं जलांजली (प्रेतके) नामगोत्रसे (बांधवलो ग सपिंड और समानोदक) बाकबारागी थांसे हुये अर्थात् (सोनी होकर) ब्रह्मचारी तथा (जातिसे) पतित बांधव जलांजली न करें (यह विधिमें अपवाद है कि ये दोनों जलदान के अधिकारी नहीं ॥ ५ ॥

५ अधिकोक्तिः = (अमुकनामा प्रेतोऽमुकगोत्रः तस्यतु) इस संबन्धसे एक बार जलांजली छोड़नी मूल प्रलोक में योगीश्वर ने कही परंतु कहीं देशाचार वा इच्छा के अनुसार त्रिकल्प भी तीन अंजलीसे होता है अर्थात् नामगोत्रका संबन्ध एकही बार कह कर तीन अंजली देना भी ठीक है ॥ क्योंकि प्रचेतसु स्मृतिमें तीनवार जल देनेका नियम है जैसा यह प्रचेतामनि का वचन है—त्रिःप्रत्येकक्रुयुः प्रेतस्तप्यतु=अर्थात्—अमुकनामा प्रेतस्तप्यतु इस पूर्वोक्त संबन्धके प्रत्येक उच्चारणा में तीन अंजली करें ॥ यह नियम तो तीसरी अधिकोक्तिमें प्रचेताके वचनसे लिख चुके हैं कि रोज रोज एकअंजली की टुडि होतीरहे ॥ उन्हीं प्रचेताने यह और भी विशेषविधि बर्णन करी है—यथा= नदीकूलंततो गत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत् । वस्त्रसंशोधयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् ॥ सर्वैस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रथममानसः । पायारांतत आदाय त्रिप्रदेशाद्वा अत्र लीच ॥ द्वादशसविये दद्याद्द्वेष्ये पंचदशस्मृताः । त्रिंशत्तु द्वादशदत्तव्यास्ततः संप्रविशोदशुहस ॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं चकारयेत्=अर्थात्—सबसे पहले द्विजवाह दिये पीछे नदी किनारे जाकर यथोचित शौच करिके पहिले कपड़े धोवें तिस पीछे स्नान करें ० फिर धोती सहित स्नान किये हुये पवित्र और मनको सावधान किये उसीजधे से एक पत्थर लेके एक टिकाने जलके किनारे धरें उसको प्रेत मानिके जो ब्राह्मण प्रेतही तो दश १० अंजली छोड़ें सबी प्रेतको वारह १२ अंजली दें वैश्यप्रेत को पंद्रह १५ देनी कहीं शूद्रप्रेतको तीस ३० अंजली देनी चाहिये तिसपीछे घरकी जायें फिर दुबारा स्नान करना चाहिये और घरका शौच भी लीपा पोती करावें ॥ ० ॥ ऊपर मूल प्रलोकके उत्तरार्द्धमें योगीश्वरने जो अपवाद कहा तिसके मध्ये यहां और भी विशेष-

ता निराय करते हैं कि ब्रह्मचारी यद्यपि सजाती सरोधीहों तौभी अपने ब्रह्मचर्य के समावर्तन कर्मकी अवधि तक जलदान आदि कुछ न करें किंतु ब्रह्मचर्य से निपटारा हुये पीछे सूतक मानिके जलदान आदि शुद्धक्रिया उन्हीं सर्पाण्डोंकी फिर करें जो जो ब्रह्मचर्यके भीतर मरगये थे . रोमेही पतित जो द्विजातियोंके कर्माधिकारसे गिर चुके अर्थात् जातिपातसे बाहरहों वेभी जलदान आदि अशौचकर्म नकरें परंतु जब कभी प्रायश्चित्त आदि प्रकारोंसे जे कोई जाति पाति में मिलाये जाय तौ पहिले सरें हुओं को फिर पीछे जलदान आदि करें और सूतक माने यह सूतक सिर्फ तीन दिन होताहै—यथाह मनुः—आदिष्टीनोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्तेतूदकं क्त्वात्रिरात्रमशुचिर्भवेत् = अर्थात्—आदिष्टी नाम ब्रह्मचारी का और उसका भी कि जो जातिसे पतितहोके किसी प्रायश्चित्त आदि प्रयोगमें लगाहो . क्योंकि आदिष्टी वह कहाता है जिसको कुछ आदेश कियागयाहो जैसा ब्रह्मचारी को आदेश किया जाताहै कि अपोशान कर्मकरों दिन में मत सोना इत्यादि व्रतके नियम और पतित को आदेश किया जाताहै कि अशुच प्रायश्चित्त करो—इसव्याख्याके अनुसार मनु कहते हैं किदोनों आदिष्टी जलदानको न करें जबतक उनके व्रत समाप्तहों किंतु समाप्त होजाने बाद जलदान करके तीनरात्रि सूतकीवने ॥ इसी प्रकार निपट नपुंसक आदि भी जलदान के अधिकारी नहीं हैं = यथाहृदमनुः—स्त्रीवाद्यानोदकं कुर्याः स्तेनात्रात्याविधर्मिणाः गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योयितः = अर्थात्—स्त्रीव्रादि और स्तेनचोर और व्रात्य संस्कार विहीन और विधर्मि जो पराये धर्मका आय-य लेकर धर्म हुयेहों . एवं गर्भ गिराने वाली और भर्तृके प्राण हरने वाली या उस से परा झेह राखने वाली और मद्यपान करनेवाली स्त्रियाँ भी जलदान आदि न करें . स्त्रीव्रतके साथ जो आदि शब्दकहा तिमसे कृष्टी कलंकी आदि औरभी समझने ॥ इस अपवाद में जो जो अनधिकारी कहें तिनमें एक ब्रह्मचारी को अपेसा अपवाद का कुछ प्रति प्रसव है सोभी आगे पंद्रहवें मूल श्लोक और उसीकी अचिकोक्ति में देखी क्योंकि उसकी देखे बिना व्यवस्था में असिद्धि खड़ीरहेगी ॥ ५ ॥

(अकर्मपानश्रुतकाः)

पापव्यनाश्रिता स्तेनाभर्तृपुत्र्य कामगादिकाः।सुराप्यश्चैव गिन्योनाशौचोदकभाजनाः६ ॥

अत्र राधः—पाखंडी अनाश्रित स्तेन • भर्तृश्री कामगा आदि स्त्रियोंभी तथा सुरापी आत्मत्यागिनी भी आशौच तथा उदकपात्र नहीं हैं ॥ ६ ॥

अभिप्रायः—नरकपाल आदि (वेदवाह्य) चिह्नों को धारणा करतेहुये जे कोइ पुरुष उदर पूरणावृत्तिलेते हैं सो पाखण्डी कहाते हैं. अनाश्रित जो किसी आयम को सहारे न हों. स्तेन जो सोना आदि उत्तम द्रव्य चुरावें या अपहार करें. भर्तृघ्नी स्त्रियाँ कि जिन्होंने पतिको वियदेकर या किसीप्रकार माराहो. कामरा जो कुजरा कहाती हैं. इनको आदि लेकर औरभी समझनी जो गर्भ गिराती या गिरवाती हों या ब्राह्मरा का या बालकों का बध करतीहों इत्यादि. सुरापी जो कोइसा मद्यपीतो हैं अर्थात् जिस मद्यका पीना जिसजाति को नियिद्ध हो उसके पीनेवाली सुरापो उदरती है अन्यथा नहीं. आत्म त्यागिनी जिसने अपने आत्मा को जलमें डुबाया वा अग्निमें गिराया वा विय भक्षरायादिप्रकारोंसे या फाँसीसेत्यागिदिशाहो (सुरापो आदि जो स्त्रियाँ कहीं उस प्रकारके पुरुषभी समझिलेना) ये सभी मरने पीछे सूतक या जलदान के भागी नहींहैं अर्थात् इनके मरनेमें सपिंड लोग सूतक न मानें और जलदान आदिकर्मभी न करें = इन्हीं दो कर्मोंका नियेधकरनेसे यह तात्पर्यभी स्वतः सिद्ध होजाता है कि अग्निदाह मात्र यथा संभव इनको भी कराय देना चाहिये ॥ इसका मुख्यतात्पर्य आगे दूरजाके इक्कीस सामूलप्रलोक और उसीकीअधिकोक्तिमेंदेखनाई॥

६ अधिकोक्तिः—अभिप्राय रूपी पाठमें जिन पापों के प्रभाव से ऊर्ध्व देहिक क्रिया का प्रतिषेध किया सोभी इच्छा पूर्व या बुद्धिपूर्व पाप करनेवालोंका नियम समुझना क्योंकि अगिले वचन का यही तात्पर्य है = यथाह गौतमः = प्रायोश्नाशकगस्त्राग्निवियोदकोद्वंवनप्रपतनेश्चेच्छताम = अर्थात्—प्रायो नाम महा प्रस्थान किंतु मरजाना इच्छतां इच्छा करते हुयोंका भी (उदकदान आदिमें प्रतिषेधजानो) किंच प्रकारों से इच्छा सहित मरजाने वाले अनाशक लंघनसे. गस्त्रोंसे. अग्निसे. विय भक्षरासे. उद्वस्वन गालफंदा लगानेसे. प्रपतन पर्वत आदि ऊचे चटिके गिर परने से ॥

तात्पर्यः इच्छासे मरजाना इस कथन का यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि जो विना इच्छाकिये अग्निविय आदिमें धोखासे मरगए हों तिनका जलदान आदि कर्म करना चाहिये क्योंकि प्रसाद गफजत आदिसे उस भाँतिको अकाल मृत्यु होजाने से सूतक पुरुष दोषी नहीं था = तथाह अगिरा = अय कश्चित्प्रसादेन म्रियेतान्युदकादिभिः तस्याशौर्वविधातव्य कर्त्तव्याचोदकक्रिया = अर्थात्—यदि कोइ प्रसाद नाम धोखे मेही अग्नि जल आदि के द्वारा मरजाय तिसका सूतक मानना और जलदान आदि क्रिया भी करना चाहिये ॥ ० ॥ और भी बिरली भाँति की अकालमृत्यु होनेमें क्रिया कर्मका प्रतिषेध किया गया है = यथा = चांडालादुदकात्सर्पाह्राह्मणाद्दुतादपि

दंष्ट्रभ्यप्रचपशुभ्यप्रच सरतांपापकर्मणाम् ॥ उदकांपिंडदानंचप्रेतेभ्योयत्प्रदीयते
 नोपतिथितित्तसर्वं सन्तरिक्षेविनश्यति = अर्थात्-पापकर्मा पुरुषांका मरना जो चां-
 डाल को हायसे या जलसे या सर्पसे या ब्राह्मणके हायसे या वैद्युत विजली गि-
 रनेसे या दाढ़वाले सिंह बराह आदिसे या पशुओंसे हो तो जलदान और पिंडदान
 जो इन प्रतीकों को दीजिये सो सब अंतरिक्षही में विनाश होजाता किंतु पापों के प्र-
 भावसे उनके पास तक नहीं पहुँचने पाता तिससे करना व्यर्थ है ॥ इस प्रकार की
 मृत्युभी इच्छा पूर्वहुइ हो तो कर्मके अधिकारी नहीं समझने क्योंकि गौतम ने जो
 अपने वचन में इच्छा जाह्न कीथी सो इन वचनोंमें पापकर्म के विशेषरूपसे इच्छा
 सिद्ध होतीहै इसपर ये दृष्टांत हैं कि जो अपने दर्पसे कोपयुक्त होकर चांडाल आदि-
 कोंको मारने गया जलजीवों को मारनेगया या भयानक पुवाहके देखते हुये तैरने
 गया इत्यादि सबतरह पापकर्मकी इच्छादर्शिरी यदि उन्हींकीहायसे यह आपमारा
 गया तो अपने मारेजानेकी इच्छा उसने जानिबुझिकेकरी यह तात्पर्यहै इसीलिये
 उसके पिंडदानका नियेष (विधिका अतिक्रम करनेके निमित्तसे)कियागया क्योंकि
 (सर्वत एवात्मानंगोपायेदिति)यह श्रुतिजो प्रसिद्धहै कि सबधोरसेही आत्माकी रक्षा
 कियेरहै सो यहविधि उसने न मानी ॥ पापकर्मके विशेषरूप से यह दूसरा तात्पर्यहै
 कि जिसने पुरायकर्मके हेतुसे उन्हींप्रकारोंमें अपने प्रारादेशदिये हों तिसका क्रिया
 कर्मकरना चाहिये यहाँ पुरायकर्मका दृष्टांतजैसेकिसी डूबतेहुयेको उभारनेके निमित्त
 गोतालगाया अथपि उसकेप्राणा वचादिये परन्तु आपडूबिगया तो यह पुरायकर्मसे
 जल के द्वारा मृत्युहुइ पापकर्मसे नहीं इसीप्रकार सनमें दृष्टांत समुझिलेने जैसेसाँपने
 घोखेमें काटिखाया तो सरजानेसे क्रियाकर्म करना चाहिये यदि साँपको पकड़ते
 या मारते पालते काटाजाय तो यहपापकर्मके हेतुसे क्रियाकर्मका भागीनहीं इत्या-
 दि॥ ० ॥ यह जो सूतक न मानना कदा सो दसदिन आदिनियमोंका प्रतियेव कि प्राहै
 अर्थात् थोड़े कालतक इनका भी सूतक मानाजाताहै सो सब सद्यःशौचका नियम
 आगे इसीसने मूलप्रलोकमें योगीश्वर आप बरान करेगे = जिनका जलदान और
 सूतक नियेष क्रिया तिनको अग्निदाह का भी प्रतियेव करते हैं = यथाहयमः =
 नाशोचनोदकंनान्युनदाहाद्यंतकर्मच ब्रह्मदंडहृतानांचनक्रुयात्कटवारराम् = अर्थात्-
 ब्रह्मदंड कहिये ब्राह्मणकाशाप तिसने मरेहुचों तथा ओं भी पूर्वोक्त पापियों
 का न सूतक न जलदानहै न आंसू डालिके रोनाहै न दाहआदि अंतकर्म हैं न उनका
 कटवारणा किन्तु यिकती रथी विमान आदि कवेपर धारणाकरै ॥ परंतु (आदितान्नि

अग्निभिर्दहति यज्ञपात्रैश्च) यह श्रुति जो प्रसिद्ध है कि अग्निहोत्री को अग्निथोंसे और यज्ञके पात्रोंसे जलातेहैं सो इस प्रसिद्धि से यह न समझिलेना कि युतिसे प्रतिपादन हुई अग्नि तथा यज्ञपात्रोंकी आज्ञालोप होती है तिससे अनन्तरोक्त दाहका नियेध जो स्मृतियोंका धर्म है सो ब्रह्मदंड से मरेहुये अग्निहोत्रियोंपर नहीं आरूढ होताहै क्योंकि अग्निहोत्री पर भी वहीधर्म आरूढ होताहै इस हेतुसे कि अन्यस्मृती में चांडालआदिके हाथमरे अग्निहोत्रीके अग्नि तथा यज्ञके पात्रोंकाभी विधान कहाहै = यथा = वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवासस्थं चतुस्रयथे पात्राणि तु वहेदग्नी यजमाने वृथा मृते = अर्थात् — यजमान कहिये अग्निहोत्री यदि वृथा मरजाय किन्तु ब्राह्मणके शापसे या चांडाल आदि के हाथसे मरे तब उसका वितान लेकर जलप्रवाह में फेंके तथा आवासस्थ नामक अग्नि जो उसके वितान वा निवास में स्थापन हुईहो सो लेकर चौंराहे में छोड़िदे और यज्ञके पात्र लेकर अग्नि में जलाय देवै = इसी प्रकार उसके मरे शरीर काभी नियम कहाहै = यथा = आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा कि या ते यामपितथा रांगातो ये संस्थापनहितम = अर्थात् — अग्निहोत्री भी यदि आत्मघातीहो या पतित होजाय तिनका क्रिया कर्मदाह आदि नहींहो किन्तु उनकाभी रांगा के प्रवाह में स्थापन करना श्रेय है कि जैसा औरों का = इन वचनों के प्रमाण से अग्निहोत्री और अग्निहोत्री सभीके दाह आदि कर्मों का प्रतिषेध ऊपर कियाया यह समझिलेना ॥ ० ॥ तिसपर भी यदि कोई अपने मुर्दा के स्नेह आदि आग्रह से कदाचित् प्रतिषेध का अतिक्रम करे किन्तु नियेध को न मानकर दाह आदि कुछ उपकार करे तब उसको उसी अतिक्रम का प्रायश्चित्त करना चाहिये = तथा च यचनं = हृत्वाग्निमुदकं चान्नांस्पर्शं दबहनं कथाम रज्जुच्छेदायु पातंच तप्तकच्छं शाशुद्धति = अर्थात् — अग्निदाह देकर या जलांजली देकर या उसके साथ स्नान करिके या उस मुर्देका स्पर्श करिके या कंधा देकर या उसकी कथा कहिकर या रथीकी रस्सीकाटकर या आँसू बहायकर तप्तकच्छ नामक प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होताहै अर्थात् कोईसी शकह बात करने में प्रायश्चित्त लगाता है परंतु उसी दशा में कि जिसने जानि बुझि के ऐसा कियाहो = किन्तु = जिसने विनाजाने धोखेसे ऐसा किया हो तिसके लिये दूसरा प्रायश्चित्त है = यथाह संवर्तः = यथा मन्यतम प्रेतं यो वहेत वहेत वा कथेदकक्रियां कृत्वा कच्छं सांतपनं चरेत् = अर्थात् — इन पूर्वोक्त पापी प्रेतों में यदि किसीको जो कोई कंधे लावे या दाह देवे या कथेदक क्रिया करके कच्छसान्तपन प्रायश्चित्त करे तब शुद्धहोय = परन्तु = जिसने अनन्तरोक्तकाम न किये हो केवल

वंधुजनो सहित भोजनकरै = परंतु = जो सर्पकाटेसे मराहो तिसको लिये यह अश्रोक्त
 विशेषता समुभंजी कि-जबताई संवत्सर पूराहोय तत्रतक पुरारोक्त विधिसे प्रत्येक
 पंचमीको नागपूजा करके वर्ष पूरा होजाने बाद सोनेका बनाहोआ सर्प देवे तथा सा
 सात राजदान करै तिस पीछे सब ऊर्ध्व देहिक कर्मकरै ॥ ० ॥ नारायणावलि का अ-
 नुक्रम जो ऊपर लिखचुको तिसका स्वरूप वैष्णवपुरारा में कहाहै = यथा = एका
 दशीसमासाद्यशुक्लपक्षस्यवैतिथिम् विष्णोसमर्चयेद्देवं यमदेवस्वतंतथा दशपिंडान्धृ-
 ताभ्यक्तान्दर्भेद्युमधुसंयुताश्च तिलमित्राप्रदद्याद्द्वै संयतोदक्षिणामुखः विष्णोबुद्धौसमा-
 साद्यनद्यंभीसततःक्षिपेत् नामगोत्रग्रहंतत्र पुष्पैरभ्यर्चनंतथा धूपदोषप्रदानंचभक्ष्यंभो-
 ज्यंतथापरम निमंत्रयेत्तत्रिषान्धैपंचसप्तवापिवा विद्यातपःसमृद्धान्वैकुलोत्पन्नांसमा-
 हितान् अपरैहनिस्तंप्राप्तै मध्याह्नै समुपोयितःविष्णोरभ्यर्चनं कृत्वाविप्रान्स्तानुपवेश-
 येत् उदङ्मुखवानुयाज्येष्टीपल्लरूपमनुस्मरन् मनोनिवेश्यविष्णोवैसर्वकुर्यादतंद्रितः
 आवाहनादियत्प्रोक्तं देवपूर्वतदाचरेत् तन्नात्रजास्वाततोविप्रान्त्रत्तिष्ठेत्पृथ्वाययाविधि-
 हविष्यच्यंजनेनैवतिलादिस्निहितेनच पंचपिराडान्प्रदद्याच्चदेवंरूपमनुस्मरन् प्रथमंवि-
 ष्णोवेदद्याद्ब्रह्मणोर्चाशवायच यमायसानुचारायचतुर्थीपिंडमुत्सृजेत् सृतंसंकीर्त्यमन-
 सागोत्रपूर्वसतःपरम विष्णोर्नामिगृहीत्वैवंपंचमंपूर्ववत्क्षिपेत् विप्रानाचम्यविधिवद्
 क्षिणाभिःसमर्चयेत् गवाचस्वेराभूम्याचप्रेतंतमनास्मरन् ततस्तिलांभोविप्रान्स्तुहस्ते
 दर्भसमन्वितैः क्षिपेयुर्गोत्रपूर्वतुनामबुद्धौनिवेश्यच हविर्गंधतिलांभस्तुतस्मैदद्युःसमाहि-
 ताःमिवभृत्यजनैःसाहंपश्चाद्भुंजीतवाग्यतः सर्वविष्णोमतेस्थित्वायोदद्यादात्मघातिनेस
 मुद्गरतितक्षिप्रनावकार्याविचारणा-अर्थात्-शुक्लपक्षकी एकादशी पायकर विष्णु
 देवका पूजनकरै तथा यमराजको और देवस्वतको पूजे फिर दशपिंड धीके सने सहत
 तिलमिलेहुये कुशाओंके ऊपर विष्णुको निमित्त दानकरै दक्षिणा मुख वैदिके विष्णु
 को निज बुद्धिमें समझे हुये फिर सर्व कर्म समाप्त होनेपर नदीके जलमें फेंकि आवे-
 तहां विष्णुको दशपिराड देते हुये प्रेतकानाम गोत्रलेले कर पुष्पोंसे अर्चन भी पिंडों
 पर करते हुये धूपदोष देवे और भक्ष्यभोज्य आदि और भी पदार्थ चढावे तिसपीछे
 रात्रि समश्यांच या सात या नौ ब्राह्मणों को निमंत्रणा भेजे जो विद्या तपस्या से
 संयुक्त अच्छे कुलकेहो तिनको और सावधान होकर भोजन में आसकते हों तिनको
 फिर कर्ता पुरुष आप ब्रती रहिकर दूसरा दिवस होनेपर मध्याह्न समय विष्णुका
 पूजन करके नीते हुये ब्राह्मणों को उत्तर मुख बैठावे और जैसा अघिक उक्तमहो
 उममें अधिक प्रेत पितर का रूप समझे और अपना मन विष्णुमें लगायकर निरा-

लक्षी होतासर्वकर्म करै आवाहन आदिजो कर्म करना कहासो सब देव शब्द पर्वक
 साधै • फिर भोजन से तृप्तहुये जानिके ब्राह्मणों से यह वृत्तै कि आप अच्छे तृप्त
 हुये जो तृप्ति प्रीय रही समुक्तै तौ उसको भी- पूर्याकरै • फिर खीर व्यंजन माघमें तिल
 सहितआदि मिलेहुयेसे पाँचपिण्ड बनावै सो देवहीका रूप स्मरणा करतेहुये पहिला
 पिण्ड विष्णुके निमित्त देवै दूसरा ब्रह्माको तीसरा शिवके लिये चौथा अनुचरों
 सहित यमके लिये समर्पणा करै फिर पाँचमा पिण्ड हाथमेंलेते अपने मनमें प्रेतका
 नामगोत्र याद करके और विष्णुका नाम उचारणा करके पर्वरीतिसे यह पिण्ड भी
 छोड़ै तिस पीछे ब्राह्मणोंको विधिवत् आचमन कराय के अनेक दक्षिणाओं से
 समर्चन करै पर उनमें एक सबसे बड़ेबड़े उत्तम विप्रको सोना चांदीसे पूजे और गरु
 तथा बस्त्र और पृथ्वीसे भी संतुष्ट करै प्रेतका नामलेताहुआ • तिसपीछे वै ब्राह्मण भी
 तिल जल कृपा हाथोंमें लेकर प्रेतका गोत्रनाम कहिकर तर्पणा करै अर्थात् सावधान
 चित्तसे प्रेतके निमित्त में इविय गन्ध तिल जल समर्पणा करै • तिसपीछे कर्त्तापुरुष
 भी अपने मिव भृत्य कृतस्त्री जनों सहित भोजनकरै बारागीको जीतेहुये किन्तु मुखसे
 कोई क्रूर वचन न काढ़ै • इसप्रकारसे जो कोई विष्णुके मतमें स्थितहोकर जिसकिसी
 आत्म घातीको देवै वह तत्कालही उसका उद्धार करेता है इसमें कुछ विचारकरना
 आवश्यक नहीं है ॥ ० ॥ सर्पकाटे प्रेतके निमित्त सोनेका नाग बनाकर देना सुमंतुने
 भविष्यत्पुराणा में कहा है =यथा=सुवर्गाभारनिष्पन्नं नागं हत्वा तथैव वाच । व्यासाय द
 त्वा विधिवत्पितुरानृगयमानुयात् =अर्थात्-एकभार सोने से बना नाग विधि से दान
 करके तथा गोदान भी व्यास विप्रको देकर पिता के श्रृणासे उद्धार होवै =इसव्यवस्था
 का पकाहेटकाहिकर इक्षीसमा मूल प्रलोक अधिकोक्ति सहित देखना ॥६॥ इसभाँति
 उदकदान आदिविधि और उसका अपवादभी जतायाअब इसके आगे क्या करना चा-
 हिये सो लिखते हैं ६ ॥

(श्लोकशान्तिनियमाः)

कतोदकान्समुत्तीर्णान्मुदुशाङ्गुलसंस्थितान् । स्नातानपवदेयस्तां नितिहासे पुरातनैः ७ ॥

अर्थः—उदकदान किये और स्नानसे निवृत्तहुये दंभुओं मृदु गाङ्गुल नवीन जमी
 घासके अंकुर सहित भूमिपर बैठे विश्रामलेते हुयोंको शोकमें डूबे देखे बड़ेबड़े बुद्धि-
 मान् पुरुष अपवाद करै अर्थात् पुराने इतिहासोंको सुनातेहुये रानापीटना नियंत्रण कर
 के श्लोकशान्तिकरै • कि संसार में सदासे यहीरीति चलीआतीहै कोई अमरनहीं ॥७॥
 यही वार्ता अगले चारश्लोकों से बर्णन करैगे ॥

आंसूडाले या मुर्देको छुआहो तिसका प्रायश्चित्त छोटासा जुदा हे= यथा=तच्छ्र
 केवलस्पर्शमनुवापातितं यदि पूर्वोक्तानामकारीचे देकारत्रसंभोजनम्=अर्थात्-नियिह
 मुर्दा केवल स्पर्श क्रिया या यदि उसकोलिये रोयाहो और वह पूर्वोक्त कामों का
 करनेवाला ठहरे तो एक रात्रि निराहार व्रतकरे=सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसका
 हे कि जो कठिन प्रायश्चित्तोंके करनेमें अशक्तहो=औरभी अशक्तों का प्रायश्चित्त
 आगे कहिते हैं=यथाह सुमन्तुः=बंधनच्छेदनेवामांसंभेद्ययाहारस्त्रियवरांच=अर्थात्-
 मुर्देकी लपेटी रस्सीका बन्धन कालने में एक सहीनाभर भिक्षामाँगि खातारहै और
 त्रियवराभी करे जिसके लक्ष्मा आगेदूर जाके बर्णनहोगे=ऐसेहीर्यादि और स्मृति-
 योंके वचन कहीं इसीवार्ताके संबंधी मिलें तो उनकीभी व्यवस्था कल्पित कालनी
 चाहिये॥ ० ॥ छठसूत्र प्रलोकसे लेकर यहाँतक जो जो श्रुतक्रियाकरने योग्य नहीं
 ठहरे तिनका धोडा अपवाद भी कहिना श्रेयसदाहै कि अमुकामुक मुर्दे छोडके वह
 नियम समुभनना=इसीलिये पूर्वोक्तदाहकर्म आदिका नियेव उनके लिये न समुभनना
 जो अपने प्राणा त्यागिदें किन्तु उनको स्मृतियों से आज्ञा पाईजातीहै=तथाचवचनं =
 रुद्धःशौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभियक्त्तिक्रियः । आत्मानंधातयेद्यस्तु शृंगर्यग्न्यनशना
 स्त्रुभिः ॥ तस्यात्रात्रसाशौचं द्वितीयेत्वस्थिसंचयः । तृतीयेतूदकं कृत्वा चतुर्थेयाहसाच
 रेव=अर्थात्-जो अति बडाहोकर नित्यशौच क्रिया न कर सकने से या अति रोगी
 होकर असाध्य रोगहोने से वैद्य से निपट कोरा उत्तर पायाहो ऐसा पुरुष यदि अपने
 शरीरको बिनाशकरावे सींगवालोंसे या अग्नि से या लंघनसे या जलसे तो उसका
 तीन रात्रिभर अशौच सूतक भी होना चाहिये तथा दूसरेदिन अस्थि संचय क्रिया फिर
 तीसरे दिन शुद्धज्ञान आदि जलदान करके चौथेदिन याहकरे=इस वचनमें देह का
 बिनाशकरना चारप्रकारोंसे कहागया तो इन्हीं चार प्रकारोंसे शास्त्रकी आज्ञासिद्ध
 होतीहै=अन्यथा जो औरही किरी मार्गसे निज देहका बंधकरे तिसके लिये पूर्वोक्त
 सभी नियेव बाक्य समुभलने परन्तु यह अपेक्षा श्रेय रही कि फिर उनके लिये क्या
 करना चाहिये जो उनकी भी सुगति होजाय=तहां रुद्ध वाजश्लक्क्य और छागालेय
 मुनि दोनों का एकही वचन है सा देखो=यथाहतुः=नारायणात्रालःकार्यो लोकागर्हाम्
 यान्नरेःतयातेयांभवेच्छौचं नान्यथेत्यत्रवीद्यम.तस्मात्तेभ्योपिदातःयसन्नमेवमुदक्षिणां=
 अर्थात्-दोनो महात्मा कहितेहैं कि सासाद यमराजका यह कथनहै समुप्ययोंकोलोक
 निन्दाके भयहेतुमेउनकानारायणात्रालि विधानकरना चाहिये तो फिरउपकेसायउनका

भी सूतक माना जाय किन्तु उसीके संबंधसे उनको भी दक्षिणासहित अन्नदेना चाहिये अन्यथा नहीं—एवं—व्यासजीने भी यही दृढ किया है—यथा—नारायणां सुविश्रय शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा—अर्थात्—नारायणके नामसे उद्देश करिके या शिवको उद्देश करिके जो कुछ किया और दिया जाता है वही कर्म उस प्रेतकी शुद्धिकारक होता है यह अन्यथा न समुक्तना—नारायणवलि—कारण—जैसा ऊपर कह चुके उसके अनुसार नारायणवलि कर्म जो है सो ईश्वरकी शुद्धिकरनेके द्वारा श्राद्ध आदि संप्रदानरूपकी योग्यता उत्पन्न करता है इसलिये उनका भी ऊर्ध्वदेहिकसबकर्म करना चाहिये—इसी हेतुसे—यत्त्रिंशत् स्मृतिके मतसे भी श्राद्ध आदि ऊर्ध्वदेहिककर्म करनेकी अनुज्ञा देखि पड़ती है—यथा—गोब्राह्मणाद्विद्वानां च पतितानां तथैव च ऊर्ध्वसंघत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवोर्ध्वदेहिकम्—अर्थात्—गऊसे ब्राह्मण से मारे हुये तथा पतित प्रेतों का ऊर्ध्व देहिक कर्म सब एकवर्थ उपरांत करे—तो इस नियमके अनुसार एक वयके उपरांत ही नारायण वलिकरके सर्व कर्मसाधे ॥ ० ॥ अथ नारायण वलिप्रकारः—

कोईसी एकादशी जो शुक्लपक्ष की हो तिसके रोज, विष्णु और वैवस्वत, यम इन तीनोंको पद्धति की विधिसे पूजिकर इनके मन्मुख सहित घी तिल मिले हुये दस पिंड विष्णुके हृत्प से प्रेतको याद करते हुये प्रेतके नाम गोवका उच्चारण करिके आप दक्षिणा मुख बैठा हुआ दक्षिणा को अग्रभाग से फैले हुये कुशाओं पर उक्त पिंडोंको धरिके गन्धआदिसे पिंडोंको पूजिके पिंडप्रवाहणपर्यंत कर्मसाधनकिये पीछे नदीके प्रवाह में फेंक देंगे (किंतु पत्नी आदि किसी स्त्रीको ये पिंड न दिये जायें) फिर उसी रात को विषम संख्यासे पाँच सात आदि विद्वाच कुलवाचतपयुक्त ब्राह्मणोंको निमंत्रित करके आप निराहार व्रती रहें, दूसरा दिन उदय होनेमें मध्याह्नमस्य विष्णुका आराधन करके सकीर्दित्य पद्धतिके विधानसे निमंत्रित ब्राह्मणोंके चरणाप्रसालन आदि तौहका प्रथम करने पर्यंत कर्म निपटायके फिर (पिंडपितृयज्ञाद्युत्प्लेखनादि अवनेजनपर्यंत) चुपके मौनी भूत कर्म करिके ब्रह्मा विष्णु शिव और परिवार सहित यमराज को भी चारों पिंड जुदे जुदे समर्पण करके फिर नाम गोव सहित प्रेतको स्मरण करके और विष्णुका नाम उच्चारण करिके पाँचमा पिंड देवें—तिस पीछे ब्राह्मणोंको आचमन करने पर अनेक दक्षिणाओं से संतुष्ट करके उनमेंसे अति शुभावच एक ब्राह्मणको अपने प्रेतका स्वरूप समझि स्मरण करते हुये गऊ घरती सोना चाँदी आदि उत्तम द्रव्योंसे अतिशय संतुष्ट करके तिसपीछे पवित्रा धारण किये हाथों से ब्राह्मणोंके द्वारा प्रेतको लिये तिल आदि संयुक्त जलदान तर्पण करायके कर्तापुरुष अपने

अभिप्रायः—यहाँ इसवचनसे यह भी आज्ञा पाईजातीहै कि जब मुर्दाको फूँक नहाय धोयकर लौटें तो बीचमें किसी उत्तम धरती पर बैठ के थोड़ासा विश्राम करें तहाँ रोतेहुयोंको समुझाकर शोकशान्ति करें। इसीलिये मृदुशाहिल अर्थात् नवीन हरीघास जमी धरती पर बैठना कहा ॥ ७ ॥

(शोकशान्त्युपायः)

मानुष्येकदलीस्तंभनिःसारेत्सामार्गणम् । करोत्तियःसंतंमूढोजलबुहुदसान्निभे ८ ॥

पंचधासंभृतःकायोपादिपंचत्वमागतः । कर्मभिःस्वशरीरोत्थैस्तत्कापरिदेवना ९ ॥

गंत्रीयसुमतीनाशमुदधिर्देवतानिच । फेनप्रख्यःकंधनाशंमर्त्यलोकोनपात्यति १० ॥

इलेप्याश्रुवापधेमुंकेप्रतोभुंकेयतोऽवशः । अतोन्नरोदितव्यंहिक्रियाःकार्याःस्वशक्तिः ११ ॥

अर्थः—रोतेहुयोंको इस भाँति समझावें कि मनुष्यका शरीर जैसा केलेकाखंभ भीतरसे थोथाहोता किन्तु कुछसार नहीं होताहै ऐसे निःसार देहमें सारवस्तुका टूंडना जो कोड़े करने लगताहै वह बड़ा मुख है क्योंकि ससस्त संसारही जलफेनके वताशे बुल बुले तुल्यहोता जो सरानाशमें विनाश होसक्ताहै तिससे संसारका स्वरूप खूब समुझके रोना न चाहिये चुपके होजाओ ॥ ८ ॥ मनुष्यकी काया पांच वस्तुओंसे (पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश-इनके संयोगसे) बनीहै सो जब अपने पूर्वजन्महत कर्मोंके वेगसे संयोग जुदाहोकर पंचत्वकी पहुँचगया तो इस दशामें परिदेवना दृशा क्योंकरनी ॥ ९ ॥ मरजाना कोड़े अचंभा नहींहै क्योंकि पाँचोंतत्व समेत पृथ्वी भी एक दिन नाशको पहुँचनेवाली तथा इतने बड़े समुद्रभी नाशमान हैं और देवता जो अन्न कहाते या बूढ़ेनहीं होते सुने हैं अवश्य किसी रोज न होवे अर्थात् महाप्रलय के समय पर डूब भी न रहेगा तो यह मर्त्यलोक जो फेनके समान कहा सो क्योंकर नहीं नाशहोगा तिससे शोकदूर करी ॥ १० ॥ अन्यथा जो नहीं चुपके होतेही तौ भी बड़ा दोषहै कि रोने से कफ आँश आदि जो बान्धव लोरा छोड़ते हैं सो सब प्रेत को विचशहोकर खानापरताहै इससे निपररोनाही न चाहिये किंतु अपनीशक्तिके अनुरूप उसकेक्रियाकर्मकरने चाहिये तिनमेंतत्परहोनाहै उठि खड़ेहोउ घरको चली ॥ ११ ॥

८-११अधिकोक्तिः—केवलमानुष्यशब्दकहा तिससे जरामुज अण्डज आदि६भी जीव समुझने क्योंकि मनुष्य प्रधान होनेसे सबका उपलक्षणाहै उसकेद्वारा सारे संसारही का स्थापत्व प्रकार क्रिया गया इसीहेतु आगे दशामें प्रलोकमें मर्त्यलोक शब्द कहा है ॥ ८ ॥ पूर्व जन्मांतर में जो पुराय अथवा पाप कर्म संचय किये जाते हैं वही कर्म दूसरे जन्म का बीज कहाते हैं क्योंकि उन्हींके भोगने को यह जन्म लेनापरताहै

जो पृथ्वी आदि पांच पदार्थों से बना तिसके पूर्व कर्मोंका भोग परा होजानेसे यदि शरीर छूटिगया तो यह प्रायश्चर्य नहीं है क्योंकि पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व शरीर से भिन्न होकर निज निज महा तत्त्वमें मिलजातेहैं ६ ॥ १० ॥ ११ ॥ शोक शांत किये पीछे जैसे घरको जाना चाहिये सो नीचे बरान करेंगे ॥

(अथगृहगमनप्रकारः)

इतिसंभृत्यगच्छेयुर्द्वहंवाल्पुरःसराः । विदश्यनिम्बपताणिनियताहारिवेश्मनः १२ ॥

आचम्यान्वादित्तिलिङ्गोभंगौरत्सर्पपान । प्रविशेषु.तमालम्पकृत्वाऽभनिपर्वज्ञाने १३ ॥

अर्थः—ऊपर कही रीतिके इतिहासों को. इनके शाइल भूमिसे उठिकर छोटे वालकोंको आगेलेकर घरकोजायँ तहाँ घरकेद्वार आगेसब इकट्ठे सकसनहोकर खड़े हों औरनीबके पत्ते दाँतोसे काटि खूतरि आचमन करें ॥ १२ ॥ आचमन किये पीछे अग्नि आदि तथा जल गोबर पीलीसरसों इनको छुडकर और पत्थरकी सिलापर पैरवरिके धीरे धीरे सावधानीसे घरमें घुसँ ॥ १३ ॥

१२।१३ अधिकोक्तिः—अग्नि आदि जो कड़ा सो उस आदिशब्द से शंखोक्त अन्यवस्तुभी स्पर्श करनी कहीहै—यथाहशंख.—दूर्वाप्रवालमग्निवृषभौवा—अर्थात्—पूर्वाक्तचीजें या दूब सूगा अग्नि वृषभइनको छुडकर सिलापरपैरवरि घरमेंघुसँ अर्थात् जहाँ जिसके जैसीरीति प्रवृत्तहो उन्ही चीजोंको विकल्पसे ससक्तना ॥ १२ । १३ ॥

(उक्तनियमस्यातिदेशः)

प्रवेक्षानादिकंकर्मप्रेतसंस्पर्शादीनामपि । इच्छतांतत्क्षयाच्छुद्धि.परेपांश्वानसंयमात् १४ ॥

अन्तरार्थः—प्रवेशआदि कर्म प्रेतसंस्पर्शियों को भी तत्क्षया शुद्धि चाहनेवालों परजनोंको स्नान प्राणायामसे शुद्धि ॥ १४ ॥

अभिप्रायः—नीब के पत्ते चाबना आदि घरमें घुसना पर्यंतजो कर्म ऊपर निज सिद्धियों के निमित्त करना कड़ा सो गैरोंको भी करना चाहिये जो साथ गयेहों और प्रेतका स्पर्श कियेहो अर्थात् प्रेतके आभयरा उतारना आदि होनेका कोइसा पु-गय अर्थ कियेहो ऐसे असर्पिंड गौर जनों कोभी नीबके पत्ते खुटकना आदि कर्तव्य हैं परंच उनकी अनेक दिन सुतक मानना आवश्यक नहींहै—इसी लिये दूसरेअध्याय में यह कहा है कि परजन जो तत्काल शुद्धहोजाना इच्छा करें तिनका अपने घर जाके स्नान और संयम कहिये प्राणायाम धे दोनों कर्म करने से शुद्धि होजाती है ॥ यद्यपि नीबके पत्ते आदि इस क्रमसे घरमें जाना पर्यंत कहाथा और इस मूलप्रलो-

क में आदि शब्द प्रवेश के साथ जोड़ा गया तो भी यह विपरीत न समझना किंतु का-
व्य की मर्यादा से प्रतिलोम अभिप्राय प्रकट किया है कि घरमें घुसने से लेकर इधर
नीव चाबने तक जो कुछ करना कहा गया तिसका अतिदेश और जनों पर भी समझना
यह लेख सांगलिक है ॥ १४ ॥

१४ अधिकोक्ति-तत्काल शुद्धि होजानेका प्रमाण वाक्य यहाँ लिखते हैं = यथाह
पाराशरः-अनाथं ब्राह्मणं प्रेत्येव हति द्विजातयः परेपदेयज कलमनुपूर्व लभन्ति । नतेया
मशुभं किंचित्पापं वा शुभकर्मणां जलावगाहनात्तेयांस्यः शौचं विधीयते = अर्थात्—
किसी अनाथको या ब्राह्मणशा प्रेतको जेकोई द्विजाती लोग कंधे धरते हैं वे प्रत्येक पा
धरनेमें यज्ञफल पाते हैं-उनको रसेशुभकर्मसे न कुछ अशुभ है न कोई सापाप है-किन्तु-
उनको जलमें गोता लगानेसे ही तत्काल शुद्धि होजाती है ॥ स्नेह आदिसे पराया मुर्दा
लेजाने मध्ये मनुने विशेषता प्रकट करी है-यथा-असपिण्डां द्विजप्रेतं विप्रो निर्हृत्य वंधुवध
विशुद्ध्यति शिरावेणामातुराणां शिखां वधान् यद्यन्नमत्तितेयां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति अतदन्न
न्नमहैव न चेतस्मिदगृहे वसेत् = अर्थात्—इन वचनोंका यह तात्पर्य है कि जोकोई ब्राह्मण
अपने असपिण्ड द्विजाती गैरके प्रेतको प्रीतिभावसे बंधुके ही तुल्य कांधे धरे या सातावे
ठीक सपिण्डोंको ही कांधे धरे और उसके सूतक में अन्न भोजन करे और उसीके
घर निवास करे तिसको भी घर मनुष्योंकी तरह दशदिनका सूतक होकर शुद्धि हो-
ती है या जो मुर्दा लेजानेके सिवाय केवल निवास उसके घर करे किन्तु भोजन से
साथी न हो तिसको तीनराविका सूतक होता है पर जो कोई केवल मुर्दा कांधे धरे
किंतु न उसके घर वसे न अन्न भोजन करे उसको एकही दिनका सूतक होता है-सो
यह नियम केवल अपने अपने वर्णमात्र में समझना—किंतु—अन्यवर्णोंका मुर्दा
कांधे धरनेसे उसीवर्णके समान सूतक इसको भी लगता है—यथाह गौतमः-अवरप्रचेद
राः पूर्ववर्णासु पस्पृशेत् पूर्वो वाऽवरं तत्र तच्छिवोक्तमाशौचं (विप्रस्य शुद्धिर्हराणामस
माशौचं शूद्रस्य तु विप्रान्हराणो दशरात्रमित्येवं शिववदाशौचं कार्यमित्यर्थः = अर्थात्—पि-
छलावर्णों जो पहले वर्णोंको उपस्पर्श करे या पहिलावर्णों पिछलेको तहाँ उस सरेहुये
के वर्णोंको कहा सूतक इसे करना चाहिये (यहाँपर उपस्पर्शका अर्थ मुर्दा डोना समझना)
यह दृष्टांत है कि शूद्र जो ब्राह्मणका मुर्दा लेजाय तो दशदिन सूतकी वने या ब्रा-
ह्मण जो शूद्रका मुर्दा तोवे वह एक महीना तक सूतक माने इसी प्रकार और वर्णोंभी
समुझलें—इसका विशेष निराश्रय आगे सबहरी अधिकोक्तिके अंतमें देखना कि
छद्मवीसवीं अधिकोक्तिभी देखो ॥ १४ ॥

(ब्रह्मचारिणंप्रत्याह)

भाचार्यपिन्धुपाध्यायाश्रित्वापिब्रतव्रती । सकटाब्रचनाभनीपात्रचतैःसहसंयमेत् १५ ॥

अर्थः—आचार्य (जिसके लसरा आचारअध्याय में कहिचुके) पिता साता-उपाध्याय (जिसके लसरा आचार में) इन तीनोंको निहृत्यअपि कौंधेधरिके भी व्रती जो ब्रह्मचारी है सो व्रती बनारहताहै अर्थात् उसकाव्रत नहीं भंग होताहै परंतु सकटात्र जो कहे का सूतकी अन्नहो तिसको नहीं खाय न सूतकी सपिराडी केसाय बसे कोंकि इन बातोंसे ब्रह्मचर्य भंग होताहै ॥ १५ ॥

१५ अधिकोक्तिः—ऊर्ध्वाक्त नियमसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि आचार्य पिता साता उपाध्याय इनचारके उपरालू किसी सपिराड भाड़े आदिकी स्थीमें हाथलगाने से ब्रह्मचारीका व्रत भंग होताहै इसीलिये वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है—यथा=ब्रह्मचारिणाः श्वकर्मिणोव्रताच्चित्तिरन्यत्रमातापितोरिति=अर्थात्—मुर्देका कामकरने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य व्रतसे निवृत्ति होजाती है व्रत नहीं रहता परंतु मात पितासे अन्यत्रका यह नियम है ॥ १५ ॥

(आशौचिनांनित्यनियमाःकर्माधिकारिणश्च)

क्रीतलव्याशनभूमौत्वपेयुस्तेष्टयकृष्टयक् । पिंडयज्ञावृतादेवप्रेतापात्रंदिनत्रयम् १६ ॥

अन्तरार्थः—वे सब धरतीमें जुदे जुदे सोवें क्रीतलव्याशन होकर प्रेतकोलिये तीः) दिनतक पिराडयज्ञकी आवृत्तसे अन्नदेय है ॥ १६ ॥

अभिप्रायः—क्रीतनाम खरीदा हुआ रोज रोज या लव्वनाम जो बिना माँगे अन्नादिक मिलजाय वही सब सूतकी भोजनकरें और वेही सब सपिराड लोगधरती पर जुदेजुदे सोवें और तीनदिन प्रेतको भी अन्नदेतेहैं पिराडयज्ञकी आवृत्त मर्यादा से अर्थात् पिराडपितृ यज्ञकी प्रक्रिया जैसी प्रसिद्ध है कि अपसन्ध दासरा मुख होकर इत्यादि रीतोंसे—परंतुइसवचन में तीनिहीं पिराडदेने सिद्धहुये तिससे अधिकोक्ति में देखो ॥ १६ ॥

१६ अधिकोक्तिः—क्रीत और अथाचित्तलव्वभोजनका नियम कहनेसे यहभाव सिद्ध हुआ कि जो ऐसा न मिले तो निराहार भी रहजाय पर धरमें धरे हुयेको न छुवें छेड़ें—इसी लिये वशिष्ठका अग्रोक्त वचनहै—यथा=गृहान्त्रजित्वाश्रयःप्रस्तरव्यहमन प्रनंतआसीरवक्रीतोत्पन्नेनवाचतेरव=अर्थात्—दाह दिदे पीछे धरोंको जायकार नीचे धरती में प्रस्तर कशासन चराड़े आदि हरामय बिछावने पर सोवें किंतु खाट आदि

ऊचेपर नहीं=इसमें मनुने कुछ और विशेषता कही है=यथा=अक्षर लवणान्नास्यु
 निर्मज्जेयुप्रचतेग्रहम् सांसाशनंचनाप्रनीयुःशयीरंप्रचप्युयकसितो=अर्थात्—ऐसा अन्न
 भोजनकरै जो खार या खारी लवणा से विहीन हो और तीनदिन गोता लगाके स्नान
 करै और सांभका भोजन न करै और सब जुदे जुदे धरतीपर सोवै = गौतम ने भी वि-
 शेष कहा है=यथा=अवःशय्याशयिनोव्रह्मचारिणाःशवकर्मिणाः = अर्थात्—मुर्देका
 कर्म करनेवाले स्वात्म नीशेसोवै तथा व्रह्मचर्यसे रहै । प्रेतको अन्नदेने मध्ये अगिता
 वचन विशेष है=यथाहमरीचिः= प्रेतपिराडंबर्हिर्दद्याहर्भंश्रविवर्जितम् प्रागुदीच्यांच
 रुक्त्वास्नातःप्रयत्मानसः=अर्थात्—घरसे बाहर उदीची दिशा में पहले स्नान करके
 मन सावधान कियेहुये स्त्रीर वनाइके प्रेतको पिराडदेवैकुशा और मंत्रसे विवर्जित=
 कुशा और मंत्र बिना जो देनाकहा सो उस प्रेतको समझना जिसका जनेऊ न हुआ
 हो यह भेद अगिले प्रचेता के वचन से जाना जायगा=यथा=असंस्कृतानांभूमोपिंड
 दद्यात्संस्कृतानांकुशेयु=अर्थात्—संस्कार से रहित प्रेतोंको धरतीपर पिराड देवै सं-
 स्कार होचुकरनेवालों को कुशा दिखाकरदेवै ॥ ० ॥ कर्मकरनेवालीका विशेष नियम
 जो गृह्य परिशिष्ट में लिखा सो अब कहतेहैं=यथा=असगोशःसगोशोवायद्वित्रीयद्विवा
 पुमाव प्रथमेहृनियोदद्यात्सदशाहंसमापयेत्=अर्थात्—चाहै सगोशो वा असगोशो हो
 प्रथमदिन जोकोई पिंडदेवै वही दशदिनका कर्म समाप्तकरै ॥ पिंडोंका द्रव्य नियम
 भोगुनःपुच्छ ऋयिने कहाहै=यथा=शालिनासक्तुभिर्वीपि प्राक्केवाप्यथनिर्वपेत् । प्रथ
 मेऽहृनियद्द्रव्यंतदेवस्याहशाहिकम् ॥ तूप्रागंप्रसेकंपुठपंध्रूपदीपंतथैवच=अर्थात्—
 भातसे या सत्तुओं से अथवा धाकैसेही प्रेत के निर्मित पिंडकोवै परंतु जिस द्रव्यसे
 पहले भोज दियाजाय वही द्रव्य दश दिन तक होय और सौन साधे हुये जल प्रसेक
 फूल धूप दीप भी देवै ॥ धरती या पत्थर पर देनेका नियम विकल्प से समझना=य-
 थाह शंखः=भूसौमाल्यपिंडपानीयमुपलेवादयुः=अर्थात्—फूलमाला पिराड पानी यह
 सब धरती या पत्थर पर देवै ॥ यहाँ पर दद्युः सबको अर्थात् देवै इस बहुवचन से यह
 शंका न करनी चाहिये कि जैसे जलांजली देनी सबको कही थी उसी प्रकार पिंड
 आदि भी सबकोदे दे सकते हैं क्योंकि यह काम केवल पुत्रहीको या किसी एकदाह
 देनेवाले को कर्त्तव्य है अर्थात् पुत्र न होनेमें जो कोई अतिशय निकटका सपिंडहो सो
 करसकता है उसके भी न होने में प्रेत की माता का सपिंड आदि जो निकट समुक्ता
 जाताहो वही करै=इसमें जो आदि शब्द कहा तिसके अधिकारी अगले गौतम के व-
 चन में देखौ=यथाह गौतमः=पुत्राभावेसपिंडा मातृसपिराडाः शिष्यादद्युस्तदभावे

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

२५

ऋत्विगाचार्यो=अर्थात्—पुत्रके अभावमें प्रेतका सर्पिंड पुन उसके भी अभावमें प्रेत
 को माताके सर्पिंड पुन उनके भी अभाव में प्रेत के शिष्य श्रागिर्द देवै उनके भी न
 होनेमें ऋत्विक् वा आचार्य पिंडदेवै ॥ परंतु जहाँ पुत्र अनेकहाँ तहां जेटा पुत्र कर्म
 करै सबनहीं—तथाह मरोचिः=सर्वैरनुमत्तिकृत्वाज्येयेनैवतुयत्कृतम् । द्रव्येराचाविभ
 क्षेनसर्वैरेवकृतंभवेत् = अर्थात्—जुदे जुदे भी सब पुत्रोंसे अनुमति और द्रव्यकी सहाय
 लेकर जो कर्म जेटे पुत्रने किया हो यद्वा अनुमति बिना भी अविर्भाक्त धनसे जेटे ने
 कियाहो सो सबका किया कहाता है ॥ ० ॥ वराभिदसे पिंडोंकी संख्यामें भी नियम
 भेद कहाहै = यथाह ब्रियाः=ब्राह्मरास्यदशापिंडाः सविद्यस्य द्वादशैवेत्येव साशौच
 दिवससंख्यया =अर्थात्—ब्राह्मरा के दशापिंड और सवीके बारह पिराड इसी प्रकार
 जिस वराका जितने दिन सूतकहो उसी संख्यासे पिराडहों अर्थात् जहांतक शुद्धहोने
 का दिवस आवै तबतक जलदान और एक पिराड रोज रोज प्रेतको दियाजाय = यही
 प्रमारा अन्यस्मृतिमें कहाहै = यथा = नवभिर्दिवसेदद्यान्नवपिराडान्प्रमादितः । दश
 संपिराडमुत्सृज्यरात्रिशेषे शुचिर्भवेत् = अर्थात्—यहां केवल ब्राह्मरा वरासे उदाहरण
 दशति हैं इसी तरह अन्य वराओंके शुद्ध होने योग्य अवधि समुझी जायगी कि . नव
 दिनोंसे नौपिराड सावधानी सहित देतारहै फिर दशमा पिराड देकर केवल रात्रि शेष
 रहिते दिन दिनमें शुद्ध होजावै = शुद्ध होजाना यह तात्पर्यहै कि अगले दिन ब्राह्मरा
 निमंत्रणार्थ जो श्राद्ध कियाजायगा उसके योग्य यह शुद्धि समुझी जायगी ॥ योगी-
 चरके मूलश्लोक में केवल तीनदिन तीन पिराड देने कहेगये और यहां अधिकोक्तिमें
 अन्यस्मृतियों से दश बारह आदि पिराड देने सिद्ध हुये तौ इन छोटे बड़े दो भांति के
 नियमोंकी व्यवस्था उसी तरह कल्पित करलेनी चाहिये कि जैसी तीसरी अधिकोक्ति
 के अंतमें जलदान मध्ये लिखचुके अर्थात् जहां प्रेतका उपकार अधिक चाहाजाय
 तहां अधिक पिराडोंका नियम धंगीकार करना या जहां अधिक कर्म करनेका अ-
 वसर आदि न मिलने से कठिनाई समुझी जाय तहां तीनपिराडोंके नियमसे निर्वाह
 करना यह सिद्धांतहै ॥ ० ॥ तथापि जहां यह भांति खड़ीहोय कि यद्यपि शुद्धकर्म
 थोड़े दिनमें कर सकनेका अवकाशहै परंतु पिराड पूरूपूर देनाचाहतेहैं तहां शाता
 तपस्मृति का बचन धंगीकार करना = यथाह शातातपः = आशौचस्यतुहासेपि पि
 राडान्दद्याद्दशैवेत् = अर्थात्—आशौच नाम सूतक चाहें थोड़े दिन माना जाय परंच
 पिराड पूरे दसदेने चाहिये ॥ इसी लिये योगीचरके बचनानुसार तीनदिन सूतक मान
 ने वालोंका निर्वाह पारस्करने दर्शाया है = यथा = प्रथमैदिवसेदद्या स्यपिराडाः

साहितैः । द्वितीये चतुरोदयादस्थिसंचयनंतथा ॥ त्रींस्तुदद्यात्तृतीयेऽह्नि बह्नादिकालये
 तथा = अर्थात्—जो तीनिही दिन सूतक मानै तो सावधानी से पहिले दिवस तीन
 पिपराड देने चाहिये दूसरे दिन चारपिपराड देवै पुनि उसी दिन अस्थि संचय कर्म करै
 फिर तीसरे दिवस तीनपिपराडदेकर पीछे कपड़े धोकर शुद्धहोजावै तो यहभी दसदिन
 के समान कर्म दहरता है = इस अधिकोक्तिमें वर्णान करो व्यवस्था सभी वर्णों की
 तुल्यात्मक साधारण है ॥ १६ ॥

(अथ सिक्वजल वंधनादि विशेषं नित्यकर्मादि विवेकश्च)

जलमेकाहमाकाशेस्याप्यंक्षीरंचमृग्मये । † वैतानौपासनाःकार्याःक्रियाश्चभुतिनोदनात् १७ ॥

अर्थः—आकाशमें एकदिन जलदूध भी मृत्पात्रोंमें जुदा जुदा स्थापन करना चा-
 हिये किंतु छांकेमें धरि के वृषादि पर लटकाना चाहिये । वितान संबंधी उपासना
 क्रियायें भी करनी चाहिये शु तिकी आज्ञासे अर्थात् वितान अग्निमें के विस्तार
 का नाम है जो अग्निहोत्रियोंके वेद विहित मार्गसे स्थापन होती है कि जिनमें सांभ
 सबरे दोनों समय नित्य होम होता रहता है उसकी क्रियायें वैतानौपासना कहाती है
 तिनका त्याग सूतकमें भी नहीं होता क्योंकि शुति वेदकी आज्ञा यही है = इसका
 विशेष व्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ १७ ॥

१७ अधिकोक्तिः—जल और दूध जुदे पात्रोंमें एकदिन जो कहा तिसका कोई
 दिवस ठीक निप्रचय नहीं किया तिससे पहिला दिवस पायागया कि दाहदिये पीछे
 उसी दिन सायंकालको लटकावै = पारस्कारने इस कर्म का निमित्त भी प्रकाश किया
 है = यथा = प्रेतावस्त्राहीत्युदकस्याप्यं पिवचेदमित्सीरं = अर्थात्—अथ प्रेत इसमें
 कान करु इसलिये जल स्थापन हो. यह दुग्ध पान करौ इसलिये दूधका स्थापन ॥० ॥
 फूल बीनना किंतु अस्थिसंचय कर्म करना यद्यपि १६ की अधिकोक्तिमें दूसरेदिन
 कहि चुके हैं तथापि इसके कई भेद हैं सो अगिले संवत्के बचनमें देखी = यथाह सं-
 वर्तः = प्रथमेऽह्निरतीयेवा सप्तमेनवमेतथा । अस्थिसंचयनंकार्यंदिनेतद्दशोवज्रैःसह =
 अर्थात्—पहिले दिवस या तीसरे या सातवें या नववें दिन अस्थिसंचय कराना सो दिन
 में करना और प्रेतके शोचियोंको साथ लेकर करना = इसके सिवाय विरली स्मृति
 में दूसरे दिन काने कहे तथा वैष्णवशास्त्र में चौथे दिनभी करने कहे और गंगा जल
 में छोड़ने कहे हैं—इन सब कहे दिवसोंमें जो जिसको घरकी परिपाटीसे प्रसिद्ध हो सो
 उसी दिन करै यह तात्पर्य है ॥ अंगिराने इस कर्मके साथ देवयाग भी करना कहा है =

=यथा = अस्थिसंचयनेयागो देवानांपरिकीर्तितः । प्रेतीभूतंतमुद्दिश्य यःशुचिर्नकरो
 तिचेत् ॥ देवतानांतुयजनंतंश्रापंत्यथदेवताः । प्रमशानवासिनोदेवाः शवानांपस्कीर्ति
 ताः = अर्थात्-अस्थि संचय कर्मके दिवस देवताओंका याग अर्थात् यज्ञ पूजन क-
 रना कहाहै उसी प्रेतके उद्देश करके जो कोई शुद्ध चित्त होकर देवताओंका यजन
 इसमें नहीं करता उसको अवश्यही देवता श्राप देती हैं (देवता इसमें रागोशादि वा
 इन्द्रादि नहीं समुभन्ते किन्तु) प्रमशानभूमि को रहनेवाले मुर्दाओं की देवता कहातीं
 जो पहिले वहांपर फूंकोगये हों--इसका ग्रही तात्पर्यहै कि फूल बीनते समय पहिले
 प्रमशानके देवता और अपने मुख्य प्रेतके नामसे धूप दीप पुष्प साला दूध और पिंड
 रूप अन्नसे पूजे ॥ ० ॥ अब दशवे दिनका शुद्धकर्म मुंडन आदि की विधि कहते हैं
 =यथाह देवलः = दशमेऽर्हानसंप्राप्ते स्नानंप्रामाद्विभवेत् । तत्रत्याज्यानिवासांसि
 क्लेशप्रमशु नखानिच = अर्थात्-दशवां दिन प्राप्त होने से वस्ती से बाहर जाके शुद्ध
 स्नान किया जाय तहां अशुद्ध वस्त्र त्यागि दिये जायें और बाल दाढी मूछ नख भी
 त्यागि दियेजायें ॥ यह सामान्य भावसे दशवां दिन कहा सो उन सभी दिवसों का
 उदाहरण समुभन्ना जो जिस वराकी नियमसे अन्निक अवधिमें या किसीके परम्परा
 से या किसी आवश्यकता से थोड़ी अवधि में करने का दिन ठहराया जाय =
 सो यह विकल्प अगले स्मृत्यंतर वचन से स्पष्ट होताहै = यथा = द्वितीयेऽर्हनि
 कर्तव्यं क्षुरकर्मप्रयत्नतः । तृतीयेपंचमेवापिसप्तमेवाप्रदानतः = अर्थात्-यहां प्रदान
 शब्दसे आद्यप्रदान जो सकादशाहिक प्रसिद्ध है तिसते भीतर भीतर ये सब दिवस हो
 सकते हैं कि या तो दूसरे दिनही क्षौरकर्मको यत्नसे करै या तीसरे या पांचवें या
 सातवेंदिन जहां जैसा संभव हो ॥ ० ॥ अब उसका निराय कर्तव्य है कि मुंडनकीन
 करावें तिसके लिये यह आपस्तम्ब का वचन देखो = यथा = अनुभाविनांचपरिवापनं
 = अर्थात्—(श्रावदुःखमनुभवंतीत्यनुभाविनःश्रापिंडाः) जो मुर्देका दुःख अतिशय
 मानते हैं वेही सपिण्ड अनुभावी कहाते हैं तिन सबका मुंडन होना चाहिये किन्तु
 मुर्दासे छोटी अवस्था वालोंका पूरा मुंडन कियाजाय यह भी तात्पर्य इसी वचन के
 अर्थसे सिद्ध होताहै कि (अनुपशचाद्भवतीत्यनुभाविनः) जो मृतक से पीछे पैदा
 हुये हों वे अनुभावी कहाते हैं अर्थात् उसते छोटे हों तिनका परिवापन किन्तु पूरा
 मुण्डन = विरले आचार्योंका यह मतहै कि अनुभावी शब्दसे पुनसमभन्ने क्योंकि पूरे
 मुंडन या सर्वभद्रकी जल्दत उन्हींको होतीहै (यहां परिवापन या पूरा मुंडन या सर्व-
 भद्र कहने से दाढी मूछतक मुंडाना सिद्ध होताहै) सर्वभद्र मुंडन अर्थात् सातकर्मों

में होता है=यथाग्रंथांतरवचनं=गंगार्याभास्करक्षेत्रेमातापिचोर्गोमृत्तौ । आधानकाले
 सोमेचवपनेसप्तसमृत्तम्=अर्थात्—गंगातटपर-भास्करक्षेत्र में-माता और पिता केसरने
 में-गुरु के सरने में-आधान काल में अर्थात् अग्नि के स्थापन समय जो अग्निहो-
 वियों का विधान है-सोमतीर्थ में अर्थात् सोमनासतीर्थ या सोमयागरूपी तीर्थमें भी
 इन सात स्थानोंपर सर्वभद्ररूपी वपनहोना कहा है ॥ यहां तक आधेमूल प्रलोकपर
 अधिकोक्ति पूरीहुई उसीका यह चिह्न है ॥ १ ॥ अब उत्तरार्द्धकी अधिकोक्ति लिखते
 हैं क्योंकि पूर्वाद्ध से जो सूतक में अग्नौचित्व कहा तिससे सभीकर्म श्रौत और स्मार्तों
 का करना तबतक नियिद्ध समझागया परन्तु जो बिरले कर्म सूतक में भी कियेजाते
 हैं तिनकी आज्ञा इसमें दर्शावैगे (वैतानोपासनाःकार्याःक्रियाश्रवथुत्तिनोदनात्)वितान
 अग्नियोंका विस्तार कर्म कहाता है तिसमें जो क्रिया हों सो वैताना कहाती हैं-
 दुष्टांत जैसे वैताग्निनाम अग्निसे जो क्रिया वेदोक्त होतीहों या अग्निहोत्रकी अग्नि
 में होतीहों या अभावस पूर्णामासी आंदिके वेदोक्त यज्ञों में अग्निसाध्य क्रिया होती
 हों तिनकी उपासना साधन करने के हेतु से (वैतानोपासनारूपी यह नाम दहरा)
 रोधी सब क्रियायें सूतक में करनी बंदनहीं होती किंतु करना चाहिये क्योंकि थुत्ति
 नोदनात् थु तिकी आज्ञा होने से इनको सूतक नहीं लगता= थु तिकी आज्ञाके यह
 अग्नौक्त उदाहरण हैं = यथा = यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहुयात् = तथा = अहरहःस्वा-
 हाकुर्यात् = अर्थात्—यह थु ति कहती है कि जबतक जीवें अग्निहोत्र में होमकर-
 ताहै = तथा दूसरी यह थु तिहै कि = दिनदिनप्रतिस्वाहा करै = तो इस आज्ञा से
 सूतकमें भी कोई दिन स्वाहासे श्वाली नहीं रहसकता (आज्ञाभावेकेनचिदाकाशादि
 नाथु त्थोपासनहोसोऽपिचोद्यते) अर्थात् होम योयथ अन्नको अभाव में किसी एकका-
 प्त आदि द्रव्यसेभी थु त्थोपासन होम कहाताहै ॥ अब उस बातपर ध्यान देना चाहि-
 ये कि योगीश्वर के मूलप्रलोक में थु तिकी आज्ञावाली क्रियायें करनी कहीं तिससे
 श्रौतकर्म मात्र सब सूतकमें होंगे किंतु स्मार्त कर्मोंकी दान आदि क्रियाओंकाअनुया-
 न करना नियिद्ध दहरा = इसी बातपर वैशाघ्रपाद का अग्नौक्त वचन है = यथा =
 स्मार्तकर्मपरित्यागोराहोरन्यत्रसूतको । श्रौतेकर्मरिगतत्कालंज्ञातःशुद्धिसवाधुनयात्=
 अर्थात्—राहुसे अन्यत्र सूतक में स्मार्त कर्मों का परित्यागहै परंच श्रौत कर्मकरने म-
 ध्ये तत्कालही ज्ञान करके शुद्धहोजाताहै ॥ ० ॥ सूतक में श्रौतकर्मों का करना कहा
 सोभी नित्य और नैमित्तिक अभिप्रायसे कहागया है अर्थात् सामान्य सब कर्मोंका
 नहीं यह ध्वन्यर्थ अगले वचन से संसिद्धहोगा = यथाहर्षोदीनसिः = नित्यानित्विनि-

वर्तमानवैतानवर्ज्यशालास्नौचैके = अर्थात्—सूतकर्म नित्यकर्म श्रोतस्मार्तं सर्वकृत्वा
 आय परंच नैस्तिक श्रोत कर्मों में वैतानकर्म नित्य होते हैं जो तीन प्रकार की अग्नि से
 साधनहो तिनको छोड़कर यह नियम मनुष्यता और रक्तोंके विचारसे वहकर्मभीकि
 जो शालाग्नि में अर्थात् शृद्धाग्नि में आवश्यक नित्य होतेहोते होते रहेंगे क्योंकि उ-
 नके लिये मृतक नहींहैं = और = जोजो काम्य कर्महैं कि कामना से उत्पन्न किये
 जातेहोतिनको सूतक लगताहै इस हेतुसे उनका करना नियिद्धहै = इसी अभिप्रायसे
 मनुष्ये यह कराहै कि=प्रत्यहेन्नाग्निबुद्धियाः = अग्निमें जो क्रिया साधन होती हैं
 तिनको नहीं रोके- किंतु-जो विना अग्निके पंचमहा यज्ञ आदिकर्म नित्य होते हैं
 तिनको निवृत्ति करे=संवर्तने इसका विशेषनिराण्य कियाहै=यथा = होमंतत्रप्रकृर्वी
 तशुष्काच्चेनफलेनवा पंचयज्ञविधानंतुनृकुर्यान्मृत्युजन्मनोः=अर्थात्-तहांसूतकर्म अप-
 पना नित्य होम जो आवश्यक है सो करे किंतु सूखे अन्नसे करे या फलसे करे (सूखा
 अन्न पिसेहुये चावल आदि या सूखेफल मेवा आदिसे) परंतुपंचयज्ञोंका विधान जो
 है सो नहींकरे मृत्युसूतक और जन्मसूतक इनदोनोंमें ॥ यद्यपि अग्नि में होनेवालेक-
 र्मोंकी आज्ञा ऊपर लिखी गईथी और यहां पंचयज्ञों में वैश्वदेव कर्म जो अग्नि से
 होता तिसका नियेध पंचयज्ञों के नियेध से होगया कि अग्निसाध्य होनेपरभी वै-
 श्वदेव न करना चाहिये-फिर-इसको जुदे वचन से भी संवर्तने नियिद्ध किया है=य-
 था=विप्रोदशाद्दमासीत्तवैश्वदेववर्जितः=अर्थात्-ब्राह्मणा दशादिन वैश्वदेव कर्म से
 वर्जितहोके रहे ॥ ० ॥ संध्या वंदनभी नित्य कर्महै तिसका निराण्य कर्तव्यहै (सूत
 केकर्मशांत्यागःसंध्यादीनांविधीयते) अर्थात् सूतक में संध्या आदि कर्मोंका त्याग
 रखना कहाहै-यद्यपि इसी वचन से संध्यावंदन का नियेध पाया गया तथापि सूर्य
 नारायणा को जलांजली देना आदि स्वरूपकर्म करना पैदीनसिने दशयुगहै=यथा=सू-
 तकेसावित्र्याचांजलिं प्रक्षिप्यप्रदक्षिणां कृत्वासूर्यध्यायन्नमस्कुर्यात्=अर्थात्—सूत-
 कर्म सूर्यको अंजली भी गायत्री पांडिकर फेंके और प्रदक्षिणाकारके सूर्यका ध्यान
 करते हुये नमस्कार करे ॥ ० ॥ यद्यपि योगीश्वर के मूलप्रलोक में (वैतानोपासनाः
 कार्याः) यह सामान्य भावसे कहागया किंतु दोइसी विशेषता इसमें नहीं प्रकार्य
 हुई तथापि जो क्रिया सूतकर्म करनी कहीं सो सब अन्य पुरुष के द्वारा करवानी
 चाहिये क्योंकि (अन्यरतानिदुर्युः) यह पैदीनसि का वचन है कि ये इतने कर्म
 सूतको के सिवाय कोई अन्य पुरुष करे=यही तात्पर्य दृष्टरूपति ने भी कहा है =
 यथा = सूतकेमृतकेवैवअग्रक्तोयाद्भोजने प्रवासादिनिमित्तयुद्वावपेक्षतुहापयेत्॥

सितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

अर्थात्—जननसूतक और मृतक सूतक और रोग आदिसे अशक्ति होनेसे औरयाद
 को रोग ब्रह्मभोज के अनवकाश में इसी प्रकार कहीं विदेशको जाने आदि निमित्तों
 में और को हाथसे होम कारवै परकर्मको हानि न करे ॥ ० ॥ विरले स्मार्त कर्म भी
 सूतकमें करने कहे हैं = यथाहजातुकार्यः = सूतकेतुःसूतपत्रेस्मार्तकर्मकथंभवेत्
 पिंडयज्ञंचरुं होमसगोत्रेराकारयेत्=अर्थात्—सूतके उत्पन्न होने में यदि कोई कर्म
 ऐसाही आवश्यक आनिपरै जो स्मार्तही किंतु स्मृतियों की आज्ञा के अनुसार परम
 वर्ग गिना जाताहो तो वह स्मार्त कर्म कैसे होवै (इस प्रश्नका यह उत्तर है कि)
 पिंडयज्ञ नाम याद जो आग्नि आदि महीनामें आवश्यक हैं तथा चरुहोम अर्थात्
 हव्यान्न होम जिसका बड़ा उपाय और मूर्त भी पहिले से निश्चय होचुका था या
 कोईसा नियमात्मक नित्य होम जो निरंतर होता रहताथा बीचही में सूतक होगया
 इसी प्रकार कोई बड़ा यज्ञ बागप्रतिष्ठा आदि जो पहिले से प्रारंभ था सो सब उसी
 सूतक में असगोत्री पुरुयके द्वारा कारवै किंतु न आपकरै न अपने सगोत्रीसे कारवै =
 अब = शयरेहा यह संदेह कि गौके हाथ से किये कर्म का फलभागी कौन होगा
 इसके सन्धे सदा शिवजी का यह वचनहै = यथा = देवेपित्र्ये च वारिाज्येराजहारि
 विशेषतः यदिदध्यात्प्रतिनिधिः तन्नियंतुः कृतिभवेत्=अर्थात्—विशेषकर देवकर्म जप
 होम यज्ञ आदि ब्राह्मरा वरगोसे और पितर कर्म श्राद्ध गयाश्राद्ध आदि जो आचार्य
 वा पुरोहित से कराया जाय और वारिाज्य व्यापार कर्मजो गुमाप्रतों वा मुनीमोंके
 द्वारा किया जाय तथा राजहार में जो मुख्तार वकीलोंके द्वारा काम होते हैं इनसभी
 में जोकुछ काम कोई प्रतिनिधि करै सो नियंता स्वामी का करना गिनाजाता किंतु
 भले घुरे फलका भागी वही मालिक होता है जिसने किसीको मुख्तार बनायाही ॥
 यहां सूतक के प्रसंग में यद्यपि सांगोपांग विधान तथा अपने धर्मसे कर्म करने का
 अधिकार सूतकी जनको नहीं टहिरा तथापि अपना द्रव्य लगाकर प्रतिनिधि के
 द्वारा प्रधान कर्मका करना निश्चितरहा क्योंकि द्रव्य अपनाही अपना होताहै वह
 औरके उत्पादन करनेसेभी अपना नहीं टहिरता—इन्हीं कारणों से यह वचन पहिले
 कहाथा कि (श्रौतिकर्मसिा तत्कालं आतःशुद्धिमवाप्नुयात्) = और जो यह वचन है
 कि=दानंप्रतिग्रहोहोमःस्वाध्यायश्चनिवर्तते=अर्थात्—सूतकमें दानदेना और प्रतिग्रह
 लेना और होमकरना और स्वाध्याय नाम अपना पाठ पढ़ना आदि यहसब निवर्तित
 होजाता है—इसमें जो होमका रुकिजाना कहा सो कामना संबन्धी काश्यहोमके अ-
 भिप्राय से वा वैचदेव रूपी होम के अभिप्राय से समभक्ता जिसका नियेध पहिले

इसी अधिकोक्ति में होचुकाहै ॥ ० ॥ अस गोत्रीके सूतक में अन्न भोजन का नियेध है=यथाहयसः=उभयवदशाहानिज्ञातस्यान्नमभुज्यते सूतकेतुकूलस्यान्नमदोयंसनुरव्रवीत्=अर्थात्-जिसके सूतकहो उसके कृतमाघ का अन्न दशदिन नहीं खाया जाता उभयव नाम जनन सरगा दोनोंसूतक में (यहाँ दशदिन के उपलक्षणा से उतने दिन समझने जो जिसवर्णाके सूतक में नियतहों) परंतु अपने सगोत्री कूलका अन्न अदोयिलहै सूतक में भोजन करना चाहिये यह मनुका संमत धमने प्रकट किया ॥ ० ॥ विनाजाने या जान बूझ भोजन करने में किसको दोष होताहै यह भेद यद्विंशत् के मतसे दशति है = यथा = उभाभ्यामपरिजातेसूतकंनैवदोषेहात् एकनापिपरिजातेभोक्तुर्दोष्यमुपावहेत् = अर्थात्-विदेशमें होने आदि कारणाों से दोनोंको सूतक नामालूमहो तो अन्नका दोष देनेवाले या खानेवाले किसीको नहीं होता पर जो दाता या भोक्ता दोमें किसी एकहूको सूतक मालूम हो तो केवल खानेवालेको दोष लगताहै यह जनन सरगा दोनों सूतक में समझना ॥ ० ॥ विवाह आदि उत्सवों में जो अन्न पकान सूतकसे पहिले सिद्धहो चुकाहो और सूतक उसी घरमें नहो किंतु गृहांतरमें पकान सिद्धहोआहो तो वह अन्न ब्राह्मरा आदि भोजन करसकते हैं=यथाह एहस्पतिः=विवाहोत्सवयज्ञेयुत्वंतरामृतसूतके पूर्वसंकल्पितार्थेयुनदोयःपरिकीर्तितः = अर्थात्-विवाह या और किसी बड़े उत्सव या यज्ञोंमें उसघरके अंतरसे जनन यामरगा का सूतक उत्पन्न होय तो पहिले संकल्पित या सिद्ध किये पदार्थों में सूतक दोष नहीं लगता = इसी वार्तापर यद्विंशन्मत में औरभी कुछ विशेषता कहीगई है = यथा = विवाहोत्सवयज्ञेयुत्वंतरामृतसूतके परैरन्नप्रदातव्यंभोक्तव्यंचद्विजोत्तमैः भुंजानेयुत्तुविप्रेयुत्वंतरामृतसूतके अन्यगोहोदकाचांताःसर्वतेशुचयःस्मृताः = अर्थात्-विवाह उत्सव यज्ञों में गृहांतर से सूतक उत्पन्न होने में दूसरे घरमें बनाधरा अन्न असगोत्री परजनों के हाथ से दिलायाजाय तो अच्छे द्विजोत्तम भोजन करे दोष नहीं है इसी प्रकार सूतकी घरसे जुदे घरमें जिमाये हुये ब्राह्मरा असगोत्री के घरके जलसे आचमन कराय जाय तोवेसन्न पवित्रहै उनको कोई दोष या प्रायश्चित्त नहीं लगता ॥ ० ॥ अब यह निराय करना चाहिये कि सूतकी घरमें किन पदार्थोंको सूतक नहीं लगता = तथाह मरीचिः=लवणमधु मांसेच पुष्पमूलफलेयुच । शाकका यत्तपोष्वसुर्दधिसर्पिःपयःसुच । तिलौषधजिनेचैवपक्षापकोत्तवंप्रहः परायेयुचैवमर्बे युनाशौचंमृतसूतके=अर्थात्- नमक और मनुशब्दसे सय सहत्त मोठारस पुष्परस आदि चीजें समझनी और मांस प्रसिद्धहै.सर्वं मूल मूल फल शाक लकड़ी तथा भूसा

आदि और जल जो सूतकी घरमें कूपड़ाड तलाव आदिमें हों और दही घी दूध तिल दवाई मृगचर्म पकेअन्न जिनका भेद नीचे लिखेंगे कचेअन्न तंदुज आदि इन सबमें दाय नहीं है पर स्वयंग्रह से अर्थात् जो दस्त सूतकी ने न छुई हो मुखसे कतादी लेनेवालेने आपही उदाली सो स्वयंग्रह कहाताहै परंच पराय वस्तु जो बेचने खरीदनेसे व्यापार से रहितो हों बाजार से दिलाई जाय इन सब द्रव्योंको सूतक नहीं लगता तिससे इनका देनालोना नियद्ध नहीं समझा—इनमें पकेअन्न पक्वान्न जो कहे गये या कचे अन्न तंदुल आदि सो यह सब प्रवृत्त सूतकी का विषय निश्चित हुआहै कि यदि सूतकी बहुतसा बाँटने बर्ताने पर उद्यत हुआ हो और अपना हाथ नहीं लगाया हो इसी लिये स्वयंग्रह भी ऊपर कहिचुके या गोरके हाथसे लेना दाय नहीं बहिरता = इसी आशयपर यह अगिला बचन है = यथाह अंगिरा = अन्नस्यप्रवृत्तानामासनन्न सर्गर्हितम् । भुक्त्वापक्वान्नमेतेयां विरावंतुपयःपिबेत् = अर्थात्—जो सूतकी अन्न सबके मार्गसे बहुतसा बाँटने पर प्रवृत्तहुयेहों तिनका कचा अन्न तिल चावरआदिव्यनिंद्य है परंच उनका पकाअन्न स्वायकार तीनराति पयः पानका प्रायश्चित्त करै—इस बचन में पकेअन्नका बहुतबडादोष कहा सो निज सूतकीके हाथसे पकाये अन्नका सिद्धांत है और ऊपर सर्गर्चित के बचन में पक्वान्न को सूतक नहीं लगता कहा सो वह जुवा विययया कि और का पकाया वा बाजारसे दिलायाहुआ लेनेवाला आपही स्वयंग्रह की रीतिसे लैआवै तो कुछ दाय नहीं था ॥ ० ॥ चौदहवीं अधिकोक्ति के अनुरार किसी असवर्गा या असगोत्री को यदि किसी दुर्दा के संसर्गसे सूतक लगाहो तिसकी विशेषता अंगिराने दर्शाई है = यथा = आशौचंयस्यसंसार्यापतेद्गृहमेविनः क्रिया स्वयनलुप्यतेगृह्यारान्चनतद्भवेत् = अर्थात्—जिसकिसी गृहस्थी पुरुष को किसी के सवर्ग से सूतक आपरै तो उसके घरकी सब क्रिया नहीं लोपहोती है न उसके अन्य घरवालोंको सूतकहोता किन्तु केवल उसके देहनायको लागताहै ॥ औरभीजिसकिसी गृहस्थी को स्थानांतरीय सूतक वीतिजाने पीछे छुनिपरै तो उसका निर्गायभीअंगिराने किया है = यथा = अतिक्रान्तिदशाहेतुपप्रचाञ्जानात्तिच्छेदगृही । विरावंतुत्कतस्थनत दृश्यस्यकर्हिचिद् = अर्थात् — दशदिनआदि नियत अवधि वीतिजाने बाद जो कोई गृहस्थी जानिपावै कि छुनको सूतकहुआया पर सुनानहीं तो अब उसकोबे वल तीन राति का सूतक शरीरसे संबंदराखेगा किन्तु उसके अन्य द्रव्योंको सूतकतो नरातिभी नहोगा ॥ १७ ॥ कहों विदेशमें नरेहुये सपिराडकी खबर जो बहुत ॥ काल पीछेमिली हो तिसकाभी सूतकआदि बर्ताना नीचेकी णिच्छेदनेदेखना ॥ अंतप्रयसःपरिच्छेदः ॥

अथ आशौचसूतकयोर्दिनावधिकथनेद्वितीय पारच्छेदः २ ॥



इसदूसरे पारच्छेद में जन्म और मरणा दोनोंके सूतकों
सम्बन्धे सबतरहकी अवधि कही जायेंगी ॥

(जननमरणयोर्ज्ञाति श्रवणे वा सूतक नियमाः)

त्रिराप्रंशरात्रंवाशावमाशौचमिष्यते ।। कनद्विवर्षउभयोःसूतकंमातुरेवहि ॥ १८ ॥

अत्ररार्थः—तीनरात्र या दशरात्र श्रवका आशौच इच्छा करतेहैं तो वर्षसे ऊंचे
मे (माता पिता) दोनोंको हि यथा सूतक माताकोही ॥ १८ ॥

अभिप्रायः—इस वचन के अर्थ कष्टे तरहसे लगते हैं इसी हेतु बहुत गूढ अन्वय
लगाताहै तिससे खूब ध्यानदेकर शौची-शवनाम मुर्देका, तिसके निमित्तका आशौच
सूतक श्रावकहाताहै दूसरा पद सूतक जा उत्तरार्द्ध में आया तिससे केवल जन्मसूतक
भी समझा जाता और बिरले समय जन्म मरणा दोनोंके सूतक एकही पदसे समुक्ते
जातेहैं जहाँ जैसा प्रयोजन हो वही अर्थ लगाया जाताहै-यहाँ पर योगीश्वर कहितेहैं
कि—तीनरात्र या दशरात्र मुर्देका सूतक नानने को मन्वादि ऋषीश्वर इच्छा करते हैं
सामान्य सभी गोधियोंके निमित्तमें इस भेदसे कि सातपीढीतक सपिराडलोदशरात्र
मानें और उनसे उपरालू आठवीं पीढीसे ले चौदह के भीतर जो समानोदक हों सो
केवल तीनरात्रमानें (यहाँपर मुर्दा कहिनेसे प्रामृतक समझना कि जिसको अग्नि
का दाह दिया गयाहो) क्योंकि उत्तरार्ध में गाड़ने योग्य छोटी अवस्था का वृत्तान्त
जुदा कहेंगे-और भी यह व्यवस्था सिर्फ शेषे मुर्दाकी समझनी जो देशांतर में मरा
सुना गयाहो) क्योंकि प्रत्यक्ष में समीप मरेदेखे हुये की व्यवस्था सबह प्रलोक तक
वरान होचुकी) और विशेषे ध्यौरा इसीका अधिकारिक में समझना यह सब पूर्वार्ध
का अभिप्राय कहागया । पूर्वार्धमें सपिराडोंको दशदिन वतायेगये ती सामान्यभाव
से सभी सपिराड समझेगये तिससे उत्तरार्द्धमें बिरले समीपी सपिराडोंका जुदा नियम
दगाते हैं कि—दो वर्षसे ऊंचे बालक मरनेमें (उभयोर्जातापिषो.) मातापिता दोही को,

दशरात्रिका सूतक लगै किन्तु सभी सपिण्डों को नहीं क्योंकि अन्य सपिण्डोंको सूतक आगे तेइसके मूलश्लोकसे कहैये (सूतकेमातुरेवहि) सूतकमें अर्थात् पुत्रजन्म होतेही मराउत्पन्न होय तहाँ केवल माताही को दशरात्रि सूतक लगै पिता को नहीं क्योंकि पिताके निमित्त आगे बीसके श्लोक से जुदा नियम कहैये- अथवा (सूतकं मातुरेवहि) ऐसा पाठहोने से यह केवल दृष्टांत है कि हि यथा जैसे सूतक नाम जनन कालका अस्पृश्य लक्षणा केवल माताको होता है कि उसको न छूना चाहिये तैसेही दो बर्यसे ऊने बालक मरने में माता पिता दोनोंको अस्पृश्य रूपी सूतक लगता है कि दोनोंको न छूना चाहिये अन्य सपिण्डोंको छूनेका कुछ बंध नहीं (जब कि सपिण्डों को छूने मध्य दौघका नियम किया तो सपिण्डोंसे उपराल सप्तानोदक अवश्य ही स्पर्श करने योग्य ठहरे) इन बातों के विशेष द्योरे अधिकोक्ति में समझना जहाँ अनेक स्मृतियों के बचन दिये जायेंगे—परन्तु छोटे बच्चों के सूतक नियम आगे तेइसके मूल श्लोक से देखना (इस आशौच के प्रकारका में जहाँ कहीं केवल रात्रि या दिन काहाजाय तहाँ रात्रि दिन दोनों मिलके समझने ॥ १८ ॥

१८ अधिकोक्तिः—योगीश्वर के मूलश्लोक में जैसा शाव—शब्दसे मरणाशौच समझाजाताहै तैसा उत्तरार्ध में सूतकशब्दसे जननाशौचभी जुदासमझाजाताहै सोइन दोनों पदोंसे योगीश्वरने जनन मरणा दोनोंके आशौच सूतक सकही श्लोकमें समस्या किये हैं कि तीन या दश रात्र की व्यवस्था जो कुछ अभिप्राय में लिखचूके सो सब जन्म मरणा दोनोंके निमित्त यथा संभव समझ लेनी = वह दोनों जब कभी कोई एक भी उत्पन्न होकर विदितहोजाय तभी सूतक लगता है अर्थात् उत्पन्न होनेपरभी जिस किसीको मालूम न होसके तिसको सूतकनहीं लगता यह तात्पर्यहै इसीलिये अगले बचनहैं—यथा—निर्देशज्ञातिमरणां युत्वापुत्रस्यजन्मचेत्यादिलिंगदर्शनात्—यथा—विगतं तुविदेशस्थंशृगायाद्योद्धानिर्देशं। यच्छेयदशरात्रस्यतावदेवाशुचिर्भवेदित्यादिवाक्यारंभ सामर्थ्याच्च • उत्पत्तिमात्रापेक्षत्वेह्याशौचस्यदशाहाद्याशौचकालानियमास्तत्तत्प्रवृत्ति कासव=अर्थात्—ये दृष्टांत हैं कि जैसे निर्देश नाम निकसि गये दशादि जिसके ऐसा जो जातिका मरणा हो या सेसाही पुत्रका जन्महो ताहि सुनिके • इत्यादि बचन का लिंग स्वरूप देखनेसे—तथैव = दूसरा दृष्टांतहै कि विदेशमें टिकेहुयेको यदि कोई अनिर्देश मरामुनै अर्थात् मौतको दशादिन पूरे न वीतेहों बीचही में सुने तहाँ जो दश रात्रका शेषकाल रहाहो उन्हीं दिनोंतक अशुद्धहै • इत्यादिवाक्य आरंभकी सामर्थ्य सेभी सर्वथा निश्चित होताहै कि • सूतक उत्पन्न होने मात्रकी अपेक्षा से आशौच के

दशदिन आदि वराभेद से जो नियम कहि चुके सो सब जन्म या मरणा होनेके समय से आवश्यकहै—इसीहेतुसे अनिर्दशमरणा सुननेमें कि जिसको दशदिवस न बीतेहों तो श्रेय दिवसोंका सूतक सिद्धहोता है तिससे यह तात्पर्य निकसताहै कि श्रेय काल से लेकर पूरा सूतक न आरंभ करै। इस कारणासे मरणा या जन्म जब सुननेमें आवै तभी से सुनने वालेके निकट मरणा या जन्म हुआ समझा जाय और उतने दिनतक माना जाय जैसा योगीश्वर के मूलश्लोक पर अभिप्राय लिखागयाहै कि तीन रात्र या दश रात्र समानोदक सपिण्डके भेदसे = इसीके प्रमाणमें यह वचन है = यथा = दशा हंशावमाशौचसपिण्डेयुर्विधीयते। जननेप्येवमेवस्यान्निपुराणांशुद्धिमिच्छताम् ॥ जन्म न्येकोदकानांतुत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। शवस्पृशोविशुद्ध्यतिव्यहृत्तृदकदायिनः = अर्थात्—सुनेहुये मुर्देका आशौच दशदिन सपिण्डों में किया जाताहै, ऐसेही जन्म सूतकमें दशदिन कियाजाय जो अच्छी शुद्धिचाहते हों, और जन्म सूतकमें एकोदक समानोदकों की शुद्धि तीनरात्रि से कही जातीहै, और उदकदायी समानोदक प्रत्यक्ष मुर्दाको स्पर्श करके भी तीनही दिनमें शुद्धहोजाते हैं = और भी स्मृत्यंतर वचन जो अग्रोक्तहै कि = चतुर्थेदशरात्रस्यात्यरात्रिणाःपुंसिपंचमे। यथेचतुर्हाच्छुद्धिःसप्तमेत्व हरेवतु = अर्थात्—चौथी पीढीतक दशरात्रिका सूतकहोय पाँचवीतक केरात्रि मानी जाय और छठीपीढीमें चारहीदिनसे शुद्धिहोती सातवें पुरुषमें एकही दिन मानाजाय सो यह गाथा की रीति से कहा नियम आदर करने योग्य नहीं है, यद्यपि यह भी कहि सकते हैं कि गाथा नहीं एक नियमहै तथापि जैसे विवाह में मधुपर्क समय पशुका आलंभन करना एक धर्म ही कहा गयाहै पर वह लोकविद्वेयी धर्महोने से बर्तीवा नहीं किया जाता है (अस्वर्ग्यलोकविद्विष्टधर्ममप्याचरेत्तु) जैसा मनु का यह वचनहै कि जिस धर्ममें स्वर्ग न मिलसके या वह लोक में विद्वेय बढानेवालाहो ऐसा धर्म भी नहीं आचरै—यहाँ सातवें सपिण्ड समीपीको एकहीदिनसूतक जिसने बताया तो ऐसा नियम आदरकरने योग्यनहीं है—कोकि योगीश्वरने आठवें पुरुष को आदि लेकर समानोदकों को तीन दिन सूतक होना कहा यह बहुत बडा अन्तर है तिससे जो कुछ अभिप्राय में लिखचुके सोइ आदरणीय है ॥ ० ॥ अभिप्रायनामक पाठमें माता पिताके सूतक में कुछ भेद बताया था उसका भी प्रमाण यह अथोक पेरथमुनिकावचन है—यथा=गर्भम्यप्रेतेमातुर्दशाहंजातउभयोः कृतेनाग्निमोदराशांच= अर्थात्—गर्भहीमें बालकमरै तो माताको दश दिन सूतकहोय जो जन्मलेकर तत्काल मरै तो माता पिता दोनों को दशदिन जो नामकरा होकर मरै तो सहोदर भाइयों

को भी दश दिन का आशीच लगे ॥ ० ॥ श्रीरुमी सूतक में छूना न छूना कहा तिस का भी प्रमारा यह देवल का वचन है—यथा=स्वाशीचकालाद्विज्ञेयस्पर्शनचक्रिभागतः । शूद्रविट्क्षत्रविप्राराणां यथाशास्त्रंप्रचोदितम् = अर्थात्—शूद्र वैश्य सभी ब्राह्मणा इनके जैसे सूतक शास्त्रमें आज्ञाकियेगयेहैं तैसे निज निज आशीच कालके तिहाई भागसे उपरांत अंगछूना समझो = देवल का यह वचनभी अनुपनीत मुर्देका नियम समझना जो यज्ञोपवीत होनेके भीतर मराहो और जनेऊहुये उस मृतक सब्ये समझना जिसका पूरा सूतक बीति जाने पर सुनागया और दुबारा माना गया हो क्योंकि जनेऊवाले मृतकमध्ये देवलने जुदा वचन कहा है = यथा = दशाहादिविभागेनकृते संचयनेक्रमादाद्यंगस्पर्शनमिच्छांतिवराणानांतत्त्वदर्शनभाविचतुःषडशभिःस्पृश्यावर्णाः क्रमेणात् । भोज्यान्नोदशभिर्विप्रःशोयाद्विचियद्दुत्तरैः = अर्थात्—दशदिन आदि जिसवर्णा का जितना सूतक होताहै तिसके क्रमसे तिहाई दिवस बीतने और अस्थिसंचय करलेनेपर सूतकियों का शरीर छूना कहा है तत्त्वदर्शी जनोने, उसी का यह व्यौरा है कि तीन-चार-पाँच-दश-ये वर्णों क्रमसे स्पर्श करने योग्य दिवस हैं—क्योंकि ब्राह्मण केदश दिनकी तिहाई तीन माने, क्षत्री के बारह दिनकी तिहाई चार हुये, वैश्यके पंद्रह दिनकी तिहाई पाँच हुये, शूद्र के तीस दिनकी तिहाई दशदिन हुये, इसी प्रकार ब्राह्मण का अन्नभी दशदिन बीति बाद खाने योग्य और शोय वर्णों का दो तीन छे दिन उपरालु बीति जानेपर समझना ॥ १८ ॥ दिनमें सरे या रातिमें तिसका दिवस गाराना कबसे करनी यह विचार आगे २० की अधिकोक्ति को अंतमें देखना ॥ ० ॥ यद्यपि जन्म सूतक मरणा के साथभी कहिचुके परन्तु समझ में आंति खड़ी होती सो संदेह निवारणा पूर्वक अब केवल जन्म सूतक बरान करते हैं ॥ १८ ॥

(जनने चास्पृश्यत्वसूतकनियमाः)

पित्रोस्तुसूतकंमातुस्तदस्पृश्यादध्वयम् † तदहर्नंप्रदुष्येतपूर्वेषांजन्मकारणात् ॥ १९ ॥

अर्थः—जननसात्र का सूतक (न छूने योग्य) माता पिता दोही सर्पिडों को लगता है सर्व सर्पिडों को नहीं-दोसैं भी माता को ध्रुवं दशदिन पर्यंत निश्चय रूपसे अवश्य बना रहताहै कि उसको न छूना चाहिये क्योंकि उसके द्वारा रक्तका दर्शन होनेके हेतुसे जैसी कुछ विशेषता अस्पृश्यत्व की होती है तैसी पिताको नहीं किंतु पिताका अस्पृश्यत्व खान करने सबसे निश्चय होजाताहै अधिकोक्ति में देखना—वह दिवस दूयित नहीं है (जिसने जन्म होय) क्योंकि पूर्वपुरुष पिता पितामह

आदि का जन्म होने के कारणों से अर्थात् पुत्र रूप से आपही पहिले पुरया जन्म लेतेहैं तिमके संगल हेतुसे दान करने आदिका अधिकार नहीं सिद सकता यह अधिकोक्ति में देखना ॥ १६ ॥

१६ अधिकोक्तिः—माता पिता के सूतक में कुछ भेद ऊपर कहागया तिसका व्यौरा विशिष्टने स्पष्ट करके कहाहै = यथा = नाशौचविद्यतेपुंसः संसर्गचिन्नाच्छति रजस्तवाशुचिर्ज्ञेयंतच्चपुंसिनविद्यते = अर्थात्—पुरुष को जन्मसूतक उस दशार्ध में नहीं लगता जो सूतिका के संसर्ग तक नहीं पहुँचे क्योंकि उस घरमें रक्तका संसर्ग है सोई अशुचि समझना वह रक्त पुरुष में नहीं होता = इसी हेतुसे पिता शीघ्रभी स्पर्श करने योग्य हो सकता है = यथाह संवतः = जातेपुत्रपितुःस्नानंसचैलंतुविधीयते माता शुद्धेदशाहेनस्नानात्सुपर्शनपितुः = अर्थात्—पुत्र पैदा होने में पिताको सचैलस्नान करना कहा है माता दशदिन में शुद्ध होगी और पिता को स्नान करने सेही छूने का बोध नहींरहा = माताको दशदिन में शुद्धहोना कहा सो स्पर्श करनेआदि व्यवहारों मध्ये समझना किंतु अदृष्टार्थ रूप कर्त्तकाराने मध्ये जुदा नियमहै = तदाहपैदीनसिः= सूतिकापुत्रवन्तीविशतिरात्रेणार्त्तमाशिकारयेत् मासेनस्त्रीजननीम् = अर्थात्—पुत्र वाली सूतिका से बीस दिन बाद गृहस्थीके काम करावै और कन्या पैदा करनेवाली सेमहीना भरमें = जन्मसूतक में सपिंडों को न छूने योग्य बोध नहीं होता यह अंगिरानेभी कहा है = यथा = सूतकेसूतिकावर्ज्ये संस्पर्शेननियिष्यते संस्पर्शसूतिकाया स्तुस्नानमेवाविधीयते = अर्थात्—सूतकमें सूतिका को सिवाय किसी और सपिंड का छूना निषेध नहींहै परंतु सूतिका स्त्रीको स्पर्श हीजानेमें केवल स्नानकरना कहा है—
 १—उत्तरार्ध मूलश्लोक में पुत्रजन्मका दिवसमात्र निर्देश्य कहाथातिसक्तानियम वृद्ध याज्ञवल्क्यस्मृतिमेंकहाहै = यथा = कुमारजन्मदिवसेविष्टैः कार्यः प्रतिग्रहः हिरण्यभगवा याजनासःशश्यासनदियु तत्रसर्वप्रतिग्राह्यं ह्यतान्नंतुभक्षयेत् भक्षयित्वातुतन्मौहा तद्विजाप्रांद्रायणां चरेत् = अर्थात्—कमार जन्म के दिवस में ब्राह्मणों को दान का प्रतिग्रह करना चाहिये सोना चाँदी पृथ्वी गऊ घोडा बकरा कपड़े शश्यापलंग आसन बैठका आदि किन्तु उस दिन सब तरहका दानलेनाकहाहै परन्तु बनायाहुआ अन्न न भोजन करै अर्थात् ऐसे अन्न को यदि कोई ब्राह्मण अपने सोह अज्ञान स भक्षणा करै तो चांद्रायणा विधिसे प्रायश्चित्त करै = व्यासनेकुछ और भी विरोधता इसमें कही है = यथाह = सूतिकावासनिलयाजन्मदानासदेवताः । तासांयारानिभित्तुशुचिर्जन्म निकीत्तता ॥ प्रथमेदिवसेयष्टेदशमेधैवसर्वदा । त्रिप्रेतेयुनर्ज्वीतसूतकपुत्रजन्मनि =

अर्थात्—जन्म देनेवाले जन्मदा इक्षी नामके देवता जो सुतिकाके घरमें निवास रखते हैं तिनके यागपूजन निमित्तसे दान करनेआदिकामों योग्य पवित्रता जन्मके दिवसमें कहीहै सो केवल जन्महीके दिवसमें नहीं किन्तु प्रथमदिवस छठेदिवस दशवेदिवस इनमेंसूतक न माने परंतु जो पुत्रहीका जन्महो किन्तु कन्याके जन्मका यह नियम नहीं है ॥ मार्कण्डेयने जन्मदा देवताओं का पूजन और जागरण भी करना कहाहै = यथा = रक्षणीयातथायष्टीनिष्ठातत्रविशेषतः । रात्रौजागरणार्थंजन्मदानांतद्याचलिः ॥ पुरुषाःशस्त्रहस्ताश्चतुल्यगीतैश्चयोजितःरात्रौजागरणंक्रुशुंदशम्यांचैवसूतके = अर्थात्—सूतकमें छठी की राति विशेष करके रक्षाकरनी चाँहिये रात्रिमें जागरण करना चाँहिये तथा जन्मदानाम देवताओं को बलिदेनाचाहिये और उस रात्रिमें पुरुष शस्त्रों को हाथमेंरखें तथा स्त्रियाँ तृल्यगीतआदि सहित जागरणकरें यहीसूतकमंदशशीरात्रि में भी करें इसअधिकृतिके सवनिग्रमसभी वर्षोंके साधारणहै कुछ भेद नहीं॥ १६॥ अबउस प्रकारका सूतक बर्णन होगा जो एक सूतकमें दूसरा सूतक होजाय तहाँ जिस अर्वाधिमें जाकर शुद्ध क्रियाहोगी ॥ १६ ॥

(अशौचाम्यंतराशौचांतरं)

अंतराजन्ममरणेषेपाहोभिर्दिशुद्ध्यति २० (पूर्वार्ध) ।

अर्थः—बीच में जन्म मरणा होने में प्रोथ दिवसों से विशुद्धि होती=अभिप्राय इसका यहहै कि (प्रति निमित्त नैमित्तिक) न्यायसे यह भी संभव होताहै कि पहिले सूतकमें दूसरा सूतक होजाय तो दूसरा अपनी अर्वाधि पर जाके शुद्ध होय तिसका नियेध इस अर्वाधिमें कियाहै कि जिस वर्णाका जितना सूतक होताहो या जिसअवस्था में जितना होताहो उतने दिनका आशौच वर्तमान होतहुये उसी में दूसरा सूतक चाहें जनन का या मरणाका ऐसा आनि परै कि पहिलेकी बराबर दिवस इसके भी उचित हों या पहिले की अपेक्षा इसका थोडा सूतक ठहरै पान्तु पहिलेकी अंत्य अर्वाधि से बाहर बढ़िजाने योग्य दिवस हों तो ये सूतक जुदे जुदे न मानेजाय— किंतु उन्हींशेष दिवसोंकी अर्वाधिपर दोनोंकीशुद्ध दौकिया करना होगी जो पहिले सूतकमें वाकीरहे अर्थात् जुदे जुदेदिवसोंमेंदोशुद्धक्रिया न होंगी—परंतु—जोदूसरा सूतक पहिलेकी अपेक्षा बडाहो (दृष्टांत जैसे पहिले किसी अनुपनीतकी मृत्युहुई जिसका तीनिहीदिन सूतक ठहराहो उकीके बीच किसी ऐसे की मृत्युहुई कि जिसका दशदिन का सूतकहोगा तो यह उससे बडा गहिरा) तो इस बड़ेकी शुद्ध क्रिया छोटे के साथ न होगी किंतु

छोटे की वड़े के साथ जाकर उसीके दिवसों पर होगी—अधिकोक्तिमें देखना ॥ २० ॥
इति पूर्वार्धप्रलोकः ॥

२०अधिकोक्तिः—छोटे वड़े अशौचकी व्यवस्था उभानाने स्पष्ट करी है—यथा=स्वल्पाशौचस्यमध्येतुदीर्घाशौचंभवेद्यदि । नपूर्वैराविशुद्धिःस्यात्स्वकालेनैवशुद्धाति=अर्थात्—छोटे आशौचके बीच यदि बड़ा आशौच पैदा होजाय तो पहिले के साथ शुद्धि न होगी किन्तु बड़ा अपने समय पर शुद्धहोगा=यनोप्याह=अहोवृद्धिमदाशौचंपिचमेनसमापयेत्=अर्थात्—यसनेभी कहाहै कि दिवसोंसे चढ़तीवाले आशौच का पीछेसे निज कालमें समाप्तकरे ॥ ० ॥ यद्यपि योगीश्वर के मूल वचनमें क्लृप्तेदनेहों खोला सामान्य भावसे कहा है कि बीच में जन्म या मरणा होजाय—तोभी यह भेद समझना योग्यहै कि—जहाँ पहिला सूतक जन्म का मौजूद है उसके बीच मुर्दे का सूतक होजाय तहाँ वह नियम नहीं मानना उचितहै कि पहिले वाकी दिवसों के साथ दूसरा भी शुद्धहोजाय=इसका दूसरा अंगिराने स्पष्टकिया है—यथा=सूतकेमृतकंचेतस्यामृतत्वदधसूतकम् । तत्राविहात्यमृतकं शौचंक्रुयात्तिसूतकम्=अर्थात्—यदि जन्म सूतकमें मरणा सूतक होजाय या मरणा में जन्म सूतक होय तहाँ मृतकशौच के आधार में जन्म शौच भी करना चाहिये किन्तु जन्मशौच के साथ मृतकशौच न करे—परन्तु=मरणा सूतक में जन्म सूतक आएँ तो पहिलेकेसाथ पिछला शुद्धहो सक्ताहै=तद्याचयद्विंशन्मत्स्य=शावाशौचेसमुत्पन्नेसूतकंतुयदाभवेत् । शावेनशुद्धतेसूतिर्नसूतिःशावशौचिनी=अर्थात्—मुर्देकासूतक उत्पन्न होनेके बीचमें जो जन्मकासूतक आनिपरै तो पहिले उत्पन्नहुये शावशौच के साथ सूतिकाभी शुद्धहोतीहै परंतु सूतिका शावसूतक को नहीं शौचनकर सक्तीहै । तिससे जन्म सूतकमें यदि मरणा सूतक आजाय तो पूर्वशेष कालसे शुद्धि न करनी चाहिये ॥ ० ॥ कहीं दोनोसूतक एकहीसे होनेपर भी पूर्व शेषकाल से शुद्धि करने का अपवाद है—यथास्मृत्यंतरवचनं=मातर्यश्रेष्ठमीतायामशुद्धौप्रियतेपिता । पितुःशेषेसाशुद्धिःस्यान्मातुःक्रुयात्तुपसिपास=अर्थात्—माता पहिले मरी हो उसके अशुद्ध कालके भीतर जो पिता भी मरजाय तो (माता के शेष दिवसों साथ पिता की शुद्धि क्रिया न होगी) पिताके शेष दिवस बीतने में उसी साथ माताकी भी शुद्धिक्रिया करनी होगी । तथैव जो पिता पहिले मराहो उसके सूतक बीच पीछेसे माता मरै तोभी पूर्वशेष दिवसों से माता की शुद्ध क्रिया न होगी किन्तु पिता के पूर्वशेष दिन परे होनेमें उसकी क्रिया समाप्त करके माताकी पसिपास क्रिया करे (पसिपास उसरात्रिका नामहै जो आगे पीछे बीदिनके बीचमें हो) अर्थात्

केवल एक रात्रिही बीच देकर साता की शुद्धक्रिया दूसरे दिनमें करे ॥ ० ॥ जहाँ एकही दिनमें दो सूतकों का सन्निपात होय तिसका नियम गौतमने पूर्व नियमों के अपवाद रूप से कहा है—यथाहगौतमः—रात्रिशेषेसतिहाभ्यां प्रभातेसतिरतिष्ठभिः= अर्थात्—जहाँ समस्त रात्रिशेष रहिते दिनदिनमें कुछ आगे पीछे दो अर्शोच होजाय तहाँ पहिला सूतक नियत समय पर समाप्त करके दूसरे को दो रात्रि बीचदेकर पीछे करे। इसी प्रकार जहाँ रात्रि में एक सूतक लगे पीछे उसी रात्रिके पिछलेपहर प्रभात समय दूसरा सूतक होजाय तहाँ पहिलेकी शुद्धक्रिया नियत कालपर समाप्त करके तीनरात्रिबीचदेकर पीछे से दूसरे की शुद्ध क्रिया करे। सो (यह गौतम का कथन योगीश्वर के नियम का अपवाद समझना कि इस दशाको छोड़ि के योगीश्वर वाला नियम अन्यत्र माना जायगा) = यही नियम शातातपने भी कहा है = यथा—रात्रिशेषेद्वयहाच्छुद्धिर्यामशेषेशुचिस्थहाव = अर्थात्—सब रात्रि शेषरहने में दो दिन पीछे दूसरेकी शुद्धि होय एक प्रहर राति शेष रहने में तीन दिन पीछेसे दूसरेकी शुद्धक्रिया होय किंतु पहिले मरेकी अपने नियत दिनपर होगी ॥ परंतुसूतकों का सन्निपात आपढ़ने से प्रेतकी क्रिया करनी नहीं सिट सकती है यहभी शातातपनेकहाहै = यथा = अंतर्दशाहेजननात्पश्चात्स्यान्मरणाद्यदि प्रेतमुद्दिश्यकर्तव्यं पिंडदानं त्वंबंधुभिः प्रारब्धे प्रेतपिंडे तु मध्ये चैज्जननं भवेत् तथैवाशौचपिंडांस्तु श्रेयां दद्याद्यथाधिधि—अर्थात्—जन्मसूतक होनेके पाछे दश दिन भीतर यदि किसीका मरणा होय तहाँ प्रेतके नामसे पिंडदान रोज अपने बंधुवों सहित करना चाहिये तथैवजहाँ पहिले प्रेतके पिंडप्रारंभ होजानेके बीचमें जन्म सूतक लगे तहाँभी जो पिंड शोधरहै या जितना शौचकाल शेष रहाहो सो यथाविधि से पूरा करे (नसूतिःशावशोधिनी यह वचन ऊपर लिखा गया सो भी इसी व्यवस्था के समानहै) ॥ इसीप्रकार जहाँ दोनों सूतक मरणा से उत्पन्न हुयेहों ऐसेसन्निपातमें भी प्रेतोंके क्रिया कर्म करनेचाहिये—तथैव जहाँ दो भाँति के दो सूतक एकही दिन जन्म और मरणा से उत्पन्न हों तहाँभी जन्म के जात कर्म आदि सब करने चाहिये = तदाह प्रजापतिः = अशौचेत् समुत्पन्नेषु जन्मयदाभवेत् कर्तुं मृतात्कालिकीशुद्धिःपूर्वाशौचेनशुद्ध्यति = अर्थात्—मरणा का आशौच उत्पन्न होनेके बीच में जो पत्र जन्म होय तो इस दूसरे सूतक में जातकर्म आदि जो करने अवश्यकहों तिनके लिये कर्ता पुरुषको तात्कालिकशुद्धि होती है (अर्थात् जितना काल कर्म करनेमें लगताहै उतनी देर कर्ताको सूतक नहीं लागता माना जाता है) वाको और झुंडुवी और सूतिका स्त्रीकी संशुद्धि उस अवधि

पर होगी जो पहिले सररा सूतक मध्येशुद्धिक्रिया का दिन दहिराहो, किंतु सूतिका के दशदिन यद्यपि कई दिन पीछे पूरेहोगे तथापि सूती श्रावशौच के साथ शुद्धहो-जायगी—यह सब नियम योगीश्वर के मूलश्लोक से तुल्यात्मक है और (नसूतिः श्रावशौचिनी) यह वचन जो इसी अधिकोक्ति में लिखा गया तिसके भी समान है ॥ २० ॥ इति पूर्वार्ध श्लोकः ॥

(अब उत्तरार्ध श्लोक में उस प्रकार का सूतक बरान होगा जो गर्भके दिन पूरे हुये बिना गर्भ गिरजाय तहाँ कितना सूतक माना जाय—ऊपर तथा नोचेकी दोनों अधिकोक्तियों के नियम सभी वर्राँको बराबर है कुछ भेद नहीं)

(गर्भस्त्राव सूतक नियमः)

गर्भस्त्रावेमासतुल्यानिशाशुद्धेस्तुकारणम् २०

अर्थः—गर्भ गिरजाने में मासों के तुल्य रात्रियाँ शुद्धि का कारणा हैं—अभिप्राय इसका यहकि जितने महीने का गर्भ होकर गिराहो उतनी संख्या से रात्रें किंतु उतने दिनका सूतक माना जाय तब शुद्धिका स्नान होय ॥ २० ॥

२० अधिकोक्तिः—गर्भस्त्राव होनेमें पुरुषोंको स्नान करने मात्र से उसी दिनशुद्धि होजाती है यह वृद्ध वशिष्ठने कहा है = यथा = गर्भस्त्रावेमासतुल्यारात्रयः स्त्रीणां स्नानमात्रमेवपुरुषस्य = अर्थात्—गर्भ गिरने में महीनाओं के बराबर रात्रें शुद्ध होने की स्त्रियोंके निमित्त होतीहैं किंतु पुरुषको स्नान मात्र शुद्धि का हेतुहै ॥ स्त्रियों की शुद्धि योगीश्वर ने महीनाओं के समान रात्रियोंसे कही—परंतु गौतमने (व्यहंच) यहपद अपने किसी वचन में कहाहै कि तीन दिन सामान्य भाव से नियमात्मक समझ लेने-इसपर मिताक्षरा का श्रीमद्विज्ञानेश्वराचार्य तर्कना दृढ करते हैं कि यह नियम तीन महीनासे डबर गर्भ गिरने में समझना—कौंकि—अगले मरीचि के वाक्यसे यही तात्पर्यपाया जाताहै = यथाह मरीचिः = गर्भस्तृत्यांयथासासमचिरेतूत्तमेवयः राजन्येतु चतुराश्वैश्वेपंचाहमेवतुअष्टाहेनतुशुद्धिस्यशुद्धिरेयाप्रकीर्तिता (अचिरेसासवयादवाक् गर्भस्त्रावेउत्तमेब्राह्मराजाती विरात्रमित्यर्थः रतचयरासासपर्यंतद्रष्टव्यं सप्तमाद्विपुनः परिपूरांमेवप्रसवाशौचंकार्यमित्तिचविज्ञानेश्वरः) अर्थात् मरीचि के वचन में अचिर शब्द अल्पकालका बोधक प्रसिद्ध है और विज्ञानेश्वर की पंक्ति में (अचिरे सासव यादवाक्) यह प्रत्यक्ष लेखहै कि तीन महीना के भीतर गर्भस्त्राव होनेमें महीनाओं के समान दिवस शुद्धिके निमित्त में समझने और (अचिरेतु स्वल्पकालेगर्भनिपतने)

किंतु थोड़े कालका गर्भनिपात होनेमें उत्तम जाति ब्राह्मणों की तीन रात्रिका सूतक नियमात्मक समझना एवं सत्रीके चार दिनका और वैश्य के पाँच दिनका और शूद्र की आठ दिन में शुद्धि होनी कही है = ये नियमात्मक दिवस भी छे महीने पर्यंत का गर्भ गिरने मध्ये समझने किंतु सातवें महीना से लेकर पूरा गर्भगिरनेमें वही पूरासूतक मानना जो पूरे जन्म के होनेपर माना जाता क्योंकि इतने महीनोंका गर्भ पूरे छे महीने जीवता भी निकसता देखागयाहै तब उसदशा में लोग उसको जन्म होना कहते हैं चाहे थोड़ी देर पीछे मरिही जाताहो यहसब कथन भी विज्ञानेश्वरका चार्थका है= और इसके प्रभारा हेतु स्मृत्यंतर वचन भी आगे लिखते हैं=यथा=यरासासाभ्यंतरेया बहुगर्भभावोभवेद्यदा तदासाससमेस्तासादिवसैःशुद्धिरिष्यते अतऊर्ध्वस्वजात्युक्तता सासाशौचमिष्यते सद्यःशौचसंपिंडानांगर्भस्यपतनेसति=अर्थात्—छेमहीना के भीतर जो गर्भभाव होजाय तब उनस्त्रियोंकी शुद्धि महीनों के समान दिवसोंसे कहीहै इसके उपरांत के गर्भमध्ये अपनी जाति का कड़ा हुआ आशौच उन स्त्रियोंकाहोता है जो पूरेजन्मका नियत हो परंतु अन्य संपिंडोंको गर्भगिरनेमें सद्यःशौचकहाहै कि तत्काल स्नान से शुद्धहों=संपिंडोंका यह सद्यःशौच विधानभी उसदशामें समुभन्ना जो पतला गर्भ निचुड़गयाहो किंतु पिंडी बंधी न हो यह विज्ञानेश्वरका कथनहै=औरभी वशिष्ठ का वचन है=यथा=ऊनद्विवायिकेप्रेते गर्भस्यपतनेच संपिंडानां विराधं=अर्थात्—दो वर्षसे ऊनबालकमरने या गर्भगिरनेमेंभी संपिंडोंको तीनदिनका सूतकहै=सौ—यह तीन दिनका संपिराडोंका नियम उस गर्भके गिरनेमें समझना जो पाँचवें छठेमहीनामें कठिन पिराडहोकर गिराहो क्योंकि इसमें पतन शब्दका प्रयोगहै स्र।वशब्दका नहीं यह भेद भी अग्रोक्त वचन में समझो=यथाहमरीचिः= अचतुर्थद्विवेसावः पातःपंचम यद्यथोः । अतऊर्ध्वं प्रसूतिःस्याद्दशाहंसूतकंभवेत् ॥ सावेसातुस्त्रिराधंस्यात्संपिराडाशौच बर्जनम् । पातेसाहृथंथासासपिवादीनांदिनत्रयम्=अर्थात्—चौथेमहीना पर्यंत गिरता है सौ गर्भभाव कहाता है कि गर्भ निचुड़गया पाँचवें छठे महीना पर्यंत गिरने से गर्भपात कहाता है क्योंकि वहाँ तक निचुड़ने योग्य पतला नहीं रहिता छठेसे ऊपर गर्भगिरनेमें प्रसूतिकहाती है कि स्र।बालक पैदाहुआ किंतु यहाँपरगर्भ गिरना नास नहीं रहिता तिससे इसमें पूरा दशदिन का सूतक मानाजाय परंतु साव होने में साता को तीन रात्रिका सूतक होय अन्य संपिराडोंको इसमें सूतक वर्जित है और पात होने में साता को जितने महीने हों उतने दिनका सूतक और पिता आदि संपिराडों को तीन दिनका होय—ऊपर नीचेको सभी वचनों को मिलाकर अत्रिगोषे

व्यवस्था कल्पित करलेनी पर विशेषकर देशाचार कुलाचार पर दृष्टिदेना पाण्डित्य का विश्वासहै कि जो वचन जिस देश या जिस कुलकी परिपाटीसे तुल्य हो उसीको उस जगह पर स्वीकार करना ॥ ० ॥ जो गर्भ सातवें महीना से लेकर किसी महीना में जीवता जन्म लेकर तत्काल मरे या घेस्टही से मरा पैदाहोय तिसके लिये सपिण्ड लोग परा सूतक जो जन्म को निमित्त में दशदिन आदि होता है वही मानें क्योंकि छे महीना से उपरांत जन्म होने या गर्भ गिरने में प्रसूति कहाती है यह अभी ऊपर लिखचुके हैं और भी अग्रोक्त वचन प्रसारा है—यथाहमरीचिः=जातमृतेमृतजातेवास पियडानां दशाहमिति=अतःसूतकेचेदोस्थानादाशौचंसूतकवदिति पारस्करवचनंच—अत्रार्थे (ओत्थानादासूतिकाया उत्थानादशाहमितियावत्सूतकवदिति शिशुपरम निमित्तोदकदानरहितमित्यर्थ इतिमितासराकारः = अर्थात्—जन्म होकर मरने में या मरा जन्म होने में सपिण्डों को दश दिन सूतक यह मरीचिने कहा—और=इसी से यदि सूतक मेंही (शिशुमरजाय) तहाँ आउत्थानात् ओत्थान की अवधि से सूतकवत् आशौच कियाजाय यह पारस्कर का वचन है—यहाँ ओत्थान की अवधि जो कही तिसका यह तात्पर्य है कि सूतिका स्त्रीका उत्थान अर्थात् बड़ा नहान जितने दिन में होता हो जैसे दश दिन प्रसिद्ध हैं सूतक उठि जाने के उसी दिन आशौच किया जाय सोभी सूतकवत् कियाजाय जैसा प्रसूतीका स्नान प्रसिद्ध है अर्थात् सूतक में बच्चा जो मरचुका तिसको जलदान आदि सराा क्रिया का आशौच न करे—यही नियम वृहन्मनु में स्पष्ट करके कहागया है—यथा=दशाहाभ्यन्तरेवालेप्रसूते तस्यबांधवैः । श्रावाशौचंनकर्तव्यमत्याशौचंविधीयते=अर्थात्—बच्चा जन्म लेनेसे दशदिन के बीच में जो किसी बिस मरे (सो तत्कालहीमरा कहाता क्योंकि दश दिनतक उसी सूतकका समय वर्तमान रहताहै) तो उस मरेबच्चे के बांधव सपिण्डोंको सूतक निमित्तका स्नान शौच न करना चाहिये जन्म निमित्तका स्नान शौच क्रिया जाता है—ऐसाही और एकस्मृत्यंतरवचन है—यथा=अंतर्दशाहोपरतस्यसूतकाहोधि रेवाशौचं=अर्थात्—दशदिनके भीतर मरेहुयेका शौचकर्म सूतकके दिवसोंसे किया जाय—इत्यादि बहुधा वचनों के समूह से सर्वथा यही निश्चित हुआहै कि सपिण्डों को जन्मनिमित्तका आशौच न मेटना चाहिये ॥ ० ॥ इसीवार्ता मध्ये जो अग्रोक्त वृहद्विष्णुकावचनहै कि=जातेमृतेमृतजातेवाकुलस्यसद्यःशौचय=अर्थात्—जन्महोके मरे या मराजन्ममें तो कुलके लोगोंको सद्यः शौच किंतु उसी समय स्नान करके शुद्ध होजाना—सो इस वचनका तात्पर्य केवल यहहै कि बच्चा मरने के निमित्तका स्नान

भी उसी समय करडाले कुछ प्रसूती के शौचका येव इसमें नहीं है कि दशदिन पूरे होनेपर प्रसूतीका सूतक नहीं उतारै=तथाचपारस्कारः=गर्भयदिविपत्तिःम्यादशार्हसु तर्कभवेत् (सपिंडानांप्रसवनिमित्तस्यविद्यमानत्वात्) जीवन्जजातोयदिप्रेथात्सद्यस्य विशुद्ध्यति (इतिप्रेताशौचाभिप्रायस्य=अर्थात्—पारस्कारने यह भेद खोलाहै कि जो गर्भही में मरणा होजाय तत्र तो दशदिनका जन्मसूतक मानाजाय क्योंकि जन्म का होना यह संबन्धरूपी निमित्त सपिंडोंके लिये विद्यमान है, जो जीवता जन्म लेकर पीछे मरै तो शीघ्रही स्नानसे विशुद्धि होजाती है यह मरने के निमित्तका जुदा स्नान बताया=शंखोपि=प्राङ् नामकरणात्सद्यःशौचम्=अर्थात्शंखनेभी कहाहै कि नामकरणा से पहिले जो मरै तिसका सद्यःशौच कियाजाय=और जो कात्यायन का यह वचन है कि=अनिष्टत्तेदशाहेतुपंचत्वंयदिगच्छति। सद्यरवविशुद्धिःस्यान्नप्रेतनो दकक्रिया=अर्थात्—जन्मसे दशदिन बीते बिना जो मरजाय तिसकी तत्काल विशुद्धि होय न तो प्रेतकर्म है न जलदान क्रिया-और जो (नप्रेतनैवसूतकं) यह पाटांतर मानाजाय तो यह अर्थ है कि नतो प्रेतकर्म करै न सूतक अर्थात् पिता आदि को छूनेका दोष भी नहीं लगे=अथवा=इसी पाटांतर में दूसरा अर्थ भी मिताक्षराकारने दर्शाया है कि-दशदिन बीते बिना यदि वचा मरै तो शीघ्रही विशुद्धि होजाय किंतु प्रेतका सूतक नहीं मानाजाय और न सूतक अर्थात् जो उन्हीं दिवसोंमें कोई और सपिराड जन्मै तो उस जन्महुयेका वृद्धिसूतक भी नहीं मानना किंतु पहिले वर्तमान सूतकके दिवसोंसेही शौच स्नान किया जाय ॥ ० ॥ इसीवार्ता मध्ये जो वृहन्मनुका वचन और वृहत्प्रचेताकावचन आगे लिखतेहैं तिनमें किंचित् विचार भेदहै सो देखो=यथाह वृहन्मनुः=जीवन्जजातो यदिततोमृतःसूतकसवत् । सूतकंसकलमातुः पित्रादीनांशिरात्रकम्=वृहत्प्रचेताच=सुहृत्जीवतोबालःपंचत्वंयदिगच्छति। मातुःशुद्धिर्दशाहेनसद्यःशुद्धास्तुगोशिराः=अर्थात्—जीवता जन्मलेकर तिस पीछे जो मराहो तो जन्महीका सूतक मानाजाय किन्तु पूरा सूतकमाताको और पिता आदि को तीन दिनकाहो (इसमें यह व्यवस्थाहै कि जन्म होनेबाद नाल काटनेसे पहिले जो मरै तो पिता आदि को जन्म निमित्त का सूतक तीन दिनहोय)=और वृहत् प्रचेता का यह कथनहै कि=जन्म लेनेबाद दो घड़ी जीता रहिकर जो बालक मरजाय तो माता दशदिन में शुद्ध होगी और शोबी लोग सद्यः शुद्ध होजायेंगे (इसमें जो सद्यः शौचकहा सो अग्निहोत्र आदि वेद्योक्त श्रौत कर्मोंके निमित्त में समझना किंतु स्मार्त धर्म के नारीसे तीनही दिन ठीक हैं=क्योंकि=यही तात्पर्य अथोक्त वचनोंसे पायाजाताहै

यथाह शंखः = अग्निहोत्रार्थस्नानोपस्पर्शनात्तत्कालंशौचं = अर्थात् — अग्निहोत्र कर्मकी जरूरत के लिये स्नान और आचमन करलेने से तत्कालही शौच होजाता है। नाभि बर्धन किंतु नाल छेदन कर्म होजाने पीछे जो वचा सरें तो सर्पगडों को पूरा सूतक जन्म निर्मित्त का होता है = तदाह जैमिनिः = यावन्नच्छिद्यतेनालंतावन्ना भ्नोतिसूतकय । छिन्नेनालंततःपश्चात्सूतकंतुविधीयते = अर्थात्—जब ताजीनाल नहीं काटाजाता तब ताजी सूतक नहीं लगता नाल कटे पीछे सूतक लगा कहाता है ॥० ॥ अथात्र रजस्वलाप्रायश्चित्तं—यहांसूतकियोंके प्रायश्चित्त प्रसंगसे रजस्वला स्त्रीओंके प्रायश्चित्त दर्शाते हैं = यथाहमनुः = रात्रिभर्मासतुल्याभर्माभ्यावेविशु द्धति । रजस्युपरतेसाध्वीस्नानेनस्त्रीरजस्वला = अर्थात्—जो गर्भपेटमेंजमिकरपीछे ब- हिजाय तो महीनोंके तुल्य रात्रियोंसे वह स्त्री शुद्धहोतीहै दृष्टांत जैसे प्रथम मासमें गर्भ त्राव होजाय तो एक रात्रि बीते स्नान करें इत्यादि दूसरे तीसरे मासमें समुक्ति लेना-परंतु जो रजस्वला मावहुईहो तो निपट रक्त सुखिजानेपर देव कर्म आदि धर्मों के योग्यशुद्धिहोती है चाहें तितने अधिक दिनोंतक सूखें,किंतु छूने आदि व्यवहारों के योग्य तो चौथे दिनही रक्त सूखे बिना भी स्नान करके शुद्ध होजाती है= तदाह रुद्रमनुः—चतुर्थेऽहनि संशुद्धा भवतिव्यावहारिकी=तथास्मृत्यंतरमपि=शुद्धाभर्तुश्चतुर्थे ऽहनिस्नानेनस्त्रीरजस्वला देवेकर्मणिपिच्येचपंचमेऽहनिशुद्धति=अर्थात्—चौथे दिन शुद्धहोती है व्यवहार मात्रके योग्य ऐसेही अन्यस्मृति का वचन है कि=रजस्वला स्त्री भर्ताके व्यवहार योग्य चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होजाती है-पर देव कर्म औ पितर कर्मके योग्य पाँचवें दिन होतीहै (यहाँपाँचवाँदिन इसलिये नियत कियाहै किचहुधा स्त्रियोंका रक्त पाँचवें दिन निःशेष होजाता है अन्यथा प्रायश विरली स्त्रियों के दशदिनतक भी न सूखताहो इसीलिये ऊपरले मनुके वचन में रजस्युपरते समस्या करीगइहै कि जब कभी रजकी निवृत्तिहो तभी देव कर्म के योग्य शुद्धि होगी)=जिस स्त्रीको रजोदर्शन के दिनसे लेकर सत्रह दिनके भीतर फिरके रजोदर्शन होय तो उसमेंअपविषता नहींमानी जायगी- जो सत्रह दिनके बाद अगारहवें दिवस होय तोएक दिनकी अशुद्धि मानीजायगी- उन्नीसवें दिनहोनेसे दोदिनमें शुद्धि होगी- इसके उपरालू बीसवें दिनको आदिलेकर किसी दिनमें होय तो तीन दिन से शुद्धि होगी = तथाहात्रिः = रजस्वलार्यादस्नातापुनर्देवरजस्वला अष्टादशादिनादवागशुचि त्वंनविद्यते एकौनविंशतेरवांगेकाहंस्यत्ततोऽष्टदश विंशत्प्रभृत्युत्तरेयुत्रिावमशुाचर्भ वेत् = अर्थ ऊपरलिखचुके वहीदेखो = एक जो स्मृत्यत्तर वचन है कि चौदहादिनके

भीतरही रजस्वला होय तो अशुद्धि नहीं मानी जाय किंतु चौदहवें को आदिलेका मानी जाय सो यह अनंतरोक्त का विरोधी नियम नहीं है क्योंकि इसमें स्नानके दिन से ध्रुवालिया है ॥ अशुद्धि नहीं मानीजाय यह नियम उस लोको समझना जिसको सदैव वीसदिन पीछे मासिक-वर्महोता रहता हो और कभी देवयोगसे अदारहदिन के पहले होजाय अन्यथा जो स्त्री यौवनकी भरीहुई होनेसे अदारह दिन के भीतरही रजोवर्म बहुताइत से सदैव करतीहो तिसको तीनदिन अशुद्धि माने पीछे स्नान करना होगा—तथाच वशिष्टः= रजस्वलाविरात्रिमशुचिर्भवति सा च नान्नीतनाभ्यंजीतनाप्लु- स्नायात् अत्र शयित न दिवास्त्रप्यात् न प्रहान्दीक्षेत नानिन्स्पृशेत् नाग्नोयान्नाज्जुंसेज्जेत् न च वंतांश्चावयेत् न हसेन्न किंचिदाचरेत् अखर्षेणापात्रेणापिवेदंजलिना वा पात्रेणालो हितायसेनवेति विज्ञायते—अर्थात्—वशिष्ट ने कहा है कि रजस्वला तीन रात्रि तक अशुद्ध होतीहै वह उन दिनों में न आंखि आंजे न उबटना करे न जलोमें स्नान करे न खाद पर सोवे किंतु पृथ्वीपर सोवे और दिनमें न सोवे ताराग्रहोंको न देखे अग्नि को न छुवे न उप्पा भोजन करे सीवना परोवना आदिभी न करे दांतभी न धोवे हंसै नहीं न कुछ काम बंधा करे अखर्षपात्र से जो छिद्रआदि रहितहो उसी से पानीपीये या हाथकी झंजली से पीये या ताँबे के पात्रसे पीये यह समझमें आताहै—अंगिराने कुछ और विशेषता कहीहै—यथा=हस्तेश्रीयान्मृन्संयेवाहविर्भुंक्षतिशायिनी रजस्वला चतुर्थेऽह्नि स्नात्वाशुद्धि मवाप्नुयात् =अर्थात्—रजस्वला हाथ में धरके भोजनकरे या मट्टी के वासन में हविष्य भोजन करे वस्तीमें सोवे और चौथे दिन स्नानकरके शुद्ध होय—पाराशर ने भी विशेषता कही है—यथा=स्नानेनैर्मासिकेप्राप्ते नारीयद्विरजस्व- ला पात्रांतरिततोयेन स्नानं कृत्वा त्रतंचरेत् सित्तगात्राभवेद्विज्ञः सांगोपांगाकथंचन नवस्र पोहनं कुर्यान्नान्यहासप्रचधारयेत्—अर्थात्—मासिक रजोवर्म के निमित्त का स्नान समय प्रात होने में जो नारी रजस्वला होय तो वह किसी पात्रमें भरे घरे जल से स्नान करके व्रताचरणा करे और स्नानका यह अर्थ है कि किसी प्रकार सांगोपांग जल के छ टे लेकर कान चलावे किंतु न कपड़े निचोड़े न चोती आदि वस्त्र बदलके पहरे—उद्य नाने डवर होनेमें कुछ और विशेषता कहीहै—यथा=इवराभिभूतायानारी रजसाचपरिहृ- ता कथं तस्याभवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्कोनकर्मणा चतुर्थेऽह्नि न सप्राप्त स्पृशेदन्यातुतांश्चि यमसासचैलावगाह्यापःस्नात्वास्नात्वापुनःस्पृशेत् दशद्वदशकृत्योवात्रा चमेचपुनःपुनः अतेचवासंसांत्यास्ततःशुद्धाभवेच्चसा दद्याच्छक्याततोदानं पुरायाहेनविशुद्ध्याति—अ- र्थात्—जोस्त्री डवरसे विगेहुई कपड़ों सेहोजाय तिसकास्नान कैसे होसकेऔर किस

कर्मसे शुद्धि उसकी होय. सो कहिते हैं कि ज्वर के वेगमें स्नान तौ न होगा परन्तु चौथा दिन होनेमें कोई और स्त्री उरजखला को स्पर्शकरके प्रतिनिधिवत् और नदीतटारामें बख्खों सहित उसके बस्त्रे गोता लगाकर बार बार उसको छूवती जाय और बीच बीच आचमन भी करती जाय ऐसे दशवारह बेर स्नान आचमन करके बूने पीछे बख्खोंका त्याग करावै तौ वह रजखला भी शुद्ध होजायगी और शक्ति के अनुरूप कुछ दानदेवै फिर पुरायाह वाचन कराके शुद्ध होती है ॥ यह प्रतिनिधि रूप स्नान का प्रकार और भी सब रोगीनात्र के निमित्त में समझना केवल रजखला को नहीं=कोकि= पाराशर में सभी रोगियों के निमित्त से कहा है= यथा= आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेन ततः शुष्येत्स आतुरः= अर्थात्= जहाँ किसी रोगी को स्नान की आवश्यकता खड़ी होजाय तब दूसरा कोई निरोग पुंस्य स्नान कर कर के दशवार उसको छूवै तौ वह रोगी शुद्ध होजाय ॥ ० ॥ जहाँ कहीं रजखला या प्रसूती स्त्री की मौत होजाय तहाँ स्नान का प्रकार यह अग्रोक्त है = यथा = सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्यात् यज्ञिकाः कुम्भे सलिलमादाय पंचगव्यं तथैव च पुरायाम्भरभिसं व्यापोवाचा शुद्धिलभेत्ततः तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि= रजखलायास्तु = पंचभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजखलाम् बख्खांतरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् = अर्थात्— प्रसूती स्त्री मर जाने में याज्ञिकलोग कैसे करते हैं इसप्रश्नका यह उत्तर है कि मट्टी के घड़े में जल लेकर तथा पंचगव्य लेकर पवित्र ऋचाओं से जल अभि मंत्रित करके बचन से शुद्धि प्राप्त करै तिसपीछे उसी जल से मुर्दे को स्नान करायके जैसी विधि हो तैसे दाह करे = रजखला का यह विधान है कि = मरी दुईप्रेता रजखला को पंचगव्यों से स्नान करायके दूसरे सुखे बस्त्र से लपेटके विधिपूर्वक दाह कर्म करे ॥ ० ॥ यहाँ तक स्नान शुद्धि के निमित्त जो दिवस कहे गये कि इतने दिन पीछे शौच करना चाहै प्रसूती का हो या मृत्युका या रजखलाका हो उसकी अवधि कवसे गिनी जाय यह ध्यौरा अब लिखते हैं सर्वत्र समझलाना = तदाह कश्यपः = उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य गर्वरी अर्द्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते रात्रिं कुर्यात् त्विभागां तु द्वौ भागौ पूर्वस्य तु उत्तरांशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके रात्रावेच समुत्पन्ने मृते रजसूतके पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावच्चोदयते रविः = अर्थात्— इसमें दो तीन भौतिके कल्प कहे हैं तिनको ध्यानदेकर शौचो कि- जब सूर्य के उदय होनेवादा स्त्रियों का रजोदर्शन होय या किसी का जन्म होय या मरणा होय तौ उस दिनकी संध्यासे आनेवाली रात्रि उधी दिनके साथ समझनी और

उसी दिनसे लेकर तीन या दश या जितने दिन कहेहों सो गिनिलेने एकयह सामान्य कल्प कहा। एवं जो आधीरातिके पहिले द्वाछमररा आदि हुआहो तौभी उसीपड़िले दिवस को लेकर गिनती करनी क्योंकि सुतक आदि कामों में आधीरात तक उसी दिन की अवधि मानी जाती है (इसी में यह तात्पर्य स्वतः सिद्ध होगया कि जो आधी के उपरांत मृत्यु या जन्म या रजो दर्शन हुआहो तौ वह आधीरात दूसरे दिन के साथ समझनी और उसके लिये आगामी आधादिन भी दृषद्वर तक उसी रात्रिके साथ समझना दूसरा कल्प इसी नियम से माना जासक्ता है जिसकी इच्छा वा देश कूलकी रीतिहो तौ वह इसी कल्प को मानौं। इसीलिये (यस्याहस्तस्यशर्वरी) यह श्लोको में कहागया कि जिस राति का दिन हो उसी दिन की राति समझनी या जिसदेशमें जैसा दिन मानाजाताहो तौ उसीदिनकेअनुसार उसकीशर्वरीभी समझनी। तीसरा कल्प यह भी है कि रात्रिके तीन भाग मानिके दो भाग तौ दोते दिनके साथ समझने और तीसरा भाग शेष रात्रि को आगामी दिन के साथ समझना रजोदर्शन और सुतक में एक कल्प यह भी है कि जहाँ तक सूर्यउदय नहुये हों सामान्य भाव से रात्रि भर में किसी समय मरणा या रजोदर्शन या प्रसूत हुआ हो तौ पहिलाही दिन मानना किन्तु आगामी का प्रयोजन इसमें नहीं है—इन सब कइ भौतिके कल्पों में जिस देश की जैसी परिपाटी हो तैसा कल्प स्वीकार करना यह सिद्धांत है ॥ ० ॥ अब यह नियम करना शेष रहा कि मरणा के दिन से अवधिसेनी या दाह के दिन से सो कहिते हैं कि जो आहिताग्नि अग्निहोत्री मरा हो तौ दाह आदि संस्कार के दिनसे अवधिसेनी और अनाहिताग्नि जो अग्निहोत्री कोई मराहो तौ मौतके दिन से अवधि माननी परंतु अस्थिसंचय कर्म दोनों का दाहके दिनसे गिनाजाय सो यह भेद अंगिरा ने कहाहै = यथा = अग्निमतउत्क्रांतेः मरनेः संस्कारकर्मणाः शुद्धिः संचयनं दाहा न्मृताहस्त्युद्यतिथिः = अर्थात्—अग्निमान का मौत के दिनसे शुद्धिका दिवस लियाजाय और अग्निमान का संस्कार कर्मके दिन से और संचयन कर्म दाहके दिन से दोनोंका और मरनेका दिन क्षयाह जो तीर्थ हो उसके अनुकूल समझना ॥ उक्त वचन में अग्निहोत्री का सुतक मानना जो दाह कर्म के होने बाद कहा तिससे यह तात्पर्यभी उत्पन्नभया कि जिसका आहिताग्नि पिता कहीं देशांतरमें मरे तौपुत्रादिकोंको पुत्रल विधान रूपी संस्कार करनेसे पहिले मंध्याबंदन आदि कर्मों का नियेध नहीं है—तथाचपैदीनसिः=अग्निमतउत्क्रांते राशीर्चाहिद्विजातियु वाहादग्निमतोवि धादिदेशस्थे मृते सति = अर्थात्—द्विजाती लोगों में अग्नि मानका मरणाके दिनसे

आशौचलगै और अग्निमानकादाहकोदिनसेजाती जो विदेश में बैठाहुआसाराहो २०॥

(ऊपर के नियमों में दशदिन आदि का सूतक जो सर्पिण्ड आदि को कहा गया सो बिरली मौतविशेषमें न होना चाहिये यह अपवाद नीचेकहेंगे)

(सद्यःशौचभागिनोपिकेचित्प्रेताः)

हतानानृपगोविप्रैरन्वक्षंशात्मघातिनाम् २१ (पूर्वार्द्धश्लोकः)

अर्थः—गृध्रगऊ बिप्रोंसे मरेहुयों और आत्मघातियों का अन्वसही शौचहो= अर्थात्—दाह या मौत देख सुनिकर तत्कालही स्नान करके सर्पिण्ड लोग शुद्धहोजायें किन्तु दशदिन आदि की आवश्यकता और योग्यता इनके नहीं है . किन्तु इस अपेक्षा में कहियेहैं कि राजाने फाँसो आदि किसी प्रकार से मृत्यु दण्ड देकर जिनका बध किया हो तिनके तथा गऊ बैल आदि सींगवाले या दादवाले पशुओंसे मारगये हों तिनके तथाबिप्रोंके शापसे जो मरेहों तिनके और आत्मघाती जो आपहीफाँसी लगाकर या विय भस्मरा या शस्त्र आदि किसी प्रकार से मरिगये हों तिनके लिये सर्पिण्डोंको सद्यः शौच करना योग्यहै ॥ २१ ॥

२१अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वराचार्य कहते हैं कि विप्रको हाथ माराजाना कहने से चांडाल के हाथसे भी मारेजाने का उपलक्षणा समझ लेना (इस व्यवस्थाकी दृढताके लिये पूर्व लिखित छटा मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति परभी ध्यानदेकर विचारो) यह व्यवस्था गौतम ने स्पष्टरूप से दर्शाईहै—यथा=गोब्राह्मणहतानामन्व संराजक्रोधाद्यायुदे प्राथोनाशकशस्त्राग्निवियोद्ध धनप्रपतनेश्चेच्छताम=अर्थात्—गऊसे ब्राह्मणा से हतहुयों का और युद्धबिना राज क्रोधसे मौत पायेहुयों का और युद्ध बिना किसी प्राणाघाती शस्त्रसे आपही इच्छाकरके मरे या अग्नि में जल मरे या विय खाकर मरे या जलमें डुबि मरे या रक्षी बाँध लटकते मरे या ऊँचे से गिर के मरे इन सबमें यहसमझ लेना कि इच्छासे चाहिकर किसीके ऊपर या वृथा प्रासादे दियेहों तो ये आत्मघाती कहाते हैं इनके लिये सर्पिण्डों को अन्वसही सद्यः शौच करना चाहिये (यहाँपर इच्छासे करने का यह तात्पर्य है कि जो बिना चाहे दैवयोग से सेसी मौत हुईहों तिनके लिये यह नियम नहींहै) (एवं जो राज के क्रोध से कहा तिसका भी यह तात्पर्य है कि जो राजाके क्रोध बिना दैवयोग से धोखे में उसके हाथ मौत मिलीहो तिसका भी यह नियम नहींहै) (एवं बिना युद्धके शस्त्रों से मराहो इस कथन का भी यह तात्पर्य है कि जो युद्ध में जाकर किसी शस्त्र से मराहो

तिसका भी यह नियम नहीं है) किंतु युद्ध में जो मारे गये तिनके लिये एक दिन का सूतक लिखा है = यथा = ब्राह्मणार्थविपन्नानां योयितांगोयहेपि च आहर्वेपिहतानां चयक्रावसशौचकम् = अर्थात्—ब्राह्मणों की रक्षा आदि उपकार करते हुये जो किसी प्रकार की अपश्रुत्य से मरेहों एवं स्त्रियोंकी रक्षा करते जो मरेहों या गऊके अनुग्रह में अर्थात् गऊकी रक्षा या चिकित्सा आदि उपकार करनेमें या गोग्रह नामगऊ के बाने खोरने आदि साधारण काम करते हुये उसके द्वारा मरेहों या आहव नामयुद्ध में मारे गये इन सबका एकदिन रातिका सूतक होना चाहिये किन्तु सद्यःशौचनहीं— तथापि यह नियम केवल उन युद्ध वालोंका समझना जो युद्ध में घायलहोकर तत्काल न मरेहों किन्तुकालांतर में प्राण छोडेहों—यद्यपि—रराभूमिपर प्राण छोडनेवालेकी मृत्युभी यज्ञसमान होती है तिसमें मनुने उसको सद्यःशौचभागी कहा वरनविशेष्यक्रिया कर्मकी आवश्यकता भी उसकेलियेनहीं राखी—यथाह मनुः—उद्यतैराहवेशस्त्रैःसववर्म हंतस्य च सद्यःसंत्यतेयज्ञस्तथाशौचमितिस्थितिः—अर्थात्—संघासुकी भूमि पर उद्यत हुये शस्त्रोंसे सजीवमर्से जो मराहो तिसका यज्ञउसीसमय खडाहोता और इसीप्रकार सद्यःशौच भी होजाता है यही मर्यादा इसकी नियत है—अर्थात् ऐसे वीर पुरुषों का ब्रह्मभोज स्वीपी यज्ञ तत्काल किया जाता है सूतक पातकों का बिचार इसमें नहीं क्योंकि उसकी स्वर्गप्राप्ति का उत्सव रूपी यज्ञ माना जाता है प्रेतयज्ञ नहीं इसीलिये सपिंड लोगभी तत्काल सद्यःशौचके अधिकारी होतेहैं ॥ आगे उत्तरार्ध मूल श्लोक से यह कहेंगे कि जो कोई सपिंड विदेश में बैठा किसी सपिंड का मरना कुछ काल बोते सुनें तो कितना सूतक माने ॥ २१ ॥ यहाँ तक सद्यः शौच के भागी प्रेतमात्र कहे गये कि इनके लिये सब कोई शीघ्र शुद्ध होसकताहै—किंतु जो सर्व-वही सद्यःशौच के अधिकारी कर्तापुरुष भी होतेहैं तिनका नियमआगे सप्ताहस मूल श्लोक से देखना ॥ २१ ॥ जन्म या मरणा का सुन पानाही सूतक चढ़नेका निर्मित र्हाया गया कदाचिद् कोई विदेश में बैठाहुआ घरकी खबर सक वो दिन पीछे सुनें तिसमें कुछ अपवाद कहा चाहते हैं कि उसको भी घृति पाने के दिन से लेकर दश दिन आदि न मानने चाहिये ॥

(अतिकालजमाशौचं)

(देशांतरस्थसपिंडेसूतकनियमः)

प्रोपितकालदोषः स्यात्पूर्णदत्त्वोदकं शुचिः २१

अर्थः—प्रोपित में शेषकालही सूतकहोय' पूर्णकालमें उदकदेकर शुद्धि होय=अ-

थात्—यदि कोई सपिंड कहीं ऐसे विदेशमें बैठा हो जो मरे या पैदा हुयेकी खबर पहिले रोज न सुनिसके किन्तु कई दिन पछे सुने तो दश दिन आदि सूतकों का जितना काल शेष रहा हो उसीको बिताकर अशुद्धिहोगी और जिसने सूतक पूरा होजाने बाद सुनिपाया हो वह सुनते मार जलदान कारके पवित्र होगा (परंतु जलदान केवल प्रेतको होता है तिससे यह पिछला नियम प्रेतही के निमित्त में समझना कि स्नान करके जलदान करे अन्यथा जो जन्मका सूतक पूरा होजाने बाद सुना हो तो जलदानके अभावसे स्नानकी भी जरूरत नहींरही यह भेद अधिकोक्ति में देवना ॥ २१ ॥

२१ अधिकोक्तिः—मनुराह—निर्देशजातिमरणांशुत्वापुत्रस्यजन्मवासवासाजलनाप्लुत्यशुद्धो भवतिमानवः—अर्थात्—दशदिन बीतजाने बाद जातिका मरना सुनिके या पुत्रका जन्म सुनिके कपड़ों सहित जलमें स्नान करिके मनुष्य शुद्ध होता है ॥ योगीश्वर के इसी उक्तारब मूल श्लोक में पहिला पाद जन्म मरणा दोनों के नियम मध्ये समझना और पिछला केवल मरणा के सूतक मध्ये समझना क्योंकि जलदान कारके शुद्धि होजाना कहा सो जलदान केवल प्रेतके निमित्त में होता है तो यह तात्पर्य निकसा कि जन्म का सूतक पूरा होजाने के बाद जो विदेश में बैठा हुआ सपिंड सुने तो उसको सूतक नहीं रहा समझना किन्तु स्नान मावभी न करना चाहिये—परंतु जो उस जन्म लेनेवाले पुत्रके पिताने विदेशमें रहते सूतक पूरा होजाने बाद सुना हो तो पिता को उस दशार्थ भी स्नानकरके शुद्धि होती है जैसा अतन्तरोक्त मनुके वचनमें लिख चुके हैं सो देखो कि दशदिनबीते पुत्रका जन्म सुनिके स्नान करे और—पुत्र शब्द कहिने से यह भी सिद्धांत ठहरा कि जिसका पुत्र नहीं ऐसा कोई सपिराड जो दशदिन बीते बाद जन्म सुने तो उसको स्नान की आवश्यकता नहींरही—क्योंकि—जो ऐसा सिद्धांत न होता तो मनुके वचनमें पाठमी (निर्देशजातिमरणांशुत्वाजन्मचनिर्देशम्) ऐसा होता सो नहीं है—और उसी सिद्धांत के अनुकूल आगे देवलका वचन है—यथा—नाशुद्धिः प्रसवाशीचेवयतीतेयुदिनेर्षाप । तस्माद्विपत्तात्रेवातिकांताशौचमितिस्थितिः—अर्थात्—देवलनेस्पष्ट कहा है कि जन्मसूतककेदिन बीतिजानेमें सुननेसेभी अशुद्धि नहींलगती है तिससे मीतही में पूरा होजा ने पर भी अशौच होता यह सत्यवाच्यत है ॥ ० ॥ योगीश्वर का मूल श्लोक बिरली पुस्तकों में पाठांतर से भी देखागया है कि जिसके अर्थ में कुछ भेद है—यथा (प्रीयितेकालशेषःस्यादशेयेऽयहसचतु । सर्वथां वस्त्रेषु र्णो ज्ञेतेदत्वोदकशुचिः) अर्थात् जो प्रेत विदेशमें मरा हो तो सभी वस्त्रोंके लिये सुनने के समयसे जोकाल सूतक में शेष रहा हो उसीको पूरा करके शुद्धिज्ञान करना उचित है.

और जो श्रेय नहीं रहा किन्तु सूतक पूरा होजाने बाद सुनाहो तो सभी वरोंको समान
 भाव तीनदिन का सूतक चाहिये और जो एक वर्ष पूरा होजाने बाद विदेशस्थ का
 मरना सुनाजाय तो सभी ब्राह्मण आदि वरों का एकही नियम है कि सुनते सार
 स्नान पूर्वक जलवेकशुद्ध होजायगे—और इसका भी प्रमाण अग्रोक्त मनुका वचन है—
 यथाह—संवत्सरेव्यतीतितृस्पृष्ट्वैवापोविशुद्ध्यति—अर्थात्—संवत्सर बीतिजाने पर सुनने
 में जल स्पर्शही करके शुद्ध होजाता है—सो यह पाठांतर में तीन दिन का नियम
 दश दिन के बाद तीन महीना के भीतर खबर पाने में समझना और पूर्वोक्त मूल
 पाठमें कहाभया सद्यःशौच उस दशमें बर्तावा करना जो नौमहीना बीतिजाने बाद
 वर्ष भीतर कभी खबर मिली होती जल दानमात्र से तत्काल शुद्ध होजायगी = और
 जो अग्रोक्त वचन है = यथाह वशिष्ठः = ऊर्ध्वदशाहाच्छुत्वेकारात्रं = अर्थात्—दश
 दिन उपरांत खबर मिलने में एक रात्रिका सूतक होय—सो यह एकदिनका उस
 दशमें मानना जो छेमास के उपरांत नौमासके भीतर खबर मिली = एक यह गो-
 तसका वचन है = यथा = श्रुत्वात्तूर्ध्वदशम्याःपक्षिणी = अर्थात् दशईरातिके उप-
 रांत सुनिके एक पक्षिणी नामक रात्रिमात्रका सूतक होय किन्तु जिसकेसाथ एक
 दिन पहिला और एक पिछला भी मिलायाजाय सो पक्षिणी कहाती है तो इस
 हिसाब से दश ग्यारह या बारह प्रहरका सूतक ठहरा सो यह सो नियम उस दशमें
 समझना जो तीन महीना के उपरांत छे महीनाके भीतर कभी खबर मिली ॥ इन सब
 भेदों को उक्त वाशिष्ठ में स्पष्ट किया है सो देखो = यथा = मासवर्षोविरात्रं तथा
 रामासेपक्षिणीतथा । अहस्तनवमादर्वागूर्ध्वस्नानेशुद्ध्यति = अर्थात्—तीन मास के
 भीतर सुननेमें तीन दिन का सूतक होय तथा छेमास के भीतर में पक्षिणी अर्थात्
 डेढ़ दिनका सूतक और नवमासके भीतर में एक दिन रात्रिका सूतक होय फिर नौ
 महीना उपरांत खबर मिलने में स्नानमात्रसे तत्काल शुद्ध होजाती है ॥ ० ॥ ये सब
 नियम जो कहेगाये सो माता पिताको सिवाय अन्य संपिंडोंके समझने क्योंकि उन
 के मध्ये पैटीनसिने जुदा नियम किया है = यथा = पितरोच्चेन्मृतोस्यातांदूरस्थोपि
 हिपुत्रकः । श्रुत्वातद्दिनमारभ्य दशाहंसूतकीभवेत् = अर्थात्—माता पिता यदि मरे-
 होय और पुत्र बड़ी दूर बैठाहो तो उनकी खबर सुनिके उसी दिवसको लेकर दशदिन
 तक सूतकी होय = स्मृत्यन्तरे प्रमारांत = महायुरुनिपातेत् । आर्द्रवस्त्रोपवासिना ।
 अतीतैश्चैपिकर्तव्यप्रेतकार्ययथाविधि = अर्थात्—माता पिता के देहपात होने में
 वर्ष बीति जानें पर भी सुनने से आर्द्र वस्त्रोपवासी होकर पुत्र को यथा विधि से

मिताक्षरा स० प्राच्यचिन्तकांड ।

५३

सब करना चाहिये अर्थात् सूतक मानना जलदान करना आदि क्रिया बर्ध वीति जाने परभी करे किन्तु स्नानमात्र करनेसे पुत्रकी शुद्धि नहीं होती जैसी अन्यसंपिराडों को कही थी ॥ ० ॥ माता से उपरालू सावसी जो पिताकी दूसरी आदि पत्नी मरी हो तिसके मध्ये भी स्पृश्यन्तर में विशेषता कही है—यथा=पितृपरन्यासपेतायांमा त्वज्याद्विजोत्तमः संवत्सरेव्यतीर्तेपत्रिावमशुचिभवेवै=अर्थात्—माता को छोड़िके और कोई पिताकी पत्नी जो मरीहो तो द्विजातियों में अयपुत्रय संवत्सर वीतिजाने बाद सुननेपरभी तीनदिन सूतक माने ॥ ० ॥ अब एक यह विशेष नियम दर्शाते हैं कि अतिशय दूरनिवासी कोईसंपिंड जो देशांतर में बसिगया हो तिसका मरना दश दिन पीछे तीनमास के भीतर भी सुनिके मद्यः शौच करना योग्य है—तथाच वचनं= देशांतरमृतंयुत्याज्ञीवैखानसेयती मृतेस्नानेशुद्यन्तिगर्भस्रावेचगोशिरा=अर्थात्- देशान्तर में किसी संपिराड को मरा सुनिके उसके गोत्री लोग स्नानही से तत्काल शुद्ध होजाते हैं तथैव स्त्रीव या वैखानस वानप्रस्थ तापस या यती संन्यासी इनके मरने में (दूरनगीचदोनौदशामें) गोत्रीलोग स्नान मात्रसेही शुद्ध होजाते हैं तथैव निज गोत्र में गर्भस्राव गर्भ गिरजाने पर भी स्नान करके शुद्ध होजाते हैं—यहां गोत्री लोगों का नियम दर्शाया तिससे पुत्र पौत्रोंका जुदा नियम समझना जैसा पहिले लिख चुके हैं ॥ ० ॥ इस वचन में देशान्तर कहागया तिसके लक्षण भी समझने चाहिये कि देशांतर कितनी दूरहोताहै—तदाहृदहृस्पतिः=महानद्यंतरंयत्रगिरिर्वावप्रवसायकः वाचोयत्रविभिद्यंततद्देशांतरमुच्यते देशांतरंवदत्येकेयस्थियोजनमायतय चरवारिंश ह्रदंत्यन्येविंशदन्त्येत्थैवच=अर्थात्—जहाँ कोई बड़ी नदी बीचमें उतरनी हो याबीच में कोई पहाडही आडकरता हो तिसको दूसरादेशकहना (परंतु जहाँ नदी या पहाड बीचमें न हो तहाँ क्योंकर देशांतर समझाजाय सो कहते हैं कि (जहाँकीबोलीमें भेद हों वहभी देशांतर कहाजाता है (अथवा जहाँ बोलीमें भेद कृच्छ्र न हो न कोई नदी पहाड बीचमें हो तहाँभी देशांतर का यह चिह्नहै कि) जो कोई सादियोजन अर्थात् २५० कोस के अन्तर से बसिगया हो तो वह देशांतर में बंटा समझ लेना और भी पुराने लोगोंने५० चालीस योजन अर्थात्१६०कोस पर भी विदेश कहाहै कि जहाँ- राज दूसरा हो, अन्यथा और बहुत लोगोंने तीसही योजन अर्थात् १२० कोस दूरी अंतरको दूसरा देशमानाहै तिनका यह सिद्धांतहै कि जिस देशकामार्ग कदिन होने से बहुत न चलता हो न वहाँके समाचार शीघ्र आसक्ते हों तो एकसौ बीसहीकोसपर दूसरादेश कहना चाहिये ॥ ० ॥ अबतक यहनियम जो लिखागया कि सूतक वीति

जाने बाद सुनें सो इतने दिवस मानें सो सब उस मुर्दा के निमित्त में समझना जो जनेऊदार मरा हो किन्तु कुछ अवस्था छोटी बड़ी आदि होनेमध्ये भेद नहीं है—इसका व्यापार व्याघ्रपादने दर्शाया है—यथा—तुल्यवयसिसर्वेषामति कालितथैवच उपनीतु वियमंतस्मिन्नेवातिकालजम्—अर्थात्—आगे तेईसवें मूल श्लोकमें जो अवस्थाभेदसे नियम करेंगे कि तीनवर्षों की अवस्था भीतर या दस जने से पहिले मरै तो इतने दिन मानेजायें सो वह नियम सभी ब्राह्मण आदि वर्राँका हल्य है हाऊ भेद उसमें नहीं और जो दशदिन आदि की सूतक अवधि बीतिजाने बाद सुनने में तीन दिवस आदिका सूतक मानना कहागया वह भी सर्व वर्राँका हल्यरूप सकही नियम है परंतु जो उपनीत जनेऊदार मरै तिसका सूतक वियमहै अर्थात् ब्राह्मण के दशदिन सत्रीके बारहदिन इत्यादि प्रसिद्ध है उसी जनेऊदार के मरने में अति कालज सूतक भी समझना जो ऊपर वर्राँन होचुकाहै कि इतनेदिन बीते बाद सुननेसे इतनेदिनका सूतक माने तीन वर्राँमें कोइ वर्राँको सबका एक नियम है जनेऊदार होनेसे तथैव चौथे शूद्र में जनेऊके स्थान उसका व्याह समझना ॥०॥ ऊपर जहाँजहाँ दशदिन का सूतक सपिंडों को बताया सो केवल ब्राह्मण वर्राँका नियम था इसीलिये नीचेके श्लोक में क्षत्रीआदि वर्राँको दशदिन के मध्ये अपवाद सूचित करेंगे ॥ २१ ॥

(चत्रियादीनांसूतकावधिः) .

क्षत्रस्यद्वादशमहानिदिशःपंचदशैवतु । त्रिंशद्दिनानिशूद्रस्यतदर्थन्यायवार्तिनः २२ ॥

अर्थः—सत्रीकेबारहदिन वैश्यके पंद्रहदिन शूद्रके तीसदिन और न्यायवर्तीशूद्र के उससे आधा पंद्रहदिनका सूतकहोय—अर्थात्—इन वर्राँमेंयदि किसी सपिंडका जन्महोय या किसी सपिंडका मरणा होजाय तहां पूर्वाक्त दशदिन से अपेक्षा नहीं किन्तु अत्रोक्त बारह पंद्रह तीस दिनोंका सूतकमाने और शूद्र जो न्यायवर्ती अर्थात् द्विजातियों की सेवा और पाकयज्ञ आदि तहलों में निरत हो तौ १५ दिनका सूतक माना जाय तीसका नहीं ॥ २२ ॥

२० अधिकोक्तिः—विज्ञानेश्वर कहतेहैं कि इस टीकहुये नियमके सन्मुख पारि-शेष मार्गसे वह नियम जो अदारहर्षे मूलश्लोक से (त्रिंशदंशरात्रंवा) कहिचुके सो केवल ब्राह्मण के निमित्त में समझा जाताहै कि दशदिन उसीके लिये—परंतु—स्मृत्यंतर में कर्मिष्ठ क्षत्री आदिको भी दशदिन आदिके अशौचकल्प कहे गये हैं—यथाह पराशरः = क्षत्रियरतुदशाहेनस्वकर्मनिरत शुचिः तथैवहादशाहेनवैश्य शत्रिभ

वापुन्यात्=तथाचशातातपः=एकादशाहाद्वाजन्व्योवैश्याद्वादशभिस्तथा शुद्धोविंशति रात्रेराशुद्युतमृतसूतको=अर्थात्—जो अपने कर्मधर्म में निरत हो ऐसा सत्री भी दश दिनमें शुद्धहोय वैसाही वैश्य वारह दिनमें शुद्धिपावे यह पराशरने कहा=तैसाही शातातप कहतेहैं कि=मरणा याजन्मके होनेमें ग्यारहदिनसे सत्री और वारहदिनसे वैश्य और गूद्र बीसदिन से शुद्धहोय=वशिष्यने और भी अधिकदिन बताये हैं=यथा=पंचदशरात्रेराजन्व्योविंशतिरात्रेरावश्यः=अर्थात्—पंद्रह रात्रियों से सत्री और बीस रात्रियोंसे वैश्यका आशौच होय=श्रंगिराने सभी वर्गोंको बराबर दशदिनका सूतक बताया सो भी शातातपके कथनका पता देकर=यथा = सर्वेषामेववर्णानांसूतकमृतकोतथा दशाहाच्छुद्धिरेतेयामितिशातातपोब्रवीत = अर्थात्—जन्मतथामरणा में इन सभी वर्गोंका (कि जिनकासूतकजुदाजुदा वर्णान हीचुका) उन्हीं सबकी सामान्य भाव दशदिनसे शुद्धि होतीहै यह शातातपनेकहाथा ॥ इसभातिसे अनेक ऊंचेनीचे शौचके कल्पदर्शित हुयेहैं तिनका संसारमें अच्छाप्रचार न होनेसे ध्यवस्था कल्पित करना कुरुआवश्यक नहींहै इसलिये व्यवस्थाका रूप डोलनहीं दर्शातेहैं यह विज्ञानेश्वरनेकहा=और भाषार्थ इसका यहीहै कि जिस स्थलमें जैसा प्रचारहो तैसासमझ लेना ॥ ० ॥जहां कहीं ब्राह्मरा आदि किसी वर्गके सत्री आदि सपिंड हों तिनका शौच नियम हारीत आदि स्मृतियों के अनुसार होनाचाहिये क्योंकि उन्हीं में यह निर्राय अच्छा कियाहै = यथा हारीतः = दशाहाच्छुध्यतेविप्रो जन्महानीस्त्र्योनि यु यद्भिस्त्रिभिर्येकेनसत्रवित्शूद्रयोनिः अर्थात्—जन्म या मरणा होने में ब्राह्मरा दशदिन में वही शुद्ध होताहै जो अपनीही ब्राह्मराणी योनि में जन्मा हो अन्यथा जो ब्राह्मरा सत्री योनि में जन्मा हो तो उस योनिका सपिण्डस्य सूतक छे दिन का लौं एवं जो वैश्य योनि में जन्मा हो तो उस योनि का सपिण्डस्य सूतक तीन दिनका हो एवं जो गूद्र योनि में जन्मा हो तो एकही दिनका सूतक = विष्णुपुराण्यह = सत्रिय स्यवित्शूद्रसपिण्डस्युद्युयडाविराजान्यां वैश्यस्यशूद्रसपिण्डस्युद्युयडाविराजान्यां शूद्रिः हीनवर्णा नांतुत्कस्युसपिण्डस्युजातेयुगृतेयुवा तदाशौचच्यपानेशूद्रिः = अर्थात्—सत्रीके यदि वैश्य या गूद्र सपिण्डों में जन्म या मरणा हो तो उस सत्री सपिण्ड को यथा क्रम से छे दिन या तीन दिनसे शुद्धि होती है एवं जो वैश्यके गूद्र सपिण्डों में जन्म या मरणा हो तो उस वैश्य को छे दिन में शुद्धि होती है=अब इससे विपरीत जहाँ ऊंचे वर्ग के सपिण्डों में जन्म या मरणा होय तहाँ नीचे वर्ग की तब शुद्धि होगी जब उस ऊंचे वर्ग का सूतक मिटिजाय ॥ बोधायन ने इनको भी सामान्यभाव दशदिन का सूतक

वताया है = यथा = सर्वविद्भूद्रजातीयाप्येस्युर्विप्रस्यवांववाः तेषामशौचेविप्रस्य
 दशाहाच्छुद्धिरिहयते = अर्थात् - सभी दैश्य भूद्र जातिके लोग जो ब्राह्मणके बांवव
 अर्थात् सपिराड होयें तो उनके घृत्त सूतक में ब्राह्मण सपिराड की शुद्धि दशादिन में
 कही जाती है—ये दो भाँति के नियम जो टहिये तिनकी व्यवस्था आपद अनपद
 काल के अनुसार कल्पित करनी चाहिये ॥ ० ॥ दाम दासी जो गुलाम और बाँदी
 कहते हैं तिनका शौच स्वामी के शौच साथ होजाताहै स्पर्श करने योग्य और कर्म
 के अधिकार योग्य दासी को एक महीना तक सूतक बनारहितहै = तदाहार्गिराः=
 दासीदामप्रचसर्वैर्वैयस्यवर्गस्यथोभवेत् तद्वर्गस्यभवेच्छौचं दास्यांभासस्तुसूतक
 स = अर्थात्—दासी और दाम चाहें किसी जातिके हों किन्तु जिस वर्गके दासत्व
 में रहते हों उसी वर्ग का जो शौचहो सो उनको होय परन्तु दासीमें अपना सूतकसक
 मासतकहितके ॥ ० ॥ प्रतिलोमानांत्वाशौचाभावस्वप्रतिलोमाधर्महीनाइतिस्मरणात्
 केवलश्रुतौप्रसवेच सलापकर्तृशार्थं सूत्रपुरीयोस्सर्वाश्च शौचंभवेत्येवइतिविज्ञानेच्चरा
 चार्यः = अर्थात्—श्रीसहजानेच्चर कहिते हैं कि प्रतिलोमजाती धर्म हीन कहातेहैं
 इसस्मृतिकेप्रसिद्धहोनेसेप्रतिलोम जातियोंमें आशौचकाअभावहै तथापि केवलमरणा
 और जन्म होने से सलीनता दूरकरनेकेअर्थ इगले सूतकेतरह शौचभी होताहै ॥ २२ ॥

(बालकादीनांमरणाशौचभेदाः)

आदंतजन्मनःतयत्राचूडात्रौशिकीस्मृता । त्रिरात्रमात्रतादेशादशरात्रमतःपरम् २३ ॥

अक्षरार्थः—दाँत जमनेतक सद्यही • चूडाकर्म तक त्रैशिकी कही है • व्रता देश
 तक तीनरात्र • इससे परे दशरात्र जानी ॥ २३ ॥

• अभिप्रायः—जबतक दाँत न जन्मेहों तबतक मरनेवाले बच्चेका आशौच सद्यही
 उसके सपिराडों को कर्तव्यहै • दाँतजमने वाद जबतक नुराडनकर्म न हुआहो तबतक
 मरनेवालेकी अशुद्धि एक दिन राति की माननी चाहिये • मुण्डन से उपरांत जनेऊ
 होनेसे पहिलेपहिले जो मरै तिसका तीनदिनतक सूतकहोनाचाहिये • जनेऊ होजाने
 से बाद मरनेवालेका दशादिन पूरामूतक होताहै—और विशेषतयाधिकोक्तिमेंदेखो २३ ॥

२३अधिकोक्तिः—(इस अधिकोक्ति में एकही वातपर बहुधा वचन अनेकभाँति
 से दशांशे जायेंगे जिस किसी को समझने में कुछ ध्याति खडीहो सो अधिकोक्ति के
 अंतमें जाकर उन्हीं सबकी सार व्यवस्था को विचारै) मूल श्लोक में सद्यः शौचके
 लिये यद्यपि दाँतजमे बिना का नियम सामान्य भावसे कहासाया तथापि उनबालकों

को निमित्त में समझना जिनको अग्निदाह न कियाजाय—क्योंकि वैशाखशास्त्र में यही तात्पर्य रपट कहागया है = यथा = अदंतजातेवालेप्रेतसद्यस्वनास्थानि संस्कारोनेदकक्रिया = अर्थात्—दांत जमे बिना बालक प्रेतहोजाने में सद्यही शौच कियाजाय न इसका अग्नि संस्कार होवे न जलदान कियाजाय = और जो दांतजमे बिना मरे को अग्निदाह किसी कारणा से कियाजाय तिसके लिये एक दिन रात्रि का सूतक अगिले चौबीस के मूल प्रलोक में देखौ उसीका प्रमारा भी अग्रोक्त यम का वचन है (इतिविज्ञानेधरः) = यथाह यमः = अदंतजातेतनयेशिशौर्गर्भच्युतेतथा सपिराडानांतुसर्वेयामहोरात्रमशौचकस = अर्थात्—बिना दांतोंका पुत्र मरने में तथा सरावचा गर्भसे गिरजाने में भी सभी सपिराडों को एक दिन रात्रिका अशौच लगता है = और भी नामकरणा से पहिले मरजानेमें अवश्यभाव सद्यः शौच कानियम शंख-स्मृति मे नियत है क्योंकि उसको अग्निदाह कभी नहीं होता = यथा = प्राडः नाम करणात्सद्यःशौचं) : (चूडाकर्मचोटीधारना प्रथम वर्ध वा तृतीय वर्ध में भी होताहै= तथाचवचनं=चूडाकर्मद्विजातीनांसर्वेयामेवधर्मतःप्रथमेद्वेद्वेत्तीधेवाकर्त्तव्यं श्रुतिचोदना त्=अर्थात्—चूडाकर्म सभी द्विजाती लोगों का निज धर्मके अनुसार पहिले वर्ध में या तीसरे में करना चाहिये श्रुतिकी आज्ञासे) तौ इस नियमसे यह व्यवस्था सिद्ध होती है कि दांत जमने से उपरांत पहिले वर्ध भीतर जबतक चूडाकर्म न हुआहो तब तक मरजानेमें एकदिन रात्रिका सूतक मानाजाय.तहाँदूसरायह विचार भी कर्त्तव्यहै किजिनके तीनवर्धमें चूडाकर्महोताहो तिनकेदांतजामि आनेपर जो तीनवर्ध भीतरतक चूडाकर्महुये बिना मृत्यु होजाय तौभी एकही दिनका सूतक रहेगा = इसी व्यवस्था का प्रमारा भी अग्रोक्त विष्णा का वचन है = यथा = दंतजातेप्यहतचूडेहोरात्रेणा शुद्धिः = अर्थात्—दांत जमने पर भी चौटी धरे बिना मरजाने में एक दिन रात्रि से शुद्धि होतीहै ॥ ० ॥ जिसका गुडन और चूडाकर्म होचुका हो ऐसा बालक जनेऊ होनेसे पहिले कभी मरजाय तिसका सूतक तीन दिन होता है क्योंकि ऐसे बालकों को अग्निदाह भी अवश्य किया जाताहै यह विधान भी पहली दूसरी अधिकोक्ति में लौगाक्षि के वचनसे देखौ ॥ और जो अग्रोक्त मनु का वचन है कि = श्रुतामहत्त चूडानामशुद्धिर्नैशिकीस्मृता । निवृत्तचूडकानांतु विरात्राच्छुद्धिरिष्यते = अर्थात्—बिना चौटी धरे मनुष्योंके मरने में एक दिन रात्रिकी अशुद्धि कहीहै और जिनका चूडाकर्म से निपटारा होचुका तिनके मरनेमें तीन दिन रात्रिसे शुद्धि करीजाती है. सो इस वचन का भी वही तात्पर्यहै जो अभी ऊपर कहा गया ॥ और जो उन्हीं मनुका

यह दूसरा वचन है = ऊनद्विवार्यिकंप्रेतं निदध्युर्वीववावहिः । अरारयेकाण्डवत्यक्ता
 सिपेयुस्त्रयहनेवतु = अर्थात्—दो वर्षसे ऊने प्रेतको शाससे बाहर गाइके तीन दिन
 सूतक माने—सो उन लोगोंके अभिप्रायसे तीनदिन कहेहैं कि जिनके वर्ष भीतर चूड़ा
 हीजाता है = इसी प्रकार वशिष्ठका वचन है कि = ऊनद्विवर्षेप्रेते गर्भपतनेवामर्षिपं
 डानांत्रिरात्रं—इसमें भी तीन दिन उसी अभिप्रायसे कहेहैं कि वर्ष भीतर चौटीवरचुकी
 होगी ॥ और जो अंगिरा का यह वचन है कि = यद्यप्यहातचूडोवैजातदंतश्चसंस्थि
 तः । तथापिदाहयित्वैनमशीचंयहमाचरेत् = अर्थात्—यद्यपि किसी लड़के का
 चूड़ाकर्म न हुआहो परंतु दांत जमने बाद सरे तौभी इसको जलाइके तीनदिन सूतक
 मानावै—सो यह ऐसे धरौं का नियम समुझना कि जिनके तीनवर्ष से उपरांत भी चू-
 ढाकर्म न हुआहो क्योंकि बहुधा कुलौं की परिपाली ऐसी भीहैं कि पांचवें सातवें
 वर्ष तक चौटी धरी जातीहै वरन अशोक स्वयंयर्थ भी उन्ही अंगिराके द्वितीय वचन
 से स्पष्ट होताहै = यथा = विप्रेन्यूनत्रिवर्षेत्तृतेशुद्धिस्तुर्नैशिकी=अर्थात्—तीनवर्ष
 से ऊने ब्राह्मणा के मरनेमें एक दिन रातिमें शुद्धिहोतीहै—अब यह विचार करौं कि
 उन्ही अंगिरा ने इस वचन में तीन वर्ष भीतर में एक दिन का सूतक बताया तिससे
 उन्ही अंगिरा ने इस वचन में तीन वर्ष भीतर में एक दिन का सूतक बताया तिससे
 पहिले वचन में आपही सिद्ध होगया कि तीन दिन का सूतक बताया तिससे
 अबस्था में सूचित किया परंतु ऐसा भी न समुझलौना कि यह एक दिनका सूतक
 अत्रवस्था में सूचित किया परंतु ऐसा भी न समुझलौना कि यह एक दिनका सूतक
 विना दांत बालेका कहा होगा क्योंकि तीनवर्षके भीतर तक कोई बालक विना दांत
 जमे नहीं रहता तिससे दांत जमने बाद तीन वर्षके भीतर का यह नियम समुझना—
 अन्यथा जो दांतों से पहिले का भी अर्थ मानौंगे तौ विप्राके वचन से विशेष खडा
 होगा क्योंकि विप्राणे दांत जनने बाद विना मुंडनके मरनेमें एक दिनका सूतक ब-
 द्याया है तिससे वही व्याख्या उत्तम है जो पहिले कही गई ॥ और जो कश्यप का
 यह वचन है कि = बालानानदंतजातानांत्रिरात्राशुद्धिः = अर्थात्—विना दांत जमे
 बालकों के मरने में तीन दिन रातिमें शुद्धि होती है—सो यह तीन दिन केवल माता
 पिताके निमित्तमें समुझने किंतु सब सर्पिडों को नहीं—क्योंकि माता पिता को वीन
 तथा रक्तके द्वारा संतान में जन्य जनक सम्बन्ध की उपाधि विशेष होनेसे सूतकभी
 अधिक होना कहा है = तथाचस्मरारां = निरस्यतुपुमावशुक्तामुपस्पशाद्विशुद्धति ।
 वैजिकादभिसम्बन्दादनुर्द्धादधंयहम-इतिजन्यजनकसम्बन्धोपाधिकतयात्रिरात्र नि
 यमात् = अर्थात्—पुरुष अपने वीर्यको निकालिकेही स्नान करनेसे पवित्र होताहै
 (इसी परम कारणात् संतानमें) अपने वीजका सम्बन्ध होने से उसके नष्ट होजाने

पीछे अशुद्धताहारी अथ सूतक तीन दिन रोके • यह स्पष्ट प्रमाण है तिससे कश्यप के वचन में भी यही तात्पर्य समुभूता ॥ सर्ववचनानां सारव्यवस्था—ऊर्ध्वोक्त सभी वचनोंके सारसे यह अनुक्रम सिद्ध होता है कि नामकरणा दूसरेदिन दूतीन होने से पहिले मरै तिसका सद्यः शौच उसी समय स्नान चाहिये • नामकरणा होजाने से उपरांत दांत जमने से पहिले मरै तिसका एक दिन राति का सूतक मानै सो उस दश में कि जो इसको अग्निदाह किया गया हो अन्यथा अग्नि संस्कार के न करने में इस का भी सद्यः शौच करना चाहिये • जिसके दांतभी जमिचुके और कुलकी परिपाटी से प्रथम वर्यमें चूडाकर्म होताहो तिसकर्म के हुये विना मरजाय तो एक दिन राति का सूतक माना जाय • दांत जमने और पहिला वर्य पूरा होजाने से चूडाकर्म भी हो चुकाहो तिसको तीन वर्षके भीतर मरजाने में तीनदिन रातों का सूतक माना जाय परंतु जिसका चूडाकर्म न हुआहो तिसको तीनवर्य भीतर भी एकाही दिनका सूतक जानौ • तीन वर्यकी अवस्था पूरी होजाने उपरांत भी जिसका चूडा न हुआहो तिस का भी तीनदिन सूतक है • जिसका यज्ञोपवीतभी होचुका तिसके मरने में पूरा दश दिन आदि सूतक जो जिस वर्याका आवश्यक है सो करना चाहिये ॥ २३ ॥

(स्त्रीणां वयोवस्थाविशेषेणापवादः)

अहस्त्वदनकन्यासुवालेपुचविशोधनम् २४ (इतिपूर्वार्धे)

अचरार्थः—अदत्ताकन्याओंमें और बालकोंमें भी एकदिन विशोधनकाहो ॥ २४ ॥

अभिप्रायः—विनादई कन्यारों कि जिनका वारदान फलदान सगाई जव तक न हुई हो परंतु चूडाकर्म होचुकाहो तिनके मरजाने से सर्पिडों को एक दिन शुद्ध होने का सूतक होताहै और बालक लडके कि जिनके दांत न जमेहों तिनको यदि अग्नि दाह दिया जाय तो एक दिन शुद्ध होने का कारण है (पर जो अग्निदाह न किया जाय तो तैरेसवें मूलश्लोकवाली व्यवस्था मानी जायगी ॥ २४ ॥

२४अधिकोक्तिः—सगाई हुये विना कन्याका सूतक जो सर्पिडों को एकदिन का बताया तहां कन्याकी सर्पिडता केवल तीन पीढीतक होतीहै इससे आगे नहीं = तदाह वशिष्ठः = अप्रतानांतुस्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते = अर्थात् विना विवाही स्त्रियोंकी सर्पिडता तीनपुरुष तक जानी जातीहै=जिसकन्याका चूडाकर्म न हुआ हो तिसके मरने में सद्यः शौचहोना कहाहै कि जवतक स्वकाई न हुईहो = तयाच आपस्तंबः = अकृतचूडायांतुक्रुश्यां सद्यः शौचं विधीयते = अर्थात् विनाकिये चूडा

कर्मकी कन्या मरने में उसी समय स्नान किया जाय ॥ जिस कन्याकी सगाई हो चुकी पर विवाह अबतक न हुआहो तो भी उसके मरजाने में दोनों कुलको तीनदिन सूतक होता है = यथाहमनुः—स्त्रीरामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्ध्यातिवांधवाः । यथोक्तेनै वक्रल्पेन शुद्ध्यति तु सनाभयः = अर्थात्—असंस्कृत स्त्रियां कि जिनकी सगाई हो-जाने पर भी विवाहरूपी संस्कार न हुआहो तिनके बांधव जो पतिके सपिंडहों सो भी तीनदिन में शुद्ध होते हैं और सनाभि जो पिता के पक्षवाले सपिंड हैं सो भी यथोक्त कल्पसे तीनही दिनमें शुद्ध होते हैं किन्तु स्त्रियोंके विवाहसे पहिले मरजाने में दश दिन आदिका पूरा सूतक नहीं माना जाता है—इसीलिये मरीचि ने तीनदिन के हेतु में असंस्कृताका लक्ष्मणाभी व्यौरवार कहा है—यथा—वारिपूर्वप्रदत्तात् यान्वै प्रतिपादि-ता । असंस्कृता तु मात्रा विरात्रसुभयोः स्मृतम् = अर्थात्—प्रदत्तानामदेनी कही कन्यादी क होजाने पर भी जो जलके साथ संकल्प से नहीं प्रतिपाद न हुई हो सो असंस्कृत जाननो और उसीके मरनेमें दोनों (पिता और पतिके) कुलों को तीन दिन अशौच होना कहा है = विवाह के होजाने वाद स्त्रियोंके सूतक मध्ये पिताके घर विप्ला ने विशेष नियम कहा है = यथा = संस्कृतासुस्त्रीयु नाशौचपितृपक्षेत्प्रसवमरगोचेत्प तृहेस्यातां तदैकरात्रं विरात्रं वा = अर्थात्—विवाह रूपी संस्कारसे संयुक्त स्त्रियों का सूतक पिताके कुलको नहीं लगता सो उस दशामें कि जो सूतक वाला हेतु पति के घर उत्पन्न हो अन्यथा जो पिता के घरमें कन्या के प्रसूत होय वा कन्या का मरना होजाय तो एक या तीन दिनका सूतक पिताके कुलको लगता है अर्थात् प्रसूत में एक दिनका मरना में तीन दिनका समुभना ॥ ० ॥ यह जो ऊपर अवस्था के भेद से अशौच की व्यवस्था कही सो सामान्य सभी बर्राँको समुभनी किंतु इसमें बर्राँ भेदसे कुछ भेद नहीं समुभना बर्राँकि (जैसा वारिसर्वे मूलश्लोक में क्षत्री आदि शब्दों का प्रयोगायातैसा) इसमें किसी बर्राँका संकेत नहीं किया—इसी हेतुसे मनुने मनुस्मृति में जहां सर्व बर्राँकी एकही व्यवस्था कही तहां (चतुरार्याभिपिवरार्यानां यथावदनुप-र्वशः) ऐसा भेद खोलिके कहिदिशा है कि चारो बर्राँका यह नियम है = ऐसेही अगिरा ने भी अपनी स्मृति संहिता में (अविशेषेणा बरार्यानामर्वाकासंस्कारकर्मणाः । विरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वहाविधीयते) यह स्पष्ट करिके कहा है कि संस्कार कर्म से पहिले सभी बर्राँको अविशेषतासे यह नियम समुभना कि तीनरात्रियोंमें सबकी शुद्धि होती है और कन्याओंके मरनेमें सभी बर्राँकी एक दिनसे शुद्धि होती है = व्याघ्रपादका यह वचन है कि (त्र्यंघयसि सर्वेया सति कांतेतयैवच) अर्थात् वयमि

नाम अत्रस्था भेदसे जो नियम सूतकमें कहीं लिखा गयाहो कि इतनी अवस्था तक इतना सूतक मानना होगा जैसा तेईस मूलश्लोक पूर्वार्ध में देखीं सो सब नियम सभी वर्णोंको तुल्यहै कुछ ऊंच नीच का भेद उसमें नहीं-तथैव अतिक्रान्त नाम जो बहुत काल बीति जाने बाद सुना गया तिसके जो नियम कहीं इक्षीस की अधिकोक्ति आदि में लिखे गये सोभी सर्व वर्णों के सामान्य हैं-तो इन सभी वचनों के प्रमाणा से ऊपरली व्यवस्था भी सभी वर्णोंकी समझनी जो इसी अधिकोक्ति के प्रारंभ से चरान होती रही-जैसे सोरहवें श्लोक वा-उसी की अधिकोक्ति वाले नियम सभी वर्णों के सामान्यकहे थे-या जैसा समानोदकों का आशौच सभी वर्णों को सामान्य कहागया था-या जैसे बीसवें मूल श्लोक के दोनों अर्द्धसे अधिकोक्ति पर्यंत के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्य कहे गये थे-या जैसे इक्षीसके उत्तरार्ध मूलश्लोक से अधिकोक्ति पर्यन्त के सब नियम सभी वर्णोंको सामान्यकहे गयेथे-या जैसा आरो चरान होने वाले नियम गुरु आदि के सूतक मध्ये सभी वर्णोंके सामान्य कहेजायेंगे-तेईही अवस्था भेद के सूतक भी सभी वर्णों की बराबरहोने योग्य हैं यह व्यवस्था टीका हो चुकी ॥ ० ॥ तयोपि ऋष्यशृंग आदिके वचन इसके विरोधी देखि परतेहै= यथा = सधेयङ्भिःकृतेचौलेवैश्वेनवभिरुच्यते ऊर्ध्वद्विवर्षाच्छूद्रेतुद्वादशाहोविधीयते-तथा-यवविराशंविराणामाशौचंसंप्रदृश्यतेतवशाद्देवादशाहःयवानवक्षत्रवैश्वयो रित्यादीनि अन्यान्यपिवचनानिसंति=अर्थात्-इन वचनोंने वर्ण भेदसे यह कहाहै कि-तीन वर्ष से उपरान्त चौलकर्म हुये सत्री के मरने में छे दिनोंसे शुद्ध हों और वैश्य के मरने में नौ दिनोंसे कहते हैं और शूद्रके मरनेमें बारह दिनका अशुद्धकाल विधान किया है-तथा-दूसरा भी यह वचनहै कि जहाँ ब्राह्मणों का तीन दिन अशौच माना जाता हो तहाँ शूद्रका बारह दिन वैश्यका नौदिन सत्री का छे दिन से कारना चाहिये यहप्रायश देखनेमें आता है-दोनों वचन का एकही तात्पर्य है इनके समान और भी अनेक स्मृतियोंमें वचनहैं तिन सबको विगीतरूप जानिके अर्थात् ऐसीरीति निन्दित समझके प्राचीन आचार्य धारेश्वर, विश्वरूप-मेवातिथि-आदि अनेक धर्मशास्त्र के संग्रहीता गुरुओं ने आदर पूर्वक प्रमाणा में नहीं लाकर छोड़दिये और वही व्यवस्था शंकीकार कर्ते जो ऊपर अभी लिखि चुके हैं (कोइ अपनी तीव्रबुद्धि से यह तर्कना न खड़ीकरौ कि जिन वचनों की रीतिका प्रचार नहीं रहा तो फिर यहाँ लिखने और ट्याही विस्तार बढ़ाने से क्या सिद्धि हुई केवल वही व्यवस्था लिखते जिस का प्रचार है-सुनौ जब किनी स्थलपर कोइ पुरुष उन्हीं वचनों को सुनाकर

अच्छी रीति में भंग डारने लगे तब इस खगडन मराडनके समझे बिना तुमसे क्या उत्तर वान आवै तिससे यहविस्तारही कार्यसाधक होगा कि (संग्रहत्यागनविनपरिहंचाने)अच्छी बुरी दोनोंरीतिकी स्वरूप समझ बुझिके अच्छीका स्वीकार और बुरीका निरादर भी करसकौंगे)इसी लिये पीछेसे विज्ञानेश्वरने यह लिखाहै कि जहाँ किसी अवसर में कोई बृद्धिमाह उन्हीं वचनों को अविगोत ठहरावै किन्तु आदर के योग्य सिद्धकरै कि वह भी किसी देशकालकी मर्यादा से निर्माणा हुयेथे अनादर क्योंकरना-तहाँसत्रीआदिवर्गोंके आर्त अनार्त समयके अनुसारव्यवस्था कल्पितकरनी चाहिये अर्थात् जो किसी प्रबल विपत्ति में फँसेहों तो वही साधारण पक्ष जो सभी वर्गों का एक है सो अंगीकार करना जो ऐसी विपत्ति में न फँसे सावधान हों तो यह अधिक दिनों वाला पक्ष भी स्वीकार होसकता है ॥ इस चौबीस के श्लोक पूर्वार्ध से योगीश्वरने जो कुछ नियम कहा सो आगे उत्तरार्ध से शुरु आदि के सूतक में अति देश करै रो ॥ २४ ॥

(गुर्वादीनांमरणेषु उक्तनियमस्यातिदेशः)

गुर्वेतेवास्तूचानमातुलओत्रियेषुच २४

अचरार्थः—शुरु अंतेवासी अनूचान मातुल ओत्रिय इनमें भी एकदिन ॥ २४ ॥

अभिप्रायः—यहाँपर शुरु उपाध्यायकी समझना अंतेवासी वह शिष्यहै जो शुरु के पासही सदा रहिके विद्या पढताहो अनूचान जो अनु वचन में समर्थ किन्तु अंगों सहि वेद में विचक्षरा हो यहां सातुल मामा के नामसे और भी बन्धुलोग जो अपने या अपने पिता के और माता के भी जो लहंगहा नाते में होतेहों योनि संबधी समझे जाते हैं सो सो व्यवहारा ध्यायमें बरान होचुके तहाँ देवों ओत्रियसक शाखा ध्यायी को समझना इनमें से कोई मराहो तो वही एकदिन रात्रिका सूतक मानना जो पूर्वार्ध में कन्या के निमित्त लिखागया था—शुरु कहनेसे मुख्य शुरु पिता भी होताहै तिसका द्यौरा अविक्कोक्ति में ॥ २४ ॥

२४अधिकोक्तिः—एक शाखा ध्यायी को ओत्रिय कहा तिसका प्रसारा बौधायनका वचन है =यथा=एकांशाखामधीते ओत्रियः=अर्थात्—जो ब्राह्मण वेद की एक शाखा पढे सो ओत्रिय होताहै ॥ यद्यपि शुरुका सूतक ऊपर कहिचुके परन्तु शुरु शब्द से पिता भी समझाजावा वरन मुख्य शुरु पिताही होताहै तिसका सूतक ऊपर के शुरु शब्द से एक दिनका नहीं समझना किन्तु पिता के मरने मे पूरा देशदिन का

मितासरा सं० प्रायश्चित्तकांड ।

सूतक आवश्यक है क्योंकि पिता पुत्र में सपिराडता रूपी संबंध बहुत प्रबल है सो ये दशदिन भी सामान्य पिता के मरने में समझने किन्तु विशेष पिता जो महागुरु के लक्षणों से संयुक्त हो तिसके मरने में द्यो दिन और भी अधिक हैं—तथाचञ्चलायनः= द्वादशरात्रं वाममहागुरुयुदानध्ययने वर्जयेत्—अर्थात्—पुत्रोंके लिये जो पिताका सूतक दशदिन कहि चुके तिसमें यह पक्षांतर भी आञ्चलायन दर्शाते हैं कि यद्वा महागुरुओं के मरने में बारह दिन तक दान और अध्वयन कर्म बर्जित रखें ॥ महा गुरु के लक्षणों से संयुक्त पिता वह कहाता है जिसने पुत्रों को जन्म देकर और उनके सब संस्कार करके वेद विद्यार्थे अच्छे पढाय गुनायके फिर उन्हीं पुत्रोंके लिये कोईसी जीविका वृत्तिभी कल्पित करदीहो कि जिसके द्वारा सदासर्वदा निर्वाहचलै तो यह पिता महागुरु कहाता है सामान्य पिता केवल गुरुही कहाते हैं कि जिन से ऐसा उपकार पुत्रोंका न होसकाहो केवल जन्मदेने से गुरु कहाता है (यथाह विज्ञानेश्वराचार्यः) (यस्तुपितापुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्यवेदानध्याप्यवेदार्थं प्राहयित्वावृत्तिंचविदवा तितस्यमहागुरुत्वात्तदुपरमेद्वादशरात्रं वा महागुरुयु दानध्ययने वर्जयेत् इत्याञ्चलायनेनोक्तदृश्यं)—अर्थ लिखचुके बहोदेखो और (पिता एक होताहै • आञ्चलायनके वचनमें महागुरुयु यह बहुत्व भी आचुका तिसका यह तात्पर्यहै कि जहाँकिसी और होने अज्ञोक्त उपकार पिताके स्थानीभूत वनिके किये हों यद्वा स्थानीभूत न होनेपर भी पिताके तुल्य उपकार किये हों तो वही महा गुरु हो सक्ता है तिससे बहु वचन का होना उचित है ॥ आचार्यके मरने में तीन दिन सूतक मानना मनुने कहा है—यथा = त्रिरात्रिमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति तस्यपुत्रे चपत्न्यांच दिवारात्रिर्तिस्थितिः—अर्थात्—आचार्य के मरने में तीन रात्रि का आशौच कहते हैं और जो उसकी स्त्री या पुत्र मरें तो एक दिन रात की मर्यादा है ॥ जो कोई अपने आचार्य आदि का दाह कर्म आदि ऊर्ध्वदेहिक करै तो इनका भी पूरा दशरात्रि का सूतक मानना चाहिये—तदप्याह मनुः—गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधसमारभेत प्रेताहारैः समंत षडशाहेन विशुद्धाति—अर्थात्—यदि कोई शिष्य अपने गुरु का पित्रमेध यज्ञ अर्थात् अग्नि संस्कार आदि कर्म आरंभ करै तो वहभी प्रेतके आहरण करनेवालोंके समान दश दिन में शुद्ध होता है ॥ सत्रह्यचारी और श्रोत्रिय जो समान ग्रामी अर्थात् अपने गाँव में रहताहो तिसका भी एक दिन सूतक होताहै—तदाहञ्चलायनः—एकाहं सत्रह्य चारिणा समान ग्रामीरोचश्रोत्रिये—अर्थात्—अपना सत्रह्यचारी जो एकही अपने आचार्य से जनेऊ विद्याराया हो तिसके मरनेमें एक दिनका सूतक मानना तथारक

सितासुरा म० प्रायश्चित्तकांड ।
भेद से व्यवस्था कल्पित करनेकी चाहिये तो कुछ विरोधनहीं है ॥ २४ ॥ मूलश्लोक
में एक दिन कहा या उसी एक दिवका अतिदेश अगले प्रतीक में भी कहेंगे ॥ २५ ॥

(पूर्व नियमस्यैवातिदेशः)

अनोरसेपुत्रेषुभार्यास्वगतासुच२५ (इतिपूर्वार्धः)

अर्थः—अनोरस पुत्रोंमें और अन्यपुरुषगता भार्याओंमें भी वही एकदिन सूतक हो=अर्थात्—वक्त केषज आदि जो बारह पृथ व्यवहार मर्यादा परिषादी में वर्णित हुये सो औरस नहीं अनोरस कहते हैं तिनको मरनेमें या उनमें यथा संभव किसीका जन्महोनेमें वही एकदिन सूतकहै जो पहिले श्लोकमें कहिचुने तथैव अपनो भार्या जो और किसीके वैदिकहैं तिनके उस घर में मरनेसे भी मुख्य पतिको एक दिन सूतक है (परन्तु जो जंचजाति छोड़ नीच जाति के बैठी हो तिसके मरने में यह नियमनहीं समझना किन्तु ऊंचे वर्ण या समानवर्णके बैठी हो उसीका यह नियमहै) क्योंकि प्रतिलोम जातिके वैदेववाली का सूतक पहिले पतिको नहीं लगता यह छदे मूल श्लोक में नित्येव होचुका तहाँ देखीं भार्या अपने पति की सपिराड होती है उसका सूतक सपिराडतासे पूरा दशदिनहोना योग्यथा सो और के वैदिकानेसे एकही दिन का रहगया जो समान या ऊंची जातिके बैठीहो—तोभी यह उस दशामें समझना कि जित्त भार्या से पहिले पति को किसी तरह का समागम शोयवना हो—पति के सिवाय किसी और पतिके भाई आदि सपिराड को निषेध सूतक ऐसी स्त्रियों का नहीं है अधिकोक्ति देखीं ॥ २५ ॥

२५ अधिकोक्तिः = अत्रप्रजापतिः = अन्याश्रितेषुदारेषु परपत्नीयुतेषुच । गो विराःस्नानशुद्धांस्त्रिखिरात्रैर्वैवत्पिता = अर्थात्—प्रजापतिके वचनहै कि जो और किसीके बैठी हुई स्त्रियाँहैं तिनमें पराई पत्नोके मरनेमें गोत्री लोग स्नानमात्र से शुद्ध होजायेंगे परंतु उनके पिता तीन रात्रि से शुद्धहोंगे ॥ स्त्रैरिणी आदि स्त्रियाँ जिसके घर बैठीहों तिसको उनके मरने में तीन दिन सूतक होताहै = यथाह विष्णुः = अनोरसेषुपुत्रेषुजातेषुचमृतेषुच । परपूर्वासुभार्यासुप्रसूतासुभृतासुचेतिविराजन्मप्रवृत्तः अर्थात्—अनोरस पुत्रोंके मरने या जन्म होनेमें भी और भी पर पूर्वा भार्याओंके मरने या प्रसूत होनेमें भी तीन दिन सूतकहै जो पहिले किसी वचनमें कहा होगा=यहाँपर विष्णुने उन्हींको तीन दिन कहै जित्तको योगीश्वरने एक दिन कहा था तो यह व्यवस्थाभी समीप और विदेशके भेदसे दोनों टीक समझनी कि जो विदेशने मरा तिस-

का एकही दिनमानै जो ससीप मरा तिसके तीन दिन मानै (परपूर्वा स्त्रियां ब्रे कहाती हैं जिनके पहिला पिच्छता दो पतिहों) पतिहत्वाऽप्यक्तपंस्वसृष्ट्यनियेवते परपूर्वे तिसाप्रोक्ता = अर्थात्-परपूर्वा वह कहाती हैं जो अपने खोटे पतिको छोडिके उत्तम किसी दूसरे को रोवन करें ॥ परपूर्वा स्त्रियोंके प्रसूत या मरने का सूतक उनके पिता को यद्यपि तीन दिन कहा गया परंतु बहिन भाई आदि अन्य सर्पिंडोंको एकही दिन का जैसा सर्पिच का यह वचन है कि = सूतकेमृतकेचैवशिराशंपरपर्वयोः एकाहस्तु सर्पिंडानांशिराशंपरपर्वेषु = अर्थात्-परपूर्वा स्त्रियोंके प्रसूतहोने या मरनेमें पहिले पिच्छलं दोहों पतिको तीन दिन सूतक होय और एक दिन उन्हींके सर्पिंडोंको सूतक है कि जहां उनके पिताको तीनदिनकहेगये-यह पूर्वार्द्धकी अधिकोक्ति पूरीहुई ॥२५॥

(देशाधिपस्यमरणाशौचं)

निवासराजनिप्रेते तदहःशुद्धिकारणम् २५

अर्थः-निवास का राजा मरने में वही दिन शुद्धिका कारणा है = अर्थात्-जिन देशमें अपना निवासहो उस देशका राजा मरै तो वही दिनसाय श्राद्ध होजाने का हेतु है रात्रि इसमें नहीं समुक्तनी किंतु रात्रिमें राजा मरा और उसी रात्रिमें साहादि कर्म होगये हों तो वही एक रात्रि प्रजासायके शुद्ध होजाने का हेतुहै ॥ २५ ॥

२५ अधिकोक्तिः-समुद्रप्याह-प्रेतेराजनिमज्ज्योतिर्यस्यस्या द्विययेस्थितः-अर्थात्-मनुष्य जिसके राजमें रहिताहो उस राजाके प्रेत होनेमें मज्ज्योति सूतक रहिता है अर्थात् ज्योतिर्य नाम प्रकाश का कि जो सूर्य चंद्र आदि से होता है तिससे यह तात्पर्य ठहिरा कि जो दिनमें राजा मरै तो जब तक सूर्यका प्रकाश बनारहे तबतक प्रजा को सूतक है जो रात्रि में राजा मरै तो जब तक नक्षत्रों का प्रकाश बना रहे तब तक सूतक है ॥ २५ ॥

(अनुगमनाशौच नियमाः)

ब्राह्मणेनानुगतं व्योमशूद्रेनादिज-कचित् । अनुगम्यांभस्मिन्नात्वाष्टप्लविंघृतभुक्तशुचिः २६ ॥

अर्थः-ब्राह्मणकारके न श्राद्ध अनुगतं व्योम है न कहींकोई द्विजनाय, अनुगमनकारके भी जलमें स्नान करके अग्निका स्पर्श करके घृत भोजन से पवित्र होय-अर्थात्-ब्राह्मण जो किसी का सर्पिण्ड न हो तो असर्पिण्ड किसी श्राद्धके मुर्दा साथ न जाना चाहिये न किसी द्विजाती के मुर्दा साथ परंतु जो स्नेह आदि कारणां से जाना पड़े

सूतक हो (योनि संबंधा सातुल साहज्वस्त्रीयपितृवस्त्रीयादयः) अर्थात् माना भावसी
 पूआ आदि रिशते योनि संबंधी कहते हैं = तथा जाबालिः=सक्तोदकानांतुव्यहोगोत्र
 जानासहःस्मृतव साहज्वंधीगुरौमित्रे मंडलाधिपतौ तथा = अर्थात्—जाबालि कहते हैं
 कि जो समानोदक सरें तिनके लिये तीनदिनका सूतक है इनके उपरालू यदिगोत्री
 सरें हों तो एकहीदिनकहा है और साताको वंदुमरने में या गुरुको मरने में या मित्रको
 मरनेमें तथा मंडलाधिप एक राजा को मरने में भी कि जो चारसौ योजन धरती का
 अधिपतिहो = विठशास्तु = अर्थात्पंडेस्त्रवेप्रमनिभृते एकरावम = अर्थात्—जो अपना
 सर्पिंड नहीं है वही अपने घर में रहके सरें तौभी एक दिनका सूतक है—तथा वृहः=
 भगिन्यांसंस्कृतायांतुभ्रातर्यापचसंस्कृते मित्रेजासातरिप्रेतेदौहित्रैर्भगिनीभृते शालके
 तत्सुते चैवसद्यःज्ञानेनशुद्ध्यात् • ग्रामेश्वरेकुलपतौ ग्रामियेचतपस्त्विति शिष्येपंचत्वमा
 पक्षशुचिर्नस्यदर्शनात् • ग्राममध्यगतोयावच्छवस्ति यतिकस्यचित्त ग्रामस्थतावदाशौ
 चंतिगतेशुचितामियात् = अर्थात्—विवाहहृषी संस्कार करी वहिन के मरने में या
 उपनयन हृषी संस्कार किये छोटे भाई के मरने में या मित्र के मरने में या जमाई
 के मरने में या धेवताके मरने में याभानजेके मरने में या शालके मरने में या शालेका
 पुत्र सरजाने में सुनते सात्र गद्यही ज्ञान करके शुद्ध होजाता है और ग्रामेश्वर गाव के
 ठाकुर मरने में या कुल पति जो सेना आदि किसी जनसमूह का अधिध्याता हो तिसके
 मरने से या ग्रामिय के मरने में या किसी प्रसिद्ध तपस्वी के मरने में या शिष्यके मर-
 जाने में नसत्र दर्शन करके शुद्ध होता है अर्थात् जो रात्रिमें मरना सुनाहो तौ नसत्रों को
 दर्शन करिके सो जाने मात्रसं शुद्धि होती है दूसरे दिन ज्ञान अपने नामली समय पर
 होगा अन्यथा जो दिवस मे सुनाहो तौभी नैतिक ज्ञान करने पश्चात् रात्रि में
 नसत्र दर्शन होनेपर सूतक मिला समझा जायगा और विशेष इसमें यही तात्पर्यहै कि
 सूतक निमित्त का ज्ञान करना आवश्यक नहीं किन्तु स्वानका स्थानीभूत नसत्रोंका
 दर्शन कहा है और भी ग्राम के बीच चाहे किसी जातिका मुर्दाहो जबतक धँसा रहे
 तबतक ग्राममात्र को सूतक है कि उतनी देर कुछ कामधंवा न कियाजाय फिर उस
 मुर्दाके निकसि जानेमें स्नानकिये बिनाही समस्त ग्राम को पवित्रता प्राप्त होती है—
 इन वचनोंको आदि लेकर और भी अनेकस्मृतियों को ऐसे वचनहैं जो यहाँ पर ग्रन्थ
 बहिजाने के संदेह से नहीं लिखे जो जो यहाँ नहीं लिखेवेही जबकहीं देखिपरें तिनमें
 और लिखेगये तिन से जो जो सऊ ही विषय पर छोटा बड़ा शौच कल्प कई भेद से
 परस्पर विशेषी देखिपरें तिस को विशेष की खबर पाने या समीपही नौत देखने के

ही दिन समान ब्राह्मणा योजिय के मरनेमें भी=यह नियम जोजो एक दिनका कहा सो दूर कहीं देशांतर में मरना सुनिके मानना कहा गया किंतु पासही मरने में तीन दिन आदिका सूतक नियम जुदा है=तदाहमनुः=योजियेतुपसंपन्नेविराजसशुचिर्भवेत् सातुलेपक्षिणीरात्रिं शिष्यात्त्वरवांधवेयुच=उपसंपन्न योजिय के मरने में तीन दिन अशुद्ध होवै और मासा के मरनेमें पक्षिणीरात्रि जिसके आगे पीछे दोनों दिवस मिलेहैं ऐसा बारह प्रहर का सूतक होय तथा शिष्य ऋत्विक् बांधव इन के भी मरने में बारह प्रहर समभक्ते (उपसंपन्न विशेषण का यह तात्पर्य है कि जो विशेष मंत्रो भाव रखता हो या घर में आना जाना जिसका अर्थिक हो इत्यादि प्रकारों से स्नेह जिसका प्रत्यक्षहो सो उपसंपन्न है) औरभी (सातुल कहनेसे केवल सामान नहीं किंतु माता की बहिन आदि भी समभक्ती—और बांधव जो कहे सो अपने और पिता के और माताके ये तीन भौति बंधुहोतेहैं व्यवहार मर्यादा परिपाटीमें देखो)=यहोनियम जो कहिचुके तिसका प्रमाण आगे वृहस्पतिका वचन है=यथा=ग्रहमातामहाचार्यश्रीविषेण्वशुचिर्भवेत्=अर्थात्—नाना आचार्य योजिय इनकेमरनेमें तीनदिन सूतक राखै=तथा प्रचेताः=मृतेचत्विर्जिजाय्येच विरावेराविशुद्यति=अर्थात्—प्रचेता नै भी कहा है कि ऋत्विज याज्य इनके मरने में तीन रात्रि से यिगुह होय=वृहद्वृहस्पति स्तु=संस्थितेपक्षिणीरात्रिदोह्रिभेभगिनीसुते सस्तुतेतुविराजंस्यादितिवर्भाण्यवस्थितः पितोरुपरमेस्त्रीसासुदानांतुकथमवेत्त्रिरात्रेरात्रिशुद्धिःस्यादित्याहभगवाचयमःचशुरयो भंगिन्यांचसातुजान्यांचसातुले पित्रोस्वसरित्त्रचपक्षिणीक्षपयेन्निशास=तथा=सातुलेचशुरेमित्रेगुरोर्गुर्वगनासुच अशौचंपक्षिणीरात्रिसूतासातानहीयदि=अर्थात्—धेव ते और भानजे के मरने में पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर सूतक मानै परंतु जो इनके संस्कार हो चुकेहों तो तीनदिन सूतक मानै यह मर्यादा है। माता पिता के मरने में विवाही कन्याओं को केसा सूतक होय इसके मध्ये सासात्र यमराज का कथनहै कि तीनदिन सूतक मानै सासु ससुरके मरने और बहिन के मरने और मासा मासोके मरने में तथैव पिता या माता की बहिन के मरने में पक्षिणी रात्रि का बारह प्रहर सूतक मानै = तैसा = और यह वचन है कि मासाके मरने या ससुरके मरने या मित्र के मरने या गुरुके मरने या शुरानी के मरने में या जो नानी मरी हो ती भी पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर सूतक मानै = तथाच गौतमः = पक्षिणीमसपिंडेयोनिसं बंधेसहाध्यायिनिच = अर्थात्—जो अपने सपिंड न हों किन्तु योनिसम्बन्ध के रिशतेदार हों तिनके मरने तथा सहाध्यायी के मरने में पक्षिणी रात्रिका बारह प्रहर

साथ जाने से एक दिन रात्रिभर आठपहर तक अशौच लगे और एकवर्षा बीच में अंतर देकर जो शुद्ध है तिसकी मुर्दासाथ जाने में सत्रीको बारह पहर सूतक लगे तथा वैश्यको भी अपने अनन्तर शुद्ध वर्णों के मुर्दासाथ जाने में एकही दिन आठपहर तक अशौच होगा यह कल्पना कर्त्तव्य है ॥ विराने मुर्दोंको रोने मध्ये पारस्करका वचन है = यथा = मृतस्यवांश्वैःसार्द्धं कृत्वातुपरिदेवनस बर्जयेत्तद्दहोरात्रं दानंयाद्वादिक मर्च = अर्थात्—किसी मरेहुये के वान्श्वर्षों साथ मिलि के जो कोई रोवै पीटै सो इस परिदेवनको करने के हेतुसे उस दिनका दिवस तथा रात्रिभी दान और याद आदिकर्म करने बर्जित राखै क्योंकि सूतकी दहरा ॥ विराने प्रेत को अङ्गार आदि भी करना नियिद्ध है क्योंकि शंख ने अशौक्त वचन से प्रायश्चित्त कहा है = यथाह शंखः = कृच्छ्रे पादोसपिण्डस्य प्रेतालंकारसोक्तते अज्ञानादुपवासःस्यादशकौस्नानमिष्यते= अर्थात्—असपिंड किसी गौर सजाती के प्रेतका अलंकार सुधारने करने में कृच्छ्रचा द्रायणा व्रत……का एक पाद किन्तु चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये जो इस क्षेय को जाने बिना सेसा किया हो तो उपवासमात्र करके शुद्ध होय परंतु जिसको कृच्छ्र या उपवास करने की शक्ति किसी हेतुसे न हो सो स्नानमात्रकरै ॥ इस अधिकोक्ति के विचार समय चौदहवीं अधिकोक्तिभी देखो तथासबहवीं अधिकोक्ति का अंतिम भाग देखो ॥ २६ ॥

अगले प्रलीक में यह वर्णन करैगे कि विरले सपिंडोंकोभी सपिंडों का सूतक नहीं लगता तिससे उनके लिये अशौच का अपवाद समझना ॥ २६ ॥



तो नदी तडाग आदि में स्नान दुबारा किये पीछे अग्नि को स्पर्श करे फिर घृतप्राशन करे तब शुद्ध होता है सो यह नियम भी अपनी समान जाति और अपना से ऊँची जातिका विषय समझना ॥ २६ ॥

२६ अधिकोक्ति = मनुष्याह = अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च स्नात्वा
 मर्चैः तः स्पृष्ट्वा शानं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति = अर्थात्—अपनी इच्छा से जाति या गैर
 जातिके मुर्दा साथ जायके दस्तों सहित स्नान करके और अग्नि का स्पर्श करके घृत
 चादिके विशुद्ध होता है (अत्र ज्ञातयो मातृसपिंडाः इतरे यांतु विहितत्वाद्न दोषः इति वि-
 ज्ञानेश्वराचार्यः) अर्थात् श्रीमद्विज्ञानेश्वरने यह भी कहा है कि यहाँ पर जाति शब्दसे
 साता के सपिंड समझने जिनके साथ जानेका यह प्रायश्चित्त कहा क्योंकि औरों
 के साथ जानेका नियम कह चुकने से कुछ दीयही नहीं) समान और ऊँची जाति
 का नियम यह कहा गया अब नीची जाति के मुर्दा साथ जाने मध्ये स्मृत्यंतर वचन
 कहते हैं—यथाह पराशरः—प्रेतो भूतंतु यः शुद्धब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः अनुगच्छेत्नीयमानं सचि
 रावेश्य शुद्ध्यति विराप्रेतु ततश्चोरां नदीं गत्वा समुद्रगामप्रसायासमत्तं हत्वा घृतप्राश्य वि-
 शुद्ध्यति—अर्थात्—सरे हुये शूद्रको लेजाते समय जो कोई ब्राह्मण जानसे हीन होकर
 साथ चला जाय सो तीन दिन में शुद्ध होता है तीन रात्रि बीत जाने बाद रेसी नदी से
 जाकर सोता लगावे जो समुद्रमें जाँभे सोही फिर एकसौ प्रसायास किये पीछे घी
 पीकर शुद्ध होता है—यहाँ पर विज्ञानेश्वर कहते हैं (सचियानुगमनेत्वहोरात्र) कि
 सत्री मुर्दाके साथ जानेमें ब्राह्मणको एकदिन रातिभर चाटपड़र तक अगुहता रहती
 है क्योंकि अशुद्धका यह अग्नि नावचन प्रसारा है) यथा—सानुयास्त्यिह स्वस्पृहा शिराग
 नाशौचं अस्त्रिगधेत्वहोरात्रं शवानुगमने चैव = अर्थात्—मनुष्यका हाड गोला छुडकर
 तीन रात्रिकी अशुद्धता और सूखाहाड छूनेमें एक दिन रात्रि की अशुद्धता और मुर्दा
 के साथ जाने में भी इसी प्रकार (यद्यपि वैश्विके इस वचन में सत्री का प्रसंग नहीं
 आया है तथापि इस प्रायश्चित्त काराड में विराने लेखपर इसकूछ तक उठाना नहीं
 चाहते हैं कदाचित्त ऐसा सद्विषयल आचार व्यवहार से होता तो स्वबुद्धिको विस्तार
 दिव्ये विना न रहते विवेकी पुरुष आपही मन न कासके से) पुनरपि विज्ञानेश्वरः—वैश्या
 नुगमने पुनः पक्षिणीतया क्षत्रियस्यानंतरं वैश्यानुगमने अहोरात्रमेकांतरं शूद्रानुगमने प-
 रिसरावैश्वस्य शूद्रानुगमने सकाह इत्यहनीयस = अर्थात्—फिर भी विज्ञानेश्वर ने यह
 लिखा है कि ब्राह्मण जो वैश्विके मुर्दा साथ गमन करे तो पक्षिणीनामकरा विद्वीवारह
 प्रहर तक अशुद्धि मानो जाय तथा सत्री को भी अपने से धनतर वर्रां से वैश्विकी मुर्दा

सवियादीनां शौचं तैराशौचं न कार्यामित्यर्थः तथा विद्युद्धतानां गोब्राह्मणारक्षणा
 र्थं विपन्नानां च संबन्धिनो ये सपिराडस्तैरप्याशौचं न कार्यामित्यर्थः—प्रलोक में पहिले
 पाद का अर्थ जो आधुनिकने लिखा वही विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि महीर्षतियों
 को किसीका सूतक न मानना चाहिये सोती निःसंदेह अविरोधी है तथैव चौथे चरणा
 का भी अर्थ उभयत्र अविरोधी समझना—किंतु बीचके दो पाद में विरोध है जैसा
 विज्ञानेश्वरने यह कहा कि—विजली के मारे हुयोंके संबन्धी सपिराड लोग उनका
 सूतक न मानें तथा गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राम करतेहुये लडाईमें जो मरे
 हों तिनका भी सूतक उनके सपिराड लोग न मानें (वसयही इतना विरोध है) इस
 विरोधके प्रत्येकपदमें बड़ेबड़े शास्त्रार्थद्वे आधुनिक लेखक यद्यपि प्रायश्चित्त विषय
 पर शास्त्रार्थ खडा करना नहीं चाहता है तथापि लेखनी अपने सद्भाविक स्वभाव से
 मानती नहीं है—तिससे शोचना चाहिये कि प्रथम तो यही एक दृश्य आता है कि
 सकस्यलमें दो वस्तु टहिरौं अर्थात् राजा तो आपही सूतक न मानें और उसकेसाथमें
 जो अन्यपुरुष कहेगये तिनके सपिराडलोग उनकासूतक न मानें याज्ञवल्क्य योगी-
 श्वरका यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि जिनका सूतक सपिराडों को न मानना चाहिये
 तिनके लसरा इक्कीसवें मूल प्रलोक पूर्वार्ध में कहि चुकेहैं उसीकी अधिकोक्ति भी
 देखौ कि वहाँ कुछ और ही नियम कहागया था यहाँ दूसरा कार कहिना सम्भव
 नहीं है— यहाँ केवल उन्हीं कर्त्तारोंका चर्चा है कि जिनको आपही किसीकासूतक
 न मानना चाहिये दृष्टांत जैसे राजाको किसीका सूतक न मानना कहा तैसा औरोंको
 भी समझना— इसके सिवाय इस अर्थमें संग्राम शब्द जो स्वयं आधार भूत है तिसके
 साथ गऊ ब्राह्मण का अर्थ मात्र विशेष्य विशेषया मानकर इत शब्द के योगसे
 निपट उन्हीं का सजाना सिद्ध कियागया कि जो सूतक न मानने के अधिकारी
 आप जीतेरहिकर योगीश्वरने दर्शाये हैं सो यह अर्थ इसी हेतुसे विरुद्ध टहिरा कि इत
 का अर्थ निपटमाराजानाही नहीं बल्कि तांडित पिटा अथमरा आदिभी होते हैं तथैव
 संसार में भी देखौ कि विजली की चपेटसे मारेहुये भी बहुधा जीते रहितेहैं उन्हीं का
 प्रयोजन यहाँ मुख्य है ऐसेही प्रसिद्ध है कि संग्रामसे भी जो पिटे अथमरेआदि जीते
 लौटतेहैं वेभी इत कहातेहैं, औरभी गऊ ब्राह्मणके उपकार में लगेहुये मात्र का चर्चा
 हेतु गर्भित है उसमें कुछ हतहुयेका सम्बंध नहीं है औरभी इस बात का प्रमारा देखौ
 इक्कीसवीं पूर्वार्ध की अधिकोक्ति में (यह बचन (ब्राह्मणार्थविपन्नानां योयितानो
 ग्रहेपि च आह्वेपि हतानां च गक्राशमशौचकं) लिखचुकेहैं) उभी जये गीतस का

अथसद्यःशौचव्यवस्थाकथने तृतीयःपरिच्छेदः ३

—*—

(इस परिच्छेदमात्र में सब तरह के सद्यः शौचकहेजायेंगे कि अमुकामुक मनुष्यों को तत्कालभी शुद्धि प्राप्त होती है कि वे दशदिन आदिके बन्धनमें नहीं रहिसक्ते— तथा बिरलेस्थलभी सद्यःशौचकहेजायेंगे इकीसर्वे मूलश्लोक पूर्वार्धसे उसकी अधिकोक्ति में जो सद्यःशौचका प्रसंगथोडासा आयाथा वह केवल उन्हीं प्रेतोंकाप्रसंगथा किजिनके लिये हर कोई सद्यःशौचहोसक्ता)

(केचित्सपिण्डाप्रपिसद्यःशौचाः)

महीपतीनांशौचंहतानांविद्युतातथा । गोब्राह्मणार्थेसंग्रामेयस्यचेच्छतिभूमिपः २७

अर्थः—मही पतियों को अशौच नहीं है तथा विजली से मारेहुयों को और राज ब्राह्मण के अर्थ में उपयुक्त और संग्राममें उपस्थित वा हतहुयों को और जिस को मृतपतिचाहै तिसको भी मृतक नहीं =अर्थात्—राजाओंका यदि कोई सगोत्री वा सपिंड मरै तौभी उनको मृतक नहीं लगता तथैव जिनको विजलीने सिर्फ चपेट मारी मरने से बचिगये पर स्नान आदि किया करने योग्य शक्ति उनमें नहींरही तिससे ऐसीदशा में यदि कोई सपिण्ड उनका मरा हो तौ इन विजलीसे मारे हुयों को भी मृतक नहीं लगताहै एवं जे कोईपुरुष राज या ब्राह्मणको किसी ऐसे उपकारमें लगेहौं जिनको मृतक मनाने का अवकाश न हो या मृतक मानने से उपकार में विघ्न होना संभव हो तौ इनको भी मृतक नहीं लगता है एवं जे कोई शूर वीर युद्ध में उपस्थित हों या युद्ध से कुछ घायल होकर घर आये हों तिसका कोई सपिण्ड यदि इसी अवसरमें मरै तौ उनको भी मृतक नहींलगताहै एवंजिसकिसी मही पुरोहित हाकिम अहल्कार आदि को राजाचाहै कि (इसको हुडी देनेसे राज कार्यमें बहुत बड़ी हानि होगी तिससे यह मृतकियोंमें न शामिल हो) तौ इनकोभी सपिण्डोंके मरनेमें इनको मृतक नहींलगता है ॥ यहाँपर विघेकीजनोंको विचारकरनाचाहिये कि आधुनिक लेखकने यही अर्थ अपनीबुद्धिसे ठीकसमझा सो लिखा—परंतु मुख्य सितासराकारने अन्य व्याख्याकरी हैं सोभी लिखे देतेहैं कि दोमें जो ठीक हो वही स्वीकारकरना ॥ यथाहविज्ञानेद्यः--

सधियादीनानां शौचं तैराशौचं न कार्यमित्यर्थः तथा विद्युद्धतानां गोब्राह्मणारक्षणा
 र्थं विपन्नानां च संबन्धिनो ये सपिराडास्तैरप्याशौचं न कार्यं—अर्थात्—प्रलोक में पहिले
 पाद का अर्थ जो आधुनिकने लिखा वही विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि महीपतियों
 को किसीका सूतक न मानना चाहिये सोतो निःसंदेह अत्रिरोधी है तथैव चौथे चररा
 का भी अर्थ उभयत्र अत्रिरोधी समझना—किंतु बीचके दो पाद में विरोध है जैसा
 विज्ञानेश्वरने यह कहा कि—विजली के सारे हुयोंके संबंधी सपिराड लोग उनका
 सूतक न मानें तथा गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राम करतेहुये लडाईमें जो मरे
 हों तिनका भी सूतक उनके सपिराड लोग न मानें (वसयही इतना विरोध है) इस
 विरोधके प्रत्येकपदमें बड़ेबड़े शास्त्रार्थहैं आधुनिक लेखक यद्यपि प्रायश्चित्त नियय
 पर शास्त्रार्थ खडा करना नहीं चाहता है तथापि लेखनी अपने सद्भाविक स्वभाव से
 मानती नहीं है—तिससे शोचना चाहिये कि प्रथम तो यही एक दूयगा आताहै कि
 एकस्थलमें दो वस्तु ठडिहीं अर्थात् राजा तो आपही सूतक न माने और उसकेसाथमें
 जो अन्यपुरुष कहैगये तिनके सपिराडलोग उनकासूतक न मानें याज्ञवल्क्य योगी-
 श्वरका यह तात्पर्य नहीं है क्योंकि जिनका सूतक सपिराडों को न मानना चाहिये
 तिनके लक्षणा इक्कीसवें मूल प्रलोक पूर्वार्ध में कहि चुकेहैं उसीकी अधिकोक्ति भी
 देखी कि वहाँ कुछ और ही नियम कहागया था यहाँ दूसरा कर कहिना सम्भव
 नहींहै—यहां केवल उन्हीं कर्त्तारोंका चर्चाहै कि जिनको आपही किसीकासूतक
 न मानना चाहिये दृष्टांत जैसे राजाको किसीका सूतक न माननाकहा तैसा औरोंका
 भी समझना— इसके सिवाय इस अर्थमें संग्राम शब्द जो स्वयं आधार भूत है तिसके
 साथ गऊ ब्राह्मण का अर्थ साथ विरोध्य विशेषण मानकर इत शब्द के योग से
 निपट उन्हीं का मरजाना सिद्ध कियागया कि जो सूतक न मानने के अधिकारी
 आप जीतेरहिंकर योगीश्वरने दर्शाये हैं सो यह अर्थ इसी हेतुसे विरुद्ध रहिरा कि इत
 का अर्थ निपटमाराजानाही नहीं बल्कि ताडित पिटा अथमरा आदिभी होते हैं तथैव
 संसार में भी देखी कि विजली की चपेटसे मारेहुये भी बहुधा जीते रहितेहैं उन्हीं का
 प्रयोजन यहाँ मुख्य है ऐसेही प्रसिद्ध है कि संग्रामसे भी जो पिटे अथमरेआदि जीते
 लौटतेहैं वेभी इत कहातेहैं. औरभी गऊ ब्राह्मणके उपकार में लगेहुये माव का चर्चा
 हेतु गर्भित है उसमें कुछ हतहुयेका सम्बंध नहीं है औरभी इस बात का प्रमाण देखी
 इक्कीसवीं पूर्वार्ध की अधिकोक्ति में (यह वचन (ब्राह्मणार्थविपन्नानां योयितांगो
 ग्रहेपिच आहवेपिदतानां च एकराधनशौचकं) लिखचुकेहैं) उभी जघे गौतम का

वचनहै उनमें हत शब्दसे निपटसरेहुयेकाही अर्थ है पर यहाँ नहीं और उन वचनों से युद्ध में सगेहुयों का नियम सामान्य भावसे कहिचुके हैं यहाँ उसका सम्बन्ध निपट कुछ नहीं है फिर गऊ ब्राह्मण के निमित्त से संग्राम को विशेषता देनेकी अपेक्षा कहाँ रही और भी उसीजघे मनुका वचन देखौ कि संग्राम के सरेहुये का सपरिहों को सद्यःशौच और तत्काल यज्ञ करना लिखिचुके फिर उस प्रकारका प्रसंग यहाँ इतनी दूर दुवारा क्यों कर आसक्ता या अर्थात् यह प्रकारा उससे जुदाहै इसका उस का परस्पर भी संबन्धनहींहै—और विजलीसे मर जाना आदि अकाल मृत्युका निपटारा कही अधिकोक्ति में होचुका तहाँ देखौ किंतु यहाँ विजली से घायलहुये जीवतेका प्रसंग है कि वह मृतक में भी स्नान करनेसे मञ्जूर है तिससे इनअत्रोक्त सब नियमों के प्रसंग में हत शब्दका अर्थही मीत न समझना—अथवा जो आधुनिक निर्राताके विचार में कुछ अंतर पायाजाय तोभी विवेक्ता लोग समायुक्त होकर दो अर्थों में जिसको चाहें तिसको मानें कुछ विशेष आग्रह से प्रयोजित अपने को नहीं हैं ॥ अब इसकी अधिकोक्ति देखौ ॥ २७ ॥

२७ अधिकोक्ति:—सहीनाम धरती का पति राजा ऊपर कहागया तहाँ सही शब्दसे यद्यपि सकल पृथ्वी समझी जाती है तथापि समस्त भूगोल का एक राजा होना सम्भव नहींहै इसीलिये योगीश्वर के श्लोक में सहीपतीनां यह अनेक पतियों का बहुवचन कहाहै तिससे एकएक देशके जुदे जुदे भूराजल निश्चित होते हैं कि जिस किसी देश के पालन में सबी आदि कोई राजा अभियेक से संयुक्त क्रियागया हो वही सहीपति कहाता है - सहीपतियों को सूतक नहीं लगता यह नियम केवल इसलिये है कि प्रजाकी रक्षा आदि विशेष बड़ेकाम जिनकी राजाके सिवाय कोई और नहीं करसक्ता तिनका विध्वंस न होजाय तिससे यह भी तात्पर्य है कि जिस राजा को दानमान सत्कार व्यवहार दर्शन आदि जिन विशेष कामों के प्रभाव से अशौच मानने का अवकाश न हो वही राजा केवल उन्ही कामों मध्ये सूतक न माननेका अधिकारी होसक्ताहै अन्यथा पंचमहायज्ञ आदि सभी कामों मध्ये सूतक न मानना कोई नियम नहीं है इसका प्रसारा भी अत्रोक्त मनुका वचन है—यथा= राज्ञोमहात्मिकस्थाने सद्यःशौचंविधीयते प्रजानांपरिस्वार्थं मासनंचावकारणम्= अर्थात्—राजाको बहुत बड़े कार्य की आवश्यकता के स्थानपर सद्यःशौच कहाजाता है दृष्टान्त जैसे प्रजाओं की विशेष रक्षा के लिये इसमें आसन भी बड़ा कारणा है—यहाँ आसन शब्द से कई अर्थ लिये जासकतेहैं जैसे सूतक में आसन सिंहासन सही पर

वैदेविना रक्षाके व्यवहार नहीं निर्णय होसकते या जैसे सूतक होनेपर भी आवश्यक राजगद्दी का तिलक अभियेकोत्सव किये बिना वर्ग में गदर खडा होजाना सम्भव है या जैसे राजनीति के यद्गुणों में (संविनीविप्रहोयान सासनैधमाययः) आसन भी एक गुण है कि शत्रुके दुर्गदेश आदि को धेरिके आसन करि बैठे बिना संप्रति प्रजा को रखा हेनी सम्भव नहीं है उसीसमय यदि सूतक उत्पन्न हो कोंकर माना जासकताहै इत्यादि=यही प्रनारा गौतमनेभी कहा है=यथा=राजांचकार्याविघातार्थ=अर्थात्-राजाओं को सूतक नहीं यह केवल इसलिये है कि बड़ेकामों का विघात न होने पावे ॥०॥ यह ऊपर लिखा गया था कि जिसको राजा चाहै तिसको भी सूतक नहीं लगता है इसमें विशेष अपेक्षा संधी पुरोस्ति आदिको होती है सो तो लिखी गई पर उनके सिवाय और भी अनेक ऐसे होतेहैं जिनके बिना राजा के कामनहीं चलसकते हैं सो सब अगले बचनों में देखी=यथाह प्रचेताः=कारव.शिल्पि नोधैद्या दासीदासास्तयेवच राजानोराजभृत्याश्च सद्य शौचाःप्रकीर्त्तिताः=अर्थात्-प्रचेताने कहाहै कि एक ती कारु पेशेवाले सूपकार आदि और शिल्पी चित्रकार छोपी रंगरेज आदि और वैद्य प्रसिद्धहे दास दासी राजालोग तथा राजाओं के भृत्य वर्ग अनेक मुसाहिब सेवक आदि ये सब सद्य शौचा कहेते कि उता समय शुद्ध हो जातेहैं ॥०॥ यह बात समझनी आवश्यक दहरी कि इन लोगोंका अशुद्ध न होना किनत्रातों में मानाजाय किनमेंनहीं सोकहितेहै कि जिसजिसका जोजो मुख्यकर्महै जिसके नामसे प्रसिद्ध हों कि जिसका होना अन्यके द्वारा सम्भव नहीं उषी कर्म के मध्ये सूतक नहीं लगता-इनके दृष्टांत भी प्रत्यक्ष रेल तार डाक आदि कारखानों से समझते इसी लिये अशुक्त विष्णु का वचन है=यथा=नराज्ञाराजकर्मीणानव्रति नां व्रतेनसत्रिणांसत्रेनकारूणांकारुकर्मिणा=अर्थात्-राजाओं को मुख्य राजकर्म के मध्ये सूतक नहीं है चांद्रायरा आदि व्रतवालों को अपने व्रतके मध्ये नहीं है सत्र यज्ञ कर्त्ताओं को सब में सूतक नहीं कारीगर आदि को अपने मुख्य कामों में सूतक नहीं-जब यह नियत विषय दहिंरा तो यह भी तात्पर्यहै कि नियतकामोंके सिवाय अन्यत्र सूतक इनको भी होताहै दृष्टांत जैसे चिकित्सक चिकित्सा कर्म करने के स्थलपर होनेयोग्य शुद्ध दहरेगा अन्यत्र अपने घरमें वह भी अशुद्ध है=यही भाव शातातप ने दर्शायाहै=यथा=मूल्यकर्मकरा शूद्रादासीदासास्तयेवच स्नानेगरीरसंस्कारे गृहकर्मण्य दूयिताः=अर्थात्-मजूरीसे कामकरने वाले शूद्र और दास दासी ये विराने घरके कामों में अपने स्नान मध्ये और शरीरके शुद्धिरूप संस्कारों मध्ये अद्-

यित हैं इनसे काम करानेमें दोयनहीं विज्ञानेय कहते हैं कि इन दासादिकोंकी शुद्धि अशुद्धि मध्ये विशेष उपाय कोई नहीं है कि इनको छूनेसे कोई वचनके द्वारा कि बहुधा गृहस्थों के काम धन्धे इनके बिना ही भी नहीं लगे हैं तिससे जिन कामोंमें छूनेका बचाव निपट न होसक्ता हो उन्हीं में शुद्ध समझना सर्वत्र नहीं—इसी आशयपर किंसी स्मृति का यह वचन है—यथा—सद्यः स्पृशयोगर्भदासो भक्तदासस्यहाच्छुचिः—तथा—चि कित्सकोयत्कुरुतेतदन्येननशक्यतेतस्साचिकित्सकःस्पर्शोशुद्धोभयतिनित्यशः—अर्थात्-गर्भदास गृहजात नामक जो घरकी दासीके उदरसे उत्पन्नहो तिसको किसी कालमें जब स्तनक लगाहो तो वह शीघ्रही छूनेयोग्यहै क्योंकि वह भी घस मनुष्योंके अनु-छप है उसके छूने बिना बहुतेरे कामोंकी हानिहोगी परन्तु भक्तदास जो अन्नमायपाने के स्वीकारसे दासहोताहै वह तीनदिनमें शुद्धहोय (यहाँसद्यःशौचकेप्रसंगमें तीनदिन का कोई सिद्धांत विशेष नहीं पायाजाता है या यह प्रलोकही असंगत हो विवेकी पुरुष आपही समझें) तथा—यह दूसरा वचन पूर्वोक्त दृष्टांत में प्रसारिकाहै कि वैद्य जिस चिकित्सा रूची कामको करता है वह और किसीसे नहीं किया जासक्ता तिससे वैद्य अपने कामके स्थलपर छूनेमें हमेशा शुद्ध माना जाता है ॥ २७ ॥

(अन्योपिसद्यःशौचाःपुरुषविशेषाः कर्मस्थलानिचसद्यःशुचीनि)

ऋत्विजादीक्षितानांचयज्ञियकर्मकुर्यताम् । सतिव्रतित्ब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदोतथा २८

दानेदियाहेयज्ञेचसंग्रामेदेशविद्वये । आपयपिहिकष्टायांसद्यःशौचंविधीयते २९

अन्यार्थः—यज्ञीय कर्म करतेहुये ऋत्विजों तथा दीक्षितों को और सभी ब्रती ब्रह्मचारी दाता ब्रह्मवेत्ता २८ इनकोभी सद्यःशौच कहा जाताहै और दान हैं विवाह में यज्ञमें संग्राममें देशविद्वहोनेमें कष्टात्मिक आपत्तिमेंभी सद्यःशौचहोताहै २८ २९

अभिप्रायः—ऋत्विज वे कि जो किसी यज्ञमें वरणा क्रिये राये हों दीक्षित वे कि जो यज्ञ आदि किसी प्रकार की दीक्षामें संस्कारसे संयुक्त होरहे हों और भी (यज्ञियकर्मकर्तृवतां) जे कोई पुरुष यज्ञ संबन्धी कार्य में ऐसे लगे हों कि जिनके बिना वह काम किसी और से होना संभव न हो तिनको भी समझलेना सजी जो सब नाम यज्ञमें लगाहो अर्थात् निरंतर प्रयोग की रीतिसे अन्नदान करने में प्रवृत्तहो चाहें निज अपनी ओरसे या किसी सकर्ता स्वामी ने नियुक्त कियाहो तोभी उसकोसही समझना जैसा भण्डारा करानेवाला स्वामी और उसी भण्डारे का अधिकर्ता ब्रती उनको समझना जो कृच्छ्रचान्द्रायणा आदि व्रतों में प्रवृत्तहों या स्नातक व्रत वालों को निमित्तजो प्रायश्चित्त होतेहैं तिनमेंलगेहों ऐसेही चातुर्मास्य आदि अनेकसहव्रतों

में लगेहों सो ब्रती कहातेहैं ब्रह्मचारी नैय्यक जो विवाह न करै और सदा ब्रह्मचर्यहीमें रहिताहो सो और दूसरा ब्रह्मचारी उपरुवारा जो उपनयनसे पशुचात किसी नियमित अवधिके लिये ब्रह्मचर्य धारण करै और वह भी कि जो विद्या संग्रहके निमित्तकिसी वृहत्पाठगाला में नियमों से नियुक्तहो समझना दाता वह कि जो हमेशा देतारहता तथा औरसे दिलवाता हो पर आप किसी से प्रतिग्रह न लेताहो ऐसे वैखानस वान-प्रस्थ आदि बहुत होतेहैं ब्रह्मवेत्ता यती संन्यासी परिव्राजक कहातेहैं और वेभी कि जो वेदांत आदि शास्त्रोंके आराधन में अहर्निश तत्पर किन्तु पठन पाठन आदिमें रंगे रहतेहों या धारायणा आदि प्रयोग में लगेहों समझने (नैय्यकब्रह्मचारी दाता वैखानस ब्रह्मवेत्ता यती ये तीनों सदाही सर्वत्र शुद्धहोतेहैं किसीविशेष कार्यके स्थल पर कि जैसा वैद्यको चिकित्साके स्थलहीपर शुद्ध कहा तैसी इनकेलिये विशेषता नहीं कही जासक्तीहै २८ ॥ आगे उनतिस श्लोकसे जो दान विवाह यज्ञआदि को सतक नहींलगता कहा तिनके निर्णाय इसी अविकोक्ति में देखना और थोडासा निर्णाय पहिले सवहवींअधिकोक्तिमेंलिखचुके तहांभी वृहत्स्पति आदिकेवचन देखौ ॥२९ ॥

२९अधिकोक्तिः—दान में जो मद्यः शौच होजाना कहा सो केवल उसी द्रव्यकी अपेक्षा में समझना जो पहिले से संकल्प कियाहुआ देतेचले आतेहों जैसाएक सदावर्त अन्नपर्वत भगडारा आदि प्रसिद्ध हैं इसीका प्रमारा भी अग्रोक्त ऋतुस्मरणावाक्य है सोदेखौ=पूर्वसंकल्पितद्रव्यंदीयमानंनदुप्यति=अर्थात्—पहिला संकल्प कियाद्रव्य जोदेरेहों तिसको दोयनहीं लगता=और भी इसीमध्ये स्मृत्यतर वचनसे विशेषताहै=यथा=विवाहेत्सवयज्ञादिष्वंतरामृतसूतके शेषमन्त्रपरैर्देयंदात्तृभोक्तृप्रचनस्पृशेत्=अर्थात्—विवाह में बड़े उत्सवों में यज्ञों में (कि जो जो प्रथम से प्रारंभ हो चुकेहों तिनकी श्रंत्यावधि पूरी होनेकेबीचमें) यदि कोई मरजाय या जन्में तौ उससूतकमेंभी जो पहिले नधे कामों का वचाहुआ अन्न हो तिसमें सूतकियों का स्पर्श वचा कर गैर लोकोके हाथसे दिलाना चाहिये पर मुख्य दाता मालिक और भोजन करनेवाले भी कि जोजो सूतकीहुयेहों तिनका स्पर्श न करै=यही प्रमारा अगिले वाक्यसे मिलता है=तथा स्मृत्यंतरं=यज्ञसंभृतसंभारेविवाहेत्याहकर्मिता इत्यत्र सद्यःशौचप्रहातंवीर्ष्यं=अर्थात्—सद्य होचुकेहैं संभार सामग्री जिसके ऐसे प्रारंभ कियेहुये किसी यज्ञ या विवाह या श्राद्ध कर्म ल्योत्सर्ग आदि में सतक उत्पन्न होजाने पर भी मद्यः शौच क्रियाजाता है यहपहिले वचनमें आचुका सीई समझलेना—इनवचनों में विवाहके उपलक्षणा भागसे और भी बड़ेबड़े संस्कार यज्ञोपवीत मुण्डन आदि समझलें कि जो

सूक्तउत्पन्न होनेसे पहिले प्रारम्भ होचुके जिनके बीचमें सूक्त होजाय तौ उनमें भी सद्यःशौच माना जायगा—और भी इन वचनों में यज्ञ शब्दक उपलक्षणमें किसी देवताकी प्रतियोगिता या वागीचेकी प्रतियोगिता या कोई बड़ा उत्सव उद्यापनआदि बड़ेबड़े सब काम समुझिलेने जो पहिलेसेआरंभ होचुके हों सो सूक्त आपरने से रुकिक नहीं सकते किंतु सूक्तमें नवीन आरंभ नहीं कियाजाता यह तात्पर्य ठीक है—इतना भी नियम अगिले वचनसे मिलताहै—तथाह विष्णुः—नदेवप्रतियोगिताविवाहेयु नदेश विभ्रमे नापद्यापचकयायामाशौचं—अर्थात्—विद्या ऋषिय कहिते हैं कि न तौ देव प्रतियोगिता में सूक्त लगता है न उत्सर्ग व्रतोद्यापन आदि में न विवाह में न देश की भ्रंश हरि होनेमें न कष्टरूपी आपत्ति में सूक्त है ॥ योगीश्वर ने मूलश्लोक में संग्राम के समय भी सद्यःशौच होना कहा उसके अनेक तात्पर्य हैं तिनमें एक यह भी है कि जैसा आश्रमालयन आदि ऋषियों ने युद्धको सज्जकर सेना चलती होनेसमय प्रारथानिक शांतिरूपी होस जप यज्ञ करने कहेहैं तिनका भी करना सूक्त आपरने से रुकता नहीं इसी प्रकार संग्राम के और भी कोई काम नहीं रुकते और यह तात्पर्य तो प्रत्यक्ष है कि युद्ध करते समय जो किसीको सूक्त आपरने तब उसके हेतुसे आवश्यक युद्ध रोका नहीं जाता इसीलिये सद्यः शौच होजाना कहाया ॥ मूलश्लोक में देशविप्लवके समय भी सूक्त नहीं लगता कहा था—देशविप्लव शब्द का नाम है जो अपने राजमें उद्विग्नहो या दूसरा राजा चर्द्धि आनेसे लूटिनार होरही हो और जो विस्फोटक महासारी आदि देशमें अत्यंत भयानक रूपसे फैले हों तौ भी देशविप्लव कहाजाता है इनकी शांतिके उपाय करने योग्य कामोंको सूक्त नहींलगता है तिससे ऐसे कामों में सूक्तकीलोग भी प्रवृत्त होने कहे हैं इसी लिये सद्यःशौच कहाते हैं ॥ देशविप्लव के विना भी तीर्थ आदि बिरले स्थलों पर मौजूद होनेवालेको सूक्त नहीं सताता है यह अगिले वचनमें देखो = तदाह पैदोनासिः = विवाहदुर्गम ज्युयात्रायांतीर्थकर्मांसा नतवसूक्तकंतदृत्कर्म यज्ञादिकारयेत् = अर्थात्—विवाह के स्थलपर जो किसी बराती ने अपने को सूक्त लगा सुनि पाया हो यद्वा उसी बरात का बराती कोई सजाय या दोनों समधीयों में से किसीके घर तात्कालिक मौत होजाय तौ भी फेर परने नहीं रुकिक सकते हैं न किसीको उस जघेपर उस भांति का सूक्त है कि जैसा कोरी दशामें होताहो—सर्वं दुर्गस्थान राजभवनमें जेकोई अधिकारी कार्यकर्ता आदि आवश्यक राजकाजों में लगेहों तिनको सूक्त आपरने से भी उस जघेपर कि जब तक वह जखरी कार्य पूराहोय नहीं लगिकता है—सर्वं यज्ञ होतेह्ये

उस स्थलमें यदि कोई सरजाय या सूतक सुनिपायें तो उसजघे उसकी सूतक नहीं लगता है न यज्ञका पूरा करना रुक सकता है एवं यदि कोई लवी यावामें प्रवृत्त हो तिसको सूतक सुनि पाये या पासही मौत होजाने से भी मार्ग में वैसा सूतक नहीं लगता है कि जैसा घरपर होताहो इसी हेतु पांथ भी सद्यःशौच कहाते हैं • एवं तीर्थ कर्म परिक्रमा स्नान दान याद्व आदि जो जो कुछ होतेहैं तिनके करनेवाले तीर्थया-
 धियों को उस जघेपर वैसा सूतक नहीं लगताहै कि जैसा घरपर होता तिससे यात्री अपने यज्ञादि कर्मोंको न रोके चाहें सूतक सुनिपाया यद्वासायही मौतहुई हो सद्यः शौच करिके तीर्थ संबन्धी यज्ञ करावें ॥ कष्टदशा की आपत्तिमें भी सद्यःशौच कहा या उसका यह तात्पर्य है कि जब कोई असाध्य महा व्याधिसे पीडित होकर मरने की दशापर उपस्थित हो संकर दूर करने के निमित्त से कुछ तुला आदि मद्दा दान करने की समुद्यत हुआ उसी अवसरमें यदि सूतक भी आपरें तो वह सद्यःशौच होकर दानकार्य को करसक्ता है न उसमें दान देनेवाले को विचार है न लेनेवालेको ॥ परंतु ऐसा दान लेने वालेका यह विचार है कि जिसकी जीविका वृत्तिन चलतीहो ला-
 चार होकर माता पिता स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बके भरणा हेतु कुटुंब छोड़ि विदेशभ्रमरा करना पगाहो तो इस प्रतिग्रहके लेनेसे भी सद्यःशौच कहाताहै ॥ तथापि यह सद्यः शौच उसके लिये समुभनी जिसको सद्यःशौच किये बिना पीडा न मिट सकती हो कि जिसके घर दूसरे दिनके योग्य भी अन्नका संचय नहीं रहिताहो किंतु जिस के घर एक दिन खाने योग्य अन्नधन संचित रहा करता हो तिसके लिये एक दिन रातिका सूतक ऐसे प्रतिग्रह के लेनेसे होताहै एवं जिसके घर तीनदिन खानेयोग्य अन्नधनका संचय रहिताहो तिसको ऐसे प्रतिग्रहसे तीन दिनका सूतक समुभिलेना एवं जिसके चार दिन खाने योग्य अन्न धन संचित रहा करता हो सो कुम्भी धान्य कहाता है कि कुंभमात्र नाजवाला (या बर्य मात्र के निर्वाह योग्य रहिता हो तोभी कुंभीधान्य कहाता है) परच विज्ञानेच्चरने इस व्यवस्थामें चारही दिन का नियम रक्त्वाहै तिसके लिये चारदिनका सूतक होताहै इससे आगे तीनवर्यके निर्वाहयोग्य या तीनसे भी अधिक नाजवाला ब्राह्मण कुशुल धान्य कहाताहै कि खत्ती ब्रह्मारी भर नाजवाला तिसके लिये पूरे दशदिनका सूतक उसी प्रतिग्रह के लेनेसे होता है यह समुभिलेना ॥ इसीलिये मनुने अग्रोक्त नियम कियाहै = यथा = कुशुलधान्य कोवास्यात्कुंभीधान्यकरववा त्र्यहंदिक्तीवापिभवेदप्रवस्तनिकरववा (इत्येवंचतुर्विधव्राह्मणगृहस्या भिप्रायेणैवससवाहाये) दशाहंशावमाशौचसपिण्डेयुविधीयते

अर्वाक्संचयनादस्थानान्यहमेकाहमेववा = अर्थात्—ब्राह्मण कुसूल धान्यक हो या कुंभीधान्यकहो या इयर्हैहिक तीनदिनकी निर्वाह योग्य अन्नवाला हो या अन्न-स्नानिक जो उसी दिन कमाकर खालेता हो दूसरे दिनके योग्य संचय न करसके (सेसेचारविध गृहस्थो ब्राह्मण के अभिप्रायसे ही उन्हीं मनुने अगिला नियमकहा है कि) सर्पिण्डों में मरणा का सूतक दश दिन होताहै या अस्थि संचय कर्म से पहिले जितनेदिन होतेहों तभी तक सूतक या तीनदिन सूतक याएकदिन सूतक—इन्हीं चार प्रकारों को अनन्तरोक्त चारों गृहस्थों के निमित्तयाक्रमसे समुभिलेना किंतु ये संकोच वाले छोटे आशौच कुछ सबके लिये नहींमानेजासकते हैं—औरभी स्मृत्यंतर में समानोदकों के निमित्त भी छोटे नियम के आशौच लिखे देखे हैं कि पक्षिणी राति के बारह प्रहर एक दिन के आठ प्रहर सद्यःशौच जो तत्काल शुद्ध हो जाय—परंतु सोचनाचाहिये कि जब समानोदकता के निमित्तपर लिखे गये तो ये नियम जीविका के संकोच मध्ये नहीं जोड़े जासकते हैं—और वहभी कि जोजो नियम अभी ऊपर लिख चुके सो उन्हीं ब्राह्मणों के निमित्त मेंसमझने कि जिनकी प्रतिग्रह लेने बिना या भिक्षा आदि किसी और वृत्तके साधे बिना पीडा नहीं म्रिट सकती हो किंतु ऐसी पीडा से रहित ब्राह्मणों को भी आशौच का संकोच करना योग्य नहीं है फिर अन्य वर्राणों की क्या कथा ॥ ० ॥ तर्कविवाद—अब यहां से आगे एक तर्कना रूपी शंका से विवाद है तिसकी व्यवस्था नैयायिक परिपाठी के अनुसार खंडन मराडन से वर्राण करी जायगी—यथा—ननु एकहाइब्राह्मणःशुद्धे द्यौरिन्वेदसमन्वितः इयहात्केवलवेदस्तुविहीनोदशभिर्दिने रित्यादिस्मृत्यंतरवचनपर्या लोचनयाऽध्ययनज्ञानानुष्ठानयोगिना मैकाहादिनाशुद्धिरित्येवंकस्मान्नेप्यते-उच्यते—दशाहंप्रावमाशौचंसर्पिण्डेषुविधीयते इति सामान्यप्राप्तदशाहवात्परस्पर मेवह्येका हाइब्राह्मणःशुद्धेर्दिति विवायकं भवति—अर्थात् वादी तर्क उदाता है कि (ननु) क्यों जी अन्य स्मृतियोंमें सेसे वचन भी उपस्थित हैं कि ब्राह्मण एकही दिन सूतक मना के शुद्ध होजाय जो अग्निहोत्र और वेदाध्ययन से संयुक्त हो जो केवल वेदही से युक्त हो सो तीन दिन से शुद्ध होय जो दोनोंसे विहीन हो सो दश दिनों से शुद्ध होय इत्यादि अनेक वचनों की पर्यालोचना करने से अध्ययन ज्ञान अनुष्ठानों के संयोग वालों को एकही दिन आदिते शुद्धिपात्रे जातीहै इसलिये ऐसाही नियम क्योंनहीं माना जाता है—उत्तर काहियतहै कि—सर्पिण्डोंमें मरनेका आशौच दशदिन कहा जाताहै यह एकही नियम जो सामान्य भावसे सबके लिये पाया जाताहै तिसके

(वाधपुरस्सर) रोक रोक पूर्व कही वह वचन सिद्ध नहीं होता कि ब्राह्मण एकही दिनसे शुद्ध होजाय इत्यादि' क्योंकि इसमें यह कारणा है-कि-वाधकस्यचानुपपत्ति निबंधनत्वाद्यवत्यवाधितेऽनुपपत्तिप्रशमो न भवति तावदाधनीयं = अर्थात् — वह वचन जो इसका रोकने वाला वाधक तथा आप अवाधित दहरा तिसके भी (अनुपपत्ति निबंधनत्व से) अयुक्त होनेके हेतु से जबताई उसी (अवाधित में) बिना रोकेंहुये में उसकी असत्य रूपी शंका का नाश नहीं होता तबतक वह आपही (वाधनीय) रोकने योग्य दहरता है कि जबतक अपनी सचावर का प्रमारा न देखके—अथवा—यहभी अर्थ होता है कि वह वचन जो बाधित किया गया रोका रोकता गया तिसके लिये (यावत्यवाधिते) जितना अवाधित में दूसरे की अनुपपत्ति का नाश नहीं समाता उतनाही वह वाधनीय होता है उससे अधिक नहीं—अतः कियदनेन वाध्यं इत्यपेक्षायां अपेक्षितविशेष समर्पणाक्षमस्य अग्निवेदसमन्वित इति वाक्यशेषस्य दर्शनादग्निवेद विधयेऽग्निहोत्रादि कर्मणि स्वाध्याये च च्यवतिष्ठते न पुनर्दानादावपि गवंचाग्निवेदपदयोः कार्यान्वित्यत्वं भवति । इतरथा येनाग्निवेदसाध्यं कर्म कृतं तस्यैकाहाच्छुद्धिरिति पुरुषविशेषोपलक्षणात्त्वमेव स्यात् न चैतद्व्युक्तं = अर्थात् — इस कारणा से आगेजो यह समझा चाहो कि कितना इस करके वह वाध्य होसकता है तो इस अपेक्षा में अपेक्षित पदार्थ का देखने वाला जो उस वचन में (अग्निवेदसमन्वितः) यहवाक्य शेष रहा तिसके विचारने से यह प्रतीत हुआ कि अग्निहोत्र आदि कर्म और वेदाध्ययन में वह वस्तु उपस्थित है कि इतनाही वाध्यसंबंध है किंतु दानादिकोंमें संबंध उसका नहीं और जब यही निश्चित होगया तो उन अग्नि और वेद दोनों पदों का कार्यान्वित्यत्वं खडा होता है कि इन्ही से कामोंवालेका वह नियमही तिसके स्वीकार में अन्य प्रकार से भी दुर्यया आता है कि जिसने अग्नि और वेदवाला कर्म कि या तिसकी एक दिनसे शुद्धिहोभी यह किसी बिरले पुरुष विशेष का उपलक्षणात्त्व माना जाय सो भी ठीक नहीं है तिसका हेतु आगेरुकेहोगे—एवं च सति (प्रत्यहेचाग्निशुक्रियाः) (वैतानोपासनाः कार्याः क्रियाप्रच्युतिनोदिताः) तथा ब्राह्मणस्य स्वाध्यायादिनिवृत्त्यर्थं सद्यः शौचं मित्येवमादिभिर्मन्वादिब्रह्मचरैरेकवाक्यता भवति ततः उभयपदग्राहानि क्लृप्तस्यान्नं न भुज्यते इति दशाहपर्यंतं भोजनादिकं प्रतिषेधयद्विषयमादिब्रह्मचरैर्विरोधीषिसिद्धाति—अर्थात् — रोसा होनेमें भी कोई विशेषता न दहरी क्योंकि अयोक्त वचन जो पहिले सब लिख चुकेहैं कि अग्नियों में जो क्रियार्थे होती हैं तिनको नहीं रोके) वैतानिक उपासना वाली क्रियार्थे भी वेदोक्त करनी चाहिये) तथा

ब्राह्मण को अपना पाद आदि निवृत्त होने के हेतुसे सद्याशौच होना ये सन्वादिकों के ऐसे वचनों से एक वाक्यता भी होती है कि जो तात्पर्य इन वचनों का वही उसका होगा तिससे उपरालू यह वचन भी सत्रहवीं अधिकोक्ति में आच्युका है कि दोनों सूतकों में सूतकी कुलका अन्न दश दिन नहीं भोजन करते हैं इसतरह दशदिन पर्यंत भोजनादि का नियेष करते हुये यमादिकों के वचनों से अविरोध भी सिद्ध हो ता है ॥ इसी कारण से यह किंदांत समुक्ति लेना कि आशौच का संकोच विधानजो कुछ कहा गया कि ऐसे थोड़े काल से भी शुद्धि हो सकती है सो वह संकोच किसी बिरले स्थलमें बिरले पुरुष की अपेक्षा सिद्ध होता है सब लोगोंको सामान्य उसका वर्तावा करना व्यवहारिक नहीं है तिससे इसी तर्क विवाद के विस्तार द्वारा संकोच का निवारण करना दर्शाया गया कि जहाँतक होसके सूतकों के संकोच पर अवि क दृष्टि न देनी चाहिये वल्कि यह वेदत्वाद्यथाय संबन्धी सद्यःशौच विधान जो कहा गया सो बहुत वेदके पाठाभ्यास वालेको जहाँ उसके त्यागने रोकने से क्षेय प्रतीत होताहो तहाँ समुक्तना सर्वधनहीं दयोंकि और सब सामान्यके लिये सत्रहवीं अधि- कोक्तिमें लिख चुके हुये अग्रोक्त वचनसे स्वाध्यायका भी रोकना कहागया है (दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायप्रच निवर्तते) अर्थात् सामान्य मर्यादा यही है कि होम दान प्रतिग्रह स्वाध्याय इनको सूतकमें न जारी रखे—एवं वाईसर्वे मूलश्लोक सेया उससे पहिले पीछे ब्राह्मण आदि वरुणोंको जिसका जितना सूतक लिखागया सो सब उतने दिनोंके अनंतर स्नान करके शुद्ध होते हैं किंतु उसकालका अति क्रम करने मात्रसे नहीं शुद्ध होते हैं—यथाह मनुः=विप्रःशुद्धत्यपःस्पृष्ट्वास्त्रियोवाहनायुवम् वैश्यःप्रतोदरप्रमीरु वार्यपिंश्रुःकतक्रियः=अर्थात्—दशदिन आदि स्ववर्णोचित अवधि तक यथोक्त क्रि यारंक्रियाहुआ ब्राह्मण जलस्पर्शकरके शुद्ध होता है(यहाँजलस्पर्श कहनेसे स्नानया आचमन न समुक्तना किन्तुकोई क्रिया विशेष होगी जो प्रेत कर्म संहिता से मालूम होसक्तो है)एवंक्षत्री सर्वक्रिया कर्मक्रिये पीछेसवारी औरगर्वाँ का स्पर्श करनेसे शुद्ध जानाजाता है यहभी कोई क्रिया विशेष है। एवं वैश्यभी सर्वक्रियारंक्रियाहुआ पीछेसे आर पैनाचावुक और बागडोर नाथ आदि की स्पर्शरूपी क्रिया विशेष करके शुद्ध समझाजाता है। एवंशूद्र लाटीका स्पर्श करके शुद्ध होता है। यहाँतक दोनों श्लोक की अधिकोक्ति पूरी हुई ॥ २ ॥ २ ॥ ६ ॥ यहाँ तक कुलन्यापिनी अशुद्धिके प्रायश्चित्त पूरे हुये कि जिनसे एकमात्र अनेक शुद्ध होते हैं। इसके आगे प्रत्येक पुरुष व्यापिनी शुद्धि कही जायगी कि जहाँकोई किसीके स्पर्श प्रसंगसे अशुद्ध समझागयाहो ॥ २ ॥ २ ॥ ६ ॥

सूतकांविनाप्यशुचिस्पर्शदोषकथने चतुर्थःपरिच्छेदः ४

—*—

इस परिच्छेद में उस भौतिके प्रायश्चित्त कहेजायेंगे कि जो अनेक अशुद्धांका स्पर्शकरै तिनकी शुद्धिहोसके इनबातोंसे हरबक्तज्ञकारत रहतीहै ॥

(स्पर्शाद्यशुद्धिशोधनप्रकारः)

उदक्याऽशुचिभि स्नायात्तस्यैस्तेरुपसृष्टेत् । अन्विलंगानिजपेच्चैवगायत्रमिनसात्तद्वत् ३० ॥

अन्तरार्थः—उदक्या. अशुचिमात्र-इनसे संस्पृष्टहूआ स्नान करै. तिनसे हुआ उप-स्पर्श न करै अन्विलंगोंको जपै गायत्री को भी एकवार मनसे जपै ॥ ३० ॥

अभिप्रायः—उदक्या रजस्वला अशुचिमात्र जो जो बहुत अशुद्ध होते हों जैसे मुर्दा चण्डाल पतित सूतिका आदि अनेक समुझने और पूर्वोक्त मुर्दाके सूतकी भी समुझने-इनमें किसीका स्पर्श जिसको होजाय सोस्नान करके शुद्ध होय-कदाचित् स्नान जिसने नहीं किया ऐसे छुयेहुयों को यदि कोई छुइजाय तिसको स्नान की अपेक्षा यद्यपि नहीं है परन्तु उपस्पर्शन अर्थात् आचमन करै और अन्विलंग अर्थात् आपोहिया आदि संध्या विधान में लिखेहुये मंत्रवाक्य तीनवार जपै और गायत्री भी एक बार मनसे जपै (स्नान किये बिना इतना कर्तव्य भी हाथपैर धोके मुख मंजन करके करना होगा यह समझ लेना और भी इसविधि में शूद्रका पूरा अधिकार नहीं है क्योंकि सध्याकेमंत्र और गायत्री जपनेकी आज्ञा लिखी तिसमें तीन वर्णोंका धर्म दर्शाया है विशेषकर ब्राह्मणाका-अन्यथा जिसको उक्त मंत्रोंका बोध न हो तिसको उसी आचमन के अर्थ से मुखमंजन और हाथ पैर धोना आदि आवश्यक है ॥ ३० ॥

३० अधिकोक्तिः-व्याकरणा काव्यकी रीतिसे एक शंकाहै कि मूल श्लोक में (उदक्यादिसंस्पृष्ट स्नायात्) इस एकवचनसे निर्देश किये हुये को (ते) इस बहुवचन में कैसे परामर्श किया जाय-उत्तर समाधान-यह शंका यद्यपि दीक्षु तथ्यापि हेतु गर्भित आशय दुंदने से विरोध नहीं है क्योंकि उदक्या और अशुचियों से छुयेहुये से उपरालू भी अनेक ऐसे हैं कि जिनको स्नान करना चाहिये तिनको

यदि स्नान क्रिये बिना स्पर्श होजाय तौभी आचमन विधि जो ऊपर लिखी सो कर्त्त-
व्यहोती है तिनके नाम चिह्न अगिले वाक्य से देखौ किन्तु उन्हीं के हेतु गर्भित
आशयसे (तैःस्पृष्टःउपस्पृशेत्) उनसे हुआ हुआ आचमनकरै यह बहु वचन भी
परामर्श होता है विरोध नहीं = तदाह पाराशरः = दुःस्वप्नेमैथुनेवांते विरिक्तेश्च
कर्माणां चित्तियूपप्रमशानास्थानांस्पर्शनेस्नानमाचरेत् = तथाचमनुः=वांतोविरिक्तःस्ना-
त्वातु घृतप्राशनमाचरेत् आचानेदेवभुक्त्वाच्च स्नानमैथुनिनःस्मृतम्=अर्थात्-खोद-
स्वप्न होनेमें या बुरी तरह सोनेमें- मैथुन करने में- वसन करने में- दस्त लगेहोनेमें-
बार बनवाने में-चिता के छूनेमें- यूपनाम पशुहिंसा के स्थानमें गड़े हुये स्तम्भ की
छूनेमें- प्रमशान भूमिपर होआनेमें-हाड़ोंकी छूनेमें-स्नान करै तब शुद्धहोय = ऐसाही
मनुने कहाहै कि = वसन किया हुआ पुरुष-विरचन जुलाव किया हुआ पुरुष-
स्नान करिके धी चाटै तब शुद्ध होय-और अन्न भोजन करिके आचमन कल्लामावही
करै तब शुद्ध होय-परंतु मैथुन वालेको स्नान करना चाहिये यह कहाहै = परंतु यह
स्नान उस मैथुन क साथमें समुक्तना जो स्त्री के ऋतुकाल होने बाद किया गयाहो-
अन्यथा ऋतुकालको न होने में जो मैथुन किया जाता है तिसकी शुद्धिस्नान किय
बिना भी होसकती है =तदाह टट्टस्पतिः=अतृतीत्यदागच्छे च्छींमंत्रपुरीयवत्= अ-
र्थात्-ऋतुकाल के अभाव में जो स्त्री से संभोग करै तौ राह मृत प्रक्षालन करने की
रीतिसेही शौच करिके शुद्धमाना जासक्ता है-तथापि विरले कसमयपर मैथुनकरनेसे
ऋतुकाल के बिना भी स्नान करना कहा है-तथा स्मृत्यंतर वचनं=अष्टम्यं च चतुर्द-
श्यांदिवापर्वीणामैथुनसहत्वासचैलंस्नात्वाचवारुणीभिःप्रचमार्जयेत्=अर्थात्-अष्टमी
चौदसि की रातिमें या दिनमें चाहें कोई भी तियहो तौभी या पध की रातिमें भी
जो मैथुन करै यद्यपि स्त्री का ऋतुकाल शुद्धहो तौभी पुरुष अपने वस्त्र धोकर स्नान
करै और पहिले अशुचि अंगोंको बारुणी नाम दूर्वा या कुश कांश आदि घासों से
रगड़ के शोध लेवै (यद्यपि ऐसा अर्थ भी सुगमतासे होताहै कि बारुणी जो अनेक
भांतिकी सदिरा हैं तिनसे धोवें परंतु इसका कोई सिद्धांत रूपी प्रयोजन ठीक नहीं
मिलता यद्वा ऐसा अर्थ मानाजाय कि बारुणी जो इंद्रवारुणी इन्द्रायन घुसिला
इन-जंगली बेल के अत्यन्त कड़वे फल होते हैं तिनसे धोवै तौ यह निपट असंगत
है तिससे दूर्वा आदि वाला अर्थ ठीक मानागया कि उसका जूना बनाकर शरीर
को रगड़ै तब स्नान करै-यद्यपि कोई यह तर्कना उठावै कि (वियस्यदियसौ
यधं) जैसा वैद्यक शास्त्र के मतमें वियही से विय टूरकिया जाता है तैसा उथी

न्याय से अशुद्धि को अशुद्ध वस्तुसे हटाना किंतु मंदिरा से ही धोकर शुद्ध माना जाय-तिसका उत्तर यह दृष्टांतभी प्रसिद्ध है कि कीचसे कीच नहीं धोईजासकती है= यमस्मृति में और भी स्नान का विधान है= यथाह यमः = अजीर्णशुद्धितेवातेतथा प्यस्तमितेरवौ दुःस्त्वनेदुर्जनस्पर्शस्नानमात्रंविधीयते=तथा वृहस्पतिः=भैद्यनेकरधूममेच सद्यःस्नानंविधीयते=अर्थात्—यमने यह कदाकि जिसको अन्नादि का अजीर्ण हो- कर उलटा गले कंठतक अभ्युदित हो आया हो या जिसने वांति करी हो या जिसने सूर्य के अस्त होते समय घुरा स्वप्ना देखाहो या जिसने दुर्जन चंडाल मलीनआदि का स्पर्श कियाहोसो स्नान मात्र करिके शुद्धहोताहै=तैसा वृहस्पतिने भी कहाकि= भैद्यन करके या कटधूम नाम मुर्दा फुंकती चिता के धूरंको संधि वा देही में स्पर्श करके शीघ्रही स्नान करना चाहिये विलंब न होने देवै यह विशेषता जानां—यहाँ कटधूम के उपलक्षणा में उस धूरंको भी समुक्त लेना जो मलीन घुरा फुंकता हो या मलीन कूपाकर्कट से पजावा आदि फुंकता हो—यह लिखाहुआ स्नानमात्र उसके लिये समभना जिसके वस्त्र वचिकर किसी अंगमात्र में स्पर्श हुआ हो किन्तु वस्त्रों को स्पर्श होने में सचैल स्नान करना चाहिये=तथा चाहच्यवनः=दानस्वपाकंप्रेत भूध्रंदेवद्रव्योपजीविनंप्राप्तयाजिनंसोमविक्रयिणांयूपंचित्तिचितिकाष्टमद्यमद्यभांडसन्ने हंमानुयास्थिशवस्पृष्टंरजस्त्रलां महापातकिनंशवंस्पृष्ट्वासचैलमंभोऽवगाह्योतीर्याग्निमु पस्पृष्टयगायत्रीमव्यारंजपेत् घृतंप्राशयधुनःस्नात्वाग्निराचामेत्- रतच्चबुद्धिपूर्ववियथं= अर्थात्—च्यवन मुनि कहते हैं कि कृत्तेको छुडकर या कृत्ता मारखानेवाले चंडाल को या प्रेतके धूरंको या देवता के निमित्तका द्रव्य चटावाआदि से उपजीवन करने वालेको या ग्रामयाजीको या सोमविक्रयी को या यूपनाम पशु हिंसाके स्थान वा खंबंको या चिताको या चिता की लकड़ी डेंगरी कां या मंदिरा या मंदिरा के वा- सनको या गीलाहाइ मनुष्यका या मुर्दाकीस्पर्शकरी किसीचीजको या रजस्त्रलाको या महापातकीको या मुर्दको छुडकर-वस्त्रों सहित जलमें गोतालगाके बहोंसे निक- सिक्के अग्निमें शरीरको तपाइ के आठवार गायत्री जपै फिर धोचाटिके दुवारा स्नान करिके तीनवार आचमन करै तब शुद्धहोय सो यह प्रायश्चित्त उसका है कि जिसने जानि वृम्भिकर इच्छा पूर्व उनको छुआ हो=अन्यथा=बिनाजाने धोखा में छुडजाने का प्रायश्चित्तस्नानमात्र आगेदेखो=तदाह वृहस्पतिः=शवस्पृष्टंदिवाकीर्त्तिचित्तियूपं रजस्त्रलामस्पृष्ट्वास्यकामतोविप्रःस्नानंहत्वाविशुद्ध्यति=अर्थात्—मुर्दाको छुडिचढाकोई वस्तु या दिवाकीर्त्तिनाम नाईको या चिताको या यूपको या रजस्त्रलाको या उनको

बिना धुला लेना होता है इसमें भी कुछ विचार नहीं एवं बिलोको साधारण में कुछ कर ज्ञान करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रायश्च इससे बचाना नहीं बनिआता है तिससे भोजन या अनुष्ठान के समय जो कुछ जाय तो स्नान करना उचित है—कृता के स्पर्श का भी यह नियम समुक्तना कि जो नाभिसे ऊपरली देहमें कुछ जाय तो स्नान करे किंतु नीचेकी देह में कुछ जाने से उसी अंग का धो डारना मात्र उचित है क्योंकि उन्हीं अंगों का दूसरा वचन इसपर मौजूद है = यथा = नाभेरुत्तरे करौमुत्काशुना यद्युपहन्यते तत्रस्नानमवस्ताच्च त्प्रसाल्याचम्यशुद्ध्यति = अर्थात्—तांदी से ऊपर जो हाथोंके उपरालू कोई अंग कृतासे विगाड़ा जाय तहां स्नान करना चाहिये जो नीचे का अंग या केवल हाथहीको विगाड़ा हो तो उतना धोकर आचमन करनेसे शुद्ध हो जाता है—एवं पक्षियोंके स्पर्शमध्ये जातुकार्यने विशेषता कही है—यथा = ऊर्ध्वनाभेः करौमुत्कायदंगांसस्पृशेत्यगः स्नानतत्रप्रकुर्वति शेषंप्रसाल्यशुद्ध्यति = अर्थात्—हाथोंको छोड़िके यदि कोई अङ्ग तांदीसे ऊपर में काक आदि पक्षीका स्पर्श होजाय तो स्नान करैवाकी दोनों हाथ या नीचेके अंगमें स्पर्श हुआ हो तो धोने मात्रसे शुद्ध होजाता है— एवं अपवित्र वस्तुओंके स्पर्श मध्ये विष्णाने विशेषता कही है = यथा = नाभेरवस्ता त्प्रवाहुयुचकायिकर्मलैः सुराभिर्मद्यैर्वापहतो मृत्तोयैस्तदंगंप्रसाल्याचांतशुद्धोत् अन्य शोपहतो मृत्तोयैस्तदंगंप्रसाल्यस्नायात् तैरिन्द्रियेषुपहतस्तुषोष्यस्नात्वापंचराग्व्येन दश नच्छदोपहतप्रचेति = अर्थात्—कायासे उत्पन्नयुक्तमत्तआदि अनेककायिकमलहोते हैं तिनसे जो कोई नाभिके नीचे अंगोंमें या कुहुनीके नीचे पहुंचा आदिमें विगाड़िजाय या सुरासे या मद्यों से उन्हीं अंगोंमें विगाड़े तो वही अंग माटी और जलसे धोने तथा आचमन करने से शुद्ध होता है—जो उन अंगोंके सिवाय किसी और अंगमें पूर्वोक्तमलों से विगाड़े तो माटी और जल से मांजि धोकर पीछे स्नान भी करे. कदाचित् नाक कान आदि उत्तम इंद्रियों में उन्हीं मलोंसे विगाड़े तो वह स्नान और निराहार उपास करिके शुद्ध होता है. कदाचित् दांतोंके स्थानपर उन्हीं मलोंसे विगाड़ा हो तो पूर्वोक्त मंजन स्नान व्रत करने के सिवाय पंचराग्य से भी शुद्धि करे-- ये सब नियम विराने शरीर के उत्पन्न हुये मलोंसे विगाड़ने मध्ये समुक्तने किंतु अपने मलोंसे नाभिके ऊपर भी विगाड़ने में धोने मात्र से शुद्ध होजाता है = यथाह देवलः = मानुष्यास्थिवर्सा विष्टामार्तवंचूचरैतसी नज्जानं शीरिणांतवापि परस्ययादिसंपृशेत् स्नात्वा प्रमुज्यले पादौनाचम्यसशुचिर्भवेत् . तान्येवस्तानिसंपृश्यपूतः स्यात्परिमार्जनात् = अर्थात्—सुप्यका हाड या बसा या बिष्टा या आर्तव रजोरक्त या मूत्र या वीर्य या मज्जा या

लोहू जो पराये ध्रंगसे उत्पन्न हुयों को स्पर्श करै तो उस लगे हुये लेप आदि को माजि, धोय स्नान करिके आचमन किये पीछे शुद्ध होता है- उन्हीं मलैको यदि अपनेही शरीर के उत्पन्न हुयोंको स्पर्श करै तो माजने धोने मात्र से शुद्ध होजाता है- तथाह शंग्लः=रथ्याकर्दमतोयेनखीवनायेनवातया नाभेच्छर्धनरःस्पृष्टःसद्यःस्नानेनशुद्धति=अर्थात्—गालियोंकी कीचड़ या जलसे या घूक खँखार आदि से नाभि के ऊपरले अंगों में जो एरुय बिगड़ै तो तत्कालही स्नान करके शुद्ध होता है-यमनेभी विशेषता इसमें कहीहै=यथा=सकर्ममंतुवर्यामुप्रविश्यग्रामसंकरस्र जंघयोर्मृत्तिकास्तिस्रःपादयोर्हि गुराास्ततः (ग्राम संकरं ग्राम सलिलप्रवाह प्रवेशं सकर्ममं प्रविश्येत्यर्थः) अर्थात्—ग्रामसंकर जो कीचड़ भरा ग्रामहो तिसकी वर्या कालमें सभाइ कर दोनों जाँघ मड़ी से तीन तीन बार माजै और दोनों पैर छेछे बार मड़ीसे माजै धोवै=परंतु हवा से सूखी हुई कीच आदि में उक्त दोय नहीं है क्योंकि आचार मर्यादा परिपाटी में अप्रोक्त वचन आचुका है कि (रथ्याकर्दमतोयानिस्पृष्टान्यंत्यप्रववायसैः मारुतेनैव शुद्धतिपक्वैकचित्तानिच) अर्थात्—गालियों में कीच तथा मलै जल भी जो चंडाल और कुत्ता कौओं से स्पर्श किये अशुद्ध होतेहैं सो वायु के भक्तोरों से ही शुद्धही जाते हैं जब सूखि जायँ- तथैव पकोईर और ईसके चिने हुये स्थान भी हवासे पवित्र होतेरहितेहैं=एवं हाडों मध्ये मनुने विशेषता कहीहै=यथा = नारंस्पृष्ट्वास्विसस्त्रेहं स्नात्वाविप्रोविशुद्धति आचम्यैवतुनिःस्नेहंसांस्पृष्ट्वावीक्ष्यवारविम = अर्थात्—मनुष्य का गीला हाड छुइकर ब्राह्मण स्नान करके शुद्ध होता है, परंतु सूखा हाड छुइकर आचमन से ही शुद्ध होजाता है या जलकी प्राप्ति न होसके तो गरुके दर्शनों से ही शुद्ध होताहै जहां गरु भी न मिलै तो सूर्यके दर्शन करके शुद्ध होता है—सो यह नियम केवल द्विजातियों के हाड छुजानमध्ये समभना किन्तु और किसी जाति का हाड जिसने छुआ हो तिसके लिये वशिष्ठ के वचनानुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये = यथावशिष्टः = सानुयास्थिस्रिगंधंस्पृष्ट्वाविराघमाशौच मस्त्रिभवे त्वहोरात्रं=अर्थात्—मनुष्य का गीला हाड छुइकर तीन दिन तक अशुचि रहता है और सूला होने में एकही दिन आशौच मानै = मनुष्यके सिवाय अन्य जीवोंके हाड मध्ये विष्णुका वचन देखो = यथा = भक्ष्यवर्जपचनखशवंतदस्थिचसस्नेहंस्पृष्ट्वा स्नातःपर्ववस्त्रंप्रसालितविभृयात् = अर्थात्—जो खाने योग्य जीव लिखे है तिनको छोड़िके शेष पाँच नखवालेमरे जीव या उन जीवों के गीले हाड छुइकर स्नान करै और पहिले वस्त्रोंको खूबधोकरपरिहरै ॥ इसी प्रकार औरभी अनेक स्नान कानेयोग्य

भी कि जो इसवचनमें नहीं लिखे पहिलेमें कहि चुके हों तिनको इच्छाविनाही यदि कोई विप्र भुवै तो स्नान करिके शुद्धहोताहे पर जानि ब्रह्मिके छने में वही च्यवनोक्त विधि करनी चाहिये ॥ इसीप्रकार जो आगे वचन लिखे जाय तिनमें भी बहुत या थोड़ीके अनुसूप इच्छा या बिना इच्छा की व्यवस्था मानि के सबको तुल्य समझ लेना=तथाचक्रप्रयपः=उदयास्तमयीस्कंदयित्वा अस्मिन्स्यन्दनेकराक्रोशनेचिरयारोह रो यूपसंस्पर्शनेसचैलंस्नानं पुनर्मांस इति जपेत् महाव्याहृतिभिः सप्ताज्याहुती जुहुयात्= अर्थात्—उदयहोते या अस्त होतेहुये सूर्यका देखना भी आचारकांड में नियिद्ध किया गयाहै तिनके सन्मुख ऐसे दोनों काल में जो स्कंदन करै अर्थात् मलमज आदि छोड़ै थडा आँखितिल मिलावै या काराक्रोशन होने में कि जब किसी सज्जनकी रूथा निंदा आदि कान में सुनी हो या चिता के ऊपर पैर धराहो या यूपका स्पर्श किया हो तो सचैल स्नान करै तथा पुनर्मांस इत्यादि ऋचा मंत्रको जपै फिर सन्ध्या प्रयोग में लिखीहुई सात महाव्याहृतिथो से घीकी आहुति होमें तब शुद्धहोय=स्मृत्यंतरवचनंचयया=स्पृष्टादेवलकंचैवसवासाजलमाविशेत् देवार्चनपरोविप्रोवित्तार्थेव स्मरयन् असौदेवलकोनामहृद्यकण्ठेयुर्गर्हितः=अर्थात्—देवलक ब्राह्मणको भी छुइ करवस्त्रों सहित जलमें गोता लगावै तब शुद्ध होय देवलक वह कहाताहै जो धनके लियेदेवताकी पूजा में तत्पर होके तीनवर्षे वित्तवै सो देवलकनामा ब्राह्मण हृद्य और कव्यमें अर्थात् देव पितरोंके कार्यमें लगाना नियिद्ध है=तथात्रह्लांडपुरारोपि=शैवात्पाशुपतान्स्पृष्ट्वा लोकात्पर्यात्कनास्तिकाव विकर्मस्थाच्चद्विजाचशूद्रान्सवासान लमाविशेत्—तथा—अस्वर्ग्याद्याहुतिः सास्याच्छूद्रसंपर्कद्रुयिता इति लिंगाच्चशूद्रस्पर्शनेनियेधः=अर्थात्—शैव जो शिवालयाका चढावा आदि खानेवाले योगीआदि या पाशुपत जो ना दिया रीछ बंदर आदिसे जीविका करै या यतिक नास्तिक लोग जो बनेहुये अतीकेनाम से प्रसिद्धपर यथार्थ धर्म से नास्तिक हों या विकर्मस्थ द्विजाती जो वैवर्षिक जाति होने पर भी कृकर्मों में रहें या सलीनशूद्र इनमें से किसी को भी छुइकर वस्त्रोंसहित जलमें गोतालागावै तब शुद्धहोय=तथा—यह वचन जो लिखि चुकेहैं कि शूद्र के संसर्ग से स्पर्शकिये द्रव्योंकी आहुति भी अस्वर्ग्य होजाती है सो इस डोलसे भी शूद्रको छूनेका नियेधहै=तथांगिराः=यस्तुच्छायां चपाकस्यब्राह्मणोद्य विरोहिततत्रस्नानं प्रकुर्वीतधृतं प्राश्रयविशुद्धाति=अर्थात्—जो कोई ब्राह्मण चांडाल की छायाको आरोहण करै सो खूब अच्छी विधिसे स्नानकरै और घी चादिके दि-
 न्नुद्धहोताहै=तथाव्याजपादः=चांडालंपतितंचैवदूरतःपरिवर्जयेत्गोवालच्यजनाद्वर्कि

सवासाजलमाविशेत् (स्तदतिसंकटस्थत्वविययं) = अर्थात्-चांडाल और पतित को दूरही से बचता रहे कितना दूर से कि जितना लंबा बालव्यजन किंतु चमर होता है इतना बीच देकर प्रथमसे बचिजाय कदाचित् इतनी नाप के बीच में आजाय चाहें शरीर का स्पर्श नहुआहो तो भी वस्त्रों सहित जलमें गोता लगावें तब शुद्ध होय- सो यह चौर की लम्बाइ भर बीच देना ऐसी जगहके निमित्तमें समुभना जहां मार्ग संकोच होनेसे संकट प्रतीत होताहो-अन्यथा जहां भीड़ भाड़ न हो या मार्ग चौड़ा हो तहां इससे अधिक बीच देकर बचना कहा है-तथाचाह वृहस्पतिः=युगंचद्वियुगचैव त्रियुगंचचतुर्युगश्च चांडालसूतिकोदकपापितानामधःक्रमात् = अर्थात्-यहां युगशब्द से चार हाथ लंबाई का अंतर समुभना किंतु चंडालसे एक युग बीच देकर इधर को बचिजाना तथा सूतिका से दो युग बीच देकर तथा रजस्वला से तीन युग बीच देकर तथा पतित से चारयुग अर्थात् सोरह हाथ बीच देकर बचना चाहिये कदाचित् उक्त अंतरोंके भीतर ये चांडाल आदि आजायें तहां स्पर्श होगया समुभि लैनाचाहें देहसे देह न भिड़ी हो तोभी स्नान करना होगा (इसी आशय से व्यवहार कांडकी मर्यादा बहुधा राज्यस्थानों में प्रवृत्त रहती है कि ये चंडाल आदि आपही अपना योग्य बीच देकर बचते रहें कदाचित् न बचें तो दंडपावें)=पैठीनस्तिव्याह=काकोलक स्पर्शने सचैलस्नानमतुदकमत्रपुरीयकरागो सचैलस्नानं महाव्याहृतिसोमप्रच (अनुदक मत्रपुरीयकराग इत्येतद्विचरकालमत्र पुरीयशौचाकरापरं) अर्थात् पैठीनसिका कथन है कि-काक उलकके स्पर्श करने में सचैल स्नान करना चाहिये और बिना पानी लिये हगने मूतने में सचैल स्नानके सिवाय महाव्याहृतियोंसे होम भी करे तब शूद्र हो (बिना पानी हगना सूतना यह उस भांतिका समुभना जिसने बहुत दिनोंसे सेमा कियाहो सकही दिनका नियम नहीं)=तथांगिराः=भासवायसमाजारे खरोष्ट्रं चश्व शूक्रात् अमेध्यानचसंप्रुश्य सचैलोजलमाविशेत् =अर्थात्-भास पक्षी काक पक्षी बिल्ली गर्दभ ऊंट कुत्ता शूकर इनको तथा और भी अपवित्र वस्तुओं को छुइ कर वस्त्रों सहित जलमें धुसे तब शुद्ध होय=इतमें बिल्ली का छूना जो अशुद्ध कहा सो भोजन आदिके समय तथा कोड़े अनुद्यान करनेके समय समुभना क्योंकि लोक में भी यही समाचार है=अन्यथा और सामान्य समयों के निमित्त यह अप्रोक्त वचन भी आखंड है=यथा=साजारेचवैवद्रवंच मारुतश्चमदाशुचिः= अर्थात्-बिल्ली और द्रव्य रुपया पैसा आदि और मारुत हवा ये सदाही पवित्र हैं क्योंकि हवा सबके देहाको छूनी चली आतीहै उसमें कोड़े भेद नहीं बनि आता खव द्रव्य चंडाल के भी हाथ से

पुरुष होते हैं तिनको अन्य स्मृतियों से समझना जहाँ प्रयोजन उनका संभव हो—तो इस भाँति स्नान करने योग्य पुरुषों की बहुतायत के आशय से योगीश्वर के मूल श्लोक में (तैःस्पृष्टः उपस्पृशेत्) यह बहु वचन का निदेश दिया गयाथा विरोध उ-
 समें नहीं है ॥ ० ॥ श्रीमद्विज्ञानेश्वर व्यवस्था देतेहैं कि मूल श्लोक में (उदकातया
 और अशुचियों से छुआहुआ स्नानकरै परंतु छुयेहुयों से छुआ हुआ पुरुष आचमन
 मात्र करै) यह थोड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया था सो वह थोड़ा इस हेतु में समझना
 कि जहाँ चंडाल आदि कोई अशुचि प्राणी जड़वृद्धि वेदोपश होकर बोखा से लपेट में
 आकर भिड़ाहो तिसके भिड़ेहुयोंसे जो कोई भिड़जाय तिसको आचमन मात्र करना
 ठीक है स्नान की अपेक्षा नहीं—परंतु—जहाँ होशियार चंडाल आदि लपेट में आ-
 या हो तिसके छुयेहुयों से यदि कोई भिड़जाय तहाँ इसकोभी स्नानही करना चाहिये
 किंतु आचमन मात्र से शुद्धहोना ठीक नहीं है यह सिद्धांत अगिले वचन में उत्पन्न
 होता है सो देखो = यथाह मनुः—दिवाकीर्तिमुदकांचपतितंसूतिकांतया शवंतस्पृष्टि
 नंचैवस्पृष्ट्वास्नानेनशुद्ध्यति (अत्रतत्स्पृष्टिनंतत्तोयांस्पृष्टानांस्पृष्टिर्नमित्तिभावः नशव
 मात्रस्पृष्टिनं) अर्थात्—नाईरजस्वला पतित सूतिका मुर्दा और इनके छूने वाले
 को भी छुइकर स्नान से ही शुद्ध होताहै = परंतु = छूने वालेके छुये हुये को तीसरा
 कोई छुवे तिसको फिर स्नानकी अपेक्षा नहीं किंतु आचमन से ही शुद्ध होता है—
 यथाह संबर्तः = तमेवतुस्पृशेद्यस्तुस्नानंतस्यविधीयते ऊर्ध्वमाचमनंप्रोक्तद्रव्याणां
 प्रोक्षणांतया = अर्थात्—जिसनेचंडाल आदिसेछुयेहुये को छुआहो तिसकोभी स्नान-
 कराया जाता है पर उससे उपरालू कोई तीसरा जो दूसरे को छुइ जाय तिसको आ-
 चमन हाथ पैरोंका प्रक्षालन और वस्त्रादि द्रव्यों को छींटा देना कहा है ॥ सोभी यह
 तीसरेको आचमन विधिउस दशामें समझना जहाँतीसराज्ञान विनाबोखासेभिड़गया
 हो अन्यथा जानिबूझिके भिड़ने वाले तीसरेको भी स्नान करना होगा—तदाहगौतमः=
 पतितचंडालसूतिकादकाशवस्पृष्टितत्स्पृष्ट्युपस्पर्शनेसचैलमुदको स्पर्शनाच्छुद्येत्=
 अर्थात्—पतित चंडाल सूतिका उदकया मुर्दा इनको स्पर्श करने वाला फिर उसके
 स्पर्श करनेवाले को जो कोई जान बूझके स्पर्शकरै तीसरा वहभी ये सब तीनों भाँति
 के पुरुष वस्त्रों सहित जलमें स्नान करनेसेही शुद्धहोयें फिर चौथे छूनेवालेको आचमन
 मात्र चाहिये—यथाह देवलः—उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं तृतीयांवापिमानवःहस्तौपादीच
 तोयेनप्रक्षाल्याचम्यशुद्ध्यति—अर्थात्—अशुचिमात्र जोजोकहेगयेतिनकेछुयेहुयेतीसरे
 कोभी छुइ कर चौथा मनुष्य हाथ पैर चौथेके जलआचमनकृत्वाकरके शुद्धहोताहै ॥ ० ॥

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

८६

जहाँ कोई अशुद्धी उदका आदि अशुद्धों को भिड़जाय तहाँ देवलने विशेषताकहोहे
 =यथा=चपाकपतितं च्यां मुन्मत्तं शवहारकम् सूतिकां साविकां नारीं रजसा च परिष्कृतान्
 चक्रुस्त्वराहोश्च प्रास्थान् संस्पृश्यान् नवः सचैलः सशिरः क्रात्वा तदानीमेव शुद्ध्यति अशु
 द्धान् स्वयमप्येतान् शुद्धस्तु यदि स्पृशेत् विशुद्ध्यत्युपवासेन तथा कृच्छ्रं गात्रापुनः = अर्थात् -
 चपाकपतितं च्यां कीटी आदि उन्मत्त मतवारा मुदा ढोनेवाला सूतिका साविका
 दायी जो बालक जन्मावै रजोरक्त से भीगी स्त्री कृत्ता गुरगा सूअर जो जो ग्रामनरा
 के रहैया होते हैं उनके नहीं इनको भिड़कर मनुष्य तत्काल ही बच्चों सहित शिरसे
 स्नान करके शुद्ध होता है ॥ और जो इन अशुद्धोंको आपही कोई अशुद्ध रजस्तला आदि
 भिड़जाय तो निराहार उपवास करनेसे शुद्ध होता है या यथा सम्भव कृच्छ्र चांद्रायणा
 व्रतकासेभी अर्थात् चराडाल आदिके अति स्पर्श में कृच्छ्र व्रत समुभक्ता और कृत्ता
 आदिस्वल्प स्पर्शमें उपवास मात्र यह यथा संभव का तात्पर्य है ॥ ३० ॥



अथ सर्वसामान्यशुद्धिहेतूनां संख्यानुक्रमादिकथने

पंचमः परिच्छेदः ५

इस परिच्छेद में उन पदार्थोंकी संख्या आदि श्रावणान किये जायेंगे कि जो
 जो शुद्धि करनेवाले परम कारणा भूत प्रसिद्ध हैं ॥

(शुद्धिहेतूनां संख्यानुक्रमः)

कालोग्नि कर्ममृदायुर्मनोज्ञानंतपोजलम् । पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽभि शुद्धिहेतवः ३१

अन्तरार्थः—काल अग्नि कर्म कर्म मृत्तिका वायु मन ज्ञान तप जल यद्धितावा
 निराहार ये सब शुद्धिके कारणा हैं ॥ ३१ ॥

अभिप्रायः—कदाचित् कोई यहसंदेहकरे कि जलसे या सही आदिसे नहाना
 सोना आदि कर्म तो प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं कि इनसे शुद्धि होजायगी परन्तु अब तक

जो गीत गाया कि दश दिन में शुद्ध होय या तीन वा एकही से इत्यादि सो यह कैसा भ्रम है कि क्या इतने दिनतक अशुद्ध बनिके बैठें—इसी संदेहके निवारणामध्ये कालरूपी शुद्धिपर अग्नि आदिको दृष्टांत रूपसे दर्शाते हैं—वरन दूसरायहभी तात्पर्य है कि आचार मर्यादा परिपाटी के द्रव्य शुद्धि प्रकरण में शुद्धि के जो कुछ हेतु कहि चुके हैं या अब यहाँ से आगे जितने हेतु कहे जायेंगे कि इनसेभी असुद्धामुक्त शुद्धि होती है तिन सब अगिले पंडितों का इकट्ठे करके इसी प्रलोक में अनुक्रम किये देते हैं—और कालरूपी हेतु में जो संदेह अभी कहि चुके तिसका एकप्रसारा तो आचार काण्ड में भी १८७ मूलश्लोक पर देखीं कि काल बीतने से इस तरह पृथ्वी शुद्ध हो जाती है उसी प्रकार यहाँभी सूक्त आदिमें नियमित काल वितानेसे शरीर शुद्ध होते हैं—उसी काल की शंका मध्ये यहाँ यह दृष्टांत है कि जैसे अग्नि आदि दश कारणा निज निज वियय के स्थलों पर यथा योग्य शुद्धिकारसक्त हैं तैसे काल भी दश दिन आदि जहाँ जितना उचित है उतना समय वितानेसेही शरीरोंको शुद्ध करदेता है यही शास्त्र की आज्ञा है तिससे काल भी शुद्धि करनेको एक परस हेतु है—तहाँ—अग्नि जैसे अशुद्धिवात पात्रों को शुद्ध करता या पकेहुये मृत्पात्रों को दुबारा पकाने से अशुद्धि भेद देता है इत्यादि—कर्म भी शुद्धि का हेतु नामनिमित्त है जैसा आगे कहेंगे या जैसा अचमेघ के अवभृथ शेषांग कर्म का स्नान आदि अनेक भौति-मट्टी भी शुद्धि का कारणा है साजने लीपने आदि प्रकारों से वायुभी शुद्धिका हेतु है (मारुतेनैव शुद्धांति) यह लिखचुके हैं कि अनेक चीजें केवल हवासेही शुद्ध होती हैं—मन भी एक शुद्धि साधन करनेका हेतु है क्योंकि मन चाहै तो शुद्धि करीजाय यदा मनसेही शुद्ध बाल चाल आदि गुरुओंसे उपदेशलेकर सीखीजाती है या उत्तम शास्त्रोंसे इत्यादि—ज्ञान भी शुद्धिका हेतु इस भाँति है कि अध्यात्मिक वेदांत आदिसे उत्पन्नहुआ ज्ञान मनुष्यकी बुद्धि शुद्ध करदेता है इत्यादि आगे चौतीसवें मूलश्लोक में योगीश्वर आपकहेंगे—तपभी शरीर शुद्ध करने का एक हेतु है जैसे कच्छू आदि प्रायश्चित्तों के व्रत आगे कहेजायेंगे उनको तपससम्भना (प्रजापत्यं चरैत्काचकू) इत्यादि वचन हूँतौ—जलभी शरीर आदि सब शोषने का हेतु है (वर्ष्मसाजलं) यह वचन आगे योगीश्वर आपकहेंगे. पत्रचात्तापपंडितावा करना भी शुद्धि का हेतु है जैसा कोद्रे जीव परसे दबिगया तहाँ हरैराम इत्यादि पंडितावा करने से भी देव मिरता है और भी (स्न्यापनेनानुतापेन) यह वचन कहीं लिखा है कि अपना पाप कहि मनाने और पंडितावा करने से घटता है निराहार व्रतभी शुद्धिका हेतु है जैसा (विरायो प्रोथितो जप्त्वा) इत्यादि वचन आगे योगीश्वर आपकहेंगे ३१॥

अकार्यकारिणादानवेगोनद्यादचशुद्धिकृत। शोष्यस्यमृच्चतोयचसंन्यासोवैद्विजन्मनाम् ३२ ॥

तपोवेदविदांक्षातिर्विदुषांवर्षमणोजलम् । जपःप्र उन्नपापानांमनस मत्यमुच्यते ३३ ॥

भूतात्मनस्तपोविद्येयुंद्धर्ज्ञानविशोधनम् । क्षेत्रज्ञास्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धि परमामता ३४ ॥

अर्थः—अकार्यकारी लोग जो नियिद्ध काम करनेवाले तिनकी शुद्धि बहुत दान करने से होजातीहै- और नदीका किनारा आदि जो सजीन हो तिसको शोधने वाला बहुत बर्याका प्रवाहरूपी वेग होताहै- कोई वस्तु जो शोधने योग्य हो तिसके लिये मही और जलभी शुद्धिका हेतु है- द्विजातिश्यों को मन उपराम होनेकी दशामें सन्यासही शुद्धिका हेतुहै कि उसे लेलेनेसे पवित्र होते हैं ३२ ॥ तपोवेदविदां अर्थात् वेदवेत्ताओं को तपही शुद्धिका हेतु है यहां तप शब्दसे वेदाभ्यास किन्तु वेदहीका पाठ मनन आदि आराधन उनका तपहै उसीसे शुद्ध होजाते हैं और कृच्छ्र आदि जो तप कहे सो अन्यसाधारण अनुश्रियों को कि जो वेदवेत्ता न हो-सांति विदुष्यां अर्थात् विदुष्य जो वेद शास्त्रों के गूढार्थ जाननेवाले उत्तम ज्ञानी हैं तिनको जब कोई दुर्जन आदि वृथा कलक लगावें तब सांति करना किन्तु सहिलेना यही शुद्धिका हेतु रूप प्रायश्चित्त है सांति शब्दके और भी ऐसे अर्थ है कि जब कोई अपना अपकार करे तिसपर क्षमाकरना या क्रोध आवै तिसको रोकिलेना या अपने में शक्ति होते हुये भी अपराधी को प्रतिकार करने से तरह देजाना इत्यादि- वर्ष्मणोजलं किन्तु वर्ष्म जो शरीर है तिसकी शुद्धिका हेतु जलहै-प्रच्यन्न पापानां जपः अर्थात् ढकेहुये जो पाप किये गये कि उनका दोष किसी से कहा सुनाया नहीं तिनकी शुद्धिका हेतु अघमर्यादा आदि सुक्तोका जप होताहै-मनसःसत्य अर्थात् मनकी शुद्धि होनेका हेतु केवल सत्यप्रतिज्ञा है तहाँसत्त्वमसत्त्व भला बुरा दोनोंतरहके विचारका जो सकलरूप हैं सोई मन कहाताहै इनमें जो बुरे विचारोंसे मनको अशुद्धि प्राप्त होजातीहै तिसके शुद्ध करनेको प्रायः सत्यवचनरूपी प्रतिज्ञा धारणाकरे यह तात्पर्य है ३३ ॥ भूतात्मनः तपो विद्ये अर्थात् भूतात्माके शुद्ध करनेको तप और विद्या ये दोही परम हेतु हैं तहाँ भूतात्मा देही और प्राणीको अर्थात् मनुष्यही को कहतेहैं यद्यपि भूतात्मा शब्दके अनेक अर्थहैं पर यहां ऐसे समझना कि पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वभी पंचभूत कहातेहैं और प्राणीकोभी भूतकहते इन दोनोंका सबन्ध इसी एकदेहमें होताहै तिससे इसको भूतात्मा कहा तिस भूतात्मानाम देहऔर प्राणोंकी शुद्धि जो कोईहीकदीकचाहै तिस को तप और विद्याको समागधन करनाचाहिये इसमें तपऔर विद्याकेभी अर्थमेंकृच्छ्र भेदहै किन्तु ज्ञानकी लक्षणास्वरूपी जो ब्रह्महै जिसका जानना वेदांत से होताहै तिस

कास्वरूप समुत्थिते तन्मयहो जाना यही तप है परन्तु जिसको इतनी शक्ति न हो तिसके लिये तप शब्दसे अपने धर्मोंका धर्म अपने कुलका मुख्यधर्म अपने आयम का कर्म समु-
भना उनको यही तप है और विद्या यहाँ कौनसी कि वेदांत में तत्त्वसमि वाक्य से
त्वंपदार्थके निरूपणा करनेवाले व्याख्यानोसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है तिसको समु-
भना इन दोनोंके उत्पन्न होनेसे भूतात्मा की अशुद्धि मिटि जाती है ज्ञानंदुष्टे विशो
धनं अर्थात् बुद्धिका शोधने वाला ज्ञान है किन्तु बुद्धि जब अनेक यद्वा एकही किसी
संशय के भ्रमसे विगड़ि के अशुद्ध हो जाती है तिसको उत्तम प्रमारा देकर समुभने
समुभाने का ज्ञान प्राप्त होनेसे भ्रम दूर होता है तभी उसको शुद्ध हुइ कहिते हैं। सेवज्ञ
स्य ईश्वर ज्ञानात् शुद्धिः अर्थात् सेवज्ञ जो शरीर के भीतर बैठा हुआ आत्मा है तिसकी
शुद्धि ईश्वर का स्वरूप ज्ञान होनेसे होती है किन्तु सेवज्ञ नाम है खेतका तो यह शरीर
भी एक प्रकार का खेत है जैसे घरती पर खेतों को किसान खोदने जोतने आदि प्र-
कारोंसे बाने योग्य शुद्ध करता है तैसे पूर्वोक्त तपोविद्याके प्रभावसे शरीररूपी खेत
भी शुद्ध हुआ सब कहा जाता है कि जब त्वंपदार्थ रूपी ज्ञान संयुक्त होजाय और
त्वंपदार्थका ज्ञान भी तत्त्वसमि आदि वाक्योंके वाचसे उत्पन्न होता उसी को ईश्वर
का जानना भी कहिते हैं उसीसे युक्ति लक्षरारारूपी परम अतिशय शुद्ध सेवज्ञ की
होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

३२ अर्थिकोक्तिः—सेवज्ञेया शरीर का नाम कहा तैसा सेवज्ञ उस खेतकी दशा
जानने वाला पुत्र्य रूपी आत्मा जो भीतर इसका अधिपति देवता बना बैठा है वही
शरीर की दशाको पहिंधानता है कि इससमयमें इतना काम करनेकी शक्ति वर्त्तमान
है उसी कार्यमें इस देहको लगाना चाहिये ऐसा शोचि विचारि के कामों में प्रवृत्त
करता रहित है इसीसे सेवज्ञ उसका नाम है = यथाह सनुः = योऽस्यात्मनःकारयि
तातसेवज्ञं प्रचसते = अर्थात्—जो इस देहका काम धन्वा करानेवाला प्रेरक है उस
को सेवज्ञ कहिते हैं ॥ शोधने योग्य वस्तुओं के निमित्त ऊपर मड्डोजल कहा था
तिसका यह प्रमारा है = अमेव्याक्तस्य मृत्योः शुद्धिर्गन्धापकर्यगात् = अर्थात्—अ-
मेध्य अपवित्र किसी मलसे जो भरी लिपी कोई चीज हो तिसकी शुद्धि मड्डो और
बारंबार जलोंसे गन्धि छुड़ा डारने से होती है ॥ ० ॥ इन तीनों श्लोकसे जो बर्णन
किया सो भी इकतीसवें श्लोकमें चर्चा किये हुये काल पर दृष्टांत समुभिलेना
कि जैसे अन्य सब शुद्धियां सनुप्यके पुरुषार्थसे सिद्ध होती हैं तैसे काल रूपी शुद्धि
स्वयंसिद्ध होती है कि उतना नियत काल बीतिजाने पर अशुद्धि मिटिजाती है इसका

दृष्टांत प्रत्यक्ष में भी लोकसे समुझना कि जैसे कोई अपराध रूपी लांछन किसी को सद्भावलगा हो पर ऐसाही कि उसके लिये अवालत में अवधि नियत होतीहै जोउसी अवधि के भीतर अभियुक्त किया जाय तो सुनवाई होसकी थी अन्यथा सीआद गुजर जाने बाद उस बातकी समाप्ति न होगी तो यह तात्पर्य ठहरा कि उतने काल में उस पुरुष की स्वतः शुद्धि होगई जैसेही परसेचर के समस्या किये सूतक आदिका-लों के बीतनेसे ही शुद्धि प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

दृष्ट्याशौच प्रकरणं प्रथमं ९

इस अशुद्धि नामक प्रकरणमें पांच परिच्छेद हे सो समझ लेना

(अथ यहाँ से आगे आपत्कालिक धर्म जीविका आदि दृश्यंतर कहा जायगा)



आपत्काले वृत्यंतरनियमादिकथनेषुपरिच्छेदः ६

इसपरिच्छेद में चारों वर्गोंको आपत्कालिक धर्मके नियम दर्शाये जायेंगे और उन्हीं के प्रसंग में वेचने या न वेचने योग्य द्रव्यों के नियम कहे जायेंगे

(आपत्ति वृत्यंतर नियमाः)

क्षेत्रफलकर्मणाजीवेद्विशांवाप्यापदिद्विजः । निस्तीर्यतामथात्मानंपावयित्वान्पसेत्यथा ३५ ॥

अर्थः—द्विज ब्राह्मण आपत्काल में क्षत्र कर्मसे जीवै या वैश्योंकेसे-उसआपदा को निस्तीर्य करिके फिर आत्मा को पवित्रकारी सागंसे राखै=अर्थात्—ब्राह्मण जब अपनी वृत्ति याजन अध्यापन आदि से निर्वाह न करसकेतो वही उसको आपत्काल है तिसमें अपने से न्यून वर्रां सधी का कर्म जो शस्त्र वांधना आदि प्रसिद्ध है तिसके द्वारा जीविका करै जो यहभी न करसकेतब उससे न्यून वाणिज्य आदि वैश्य कर्म से निर्वाह करै (परंतु शूद्र की वृत्ति से न जीवै यह अधिकोक्तिमें देखना) इसी उपलक्षणा से अन्य वर्गों भी अपना से अनंतर हीनवर्रां का जीविका आपत्काल में करसकते है अधिकोक्ति में देखो) इस भाँति उस आपदाको विनायकर पीछे अपने आत्मा को प्रायश्चित्तों से पवित्र करके कि जैसे प्रायश्चित्त आगे वर्गोंत होगे उनका आचरसाकिये पीछे फिर अपनीमुद्ब्य वृत्तिको करनेलगेया अपनी फिरभी न करसके तो उही वृत्तिसे धन संचयके द्वारा अपने आत्मा कोअच्छेसुसागंमेंचलावै अर्थात्उसी निर्दिष्टवृत्तिसे जो देहुये धनकोसुसार्गवालेश्रेष्ठकामोभेलागाकरअपनेकोपुनीतकरै ३५ ॥

३५ अधिकोक्तिः—ब्राह्मणा शूद्रवृत्तिको आपत्काल में भी न करै=तथाचसंनुः= उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ऋयिगोरक्ष्य सास्थायजीवेद्द्वैश्यस्य जीविका स=अर्थात्—अपनी तथा सखी की इन दोनों वृत्तियों में न जीसकने की दशा में कैसे हो यह शंका यदि उत्पन्न होय तब खेती और गोओंका राखना आदि वैश्योंकी जीविका से निर्वाह करै=इसी प्रकार सखी जब अपनी वृत्तिसे न जीसके तब अनन्तर वर्रा वैश्यकी वृत्ति से निर्वाह करै ऐसेही वैश्य अपनी वृत्तिसे न जीसके तब अनन्तर वर्रा शूद्रकी वृत्तिसे जीवै पर उससे भी नीच वृत्तिको न करै और यह भी नियम है कि अपना से उत्तम वर्राकी वृत्ति को कदापि न धारणा करै=तदाहर्वाण्यः=अजीवं तःस्वधर्मैरानंतरापापीयसीं वृत्तिमातिथेरन् नतुकदाचिच्चिज्यायसीम् (ज्यायसीचत्राह्नी वृत्तिः)=अर्थात्—अपने धर्मसे न जीसके हुये कोई वर्रा अपनेसे अन्तरविना निचले कीखोंटी वृत्तिपरभी आरूढ़ होय परन्तु ज्यायसीनाम अपनेसे उत्तम नी वृत्तिकोकदाचित्त भी न करै (यहांउत्तमवृत्ति ब्राह्मणा की समझनी दान लेनायज्ञ कशनाआदि) इसका प्रसारा अगिला वचन है=यथास्मृत्यंतरं=उत्कृष्टवापहृष्टंवा तयोःकर्मतविद्यते मध्यमेकर्मरणीहित्वासर्वसाधारणोहिते=अर्थात्—उत्कृष्टकर्म और अपकृष्टकर्म येदोनों उनके दोनोंको नहींपहुंचते किन्तु नीचके दोकर्म सखी और वैश्यवाले छोड़के तथैव कर्मोंको छोड़ के यह नियम समझना जो सबके साधारण हितकारी हों अभिप्राय इसका यह कि शूद्रको ब्राह्मणा का उत्कृष्ट कर्म नहीं और ब्राह्मणा को शूद्रका नीच कर्म नहीं उचित परन्तु बीचवाले देवर्षीों के कर्मको परस्पर ऊंचनीचका भी बदल होसक्ताहै इसकेसिवाय जो जो कर्म सबकेही आपत्काल में करने योग्य हैं तिनको सब करसके हैं=किन्तु आपदा से ग्रसित शूद्रभी वैश्यकी वृत्तिसे या नाना भौति के शिल्प कर्मोंसे निर्वाह करै जैसा यह वचन पहिले आचार में आचुका है (शूद्रस्यद्विजशुभ्रु यातयाऽजीवनवर्गामभवेत् शिल्पैर्विविधैर्जीवेत्द्विजातिहितमाचरन्)अर्थात्—शूद्रका मुख्य धर्म तो द्विजातियोंकी सेवाहै पर उससे न जीसक्ताहुआ वर्गिक्रमै या द्विजातियों की भलाई करता रहकर विविध भौति के शिल्पोंसे जीवै=इसी वात्तापर मनु ने भी विशेषता करी है=यथा =यैश्चकर्मप्रचरितैः शुभ्र व्यतेद्विजातयः तानिकारुक कर्माणिशिल्पानिविधानिच=अर्थात्—नगरमें जिनकर्मोंके प्रचार होनेसेद्विजाती लोग आराम पातेहैं वेकर्म कारुक लोगोंके अर्थात् अनेक धा कारीगरों केहोतेहैं और विविध भौति के शिल्प कर्म भी कारीगरोंके होतेहैं ॥ ० ॥ जैसा चारोंवर्गोंका यह सब नियम कहा तैसा इसी न्याय से अनुलोमेत्पन्नशंकर जातियों में भी समझ लेना

कि अपनेसे अनन्तर हीनजातिका कर्म आपत्कालमें करसक्त हैं=अनुशौम जाति की उत्पत्ति आचार अध्याय के बर्णजाति विवेक प्रकरणमें लिखिचुकेहैं=कदाचित् आपत्काल में ब्राह्मराने अष्टप्रतिग्रह आदि किया हो तिसका दोष मिटाने का नियम आरोदेखो=तदाहमनुः=जपहोमैरपैत्येनीयाजनाध्यापनैःकृतम् प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेत्तपसेवतु=अर्थात्—असत् याजन असत् अध्यापनसे जो पाप उत्पन्न होय सो जप होमों के करनेसे मिटता है और जो असत् प्रतिग्रह के निमित्त का पापहोय सो द्रव्य त्याग करने किन्तु दीन दुःखियाको वर्ताइ देने तथा अपने जातीधर्मकर्मरूपी तप करने सेही मिटता है ॥ ३५ ॥

(अविक्रयानिद्रव्याणि)

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवोरुधः । तिलोदनरसक्षारान्दपिक्षीरंघृतंजलम् ३६ ॥

शस्त्रास्तवमधूच्छिष्टमधुलाक्षाधवर्हिपः । मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविपक्षितीः ३७ ॥

कौशेयनीललवणमांसैकैशफसिसकान् । शाकाद्रौपधिपिण्याकपशुगन्धास्तथैव च ३८ ॥

वैश्यवृत्त्यापिजीवन्नोविक्रीणीतकदाचन ॥

अर्थः—इतनी चीजें नबेचै=फल·उपल·क्षौम·सोम·मनुष्य·अपूप·वीरुध·तिल·ओदन·रस·क्षार·दधि·क्षीर·घृत·जल·शस्त्र·आसव·मधूच्छिष्ट·मधु·लाक्षा·वर्हिप·सृत्तिका·चर्म·पुष्प·कुतुप·केश·तक्र·विद्य·सिति·कौशेय·नील·लवणा·मांस·एकशफ·सीसक·शाक·आर्द्र·औषधि·पिरायाक·पशु·गन्ध—वैश्यवृत्ति से निर्वाह करना परे तो भी ब्राह्मरा इतने द्रव्योंको न कभी बेचै=अर्थात्—फल हरेगीले केले आदि के उपल पत्थर सारिकाव आदि सब समझने·क्षौम वस्त्र जो सूया अलसीकी छाति से बुना हो उसके उपलक्षणा में सनकासत आदि भी समझने जैसा अविकोक्ति में मनु का वचन है·सोमनाम एकलता विशुध्य वेतल होतीहै·मनुष्य स्त्री पुरुष नपुंसकआदि चाहें किसी प्रकारका हो·अपूप पुत्राके उपलक्षणासे मध्यमाव और भी समझने·वीरुध नामसे वेज गिलोह आदि लतारं समझनी·तिल प्रसिद्ध हैं·ओदन भात कहिने से इसप्रकारके और भी भोज्यान्नमात्र समझने·रस कहिनेसे शुद्ध ईखरस शर्कराआदि नीदरस जानने·क्षार जवाखार आदि·दधि और क्षीर दुग्धकहिनेसे उसके विकारवाली अन्य चीजें भी खोया खड़ी आदि समझनी·घृत के उपलक्षणा में तेल आदि सब चिकनाई समझलेनी·जल पानी·शस्त्र तलवार आदि·आसव शब्द से मद्यमात्र जो नशा के आखर्हों सब समझने·मधूच्छिष्ट सोम·मधु·महत·लाक्षा लाख·वर्हिपकृशा·सृत्तिका मट्टी·चर्म चनडा·पुष्प फूल·कुतुपनाम जनके कम्बल·योग बाल चमरीगज

आदिके-तकसदा-विय जिनसे प्रारागी मरजाताहो-क्षिति धरती-कौशेय रेशम-नील नीलवरी प्रसिद्ध है-लवरा जो खानिसे उत्पन्नहों और बनेहुये सोंचर आदि सब ससभ्-ने नांस प्रसिद्ध है-एकशफ जिनके सुम दोहरे फटे न हों किन्तु घोडा गर्ध्व आदि-सीसक धातुके उपलक्षरा में लोहा पर्यंत सात्र सब ससभ्ने • शाक साग तरकारी सब तरह के-आर्द्र भी ती औषधी जो वर्षात में जमिकर फलपकनेतक मिटिजातीहों अर्थात् सूखी औषधियों में विक्रय बोध नहीं है-पिण्याक पीना खलि-पशु जो वन के चौपाये प्रसिद्धहों-गन्धनाम अतर आदि सुगन्धि की चीजें-अब जो कुछ भेदवाकी रहा सो अधिकोक्तिमें देखौं येसादेतीन प्रलोकएकसाधहों ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पूर्वांशश्च ॥

३६ अर्धाकोक्तिः-फलोंका नियेधकिया तिनमें वेर और इंगुदहिगौरा को छोड़ि के समभ्ना-यथाह नारदः-स्ययसीरानिपरानिफलानां वदरेणुदेः रज्जुः कार्पासिकं सूत्रं तच्च देविकृतं भवेत्-अर्थात्-आप भूडिपरहुये पत्ते और फलों में वेर तथा इंगुद तथा रज्जु रस्ती और कपास का सूत खोभी जो बिगडा मैला अशुद्ध न हो ॥ अलसी का वस्त्र कहा तिसके सनी आदि के और भी ससभ्ने-यथाह मनुः-सर्वचतांतवरं तांशारा क्षीमाविकानिच अपिचेस्त्थुररत्तानिफलसूलेतयोषधी-अर्थात्-सब सूत का वस्त्र जो रंगा हो और सनका अलधीका भेडीकी ऊनका ये चाहें न रंगेहों तीभी और फल मूला तथा औषधियाँ जो जंगल से हरीलाकर बेचीजाती हों ॥ केवल रसही से शुद्ध आदि का नियेध किया तिमका आगे प्रसारा है-तथाचमनुः-क्षीरं सौमं दधिघृतैर्तेलं नद्युग्दौक्षशास्त्र-अर्थात्-दूध अलसीका वस्त्र या सूत दही घी तेल सहित शुद्ध कृष्ण ये नदेवै-किन्तु (क्षीरं सधिकार सितिगौतमोपि) अर्थात् गौतमने भी कहाहै कि दूध उसको बने बिन्दारों सहित ॥ क्षिति भूनिका नियेध किया तहों इतने और समभ्ने-यथाह सुमंतुः-नित्यं भूमित्रीहियवाजाद्यश्वयंभवेन्चन्द्रहप्रचैके-अर्थात्-धरतीदानजो बकरी आदि घोडा बेल गाय आंडुविजारभी कभी न देवै यहएकों का मत सुमन्तु ने लिखा है ॥ पशु जो वनके वताये तिसका भी प्रसारा है-यथामनुः-आरगयांश्च पशून्सर्वान्दद्यात्प्राचवयांसिच = अर्थात् - वनके सभी पशुओंको और दाहसे फाडने वालोंको और वयांसि पक्षियों को न देवै ॥ ये सादेतीन प्रलोक यहाँतक हुये कि वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करने में भी ब्राह्मरा ये चीजें कभी न देवै किन्तु सभी आदि को यह दायनहींहै-इसी लियेयद्यपियोगीचरने भेदनहीं खोलापरन्तु नारदनेब्राह्मण के ही नाम से नियेध किया है = यथा = वैश्यवृत्ताविक्रियंत्राहारास्यपयोदवी = अर्थात्-ब्राह्मराको वैश्यवृत्तिमेंभी दहीदूध बेचने औरय नहीं ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अर्द्धश्च

(अगिलेडेड प्रलोकसे कुरुप्रतिप्रसवकहाजायगा प्रतिप्रसवउसका नामहै कि जो वार्ते नियेव करीगई उनकोफिर किसीअवसरमें करनेकी आज्ञादीजाय) ॥

(निप्रिद्वस्य प्रतिऽसवः) ।

धर्मार्थविक्रयनेयास्तिलाथान्येनतत्समाः ३९ ॥

लाक्षालवणमांसानिपतनीयानिविक्रये । पयोदधिचमयचहीनवर्णकराणितु ४०

अर्थः—धर्म के लिये तिल बेचने योग्य है धान्यसे उसीकी बराबर ३६ लाख ननक सांस ये बेचने में जातिसे पतनीयाहै दूध दही मद्यये हीनवर्शाकरने वालेहै४०= अर्थात्—जत्र रोजका मामली पाक यज्ञ सोई आदिका धर्म नाजके न होने से रुकता हो तब नाज के लिये तिल विक्रय में देने चाहिये सो उसी नाज की बराबर (यहाँ बरानरका अर्थविज्ञानेयने यहकरवाहै कि नापि तौलिके बराबर देना परन्तु ऐसा अर्थ ठीक है कि तत्समाः उसी नाज के सोलके समान जितने होसके सो देना जितने नाज की ज़रूरत हो किन्तु उस ज़रूरत की बराबर से अधिक रोक इत्यसे न बेचने चाहिये अन्यथा तिल और नाज के सोल में बहुत अंतर होनेसे बराबर तौलिके देना कोई ठीक न्याय नहीं है) धर्म के निमित्त बेचने कहे तो इस धर्म पदसे और भी आवश्यक धंधे जैसे प्राणों की रक्षाहेतु औषधी मँगाने आदि में भी बेचनेकी आज्ञा सिद्ध होतीहै तहां भी बराबर का यही अर्थ होगा कि जितने दामोंकी औषधीलेनी हो उतनेबेचै अन्यथा दवाई सहेंगे सोल की सस्ते तिलों की बराबर तौलिके कोई विक्रेता नहीं देगा तब केसा विरोध खड़ा होगा ३६ ॥ परतु लाख लवणा सांस इन का नियेव होचुका है कदाचित्त इनको बेचै तो सद्यही पतित ठहरेता है क्योंकि इन के बेचने से डिजाती के कर्मकी हानि होती है वरन दूध दही मद्य इनके बेचने से शूद्र जातिकेही तुल्य होजाता है ॥ ४० ॥

३६ अधिकोक्तिः=मनुः=काममुत्पाद्यकृप्यांतुस्वयमेवकथीबलः विक्रीणीततिला लुशुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्=अर्थात्=मनुने किसानोंको यह आज्ञा करीहै कि खेती में (कृषीबल) किसान आपही शुद्ध साफ तिलों को उत्पन्न करिके यदि इच्छा हो तो धर्मके अर्थ बेचै परन्तु थोडे काल के धरे हुये बेचै किंतु बहुत पुराने विगड़े न देवै (यहाँ धर्मके अर्थका यह तात्पर्य है कि जो कोई होम यज्ञ आद आदि कामों को खरीदै उसीके हाथ बेचै और किसी विदेश के वैपारी आदि को भर्ती न भरावै क्योंकि अपने देशमें ज़रूरत पर तोडा न हो जाय जिससे प्रजा दुखपावै ॥ नारद=अय

क्तौभेयजस्यार्थेयज्ञहेतोस्तथैवच यद्यवश्यंनुविक्रयोऽस्तिलाधान्येन तत्समाः (यद्यन्प्र
 याविक्रीणीतेर्ताहंदोयः) तदाह मनुः=भोजनाभ्यंजनादाना द्यदन्यत्कृतेर्तिलैः कर्मिर्भ
 त्वाप्रचविद्यायांपितृभिःसहसज्जति=अर्थात्-नारदने कहा कि अपनी अशक्तिमें कि
 जब तिलोंके बेचे बिना काम नहीं चलै तब औद्यधीके अर्थमें तथा यज्ञके हेतुसे भी
 जो अवश्यही तिल बेचने परै तौ धान्यसे उसकी बराबर बेचै (जो और किसी प्रकार
 से बेचै तौ दोय है) सोई मनुने यों कहा कि=तिलानको खाने और अभ्यंजन कहिये
 तेल करने या दान करने इन कामोंके सिवाय जो कुछ और काम तिलों से करै जैसे
 पशुओंको दाने तुल्य खिला देना आदि तौ वह मनुष्य पितरों सहित कृत्ताके बिंथा
 से कर्म होकर उसमें पैरता है (यह तलाक़दी) इसका भी यह तात्पर्यहै तिलोंका
 भोजन या तेल या दान चाहै अपने आप करै या जो कोई इन्हीं कामों के निमित्त
 चाहै तिसके हाथ बेचै तौ यह तलाक़ उसको न समुझनी (अवोक्त नारदके वचन में
 भी धान्यसे उसकी बराबर बेचै इस आज्ञाका यह तात्पर्य नहींहै कि नाजकी बरा-
 बर देवे और नाज लेकर दवा इरीदने जाय किंतु ऐसा तात्पर्य है कि धान्य शब्द
 के उपलक्षणार्थ दवाइ आदि सब चीजें समुझिलेनी कि जिनकी जरूरत खड़ी हुईहो
 और तत् शब्दसे जरूरत वाली वस्तुके परिमाण का निर्देश कहागयाहै कि जितनी
 वस्तुकी जरूरतहो उतनेके समान तिल बेचने चाहिये अधिक नहीं) तौ इस व्याख्या
 से अब कोई सा विरोध श्रेय नहीं है अन्यथा जो (तिलाधान्येनतत्समा विक्रयोः)
 इसका वही अर्थ जोडौंगे कि तिल नाज से उसकी बराबर बेचने जैसी विज्ञानेश्वर-
 चार्थकी यह पंक्तिहै (तत्समाद्रोरा परिमिता श्रोत्रापरिमितेनेत्येवं तेनधान्येनसमाः)
 कि बत्तीस सेर तिलोंकी बत्तीस सेर नाजसे देवे यह उदाहरण इसी पंक्ति में प्रत्यक्ष
 है परंतु इसमें पूर्वोक्त विरोधों से उपरालू एक और भी यह बड़ा विरोध है कि जो
 नाजकी बराबर देनेका सिद्धांत ठीक होता तौ मुनीश्वर उसको बदला करना लिखते
 किंतु विक्रये पद नहीं लिखते ॥ और जो बदला करने मध्ये एक वचन किसी
 स्मृति का आगेहै उसका भी यह तात्पर्य नहींहै कि अतिशय न्यूनधिक मूल्यवाली
 वस्तु बराबर के बदले में दीजाय=यथा=रसासौर्निमातव्या नत्वेवलवगारसैःकृतानं
 चक्रतान्चेतिलाधान्येनतत्समाः = अर्थात्-रसों से रस (यद्यपि निमातव्य) बदला
 करने योग्यहै पर वेही जो सजाती होनेसे मूल्यमें बराबरहों क्योंकि रसों में लवण
 भी गिनतीहै वह रसोंसे नहीं बदला जासकताहै किन्तु यह दृष्टांत है कि जैसेहतात्र
 सिद्धान्त सिद्धान्तसेही बदला जायगा औरजैसे (तिलाधान्येन तत्समाः) तिलधान्य में

नहीं उसकी बराबर दिये जासकते हैं—यह वचन यद्यपि निश्चित नहीं कि किसग्रन्थ का हो तथापि किसीएसेभगड़ेके न्यायपर आरुद्धहै कि जहाँ कोईउवार लीहुईवस्तु केवदलेमें इहसे कुछ और वस्तु उसीकीबराबर देनेलोगे तब यहन्याय सुनायाजाय यह व्यवहार से संबंध रखता है (अन्यथा जोतिनाधान्येन तत्समाः इम वाक्यमें तृतीया विभक्ति से योजना करनी चाहोगे तो भी पूर्वोक्त व्याख्यासे यह अर्थ सिद्धहोगा कि तिलधान्य से उसकी बराबर दिये जाय अर्थात् उसके मोल की योग्यता के समान दियेजाय तौलके बराबर नहीं और यही न्याय लोकमें भी विदित है ॥ ३६ ॥ नियम छोड़के नियिद्ध चीजोंके बेचने मध्ये मनुने ये दोषप्रकटकियेहैं=यथा=मद्यःपततिमां सेनलासयालंबरोनच व्यहेताशुद्रोभवतिब्राह्मणाःशौरविक्रयात् इतरथानपत्यानांवि क्रयादिहकामतःब्राह्मणाःसप्तराशेरावैश्यभार्वनिगच्छति=अर्थात्—मांसेबेचनेसेब्राह्मणा मद्यही तत्काल जातिसे पतित होताहै तथैव लाख और नमक बेचनेसे भी और दूध बेचनेसे तीनदिनमें शुद्धके तुल्यहोजाताहै इनके सिवाय जोजो और चीजें बेचनेकोनि- येषकरां तिनको अपनी इच्छासे बेचनेमें सातदिन बेचिकेवैश्यकेतुल्यहोजाताहै ४०

(आपद्गतविप्रस्यजीवनानि)

आपद्गतःसंप्रयुक्तभुंजानोवायतस्ततः । नलिप्येतैनसाविप्रोज्वलनाकलमोहिसः ११

कृपिःशिल्पभृतिर्विद्याकुसीदंशकटंगिरिः । सेवाऽनूपनृपोभेदयमापन्नोजीवनानितु १२

अर्थः—आपद्गत ब्राह्मणा प्रतिग्रह लेताहुआ जहाँ तहाँ खाताहुआ भी पापसे नहींलिप्त होताहै अग्नि और सूर्यके समान ४१ ॥ कृषी-शिल्प-भृति-विद्या-कुसीद-शकट-गिरि-सेवा-अनूप-नृप-भेदय-ये जीवन के हेतु हैं आपत्ति में ४२ ॥ अर्थात्— जिस ब्राह्मणा के बहुत कुटुम्ब होने आदि से निर्वाहमें कठिनताहो और वह ब्राह्मणा उस आपत्ति में भी सखी या वैश्यकी वृत्ति न करसक्ता हो तो वह अति हीनसे भी हीन प्रतिग्रह दान आदि लेने और हीन जातियों का अन्न भोजन करनेसे पतित या दोषी नहीं ठहेर सक्ता है कि जैसे अग्नि अशुद्ध वस्तुओं को पकाने जलाने से भी या सूर्य अशुचि द्रव्यों को सुखाने आदि से भी दोषी नहीं हो सक्ते हैं तैसे वह ब्राह्मणा भी अग्नि और सूर्यके समान है—इस नियम से यह तात्पर्य सिद्ध होताहै कि ब्राह्मणा को आपत्काल में भी विरानी वृत्तिसे अपनी वृत्तिनिन्दित भी प्रेष है अधिकोक्ति में देखना—अगिले प्रलोक में सामान्य भावसे दश रयारह भेद जीवन के सब लिखते हैं कि उनमें से जो जिसको अच्छी दशा में नियिद्ध हो सो आपत्काल में करसक्ता है यह तात्पर्य समझना ४१ कृषी खेती जिसको अपने हाथ से करनी

नियिद्ध हो वह भी आपत्काल में करसक्ता है शिल्प कर्म जिसको सनेक्रिये सोभी आपत्काल में करसक्ता है भृति प्रेप्यकर्म है कि चिददी पत्री या सदेशा लेखरजाना आना आदि विद्या यह ब्राह्मराको पढाई लेकर पढ़ानी नियिद्ध है पर आपत्कालमें पढाई लेकर पढावे कूसीद व्याज दंडा खाना नियिद्ध है पर आपत्कालमें करे शकट गाड़ी ऊकडा यह भाड़ेको चराना आदि कुरी या देखको भी आपत्काल में कर्तव्य है गिरि पहाड अर्थात् उसमें से लकड़ी आदि चीजें लाकर देचना आपत्कालमें सेवा नौकरी हाजिरबाशी आदिके द्वारा समर्थोंका सेवन करना यह भी आपत्काल में अनूप नामसे वह धरती कहती है जहाँ बहुत सा जल वृक्ष लकड़ी कगडा आदि प्राप्त होसके तहाँ जा वसना नृप अर्थात् राजा को सेवा यद्वा याचना करनी भेद्य भिक्षा वृत्तिकरनी स्नातक हो तोभी आपत्कालमें नियेव नहीं है क्योंकि आपत्काल में ये सभी जीवन के हेतु हैं इनके क्रियेविना निर्वाह नहीं होता ॥ ५२ ॥

४९ अधिकोक्तिः=मनुरपि=विद्याशिल्पभृतिःसेवा गोरक्षाविपरीतःक्रियःगिरिमें स्थं कूसीदंचदशजीवनहेतवः=अर्थात्=विद्या शिल्प भृति सेवा गोरक्षा विपरीत दुकान खेती पहाड भिक्षा कूसीद सूदव्याज ये दश हेतु जीवन के मनुने भी कहे हैं ॥ ० ॥ मनुने ब्राह्मरा को जहाँ तक होसके अपनी वृत्ति निंध्य भी कररातीय आपत्काल में भी कही है=यथा=वरस्वर्मा विद्युराोन पारस्व्यःस्वनुयितः परस्वर्मा अथा द्विप्रःसद्यःपतति जातितः=अर्थात्=अपनाधर्म विद्युराहे सो भी अच्छा पराया धर्म अच्छा हो तोभी ब्राह्मराको नहीं चाहिये क्योंकि पराये धर्मका आययलेकर ब्राह्मराशीघ्रही जाति से पतित होजाता किन्तु ब्राह्मरात्व के चिह्न भिति जातेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

(अनाहारपीडितधर्मः)

युभुक्षितस्त्र्यहंस्थित्वाधान्यमब्राह्मणाद्धरेत् । प्रतिशुद्धतवाऽऽख्येयमभियुक्तधर्मतः ४१
तस्यवृत्तकुलेऽखलंभृतमध्ययनंतपः । ज्ञात्वा राजा कुटुम्बवधर्म्यावृत्तिप्रकल्पयेत् ४२

अर्थः—भखा तीन दिन रहिकर अब्राह्मराका धान्य हरे लेकर वही कहिदेना चातिये अभियुक्त पकड़े हुये करके भी धर्मसे कहिदेना चाहिये ५३ ॥ राजा उसका वृत्त चलन झल शील स्वभाव पढना तपस्या और कुटुम्ब कोभी जानिके धर्म्यावृत्ति कल्पित करे कि जिससे फिर रोसा उसको न करना परे ५५ ॥ अर्थात् जिसके खेती आदि आपत्काल में कोडे कान सम्भव न हो और सात्रविना तीनदिन कडाके हो चुकेहैं तो ब्राह्मरा का खींडे किमी गूद का नाज केवल एक दिनके खाने योग्य

या शूद्रका न मिलै तो वैश्यका या ऐसे किसी सगीका चुरावै जो धर्म कर्म से हीन हो पंच इस चुराने को सबसे जाहर भी करदेवै कि ऐसी लाचार दशमे यहकरना पडा यद्वा नाज का मालिक जो इसको पकडि के राज में लेजाय तो वहाँ भी सचा वृत्तान्त कहिसुनावै तब राजा इसके चाल चलन कुल शील आदिकी तहकीकात लेकर समायिक्ये पीछे उसके लिये कोइ भी जीविका वृत्ति कल्पित करावै जो उस की दशा के अनुरूप समझी जाय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

४३ अधिकोक्तिः—मनुः—तथैवसप्तमेभक्ते भक्तानियङ्गयता अत्रस्तनविधानेन इर्तन्यहीनकर्मणाः—अर्थात्—सांभ सवेरे दो बार भोजन के मार्गसे छे बार किन्तु पूरे तीनदिन जिसने भोजन न पाया हो तो वह सातवीं बारके भोजन अर्थ उतनाही नाज हीन कर्म धर्मका चुरावै जो एकदिन भोजन करलेने के सिवाय दूसरे दिनको न बचै (तिस ऐसे सच्चे चौरकी जीविका राजा कल्पित करादेवै यह योगीश्वर के वचन मे आचुकाहै) राजा भी जीविका कल्पितकरानेविना दोगी होताहै—तदाहमनुः—अस्यरा जस्तुविययेश्रोत्रियःसीदतिस्तुधा तस्यसीदतितद्रांष्टुर्भिक्षव्याधिपीडितम् = अर्थात्—जिस राजाके राजमें ज्ञानमान परिण्डित भुंख से पीडित होता है तिसका वह राज्य भी दुर्भिक्षऔर महामारी आदि व्याधिसे पीडित होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

—*—

अथ वानप्रस्थाश्रमधर्म कथने सप्तमःपरिच्छेदः ७

इस परिच्छेदमें वानप्रस्थ जो तीसरा आश्रम कहाता है तिसके सब नियम धर्म कहे जायंगे ॥

(वानप्रस्थाश्रमधर्माः)

मुतविन्यस्तपत्नीकस्तयावानुगतोवनम् । वानप्रस्थोब्रह्मचारिसाग्नि सौपासनोब्रजेत् ४५

अन्तरार्थः—मुत में विन्यास करी पत्नीवाला या तिसको पीछे लगाये ब्रह्मचर्यसे अग्नि सहित सोपासन बनको जाय सो वानप्रस्थ है ॥ ४५ ॥

अभिप्रायः—चार वर्गोंके सिवाय चार आश्रम जो प्रसिद्ध हैं सो उन्हीं वर्गों मे सब होतेहैं अर्थात् पहिला ब्रह्मचर्य आश्रम फिर दूसरा गृहस्थ आश्रम तब होता है कि जब ब्रह्मचारी अपना व्याह करके गृहस्थी बने (आश्रम ठिकाने का नामहै कि

अमुक मनुष्य किस ठडकाने में गिनती है ब्रह्मचारियों में या गृहस्थियों के ठिकाने में यह तात्पर्य है) सो इन दोनों आश्रमके सब धर्म कर्म आचार मर्यादा परिपाटी में लिख चुके हैं अब यहाँ उनका तीसरा आश्रम वानप्रस्थ दर्शाते हैं कि (वनेप्रकर्षे वा नियमेन च तिष्ठति चरतीति वनप्रस्थः वनप्रस्थस्य वानप्रस्थः संज्ञायां दैर्घ्यं) वन में प्रस्थित रहें सो वनप्रस्थ है उसी को वानप्रस्थ कहते हैं सो यह वानप्रस्थ गृहस्थीमें से होता है—कैसे होता और कैसे वनमें रहता है तिसके लक्षणा ऊपर अक्षराद्यसे कहि चुके परन्तु अच्छी भाँति समझाने के निमित्त से अभिप्राय अब लिखते हैं कि—गृहस्थ का आश्रम अच्छा भोगि सम्हारि के पुत्रोंको जीविका नियत कर देने बाद उन को समर्थ हुआ जानिकर अपनी पत्नी उनको सौंपिदे कि माता को आराम तथा रक्षासे राखना में वनवास को जाता हूँ—यदा भाव्या आपही अपनी इच्छा से पति की सेवा करनी चाहिके साथ जाना चाहै तो उसको भी साथ लेकर ब्रह्मचारी होकर रहे किन्तु पत्नी से रतिविलास न करे अपना वीर्य खींचिके साथे पर चलावे—और साग्नि वनको जाय अर्थात् वैतान अग्नि जो वेदोक्त अग्निहोत्र की स्थापन धर्म में हो रही थी तिसको भी साथ लिये जावै तथा सोपासनोत्रजेत किन्तु उपासन अग्नि भी गृह्याग्नि के नाम से दूसरी अग्नि होती है तिसको भी साथ लिये जावै फिर वन में रहकर अगिले छह-लिस षट् प्रतीकवाले नियमोंकी साथे वह वानप्रस्थ कहाता है ॥ ४५ ॥

४५ अधिकोक्तिः—यहाँ यह संदेह न करना कि प्रायश्चित्तोंके प्रसंगमें आश्रम के धर्म क्यों कहिने लगे—क्योंकि यह वानप्रस्थका धर्म जो है सो भी आत्माकी शुद्धि कर देनेवाला एक बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है इसके आगे संन्यास ब्रतान करैगे सो भी यद्यपि चौथा आश्रम है परन्तु आत्म शुद्धिके प्रभावसे वह भी एक प्रबल प्रायश्चित्त समझना इसी प्रकार जहाँ जहाँ जो कुछ इसकाण्डमें ब्रतान हो सो सर्वथा प्रायश्चित्त हीका रूप समझना कि उसका पाठसात्र भी यवगा करनेसे मनुष्यों के जन्मांतर पापशोधन होजाते हैं फिर सासात्र साधना करने वालोंकी का कथा ॥० ॥ बेटाको अपनी भार्या सौंपिके जाय इस कथनसे यह तात्पर्य भी दर्शाया है कि वनवास उसीको लेना चाहिये जिसने गृहस्थी धर्म के द्वारा बेटेपैदा करके और पालि पोयि समर्थ करदिये हों अग्र-या छोटे बालबच्चों वालालाहीं—सो भी यह नियम उसके लिये सम्भव है कि जिसने क्रमसे सब चारों आश्रम का फल उठाना चाहा हो—अन्यथा (अविप्लुतब्रह्मचर्यायं यमिच्छेत्तमावसेत्) दूसरा नियम यह भी है कि जिस ब्रह्मचारीने विवाह न करके अपना वीर्य ब्रह्मचर्य से थाँभाहो सो जिसजिस आश्रमकी इच्छा करे तिसमें वसे अर्थात्

गृहस्थी वनेविना भी निज इच्छासे वनवास लेकर वानप्रस्थवने या संन्यास लेकर संन्यासी वने ॥ ० ॥ गृहस्थी को वनवास लेनाकहा सो उस दशामें संसृचित है कि जब देह उसकी वृद्धापे से जर्जर होजाय यद्वा पुषों के पुत्र भी उत्पन्न होजायें तब देह जर्जर न होनेपर भी जाना चाहिये अन्यथा नहीं—यथाह सनुः= गृहस्थस्तयदापश्येच्च लीपलितमात्मनः अपत्यस्यैववाऽपत्यंतदाररायंसमाश्रयेत्=अयति—गृहस्थ पुरुषजब अपनी देहकी खालमें बल पहिगये दीली और पकीहुई देखे या संतानके संतानहुई देखे तभी वनवास करे तो उसके वनवास रूपी तपके प्रभाव से संतान की सदा जय होती वनीरहितो है ॥ ० ॥ पुषोंको पत्नी सौंपिके जानाकहा तिसका यह ध्वन्यर्थ नहीं है कि जिसकी पत्नी मरगई हो सो वनको नहीं जासक्ता क्योंकि पत्नी जीती होती तो सौंपिके वनवासलेते तिससे वह सौंपिजाना नियम केवल उसका है कि जिसकी पत्नीजीवती हो अन्यथा जिसकी मरचुकी हो तिसको भी वनवास लेना आपस्तंब आदि अनेक मुनीश्वरों ने कहा है—जब कि बड़ी अवस्था में स्त्री मरजाने पर भी वनवास लेना सिद्ध हुआ—और—आचार मर्यादा परिपाटी के ८६ प्रलोकसे यह कहाया (दाहयित्वाऽग्निहोत्रेरास्त्रियंतृत्तवतींपतिः आहरेद्विधिवद्वारानग्नीश्रुचैर्वविलंबयन्) कि जिसकी भार्या मरजाय तो वह पति अपने अग्निहोत्र की अग्नि से सुलसरागी स्त्री को जलाय कर देवे न करके शीघ्रता से विधि पूर्वक अपना विवाह करे और अग्निश्रुचौ का (पुनराधान) फेर स्थापन करे जो भार्या को न रहने से मिट गईथी—सो इस वचन से यह विरोध न समझ लेना कि आचार धर्म से विवाह करना आवश्यक लिख चुकेथे अब क्योंकर भार्या मरजाने बाद विवाह किये बिना वनको जासक्ता है—क्योंकि इस वचन से विवाह करने की आज्ञा केवल उसको दीगई थी कि जिसकी देह और अवस्था पूट होनेसे काम भोगकी वासना खड़ी रही हो या बालक बच्चे पालने योग्यहों या संतान जिसके न हो और गृहस्थी धर्मकरने की वासना बाकी रहीहो और यहाँ जो पत्नीके न होनेपर भी वनवास लेना कहा सो उस दशा में कि जब गृहस्थी धर्मसे खूब तृप्त होचुकी हो और पुत्र पौत्र भी समर्थ सौजूदहों या अपनी देहजर्जर होचुकीहो तिससे कोइसा विरोध नहीं केवलसमभक्ता अन्तर है ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर का कथन है कि- साग्निःसौपासनोव्रजेव- यह वाक्य जो मूल प्रलोक में कहा गया कि अग्नि सहित या उपासन अग्नि सहितजाय इसमें भी यह तात्पर्य है कि जिसके आधीही अग्निश्रुचौ का स्थापन हो सो तो श्रोताग्निश्रुचौ को और गृह्याग्नि को भी साथ लेजाय और जिसके सब अग्निश्रुचौ का अर्थात् तीनों

का आधान हुआ वह केवल एक श्रौताग्नि को लेजाय सबको नहीं ((ये अग्निघों की व्यवस्था अच्छी तरह उन्हीं की समझ में आसक्ती है कि जो अग्निहोत्री हों और अग्निहोत्र आदि यज्ञ विधान की पद्धति पढ़े हों उस विषय के विविचिनियेधों को जानतेहों क्योंकि यहाँ केवल उनका चर्चाभाव है कुछ पुरा विधि नियेध नहीं है इसका दृष्टांत जैसे जेठा भाई जिसका अनाहितारिग्न हो तो छोटा भाई श्रौताग्नि का आधान न करे यह भी एक नियेध है ऐसे और भी अनेक हेतु हैं सो सब उन्हीं यज्ञविधानों से जानेजासके हैं)) जहाँ कहीं ऐसे उक्त कारणां से श्रौताग्नि का आधान न होसका हो तहाँ वह वानप्रस्थ केवल उपासनाग्नि को ही लेजाय इत्यादि विवेचन कर्तव्य है इसीलिये साग्निःसोपासनोत्रजेत यह कहा गया ॥ ० ॥ अग्नि का साथ लेजाना भी इसी लिये कहा गया कि जो कर्म अग्निहोत्र आदि उसमें होते हैं सो होतेरहें—इसीलिये मनुने वानप्रस्थ के धर्मों साथ यह अग्रोक नियम कहा है—यथा=वैतानिकं च जहुया दर्शनहोत्रययाविधि दर्शनस्कन्दयन्पूर्वं पौर्णमासं च शक्ति तः=अर्थात्—वानप्रस्थ वनमें रहते वैतानिक अग्नि होत्र भी यथा विधिसे होमें और दर्शनाम अमावस की पर्व तथा पूर्णिमा की पर्वकोभी अपनीशक्तिके अनुसार खाली न जाने देय किंतु उन में जो विशेष यज्ञ होते हैं सोभी करे ॥ अवचित्तर्कः—क्योंजी पुत्र को पत्नी सौंपिके वनमें गया वहाँ पत्नीविना अग्निहोत्र आदि कर्मकां अनुष्ठान क्योंकर होगा किंतु (पत्न्या सह यद्यन्यं) सपत्नीक यज्ञ करना कहा है ॥ समाधान—यह तर्क तुम्हारी सत्य है परंतु पत्नीको सौंपि जाना इस आज्ञा की प्रबलता से ही उसके विना करने का अधिकार सिद्ध हुआ—और भी यह विधि है कि जिस अग्निहोत्री के यज्ञ छपी व्रतके दिवस पत्नी रजस्वला होकर छूनेयोग्य न हो तो उस दिन उसको साथ बैदारे विना यज्ञ करे तैसा यहाँ वनमें भी समझ लेना कि विना पत्नी के होसक्ता है वरन पत्नी घर वैदी भी यह अनुमान किये रहेगी कि मैं पतिके साथही वनमें उर्पास्थित और यज्ञादि कर्मों में उसी तरह शामिलहूँ कि जैसे पहले वरके यज्ञ में होती थी तिससे कोई विरोध इसमें नहीं है न यह शंका करनी चाहिये कि जैसे ब्रह्मचारी जिसके स्त्रीका अभाव सदा होताहै तिसके वनमें जाने या विधुर जो स्त्रीसेविहीन या वियोगी हो सो... वनमेंजाय तिसकेलिये अग्निहोत्रआदिका परिलोपहै कि वे दोनों नहींकरते या नहींकरसक्तेहैं तैसैजिसनेपुत्रोंकोपत्नीसौंपी वह भी न करसकेगा ऐसी शंका निपट ल्याहै—क्योंकि—ब्रह्मचारी और विधुर ये दोनों भी अग्निताद्य कर्मों के अनधिकारी नहीं किंतु अधिकारी सिद्ध होते हैं क्योंकि

पंचम मास के उपरान्त श्रावणमास अग्नि के आवान में उनका भी अधिकार देख पड़ता है इस बातका प्रमाण अगिला वचन वशिष्ठ का देखो—यथाह वशिष्ठः—वान प्रस्योजितिलश्चीराजिनवासा नफालकृष्टमधितयत् अह्यंमूलफलसंचिचीतकध्वरे ताः इनाशयोदद्यादेवनप्रतिगृह्णीयात् ऊर्ध्वपंचभ्योमासेभ्यः श्रावणिकेनारिनमावा याऽऽहितारिनवृक्षमूलिकोदद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः सगच्छेत्स्वर्गमानंत्यं—अर्थात्—वशिष्ठ ने यह कहा कि वानप्रस्थ बनकर जदा रखाये चीरनाम कोपीन बाँधे या बनके वकल भोजपत्रआदि और अजिन मृगहाला विस्तर कियेहुये रहे पर हलकेजुते खेत में न टिके बिन बोये जाते जो वन में आपसे उत्पन्न होकर गिरें ऐसे कद मल फलों को अच्छी शुचिता से बिन लेवें धीरे अपना खींचके साथ में चढायेहुये (ऊर्ध्वरेताः) ब्रह्मचर्यसे धरतीपर सोया करें और किसी से कुछ प्रतिग्रह आदि न लेवें किंतु जहाँतक होसके देताहीरहे उपरान्त पाँच महीनाके श्रावणमास नाम वैदिक मास से (किंतु लौकिक से नहीं यह तात्पर्य है) वैदिक विधान से अग्नि का आवान करके आहितारिन बनाहुआ उसकी जहके पास निवास किये पितरों तथा मनुष्यों को भी देताही रहे सो वह ऐसा वानाप्रस्थ आनंत्य स्वर्ग को जावे—अर्थात् ऐसे स्वर्ग में जाता है कि जहाँ उसकी तपस्या का फल नहीं होसकता—इन सब नियमों को योगीश्वर अगिले ४६ के प्रलोक में विशेषता से दर्शावेगे ॥ ४५ ॥

(वानप्रस्थेगुणविधिः)

अफालकृष्टेनाग्निपितृदेवातिपीनपि । भृत्यांश्चतर्पयेत्समश्रुजटालोमभृवात्मवान् ४६ ॥

अर्थः—प्रमथु जटालोम धारणाकरे देहवा ना अफालकृष्ट अन्नसे अग्नियों को और पितरों तथा देवताओं और अतिथियों और भृत्यों को भी तृप्तकरे—अर्थात्—पूर्वाक्तवानप्रस्थ प्रमथु दादीमूछ जटा शिरपर लोम रोमा जीवगल आदिकहीं शरीर में होतेहो सोभी रखाये हुये तथा रोम के उपलक्षणमें नख भी रखे समभने आत्मवान् अर्थात् आत्मा जो परमात्माहै तिसकी उपासनारूपी शुद्ध सेवामें तत्पर बनारहिकर हल फालीसे जुते बिना धरती से उत्पन्न जो मुन्यन्न अनेक वन में होते हैं तिनसे उन अग्नियों को तृप्त करे जिनका साथ लेजाना पहिले कहिचुकहे अर्थात् उन में शीत वा स्मार्त कर्म करता है और पितरोंके निमित्त याद तर्पणा आदि भी करता है तथा देवतांके निमित्त जो जो कर्म आवश्यकहैं सो करताहै और अतिथि जो सबसे प्रथम दिवस अपूर्व कोई आवै ऐसे अतिथियों को नित्यही आदिक विधानसे तृप्त करता

रहे और च शब्द को ध्वन्यर्थ से भिसादान भी उसी अन्नसे करतारहे (अधिकोक्तिमें मनु के वचन देखौ) और अपि शब्द को ध्वन्यर्थ से भूतों को भी पंचयज्ञ विधान से तृप्त करता रहे और भृत्य जो अपने शिष्यादिकहों तिनको भी उसी अन्नसे अर्थात् जो कुछ करै सो सब वन को उत्पन्न नीवार आदि मुन्यत्नों से करै किन्तु खेत को उत्पन्नो से नहीं—और विशेषता अधिकोक्तिमें ॥ ४६ ॥

४६ अधिकोक्तिः—मूलप्रलोक में दूसरे चकार को ध्वन्यर्थ से उनको भी संतृप्त करै जे कोइ भूले भटके आग्रम को पास आपरै—तथाचमनुः=यज्ञसःस्थासतोदद्यादलिं भिक्षाचर्शक्तः अमूलफलभिक्षाभी रर्चयेदाश्रमागतात्=अर्थात्—जो कुछ अपना भोजन होय तिसमें भूतबलि और भिक्षा भी शर्क्त के अर्थरूप किन्तु जल मूल फल भिक्षा इनसे सत्कारकरै उनका कि जो आग्रमपर आगयेहों=इसप्रकारपंचमहायज्ञों को निपटाइके उसका श्रेयअन्न आपभी प्रसादभोगै यहतात्पर्य अग्रोक्त मनुके वचनसे स्पष्टहै=यथा=देवताभ्यश्चतद्ब्रुवावन्त्यमैध्यतरंइविः श्रेयमात्मनिधुंजीतलवरांचक्षत्र्यं क्षतस=अर्थात्—वनका उत्पन्न जो अत्यंतपवित्र ह्यहो सो देवताओंके लिये होमिके (चकार से पितरों को भी) फिर बचाहुआ अपने उदर में युक्त करै और नमक जो ऊखर धरतीसे खारी आदि किसीतरहका उत्पन्नहो जिसको धोय नितारिके आपही शुद्धकिया हो सोई बर्तावामें लावै क्योंकि यज्ञोंके लिये वन का मुन्यन्न कहा तैसा नमक भी सूचित किया तिससे सभी वस्तु जो ग्राम्य हो किन्तु नगर आदि बस्तीसे उत्पन्न हो तिसका आहार करना निषेध ठहरा=तदप्याहमनुः=संत्यज्यग्राम्यमाहारं सर्वचैवपरिच्छदस=अर्थात्—बस्ती से उत्पन्न आहार को बिल्कुल त्यागि के और गृहस्थोंवाला सब सामान भी छोड़िके वनमें बसै ॥ ० ॥ अश्वितर्कः—क्योंजी ग्राम्य आहारों का निषेध त्यागकेसे होसक्ता है अमावस पूर्णामासी आदिके बेवोक्त यज्ञ भी धान चोंबर आदि ग्राम्य द्रव्योंसे होते हैं जो वनमें भी करने कहे-इसमें यह उत्तर न देना चाहिये कि(अफालकृष्ट) बिना जोते अन्नसे अग्निियों को तृप्त करना कहा तौ इसविशेष वचन की सामर्थ्यसे धान आदि ग्राम्य द्रव्योंकी रोक पाईजातीहै क्योंकि यह विशेष वचन है स्मृतियोंका और धानआदि की आज्ञाहै बेवोक्त श्रुति वचन से तौ इस दशापर स्मृति चाहें विशेष वियय वालीहो तौभी उसके द्वारा श्रुति वचन का बाधकरना अन्याय ठहरताहै और वह(अफालकृष्टविधि)बिनाजोते अन्नकी आज्ञा भी स्मार्त अग्नि में होने वाले कर्मोंके वियय पर आस्तुडहै तिससे यहाँ विरोध संभव होताहै—उमाधान—यह आपने सत्य कहा कि धान आदिसे यज्ञ करने कहे परन्तु

धान आदि भी केवल जुते खेतसे नहीं होते किन्तु बिना जुते भी उत्पन्न होते हैं तिससे कुछ विरोध नहीं है—इसी हेतु मनुने यह कहा है कि—वासतगारदेर्मैधैमुन्यन्नैस्वयमा हतैः पुरोडाशां प्रचक्रं प्रचैव विधि विधि नैर्घपेत्पृथक्—अर्थात्—यनके मेध्यमुन्यन्न जो वसंत ऋतुमें उत्पन्न हों या शरद ऋतुमें उत्पन्न हों और आपही चुनिके लावें तिनसे पुरोडास और चक्र भी अर्थात् होम की सामग्री और खीर भी यथोक्त विधि से जुदे जुदे सब कामोंमें लगावें—यहाँ—मुन्यन्न जो कहे सो नीवार वेरा प्रयासक आदि अनेक होते हैं आपही उत्पन्न होनेसे मेध्यत्व नाम पवित्रता उनकी स्वतः प्रसिद्ध है तथापि मनु के वचन में जो मेध्य शब्द से विशेषरूप दिया गया सो इसी लिये कि उन में जो व्रीहि आदि यज्ञके योग्य हों तिनमें काढ्य करै (किन्तु मेघनाम यज्ञ का है तिसके योग्य जो अन्न समभ्राजाय सो मेध्य कहावै—मेघो यज्ञस्तदहमेध्य) तिससे शंका न करनी चाहिये ॥ ० ॥ मूल प्रलोक में लोम शब्द से नख भी स्त्रीकार किये गये हैं तिसका प्रमारा यह अश्रोक्तवचन है—यथाहमनुः—जटाप्रचविभृथाच्चिर्यंशमश्रु लोमनखांस्तथा—अर्थात्—हमेशा जटारखावें और दाढीमूक तथा नखोंको भी ॥ अन्नीचे वानप्रस्थ को नाज आदि जखती द्रव्योंका संचय करना भी कहेंगे ॥ ४६ ॥

(वानप्रस्थेधान्यादिसंचयनियमाः)

अहोमासस्पर्षणांवातथासंवत्सरस्यवा । अर्षस्यसंचयंकुर्ष्यात्कृतमाश्वजुतेत्यजेत् २७ ॥

अक्षरार्थः—दिन का या महीने वा छमाही वा सालभर का अर्थ संचय करै और किया हुआ आसोज के महीना में त्यागिदे ॥ २७ ॥

अभिप्रायः—भोजन और भिखावेना आदि और यज्ञों में लगाना आदि जो जो सामग्री खर्च उसके होते हों तिनसबके अनुमान से एकदिनके निर्वाह योग्य या महीनाभरके या छमाहीके निर्वाहयोग्य या बर्षनाथ के निर्वाह योग्य अर्थका संचय वानप्रस्थ भी करै (या शब्दकीलक्षणसे यह तात्पर्यहै कि जहाँ नित्य नया अन्नप्राप्त होसक्ताहो तहाँ एकदिन के योग्य धरारावै अधिक नहीं एवं जिस वनमें जैसी कठिनाता या बर्षाकालमें मिल सकने की कठिनता देखि पगती हो तिसके अनुसूप संचय करै किन्तु कठिनतासे अधिक नहीं—यहा संचय करतेहुये कभी अधिक संचयहो भी जाय तो उसको बाँटि बर्ताइ देवै एवं बर्षा ऋतु के पीछे ऊँकार के महीना में संचय किये हुये सभी को बर्ताइ देवै क्योंकि प्रथम ती बर्षा में जीवजन्तु पट्टिनाने से यज्ञ के योग्य नहींरहता और दूसरे बर्षा के बाद नवीन द्रव्यों का संग्रह किया चाहिये तिससे पूर्वसंचित को त्यागि देवै ॥ २७ ॥

(वानप्रस्थविशेषनियमाः)

दांतस्त्रिपवणस्रापीनिवृत्तश्चप्रतिग्रहात् । स्वाध्यायवान्दानशीलःसर्वसत्त्वहितैरतः१८ ॥

दंतोलूखलिकःकालपकादीवाश्मकुट्टकः । श्रौतस्मार्तफलस्नेहैःकर्मकुर्यान्नयक्रियाः १९ ॥

अर्थः—दांतहो किंतु वर्ष से रहित स्वभाव हो विषयवशास्त्राथी तीनोंकालमें स्नान क्रिया करे प्रतिग्रह लेनेसे मुंह फेरे रहे चाहे तैसा लोभलालच कोई आकर दिखावे तौभी स्वाध्यायवाच किंतु अपने वेदके पाठमें अभ्यास आदृत्तियों से करता रहे वानशीलहोय किन्तुफल मूल भिक्षाआदि देता रहे सभी जीवोंका हितकरतारहै ४६ ॥ दंतोलूखलिक वने अर्थात् ओखली खल्लड आदि न राखे अपने दांतों को गाली मूसर आदि माने और उन्हीं से काटि तोडि के भक्षण किया करे कालप काशी वने अर्थात् नोवार वेणु श्यामा आदि मुन्यन्न और वेर इंगुद आदि फल भी जो केवल कालहीसे पकते और खाने योग्य होजाते हैं अग्नि की अपेक्षा उनमें नहीं रहती तिनको खाकर समय वितार्था करे यद्वाग्नि सेभी पकाकर किसी अवसर में खाय तौ कुछ दोय नहीं है परंतु अग्निके वशीभूत न होजाय कि उसमें पकाये बिनाखाही न सकै यह तात्पर्य है मनु के वचन से अर्थकोक्ति में यद्वा इसी प्रकार जो केवल दांतों से न खासके सो किसीअवसर में पत्थरपर कुटिकेभी खाय पर चक्रीआदिका संग्रह न राखे—सर्वं श्रौत और स्मार्त कर्म यज्ञ होम आदि तथा भोजन आदि और भी क्रियायें जो अबश्य चिकनाई से होते हों सो सब फलोंको मीगसे उपजे स्नेहों से करे दृष्टांत जैसे महुआकी गुठलीका तेल या बडहरकी गुठलीका इत्यादि पवित्र फल चिकनाईवाले वनमें बहुत होतेहैं तिनसे काम चलावे पर घृतादिक स्नेहों का वर्तान करे ॥ ४६ ॥

४७अधिकोक्तिः—कालपक भूगोव वा इतिमनुः—अर्थात्मनुने भी विकल्प दर्शाया है कि अग्निसे पका यद्वा कालहीसे पका भोजन करे ॥ अन्यच्च मनुरेव=मेघयत्सो इवानद्यात्स्नेहप्रचफलसंभवाच्च—अर्थात्—पवित्र वृक्षोंके फलखाय तथा उनके फलों से उत्पन्न चिकनाइयों को भी खाय ॥ ४८ ॥ ४६ ॥

(वानप्रस्थस्यान्येषुनियमाः)

चांद्रायणेनयेत्कालंरुक्मैर्वावर्तयेत्सदा । पक्षेगतेवाप्यभ्रीयान्मासेवाऽनिवागते ५० ॥

स्वप्याद्रुनोश्चरीरात्रौदिवसंसंपदेर्नयेत् । स्थानासनविहारैर्वायोगाभ्यातेनवातथा ५१ ॥

अन्यथायः—चांद्रायणों से काल को लेंवे या सदा ऋच्छों से वर्तें यद्वा पक्ष वीते

भोजन करै या महीना बीते या दिनके वीति जाने में ५० ॥ रात्रिमें शुचि होके धरती पर सोवै तथा दिन में संप्रदो से काल बितावै यहा स्थान आसन के बिहारों से या योगाभ्यासही से काल बितावै ॥ ५१ ॥

अभिप्रायः—अत्रोक्त नियम इस तात्पर्य पर दशति हैं कि वानप्रस्थ को दोवार आदि भोजन गृहस्थीकी तरह न करना चाहिये क्योंकि उससे देहका पुरुषार्थ बढ़ता है तिससे इंद्रियां भी प्रबलहोके सताने लगती हैं तिससे—वानप्रस्थ चांद्रायणाव्रतको बारंबार साथै जिसकी विधि आगे कही जायगी अथवा कृच्छ्र नामक प्राजापत्य आदि व्रतोंसे सदा अपने कालको बितावै या यह नियम साथै कि पक्षनाम अथवा उज्जैरा पखवारा पूरा होनेपर एकदिन भोजन किया करै या दोनोंपाख बिताकर पूरे एक महीना बाद भोजन कियाकरै अथवाये न होसकै तो दिनमात्र बिताकर केवल रात्रिमें भोजन कियाकरै यहा अपि शब्दके ध्वन्यर्थ से चौथेकाल आदिका कोई नियमसाथै जैसाअधिकोक्तिमें मनुका वचनहै—इतसवननियमोंमें शक्तिके अनुसार विकल्प समुष्कलेना कि जैसा नियमं साधन होसके सो करना चाहिये ॥ और भी सबकामों से निषेधोके जो रातिका समय खाली रहिजाय तिसमें मनको जीते हुये सावधान पवित्र देहसे धरतीपरसोवै इसी प्रकार दिनमें जो कुछ काल नित्य कृत्यों से फालतुं रहि जाय (तहां दिनमें सोउने का निषेध परपरहै) कदाचित्त उसमें भी निद्रा या तंद्रा आकर घेरै तहां निद्रा तंद्राकोदूर करना चाहिके परैरोंके अग्रभागसे अर्थात् पाँचौं अंगुरियोंके भार चहलकदमीकरने लगे किंतुब्रती पर सेंडी को न लगने देवै सिर्फ अंगुरियोंसे चला करी करिकेनीद इटावै(दिवा संप्रपदैर्नयेत) यह इसी पदका अर्थ है) अथवा निद्राके न लगने परभी यदि चित्तको उद्वेग आताहो तो फिर कुछ खड़े कुछ बैठे होकर बारम्बार कालकोबितावै यहा स्थानकाबिहार खड़े होकर दहलने का अर्थ है कि जिसमें सेंडी सहितपूरे परैसे खड़ा होना औरचहलकदमी करनासिद्धहोता है और आसनका विहार वैदिकाने का अर्थहै और सबका तात्पर्य केवलयहीहै कि दिनमें निद्राके बिना भी लोटै नही मन बहिलाने के लिये कभी खड़ा कभी बैठा काल बितावै अथवा सब से उत्तम यह उपाय है कि योगाभ्यास करने लगे अर्थात् आसन पर बैठिके परमेश्वर के ध्यान सहित बारम्बार प्रणामायासों की साधना करने लगे (कदाचित्त यह प्रश्न किया जावै कि योगाभ्याससुषी प्रणामायास कैसे किया जाता होगा तिसका उत्तर आगे चलिके २० वीसवै परिच्छेदमें १६८ तकसी अष्टानवे मूलप्रलोकसे आदि कोकर देखना ॥ ५१ ॥

५० अधिकोक्तिः=मनुः=नक्तान्नसमर्थीयादिवावाऽऽहृत्य शक्तितः चतुर्थका

लिक्वास्यात् यद्वाप्यष्टमकालिकः (एतेषां कालनियमानां प्रत्ययपेक्षया विकल्पं इति मित्ताक्षरा—अर्थात्—मनुने यह कहा है कि अपनी शक्ति के अनुसार चाहे राति में भोजन करने का नियम साधै या दिनमेंही एकवार थोड़ा खानेका नियम साधै तिस में भी दिनके चौथे कालमें खानेका नियम साधै यद्वा आठवें कालमें भोजनका नियम साधै (मित्ताक्षराकार कहिते हैं कि इन सब जुड़े जुड़े काल नियमों में से अपनी शक्ति के अनुकूल कोई एक नियम साधै फिर चाहे तभी बदलिके दूसरा नियम साधने लगे जो पहिले में अडचल प्रतीत होय इसी लिये विकल्प रक्खे गये हैं ॥ ५० ॥ इत्या- उनके मूलश्लोक में योगाभ्यास का जो चर्चा किया तिसके भी अनेक डोल होते हैं उसके मध्ये मनुने यह कहा है कि (विविवाश्चोपनियदीरात्मसंसिद्धयेऽश्रुतीः) आत्म सिद्धि चाहनेके लिये विविध भौतिकी उपनियदी श्रुतियां ११८० ग्यारहसी अस्सी उपनियदों में चारों वेदके सारांश रूपसे प्रसिद्ध हैं तिनको भी बानप्रस्थ अपने फालत कालमें विचारै फिर उनके द्वारा मनन करिके प्राराणायाम ध्यान योग समाधि पर आरूढ़ होवै—क्योकि—उपनियद—यह शब्दही वेदके सारांश का नाम है (और ब्रह्म विद्या जो अध्यात्म कहाती है तिसका भी उपनियद नाम है उसकी श्रुतियां तत्व ससि आदि वाक्योंको जानना) और भी (अत्रचोपनियच्छब्दो ब्रह्मविद्यैकगोचरः तच्छब्दावयवार्थस्यविद्यायामेवसंभवात्) ब्रह्म और आत्माके सासात्कार एकहीरूप होजानेका अर्थ भी उपनियद नाम कहाता है तिससे विशेषकर उपनियदों की आ- राधना करै—कदाचित्—यह शंका करी जावै कि बानप्रस्थ के और सब नियम कहे गये परंतु ज्ञान आचमन आदि नित्यकर्तव्योंका प्रकार कुछ न कहागया सो कैसेकरै— तहां ब्रह्मचारी के प्रकारा आदि स्थलोंपर आचारकांडमें जैसा ब्रह्मचारीके निमित पर कहिचुके तैसा यहां इसको भी वही प्रकार सधुभिलेना—क्योकि (उत्तरेषां चैत दविरोधीतगीतमः) गीतम ते शौचका विधान ब्रह्मचारीके अवलम्बसे कहिकर यह कहिदिया है कि पिछले आय्यों को भी यही विधान अविरोधी जानौ ॥ ५१ ॥

(बानप्रस्थस्यसाधनविशेषधर्माः)

श्रीष्मेपंचाग्निष्यस्थोवर्षासुस्थंडिलेऽपः । आर्द्रवासास्तुहेमंतेशक्यावापितपश्चरेत् ५१
 यःकंठकैर्वितुदतिचंदनेर्वदचलिपति । अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्चसमस्तस्यचतस्यच ५२
 अग्नीन्वाऽप्यात्सात्कृत्वावृक्षावास्तोमिताज्ञानः । बानप्रस्थयहृष्येवयात्रार्थैर्क्षयमाचरेत् ५३
 अर्थः—श्रीष्ममें पंचाग्नि बीच बँदे—वर्षाओं में स्थंडिल पर बँदे लोटे—हेमंत में भी जो वज्र परिहरेहुये तपकरै या शक्तिके अनुकूप तपकरै—अर्थात्—गर्मी धरसात जाहा

ये तोनिही ऋतु साल भरमें प्रधान होतीहैं इनमें ऐसी रीतसे वानप्रस्थको तपकरना चाहिये कि चैत से असाढ़ तक चार महीने पंचाग्नि तापे अर्थात् जंगल में बैठे की अपने चारों ओर चार अग्नी जलावे ऊपरसे पाँचवीं आगि सूर्यका आताप होय यह पंचाग्नि का स्वरूप है. फिर श्रावणा से कातिक तक चार महीने जब जब कभी बर्या होय तत्र स्थंडिल एक चबूतरा जो बिना छायाकी धरती पर जंगल आदि प्राने स्थान में बनायाहो तिसपर बैठे लीटे सभी तरहसे बर्याओंको बरसते समय अपने मूँडपर भोले सेसे चबूतरे पर किसी पेड़की छाया भी न होनी चाहिये. फिर हेमंत जाड़ेकी ऋतुमें मार्गशीर महीनासे फागुन तक चार महीने भर भीजा कपड़ा पहिने रहाकरे जिसको ऐसा तप करनेवाली शक्ति इतनी न होय सो जितनी उसमें शक्तिहोय उसीके अनु-रूप तपस्या करे परंतु जिस प्रकारसे शरीर दुर्बल होसके सो करना चाहिये ॥ ५२ ॥ दूसरा धर्म कहिते हैं कि—जो कांटों से छेदता है या जो चंदनों से लेप करता है तिस पर न क्रोध करना न संतुष्टि मानना किंतु उसको और उसको भी समान बुद्धि राखे= अर्थात्—वानप्रस्थ के साथ यदि कोई खोटे बचन कहि कर या कुछ खोटा काम करिके उसे ऐसी पीडा देने लगे मानी कांटोंसे छेदता है तिस पर क्रोध भी न करना चाहिये या यदि कोई ऐसी सेवा श्रुय्या आदि भलाई करने लगे जानों शीतल सुगंधिमाद चंदनोंका लेप करता होय तिसपर भी अत्यंत प्रसन्नता अपनी न जाहर करे किंतु दोनोंपर एकहीसी प्रकृति अपनी उदासीन बनीराखे ॥ ५३ ॥ तीसरा धर्म कहितेहैं कि—अग्निियों को आत्मानें समावेश करिके थोड़ा भोजन करतेहुये वृक्षही के नीचे वासकरे तहां वानप्रस्थोंकेही घरोंमें प्राणायामा के लिये भिक्षा आचरे= अर्थात्—जिन अग्निियों को सेवा करनी ४६ छहवालीस मूलप्रलोक में कहि चुके हैं उन्हीं की सेवामें जो तत्पर होरहा हो और उस रीतसे करनेकी समर्थ जिसमें न रही हो तिसके लिये यह और धर्म कहा है कि अग्निियोंको अपने हृदयस्वपी आत्मा में स्थापन करिके भोपड़ी छोड़ि छाड़िके चाहें तिस वृक्षके नीचे अपनी कुटी मानिके निवास किया करे इसका विशेष न्यौरा अधिकारिक्त में देखना ॥ ५४ ॥

५२ अधिकोक्तिः—तपके साथ देहका दुर्बल करना मनुने स्पष्ट कहाहै=यथा= तपश्चरंप्रचोयतरंशोययेद्देहमात्मनः=अर्थात्—वानप्रस्थ बड़ा उग्रतप करते हुये अपने देहको सुखावे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ पूर्वोक्त अग्निियों को आत्मसाद करना मनुन भी वि-स्पष्ट कहाहै=यथा=अग्नी-स्त्रात्मनिवैतान्समारोध्ययथाविधि अनग्निरनिकेतः स्थान्मुनिर्मूलफलाशनः (अद्भुनिर्मौनव्रतयुक्तः फलमूलासंभवेच्च यावत्प्राणाधारणं

वति तावन्मात्रंभैक्ष्यवानप्रस्थगृहेष्वेवाचरे दितिमित्तासारा=अर्थात्—जिस किसी वानप्रस्थ ने वनमें कुटी आदिकी रचना सहित श्रौतविधि से यज्ञके वितान में अग्निथों का स्थापन किया होय सो कुछ काल सेवन करके सेवा करने से असमर्थ होजाय अथवा कुटी और अन्नोका संग्रह आदि विस्तार जैसा छेयालीस मूलप्रलोक से लेकर पचास तक पाँच प्रलोकों में दर्शाया था तिसका वर्तवा करते करते भी पेटभर जाय जिससे वैराग्य उत्पन्न होने लगे इसीसे सत्रआडंबर छोड़िछोड़िके स्वतंत्र नियम धर्मकी साधना किया चाहै तिनके लिये यही चौबन ५४ का मूलप्रलोक योगीश्वर ने भी कहा और उन्हींके निमित्तपर मनुभी यह कहते हैं कि—वितानकी स्थापन करी अग्निथों को यथोक्त विधि के साथ अपने हृदय रूपी आत्मा में आपित करिके अनग्निहोजावै और अनिकेत होजावै कि अग्निभी न रक्वै और कुटीआदि स्थान का बखेडा भी न रक्वै और मुनिरूप होकर कद मूल फल भोजन कियाकरै और वृषो के नीचे विग्राम लेकर चाहै तहाँ इच्छा के अनुसार टिका करै (इसपर मित्तासाराकार कहते हैं किं मौन-रहनेका व्रतसाधै तिससे मुनि कहावै यह तात्पर्य है) और इन्ही फलमूल आदि के न मिलने में योगीश्वर के मूल प्रलोक वालानियम समझना कि प्राणों की धारणावनोंरहने के अर्थसे भिक्षाको आचरै परंतु भिक्षाभी सर्वत्र नहीं माँगै किंतु केवल वानप्रस्थोंके घर माँगै जो पहिली रीतिके अनुसारकुटी और अन्नका संग्रह किये स्थानवारी बने वेंटे हों (उनका धर्म देखो ४६ । ४७ प्रलोकमें) अतिथि को भिक्षा देना उन्हींका यह धर्महै तथा अनिकेतनवानप्रस्थका उन्हींसे भिक्षालेनेकाधर्महै जो अभीवर्षात्रहोरहाहै=परंतु=जबसेधीभिक्षा न मिलसके तंत्र का करनाचाहिये तिसका धर्म, दूसरा है सो देखो अगले मूलप्रलोक में ॥ ५४ ॥

(कच्चिद्ग्रामादग्नि भिक्षाचरण)

ग्रामादाहृत्यत्रायासानष्टोभुजितवाग्यत । ५५ पूर्वाध

अर्थः—या ग्राम से भिक्षा लाकर आठ ग्रामों को मौन साथे वाणी को जीतेहुये भोगे=अर्थात्—पूर्वाक्त फल मूल आदि न मिलने पर वानप्रस्थों के घरभी निकट न होयै तिनकी भिक्षा न मिलसके तब अन्य किसी ग्रामही से जाकर भिक्षा लावै ॥ १ ॥ ५५

५५ अधिकोक्तिः—पहिले ४६ छेयालीस मूलप्रलोकों से स्थानवारीवानप्रस्थों के जो धर्म कहे गयेथे उनमें नीवार श्यामक आदि हुनियों के अन्न भोजन करना

कहा गया था उस नियम का लोप यहाँ समझना यह स्वतः सिद्ध होता है क्योंकि वानप्रस्थों के घरकी भिखा मिलती तो वह नियम लोप न होता—किंतु—ग्रामसेमाँ-
गो हुई भिखामें गुन्यन्न वाला नियम नहीं चलसक्ता है अर्थात् ग्रामवासी लोगवही भिखा देसक्ते हैं जो आप खाते होंगे कुछ इनके लिये गुन्यन्न लाकर जुदे नहींपकावें गे और भिखाभी भात रोटी पूरी आदि पकाये अन्नकी समझना क्योंकि कुटी और झूल्हा आदि अग्नियों का जजाल मेदिमाटि निररिन होकर वृक्ष तले का निवास करना कहिचुके हैं तिससे कचवेअन्नकी भिखाका अपवाद सिद्धहोताहै- इसी लिये गिनमाआठ कौर का नियम ऊपर कहागया-परंतु आठ कौर से जिस किसी की प्राराधारणा न होसक्ती हो तहाँ सोरह कवल भोगे जैसा यह वचन है (अष्टौशा साहुनेर्वैस्थंवानप्रस्थस्ययोऽहश) अर्थात् आठप्रास भिखा भोजन करना मुनिका धर्म है सोरहप्रास वानप्रस्थ के यहभी एक नियम है ग्रन्थान्तर में ॥ १ ॥ ५५ ॥ कदा-
चित्त यह शंका करीजाय कि वानप्रस्थ कितने दिन कौन कौन से नियमों को रखें सो कुछ अवधि का नियम इसमें नहीं केवल उसकी इच्छा और समर्थ पर आरुह है कि चाहें सदा सर्वदा कुटीचर होके रहें या उससे मन हटजाय तब ५४ चौबन पचपन प्रलोकवाली दशापर आरुह होय अथवा अपने शरीर में समर्थ देखें और सन्यास लेकर चौथे आश्रम का आनंद भोगना चाहें तोफिर आगे ५६ छप्पन मूल प्रलोक वाले मार्गसे सन्यासी होजाय तिसके लिये इतना नियम है कि (या-
वताक्वालेनतीव्रतपःशोधितवपुषो विययकयायपरिपाकोभवति पुनश्चमदोद्भवाशंका बोद्धावप्रते तावत्कालंवनवासं कृत्वा तत्समन्तरं सोक्षेमनःकुर्यात्) अर्थात्—जितने दिनों में गार्हप तप करने से अपने शरीरकी सुखाय के निर्बल करपावें जिससे काम क्रोध लोभ मोह रूपी विययों का रास पक जाकर छुटिजाय जिससे आगे को मद नात्सर्ध पैदा होने की शंका बाक्ती न रहै उतने काल तक वनमें वास करके अनंतर उसके लगमाही सोक्षरूप आश्रम जो सन्यास है तामें मन लगावें—अथवा यह कोई ही समर्थ अपने में न देखें किंतु सर्वथाही बुढापा आदि से असमर्थ होजाय तो फिर सन्यास लेने बिनाही उन प्रकारों से शरीर त्यागें कि जैसा आगे उत्तरार्ध पचपन के मूल या उची की अधिकोक्ति में कहेंगे ॥

(सर्वथाऽसमर्थवानप्रस्थस्य प्राणत्यागरूपं ह्यप्रस्थानं)

वायुभक्ष प्रागुदीर्चीगच्छेद्वावर्षं संक्षयात् ५५ ॥

अर्थः—या वायु भक्षहोकर शरीर का संक्षय होने ताई पूर्व उत्तर कोरा में ईशान

दिशिको चला जावे—अर्थात्—जिस वानप्रस्थ पर अत्यंत बूढ़ापा या प्रबल रोगहोने आदि कारणों से ग्राम जाकर भिक्षा भी न लाई जाय किंतु चलाफिरो आदि कोई भी काम जिसपर न होसके सो ऐसाकरै कि वायुको भक्षरा करते हुये ईशानीदिशा के पर्वती मार्गों में तहाँतक सीधा तुक्काके समान चलाजावे कि जहाँपर उसकादेह-पात होजाय यही महा प्रस्थान कहा जाता है ॥ ५५ ॥

५५ अधिकोक्तिः—मनुः—अपराजितावास्यायराच्छेद्दिशमजिह्वराः—अर्थात्—मनु ने यहभीकहाहै किजो पहिलेकदे नियम न चलसके तौ अपराजिता नामकीईशानी दिशामें उपस्थितहोकर शीघ्रपैरों सुत बांधेविना विचारमार्गके देहांतपर्यंतचलाजाय. इसी को महा प्रस्थान भी कहते हैं—यद्यपि—वानप्रस्थ के लिये सर्वत्र यह विधान होसक्ता है कि वह जिस देशमें उपस्थित होय तहाँ अपने ठिकाने से लेकर ईशानी दिशा को प्रस्थान करै तथापि विशेष कर हिमालय पर्वत इस कार्य के निमित्त में प्रसिद्ध है कि जहाँ पांडव आदि अनेक महात्मा देह त्यागने को पहुँचेकोकि उसमें देह त्यागने से सीधा स्वर्गहीमें जाताहै बल्कि हिमालय के उत्तर भागमें स्वर्गारोहण पंथ इस नाम से मार्गही एक सबसे जुदा प्रसिद्ध है उसी को महापथ भी कहते हैं उसीको ठीक महा प्रस्थान जानों क्योंकि स्वर्ग पर चढ़ जाने का मार्ग है इसका ठिकाना भी श्री बद्रीनाथ जी से पचासहौं साठ कोसके अनुमान अंतर पर सुनाजाता है—बल्कि बहुधा तीर्थ के यात्री लोग अद्यापि उसके दर्शनमात्र के निमित्त जाया करते थे उनसे से बहुतेरे अपनी श्रद्धासे देह त्यागने को भी आगे बढ़जाते थे. कुछ दिनों से अंगरेजी सरकार ने देह त्यागने का निषेध क्रायम करके वहाँके अधिकर्ता पंडालोगों से इत्कारभी लेलियेसुनेजातेहैं कि उस मार्गके दर्शनमात्रकेनिमित्त यात्री जानेपावें लेकिन देहत्यागनेके लियेवहाँसे आगे न बढ़ने पावें. कदाचित्त इससेवि-परीत किसीमालमें एक दो यात्रो आगे बढ़जाय तौ प्रतिभूति इतनाजुर्माना(धनदंड) पंडा लोगों को देना पड़े. इस लिये दर्शन मात्रके लिये भी जोकोई यात्री जाना चाह तें सो पंडालोगों की जमानत से जाने पाते हैं अन्यथा नहीं. क्योंकि धर्मशास्त्र में जो देह त्यागना इसी जघे पर आदेश किया गया सो हर एक मनुष्यों को नहीं केवल वानप्रस्थ का यह धर्म है कि जिसने पूर्वोक्त प्रकारों से तपस्या भी कुछ संचय करी हो और निपट अपने सब झरों से निर्वल भी होचुका हो ॥ ० ॥ जब कोई वानप्रस्थ इतना निर्वल होचुका हो जिस पर महाप्रस्थान को यात्रा भी न होसके सो औरही प्रकारोंसे देह त्यागै कि जिन प्रकारों की आज्ञा शास्त्रमे लिखीहोय—तथाच स्मृत्यं

तरस=वानप्रस्थोवीरारध्वानं ज्वलनाद्यप्रवेशनं भ्रूयुपतनंबानुत्तिये त=अर्थात्-वानप्रस्थ
 अपना देहछोड़नेके लियेचाहें वीरोंके रास्तेमें प्रवेश करे कि जहां हुतरफा तीरंदाजी
 आदि शस्त्रोंकी वर्षा होती होय या बहुत बड़े अग्निमें या गरिरे जलमें प्रवेश करे
 या पर्वत आदि ऊंचे से गिरि परे तौभी उसको आत्म हत्याका दोष नहीं लगता है=
 बल्कि यह फल होताहै कि जो कोई वानप्रस्थ पचासवें मूलप्रलोक से लेकर यहाँ
 तक दशभि चांद्रायणा आदिसे लेकर शरीर त्यागने पर्यंत क्रमसे सब धर्मोंका साधन
 करसके या बिरले किसी एकही दो का सो ब्रह्मलोकमें जाकर पूज्य होताहै=यथा
 हसनु=आसामहर्षिचर्याणां त्यक्त्वाऽन्यतमयातनुषु वीतशोकभयोविप्रोब्रह्मलोकेम
 हीयते=अर्थात्-इन महावृत्तियों की अनेक धर्मचर्याओंमें किसी एकहू के आश्रय
 भूत शरीरको त्यागिकेभयशोकसेहुटिकारब्राह्मणा ब्रह्मलोकमें जाकरपूज्यहोताहै५॥

(अत्र प्रसंगादेव वक्ष्यमाण संन्यासाश्रमस्यप्रशंसायांप्रकर्षः)

मिताक्षराकार कहिते हैं कि ब्रह्मलोकमें पहुँचना कहा सो यह ब्रह्मलोक स्वर्गों
 मध्ये किसी एक जुदे स्थान का नामहै किंतु नित्यब्रह्म को न समुक्ति लेना क्योंकि
 उस पुराब्रह्म के साथ कहीं लोक शब्दकी योजना होती नहीं मुनी और इसमें लोक
 शब्द भी लगाहै तिससे और इससे भी कि उस पुराब्रह्मके समीप चौथे आश्रम का
 संन्यासधर्म साथे विना मुक्तिपद देना संजूर नहीं होताहै यह चर्चा केवल तीसरे आ-
 श्रमके वानप्रस्थ का होरहा है फिर कहितेहैं कि इक्याउन मूलप्रलोकमें योगाश्रम
 का उपदेश वानप्रस्थको भी चर्चाभाव आयाथा तिसके द्वारा ब्रह्मकी उपासना सिद्ध
 होतीहै जो आगे चौथे आश्रम के स्थलपर स्पष्ट करी जायगी उस चर्चा से भी यह
 मत समुक्तिलेना कि वानप्रस्थको उस पुराब्रह्मकी उपासनासे ससोपता मिल सक्ती
 होगी क्योंकि ब्रह्मकी उपासना निपट ब्रह्मकी समीपताही नहींदेती किंतु सालोक्य
 आदि भेदोंवाली मुक्तिके भी अर्थसे ब्रह्मकी उपासना करी जातीहै (इतना कहिकर
 मिताक्षराकार फिर भी संन्यासियों का पक्ष पालन करने पर आग्रह खड़ा करते हैं
 (कि) यही आश्रय अगली युत्युक्त व्यवस्था से भी इस संसिद्ध करते हैं सो देखी)
 अतरव्युत्तौ त्रयोधर्मस्कंधा इत्युपक्रम्य-यज्ञोऽध्ययनंदान मितप्रथमः १ तपरवेति
 द्वितीयः २ ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासीद्वितीयः ३ अत्यन्तमाचार्यकुल रवात्मान भवसा
 दयन्ति ति) गार्हस्थ्य १ वानप्रस्थ २ नैतिकत्व ३ स्वरूप सभिधाय-सर्व एते पुण्य
 लोका भवंतीति त्रयाणां पुरायलोक प्राप्तिमभिधाय-ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेतीति पारिशो
 ष्यात् परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थस्य मुक्तिलक्षणाऽमृतत्व प्राप्तिरभिहिता-यदीप-

श्राद्धकृतसत्यवादीच गृहस्थोपविमुच्यते इतिगृहस्थस्यापि सोक्षप्रतिपादनंतद्वांतरात्
भूतपारिव्रज्यस्यैवेत्यवगतं व्यं=अर्थात्-वे कहते हैं कि जैसा व्यौरा ऊपर हमने कहा
समुझाया उसी सबबसे अर्थात् में भी यह भूमिका पहिले कहकर कि धर्म के तीन
स्कंध (बड़े मोटेमुद्दे) होतेहैं-फिर उन तीनोंके रूप जुदे दर्शायेगये कि नित्यनैमित्तिक
आदि यज्ञोंका करना और वेद विद्याका अभ्यास राखना और दान करते रहना
यह सब काम गृहस्थी का होताहै सो धर्म का पहिला गुदा जानना १ और केवल
तप करना वानप्रस्थका स्वाभाविक काम होताहै सो धर्मका दूसरा गुदा जानना २
और ब्रह्मचारी होके सदा अपने आचार्य गुरुके कुलमें वासकरे और निपट आचार्य
के कुलहीमें अपने देहको सरसा पर्यंत खपावे यह नैष्टिक ब्रह्मचारी का काम है
सो धर्मका तीसरा स्कंध जानौं-मितासराकार कहते हैं कि इस प्रकार धर्मके तीन
स्कंधोंके बहाने से गृहस्थी १ वानप्रस्थ २ नैष्टिक ब्रह्मचारी ३ इन तीनों का स्वरूप
समुझाइके-यह कहा गया है कि ये तीनों आश्रमी यदि इसी प्रकार अपने कामों
का वर्तना करें तो ये सभी पवित्र लोकों में जाते हैं इसगति से तीनों की पुराय
लोकों का मिलना समझाय के-यह कहना छोड़ दिया गयाकि ब्रह्म के आरा-
धन में आरूढ होने से सोखरूपी अमृत को पाते-सो इसलिये छोडागया कि चौथा
संन्यास धर्मका आश्रम जो वाक्ती रहगया जो परिव्राजकों का ठिकाना बड़ा प्रसिद्ध
है उसी को अमृतत्व मिलता है अर्थात् उस कथन के छोड़ देने से भी यह आश्रय
सिद्ध होता है कि साक्षात् ब्रह्म के स्वरूप का ध्यान योग आराधन करनेवाला
परिव्राजक नाम संन्यासीही मुक्ति रूपी अमृतत्व को पाता है शहरथी आदि तीनों
में और कोई नहीं पासक्ता है (यह कहकर मितासराकार फिर कहते हैं कि)
यद्यपि आगे २०५ दोसौपंचवें मूल श्लोक में योगीश्वर आपही अपने मुखसे यह
कहेंगे कि ऐसे लसराओं वाला गृहस्थी पुरुष भी मुक्ति को पाता है तो भी वह
उसके लिये समझना जो पहिले जन्मों में परिव्राजक होकर संन्यास धर्मका साधन
करचुका और उस जगह किसी हेतु से मुक्ति उसकी न होसकी हो तो इस जन्म से
गृहस्थी होते भी सोक्षफल का अधिकारी होजायगा परंतु कुछ नियमात्मक प्रतिज्ञा
नहीं है-अथ मर्यादाप्रियस्तु=श्रीमन्मितासराकार परिव्राजकने वानप्रस्थके प्रसंगसे
बहुत छुंर यह वरान किया जिससे संन्यास धर्मका प्रकरणा जो आगे प्रारंभ होनेवा-
ला है तिसकी महिमा जानपडी और महिमा जानपडने से उसमें चित्त लगाने का
उत्साह बढ़ने लगा- तहाँ यह बातों एक जुदी है कि उन्होंने गृहस्थी आदि किसी

को भी मुक्तिभागी न टहराकर केवल संन्यासी को मुक्तिपात्र टहराया सो भी कुछ अनुचित नहीं क्योंकि श्रीमन्मितासराकार आपड़ी परिव्राजक संन्यासी थे अपने आश्रम का विशेष पक्ष किया तो कुछदोयनही किंतु सबकोई अपनीजाति टिकाने आदि की सहिमा बढाता है' तथापि मर्यादा प्रिय को यह चिंता खड़ी हुई कि जिस गृहस्थी को योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने २०५ दोसी पाँचवें मूल श्लोक से डंका की चोट घंटा के घीय तुल्य मोक्ष का अधिकारी टहराया है तिसकी भी मितासराकारने न माना तो फिर यह आशय सिद्धहोता है कि मोक्षफल पानेके लिये सबही को संन्यासी होना चाहिये • तिस में यह सब से बड़ा घबराहट है कि जब सभी संन्यासी होजायँ तो फिर उनके पालन के कामों को कौन करे क्योकि संन्यासी को चलहा चक्की आदि सब कामों का नियेधहै पर अबतो उनके भिक्षा भोजनआदि गृहस्थी लोग बनाते और संन्यासी आदि सभी आश्रमों का पालन वेही करते हैं फिर कौन किसकी बात बर्भे जब गृहस्थी का अभाव होजाय—ईश्वर की इच्छा से गृहस्थी ही गृहस्थी आदि चारों आयम का पालन किया करता है इसीलिये गृहस्थ का आयम सब से बड़ा कहाता है-बल्कि दूसरा बड़ापन इसमें और है कि इसी गृहस्थ के पेट में से ब्रह्मचारी जन्म लेताहै इसी में से वानप्रस्थ और इसी मेंसे संन्यासी पैदा होतेहैं अर्थात् एक गृहस्थी को न होने में फिर कोईभी नहीं है इसीहेतु से गृहस्थी का ज्येष्ठाश्रमी नाम-जुदा है कि सबसे जेठा आश्रम यही है-तथाच वचनं=गृहस्थोब्रह्मचारीचवानप्रस्थोऽथभिक्षुकः चत्वारआयमाःप्रोक्ताःसर्वेगार्हस्थ्यमलकाः=यस्मात्त्रयोऽप्यायमिणोऽज्ञानेनाक्षेपेनचान्वहन् गृहस्थैरेववार्थितस्माज्ज्येष्ठा-यमोगृही=अर्थात्—धर्मशास्त्रमें यहवचन प्रमाराहै-गृहस्थो- ब्रह्मचारी- वानप्रस्थ- भिक्षुकसंन्यासी' येचार आयम जो प्रसिद्ध हैं तिनसबकोजड गृहस्थहीजानों ब्योकि उसके बिना इनकी उत्पत्ति किसी और से नहीं होसक्ती है-इनमे गृहस्थ सबसे जेठा आयम होता है इस हेतु से कि जिससे नित्य प्रति रोज रोज तीनों आयम को लोगों को विद्या पढाना आदि ज्ञानदेने तथा अन्न को देने से भी गृहस्थीही घांभता है अर्थात् सबका भार गृहस्थी पर आरुब और यही उसको झेलता है और किसीमें इतनी दबी हिम्मत नहींहै--कदाचित्त-यह कहाचाप्र कि बहुधा गृहस्थी ऐसे होतेहैं जो किसी प्रकार का सत्कर्म नहीं करसक्ते हैं तिनके लिये सबसे बड़ा सत्कर्मएक यही है कि जिससे कुछभी न होसके सो तीनों आयमके लोगों को भिक्षादान करके उनके किये सत्कर्मोंमें अंगभागी होते रहतेहैं ॥ वानप्रस्थ का प्रकरण पूराहोचुका

उसके प्रसंग से संन्यासी और गृहस्थों की विशेषता भी चमकाई गई अब इससे आगे संन्यास धर्म के प्रकारों का प्रारंभ किया जायगा वह बहुत बड़ा है सो अनेक परिच्छेदों में जाकर पूरा होगा क्योंकि उसके साथ अव्यात्म रूपी ब्रह्म विद्या का बिस्तार किया जायगा ॥ इतिवानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ॥

इत्यापद्धर्म सहितं वानप्रस्थाश्रम प्रकरणं द्वितीयम्

इस प्रकारों में छटा सातवां वे परिच्छेद हैं कि उनमें एक छटा परिच्छेद आपत्काल की धर्मोंपर आरूढ़ है कि जहां मुख्य धर्मोंसे निर्वाह न होताहो तहां आपत्कालिक धर्मोंसे निर्वाह किया जाय--उसके बाद सातवां परिच्छेद केवल वानप्रस्थाश्रमके धर्मोंपर आरूढ़ है कि जहां कहीं आपत्कालिक मर्यादा से भी कालक्षेप न होसके तहां गृहस्थ धर्मका आडंबर समर्थपूर्वोंके ऊपर छोड़ि छाड़िके बनवासी होकर वानप्रस्थ्य आयस स्वीकार करै इसमें भी यदि पूर्वोंका अभाव देखै तो पत्नी को भी साथ लेजावै या पत्नी भी न हो तो एकाकी चला जाना बहुत उत्तम है ॥

अथ चतुर्थाश्रम धर्मारंभः ॥



अथसंन्यासग्रहणविधानपूर्वकंपरिव्राजकस्वरूप निरूपणोऽयंपरिच्छेदः ८

इस परिच्छेदमें चौथा आश्रम जो संन्यास कहाता है तिसका भार लादने का विधान जैसा होताहै सो सब यथा क्रमसे दर्शाइके-परिव्राजक जो संन्यासी अथवा यती कहाते हैं तिनका स्वरूप लक्षणा आदि निरूपणा किया जायगा कि इसरीति से सेसे सेसे चिह्नों को धारणा करै और सेसे नियमों से भिन्नाचरणा करते हुये अपने योग्य स्थानों पर विकते हुये धरिबों का पर्यटन और कालक्षेप करै सो संन्यासी और परिव्राजक भी कहाता है ॥

(संन्यासारंभ)

बनादृष्टहादाकृत्वेऽसर्ववेदसवक्षिणाम् । प्रालापत्यांतदंतैतान्प्रीनारोप्यचात्मनि ५६

अधीतवेद्योजपरकृतपुत्रवानन्नदोऽग्निमान् । शक्त्याचयज्ञरुन्नोक्षेभन कुर्यानुनान्यथा ५७

अर्थः—वन से या घरसे मोक्षमें मनकरै तब प्राजापत्या नाम की इष्टि को सार्ववेद सर्दक्षिणा मयी करिके तिसके अंतमें जो अग्निमान् हो उन अग्निग्यों को आत्मा में आरोपित करिके जो वेद पढाहो तौ वेदपाठ करिके भी मोक्ष पर मन धरै जो पुत्रवान् हो सो अन्नदान करिके तथा यज्ञ भी यथाशक्ति करिके संन्यास में मन धरै अन्यथा नहीं—अर्थात्—दोनों प्रलोकोंका संबंध परस्पर मिलाहुआ एक है तिस एकही में जुड़े जुड़े करे डौलहैं सो कहिते हैं कि (यहाँ वन शब्दसे वानप्रस्थका आश्रम समुक्तना गृह शब्दसे घर अर्थात् गृहस्थ का आश्रम जानना मोक्ष कहिने से मोक्षफल देनेवाला संन्यास का आश्रम जानना) वनसे वानप्रस्थका धर्म अच्छा साधिके संन्यास धर्म लेने को मन करै या वानप्रस्थ होने बिना घरही से संन्यास लेना चाहै तब सब से प्रथम यह करना चाहिये कि प्रजापति देवताहै जिसका ऐसे यागका प्रारंभ करै फिर उस यागके अंतमें सार्ववेद सर्दक्षिणा दान करै अर्थात् जो रकाको होय सो अपना सर्व वन दक्षिणामें बर्तावै त्रिं तु कोई वस्तु भी न रक्खै परंतु जो वन में संन्यास लेने लगा हो उसपर विशेष धन होना संभव नहींहै तिससे जो कुछ थोडा या बहुत अन्नका संचयहो उसीको बर्तावै अथवा गृहस्थी या वानप्रस्थ दोमें से कोई ऐसा हो जिस पर कुछ भी धन देनेको नहो परंतु वेद पढाहो तौ वेदका पारायणा पाठ और उसके बड़े अथ संवोंका जपही करै तौभी सार्ववेद स दक्षिणाका फल सिद्ध होगा परंतु जिसके पृथादिक संतान भी उपस्थित होय तिसको सर्वधन दान करदेने की स्वाधीनता नहीं है तिससे यथाशक्ति संभव के अनुसार कुछ अन्नादिक दान दीन दुखिया की देकर अपनी शक्तिके समान यज्ञ पूराकरै परंतु जो पुरुष अग्निमाव अग्निहोमी होय और संन्यास लेनेलगे सो इस यागसे निपटे पीछे उन अग्नीषींको श्रुतिके कहे विधानसे आत्माके बीच समारोपित कराइके संन्यास धारणा करै अन्यथा नहीं यह तात्कालिक विधि कही गई ॥ अन्यथा नहीं इस पदके ध्वन्यर्थसे और यज्ञकव इम विशेष्यका की शक्ति से भी दूसरा यह तात्पर्य है कि संन्यास लेने से पहिले गृहस्थ के याग्यम द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार नित्य नैमित्तिक यज्ञोंकी साधना जिमने कति हो अर्थात् गृहस्थीके जो कुछ धर्महोतेहैं सो सब यथा विधिसे आराधन कियेहों वही पुरुष संन्यास लेनेका अधिकारी होताहै सब कोइ नहीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

५६ अधिकोक्तिः—सब कोई नहीं इसका यह तात्पर्य है कि गृहस्थी पुंस्य पर तीन भांतिके ऋणा होते हैं तिनको प्रथम अच्छीतरह से उद्धार करे वही संन्यासी होकर मोक्ष फल पाता है अन्यथा जिसने तीनों ऋणा उद्धार न कियेहों सो मोक्षपद पानेका अधिकारी नहीं है—यथाह मनुः—ऋणानित्रीरांयपाकृत्य मनोमोक्षनिवेशयेत् अनपाकृत्यमोसंतु सेवमानोन्नजत्यधः—अर्थ—तीनों ऋणा शोधिके तब मोक्षमें मनको लगावे क्योंकि ऋणा शोधे बिना मोक्षका सेवन करते हुये भी नरकही को जाता है (तीनों ऋणाका स्वरूप आगे इसी वार्ता में देखना उसमें पुत्र का उत्पन्न करना भी एक ऋणा शोधना टाहिरता है) सत्तावन ५७ के मूल श्लोकमें पुत्रवाच जो कहागया तिसका दूसरा अर्थ यह भी है कि संतान उत्पादन किये बिना थोड़ी अयस्थावाला पुंस्य जिसके मन्तान होसकने का भरोसा आगे को होय वह संन्यासी न होजाय क्योंकि अभी इस ऋणा से छुटकारा नहीं मिला परंतु यह नियम केवल गृहस्थी को समुभना ॥ ० ॥ यदि कोई पुंस्य नैष्टिक ब्रह्मचर्य में उपस्थित होतेहुये संन्यास लेना चाहे तिसके लिये संतान पैदाहोने आदिका कुछ नियम नहीं है अर्थात् वह संतान पैदा किये बिनाही संन्यासी होजाय तभी ऋणा नहीं रहा क्योंकि नैष्टिक ब्रह्मचारी वही कहाता है जिसने विवाह न कियाहो तो फिर भायिका संग्रह न होने से संतान उत्पादन करने का अधिकारही उसको नहीं रहा (कदाचित यह कहो कि जन्तकके लिये विवाह करना चाहिये सोभी नहीं क्योंकि विवाह करनेसे उजरा रागमें फँसना होगा जिससे विराग जाता रहेगा वैराग्यके न होनेसे संन्यासका लेना भी मारागया) और—यह शंका न करनी चाहिये कि तीनों ऋणाउद्धारकरनेकी आज्ञास्वपी विधि प्रसिद्धहै सोई स्त्रियोंका संग्रहकराना खींचकेमिद्धकरतीहो तिससे ब्रह्मचारी को भी दार संग्रहकरके संतानपैदाकरनी चाहिये क्योंकि जहां दैवयोग से ऐसाही वानक मौजूद हो कि ब्रह्मचर्यको विवाह के होजाने पीछे धारणा किया और विद्या धन संचय करने के नियम तुल्य उसकीदाराकिसी और के मनोप सौंपी मौजूदहुई तो फिर विवाह करनेका आक्षेप आकर्ष भी जरूरी नहींरहा तिससे तात्पर्य केवल वहीहै कि ब्रह्मचारी यदि संन्यास लेना चाहे तिसको यह आवश्यक नहीं है कि संतान पैदाकरे क्योंकि उसका ब्रह्मचर्य खण्डितहोजायगा—यह सब अर्थ मिताक्षराकी इस पंक्तिसे उत्पन्न होताहै कि (यदातुब्रह्मचर्यात्प्रव्रजति तदा न प्रजोत्पादनादि नियमः अकृतदारपरिग्रहस्थतत्रानधिकारात्तरागप्रयुक्तत्वाच्चविवाहस्थनचञ्चलावयापाकराखि विरेचदारानाक्षिपतीति शंकनीयविद्यावनार्जननियमवदन्यप्रयुक्तदारसंभवेत्स्यानाक्षि

पकत्ववर्धितमिताक्षरा) और इसके ऊपर यह तर्कनांकरनीचाहिये कि संतान पैदा न करनेसे ऋणी बनारहेगा सो अगिली युतिसे विरोधआवैगा क्योंकि युतिमें जन्म लेतेही ऋणीहोनाकहाहै—यथा—जायमानोब्राह्मणस्त्रिभिः ऋणावान् जायते ब्रह्मचर्ये ऋणशुभ्रयोयज्ञे नदेवेभ्यः प्रजयापितृभ्यः—अर्थात्—उत्पन्न होतेहुये ब्राह्मण तीनमे ऋणीहोताहै तहाँ ब्रह्मचर्य साधनकारिके ऋणियों के ऋणसे छुटकारा पाताहै यज्ञों के करनेसे देवतोंके ऋणसे शुद्ध होताहै संतान पैदा करनेसे पितरोंके ऋणसे छुटजाताहै—यहीपितरोंका ऋण उसपरबनारहेगा यह न कहनाचाहिये—क्योंकि युतिमें(जायमानो— इसपदका अर्थजन्महोते सायही यहनहींहै) न पैदाहोतेके सायही उसपर किसीऋण का भारहै क्योंकि जन्मलेते सारस्त्री संग्रह और अग्निपरिग्रहभी नहीं होसक्ताहै कि इसकेहुये बिना यज्ञआदि कार्यों में अधिकारहीनहींपहुँचताहै तबकेसे ऋणीठहरे— तिससे श्रुतिमेंभी (जायमानो) इस पदका अर्थ सेसाहै कि ब्राह्मण आदि द्विजाती पुरुष अधिकारी जायमान होवै तब यज्ञादि कर्मोंको करै अर्थात् (जन्मजायते शूद्रः) जन्मसे शूद्रही पैदा होताहै शूद्रको यज्ञादि कर्मका अधिकार नहीं तिससे जायमान उसको जानना जिस द्विजाती का उपनयनरूपी संस्कार भी होजाय तभी द्विज कहलाता और तभी संध्यावंदन आदि नित्यकर्मका अधिकारी होताहै इसी दृष्टांत से विवाहरूपी संस्कार होजाने पर संतान पैदा करनेका अधिकारी होताहै तभी उसपर संतान पैदा करने मध्ये पितरोंका ऋणभी आकर आरूढ होताहै किन्तु विवाह के हुये बिना न उस कामका अधिकार है न पितरों के ऋणका कुछ भारहै इसी दृष्टांत से बाकी सब कामोंकी व्यवस्था समझ लेना कि जिस अवस्थाके समय पर जिस कार्यका अधिकार पैदा होताही तभी उस कार्यकी अपेक्षा वह पुरुष जायमान अधिकारी कहा जाताहै—इसीलिये ऊपर लिखी युतिकी यह तात्पर्य है कि जब जिसका उपनयन संस्कार होय तभी उसको वेदका पढ़ना आवश्यकहै अर्थात् वेद पढ़नेका ऋण उसपर आरूढ हुआ और स्त्री संग्रह तथा अग्निका परिग्रहकरने वाले पर संतान पैदा करनेका भार अन्यथा नहीं ॥० ॥ विरोधपात्तिनिवारणं इस व्यवस्था को पहिंकार गक और भी शंका खड़ी होतीहै कि मूल श्लोकवाले अर्थमें केवल यही कहाया कि वनसे या घरसे संन्यास लेनाचाहै तौ फिर यहाँ अधिकोक्ति में यह क्योंकर कहा कि ब्रह्मचर्य से संग्रस्त होना चाहै तिसको संतान पैदा करने का कुछ नियम नहीं—इसमें यही तर्कनाहै कि ब्रह्मचारीका चर्चा मूलमें नहीं था— इसका समाधान सुनो—वनसे वा घरसे इसमें अवश्यरूपी वा शब्दहै सोई पाक्षिक

है कि तीनों वर्गोंको वेदप्रदिके चार आश्रम होते हैं इस वचनके प्रभावसे भी द्विजाती मात्र का अधिकार कहीते हैं कि तीनों वर्गोंमें जिसकी इच्छा होय सो संन्यास लेसक्ता है केवल शूद्र नहीं ॥ यहाँ तक संन्यास लेने का दंगही कहा गया किंतु इसी दंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगे सो आगे देखो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तस्त्रिदंडीसकमंडलुः । एकारामःपरिब्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ५८ ॥

अर्थः—परिव्राजकहोके सर्वभूतों का हित होय शान्त होय त्रिदंडीहोय कसंडलु सहित होय एकारामहोय भिक्षाके अर्थ ग्रामका आश्रय लेवे—अर्थात्—संन्यासी सब कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसी को परिव्राजकभी इसलिये कहिते हैं कि वह धरती पर फिरने लगाताहै कहीं टिकाना बांधिके नहीं टिकता है इस फिरने के उपलक्षणा से संन्यास के आश्रम को प्रव्रज्याभी कहिते हैं उस प्रव्रज्यापर आरूढ होय सो नित्यंप्रति सभी प्राणी मात्र का हितहोय इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके साथ कुछ भलाइका आचरण करनेलौं किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ ध्यारका बर्तावा करे या कोई कुछअप्रियवर्तावाकरे उन दोनों से उदासीन बुद्धिबनी राखे इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में ॥ ५८ ॥

५८ अधिकोक्तिः—दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखे क्योंकि दुख देने वाली का प्रतिकार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुख देने वाले पर अनुग्रह करने से उसके किसी शत्रुको कुछ पीडा देनी परैगी उसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का नियेध है—तथाच सौतमः=हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभी=अर्थात्—हिंसा और अनुग्रह इन दोनोंका आरंभ कभी नकरे शान्त होय यह जो ऊपर कहागया तिसका यह तात्पर्य है बाहरली प्रत्यक्षईंद्रिया और मनकी आदि लेकर भीतर की इंद्रियां दो तरह की होती हैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय त्रिदंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन दंड उसके पास रहा करे जो बांसके होते हैं और शौच आदि शुद्धि के लियेकमंडलुका राखना कहा सो इरवक्तु जलसे भरा चाहिये=तथाच स्मृत्यंतरं=प्रजापत्येद्यन्तरंवीन वैशावांदंडान्मूर्धप्रमासांदक्षिणेन पारिणाना धारयेत् सदप्येन सो दकंकमंडलुम्=अर्थात्—पूर्वोक्त प्राजापत्य नामका याग करानेके अनंतर बांस केतीन दंडे जो अपने साथे पर्यंत कनपटी तक लंबेहों तिनको दाहने हाथ में लेकर तत्रनिकसै और चौथे हाथमें जलसे भरा कमंडलु होय परंतु-निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

ही वंड होय विकल्पसे एकभी होता है (एकवंडीविदंडीवेति व्रीधायनः) जैसा यह व्रीधायन का कहा विकल्प है कि एक वंडी बनें या विदंडी बनें विकल्प उसकी इच्छा पर आसूत है—एवं=चतुर्विंशति सतनामके शास्त्र में भी विकल्प है=यथा=चतुर्थभायमंगच्छेदत्रह्यविद्यापुरायराः एकवंडीविदंडीवासर्वसंगविवाजितः=अर्थात्—ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहाती है तिसमें निपरा और तत्पर होके संन्यास नामके चौथे आयमको पहुँचै किस रीतिसे कि एक वंडी या विदंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्ट! मित्र संबंधी नाते गोते आदि सनकाही संग छोड़ि उनका सोह मुहव्रत तोड़े हुये जाय किसी से कुछ वास्ता अपना न बाकी रखवे=और=शिखा सूत्र बना रखने या त्यागि देने मध्ये भी ग्रन्थांतरसे विकल्प है कि चाहे बनारखै या निपट त्यागि देवै सो सब आगे वचनों में देखो (मुंडःशिखी वेति गौतमः) गौतमने कहा है कि मुंडितहोय या शिखावाव होय (मुंडोऽमोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि मुंडा होय और अमम होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह स्थान या किसी वस्तु पर मामता अपनी न रखवै कि वह मेरा या यह मेरा और अपरिग्रहभीहोय अर्थात् चाकीचूल्हा सिलवहाआदि गृहस्थोवाले उपकरणाँकासंग्रहकभी न करै—यहतीमुंडितऔरशिखी का विकल्प दर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते हैं सो देखो (सशिखान्के शान्निहंत्य विद्युज्ययज्ञोपवीत मितिकाठकयुतिः) काठकीययु तियह कहितीहैकि चौदी सहितवालोंको कारिके यज्ञोपवीतको विसर्जन करिके संन्यास धारणा करै=तैसा वाष्कल का यह वचन है=कृतं वंपुत्रदारांश्चवेदांगानिचुर्बशःकेशान्ययज्ञोपवीत चत्यक्तासूदप्रचन्मुनिः=अर्थात्—कृतव .पुत्र . स्त्रियां . वेदोंके शंगभूत पंचयज्ञ आदि कर्म भी सर्वथा नित्यनैमित्तिक दोनों भाँति और गृहकेवाल . जनेऊ . इन सबकात्याग करिके अपने स्वरूपको रूपये सौत साधेहुये विचरै (सौत साधेका यह तात्पर्य नहींहै कि निपट न बोलै किन्तु यह प्रयोजन है कि बहुत न बोलै सिर्फ दोचार शब्द जरूरीमात्र मुखसे निकासा करै बाकी परमात्मा के ध्यानमें लगारहा करै और स्वरूपको गूढ किये फिरनेका यह तात्पर्य है कि इतना अधिक न ठहिरै कहीं जिससे बस्त्रियों के लोग उसके स्वरूप को यथार्थ भेदाभावसे पहिंचान सकै और वर्या आदि ठहिरने की जरूरत पर भी ऐसे एकांत स्थानोंमें बसतीसेवाहर देवस्थ न आदि पर ठहिरै जहाँ बसती के लोग बहुधा नहीं आसकै जो आकर उसके ध्यानमें व्यर्थिक्रम करै यह वाष्कल मुनिने कहा=तैसा परिशिष्टनाम ग्रन्थका अप्रोक्त वचन है

न्यायसे समुच्चय पक्षका दर्शाने वाला है कि वनसे वा घरसे वा तीसरे ब्रह्मचर्यही से यदि कोई संन्यास लेना चाहै यह अर्थ सूचन करता है और इसीसे दूसरा मुख्य पक्ष भी संसिद्ध होता है—तिससे यह तात्पर्य पाया गया कि हर किसी आयमका पुरुष अपने आश्रम से अनंतरही संन्यास लेसक्ता है—इसीलिये—जावाल मुनिकी यु तिमैं दोतरह से विकल्प कहा गया है उसमें एक यही पक्ष जो कहिचुके दूसरा मुख्य पक्ष भी उपस्थित है—तथाचयु तिमि=ब्रह्मचर्यपरिसमाप्यगृहीभवेत्तृहीभूत्वाव नोभवेत्त वनीभूत्वाप्रव्रजेत्तयदिवेत्तरयात्रह्यचयदेवप्रव्रजेद्गृहादनाडा = अर्थात्—ब्रह्मचर्य धारणा करे उसको अच्छीरीतिसे पूराकरिके गृहस्थी बने गृहस्थको पूरा करिके वानप्रस्थ होय वनके आश्रम को पूरा साधन करिके संन्यास धारणा करे (यही मुख्य पक्षवाला कल्प है) पर जिससे यह चारों आयम यथा क्रमसे न बनिपरै सो औरही तरह ब्रह्मचर्यही से संन्यास लेलेवै या गृहस्थी बनिके घरहीसे या बीच में गृहस्थ छोड़ि ब्रह्मचारी से वानप्रस्थ बनिकर उसीके अनंतर संन्यास लेवै (सब तरहसे गुंजाइश मिली अब संदेह जातारहा) परंतु यह भी नियम नहीं कि अवश्यभाव से वानप्रस्थ या संन्यासी होजाना क्योंकि गौतम ने गार्हस्थ्यके सन्मुख उपरालू आश्रमों को रोक वाच भी प्रदर्शित किया है = यदाह गौतमः=एकाग्रस्यंत्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्य=अर्थात्—जिन आचार्यों ने चार आयम दर्शाये उन्हीं ने एकाग्रन्य भी गृहस्थ का प्रत्यक्ष विधान होने से कहा है कि जिसके गृहस्थी आयम प्रत्यक्ष पूरे विधि विधान से बना चुना देखपड़े जहाँ किसी धर्मकी न्यूनता न समझ परै तिसको एक यही आयम सेवन करना चाहिये जो सबसे जेठा होता है क्योंकि यह सभी आयमोंकी धर्मरक्षा करसक्ता है—इसीसे जेठा पन के बो हेतु इसमें होते हैं वानप्रस्थ प्रकरणा के अन्त में लिख चुके तहाँ देखो—ऊपरली शंका के समाधान पर भी ध्यान करो कि संन्यास धर्म लेने मध्ये समुच्चय विकल्प और वाच भी सबतरह की गुंजायशवालेपक्ष दर्शाये गये तिनसबकी जड़वेद में दहरी उची यु तिमूलत्व से कर्ताकी इच्छा बलवान दहरी कि वह जिसमें अपना सुभीता समझै उसीका सेवन करे और जिस रीति से होसके उसी रीति से करे सभी प्रकारों का प्रमारा एक वेदहै तिससे विरोध की संभावना कुछ नहीं है ॥ ० ॥ तीभी विरले विद्वानों की समझ को भद्दी जान उसका दोय पकड़ने के निमित्त से मिताक्षरा कार ने एक फालतु व्याख्यान भी आरोपित किया सो देखो (यत्केप्रिचत्र परिडत मान्यैरुक्तं स्मार्तत्वानैथिकादीनां गार्हस्थ्येन श्रौतवाचः गार्हस्थ्यानविकृतांश्चत्तोवा

दिविययतावेति तत्त्वाध्यायाध्ययन वैभुर्यनिबंधन मित्युपेक्षाणीयं अर्थात्—मिताक्षराकार कहते हैं कि—बिरले किन्हीं पारंगत मान्य पुरुषों ने इक्षीसंन्यास लेनेके मध्ये संतान पैदा करके जाना चाहिये इस युक्ति के लिये ऐसा जो कहा है कि नैष्ठिक आदि दोनों ब्रह्मचारी यदि संन्यास लेना चाहें तो प्रथम गृहस्थी बनके विवाह करने के द्वारा संतान उत्पादन करके पितरों का ऋणा शोधिके संन्यासी बनें तो इससे कुछ श्रुतिकी आज्ञा नहीं मिलती है क्योंकि यह धर्म स्मार्त है तिससे अथवा यदि विवाह करना आदि विरुद्धही मानाजाय तो फिर उस प्रकार के ब्रह्मचारियों को संन्यास लेना कहागया होगा जो अन्धे नपुंसक आदि अंगभंग ब्रह्मचारी होजाते हैं जिनको गृहस्थी होने का अधिकारही नहीं होता है ये लोग वेवकके ब्रह्मचर्य से संन्यासी होजायें तो कुछ विरोध नहीं है क्योंकि जिनको विवाहकरनेका अधिकारहीनहींतिन पर पितरोंका ऋणाभी नहीं उक्तविद्वानोंका यहविचारहै इसकोमिताक्षराकारउपेक्षा कारदेनेकेयोग्य ठाहराते हैं कि न माननाचाहिये क्योंकि वे लोग कुछ समझे नहीं और सतर्क सीमांसाकीपंक्ति देकर यहतर्कदर्शातेहैं कि लूले अंधेआदिको जैसे अग्नि क्रिया करने घृत देखनेआदिकामोंकी समर्थ न होनेसे श्रौतकर्मोंका अधिकार नहीं तैसेहीस्मार्तकर्मोंमेंभी जलका घड़ा भरलाना भिषाले आना आदिकामोंकी समर्थ न होने से क्योंकि नैष्ठिकत्व आदि आश्रम का निर्वाह पंग आदिसे होसकेगा ॥ ० ॥ संन्यास लेनेका अधिकारी कौन वर्राहै इस प्रश्न का उत्तर मिताक्षराकार कहतेहैं कि इस आयम का अधिकारी केवल ब्राह्मण वर्रा होता है क्योंकि मनुने प्रकरणा के आरम्भमेंभी ब्राह्मणका नामवरा और समाप्ति के स्थल परभी उसीका नाम लिया ये दोनों वचन आगे देखो=यदाह मनुः=आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्तथा-शयवोऽभिहितोधर्माब्राह्मणस्यचतुर्विधः (ब्राह्मणःप्रव्रजंतिइतिश्रुतेःप्रायजन्म नरावाधिकारो नदिजातिमात्रस्य)=अर्थात्—मनुने कहा है किअग्निर्गो को आत्मा में आरोपित करके ब्राह्मण घरसे निकस संन्यास में जावै—तैसे यहभी उन्हीं ने कहा है कि—अस ऋषि लोगों यह ब्राह्मणका धर्म तुमसे चार प्रकार कहा (ब्राह्मण लोग संन्यास में जाते हैं यह श्रुतिभी प्रसिद्ध है तिससे ब्राह्मण वर्णा ही का अधिकार है तीनों द्विजातियों का नहीं)=परंतु—अन्यसंग्रहकार टीकाकार तीनों वर्णाका अधिकार बताते हैं क्योंकि गर्भके संस्कार से लेकर वेदका पढ़ना आदिसर्व धर्म तीनोंवर्णा के वर्राण होते चलेआते हैं=बलिक=वयारांवर्राणां वेदमधीत्यचत्वारआश्रमाः इति सूत्रकार वचनाच्च द्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः=अर्थात्—सूत्रकारका भी यह वचन

है कि तीनों वर्गोंको वेदप्रदिके चार आयस होतेहैं इस वचनके प्रभावसे भी द्विजाती माव का अधिकार कहितेहैं कि तीनोंवर्गमें जिसकी इच्छाहोय सो संन्यास लेसक्ता है केवल भूद्र नहीं ॥ यहां तक संन्यास लेने का ढंगही कहा गया किंतु इसी ढंग से संन्यास लेचुकने वाले को क्या क्या धर्मवर्तने होंगेतो आगे देखो ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

(संन्यासिधर्माः)

सर्वभूतहितःशान्तिस्त्रिदंडीसकमंडलुः । एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत् ५८ ॥

अर्थः—परिव्राजक होके सर्वभूतों का हित होय प्रांत होय, त्रिदंडीहोय, कचंडल सहित होय, एकारामहोय, भिक्षाके अर्थ ग्रामका आयस लेवै=अर्थात्—संन्यासी स्व कर्मों का त्याग करने से कहाता है उसीको परिव्राजकभी इसलिये कहितेहैं कि वह धरती पर फिरने लगताहै कहीं ठिकाना बांधि के नहींठिकता है इस फिरने के उपलक्षणा से संन्यास के आयस को प्रव्रज्याभी कहितेहैं उस प्रव्रज्यापर आखड होय सो नित्यंप्रति सभी प्राणी माव का हितहोय, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनकी साथ कुछ भलाईका आचरण करनेलगे, किंतुयही तात्पर्यहै कि जो कोई कुछ अपनेसाथ प्यारका वर्तावा करै या कोई कुछअप्रियवर्तावाकरै उन दोनों से उदासीन बुद्धिवनी राखे इत्यादि बातोंका व्योरा अधिकोक्ति में ॥ ५८ ॥

५८ अर्थात्कोक्तिः—दोनोंसे उदासीन बुद्धि राखे क्योंकि दुख देने वाले का प्रति-कार करने से किसी प्रकारकी हिंसा करनी परैगी तथा सुखदेने वाले पर अनुग्रह करनेसे उसके किसी शत्रुको कुछ पीडा देनी परैगी इसी से संन्यासी को इन दोनोंबात का नियेध है=तथाच शीतमः=हिंसाऽनुग्रहयोरनारंभी=अर्थात्—हिंसा और अनुग्रह इन दोनोंका आरंभ कभी नकरै, प्रांत होय यह जो ऊपर कहागया तिसका, यह तात्पर्य है वाहरली प्रत्यक्षइंद्रिया और मनको आदि लेकर भीतर की इंद्रियां ये तरह की होतीहैं तिनमें चंचलता न खड़ी होनेदेय, त्रिदंडी होनाभी कहा तिसका यह तात्पर्य है तीन दंड उसके पास रहा करै जो बांसके होतेहैं, और शौच आदि शुद्धि के लियेकमंडलु का राखना कहा सो इवक्त जलसे भरा चादिये=तथाच स्मृत्यंतरं=प्रजापत्येद्यनंतरंवीत्र वैशावांदंडान्मूर्धप्रमाणंदक्षिणेन पाशाना धारयेत् सद्वेन सो दकंकमंडलुम्=अर्थात्—पूर्वाक्त प्राजापत्य नामका याग करनेके अनंतर बांस केतीन दंडे जो अपने साथे पर्यंत कनपटी तक लंबेहों तिनको वाहने दाय में लेकर तत्रनिकरी और बायें दायमें जतसे भरा कमंडलु होय-परंतु-निर्विकल्प नियम नहींहै कि तीन

हो वंड होय विकल्पसे एकभी होता है (एकवंडीविदंडीवेति वीधायनः) जैसा यह वीधायन का कहा विकल्प है कि एक वंडी बने या विदंडी बने विकल्प उसकी इच्छा पर आरुह है—एवं=चतुर्विंशति सतनामके शास्त्र में भी विकल्प है=ग्रथा=चतुर्थमाग्रमंगच्छेद्व्रह्मविद्यापुरायराः एकवंडीविदंडीवासर्वसंगविवर्जितः=अर्थात्—ब्रह्म विद्या जो वेदांत नाम से अध्यात्म विद्या कहाती है तिसमें निपरा और तत्पर होके संन्यास नामके चौथे आग्रमको पहुँचै किस रीतिसे कि एक वंडी या विदंडी बनिके जाय और सर्व संगों से रहित होके जाय अर्थात् इष्ट मित्र संबंधी नाते गोते आदि सबकाही संग छोड़ि उनका सोह सुहृद्वत् तोड़े हुये जाय किसी से कुछ वास्ता अपना न बाकी रखवे=और=शिखा सूत्र बना राखने या त्यागि देने मध्ये भी ग्रन्थांतसे विकल्प है कि चाहे बनारखै या निपट त्यागि देवै सो सब आगे वचनों में देखो (मुंडःशिखी वेति गौतमः) गौतमने कहा है कि मुंडितहोय या शिखावाव होय (मुंडोऽमसोऽपरिग्रह इति वशिष्ठः) वशिष्ठ ने कहाहै कि मुंडा होय और अमस होय अर्थात् किसी प्राणी या किसी जगह स्थान या किसी वस्तु पर नामता अपनी न रखवै कि वह मेरा या यह मेरा और अपरिग्रहभीहोय अर्थात् चाकीचलहा सिलवडाआदि गृहस्थोवाले उपकरणोंकासंग्रहकभी न करै—यहतीमुंडितऔरशिखी का विकल्प दर्शाया आगे यज्ञोपवीतका विकल्प दर्शाते है सो देखो (शशिखान्के शास्त्रिकंय स्रष्टुयज्ञोपवीत मितिकाठक्यु तिः) काठकीययु तियह कहितीहैकि चोटी सहितवालोंको कारिके यज्ञोपवीतको विसर्जन करिके संन्यास धारणा करै=तैसा बाष्कल का यह वचन है=कुरुषंपुत्रदारांपुत्रवेदांगानिचसर्वशःकेशाव्यज्ञोपवीतं चत्यक्तागदप्रचोन्मुनिः=अर्थात्—कुरुष .पुत्र .स्त्रियां .वेदोंको संग्रहत्त पंचयज्ञ आदि कर्म भी सर्वथा नित्यनैमित्तिक दोनों भाँति और मुंडकेवाल .जनेऊ .इज सबकात्याग करिके अपने स्वरूपको छिपाये मौन साधेहुये विचरै (मौन साधेका यह तात्पर्य नहींहै कि निपट न बोलै किन्तु यह प्रयोजन है कि बहुत न बोलै सिर्फ दोचार शब्द जरूरीमात्र मुखसे निकाला करै बाकी परमात्मा के ध्यानमें लगा रहा करै और स्वरूपको गूढ किये फिरनेका यह तात्पर्य है कि इतना अधिक न दर्हरे कहीं जिससे बास्तिओं के लोग उसके स्वरूप को यथार्थ भेदभावसे पहिंचान सकें और वर्या आदि दर्हरे की जरूरत पर भी ऐसे रकांत स्थानोंमें बसतीसेवाहर देवस्थ न आदि पर दर्हरे जहाँ बसती के लोग बहुधा नहीं आसकें जो आकार उसके ध्यानमें व्यर्थतकन करै यह बाष्कल मुनिने कहा=तैसा परिशिष्टनाम ग्रन्थ का अग्रोक्त वचन है

कि जिसमें बाकीरहे विधानोंका प्रतिपादन होता है=यथा=अथयज्ञोपवीत मन्सुज
 होतिभुःस्वाहेति अथदंडमादत्तेसखेमांगोपायेति=अर्थात्-पूर्वोक्तप्राजापत्य यार्गाक्ष्य
 पीछे चलते समय (भुःस्वाहा) इस संज्ञको पढ़िंकर जलकी वाराओं में उपवीतसूत्र
 को होसि देताहै फिर पूर्वोक्त दंडको हाथमें लेताहै इस संज्ञसे कि (सखेमांगोपाय)
 मित्र मुभे वचाइयो संसार के दुःखोंसे=यहां तक सभी वचनों में जनेऊ का त्याग
 देना सिद्ध हुआ. अगिले देवल के वचन से जनेऊ रखलेना भी सिद्ध होगा इसीसे
 ऊपर इसका विकल्प कहा गयाथा (और जिसको एकही वस्त्र से निर्वाह करनेकी
 शक्ति निपट न हो सो जाड़ेआदि की ऋतु में दूसरी कथरी भी साथ रखवै = यथा
 ह देवलः=कायायोमुंडंस्त्रिदंडीकमंडलु पवित्रपादुकाऽऽसनवंधामात्रः=अर्थात्-संन्या-
 सी मूड मुड़ाये हुये सिर्फ इतनी चीजें साथ रखवै=गोहत्या आदि कथाय वस्त्र-तीनदंड-
 कमंडलु जल से भरा पवित्र नाम यज्ञोपवीत सूत्र-पादुका खडाऊं-आसन-कथाकथरी
 एकाराम होय यह योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहा तिसका तात्पर्यहै कि और किसी
 संन्यासी को अपनेसाथ नरखवै न किसी संन्यासिनी स्त्रीको साथ रखवै (यहां यह
 संदेह न करना कि पुरुयही संन्यास लेते होंगे क्योंकि (स्त्रीणांश्चैके इति वीधायन)
 वीधायन मुनिने विरलोंके मतसे स्त्रियोंकी भी संन्यास लेना कहाहै) किसी संन्यासी
 आदिकी साथ लेनेमें जो दोषहैं तिनको दसने प्रकाश किया है=यथा=एकोभिसुर्य
 योक्तश्चद्वावेवसिद्युत्संस्मृतसु त्रयोप्रासःसमारुथात् ऊर्ध्वतुनगरायते राजवार्तादितेयांतु
 भिक्षावार्तापरस्परसु अपिपैगुन्यमात्सर्यसन्निकर्यान्नसंशयः=अर्थात्-भिक्षुकनाम सं-
 न्यासी का जैसा लक्षणा कहागया सो सब उसीमें समुभूतना जो सकला असहाय फि-
 रता होय-तिससे जहां दो भिक्षुक इकट्ठे होयें तिनको स्त्री पुरुयके तुल्य मैथुनी जोडा
 कहा गया है-जहां कहीं तीन भिक्षुक एकत्र होयें तिनको ग्रामके समान जानों-इत
 से अधिक जहां चारि पांच आदि इकट्ठे होयें तहां नगर शहर के समान भवभई
 होता है क्योंकि उनके परस्पर समीप होनेसे राजाओं की वार्ता और भिक्षाकी वार्ता
 पिशुनता की वार्ता मत्सरताकी वार्ता भी अवश्य होने लगतीहै जिससे उक्तार आदि
 आत्माके स्वरूप ध्यान भूलजाते हैं संदेह इसमें नहीं है=मूल श्लोक में (परित्रज्य)
 यही पद आया था इसका यही अर्थहै कि सब कुछ त्यागिके संन्यासी बनाहोय-ति-
 मसे-में मेरा आदि जो अभिमान के स्वरूप हैं तिनको लिये जो कुछ लोकाचारी कर्म
 होतेहैं तिनको त्यागि देवें और वेदमें भी जो नित्य और कान्य रूपी कर्म करने कहे
 होयें तिनको त्यागि देवें=तथाच मनुः=सुखाभ्युदयिकंचैवनेः श्रेयसिकमेवच प्रवृत्तं

नितृत्तंचद्विविधं कर्म वैदिकम् इह वा २ सुब्रवा कास्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते निष्कामं ज्ञानपूर्वकं
 नितृत्तमुपदिश्यते यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः आत्मज्ञानेशमेच स्याद्वेदा
 भ्यासे च यत्नवान् (अथ वेदाभ्यासः प्रयागाभ्यासः तत्र यत्नवानित्यर्थः = अर्थात्—मनु ने
 कहा है कि सुखों का उदय करनेवाले कर्म और निःश्रेयस जो मोक्ष है तिसके देनेवाले
 कर्म और इसी तरह दोभांतिके वेदोक्त कर्म हैं प्रवृत्त और नितृत्त (इन्हीं दो नामों से)
 तिनका यही अर्थ है कि वेदके जितने यज्ञादि कोई कर्म इहां संसारही में कामना
 देनेवाले या परलोक में जाकर कामना पूरी करनेवाले हों सो सब प्रवृत्त कर्म कहते
 हैं तथा नितृत्त कर्म उनका नाम है कि जो केवल ज्ञानहीके विचार सहित कामना
 से रहित होंके किये जायँ अर्थात् जिनका साधन करते समय न तो इसलोकमें कोई
 फल चाहा जाय न परलोकमें जाकर कुछ पावनेकी कामना रक्की जाय सो निष्काम
 होनेसे ही नितृत्त कहि लाते हैं ये सब तरह के श्रुति और स्मृतियों में कहे भये कर्मों
 को सर्वथा छोड़ि छोड़िके द्विजोत्तम अपने आत्मज्ञानके प्रभावसे भीतरली इंद्रियोंका
 दमन करि पाने में वेदाभ्यास करनेमें यत्नवाला होय अर्थात् यहाँ वेदके नाम से प्र-
 याग ओंकार मात्रको जानना तिसका वारंवार जप करने में अभ्यास बढ़ाता रहे = मूल
 प्रलोकमें (ग्रामं आश्रयेत्) यह भी कहा गया है कि ग्रामके भीतर भी कदाचित्
 प्रवेश करै परंतु भिक्षार्थी हो तभी करै अर्थात् भिक्षा के प्रयोजन बिना ग्राम आदि
 वसतीके भीतर कभी न जावै = तथापि इस नियेधके होते भी वर्षाकाल में गाँवभीतर
 जानेया टिकनेका भी दोष कुलुनहीं है = यथाह शांखः = ऊर्ध्ववार्यिकाभ्यां मासाभ्यां नैकं
 स्थानवासीति = अर्थात्—शांख मुनिने अपवाद के द्वारा उपदेश फल उत्पन्न किया है
 कि वर्षा ऋतुके श्रावणा भादों इन्हीं दो महीना से उपराल किसी एकही स्थानपर
 नटिके अर्थात् इन्हीं दो में टिके—परन्तु जो कोई असमर्थ होय तिसके लिये चार म-
 हीने भी टिकजानेका दोष नहीं देखि परता है = तदाह देवलः = नचिरनेकत्र वसेदन्यत्र
 वर्षाकालात् यावत्तादयश्चत्वारो मासावर्षाकालः = अर्थात्—वर्षा कालके सिवाय
 अन्य ऋतुमें संन्यासी बहुतकाल एक जघेपर न टिके और वर्षाकाल यावत्ता आदि
 चार महीनों में जब जब कभी वर्षा देखि परै उसीको समझना तथापि जो शरीर से
 अशक्त होय तिसके लिये निरंतर चारोंमास वर्षाकाल जानना चाहै निरंतर वर्षा
 होतीरहै या नहीं भी होतीरहै = यही ध्वन्यर्थ अगिले कराव मुनिके वचनमें समझना =
 यथा = एकरावंबसेद्दामेन गरीरा विपंचकम् वर्षाभ्यो २ भ्यववयसि मासांस्तु चतुरो वसेत् =
 अर्थात्—संन्यासी होय सो छोटे ग्रामोंमें एकही रात्रिके बड़े नगरोंमें पाँचरात्रिके

इससे अधिक नहीं परंतु यह नियम बर्या के दिवसों से अन्यत्र सूत्रकालमें समझना किन्तु बर्या होतेहुये पाँच दिनसे अधिक भी टिकिजानेमें दोय नहीं वल्कि बर्याकिंतु में अति बर्या होता जानिके चारमहीना तक निरन्तर भीटिके तौकुछ दोय नहीं (यहाँ यद्यपि अति बर्याके होनेमें समर्थ को भी निरन्तर टिकनेका दोयनहीं कहा परन्तु खंडवर्याके होनेमें निरन्तर चारमहीने टिकिजाने से दोय प्रकट होताहै तथापि जो असमर्थहोय तिसको खराड टुटिके होने परभी चारमहीनाभर टिकनेका दोयनहीं यह देवलकेवचन से भी सिद्ध होचुकाहै ॥ किसरीतिसे भिसामाँगै यहनियम अगिले मूल प्रलोकसे देखो ॥ ५८ ॥

(भिचाचरण प्रकारः)

अप्रमत्तश्चरेद्व्यस्तायाद्देनभिलाक्षितः । रहितेभिक्षुकैर्यमेयात्रामात्रमलोलुपः ५९ ॥

अर्थः—सायाह्न में भिक्षुकों से रहित गाँव में यात्रा मात्रही भैक्ष्य को चरै अलोलुप अप्रमत्त अनभिलाक्षित होके=अर्थात्—भिक्षा माँगते समय अपने मुँहकी बाराती तथा नेवों की निराह तथा औरही किसी अंगकी समस्या आदि चपलता से रहित होय सो अप्रमत्तहोना कहाता है और अनभिलाक्षित होय अर्थात् ज्योतिष वेद्यक मंत्र ग्रंथ इंद्रजाल आदि किसी विद्या के लक्षणसे लोगों को रिभ्याय के न माँगैऔर दिनका पिछला पाँचवाँ भाग जो सायाह्न कहाता है तिसमें माँगै पहिले से नहीं और जिस गाँव में भिक्षुक बहुत न होय तिसही में माँगै और उतनाही माँगै जिससे शरीर और प्राणों की यात्रा घनी रहे बहुत न माँगै और अलोलुप होके माँगै किंतु मोटे खड़े आदि पदार्थों को न माँगै जैसा मिल जाय उगीसे संतुष्टि मानै ॥ ५९ ॥

५९ अधिकोक्तिः=वशिष्टः=सप्तागाराय संकल्पितानिचरेद्वैद्यं=अर्थात्—वशिष्ट ने घरोंका भी नियम किया है कि रातही घरसे भिक्षा आचरे और रात घर भी असंकल्पित होय अर्थात् ऐसा संकल्प न किया होय कि अमुकही अमुक घरों में आकर कलिह माँगैये या देनेवालों ने ऐसा संकल्पनमंत्रा की रीति से जाहिर किया होय कि अमुक दिवसमें हमारेही घरसे भिक्षा लेना तोभी ऐसे संकल्पितघर की भिक्षा न स्वीकार करे—और—दिनका पाँचवाँ भाग सबसे पीछे जो सायाह्न कहाता है तिसमें माँगने को निकसे यह मूलप्रलोक में कहागया तिसका प्रमाणा अगिले मनुके वचनमें समझी=यथाह मनुः=विदूमेसन्नमुसलेवंगारेभुक्तवज्जने वृत्तिश रावसंपातेनित्यं भिक्षां प्रतिशचरेत्—तथा—एककालंचरेद्विषांप्रसज्जेन्नतुविस्त्रे भैक्ष्य

प्रसक्तो ह्यतिविद्ये प्वपिसृजति=अर्थात्—यती संन्यासी नित्यंप्रति ऐसे समयपर उसघर में भिक्षा माँगने जावे जहाँ रसोई का धुआँ बंद हो चुका अर्थात् रसोई का धंवा निपट चुका हो और दूसर ओखली आदि के धंवे अर्थात् ऐसे कामों की खटा पटी निपट-गड़ेहो और दर्शगार घरमें जावे कि जहाँ चूल्हा भट्टी आदि की आँचभी बुझगई हो और मनुष्यों का खाना पीना भोजन कर्म भी हो चुका हो और भी (श राव) सरपोश आदि वासनों का संपातनाम धरना ढाकना आदि आहत होना निपट चुका हो—इन बातों से ध्वन्यर्थ सबका यही है कि यतीको ऐसे घरमें भिक्षाकेलिये न धुनना चाहिये जिसमें रोटी चढीका धुआँ होता हो या खावापी होती हो या वासन भंडवा की धरा उठ ई ढाँका मूवी आदि कामों का आहत होता हो किंतु भोजन कर्मसे निपटे हुये निर्दंड घर में जाना चाहिये जिससे उन घरों के स्त्री पुरुष अपना हाथ खाली का अवकाश पायकर एकही आवाज सुनतेसारा कोई बचा बचायारोटी टुकड़ा देसकेँ उनको यह न कहिना परै कि हाथ खाली नहीं है सो यह ऐसा वानक प्रायश उसी समय मिल सकता है कि जब तीसरे पहर के पीछेदिन का पाँचवाँ अंश बाकी रहिजाय. इसीलिये इतनी बड़ी वार्ताका निपटारा मूल प्रलोक में योगीश्वर ने (साशास्त्रे) इन्हीं तीन अक्षरों से दर्शाया=तथा=मनुका एक दूसरा भी बचन है कि भिक्षा एकही काल चरे किंतु विस्तर में न लगै क्योंकि भिक्षा से प्रसक्त होकर विस्तर में लगने से यती पुरुष विद्ययां में भी लगजाता है और वेही विधय उसको शत्रु होते हैं—इस बचन से मनुने एकही बार माँगना कहा और विस्तर से लगने का नियेव किया उस विस्तर शब्दके अग्रोक्त इतने अर्थ होते हैं इन सबही का नियेव भी समझना कि प्रथम तो विस्तर बिछौना आसन पीढा मोटाआदि का नाम है तिनपर न बैठे सिर्फ खड़े हुये माँगै. और विस्तर नाम है वाक्यसमूह का तिसका भी प्रतिषेध है कि बहुतसी बातों के विस्तरमें न लगै सिर्फ भिक्षाही माँगै. और विस्तर नाम है शब्दों के समूह का तिसका भी नियेव जानो कि भिक्षा माँगनेका शब्द मुखसेवारंवार न काटे सिर्फ एकही बार माँगि चुपका होजाय. और विस्तर नाम है आवाज का अर्थात् धरती चत्रतरा जिसपर आदमी बैठ सकेँ तिसपर भी यतीको न बैठना चाहिये (इन्हीं सब अर्थोंसे यह तर्क पैदा होती है कि आसन पीढा मोटा और धरती पर बैठने का नियेव किया तो फिर बड़ी देरतक चुपकेखड़ा रहना पाया गया सोभी नहीं क्योंकि विस्तर विस्तार बड़ी देर का भी नाम है तिसमें भी न सज्जे अर्थात् भिक्षा माँगनेका शब्द मुखसे एकबार कहिकार चलेजाने मध्ये देरीभी न करे किंतु

श्रीधर चलाजाय (इससे भी यह तर्क पैदा होती है कि जब इसतरह के नियेष ढहरे तो फिर हाथखाली आदि अवकाशोंको न देखिके तत्काल चलाजाय पर लौटिके दुबारा तिवारा फेराकरै-सो भी नहीं क्योंकि (एककालंचरेद्विसां सकहोकाकाल भिक्षा मांगै इस नियमसे दुबारा आदि फेराकरनेका नियेष सबसे पहिले काहिकेऔर इसी लिये दूसरे अहासे मनुने यह कहाहै (भैश्यप्रसक्तौहिर्यातिवियेषेव्यपिसज्जति) कि यती पुरुष भिक्षाके मध्ये बहुत लालसा बढ़ाने से संसारी विययों में रचता और फँसताहै जिससे योगभय होजाना दुर्घट नहींहै ॥ योगीश्वर ने मूलप्रलोक में अनभि लक्षित होके सांगना कहाहै कि भिक्षा के लिये कोईसा विद्याका लक्षणा अपने साथ न राखै तिसके मध्ये मनुने स्पष्ट व्यौरा दर्शाया है—यथा—नचोत्पातनिमित्ताभ्यांन नसवांगविद्यया नानुशासनवादाभ्यांभिद्व्यालिभतेतर्हिचित्त=अर्थात्—यतीपुरुष कभी भी भविष्य उत्पातोंकी उत्पत्ति और फलोंकी सुनाइ के भिक्षापर लालसा न राखै-एवं कभी भी शुभा शुभ प्रकृतिरूपी उत्पन्न हुये निमित्तों के फल काहिकर या सगुनीती आदि प्रसन्नफल काहिकर भिक्षा न चाहै-एवं किसीप्रकारके समुद्रिक आदि हाथके लक्षणा काहिकर या कोईसी आज्ञारूपी अनुशासनकी बात देकर भिक्षा न मांगै-एवंकिसी वाद विवादका तत्त्व निश्चरिण करिके भिक्षा न मांगै-न ज्योतिषकी विद्याका बर्तावा करिके (इसका यह तात्पर्य नहींहै कि इनसे उपरालू बैद्यकआदि विद्याओं से सांगना दोष न होगा किन्तु सिद्धांत इसका यहीहै कि जिन विद्याओं के नाम यहाँ नहींकहे तिनसे भी न मांगै क्योंकि संन्यासीको विद्याओंका त्यागकर देना पहिले काहिके तिसका यही प्रयोजन है जो यहाँ आकर दृढ किया गया= सायंकाल सांगनेका प्रसंग बर्तमानहै तिसकेमध्ये एक जुदाप्रकार भी देखनेमें आता है=तदाहवशिष्टः=ब्राह्मणाकुलेवायल्लभेत तदभुंजीत सायंप्रातर्भासवज्यम् (तदशक विययसिति मिताक्षरा=अर्थात्—वशिष्ट ने जो कहा है कि सांभ या सवेरेही जब कभी किसी ब्राह्मणाके घरमें जो कुछ मिलिजाय या विकल्पसे औरही किसी द्विजातीके घरमें जो कुछ मिलिजाय सोई भोग में लगावै परन्तु सांसको छोडिके यह नियम जानना अर्थात् किसी ऐसे देशके निवासी ब्राह्मणाआदि द्विजाती होंयं जिनके सांस खायाजाता हो वही लाकर भिक्षामें समर्पणा करै तो संन्यासीको न खाना चाहिये—इस बचन में सांभ या सवेरेका जो विकल्प कहा सो सवेरा कहिने से दोषहर के पहिलेका समय निश्चितभया (इसपर मिताक्षराकारकहिते है कि यह दुपहरसे पहिले भिक्षा भोगलगानेका चर्चा सिर्फ उसकोलिये जानना जो रोरो आदि

होनेसे अशक्तहोय जिसपर सबेरे खाइलने विना संभक्तक न टहिराजाय पान्च दो-
नोंवार खानेका नियम इसमें नहींहै—भिक्षुकों से खाली गांवमें भिक्षा मांगने जाय
यह मूलप्रलोक में योगीश्वरने कहा—इसका यह तात्पर्य है कि पाखराडी आदि न-
कली भिक्षुक जहां बहुतहोयें तहां देनेवालोंको अग्रवा होजातीहै तब सबे स्वल्पमें
भी यद्वा नहीं करते हैं—इसी वार्तापर मनुने कुछ और भी विशेष नियम किया हैं—
तथाच=नतापसेवाह्यरात्रिविधोभिरपवाच्यभिः आकीर्णभिक्षुकैरन्येणामुपसन्नजैव=
अर्थात्—ग्रामती बहुत बड़ाहोनेसे उसकी दशा अचानक नहीं भी मालूम होसक्तीहै
तिससे एकदोला मुहल्ला आदि शुद्ध समभै वलिक मनुने इस वचन से सकानहीका
शुद्धभाव देखवा कहाहै कि भिक्षालेनेको ऐसे घरने न जावै जो तपसी या संगिता
ब्राह्मणोंने गसा हो या काक आदि बहुत पक्षियों से भराहोय या जवानपट्टे लुंगाड़े
आदिमियों से डटाहो या कुत्तोंसे रुकाहो याऔरही किसीप्रकार के भिखारियों से
घिराहोय ॥ मूल प्रलोकमें यह भी कहिचुके हैं कि उतनाही मांगै जिससे प्राणाकी
रक्षा होसके उससे अतिवक्त न मांगै तिसका परिमारा भी संवर्तने दर्शाया है=यथा=
अथोभिक्षाःसमावायमुनिःसप्तचपंचवा अङ्गिःप्रक्षालिताःसर्वोस्ततोऽथीयाच्चवारयतः=
अर्थात्—भिक्षाके प्रयोजनवाला एकही शब्द मुखसे निकालनेके उपरालु मुनि बना
हुआ अर्थात् (मौन) चुपसाधे हुये आठ घरसे भिक्षा या सात घरसे लेकर या बहुत
मैली दोखें ती पांचही घरसेलेकर सबको जलोंसे धोकर तिमपीठे वारागीकी जीति
के भोजनकरै(वारागीका जीतना यहां यहीहै कि मोटे भोटैअन्नकीनिवा कुछ न करै
महाप्रसाद समभक्त के भोगै—इसीलिये मूलप्रलोक में कहिचुके हैं कि जीभकी लोलु-
पता छोडिकर खट्टी सीटी आदि न मांगै)कैसा पावलजाकर भिक्षानांगै सो अगिले
मूलप्रलोक में देखो ॥ ५६ ॥

(यतेःप्रात्राणि)

यत्तिप्रात्राणिमृदेणुदार्वलानुमयानिच । सलिलंशुद्धिरितेपागोवालैश्रावणपक्षाम् ६० ॥

अर्थ—यतीके पात्रहोयें मडी या ब्रांस या काठ या तोमड़ीके बनेहुये—इनबास-
नोंका शुद्धकरना जलसे और गायके बालों से रगडना भी होताहै ॥ ६० ॥

६० अधिकोक्तिः—मितासराकार कहैहै कि यह शुद्धि का प्रकार सिर्फभिक्षा
के प्रयोग मध्ये उसका एक अंग समभक्तों कहा गया कि भिक्षा के जिनपाशों में प-
वित्र लेपजो भिक्षाके अन्नादि का होजाय तिसको इसी प्रकारसे शोधै अन्यथा इससे
उपरालु किसी प्रकारसे यदि वही पात्र बिगडैती फिर इस रीतिको छोडिके आघार

सर्वादा परिपारी में द्रव्य शुद्धि प्रकरणा के द्वारा उसके शोषन की रीति देखनी चाहिये—इसी आशय के अनुसार अगला वचन है सो देखो=यदाह मनुः=अतैजसा निपात्राशातस्यस्युर्निर्व्रणानिच तेद्यासिद्धिःस्मृतंशौचं चमसानामिवाध्वरे (चमसदृष्टांतो पादानेनप्रयोगिकीशुद्धिर्दर्शिता इतिमितासरा=अर्थात्—उस यतीके पात्रहोय अतैजस धातुओंसे उपरालू काठ आदि के परंतु निर्व्रणा होयं जिनमें छेद गर्डहिला आदि कुछ न होय जिसमें मैल भरै किंतु साफ्चिकने घुटे होयं तिनका शौच करना सिर्फ जलसे कि जैसे यज्ञों में चमसनामी पात्रों की चिकनाई गरम जल से या टंडेभी जल से दूरकरते हैं (इसमें यज्ञसंबंधी चमस पात्रोंका दृष्टांत स्वीकारहोने से प्रयोगवती शुद्धि दर्शाई गई यह मितासराके प्रकाश किया=मितासराकार फिर कहतेहैं कि जिसके पास दूसरापात्र न होय सो भोजनभी उसी पात्रमें करै यहतात्पर्य देवलके वचनसे प्रतीत होताहै=यदाह देवलः=तद्वैश्यंगृहीस्वै कांतितेनपात्रेणान्येनवातुष्णीं सावयामुं जीत=अर्थात्—उसभिक्षाको लेकर सकांतमें उठी पात्रसे या और पात्रसे भोगै सोन सावित्री और नियम किये हुये अपने पेटके अनुमान भरि भोगै अधिकनहीं (इस वचन में और किसी पात्र के कथन से दूसरा पात्र भी सिद्ध होता है इसीसे मितासराकारनेभी यह कहा कि जिसकेपास दूसरा न होय परंतु दूसरा पात्र पास राखने वाला कोई वचन ऐसा नहीं पाया जिससे दोपात्रों की आज्ञा समझी जाय और पहिले जहाँ संन्यास लेनेका प्रारंभ किया तहाँ केवल कर्मंडलका साथ होना कहा था सो जलका पात्र है यहाँ जो भिक्षा सौंपने के पात्र कहे तिनमें दूसरे पात्रका प्रयोग नभी कुछ नहींहै तिससे यहाँ देवलके वचन में अन्यपात्रके शब्दसे ढाकपत्र आदि समझे जातेहैं कि जिससे भिक्षा सौंपनेका पात्र भोजन कर्मसे जुटा न करनापरै परंतु जिनपर ढांक पत्र आदि नहों वह उसी भिक्षा पात्र मेंभोजन करै यह सिद्धांत ठहरा ॥ यहाँ तक संन्यासी का डौल मात्र कहा गया ऐसे संन्यासी को उपासना नख्ये जैसा नियम करना चाहिये सो अगले परिच्छेद से देखना ॥

(अथसंन्यास प्रसंगादेव अध्यात्म प्रकरणं सविस्तरं प्रारभ्यते)

इस प्रकारता में त्रयोदश १३ परिच्छेद होंगे यह याद रखो ॥

अथसंन्यासाग्रमारूढस्य हृदिज्ञानोत्पत्तिसाधनाय त

त्कारणसमूहप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः(९) नवमः ॥

इस परिच्छेदमें ज्ञान के उत्पन्न करने कराने वालों सब कारणों का समूह दर्शाया जायगा जिनको समझनेसे संन्यासी के हृदयमें ज्ञानकी उत्पत्ति होय क्योंकि ज्ञान के उत्पन्न हुये बिना यह आश्रम नहीं चलता किंतु ज्ञानही इसका मूल है ॥

(यतेर्नियमाः)

संनिरुद्धेन्द्रिययामंरागद्वेषोप्रहायच । भयंहित्वाहिभूतानाममृतीभवतिद्विजः ६१ ॥

अर्थः—इन्द्रियोंके भ्रुणडको रोकिके रागद्वेष दोनोंको छोड़िके भूतोंका भय त्यागिके द्विज पुरुष अमृती होताहै—अर्थात्—द्विज कहनेसे विशेष प्रधानता से ब्राह्मण और विरले उत्तम वैवर्णिक भी समझने कि जिन्होंने संन्यास लिया होय ऐसा पुरुष उस दशामें अमृती अर्थात् मोक्षपानेका अधिकारी होताहै कि जब नेत्र कान आदि सब इन्द्रियोंके समूहको उनके रूपशब्द आदि विषयोंसे (संनिरुद्ध) स्वयच्छे रोकिवचाइके और रागाजिसका विषयभोग प्रियवस्तु की चाहना और प्राप्तिहोतीहै तथा द्वेष जिसका विषयभोग अप्रियका निरादर या दूषिकरना होता है इन दोनोंको अत्यंत त्यागिके और चकारके ध्वन्यर्थ से इष्ट्यां आदि बांयोंको भी त्यागिके भूतजे संसारी जीवहैं तिनसे अपने अपकारकाडर छोड़िके दुखपानेका भय छोड़िके अन्तःकरणा को निष्कपट भावसे अति शुद्ध करै जिससे अर्द्धत आत्म स्वरूप उसको साक्षात्कार प्रतीत होनेलगे तब उस यती पुरुष को मोक्षफल मिलता है ॥ ६१ ॥ किस प्रकार अंतः करणा शुद्धहोय सो कहते है ॥

(अन्तःकरणशुद्धिरेवादीकर्तव्या)

कर्तव्याशपशुद्विस्तुभिक्षुकेषाविशेषतः । ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्सातंत्र्यकरणायच ६२

अर्थः—आश्रय (अंतःकरणा) की शुद्धि ही ज्ञानोत्पत्ति का निमित्त है तिससे

विशेषकर भिक्षुक यती करके स्वातंत्र्य करने के लिये भी करनी चाहिये—अर्थात्—
वियय भोगोंकी अभिलाषा और अप्रिय विययोंका द्वेषभाव इन दोनोंसे उपजे दायों
करके कलंकित जो आशय नाम अंतःकरणा चतुष्टय अर्थात् मनबुद्धि अहंकार चित्त
इन चारोंमें घुसेहुये पाप कलंकों का क्षयकरना आशय की शुद्धि कहिलाती है सो
प्राणायामों के अभ्यास से भिक्षुकको अवश्य करनी चाहिये अपने आत्माके स्वतंत्र
होजानेके लिये. क्योंकि साक्षात् अद्वैत आत्मा का स्वरूपज्ञान उत्पन्न होनेके लिये
दंतः करणाकी शुद्धिहीना बहुत बड़ा कारण है ॥ ६२ ॥

६२ अधिकोक्तिः—ऊपर लिखी वार्त्ता से यह सिद्धांत निकला कि धिययों में
मनका राग लजाना एक प्रतिबंध बड़ी रुकावट है तिसके सिद्धिजाने और तिससे उपजे
हुये दोयरूपी प्रतिबन्ध के सिद्धिजाने में आत्माका ध्यान धारणा आदि साधन करने
को स्वतंत्रता प्राप्त होतीहै यद्यपि यह सबके लिये उपकारी है तथापि भिक्षुक यती
को विशेषकर ऐसी शुद्धिका अनुष्ठान करना चाहिये क्योंकि सोक्षके अधिकारियों
में सबसे बड़ा प्रधान वहीहै और सोक्ष जो पदार्थहै सो अन्तः करणाके शुद्धहुये बिना
अन्य उपायों से मिलना बड़ा दुर्घटहै—यथाहमनुः—दह्यंतेध्मायमानानां धातूनां हियया
मलाः तथेन्द्रियारणां दह्यंते वयोः प्राणास्यनिग्रहात् = अर्थात्—प्राणा वायुका निग्रह
प्राणायाम तिसको धारणासे इन्द्रियों के दोय उस तरह जलितजाते हैं कि जैसे लोहा
आदि धातुओं के घमाते हुये उनके मैल भस्म होजाते हैं—तिससे अधिकतर प्राणा-
यामोंकी धारणासाधन क्रियाकरै जिसका संक्षेप डौल १११ एक सौ ग्यारह मूल
श्लोकमें और विस्तार १६८ एक सौ अट्ठानवे मूल श्लोकसे दर्शाया जायगा तहाँ
तहाँ देखिलेना ॥ ६२ ॥

इन्द्रियोंके निरोधका उपाय करना चाहिके संसारके स्वरूपको विचारै सो आगे
कहि के समुभातेहैं ॥ ६२ ॥

(संसारस्थानियस्वरूपत्वबंधयेयम्)

अवेद्यागर्भवासादचकर्मजागतयस्तया । आधयोत्पाधयःक्लेशाजरारूपविपर्ययः ६३

भवोजातितहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः । ध्यानयोगेनसंप्रयेत्सूक्ष्मभात्मात्मनिस्थित-६४

अर्थः—गर्भ के वास देखने चाहिये तथा कर्मों से उत्पन्न रातियों भी आवियाँ
और व्यावियाँ और क्लेशों के भेद और जरा बुढ़ापा से छपोंके विपर्यय (६३)
सहस्रों जाति में जन्म और प्रिय अप्रिय का उलटापन यह सब देखि शौचिकी मष्टम
आत्माको आत्मा में स्थितहुआ ध्यान के योगही से अच्छीतरह देखै = अर्थात्—

मन में वैराग्य पैदा करने के लिये नानाभौति गर्भों के निवास जो मूत्र और विद्या आदि अनेक सद्भाव के बीच करने परते हे शोचने चाहिये (यहाँ चकारके ध्वन्यर्थ से जनन और मरणा भी जैसे कष्टों से भोगने होते हे विचारने चाहिये) तथा नियम आचरणा आदि कर्मोंके फलसे उत्पन्न जो महा रोग आदि नरकों में गिरना रूपी (गतियाँ) चालें भोगनी होती हैं शोचनी चाहिये तथा मनमें जो नानाभौति की पीडा और चिंतारूपी आघे उत्पन्नहुआ करती हैं शोचनी चाहिये तथा शरीरों में ड्वरातिसार आदि बहुधारागर्भदोसे व्याधे लगी रहतीहैं शोचना चाहिये तथा क्लेश भी पाँच प्रकार के सदा लगे रहतेहैं (अविद्या अस्मिता रागद्वेषा भिन्निवेशःपंचक्लेशाः)अर्थात्सबसे पहिला क्लेश अविद्याअज्ञानहे जिसका स्वरूप लक्षणा अधिकोक्ति में देखना-दूसराक्लेश अस्मिता अहंता ममता रूपी मोह कहाताहे तीसराक्लेश राग हे जो रगवत् या प्रीति या अनुराग भी कहाता हे चौथा क्लेश द्वेषहे जो रागसे विपरित होताहे कि अप्रिय चीजोंको न चाहे पाँचवां क्लेश अभिनिवेश हे जो प्रायः स्त्री या बालक या अपराधितमें रहिताहे इसकास्वरूप अधिकोक्तिमें देखना इन पाँचों से सर्वदाक्लेशहीउत्पन्नहोतेरहितेहैंतिससेइनकानामही क्लेशधरागया शोचनेचाहिये तथा जरानाम है बुढापेका वह सबको आनि घेरतीहे जिससे खालपर्क जाती और ढीली होजाती और खाल मे सलबट किन्तु बलभी पडजाते हैं और उभी जरके सबब से मनुष्यों के रूपमें भी विपर्यय अर्थात् उलटापन कुक्षपता कुबडापन आदि होजाता हे विचारना चाहिये (६३) तैसेही यह शोचना चाहिये कि घोडा गदहा शूकर सर्प आदि नानाभौति की योनियों में जन्म लेना होता है जहां उन्हीं देहां के धर्मरूपी दुःख भोगनेपरतेहैं तैसे यहभी शोचै कि जोबस्तु प्रियहोतीहे सो नहीं हाय लगती जो अप्रिय होतीहे वही कर्मोंके वेगसे भोगनीपरतीहे तिससे प्रियअप्रियका उलटापन भी सदा दुःखदायी देखि परताहे अर्थात् सारासंसारही दुःखोंका रूपहै यहसब अच्छीतरह शोचि विचारि के दुःखों के मलरूपी संसार को त्यागने के अर्थ से आत्मज्ञान प्राप्त होनेका उपाय जो इन्द्रियों का जीतना हे तिसही में प्रवृत्त होवै (तहाँ क्या करना चाहिये सो कहितेहैं कि) अपने चित्तरूपी आत्मा की रकाग्रता ध्यान कहाती है और उभी चित्त की अनेक बाहरली वृत्तियों का निषेध नाम रोकना किन्तु खींचि के उसीमें मिलायलेना अर्थात् बाहरले विययोंपर नहीं पहुँचनेदेवै यही योगहे तहाँ ध्यान और योग इन दोनों के अर्थ से जो कुछ रूपक सिद्धभया हे उभी ध्यानयोगसे अच्छीतरह देखै क्या देखै सूक्ष्मरूपी आत्मा जो अपने सूदन शरीरगत अत करणा में

उपस्थित है वही परब्रह्मरूपी परमात्मा के बीचमें संस्थित हो रहा है यह देखें अर्थात् सर्वत्र सर्वजीवोंमें ऐसाही प्रतीत करनेलगे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

६३ अर्थोक्तिः—ऊपरकी वार्त्ता में यह युक्ति भी प्रमारा देती है कि (आत्मा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः—अवद्रष्टव्य इति साक्षात्काररूपदर्शनमनुद्य तत्मावनस्त्रेण श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य इति श्रवण मनन निदिध्यासनानि विहितानीति मिताक्षराच) अर्थात्—आत्मा जो साक्षात्कार ब्रह्मका स्वरूप है वह देखना चाहिये सुनना चाहिये मानना और मनन करना चाहिये निदिध्यासित करना अर्थात् ध्यानयोग में लगाना चाहिये यह श्रुति ने समझाया—इसपर मिताक्षराकार भी यह कहते हैं कि साक्षात्कार देखना बहुत कठिन है तिससे उसीके निमित्त में ये तीन उपाय श्रुति ने दर्शाये हैं कि १ आत्मा के व्याख्यान श्रवण करै २ मनन करै ३ निदिध्यासन अर्थात् ध्यानयोग में धारणा करै—परन्तु—यहाँ पर ध्यानयोग कहनेसे प्रारायात्मों को धारणा मत समझो बल्कि जिसध्यान योगका चर्चायहाँ किया गया तिसका अर्थ उसके स्वरूप से निदिध्यासन जानना निदिध्यासन के दो तीनक अर्थ होते हैं एक तो अपरायत्त बोध जो केवल अपने ज्ञानही के अवीन बोध होय सो निदिध्यासन कहाताहै (अपरायत्तबोधोहि निदिध्यासनमुच्यते) दूसरे एक प्रकार के ध्यानरूपी विचारको निदिध्यासन कहते हैं जो श्रवण और मनन दोनों के फलसे आत्मज्ञानका चिन्तन करते समय ध्यान लगायाजाताहै (ताभ्यानिर्विचिकित्स्थैर्द्विचिन्तयस्यापितस्ययत् एकतानत्वमेतद्विनिदिध्यासनमुच्यते) इसीलक्षणा का यह भी तात्पर्य है कि आत्मा संबन्धी जो कुछ व्याख्यान शुरु के मुख से पढ़िले सुनाहोय वही श्रवण कहाता है फिर सुनेहुये को अच्छी तरह मान्यतासे समझ के विचार रहित प्रमारा मानिकार स्वीकार कियाहोय वही मनन होताहै फिर उमीको एकाग्र चित्त से निरंतर ध्यान लगाये मत्प्रभात्र से धारणा बनीरखै यही निदिध्यासन कहाजाता है (निरंतरविचारोद्युतार्थस्यश्रोतुंस्वात् तन्निदिध्यासनंप्रोक्तं चैकाग्र्येणालभ्यते) यद्यपि निदिध्यासन के दो तीनक लक्षणा जुदे करिके सम भाये गये तौभी सिद्धान्त से तात्पर्य मव का एक है जुदाई कुछ नहीं है—अव—योगोचरका मूल श्लोक देखो (ध्यानयोगेनमंपश्येत्) निदिध्यासनरूपी ध्यानके योग से संभ्रक्त देखे क्या देखे भीतरला सुदस शरीर और प्राण आदि इनसे जुदा जो सूक्ष्म रूप आत्मा है स्पष्ट कहाता है सो आत्मा में अर्थात् ब्रह्मही में टिका हुआ देता है यह देखे इस प्रकार मे तव और त्वम वह और तू इन दोनों पदार्थों का अर्थात्

परमात्मा और आत्मा का अभेद अपने हृदय में सन्मुख प्रत्यक्ष देखने लगे कि इसमें और उसमें भेद नहीं है ॥ ० ॥ क्षेत्रज्ञ आत्माका नाम क्षेत्रज्ञ और आत्माभी उसपुरुष का नाम है जो शरीर को उसके कामोंमें प्रवृत्त करवाता रहा करता और इसीसे शरीर का अविद्याता देवता भी कहाता है (योऽस्थ्यात्मनः कारयिता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते इतिमनुः) क्षेत्र नाम है शरीर का शरीरों की दशा को पहिचाने तिससे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है—यथा—क्षेत्रात्प्रानिशरीराणि तेषांचैवप्रथासुखम् आत्मानवेत्तिसंयोगादतः क्षेत्रज्ञउच्यते—अर्थात् —क्षेत्रनाम के शरीरहैं तिनकी जैसी कुछ सुख दुख आदि व्यवस्था होती है सो सब जीवात्मा भीतर बैठा हुआ जानता है तर्थात् अपने शरीर के संयोग से ब्रह्मरूप आत्माको भी जानता है इसी जाननेके हेतुसे क्षेत्रज्ञ उसका नाम है(इसकी विशेषपहिचानि आगे १४६ एकसौ उनचास आदि मूल श्लोकों से देखना ॥ ० ॥ ऊपर मूल श्लोकों अर्थों में पंच क्त शौके नाम जहाँ लिखे गये उनमें पहिला क्तेश अविद्या कहा गयाथा तिसका स्वरूप लक्षणा यहां समझो कि विद्यारूपी ज्ञान से विरुद्ध विपरीत होय वही अविद्या कहलाती है जिस अविद्या के होने में परमानन्द का स्वरूप नहीं पहिचाना जासक्ता है (क्योंकि उसअविद्या की प्रवृत्तता मलिन सत्व में रहतीहै) उससे मिथ्या और उलटा ज्ञान उत्पन्नहोता रहता है तिससे अज्ञान रूपी भ्रांति जो वस्तुहै वही उसका स्वरूप जानो इसी लिये यह सबसे पहिला क्तेश कहाती है ॥ ० ॥ उन्हीं पंचकत्त शौ में सबसे पिछला पाँचवाँ क्तेश अभिनिवेश कहागयाथा उसका यह लक्षणाहै कि यद्यपि शरीर और इन्द्रियोंआदि नाशमानहैं सबकोई जानताहै तिसपर आयुभी पूर्णहोचुकी चाहें अति बूढा शिथिल शरीर होय तौभी इसप्रकारका अभिनिवेश बनारहताहै कि अभी न मरना परै या मैं अभी नहीं मरसक्ताहूँ या यह मेरा अति ध्यारा पुस्त्य जो निपट मराऊवराहै यदि अमुक वैद्यआदि इस वेरापर आसके तौ यह बचिरहनेसक्ताहै इत्यादि नानाभांतिके अभिनिवेश केवल बालकों की बुद्धि में और छिप्यों को समझ में और उस पुरुष के अज्ञान में भी रहतेहैं जो विद्या से विहीन कोरा मूर्ख जडबुद्धि पुरुष होय ॥६३॥६४ ॥

(साधनायां विशेषः)

नाश्रम कारणंपर्मांक्रियमाणोभवेद्विसः । अतोपदात्मनोऽप्यपरेपांनतदाचरेत् ६५ ॥

सत्यमस्तेषमक्रोपोद्गी शौचंधर्माधृतिर्वमः । सपतेन्द्रियताविद्याधर्मसर्वउदाहृत ६६ ॥

अर्थः—धर्ममें आश्रम नहीं कारणा है बह करनेहीसे होता है इससे जो अपने को अपत्य होय सो पर जनों के लिये न आचरे—६५—सत्यः अस्तेयः अक्रोवः द्गीः शौचः

धीः वृत्तिः दमः संयतेन्द्रियताः विद्याः यह सब धर्म कहा है—६६=अर्थात्—संन्यास आश्रम के चिह्न जो दंड कमंडल आदि कतिचुके वे चिह्नही उसके धर्मका विशेषकारण कुछ नहीं है क्योंकि ये चिह्न तो करनेमें सुगमता से धारणा होसकते हैं कुछ कठिनता इनमें नहीं है (अर्थात् उन चिह्नों के होतेहुये बीच में इस आश्रम के धर्मका स्वरूप अपने सूक्ष्म रूपसे दूसराहै सो कहते हैं कि) इसकारण से यह चाहिये कि अपनेको जो जो बार्ते अपथ्य प्रतीत होतीहों दृष्टांत जैसे किसीने खोटा वचन सुनाया सो अपने हृदय में वियके तुल्य जाकर लगता है यह अपथ्य वहरा इसी प्रकार औरभी अनेक बार्ते समझ लेनी सो सब औरों के साथ न करे वरिक्त और जो कोई अपने साथ कुछ खोटाही आचरणा करे सो सब सहिलिया करे तब इस आश्रम का धर्म ठीक होता है तिसके नियम आगे देखौ ॥ ६५ ॥ सत्य बोलै पर सेवा सत्य न बोलै जिस से किसी के हृदयको दुःख वा उद्वेग पैदा होताहो अस्त्येय पराया द्रव्य न हरनेका नियमराखै क्रोध को अपने स्वभावही से निकामिडारै कि जो कोई अपकारकरै तिसपरभी क्रोध न लावै हीः लज्जा को अपने स्वभाव में बनीराखै किंतु संन्यास के नियमों से विपरित आचरणा करिके निर्लज्ज न बने शौच अपने शरीर और आहारकीभीशुद्धिपर ध्यान राखै धीः बुद्धि अर्थात् हित अहित दोनों के विचार में बुद्धि को लगी राखै घृते धीरज ऐसे समय पर चाहिये कि जब अपनी चहीती वस्तु से वियोग होय या अप्रिय से संयोग होजाय तभी चित्त विचल होता है तिसको विवेक से समभाय के ठिकाने करै कि जैसा पहिले सावधान होरहाया तैसा होजाय दम अर्थात् मदका त्यागदेना दम कहाताहै इसकीभी साधनाकरै संयतेन्द्रियता अर्थात् संन्यक प्रकार से इंद्रियों का यत्न वशमें राखना यहांतक कि जिन विययोंकी तुच्छता से नाम लेकर प्रतिषेध उनका नहीं किया गयाहो तिनमेंभी प्रवृत्त न होना चाहिये विद्या अर्थात् अध्यात्म विद्याका अभ्यास करै (अविद्याको निज बुद्धिमें न घुसने देवै) त्रिससे आत्मज्ञान प्राप्त होताहै इन्हीं सब नियमों की साधना से संन्यास आश्रम का पूरा धर्म सिद्ध होता है ॥ ६६ ॥

६५ अधिकीर्तिः—ऊपर की व्यवस्था से योगीश्वर ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि दंड कमंडल आदि ऊपरके चिह्न जो सबलोग देखि सकते हैं तिनके होते हुये भीतर भी अन्तःकरणमें सत्य बोलना आदि इतने शराहोने चाहिये कि जिनके होनेविना केवल ऊपरले चिह्नों से संन्यास नहीं सिद्ध होताहै परंतु (नाश्रमः कारणां) भूलमे इस पदका यह तात्पर्य नहीं है कि दंड कमंडल आदि चिह्नों को न धारणा करै

क्योंकि धारणा करने का विधान सबसे पहिलेही आदेश हो चुका है। इसका प्रमारा अगिला वचन है—यथाहमनुः=भूयितोऽपि चरेद्वर्मयत्तथा यमेवमनु मनःसर्वेषु भूतेषु नलिं राधर्मकारणान्=अर्थात्—दंड कमराडल आदि सब चिह्नों से सजा हुआ भी जहाँ तहाँ टिकानों पर टिकते हुये अन्तरोय गुराहूपी धर्मको आचरै परंच सभी प्राणी मात्रमें मनको वृत्ति एकसी समान बनीराखै किंतु इसके विना सिर्फ दिखावे का चिह्नरूपी लिंगही संन्यास का धर्म कारणा कुछ नहीं है ॥ ६५।६६ ॥

अध्यात्म विद्या ब्रह्मविद्या जो वेदांत विद्याभी कहारती है जिसको छहासठिके ६६ मूलश्लोक में विद्या इसी शब्द से दर्शाय चुके हैं कि संन्यासी को उसका अभ्यास करना बहुत आवश्यक है उसको विना जाने संन्यास का आयम नहीं चलता है—तिससे अगिले मूल श्लोकसे उसविद्याका प्रारम्भ करतेहैं विस्तार उसका अनेक परिच्छेदोंसे जाकर पूरा होगा क्योंकि उसका स्वरूप ज्ञान होने के प्रकार भेदभी अनेकहै ॥

(परमात्मनः सकाशात् जीवात्मानः प्रभवन्ति)

निःसरन्ति यथा लोहपिण्डात्सत्फुल्लिङ्गकाः । सकाशादात्मनस्तददात्मानः प्रभवन्ति हि ६७ ॥

अर्थः—जैसे तपाये लोह पिण्डसे फुलिगा निसरते हैं तद्वत् आत्माके सकाशसे आत्मानः उत्पन्न होतेहैं निश्चय जानौ=अर्थात्—यद्यपि परम अर्थ के विचारसे जीव और परमात्मा में कुछ नहीं है तौभी अधिद्याकी उपाधि रूपी भेदसे भिन्नता पाइकर परमात्मा के स्वरूप से असंख्य जीवात्मा पैदा होतेहैं तिससे जीव और परमात्मा में कुछ भेद का वहानामात्र कहाजाता है—इसका यह दृष्टांत है कि जैसे तपायेहुये लोहे के पिण्ड गोले आदि को हथौडाकी धमक आदि पहुँचनेसे सहस्रों फुल्लिगे चिदकारे भ्रूकरते हैं तैसे ही उसीसमान परमात्मारूपी लोहापिण्डसे असंख्य जीवात्माकभी भ्रूडतेहैं—तहाँ जैसेलोहके गोलेमें अग्नि और धौंकनी हथौडाआदि संसारीमाया की उपाधि पहुँचनेसे उसका तेजरूपी सूक्ष्म अंगहोकर फुल्लिगे भ्रूडतेहैं तैसेही परमात्मा रूपी ब्रह्मके गोले में अविद्या रूपी माया से त्रिगुणात्मक उपाधिकी धमक पहुँचने से उसी ब्रह्मके अति छोटे छोटे अंग उससे जुदे होकर उडने लगते हैं ॥ ६७ ॥

६७अधिकोक्तिः—यद्यपि लोहके फुल्लिगे लोहेका अंग होनेके हेतुसे लोहा कहे जासक्त हैं और उसीतरह ब्रह्मका छोटाअंग होने के हेतुसे वेभी ब्रह्म कहे जासक्त हैं परंतु मुख्यरूपसे जुदेहो जानेके हेतुसे लांहेके अंग फुल्लिगे कहे जाते हैं तैसेही परमात्मा के स्वरूपसे जुदे होजाकर उसके छोटे अंगजीवात्मा कहेजाते हैं ॥ यहवार्ता उसवात

परदर्शादिगर्भे कि जैसा ६४ चौंसठि मूलश्लोक उत्तरार्द्ध में कहि चुके हैं कि (ध्यान के योगसे अपनेजीवात्माको परमात्मामें बैठादेखै) सो इसकथनसे दोनोंमें भेदका नहोना यद्यपि दर्शाया गया तौभी वहाने सात्रका भेद सिद्धहोता है क्योंकि जो निपट भेदही न होता तौफिर अभेद किसका सिद्धकियाजाता जब कि भेदकुछ थोड़ा बहुत प्रतीत होता सौजुद है तब उसीका अभेदभी समझाना परा तिससे भेद मानना भी यद्यपि अनर्थक नहीं है तथापि संन्यास धर्मपर आरूढ योगीजनोंको अभेदहीकीउपासना करनीयोग्यहै यह तात्पर्यदर्शिरा—अर्थात् योगीजनको चौंसठिमूलश्लोकपर यहशंका न करनी चाहिये कि (आत्मामें जीवात्माको बैठादेखै इससे आपही वो वस्तु देखि परती है कि एकमें दूसरे को बैठादेखै) किंतु शंका दूरकरने को यह ६७ सरसदिमूल श्लोक देखै कि एकही वस्तुके दो भेद होगये सो उसको उसीमें मिलाय देनेसे भेद नहीं रहिसक्ताहै ॥ इसी सरसदिके मूलश्लोकपर दूसरे प्रकारसे भी अर्थ कियाजाता है कि—योगीजन कदाचित्त यह शंका करनेलगे कि. सुयुक्ति और प्रलय इन दोनोंके समयपर सभी जीवात्मा जो क्षेत्रज्ञ भी कहाते सो ब्रह्मही में प्रलीन (लय) होजाते हैं तिससे आपही कुछ भेद नहीं रहिता तौ फिर यह चौंसठि मूलश्लोकमें किसके लिये आत्माकी उपासना विधि कहीगई—यह शंका दूरकरनेको समाधान रूपी सरसदि का प्रलोक है कि—हाँ—अर्थात् प्रलयके समयपर सूक्ष्मरूप से सबजीव उसी ब्रह्म में लयहोतेहैं तथापि उसी ब्रह्मके सकाशसे अविद्याकी उपाधि रूपी भेदसे जुदाई पाइ के अति सूक्ष्म रूपी असंख्य जीवात्मा फिर दुबारा पैदाहोते हैं कि जब जब कभी दूसरी सृष्टि रची जानेका समय उपस्थित होताहो- तिस्र पीछे वे सब जीवात्मा कभी निज निज कर्मों के बशीभूत होके स्थूल शरीराभिमानी आकर होतेहैं अर्थात् निज कर्मोंकी प्रेरणा से इह संसार बिनाशमान में आकर स्थूल कलेवर पाते हैं कि जैसा देह सबके देखने में आताहै (किन्तु जबतक मुह्न देह रहिता है तबतक जीवात्माका स्वरूप कोई नहीं देखिपाता है—तिससे—चौंसठि मूलश्लोकमें कहीगई उपासना की विधिसे कुछ विरोध भी नहींहै क्योंकि जो उस ब्रह्मसे जुदेहोकर संसारमें स्थूलकले-वर के अभिमानी बने तिनको उसकी जुदाईसे उसीकी उपासनाका अविकारदर्शिरा कि जिससे फिरभी व भी उसमें जाकरमिलें—यहाँ—लोहपिण्डका दृष्टांत इससे दिया गया कि सोना आदि सब धातुओंकी संज्ञालोह कहातीहै तथा सबधातुओंकी संज्ञा तैजसभी होतीहै और सांख्यशास्त्र के सिद्धांत में सत्त्वगुणसे उत्पन्न जो वस्तु होय तिसको भी तैजस कहिते हैं तहां दोनों तैजसका पृथग्भावजुदाई एकहीभी बराबर

समभोजाय ॥ ० ॥ एकशंका और भी उत्पन्न होनेलगी कि ब्रह्मके सकाश से उड़ेहुये असंख्यजीवात्माजबतक सूक्ष्मदेहवाले रहाकरतेहैंतबतकउन्हेंकोदेखिनहींपाता क्या उससेभी अतिसूक्ष्म होतेहोगे जो सकानकेभरोखमें सूर्यकीकिरणोंसे बसरेसादेखपरतें हैं—सुनो जीवात्माके सूक्ष्मदेह यद्यपि बसरेसाजो अपेक्षा बहुत बड़े हैं तौभी मनुष्य के नैद्यपर ईश्वरकी मायारूपी अज्ञानकापर्दा रहाकरता है जिनसे उसे देखतेहुये भी देखिनहीं सक्तें हैं अर्थात् असंख्यजीवात्मा यद्यपि आंखोंके आगे उडाकरतेहैं तथापि प्रायश अतिसूक्ष्म तौ देखिही नहीं पाते किन्तु बिरले विज्ञानी जो उनकास्वरूप देखते हैं वे भी कुछ विवेक नहीं करसक्तें हैं कि यह कितना बडा और मुख्यरूप कैसा है क्योंकि प्रायश जीवात्मा सूक्ष्मरूपसे मनुष्यों तथा सजजीवोंके समीपही कुछअंतरसे बिहार करते फिरते और स्थूलशरीर धारियोंके आचरणा सेलते रहितेहैं कि हमको किस देहमें प्रवेश करना चाहिये किसमें अधिक सुभीता होगा तहां भी निजकर्मोंके वशीभूत मायाकी प्रेरणासे जिस प्राणीके स्थूलशरीरपर मनका मोह लगाते हैं उभी यौनिके गर्भोंमें (इसीमानसकर्मकेप्रभावसे) जाकर जन्मलेते हैं(गर्भोंमें प्रवेश होनेका प्रकार आगे७० सत्तरिके श्लोकमेंदेखौ) जबतक गर्भोंमें प्रवेशनहींकिया तबतक सूक्ष्मरूप उनका ज्ञानीपुरुष को सिर्फ इतना देखि परतारहे कि आकाशकीओर अपने मनुष्य दृष्टिग्रांभनेसे आकीशी वराके तिलमिले दिखाई देतेहैं जो साँपकी कंचुली सजान हलुके और लम्बे लच्छेदार अनेक भाँति के तिरछे बेंडे उड़ते वा लटकते से प्रतीतहोते हैं यदि उनके ऊपर किंचितभी दृष्टिजसाचाही तभी इधरसे उधर चलजाते हैं इसी लाघवता से विवेक नहीं कियाजासक्ता है कि यह एक वा अनेक है और कितना परिमाण इनका ठीकहै. इसीप्रकार काल पुरुष को पहिंचानेवाले कालपुरुषकी देखते हैं ॥ ६७ ॥

नीचे यह बात कही जायगी कि जिनको अब तक स्थूल देह नहीं

मिला तिनकोभी कर्मही के अनुसार देह मिलता है ॥

(अनुपात्तवप्रपात्तेत्रज्ञानांचकर्मनिबंधनोदेहः)

तत्रात्माहित्वांपांकिंचित्कर्मकिंचित्स्वभावतः । करोति किंचिद्भ्यासाद्दर्मार्थमभयात्मकम् ६८ ॥

अर्थः—तहां किंचित्कर्म आत्मा आपही करताहै किंचित् स्वभाव से करता है किंचित् अभ्याससे करताहै धर्म अर्थ दोनों रूपवालाकर्म=अर्थात्—तहां स्थूल शरीरका कालेवर धारणा करनेमें कुछ कुछ कर्मोंकोआत्मा आपही अपनी चेतनप्रगति

के प्रभावसे करने लगता है—इसका यह दृष्टांत है कि (यद्यपि आत्मा आपत्ती अन्वय १ व्यतिरेक २ (मिलाप और जुदाई) इन दोनोंसे निरपेक्ष ब्रवास्ता सदा रहता है तथापि इस कलेवरकी रियाजत से अन्वय और व्यतिरेक दोनोंका स्वीकार करने लगता है अर्थात् जैसे जन्मलेतेसारे दूधपीलेना यह मिलापनामका अन्वय टहिरा तिससे हानि मानिके प्रसन्न होजाना या दूध न मिलने के व्यतिरेक (जुदाई) में तृप्ति न मानिके रोने लगना इत्यादि बहुत कामों को समझलेना ऐसे ऐसे कुछ कर्मों को पैदाहोते के साथही आत्मा अपनी चिच्छाक्तके प्रभावसे स्वतः करनेलगता है क्योंकि उसी चिच्छाक्तके प्रभाव से पहिले कल्पांतर जन्मों का अनुभव उसकी भावना में भावित बना रहता है तिससे मामूली कामोंका तत्काल बोध होआता है—इनके सिवाय कुछ कुछ ऐसे भी निरपेक्ष कर्मोंको स्वभावही से करने लगता है जिनकर्मोंसे उसका कोईसा प्रयोजनका संबन्धनहीं दृष्टांत जैसे चीटीको उठाकर मुहमें रखलेना यामट्टी खाइलेना इत्यादि बालस्वभाव के बहुधा कामों को समझ लेना, तहां स्वभावही से करता है अर्थात् बाल चपलताकी स्वतंत्रता से करता है यह अर्थ जानना—इनके सिवाय बड़ी अवस्थाभरमें धर्म तथा अधर्मरूपी दोनों भौतिके बहुधा कर्म पहिले जन्म के अभ्यास में बराहोकर किया करता है ॥ ६८ ॥

६८ अधिकोक्तिः—अभ्यासके बराहोकर करता है इस बातका प्रमारा अगिला वचन है—तथाच स्मृत्यंतरं=प्रतिजन्मयदभ्यस्तं दानमध्ययनंतपः तेनैवाभ्यासयोगेन तदेवाभ्यसते पुनः=अर्थात्—हर एक जन्मपहिलेसे दानकरना या वेदविद्यापढ़ना या तपस्या करना इनमें जो कुछ चारंवार अभ्यास किया गया हो उसी अभ्यासके संयोगसे वही कर्म इस देहमें भी आकार अभ्यासकिया जाता है—इसका दूसरा प्रमारा मनुका वचन है—यथा=हिंसाहिंसे मृदुकूरधमविमवृता तृतेयध्रसोदवात्सर्गे तत्स्य स्वयमाविशत् ॥ यंतु कर्मिणाय स्मिन्सन्ययुंक्त प्रथमं प्रभुः सतदेव स्वयं भजे स्तुज्यमानः पुनः पुनः=अर्थात्—जिस समय प्रभुनवी नष्टि के उत्पन्न करता है उस समय सब कर्मोंके इच्छ जोड़े जो प्रसिद्ध हैं तिनसे अपनी प्रजा को संयुक्त करता है उसीका दृष्टांत है कि एक हिंसकर्म दूसरे को पीछावेनवाले डैसा सिंह व्याघ्र विडाल आदि का स्वभावसे उत्पन्न है तैसा बहुधा सन्पूर्वोंमें भी हिंसकर्म होते हैं इससे विपरीत अहिंसकर्म जिनसे किसीको पीछा न पहुँचै यह एक जोड़ा टहिरा इसीतरह मृदुकूर स्वभावके कर्मोंका जोड़ा है किसी प्राणी में कोमलता और किसीमें कठोरता इत्यादि बहुत जोड़े हैं तिनमेंसे जो कुछ कर्म भला या घरा जिन प्राणियोंको लिये पहिली सृष्टिमें परमचर ने बनाकर सौंपाया वही कर्म और यही स्वभाव

उसी योनिके प्राणीमे यहां भी आकर आपही प्रवेश किया करताहै ॥ इसीप्रकार पहिले जिस कार्य मे जिस प्राणी को परमेश्वरने नियुक्त किया था वह प्राणी यहां आकरभी वहीकर्म आपसेआप करनेलगाताहै किन्तु यहभी एकअभ्यासहीका प्रभाव है जो कर्ता कर्म दोनोंमें घुमिजाताहै ॥ ० ॥ ऊपर सरसठि के श्लोकवाली उत्पत्ति को देखि सुनिकर यहशंका खड़ी होसक्तीहै कि ब्रह्मके सकाससे असत्य जीवात्मा को फुलभट्टो से उडनेलगे तिनके देह रोह परिजन आदि न होनेसे कोई कर्म करना असंभव है तो फिर कर्मके होने बिना भी कर्महीके वशीभूत होकर क्योंकर स्थूल शरीर पातेहै कि जिसमे जरायुज अण्डज आदि चारभेदभी होतेहै—इसकासमाधान—यहां अरसठिके श्लोक से दर्शायागया कि अर्थापि उस अवस्था में देह रोह परिजन आदि न होनेसे क्रियाकर्म दोनोंका अभाव है तो भी धर्म अधर्मका आराधन मनके विचारमात्रसे होतारहाकरताहै कि जैसासरसठिकी अधिकोक्तिमें मानसकर्मकहाथा कि फिरते हुये जीवात्मा जिस प्राणीके स्थूल शरीरपर मनका मोह जसाते है उसी मानसकर्म के प्रभाव से उस योनिमें जातेहै—फिर उस मिलेहुये शरीरसे किये गये भले बुरे कर्मोंसे अन्यदेह मिलने लगतेहै—मानस कर्मके प्रभावसे स्थूलदेह मिलनेका प्रमारा अगिला वचन देखौं—यदाहमनुः—वाचिके पक्षिभृगतांमानसैरत्यजातितामः—अर्थात्—प्राणीसे किये पापकर्मोंके प्रभावसे पक्षी और चौपाये आदि भृगजीवोंकी योनिमें जन्मताहै तथा मनसे किये पापकर्मोंके प्रभावसे चण्डाल आदि अत्यजातिके मनुष्योंमें जन्मताहै—इसप्रकारसे—जीवोंके कर्मोंकी विचित्रतासे क्रिया और दिवा हुआ जरायुज आदिदेह भेदोंका वैचित्र्य होताहै सदेह न करना चाहिये ॥ ६८ ॥

वरानकरी व्यवस्था में फिर भी एक शंका खड़ीहोतीहै—क्योंजी जब ऐसाही मानागया तो फिर कैसेब्रह्महीका चिदश जीवसज्ञाको पाये किन्तुब्रह्मके नित्यत्व आदिधर्म निर्विकल्प हैं तहाँ यह व्यवहार कैसा कि निष्कामिव पैदा भया अविद्या दत्त पैदाभया इसी शंकाका समाधान अगिला श्लोक देखौं ॥

(अजस्यशरीरग्रहणं)

निमित्तमक्षर कर्ताबोद्धाब्रह्मगुणीवदा । अज शरीरग्रहणात्सजातइतिकीर्त्यते ६९ ॥

अर्थः—निमित्त. अक्षर. कर्ता. बोद्धा. ब्रह्म. शुणी. वशी. अज —शरीर ग्रहणमात्रेण कारणात् सखजातः इतिकीर्त्यते—अर्थात्—सत्य जानौ कि आत्मा जो परमात्मा है सो सकल जगत्तका प्रपंच प्रकट करते समय अविद्या साया के समावेश में आकर

(समवाय्य-समवायी) इन दोनोंका निमित्त आपहेता है इनमें समवायी तो पुरुषका शरीर जानना जो २५ तत्त्वोंके समवायमिलापसे बनता है १ और समवाय्य उन्हीं तत्त्वोंको जानना जो पंच महाभूत आदि चौबीस २५ तत्व होते हैं कि जिनका समवायमेल होकर शरीर बनता है २ तीसरा सैधनजीवात्मा जो चौबीस तत्त्वोंके साथमें पचीसवां तत्व माना जाता और वही उन चौबीस तत्त्वोंका समवाय होसकने में निमित्तरूप होता है ३ तिससे वह आपही इन तीनोंमें तीन बिबकारया है तथापि कार्योंके समूह में वह आपनहीं रहता है इसीलिये मूल श्लोकी आदि में निमित्त यह लक्षणा पहिले कहागया क्योंकि जिस हेतुसे इतने लक्षणा उसमें औसी है कि असर अविनाशी-कर्ता भी वही आपहै क्योंकि बोद्धा होनेसे अर्थात् जीवके उपभोग तथा सुख दुःखोंके हेतु भूत जो अदृष्टनामक परजन्मके कर्मआदि तिनका जानने समझनेवाला भी वही आपहै तथा ब्रह्मस्वरूप है अर्थात् जगदका दृंहक विस्तार करसकनेवाला भी आपहै किन्तु दूसरे में यह शक्ति नहीं क्योंकि-गुराी है अर्थात् निर्गुरा भी नहीं जिससे तीन गुरावाली शक्तिरूपी अविद्या प्रकृति जो प्रधान अंग अत्यन्त नामौसे प्रसिद्ध है सोई उसके अवीन एकदासी है (तिससे अर्थात् आप निर्गुरा भी कहाता है तथापि अपनी शक्तिरूपी मायाके द्वारा सतोगुरा आदि तीनों गुराका वास्तेदार है) तो भी केवल मायाही इस जगदका नहीं कारणा है क्योंकि-आत्मा आपही अपने बशीभूत स्वतंत्र है कुछ मायाके बशमें नहीं क्योंकि-वह अजहै उसको उत्पत्ति किसी ओरसे नहीं-अर्थात् ऐसे अजन्माका जन्म साक्षात्कार होना तो नहीं सिद्ध होता है तथापि सारी शरीरग्रहणा करनेसाधकी उपाधिसे यह कहाजाता है कि जन्मलिया ॥ ६६ ॥

६६ अधिकोक्तिः—आत्माको असर अविनाशी जो कहा तिसपर जिज्ञासु तर्क उदाता है कि अविनाशी होना तो सत्य है इसमें कुछ संदेह नहीं परन्तु-जगद रूपी प्रपंच के देखनेसे प्रतीत होता है कि त्रिगुरावती माया जो प्रकृति भी कहाती है उसी का कर्तृत्व यह जगद की रचना माननी चाहिये क्योंकि-सत्व-रज-तम-इन तीनों गुरा का सम स्वरूप वही कहाती और जगद है उन्हीं तीनों गुरा की बिकारों का कार्य रूप जो सुख दुःख मोहादि से भराहुआ दिखता है तिससे यह स्वरचना उसी प्रकृति की दहिरी पर उस ब्रह्म की नहीं जो आप निर्गुरा कहाता है— इस जिज्ञासा के भरेहुये सुतर्कको सुनिकर पाछार्थका जिज्ञाता शुरुकहिता है कि ऐसा सवमानो-जगद का कर्ता वही आपहै क्योंकि जीवोंके भोगने योग्य सुख दुःखोंका हेतुरूप जो अदृष्ट पहिले जन्मोंका कर्मरूपी भाग्य है तिसका जुड़ेजुड़े भेदोंसे बोद्धा जान ते

वाला जतानेवाला वही है जो कर्मविपाक भृगुसंहिताआदिके द्वारा छिपी बातोंको भी स्पष्टकाहदेता है और प्रकृति है सो अचेतना किन्तु विशेषज्ञानसे विहीन है जिसको विशेषज्ञानही नहीं तिसमें ऐसे जगत्की रचना क्योंकर संभव होसके कि जिसजगत् में असंख्य नाम असंख्यरूप असंख्य नानाभाँतिके प्रकाश और नानाभाँतिके विचित्र भोक्ता जीवोंके जुदेजुदे वर्ग भेद मयसमूहभी अगणय देखिपरते हैं तिनसबहीके जुदेजुदे भोगोंके अनुकूल भोरय चीजें और सबके लिये उनके जुदे भोगोंके स्थानभेदभी अनेक भाँतिके इत्यादि और बातोंको संसारमें देखिभाल अपनी बुद्धिसे जानना किन्तु ऐसे उप योगीसे भरेहुये जगत् की प्रपंच रूपी रचना क्या अचेतन प्रकृति कर सकेगी- तिससे आत्मा आपही जगत् का कर्ता है इसीलिये दूसरा नाम उसका ब्रह्म अर्थात् जगत् का वृंहक-विस्तार दशनि वाला भी है--और निर्गुणा यद्यपि कहाता है परन्तु निर्गुणा वह नहीं है क्योंकि तीनों गुणा की शक्ति वाली अविद्या प्रकृति जो प्रधान आदि नामोंसेभी विख्यात सो उसकेहाथ सुट्टीमें रहती है तिससेआप निर्गुणा कहावै तौभी शक्ति के द्वारा सत्तोशुणा आदि गुणोंके योगवाला कहाता है और इस बातसे भी यह न जानना कि प्रकृति है सोई कारणा टहरी क्योंकि वह प्रकृति के बश में नहीं आपही अपने बश में स्वतंत्र है और प्रकृति कदाचित् भी उसकी इच्छा बिना अपनी स्वतंत्रता से वैसा कोई दूसरा जगत् नहीं बनाइ सकती है क्योंकि इसका प्रसारा कोई नहीं है और यह भी न समझना चाहिये कि वह प्रकृति यदि शक्तिरूप टहिर चुकी तो फिर वही कर्ता टहरी क्योंकि शक्तिवाला कारक जो होता है (जैसाशब्द-वेधीवाला आदि कोई सा औजार मसभौ) सो नहीं शक्ति कहिलाता किन्तु उसके प्रेरक को शक्ति उसमें आकर प्रभाव दिखलाती है वही शक्ति कहाती है--तिससे आत्मा आपही जगत् का शिविध कारणा होता है तथैव अजन्मा होतुहुये भी शरीर धारणा करने साथ के बढ़ाने से उत्पन्न भया कहाता है (अवस्थांतरयोः। गतयोः। पक्षेः गृहस्थो जात इति वत्) जैसे कोई गृहस्थ जिसका जन्म तौ बहुतकाल पहिले कभी हो चुका परन्तु दूसरी अवस्था प्राप्त होने और भार्यासंप्रदकरणके हेतु से उसकी उदयरूपी उत्पत्ति दूसरी मानिके गृहस्थी भया कहिने लगते हैं--और भी आत्मा को निर्गुणा केवल इसीलिये कहाजाता है कि तीनों गुणा के जुदे प्रभाव जैसे सगरी शरीरों में प्रविष्ट होकर अपने लक्षणाजताते हैं तैसा उस आत्मा के साथ नहीं करसकेइ इसीसे वह तीनों गुणासे परे (जुदा) कहाता है. कुछ निर्गुणाका यह अर्थ नहीं कि वह किसी गुणाका सर्म नहीं जानता ऐसा नहीं कहिसके क्योंकि वह सर्वज्ञ है ॥६६॥

भला किसमार्गसे किनप्रकारोंसे शरीर ग्रहणाकरताहै सो सब आगेसमझातेहैं ॥

(शरीरग्रहणप्रकाराः)

सर्गावैसयथाऽऽकाशं वायुं ज्योतिर्जलं महीम् सृजत्येकोत्तरगुणास्तथाऽऽदत्ते भवन्नपि ७०

अर्थः—बहुजैसे सर्गकी आदिमें आकाश वायु तेज जल धरती, इनको एकोत्तर गुणा सहित सृजा करताहै तैसे आपसंसारी होतेहुयेभी इनकी साधलेता है=अर्थात्—वह आत्मा परब्रह्म जब जगतकी उत्पत्ति किया चाहताहै तब सबसे प्रथम आकाश आदि पाँचों महाभूतरूपी सामग्री प्रघट करताहै कि इसी मशाले से सब संसारवनाता रहाकरैगा (तहाँ इन पाँचों में पाँचगुणाभी एकोत्तर अधिक संख्यासे निरूपणाआप करदेता है अर्थात्आकाशमें शब्दही एक गुणाहै पवनमें शब्द और स्पर्शभी दो गुणा होतेहैं अग्नि तेजमें शब्द और स्पर्श और रूपभी ये तीन गुणाहोतेहैं जलमें शब्द और स्पर्श और रूप और रसभी ये चारिगुणा होतेहैं धरती में शब्द स्पर्शरूप रस और गंधभी ये पाँचों गुणाहोतेहैं) जैसे सृष्टिके प्रारंभ समय पाँचों गुणासहित पाँचों महाभूत रूपी इन्हीं तत्वोंको परमात्मा रचिलेता है तैसे जब आपही जीवरूप होकर संसारी शरीरों में बँदना चाहताहै तबहु किसी गर्भमें जाकर अपने रहनेका शरीरवनातेहुये भी अपने रचे पाँचों गुणा सहित पाँच तत्वोंसेही कुछकुछ मशाले निज अनुमानकी योग्यलेकर गर्भमें घुसता और शरीरको बनाता रहाकरताहै ॥ ७० ॥ धरती आदि पाँच महाभूतों से दयोकर शरीर वनाता होगा यह उतांत अब कहिते हैं ॥

(पृथिव्यादीनां शरीरारंभकृत्वं)

आहुत्याऽऽप्यायते सूर्यः सूर्याद्दृष्टिरथोपाधि । तदन्नरसरूपेण शुक्रत्वमधिगच्छति ७१

अर्थः—आहुतिसे सूर्य तत्र किया जाताहै सूर्यसे दृष्टि और दृष्टिसे औपवियां होतीहै वही अन्नरूपसे रसरूप होकर शरीरों में शुक्ररूपको पहुँचैहै= अर्थात्—ऊपर के सत्तर ७० मूलश्लोक में यह कहा गया कि मट्टी जल अग्नि तेज हवा आकाश इन पाँचों में से कुछ लेकर शरीर बनाता है सो यह कैसे समझ में आवै कि ये चीजें क्योँकर गर्भके भीतर जाके पहुँचती हैं क्या जीवात्मा आपही होकर लेजाता होगा—येभी जिज्ञासुताकी भीहुँदें शकात्परी तर्कनाका समाधान यहाँ समझातेहैं कि टोड कर लेजाना कुछ आवश्यक नहीं बल्कि ये सब चीजें माता के शरीरही भीतर सदा मौजूद रहती और पिताके वीर्यद्वारा भी दूसरे शरीरसे निकसिके उसगर्भमें सब चीजें

महा पंच भूतों) को लेकर उनके साथछटा चिदातु जो आपही चैतन्य एक ज्योति के समान है सो मिलिके सबका एक साथही स्वीकार करलेता है क्योंकि शरीर बनाने की प्रक्रिया में वह प्रभुही समर्थ है तिससे अपने भोगका स्थान बनाने का प्रारम्भ (युगपत्) एकदम करदेता है कुछ पहिले पीछे जोड़ तोड़ शोचने की ज़खरत उसको नहीं है यह तात्पर्य ठहिरा ॥ ७२ ॥

७२. अधिकोक्तिः—वात पित्त प्रलेप दुष्ट ग्रन्थ पूय स्त्रीया मूत्र पुरीय गंधरेतांस्य बीजानि इतिस्मृत्यंतरं—अर्थात्—ग्रन्थांतर मे वीर्य रक्त के इतने दोय कहेहैं कि वात पित्त क रक्के बेगसे बिगड़ाहो या दुष्ट गाँठ जो बढ कहाती है तिससे या पीय राद हो जानेसे या मूत्र गूहके समान बाल आतोहो जिस पिता के वीर्य या माता के रजोरक्त में ती ये सभी वीर्य अबीज होते हैं अर्थात् इनके योगसे गर्भ नहीं जमता है जिस वीर्य में ये दोय कोइनहीं वही शुद्ध जानों इसीलिये मूल प्रलोकमें योगीचरने शुक्र शरीरात दोनों के विशुद्ध होनेका संयोग बताया—गर्भ स्थान में गर्भ छपी सकान अपने रहने को जीवात्मा बनाता है यह मूलमें कहिचुके—तिसका प्रमारा भी शरीरक शास्त्रमें कहा है—अथा—स्त्रीपुंसयोगोयोनौ रजसाभिसंसृष्टशुक्रांतस्सगामेव सहभूतात्मनाशुभोपच सत्वरजस्तमोभिःसहवायुनाप्रेर्यमायां गर्भाशये तिष्ठति—अर्थात्—स्त्री पुरुष के मध्युन समय योनि में रजोरक्त से मिला हुआ वीर्य तत्कालही पंच भूतों सहित आत्मा और सत्व रज तम तीनों शरीरों करके सहित वायुसे प्रेर्यमारा हलाया भुलाया हुआ गर्भाशय के नियत स्थानपर टिकताहै ॥ भला उमगर्भमें रहिकर चिदातुछपी जीवात्मा अपने रहने को सकान किम ढंगसे बनाता है अर्थात् उस में क्या क्या रचना करता है सो अगिले प्रलोकों से कहते है ॥ ७२ ॥

(इन्द्रियादिसर्वभावानां समूहशक्त्याभासः)

इन्द्रियाणि मनः प्राणो ज्ञानमायुः सुखं भृतिः । धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छाऽहंकार एव च ७३

प्रयत्न आकृतिर्वर्षः स्वरद्वेषो भवामवो । तस्यैतदात्मजं सर्वमनादिरादिमिच्छतः ७४

अर्थः—अनादेः आदिं इच्छतः (अजन्माके शरीरजन्मको चाहतेही) इन्द्रियां मनः प्राणा ज्ञान आयुस् सुखं भृति धारणा प्रेरणा दुःख इच्छा अहंकार प्रयत्न आकृति वर्षा स्वर द्वेष भव अमव यह सब उसका आत्मज होताहै—अर्थात्—जिस परमात्मा का जन्म किसी और से नहींहै इसीसे अनादि कहा जाताहै कि उसकी आदि जन्म कोइ नहीं जानता वही जब जन्म रूपी आदिको चाहताहै तत्र चाहनाके

रहा करता है उसीसे गर्भका शरीरभी बनजाता बल्कि श्रेय चारों तत्त्वभी उस गर्भ में जितनी चाहीजायगी सो सब स्त्रीके शरीर में अधिकता से मौजूद हैं केवल वीर्यही में इनतत्त्वोंको ढंढनेकी अपेक्षा श्रेयनहीं क्योंकि पुरुषका वीर्य और स्त्रीकारक्त दोनों मिलकर गर्भका पहिला अंकुरजमता है सो अगिलेकई प्रलोकों में समझिलेना=कदाचित्त=यहशंका आरोपित करीजाय कि स्त्रियोंके उदरभीतरजीवात्मा अपनाशरीर जो बनाता है सो यह नधेहुये कामोंका करना बहुत सुगम है कि उसी पहिले शरीर का मशाला लेलेकर अपनाघर बनानेलागा किन्तु जब एक भी स्त्री या पुरुषोंके शरीर पहिले नहीं थे केवल सूक्ष्म रूपी जीवात्माही असंख्य फिरते होंगे तब किसके रक्त और वीर्यसे बनाताहोगा-मुनी धरतीसे आकाशतक पंचमहाभूतभी पहिले निपटनहीं थे जिस परमात्माने उन पाँचोंकी उत्पत्ति एक साथही अपनी इच्छासे प्रकाश करी तिसको स्त्री पुरुष का एक जोड़ा अपनी इच्छा से उत्पन्न करदेना क्या दुर्घट है कि जिसके द्वारा सब जीवात्मा अपने शरीरों को सुगमतासे बनानेलागे इसके लिये मनुस्मृतिमें स्वायंभुमनुकी उत्पत्ति को देखौ पहिले उसीसे सब सृष्टि पैदा होनेलागी सो भी यह चर्चा केवल मानुयो देहों का होरहा है इसके उपरालू सृष्टिकी दशा पर भी ध्यान करौ कि दीमक आदि लाखों प्रकारके जंतु एक साथही धरतीको फाड़ि के उत्पन्न होते हैं वे कहाँ आते हैं क्या उनके भी उतने माता पिता नीचेबैठे हैं जिससे जीवात्मा को उतने शरीर धारण करनेकी सुगमता है-उसको सभी दशामें सुगमता है कठिनता उसकोकहींभी नहीं क्योंकि जब सर्वशक्तिमानहै तो फिरचाहें तबचाहें तैसेप्रकार से करसक्ता है उसकोलिये कोई सा एक नियम नहीं कि उसीरीतिसे चलै (कर्तुं यकर्तुं अन्यथाकर्तुंसमर्थः सर्वेश्वरः) तिससे ऐसी शंका करना कुछ आवश्यक नहींहै-जिनप्रकारोंसे गर्भों जीवात्माकाम करताहै सो अगिले मूलप्रलोकसेदेखौ ७१॥

(जीवात्मनःशरीरधारणं)

स्वोपंतयोस्तुसंयोगेविशुद्धशुक्रशोणिते । पंचधातुनस्यपंपष्ठभाक्चेयुगपत्प्रभुः ७२

अर्थः—स्त्री पुरुष के संयोग समय शुक्रशोणित दोनोंके विशुद्ध होनेमें प्रभुपाँचों धातु को खटा आप एक साथही अंगीकार किया करता है—अर्थात्—मार्मिक ऋतु कालमें रजोघ्नर्मके नियमोंसे ठीकठीक समयपर स्त्री पुरुष दोनोंका रक्तवीर्य ठीक शुद्धहोय तभी उनका मैथुन होकर यदि रक्तवीर्य दोनोंका संयोग (मिलाप) होयतो तत्कालही जीवात्मा उसमें वैदिकके पूर्वाक्त पाँच धातुओंको (अर्थात् वरती आदि

महा पंच भूतों) को लेकर उनके साथछटा चिदात्त जो आपही चैतन्य एक ज्योति के समान है सो मिलिके सबका एक साथही स्वीकार करलेता है क्योंकि शरीर बनाने की प्रक्रिया में वह प्रभुही समर्थ है तिससे अपने भोगका स्थान बनाने का प्रारम्भ (युगापत्त) एकदम करदेता है कुछ पहिले पीछे जोड़ तोड़ शोचने की जखरत उसको नहीं है यह तात्पर्य ठहिरा ॥ ७२ ॥

७२. अधिकोक्तिः—वात पित्त श्लेष्म दुष्ट ग्रन्थ पूय क्षीणा मूय पुरीय गंधरेतांस्य बीजानि इतिस्मृत्यंतरं—अर्थात्—ग्रन्थांतर में वीर्य रक्त के इतने दोष कहेहैं कि वात पित्त क्रमके वेगसे बिगड़ाहो या दुष्ट गांठ जो बढ कहाती है तिससे या पीव राद हो जानेसे या मूत गूढके समान वास आतोहो जिस पिता के वीर्य या माता के रजोरक्त में ती ये सभी वीर्य अजीज होते हैं अर्थात् इनके योगसे गर्भ नहीं जमता है जिस वीर्य में ये दोष कोईनहीं बढी शुद्ध जानां इसीलिये मूल प्रलोकमें योगीचरने शुक्र शोणित दोनों के विशुद्ध होकेसंयोग वताश्रा=गर्भ स्थान में गर्भ रूपी सकान अपने रहने को जीवात्मा बनाता है यह मूलमें कहिचुके—तिसका प्रमाणा भी शारीरक शास्त्रमें कहा है—अथा=स्त्रीपुंसयोगेशोनीरजसाभिसंसृष्टशुक्रतत्सखामेव सहभूतात्मनायुरोपव सत्त्रजस्तमोभिःसहवायुनाप्रेर्यमारां गर्भाशये तियति—अर्थात्—छी पुरुष के शैथुन समय योनि में रजोरक्त से मिला हुआ वीर्य तत्कालही पंच भूतों सहित आत्मा और मत्व रज तम तीनों गुराँ करके सहित वायुसे प्रेर्यमारा हलाया झुलाया हुआ गर्भाशय के निग्रत स्थानपर टिकताहै ॥ भला उसगर्भमें रहिकर चिदात्तहृषी जीवात्मा अपने रहने को सकान किम दंगसे बनाता है अर्थात् उस में क्या क्या रचना करता है सो अगिले प्रलोकों से कहते हैं ॥ ७२ ॥

(इन्द्रियादिसर्वभावानां समूहशक्त्याभासः)

इन्द्रियाधिभनःप्राणोज्ञानमायुःसुखधृतिः । धारणाप्रेरखंदुःखमिच्छाऽहंकारपंच ७३

प्रयत्नआकृतिर्विषयःस्वरहेयोभवाभवो । तस्यैतदात्मजंसर्वमनदेरादिमिच्छतः ७४

अर्थः—आत्मादेः आदि इच्छतः (अजन्माके शरीरजन्मको चाहतेही) इन्द्रियां मनः प्राणा ज्ञान आयुस् सुख धृति धारणा प्रेरणा दुःख इच्छा अहंकार प्रयत्न आकृति वर्यांस्वर हेय भव अभव यहसब उसका आत्मजहोताहै—अर्थात्—जिस परमात्मा का जन्म किसी और से नहींहै इसीसे अवादि कहा जाताहै कि उसकी आदि जन्म कोई नहीं जानता वही जब जन्म रूपी आदिको चाहताहै तत्र चाहनाके

सायही किसी गर्भ में प्रवेश करते हुये यह सब सामग्री इंद्रि आदि उसके आत्मा से ही आपसेआप पैदा होजातीहै-अर्थात्-ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्रीपाँच पाँच और ग्यारहवाँ मन भी जो सबका प्रेरक अधिष्ठाता है। प्राणा जो पाँच प्रकार की प्राणा वायु जुदी२ शरीर में स्थान भेदसे रहती सो पंच प्राणा कहाते हैं नाम उनके प्राणा १ अपान २ उदान ३ समान ४ व्यान ५ ये पाँच हैं और ज्ञान जो पद पदार्थोंका बोध करानेवाली एक वृत्ति कपाल में होतीहै उसके भी अनेक शाखा भेद होते हैं। आयु जो एक प्रकार का काल नियम है कि इतने काल तक यह शरीर बना रहेगा. सुख जो आनंदरूपी एक गुण कहाताहै। धृति यहचित्तकी स्थिरता कहातीहै. धारणा यह प्रज्ञा औरमेधा भी कहातीहै अर्थात् सरस्वती रूपा बुद्धि और उस बुद्धिको धारणा कहते हैं जिसकी सुनी समझी बात कभी न भूलें. प्रेरणा अर्थात् मनका यह धर्महै कि दशों इंद्रियों पर अधिष्ठाता बनके उन्हें उनके जुदे कामों में लगाता या हटाताभी रहताहै मनकी प्रेरणा बिना इंद्रियाँ अपने भले बुरे कामों को नहीं करसक्ती हैं. दुःख यह प्रसिद्धहै कि चित्त को उद्देग घबडाहट दिलानेवाला होताहै यह भी जितना भोग्यहो सो गर्भ के साथही आकर शरीर में प्रवेश होता है-इच्छा यहएक प्रकार की वृत्तिअंतःकरणा में रहती है उन बातों या चीजों की चाहना कारवाती है जो चहोती अवतक नहीं मिलीं और मिलचुकीं तिनकी धारम्भार अधिक मिलनेको चाहना किया करतीहै. अहंकार यह भी अन्तःकरणा में रहनेवाला एक वृत्तिहै जो अपने स्वरूप का बोध कराताहै कि मैं इस प्रकारका हूँप्रयत्न यहपुरुषका गुण कहाताहै कि व्यवहारोंकी किया करने में युक्ति शौचिके प्रवृत्तहोय-आकृति यह शरीर का आकार डीलडौल ओछापूरा आदि जो कुछ हो.वर्ण यह देह का रंगहै शोरा काला आदि जो कुछ हो. स्वर यह वाणी का गुण है और गान विद्या में यद्दज ऋषभ गांधार आदिनाम तथा स्वरूपों का विस्तार है. द्वैय यह वैर का स्वरूपहै. भय यह पुत्रपौत्रपशु आदिकी वृद्धि कहाती जितनीउसके प्रारब्धमें आई हो.अभय उससे विपरीतहै कि दास पशु पुत्रादि की समृद्धि न होनीजैसी प्रारब्धमें आई हो.यह सबसामग्री उसीअनादि नित्यआत्मा के शरीर इच्छा करतेहुये आत्म जनित होताहै अर्थात् पहिले जन्म कर्मरूपी बीज से उत्पन्न होता वह साथही आया करताहै ॥ ७३ । ७४ ॥

ये सबचीजें जिस वेरा जिस क्रमसे पैदाहोती हैं सो अगले श्लोकों से दशातिहें ॥

(संयुक्तशुक्रशोणितस्यकाय परिणतिक्रमः)

प्रथमेमासिसंज्ञेदभूतोधातुविमुच्छितः । मास्यवृद्धिर्तयितुर्तृतीयैर्गन्दिशैषुतः ७५
 आकाशाह्लाषवंसौहृन्पंशब्दश्रोत्रबलादिकम् । वायोश्चस्पर्शनं चेष्टां बृहन्नरोक्ष्यमेव च ७६
 पितानुदर्शनंपक्तिमौष्ण्यंरूपंप्रकाशिताम् । रसानुरसनंशैत्यंस्नेहं ह्रैदंसमादिबम् ७७
 भूमेर्गंधतथाप्राणं गौरवंमूर्ध्निमेव च । आत्मागृह्णात्यज-सर्वतृतीयैस्पर्दतेततः ७८

अर्थः—गर्भके पहिले महीनाभर (छटा धातु रूपी चेतन जीवात्मा) आप धातु विमुच्छित (अर्थात् पृथिवी आदि पाँच धातुओंमें दूध पानीकी तरह परस्पर मिला) होके अच्छा क्लेद भूत अर्थात् गीलाही हलकमा रहाकरताहै कडापनको नहीं पकड़ता फिर—दूसरे महीना में अर्बुद होजाताहै अर्थात् कुछकठिन कुछ कोमल मांसकी पिण्डोरूप कीलसी होजाती है—तीसरे महीने में अंग और इन्द्रियों से भी युक्त होता है (अर्थात् धड़के सिवाय सड़ और चारोहाथ पैरों के चिह्न मात्र येही पाँच अंग उपजि आते और इन्द्रियोंके आकारकेवल गर्भके भीतरसे उभग्नेमात्र लगतेहैं तिनका द्यौरा अगिले प्रलोक से समझी ॥७५ ॥ (आत्मागृह्णाति) आत्मा प्रहरा करताहै यह अठत्तिके प्रलोक वाला पद सबके साथ समझतेरहिना किच इसीतीसरे मासमें इतने काम होतेहैं—आकाशधातुके हलुकापन प्रभावसेगर्भमें लाघव हलुकापन फुर्तीउत्पन्न होतीहै और उसी आकाश के प्रभावसे सूक्ष्मता भी होतीहै अर्थात् अंगोंका भवापन दूर होके सफाई प्राप्त होती और वारीकी और कान की इन्दी का श्रोत्र और उसी इन्दी का भोगरूपो शब्द गरा भी और बल आदि भी गर्भ में आजाते हैं—वायु तत्त्व रूपी धातुके प्रभाव से स्पर्शन इन्दी अर्थात् खाल और चलाफिरो आदि को चेष्टा और बृहन्न अर्थात् अंगोंका विविध भाँतिसे पसारना समेटना आदि यह भी पवनके प्रभाव से और उसीसे रोक्ष्य सूखापन खर्दरापन आदि और चकारके ध्वन्यर्थ कारके उसी पवन से स्पर्श गरा भी पैदा होताहै जो स्पर्शन इन्दीका भोगहै ॥ ७६ ॥ अग्नि धातुका तेज पिप्तरूपी जो शरीरों में रहा करता है तिसके प्रभाव से दर्शन अर्थात् नेत्रकी इन्दी पैदा होती और पक्ति अर्थात् खायेहुये अन्न का पचना किन्तु पचाने वाली सक शक्ति और उष्णाता अर्थात् अंगोंके छूनेसे गरमी सालूम होना तथा रूप सुन्दर आसुन्दर आदि और प्रकाशिता अर्थात् चमक दमक तथा संताप क्रोध आदि भी अग्निही के प्रभावसे—सर्व रम अर्थात् जल धातुके प्रभावसे रसन अर्थात् रसनेन्दी जिसका जीभमें निवासहै सो और रसन नासका कफभी जो जीभकी जड़कोनीचे सदा

रहिकर भोजनका स्वाद बताया करता है और उसी जल धातुसे अंगोंमें शैत्य बंदापन और स्नेह जोवसाआदि चिकनाई देहके भीतर हुआ करती है तथैव चिकनापन जो देह केऊपर ठरकीलीखाल होजाती है और उसी जल धातुसे समर्द्धवक्त्रोदं अर्थात्को-सलतासहित गीलापन भी इसी तीसरे मासमें उत्पन्नहोताहै ॥ ७७ ॥ एवं भूमि धातु के प्रभावसे गर्भ के भीतर तरह तरह के गन्ध तथा घ्राणा जो संघनेवालीइन्द्री नाकमें रहती है तथा गौरव अर्थात् चूतर आदि कुछ अंगों का विशय भारापन तथा मूर्ति अर्थात् कठिनता कडापन और देहका आकार डौल भी इसी तीसरे मासमें यह सब आत्मा आपही प्रहरा करताहै अजन्मा होतेहुये भी—ततःस्पंदते अर्थात् तिससे आगे चौथे मासमें कुछ कुछ हिलताचलता है ॥ ७८ ॥=७५ । ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

७५ अथिकोक्तिः—पचहत्तरिका प्रलोक देखीं मांसकी पिण्डी भी होजाती कही तहाँ यह सिद्धांत नहीं है कि दूसरा महीना लगतेसार एकही दिन में पिण्डी बनि जायगी अर्थात् क्रमक्रम से तीसरेदिन से सूखतेसूखते कठिनताको पहुँचती है—यदाह सुयुतः=द्वितीयेशीतोथानिलैरभिपच्यमानो भूतसंघातोघनोजायते—अर्थात्—सुयु तने कहाहै कि दूसरे महीनेमें नारीके पेटमें रहने वाले ठंढे गरम दो भाँति के पवनों के भूकोरे लीगलिग पकता सूखताहुआ पूर्वोक्त महाभूतोंका ढलकसा समूह क्रमक्रमसे कडापन पकड़ लेताहै(दो तरहका वायु कहा तिसका यह तात्पर्यहै कि नारीके उदर मे वात पित्त कफ तीनों जो रहते हैं तिनमें पित्तहै अग्निका रूप और कफ जलका रूप बंदा होता है तहाँ वातज्व कफकेसाथ मिलाप करताहै तभी टरटा और अग्नि रूपी पित्तसे मिलापकरताहै तब गरम होजाताहै तिसके दोनौंभाँति के ठंढे गरम भूकोरे लगने से गर्भगाढा होजाकर पिण्डीबनतीहै) इसी हेतुसे वात पित्त कफ तीनों उसी गर्भ को मजबूत करनेवाली सहायक ढहरेइसकाप्रनाराभी अगिलावचन देखीं= यदाहभावमिश्रः=मरुतिपित्तकफैस्तत्स्थैः पच्यमानोद्वितीयके कललस्थमहाभूत समुदा योघनोभवेत्—अर्थात्—गर्भस्थानमें रहनेवाले वात पित्त कफोंकारके पचायासुखाया हुआ महाभूतों का समुदाय कलल से बैठिके घनरूप अर्थात् मांसकाअर्बुद होजाता है—इसी बातसे यहभी तात्पर्य ढहिरा कि दूसरे महीनामें जब गाढाहोकर पिण्डबंवने लगता है तभीउसपर (कलल) चमडा तुल्य जालीसी होजाती जो जरायुभी कहातीहै उसीमेंबँधा लपिटा गर्भ आठ नौमहीनेतक सिद्धहोतारहिता औरउसीकललसेवधाफाँसा जन्मलेताहै=तीसरेमहीनाकी व्यवस्था जो कहीगई तिसकेलिये एकदूसराट्टणान्तभी यहाँपर शोचना चाहिये कि जैसे हींग साँठि आदि सब द्रव्योंमें सुराहाते और खाने

लगाने से मालूम देते हैं कि सूत्र पटकाइवेना इकारलेआता पचा उकरना वाउसराना देहकीपोडाईकर देना आंस्बुद्धिमानोंसे पहिंचानेजातेहैं उसीप्रकार आकाशआदि पांचोसहाभूतोंमें गुराहोते और ज्ञानसेपहिंचानेजातेहैं कि सबचीजों तथासबजीवोंके देहमें उन पांचोका क्या क्या गुरा उपस्थित होताहै-तिस पहिंचाननेकेलिये प्रथम उन्हीं पांचोके गुरा कहिजे परतेहैं क्यौंकि उन्हीं पांचो धातुसे शरीर बना रहिया तो जो जो गुरा धातुओं में होंगे सो सब उनसेबने शरीर में भी आवेंगे जैसे गर्भके पहिले महीना से लेकर तीसरे महीना में कहिकर सनभ्तायागया तहाँ पचहत्तरि आदि प्रलोकोंसे यद्यपि यह ज्ञानागया कि आकाशआदि धातुओंके प्रभावहीसे सब लक्ष्णा गर्भ में आतेहैं परन्तु यह न ज्ञानागया कि उन सहाभूतों में कुछ आप भी गुरा होते हैं या नहीं-इसीलिये वैद्यक परिभाषा से लेकर पांचों के पांच प्रलोक यहाँ स्थापन करतेहैं-यथा-सहाभूतानां धातुभूतानां गुराः-शब्दंश्रोत्रेन्द्रियंवापिच्छिद्राणिचविविक्तता विवक्तः कथितास्ते गुराः गुराविचारिभिः ॥ १ ॥ स्पर्शस्त्वगिन्द्रियं चापिलघुतास्पन्दान्तनोःचेष्टाःसर्वशरीरस्य वायोरिते गुराः स्मृताः २ ॥ रूपनेत्रेन्द्रियं पाकः संतापस्तीक्ष्णता तथा वरुणाञ्जाजिष्णुताऽस्य शौर्यं वद्वेर्गुराः अमोः ३ ॥ रसोरसेन्द्रियं शैत्यं रसे हृद्यं च गुरुता तथा सर्वद्रवसमूहश्च शुक्रं वारिं गुराः स्मृताः ४ ॥ गंधो घ्राणोन्द्रियं स्थूलं क्रांतिन्यंगौरवं तथा वसुन्धरा गुराः सते रादिता गराः त्रिदिभिः ५ = अर्थात्-वियत आकाशके गुराविचारने वालोंके इतने गुरा उसमें कहेहैं किः शब्दः कानकी इन्द्रो देहमें अनेकछिद्र विविक्रता जो मिले अंगोंकी जुदाई प्रतीतकरै जिससे हाइनांठ खाल नस नाडी आदि सबमिले और जुदे भी प्रतीत होय(आकाशाच्छुद्रं श्रोत्रं विविक्रतां सर्वछिद्रसमूहां प्रचेति गर्भापनिर्यादचोक्तं) १ ॥ स्पर्श और खाल की इन्द्रो हलुकापन शरीर का फरकना सर्व शरीर की चेष्टायें इतने वायुके गुरा कहेगये २ ॥ रूप नेत्रकी इन्द्रो जो रूपको देखके पाक जिससे अन्नपचै या अन्नसे उत्पन्नसादिक धातुपकै या शरीरके अंगपकै संताप गरसाई तीक्ष्णता खरापन वरुणा काला पीला लालआदि अञ्जिष्णुता चमक दमक अस्य क्रोध शौर्य गुरुता ये अग्नि के गुरा होतेहैं ३ ॥ तथा जलके गुरा इतने कहेगये हैं कि गुरुका रस जो रसन नामाकफ कहाता है तथैव रसेन्द्रो जो जीभ कहातीहै शैत्य ठंडापन जिस किसी अंग में होय रसेह चिकनाई जो किसी चीज में या कहीं अंगमें भीतर बाहर मौजूदहोय गुरुता भारपन जो किसी वस्तुमें या देहके किसी अंग में होय सर्वद्रव समूह अर्थात् मनुष्य आदि जीवोंके देह में रस रक्त आदि जो कुछ पतरा दाकनी चीजें होती हों या संसारी फल तरकारी आदि सब चीजों में जो कुछ

अंग पतरा ढरकना होय सो सब जलही का गुण जानना तथा जीवों के देह में जो शुक्र वीर्य होता है सोभी जलका गुण जानना ४ ॥ तथैव धरती के मृत्तिका तत्व में गुणको जानने वालों ने इतने गुण कहे हैं कि गन्ध दोनों भौतिकी चाहें सुगन्ध वा दुर्गन्ध होय-धारोन्द्नी जो गन्धका परिहृत्तानिसके नाकहै-स्थौल्य जो शरीर या किसी वस्तु में मोटापन देखिपरै-काठिन्य कार्पण-गौरव भारापन ये धरती में होते हैं ५ ॥ (जहाँ बातके गुणकहे तहाँ रौक्ष्य भी समझना कि रूखा पन वायु का गुण होता है जैसा अग्रोक्त गर्भापनियतके बचन में देखी—शौर्याभ्यरौक्ष्यापत्तयौप्रायश्चित्तज्ञानात् संतापवर्णारूपेन्द्रियाणि तैजसानि इति) यह सब तीसरे महीनामें उत्पन्नमात्र होता है अर्थात् इन्हीं बातों का प्रकाश पूरा चौथे मासमें जाकर होता है (तस्माच्चतुर्थमासि चलनादावभिप्रायं करोतीति शारीरकीपि) शारीरक शास्त्रमें भी यह कहा है कि उस तीसरेसे आगे चौथेमासमें गर्भचलने उछलने आदि मध्ये अभिप्राय प्रकट करनेलगता है-इसी आदि शब्दसे बातें भी समझनी जो ८० अस्सी की अचिकीर्त्ति में भाव-प्रकाशके शारीरक द्वारा लिखी जायेंगी-इसीलिये योगीश्वर ने अट्ठारि ७८ मूल श्लोक के अंत में (स्पंदतेततः) यही कहा है कि ततः तीसरे के बाद चौथे मास में फाटने लगता है-इसका विशेष व्यौरा अस्सी मूल श्लोक वाली अचिकीर्त्ति में समझलोना ॥ ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ॥

तीसरे चौथे दोनों मास की संविसे लेकर आगेगर्भिणीका बर्तावा जैसा चाहिये सो उनासी श्लोक से देखी ॥

(गर्भिण्याद्विहृदयायाः सदाचारः)

हृत्तदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्तुयात् । वैरूप्यं मरणं वापितस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ७९

अर्थः—द्वी हृदके अप्रदान से गर्भ दोष को पाता है वैरूप्यको या मरणाको ही तिससे स्त्रीका प्रियकरना चाहिये—अर्थात्—एक हृदय गर्भ का दूसरा गर्भिणी का दो हृदय एकत्र होने से गर्भिणी द्विहृदया कहती है द्विहृदया को लालसा में जिस वस्तुकी चाहना होय तिसका द्वीहृद नाम होता है तिस द्वीहृद को उसकी अभिलाष के अनुकूल यदि अच्छीतरह न देवै तो न देनेसे गर्भ में विरूपता अंगभंग रूपी दोष या निपट मरजानेका दोष जाकर लगता है चाहें पेटके भीतर या बाहर आके मरे-तिससे गर्भिणी को जो कुछ प्रिय लागै सो अवश्य करना चाहिये-यह करना कुछ तीसरे मासके प्रारम्भसे नहीं बल्कि गर्भ जननेके समयसेही जो जो उसकी अभिलाष देखै सो सब साथै ॥ ७९ ॥

७६अधिकोक्तिः—सुयु तने फल हेतु भी दर्शाया=द्विहृदयानारिं द्वौहृदिनीमा चक्षते तदभिलयितंदद्यात् वीर्यवर्तीचरायुयंपुत्रंजनयति=अर्थात्—दो हृदयवाली नारी को दो हृदिनी कहते हैं उसका अभिलाय किया पदार्थ उसे देवै जिससे बली और बड़ी अवस्था वाले पुत्रको जनती है=तथा=गर्भजमने के समय से लेकर व्यायाम आदि भी न करे यह सुयुतमें कहा है =यथा= ततःप्रभृतिव्यायामव्यवायातितर्पणादिवा स्वप्नरात्रि जागरणा शोक भय यानारोहरा वेगधारणा कुक्कुटासन शोशात मोक्षरानि परिहरते=अर्थात्—गर्भजमनेके समय से लेकर इतनी बातें न करे व्यायाम कृषती आदि किसी तरहकी मिहनत बोझ उठाना मार्ग चलना आदिभी समझने . व्यवय मैथुन कर्म अति खाना पीना जिससे पेट तनै.दिनमेंसोना रात में जागना.शोकमानना या पहिला शोकयादकरना भयमानना या भयको जगह जाना धमकीलीसवारी पर चढके कहीं जाना शंका लघुशंका आदि वेगोंका रोकना या भूख प्यास आदि या जिन चीजोंपर इच्छा चले तिनके वेगोंका रोकना . कुक्कुटासन अर्थात् मुर्गाकी बैठक समान घंटे खड़े कारके उकूल बैठना इससेभी गर्भकी हानि प्रायश होती है इन सब कामों को निपट त्यागि देवे ॥ ० ॥ यह तर्कना खड़ी होती है कि तत्कालही गर्भका जमना क्योंकर जाना जा सके जिससे आगेकी इन कामोंका त्याग किया जाय तिसकी भी पहिचान सुयुत में कही है=यथा=सद्योगृहीतगर्भायाः श्रमोऽग्लानिः पिपासासक्थिसदनशुक्रशोशातयोरववंचःस्फुरांचयोनेरित्यादि=अर्थात्—हालहीजिसने गर्भ ग्रहण कियाहो ऐसी स्त्रीके शरीर में तत्काल श्रम थकहरि पसीना आदि चिह्न होने लगतेहैं और मनमें कुछ ग्लानि भी उत्पन्न होती है प्यास भी लगती है हृदफूटन भी कुछ होती है और वीर्य रक्त ये दोनों मिलके जो भीतर बंधने लगते हैं तिसका भी आहट उसी गर्भरोगी को मालूम होता है कि सब ओरसे रक्त खिंचने लगा इसके सिवाय योनिमें पहुँच गया वीर्य फिर बाहर नहीं आता है अर्थात् गर्भ न रहनेकी दशा में सर्वदा मैथुन के अंतमें वीर्य उलटके बाहर निकसि आता है तिससेभगका डार और पुरुष की इंद्रो भी लिस जाती है तभी बुद्धिवाच जानलेता है कि गर्भ रहा यानहीं रहा इत्यादि बहुधा और भी विलसरा बातें वैद्यक शास्त्र के शारीरक प्रकारण में देखो क्योंकि यहाँपर उन बातों का संक्षेपही चर्चा कियागया ॥ ७६ ॥

अब चौथे महीना को आदि लेकर महीनों की व्यवस्था अंगिले प्रलोकों से प्रारम्भ करते हैं ॥

(चतुर्थ मासादेः)

स्यैर्येचतुर्थेत्वंगानांपंचमेशोषितोद्भवः । पष्टेवत्तस्यवर्णस्यनखरोन्णांचसंभवः ८०
मनश्चेतन्ययुकोत्तौनाडीस्त्रायूसिरायुतः । सप्तमेचाष्टमेचैवत्वञ्चांसस्मृतिमानपि ८१
पुनर्धातौपुनर्गर्भमोजस्यप्रधावति । अष्टमेमास्यतोर्गर्भोजातःप्राणैर्वियुज्यते ८२
नवमेदशमेवापिप्रवलयैःसूतिमारुतेः । निःसार्यतेवाणइयंत्रच्छिद्रेणसज्वरः ८३

अर्थः—चौथे मास भरमें उन्हीं अणों की स्थिरता होतीहै कि जिन अणों का स-
सूह तीसरे मासमें उत्पन्न होचुका अर्थात् उस महीनामें केवल अंकुर मात्र उपजे और
द्रोणियों के सूक्ष्म रूप गर्भके भीतरसे उत्पन्न हुयेवे वही सब यहाँ आकर स्थूल हुये.
इसोसे हलना चलना उठलना आदिभी इस चौथे मासमें होताहै—पाँचवें मास गर्भ
के शरीर में लोहू की उत्पत्ति होतीहै—छठे मास बल का बर्ताका नख रोमाओं का
कुछ कुछ संभव होआताहै (चपनः) और ॥ ८० ॥ इसी छठे मासमें यह गर्भ मनुके
चेतन्य भाव से चेतना से भी युक्त होता और नाडीं स्त्रायुनसै सिरा. इनसे सातवें में
युत होता हुआ सातवें और आठवें दोनोंही में त्वचा सांस की सज्जती और स्मृति
यादगारी वाहा होजाताहै ॥ ८१ ॥ तहाँ आठवें मासमें उस गर्भका ओजस अर्थात्
उसके प्राणों का बल स्मृति में आकर अपने को धिरा रुका देख देख फिर धात्री
को फिर गर्भ को प्रकर्ष से दौडता है तिससे आठवें मास में जन्म पाया गर्भप्राणों
से जुदा होजाता है—अर्थात् यहाँ धात्री नाम (धरती और जननी दोनों का
होते हुये भी) धरती को जानना और (ओजस प्राणों का बल होतेभी) उसी गर्भ
का रूप ओजस जानना क्योंकि प्राणाबल भी उसीके भीतर होताहै. तिससे खुला-
सा यह अर्थहै कि गर्भ अपनी स्मृति और प्राणों का बल पायके चंचलता से कभी
हारा डूडता हुआ धरती की ओर भाँकने लगता और वहाँसे चौंकना होकर कभी
फिर गर्भही को तरफ़ किंतु गर्भ रहने के स्थानही को शीघ्र दौड जाता है इस प्रकार
से वारंवार किलौलें कियाकरता है (टपटात जैसे हालका बछेडाकभी घोड़ीसे दूरभाग
जाता कभी लौटकर माता के पास आजाताहै) परंतु इस चंचलता से यहधोखाभी
मदा लगा रहता है कि धरती की तरफ़ भाँकते कभी गिर न जाय बल्कि इसी हेतुसे
धिरला गर्भ जो इसीआठवें मासमेंवाहनिकसआताहै सो जीतानहीं क्योंकि पूरे नौ

मास के काल रूपी शक्ति उसमें नहीं पहुँची (यह व्याख्या यद्यपि ठीक है तथापि अधिकोक्ति में इसीका कुछ और तात्पर्य है सो देखो ॥८२ ॥ फिर नववे या दशवें (यद्य अपिशब्द के ध्वन्यर्थ से कदाचित् पहिलेही सातवें आठवें) महीना में अति बली सति पवनोंके बेगसे प्रेरित गर्भ जरायुमें बँधा हुआ योनि रूपी यत्रकेछोटे छिद्रसे वारा की तरह फटाक बाहर निकाला जाता है सो भी सञ्जर दुसह दुख से योनि यत्र के छोटे छिद्रमें देवाया हुआ (जैसे यत्री में तार खिचाकरता है) उधर सति पवन के बलसे फेका हुआ बाहर आता है उस दशामे कि जब पूर्वोक्त प्रकारों से हाथ पाँव नेत्र आदि सब अंग प्रत्यग तथा इन्द्रियों से परिपूर्ण होजाता है ॥ ८३ ॥

८० अधिकोक्तिः—अस्मीइक्यासी योप्रलोकौमे चौथेसेआठवेतकपांचमहीनेका वृत्तंत जो सक्षेप कहागया तिसका ठीकव्योरा समझिपानेके लिये यहाँ भावप्रकाश का शरीरक लिखते हैं—यथाहुर्भावमियाः—लतीयेमासि शिरसोहस्तयोःपादयोस्तया पिडिकापचसिध्यतिसूक्ष्माद्वावयवास्तनोः ॥ सर्वाण्यगान्युपांगानिचतुर्थेऽस्थस्फुटा निहृहृदयंव्यक्तभावेनव्यञ्जयतेचेतनापिच-तस्माच्चतुर्थेगर्भस्तुतानावस्तुनिवाञ्छति ततोहिहृदयान्यस्यान्वारीद्वीहृदिनीमता ॥ पचमेमानसयथेवृद्धिप्रवाप्यनुवर्द्धते सर्वाण्यगान्युपांगानिभृग्व्यक्तानिसन्नमे ॥ ओजोयमेसचरतिनातापुत्रीमुहुःक्रमात् तेततीह्ला नमुदितौस्यातांजातोनजीवति नजीवत्यष्टमेजातस्तत्रौजोर्नास्थिर्यतः तथापैकृत्यभा गत्वाहीयतेतद्वलिततः—अर्थात्—गर्भके शरीर से तीसरे महीने में सड़की और दो दो हाथ पैरोंकी ये पाँचपिण्डी अक्षरकी तरह निकलने लगती हैं जो सूक्ष्मवारोक और छोटी जो आधे आधे अंग प्रतीत होतेहैं ॥ फिर येही सबअंग इसके निजनिज उपांगों सहित होके चौथे मासमें स्पष्टहोजाते और हृदयभी छातीके भीतर कुछकुछ दिखाई देनेवायहोआता और चैतन्य चेतनाभी कुछकुछ प्रकाश होनेलगतीहै-इसी हेतुसे इस चौथेमासमें गर्भ नानावस्तुओको माताके हृदयद्वारा चाहने लगताहै तभीसे गर्भिणी नारी दो हृदयवाली होजानेसे द्वीहृदिनी कहातीहै ॥ फिर पाँचवें महीना पूर्वोक्त हृदयके भीतर गर्भकामन उत्पन्न होताहै वहीमन छठेमें जाकर प्रबल होताहै फिर छठे महीने गर्भके गस्तक्रमे वृद्धिभी उत्पन्न होतीहै सो आगेको क्रम क्रमसे बढ़ती जातीहै (इसवृद्धिकी सहेली एक महाचेतनानामसे हृदयकमलमेंभी जीवकेसमीप रहाकरती है जिसकी अनेक दासीरूप चेतनाये सबदेहमें फैली रहाकरतीहै इसका व्योरा आगे चलिके देखना) फिर सातवें मासमें वेही सबअंग और उपांग छोटे अंगभी जो चौथे मासमें उत्पन्नहोचुके अतिशय व्यक्त खुल्लासाहोजाते हैं ॥ आठवें में ओजस् खूबचलने

लगता है माता पुत्र दोनोंके तरफ फिर फिर बारंबार क्रमसे अर्थात् एकवार माता में फिर एकवार पुत्रमें फिर मातामें इसीतरह बारंबार ओजस् एकही सो लौटपौट किया करता है तहां दोनों इसीक्रमसे स्नान या मुदितहोते रहते हैं अर्थात् जिससमय जिस की तरफ ओजस् दौड़िगया वही मुदित प्रसन्न मुहखिलासा होगया किन्तु जिसकी तरफसे ओजस् हिसाया वही स्नान उदास कुम्हिलायेमुख होगया यहतात्पर्यतद्द्विग-विवेक्तालोक समझेंगे—ओजस्की व्याख्या जो कुछ८२ बयासी मूलश्लोकवालेअर्थ में लिखचुके उसके जोड़ तोड़पर बुद्धि ठीकजसती है—अत्रोक्त व्याख्या यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकारोंका लेख है तो भी इसपर बुद्धि न जसनेका हेतु केवल यही है कि उन प्राचीनोंने स्पष्ट निराय कुछ नहींदिया कि ओजस् किसको जानना या वह ओजस् किनकारणों से दो तरफ दौड़ता है—अन्यथा (पुनर्वागीस्पुनर्गर्भसो जस्तस्य प्रधावति) इस बयासीके श्लोकमें भी यही अर्थ होता है कि उसगर्भका ओजस् फिर माताको फिर गर्भको दौड़ता है—और—ओजस्का लक्षणा जो शारीरक व्यवस्था में प्रसिद्ध है सो यही है कि सातवां धातु शुक्रवीर्य पकने से उसका सारभूत अंतर खिंचिकर ओजस् पैदाहोता है वह आठवें दमाय हृदय में रहता है वही सब देहमें बल पुष्टि चंचलता रूप रंग चमक दमक चैतन्यता आदि बढ़ाता रहता है उसका पीलावरां कुछसुपेदी कुछ सुखीलिये होता है वही जीवका आधार है उसका नाशहोने में देहनाश होजाता है इत्यादि बहुत बातोंका विस्तार इसका लिखना नहीं चाहते हैं संक्षेप यहाँपर कहा गया ॥ ० ॥ चेतना जो चैतन्य परमात्माका चिदाभास रूपी एकशक्ति होती है, जिसका थोड़ासा आभास गर्भमें इंद्रियों उत्पन्न होनेके साथही तीसरे मास फिर दृढतासे चौथे मासमें आचुकाया उसीका पुरापुरा प्रकाश छठे मासमें आकर हुआ सो सब कहा गया (जहांतहां ऊपरके पाठोंमें देखेंलो) इसचेतनाका अर्थ यद्यपि ज्ञान और बुद्धिपर भी आरूढहोता (बल्कि विशेषकर बुद्धिकानाम भी चेतना कहाजाता है) तथापि जैसा ज्ञान और बुद्धिसे विचारकियाजाता है तैसा चेतनाके द्वारा कोई शोचविचारवाला काम नहीं चलता है तिससे यह ज्ञान और बुद्धिसे भी जुदी चेतना एकतीसरी शक्ति जाननी—किंतु इसचेतनाके होनेसे शरीरके छोटेबड़े सब अंगोंमें गरम ठंडागीला सूखानरम कठोर आदि ह्रुद जानेका बोध या काँटा आदि चुभि जानेका बोधसाध होजाता है पर और किसी शोचविचारकी समर्थ इसमें नहीं है अर्थात् शीत उष्ण पीडा आदिका बोध इसके द्वारा होजानेसे अनंतर तत्काल उसीबोधका प्रभाव जाकर अंतःकरणमें आयर्थालिया करता है तहां फिर बुद्धि उसका निराय अपनी शक्तिसे करलेती है कि यह क्या था और

क्या हुआ इसी हेतु यह चेतना कुछ बुद्धि आपनहीं है बुद्धिके आधीन रहा करती है। इसका निवास यद्यपि विशेष कर त्वचामें रहिता है परंतु चेतना एक ही प्रकार की नहीं बल्कि अनेक प्रकारकी होती है सो सब जुदे अंगों तथा इन्द्रियों में रहित हैं और इन्द्रियोंके अपनेअपने जुदे जोज्ञान अथवाकर्म हैं उनकर्मोंकी शक्ति जो है सो भी चेतनाओंके स्वरूपभेद जानिलेना (इनसब चेतनाओं की अविद्यता एकसबसेबड़ी चेतना आगे चौरासीकी अधिकोक्तिमें किसी प्रसंगसे दर्शाई जायगी) यहाँ उसकी इन्हीं सब दसियोंका प्रमाण समझलेना चाहिये=यदाहचक्रकः=चेतनानामधियानं मनो देहप्रच सेंद्रियः कोशलो मनखा प्रांतर्मलद्रवगणोर्विना=अर्थात्=चक्रने कहा है कि सब तरहकी चेतनाओंकानिवास है सब इन्द्रियों सहित देह और मन भी परन्तु बार और रोमावली और नखोंके निर्जीव अग्रभाग जो काटि फेंकने योग्य होते हैं तिनमें किसी तरहकी चेतना नहीं और अन्तरमल भी जो शरीर के भीतर बिद्या आदि अनेक होते हैं और भीतर ले द्रवोंके गारा भी जो रसरक्त जल मूत्र कफ पित्तस्तन्य आदि हरकनी बहिचलने वाली चीजें द्रव कहाती हैं तिनमें भी किसी तरहकी चेतना नहीं होती है तिससे इन सबके जुदे गारा समूहोंका छोड़ि इनकेबिना सब इन्द्रियों सहित देह तथा मनमें भी चेतनायें रहा कारती हैं यह जानना—इस वचनके अर्थ यद्यपि बहुतही विस्तारवाले हैं सब नहीं लिखे जासकते हैं परन्तु चक्रनेबिद्वानोंके समझने योग्य उत्सर्ग और अपवादकी रीतिसे यह वचन कहा है अर्थात् प्रथम सब इन्द्रियों सहित देह तथा मनको भी सामान्य विधिसे चेतनाओंका अधियान कहा (तिससे बाहर भीतर समस्त देह समझा गया) उसीमें दूसरे अहासे अपवाद रूपी छूट भी कहि दी है कि बालोंका गारा समूह रोमाओंका समूह नखाओंका समूह मल्लोंका समूह द्रवचीजोंका समूह इनसब गणोंको छोड़ि के सब देहमें चेतना रहा करती है (चेतनानां) चेतनाका बहुत्व भी इसी लिये रखा है कि अंगोंके स्थान भेदसे चेतना बहुत प्रकारोंकी होती है और नखोंके अग्रभागही केवल इसलिये कहे कि उनका ऊपरला भाग जो पूरापूरा सुपेन नख होता है उसमें चेतना रहित है सुई गड़ाकर देखीं उससे पीडा आदिका बोध देने लगता और वही चेतनाका रूप है ॥ तिरासीठके प्रलोकमें सूति मारुतकहे सो उसकानाम है जो वायु केवल गर्भका जन्म होते समय प्रवल होके कामदेती अर्थात् गर्भको बाहर निकालती यह स्त्रियोंके पेटमें रहित है नाराका वेगसम गर्भबाहर आजानेपर ईश्वरकी इच्छासे तत्काल बाहरकी हवासे स्पर्श किया हुआ पहिले जन्मोंका स्मरण (जो गर्भमें रहितसेवन कारताया सो) भूलिजाता है=यह निरुक्त के अष्टादश भाग में कहा है=यथा=जातः सवायुनास्पृशेन

स्मरति पूर्वजन्मसंस्मरणं च शुभाशुभम्—अर्थात्—पैदाहोके वहवायुसे हुआ गया पहिले
ता जन्म और मरणा और भलेबुरे कर्मोंको भी नहीं याद रखता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥
से से उत्पन्न हुये गर्भके देहमें क्या क्या गुण होता है सो सब अगिले परिच्छेद भरमें देखना ॥

अथैवमुत्पन्नस्य गर्भस्य देहसन्नेपतः शारीरकव्यवस्था विज्ञापकोऽयं परिच्छेदः (११) एकादशः ॥

इस ग्यारहवें परिच्छेद में उत्पन्न हुये गर्भके देहमें सन्नेप से शारीरक व्यवस्था
कही जायगी कि उसके देहमें भीतर बाहर क्या क्या वस्तु होती है—शारीरक व्यवस्था
वही कहाती है जो शरीरका सब व्यवस्थापन करे—सन्नेपसे इसलिये कहा कि वैद्यक
शास्त्र में शारीरक बहुत विस्तार वाला है यहाँ उस का थोडासा लेकर जल्दी मात्र
संन्यासी को समझावेंगे ॥

(अगादीनां प्रदर्शनं)

तस्य षोडशरीराणि पट्वन्चोधारयन्ति च । पङ्गानियास्त्नाचतस्रहपञ्चाशत्तत्रयम् ८४

अन्तरार्थः—उसके छ प्रकार के विभक्त शरीरों को छे त्वर्चा धारणा करती है
तथा छे अंग भी होते हैं और हाडोंकी संख्या साठ ऊपर तीन सौ ॥ ८४ ॥

अभिप्रायः—इस अक्षरार्थ का अभिप्राय मिताक्षराकार दशति है कि उस आत्मा
के सिर्फ जरायुज अगडज दो भेदों के शरीर जितने संसारमें होते हैं उन्हींका यह चर्चा
है (अर्थात् स्वेदज उद्भिजोंका नहीं) चर्चावाली प्रत्येक जड़े शरीर भी यद्प्रकारके
होते हैं क्योंकि रक्त आदि यद्वातुओंको पकानेवाले छे अग्निओंके स्थान छे होते हैं
सकही शरीरमें तिससे एक शरीर के छ प्रकार माने गये—इस बातका यह व्यौरा है
कि भोजन किये अन्नका रस पैदा होकर उदर के अग्निसे पाँचके लालरक्त होता है
एक इस अग्नि का स्थान दहिंरा १ रक्त अपने टिकाने को अग्निसे पका हुआ मांस
बनिजाता है यह दूसरा दहिंरा २ मांस अपने टिकानाके अग्नि से पका हुआ मेदा ही
जाता है तीसरा दहिंरा ३ मेद अपने टिकाना के अग्नि से पका हुआ हाड बनिजाते हैं
चौथा दहिंरा ४ हाड अपने अग्निसे पके हुये मज्जा बनती है पाँचवां दहिंरा ५ मज्जा
अपने अग्नि से पका हुआ शुक्र होजाता है छठामया ६ इस पिछले वातु का छपांतर

कुछ नहीं होता और वही आत्मा का पहला कोश है यही इसप्रकार से छे कोशों की अग्नि के संबन्ध से शरीरों का छ प्रकार होना समझा गया और अन्न का रस भी यद्यपि सबसे पहला धातु कहाता है जिससे सातधातु गिने जातेहैं परन्तु वह अनियत है तिससे उसकोभी स्थानकी अग्निसे सातवां प्रकार शरीरोंका नहीं मानाजासक्ता है इसीसे केवल छे प्रकार ढहरे--और उन्हीं छे शरीरों को जुदे जुदे पदों में छे त्वचाये धारणा करतीहैं--फिर कहिते हैं कि.रक्त.मांस.मेद.हाड.मज्जा.शुक.इन नामोंके छे धातुही आप केलेकोखम्बकी त्वचाओकीतरह बाहरभीतरके डौलसे परस्पर मिलेहये दिके हैं और (त्वचा कहिते हैं खालको) खालकी तरह तर ऊपर ढांकने का डौल होजानेसे वेही त्वचा ढहरे (किन्तु त्वचा कोई जुदी नहीं) वेही यद्वातुस्वपी त्वचाये शरीर को धाँभीती हैं (सोयह आयुर्वेद में प्रसिद्ध है) तथा उसी शरीरमें छे अंगभी जुदे जुदे होतेहैं अर्थात् बोहाय दोपैर सकशिरकृच्छाती आदि विचलागात्र तथा उसीशरीर में तीन सौ साठ ३६० हाड छोटे बड़ो सभी मिलिके होते हैं जिनका व्योरा अगिले प्रलोकमें आवैरा=मितासराकार ने यह व्याख्या कही परन्तु आयुर्वेदका कोईवचन इसमें नहीं प्रमाणा दिया जिस को देखने से रुंदेह मिटिजाता जो आयुर्वेद से विरुद्ध इसमें मौजूद है ॥ ८४ ॥

८४ अधिकृतिः--मितासरा--कायस्वरूपं विद्युत्वावन्नाहतस्यात्मनोयानि जरायुजां हजशरीरागितानि प्रत्येकं यत्प्रकारागितानि विद्युत्धातुपरिपाकहेतुभूतयडग्निस्थानयो गित्वेन तथाह्यन्नरसोजाठरसिन्ना पच्यमानोरक्ततां प्रतिपद्यतेरक्तञ्च स्वकीशस्थेनारिग नापच्यमानं मांसत्वं मांसं च स्वकोशानलपरिपक्वमेदस्त्वं मेदोपि स्वकोशवद्विना पक्वम स्थितां अस्थ्यपि स्वकोशप्रियिपरिपक्वमज्जात्वं मज्जापि स्वकोशपावकपरिपच्यमान प्रचरमधातुतया परिगामते चरमधातोस्तु परिगितानि स्तीति सखात्मन. प्रथमः कोश इत्नेव यद्कोशाग्नि यो गित्वा त्वयत्प्रकारत्वं शरीरागाम अन्नरसकृत्प्रयत्न प्रथमधातोरनियत त्वान्मतेन प्रकारंतरत्वं तानि च शरीरागितयत्त्वचोधारयति रक्तमांसमेदोस्थिमज्जाशुक्रा र्थ्याः यद्वातवगवरं भास्तभवे गिववाह्याभ्यतररूपेणास्थिताः त्वगिवाच्छादकत्वात् च चस्तः अतस्त्वचोधारयति तदिदमायुर्वेदप्रसिद्धं तथांगानि च यडेव कस्युमचरगायुगालमुत् मांगगाग्निमित्ति अस्थान्तुयदिसिद्धं अतवयमुपरितनयत्प्रलोकभावः प्रसारान्वरात् चर्यामि त्विज्जाने चराचार्याः--अर्थ इसका वहीहै जो ऊपर अभिप्रायसे लिखिचुके और मूल प्रलोक में (घोटाशरीरागि-यत्त्वचोधारयति) इसका कोईभद योग्यरत्ने नहींखोला कि शरीरोंकेछ प्रकार कैसेहोते या छे त्वचा उनको कैसेधारणाकरतीहैं इसीसे टीका

कारोंनेअभ्यन्तर इसका नहीं पायाहोगा यद्यपि यह कहिसकते हैं कि मितासरा के सिवायरीका इसके और भी अनेकहैं तिनके रचकोंने अभ्यन्तर पायाहोगा तिसका यहीप्रत्युत्तरहै कि विज्ञानेश्वरने पुरानीरीका सब देखिभालिउनकेधारांश लेकरपोछे मितासराका निर्माणा किया है यदि उनमें कोई जुदाआशयहोता तो इसमें भी अवश्य धराजाता किन्तु अडभौतिके शरीर कहे तिनकी कोई ठीक मीजाँ नहींमिलती है यहाँपर गर्भ जो पूराहोकर जन्मलैचुका उसकी कायाके भीतर बाहर जो कुछहोताहै सो सब यथाक्रमसे दर्शाना चाहतेहैं यही सब चरक स्युत शाङ्गधर भावप्रकाश आदि आयुर्वेदके शारीरक वर्णोंमें विस्तारसे मौजूद हैं तिसके देखने से विरोध इसमें आताहै कि प्रथम रसधातु जो रक्तआदिसबहीकी प्रत्येकसमय वज्राता रहिताहै तिस को अनियतकहिके सातधातोंकी गिनतीसे निकामिडाला फिर अनपेक्षितअग्निओं के स्थानभेदका प्रसारामाना तिसते शुक्रकेस्थानवाली सातमी अग्निकी यहकहिके छोडिदेनापरा कि शुक्र नहींपकता है न उसका कुछ रूपान्तर होताहै यद्यार्थसे शुक्र के स्थानपर भी अग्निहोताहै और शुक्र भी पचिकर परिणाम को पाताहै तिसते ओजस की उत्पत्ति होतीहै यह भीसक विरोध दहिरा और शरीरके ऊपर जो खाल इसी नामसे सबसे बड़ा आवेद्यन है तिस में सात पतं होने से त्वचा भी सातही गिनी जाती हैं (योगीश्वर ने किसी हेतुसे इन सातोंकी छे त्वचा कही) मितासराने उनसातों का चर्चा निपट छोडिके (यद्वत्त्वचो) इसी पदका अर्थ केवल छे धातों के परस्पर पतं मानेहैं कि जैसे कलाके लकड़ में अनेक बकल तर ऊपरहुआ करते हैं यह भी बड़ा विरोध दहिरा कि मुख्य खालों को नहीं माना जिनसे सब शरीर र्थभा रहिता है और उनका चर्चा कहीं आगे नहीं आबैगा तिससे (यद्वत्त्वचो) इस पदका अर्थ बेही सातखालें माननीचाहिये क्योंकि पाँचके सिवाय ऊपरली वारीक दोखालोंकी एक सानी जिससे सातकी छे ठहिरनेपरभी मुख्य गिनतीमें सातकी सातोरहीं ॥ शारीरक व्यवस्था आयुर्वेद में और अध्यात्म वेदमेंभी होतीहै यद्यपि दोनोंके बीच विरलीवात में कुछ अंतर इस हेतुसे होताहै कि अध्यात्म विद्या वाला केवल संसारको त्यागनेके हेतुसे उसका डील समझानेके लिये शारीरक दर्शाताहै(जैसायहाँ पर योगी पुरुषको समझाय रहें) आयुर्वेद वाला वैद्योंको इसलिये समझाता है कि शारीरक जानने से रोगी या निरोगी को भीतरले बाहरले सब संग पहिंचाने जाय जिससे अच्छीतरह चिकित्सा करसकें—तथापि वह अन्तर कुछ अंतर नहीं कहाता किन्तु दोनों शास्त्रका सिद्धांत एक है इसीलिये मितासराकार ने भी (तविदं आयुर्वेदप्रसिद्धं) यही कहा

कि यह शारीक वृत्तांत वैद्यक शास्त्रमें प्रसिद्ध है अर्थात् आयुर्वेदहीका सहारा लिया तिसमें किंचित् विरोधरहा=इन्हीं कारणाँसे=आयुर्वेद और अष्टाद्यत्मदोनोंके मिलाप से दूसरा अर्थ जो अविरोधी देखिपरा सो हम लिखतेहैं (अपरो२र्थः) तस्ययोडाशरीरा रिया अर्थात् उस आत्माके शरीर योडा छ प्रकारके स्थान भेद वाले होतेह-इसी अर्थ के अनुसार शरीरोंके भीतर आत्मा के टिकने योग्य छे स्थान हुंढने चाहिये जिनमें जीवात्मा रहा करताहै-तहाँ सबसे मुख्यस्थान हृदय कमलहै=यथा=हृदयपुण्डरीके सासदृशस्यादधोमुखम् जाग्रतस्तद्विकशतिस्त्रपत्स्तुनिमीलति आशयस्तत्तु जीवस्य चे तनास्थानमुत्तमम्=अर्थात्-मनुष्यका हृदय भीतर कमलके आकार नीचेको मुहकिये लटका होताहै वह जागते समय मुहखोले रहाकरता और सोतेहुये मुहको मींचलेता है वही जीवके रहिनेका स्थान प्रधानहै और वही चेतनाके रहिनेकाभी मुख्य स्थान है (चेतना उसी जीवकी चिच्छायास्वपी प्रधान एकवृत्तिहै कि जैसे ईश्वरकी प्रधान मायावृत्ति होतीहै वह चेतना भी जीवके समीपही सदा रहिती और सबदेहमें प्रभाव अपना फैलातीहै कि जैसे राजाकाप्रधान मंत्री उसके निकट रहि के देशभरमें आज्ञा फैलाताहै) इस बातको ८० अस्सीकी अधिकोक्तिमें देखी कि तत्रोक्त सबचेतनाओं पर अज्ञोक्त सबसे बड़ी यही चेतना उनकी अधिष्ठाताहै) जीवात्मा का मुख्य स्थान एक यही हृदय कमल है फिर पाँचस्थान उसके और हैं जो पंचकोश कहे जाते हैं (कोशभी शुभ्रस्थानही का नाम है) अन्नमयःप्राणमयःमनोमयःविज्ञानमयःआनन्द मयःइनमेंभी आत्मा आपररहिताहै अर्थात् अन्नमय कोश कहिनेसे साती धातुसहित सबरा ही स्थूल शरीर समभलेना किंतु अन्नही के विकारसे-रस-रक्त-मांस मेद-द्वाद्-सङ्गा-शुक्र- ये साती धातु और इन्हीं सातीके मिलाप से स्थूल शरीर बनाकरता है तिसमें जीवात्मा का निवास यह पहिला कोश कहाताहै १ दूसरे प्राणमय कोशका स्वरूपहै पाँचकर्म इंद्रियोंसहित पचप्राणा वायु जिसमें जीवात्माका निवासहै २ तीसरे मनोमय कोशकास्वरूपहै अहंकारसहितमनका स्थान जिसमें आत्माकानिवासहै ३ चौथेविज्ञानमयकोशका स्वरूपहै पच ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धिकीवृत्तिजिसमें विज्ञान के रूपसे आत्माका निवासहै ४ पाँचमें आनन्दमय कोशका आनन्दही स्वरूप और स्थूलसूक्ष्म दोनोंशरीरोंसे परे जो कारण शरीरहै तिसमें उसआनन्दका मूलरूप होके जीवात्मा रहा करताहै ५ छठा हृदय कमल मुख्यस्थान पहिले कहिचुकेहै ६ सेसे छे स्थानोंके भेदसे जीवात्मा सब देहमें रहिता है तिससे सकही शरीर में छ प्रकारके शरीर कहे ती कुछ विरोध बाकी नहींरहा-एव (यद्वचो धारयति) यह कथन भी

शरीरकी ऊपरली से भीतरली तक त्वचाओं का स्पष्ट है कुछ रक्तादि वातुओं का तात्पर्य इसमें नहीं क्योंकि सब कुछ आगे कहेंगे पर त्वचाओंका चर्चा आगे कहीं भी न आवेगा और इसी जगह इसका कहाजाना भी योग्यथा यद्यपि इतना अंतर है कि आयुर्वेद में सर्वत्र पूरी सात खालों का नियम घंटा घोयहै और यहाँ एक न्यून कही तिसका यही तात्पर्यहै कि ऊपरली चोकी एक मानी कुछ इससे दोय नहींहै- इसी प्रकार वैद्यक में अंग भी कुछ अधिकहैं परयुद्धं छेत्रांगोकोमुख्यजानि (यडंगानि) यह कहाया-इसी प्रकार आयुर्वेदी गद्यतंत्र शारीरकमें तीन सौ हाडों का नियम यद्यपि ठीकहै पर यहाँ तीन सौ साठिकहे सो इन साठि अधिकहोनेका हेतुआगे ६० नव्वेकी अधिकोक्तिमें समझना (अपरोऽप्यर्थः) मूलश्लोक देखो उसीके अन्वय से तीसरा अर्थ ऐसे सिद्धहोता है (तस्योत्पन्नस्यवालस्यः अस्थनांशतत्रययद्यधिकंशोडा शरीराग्रायेयद्यत्वातवस्रधारयंत तथा यद्वचोपि तमेवास्थिपंजरंयद्यत्वातुसहितं धारयंतिआवेद्यंतित्यर्थः सर्वसर्वमिलित्वा यडंगानिशिरः प्रभृतीनितस्यदेहे सिद्धान्ती त्यभिप्रायः)अर्थात् उसके देहमें तीनसौसाठि हाडों कावना एकपंजर जो प्रधानहै ताहि बाकीके छे शरीर धारण करतेहैं अर्थात् (रसःरक्तःनांसःमेदःनज्जाःशुक्र) येहीवातुसंघामें रहितहैं किन्तु इनके बिना हाडोंका पिंजरा नहीं अभिसक्ता तथा छे खालों भी उसी हाडोंके पिंजरे वातुओंसहित को लपेटेहुये धारण किये रहितो हैं क्योंकि खालोंसे लपेटे बिनाभी ये सब चीजें कभी न अभिसकें तिससे ऐसे यह सब मिलिके जो देहबना तिसमें कें आहें शिर छातो चारो हाथपर ॥ ४५ ॥

(अथ नीचे तीनोंसाठि हाडोंका द्वयोर समभावैगे)

(अस्थनांसंस्थितिः)

स्थालेःसहचतुःपाष्ठेतावैर्विशतिर्नखाः । पाणिपादशलाकादचतेपांस्यानचतुष्टयम् ८५

पण्डपंगुलीनांद्वेपाण्यवोंगुल्केषुचचतुष्टयम् । चत्वार्यरत्निरास्थानिजंययोस्तावेदेवतु ८६

द्वेदेजानुरुषोःलोःरुफलकांसतसमुद्भवे । अक्षतालूपरुश्रोणीफलकैचविनिर्दिशेत् ८७

भगास्थ्येकंतथाष्टष्टेचत्वारिंशच्चपंचच । र्धावापंचदशास्थीस्याज्जत्र्यैकेकं तथाहतुः ८८

तन्मूलेद्वेलेलाटाक्षिगडेनासायनास्थिका । पार्श्वकाःस्थालकेःसाद्धर्मयुदेदचद्विसप्ततिः ८९

द्वौगंलकोरुपालानिचत्वारिंशिरसस्तथा । उरःसप्तदशास्थोनिपुरुषस्यास्थिसंग्रहः ९०

अर्थः—स्थालों सहित चौंसठि दांत नख बीस निश्चय जानी क्योंकि बीस अंगुरियों में होते हैं हाथ पाओं की शलाका भी बीसही अर्थात् बीस अंगुरियोंके नीचे आकर

वेद हाथों तथा पैरों में पांच पांच लंबीसी पतरी हड्डी होती वही शलाकाके आकार होनेसे शलाका कहिलाती हैं जिनमें अंगुरियों की जड़ मिली रहती हैं तिनके स्थान भी चारिही जानों किंतु चारों हाथ पैरोंमें नख और शलाका भी रहिते हैं इस गिनती से (शलाका २० नख २० दाँत ३२ दाँतोंके स्थानभी ३२ कुल जोड़िके १०४ एक सौ चारि हाड हुये) दाँतों के स्थान अर्थात् थाउले कि जिनमें दाँत गड़े रहितेहैं उन के नीचे एक और भी कोमल हाड छिपा हुआ रहिता है तिससे वृत्तीस के दूने ६४ मानेगये ॥ ८५ ॥ अंगुरियों के साठि हाड अर्थात् एक अंगुरी में तीन पोरें होते हैं वीसतिया साठि हाड हुये पाष्पांश्यों के दो हाड अर्थात् दो पैरों का पिछला भाग, रंडी पाष्पां कहलाती हैं तिनमें एक एक हाड होता है दो हुये गुल्फों में चार हाड अर्थात् सड़ियोंके दाहने वामे एक एक ऊंची गाँठि भी होतीहै जिन्ह टिखना-टिखनी भी कहिते हैं ऐसे दो पैरोंके चारि गुल्फ हुये तिनके भी चारि हाड समुक्तने चारि हाड अर्जिका नामके अर्थात् दोनों बाहु के पहुँचा तथा भुज दड के दो दो हाड जो अनुमान कुछ कम एक हाथके बराबर हातेहैं सब चारि हुये सब चारिहाड दोनोंगोड में जाँघों तथा कंचोंके होतेहैं इस गिनती से (गोड़ोंके अर्जि ४ बाँहों के अर्जि ४ टिखनों के ४ सड़ियोंके दो हाड २ अंगुरियोंके ६० साठि कुल जोड़िके ७४ चौदह्रि हुये तिनमें ऊपरले १०४ जोड़िके सब १७८ एकसौ अठत्तरि हाड हुये ॥ ८६ ॥ दो दो हाड इन साती अंगामे अर्थात् जान दो गोड़ों के बीचमे घूटों का नाम है जिनमें एक एक परिआ के समान हाड होता है दो कपोलों के अर्थात् गालों की चौहरि मे दो हाड हातेहैं दो हाड ऊरुफतकों के अर्थात् ऊरु सोरो जाँघें तिनके मूल में एक एक फतक जो ढालके समान हाड होता है दो हाड दोनों अश वखोरों के जो भुजा की जड़ होतीहै तिसमें एक एक हाड होताहै दो हाड अश नामक स्थानके अर्थात् कनघटीसे नीचे कान आँख दोनोंके बीच एक हड्डी जो कान के समोप हुआ करती है दो हाड तालय के स्थानपर जहाँ जीभ की जड़ होतीहै समक्तने दो हाड थोराफलकों के अर्थात् कमर के नीचे चतुरों के ऊपरली कोड़ी नाम की हड्डीके दुतरफा जो चौडापन होता है तिसमें भी दो चौड़े हाड (ये सब चौदह २४ टिहरे इनमें १७८ ऊपरके जोड़ने से १६२ एकसौ वानवे कुल हुये ॥ ८७ ॥ भग अर्थात् गुदामें एक हाड तथा पीठिके समस्त पंजरमें पैतालिस ४५ हाड और ग्रीवा घोंच गले में पदह और दोनों जड़ों से एक एक अर्थात् कंधे और छातीके बीच मे दोनों तरफ जू होते हैं जो भागामे हंसुलीके हाड कहिलाते हैं हनु अर्थात् चिबुक नाम टोंडों में एक हाड

१६६

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकाण्ड ।

(ये सब चौंसठि हुये तिनमें १६२ एकसौ बानवे ऊपरके जुड़िकर कुल २५६ दो सौ छपन हाड ठहरे ॥ ८८ ॥ उसके मूलमें दो अर्थात् टोंडीकी जडमें दोहाड और होते हैं तथा ललाट माथे पर दोहाड अर्थात् नेत्रों के दो हाड गंड अर्थात् कपोल और अस स्थान दोनों का बीचहै सो गंडस्थल कहाता है दोनों गंडस्थलों के दो हाड समुभने (असस्थान का चिह्न पहिले सत्तासी के प्रलोक में कहि चुके वही जानना) और नासा घनास्थिका कहलाती अर्थात् नाक में एकही हाड घन संज्ञा वाला जिसके अङ्गार में चारों तरफ छिद्रमार्ग हैं होता है बहत्तर ७२ हाड दोनों पाँसुओं में होते हैं अर्थात् बाल के नीचे पसुरियोंके हाड अपने स्थालों सहित और अपने अर्बुद नामके सहायक हाडों सहित छत्तीस छत्तीस दोनोंतरफ होते हैं (इन छत्तीसमें तीन भाँति कहीं तिससे बारह पसुरी बारह स्थाल बारह अर्बुद ठहरे) स्थालोंका अर्थ जैसा पचासीके प्रलोकमें कहा गया तैसा यहाँ भी समुभना (ये सब ८१ इक्क्यासी ठहरे इनमें दो सौ छपन २५६ ऊपरके जुड़िकर कुल ३३७ तीन सौ सैंतिस हाड हुये ॥ ८९ ॥ दो हाड शख नामके कनपटियाँ कहातीहैं अर्थात् भौंह और कानोंके बीचमें असस्थान से कुछ ऊपर जो पटियासी चौड़ा हाड होता है वही दोनों ओरके दो शखजानौ तथा शिरमें चारि कपाल खोपड़ीके ठीकरेसे निकसते हैं ऊरु के सबह अर्थात् छाती से हृदय तक समस्त हाडों की तादाद १७ सबहसंख्यासे होतीहै (ये सब त्रैस ठहरे इनमें ३३७ तीनसौ सैंतीस ऊपरके जुड़िकर कुल ३६० तीनसौ साठि हाड पुरुष के देह भरमें कहेगये = अर्थात् चिकित्साशास्त्र के शारीरक में तीनिहीसै हाडों का नियम सर्वथा ठीक और प्रसिद्ध है तथापि यहाँ साठि उपराल कहेगये तिसका यहीकारण है कि वैद्यक में वत्तीस दाँतही गिनेजाते हैं यहाँ उनके स्थाल भी गिनती किये गये तथा पसुरियों के साथ उनके स्थाल भी गिनती में लेलिये गये इसी तरह और भी कुछ भेदहै तिससे कुछ दौय वा विरोग नहीं आता है केवल मुख्य प्रयोजन पर दृष्टि राखनी चाहिये कि संज्ञासीको संसार का स्वरूप समुभातेहैं (अब अगिले प्रलोकों से इंद्रियों को व्यवस्था कही जायगी ॥ ९० ॥

(स्वविषयसहितानिज्ञानेन्द्रियाणि)

गन्धरूपरसस्पर्शशब्दाभ्यविषयाः स्मृताः । नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रेचेन्द्रियाणि च १ ।

अर्थः—गंध•रस•रूप•स्पर्श•शब्द•ये पाँचो विषय यथा क्रमसे पाँच इंद्रियों के भोगरूप होते हैं अर्थात् नासिका•जीभ•नेत्र•त्वचा•कान (इन्हीं इंद्रियोंके द्वारा ये

पाँचों विषयपुरुष के बंधन हेतु होते हैं क्योंकि इनको ये इन्द्रियां ही जुदे जुदे निज निज विषयकी जानती पहिँचानती और चाहना कियाकरती हैं और कोइ नहीं ॥ ६१ ॥

६१ अधिकोक्तिः—यह सदेह न करना कि इन्द्रियोंकी उत्पत्ति पहिले कहि चुके थे दुबारा यहां क्यों कहिने लगे—क्योंकि वहां पचहत्तर आदि प्रलोकों में गर्भका भीतरला प्रसंग था उसमें यह चर्चा किया गया था कि गर्भ के तीसरे महीना में आत्मा आपही सब अंग और इन्द्रियोंकी चाहना करिके उत्पन्न करिलेता है तिससे गर्भकी पिंडीमें इन सब चीजोंके अक्षर आपसे आप होआते हैं—और—यहां जो गर्भ पूरा होकर जन्म पानेसे बाहर आया तिसके सब अंगोंका विस्तार द्यौरे वार समु- भ्नाते हैं कि उसके शरीर में भीतर बाहर क्या क्या वस्तु होती है—सो हाडोंका पिंजरा खाल मांस आदि से बंधा हुआ पहिले चौरासी के प्रलोक में दर्शाया तिसके सब हाडों की व्यवस्था ६० नचरे प्रलोक तक समुभाइके यहां उसकी इन्द्रियां भी दो भांतिकी समुभाने लगे क्योंकि इन्द्रियों को होने बिना हाड मांसके पिंजरा से कुछ काम नहीं चलसक्ता ॥ ६१ ॥

(कर्मन्द्रियाणिच)

हस्तोपायुरुपस्थं च जिह्वापादौ च पंच वै । कर्मन्द्रियाणि जानीषान्मनश्चैवोभयात्मकम् ९२

अर्थः—दोनों हाथ १ गुदा २ लिंग ३ मुख वारणी ४ दोनों पैर ५ ये पाँचों अंग पाँच काम जुदे जुदे कानेके हेतुसे पाँच कर्मन्द्रियां कहते हैं और मन भी एक इन्द्रो है सो उभयात्मक जानना ॥ ६२ ॥

६२ अधिकोक्तिः—हाथों का कर्म लेना उठाना आदि प्रसिद्ध है तइव गुदा का काम है बिद्या आदिको त्यागना तथा लिंगका काम है आनंद भोगना गर्भ धर देना आदि तथा जीभके उपलक्षरा से मुह की वारणीका काम है बातकहिना आदि तथा पैरोंका काम है चलना आदि—और मनका रूप है अतःकारण में सो उभयात्मक इस हेतुसे कहाता है कि ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्री दोनोंतरहके दग्धगौं पर प्रभाव अपनाराखता है कि इसकी इच्छासे सब इन्द्रियां अपने कामोंमें लगती हैं इसकी इच्छा बिना सब चुपकी रहती हैं किंतु सबका प्रेरक एक मन है ॥ ६२ ॥

गुदाशयः—यह वार्ता यदि रक्वो कि यहाँ तक शरीर का आकार हाथ पैर नाक कान आदि इन्द्रियां भी समुभाइ चुके—आये ६३ तिरानवे से ६६ नित्यानवे तक सात प्रलोकों में शरीर को छोटे सोटे अंग वा स्थान भी दर्शावेंगे सो किसी क्रम

के साथ (सलिलेवार) नहीं कहें कि जिससे यह जानाजाय पहिले भीतर के फिर बाहर के या पहिले बाहर फिर भीतर के अथवा पहिले ऊंचे ऊपर ले अंगके फिर निचलेके हों सोभीनहीं—अर्थात् केवल अंगों वा स्थानों के नामों को आगा पीछा समुझाने विना कहिते चले जायेंगे—तहां बिरले अंग वा ठिकानों के नाम दो दोबार भी कहिने में आजायगे तिसका आशय यद्यपि मूलकार और टीकाकारने भी नहीं खोला तौभी तात्पर्य उसका यही है कि देहके भीतर और बाहर के भेद से दो बार नाम लिया गया इसी का दृष्टान्त जैसे (६३ । ६४) प्रलोकौंमें नाभि शब्द दो बार कहा जायगा तहां एकवार जो पेटके बीच में तुंदी कहलाती है तिसको समुझिलेना और दूसरी वार उसी तौंदी के भीतर जो नाभि कच्छुआ के डौल सम होती है तिसको जानना इसी प्रकार हृदयको दो वार समुझना कि एकवार छातीके बीचमें जो हृदय का ठिकाना है तिसका नाम और दूसरे वार उसी छातीके भीतर जो कमल फूल के डौल सम हृदयका आकार होताहै सो दर्शाया है—इसी प्रकार और भी वृक्क आदि जो दो दो वारकहे जायंतिनको मूलप्रलोकौंके अर्थवाला पाठयहां मिलाकर समुझिलेना॥

(शरीरस्य बाह्याभ्यंतरज्ञानं)

नाभिरोजोगुंशुक्रंशोणितशंखकौतथा । मूर्धात्कंठहृदयंप्राणस्यापतनानिच १३
 वपावसाऽवहननंनाभि क्रोमयकृत्छिहा । क्षुद्रांत्रिवृक्कौवस्ति-पुरीपाधानमेवच १४
 ग्रामाशयोऽपहृदयंस्थूलान्त्रंगुदपवच । उदरचंगुदौकोष्ठौविस्तारोयमुदाहृतः १५
 कनीनिकेचाक्षिकुटेश्चफुलीकणपत्रकौ । कर्णौशंखौभ्रुवौदंतवेष्टावोष्ठौककुंदरे १६
 वंक्षणौवृषणौवृक्षौश्लेष्मत्संयातनौस्तनौ । उपजिह्वास्फिजौवाहृजंघोरुपुचपिंडिका १७
 तालुवरवास्तिशोर्षचिबु रंगलशुद्धिके । अवटश्रैवमेतानिस्थानान्यत्रशरीरके १८
 भक्षिवर्णचतुष्कंचपद्मस्तहृदयानिच । नवच्छिद्राणितान्येवप्राणस्यापतनानितु १९

अर्थः—नाभि•ओजस•गुदा•शुक्र•रक्त • दोनौं शंख कनपटी•सर्वांशिर• अंस दोनौं कांवे•कट•हृदय•येअंग उपअंग हैं और प्राणकेभी स्थानहैं—अर्थात्—पंचप्राणोंमें एक समानवायुजो सर्वशरीरमें फैलतारिहताहै तिसकानिवास इनस्थानोंमें अधिकहै॥६३॥ फिर भी इसका विस्तार दर्शाते हैं कि—वपा•मेदा—वसा जो मेदमांसकासार एकभाति को चिकनाई होतीहै—अवहनन•फुफुस कहाताहै—नाभि•यहृदुवाराकही सो भीतर बाहर दो जगह के तात्पर्य में समझना—क्रोम•यह फुफुस का दूसराभेद पुष्कसकहाताहै—यकृत•यह कालेयक भी कहाताहै—प्लीहाभी उसीका दूसरा भेदहै—भ्रुवांघनामखोपतरी अति—वृक्कको अर्थात् वृक्क वृक्क नामोंके दो गोले पेटमें होतेहैं—वास्ति

जो मूतभरा रहिनेका कोश है—पुरीया धान जिसथैली में विष्टा जमा रहिताहै॥६५॥
 आमाशय जिस थैली में भोजन किया अन्न जाकर पहिले पहुँचता है—हृदय जो छाती
 के भीतर कमल का फूलसा आँधे मुखहोता है—स्थूलांत्रण्डे एव(अर्थात् मोटीआंत जो
 गुदाही में होती जो काँच काछ नामसे प्रसिद्धहै—उदर पेट—गुदीकोयद्यो अर्थइसका
 अधिकोक्तिमें देखौ—यहभी सबउन्हींछे अंशोंका विस्तारकहा जोचौरासी मूलप्रतोक
 में हाय पैर सड़ धड़ कहेथे(इनमेंभी बहुतेरे उपभंग सेसेहैं कि जिनमेंप्राणोंका निवास
 होताहै यद्दतिरानवेके प्रलोकसेसंबंध चलाआताहै) इसवातको ६६ निन्यानवेके प्रलोक
 में समझौ ६५ ॥ कनीकोदे) दो आँखोंके तारे कनीनिका कहातेहैं २ अक्षिकृत्भी दो
 होतेहैं जो नाकआँखिबोनोंकी संविहें २ शष्कुली किंतु कर्णाशष्कुलीभीदोनोंकानकी
 दोहोतीहैं अर्थात् कानका वह भाग जिसमेंअंती यत्तेआदिभयरा छेदिके लटकानेजाते
 हैं २ कर्णापत्रभी दो हेतेहैं अर्थात् कानोंकी निचली रीयिका जोसबसेछोटी तिकोनी
 सीहोती वहकर्णापालीभी कहातीहैं २ कर्णा दोनोंकानभी छिद्रोंउदित सबअग मिल
 केजुदे समझने २ शंख दोनों कनपटियाँ २ दोनों भौंह २दंतवेद्यो समूह नीचे ऊपरके २
 ओष्ठो दोनों ओठ ऊपर नीचेके २ ककुन्दरे जाँघोंके कूपक दो कूले प्रसिद्धहैं २ ॥६६॥
 वंशराी द्वौसांग सौंकी दो संघिजाननी २ दृयराी दोनोंआँड २ टुक्की द्वौ टुक यावृक्क
 नामके दो गोलै जोकफ मांसके बनेहोतेहेपेटमें २(इनका द्यौरा सत्तानवेकी अधिकोक्ति
 में देखौ) स्तनीचप्रलेप्ससंघातजौ अर्थात् दोनों छातीके चिन्न भी कफ मांसके समूह
 से बने होतेहैं २ उपजीभ कौआ काक जो हलक में मांस कील सी लटकती हेती
 और जलभी देतीरहित है १ स्फिजौ दोनों चूतर २ दोनों भुजा २जंघाओं तथा ऊरु-
 आँमें एकएक पिरिडका अर्थात् छोटीबड़ी चारौ जाँघमें समीला टौर जो चलकता
 रहिताहै सो पिरिडकाकेनामसे दर्शाया ये सबचारिहेतीहैं ४॥६७॥ तालुदरअर्थात्
 तालुवेका उदर अवकाश जो मुहमें खाली जगह रहितोहै १बस्ति शीर्थ अर्थात् बस्ति
 जो मन्नाधार कोशहै तिसका शीर्थ ऊपरला भाग जो पेटके नामसेप्रसिद्धहै १ चिब्रक
 टोंडो प्रसिद्ध है १ गलशुण्डिका गलसुआभी दोही प्रसिद्धहैं जो गालोंके भीतरदोनों
 तरफ मांसकी वारीक साँडसी प्रतीतहोती हैं २ अचट गड़हिला अर्थात् मुहके भीतर
 घाँटी जिसमें अन्न उतरिके जाताहै १ इतनेस्थान इसमनुष्यके शरीरमें हेतेहैं॥ ६८ ॥
 तिसमेंभी नवौंमें चारिप्रकार के बर्रां काला पीला लाल सुपेद होतेहैं और हाय पैर
 हृदय येभी तथा नौछेद भी जानने दो कानके दो आँखों के दोनाकके एक एक मुख
 गुवा लिंग इनके ऐसे नौछेद इसी निन्द्यशरीर में होतेहैं (निन्द्यत्व का लसया आने

फिर उसके नीचे कफका आशय फिर उसके नीचे आमाशय कचे अन्नका टिकाना तिसका डौल चरक्यों कहि राये कि नाभि और स्तनोंके बीच जो गडहिला देखि परता है उसी के भीतर आमाशय होता है इसकी साप भी वाग्भटने यों कही है कि नाभसे एक विलाँद ऊपर और कट से एक विलाँद नीचे वही गडहिला प्रत्यक्ष है तिसके भीतर छे अंगुर की चौड़ी थैली होती है बाकी यही टिकाना हृदय कहता है ॥

॥ ३ ॥ हृदय की तरहदीमें यकव प्लीहा दोनों रक्तके स्थान हैं इन दोनोंमें मुख्य टिकाना बाँधे रक्त रहिता है इसी जगहसे सब देह में पहुँचता है ॥ यकव-प्लीहा-क्या चीज है सो देखौ ॥ प्लोहा एक भीतर का अंगस्थान है जो रक्तहीसे उत्पन्न होता किन्तु बासी चूचीके नीचे उसका टिकाना जो वातपित्तों के योग से गाड़ी रक्त की गादिका छीछड़ासा कुछ कोमल कुछ कठोर होता उसमें रक्त भरा रहिता है उसी में रक्त पहुँचाने वाली सिरा नाड़ियों की जड़ गड़ी रहित है तहाँ से लेले कर अपनी योगियों से सब देहमें सँचती रहित है तिससे देह सखने नहीं पाता ॥ ऐसेही दूसरा यकव है सो दाहनी चूची के नीचे रहिता और इसमें भी सब लक्षणा उसी के समान हैं कि रक्तहीसे उत्पन्न भया रक्तही इसमें रहिता तथा रंजक नामी पित्त भी रहिता जो अग्नि का प्रभाव है उसी पित्तसे रक्ता रंग बदलिके रक्त बन जाता है यह चौथे अंक से देखौ ॥

॥ ४ ॥ खायें पिये अन्नों का रस जो पैदा हो वह यद्यपि सब देहमें फैलता रहिकर देहको सँचता है तोभी उसके रहिने का मुख्य टिकाना हृदय होता है कि जहाँ एक थाउले में भरा रहिकर सबअंगोंमें जाता है क्योंकि इसको पैदाहोते सार समान नामी पवन ऊपरको खींच पहिले हृदय पास रखदेता है ॥ जत्र समानसे खींचाहुआ रस यकवके स्थानतकजाता है तहाँ रहिने वाले रंजकपित्तसे पकायाहुआ लाल रगतको पाकर वही रक्तकहाने लगता है ॥ देहको सिंचाई यही सुपेद रस अपने जुदे तीरे से करता और पूर्वोक्त लालरक्त अपने जुदेप्रकारसे करता है (उसके स्थानपरजानेसे यहभी लालहोता है परंतु जो अपनी जुदे सिंचाईवाले कुण्डमें रहिता है तिसका स्थान उसमें नीचेउसीके लगना जानना क्योंकि ऐसे कर्त्रेदिकाने सबहृदयके समीपही हैं) सोभी देखौ ॥ हृदयसे बासे को भुंक्ता हुआ प्लोहसे नीचेके टिकाने पर पुष्कल होता है वह पकते हुये रक्तके फेना से वायु मिलिके बनता है इसी में आकर सुपेद रस टिकता है इसी जगह से नाड़ियों के मार्गसे सबदेह में जाता और उसीसे चौडकर लाल होनेकेलिये यकव प्लीहमें भी जाता है ॥ इसीका दूसरा भैया रक्त और पवन के योग से अर्थात्

रक्तका फेना और वायुके मिलापसे बनता सो दाहनेको भुंक्ता हुआ यकृत के नीचे होताहै उसके नाम कर्शहै • कालेयक • तिलक • क्लोम • फुःफुस • इनमें फुःफुस नाम प्रधान है (ये फुःफुस और पुष्कस दोनों उसी तरह भाता हैं जैसे यकृत प्लीहा दोनों कहेगाये) इस फुःफुसमें जल भरा रहताहै उसीमें जल सोचने वाली सिरा नाड्डियोंके मूल खोर लगे रहतेहैं यही टिकाना पिपासा दूर होनेका कहाता है ॥ इनके नीचे दो गोलो हैं तितका व्योरा पांचवें अंकसे देखीं ॥

॥ ५ ॥ कफ रक्त इन दोनोंका अंतरभूत सार मिलिके दो गोलोंका जोडा बनता है सो एक बुक्क दो नामोंसे कहाता है ये दोनों भी दाहने वामे वरावर में मुकाबिले पर उन्हीं पुष्कस और फुःफुस के नीचे पेटमें रहते हैं पेटही का उपखंग कहाते और पेट में रहनेवाले मेवो धातु को पुष्ट करते रहते हैं ॥ फिर इनके नीचे पेट में आँतें रहा करती हैं तिनका हिसाब लिखना छोडदिया • येसेही अनेक उपअंगोंको विस्तार भय से छोडिके अंडकोश का थोडा व्योरा लिखेंगे वह छठे अंकसे देखीं ॥

॥ ६ ॥ एयरा जो पुरुष की आंड कहाते हैं वे तीन चीज मिलिके बनतेहैं अर्थात् कफका सार रक्तका सार मेदका सार इन तीन सारों से धीर्य को शरीर में फोताने बहिने वाली सिरा नाड्डियोंके आधार येही दोनों आंड हैं अर्थात् उनके खोर इन्हींमें जड़की तरह लगे जमेहैं • पुरुष का पौरुष किंतु इंद्रो सहित धीर्य थाभनेवाले ये दोनों आंडहैं ॥ स्त्रीके इतना भेदहै कि लिंग आंडोंके बदले योनि होती है वह शंख की नाभिके आकार डील वाली होतीहै उसके भीतर शंखहीके से तीन आवर्त फेर होते हैं उसके सबसे भीतरले तीसरे फेरमें (गर्भशय्या) गर्भ टिकनेका यंत्र रहा करता है ॥ गुदा सबही की अर्थात् स्त्री पुरुष नपुंसकों की एकहीसी सादेचार अशुल गरिरी होती है उसमें भी तीन फेरे शंखहीके समान हैं डेढ डेढ अंगुलके अंतर से ॥ हृदय से गुदा तक आशय यद्यपि अनेक हैं पर उनमें से मुख्य मुख्यों के नाम आगे लिखते हैं सातवें अंकसे देखीं ॥

॥ ७ ॥ रक्तका आशय ऊपर कहिचुके क्लोदन कफका आशय • आमाशका आशय • पाचक पित्तका आशय जो अग्न्याशय भी कहाता है • पवनाशय • पक्काशय • मलाशय • मवाशय • इनके मध्ये इस वचनको भी शोचना (उरारक्ताशयस्तस्मादक्षः श्लेष्माशयः शृतः आमाशयस्तुतदधः तदधीदहनाशयः तथा आमाशयादधः पक्काशयादूर्ध्वं तुयाकला ग्रहणीनामका संवेकस्थितं पाचकाशयः कर्ध्वमग्न्याशयोनाभेर्मध्यभागोदयवस्थितः तस्योपरितलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः) कता एक भिल्ली का नामहै जो ग्रहणी

१०७ की अधिकोक्ति में देखना) ये नव छिद्र भी प्राणों का स्थान होते हैं तथैव
 ब्रह्मणवे प्रलोक से कर्मीनिका आदि यद्वांतक जितने उपग्रह समुभाये गये उनमेंही
 बहुतेरे स्थानप्राणवायुका निवासरूप होतेहैं-इसबातका विशेषव्यौरा १०२ एकसौ
 दोकी अधिकोक्तिमें समझना जहाँ मर्मस्थानोंकी व्यवस्था कही जाय ॥ ६६ ॥

६३ अधिकोक्ति—इन्हीं सातप्रलोकों में जितनेग्रह भोतर बाहरके सिर्फनामोंसे
 प्रकाश कियेगये उनमें जोभीतरले ग्रहहैं तिनका व्यौरा अच्छीतरह तभी जाना जास-
 काहै जब यहाँ समस्त शारीरक लिखाजाय और शारीरकहै सो चरक वाग्भट आदि
 ग्रन्थोंमें बहुतबड़ा विस्तारहै क्योंकि यहाँ लिखनेका अवकाश उसको मिलै-तो भी
 उन्हीं ग्रन्थोंका संक्षेप चुनिकर थोड़े से वचनमात्र लिखते हैं कि जिनसे एक प्लूहा
 आदि बिले अणोंका स्वरूप पहिंचाना जाय ॥

॥ प्र०१ ॥ जीव और चेतनाका मुख्यस्थान हृदय कमलमें होताहै तिनका व्यौरा
 चौरासीकी अधिकोक्ति में किसीप्रसंगसे लिख चुके तहाँ देखौ- फिर उसी हृदय में
 रस कफ रक्त जलआदि जैसे रहितेहैं तिनका व्यौरा आगे संग्रहवचनोंसे देखौ उसीमें
 एकआदि भी समझलेना ॥

॥ द्वि०२ ॥ अथाहुःप्राचीनाः ॥ उरोरक्ताशयस्तस्मादवःश्लेष्माशयःस्यूतः आना
 शयस्तुतदवस्तल्लिंगं चरकोऽवदत् ॥ नाभिस्तनांतरेजंतोराहुरामाशयंबुधाः । नाभे
 विंतिस्तिमाचंचकंददेशात्तदंगुलम् । असस्तद्विजानीयाच्छेयंतुहृदयंमत्तम् ॥

॥ त्रि०३ ॥ यत्कल्पीहाचरक्तस्यमुख्यस्थानंतयोःस्थितम् ॥ शोणितान्जायतेप्लूहा
 वामतोहृदयादवः रक्तवाहिसिराणांसमूलंख्यातोमहार्थिभिः ॥ अवोदक्षिणतश्चापि
 हृदयाद्यत्कतःस्थितिःतत्तुरंजकपित्तस्यस्थानंशोणितजंसतम् ॥

॥ च०४ ॥ सर्वदेहचरस्यापिरसस्यहृदयंस्थलम् समानमरुतापूर्वंयदयंहृदयेधृतः ॥ य
 दासोयक्षयातितप्रचक्रपित्ततः रागं पाकंचसंप्राप्यसभवेद्रक्तसंज्ञकः ॥ हृदयाह्वाम
 तोऽधश्चपुष्कसोरक्तफेनजः ॥ रक्तादनिलसंयुक्तात्कालेयकसमुद्भवः (कालेयकः क्लो
 मइत्यर्थ) अधस्तदाक्षिणोभागेहृदयात्क्लोमतिथिति जलवाहिसिरामूलंश्लेष्माच्छादनक
 न्तमत्तम् (क्लोमं-तिलकं-फुःफुसः) ॥

॥ पं०५ ॥ कफशोणितयोः सारादृक्षयोर्युगलंभवेत् तौतुष्यिकरौप्रोक्तौजटरस्यस्यमेदसः ॥

॥ य०६ ॥ एयसोभवतःसारात्कफासृग्भ्यांचमेदसः वीर्यवाहिसिरावायोरौमत्तौपौरुष्याव
 दौ ॥ शंखनाभ्याहतिर्योनिःश्यावतासाचकीतिता तस्यास्त्वतीयेत्वावर्तेर्गर्भशय्याप्रति
 थिता ॥ गुदस्यमानंसर्वस्यसाधंस्याचतुरंगुलम् तत्रस्युत्थलयस्तिमःशंखावर्तेनिभास्तुताः ॥

॥ स०७ ॥ कृपाऽऽपित्तवातानामाशयामलमूत्रयोः ॥ पुरुषेभ्योऽधिकप्राचान्ये
नारीणामाशयाच्चयः वरारामाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयांतरे स्तनौ प्रवृद्धो तावेव बुधैः
स्तन्याशयो मतो ॥ स्तनौ पुंसस्तन्या नार्या विशेय उभयोरस्य श्रीवनागमने नार्याः पीवरो
भवतः स्तनौ गर्भवत्याः प्रसूतायास्तावेव क्षीरपरितो ॥

॥ अ०८ ॥ यात्यानाशयमाहारः पूर्वप्राणानिलेरितः साधुर्यफेनभावं च यद्द्रुसोऽपि
लभेतसः ॥

॥ नव०९ ॥ आमाशयादधः पक्वाशयादूर्ध्वतुयाकला ग्रहणीनामकासैव कथितं पा
चकाशयः ॥ ऊर्ध्वमस्तन्याशयो नाभे मध्यभागेऽवस्थितः तस्योपरितिलज्ञेयं तदधः प्र
वनाशयः ॥

॥ दश०१० ॥ पाचकं तिलमांसं स्यात्काठिन्यान्नास्यदोयता ॥ पित्तं पंचात्मकं तच्च
पक्वाऽऽशयमध्यगं पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयस्य त्यक्तद्रवत्वं पाकादिक
मंगाऽऽनलशब्दित्तस्य पचत्यन्नं विभजते सारकिञ्चोऽप्युक्तया तत्रत्यमेव पित्तानां शोयाराणा
मध्यनुग्रहसकरो तिवलदानेन पाचकं नाम तस्मृतम् ॥

॥ एका०११ ॥ अग्निर्भिन्नगुरोर्युक्तः पित्तभिन्नगुरोर्युक्तश्च द्रवंस्निग्धमयोर्गंधपित्तं
बहिरतोऽन्यथा ॥ तस्मात्तेजोमयं पित्तपित्तोऽस्मायः सशक्तिमान् ॥ वामपादाश्रितं नाभेः
किञ्चित्सोमस्य मंडलस्य तन्मध्ये मंडलं सोमं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः जरायुमानप्रच्छन्नः
काचकोशस्य दीपवत् ॥

॥ द्वा०१२ ॥ जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः सौम्याद्रसानाऽऽवदानो वि
वेक्तुर्नैव शक्यते ॥ नाभो मध्ये शरीरस्य विशेयात्सोममंडलस्य सोममंडलमध्यस्थं विद्यात्सु
र्यस्य मण्डलस्य प्रदीपवत् तत्र गुरांस्त्यतो मध्ये हुताशनः ॥ सूर्यादिविद्यया तित्प्रंस्तेजोयुक्तौ
गंधं स्तिभिः विशोययति सर्वां रिणापत्वं लानिसरांसि च तद्वच्छरीरिणाभुक्तं ज्वलनो नाभि
माश्रितः स्य रवैः पचते क्षिप्रं नानाद्वयं जनसंस्कृतम् ॥ (वतेजः समुदायात्मकस्यापि पित्त
स्य तेजोभाशोऽग्निरिति अनेनैव कारो न पित्तमध्यग्निवन्मन्यते ऽतित्तापितायो गोलव
दितिसर्वस्यैव सिद्धांतः) तस्य चक्रे वलाग्नेः क्रियत्स्रहं प्रति लिलख्यते २थे ॥ स्थूलकापेयु
सत्वेयुयवमात्रप्रसारातः ॥ द्रुसकापेयुसत्वेयुतिलमात्रप्रसारातः ॥ कृमिकोटपतरोयु
वालमात्रोऽवतियते—अर्थात्—ये वारह अंक एकही वातके जुदे जुदे वारह भेद करिके
धरेणये हे कि इसी क्रमसे अर्थोके भेद भी जुदे जुदे लिखने और मोलानसे पढने को
सुगमता होय सो सब दूसरे अक्षरें देखी ॥

॥ २ ॥ यदां पुराने ऋषिलोगही कहिते हैं कि ॥ हृदय में पहिले रक्तका आशय

कहाती है बाल्मीकि इन वचनों का अर्थ लिखना यहां पर आवश्यक नहीं है सातवें चक्रस्थान के श्लोकों पर ध्यान करो ॥ स्त्रियों के तीन आशय और भी पुरुषों से अधिक होते हैं तिनमें एक ती वरिणा जो गर्भ धरने का यंत्र है तिसके रहने का स्थानही गर्भाशय कहाता वह पित्त और पक्काशय के बीच होता है और दो आशय दो स्तनों के दूधभरे कहाते हैं उसी दशामें कि जब दूधसे भरे किंतु स्तन यद्यपि पुरुष स्त्री दोनों के एकही से होते पर दोनों में जुदाई सिर्फ यही है कि नारी के जीवन अवस्था में बड़ो मोटे पुष्ट होके गर्भिणी होनेपर दूधसे भरते हैं ॥

॥ ८ ॥ आमाशय जो बताया गया पहिले उसीमें भोजन किया हुआ आहार प्राणावायु से प्रेरितक्रिया धक्कादिया पहुंचता है पहुंचके उसजघे रहनेवाले क्लेदन कफके जोर से ढीलाहोके फेनसा मोटा मोटाहोजाता है चाहे खद्दा मोटा कटुकआदि कौसाही भोजनक्रिया हो ॥ अब नाभिस्थान के आशयोंका द्यौरा देखीनवमें श्रुतसे ॥

॥ ९ ॥ ऊपर सातवें भेदसे आशयोंकी स्थितिका क्रम शोचिके फिर यहदेखी—आमाशयसेनीचे पक्काशयसे ऊपर दोनोंके बीचमें जो ग्रहणीनाभकी कला एकभि-ली है वही पाचकपित्तका आशयनाम टिकाना जानौं—पाचकपित्तसे ऊपर अग्निका टिकाना है वह नाभिके बीचों बीच स्थान पर होरहा है तिसके ऊपर अग्निके रूपसे तिल रहिता है (तिलकाव्यौरा अगिले भेदोंमें समझलेना) उस अग्निकेनीचे समान वायुका स्थान है वही उस अग्निको प्रचण्डकरता रहिता है जैसे भट्टीकेनीचे धौंकनी लगी रहिकर अपने पवनसे अग्निको बढ़ाती है ॥

(अग्निपित्तनिर्णयः)

दशवैसे वारहवें पाठतक अग्नि और पित्त इन्हीं दोनोंका स्थान और स्वरूपआदि भेदभी दशपिे जायेंगे क्योंकि इनके परस्पर वैद्योंको बड़े बड़े संदेह और भगइ प्रतीत होते हैं किसी वचनसे पित्त अग्नि दोनों एकहीरूपके किसी वचनसे दोनों जुदेजुदे प्रतीत होते हैं तैसा तीनोंपाठके श्लोक जहां लिखेगये सो सबदेखी तहां यहभी शोचौ कि ये दोनोंवात ठीकही हैं अर्थात् दोनों जुदेह परन्तु दोनों एकही रूपसे जुदे हुयेंहें तिससे सिद्धांतमें एकही मानेजातेहें यहवात्ता केवल विद्वानोंके समझने योग्य है कि जैसा जगत् और इन्द्रका परस्पर संबन्ध अकवनीय है तैसा पित्त और अग्निका भी समझें टन्हीं वचनोंके अर्थ नीचे देखी ॥

॥ १० ॥ पाचक (पकानेवाला) जो पित्त है वह एक तिलके समान है और कहा

हे उसके कड़ापनसे उसको द्योतानहीं अर्थात् वातादि द्योत्रयकेसाथ उसकीगणना नहीं करीजातीहै (इसका यहोतारपर्यं वहिरा कि उसकड तिलको अग्निही जानना) तिलका ठिकाना ऊपर नववैपाठमें शोची ॥ पित्तकास्वरूप कफसे भी, पतरा ढरकमा कुछ चिकना भी है परन्तु कफठंडासुपेदहै पित्तपीला अति गरमहै यही तीनों द्योत्रमें गिनती होताहै इसीहेतु तिलके कड़ापनसे गीलापनका विशेषरह्रा ॥ पित्त पंचात्मक पांचरूपों, बालाहै वहभी एक मुख्यरूपसे आमाशय पकाशयके बीच रहाकरताहै, यद्यपि पृथिवी आकाश आदि पांचोभूत मिलेहुयोंकारूप उसकाहै तो भी उसमें जो अग्निके गुणाका उदय गरमाई, अधिकहै सो द्रवकेसाथ मिलारहितेही पकानाआदि कर्मसाधन करताहै तिससे अग्नि कहाजाताहै, वहीअन्नको पचाताहै फिर उसकारस रूपीमार और मैलरूपी कीट जुदा जुदा करदेता है और आप उसी जघे बैठा बाकी दूरस्थ चारपित्तोंको बलपहुँचाते रहिकर सहायता देता रहिताहै इसीसे पाचकनाम कहागयाहै ॥ यहपाठ यद्यपि पित्तकी प्रधानता सहित कहागया तो भी पित्त और अग्नि दोनों जुदे सिद्धहोकर फिर छंतमें सकता सिद्धहुई, इसीकारिणार्थ्य फिर ग्यारह के अंकसे देखौ ॥

॥ ११ ॥ अग्निमें जुदेतरहके गुणा लसराहै पित्तमें जुदे किन्तु पित्तके लसरा ऊपर लिखिचुकेहै कि वह चिकना द्रवरूपहै नीचेको ढरकनेवाला और अग्नि इससे विपरोतहै अर्थात् हलकीकडी और ऊपरको ज्वाला पहुँचानेका स्वभाव रखनेवाली ॥ इसी जुदाईसे समझना चाहिये कि पित्त जो (वातपित्त कफकेसाथ गिनाजाता) है सो अग्निहीके तेजसे भरापुरा रहिता और पित्तमें जो गरमीहै सोई शक्तिमती जानौं, अब अग्निका ठिकाना दशति है कि ॥ नाभिसे किंचित वामेको भुंक्तताहुआ भीतर एकसोमका मगडल है वह ठंडाजानौं तिसकेबीच फिर सूर्यका मगडल है वह गरम जानौं उसीके भीतर अग्नि स्थापन होरहाहै सो कैसा कि जैसे कांचकी हॉडीमें दोषक छिपा हुआ भी अपना प्रकाश देतरहितहै तैसे यह अग्नि भी एक भित्तीसे मडा हुआ दमकता अपनातेज बाहर फीलाये रहाकरता है ॥ ऊपर दशवाँपाठ देखौ उसमें पित्तही को प्रधानता (उसके विकार समय चिकित्सा की सहिसा बढाने के निमित्तही) दीगई थी कि अन्नका पचाना आदि वही करता है वही ऐसे कामोंसे अग्नि शब्द के नाम से कहाता है, तिसके निराकरणा पूर्वक अग्निही की प्रधानता रक्तीजायगी वारहवाँ अंक देखौ ॥

॥ १२ ॥ पेटकी जदराग्निरूप आपही भगवानहै वहीअन्न पचानेवाले द्योत्रिके ईश्वर

सबकुछ काने में समर्थ हैं बही अपने अग्नि रूप की सूक्ष्म तेजीसे रसों को आकर्षण करते हुये जब अन्नको पचाते हैं उस समयकी विलसना दया व्यौरवार नहीं विवेचन करी जासक्ती है (क्योंकि पकाते समय कोई भीतर घुसके नहीं देखपाता है ॥ शरीर की नाभिके भीतर जुदाई के साथ सोमका मंडल है उसी मंडलके बीचमें फिर सूर्यको मंडल जानें (सोम मंडल ठराढा • सूर्यमण्डल उसके बीच गर्मस्थान है) तिसमें प्रदीप ज्योतिकी तरह अग्नि बैठा है ॥ जैसे सूर्य आकाशही में बैठाहुआ अपने तेजकी भी किरणों से छोटे बड़े सब तलावोंको जल खींचके सुखाता है उसीतरह छोटेबड़े हरसक शरीरवारी का भोजन किया पदार्थहै सो नाभिमैं बैठाहुआ अग्नि अपनी तेजकिरणों से शीघ्रही पचाय देताहै चाहें नानाभौतिके शाकादि व्यंजन सहित सिद्ध भोजनहीय या चाहें कोई कठोर कच्ची चीज खाईहो तिसकोभी पचाताहै ॥ (पित्त गोला ढरकना द्रव रूपहै • यद्यपि द्रवरूपी एक तेज का समुदाय मिला भुला उसमें होता है तथापि उसके तेजका भाग जितनाहोय वही अग्निका तेजहै इसी कारणसे पित्तभी अग्निके तुल्य मानाजाता है जैसे लोहका गोला जब अग्निसे अत्यंत तपाया जाय तब अग्नि के तुल्य होजानेसे अग्निही कहाजाताहै यह सबहीका सिद्धांत दहिहा इसी धोखासे कोई पित्तको अग्नि और कोई अग्निको पित्त जाननेलगतहै) उस अग्निका कितना बड़ा रूप है सो आगे लिखते हैं ॥ हाथी आदि जो बड़ें मोटे डीलडौल वाले प्राणी होयें तिनमें एक जौकी बराबर अग्नि होता है • मनुष्य आदि छोटे पतरे डीलडौल वालेहों तिनमें एक तिलकी बराबर अग्नि होती है • कृमि कीटपतंग आदि तुच्छ देह वाले जीवों में बार की नोक बराबर अग्नि रहताहै ॥ यहाँ तक बारह भेदों में अग्नि-कोक्ति पूरीभई जो ६३ से ६६ तक सात श्लोकों मध्ये लिखोगई ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

(अन्यच्च शरीराभ्यंतरज्ञान)

सिराःशतानिसप्तैववनवक्रोयुशतानिच । धमनीनांशतैवेतुपंचपेशिशतानिच १००

एकेनत्रिशुक्लक्षणितयानवशतानिच । पदपंचाशच्चजानीतसिराधमनिसंपुताः १०३

प्रपोल्लक्षास्तुविज्ञेयाःश्मश्रुकेशाःशरीरिणाम् । सतोनरमर्मशतद्वैचत्तंधिशततया १०२

अर्थः—सिरा नामकी नाड़ों जो नाभि से निकसती हैं ७०० सातसौ जाननी • तथा स्नायु नामकी नसें जिनसे सब धर्मों के बंधान बँधे रहते हैं सो नौसौ ६०० जाननी • तथा बरानी नामकी नाड़ियों जो नाभि से उत्पन्न होती हैं सब दोसौ २०० जाननी • तथा पेशी नाम सांसकी मुठियों पिंहीं सब देहमें ५०० पाँच सौ होती हैं ॥ १०० ॥

हे अथय० उनतीस लाख नौसौ छपन २६००६५६ संख्या होती है सब अंगों में सिरा और धमनी नाम की नाडियाँ मिलकर यह जानें ॥ १०१ ॥ औरभी शरीरमें दादी मूठ तथा शिरके बाल मिलकर तीनलाख जानने चाहिये और सबशरीरों में एकसौ सात नर्मस्थान हैं तथा दोसौ संधि मिलाप भी होतेहैं ॥ १०२ ॥

१०० अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसपर कहते हैं कि नाभि में संबंध राखने वाली सिरायें जो संख्या से चालीस होती हैं उन्ही की बड़ी छोटी अनेक शाखायें बढ़कर सर्व शरीर में फैलतीं और वात पित्तकफों की भर्ती किया करतीहैं वेही सिर्फ चालीस की शाखा वृद्धिसे सातसौ होती हैं—तैसेही अंग प्रत्यंगोंके हाड मांस बाँधने वाली नसे नौसौ होतीं—और धमनी जोनाभिसे उत्पन्नहुई चौबीसहोतीहैं प्राणादि पंचवायुकी बहने वाली तिनकी शाखा अनुशाखावृद्धि होने सेदोसौहोजातीहैं ॥१००॥ और (२६००६५६) इतनी संख्या जो कहीगई सोभी सिर्फ नाडियोंकी नहीं किंतु ८४ चौरासी मूल प्रतिकसे लेकर यहाँतक जो कुछ अंग प्रत्यंग वर्णानक्रियेगयेतिनके भी सूक्ष्म अंग जो नहीं वर्णान क्रियेगये सो सब जोडिके समझनी ॥ १०१ ॥ दोसौ संधें जो बताईं सो भी केवल बड़े छोटे हाड हड्डियोंके जोडवालीं संधि जाननीकिंतु नाडी सिरा स्नायु आदि के मिलाप वालीं संधें अतिशय बहुत होने से अनन्त है तिससे उन की गिनती कुछ नहींकरीजासक्तीहै ॥ एकसौसात जो नर्मस्थानकहे तिनका थोडासा व्यौरा यहाँ लिखते हैं क्योंकि देह में नर्मके स्थान कराट हृदयआदि १०७ के कहते हैं जिनमें थोडा भी चोट लागने से मरणा होजाय अथवा बहुत पीडा या बहुत दिनके लिये खाट सेवनीं परै—यथाहुःप्राचीनाः=सन्निपातःसिरास्नायुसंधिसांवास्थिर्धमनः नर्मागितेयुतिष्ठतिप्राणाःखलुविशेषतः १ सप्तोत्तरशतंसंतिदेहेनर्मागितेहिनाम् तान्ये कादशमांसेस्युष्टावस्थियुसंतिहि २ सधीर्वाविंशतिस्तानिस्नायूनांसप्तविंशतिः चत्वारिंशत्येकंचसिरामर्मागितत्रु ३ (व्यवस्थाचैयां) द्वाविंशतिःसंक्रिययुगेतावन्त्येवमुज हये द्वादशोरसिकृत्सीचपृथुदेशेचतुर्दश ग्रीवायासुध्वर्भागेतुसप्तविंशतानिहि ४ (तानिचसर्वागिापंचधाभवन्ति) सद्यःप्राणाहारागिस्थुर्नर्मागयेकोनविंशतिः १ नर्मदेशास्त्रथिचिंशस्त्युःकालान्तरमारकाः २ चत्वारिंशच्चत्वारि वैकल्यंजनयतिहि ३ नर्मादिक रुजाकारि ४ विशल्यघ्नत्रिकंनतम=अर्थात्—देह में नर्मस्थान वेहें कि जहाँजहाँ सिराओं का सन्निपात इकट्ठा होय या स्नायुओं का सघात या अनेक संधियाँ मिलके इकट्ठी होयें या मांसका समूह या हाडोंकासन्निपात इकट्ठाये होजाना या इन सबही का मिलाप या इनमे से कडे वस्तुओं का प्रवेश होय कोंकि उन दिक्तानों में प्राणा

विशेष रहा करते हैं ॥ १ ॥ वे मर्मभी १०७ एकसौ सात हैं इस हिसाब से कि ग्यारह मर्म सांस के ठिकानों पर दृष्टांत जैसे गुदा या चूतर ये उन्हीं ग्यारहमें गिनती है तथा हाडों में आठ मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे कान के समीप कनपटियों को दो हाड उन्हीं आठ में गिनती है ॥ २ ॥ संधियों में बीस मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे मूढ़में कपालों की संधि उन्हीं बीसमें गिनती है तथा स्नायु नामनसोंमें सत्ताइस मर्म होते हैं दृष्टांत जैसे वस्ति मूत्रकोशहै सो बारीक खाल और नखोंका संघात एक मर्म है यह उन्हीं सत्ताइस में गिनती है चालीस और इकतालिसहें सिरामर्म जो सिराओंके मिलापों के स्थलों पर होते हैं दृष्टांत जैसे नाभि सिरामर्म यह उन्हीं इकतालिसमें शामिल है देखो (५१ सांसमर्म—८ अस्थिमर्म—२० संधिमर्म—२७ स्नायुमर्म—४१ सिरामर्म) इन सबका जोड़ १०७ एकसौ सात मर्म ठहरे ॥ ३ ॥ (उन्हीं की व्यवस्थासमझो) इनमें से ग्यारह ग्यारह बारस दोनौटांगमें इमीतरह बारस दोनौंवाहूमें और हृदयसे ऊपर तथा दोनों कोष्ठ में तीनों जगह के कुबल बारह मर्म होते हैं पीठ में चौदह मर्म जानने तथा घाँच और मडनमें कुल्ल सेतीस मर्म होते हैं (वही १०७ एकसौ सातवाला जोड़ इसतरह से भी ठहरे) इन सब अंगोंमें जितने जितने होते हैं कहेगये तिनका वह नियम नहीं है कि एक अंगमें एकही प्रकार के मर्महों किंतु सब अंगों में सबतरह के मिले भूले कुछ सिरा मर्म कुछ सांस मर्म कुछ संधिमर्म आदि जानने ॥ ४ ॥ फिरभी इनके पाँच भेद होते हैं कि) उन्नीस मर्म चोट लगने पर शीघ्रही प्राणाहरनेवाले १ ॥ और तैंतीस मर्मों के ठिकाने ऐसे हैं जो कुछ काल के अंतर से मारने वाले २ ॥ और चत्वारिंश मर्म ऐसे जो थोड़ी भी चोट लगने से विकलता पैदा करते हैं मारते नहीं ३ ॥ और आठ मर्म ऐसे हैं जो चोट लगने से कुछ रोग बिगाड़ उनमें घुसि जाता है ४ ॥ विशल्य धनत्रिकमलं—तीन मर्म स्थान विशल्य धन होते हैं कि उनमें घुसा हुआ धारा आदिकोई शस्त्र जब खींच के निकाला जाय तभी तत्काल प्राणाहरें या बिरले के सातदिन के भीतर तक हरे (ऐसे पाँच प्रकारों से भी वही १०७ एकसौ सात मर्म ठहरे सब जोड़ देखो) ५ ॥ जो मध्यप्राणाहर कहेगये वे भी सात दिन के भीतर तक हरते और कांतर से मारने वाले पखवारे से ऊपर महीना के अंत तक मारते हैं—इस वार्ता का विस्तार अभी बहुत बड़ा वाक्री है कि किस अंगमें किस ठिकाने पर के अंगुरका लंबा चौड़ा किस प्रकारका मर्म है वह कितने दिनमें मारता है इत्यादि एकसौ सातवार्ते विस्तार भयसे नहीं लिखी सो वैद्यक शारीरकमें देखना ॥ १० २ ॥ = १० ० ॥ १ ० ॥ १ ० ॥ २ ॥

(रोमशुपिरादीनां रसरक्तादीनांच परिमाण)

रोमणांकोट्यस्तुपंचाशच्चतस्रःकोट्यएवच । तप्तपायिस्तथास्तथाऽर्थाःस्वेदायने-सह १०३
वायवीर्यैर्विगण्यतेविभक्ताःपरमाणवः । यद्यप्येकोऽनुवेत्तेपांभावानांचैवसंस्थित्म् १०४
रस्तन्यनवविज्ञेयाजलस्योजलपोदश । समेतुपुरीपस्वरक्तस्याष्टौप्रकीर्तिताः १०५
पट्टलेष्मापंचपिंचचत्वारोमूत्रमेवच । वसात्रयोहौतुमेदीमज्जेकोऽर्धतुमस्तके १०६
श्लेष्मोजसस्तावेद्वरेतसस्तावेद्वतु । इत्येतदस्विरवंष्मयस्यमोक्षापकृत्यतो १०७

अर्थः—रोमाओंकी संख्या चौमन करोड़ साठे सरसठि लाख ५४६७५०००० इतनी होती है अपने स्वेदायनों सहित अर्थात् इसी संख्या में आवे रोसकूप भी जानने कि जिनमें रोमा जसते और जिनके द्वारा पसीना टपकता है ॥ १०३ ॥ ये सब वायवीर्यों से विभाग किये हुये परसाराव गिने जाते हैं यद्यपि इन भावोंकी संस्थिति सर्यादा को तुम सब ऋषियों में कोई एक जानता भीहो (अर्थात् योगीश्वरनेइस गूढ वारागी से यह तात्पर्य दर्शाया है कि जो कुछ कहा सो सब शास्त्रही अनुसार तुमको समझाया किंतु शरीरोंकी भीतरली दशा नेत्रहाथ आदि इंद्रियोंसे देखेदोले बिना ठीक नहीं जानी जा सकतीहै तिससे यह प्राणिक भावोंकी व्यवस्था वाला आशय बहुत गहिरा है इस बातकी तुम सबमें भी बिरलेही समझते होंगे बल्कि जो कोई ऐसा समझता हो वहभी बुद्धिसानों में अग्रणी जानों तिससे यह व्यवस्था बड़े यत्नसे जाननी चाहिये) इतना समझायेके योगीश्वर फिर कहिने लगे ॥ १०४ ॥ कि अच्छसे उत्पन्न हुये रसकी नौ अंजुरी अपने मुख्य कोश में सबदा भरिरहती हैं जानना तथा पिये हुये पक्कजल को दश अंजुरी अपने ठिकानेमें रहितो हैं तथा पुरीय विद्या की सात अंजुरी बिना पची हुई सदा रहितो हैं तथा आठ अंजुरी रक्तकी-रक्त स्थान में रहितो कही जाती हैं ॥ १०५ ॥ कफकी छे अंजुरी अपने ठिकाने पर तथा पांचअंजुरी पित्त अपने ठिकानेपर तथा चारि अंजुरी मूत्र अपने ठिकानेपर और वसा तीन अंजुरी और भेद दो अंजुरी और मज्जा एकही अंजुरी निज ठिकाने और आवी अंजुरी मज्जाकी मस्तकमें भी होती है ॥ १०६ ॥ फिर उसी मस्तक में आवी अंजुरी श्लेष्मोजस की अर्थात् कफके सारकी भी होती है और आवी अंजुरी वीर्य की भी (इतिरतत अस्थिरंष्म) यह ऐसा शरीर जो ८४ चीरासी प्रलोक से लेकर यहाँ तक चौबीस प्रलोकोंमें हाड मांस खाल आदि जो कुछ दर्शाया गया सो सब अशुद्ध चीजोंके समूह से बनाहुआ अपवित्रता का खजाना और अस्थिर भी है अर्थात् क्षण भंग्य होनेसे इसके लिये स्थिरताभी कुछ नियत नहीं है-जिसके यहीबुद्धि होतीहै वही शक्ति विज्ञानीहै और वही मोक्षके अर्थयत्न करने में ममर्थ होताहै ॥ १०७ ॥

१०३ अधिकोक्तिः—पूर्वादितिसिराकोशादिसहितानां सकलशरीरसृष्टिरादिशोभां
परमारावः सूक्ष्मसूक्ष्मतररूपाभागाः स्वेदयवतासृष्टिरैः सङ्घतुःपंचाशत्कोट्यः तथा
सन्नोतर यद्यिल्लाःसार्वाःपंचाशत्सहस्रसंहिताः वायवीर्यैर्विभक्ताः पवन परमाराभिः
पृथक्कृताविगणयन्ते इतिमिताक्षरा=अर्थात्—शरीरके जितने बड़े छोटे भाव जुड़ेजुड़े स-
सम्भायेगये सो सब क्या चीज़ हैं इसका उत्तर कहतेहैं कि वायुके अतिसूक्ष्मभाग जो
पवनके परमारा होतेहैं अत्यंत भिंचीसंधों में घुसि जाइसक्ते हैं उन्हींसे पृथिवी आदि
के विकार घुसि घुसि जुड़े कियेहुये बहुतसे परमाराओंका संघात गिनाजाताहै नैया-
यिक मतसे इसके सिवाय और कुछ नहीं प्रतीत होता है जो कुछ शरीर में दर्शाया
गया सिद्धांत इसका यहीहै तिससे ऐसे निःसार शरीरसे मोक्षपाने का प्रयत्न करना
सार है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

यहाँतक थोड़ाथोड़ा संक्षेप शरीरके समभाया गया=इसी शरीरकी परसगति होने
का उपाय भी अगिले परिच्छेदसे दर्शावेंगे ॥



अथब्रह्मोपासनायाञ्जियस्यध्ययस्यतत्साधनफलस्य चस्वरूपनिरूपणायपरिच्छेदः (१२) द्वादशः ॥

इस परिच्छेदमें यह निरूपण कियाजायगा कि योगी पुरुष को क्या जानना और
किसका ध्यान किस रीतिसे करना चाहिये और उसकी साधनापूरी करिपानेसे क्या
फलहोता है सोभी कहाजायगा ॥

(उपासनीयस्वरूपस्य आत्मनिध्यानं)

दासततिसहस्राणिदृवयावभिनि-सृताः ।हिताहितानामनाड्यस्तातामध्येशानिप्रभम् १०८
मंडलंतस्यमध्यस्थआत्मादीपइवाचलः । सज्ञेयस्तंविदित्येहपुनराजायतेनतु १०९

अर्थः—हिता हिता नामकी नाडियों ७२००० बहत्तर हजार जो हृदयसे मूल
तात् निकसीं=अर्थात्—(नाभि से मूल रखने वाली) हृदय समीप से सन्मुख और
हर तरफ हृदय को अभिव्यापन करि घेरि के निकसीं कित् मस्तक तक चलीवै

उस प्रकार से कि जैसे क्रम के फूल में सघन केसरों का गुच्छा देखियारताहो तिनके बीचमें चन्द्रकांतिके समान एकमंडलहै तिसके बीच आत्मा बैठाहै अचल दीपजोति के समान वही ज्ञेय है अर्थात् उसीको ध्यान द्वारा आराधन करना चाहिये तिसको अच्छेजानिके फिकरभी यहांसंसारी देहोंमें आकर नहींजन्मताहै ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

१०८ अघिकोक्तिः—अपरातिलोनाड्यस्तासामिडा पिंगलाख्येहेनाड्यो मध्य दक्षिणा पाश्र्वगतेहृदिविपर्यस्तेनासाविवरसंवहे प्राणापानायतने सुयुम्नाख्यापुन रूहतीया वंडवन्मध्येत्रह्वरंध्रविनिर्गता तामांनाडीनांमध्ये मंडलंचंद्रप्रभं तस्मिन्नात्मा निर्वातदीपइवाचलःप्रकाशमान आस्तेइतिमिताक्षरा=अथति-मिताक्षराकारकहिते है किमूलश्लोक मे कही०२००० बहत्तर हज्जार नाडियोंसे उपरालूनाड्यो तीन और हैं०इडा०पिंगला०सुयुम्ना०योगशास्त्र के अनुसार०इनमें इडा वामे नथुना औरपिंगला दाहने नथुना तक हृदयसे जाकर दोनों छिद्रों में बंधीहै यही दोनों प्राणा अपानदोनों वायुका स्थान हैं और तीसरी सुयुम्ना नाड्यो हृदय से निकसी हुई लाटी के समान सीधो नासाकेबीच होकर कपालमें ब्रह्मरंध्र तक चलीगई० इस सब नाडियोंके बीच उसी सुयुम्ना की मूलपर एक चंद्रमा के समान उज्वल कान्तिवाला मंडल है तिसमें आत्मा रूपसे परमात्मा विराजमान है अचल जोतिके समान जैसे पवनसे विहीन मंदिर में दीपक निरन्तर एक रस अचल रक्त्रा हुआ प्रकाश देता है तिसके ध्यान में लगना चाहिये ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ इसी ध्यान की युक्ति नीचे दर्शाते हैं ॥

(ध्यानस्यायमुपायः)

ज्ञेयचारण्यकमहंयदादित्यादवाप्तवान् । योगशास्त्रंचमत्प्रोक्तज्ञेयंयोगनभीप्सता ११०

अतन्व्यविषयंकृत्वामनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् । ध्येयआत्मास्थितोयोऽतौहृदयेऽपवत्प्रभुः १११

अर्थः—योगको चाहतेहुये पुरुषकारके आरायक जानने योग्यहै जो मैंआदित्य से पावने वाला भया और यागशास्त्रभी मेराहीकहा बनाया जो य है=अथति-चित्त की वृत्ति को सब ओरसे खींचके हृदयस्थ आत्मामें लगाकर स्थिर करना यहीयोग कहाता है तिस योगकी सिद्धि चाहनेवाले पुरुष को उचितहै कि यहदासरायक नाम ग्रन्थजो मैंनेकभीपहिले आदित्य से सुनिपायावेदकाअर्गहै तिसकोखूब जानैसमझै और योगशास्त्र जो निज मेराही बनायाहै सोभीपढे(इसउपायसे योगसाधनासोखपावैगा ॥ ११० ॥ मन बुद्धि स्मृति इन्द्रियोंको अनन्य विषय करिके आत्मा ध्येयहै जो यह प्रभु दीपवत् हृदयमें बैठा है=अथति-दूररा उपाय यहभीहै कि-यह समर्थ प्रभु आत्मारूप

जो हृदयबीच पूर्वोक्त सराडल में दीपक तुल्य प्रकाशमान बैठा है सो इस रीतिसे ध्यान करिवे योग्य है कि मन को बुद्धि को सब इन्द्रियों को यादिको सभी कामों और सभी बातोंकी तरफसे खींचिके केवल उसी आत्मामें समर्पण करै ॥ १११ ॥

११० अघिकोक्तिः—(योगं अभीप्सता) इस पद में योग शब्दका यह अर्थ है कि संसारके सभी विषयरूपी धंधोंको छोड़ि उनकी उपेक्षासहित अपने चित्तकी वृत्तियों उनकी ओरसे खींचिके मनही में आत्मा के ऊपर उन वृत्तियों को लगाना जोडना यही योग है तिसकी सिद्धि चाहनेवाले योगी को आराधक विचारना चाहिये जो वृद्धवारण्यक नामसे भी वेदहो का आं ब्राह्मरा विशेष्य कहा जाता है जिसको योगीश्वर याजबल्क्य ने (अराधस्थान) वन में रथ चलते हुये सूर्यनारायण से पढा था ॥ ११० ॥ योगी के योगरूपी ध्यान का कर्तव्य रूपयही है कि चित्तकी वृत्तियों को सब ओरसे ऐसे खींचिके आत्मा में एकत्र करै जैसे प्रज्वलित दीप ज्योतिका प्रकाश दूरफैला हुआ भी दीपकपर धारावा ढाँकि देनेसे खिंचिकर उसी ज्योतिमें समाज जाता है इस रीतिसे उस आत्मा को ध्यान में लयलीन होवै जो यह अनंतरोक्त १०६ प्रलोक में कहा गया प्रभु दीपके तुल्य अपने हृदय में प्रकाशमान है ॥ १११ ॥

(अशक्तौ तु शब्द ब्रह्मोपासनं)

यथाविधानेन पठन् सामगायमविच्युतम् । सावधानस्तदभ्यासात्परंब्रह्माधिगच्छति ११२

अपरांतकमुल्लोप्य मद्रकमकरांतथा । ओवेणकंसुरोचिन्दुमुनरंगीतकानिच ११३

ऋगाथापाणिकादचविहिता ब्रह्मगीतिका । गेयमेततदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ११४

अर्थः—सावधान संन्यासी यथाविधानसे सामगायकी अविच्युत पदन करतेहुये उसी अभ्याससे परंब्रह्मके समीप जाता है—अर्थात्—सामवेदकी श्रुतियाँ स्वरके साथ गाई जाती हैं तिससे उसको सामगान और सामगाय भी कहिते हैं उसी सामगाय की जैसा उसके गानेका विधान सामवेदमें उपस्थित होय उसी विधानसे संन्यासी आप सावधान होते (अविच्युतनाम) नित्यंप्रति अखण्ड नियमसे पदच अर्थात् गान करते करते उस अभ्यास के प्रभावसे परंब्रह्म के समीप तक पहुँचता है (श्रेय वयोर अधिकोक्ति में देखौ ॥ ११२ ॥ अपरांतक• उल्लोप्य• मद्रक• मकरांत• ओवेणक• सुरोचिन्दु• उत्तर• ये सात अपने प्रकारों में कहे गीतोंके भेद हैं (और चकारके ध्वन्यर्थसे आसारित बर्तमानता आदि महागीत भी ग्रहण किये जाते हैं मिताक्षराकारने यह कहा ॥ ११३ ॥ ऋगाथा• पाणिका• दक्षविहिता• ब्रह्मगीतिका• ये चारों गीतिका कहाती हैं इनका

भी विस्तार गानसंबंधी वेदके प्रकारोंमें मिलसक्ता है—यह सब अपरांतक आदि ब्रह्म गीतिका पर्यंत जुदे भेद गाने के योग्य हैं अर्थात् केवल पादही वाँचनेकी रीतिसे नहीं किन्तु गानतानके स्वरसहित आराधनकरै जिसका अभ्यास खूबकरनेसे वही मोक्षनाम कहाता है अर्थात् सोक्षरूपी फल देनेके हेतुसे यह अभ्यासही मोक्ष कहिलाता है ११५ ॥

११२ अर्थिकोक्तिः—सामगान आदि जो गान करना कहा तिसकायही तात्पर्य है कि शब्द तथा आकार डीलडौल से शून्य जो परंब्रह्म सो सामगानके प्रत्येक शब्द शब्द के स्वरोंमें स्वरशब्द रूपी होकर ऐसा फँसा विंधा है कि जैसे दुशाला आदि बखी के बेलि बुरा आदि में सघन सूच मिले होते हैं जिन तरंगोंकी गति हरसकसे नहीं पहिंचानी जाती है तैसे अतुस्तूत हुये आत्मा में गान के द्वारा चित्तकी वृत्ति सकाम्य होकर जालगती है तब उसी अभ्यास के मार्ग से परंब्रह्म तक पहुँच होजाती है वही मोक्षपदनाम है—तदुक्तं च (शब्दब्रह्मरिानिय्यातः परंब्रह्माधिगच्छति) अर्थात् शाखांतरमें यह नियम कहा गया है कि शब्दरूपी ब्रह्ममें लयलीनहुआ पुरुष पर ब्रह्मके समीप जाता है—अर्थात्=अपरांतक आदि गीतजात भी सब एक प्रकार का अध्यारोप समझाजाता है तथापि उसमें शब्दरूप होकर आत्माका भाव जो अध्यारोपित होरहा है (जिसका दृष्टांत अभी दुशाला आदिसे कहि चुके) तिससे यह अभ्यास मोक्षफल देनेवाला दृश्रिता है इसीसे इस अध्यारोप में कंकु कलंक नहीं—परन्तु—यह अभ्यास करना संन्यासी को उस अवसरमें उचित है कि जब अपनेचित्त के स्वाध्याय उँकार जप करना आदि नियमोंसे छुटकारामिले किन्तु यह तात्पर्य नहीं है कि मुख्य नियमोंका अति क्रमकरके इसीमें तत्पर होय ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

(शब्दब्रह्मोपासनस्य अंगभूतिनियमाः)

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः । तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ११५

गीतज्ञोयदियोगेन नाप्रोतिपरमंपदम् । रुद्रस्यानुचरो भूत्वा तैनेव सह मोदते ११६

अनादिरात्मा कथितस्तस्यादिस्तु शरीरकम् । आत्मनस्तु जगत्सर्वजगतश्चात्मसंभवः ११७

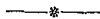
अर्थः—वीणा बजानेमें तत्त्वज्ञ श्रुतिजातिमें विशारद और तालविधि जाननेवाला भी विनाप्रयास मोक्षके मार्गमें पहुँचता है—अर्थात् भरत आदि मुनिजनोंका कल्पित वीणा जो प्रसिद्ध है तिसके बजानेकी तत्व (असलियत) जाननेवाला संन्यासी जो अर्थात् और जातोंके लक्षणा जानने में विशारद अति प्रवीण होय और ताल जिससे गीतका परिमाण कल्पना किया जाता है (अर्थात् गानके स्वरके साथ सजोरा या

हाथ या पैर या घंटा या थपकी वा अंगुरी या लकड़ीआदिसे इरकोइसुननेवालाभी तालमिलाया करताहै तिसका भी स्वरूप संन्यासीजन जानताहो (तारपर्यंअधिकोक्ति में देखो) ॥११५ ॥ यह गीतज्ञ संन्यासी यदि गीतरूपीयोगसे कदाचित्त (चित्तविक्षेप आदि कारणांसे लयभंग होकर) परम पदको नहीं पावै तोभी रुद्रका अनुचर होके उसीके साथ सुख भोगता है ॥ ११६ ॥ सर्वप्रकार तुम सबको आत्मा का अनादि होना कहिसुनाया फिर उसकी आदि जो शरीर है सोभी कहा-आत्मासे सब जगद होताहै सोभी कहा फिर जगद सोभी आत्मा की उत्पत्ति कही-अर्थात्-सरसदि मूल प्रलोकसे लेकर अनादि आत्मा का स्वरूप और उनइत्तरि प्रलोक उत्तरार्धसे उस की आदि भी शरीर धारणा करनेसे कहिकर आगे सत्तरि मूलप्रलोकसे ८३ तिरासी तक उसी परमात्मा के सकाशसे आकाश पृथ्वी आदि समस्तभूवनों की उत्पत्ति कही और उससे उत्पन्न हुये पंच महाभूतों के मिलाप से स्थूल शरीर बचने के द्वारा सब जीवों की उत्पत्ति भी कही ॥ ११७ ॥

११५ अधिकोक्तिः-श्रुतियों तथा जातों में प्रवीणा होना यह कि-वेदोक्त गान विद्यामें सातस्वरोंकी अठारह जाति और वाइस युतियाँ होतीहैं (यद्ज-ऋषभ-गांधार-मध्यम-पंचम-धैवत-नियाम) ये सात स्वर होतेहैं येही सात इत्तकी मुख्यजाति कहाती हैं फिर इनमें से दो दो आदिके मिलाप से ग्यारह जातें और भी होजाती हैं वह संकरजाति कहाती हैं तिससे शुद्ध और संकर ११ दोनों मिलकर अठारह जातें स्वरोंकी दहेरती हैं-यथा-यद्ज-मध्यम-पंचम-इन तीनों स्वरमें चार चार युतियाँ होतीहैं सो बारह ठहरीं ऋषभ-धैवत-इन दोनोंमें तीन तीन श्रुतियाँ होतीहैं बारह में जोड़िके अठारह ठहरीं-गांधार-नियाम-इन दोनोंमें दो दो श्रुती लगतीहैं सब जोड़िके वाइस २२हुई-इन्हीं सधैर्युति जातिमें प्रवीणाहोय अर्थात् इनके स्वरूप उत्पत्ति स्थान आदि सब जानै-दृष्टांत-जैसे नाभिके भीतरसे उदायाहुआ स्वरकारतमें निकसतेहुये वृषभके शब्दसम गरजताहै इसीलिये ऋषभ स्वरनाम उसका धरागया कौंकि वृषभको ऋषभ कहिते है-जैसी यह ऋषभ स्वरकी उत्पत्ति कही तैसेसातोंकी जुदी जुदी फिर ग्यारह संकर जातोंकी जुदी जुदी फिर वाइस युतियोंके जुदे जुदे लक्षण उत्पत्तिआदि जानै और बीणा सहित अपने कंठके द्वारा सबकासात भी यथा विधि से कर सकताहो तो युति जातिमें विशारद कहलाता है-इस प्रकारसे शब्दरूपी ब्रह्म की उपासना मे सुगमता सेही चित्तकी वृत्ति आरोपित होजातीहै कौंकि स्वरताल आदि भंग होजानेके भयसे चित्तकी वृत्तिअत्र अवश्य गोकनीपरती और स्वतःखिचि-

कार सक्रम होजाती हैं और यही बात पूर्वोक्त ध्यान योगमें भी मुक्तिका हेतु कहागई थी परन्तु पूर्वोक्तयोग जिसपर न सावाजाय तिसको इसअत्रोक्त प्रकारसे उपपरिग्रह के बिना भी मुक्तिका मार्ग मिलजाता है ११५ ॥ ११६ ॥

सोटी बद्धिवालोंको ये बातें सुनिके कुछ संदेह भी उत्पन्न होताहै तिससे अगिले परिच्छेद में संदेह मिटाने के निमित्त से ११८ का श्लोक प्रथमरूपसे कहिकर आगे समाधान दिये जायेंगे कि जगत और परमात्मा का परस्पर एकी भावहै ॥



अथ परमेश्वरस्य ब्रह्मरूपस्य सर्वविश्वरूपितानिरूप

णोयंपरिच्छेदः (१३) चयोदशः ॥

इस परिच्छेद में उस ब्रह्मविद्याका विस्तार कहाजायगा जिससे परमेश्वर ब्रह्म रूपको विश्वरूपिता जानीजाय कि उसके सकाशसे जगत क्योंकर उत्पन्नहोता और परमात्मा आपही जगत में क्योंकर जन्म घरता और संपूर्ण विश्व का रूप आपही कैसे कहाजाना सिद्ध होताहै

(जगतः परमात्मनश्च पारस्पर्यमैक्यं)

कपमेतद्दिमुह्याम तदेवासुरमानवम् । जगदुद्भूतमात्माचक्रेयं तस्मिन्वदस्वनः ११८

मोहजालमपास्येह पुरुषोद्भवतेहियः । सहस्रकरपद्मेत्र सूर्यवर्चा सहस्रकः ११९

सजात्माचैव पद्मदशविश्वरूप प्रजापतिः । विराज सोऽन्नरूपेण पद्मत्वं मुपगच्छति १२०

अर्थः—देव असुर मनुष्यों सहित यह जगत कैसे उस आत्मासे उपजा और उस जगत में आत्मा आप भी कैसे पशु एकी नर सर्प आदि शरीरोंको पाताहै हम सब ऋषियोग इस अटपटी बातसे विमोहको पहुँचतेहैं ॥ ऐसा ऋषिय लोगोंका संदेहमय प्रश्न सुनिके याज्ञवल्क्य जी आगे समाधानों सहित परमात्मा का स्वरूप समझाते हैं ॥ ११८ ॥ इह जगत में मोह जालको छीड़िके जो पुरुष देखिपरता है सहस्र हाथ पैर नेत्रवाला सूर्यसम तेजवाला सहस्रों शिरवाला (११९) वही आत्माहै वही यज्ञ रूप है विश्वरूप है प्रजापति भी है जिससे विराजरूप है सो अन्न रूपसे यज्ञत्व को पहुँचता है—अर्थात्—निर्मल ज्ञान रूपी दृष्टि से ध्यान करी कि—इहाँ समस्त जगत भरमें दृश्यमात्र जो यह स्थूलरूप कलेवर आदि सबही में भिन्न भिन्न देहाभिमानरूप

(सोहजाल) अज्ञान का माया जालहै सोसब जुदा मानिके उसके उपरालू जो कोई एक पुरुष प्रतीत होताहै वही सहस्रों अर्थात् असंख्य हाथ पैरोंवाला असंख्य नेत्र मस्तक वाला और असंख्य सूर्यों के समान तेज वाला भी है (अर्थात् देव राक्षस मनुष्य आदि सभी जीवोंके हाथपैर मस्तक आदि की संख्या जो कुछ तीनों भुवनमें हो सकतीहो सो सब अंग उसी एक पुरुषके हैं किन्तु उसीके प्रत्यक्ष जो उसकी शक्ति उपस्थित रहितो है तिसके आधार सहारेपर ये सब तीनों भुवनके हाथपैर नेत्रआदि इन्द्रियां कामदेती हैं) परन्तु वह पुरुष किसीके समुख आकर नहीं दिखाई देता है (११६) वही पुरुष सब जीवों में आत्मास्वरूपहोके उपस्थित और वही यज्ञों का रूपहै अर्थात् नित्य नैमित्तिक तथा काम्यभेद वाले सभी यज्ञोंका स्वरूप वहीआप है इसीसे यज्ञ पुरुष भी उसका एक नामहै और विद्यस्वरूप अर्थात् समस्त जगत् का आत्मास्वरूप है क्योंकि विराट् रूप होनेसे अर्थात् मस्तक जिसका स्वर्ग आदि ऊपर के लोक और पाताल पैर और भूतल मध्यम अंग है इत्यादि लक्षणाओं से ब्रह्माण्डमात्र सब स्थूलरूपी देहका अभिमानो वही पुरुष है जो विराट् भी कहाजाता(एकशोषचीत १२५ मूलप्रलोकसे १२८ तक चारिप्रलोकदेखो) और प्रजापतिवही आपहै अर्थात् प्रजाकी उत्पत्ति या टुट्टिकरनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा और दस आदिरूपोंसे आपही वर्तमान है तथा राजा महाराजा आदि नरपाल भी प्रजापति होतेहैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमानहै तथा विश्वकर्मा और सूर्य और अग्नि भी प्रजापति कहते हैं तिनके भी रूपोंसे आपही वर्तमानहै (इसवार्ताके निमित्तसे गीतामें विभूति अध्यायभी देखना चाहिये) वहीपुरुष आप अन्नरूप होकर तिल घृत खाँड मेवा आदि अन्नोंका पुणेडाश बनिकर अपनेही अग्निस्वरूप में मिलि के यज्ञरूप बनजाता है (फिरभी उसी यज्ञसे बर्यास्वरूप बनिकर उसीबर्यासे अन्नादि औषधियोंकास्वरूप लेकर उन्हीं अन्नोंसे रस धातुकेद्वारा शुक्रधातुका रूपलेकर गर्भों में जाकर फिर प्रजास्वरूप होजाताहै बहुतेरी जीवोंकी संतति केवल बर्याके होनेसेही पृथ्वीसे आपही आप शुक्रधातुके विनाही उत्पन्न होजाती है तिससे संपूर्ण विद्यस्वरूप होना उस पुरुषका प्रत्यक्ष है) इस वार्ताका विशेष व्योरा ७१ इकहत्तरि के मूलप्रलोक से भी देखो तथा यहाँ भी अगिले प्रलोकोंसे दर्शाते हैं ॥ १२० ॥ = ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

मितासरा न० प्रायश्चित्तकांड ।
(विश्वरूपितायाः प्रपंचः)

१८७

योद्ग्व्यदेवतात्यागतंभूतोरस्तउत्तमः । देवान्तन्तर्घ्यंतरसोयजमानंफलनच १२१
संयोज्यवायुनासोमनीयतेरश्मिभिस्ततः । ऋग्यजुःसामविहितंसौरंधामोपनीयते १२२
स्वमंडलादसोत्तूर्यःसृजत्यमृतमुत्तमम् । यज्जन्मसर्वभूतानामशनानशनान्त्वनाम् १२३
तस्माद्भ्रातृपुनयज्ञःपुनरन्नपुनःऋतुः । एवमेतदनाद्यंतचक्रंतंपरिवर्तते १२४

अर्थः—देव निमित्त त्यागे द्रव्यसे उत्तम रस संभूत होके देवोंको भले दत्त करिके वही रस यजमानको भी फलसे=संयोजन किये पीछे वायुसे खींचा सोमको पहुंचाया जाताहै तहांसे ऋक् यजु साम रूप सौरधामको रश्मियों करके लियाजाताहै=फिर यह सूर्य अपने मंडलसे उत्तम अमृतको सृजता है जो अशन अनशन रूपी सर्वभूतोंका जन्म है=तिस अन्नसे फिर भी यज्ञ फिर अन्न फिर यज्ञ=येसेही यह अनादि अन्न चक्र सदा परिवर्तित है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥=अर्थात्-परमात्मा को सर्व विश्वरूपी जो कहिचुके तिसका व्यौरवार प्रकार यहां समुझाते हैं कि इसी संसार में जो कृद्ध-द्रव्य सामग्री होम आदिके द्वारा देवताके निमित्त छोडा जाता है तिसका रस उत्तम जो संभूत भली भाँतिसे उत्पन्न हुआ (अर्थात् यह रस देखने में नहीं आता किंतु अद्भुत रूपही रहिकर परमात्माकी परिणति रूप अवस्था भेद कहाताहै क्योंकि अन्न परमात्माहै तिसका रूप पलटिके उत्तम रस बना) इसको (उत्तम इसलिये कहा कि संपूर्ण जगत्के जन्मका बीज रूप यही उत्तम है) वही रस पहिले अपने संप्रदान भूत देवताओंको संतुष्ट करिके उनकी संतुष्टि द्वारा यजमान को भी बांछितफल से संयुक्त करिके फिर महावायु से खींचा हुआ सोमप्रति चंद्रमाके मण्डल को पहुंचता है (वहां उस चंद्रमाके किरणों से टपकेहुये अमृतसे संनिश्चित होके अतिशय गुणा-वाच शक्तिमान् होजाता है) ततः तिस चन्द्रमण्डल से फिर सूर्यकी रश्मि किरणों से खींचा हुआ सौरधाम अर्थात् सूर्यके स्थान मण्डलको लेलिया जाताहै=वह मंडल सौरधान ऐसाहै कि जहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तीनोंका आयमहै (अर्थात् तीनों वेदमय स्वरूपही उस मंडल का होताहै इसका वचन अधिकोक्ति में देखो) फिर यह सूर्य भी उसी अमृत रूपी उत्तम रस को अपने मंडल से सृजता है (अर्थात् व्यक्तिय बनाकर सारे जगत् में बरसाताहै इसी हेतुसे जलका नाम अमृत भी कहाताहै) जोकि वही उत्तम जल सर्वभूतों (सभी प्राणियों) का जन्मरूपी चिन्तित है क्योंकि जलही से सब सृष्टि होतीहै सब सृष्टि में यही भाँति की प्राणी होते हैं इसीलिये अग्रनात्म अनशनान्त्वम ये दो विशेषण सर्व भूतोंको विशेषये इनके अर्थ अधिकोक्ति में देखो ॥

१२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उसी (जलसे उत्पन्न हुये) अन्न से (कि जो सब तरह के अन्नादिक पदार्थही प्रजाकी उत्पत्ति पालन करनेमें कारणा हैं तिनसे) फिर यज्ञहुये • फिर भी (पूर्वोक्त रीतिके द्वारा) उन्हीं यज्ञों से दया होकर अन्न पैदाहुये फिर उन्हीं से क्रतुयज्ञ होने लगे • एवं इसी प्रकार से यह समस्त संसार एक चक्र बड़े चाक के अनुरूप खूब घूमता रहता है कि इसका परिवर्तन वेग (घूमना चक्र खाना) कभी शक्य नहीं (अर्थात् कभी अगिला भाग पीछे कभी पिछला भाग सम्मुख आजाता रहता) इसी कारण यह संसार अपने उत्पत्ति और विनाश इन दोनों से विहीन रहता है क्योंकि परमात्मा का स्वरूपही विराट रूपसे संसार रहता ही फिर उस अविनाशी के रूपका विनाश नहीं होसकता न कभी उसकी उत्पत्ति होनी कही जासकती क्योंकि सदा सर्वदा से यह इसी प्रकार वर्तमान चला आता है फिर उत्पत्ति किसकी कहीजाय ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

१२४ अधिकोक्तिः—अपने भूमरूपी संदेहमय प्रश्नोंको याद करों कि जगत् में आत्मा कैसे उत्पन्न होताहै—सो सब समुन्माया गया कि इस अनंतरोक्त क्रमसे आत्मा आपही जगत् रूपहै और इसी क्रमसे आत्मा के सकाशसे संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति होतीहै और इसी जगत् में वह आत्मा (सरसति ६७ प्लोकसे) चर्चा कियेहुये चिदंश रूपसे) निज कर्मागुरूप शरीरोंका परिग्रह करता है ॥ संसार यद्यपि उत्पत्ति और विनाशसे विहीन है तथापि इसके प्रलय और उद्भव जो प्रसिद्ध किये गये सो केवल सूर्यके उदयास्त सम कल्पित किये कहाते हैं—अर्थात् जैसे सूर्य कभी न अस्त होताहै न उदय होताहै सदा सर्वदा प्रकाशमान रहताहै परंतु जिस समय जिनदेशों में पर्वतकी आड़ हीजानेसे देखि नहीं परता तब उतने समय तक राति काहिके सूर्य का अस्त हुआ मानि लेते हैं इसी प्रकार जिस समय जिन देशों के सम्मुख आजाताहै तहां उतने समयतक दिनकाहिकर सूर्यका उदयहुंआ मानिलेतेहैं(क्योंकि जो ऐसी कल्पना न करीजाय तो वार्तालाप में दिनरातिके व्यवहार कैसेचलें तिससे नामसाधही के निमित्तसे उदय अस्त कल्पितमानेगये) तैसीही संसार जब ईश्वर की शक्तिरूपी भायाके आड़में होजाता तब उसका प्रलयकहाने लाताहै • जब उससाया की आड़से निरालाहोता तब उत्पन्नहुआ कहाने लगताहै किन्तु यथार्थसे न उसकी उत्पत्तिहै न प्रलय • तिससे भूमरूपी मोहको त्यागो ॥ ० ॥ एकसो तेईसप्लोकमें सर्व भूतों के बोधेद प्रकार कानेके निमित्तसे अशनात्म अनशनात्म ये दो विशेषता दिने गयेहैं तहां अशनसत्ता खानेकी और आत्मसंज्ञा रूपकी ये दोनों मिलिके यह अर्थ

सिद्धहोताहै कि खानेवालेरूप जो जो चैतन्य प्राणीमात्रहै कि वे कुछ न कुछखानेसे जीसकें सो अग्नात्म समझने•फिर इसीमें नियेध करनेवाला अन्नशब्द जोइनेसे अन्नशनात्महूये कि जो जो प्राणी खानेमें समर्थ नहीं और खाने बिनाही जीसकें जैसे पत्थर पत्थरआदि नानाभाँतिके जड़जीवहैं सो सब दूसरेभेदमें समझने सबसंसार भरमें सृष्टिके दोहीभेदहैं (अर्थात् स्थावर जंगम या जड़चैतन्य कहातेहैं) दूसराअर्थ उन्हीं का इसरोतिसे भी होताहै कि अग्नि भोजन है आत्मारूप जिनका सो अग्नात्म समझने(अर्थात् आपही भोजनरूपहैं जो किसी प्राणीके खानेयोग्य ठहिरें चाहें अन्न या औषधी या घास या रस फल फूल आदिहैं या छोटे मोटे जीवहैं सभी समझने जो किसीके अग्नि भोजनमें लगिसकें सो एकभेद ठहिरा•दूसरे अन्नशनात्म जो किसी प्राणीके भोजन योग्य न ठहिरें) अर्थात् जिनचीजाँको कोई भी न खासके सो अन्नशनात्म समझे) इस प्रकार से भी सब संसार भर में दोही भेद ठहिरें—एसेही जड़ और चैतन्य को चर अचर कहिने से दो भेद हाते हैं और इनमें भी दो भाँति से अर्थ सिद्ध होताहै कि चर जीव तौ वे हैं जो चलिफिर सकें या चरि सकें किंतु खाने पीने में समर्थहो जैसे मनुष्य पशु पक्षी कीरे आदि जिनके इंद्रियाँ होती हैं—इसी चरके साथ नियेधका अकार जोइनेसे अचर नाम ठहिरा और चरको अपेक्षा विपरीत अर्थ देने लगा कि न चलि फिर सकें न खाय सकें किन्तु खाने पीनेमें असमर्थ हों और खाने बिनाही जीसकें जैसे पत्थर धातु वृक्षादिक नाना भाँतिके जड़ पदार्थहैं जिनके इंद्रियाँ नहीं होतीं सो सब अचर सृष्टि में समझने=तथाच वैद्यक शास्त्र=संद्रियंचेतनं द्रव्यनिरिन्द्रियमचेतनं=अर्थात्—संसारभर में सब द्रव्योंके दोही भेदहैं कि जो जो द्रव्य इंद्रियों सहित हों सोसब चेतन समझना जोजो निरिन्द्रिय अर्थात् बिना इंद्रियोंकेहो सो सब अचेतन द्रव्य समझना—इस वचन में द्रव्य शब्द से मनुष्यादि सब जीवोंका बोधकरायागयाहै तैसा पूर्वोक्त अन्यवचनोंमें जीवशब्दसेजड़द्रव्योंकाभी बोधहोताहै सिद्धांत में तात्पर्य सबको एकहै ॥ ० ॥ ऊपर एकसी वाइसप्रलोक में सूर्यनगडलको तीनों वेदका आचार कहागयाया उसके मध्ये यह श्रुति प्रमाणहै कि (सैषाव्येव विद्या तपतीत्यभेदाभिधानं) अर्थात् सूर्य के मंडल में तेज प्रकाश रूप से ऋक यजुः साम तीनों वेद की त्रयीविद्या जो है सो आपही साक्षात्कार तपिरही है तिससे सूर्य और वेदत्रयी में परस्पर कुछ भेद नहीं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

क्वचित्त ओता यह सवेह करे कि जब आत्माका संसारा (अर्थात् पूर्वकर्मां के अनुसार संसार में देहों का स्वीकार करना उर्ध्वोक्त प्रकारों से अनाद्यन्त ठहिरा कि

इसका आदि अंत नहीं यह सदासे ऐसा चला आता है—तो फिर निर्मुक्ति कहाँसे हो-
सकती है क्योंकि प्रथमतः इस संसार को जंजालसे उसीकी निवृत्ति कभी नहीं है फिर
और कोई मुक्तिकाभरोसा उससे क्या करे—इसके समाधान मध्येनीचेका वचन देखो ॥

(समवायीपुरुषः)

अनादिवात्मात्संभूतिर्विद्यतेनांतरात्मनः । समवायीतुपुरुषोमोहेच्छाद्वेषकर्मजः १२५

अर्थः—आत्मा अनादि है अंतरात्मा की संभूति नहीं विद्यमान होती है—मोह इच्छा
द्वेष कर्मों से उत्पन्न समवाय वाला पुरुष होता है—अर्थात्—यह बात यद्यपि सत्य है
कि आत्मा के अनादि होनेसे अंतरात्मा की संभूति नाम (जन्म लेनेसे) उत्पत्ति उस
आत्मा अनादि को नहीं व्यापती है (यही उसकी समर्थकी विचित्रता है कि मिला-
र है अरु नामिले तासे कहा बसाय) यहाँपर (आत्मापरब्रह्म को समझना अंतरात्मा
उस चिदंश को समझना जो संसारी देहों के भीतर आके प्रविष्ट होता है) और (सं-
भूति केवल देहों के उत्पन्न होने को समझना तथा और सब संसार की वस्तु जो जो
होती हैं तिनके भी उत्पन्न होजाने मात्र को संभूति समझना अर्थात् यह संभूति उस
आत्मा के अंतरात्मा को भी नहीं व्यापती है अनादि होने के हेतु से) यद्यपि नहीं
व्यापती है तथापि पुरुष देहमात्र से समवायी होता है किन्तु (समवाय भी दो
भाँतसे कहाता है एक तो सूधीरति से यह समझ लेना कि अनेक वस्तुओं का
संग्रह इकट्ठा होना समवाय कहाता है जैसे देहरूपी कलेवरमें ८० अस्सी प्रलोक से
लेकर १०७ एकसौ सात प्रलोकतक जो कुछ दर्शाया सो सबका जमाहोना समवाय
संबंध समझना) दूसरा नैयायिक मतसे यह ढंग है कि (नित्यद्रव्यादियु जात्यादीनां
संबंधभेदः समवायः अर्थात् जो वस्तु अनित्य नहीं नित्य है जैसे पृथ्वीआदि पाँचोतत्त्व
नित्य हैं यद्यार्थसे कलेवरमें भी येही पाँचतत्त्व हैं छठा आत्मा आय है ७२ वहत्तरि
प्रलोकमें देखी सो उन्हीं नित्यद्रव्यों में नामजाति रूपों से अनेक संबंध भेद कारदेना
समवाय कहाता है जैसा उसीज्ये ७३ । ७४ तिहत्तरि चौहत्तरि प्रलोकों में देखी कि
छठे आत्माने उन्हीं पाँच तत्वोंसे कितने संबंध भेद कारदिये जिनके अनेक नाम भेद
काहने परे) दो भाँतसे समवाय होता दर्शाया सो दोनोंका एक ही तात्पर्य केवल
समझने मात्रके निमित्तसे दो भेद कहेगये अब ऊपर ध्यान करो कि पुरुष देहमात्र से
समवायी कहा तिसका यही तात्पर्य है कि वह चिदंशरूपी पुरुष इसदेहमें समवाय
इकट्ठा करनेवाला दहरता है अर्थात् उसको अपने जन्मने या मरने आदि से कुछ

वास्ता नहीं है—इसके सिवाय वह समवाय जो उत्पन्न हुआ सो कैसा और कितना और कहाँसे आया इस प्रश्नके उत्तरमें यह चौथा पाद है कि (सोद्वेच्छाद्वेयकर्मजः) अर्थात् सोह इच्छा द्वेय इतसे जो उत्पन्न हुये पूर्वकर्म है तिन कर्मोंके द्वारा यहाँ समवायकी तोलनाप करी जासक्ती है अर्थात् समवाय कुछ निर्मा स्वभावही से नहीं उत्पन्न हो जाता—और पुरुष जो समवाय इकट्टा करनेवाला कहा गया सो उसी समवाय रूपी भोगके स्थान कलेवर में बसिकर सुख दुःख रूपी भोगों को भोगता है कि जो कुछ पहिले संस्कार के प्रभावसे इकट्टे हुये हों—इसप्रकार के संबन्ध से कलेवरका संबंधी वास्तेदार वह आपभी ठहिरता है कि जैसे नदीके समीप मट्टीका मटीला घर आपही कोई बनाये और लकड़ीफूसमट्टी आदिके समवायसे सम्हारिके आपही उसमें निवास करै जब नदीकी रौ चढिआने से उसको बहिजाता देखै तभी आप निकसि के साक चलाजाकर कहीं अन्यत्र वसै तौ उस घरके विनाश होनेसे भी यद्यपि उसका विनाश तौ न हुआ तथापि जबतक उस घरके बिगड़तेहुये समयपर जितने काल तक निवास रहाहोगा तबतक पानी भरिआने या मट्टी फूस गिरपाने आदिकी बिपत्ति कुछउसको भी भोगनी परी तैसे यहाँ देहरूपी कलेवर में कुछ रोग पीडा खडीहोनेसे उसी वास्तेदार समवायी पुरुष जीवात्मा को दुख भोगना परता है कि जबतक उसी विगते हुये देह में निवास करना परै ॥ तिससे अब अपने संदेहको निवारण करौ क्योंकि ये समवायरूपी उपभोग आदि कार्यरूप होनेसे विनाशमानहै और आत्मा सदाही अनादि होनेसे निर्मुक्त है वह किसीके बन्धन में नहीं है ॥ १२५ ॥

१२६ प्रलोकसे यहाँतक यह बात जो पहिले वर्णन करचुके कि जगत् की उत्पत्ति परमात्मासे होती है तिसका डील अगिले परिच्छेद में व्यौरवार दशविगे कि इसप्रकार से होती है ॥



अथ परमात्मनः सकाशाज्जगदुत्पत्तेः पूर्वोक्तायाः प्रपंच
विस्तारो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः ॥

इसपरिच्छेद में जगत् की उत्पत्ति जो परब्रह्म के सकाशसे होती पहिले कहिचुके तिसका प्रपंचरूपी विस्तार व्यौरवार कहा जायगा कि इस रीतिसे होती है ॥

(जगतःप्रारम्भेचतुर्वर्णोत्पत्तिः)

सहस्रात्मामयायोवभादिदेवउदाहृतः । मुखवाहूरुपज्जाःस्युस्तस्यवर्णयथाक्रमम् १२६

अर्थः—(वःयुष्मान्प्रति मेने जो सहस्रात्मा आदिदेव तुमसे उदाहृत किया तिसके मुखवाहु जंघा पादसे यथाक्रम वर्णाहोतेहैं=अर्थात्—ब्राह्मणा आदि चारोवर्णा इसक्रम से उत्पन्न होते हैं कि मुखसे ब्राह्मणा भुजाओं से क्षत्री जंघाओं से वैश्य चरनोंसे शूद्र ये उसीसे कि जो पहिले मेने तुम सब ऋषीचरों को सहस्रात्मा आदिदेव समुभाया था (सहस्रात्मा कहने का यह तात्पर्य है कि सब जीवधारी उसीका रूपहैं तिमसे बहुरूप है अर्थात् असंख्य सहस्रों रूप वाला सहस्रात्मा के नामसे कहा) आदिदेव इससे कहा कि जगत का सबसे पहिला हेतु रूप वही आप है ॥ १२६ ॥

(समस्तजगदुत्पत्तिप्रपंचः)

पृथिवीपादतस्तस्यशिरसोयोरजायत । नस्तःप्राणाविशःश्रोत्रास्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी १२७
मनसश्चंद्रमाजातश्चक्षुषश्चदिवाकरः । जघनादंतरीक्षेचजगन्नसचराचरम् १२८

अर्थः—उसके पैसे पृथिवी उत्पन्न शिरसे स्वर्गनाकसे प्राणाकान से दिशार्थे स्पर्शसे वायुमुखसे अग्नि १२७ ॥ मनसे चंद्रमा उत्पन्न हुआनेत्रसे सूर्यजाँघ से अंतरिक्ष और चराचर सहित जगत भी=अर्थात्—उसी आदि देव के इन अंगों से ये वस्तु भी उत्पन्न हुईहैं कि पैरोंकी पगतलीसे धरती जो मनुष्यों का आधारभूत लोक है—और मस्तकसे स्वर्गलोक जो देवतों का देशहै और नाक से सामान्य प्राणों की उत्पत्ति हुई कि जो सबजीवोंमें वही प्राणा होतेहैं उनके बिना कोई जीव न जीसके—और उसीके कान छिद्रसे दशों दिशा भी उत्पन्न हुई कि जिनके बीच बड़े तीनों भुवन और चतुर्वंश लोकोंकी स्थिति रही आतीहै (कदाचित्त ये दिशार्थे न होतीं ती बड़े बड़े लोकों का स्थान किस ठिकाने पर होसकता था)—स्पर्श नाम है छुईजाने वा छुइ सकने योग्य का इसीसे त्वचा भी स्पर्श नाम एक इन्द्री कही जातीहै कि उसमें वायु का स्पर्श होनेसे वायुका स्वरूप जाना जाताहै सो वायु उठी आदिदेव के स्पर्शसे उत्पन्न हुआहै कि जगत के कोई काम उसके बिना न चल सकते—और उठी आदिदेव के मुखसे अग्निकी उत्पत्ति हुई कि जिसमें होम करनेसे उसी आदिदेव के मुखमें पहुँचजाता है—उसी आदिदेव के मनमें से चंद्रमा की उत्पत्ति हुई किंतु चंद्रमा की अमृतमय शीतलता जो प्रकाशमान है वही उसके मन का स्वरूप है—और उसी आदिदेव के नेत्र की उद्योति अर्थात् कोई एक किराणा की आभाभाव से सूर्य

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

१६३

मंडलकी उत्पत्ति हुई कि इसके बिना जगत् में उज्जीता न होसकता—और उसी आदि देवकी जाँधोंके बीच में अंतरिक्ष अर्थात् धरती और सूर्यमंडल के बीचमें जो शून्याकार आकाश है सो उत्पन्न हुआ कि उसमें मेघोंकी चलाफिरी और वायुका स्थान तथा पक्षी आदिके उड़नेका अवकाश रहा आताहै—और दूसरी निचली जाँधों से चर अचर जीवों सहित जगत् का आकार भी उत्पन्न हुआ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

॥ इतना मुनिके आतालोग ऋषीश्वर फिर छेड़छाड़ करने लगे कि इसमें बड़ा संदेह खड़ा होताहै सो नीचे कहेंगे ॥

(पुनरपिसंदिग्धश्रोतप्रश्नः)

यद्येवंसकथं ब्रह्मन्पापयोनिपुजापते । ईश्वर सऋथंभावैरनिष्टे संप्रयज्यते १२९

करणेनान्वितस्यापिपूर्वज्ञानं कथंचन । वेत्तितर्वगताकस्मात्तर्वगोपिनवेदनाम् १३०

अर्थः—ए ब्रह्मन् जो ऐसा है सो कैसे पाप योनियोंमें जन्मता है जो ईश्वर हैं सो कैसे अनिष्ट भावों से संप्रयुक्त होताहै—अर्थात्—हे ब्रह्मन् योगीश्वर हम सबों को यह संदेह आता है—जब कि वह आत्मा एकहै अनादि है सब जीवोंकी आदि वही आप है और वही सब जीवोंका रूप धरा करता है तो फिर यह आत्मा मृग पक्षी आदि पापरूपी अनेक योनियों में उत्पन्न होताहै सो कैसे संगत माना जाय—और भी यह संदेह कि जैसा एकसौ पचीसवां मूल प्रलोक है उसमें (मोहेच्छाद्वैयकर्मजः) इस चौथे पादका अर्थ देखो कि मोह राग द्वेष आदि दोषोंके दृष्टत्वसे वैसे जैसे जन्महोते कहेगये सो भी हम नहीं मानि सकते क्योंकि वह ईश्वर अर्थात् समर्थ और स्वतंत्रहै फिर कैसे मोह राग आदि भावोंसे संयुक्त होता किंतु स्वतंत्र होतेहुये क्योंकि उनको ब्रह्ममें फँसिजाता है ॥ और भी यह दृश्य है कि १२६ ॥ करण से अन्वित के भी पूर्वज्ञान कैसे नहीं और सर्वगत होता हुआ भी सब में पहुँची वेदनाको काहे से नहीं जानता है—अर्थात्—सत्ता आदि उत्तम इंद्रियां जो ज्ञानका उपाय रूपी करण अर्थात् समुझ का शब्द होती हैं तिनसे संयुक्त होकर भी उस आत्मा को पूर्व जन्मों का बोध नहीं आसकता कि मैं कहाँया और कौनया और कैसा पहिलेहुआ था इत्यादि—तैमेही वह सर्वज्ञ कहाताहै कि सबकुछ जाननेवाला और सभी प्राणीमान के घट में उपस्थित है तौभी सर्वज्ञ होतेहुये सबसे व्याप्त होते हुये जो सबके भीतर अनेक पीढ़ा रूपी वेदना है तिसको कैसे या किस हेतुसे नहीं जानता है सो उत्तर देनाचाहिये ॥ १३० ॥

(उत्तर स्वल्प)

अंत्यपक्षिस्थावरतामनोवाक्कायकर्मजैः । दोषैःप्रयातिजीवोऽयंभवंयोनिशतेषु १३१
अनंताश्चयथाभावाःशरीरेपुशरीरिणाम् । रूपाण्यपितथैवहंसर्वयोनिषुदेहिनाम् १३२

अर्थः—मन वचन कर्म इनसे उपजे दोगैयों से यह जीवही सैकरों योनिमें भवजन्म से अंतयोनि पक्षीयोनि स्थावरत्व को जाता है—अर्थात्—तुम्हारे संदेह के अनुसार यद्यपि यह सत्यहै कि वह आत्मा ईश्वर होने से अपने स्वरूपही से सत्यरूपी लक्षणा और ज्ञानरूपी लक्षणा और आनन्दरूपी लक्षणासे संपन्नहै तौभी यहसब शुद्धज्ञाना उसी एक परब्रह्म के स्वरूप में समझना (जिसका संसर्ग ६७ के श्लोक से चर्चा आचुका है कि उसमें से फूलिंगे उड़ते हैं सो सब जीवरूप कहे जातेहैं) सो यहजीव जो उसीका किंचित् मैलरूपी अंश उड़िकर जन्म लेताहै उसीका संबंध यहाँ समझि लेना कि जीवही शक्तिहीन होकर-उसकी अविद्या नाया के आवेशमें बगहोकर मोहराग आदि भावों से लिप्त होताहुआ उन कर्मों का आचरण करने लगता है कि जिनके प्रभाव से अवश्यही नाना भाँति नीच योनियों में जन्म लेना परताहै (केवल मानस कर्मोंका आचरण उस दशा में भी समझना कि जबतक कोई एकभी जन्म उस जीवने न पायाहो किंतु उसी मानस कर्मके प्रभाव से सबसे पहिला जन्म लेना परेगा चाहें किसी योनि में हो तहाँ फिर कायिक और वाचिक भी भले बुरे जैसे कर्मोंका आचरण होने लगा होगा उन्ही के अनुरूप उसकी ऊँच नीच योनिमेंजाना परता है) इसीलिये मूल श्लोक में ये कर्म तीनों भाँति के दशगिे गये कि एक मन से जैसा भला बुरा विचार नाब कियाहो १ दूसरे वारागी से भला बुरा जो कुछ उच्चारण कियाहो २ तीसरे काया से कि जैसा किसीके बुरी तरह धक्का मारा या भंली तरह जेह प्यार किया हो ३ इत्यादि—इन्हीं कर्मों से उत्पन्न हुये जो कुछ दोषइसी जीवके दहरतेहैं तिन दोगैयों के प्रभावसे यह जीवही सैकरों हज़ारों योनि में भवजन्म को पहुँचता है तहाँ यह भेदभी अवश्य आनिपरता है कि बुरे मानस कर्मों के दोषसे अंत्ययोनि अर्थात् चंडाल आदि जातिमें जाना परताहै और वारागीसे उत्पन्न बुरेकर्मों के दोष से काक उलूक आदि पक्षियों की योनिमें या पशुओं की योनिमें भी जन्म लेना परता है और काया से उत्पन्न खोंटे कर्मों के दोषसे स्थावर वृक्षादिक योनिमें उत्पन्न होना परताहै (असर्ग की अधिकांशमें मनुका वचन हे सो देखौ) ॥१३१ ॥ और शरीरियोंके शरीरोंमें जैसे अनंत भाव होतेहैं तथैव यहाँ सब योनियों में देहियाँ

के रूपभी—अर्थात्—शरीरी उन जीवों को समझना जो परमात्मा के अंगसे छोटे छोटे अंग रूपी फुलिंगे उडिकर असंख्य जीव कहाने लगते हैं यद्यपि उनको संसारी देह कभी एक बार भी न मिला हो तभी उनका बोध यहां शरीरी के नामसे दर्शाया है कि—जैसे उन शरीरी जीवों के शरीरों में तरह तरह के अनंत भाव (अनेक भावनायें जो सतोशुद्धा रजोशुद्धा तमोशुद्धा की अधिकता या न्यूनता के भेद से) उपजते रहते हैं तैसेही इह संसार में आकर भी सब योनियों में देह धरनेवालों के रूप भेदभी अनंत हो जाते हैं (अर्थात् एकही योनिमें अनेक रूपभेद जैसे कुबड़ा बीना जन्मांत्र एकाक्ष आदि समझने) क्योंकि जब कारणा में अनंत भावों के भेद होचुके तो उन्हीं के कार्य रूप देहों में भी अनेक रूप भेद होने न्यायात्मक हैं ॥ १३२ ॥

१३१ अधिकोक्ति—जीवही शक्तिहीन होकर अविद्या नायाके वशमें आजाता है अर्थात् साक्षात् ब्रह्म नहीं मायाके वश में आता यह ऊपर लिखचुके तर्होयह प्रका खड़ी होती है कि जीव उसी ब्रह्म का एक अंगहै जैसा ६७ सर्गाद प्रलोकते कहिचुके कि उसी ब्रह्म के अंगमें से फुलिंगे उडिकर जीव कहाने लगते हैं तो फिर ब्रह्मका अंग होते हुये यह कैसे शक्तिहीन होजाता जो माया के वशमें होजाता परता है—समाधान इसका उसी सर्गाद प्रलोक में मौजूदहै सो देखो कि तपाये हुये लोहेको रोलोका दृष्टांत इसीनिमित्त दियागयाथा जैसे अग्निके छोटे छोटे अंगभट्टों में धौंकनी धौंकते समय या लोहेको लात्र होजाने वाद घन सारते समय जो अनेकचिस्कार उडिकर ऊपरछप्पर तक पहुँचते या घन सारनेसे उछलिके दृष्टियोंमें जापरते हैं यद्यपि सांसात्कार उसी अग्निका अंगहै कि जो छप्पर आदिको भस्मकासकता है तथापि जुड़े होजानेसे सब शक्तिहीन होजातेहैं कि अपने अग्निके चनत्कारको भी भूल जातेकिउ छप्परआदि उनसे नहीं चलता क्योंकि उसीहवाके वशमें आकरनिर्बल होजातेहैं जिस हवाके प्रभाव से अग्नि की टुडि होसकती और तेजोबल बढता है—जैसे यहां अग्नि के फुलिंगे जुड़े होते वार वायु के आवेश में आकर अपने मुख्य स्वरूपही को भूल जाते कि हम किसमें से उत्पन्नहुये और क्या इसारी शक्ति और क्या इसारा काम या कुछ नहीं जानते—तैसेही जीव उसी ब्रह्मके अंगमें से फुलिंगा रूप जुदा होते सार नायाके आवेश में फंसिकर उसी नाया के वशमें आकर शक्ति हीन होजाता तभी अपने पूर्व जन्म आदि मुख्य स्वरूप को भी भूल जाता है कि मैं किसमें से उत्पन्न हुआ और क्या मेरी शक्ति थी और यह वही नायाहै कि जो ब्रह्मकी इच्छा अनुसार उसकी आज्ञा पालन करने वाली प्रसिद्ध है तथापि निबंजता सबलता का भेद यह धुर

सेही उत्पन्न हुआ और इसमें भी इच्छा उसी ब्रह्म की बलवानहै=कि=जिन फुलिंगे रूपी जीवोंको प्रथम कोड़े संसारी देह जब तक नहीं मिला केवल उसी सूक्ष्म रूप शरीर में रजोगुरा तमोगुरा सतोगुरा इनके प्रभाव से जो जो मानसिक भाव उत्पन्न होते रहे सो भी अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे केवल बीजमात्रही अंगुर उठते हैं कि जिनके प्रभाव से प्रथम कोड़े न कोड़े सी एक योनिमें देह उनको मिलजाती है फिर तो स्थूल देह पाकर उन्ही पहिले बीजोंकी टुडि भी हरतरह होती रहती है कि जिस योनिमें पहिला देह पाया तहां थोड़े बहुत पाप या पुण्य रूपी और भी कुछ कर्म किये तिनसे फिर और कोड़े योनि पाई तहां फिर और भाँति कर्मोंकी टुडि हुई इसी प्रकार फिर फिर आवागमन की शृंखला बँधि जाती है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

कदाचित्त यह शंका आरोपित करी जाय कि जब कर्मही को प्रधानता टहरी कि वह सूक्ष्मरूपी जीवहू कर्मसे खाली नहीं तो फिर कर्मका फल भी तत्काल मिलना चाहिये कि जब कर्म किया गयाहो अर्थात् देहांतर वा जन्मांतरका चर्चा आपकों करतेहैं—सो इसका नियम नीचे बर्णान करते हैं ॥

(कर्मविपाकनियमाः)

विपाकःकर्मणाप्रित्यकेपांचिदिहजापते । इहवाऽमुप्रवेकेपांभावस्तत्रप्रयोजकम् १३३

अर्थः—किन्हींएककर्मोंका विपाकप्रत्य होताहै=किन्हींकायहाँ=औरकिन्हीं का इहाँ या वहाँ भी=तिस में प्रयोजक भाव है=अर्थात्—कुछ तो कर्म सेसे हैं कि जिनका विपाक फल प्रत्य ही (अर्थात् दूसरे जन्मों के देह में जाकर) मिलता है (इसका दृष्टांत जैसे ज्यातियोम आदि बहुधा यज्ञों का फल इस देह से नहीं किन्तु दूसरे देहमें जाकर होता यही नियम है) और किन्हीं बिरले कर्मोंका फल इहाँइसी देहसे मिल जाताहै (दृष्टांत जैसे कारीरी नाम एक याग होता है कि बर्षा होना आदि जिस कामनासे ठीक ठीक कियाजाय सो फल बर्षा आदि इसी देहसे तत्काल प्राप्त होता सेसे और भी अनेक कर्म होते उनका यही नियम है कि जैसे दशरथने पुत्र कार्षेयि यज्ञ किया था चारपुत्र इसी देहसे फल मिले) और बहुधा कर्म सेसे भी होते हैं कि जिनका विपाक फलचाहें इसी देहमें होजाय यदा इहाँ किसी हेतु से न मिले तो अगुच वहाँ दूसरे देह से ही जाकर मिलताहै अर्थात् इनमें कोड़े एक नियम नहीं किंतु जैसा कर्मोंका प्रभाव होगा उसके अनुसार चाहें यहाँ फल मिले या वहाँ जाकर मिले ॥ तिससे यहतर्कना अनुचितहै कि कर्मपूराहोते सारतत्कालही

फल को नही होता ॥ तहाँ फल मिलनेवाले देहमें शुभ अशुभ किंतु अच्छा या बुरा फल पैदा करनेमध्ये भावही मुख्य प्रयोजक होता है अर्थात् सतोगुरा तमोगुरा रजोगुरा रूपी जैसा भावकर्मों में उत्पन्न हो चुका होगा वही भाव अच्छे बुरे फलों को विभाग पूर्व नियत करेगा क्योंकि फलों का विभाग विस्तार उभीभावके अधीन सदा रहता है इसमें संदेह नहीं ॥ १३३ ॥

एकमौ इकात्तिस प्रलोक से यहाँ तक तीन प्रलोकों में जिन बातों की संक्षेपमन्-
स्याकरीगई उन्हींका विस्तार व्यौरिवार सर्वथा अगले परिच्छेदसे दर्शावेंगे ॥



अथ पूर्वोक्त कर्मबीजानां विपाक प्रपंच विवेकीनाम

पंचदशः परिच्छेदः १५

इस परिच्छेद में उन कर्मों का विपाक व्यौरिवार कहा जायगा कि जिन बीजों का प्रसंग ऊपर आ चुका है ॥

(कर्मविपाकानां प्रपंचभेदाः)

परद्रव्याप्यनिधायंस्तथानिष्टानिर्चितयन् । वितथाभिनिवेशीचजायतेत्यासुयोनिसु १३२

पुरुषोऽनृतवादीचपिशुनः पुरुषस्तथा । अनिवद्धप्रलापीचमृगपक्षिपुजायते १३५ ॥

अदत्ताऽऽदाननिरतः परदारोपसेवकः । हितकथाविधानेनस्थावरेण्यभिजायते १३६ ॥

अर्थ—पराये द्रव्यों को सब तरह ध्यान करते हुये जैसे अशुभों को विचारते हुये तैसा वितथ अभिनिवेशी भी चंडाल योनियोंमें उत्पन्न होता है—अर्थात्—ये मानसकर्म होतेहैं जो मनसे किये जायें किंतु सर्वथा यही ध्यान करता रहें कि पराये धर्मों को किस प्रकार हरीं इसीलिये जैसेही (अनित्य-अप्रिय) जो दूसरों को अशुभ होने से अप्रियहों तिन प्रकारों को शोचते हुये (वितथ-विपरीत) असत् कुविचारों में (अभिनिवेशी) अर्थात् उनमें अभ्यास करनेवाला इन्हीं मानस कर्मोंके विपाकसे चंडाल आदि नीची योनियों में जन्म पाता है ॥ १३४ ॥ अनृतवादी और पिशुन पुरुष तथा अनिवद्ध वचनोंका प्रलापी पुरुष मृग पक्षियों में जन्मता है—अर्थात्—ये वाचा कर्म होते हैं जो वारणोंसे किये जायें किंतु जो कोई पुरुष (अनृतवादी) असत्य बोलने में

तत्परहो और (पिशुन) जो पराये कानमें घीमे बोलिके पराई चुगली चाई की बातें बहुधा क्रिया करै जो बातें सुनिके किसीको उड़ेग या सोभ होता हो और (अनिबद्ध प्रलापी) वह पुरुष जो बिना ठीक जोड़के असंगत बातें बनाकर पुकारता फिरै कि जिन बातोंका संसर्ग भी सम्भव नहीं था ऐसा पुरुष पशु आदि मृगजीवोंकी योनिमें या किसी प्रकारकी पक्षी योनिमें जाकर जन्म लेता है—वहाँ भी ये भेद उसमें जुदे हैं कि जिसने उक्त बातें जानि वृश्तिके बनाई और बोली होंगी सो अति नीच पशु पक्षी की योनि पावै या जिसने बिना समुझे कुछ बोखेसे उस भाँतिकी बात बोलीहोंगी सो कुछ अच्छे पशु पक्षीकी योनिपावै इत्यादि नानाभाँतिसे असंख्य भेद होतेहैं ॥ १३५ ॥

बिनादिया लेनेमें निरत और पराईदाराका उपसेवक और अविधान से हिंसक सर्वथा स्थावरोंमें जन्मता है—अर्थात्—ये काया कर्म होतेहैं जो हाथआदि कायासे कियेजायें किंतु जो बिनादिये विराना धन हरनेमेंतत्परहो और विरानीस्त्रियोंके भोगने में लगा रहता हो और बिना विधान के हिंसा करता हो अर्थात् शास्त्रोक्त बलिदान या शास्त्रोक्त प्रारादण्ड या शास्त्रोक्त धर्मयुद्ध इनसे उपरालु जो जीवोंकी निरर्थक हिंसा यद्वा इन्हीं कामोंमें विधिको छोड़ि बिना विधिके हिंसा करता हो सोभी वृक्षादि स्थावर सृष्टिका जन्म जाकर पाताहै उसमें भी असंख्य भेदहैं कि यहाँ जिसने जैसा बड़ा छोटा दोष उत्पादन किया होगा तैसे बड़े छोटे उत्तम मध्यम नीच स्थावरों में जन्म उसको मिलता है कि आँव या बूँद आदि वृक्षहो या लतावेलिहो या प्रतान छत्रोला पेड़हो इत्यादि—क्योंकि बिना दिये धन हरनेमें भी नाना भेद होते हैं कि जैसे कोसलता से फुसिलाकर हरा या कठोरतासे भारि पीटिकर छीना या चोरीसे हरा या बोखा देकर या सौंपा हुआ नहीं दिया इत्यादि सभी बातों में असंख्य भेद होते हैं ॥ १३६ ॥

१३६ अघिकोक्तिः—यद्यपि एकसौ इकत्तिस बत्तीस प्रलोकों के अर्थ में लिख चुके और उन्हीं प्रलोकों का विस्तार यहाँभी स्पष्ट किया गया—तौभी शंकार्ये चली आती है जब सबसे पहिले किसी कल्प की आदि में सुप्त शरीर वाले जीवात्मा ने केवल मनही से मानस कर्तों के बीज माय पैदा किये (अर्थात् जो मनसे अच्छेसंकल्प किये होंगे तो उत्तम तीनि वर्गों में जन्म पाया होगा या मध्यम संकल्प से चौथे शूद्र वर्ग में या मनसे खोटे संकल्प किये होंगे तो चंडाल आदि नीचीजातों में जन्म पाया) तिससे सबसे प्रथम मनुष्ययोनि में अवतार पाना निश्चित भया तौभी कोई विरोध नहीं ठहिरा—क्योंकि मुख्य मानस बीजों के प्रभाव से मनुष्य होकर उली पहिली देहमें अनृतवादी या पिशुन होनेकेद्वारा वाचाकर्मभी उत्पन्नहुये और परस्त्री

के उपभोग या विना दिये धन हरनेकेद्वारा कायाकर्मभी उत्पन्नहुये तिनसेफिर पशु पक्षीकी योनि और स्थावर वृक्षादिकों की योनिमें भी जानेलगे तब क्रमसेऔर सृष्टि भी उत्पन्न हुई•तौ इसक्रमसे बड़ा बिलम्ब बीताहोगा तब संसार पूरा बनाहोगा किंतु यहभी एकसदेहरूपीदूर्ययापायागया कि एकसाथही सबसृष्टिकी उत्पत्ति न होसकी होगी क्योंकि कर्म बीजों के आधीन होकर इसी क्रमसे रूढ़ हुई=समाधान•सुनों सृष्टिके उत्पन्नहाने मध्ये कोईसा एकहीमार्ग ऐसा नहींहै कि जिसका भेद सुगमता से हर कोई पासके (नेतिनेति) ऐसा कहिकर वेदकी श्रुतियाँही अपनी अशक्ति दर्शाती हैं फिर औरोंकी क्या सत्ताहै जो ईश्वरके निश्चय मार्गों का भेद होसके—सब से पहिली सृष्टि की आदि मे विशेषकर कर्म बीजोंकी आवश्यकता ईश्वरको नहीं भी होतीहै जैसा मनुका अग्रोक्त वचन है=मनुराह=यंतुकर्मणामायस्मिन्सनिर्युक्तप्रथमं प्रभुः सतदेवस्त्वयंभजेसृज्यमानःपुनःपुनः=अर्थात्—वह समर्थ प्रभुने सबसे पहिले कल्प में जिस जीवको जिस कामके धर्म मे अपनी सामर्थ्य से लगादियाया वहीजीव फिर वारंवार कल्पोंकी रचना समय जब जब सृजाजाता है तब तब आपही उसी कर्मको भजने लगता है (जैसा इसवचनमें कर्म बीजोंका प्रयोजन कुछ आवश्यक नहींदिहिरा तैसे और भी सृष्टिके अनेक मार्ग हैं) इसी मनुवचन के अनुकूल अरसदि का प्रलोक और उसी की अधिकोक्ति मे जो वचनहै सोभी देखो कि केवल कर्म बीजोंका नियम उसमें नहीं है—और भी—एक सौ तरेसदि १६३ का प्रलोक आगे देखना कि उसमें कर्म बीज से उपरालू अन्य कारणा भी दर्शाये जायेंगे तिससे ऐसी शंका न करनी चाहिये—और—यथार्थ में सबसे पहिला कल्प ही कोई नहीं है क्योंकि जो सब से पहिला कोई कल्प टिहरें तौ परमात्मा की आदि भी जानीजाय उसके आदि नहीं है वह अपनी प्रभुताकी सामर्थ्य सेही एक साथ सबकुछ उत्पन्न करसक्ताहै (इसके प्रमाणा मध्ये एकसौछत्वीश आदि प्रलोकोंकोदेखो कि सबकुछ एक साथही उत्पन्न किया) और भी बहुतरि मूलप्रलोक मे युगपत् शब्द के अर्थों को विचारो कि उसने अपनी समर्थ सेही एकसाथ गर्भमें सब अन्न और अनेक भौतिकी सामग्री तथाइन्द्री आदि का समवाय इकट्ठाकिया और सदा करता रहिताहै कि जिसका आगापीछा कोई नहीं जानिसक्ताहै कर्वाकिया कैसे किया•और भी चौहतरि मूलप्रलोकमे (तस्यै तदात्मजसर्व सनादेरादिनिच्छतः) इस अन्ना के अर्थ देखो कि इतना सर्व समवाय उसके पासही से उत्पन्नहुआ किसी मशाले की ज्झरत उसको नहीं होती=यथार्थ से—यहां जो एकसौ चौतास आदि प्रलोकों में कर्मों का विपाक वर्णन कियागया

सोभी ऐसी दशापर आरूढ़ है कि जब निरंतर जीवोंका आवागमन जारी होरहाहो (जैसे गेहूं से खेत और खेत से गेहूं फिर गेहूं से खेत फिर खेतसे गेहूं) अब इसमें जो कोई तर्क उठाना चाहै कि पहिले गेहूंया या खेत जो खेतवताओ तो बिना बीज क्यों कर उगा जो गेहूं पहिले वृताओ तो खेत बिना बीज कहाँसे पैदा हुआ—सो यहतर्क भी ऐसाहै कि सर्वशक्तिमान् ईश्वरके ईश्वरत्वको गॉडिमें चूना लगाने का मनोरथ दहरताहै—क्योंकि ऐसी शंकार्ये भी तभी तक उठि खड़ी होतीहैं कि जवतक जानी के ध्यानमें ईश्वर की सामर्थ्यका स्वरूप नहीं प्रकाश होता किंतु उसकी सामर्थ्यका पूरा रूप उदय होनेसे इसभांति की शंकार्ये भी अश्विनके धूमकी तरह स्वतः उठि उठि कर उडी चली जाती खड़ी होनेको अवकाश नहीं पातीहै—ईश्वर अपनी प्रभुता से सब कुछ सबतरह कर दिखाताहै न आगे पीछेका कुछ नियमहै न एक सायका (एक सो चौबीस मूल श्लोक वाला पिछला अडादेखो) यह ससार भी अनादि अंत रूपी चक्रके समान धमता कहिचुके तिसकी रचनामें बिलंब होनेका क्या अश्वर है या पहिला पीछा ढूढना क्या प्रयोजन है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ २३६ ॥

जैसे ऊपर मानस वाचिक कार्याके कर्मोंके प्रभावसे जन्मभेद होना कहा गया• तैसे सतोयुरा रजोयुरा तमोयुरा इनके शुद्ध परिपाक से भी जन्मभेद होताहै सो नीचे समझाकर उन्हीं तीनों युराके लक्षरा भी दशावैशे ॥

(सत्त्वादिगुणपरिपाकः गुणानांचिह्नानिच)

आत्मज्ञःशौचवान्दान्तस्तपस्वीविजितेन्द्रियः । धर्मकृद्देवविद्यावित्सात्विकोदेवयोनितोम् १३७ ॥
असत्कार्यरतोऽधीरआरंभविपर्याचयः । सराजसोमनुष्येयुधृतोजन्माधिगच्छति १३८ ॥
निद्रालुःकूरकल्लुब्धोनास्तिकोयाचकस्तथा । प्रमादवान्भिन्नदृष्टोभवेतिर्षुतामसः १३९ ॥

अर्थः—आत्माको जाननेवाला • शौचवाला • दांत • तपस्वी • विशेषजितेन्द्री • धर्म करनेवाला • वेदविद्या जाननेवाला • सात्विक जानी वह देवयोनिको जाताहै—अर्थात्—आत्मज्ञ वह कि जो आत्मा के स्वरूपको जानि पहिंचानिके विद्या तथा धनके अभिमानसेभी रहितहोय—शौचवाच वह कि जो वाहरकी शौचक्रियासे शरीरको शुद्ध राखता हो और भीतर अंतःकरणभी कपटी न हो—दांत वह कि जिसने इन्द्रियोंको यथोचित शिक्षासे संपन्न कियाहो—तपस्वी जो कृच्छ्र आदि तपमें प्रवृत्तरहिता हो—विजितेन्द्री जिसने विशेषकर इंद्रियों को रेमा जीति रखवा हो जो अपने विषयों पर वहकने न पावै—धर्मकृद् वह कि जो नित्यधर्म नैमित्तिक धर्म जातीधर्म इन सब

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

२०१

की साधना करताहो—वेद विद्याविद वह कि जो वेदोंके अर्थको जानताहो—इतने लक्षरोंसे पहिंचाना जाताहै कि यह सतोश्रया वाला सात्विक पुरुषहै और ऐसा सतोश्रया देव योनिमें जाकर जन्मलेता है—वहों भी सामान्य वा उत्तम अति उत्तम आदि देवता योनि उसके अनुसार मिलतीहै कि जैसा थोडा बहुत या उत्तम आदि सतोश्रया संचय हुआहो ॥ १३७ ॥ जो असत्कार्योंमें लीन•अधीर•आरंभी•और विययीभी हो सो राजस जानों वह सराहुआ फिर मनुष्यों में जन्म को पहुँचता है—अर्थात्—गाने बजाने नाचने आदि बहुधा असत्काम तिनके करने या करवाने में जो तत्पर बना-रहिता हो और अधीर किन्तु व्यग्रचित्त रहिता हो कभी सावधानी को न पावै और आरंभी किंतु सदाही संसारी विययीके टंट घंट जिसको लगे रहितेहैं—इतनेलक्षरोंसे पहिंचाना जाताहै कि यह रजोश्रया वाला राजस पुरुष है और ऐसा रजोश्रया मरे पीछे फिर भी मनुष्य योनिमें जन्मताहै वहाँ भी अति हीन वा हीन वा उत्तम अति उत्तम आदि मनुष्योंमें होताहै कि जैसा कुछ अच्छा बुरा राजसश्रया संचय होचुका होगा १३८ निद्रालू•क्रूरकर्मा•लुब्ध•नास्तिक तथा याचक•प्रमादवाच•भिन्नवृत्त-तामस जानों वह तिर्यक् योनियोंमें होयहै—अर्थात्—निद्रालू जो सदा दिनमें भी सोता रहिताहो—क्रूरकर्मा जो प्रार्थार्योंको पीडा देनेवाले काम करता हो—लुब्ध जो अति लोभी किंतु अनुचित मार्गसे भी लोभ करताहो—नास्तिक जो धर्म आदि की निंदा में तत्परहो—याचक जो सदैव मांगनेका स्वभावही रखताहो—प्रमादवाच जो करने न करने योग्य कामका विचार करसकने में सदा गाफिल रहिता हो अर्थात् विचार की शक्तिसे विहीनहो—भिन्नवृत्त जिसने अपना जातीधर्माचार आदि छोड़िके कुछ विरोधी आचरणा अमीकार कियाहो—इतने लक्षरों से पहिंचाना जाताहै कि यह तमोश्रया वाला तामस पुरुषहै और ऐसा तमोश्रया तिर्यक तिरखी योनियोंमें अर्थात् पशु पक्षी आदिमें जाकर जन्मपाताहै—वहों भी उत्तम मध्यम नीच आदि शरीर उस के अनुसार मिला करताहै कि जैसा कुछ तामसश्रयाका संचय होचुका होगा ॥ १३९ ॥

॥ एकसौ बत्तीस तैतीस श्लोकसे आदि लेकर यहाँ तक जो कुछ दर्शाया तिसको याद दिलातेहुये सबका उपसंहार नीचे कहेगे ॥

(पूर्वोक्तस्योपसंहारः)

रजतातमसाचैवंतमाविष्टोधमन्निह । भावैरनिष्टे संयुक्त तत्तारप्रतिपद्यते ११० ॥

अर्थः—एवं रज तम दोनों से सम्यक् आविष्ट हुआ अनिष्ट भावों से संयुक्त इहां

भ्रमते हुये संसारको पहुँचता है—अर्थात्—एकसौ उनतीस प्रलोक में शंकाकरीगई थी कि जहाँ ईश्वरहै सो कैसे अनित्य भावोंसे संयुक्त होताहै—तिसका उत्तर यहाँ उपसंहार में तोड़ करिके समझाते हैं कि—एवं इसप्रकार जैसा छे सात प्रलोकों में कहागया तैसे रजोगुरा तमोगुरा इनदोनों से लिप्तहुआ यह आत्मा का चिदंशमात्र इहाँसंसारही में भ्रमता घूमता हुआ नानाभांति दुःख देनेवाले अनित्यभावों से संयुक्तहोकर (संसारंप्रति पद्यते) देहरूप संसार को पाताहै—तिससे उक्त शंका को अवकाश नहीं है १४० ॥ इसीका श्रेयउत्तर आगे सुनो ॥

(पुनप्रचाह)

मलिनोहियथाऽऽशंकरूपालोकस्थनक्षमः । तथाऽविपक्वकरणआत्मज्ञानस्थनक्षमः १४१ ॥
कटुवेवारीयथाऽपक्वमधुरःसन्स्वोपिन । प्राप्यतेह्यात्मानितपानापक्वकरणेज्जता १४२ ॥

अर्थः—मलीन दर्परा जैसे रूप देखाने में समर्थ नहीं तैसे विनापके करारावाला आत्मा अपने ज्ञानको समर्थ नहीं—अर्थात्—एकसौतीसके पूर्वार्ध प्रलोक से यह शंका करीगई थी कि मन बुद्धि आदि अंतःकरारासे संयुक्त होतेहुये भी उस आत्माको अपना पूर्वजन्म संबन्धी ज्ञान क्यों नहीं आता• तिसका व्यौरा बीच में समझाने पीछे अब कहते हैं कि—हाँ ठीक यद्यपि आत्मा मन बुद्धि आदि अंतःकरारा से संपन्नहै तथापि जन्मांतर के बीते वृत्तांत यादि करने में समर्थ नहींहोता क्योंकि भीतरले मन बुद्धि आदि करारा औजार जोहें सो पके नहीं अर्थात् राग द्वेषआदि मलोंसे जटितहुआ चिंत रहिताहै कि जैसे दर्पराका शीशा मलसे जटि जाताहै (और यही अपनी नाया की आज उसने रक्तीहै कि कोई उसका भेदखुल्लभ करिके न पाइसके) इसीका दृष्टांत आगे देखो ॥ १४१ ॥ जैसे कडुबे सर्वाह फलमें मिठास होते हुये भी कचचे में रसमीठा नहीं पायाजाताहै तैसे विनापके करारा के आत्मामें भी ज्ञता विज्ञता नहीं प्राप्तहोती है—अर्थात्—कदाचित्त यह शंका भी आरोपित करीजाय कि जन्मांतरों का न ज्ञानि सकना जीववर्ससे भी ठीक पायाजाताहै कि जब उसको जीवसंज्ञा मिली तभी उसका जन्मांतर ज्ञान जातारहा•परंतु जबतक जीव संज्ञा नहीं मिली सबसे पहिलाही निज रूप जो उसीआत्माका स्वरूपथा तिसका ज्ञान तो होनाचाहिये क्योंकि वैसे आत्मा का स्वरूपज्ञान ठीकठीक आत्मासेही प्रकाश होसकता और यह अपनीवात्त आपही उसको सिद्धहोगी तिससे यह कहनाठीक नहींहै कि वह अपने भी स्वरूपको नहीं जानि सकता है—ऐसे वितर्कस्वरूपी शंकाके समाधान मध्ये यह दृष्टांत देतेहैं कि—जैसे कडुवी ककड़ी कचरिया आदि फलों में यद्यपि भीटा रस वर्तमान है तथापि उनके

पके बिना सीढा रस नहीं जाना जाता है तथैव बिनापके करण के (अर्थात् अंत-
करण का शोधन हुये बिना) आत्मा में ज्ञता सर्वज्ञता उपस्थित होते हुयेभी पहिले
स्वरूप का ज्ञान पाया नहीं जासक्ता है ॥ १४२ ॥

(पुनरप्याह)

सर्वाश्रयानिजेदेहेवेहीविवृतिवेदनाम् । योगीमुक्तदत्तार्थासायोगमाप्नोतिवेदनाम् १४३

अर्थः—सब में आश्रित हुई वेदना को देही तब अपने देह में पाता जानता है।
मुक्तयुगावाला योगी सब मूर्तियोंको वेदनाको योगमें प्राप्तकरि जानताहै=अर्थात्—
एकसौ तीस के उत्तरार्ध मूल प्रलोक से जो प्रश्न किया गया था तिसका जुदा उत्तर
यहां देतेहैं कि—सब मूर्तियों में टिकीहुई वेदना पीडाको देही जो आत्मा संबन्धहै सो
उसी अपने जुदे जुदे देह के द्वारा जानता पहिचानता है कि जो जो उसके भोगों के
जुदे जुदे स्थान कल्पित हुये अर्थात् एक देहसे दूसरे देहकी पीडानहीं पहिचानता
क्योंकि भोगस्थान बनने का हेतुरूप जो पहिले कर्म अदृष्ट होतेहैं तिनका विलक्षणा
स्वभाव यही है—परंतु योगी पुरुष (जिसके लक्षणा पहिले बहुत वर्णान होचुके हैं)
जो अहंकार आदिके त्याग से निर्मुक्त हो सो इस एकही देहसे सब मूर्तियों में घसी
हुई वेदना पीडा को अपने योग रूपी ध्यान में ठीक ठीक पाता और जानता पहि-
चानता है। इसमें संदेह नहीं ॥ १४३ ॥

कदाचित्त यहाँ यह शका खड़ी होय कि आत्मा एकहै एकही आत्मामें सुर
नर असुर आदि नाना देहभेद होनेका प्रमारा कोईनहीं समझमें आया—
तिसका समाधान आगे कहेगे ॥

(एकस्यैव नानाघटभेदाः)

आकाशमेकंहिषयाघटादिषुप्रग्नयेत् । तयात्मैकोह्यनेकश्चजलाधारेष्विवागुमान् १४४

अर्थः—जैसे आकाश एकही है घटादिकों में जुदा होजाय तैसे आत्मा एक वा
अनेक भी है जलाधारों में सूर्य की भांति=अर्थात्—जैसे महा आकाश एक होते हुये
भी कुछ बडे सक्नों के भीतर घिरके कुछ कुवा बावडोंमें घिरके कुछ सरके घडे
ढोलक आदि वस्तुओंमें घिरके जुदा जुदा दीख परने लगा और इन्हीं नाना भांति
की उपाधियोंमें आकाशके अनेक भेद होकर जैसे नामभेद भी होजातेहैं कि सदाकाश
घडाकाश चत्राकाश इत्यादि ऐसेही आत्मा भी एकसे अनेक दीखनेलगा और उन्हीं

नानाभांति की उपाधियोंको भेदसे देव नर दैत्य आदि नामभेद भी कहानेलेगा अथवा दूसरा यह दृष्टांतहै कि जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब एकहै वह नानाभांतिके जलाशय कूप तडाग नदी आदिमें आभास जुदा जुदा देखिपरनेसे अनेक रूपसा होजाताहै या कांच आदि बहुधा चमकीली चीजोंमें आभास परनेसे अनेक सूर्य देखि परतेहैं तथैव आत्मा यद्यपि एकहै तथापि नाना देहोंमें अंतःकरणा रूपी उपाधियों को भेद से अनेक रूप देखिपरताहै ॥ आकाश और सूर्यके दृष्टांतोंसे पूर्वोक्त पारस्पर्य की दोनों बातें यहां पर दर्शाई गई कि आत्माके बीच में सृष्टि और सृष्टिके बीच में आत्मा इन प्रकारों से परस्पर लीन होरहे हैं ॥ १४४ ॥

पहिले जो बहत्तर ७२ श्लोकसे आदि लेकर गर्भद्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति कही गई थी कि पृथ्वी आदि पाँच जड़धातु और छठा चैतन्यधातु आत्मा का चिदंश ये सब एकसाथही लेकर प्रभु आप रचना करवाता है इत्यादि और जो कुछ कहा था—सो सब खींचकर फिरभी यहाँ व्योरेवार ईश्वरकी ईश्वरता द्वारा अगिले परिच्छेदमें समु-
भावेगै कि जिससे उसका कर्तृत्व जानाजाय ॥



अथपरमात्मनोजगदुत्पत्तौ बीजवापादिकर्मानन्तर मेव सर्वव्यापित्वविवेको नाम षोडशः परिच्छेदः १६

इस परिच्छेदमें यह ज्ञान वर्णानहोरा कि जगदकी उत्पत्तिमें बीज बोलने आदि कर्मोंके साथही परमात्मा सबसृष्टिमें व्याप्तहोजाताहै तिससे कोई वस्तु या कोई जीव ऐसा नहीं देखि परता कि जिसमें उसका निवास न हो ॥

(जगदुत्पत्तिबीजवापः)

ब्रह्मखानिलतेजांसिजलभूभेतिपातवः । इमे लोकाएपचात्मातस्माच्चलचराचरम् १४५

अर्थः—ब्रह्मआत्मा खस आकाश अनिल वायु तेज अग्नि जल पानी भूः धरती मारी ये धातु लोकनीय और यह आत्मा चैतन्य तिसके योग से चर अचर सहित जगद होताहै—अर्थात्—इन पाँचों धातुकी उत्पत्ति इसी क्रमसे होती है कि ब्रह्म जो आत्माहै तिसमें उसकी इच्छासे प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ फिर उसी आकाशमें

वायु उत्पन्न हुआ फिर वायुसे अग्निहूआ फिर अग्निसे जल उत्पन्नभया फिर जल से सृष्टिका उत्पन्न हुई वही जमते जमते कस कमसे धरती होजाती है (परंतु उसकी इच्छानें यह भी सामर्थ्य है कि बिना क्रमके एकसाय अचानक भी उत्पन्न होय) अब तात्पर्य यहां यह लेना है कि ये पाँचोवस्तु शरीरोंमें व्याप्त रहिकर शरीर थांभे रहितोहैं थांभना जो काम है सो धारना कहाती है इसीलिये इनका नाम धातु कहा गया कि जो धारणा करसकें सो धातु कहतेहैं तथापि (इमेलोका) ये धातुलोकनीय हैं अर्थात् देखि परने योग्य जड़वस्तु हैं यह तात्पर्य ठहिरा और यह आत्मा जो चैतन्य ब्रह्म कहा सोई छटा चिदातु है इन पाँचोके बीचमें तो इसभाँतिसे जड़ चैतन्य दोनों का योग मिलाप ठहिरा उषी योग के समुदाय से चराचर मय जगत् की उत्पत्ति होती है ॥ १४५ ॥

(केन प्रकारेणात्माजगत्सृजति)

मृदंडचक्रसंयोगात्कुंभकारोपपाषटम् । करोति तृणमृत्काष्ठेयुं हवा एहकारकः १२६
हेममात्रमुपादायरूपं वा हेमकारकः । निजलात्लासमायोगात्कोशं वा कोशकारकः १२७
कारणान्येवमादाय तासुतास्विहयोनिषु । सृजत्यात्मानमात्माचसंभूषकरणा निच १२८

अर्थः—कुम्हार जैसे माटी डंडा चाक इनके संयोगसे धरको (नाना भाँति सिद्ध) करता है—यद्वा गृहकार (धरामी आदि कारीगर) फूस सद्दी लकड़ीके संयोग से घर बनाता है (तैसे आत्मा भी ॥ १४६ ॥ यद्वा केवल सोना लेकर सुनार नानारूप गहने बनाता है—यद्वा कोशकार नाम कीड़ा अपनी लार (से जाला उत्पन्न करि उषी) के अच्छे योगसे कोशको बनाता है (अर्थात् आपही अपनी लारके जाले से अपने बंधे फसे रहिने योग्य सुन्दर कोश घर बनानेके उसमें शुभ रहिता है तैसे आत्मा भी ॥ १४७ ॥ ऐसेही आत्मा भी कारणोंको लेकर तथा करणोंको भी उत्पन्न करिके इससंसार में उन्हीं उन योनियोंमें अपने आत्मा की सृजता है—अर्थात्—देव नर असुर पिशाच आदि नाना भाँति योनियोंमें वैसेही जूदे जूदे रूप अपने आत्मा के बनाकर उनमें रहिता है (तहां कोड़े वस्तु या घर बनानेकी सामग्री सर्वत्र दोंतरह की प्रसिद्ध होती है कि एक तो ईंट गारा लोहा लकड़ी आदि मुख्य मशाला और दूसरे काम करने के औजार इधियार फिर तीसरे बनाने वाले कारीगर भी अवश्य होतेहैं तब कोड़े कार्य सिद्ध होता है) इसका नियम यदि रक्खो कि मुख्य मशाला तो कारण कहाता है और उससे बना काम जो मकान या गदिना आदि कुछहो सो कार्य कहाता है और काम करने के औजार इधियार जोहैं सो कारण कहातेहैं और बनानेवाला

कर्ता कहता है—सो यहाँ जगत रूपी कार्य के बनाने वाला कर्ता आपही आत्मा ब्रह्म है मुख्य मशाला वही पृथ्वी आदि पाँचों धातु हैं सो कारणा समझने और शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये करणा किंतु औजार हैं—इसीसे प्रलोकमें यह कहा गया कि धातु रूपी कारणों को लेकर तथा औजार रूपी करणों को भी संहालि के आत्मा अपने आत्मा को संसार में अनेकधा सृजता है ॥ १४८ ॥

१४६ अधिकोक्तिः—कूम्हार के दृष्टांत में साटी मुख्य धातु या मशालाकड़ी सो कारणा है—डंडा और चाक सूत धापी उसके करणा औजार हैं कूम्हार आपही उसका कर्ता है और नानाभाँतिके पात्र जो जो बनते हैं सो सबकार्यरूप कहाते हैं ॥ इसी प्रकार सेना धातु कारणा है और इथोडा फुंकनी आदि औजार सब करणा कहे जाते हैं तथा बनेहुये आभूषण आदि सब सोनेका कार्य कहिलाते हैं अर्थात् सर्वत्र कारणासे कार्य की उत्पत्ति होती है—और कार्य भी कर्ता बिना नहीं सिद्ध होता है कि जैसे इसमें कर्तासुनार है ऐसेही सर्वत्र सब सृष्टिकी उत्पत्तिको समझना ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

फिरभी यहाँ यह तर्कना खड़ी होती है कि शरीरों की उत्पत्ति जैसी पहिले वर्णन हो चुकी तिससे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि बुद्धि आदि अंतःकरणा की वृत्तियाँ और ज्ञानेन्द्री सब अपने जुदे कामों में प्रवृत्त रहते हैं तिससे शरीरके संबन्धमें कर्म चलते रहते हैं अर्थात् शरीर के भीतर बुद्धि आदि करणों के सिवाय आत्माका निवास नहीं समझा जाता और जो है भी तो उसहोने का प्रमाणा क्या—इसका समाधान आगे बहुत बड़े प्रमाणों से विस्तार करते हैं ॥

(आत्मनः शरीरस्थस्य प्रमाणानि)

सहाभूतानिसत्वानियथात्मापितथैवहि । कोऽन्यपैकेननेत्रेणहृदमन्येनपश्यति १४९
वाचवाकोविजानातिपुनःसंश्रुत्यसंश्रुताम् । अतीतार्थस्मृतिःकस्यकोवास्वप्रस्यंकारकः १५०
जातिरूपवद्योदृत्तवियोगविभिरहंरुतः । शब्दादिविषयोद्योगं कर्मणामनसागिरा १५१
संसदिग्यमतिःकर्मफलमस्तिनवेतिवा । विदुतःसिद्धमात्मानमसिद्धोपिहिमन्यते १५२
समदाराःसुतामात्याअहमेवामितिस्थितिः । हितहितेपुभावेपुविपरीतमतिःसदा १५३

अर्थः—सहाभूत जैसे सत्य है तैसेही आत्मा भी—अन्यथा कौन एक नेत्र से देखे को और से देखता है—अर्थात्—शरीरों में पृथ्वी आदि पाँच सहाभूत जैसे प्रमाणों करके सत्य समझेजाते हैं तैसे आत्मा भी प्रमाणोंसे सत्य है—अन्यथा यदि उसका होना न सानौग तो यह शरीरके भीतर सेसा कौन है जो एकवार आँख से देखी हुई वस्तु को ठीक समझे बिना फिर और किसी इन्द्रो से देखता किंतु पहिंचाने

का प्रारंभ करदेता है दृष्टांत जैसे हाथ से उसोलना या नाक से सूंघना या जीभ से चीखना इत्यादि अलटा पलटो कौनकरवाने लगता किन्तु उसीआत्माका यहकामहै ॥१४६॥ यद्वा सुनीवातको फिर अच्छे सुनिके विशेष कौन समझताहै और बीतेहुये प्रयोजनकी यादि किसको आतीहै या सोते हुये स्वप्ना दिखानेवाला कौन है और सोतेसे जागने पीछे उसी स्वप्नको समझानेवाला कौनहै=अर्थात्-जो शरीरों में बुद्धि आदि करणोंके सिवाय आत्मा कोई न हो तो फिर यह किसका कामहै कि एक-वार किसीकी बातको सुनिके फिर दुबारा कहिलाता तब अच्छीतरह तत्त्वको पहि-चानताहै अर्थात्बुद्धि और कान उसके वहीहै कि जिनसे पहिलीवारसुनी तब अच्छी तरह नहीं समझपाईथी-औरभी यदि आत्मा इसके भीतर न हो तो फिर पहिलेकभी देखीसुनी बातको बहुतकाल पीछे कौनयादि करावै अर्थात् वही आत्मा यादि कराताहै-और भी जो आत्मा इसमें न हो तो बुद्धिआदि सर्वइन्द्रियों के निपट सोइजाने पर नानाभाँतस्वप्नोंका दिखानेवाला कौनठाहरे या सोतेसमय देखीसुनी स्वप्नेवाली बातोंको जागतेसमय यादिकराने तथा दूसरेको समझानेवाला कौनठाहरे किन्तु उसी आत्माका यहकामहै॥१५०॥जाति•रूप•अवस्था•चरित्र•विद्या•आदिसेअहंकारकौन होताहै-शब्दआदिवियर्थोंकाउद्योगकर्तमनवासीसेकौनकरताहै=अर्थात्-जोआत्मा सब शरीरों में न होता तो इस अहंकारका बोध किसको होता कि हम सेसी उत्तम जातमें-हमसेसेरूपवाले-हमसेसे यौवन वयसवाले- हमसेसे वृत्तचरित्रोंके विस्तार करनेवाले-हम ऐसी विद्यावाले धनवाले राजवाले इत्यादि हम कहिनेवाला कौन होता-और-शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•जो प्रत्येक इन्द्रियोंके सुखदेनेवालेभोगप्रसिद्ध हैं कि जिनके प्राप्त होनेका उद्योग उपाय हरकोई मनसे शोचता तथा मुहसे कहिकर करवाता और निज हाथ पैर आदि कायकर्म से भी करता है सो कौन करनेवालाहै अर्थात् ये सब उसी आत्माके उद्योगहै जो सब इन्द्रियोंको निजप्रयोजन में प्रवृत्तिकिये रहितहै ॥ १५१ ॥ सो विप्लुतहुआ सदिरव बुद्धि होताहै कि कर्मकाफल सत्यहै या नहीं और असिद्ध होताहुआभी अपनेको सिद्धही मानेहै=अर्थात्-वही पूर्वोक्तआत्मा यदि विप्लुत (अहंकार के व्यसन से दूषित) हो तब सदेहभरी मति से युक्त होजाता है अर्थात् भलेबुरे कर्मोंके फलमें बुद्धि ठीकठीक स्थिर नहीं रहित कि फलकाहोना सत्यहै या नहीं (क्योंकि जो फलका होना सत्यमसुभी तो बुरेकर्म न करै केवल भले करै सोनहीं)इसी हेतुसे बहुधा अहंकारवाले कर्मोंको कातेहुये उनमें सिद्धिके न होने पर भी अहंकार से यह समझिलेता है कि अबहाल मैंने सिद्ध क्रिया अब मे सिद्ध

सनोरथ हुआ ॥ १५२ ॥ मेरे स्त्रियां सुत अमात्य में इनका यहस्थिति (उसकीहोती और) हित अहित भावोंमें सदा मति विपरीत (रहती है) = अर्थात्—उसी अहंकार से दूषित आत्माके मनमें इसप्रकारकी धारणा (स्थित) होतीहै कि ये मेरे स्त्रियां ये पुत्र ये स्त्री गुमापते दूत आदि और में इनका प्रतिपालक स्वामी—और भी—कावोंके (हित अहित) भलेबुरे भाव जो आगेको उत्पन्न होनेवाले हों तिनमें सदा उसकीमति उलटी रही आती है (तिससे जो कुछ और भी फल होताहै सो अगिले प्रतीकों से देखना ॥ १५३ ॥

(अहंकारेणविप्लुतात्मनःफलानि)

ज्ञेयज्ञेप्रकृतौचैवविकारेवाऽविशेषयान् । अनाशकाऽनलापातजलप्रपतनोद्यमी १५१ ॥
एवंदृशोऽविनीतात्मावितपामिनिवेशवान् । कर्मण्यद्वेषमोहाभ्यामिच्छयाचैववध्यते १५२ ॥

अर्थः—ज्ञेयज्ञ में और प्रकृति में और विकार में भी अविशेषवाला अज्ञान अज्ञान-लपात जलपतन इनमें उद्यमी होताहै = अर्थात्—ज्ञेयज्ञनाम है आत्मा ब्रह्म का और प्रकृतिनाम है प्रधानमायाका जिसमें तीनोंगुणा बराबर मिले होते हैं (किन्तु तीनों गुणाका बराबर होनाही प्रकृतिका स्वरूप है) और विकारनाम है उसी प्रकृतिका रूपांतर होजाना किन्तु उन्हीं तीनोंगुणाका परिणाम (जैसेदूधसेदही) होकरअहंकार १ मन २ बुद्धि ३ चित्त ४ ये चारि अतःकरणा उत्पन्न होतेहैं—सो वही पूर्वाक्त आत्मा जो अहंकारके उपद्रव से दूषित होकर विप्लुतबुद्धि कहागया वह इनतीनों में अविशेष-वाव होताहै अर्थात् ब्रह्म १ और प्रकृति २ और विकार ३ इनके भेदोंकी विशेषता नहीं समझ सकताहै—फिर इसी मूर्खता के हेतुसे अनाशक अन्नच्छोडि लंघनकरिके दूसरे पर अपनेप्राणा दे देने या अनलापात अग्निमें कूदिके जलजाना या जलप्रपतन रूप नदी आदिमें गिरिके डूबना या वियमसणा करना आदि और भी अनेक ढंगहैं तिनमें उद्यमी उपाय करनेवाला होजाता है ॥ १५४ ॥ ऐसे प्रवृत्तहुआ वही अविनीत बुद्धि आत्मा वितर्षों में अभिनिविष्ट होकर कर्म से या द्वेषमोहों के हेतु निज इच्छासे भी वधे फंसे और मारा भी जाय = अर्थात्—जैसा ढंग ऊपर कहागया तैसे न करने योग्य कामोंमें प्रवृत्तहोके (अविनीतात्मा) खोटी बुद्धिवाला (वितर्षों) कर्ममें का (अभिनिवेश) आराधन करतेकरते कभी अपनेकिये खोटे कर्मसेही अन्य पुरुषके द्वारा कहींबंधता और माराजाता है या कभी द्वेष मोहों कारके निज इच्छासेही फंसेता या मरता है कि जैसाजलजाना डूबिजानाआदि पहिलेकाहिचुके सोनिजइच्छासेसमझना १५५ ॥
इसे उपद्रवों से विप्लुतहुये पुस्तकी संहति इसी देखसे या और किमी देखसे फिर

भी कभी विद्यास पूर्व होती है या नहीं सो नीचे वर्णान करतेहुये एक श्री(भी) उपासना का प्रकार सूचन करेंगे ॥

(विालुतात्मनोपिकालांतरेण उपासनाभेदेःसद्गतिःख्यात्)

आचार्योंपासनवेदशास्त्रार्थेपुविवेकिता । तत्कर्मणामनुष्ठानसंगःसद्भिर्गिर.शुभाः १५६
 स्त्रयालोकालंभविगमःसर्वभूतात्मदर्शनम् । त्याग.परिग्रह।णांचजीर्णकापायधारणम् १५७
 विषयेन्द्रियसंरोधस्तंद्रालस्यविवर्जनम् । शरीरपरित्तरूपानंप्रवृत्तिष्वयदर्शनम् १५८
 नीरजस्तमतासच्यशुद्धिर्निःस्पृहताशमः । एतेरुपाये.संशुद्ध सत्त्वयोग्यमृतीभवेत् १५९

अर्थः—आचार्य की उपासना वेद शास्त्र के अर्थों में विवेकिता • तिनके कर्मों का अनुष्ठान • सत्पुरुषों का संग • सुशीलवारी=स्त्रियों को देखने वा छूने कात्यायन • सर्व भूतों को निज आत्माहुय देखना • परिग्रहोंकाभीत्याग • जीर्ण वा कयाय वस्त्रों का पहिरना=वियर्थोंसे इन्द्रियों का अच्छा निरोध • तंद्रा वा आलस्य का छोडना • शारीरक विद्याका विचार • प्रवृत्तियों में पापका पहिंचानना=निकासि देना रज तम के भाव का • सत्य का शुद्ध करना • निकासिदेना (स्पृहा) अभिजाय का • स्वभाव में शमता • इतने उपायों से शुद्धाहुआ सत्त्वयोगी अमृती होय=अर्थात्—पूर्वाक्त विरलुत हुआ (उपद्रव्ययुक्त) आत्मा जब कभी कालान्तर मे चाहे इसी देहसे या और किसी देहमें जाकर इतने कर्मोंकी साधना करे तब इन उपायों से शुद्ध होकर (मनु अयोगी अमृतीभवेत्) वही अयोगी योग साधेविना भी अमृती होय किन्तु मोक्ष रूपी अमृत का भागी होता है (यहाँ मनुके साथ तु अन्यय अवधारणा और प्रशंसा में समझनी)=उन कर्मोंकी साधना जो ऊपर सब लिखीगई तिसका अभिप्रायरूपी अर्थ यह है कि—प्रथम तो विद्यापढनेके निमित्तसे विद्यागुरु आदि अच्छे आचार्यों के पास रहकर निष्कपट उनकी सेवा करे—फिर पातजल योगशास्त्र वेदांत आदि शास्त्रों मे अच्छाअर्थ समझने का विवेक बढ़ावे—फिर उन्हीं शास्त्रों में लिखे हुये कर्मोंका अनुष्ठान करे—और अनेक सत्पुरुषोंसे मत्संगतिकरके उनमें जो जो अच्छी प्रकृति या कोइता उत्तमगुणा देखे सोभी नम्रतासे रंग्रहकरे—और अच्छी सुशीलता की बारीसीखे कठोर बारी किसीसे न बोले—और परस्त्री का देखना तथा आ से स्पर्श करना त्यागे—और सर्वभूत चर अचरकोभी दुखहोने मध्ये अपनी देहके समान शोचकरे कि जो भी अपनी देहम पीडाहोती है किंतु सबहीमें आत्माको बिराजमान देखे—और परि ग्रह जो बड़े विकट कर्मों के निमित्त से बहुत मनुष्यों का मग्रह करना

परताहै तिन दखेड़ेवाले परिग्रहों काभी त्याग रखै—और जो बनिआवै तो यहाँतक शरीरको बशमें करै कि फटेपुराने बख्तोंको गेहूँआदि से रँगोहुये धारता करै इससे यह तात्पर्य दर्शाया है कि अवसर मिलै तो संन्यासीभी होजाय जैसा संन्यासधर्म वर्णान करचुके—औरविययजो•शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गन्ध•ये पाँच इंद्रियोंको भोग है तिनसबसे तिन इंद्रियोंको रोके—और तंद्रा जो निद्राकी छोटीबहिन एकप्रकारकी शुस्ती होती है तथा आलस्य जो काहली प्रसिद्धहै (कि जो काम अवश्यकरनाचाहिये जिनके कराने नाफिक समर्थ मौजूदहै तथापि अनुत्साहसे न करना यह आलस्य होताहै) इनदोनोंको दूरहीसे बचाता रहै पास न आनेदे—और (शरीरकापरिं संख्यान)शारीरक हिंसाव जो७० सत्तरि श्लोकसे आदि लेकर १०६ एकसौतीश्लोकतक वर्णान होचुका तिसको अच्छे समझिके यादिकरै—और सर्वत्र प्रवृत्तियों में अध पाप का देखना अर्थात् प्रवृत्तिनामहै कहीं जाना चलना हाथपाँवका दौडाना या किसी कार्यका प्रारंभ करना या किसी कार्य में बुद्धिका विचार दौडाना आदि तिन सब तरहकी प्रवृत्तियों में सबसे पहिले किसी जीवकी हिंसा होजानेका पाप दुंदुता रहै कि इस प्रवृत्तिमें असुक पापहोगा सो न होनेपावै—और रजोगुरा तमोगुराका स्वभाव जैसा (१३८।१३९)दो श्लोकोंसे वर्णान होचुका सो न राखै—और सत्वकी शुद्धि अर्थात् मनका भावहै वह सत्त्व कहाताहै तिसको अनेक प्राणायाम आदि उपायों से शुद्धराखै—और निःस्पृहता किन्तु विशेषभोगोंकी अभिलाष छोडिदेना यही बहुतबड़ी तपस्याका बीजहै—यस अर्थात् भीतरजी चित्तकी वृत्तियोंको जीति के शांत राखै यही शम कहाताहै—ये सब आचार्य की सेवा आदि जो कुछ उपाय कहेगये तिनकी साधनासे अच्छा शुद्धहुआ आत्मा यद्यपि अयोगी (किन्तु संन्यास आदि योग नहीं किया) हो सोभी इतने उपायोंसे अमृत मोक्षका भागी होजाताहै ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

१५६अधिकोक्तिः—एकसौ उत्सव श्लोकमें (सत्त्वयोग्यमृतीभवेत्) यह चौथा पदहै तिसका अर्थान्वय दो तरहसे होताहै एकती (सत्त्वयोगी अमृती भवेत्) यह पदच्छेद है तिसका अर्थ ऊपर लिखा गया—और दूसरा (सत्त्वयोगी अमृती भवेत्) यह पदच्छेदहै इसकाअर्थ ऐसे होताहै कि सत्त्व जो सत्त्वोग्या है वही मनके भावकी शुद्धि समझना तिसका साधनेवाला सत्त्वयोगी ठहरा सो अमृतका भागी होताहै— यद्यपि अर्थ दोनों सत्य है तथापि येसु वही समझना जो ऊपर अर्थों में लिखा गया क्योंकि सत्त्वका योगी पूरा संन्यासी होताहै तिसका प्रसंग पहिले संन्यास धर्म में

आचुका—किन्तु यहाँ यह दूसरी भाँतिकी उपासनाविधि उसके लिये कहाँ गई जो सत्वका योगी पूरा न हो केवल इन्हीं चारश्लोकों में कही हुई उपासना के सामान्य उपायों से अपने आत्मा का शोधनसाध कर सके सो अयोगी भी मोक्षभागी होता है चाहें कोईही कुछ योगी संन्यासी का नियम नहीं यद्गतात्पर्यहै ॥ इसतात्पर्यके ठीक होने पर भी याद रखवौ कि दोनों अर्थ समझना क्योंकि यह ऐसा पुरुष भी कदाचित्त साधना करते करते पूरा, योगधारी संन्यासी होजाय तो वह दूसरे अर्थके अनुसार सत्वहीका योगी समझा जायगा—इसीलिये अगिले दो श्लोकोंकी विचारो कि याज्ञवल्क्यजीने योगी अयोगी दोनोंका तात्पर्य उनमें दर्शायाहै ॥ अगिले दो श्लोकों में यह नियम सिद्धकरैगे कि मोक्षपद कैसे मिलता है ॥ १५६॥१५७॥१५८॥१५९॥

इसी प्रसंग में जो कहिना कुछ शेररहा सो अब अगिले परिच्छेद में देखना ॥

अथ-सत्कर्मादिहेतूनां परिपाकात्जातिस्मरत्त्वदेवयोनि त्ववागच्छतीत्यादिविवेकीनामसप्रदशपरिच्छेदः १७ ॥

इसपरिच्छेद में वह विवेक जाना जायगा कि सत्कर्म आदि विरले अन्य हेतुओं से भी बहुधा प्राणीजातिस्मर हीते यथा देवयोनिमें जातेहैं इत्यादि और बातेंभीदर्शावैगे

(कथंममृतत्वप्राप्तिःजातिस्मरत्वंच)

तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्वयोगत्वारक्षयात् । कर्मणांसांनिकर्पाच्चसतांयोगःप्रवर्तते १६०

शरीरसंक्षेपवश्यमनःसत्वस्थमीश्वरम् । अविष्टुतमतिःसम्प्राजातिस्मरतामियात् १६१

अर्थः—तत्व के स्मरणा से उपस्थान (प्रज्ञान) से सत्वके योगसे कर्मोंके क्षय होने से सत्पुरुषोंके संगसे योग वर्तमान होताहै कि जिसकामन सत्वस्थ होके शरीर नाश होतेसमय ईश्वरमें लगे—अथवा) अविष्टुतबुद्धि हो सो अच्छे जातिस्मरत्व को पहुँचै =अर्थात्—अब यादकरौ—पूर्वोक्त दोनों अर्थका तात्पर्य यहाँ दर्शातेहैं कि—तत्वस्मरपी जो आत्मा है तिसकी यादगारी खूबकरतेकाले और उसकोनिरंतर प्रज्ञानमसंस्कार (उपस्थान) उसकेसमीप चित्तलगाते लगाते और मन्त्रनाम जो सतोयुगा(किन्तु अपने सतका) शुद्धभाव तिसके योग मिलाप से कृकर्म्मों के बीज नाश होजाने से साधू

सत्पुरुषोंका संग सेवन करते करते (योगःआत्मयोगःप्रवर्तते) आत्मा से योग नि-
लापहोजाताहै सो यह उसीको कि जिसकामन सतोश्रामें स्थिर होते होते ऐसा नि-
प्रचलहोजाय जो सरतेसमय ड्रैयरमें लीनहोसके यह तौ पूरे योगी संन्यासीका चर्चा
किया—अथवा—जो इतना पुरानहोसके केवल अविच्छ्रुत बुद्धि होजाय अर्थात् १५२
एकसौ वासनके प्रलोकवाली दशमाव मित्तिज्ञाय जिससे आत्मा की पहिंचान में
बुद्धि स्थिर होने लगे पूरा उपासनावाले योगमें होशियारी न होसके तौ भी इतने
उत्तम कर्मके प्रभावसे ऐसा पुरुष सरनेके बाद जहाँ जन्मलेता है तहाँ पहिले जन्मों
के अपने सब दुख सुख आदि यादि करसकनेवाला जातिस्मर होताहै फिर उस जा-
तिस्मरत्व से भी अच्छा ज्ञान होकर मोक्षका रास्ता ढूंढिलेता अर्थात् येय कर्मोंमें
मन लगाताहै ॥ १६० ॥ १६१ ॥

(अजातिस्मरत्वेपिङ्गतिः)

यथाहिभरतोवर्षैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् । नानारूपाणिकुर्वाणस्तथात्माकर्मजास्तनुः १६२

कालकर्मोत्तमवीजानां दोषैर्मातुस्तथैव च । गर्भस्य वैरुतं दृष्टमंगर्हीनाविजन्मतः १६३

अहंकारेण मनसा गत्या कर्मफलन च । शरीरेण च नात्माऽप्यमुक्तपूर्वः कथंचन १६४

अर्थः—जैसे (भरत) नट नाचा रूपों की लीला करते समय अनेक रसों से अपने
शरीर को (वर्णयति) रचता है तैसे आत्मा भी कर्मोंसे उत्पन्न भोगोंके लिये शरीरों
को नाना रूपसे धरताहै ॥ १६२ ॥ तहाँ काल कर्म अपना बीज तथा माताका रक्त
इनके दोषों से अंगहीन आदि गर्भ का विकार जन्म से भी देखा जाता है—अर्थात्—
अंग भंग आदि रूप केवल कर्मों से नहीं किंतु इन दोषोंके मिलापसेभी होते हैं कि
एकतौ उस वर्तमानकाल का स्वभाव दूसरे पूर्वजन्मके कर्मों का प्रभाव तीसरे अपने
पिता के धीर्य का दोष चौथे माता के रजोरक्त का कुछ दोष इन सबके या विश्लों
के संयोग से गर्भमें अथवा लूला आदि विकार पैदाहोता है यहा जन्म होनेबाद कभी
विकार उदयहोतेहैं ॥ १६३ ॥ अहंकारसे—मनसे—गति (ससार के उत्पत्तिमार्ग) से—
कर्म के फलसे भी—शरीर धरनेसेभी—यह आत्मा कैसे हूँ नहीं कभी छूटता है जब तक
मोक्ष पदको न पहुँचै—अर्थात्—यहाँ यह शंका खड़ीहोतीथी कि महाप्रलय होजाते
से (सहस्रत्व) बुद्धि आदि सभीविकारों का नाश होकर कर्मोंकेबीजभी नाशहोजाते
होंगे तौफिर प्रलयकेपीछे जब दुबारा नईसृष्टि रचोयाई तहाँ सबसेपहिले मिले शरीर
मेंकर्मों का सबध कहाँसे आसता है कि जिससे अंग भंग आदि कूडोलरूप पैदाहो—

इसी शंका के समाधान मध्ये यह उत्तर दिया गया है कि आत्मा कभी भी अज्ञात अहंकार आदि कर्म को बीजों से नहीं छूटता अर्थात् प्रलय से पीछे दूसरी सृष्टि में भी पहिली सृष्टि के कर्म बीज संज्ञित बने रहिते हैं कि उन्हींके प्रभावसे दूसरी सृष्टि में भी योनि भेद या अंग भंग आदि रूप भेद उसी आत्मा को मिलता है कि जिसके बीज धरे रहेथे—परंतु उस दशा में बीजनाश हो जाते हैं कि जब उत्तम योग साधना से मोक्षभागी किया जाय ॥ १६४ ॥

१६४ अधिकोक्तिः—कर्मोंके बीज नहीं नाश होते इस बातका दृष्टांत (राजविषय) गदर है कि जैसे किसी समय राजाके राज्यमें महाभयंकर गदर होने लगता है तब तक अच्छे बुरे सब कर्मोंवाले मनुष्य अपना अपना प्रतिकार पानेसे रुकिजाते हैं अर्थात् धन प्राणों को लूटने मारने वाले आदि लगानेवाले आदि भी दण्ड नहीं पा सकते और प्रजा अथवा राजाकी भलाई करने वाले भी अच्छा फल नहीं पासकते क्योंकि दोनोंको फलका दाता जो राजा है सो अपने होंशमें नहीं रहित तब जो चाहे सो भलाई या बुराई करे उसकी बृष्ण नहीं रहिते—ऐसी दशा देखिके अज्ञानी यही समझता है कि ऐसे समयपर सबके कर्म बीज जो कुछ पहिले से भलाई बुराई चली आती थी वह भी मिटिजाती है—परंतु—वही राजा जब राजका प्रबन्ध ठीककरि पाता है (कि इस प्रबन्धको दूसरी सृष्टि कहिना चाहिये) तब यथा क्रमसे सबके कर्मबीजों को टोखता है कि इन मनुष्योंके कर्मबीज गदर के साथ या गदर से पहिली दशा में क्या क्या संचित हुयेथे तिनका भला बुरा फल भी सबको देता है—अथवा उस राजा से राज छुटिजाय तो भी जो दूसरा कोई विवेकी राजा राज्यपर आरूढ होता है सो भी प्रजा लोगोंके उन कर्मोंको टोखता है कि जो कुछ पहिले राजाके अमलमें कर्मबीज संचित कियेहों भले या बुरे दोनों भाँतिके—तो इस प्रकारसे कर्मों के बीज कभी प्रलयके पीछे भी नहीं नाशहोते हैं—संसारमें भी देखिलो बारह महीना के बीच में अकाल बर्षा चाहें तैसी होजाय बीज नहीं जमता है धरती उसको थाँभे रहित है पर बर्षाअनुकूल प्रारंभमें थोड़ी बृंद परनेसे भी वही बीज सब जमते हैं कि जिनका काल वर्तमानहो ऐसेही सृष्टिके प्रारंभ में भी ॥ १६४ ॥

एक यह तर्कना खड़ी होती है कि जिन जीवों के कर्मबीजही प्रधान रहिं तो फिर उनके नियत कर्मोंके समयपरही सौत होनी चाहिये—किंतु यह विपरीत लक्षणा केसाहें कि शुद्धस्थान आदिमें एकही साथ अनेक प्राणी मरजातेहैं—इसका समाधान अबु कहिते हैं ॥

मितासरा म० प्रायश्चित्तकांड ।
(मर्त्यलोकप्राप्तिमार्गः)

येनैकरूपाश्वाधस्ताद्रश्मयश्चमृदुप्रभाः । इहकर्मोपभोगायतैःसंतरतितोऽवशः १६९

अर्थः—तिसके नीचे जो अनेकरूप रश्मियां मृदुप्रभा होती हैं तिनके द्वारा इहां (संसारहीमें) कर्मोंके उपभोग के लिये अवश हुआ संसरणा पाताहै—अर्थात्—पूर्वोक्त सैकारके नीचे जो और भी अनेक भाँति नाड्डियाँ कोमल प्रभावाली है तिनके द्वारा जीव निकसनेसे फिर इसी संसार में अपने कर्मोंके वशीभूत जन्मलेताहै कर्मोंकाभोग भोगनेके अर्थसे ॥ १६६ ॥

(अनीश्वराज्ञपिसति)

नास्तिशुभाशुभयोःकर्तृणोःफलदातेश्वर । इतिवादिनोऽपिबहवोऽनीश्वराःसन्तीहलोके

अर्थात्—भले बुरे दोनों कर्मका फल देनेवाला ईश्वर नहींहै ऐसा वाद करनेवाले (जो अनीश्वर कहते सो) अनीश्वर भी बहुत इसी संसार में हैं और होतेहैं ॥

ईश्वर कोई नहीं यह कहनेवाले भी उसी ईश्वरने रचेहैं कि निज सृष्टि में जो नाना भाँति विचित्रता रची तिनमें एक यह भीहै—अर्थात् थोड़ेसे विद्वान भी तार्किक अर्हत स्वभाववादी आदि अनीश्वरलोग सदासे होते चले आये जो सृष्टिकी उत्पत्ति केवल स्वभावही से अपने आप होती रहिती यह कहिते हैं—कि इसका कर्ता कोई एक ईश्वर नहीं किन्तु वह स्वभावही अपने आप ईश्वर होताहै—विरले तार्किक यह कहते है कि आकाशको छोड़ि शेष चारो तत्वके जुदे जुदे परमाणु आदि बहुत छोटे अंशों से आकाश परिपूर्ण रहकरता उन्हीं परमाणुओं की गाँठें बनि बनि समवाय इकट्ठा होकर स्वतः सृष्टि उत्पन्न होती रहितीहै—तिससे चारो तत्व अपने आपही चैतन्य रूप है अर्थात् उनको चैतन्य करनेवाला कोई ईश्वर नहींहै—वर्षोंकि जो होता तो देखने में आता किन्तु जो देखने में नहीं आसक्ता तो कुछहै भी नहीं केवल बुद्धिमानों की बनावटहै—ऐसे इदवादिशैका विचार थोथा दर्शन के निमित्त से अगिले कई श्लोकों में अनेक शास्त्रार्थ भरे परहैं कि जो उनको पुराविस्तार देना चाहानाय तो वर्षों तक निपटारा न होमके तिसके सूक्ष्म सक्षेप अर्थ लिखेजायेंगे कि हरकोई शीघ्रसमर्थ रहे सब अगिले परिच्छेद में देखना ॥ ॥

अथ-अनीश्वरवादिनां मतखंडनपूर्वकमीश्वरस्य च सर्वग

तस्य प्रत्यक्षलक्षणविवेकीनाम अष्टादशपरिच्छेदः १८ ॥

इस परिच्छेद में अनीश्वरवादी लोगों का मत भूँदा दशाति हुये समर्थ ईश्वर की प्रत्यक्ष पहिँचानिवाले चिह्न भी समझाये जायेंगे कि जो चर अचर दृष्टि में सर्वत्र परि व्याप्त है ॥

(पंचभूतानां अचैतन्यत्वं)

वेदेषु शास्त्रेषु सविज्ञानैर्जन्मना मरणेन च । आत्यर्गागत्या तथाऽऽगत्या सत्येन ह्यनृतेन च १७०

श्रेयसासुखदुःखाभ्यां कर्मभिश्च गुणाशुभैः । निमित्तशक्नुनज्ञानग्रहसंयोगजैः फलेः १७१

तारानक्षत्रसंचारैर्जागरेः स्वप्नजैरपि । आकाशपवनज्यातिर्जलभूतिमिरेस्तथा १७२

मन्वंतरैर्दुर्गप्राप्त्या मंत्रौषधिफलैरपि । विनात्मानं वेद्यमानं कारणं जगतस्तथा १७३

अर्थः—यान्नवलक्ष्य जी सब समाज के सम्मुख कहिते हैं कि ये मुनीश्वर-जगत् के कारणाभूत आत्मा को इन सब प्रमाणाँ से समझे और समझाते हुये को सत्य जानौं (किन्तु प्रमाणाँ से) वेदों से कि वेदकी श्रुतियाँ जैसा उसको जपती है (दृष्टांत जैसे नेतिनेति आत्मा का रूप इतना ही नहीं किन्तु वह स्थूलभी नहीं वह सूक्ष्मभी नहीं उसके हाथ पैर असंख्य वह बिना हाथ पैरों का इत्यादि श्रुति वचन है) —शास्त्रों से कि वेदांत सीमांवा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्र उसका लक्षणा जैसा कहिते हों—विज्ञानों से भी सत्य जानौं कि यह शरीर मेरा इत्यादि बातों का बोलनेवाला साफ जताता है कि मैं शरीर से जुदा इसका मालिक हूँ शरीर मेरा माल है (इन्हीं विज्ञानों में समझ देखौ कि आत्मा शरीर से उपरालू वस्तु है या नहीं) —तैसेही जन्म और मरणासे भी समझ देखौ कि जिससे से वह आत्मा निकसि जाता है तिस देहके पाँचों तत्व जब होके निरर्थक पर रहिजाते हैं फिर वही आत्मा जिस किमी गर्भ में जाकर निवास करता है तिसके पाँचों तत्व चैतन्य होकर एक नयाप्राणी पैदा होजाता है (इस प्रसारासे भी आत्मा जुदीवस्तु और देह जुदीवस्तु निश्चित है) —आर्त्ति जो पीडा है तिससे भी समझ देखौ कि जबतक देह में आत्मा का निवास रहिता तभीतक सुईकी नोक में भी पीडा होने लगती है आत्मा के निकसि जानेवादा छुरी घुसेरने से भी कूट पीडा नहीं—तथैव (गति आगति) जाना आना इन दो से भी समझ देखौ कि जीवता हुआ देह भी जो कहीं जाता या कहीं से लौटि आता है सो भी ज्ञान और इच्छा

(योगपद्याकालमरणाविवेकः)

वर्त्याधार-ब्रह्मयोगाद्यादीपस्यसंस्थितिः । विक्रियापिचदष्टेवमकालेप्राणसंक्षयः १६५

अर्थः-दीपकी स्थिति जैसे चिकनाईको योगसे बत्तीको आधारपर होतीहैविकार भी उसमें देखाहुआ दोषहै ऐसेही अकाल में प्राणों का नाश होता है-अर्थात्-जैसे तेलकी भीजी अनेक बतियों के सहारे पर अनेक जोति अपने अपने जीवन को तब तक याँभि सकती हैं कि जितना जितना तेल उनमें है (ऐसेही प्राणी अपने कर्मों के समान जीसकतेहैं) परंतु जब बड़ी तीव्र वायुका झकोरा रूपी विपत्ति जितने दीपकोंपर एकसाथ आपरतीहै तब तेलको शेष रहते भी अनेक दीपक एकसाथ बुझि जातेहैं तिनमें भी जिनको कुछ आगे पीछे विपत्ति लगी सो आगे पीछे बुझतेहैं (यह वायुकी विपत्तिरूपी कारणा देखाहुआ प्रत्यक्ष हेतु कहाताहै) ऐसेही प्राणीभी आयु शेष होतेहुये युद्ध आदि देखीहुई विपत्तिमें अकालमृत्युसे मरताहै अर्थात् कर्मों का बीजरूपी बिना देखाकारणा अदृष्ट कहाताहै सो तौ नियत कालहीपर मौतहेतु माना जाताहै यह युद्ध आदि देखाहुआ हेतु अनियत कालमें भी मौत कारवेताहै तिससे अकालमृत्यु भी भूँठीनहीं है ॥ १६५ ॥

१६५ अधिकोक्तिः (प्रतिनियत काल विपत्ति हेतु भूतादृश्यस्य-तद्विरुद्ध कार्या करदृश्यहेतुपनिपातेनप्रतिबंध इत्युक्तंचशास्त्रांतरे) अर्थात्-अन्य शास्त्रों में यह प्रमाणा भी लिखाहै कि मनुष्य की लिखी हुई आयुको ठीक समय पर मरने का हेतु जो बिना देखा नियत होचुका है तिसको रांक भी होजाती है उसके बिरोधी कर्म देखे हुये विघ्नरूप आपरने से तभी अकाल मौत होजाती है ॥ १६५ ॥

(मोक्षस्यमुख्योमार्गः)

अनंतरामयस्तस्यदीपवयःस्थितोदृष्टिः । सितासिता-कट्टनीलाःकपिलानीललोहिताः १६६
उर्ध्वमेकःस्थितस्तेपांयोभिल्लात्पूर्वमंडलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्यतेनयातिपरांगतिम् १६७

अर्थः-(१०८। १०९ इन प्रलोकोंमें जो लिखि चुके सो देखी फिर उसीको यहाँ आकर शोची कि) जो चैतन्यरूपी जीव दीपकी गिखा तुल्य हृदय में विराजमान है तिसकी अनन्त असंख्य रस्सी जो नाडियाँहैं सुषेद काली चित्तकवरी नीली सुनहरी गुलाबी लाल काले मिलापके रंगोंवाली हर तर्जकी जातीहैं-तिनमें से (सुयुक्ता नामकी) एक रस्सी ऊपर कपाल तक नवीहै जो बड़ी डोरी सूर्यके मंडल में घुसती

हुई फिर ब्रह्माजीके लोकइको उलाँघती हुई सदा रहिती है (और वेही सब जीवों को डोरियों के छोर उस नटिनी के हाथ में रहिते हैं जो परमात्मा की माया उसकी इच्छा भावसे आप नाचती फिरती और सबजीवोंको हरवक्त नचातीहै कि जैसे कठपुतरीके स्वांगमें पर्दा बीचदेकर कोई नटिनी सुवधार बनिके आड में बैठती और डोरियों के इशारेसे पुतरियोंको नचायाकरतीहै) उसी ब्रह्मलोकसे पार पहुँचीहुई नाड्डी डोरीके मार्गसे परमगतिको जीव जाताहै उस भूपटी के साथ जैसे तार बिजली बिना रोक्ठोक जातीहै इसी भूपटी में उसमायाके हाथसे भी रस्मी छोनिके लेजाता है सो यह वही जीव ऐसा करसकताहै कि जिसने पूर्वोक्त मार्गसे माया को खूब जीति रक्वाहो परमगतिका यह अर्थहै कि जहाँ पहुँचिके फिर संसारी जन्म मरणा आदि दुःखोंमें नहीं आने सकता है यही मोक्षका स्वरूपहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ तात्पर्य इस आशयसे यह दर्शायाहै कि जिसके प्राण कपाल फटिके निकसैचाहें योगाभ्यास के द्वारा कपालफटे या योगसाधे बिना भी किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे ऐसा बानक स्वतः बनिजाय दोनौतरहसे मोक्षभागीहोता है—इसी प्रकार अगिले श्लोकों में लिखे हुये मार्गसे जीव निकसनेवालेको स्वर्ग आदि मिलतेहैं सो आरोंदेखौ ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

(स्वर्गप्राप्तिमार्गः)

यवस्याऽन्यद्द्विंशतसूत्रमेवव्यवस्थितम् । तेनदेवशरिराणितैजसानिप्रपद्यते १६८ ॥

अर्थः—जो इसके रस्मिशतक और भी ऊपरहीको स्थितहै तिससे तैजस देव शरीरोंको पहुँचताहै—अर्थात्—पूर्वोक्तमोक्षके मार्गवाली एकडोरीकेसिवाय जो औरभी रस्मियों (नाड्डियों) का सँकरा इसदेहके भीतरहै कि उसके भी सौ छोर ऊपरहीको रहिते और स्वर्गतक जातेहै कि उसके द्वारा जिसका मरते समय जीव निकसै वह (स्वर्गहीको जाताहै अर्थात्) तैजस जो रजोगुणा सतोगुणा दोनौके सारसे उत्पन्न एक बड़ा उत्तमधातु सुवर्गसे भी अनंतगुणा प्रकाशमान स्वर्बलोक में खानिसे उपजताहै उसी तैजसधातु से इमारतें बहो बनती हे सो बहुत चमकती होतीहै—और दूसरा एक अदृष्ट तैजस जो तेज बल पराक्रम कांतिका बीजरूप सब देवतोंके शरीरमें बही सत्ता रहिती है कि जिससे उनकेरूप अतिशय कांति युक्त होतेहैं क्योंकि यह सत्ता भी रजोगुणा सतोगुणा के सूक्ष्मसारसे उत्पन्न होतीहै—ऐसे तैजसरूपी देवतोंके शरीर तथा रहिनेको वैसे तैजसमय सकान सर्व भोगोंसे भरे हुये जाकर पाताहै कि जहाँ सुख भोगनेके सिवाय दुःखोंका चर्चा नहींहै ॥ १६८ ॥

और प्रयत्न से खाली कहीं न जाता है न आता है अर्थात् प्रथम तो उस दिक्काने का ज्ञान चाँहिये फिर इच्छा भी जाने तथा आने की चाँहिये फिर उसके लिये सबारी आदि कोई सा प्रयत्न भी अवश्य किया जाता है सो इन तीनों बात का अधिकर्ता उस आत्मा के सिवाय कोई नहीं क्योंकि देह उसकी इच्छा विना कुछ नहीं कर-सक्ता—एतत् असत्य से भी शोचो कि सत्यवादी होने को प्रतिज्ञा वा असत्य छोड़ देनेका नियम कौन चलाता है शरीर तो आपही जड़ है इसकी यह सामर्थ्य नहीं कि-ससे आत्माही यह करता है—येसेही येयस् अपनेहित कल्याणकाविचार और यहाँ वा परलोक में सुख दुख प्राप्त होनेका विचार भी आत्मा आप किया करता है जड़ देह का यह काम नहीं—येसेही शुभ अशुभ कर्मों के विचारको भी आत्मा कर्ता है शरीर की सामर्थ्य नहीं क्योंकि ये बातें ज्ञानके आधीन हैं और ज्ञानका विवेक उसी आत्मा के आधीन है—तथा•निमित्त•शक्नुनज्ञान•ग्रहसंयोगजफल•इनसे भी समझ देखो कि निमित्त जो भूकल्प उल्कापातआदि बहुधा शुभ अशुभकीसूचनाकरानेवाले प्रसिद्ध होते हैं तिनका उत्पन्न करनेवाला आत्मा के सिवाय ऐसा कौन है क्या यह भी जड़देहोंका काम है—यद्वा शक्नुनज्ञान जो पक्षियोंकी बोलीसे या उनके उड़ने बैठने के भेदसे शक्नुन कहेजाते और (शक्नुनवसन्तराजआदिग्रन्थोंसे) ठीक उनके फलहोते हैं सो प्रभाव उनमें किसने उत्पन्न किया क्या आत्माके विना जड़देहोंका यह काम है—यद्वा मूर्ध्न्य आदिअवग्रहोंके परस्पर संयोग वा दृष्टि आइपरने से जो जो फल गराक विद्वानों के द्वारा विचार किये जाते और ठीक प्रमारा देते हैं क्या उन ग्रहों के भी प्रभाव आत्मा से उपरालू कोई उत्पन्न करने वाला जड़ देहोंमें से होसक्ता है—तथैव तारा और नक्षत्रोंके संचारसे भी शोचि देखो कि नक्षत्र तो अग्निनीआदि रचतीपर्यंत और तागा इनसे उपरालू जो आकाश में असंख्य बाँख परते हैं जिनके (संचार) चलने घूमनेका आधार जो शिशुमार चक्र है आकाशी पुलके तुल्य तिसपर फिरते रहिते हैं सो किसने रचा क्या आत्माके सिवाय जड़देहों की यह कारीगरी होसक्ती है—तथा जागर और स्वप्नज फलों से भी शोचि देखो कि जागर नाम जागते समय जो कोई सा शक्नुन या अपशक्नुन देखा जैसे मूर्ध्न्य के मण्डलमें छिद्रदेखि परनेलगा या काक-भेयुनहोते देखागया या ह्याया पुरुष अग भग देखि परनेलगा इत्यादि और सोते हुये स्वप्नों में बाराह गर्भवसे जुड़ेहुये रथमें चढ़िकर चलना आदि अनेक भाँत से देखावा चाहें अपने लिये चाहें किसी राजा आदि अपने प्रियतम के लिये सो सब तद्रूप फल देखने में आते हैं अब कहो कि जो आत्माकोईनहीं है तो इनचरित्रोंके रचनेवाले क्या

येही जड़शरीर हैं—तथा जीवोंके उपकार के लिये जो•आकाश•पवन•जोति• (अग्नि और उज्जीता) जल•पृथ्वी (जो रत्नोंसे भरी और नाना वस्तु उत्पन्न करनेवालीधरतीहै) अंधेरा (यह भी एक पदार्थ है) ये सब जिसने रचे सो कितना बड़ा समर्थहै क्या उस आत्माके बिना जड़देह भी ऐसेकामकरसके—तथा युगों की वृद्धि से मन्वन्तर काल फिर उनकी वृद्धिसे कल्पान्तरआदि बड़े लम्बे कालके विस्तारों को शोचि देखौं जो देहोंमें नहीं समायसक्ता वरत उसके बीच असंख्य देह चलेजातेहैं यह किसने रचा—तथा मंत्र और औषधियोंके फल शोचिदेखौं उनमें बड़ेबड़े अनूठेप्रभावहैं सो किसने रचे क्या यह भी जड़ देहोंका काम था—तिससे समस्त जगत् का रचनेवाला कारणा उसी आत्मा को जानौ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

१७०अधिकोक्तिः—एक सौ सत्तर आदि श्लोकमें जो (पंचभूत जड़द्रव्योंसे बने हुये) देह को जड़ कहागया तिसके मध्ये एक यह भी शास्त्रार्थ है—यथाह विज्ञाने चराचार्यः—नहिदेहस्यचैतन्यादि संभवति यत्.कारणा गुराप्रक्रमेण कार्यद्रव्ये वैशेषिक गुरारम्भोदृष्टः नचत्कारणा भूत पार्थिव परमारावाद्यु चैतन्यादि समवायः संभवति तदारब्धस्तभङ्गभादि भौतिकेष्वनुपलभात् नचमदशक्तिवदुदकादि द्रव्यांतर संयोग इतिवाच्यं शक्तेः साधारणागुरात्वात् अतोभौतिक देहातिरिक्त चैतन्यादिसम वाद्यंगी कर्तव्यः—अर्थात्—नहीं देह का चैतन्यादि लक्षणा संभव होता है क्योंकि (असली गुराके शुद्धिक्रिये अवसर से उत्पन्न कार्यरूपी द्रव्यमें उसीके विशेष गुरा का आरम्भ देखागया है पर) उस देहके असली कारणा पृथ्वी आदिके परमाराओं से चैतन्य आदिका समवाय इकट्ठा होना संभव नहीं है क्योंकि उन परमाराओं से बनेहुये लकड़ मटके आदि अनेक देखौं जो पृथ्वी आदि भूतोंकी उत्पत्ति है तिनमें वह चैतन्यका समाज नहीं मिलता है (इस प्रमारासे देहोंको भी समझलो) और यह युक्ति भी न कहिनी चाहिये कि जड़ शक्तिवाले उदक आदि अन्य द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न होता होगा क्योंकि शक्ति जो पदार्थ है सो साधारण गुरा का रूपहै•तो इसहेतुसे ही भूतोंसे उत्पन्न देहके उपरालू चैतन्य आदि समवायको इकट्ठा करने वाला समवायी उसका अधिष्ठाता (वही परमात्मा) भी है यह ऐसा अंगीकार कर्तव्य ठहिरा ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

(पुनरप्याह)

अहंकारः स्मृतिर्मेधाद्देवो बुद्धिः सुखं धृतिः । इंद्रियांतरसंचारश्च्छाधारणजीविते १७४
 सर्गः स्वप्नश्चभावानाप्रिरणमनसागतिः । निमेषश्चेतनायत्तआदानांपांचभौतिकम् १७५
 यतएतानिदृश्यंतेलिगानिपरमात्मनः । तस्मादस्तिपरदेहावात्मासर्वगईश्वरः १७६

अर्थः—परमात्मा के इतने चिह्न ये प्रत्यक्ष देखि परते हैं कि—अहंकार(मैं हूँ) में होता इत्यादिरूप अहंकार के प्रसिद्ध हैं) स्मृति यदि पुरानी बातों की ज़रूरत के समय स्मरण करिलेना कि पहले जन्मों में पैदाहोकर मैं दूध पीने और मांगने लगता था यहां भी वही जन्मकाल फिर वर्तमान हुआ है दूधके लिये रोकर याद दिलाती चाहिये—मेधा उस बुद्धिका नामहै जो समझि पाई हुई बातोंको हर वक्त याद रखि सके—देय यद्यपि वैर को भी कहिते हैं परन्तु ठीकनाम उस लक्षणाकाहै कि दुःख या दुख देनेवाली वस्तु को न चाहै कि यह मेरे निकट न आवै यह देय कहाता है सो अतिशय छोटे शिशुमें भी यह लक्षणास्वतः बिना सिखलाने के उत्पन्न होताहै—बुद्धि उस ज्ञानका नामहै कि ये मेरे माता पिताहै ये और सब गौरहैं ऐसी बुद्धि छोटे शिशु में भी उत्पन्न होजातीहै—सुख आराम इसको पहिंचानना कि यही प्राप्त होय ऐसा बोध अज्ञान बालकों में भी होताहै (रुपया पैसा कौडी आदि सम्मुख डालिके देखीं कि उनमें जो अच्छा होगा उसी को उठावेंगे) धृति धीरज का नामहै कि बालक यद्यपि अकेला पड़ाहो रहाहो कि माता किसी बंधमें लगीहै कदाचिच कोड़े गौर शोध में लेनाचाहै तो न जावैगा माताचाहै विलम्ब से आवै तो भी उसीके निमित्त धीरज किये रहिताहै—इन्द्रियांतर संचार यह कहाता है कि चाहें तैसा अज्ञान बालक हो वहभी एक इंद्रि से समझी बात को पाने के लिये दूसरी इंद्रि पसारता है (दृष्टांत जैसे अज्ञान बालक ने आँख से चन्द्रमा देखा तो उसके लेनेको हाथ या मुँह पसारता है तात्पर्य इसका यह कि चन्द्रमा तक हाथनहीं जासकताहै इस बातकी अज्ञानता होते हुये भी इतना बोध होताहै कि हाथही या मुँहसेभी कोड़े वस्तु पकडो जायगी) इच्छा वह कहाती है कि किसी उपाय पर बुद्धि को बौडाना जैसा अभी जो दृष्टांत लिख चुके हैं कि चन्द्रमा को देखिके तोड़ने की इच्छा उत्पन्न करी—धारणा कहते हैं थाँभने को दृष्टांत जैसे बचाभी कहीं से फिसलिके गिरने लगै और उसको मालूम हो जाय कि मैं गिराऊ हुआ तो उसी समय यह धारणा उत्पन्न होजातीहै कि जहाँ तक हो सके अपने शरीर को थाँभता है कि न गिरने पाऊँ—जीवित नाम है

प्राणों की धारणा का कि जिसको थोड़ा भी-ज्ञान होगा अर्थात् पशु पक्षी आदि भी प्राणों के थाँभने को समझते और थाँभने का उपाय भी जहाँ तक होसके सो करते हैं अर्थात् मारने वाले को सामने आया देखिके आड में होजाना आदि अनेक प्रकार हैं जीवित के=स्वर्ग अर्थात् ऊँची पदवी की पहिचानि और उसकी चाहना अपनी योग्यता के अनुरूप यह बालकों वा पशु पक्षी आदिमें भी स्वतः बोध होता है-स्वप्न भी ऐसी चैतन्य वस्तु है जो बालक और पशुपक्षी आदिमें भी उत्पन्नहोता है तब नाना प्रकार की त्रिलोकीदेखने मे आती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है- भावोंकी प्रेरणा अर्थात् इंद्रि आदि जो जो देहके भावहैं तिनको यथायोग्य जैसीजैसी जह्जरत के समय पर घुमाने चलाने फेरने आदि की तात्कीद अजस्रुद होती रहित्ती है यह भी पूरे चैतन्य का काम है- मनकी चालि को देखौ कि सरासात्र में लाखों कोस हज़ारों संजिल की खवरलेता और सैर करिआताहै यह कैसी पूरी चेतना का काम है-निमेय अर्थात् नेत्र और पलकों का सीचना खोलना जो प्रसिद्ध है वहभी कैसी पूरी चेतना के आधीन है कि उनके इशारों से अनेक बात कही जाती हैं जि-नकी दूसरेलोगविना कहे समझ लेते हैं-पंचभूतों का आदान भी देखौ अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश ये पाँच भूत जो सामान्य भावसे जुदे जुदे उत्पन्न किये गये तिससे इनके पाँच समूह मात्राँहरे तिनका आदान उपादान किंतु सृष्टिकी रचना में लेकर लगाने की धारिकी शोचौ कि बड़े छोटे सब जीव चर अचर जो बने और मया बनते रहिते हैं तिन सबही में ये पाँचों महाभूत हेते हैं अर्थात् इन्हीं पाँचों के मेल से सब जीव हेतेहैं तहाँ यह धारिकी शोचने के योग्यहै कि अति सूक्ष्म जंतुमें कितना कितना भाग इन पाँचों का पहुँचता होगा फिर उन भागों के पहुँचानेवाले की शक्ति शोचौ कि थोड़ा थोड़ा पाँचों में से लेना और यथायोग्य सब जीवों के चोला तक पहुँचाना फिर बडी युक्तियों की चुनाई करिके असंख्य सृतेँ दिखलाय देनी कि जो सकसे दूसरी कुछ अनठी होगी=जबकि परमात्मा के इतने चिह्नप्रत्यक्ष देखे जातेहैं तिससे वह आत्मा देहसे उपरालू जुदा रूपहै पर सबही के देहों में सर्वत्र घुसा रहिता कौंकि ईश्वर है अर्थात् सासध्यमात्र है जो कुछ जिस रीति से होना या करना चाहे सो सब संभवहै तिससे उसकी होनेमें सदेह नहीं ॥ १७४॥१७५॥१७६ ॥

(चैत्रचस्यस्वरूपं)

बुद्धीन्द्रियाणि सार्धानिमनःकर्मन्द्रियाणि च । अहंकारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि १७७
अव्यक्तमात्मलक्षणाः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते । ईश्वरः सर्वभूतस्यः सन्नसन्सदसञ्चयः १७८

अर्थः—अर्थों सहित ज्ञानेन्द्री और कर्मेन्द्री तथा मन और अहंकार और बुद्धि और पृथिवी आदि भूतभी=अर्थात्—बुद्धिवाली पाँच इन्द्रियों (श्रोत्र त्वचा चक्षु जीभ नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्री) अपने वियय रूपी अर्थों (शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन) सहित और मन जो सब इन्द्रियोंका राजा है और कर्मेन्द्री जो काम करनेवाली पाँच इन्द्रियों (मुख हाथ पैर यदा लिंग ये) प्रसिद्ध हैं और अहंकारको पहिले भी लिख चुके हैं तिसका युग्लरूप यहाँपर समझ लेना प्रकाशमान चेष्टा नहीं और बुद्धि जो निप्रचय करनेवाली महात्त्व कहाती है और पृथिवी आदि पाँच भूत भी प्रसिद्ध हैं और=अव्यक्त नामसे प्रकृति=यह सब सामग्री मिलिके देहरूपी क्षेत्र (खेत) कहाता है सो इस क्षेत्र का जाननेवाला क्षेत्रज्ञ वही आत्मा कहा जाता है जो सर्व शक्तिमान् ईश्वर तथा सर्व भूतोंमें संस्थित और है या नहीं इन दोनों लक्षणोंसे सपन्न है क्योंकि (सत् असत् दोनोंमें परिव्याप्त है प्रमाणां से पहिचाना जाता है तिससे है इस लक्षणा से संपन्न ठहरा और प्रत्यक्षरूप देखने में कभी नहीं आता तिससे नहीं इस लक्षणा से युक्त ठहरा १७७ ॥ १७८ ॥

अब इस बुद्धि और इन्द्रियों और अहंकारआदि छिपेहुये पदार्थों की उत्पत्ति जैसे परमात्मा के सकाश से होती है सोभो अगिले परिच्छेद में देखना•क्योंकि अब तक पृथ्वी आकाशआदि महाभूत और अन्य भौतिकी सृष्टि का उत्पत्ति क्रम जहाँ तहाँ दर्शायागया•परन्तु बुद्धि और इन्द्री आदि भीतरी समवाय का उत्पन्न होना अबतक कहागया—यद्यपि तिहत्तरि के प्रलोक से यह कहाया कि गर्भमें युगपत् उसीआत्मा के पाससे उत्पन्न हो जाता है फिर उसी जघे ७५ पचहत्तरि प्रलोक से यह भी कहा कि गर्भमें तीसरे महीना से इन्द्रियोंका प्रकाश होनेलगाता है फिर सातवें आठवें महीनातक मन बुद्धि आदि सब चैतन्य समूह उसमें आजाता है परन्तु यह शरीरों में आजाना जुदी बात है जो सदाजारी रहित है अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भ समय जो सृष्टि रूप से बुद्धि आदिका चैतन्य समवाय पैदा होता है तिसका व्योरा अब तक नहीं कहा गया सो कहेंगे ॥

अथ-बुद्ध्यादीनामुत्पत्तेः स्वर्गमार्गादीनांचोत्पत्तेर्विवे

कीनाम-ऊनविंशःपरिच्छेदः१९ ॥

इस परिच्छेद में बुद्धि आदि समवाय की उत्पत्तिमायाके पाससे जिस क्रमसेहुआ कारतीहै सो जानी जायगी और स्वर्ग जानेवालों को मार्गजैसा मितताहै सोभी कहा जायगा और पुनरावर्ती भी सुनीश्वर जो दूसरी सृष्टिमें फिर आकर वही अपना जन्म पातेहैं और सत्यलोक में जानेवालोंके विग्राम स्थान भी दर्शावेंगे ॥

(सृष्ट्यारंभकाले बुद्ध्यादीनामुत्पत्तिक्रमः)

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहंकारसंभवः । तन्मातावीन्यहंकारादेकोत्तरगुणानिच १७९
शब्दःस्पर्शरूपचरतोऽंगधश्चतद्गुणाः । योयस्मान्निसृतश्वेषांसतास्मिन्नेवलीयते १८०
यथात्मानंसृजत्यात्मातथावःकथितोमया । विषाकाद्विःप्रकाराणांकर्माणामीश्वरोपितस्र १८१
तत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्तस्यैवकीर्तिताः । रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यतेह्यसौ १८२
अनादिरादिमाश्वेषसएवपुरुषःपरः । लिंगेन्द्रियग्राह्यरूपःसाविकारउदाहृतः १८३

अर्थः—अव्यक्त से बुद्धिकी उत्पत्ति तिससे अहंकार का जन्म अहंकारसे तन्मात्रों की उत्पत्ति फिर उनसे आकाश आदि एक एक गुण अधिक वाले भी होते हैं और चकार के ध्वन्यर्थ से दश इंद्रियांभी अर्थात्—सत्त्व रज तम ये तीनों गुण एक सां बराबर तुल्यात्मक मिले हुये प्रकृति कहातीहै उसीका नाम शक्ति भी होता है वही न देखिपरने के हेतु से अव्यक्त कहा जाता है उस अव्यक्त में से प्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है (यहाँ पर बुद्धि केवल इसको न समझना जो सिर्फ एक मनुष्य के हृदय में होतीहै अर्थात् उस महत्त्व को समझना जो सृष्टि की आदिमें सबसे पहले अव्यक्त में से महाबुद्धि उत्पन्न होती है उसी की छाया सब जीवों के हृदय में आकर उस तरह से परती है कि जैसे जलमें सूर्यका आभास) उस महाबुद्धिमें से अहंकार उत्पन्न होताहै उसी अहंकार की छाया सब सृष्टि के जीवों पर परतीहै उसी अहंकार में से आकाश आदि पाँच भूतों के पाँच बीज उत्पन्न होते हैं सो तन्मात्र कहाते हैं उन्हीं के ये नाम हैं (शब्द तन्मात्र १ स्पर्शतन्मात्र २ रूपतन्मात्र ३ रसतन्मात्र ४ गंधतन्मात्र ५) ये अति सूक्ष्म रूपी बीज होते हैं पाँच तन्मात्र कहेजातेहैं फिर इन्हीं मेंसे जुदे जुदे अपने बीजों से आकाश आदि स्थूल रूपी पाँच तत्त्व भी उत्पन्न होतेहैं अर्थात् (शब्द तन्मात्रके बीजसे आकाश) (स्पर्श तन्मात्र बीजसे वायु) (रूपतन्मात्र

बीजसे अग्नितेज) (रसतन्मात्र बीजसे जल) (गंध तन्मात्रबीजसे मृत्तिका पृथ्वी) इसी हेतु जिन बीजोंसे उत्पत्ति हुई उन्हीं बीजोंवाले गुण आकाशआदिपाँचोंभूतमें प्रत्यक्ष होते हैं सोभी एक एक पिंडकेमें अधिक गुण होता है अर्थात्(आकाशमें अपनेही बीजका गुण एक शब्दमात्र होता है १-वायुमें अपने बीजका गुणस्पर्श और अपने वायु आकाशकाभी शब्द गुणाहोताहै २-उसीतरह अग्निमें अपनेबीजका गुण रूप भी और दोनों वायु दादा के गुण स्पर्श और शब्द भी ३-जलमें अपने बीजका गुण रस भी और तीनों परुषात्मा के गुण शब्द स्पर्श रूप भी ४-मट्टी में अपने बीजका गुण गंधभी और चारों अपनेबुद्धों के गुण शब्द स्पर्श रूप रसभी ये पाँच होतेहैं५)) इसी मूल प्रलोक मे च कारसे दश इंद्रिय तथा और भी विशेषता कहिनी शेष रही सो अधिकारिक्त में देखना ॥ १७६ ॥ शब्द•स्पर्श•रूप•रस•गंध•ये उन्हीं आकाश आदि पाँच भूतों के गुण होते हैं सो अभी पहिले प्रलोकमें लिखचुके और यहभी एक नियम है कि उन बुद्धिआदि सभी में जो जिसमें से निकसा है सो उसी क्रमसे प्रत्यक्ष के समय पर उसी में लीन होजाता है ॥ १८० ॥ याज्ञवल्क्य जी पहिली सब सुनाइ हुई व्यवस्था को याद दिलाकर कहिते हैं कि ये योता मुनीचरो आत्मा जो ईश्वर हैं सो जैसे जैसे अपने आत्मा को सृष्टि में सृजता है सो पहिले मेंने सब कहिकर तुमको सुनाया कि यद्यपि वह ईश्वर है तथापि मानस १ वाचिक १ कार्यायिक ३ तीन प्रकार के कर्मों का विपाक फल स्वीकार करनेसे नाना रूप धरताहै (इसी प्रयोजनसे सबसे प्रथम इतनी सामग्री को तैयार करताहै कि अव्यक्त से बुद्धि आदि फिर आकाश से धरती पर्यंत रचिकर फिर उन्हीं से सब जीवों की उपजाताहै ॥ १८१ ॥ तर्हा सत्त्व रज तम ये तीनों गुण जो तुमसे कहे गये सो उती परमेश्वरके समझनेको कि उसकी एक अविद्या मायाके तीनों भागद्वारावर तीन गुण कहातेहैं(कि जैसाएकसी उनातीप्रलोक में अव्यक्त का स्वरूपकहा उसी को अविद्या समझो) तीनोंगुणाक्तहेतितनमें रजोगुण तसोगुणाइन बोही के आवेश करके यहपरमेश्वर आपही सृष्टि रूपहोकर सदापहिया कीतरह चक्रार खाताहुआ घूमता रहितहै यहभी तुमकोमें समझाय चुका सकसी बो-वीस का प्रलोक देखो ॥ १८२ ॥ वही अर्थात् परुष परमेश्वर आदि वाला भी शरीर धारण करनेसे कहाता है कि जब प्रकृति के परिणामसे विकार संहित होताहै और लिगों तथा इंद्रियों से देखने छुड सकने योग्य रूप होता है यह भी तुम से पहिले मे कहिचुका तहां फिर फिर जाके उन्हीं प्रकारों को शोची समझी (यहां डिग और इंद्रियां जो लिखी गई तहां इंद्रियां ती प्रसिद्ध हैं कि उन्हीं से सब रूप देखे सने

छुये जाते हैं और लिंग नाम है चिह्नका और इसी हेतु से देह को भी लिंग कहते हैं कि वह जीवका स्वरूप समझने योग्य एक चिह्न है क्योंकि जो देह रूपी चिह्न कुछ न हो तो फिर जीव का लक्षण भी किसके सहारे से समझा जाय ॥ १८३ ॥

१७६ आधिकोक्तिः—ऊपर लिखी हुई उत्पत्ति में यह विशेषता भी समझने के योग्य है कि तीनों गुणा मिले हुये बराबर का नाम अव्यक्त कहा गया तो बुद्धि जो अव्यक्त से उत्पन्न हुई तिसमें भी तीनों गुणा का प्रभाव होता है परंतु इतना अंतर होजाता है कि बुद्धि में तीनों गुणा होने पर भी सतोगुणा अधिक होता है क्योंकि अव्यक्त नामकी प्रकृति में चैतन्य परमात्मा की छाया घुसने से अव्यक्त उमड़ि चलता है (जैसे किसी नाद या गड़हिले भरेहुये में कोई चीज और भी डारने से उसका जल उमड़ि के बहि चलता है तैसेही तीनों गुणा से बराबर भरे हुये अव्यक्त में चिच्छाया का प्रवेश होने से सतोगुणा बढ़ि जाता है क्योंकि चैतन्य की छाया केवल सतोगुणामयी होती है तिसके प्रभावसे अव्यक्तका भी सतोगुणा उमड़ि चलता है) इसी हेतुसे बुद्धि जो उसमेंसे उत्पन्न हुई तिसमें रजोगुणा तमोगुणा तो बराबर हैं सतोगुणा सबसे अधिक और ८वीं सतोगुणाके प्रभावसे बुद्धिमें ज्ञानकी शक्ति रहकरती है और इसी हेतु से बुद्धि परमात्माकी इच्छास्वरूप कहाती और प्रसारा इसका ध्वन्तरिका वचन है—
यथा—ततोऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधस विगुणां सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम्
चिच्छायाप्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम्—अर्थात्—तिस अव्यक्तनाम प्रकृतिसे महत्त्वरूप पैदा होती हुई कि जिसका दूसरानाम बुद्धि तत्त्व भी होता है वह तीनों गुणा से युक्त है पर तीनों उसमें सतोगुणा बहुत है क्योंकि चैतन्य पुरुष की चिच्छाया प्राप्त होनेसे चैतन्य होजाती और बड़ी निर्मल साफ विल्लीरी पत्थर के समान चमकदार और उसी चैतन्य पुरुष की इच्छामय कहाती है कि जिवर को वह इच्छा दोडाना चाहे उधरीको दौडता है—उसी विगुणामयी बुद्धिका परिणाम (जैसे दूधका दही होजाना) जो विकारभी कहाता है तिसका तेज खिंचकर अहंकार की उत्पत्ति होती है इसीसे वह अहंकार भी तीन भौतिक सात्त्विक राजस तामस जुदा जुदा होता है (परन्तु अहंकारकी उत्पन्नकरनेवाली बुद्धिसे सतोगुणा अधिक होना जो कहिचुके सो नहीं रहता किन्तु रजोगुणा का तेज अधिक होजाता है) इन तीनिमें जो तामस अहंकार कहा तिसकी तेजसे पांचतन्मात्रों की उत्पत्ति होती है फिर उन्हीं से आकाश आदि पांच भूतोंकी उत्पत्ति और एकसौ उनासी मूलश्लोक में सबसे पीछे जो चकार आया तिसके ध्वन्यर्थ से यहाँ जो शेषरहे दोभौतिके अहंकार सात्त्विक तथा राजस इन दोनों

के विकारसे परिणाम होकर जो तेज खिँचा तिससे दो भाँतिकी इन्द्रियाँ पैदा हुई अर्थात् सात्त्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसेपाँच कर्मेन्द्री(यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इन्द्रियाँ सब सृष्टिका एक मशाला पैदा कियोगया तिसका यहाँ चर्चाहै फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यष्टि रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७६ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनांमार्गः)

पितृयानोऽजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति १८१
येचदानरताःसम्यगष्टाभिश्चगुणैर्धृताः । तेपितृनेवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः१८५

अर्थः—अजवीथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जो दानमें रत रहनेवाले तथा आठगुणोंसे संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणहैं वे भी उसीमार्गसे जातेहैं= अर्थात्—अजवीथी अमरमार्ग जो आकाश में देवतोंको सड़कहै बुद्धिमानोंको दिखाने देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणामार्ग में (मूलपूर्वयादउत्तरायाद) इनतीनों के उदयवाले सब तारे मिलिकर अजवीथी वनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै•इस अजवीथीसे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य दिक्कानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितरों का रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहितेहैं•उसी पितरों के रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिन्होंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेदोक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी है ॥१८४॥ और जो कोई सत्पुरुष दानदेना आदि स्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दम्भछोड़के निष्कपट तत्पर हुयेहों उसीमार्गसे जातेहैं•और वे भी कि जो आठगुणा सेवन करने वालेहैं अर्थात् (दया•सौति•अनसूया•शौच•अनायास•मंगल•अकार्पण्य•अस्पृहा) ये आठ लक्षणा जो गौतम आदि ऋषीचरोंके आदेश किये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं•और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रंगे रहिते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

अब नीचे उन सिद्धों की व्यवस्था कही जायगी जो बारबार अपना वही उत्तम जन्म आकर लेतेहैं अर्थात् किसी और यौनिमें कभी नहींजानेपातेहैं यहभी एकविशेष

दंग उसी सर्व शक्तिमात्र की इच्छा से नियमात्मक जानों केवल कर्मोंकी प्रधानता इसमें नहीं क्योंकि ईश्वर की सत्तामें एकसे एक नई अनूठी बात होतीहै इसी हेतु से कोई उसकी इच्छाका अंत नहीं पाताहै और इसीसे वेदोंकी युक्तियां भी नेति नेति की पुकार क्रिया करती हैं ॥

(पुनरावर्त्तिनोलोकाः)

तत्राष्टाशीतिसाहस्रामुनयोऽष्टमेधिनः । पुनरावर्त्तिनोवीजभूताधर्मप्रवर्तकाः १८६

अर्थः—तहाँ अष्टासी हजार मुनीश्वर गृहमेधी सर्वधर्मोंके प्रवर्तक वीजभूत होके रहिते जो पुनरावर्त्ती होतेहैं—अर्थात्—यह संदेह खड़ा होताथा कि प्रलय के होजाने बाद पढ़ानेवालों के मितिजाने से नवीन सृष्टि में नवीन देहोंकी वेद विद्या आदिका बोध कुछ न होने से अग्निहोत्र आदिकर्म कैसे होसकते होंगे कि जिन धर्मोंके होने बिना कैसे स्वर्ग मिलिसक्ता होगा—इसका समाधान समझाते हैं कि—तहाँ पूर्वाक्त पितरोंके मार्गवाले देशमें (प्रलयके समयपरभी) अष्टासी सहस्र मुनीश्वर जो गृहस्थ धर्मके जाननेवाले (पंचयज्ञ आदि नित्य नैमित्तिक धर्मोंकी साधना करनेवाले) सब सासणो सायलिये तबतक वहाँ टिकतेहैं कि जबतक दूसरी सृष्टिका प्रारंभहोय • फिर वहाँसे आकर अपना वही जन्म यहाँ पातेहैं कि जैसा कुछ पहिली सृष्टिमें था इसी हेतुसे पुनरावर्त्ती कहाते हैं कि फिर फिर लौटि आना होता है • वेही आकर सृष्टि के नवीन लोगोंको वेद विद्या आदि सिखलाकर धर्म मार्गमें प्रवृत्त करते हैं (फिर क्रम क्रमसे पढ़ने और पढ़ानेवाले और भी उत्पन्न होते रहिते हैं कि जैसे एक दीपक से असंख्य दीपक जुड़ते रहिते हैं) इसीलिये धर्मरूपी नवीन टुककी उपजानेवाले वीज भूत वे अष्टासी हजार मुनि कहाते हैं क्योंकि जो येही अष्टासी हजार वीज संचित न रहिते तो फिर अग्निहोत्र आदि कर्म यहाँ क्यौंकर जारो होसकते और धर्मरूपी टुकोंकी बढवारी भी वीजोंबिना कैसे होती ॥ १८६ ॥

इसी भौतिके और भी मुनि होतेहैं सो अगिले प्रलोकों में देखो ॥

(अग्न्येपिस्वर्गामिनो मुनयः)

सप्तार्पिनागवीथ्यंतदंबलोकंतमाश्रिताः । तावतएवमुनयःसर्वारम्भविवाजिताः १८७

तपसाब्रह्मचर्येणतंगत्यागेनमेधया । तत्रगत्त्वावतिष्ठन्तेपावदाभूतसंड्वयम् १८८

यतोवेदाःपुराणानिविद्योपनिषदस्तथा । श्लोकाःसूत्राणिभाष्याण्यिषुश्चिकित्तवाज्ययम् १८९

वेदानुवचनंयज्ञोद्ब्रह्मचर्यंतेपोदमः । अद्वोपवासाःस्वातंत्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः १९०

अर्थः—सप्त ऋषि जो आकाश में उदयहोते देखिपरतेहैं • नागवीथी अर्थात् रेरा-

के विकारसे परिणाम होकर जो तेज खिँचा तिससे दो भाँतिकी इन्द्रियों पैदा हुई अर्थात् सार्विक अहंकारके तेजसे पाँचज्ञानेन्द्री और राजस अहंकार के तेजसेपाँच कर्मेन्द्री(यहाँ भी अहंकार और इन्द्रियोंको केवल एक पुरुषके देहमध्ये नहीं समझना किन्तु सृष्टिके प्रारंभ में समष्टिरूपसे जो अहंकार और इन्द्रियाँ सब सृष्टिका एक मशाला पैदा क्रियागया तिसका यहाँ चर्चाहै फिर उसी समष्टिकी राशिमें से व्यक्ति रूप करि करि सब सृष्टिकी रचना करीजाती है) ॥ १७६ ॥ अब स्वर्गजानेवालोंका मार्ग उनके कर्मोंके आधीन आगे कहेंगे ॥

(स्वर्गगामिनांमार्गः)

पितृयानोऽजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति १८१
येचदानरताःसम्यगष्टाभिश्चगुणैर्गुताः । तेपितृनेयमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः१८५

अर्थः—अजवीथी का और अगस्त्य का जो अन्तर है सो पितृयान है तिससे अग्निहोत्री स्वर्गको जातेहैं स्वर्ग की कामना रखनेवाले=और जे दानमें रत रहनेवाले तथा आठगुराँसे संयुक्त भी और सत्यके व्रतमें परायणहों वे भी उसीमार्गसे जातेहैं= अर्थात्—अजवीथी अमरमार्ग जो आकाश में देवतोंकी सङ्कहै बुद्धिमानोंकी दिखाने देतीहै कि रूप उसका आकाश दक्षिणामार्ग में (मूलपूर्वायादुत्तरायाद) इन्तीनों के उदयवाले सब तारे मिलिकर अजवीथी बनी कहाती यह तारागण के शास्त्रोंका सिद्धांतहै-इस अजवीथीसे लेकर अगस्त्य के उदय होने योग्य दिक्कानेतक बीचका जो अंतरहै वही (पितृयान) पितरों का रास्ताहै कि जहाँसे पितृलोक में जाते आते रहतेहैं-उसी पितरों के रास्ते होकर अग्निहोत्री लोग स्वर्ग में जाने पातेहैं कि जिन्होंने स्वर्ग देखने या भोगने की कामना से वेदोक्त अग्निहोत्रोंकी उपासना करी है ॥१८४॥ और जे कोई सत्पुरुष दानदेना आदि स्मार्त कर्मोंमें अच्छे ढंगसे दसहोत्रिके निष्कपट तत्पर हुयेहों उसीमार्गसे जातेहैं-और वे भी कि जो आठगुरा सेवन करने वालेहों अर्थात् (इया-शांति-अनसूया-शौच-अनायास-मंगल-अकार्पण्य-अस्पृहा) ये आठ लक्षणा जो गौतम आदि ऋषीयोंके आदेश किये प्रसिद्ध हैं सो जिनमें हों वे भी उसी मार्गसे जातेहैं-और वे भी कि जो लोग सत्य बोलनेके व्रत में रमे रहते हों उसी मार्गसे जातेहैं ॥ १८५ ॥

अब नीचे उन सिद्धों की व्यवस्था कही जायगी जो बारंबार अपना वही उत्तम जन्म आकर लेतेहैं अर्थात् किसी और यौनिमें कभी नहींजानेपातेहैं यहभी एकविशेष

तथैव=पुण्याप्रलेयात्तथादित्यावीथीचैरावतीस्मृता=अथात्र-पुनर्वसु पुष्य प्रलेया इन तीनों के जितने तारे हैं आकाश में सो सब मिलके रेरावती वीथी कही है=एवं=मूलायाद्योत्तरायाढाअजवीथ्यभिशाब्दिता=अथात्र-मूल पूर्वायाड उत्तरायाड इन तीनों के सबतारा मिलि के अजवीथी कही गइ सो यह एकसी छहासी के प्रलोक में आइयो इत्यादि अनेक और हैं पर यहां केवल नागवीथी का प्रयोजन हे सो ऊपर लिख चुके ॥ ० ॥ यद्यपि संदेहों को मिटाते चलेआते हैं तथापि यहां श्री(भी नवीन शंकार्ये खड़ी हुई कि जब इंद्र आपही सर्व शक्तिमान है तब उसको धर्म कर्म और वेद विद्या आदि के बीज संचित करनेकी क्या भोडपरी और क्या ऐसी ब्रह्मत दहरी जो संसारी किसानों की तरह वह बीज संचय करवाता है क्या जैसे और बड़ी दुर्लभ चीजें उसकी इच्छा से उत्पन्न हुई और होतीहैं तैसे इनको नहीं उत्पन्नकारसत्ता बल्कि बीजतौ असंख्य सब चीजों के उसीकी इच्छा से कारणा बिनाभी उत्पन्न होते हैं-और दूसरी यह शंकाहै कि प्रलय के होजाने में सब सृष्टि निरालोक होजाती है कि जिसके पीछे दिशार्थे और आकाश वायु आदि सब उत्पन्न किये जाते हैं तब जाकर कहीं दूसरी सृष्टिका प्रारंभ होताहै तो फिर क्या ऐसी दशामें स्वर्ग बनारहता है कि जिसमें अट्ठासी हजारसे दूने मुनीन्द्र जाकर टिकतेहैं-और तीसरी यहशंका है कि ये मुनीन्द्र पुनरावर्ती बहे गये जो पुनः पुनः सृष्टियों के प्रारंभ में सदेह कैसे लौटि आते हैं क्या ब्रह्मा की आयुसे भी अधिक इनकी आयु होती है जो मदा सब सृष्टियों की आदि में येही लौटि आते हैं-समाधान सुनों इंद्र वही कहाता है जो (कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं वा समर्थः सइन्द्रः शक्तित्रय समन्वितः) इन तीन भाँति की शक्तियों से भरा पुराहो अथात्र जो किसीसे भी न होसके तिस अपूर्व कर्म के करने को समर्थ होय-और जो होनेवाली अमित कोइ वार्ता है तिस भेटि देने को समर्थ होय-और अन्यथा कर्तुं वा किंतु तीसरी यह शक्ति है कि जो कोइ बात एकही प्रकार से होती है तिसको भी अन्य प्रकार से करसके और वा गदसे के विकल्पसे उस मुख्य प्रकार सेभी करसके अथात्र जिसमें दोनों तरह स्वाधीन होवें कि चाहें तब और तरहसे करनेलागें या उनी एकप्रकार से होने देंवें-इसका यह दृष्टांत यादिकारो कि जैसे मनुष्यके शरीर में सींग और पूंछ नहीं होतीहैं यह एकही प्रकार नियमात्मक और सबको मालूम है परंतु इंद्र ने अपनी अन्यथा कारणा शक्ति के प्रभाव से शृङ्गीन्द्रयि आदि मनुष्यभी सींगवाले बनाकर दिखलाये यह कथन बाकी न रक्खा कि सींग होही नहीं सकते हैं ऐसी ही इंद्र ने पूंछ वाले भी मनुष्य उमने च-

वत हाथीका रास्ता जो अचिनी भरणी कृत्तिका नक्षत्रोंके सब तारे मिलि के उत्तर मार्ग में नागवीथी कहाती है वीथियोंका वृत्तान्त अधिकोक्ति में) सप्त ऋषि और नागवीथी का जो बीचरहा स्वर्ग लोकमें तहाँभी उतनेही अट्टासीहजार दूसरे मुनिलोग जाकर टिकते हैं कि जबतक प्राकृत किस्म का प्रलय होतारहिताहै ये मुनिलोग भी गृहस्थी भगड़ोंसे बचेहुये केवल ज्ञानके स्वरूप और तपस्या ब्रह्मचर्यसे संयुक्त होते हैं सब संग छोड़े हुये और मेधा नामकी बुद्धिसे संयुक्त होतेहैं कि जो कुछ पहिलेदेखा सुना तिसकी धारणा बनी राखें किन्तु भूलें नहीं॥ १८७॥ १८८॥ जिससे फिर अगिली सृष्टिके प्रारम्भमें चारों वेद पुराणा विद्यायें उपनियद प्रलोक सुत्र और भाष्य जो मूर्खों की व्याख्यारूप होतेहैं और भी जो कुछ वारारूप शास्त्र होतेहैं सो मांसा वैद्यक ज्योतिष आदि सो सबउन्ही मुनि समूहोंसे प्रवृत्त होताहै अर्थात् जो एकसौ छहसीके प्रलोकमें गृहस्थी धर्म जाननेवाला एकमुनि समूहकहा दूसरा जो गृहस्थी जंजालोंसे बचाहुआ समूह इसी जघेपर दर्शाया गया इन्हीं दोनों समूह से सब धर्म कर्म और वेदविद्या आदिजारी होतेहैं इसीलिये ये सब धर्म प्रवर्तक भी कहाते हैं॥ १८९॥ इसी हेतुसे वेद अन्तित्य नहीं कहाजाता क्योंकि प्रलय कालमें भी नाश उसका नहीं होताहै इसी लिये जो कुछ वेदों के बचनानुसार हो यज्ञ ब्रह्मचर्य तप दम ग्रहा उपवास स्वातंत्र्य अर्थात् मुक्ति मार्गकी साधना सो सब आत्मज्ञानके हेतूहैं अर्थात् जो वेदान्त्य और सनातन दरिहा तो उसके द्वारा जो जो धर्म कहा गया सो उसवेदकी प्रबलता सेही परमात्माका स्वरूप दर्शनकरानेवाला सत्यहै सदेहकी टिकाना इसमें नहीं १९०॥

जबकि वेद नित्य और सर्वथा प्रसारा भूत दरिहा तो सभी आयुष के लोगों को वह वेद नाना प्रकारों से जानना और सेवन करना चाहिये तिसका प्रकार अगिले प्रलोकों से दर्शावेंगे—यहां पहिले इन्हीं प्रलोकों की अधिकोक्ति देखी ॥

१८७ अधिकोक्ति:—वीथियों का प्रसंग ऊपर आयाथा सो वीथी अनेक भाँति की होती हैं किंतु वीथी नामहै रास्ते का—यहाँ सिर्फ नागवीथी का चर्चा था उसके पासभी ऐरावती और गजवीथी नामसे दो वीथी और हैं सो बीचमें और बाहने नामे फटिकर तिराहा (वीथीत्रय) कहाता है एक एक वीथी तीन तीन नक्षत्रों के सबतारे मिलि कर कहाती है जैसा विष्णु पुराणा का यह बचनहै कि—अचिनीकृत्तिकाया न्यानागवीथीति श्रद्धिता—अर्थात्—अचिनी भरणी कृत्तिका इन तीनों के सबतारे मिलिकर नाग वीथी कही—औरभी—रोहिण्यार्द्रामृगशिरोगजवीथ्याभवीथ्यते—अर्थात्—रोहिणी मृगशिर आर्द्रा इन तीनों के तारे मिलि के गजवीथी कही जाती है—

में० फिर दक्षिणायन के लोकमें० फिर पितरों के लोकमें० फिर चन्द्रमा के लोकमें (इन सब देवतोंसे संस्कार पाने पीछे) फिर वायुके लोकमें जाकर वायुरूप होता है० फिर वयकके लोकमें जाकर ट्टयिरूप होता है० फिर जलके लोकमें आकर जलहीका रूप होके पृथ्वीपर आजाता है० फिर उस जलसे धरती में नानाअन्न औषधीकारूप होकर जीवोंके आहारद्वारा वीर्यरूप होजाता है० फिर वीर्यभी संसारी योनिमें पड़िके कोइसा गर्भरूपहोजाता है० फिर वह गर्भ इसी संसारमें पैदाहोकर वेहीदुःखसुखभोगता है कि जो कुछ श्रेयकर्मोंके प्रभावसे उस योनिमें भोगनेयोग्य ठाहरहें॥ १९५॥ १९६॥ जोकोइ अच्छी होशियारी से ये दोनों मार्ग नहीं जानता किन्तु दोनों से किसी एक मार्गमें जाने योग्य उपायरूपी धर्मोंको नहीं सम्हारता है सो वंद शुकनाम सर्पआदि की योनि में जाताहै या पतंग ठीड़ी आदि की योनि में या कोट छींगुर आदि की योनिमें या क्षमि जो बियाआदिमें सुंड़ी परजातीहै तिनकी योनिमें होताहै ॥ १९७॥

अनंतशेक्त नीचयोनि में जानेको बचाना चाहै तिनके लिये उत्तम योग

साधनेकी उपासना अगिले परिच्छेद में दर्शावेंगे ॥

—*—

अथ-अणिमाद्यष्टविभतिप्रापकयोगाभ्यासनिरूपणादि ।

मोक्षस्वरूपविवेकीनामविंशःपरिच्छेदः २० ॥

इस परिच्छेद में योगाभ्यास रूपीसोक्षका प्रकार जानाजायगा कि जिसके सिद्ध होजाने में अणिमा आदि विभूतें भी मिलसकती हैं—और योगाभ्यास के उपरालू इतर प्रकारोंसे भी मोक्षहोताहै वो भी बर्णन होंगे

(उपासनायाः प्रकारः योगाभ्यासः)

करुस्योत्तानचरणःसन्धे न्यस्योत्तंकरम् । उत्तानंकिंचिदुन्नान्यमुखंविष्टभ्यचोरसा १९८
निमीलिताक्षःसत्त्वस्योदनेर्दन्तानसंस्पृशन् । तालुस्याचलाजिब्रुवभसंतृतास्यःसुनिश्चलः १९९
संनिरुध्येन्द्रियग्रामंनानातिर्नाचोच्छ्रितासनः । द्विगुणंत्रिगुणंवापिप्राणायाममुपक्रमेत् २००
ततोऽप्येयःस्थितोयोऽतोदृढयेदीपवत्प्रभुः ॥ धारयत्तत्रचारमानंधारणाधारयन्नुषः २०१

अर्थः—दोनों जाँघपर उताने दोनों चरणा स्थापित किये जो (पल्लोयोमारना) पद्मासन बांधनाभी कड़ाता है० वामे हाथ चित्तकिये हुये पर दाहनाहाय चित्त क्रिया

प्रत्यक्ष पासकते हैं ॥ तहां वनमें उनकी योग साधना दीकहोजानेपर जिसमार्गसे जाकर परमधाम तक पहुंचतेहैं सो मार्ग अगिले प्रलोकों से दर्शाया जायगा और दूसरा मार्ग वह भी कि जिसके द्वारा स्वर्ग जीतनेवालेपुरुष जाकर फिर यहीं लौटिकेआतेहैं सो आगे कड़ाजायगा ॥ १९२ ॥

(परं ब्रह्मप्राप्तिमार्गस्वरूपं देवयानं)

क्रमत्तिसंभवंत्यचिरहःशुक्लंतपोत्तरम् । अयनदेवलोकेचसवितारंसवैद्युतम् १९३

तजस्तान्पुरुषोऽभ्येत्यमानसो ब्रह्मलोकिकान् । करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिहनविद्यते १९४

अर्थः—ये लोग (जिनका चर्चा एकसौवानवे प्रलोकमें आचुका है) क्रमक्रम से इन स्थानोंको पहुंचते और टिकते जातेहैं कि टिकने मात्रसे इन्हीं लोकोंके देवताकी समान तबतक रूपभी पलटताजाता और वेही सब देवता उनको अपनासा रूपतेजदे देकर मार्गकी रक्षा तथा सहायता साथ आगेको पहुंचाते जातेहैं तिनकोनाम समझो कि—अर्चिस अग्निकालोक•अहर् दिनकालोक•शुक्लपक्षकालोक•उत्तरायन कालोक•देवलोक•सवितसूर्यलोक•वैद्युत विजुलीकालोक•अर्थात् ये सब लोक मुक्तिका मार्गहैं और यही रास्ता देवयानभी कहाताहै तिसमें बड़ेबड़े सुख मत्कारैंगे वे लोग चलेजाते हैं कि जिनकी योग साधना पूरी सिद्धिको पहुंचिगई हो=ततः सबसे पीछे वही सत्यनारायण पुरुष जो प्रथम मनसे ध्यान कियागयाआगे आकर इनसब योगधारियोंको ब्रह्मलौकिक बनाता है अर्थात् अपने सत्यरूपी परमवासके लोकमें उसी जयके समान इनका रूपकारिके बसाताहै कि फिर उनको इहां संसार में नहीं आना होताहै ॥ आगे एकरास्ता और भी दर्शावैगे कि जिसमें जानेवाले फिर यहीं लौटिके आतेहैं ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

(पूर्वोक्तपितृयानस्वरूपं)

यज्ञेनतपसाशनैर्वैहिस्रगेजितोनराः । धूमनिशांरुष्णपक्षेक्षिणायनमेवच १९५

पितृलोकंचंद्रमसंवायुंश्रींजलंमहीम् । क्रमत्तिसंभवंतीहपुनरेवब्रजंतिच १९६

एतद्योनविजानतिमार्गद्वितीयमात्मवान् । देवशूकःपतंगोवाभवेत्कीटोऽथवाकृमिः १९७

अर्थ—शास्त्रोक्त विधानों से यज्ञ तप दानों को बलसे जो कोड़े स्वर्ग जीतनेवाले पुरुष होतेहैं तिनका मार्ग स्वर्गफल भोगे पीछे इस क्रमसे है कि—प्रथम अग्नि को छोड़ि उसके धूमलोक में जातेहैं फिर निशा रात्रिके लोकमें फिर ऋणापक्ष के लोक

रकी बजाई जाती है उत्तरी पंद्रह मात्राओं से प्राणायाम अवस कहाता है मध्यम उससेदूना कहा और श्रेय उससे त्रिगुना होता है तैसाही उत्तम मध्यम नीच धारणाभी कहाती है कि जैसे प्राणायामों से साधी गईहों किंतु तीर्त्ततीन प्राणायाम से एकएक धारणा कही गई है तैसी तीन धारणा से एक योगभी तैसाही उत्तम या मध्यम या अवस योग होता है कि जैसे धारणा योगीने निज शक्तिके अनुसार साधीहो•ऐसा योग एकवार भी जो रोज रोज साधै सो योगी पुरुष कहाता है•जो बारंवार अर्हनिश सेसे योगों का अभ्यास किया करताहो वही पूरा पूरा योगाभ्यासी होगा ॥२०॥

पूरे पूरे योगाभ्यास के सिद्ध होजाने में जो शक्ति आदि फल होते हैं
तिसके लक्षणा आगे कहेंगे ॥

(योगस्यसंसिद्धिलक्षण)

अंतर्धानस्मृतिःकांतिर्दृष्टिःश्रोत्रज्ञतातपो । निजंशरीरमुत्सृज्यपरकायप्रवेशनम्२०२
अर्धानांछंदतःसृष्टियोगसिद्धिर्हिजक्षणम् । सिद्धेयोगेत्पजन्वहममृतत्वायकल्पते २०३

अर्थ—अंतर्धान•स्मृति•कांति•दृष्टि•श्रोत्रज्ञता•तथा अपने शरीरको छोड़ि के पराये शरीर में प्रवेश होजाना•और इच्छासे अर्थोंकी सृष्टि करलेना• यह सब योगसिद्धि का लक्षणा है और योगसिद्ध होजाने में देहको त्यागतेहुये अमृतत्व के लिये भी इच्छा होता है—अर्थात्—अणिमानामकी विभूति जिसका यह लक्षणा है कि अत्यंत सूक्ष्म रूप धर सकता है जिसको और कोई न देखिसके वह सबकोदेखै यह अंतर्धान सिद्धि कहाती है•स्मृति भी एक विभूति है कि जैसे मनुआदि महात्तयोंपर उन पदार्थों को यादि करसकते थे जिनका यादि करना या देखना सुनना इन्द्रियोंके बगका न हो क्योंकि इन्द्रियाँउन्हीं वस्तुओंको ग्रहणकरसकती हैं जो प्रत्यक्ष हो किन्तु स्मृतिरूपी सिद्धिवाला शुभपदार्थोंका स्मरण करसकता है•कांति नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाय सो चाहें तैसा कुरूप होनेपरभी अति सुन्दरकांति जैसी देवतोंकी चमक दमक होती है धारणा करसकता है•दृष्टि नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है वह वीती हुई और होनेवाली अगिली पिछली बातोंका दूरसे भी प्रत्यक्ष देखता है• श्रोत्रज्ञता नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है सो अतिशय दूर देशमें भी जो बड़े बारीक शब्द किन्तु छिपीहुई बातचीत होरही हों तिनको ध्यानरने से प्रत्यक्ष सुनता है•पर काय प्रवेश नामकी विभूति जिसको सिद्ध होजाती है सो चाहें तब अपना देह छोड़ि के दूसरे किसी के देह में प्रवेश होजाता है अर्थात् जैसा चाहें तैसा रूप धरलेता है•

हुआ धरिके (अर्थात् हथेलीपर हथेलीयाँभिके) फिर हृदयके समीप हाथोंको भेड़िके और मुहको थोड़ासा ऊंचा करिके ॥ १६८ ॥ आँखें मोचे हुये आप सत्रवस्थ होके (अर्थात् काम क्रोध आदिको छोड़े हुये सतो ग्रामें स्थित होके) दाँतोंसे दाँत जुदे किये हुये मुहको मुँदे हुये जीभको तालुबे में अडिगयाँभे आप सुनिश्चल होय (जो देह कहां से हिले काँपे नहीं ॥ १६९ ॥ सब इन्द्रियोंके समूहको उनके वियर्योंसे खींच के ऐसे आसनपर बैठा हो जो बहुतनीचा और बहुत ऊंचा भी न हो (अर्थात् ऐसा समान आसन होय जिससे चित्तको विसोप न होसके) फिर दूना और तिगुना भी प्राणायामको आरम्भ करै (कि जिससे प्राणवायु निज वश में आजाय ॥ २०० ॥ तिसपीछे इस प्रभुका ध्यान करना जो हृदयमें यह दीपके समान जोति रूपसे अचल विराजमान है (जिसका प्रसंग १११ एक सौ श्यारह प्रलोकसे उत्पन्न हुआ) फिर यह बुद्धिमान योगी तहाँ अपने हृदय बीच आत्मा को मन के सन्मुख धारणा धरते हुये ध्यान में धरै (धारणा का स्वरूप अधिकोक्ति में ॥ २०१ ॥

२०१ अधिकोक्ति—जिस धारणाका चर्चा किया कि धारणा धरते हुये साथ ही साथ आत्मा को ध्यानमें देखै—तिस धारणाका यह लक्षण है कि चित्तका रोक्ना और उसके साथ नाभि चक्रसे लेकर नाक आगे तक विचरनेवाले प्राण वायु को वशमें राखना भला कितनी देर तक ऐसी धारणा करनी तिसके समयका यह नियम है जोयका घंटा हिलाकर उँगुरियों से चुटुकी (छोटिका) वजाने में जितना समय लगता है सो एक छोटिका नामकी मावा कहाती है ऐसी पंद्रह मावा तक जो प्राणायाम किया जाय सो तो नीच तुच्छ कहाता है जो तीस मावा तक प्राणायाम साधा जाय सो मध्यम कहाता है जो पैंतालिस मावा तक प्राणायाम थाँभा जाय सो उत्तम होता है इसीलिये मूल प्रलोक में (द्विगुणं त्रिगुणं वापि) यह कहा था कि दूना और तिगुना भी प्राणायाम का अभ्यास करै अर्थात् नीच मध्य फिर उत्तम इसी क्रम से तीनों प्राणायामको एकही धारणामें साधै सो यह एकही धारणा कहाती है (अथवा साधक पुस्त्य की शक्ति के अनुसार तीनों उत्तम या तीनों मध्यम या तीनों अधम प्राणायाम हों) फिर ऐसी तीन धारणा साधने से योगधारणा नाम होता है—तथाच शास्त्रांतर वचन—संधस्य छोटिकां दद्यात्करात्र जानु मण्डलं सावाभिः पंचदशभिः प्राणायामोऽधमः स्मृतः मध्यमो द्विगुणः श्रेष्ठस्त्रिगुणो धारणा तथा विभिन्नाभिः स्मृतैकैकाताभिर्योगस्तथैव च—अर्थात्—जो नियम दर्शाया गया तिसका यह प्रमाण वचन है कि—जितनी देर में दोनों छूटे और हाथकी अंगुरी घुमाय के चु-

अपने शरीरको चाहै तैसा (शुरु) गरुआभारी बोभिल बनाइलेता है जैसे हनुमावजी लक्ष्मणाके जिवाउनेको सजीवन नल लेनेगये तब असंत्य औयधियौं में उसको नहीं पहिंचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोभिल बनाया कि समस्तपर्वत को उखाडि के अपने शरीरपर धरिलासके—४ लघिमा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहै तैसा (लघु) हलुका बनाइलेता है जो उडिकर चाहै तिस ऊचसे ऊचेलोकमें जासके—५ ईशिता विभूतिवाला ईश वनिमक्ता है अर्थात् चाहै तहाँ किसी समाज में या किसी प्रबल मनुष्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सक्ता है कि उसके ईशत्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानिलेता है—यहाँतक कि स्थावर वृक्ष पत्थर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहै—केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहै तिसके ऊपर भी ईशत्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेवै और इसीप्रकार अन्य विभूतियौंवाले भी अपने समानशक्ति औरींको देस कतेहैं जितनी देरतक देना चाहै—६ वशिष्ता विभूतिवाला अपने वशिष्ठ के प्रभावसे चाहै तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश में नहीं आता किन्तु सदा स्वतंत्र बना रहिता है—७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहै तहाँ अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सक्ता है—८ प्राकान्य नामकी विभूतिवाला जैसे कामनाकी इच्छा करै सो इच्छा पूरीहोती है ॥ पहिले श्लोक में कामावसायिता नाम जो आदवीं विभूति सबसे अधिक प्रतीत होती है तिसको अधिक नहीं समुभना किन्तु इसीदूसर श्लोकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समभना क्योंकि गरिमा ऐश्वर्यौं में गिनती नहीं मानीगई है—और कामावसायिताका प्रयोजन यद्यपि प्राकान्य के समानही देखपरता है तथापि दोनोंमें भेद है कि प्राकान्य तो केवल उसीकी इच्छा पूरी करमेवाली विभूति है और कामावसायिताका यह तात्पर्य है कि सिद्ध पुरुष जो कुछ अन्य जीवोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देवै कि अमुक प्राणी को मैं धनी या राजा या पुत्रवान या काना या कोडी करदेना चाहता हूँ सो अवश्य करि दिखारुगा वही करि दिखाता है चाहै निपट बध्याके पुत्र पैदा करवावै इत्यादि अपनी बुद्धिसे समभना—ये आठौं विभूतियाँ साक्षात् परमेश्वरके शेषवर्ष्य हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बड़े सब ईश्वर इन विभूतियौं से सर्वथा आठौं अग भरे पुरे होतेहैं और इन्द्रादिक लोकपाल आदि सब देवता इन विभूतियौंसे बहुत या घो-डाही पयायोग्य भरे रहते किन्तु उनमें जन्मके साथही ईश्वरकी दीहुई स्वाभाविक सिद्धि आती है—इनके सिवाय सन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अपनी याग साधना के

सबसे बड़ी एक यह विभूति है कि जिन पदार्थों की इच्छा ही बड़ी सवरचि सके अर्थात् उत पदार्थों का मुख्यबीज और कारणा आदि उपस्थित न होनेपर भी रचना करि लेता है जैसे विद्यामित्रने दूसरी सृष्टि रचिके दिखलाई थी या जैसे वशिष्ठ जमदग्नि आदि ने बड़े बड़े राजाओं की पहुनई सेना सहित बिना सानग्री के करदी थी इत्यादि योग सिद्धि की यही पहिँचानि है कि जिसको ये सभ विभूति या इनमे से विरली कोई सिद्ध होजाय तिसको योग सिद्ध हुआसमझी तिसके पीछे यह फल होता है कि जब योगी अपना देह त्यागें तभी साक्षात्कार ब्रह्म में लय होनेवाला अमृत मोक्ष भी होता है ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

२०२ अधिकोक्तिः—ऊपर चर्चार्थी विभूतियों का ऋद्धि और सिद्धि भी नाम है इन की मुख्य संख्या तो आठ ही नामों से लिखी है फिर उन्हीं आठके और भी अनेक भेद होते हैं तिनके भी जुदे जुदे नाम रक्खलिये जाते हैं जैसे योगीश्वरने इन्हीं दो प्रलोकों में कृष्ण नामक है—अथ विभूतौ नामानि यथा—अरिमा लघिमा प्राप्तिः प्राक्त्वाभ्यं महिमा तथा । ईशित्वं च वशिष्ठं च तथा कामावसायिता—इत्येयं श्याशा—प्रलोकान्तरं—अरिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ईशिता वशिस्ता चैव प्राप्तिः प्राक्त्वाभ्यं मेव च—अर्थात्—आठ विभूतियों के ये नाम हैं कि—१ अरिमा • २ लघिमा • ३ प्राप्ति • ४ प्राक्त्वाभ्यं • ५ महिमा • ६ ईशित्वं • ७ वशिष्ठं • ८ कामावसायित्वं • ये आठों सब जुदे जुदे एक ही एक ऐश्वर्य भी कहते हैं कि इनमें जिस किसीपर दोही एक ऐश्वर्य हों तिसको भी कृष्ण ईश्वर अर्थात् ईश्वरका समीपी भाई बन्धु समझना क्योंकि जैसे इनके नाम हैं तैसे ही अर्थों के अनुरूप अनूठे कामों की सिद्धि वशमें रहित है • इष्टान्त जैसे आठवीं विभूति कामावसायिताका यह अर्थ है कि काम जो मनकी कामना है चाहे जैसे संकल्प से उपपन्न करीजाय तिसको तत्काल ही अवसाय नाम तिप्रचय कर देती है अर्थात् जिस कार्यकी चाहना करे सो सब सिद्ध होता है—दूसरे प्रलोक में केवल एक इसी नामका अंतर है और विभूति दोनों में आठ बराबर हैं तिनके अर्थ ये हैं कि—१ अरिमा विभूति वाला पुरुष जब चाहे तब सेमा (अरा) छोटा बनजाता है कि पत्थरकी चटान में भी घुसिजासके जिसमें वायुतक नहीं घुसिपाता है इसी अरिमाके प्रभावसे देवता और सिद्धलोग अति सूक्ष्मरूप बने फिर्ते हैं कि जिसे कोई देखि नहीं पाता—२ महिमा विभूतिवाला चाहे तैमा (महान्) बड़ा डीलडौल वदाइ सजा है जैसे लंकाको ज्ञातिसमय हनुमान ने सरसाके समुख अपना डीलवदाया और बिामन अवतारवाले प्रभुने वलि राजको छलने के निमित्त अपना डील वदाया था इत्यादि—३ गरिमा विभूतिवाला

अपने शरीरको चाहें तैसा (गुरु) गरुआभारी बोझिल बनाइलेता है जैसे इनमावजी लक्ष्मणाके जिवाउनेको सजीवन मूल लेनेगये तब असंख्य औषधियों में उसको नहीं पहिंचानि सके तिससे अपने शरीरको इतना भारी बोझिल बनाया कि समस्तपर्वत को उखाडि के अपने शरीरपर धरिलासके—४ लघिमा विभूतिवाला अपने शरीरको चाहें तैसा (लघु) हलुका बनाइलेताहै जो उडिकर चाहें तिस ऊंचेसे ऊंचेलोकमें जासके—५ ईशिता विभूतिवाला ईश वनिसक्ताहै अर्थात् चाहें तहों किसी समाज में या किसी प्रबल मनुष्यके ऊपर भी ईशकी तरह आज्ञा चलाइ सक्ताहै कि उसके ईशत्वके प्रभाव से हर कोई आज्ञा मानिलेता है—यहाँतक कि स्यावर वृक्ष पथर आदि भी आज्ञा उसकी मानते हैं कि जिनपर चलाना चाहें—केवल आपही नहीं किन्तु जिस किसी को चाहें तिसके ऊपर भी ईशत्वका प्रभाव आरोपित करके आज्ञा दायक बनादेवें और इसीप्रकार अन्य विभूतियोंवाले भी अपने समानशक्ति औरोंको देखकतेहैं जितनी देरतक देना चाहें—६ वशिष्ठा विभूतिवाला अपने वशिष्ठ के प्रभावसे चाहें तिसको वशीभूत करसक्ता पर आप किसी के वश में नहीं आता किन्तु सदा स्वतंत्र बना रहता है—७ प्राप्ति नामकी विभूतिवाला चाहें तहों अति दूर स्थानतक शीघ्र पहुँचि सक्ताहै—८ प्राक्ताम्य नामकी विभूतिवाला जैसी कामनाकी इच्छा करे सो इच्छा पूरीहोतीहै॥ पहिले प्रलोक में कामावसायिता नाम जो आठवीं विभूति सबसे अधिक प्रतीत होतीहै तिसको अधिक नहीं समुभ्ना किन्तु इसीदूरे प्रलोकमें जो गरिमानाम तीसरी विभूति कही सोई अधिक समभ्ना क्योंकि गरिमा ऐश्वर्यों में गिनती नहीं मानीगई है—और कामावसायिताका प्रयोजन अद्यपि प्राक्ताम्य के समानही देखपरताहै तथापि दोनोंमें भेदहै कि प्राक्ताम्य तो केवल उसीकी इच्छा पूरी करनेवाली विभूतिहै और कामावसायिताका यह तात्पर्य है कि सिद्ध पुत्र्य जो कुछ अन्य जीवोंके लिये अपने संकल्पसे (अवसाय) निश्चय करार देवें कि अमुक प्राणी को मैं धनी या राजा या पुत्रवाप या काना या कोढी करदेना चाहताहूँ सो अवश्य करि दिखाऊंगा वही करि दिखाताहै चाहें निपट बंध्याके पुत्र पैदा करवावें इत्यादि अपनी बुद्धिसे समभ्ना—ये आठवीं विभूतियों सासाद परनेश्वरके ऐश्वर्य हैं इसी हेतु महादेव आदि बड़े बड़े सब ईश्वर इन विभूतियों से सर्वथा आठो अंग भरे पुरे होतेहैं और इन्द्रादिक लोकपाल आदि सब देवता इन विभूतियोंसे बहुत या थोडाही यथायोग्य भरे रहिते किन्तु उनमें जन्मके गायत्री ईश्वरकी दोहुई स्वाभाविक सिद्धि आतीहै—इनके सिवाय संन्यासी आदि पूरे योगीश्वर अपनी योग साधना के

प्रभावसे यदि कोई सक बोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमें भी अद्यापिहोतीहै हृष्टांत जैसे सैकरों वा हजारों की सामग्री उधार मगाकर बड़ा भंडारा किया फिर पीछेसे खाली तुंबी कमराडलको भ्रंथा करिके रूपये उलटदिथे वह सभी सोदावालों को दे-दियेगये पर आप उसी तुंबी और लंगोटीके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते-दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने वृक्षा कि वावाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बीते कि वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानै कहां होगा-उत्तरदिथा कि बचा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे पासभी आवैगा सोइ सब सत्यहुआ इत्यादि परे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर ऐसे लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं कथोंकि संसारीलोग एकहू का भला होता देख सिद्धों की वारागी सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने अपने दुखहेतुसे सताते हैं-योग साधना के विनाभी ईश्वरकी इच्छासेही बिरले लोग सिद्धियोंको साधलिये पैदाहोतेहैं उनकी पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहाँ सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मूलश्लोकों में योगीश्वरके उच्चारणा किये नाम अब्रोक्त आटीसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं सदेह न करना चाहिये ॥२०२॥२०३॥

पूर्वोक्त प्रकारोंसे यज्ञ दान तपस्या आदि जिन लोगोंने नहीं किया और योग साधना भी करनेकी शक्ति जिनमें न हो ती ऐसे लोग जो अपने सत्वकी शुद्धि किया चाहैं तिनकोलिये सुगम उपाय भी दर्शावैगे सो अगिले श्लोकोंसे देखना ॥

(उपायां तरंच)

अपवाप्यभ्यसन्वेदन्यस्तकर्मवनेवसन् । अपाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् २०४

अर्थ:-अथवा (जोपूर्वोक्त नियम योग आदि न होसके ती) न्यस्त कर्महिकर (अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर नियिद कर्मों का त्यागी होकर) वन में निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदकी अभ्यास करते हुये विना मागे जो प्राप्त होय उसी को परिमान से (थोडा थोडा सुधा निवारणा के अनुमान से) भोजन करिके आयुको वितारै जिससे सत्वकी शुद्धि होजाय औरयथा शक्ति पूर्वोक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तकी लगायेरहै ती यह पुस्तकभी मुक्ति के लक्षणा वाली परम सिद्धि की प्रायता है ॥ २०४ ॥

मुक्ति जो पदार्थ है सो केवल सन्यासी योगीको नहीं किंतु गृहस्थी भी मोक्षपद

को जातेहैं सो अब नीचे कहेंगे—इसी लिये अध्यात्म ब्रह्मकी उपासना वाले प्रकार ध्यान योगआदि जो जो कुछ बरान किये तिनकी साधनाका अधिकारी गृहस्थो सब से प्रथम है जो उससे बनिआवै—अर्थात् संसारी सामग्री छोड़िके संन्यासी होजाने से ही ब्रह्मकी उपासना का अधिकारी नहीं किंतु गृहस्थ में रहितेभी अधिकारीहोता है—तिससे अध्यात्मविद्याका प्रकरणा जो ६२ वासटिकेश्लोकसे लेकरअवतकसंन्यासी के प्रसंगमें दर्शायागया सो सब गृहस्थीकोभी पढ़नाऔरअभ्यासकरनाचाहिये॥

(गृहस्थस्यापिमुक्तिर्भवति)

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । आदृक्स्तत्त्ववादीवगृहस्थोपिहिमुच्यते २०५

अर्थ—गृहस्थो कि जिसके न्यायमार्ग सेही धन आता हो अन्याय से नहीं—और अतिथि प्रियहो किंतु आये हुये अभ्यागतों का सत्कार नित्य निरंतर करताहो—और आद्वकर्ता हो अर्थात् नित्य आद्व और नैमित्तिक आदि आद्वों के अनुष्ठान में तत्पर बना रहताहो—और सत्यही वचन बोलनेका स्वभावहो—और तत्त्वज्ञान (जैसा चौंसठि श्लोक से लेकर अभी तक बरान होतारहा तैसे आत्मतत्त्व के ध्यान) में भी विचार पूर्वक लगा रहता हो—ऐसा गृहस्थो पुस्त्यभी मोक्षपद को पहुँचताहै—तिससे यही न समझ लेना कि ऊपर जो अध्यात्म विद्या संन्यासी के प्रसंग में कहोगई उससे केवल संन्यासी मुक्ति पाता होगा ॥ २०५ ॥

इति अध्यात्मप्रकरणं यह प्रकरणा बहुत बड़ाहै कि आठवें परिच्छेदसे लेकर यहाँ तक बारह तेरह परिच्छेदों में पूराहुआ ॥

आचार कांडके प्रारंभ में यह कहाथा कि छे प्रकारके स्मार्त धर्महैं सो सबतीनों कांडमें बरान कियेजायेंगे (वरां धर्म-आयन धर्म-वराण्यधर्म-गुणधर्म-साधारणा धर्म-निमित्तधर्म) अर्थों सहित लक्षणा इनके आचार कांडके प्रथम श्लोकमें देखो इन में पाँच धर्म तो अवतक बरान होचुके केवल निमित्त धर्म शेषरहा सो अब आगे से प्रायश्चित्तों के स्वरूप द्वारा दर्शावेंगे किंतु निमित्त धर्म का यह अर्थ है कि जो करना चाहिये सो न किया जैसे उचित अर्वाधि पर यज्ञोपवीत नहींकिया यदा उचित समयपर कन्याका द्विरागमन करना रोकिदिया इत्यादि नानाप्रकारहैं जिनके न करने का दोष अथवा जो न करना चाहिये सो नियिद्ध कर्म किया जैसे अग्न्यागमन आदि नाना प्रकार हैं जिनके करने का दोष-ये दोनों भाँति के दोषजोहैं सोई निमित्त माने जाते हैं कि इनको मिटाने के निमित्त से जो कुछ प्रायश्चित्त करना

प्रभावसे यदि कोई एक बोहीको सिद्ध करिपातेहैं सोउनमें भी अद्यापिहोतीहै दृष्टांत जैसे सैकड़ों वा हजारों की सामग्री उधार मगाकर बड़ा भंडारा किया फिर पीछेसे खाली तुंबी कमराडलको आँधा करिके रुपये उलटाँदिये वह सभी सौदावालों को दे-दियेगये पर आप उसी तुंबी और लँगोरीके सिवाय कुछ आडंबर साथ नहीं राखते- दूसरा दृष्टांत जैसा किसी दुखियाने वृष्णा कि वावाजी मेरे पुत्रको सोरहवर्ष बोते कि वह घरसे निकसि गया कभी उसकी खबरतक न मिली जानै कहां होगा-उत्तराँदिया कि बचा तेरापुत्र अमुक विदेशमें था अब फलाने शहरमें आगया है बारहवेंदिन तेरे पासभी आवैगा सोई सब सत्यहुआ इत्यादि परे सिद्धलोग पृथ्वीपर अनेकहैं पर सेसे लोग अपने आपेको छिपाये रहाकरते हैं क्योंकि संसारीलोग एकद्व का भला होता देख सिद्धों की वारागी सत्यजानिके उनको चैन नहीं लेनेदेते किन्तु घेरते और अपने अपने दुखहेतुसे सताते हैं-योग साधना के बिनाभी ईश्वरकी इच्छासेही बिरले लोग सिद्धियोंको साधलिये पैदाहोतेहैं उनको पहिले जन्मकी तपस्या साथ आकर यहाँ सिद्धिका फल देतीहै यद्यपि मूलप्रलोकों में योगीप्रवरके उच्चारण किये नाम अत्रोक्त आदीसे मिलते नहींहैं तथापि वेनाम भी सब इन्हीं आठ विभूतियोंका विकार हैं सो इन्हींसे उत्पन्न होतेहैं संदेह न करना चाहिये ॥२०२॥२०३॥

पूर्वाक्त प्रकारैँसे यज्ञ दान तपस्या आदि जिन लोगोंने नहीं किया और योग साधना भी करनेकी शक्ति जिनमें न हो तीं ऐसे लोग जो अपने सत्त्वकी शुद्धि किया चाहें तिनकेलिये सुगम उपाय भी दर्शावैगे सो अगिले प्रलोकोंसे देखना ॥

(उपायां तरंच)

अथवाप्यन्यतन्वेदंन्यस्तकर्मावनेवसन् । अथाचिताशीभित्तभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् २०४

अर्थः-अथवा (जोपूर्वाक्त नियम योग आदि न होसके तीं) न्यस्त कर्मसाँहिकर (अर्थात् सब कर्मों का त्यागी और विशेष कर नियिद्ध कर्मों का त्यागी होकर) वन में निरुपद्रव स्थानपर बसता हुआ और शक्तिके अनुसार वेदकी अभ्यास करते हुये बिना मांस जो प्राप्त होय उसी को परिमान से (थोडा थोडा सुधा जिवारण के अनुमान से) भोजन करिके आयुको बितायै जिससे सत्त्वकी शुद्धि होजाय औरयथा शक्ति पूर्वाक्त आत्मा की उपासना में भी चित्तको लगायेरहे ती यह पुरुषभी मुक्ति के लक्षणा वाली परम सिद्धि को पावता है ॥ २०४ ॥

मुक्ति जो पदार्थ है सो केवल संन्यासी योगीको नहीं किन्तु गृहस्थो भी सोषपद

एवं मदिरा पीने वाला अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे गदहा की योनि में या
 पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो नियाब नाम एक मछेहर के बीज से शूद्रीके घेतमें उ-
 त्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक सहानीच जाति होतीहे
 तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥२०७॥ सोना हरनेवाला अपनेयोग्य नरकों
 को भोगे पीछे कृमि कीट पतंग रूपपाताहै अर्थात् मांस विद्या गोबरआदिमें वारीक
 सुंडी जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो कृमि कहाते और उनसे कुछमोटे बड़े बिना
 झाड़ बिना परों के तुच्छ जीव चींटी दीमक आदि अनेक भाँति के सब कीट कीड़े
 कहातेहैं और टीडी ततैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उड़ने वाले पतंग क-
 हाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं गुरुतल्पग जो गुरानी आदि पुंड्य स्त्रियाँ गमन
 करनेवाला महापातकी है सो अपने योग्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे द्वारा गुल्म
 लता तीनोंका रूप जाकर होताहै अर्थात् कौंस डाम आदि अनेक द्वारा होतेहैं तथा
 गुल्म भी शुच्छाके आकार वृक्ष जैसे सरो या सृंज आदि बड़े छोटे अनेक भाँति होते
 हैं तथा वनमें लता बेलभी बड़ी छोटी अनेक भाँति होतेहैं इन तीनों में क्रमसे जन्म
 पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समझि
 लेना जोउनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमें लिखागया तिसका नियम
 नहींरहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकोक्तिः—द्येनोँ प्रलोक में योगीश्वर के कहे नियम सर्वथा उस दशा
 पर आरुद्र कियेगये कि जो इच्छा बिना ऐसे महापातक हुयेहों—अन्यथा—इच्छा
 सहित इन्ही पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाई योनियोंमें जन्मते हैं=
 यथाह मनु—यसूकरखरोट्टाराणां गो७जाविमृगपक्षिणाम चंडालपुल्कसानांच ब्रह्महायो
 निमृच्छति ॥ कृमिकीटपतंगानां विडुभुजांचैव पक्षिणाम हिंसाराणांचैव स्वत्वानां सुरापो
 ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ लूता हिंसरानांच तिरश्चांचांबुचारिणाम हिंसाराणांच पिशाचानां
 स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ द्वारा गुल्मलतानांच क्रक्यादां दंष्ट्रिणामपि कर्मकंठतांचैव शतशो
 गुरुतल्पगः—अर्थात्—जानि वृत्तिके इच्छा पूर्वक महा पाप करनेवालों की अपेक्षा
 मनु कहिते हैं कि उन मे से ब्रह्म हत्यारा अपने योग्य नरक भोगे पीछे कुत्ता•सुअर•
 गदहा•ऊट•बैल•बकरा•मेदा•और वनके मृग•पक्षी• और चगडाल•पुल्कस•इन सब
 की योनि अनेक बार पाताहै ॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण भी•कृमि•कीट•पतंगों
 में और विद्या खानेवाले कौवा आदि पक्षियोंमें और हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता
 है ॥ सब चोरी करने वाला ब्राह्मण भी•मकरी आदि जाल पूरने वाले जीव•साँप•

आवश्यकहो वही प्रायश्चित्त का नियम है सो निमित्त धर्म कहा जाता है तिसका प्रांभ अगिले परिच्छेद से होगा—तहाँ प्रथम उसके अधिकारी लोग बरान होंगे कि प्रायश्चित्त कितनी करना आवश्यक है ॥

—*—

अथ-प्रायश्चित्तापेक्षायां कर्मविपाकस्वरूप

विवेकीनाम एकविंशः परिच्छेदः २१

इस परिच्छेद में प्रायश्चित्तों का प्रारंभ करना चाहिके उसके योग्य अधिकारियों का कर्म विपाक बरान होगा जो प्रायश्चिन् करनेसे वचिराये हों ॥

(कर्म विपाकः)

महापातकजान्घोरान्दरकान्प्राप्यदारुणान् । कर्मक्षयात्प्रजायतेमहापातकिनस्त्वह २०६

अर्थ—महापातकों से उत्पन्न घोर दारुण नरकों को पायके कर्म भोग नाश होने से वेही महा पातकी यहाँ जन्मतेहैं—अर्थात्—ब्रह्महत्याआदि पांच महा पातक जो आगे कहे जायेंगे तिनके करने वाले महापातकी कहातेहैं तिनके जुदे कर्मों के अनुरूप जो जो नरक स्थान महाघोर भयंकर दारुणादुख मिलनेवाले नियत होतेहैं तिनमें जायके निज निज अद्विधतक भोगने से कर्म भोगों का अंत होजाने पीछे शेष पापों के प्रभावसे वेही नारकीलोग इहाँ संसार में फिर आकर शुकर शृगाल आदि खोटी योनियोंमें वारंवार जन्मते रहतेहैं अर्थात् अनेक जन्मोंतक पीछा उनका नहीं छूटने सकताहे•तथैव उपपातकी आदि भी निज कर्मोंके अनुरूप योनि पाते हैं सो सब आगे बरान करेंगे ॥ २०६ ॥

(कर्माधीन योनि भेदाः)

मृगश्चशूकरोष्ट्राणांब्रह्महायोनिमृच्छति । खरपुल्कसवेनानानुरापोनात्रतंशयः २०७

कृमिकीटपतंगत्वंस्वर्णहारीसमाप्नुयात् । दृण्गुल्मलतात्वंचक्रमशोगुरुतल्पगः २०८

अर्थ—ब्रह्महत्याया अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे मृग हरिया आदि ब्रजजीवोंकी योनि या कृत्ता सूकर कंटों की योनि पाता है अर्थात् जिसके जैसे कर्मोंका प्रभाव ऊंच नीच होता है तैसीही योनिभी इन्ही में से ऊंचीनीची उसको मिलतीहै—

सब मदिरा पीने वाला अपने योग्य नरकों को भोगे पीछे गदहा की योनि में या पुल्कस प्रतिलोम जाति (जो नियाम नाम एक मछेहरे के बीज, से शूद्रीके पेटमें उत्पन्न होती है तिसके) यहाँ जन्मता तथा ऐसेही वेन एक महानीच जाति होतीहै तिसमें जन्म पाता है इसमें संदेह नहीं ॥२०७॥ सोना हरनेवाला अपनेयोग्य नरकों को भोगे पीछे कर्म कीट पतंग रूपपाताहै अर्थात् मांस विद्या गोवरचादिमें वारीक सुंडी जो अनेक तरह की उत्पन्न होते सो कर्म कहाते और उससे कुछमोटे बड़े बिना हाड बिना परों के तुच्छ जीव चीटी दीमक आदि अनेक भाँति के सब कीट कीड़े कहातेहैं और दीड़ी ततैया आदि अनेक तरहके परवाले जीव उड़ने वाले पतंग कहाते हैं तिन में जन्म पाता है—एवं गुरुतल्पग जो गुरानी आदि पुज्य स्त्रियाँ गमन करनेवाला महापातकी है सो अपने योग्य नरकों को भोगने पीछे क्रमसे द्वारा गुल्म लता तीनोंका रूप जाकर होताहै अर्थात् कौंस डाम आदि अनेक द्वारा होतेहैं तथा गुल्म भी शुच्छाके आकार वृक्ष जैसे सर्पे या मूँज आदि बड़े छोटे अनेक भाँति होते हैं तथा वनमें लता बेलभी बड़ी छोटी अनेक भाँति होतीहैं इन तीनों में क्रमसे जन्म पाता है (इसी प्रकार ऊपर के ब्रह्महत्यारे आदिमें क्रमसे सब योनि मिलनी समझि लेना जोउनके लिये कहिचुके किंतु जैसा विकल्प उनमें लिखागया तिसका नियम नहींरहा क्योंकि क्रमसे यह कथन उन सबही का अध्याहार है ॥ २०८ ॥

२०७ अधिकांतिः—दोनों प्रलोक में योगीश्वर केकहे नियम सर्वथा उस दशा पर आरुद्ध कियेगये कि जो इच्छा बिना ऐसे महापातक हुयेहैं—अन्यथा—इच्छा सहित इन्ही पापों के करनेवाले इनसे भी अधिक दुखदाई योनियोंमें जन्मते हैं—
 यथाइ मनुः=यसूकरखरोयूराणां गोशुजाविमृगपक्षिराणाम् चंडालपुल्कसानां च ब्रह्महायो निमृच्छति ॥ कर्मकीटपतंगानां विडम्भजां चैव पक्षिराणाम् हिंसाराणां चैव स्वत्वानां सुरापो ब्राह्मरात्रजेव ॥ लूता हिंसरानां च तिरश्चां चान्बुचरिणां हिंसाराणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ द्वारा गुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणां च पिकरकर्मकृतां चैव शतशो गुत्ततल्पगः—अर्थात्—जानि वृत्तिके इच्छा पूर्वक महा पाप करनेवालों की अपेक्षा मनु कहिते हैं कि उन में से ब्रह्म हत्यारा अपने योग्य नरक भोगे पीछे कृत्ता सुअर गदहा ऊँट बेल चकारा नेडा और वनके मृग पक्षी और चण्डाल पुल्कस इन सब की योनि अनेक बार पाताहै ॥ एवं मदिरा पीनेवाला ब्राह्मरा भी कर्म कीट पतंगों में और विद्या खानेवाले कौवा आदि पक्षियोंमें और हिंसक जीवोंमें जाकर जन्मता है ॥ एवं चोरी करने वाला ब्राह्मरा भी मकरो आदि जाल पूरने वाले जीव सांप

सरस अर्थात् गिरिगिह-और तिरछे उड़नेपैरनेवाले जलचर जीव-और हिंसा करनेवाले अनेक जीव-और पिशाच-इनमें हजारों वार जन्मता है ॥ एवं गुरुत्वपग पुरुष-ह्या-गुल्म-लताओं में-और मांसभक्षी क्रव्याद राक्षस गिह आदि में-और बाढ़ वाले सिंह व्याघ्र बाराह आदि में भी-और कसाई आदि क्रूर कर्म करनेवालों में सैकड़ों वार जन्म लेता है ॥ ० ॥ ये चार भौतिके महापातकी होतेहैं सो कहे गये पाँचवां इनका सदगार भी महापात की होता है यह दोसौ सत्ताइस के प्रलोक में विवेचन होगा तहाँ समझ लेना ॥ ० ॥ येही महापातकी लोग इतने खोटेजन्म पाने पीछे जब कभी फिर मनुष्ययोनिमें आतेहैं तहाँ भी इनपापोंका बचाहुआ अंशांश पीछा नहींछोडता है अर्थात् उसकी यह पहिचान है कि जन्म के साथही कोई महारोग लगाआता है सो चौरों वार अगिले प्रलोकैसे दर्शावेंगे ॥ २०७ ॥ २० ८ ॥

(मानुष्येऽपि जन्मनिदुरितशेषैव च यरोगादिदुष्ताजायंते)

ब्रह्माक्षयरोगास्थ्याल्लुराप-अपावदंतकः । हेमहारीतुकुनखीदुश्चर्मागुरुत्वपगः २०९

यो येन संबन्धे पापसतर्हि गोऽभिजायते । अन्नहर्ताऽऽमयावीस्थान्मूकोवागपहारकः २१०

धान्यनिश्रोऽतिरिक्तगः पिशुन-पूतिनासिकः । तेलद्वृत्तैलपायीस्थाल्पूतिवकूस्तुसूचकः २११

अर्थ-ब्रह्महत्यारा फिर मनुष्य योनिमें आनेपर जन्मके साथही या थोड़ी उमरमें सयी रोगसे संयुक्त होता है जो प्रायश किसी औषधी से जीता नहीं जासकता है इसीको जन्म रोगी कहा करतेहैं-सेही नियिद्ध मर्दों का पीनेवाला पूर्वोक्त रीति से नरक आदि भोगने पीछे मनुष्य योनि में फिर आकर जन्म के साथही श्यावदंत होता है अर्थात् काला पीला मिलेहुये भद्रेवर्ण के दाँत उसके राक्षसी दाँतोंके समान होते हैं इसीसे पहिचाना जाता है कि पूर्व जन्मों में नियिद्ध मदिरा पानकारी थी-इसीप्रकार जन्मांतर में ब्राह्मण का सुवर्ण हरनेवाला फिर मनुष्य योनि में आनेपर कुनखीहोता है अर्थात् उसके बीसों नख कोडियों के समान बुरे विगड़े होते हैं-इसी प्रकार गुरुवारगामी अपने कर्मोंके नरक भोगने और उक्त योनियोंमें रहिआनेपीछे मनुष्य योनि में फिर आनेपर दुश्चर्मा होता है अर्थात् सब देहको खाल उसकी बुरे कोदसे विगड़ीहुई होती है ॥ २०६ ॥ पाँचवां वह कि जो इनचारोंमें जिस किसीके साथ सहायता देने आदि प्रकारों से बसा हो सोभी उसीके समान नरक जन्म राजरोग आदि भोगने वाला होता है (यहाँतक स्थूल रूप से जो पाँच महापापी कहे उन्हींमें चौरों को कुछ और भी विशेष भेद आगे दर्शाते हैं कि) चौरों में जो अन्न का हरनेवाला

होय सो जन्मांतरमें आसयावी अर्थात् संदाग्नि से संयुक्त महायोगी होताहै कि जिस को अन्न कभी पचता नहीं—एवं वासी हरनेवाला जो किसी की अति प्रयोजनवाली वार्त्ता चुपके सुनिके चुरावै और विद्या संबंधी पुस्तक चुरावै या कोईसी मूल लुपि विद्या गुरु के दिये बिना किसी औरही के द्वारा वार्त्ता प्रसंगसे चुराकर सगावै ऐसा वाग पहारक पुरुष जन्मांतर में गंगा होकर जन्मता है ॥ २१० ॥ धान्यमित्र जो मिलेहुये धान्य सतनजा आदि का हरनेवाला है सो अति रिक्तांग होता है अर्थात् याती कोई अंग उसका हीन हो या कोई अंग अधिक हो जैसे छे अंगुरी आदि का हेना—एवं पिशुन चुगुलीखोर जो पराये सच्चे दायको भी जहाँ तहाँ सुनाते फिरने का स्वभाव राखै सो प्रतिनामिक रोगी होता है कि उसकी नाक से पीनसकी दुर्गंध आयाकरै यह पहिचान है—एवं तैल हरने वाला जन्मांतर में तेलही का पीनेवाला जन्तु विशोय होताहै जैसे दीपक में तेल पीनेको बहुतेरे जन्तु आतेहैं यद्वा मनुष्य ही के शरीर में कोई कर्म ऐसा कि जहाँ बारंबार तेलही मुहमें देनापरै सो समभलेना—एवं सूचक जो तर्कना की युक्तियों से पराये में दायों की कल्पना सूचित करता था सो पतिवक्तृ होके जन्म लेताहै अर्थात् मदा उसके मुहमें से दुर्गंधिआया करती है कि जिसपर कोई औषध भी नहीं चलि सक्ती है ॥ २११ ॥

२०६ अधिकोक्तिः—ऊपर श्लोकों में जो भाव वर्णन किया तिसका प्रमारा मनुके अप्रोक्त वचनसे भी ठीकहै—यथा=यद्वातद्वापरद्रव्यमपहृत्यबलात्तत्र अवप्रयंया तितिर्यक्तजग्ध्वान्यैर्बाहुतहविः=अर्थात्—जो कुछ हो सोई सही पराया द्रव्य केसाह प्रवृत्ता से इरिके वह अवश्यही तिरछी योनियों में जन्मता है तथा औरों का हेमाहुश्चा इविष्य खाइके भी तिर्यक् योनियोंमें जाता है (इसमें इविष्य कहिने से हर किसी तरहका धर्म संबंधी या पूजा संबंधी धन समभलेना और हेमाहुश्चा कहिने से संकल्प कियाहुआ पुरायके निमित्त किसी को सोंपा धराआदि समभलेना) इस वचनसे तात्पर्य यहटहिता कि पापोंके नरक भोगने पीछे या विरला थोड़े पापवाला नरक भोगे बिना भी तिर्यक् योनि से अवश्य जाताहै तिसपीछे मानुष योनिमें आके राजरोगी भी होता है=अथवा जैसा आगे दोसी सत्तरह के श्लोक में दर्शावैगे तैसा कोई दक्षि आदि महा दुख रूपी चिह्न उनमें होता है—इसी लिये उपपातकों का विषाक आगे और भी लिखतेहैं सो देखना और यह भी समभलेना कि यद्यपि द्वेष की माया के सामने कोई एक सा निर्विकल्प नियम नहींहै कि वह निःशेषलिखा जाय अर्थात् हलुकेपतरे मोटे आदि पापोंके भेद से चाहें तब चाहें तैसी नियत योनि

का भी अलट पलट होजाता है तथापि उसको कभी न भी अंत में मनुष्य योनि भी अवश्य आकर मिलती है तभी उसके कर्मविपाक भी पहिचाने जाते हैं और भारयवश होकर उनका उपाय भी इसी मानुष योनिमें होसकता है अन्यत्र नहीं क्योंकि कर्मों को उत्पन्न करने योग्य धरती एक यही मानुष देह होती है कि जैसा पहिले भी इसी मानुष देह से पाप कर्म हुये थे ॥ २०६ ॥ २१० ॥ २१२ ॥

(मनुष्योतरयोनिष्वपि दुरितचिह्नानिभवन्ति)

परस्ययोपितंहृत्वाद्ब्रह्मस्वमपहृत्यच । अरण्येनिर्जलेदेशेभवतिद्वाराक्षसः २१२

हीनजातोप्रजायेतपरत्रापहारकः । पलशाकंशिखीहृत्वागन्धानलुच्छुन्दरीशुभान् २१३

मूषकोधान्यहारीस्याद्यानमृष्टःकपिःफलम् । जलंशुवःपयःकाकोशुहकारीशुपस्करम् २१४

मधुदंशःपलंगुध्रोगांगोधाऽग्निवकस्तथा । शिवलविस्त्रंश्वारसन्तुच्छिलवणहारकः २१५

अर्थः—पराई लुगाई को हरिके या ब्राह्मण का धन कोड़े सा सोनेके बिना हरिके सेसे वन में जाके ब्रह्मराक्षस (एक भूत विशेष जो किभीको न देखि परे) होता है कि जहाँ पीने को जलभी नहीं ॥ २१२ ॥ पराये रत्नोंको हरनेवाला हीन जातिमें उत्पन्न होता है—सारा जो अनेक पत्तोंका होताहो तिसको हरनेवाला मोरहोता है—उत्तम अतर आदि सुगन्धों की वस्तु चुरानेवाला छलूंदरि होता है कि वेही सुगन्धें उसकी देहसे दुर्गन्धि होकर फैलती हैं ॥ २१३ ॥ धान्योंका हरने वाला मूसा होता है—सवारी को हरने चुराने वाला ऊँटका जन्म पाताहै—फलहरने वाला वानर का जन्म—जलहरने वाला जलचर पक्षियोंका जन्म—दूध हरनेवाला कौवेका जन्म—धर की सामग्री चलनी चाकी आदि हरनेवालाशुहकारी नामकीडा होताहै कि जोगीली भाटी लाकर कुष्पीके समान धरचनताहै कुम्हारो और लखहरी भी कहाताहै २१४॥ मधुसहत आदि हरने वाला दंश डोंश साछह की योनि पाता है—पलमांस को हरने वाला शिद्ध होता है—गऊ आदि हरनेवाला गोधा गोही का जन्म पाता—अग्निकी हरनेवाला बगलेकी योनि में जाताहै—कपडा हरनेवाले शिवजी अर्थात् उनकी देह में सुपेदकोडकेधन्वेहोतेहैं—गाँड़े आदिकारस हरने वाला कुता होताहै—नमकहरनेवाला भिल्लीभंकारनास भींशरहोताहै जो रातिमें बड़ ऊँचे स्वरसे चिल्लायाकरता ॥२१५ ॥

२१३अधिकोक्तिः—ऊपर इसी प्रलोक में जो हीनजाति में जन्म होना कहा था तिस के मध्ये मनुका यह वचनहै कि—मरिगुक्ताप्रवालानिहृत्वालोभेनमानवः विवि धानिचरत्नानिजायतेहेमकर्तव्यु—अर्थात्—मरिग मोती मृगा आदि विविध भाँति के रत्नों को लोभी मनुष्य हरने वाला जन्मांतरसे हेम कर्तव्योंमें अर्थात् सुनार रराभरिया

ठठेरे आदि बर्यासंकर जातिगैँ में उत्पन्न होता है ((यही मनुका बचन प्रमारा देकर प्राचीन टीकाकारने सेसा अर्थ कियाहै कि (हीनजातौ हेमकाराख्यायांपक्षिजातौ) अर्थात् हेमकारी नाम से कोई एक पक्षी चिडिया की जाति में उत्पन्न होगा)) परंतु इस व्याख्या को आधुनिक लेखक अपने ध्यान से प्रमारा में नहीं लासका आगे जो कुछ हो सो सही ॥ २१३ ॥

(अभिप्रायविशेषादन्येपिकर्मविपाकाः)

प्रदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तंस्तेयकर्मणि । द्रव्यप्रकाराहियथातथैवप्राणिजातयः २१६

अर्थः—प्रदर्शन के लिये मैंने भी यह इतना चोरी मध्ये कहा द्रव्योंके प्रकार जैसे अनंत हैं तैसे प्राणियों की जातें भी=अर्थात्—योगीश्वर याज्ञवल्क्य (जिनके मुख से थोड़े असरौंवाले थोड़ेशब्द निकसेहैं जिसका अर्थ बड़े विस्तार वाला बड़ेविज्ञानियों के समझने योग्य होताहै) आपही सब ऋथीश्वरोंको समझातेहैं कि मैंने यहथोड़े ही श्लोकों से प्रदर्शन एक नमूना मात्र समझाने के लिये केवल चोरी मध्ये कहा (किंतु चोरोंके सिवाय पाप और भी अनेकहै) और चोरी में भी केवल यही द्रव्य या येही प्राणी नहीं हैं जो मैंने कहि सुनाये बर्यों कि संसारमें जैसे द्रव्योंके प्रकार भेद असंख्य तैसे प्राणियों की जातें भी अनंत हैं जो सब के सब नहीं सुनाये जासकते हैं तिससे इसी नमूना के अनुसार अपनी बुद्धिसे समझते रहिना यद्वा और भी स्मृतियों जो संसार में अनेक है तिनमे से जो जो बातें विशेष हैं सो लेते रहिना ॥ २१६ ॥

२१६अधिकोक्तिः—इसी नमूना के अनुसार समझते रहिना•इसका दृष्टांत जैसे काँसा हरनेवाला हंस होगा•अथवा इसदगसे कि जिस कामकी वस्तु जिसने इरीहो (जिस कामकी हानि किसी को पहुँचीहो) उसी कामके भंग होजाने वाला लसपा उसको प्राप्त होगा•दृष्टांत जैसेघोडा हरनेवालेकी टाँग लुलीहोगी या जता हरनेवाला उसका घोडा जाकर बरेशा इत्यादि बहुधा भेद अपार है•॥•स्मृतियों में जो जो बातें विशेष हैं सो लेते रहिना इसका भी दृष्टांत जैसे शंखस्मृति में शंखनामा मुनि ने बिरली बातों पर विशेषता दर्शाई है=तथाचाहशंखः=ब्रह्महाकुटी तैजसापहारी मण्डली देवब्राह्मराक्षोशकःखलतिः गरदारिणदाघ्नमत्तो शुरुप्रतिहंताऽपस्मारीगोघ्न प्रचां वः धर्मपत्नीमुक्त्वाऽन्यत्रप्रवृत्तः शब्दवेधीप्राणिविशेषःकुण्डामीभगभसो देवब्राह्मराक्षहरः पांडुरोगीन्यासापहारीचक्राणः स्त्रीपरायेपजीवीथंडःकोसारदारत्यागीदुर्भगः मियैकाशीवातगुल्मी अभश्य भसको गण्डमाली ब्राह्मणीगामीनिर्वीजो क्रूरकर्मा

वामनः वस्त्रापहारीपतंगः शठयापहारीक्षपराकः शखशुक्तप्रपहारीकपालीदोपापहारी
 कोशिकःमिचध्रुकक्षयो मातापिचोराक्रोशःखराडकार इति=अर्थात्-शंखमुनिने कहा
 है कि ब्रह्महत्यारा कोड्डी भी होता है (तात्पर्य इसका यह कि जैसा ब्रह्महा को
 क्षयोरोग होना में कहिचुका सोई नियम नहीं किंतु विरला कोडी भी होता है ऐसे-
 ही सबके साथ विकल्प भेदोंको समझते रहिना) धातुओं का हरनेवाला मण्डली
 होता अर्थात् उसकी देहमें चक्रमण्डल के आकार कोड होता है (धातुकाहिनेसेमिर्फ
 सोना आदि लौहा पदार्थतही न समझनी किंतु पारा फिःकरी हरिताल हियल रोस
 मचसिल आदि भी अनेक जो जो पर्वत की खानिसे उत्पन्न हैं सो सब समझलेनो)
 देवता या ब्राह्मण को खोटा वचन कहिने वाला गंजा होता है-वियदेने वाला और
 आगि लगानेवाला दोनों ध्वष्टुद्धि सिद्धी विस्मिन्न होते हैं-गुरुओंके वचन को अपनी
 तर्कसे कारने उडानेवाला अपस्मारनाम मृगी रोगसे संयुक्त होता है (कि जिसमिर्गी
 के आते समय सब शरीर की सावधानी भूलजाती है यथार्थ से यही उसका प्रति-
 कार ठीकठीक है) गऊको मारनेवाला अन्वा होता है-बिवाहिता पत्नी को निपट
 छोडिके और स्त्रियों में प्रवृत्ति करनेवाला शब्दवेधो नामसे कोडि नीच जन्तु होता है
 जो शब्दही के प्रभाव से वेधा जाता है-कुराडाशी पुरुष अर्थात् पतिके जीवते जिस
 स्त्रीने जारके बीजसे जो पुत्र पैदाकिया हो सो कुराड कहाता है ऐसे किसी कुराड के
 हायसे जो कोई अन्न भोजन करै या कुराड की छटी दसूदिन आदि में भोजनकरै सो
 कुराडाशी एक प्रकारका पापी होता है वही जाकर जन्मांतर में भगभक्ष प्राराी होता
 है अर्थात् (भगनाम यहाँ योनि और शुदा का भी समझना तथा भगनाम स्त्री और
 पुरुषों के वीर्यका भी होता है तहाँ) भगंदर आदि दुष्ट गेरों में कीड़े जो परते हैं सो
 भगभक्ष कहते हैं क्योंकि सड़ेगले वीर्य को या रक्त मांसको भक्षणा करतेहुये उसी
 जघे रहते हैं सोसा जन्म उस कुराडाशी को मिजता है-देवता का द्रव्य और ब्राह्मण
 का द्रव्य हरनेवाला पाराडुपी होता है-न्याम धरोहरिका हरनेवाला काना होता है
 (धरोहरि भी दोभांतिकी होता है एकती दिखाइके सौपीहुई दूसरी मुदीतें की जो चीज
 सौपी जाय या कहिकर कहों गान्धिबीजाय तिनका हरनेवाला न्यासापहारी कहा-
 ता) स्त्रियों को वेचिबेचिकर या विकवाइकर दलालीसे जीविका रोजिगार कारने-
 वाला निपट नपुंसक होता है-कौमार अवस्था (सोरह वर्यकेलगभग) वाली भाठर्या
 को त्यागनेवाला दुर्भंग होता है अर्थात् महादरिद्री कुरूप कुबुद्धी आदि सब तरह से
 दुर्भागी-मीठी आखी वस्तुको अकेलाही दिखायकर खानेवाला तथा स्वकीय वच्चे

आदिसे छिपाइकर खानेवाला वायगोलाके असाध्य रोगसे अत्यंत पीडित होता है—
 अभक्ष्य वस्तु जो खाने योग्य नहीं तिनको खानेवाला गण्डमाली अर्थात् कंठमालाके
 रोगसे संयुक्त होता है (इन बातों में ये भेद भी सर्वत्र लगे हुये हैं कि जिसने थोड़ा ही
 अभक्ष्य खाना खाया हो तिसकारोग दवा करने से दविजायगा पर जिसने अचञ्च
 निर्भय होके सदा सेवन कियाहोरा तिसका रोग भी असाध्य होकर सदा बनारहिता
 है) सभी आदि अन्य बर्गों का मनुष्य जो ब्राह्मणी से गसन करनेवाला हो निर्वीजो
 अर्थात् वीर्य से विहीन और वंशमन्तान से विहीन होता है (सर्वत्र केवल यही नियम
 नहीं है कि जन्मांतर में जाकर फलही किन्तु बहुधा पाप ऐसे तीव्रहोतेहैं कि जिनका
 इसी देहमेंफल होता है फिरअगले जन्मोंको भी साथजाता है इसवातका वृत्तांत पहले
 एक सौ तैत्तिरीय के प्रलोकमें लिखचुके तहाँ देखो सोसर्वत्र समझते रहिना) क्रूरकर्म
 जो अनेक भौति के सब जीवों को दुखदेना आदि भयंकर होतेहैं तिनका करनेवाला
 वीना होता है अर्थात् विलंबिया डील जो सबकामों में निकम्मा और किसी को
 निगाह में कुछ नहीं जंचता है—बस्त्रोंका हरनेवाला पतंग जाकर होता है अर्थात्
 रोड़ी ततैया आदि उड़नेवाला जन्तु—पलंग बिछीना आदि शय्या सेजकी सामग्रीहरने-
 वाला सपराक होता है अर्थात् गंगा निर्लज्ज फिरा करता है कि जिसके घर टौर
 टिकाना कपड़े आदि कुछ भी नहीं—शंख सीपी आदि चीजोंका हरनेवाला कपाली
 होता है अर्थात् नकली अघोर जो मनुष्यकी खोपड़ी लिये फिरता और उसी में सब
 जातिकी जूठखाया करता है—दीपापहारी जो देवताके स्थानपर या कहीं पथिकोंकी
 आरामको प्रकाश किये हुये दीपक उठालेजाने का हमेशाही अभ्यास रखताहो सो
 उल्लू चिड्डियाका जन्म पाता है जो दिनभर धंधेराभोगों—मिथों से झेह तथा धोखा
 धडी करनेवाला सभी रोग से संयुक्त होता है—माता पिताको गाली देने और क्रूर
 वचनों से घुड़कने वाला खराडकार के घर जन्म पाता है अर्थात् दीवार बनाना वा
 धरतीखोदना या लकड़ी पत्थरकाटना आदि नीचधंधेवाले सबखराडकार कहातेहैं—
 यह सब शंखजोने कहा॥०॥इसके सिवाय जो कुछ गौतमने विशेषता कही सो अत्र
 आगेसे दर्शाते हैं—यथाह गौतमः—अनृतवागुल्बलःमुहुर्मुहुःसंलग्नवाक् जलोदरोदार
 त्यागी कृत्सासीपलीपदी उच्छिन्नजंघाचरराः विवाहीविघ्नकर्ताच्छिन्नोष्ठःअवगारणी
 छिन्नहस्तः सालघ्नोष्ठः स्तुयागानोवातवृत्तः चतुष्पथे विरामूत्रविसर्जनान्मूत्रक्षेच्छो
 कान्यादूयकथंडः ईर्ष्यालुंमंशकः न्यासापहारीअनपत्यः रत्नापहारीअत्यंतदरिद्रःविद्या
 विक्रयीपुस्त्यग्राः वेदविकयीडीपी बहुयाजकोजलप्लवः अयाज्ययाजकोवराहः अग्नि-

संव्रितभोजीवायसःनिस्रैकभोजीवनरः यतस्ततोऽशनन्माज्जरःकसवनरदहनात्रखद्यौतः
 दारुकाचार्योमुखविगन्धिवः पर्युयितभोजीक्रिमिः अदत्ताऽऽदायीवलीवर्दः मत्सरोधमरः
 अग्न्युत्सादीसगडलकुरी शूद्राचार्यःश्रुपाकः गौहर्तार्यः स्नेहापहारीक्षयी अन्नापहारी
 अजीर्णा ज्ञानापहारीभूयकः चण्डालोपुल्कसीगामी अजगरः प्रव्रजितागमनेमरुपि-
 शाचः शूद्रीरामनेदीर्घकीटः मवर्गाऽभिरामोदरिद्रः जलहारीमत्स्थः क्षीरहारीवलाकः
 वार्धुयिकोऽगहीनः अविक्रेयविक्रयोगृध्रः राजमहिथीगामीनपुंसकः राजाक्रोशको
 गदभः गोगामी मराडूकःअनाध्यायाध्ययनेष्टयाजः परद्रव्यापहारीपरप्रेप्यःमत्स्यवधेग
 भवासीदत्येतेऽनध्वंगवनाः इति=अर्याव्र-गौतमजी कहिते हैं कि-मित्यावादी पुरुय
 गिलविली वीजीसे संयुक्तपैदा होताहै पर जो भूंदबोलनेका बारंबार अभ्यास रखताहो
 सोनिपट इकला पैदाहोताहै-स्त्रीकात्यागनेवाला जलोदर महारोगसे पीडित होताहै-
 कूटसाक्षी जो जालसाजीसे गवाहीदेतारहा वह श्लीपद रोगीहोताहै कि जिसकापाव
 हाथके धैर समानरोगीहो और जोघपैरभी कटाट्टाहोताहै-जिसने किसीके विवाहमें
 भंगडाला हो सोफटे ओट या गालकटा होताहै-अवगोररामी जो घुडकी सात्र मानेको
 हाथ या डंडाआदि उगावनेका अभ्यास रखताहो तिसकाहाथ लुंज या कटाहोगा-
 माताकोमारनेवाला आँखों से अंधा सराहोताहै-पुत्रकीवधुगमनकरनेवालेकेआँड़ोंमें
 सोजाकआदि बातयोग महाभयंकर होतेहैं-चौराहामे बिद्या सूच करने वा फँकनेवाले
 को मूत्रकच्छुरोग चिनिग प्रमेह-कन्यादूय जो कन्यादूयितकरै वा दूयराज्ञगावै सो
 जन्मही से नपुंसक पैदा होताहै-ईयाँलू जो पराई उन्नति आदिको देखि सुनिके न
 सहिसके सो मशक योनिमें माच्छर होताहै-माता पिता से विवाद रखनेवाला अप-
 स्मारी मृगीरोगसे संयुक्त-न्यास धरोहरि हर्नेवाला संतानसे विहीन होगा-रत्नों का
 हर्नेवाला मंदादरिद्री होगा-विद्या विक्रयी जो मजुरी लेकर विद्यापडावै सो पुरुय
 मृग अर्याव्र सनुष्यों में गोदड़ के तुल्य ओछा होगा-वेदको बेचनेवाला वाघ बघेरा
 चीता होगा-बहुयाजक जो बहुतसी जारों को बलिदान आदि यजन पावाइकर्म
 कराताहो सो जलमें तैरनेवाला पक्षी होगा-अयाज्य अति नीचजातें जिनको यजन
 करानेका नियेष हो तिनको पाधाइ करनेवाला सूअर की योनि में जाताहै-बिना
 नौताहुआ जो आपही जाकर भोजनकरै सो कौवाहोगा-मीठीबस्तु अकेला खाय सो
 बंदरहागा-जहाँ तहाँ बिना बिचारे खाताफिरै सो बिलारहोगा-जो जंगल के घास
 फूस और बन मे आगि लगावै सो जुयून पटवीजना जंतु होताहै-दारुकाचार्य किन्तु
 शिल्पी चित्रकार आदि संवजातोंका आचार्य बनें सो मुखविगन्धनान कोडाहोताहै

जो तेलको बहुधा पियाकरता है सुखमें उमकेदुर्गाधि बहुत आती है जो किसी चीजमें सुहलगावै तो तत्काल उस चीजमें दुर्गाधि आने लगती है इसी हेतु उस कीड़े के नाम भी तैलपायी मुखविद्या आदि कहेजाते हैं—पर्युणित भोजी जो पक्कानके सिवाय धरे वासी आदि बसे अन्नभोजनकरै सो क्षमिका जन्मपाता है—अदत्त आदायी जो विना दई वस्तुको आपहीलेले सो बेलहोगा—मत्सरो जो अति क्रोधी और ईर्ष्यावाहू हे सो भैंरा होगा—अग्रयुत्सावी जो दबी हुई अग्नि को उखाड़ि के ऊँदि कोंचि विगाड़ै सो मंडल कोढीहोगा—श्रादों को आचार्य बनिके बेचोक्त यज्ञकरावै सो क्षपाकजाति होता है कि जंगलों में रहिते हुये कुत्तोंको पकाकर खातेहैं—गऊहरनेवाला सांप होगा—घो तेज आदि चिकनाई हरनेवाला क्षयीगणसे असाध्य होता है—अन्नोको हरनेवाला संदारिनरोग से अजीर्णवाहू होगा—ज्ञानापहारी जो किसी को उचित समयपर ज्ञान देना बोधकराना योग्यथा सो जानि वृश्चिकर न दे तो निपट गूंगा पैदाहोगा—चांडाली और पुल्कसी नीच स्त्रियों का गमन करनेवाला अजगर होगा—संन्यासिनी के साथ भोग करने से मरुतदेश में पिशाच होगा जहां भ्रंभावायु तथा रेत आदिके सिवाय जल फल फूल वृक्ष आदि कुछनहो—शूद्रोकेसाथ मैथुनकरनेसे बड़ाकीराहोगा—अपने बर्गाकी स्त्रियाँ गमनकरनेसे दरिद्रोहोगा—जलहरनेवाला बड़ाभ्रमरसुसर्षडिड्याल आदिहोगा—दूधहरने वाला बगुलाहोगा—वार्धुयिक जो बहुतकडा विआँज किस्ति आदिसे लेकर जीविका करै सो अंगहीनहोगा—जिनवस्तुआँ का बेचना नियोधकिया गया तिनका बेचनेवाला गृध्रहोगा—राजको रानीसाथ मैथुनकरनेवाला पुरानपुन्तक पैदाहोगा—राजाको खोटावचनसुनानेवाला गदहाहोगा—गऊ आदि पशुआँकी धारि में मैथुन करनेवाला भेदक होगा—अनाध्यायजिन तियाँ में वेदपढन का नियोधहै तिनमें पढने से सियार होगा—झोटीभोटी पराई चीजें हरनेवाला पराय। प्रेष्यवावक हुकुम वरदारहोगा—मत्स्य मछरी आदि जलजीवों का वच करनेसे उन्ही के गर्भ में वसना होगा यद्वा उस गर्भ में कि जो स्त्रियोंका गर्भ कई बर्योतक नहों वाहर आता है—येइतने जो कहेगये सो सबके सब ऊपर स्वर्ग में नईं जाने पातेहैं यहगोतन जीने कहा ॥ ० ॥ जोसा यह पुरुषों के अवलम्बसे चर्चाकिया तैसास्त्रियाँ भी उनपापोंको करनेवालीं उन्ही जातीं में स्त्रियाँ जाकर होती है जहाँ पुरुषोंका जन्म होना कडा गया इसके मध्ये मनुका अग्राक्त वचन देखीं—प्रथाइमनुः=स्त्रियोप्येतैकलपेनहृत्प्रदा देय नवाप्त्युः रतेयामेवजंतूनां भाटयान्त्वमुपयांतिताः=अर्थात्—स्त्रियाँ भी इधी तौर से उक्त श्रुत्योंको हरिके उन्ही देयोंको पावै किन्तु इन्हों पूर्वाक्त प्राणियों को घर

वाली जाकर होती हैं ॥ अतिकोक्ति पूरी हो चुकी तथापि इसके साथ एकशास्त्रार्थ रूपी निराय करना श्रेयस्करा सो जुदा नीचे लिखते हैं ॥ २१६ ॥

गूढाभिप्रायानानिरयः—दोसै नौ (२०६) श्लोकपर ध्यानकरों वहाँसे लेकर यहाँतक कर्मोंके विपाकसे क्षयरोग आदि जो अनेक दोषोंके चिह्न होने लिखेगये सो इसलिये कि द्रव्यहत्यारे आदिअनेकपापी लोगोंकेभय सूक्तिपरनेसे प्रायश्चित्तों पर दृष्टि पहुँचै—अन्यथा यह प्रयोजन उसका नहींहै कि सथी आदि रोगोंवाले सन्तुष्योंको वे प्रायश्चित्त करायेजायें जो (हादशवार्यिकव्रतआदि) वारद्वय आदि के विधान आगे आवेंगे और यह प्रयोजन भी नहींहै कि उसभाँतिके रोगियोंको पापी समझके संसर्ग छुनाआदि उनसे न कियाजाय—क्योंकि—प्रायश्चित्त के विधान जो आगे कहेजायेंगे सो पापोंका क्षय होनेके निमित्त होंगे किन्तु उसके लिये नहींहै कि पहिले पापोंका खोटाफल प्रारब्ध हुआ सोभी नाशहोसके या विनादेखे विनाजाने ससभे पूर्वजन्मोंके अदृष्ट पापहू नाशहों—क्योंकि इसपर एक न्यायका दृष्टांतहै कि जैसे किसी धनुयसे छूटाहुआ बारा निशानापर लगानेमध्ये न उतधनुय और धनुयवाले से कुछवास्ता रखताहै न उसके किये और उपायोंसे छूटे पीछे कोईभी अपेक्षा रखताहै (अर्थात् दीक निशानाके सन्मुख छोड़ि दिये पीछे जो चाहै कि अब निशाने पर न लगै या गौर निशाने से छूटे हुयेको चाहै कि यह दीक निशानेपर लगै इसका कोई इलाज उसके काबूमें नहीं रहिता यह तात्पर्य है) और यह भी नहीं कि उससे प्रारब्ध हुये खोटे फलका विनाश चाहिकर धनुय का तोड़ना शोचा जाय क्योंकि कुम्हारके चाक हथेला तरगा आदि (जो न्यायमतसे निमित्तकारणा कहते हैं तिन) का विनाश करनेसे भी वे करवा और हाँडी आदि नहीं नाश होसकते हैं जो उन्हें निमित्त कारणोंके प्रभावसे बनिचुके और इसीप्रकार नैसर्गिक स्वाभाविक महारोग जो बुरे नख होना आदि जन्महीसे उत्पन्नहोचुके तिनका प्रत्यानयन वापिस होजाना शक्तिसे बाहरहै—क्योंकि—बिना देखेहुये पहिले महापापोंका प्रतिकार नरकभोगना और तिरछी धोनियों में बहुतेरे जन्मलेकर उनके दुःखों को भोगे पीछे सबसे अखीर यहाँफल श्रेयस्करा सो बुरेनख होने आदिसे प्रत्यक्षमेंआया तिसके उत्पन्नहोनेमात्रसेही उसकेउत्पन्न करनेवाल कारणाभूत पहिले पापोंका नाशहोजाताहै कि जैसे लकड़ियोंमें जेवरीसे मथिकर घसिकर अग्नि उत्पन्नहोताहै उसके उत्पन्न होतेही लकड़ियाँ जलिकर नाश होजातीहैं (अर्थात् उनलकड़ियोंके विनाशके लिये कोई दूसरा उपाय करना फजूलहै) तैसेही जिन विनादेखे पापोंकाफल प्रत्यक्षमें आचुका तिनका वि-

नाश चाहिकर कोइसा प्रायश्चित्त करना आवश्यक नहीं है और न इसके लिये प्रायश्चित्त है कि लोकाचार परस्पर जाति विरादों के व्यवहार बतवि उन कुनखी आदि रोगियों से होसकें क्योंकि प्रायश्चित्त किये बिना भी अच्छे विवेकी लोग कुनखी दुषचर्मा आदि रोगियोंसे व्यवहार नहींत्यागतेहैं यह परंपरासे चलाआताहै किन्तु अभी अनतर जैसा कहिचुके कि लकाइयों की तरह पहिले पापोंका नाश होचुका तौ फिर विरादी के व्यवहार में भी क्या दोष रहा जिसके लिये प्रायश्चित्त की जरूरत होय ॥ ० ॥ कदाचिच यह तर्कना उठाईजाय कि वशिष्ठ मुनिने कुनखी आदि रोगियों को प्रायश्चित्त करना क्यों कहा जैसा यही आगे वचन है—तथाच वशिष्ठः—कुनखीश्यावदंतप्रच्छृच्छं द्वादशरात्रं चरेत्=अर्थात्—खोटे नखोंवालाकुनखी और दूरे दाँतोंवाला श्यावदंतभी बारह दिनका छच्छ्रतसाधै=धो यह वशिष्ठजी का कहा नियम एक नैमित्तिक धर्महै उस भाँतिका कि जैसे सामवती आदि यज्ञों का करना केवल शांतिदायक होताहै अर्थात् वशिष्ठका यह वचन कुछ पहिले पापोंके विनाशमध्ये नहींहै न जातीय व्यवहारोंके निमित्तहै ॥ ० ॥ सामवती इष्टि इसनाम से वेदों में यज्ञ विशेष कहाहै बल्कि उसप्रकारके और भी सामान्ययज्ञ जुदे नामोंसे कहेहैं—इसका प्रसंग प्रायश्चित्ततत्त्व में भविष्यत्पुराणके प्रमाणसे दृष्टांतवेकर आया है—यथा=सामवत्यादिनायदत्कर्मणांपृतनापतेदेवदोषादकराजो जातेदोषकदम्बकेहेमे नैकेतदोषाणांसर्वेषांसयसादिशेदितिभविष्ये—एवंचएकप्रायश्चित्तनामेकदोषसयय सामवतोष्टिःसर्वदृष्टांतःइतिप्रायश्चित्ततत्त्व=अर्थात्—हे राजन् देवयोगसे जिस किसी को नित्य नैमित्तिक धर्म कर्मोंके न करने में अनेक दोषों का समूह पैदा होजानेपर सामवती आदि कोइ एक इष्टिकानेसे सब दोषोंकी शांति एकसाथ जैसे होजातीहै तैसे सब ग्रहोंके दोष एक होससेही सयहोते हैं यह आदेशकर्ते यह भविष्यत्पुराण में कहाहै—इसीप्रकार जहाँ एकही प्रायश्चित्त से अनेक पापोंके सयहोनेका प्रसंग हो तहाँ तहाँ सर्वत्र सामवती इष्टि यहदृष्टांतहै यह प्रायश्चित्ततत्त्वमें कहाहै ॥ इसी प्रकार वशिष्ठका वहवचन एक शांतिरूप समझना ॥ २१६ ॥

(वरिणितस्यैवात्रसारांशः)

यथाकर्मफलंप्राप्यतिर्यक्त्यंकालपर्ययात् । जायंतेलक्षणधृष्टावदिद्रा-पुरुषाधमाः २१७
ततोनिष्कल्मषीभूताकुलेमहतिभोगिनः । जायंतेवियगोपेतापथान्यसमन्विताः २१८
अर्थः—यथाकर्मका फल तिर्यक्त्व भी पाइके कालके पर्यय से पुरुषों में अथम

होतेहैं कूलक्षरा से कूलरूप और दरिद्री=तिससे निष्कल्मस्य हुये बड़े कूल में भोगी जन्मतेहैं जो विद्यासे संपन्न और धनधान्यसे भरेपुरे होतेहैं=अर्थात्-कर्मोंका विपाक जो अबतक घनातेरहे उसी सबका तोड़ निचोड़ यहाँ इकट्ठाकरिके समझातेहैं कि-जैसा जैसा जिनका खोंटाकर्मया तिसकाफल नरकभोग और तिरछी योनिका जन्म भी पाइकर कालकी चालिसे अतिकालमें पापकर्मोंके क्षीराहीन होजानेसे मनुष्य की योनि में भी आकर अधम ओछे पुरुषोंका जन्म लेतेहैं कि जहाँ दरिद्री धनहीन और कुनख दुश्चर्म आदिखोटे चिह्नोंसे कूलरूपभी होतेहैं॥२१॥ अतः तिसके भी अनंतर (उक्तभोगोंकेभोगनेसे) पापोंसे छुटकारा पाये हुये वेही प्राणी (अपने किसी पूर्व जन्मांतर के संचित पुण्यकर्म जो प्रशंसित पापों के वेगसे रोकमें आगये थे तिनकी आइ मिटिजाने और सत्प्रभाव उदय होनेसे) फिर अगिले जन्मसे बड़े किसी उत्तम कूलमें भोगी पुरुष होके जन्मलेते हैं कि जहाँ विद्या आदि गुराँसे संयुक्त और धन धान्यसे भी संपन्न हों=परन्तु=यह नियम सिर्फ उन्हींका समझना जिनका पहिला पुराय,अधिक होतेहुये पापोंके उत्पन्न होनेसे रोक में आगया हो• अन्यथा जिनका पहिला पुराय भी संचय नहीं केवल पापी हों वे फिरभी अगिले जन्मोंमें दरिद्रीआदि मंद पुरुष होतेहैं कि जबतक वीचमें कोईसा सत्कर्म उनसे न बने ॥ २१८ ॥

इतिकर्मविपाकानांसंक्षिप्तानिलक्षणाणि ॥

—*—

अथ-प्रायश्चित्ताधिकारिलक्षणविवेकानाम्

द्वाविंशःपरिच्छेदः२२ ॥

इस परिच्छेद में उन पुरुषोंके लक्षणा कहे जायेंगे कि जो तत्काल प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी होतेहैं ॥

(प्रायश्चित्ताधिकारिणः)

विहितस्यानुष्ठानान्निहितस्यसेवनात् । अनियहाञ्चेन्द्रियाणानरुपतनमुच्छति २१९
तस्मात्तेहृकतव्यंप्रायाश्चित्तंविशुद्धये । एवमस्यतिरात्मावलोकश्चैवप्रतीदति २२०
अर्थः-विहितके न करनेसे और निहितके सेवनसे शीद्र्योंके अनियहसे भी मनुष्य

दोयी होता है=तिससे उसको इहाँ इसी देहमें पापांसे शुद्धहोजानेकेलिये प्रायश्चित्त करना चाहिये ऐसे प्रकार से इस मनुष्यका भीतरला आत्मा भी प्रसन्न रहता और संसार भी इसकेऊपर प्रसन्न होता है=अर्थात्-मनुष्योंको लोकारीतिसे और शास्त्रकी आज्ञासे भी नित्य नैमित्तिक धर्म जो कुछ करना उचित है (दृष्टान्त जैसे संध्योपासन आदि पचयज्ञ जो हैं सो नित्य कर्म हैं तथा तीसवां प्रलोकसे आदि लेकर अशुद्धों का स्पर्श होजाने में स्नानआदिकरना कहा सो नैमित्तिकधर्मया या उससेपहले मतकोंकी शुद्धिकरना जो कहा गया वह भी नैमित्तिक था या कन्याका विवाह और गौनाभी उचित समयपर करदेना कहा सो भी नैमित्तिक धर्मया इत्यादि औरभी समझने)सो विहित कहाताहै तिसके न करनेसे मनुष्य दोयीहोताहै तथैव निन्दितकर्मोंके करनेसे भी दोयी होताहै) निन्दितकर्म सब शास्त्रोंमें और लोक मेंभी प्रसिद्ध हैं अमस्य भक्षणा या चोरी या जोरी आदिदुरकर्म) और इन्द्रियोंकी वशमें न राखनेसेभीदोयीहोताहै ॥ २१६॥ तिसकारणसे उस दोयीको तत्काल उसीदेहसे कि जिसमें ब्ये खडाहुआ हो दोयकी मिटानेके प्रयोजनसे प्रायश्चित्त करना चाहिये जिससेउसके भीतरले आत्मा की शुद्धिसे प्रसन्नता और संसारी लोग भी प्रसन्न होते हैं ॥ २२० ॥

२१६अधिकोक्ति:-यहाँ पर वादी पुरुष तर्कना खडी करता है कि जब ऐसा नियेध पहिले होचुकाहै कि इन्द्रियोंके सब अर्थों मे कामना सहित न प्रवृत्त होय और यहाँ भी २१६ प्रलोकमे निन्दित कहने से इन्द्रियोंके नियेध सिद्धहोसक्तथे तो फिर जुदा पद ऐसा क्यों कहागया कि इन्द्रियोंके अनिग्रह से भी-तहाँ-विज्ञानेश्वर उत्तर देतेहैं कि इन्द्रियों की प्रसक्ति के नियेधकी और सकजधे जुदीबातके प्रतिषेध की एक रूपता नहीं है।स्नातक के व्रतोंमें पाठ आजानेसे तहाँभी ये व्रत धारण करें इस व्रत शब्दके अधिकारसे और इन्द्रियोंकेभोग नियेधका संकल्पनकार सुनने से यक्काहोता है वह दोनों तरह से भी ठीकहै तिससे जुदापद कहागया ॥ पुन.वादी-क्योंजी उचित के न करनेसे दोयी होताहै यहकहाँसे निश्चितहुआ अग्निहोत्रआदि की प्रेरणा जो सिर्फ पुरुष का उदयरूपी अनुष्ठान है प्रथम उसीका न करना कुछ दोयकी हेतुताको नहीं सिद्ध करताहै क्योंकि वह प्रेरणा विययएक संबन्धी अनुष्ठान की पुरुषार्थता (सदानुगी) के ज्ञानभाव का निश्चय कराने वालीहै तो वह प्रेरणा उत्तनेही प्रयोजन करके प्रवृत्ति की युक्ति होनेके हेतुसे न करनेका दोय रूप कारण भी नहीं कहती है क्योंकि जिसको करनेकी समर्थ न होगी वह अपने पुरुषार्थ रूप उदयसे हाथ धोनेदेगा और यह भी है कि यद्यपि अनुपपत्ति (असंगति) के दूरकरने

में भी प्रवृत्तिकी सिद्धि के लिये अर्थांतर कल्पना होती है तब भी नियेध किये दोगके परिहार के प्रयोजन से उस के त्यागने की पुरुषार्थता (मर्दानगी) की सिद्धि में भी फलांतर कल्पना होती है यह किसी काभी सम्मत नहीं है इसमें भी सम्भव है कि जैसे नियेध आचरणोंमें अर्थवाद (नियेधकी निन्दारूपी प्रशंसा) से जानेहुये दोग के छोड़ देनेसेही पुरुषार्थत्व होता है—तैसे आदेश कियेहुये उचित कामोंमें अर्थवाद (उचित की स्तुतिरूपी प्रशंसा) से सम्भूतहुये न करनेसे उत्पन्न होनेवाले दोगकी परिहारार्थता कैसे नहीं पहुँचे—ऐसे नहीं—सुनौ—अग्निहोत्र आदि विधानों में सर्वत्र वैसेही अर्थवाद नहीं है और २१६वाले प्रलोकमें स्मृति भी ऐसी नहीं है कि, विहित का अनुष्ठान न करनेसे अनुष्य पतित होता है और वाक्यांत से प्रसारा किये कार्य में अन्य वाक्यसे अर्थवाद भी नहीं सम्भव होता है यद्वा कभी कहीं दोनोंवाक्य एकही से होनेमें अर्थवाद सिद्ध होभी जाओ तौभी विहितका न करना जो अभाव रूप है (अर्थात् नहींका कोइरूप हीनहीं) सो किसी और कार्यके उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होता—अत्रापि वितर्क—क्योंजी (ज्वरे चैवात्सारे चलंधनंपरमौषधं) बूखार और दस्तेमें भी लंघन करना बड़ी बवाई होती है जैसा यह वैद्यक शास्त्र के वचन से भोजनका न होना रूपी जो लंघन है सो ज्वरकी शांतिरूप कार्योंतरको उपजाता है तैसावइ भी किसी और कार्य के उत्पन्नकरै ऐसा क्योंनहीं माना जाता—ऐसेनहीं—क्योंकि जिसते इसमें भी कुछ लंघनसे ज्वरकी शांति नहीं है—तौ फिर क्या है ज्वरके नाशको रोकनेवाले भोजन का अभाव होने में पेट की अग्नि से परिष्काक होकर उसी परिष्काक से उत्पन्न हुई घातुओं (वात पित्त कफों तयारसरक्तादिकों)की समता आदि माननी चाहिये तिसते (विहितस्थाननुष्ठानान्नाः पतनमृच्छतीतिकथमस्याः स्मृतेर्गतिः) अर्थात्—उचित के न करनेसे अनुष्य पतित होता है इस वचनकी गति कैसे होय सो कहना चाहिये—कहते हैं—अग्निहोत्र आदि वियेयों के अधिकार की न सिद्धिरूप कलङ्क के अभिप्राय से यह दोग नहीं है—पुनः शब्दा—क्योंजी ये अप्रोक्त अनुके वचन कैसे अपने अर्थमें ठीक होंगे—यथाइमनुः—वांताशुल्कामुखः प्रेतो विप्रो भवति विच्युतः अनेध्वङ्गतापाशो लुप्तश्चि यः करुपतनः सैसाद्योतिकः प्रेतो वैश्या भवति पूयभुक् विलासकस्तु भवति शूद्रो वस्मर्तिष काच्युतः—अर्थात्—संन्यासी जो गृहस्थी आश्रम छोड़िके संन्यास धारण करै फिर उन्हीं गृहस्थीवाले कामोंको करनेलगे सो वांताशो (रक्षित्येहुयेको फिर खानेवाला) कहाता है और मरनेपीछे उसी दोगके प्रभावसे उल्कामुखी शानिमें जन्मता है अर्थात् लोखंडी लोमड़ी जिसकी जीभ में ऊँकसी ज्वाला टपती रहती और प्रायः रक्षिक्ये

हुयेकीभी चास्तीहै तिसकी योनिमें वांताशी जन्मपाताहै और विद्वान् विप्रजो अपने धर्म कर्मसे गिरिजाय सो प्रेतयोनि होताहै अर्थात् प्रेतों में उल्कासुखप्रेत जिनका सुख अग्नि के तुल्य जलता रहता है तिससे अधिक पीडा उनको मिलती है इसी से वह प्रेत भी औरोंकी बमन चाटि चाटि मूंहठंडा करते फिरते हैं तिसकी योनिमें वह विप्र जाताहै जो नित्य और नैमित्तिक धर्म कर्मों का त्याग करदेताहै और सखीका धर्म यद्यपि उचित मांस खानेका नियत है तथापि जो कोई सखी अशुद्ध जीवों के मांस या मरे जीवों के मांस खानेवाले बड़ मरने वाद मुर्दा टकेलने वाली चाराडाल जाति या मरेजीवोंकी खानेवाले गिद्ध काक आदि योनि में जन्मता है और गुदा से व्यवहार प्रकाश करनेवाला वैश्य या मित्रोंसे कपटका व्यवहार फौलानेवाला वैश्य यात्राहारा से द्यूत खेलके धन हरनेवाला वैश्य भी मरने पीछे पीवराद भोगनेवाला कीडा या मलिन प्रेत जाकर होताहै और शूद्र अपने मुख्य धर्मसे द्यूत हुआ मरने के बाद जाकर विलासक वा विलास नाम एक अशुभनाति विशेष (वैश्याओं का भडआ जो प्रसिद्ध है) सो होताहै =ये मनुके सर्व वचन विहित के न करने का दोष जाननेवाले हैं सो कैसे घटन होतेहैं—कहते हैं—जैसे रह किये को खाते हुये ऊँक से जलते सुखवाले दुःख तैसे इसकी भी विहित (उपदेश किये हुये शास्त्रोक्त) के न करनेवालेका परुषार्थ सिद्ध न होनेसे सो यह न करने की निन्दा अनुयान करने में रुचि उत्पन्न होनेके लिये समझनी तिससे कुछ विरोध नहीं है—अथवा पूर्व जन्म के खोटे आचरणोंके भेजेराग आलसआदि जो उचित अनुयानके विरोधीहोके वांताशी और उल्कासुख प्रेतत्व आदि दुःख पैदाकारते हैं तिससे भावही सिद्ध ठहरा किन्तु कहीं भी अभाव का कारणात्त्व कोई नहीं यह नानना चाहिये—क्योंजी—यह मानना चाहिये सो नाना परन्तु पुंश्चली बंदर गर्दभ इनका देखाहुआ और मूंडादोष लगाये हुये आदि औरोंमें भी उचितता न करना आदि निमित्तोंमें सेकिसी एकद्वके अभावसे कैसे दोष लगताहै और उसके अभाव में प्रायश्चित्त का विधान किया गया—कहते हैं—मुने इससेही पापस्य होनेके लिये प्रायश्चित्त के विधानसे जन्मांतर से आचरण किये नियिद्ध सेवन आदि तिससे पैदा पाप अपूर्व प्रेरित हुआ मिथ्या अभिग्राह्य आदि तिसके निमित्त प्रायश्चित्तसे दूरीकरना हेतु मननहीं अनुश्रित हुआ यह कल्पना होय है क्योंकि पुरुष के प्रयत्न से अपेक्षा नहीं रखने में कार्यरूप पापकी उत्पत्ति संगत नहीनेसे और न पुंश्चली आदिमें प्राप्त प्रयत्नअन्य पुरुषसे पापकी उत्पत्ति हे कर्ताओं केसमूह योग्य नियम से धर्म अवम दोषों का होना है तिससे प्रायश्चित्त

में तीन त्रिमित्त जो गिनाये सो गिनना ठीकही है जैसा मनुका वचन यह प्रसारा है—तदाह मनुः—अकुर्वन्विहितं कर्मनिन्दितं च समाचरन् प्रसक्तपुत्रैर्द्रियार्थैर्यु प्रायश्चित्तो यतेनरः—अर्थात्—विहित कर्म कोन करते हुये और निन्दित कर्मको आचरना करते हुये और इंद्रिय भोगोंमें लगाहों सोभी नर प्रायश्चित्तो होता है—इसमें नरशब्द कहनेसे ब्राह्मण और अनुलोमों के सिवाय प्रतिलोम जातियोंको भी प्रायश्चित्त का अधिकार पहुँचता है क्योंकि साधारण धर्मोंमें अहिंसा आदि जोजो धर्म उनके लिये ठीक हैं तिनका व्यक्तिक्रम उनसेभी होना संभवहै (प्रायश्चित्तका शब्दभी पापोंके क्षयहेतुक जो नैमित्तिक कर्म विशेष हैं तिनमें रहते हैं) और प्रायश्चित्तका समस्त प्रकारामात्रभी नैमित्तिक धर्म माना जाता है—तिसमें अर्थवाद के द्वारा किसी पापका क्षय सिद्ध हो जाने परभी प्रायश्चित्तस्वीकार किया जाता है उसन्यायसेकि जैसे पुत्रजन्मके होनेसेही पित्रों की संतुष्टि होजाती है तथापि जातेहि कर्म करना स्वीकार किया जाता है कि अतिशय संतुष्टि होय परंतु ऐसा नियम होनेपरभी यह तात्पर्य नहीं है कि कोई इस कामना से भी प्रायश्चित्तकरै कि उसके करने से मुझसे कोई पाप आगेको नहोने पावे तौ यह आरांतुक पापों की रोक उससे नहोगी न इस अपेक्षा से प्रायश्चित्तकरना चाहिये क्योंकि यह फिर कामना का विषय ठहर सकता है सो नहीं केवल नैमित्तिक धर्म समझना चाहिये और करना भी अवश्य चाहिये क्योंकि न करने से यह दोष है—यथा—चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये निर्घोर्हिलसरोर्युक्ता जायंते—नित्यं तैर्नराः इत्यकरारो दोषः—अर्थात्—पाप करने वाले प्रायश्चित्तों के बिना जाकर नित्य लसरोर्युक्त संहित अंग भंग होके जन्म पाते हैं इस हेतु से नित्यही कि जब जब कभी पाप होजाय तभी उनकी शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये यह बहुत आवश्यक जानो ॥ २१६ ॥ २२० ॥

**प्रायश्चित्तप्रायश्चित्तानां प्रिये नरकाभवातिषांनामप्रकाश
कोयपरिच्छेदः चयोविंशः २३ ॥**

इस परिच्छेद में उन्हीं नरकोंके नाम और स्वरूप भी प्रकाश किये जायेंगे जो प्रायश्चित्त न करनेवालोंको होतेहैं और प्रायश्चित्त करनेके फल विशेष भी जो लाभ होतेहैं सो भी इसके बीचमें बर्णवेंगे ॥

(प्रायश्चित्तकरणोदोपः)

प्रायश्चित्तमकुर्वाणा पापे पुनिरतानरा । अपश्चात्तापिनः कदात्र नरकान्पातिदारुणान् २२१
अर्थः—पापों में निरत नर पछितावा न करके प्रायश्चित्त न करते हुये वारुणानरकों को जातेहैं—अर्थात्—शास्त्रके अर्थोंसे विपरीत कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुये पापोंमें लगे भये मनुष्य उनपापोंके हीजानेका उद्देग मानिकार सेसा पछिताउ भी नकरें कि हमसे यह दुष्कर्म हुआ और पीछे उसका प्रायश्चित्त भी नकरें सो सब लोग महाभयंकर नरकोंको भोगतेहैं जो सहे नहीं जासक्ते ॥ इसते यह तात्पर्य ठहरा कि धर्मवाद की यही पहिचान है जब उसते कोई पापलाचारी बोखे आदि से होजाय तब तत्काल उसका पछितावा करे और धर्मशास्त्र के विचारसे प्रायश्चित्तका निर्णय करावे कि मुझसे यह पाप हुआ इसका क्या प्रायश्चित्त है सो कळ ॥ २२१ ॥

(नरकनामवरूपाणि)

नामिस्त्र्यलोकेशं कुचमहा । निरयशास्त्रमली । रौरवं कुहमलं प्रतिमृत्तिकं कालसूत्रकम् २२२
संघाते लोहितोद्वचसविपतं प्रपातनम् । महानरककाकोलमजीवनमहापथम् २२३
अवीचिमं धतामिस्त्रं कुभीपाकतपेयच । अतिपत्रवनं चैव तापनं चैर्विशकम् २२४
महापातकजेषोर्षिस्तुम्भस्तकजैस्तथा । अन्वितायात्यचरितप्रायश्चित्तानरायमा २२५
अर्थः—ये द्रकीस नाम नरकों के अपने स्वरूपही के समान हैं कि जैसा जिसका रूप होता है तैसाही नाम जानी सो सब सुनाते हैं कि—शतान्निर नाम नरक उस जघे का नाम है जहां अंधकार के सिवाय कुछ नहीं न कुछ खानेपीने आदि की सामग्री है जिसमें (परायाधन धराइ स्त्री पराये वचचे हरनेवाले महा पापियोंको) यमके दूतले जाकर छोडिआतेहैं—रौद्रशंकु उसजघेका नाम है जहां इतरफलोदेकोपीनीकीलेगड्डी होती है उन्हींमें थोडीसां रदा आती है तिनके बीच भिँडकर घुमारहता है कहीं

निकसने की अच्छा सार्ग नहीं—३ महानिरय उसजघेका नाम है जहाँ सदेह के दुःख हैं—४ शास्त्रमाली उसजघेका नाम है जहाँ सेहके काँटे भरे रहते हैं सो देहमें वा करते—५ रौरव उस जघेका नाम है जहाँ निरंतर रोनेकी आवाज भयंकर सुनी जा और यह आप भी रोता है—६ क्लृप्तमल उसजघेका नाम है जहाँ पापी निरंतर क्लृप्तापि करते हैं—७ पति मृत्तिक उस जघेका नाम है जहाँ सड़कीचड़का दहदहलभा होता उस में महा दुर्गाधि आया करती है कि जिसते नाक भी सड़ने लगै—८ कालसूत्र उसजघे का नाम है जहाँ कालके रूप असंख्य सूत्र नचे होतेहैं उनमें घुसतेहुये अंग ऐसे काटि काटि गिरते हैं जैसे कुम्हार के हाथका तम्बा चाकसे वासन काटि लेताहै—९ संघात उस जघेका नाम है जहाँ अनेक जनोके द्वारा मारपरतीहै—१० लोहितोद उस जघेका नाम है जहाँ रक्तकी नदीभरी रहती है उन्हींमें डूबता फिरता है—११ सविद्य उस जघे का नाम है जहाँ सब तरहके विय भरे होते हैं उन की दवा नाक आदि में घुसि के बद्धा ब्रह्मेश कर देती और देहको मुजाब देती है—१२ संप्रपातन उसका नाम है जहाँ जाकर ऊँचे ऊँचे चढिकर वारम्बार गिराया जाताहै कि देह का भुसहोजाय—१३ महानरक भीरक स्थान है कि जहाँ नानाभाति की पीड़ा और दुःख मिलाकरते हैं—१४ काकोल उस जघेका नाम है जहाँ पापी को बड़े बड़े बतकोआ खूबनोचते मांस खाते हैं—१५ अजीवन उस जघे का नाम है जहाँ सबतरह के मुर्दा के ढेर लगे होते और धरती में सर्वत्र विछे होते हैं उन्हीं में घुसि के पापी की अवधि काटनी होतीहै—१६ महापथ उसका नाम है जहाँ पापीको लम्बे मने सार्गके सिवाय कुछ और नहीं मिलता न कोई प्राणी बतानेवाला केवलसुने सार्गहीको काटे चलाजाता बढ़ करता नहीं न उसका अंत आताहै—१७ अबोचि नाम और अबोचिमयभी नाम उस नरक का है कि जहाँ सुख रूपी अवकाश का अवलम्ब कहीं भी नहीं मिलता इस नरक में प्रायश्च भंटी गवाही देनेवाले भेजेजाते तहाँनीचा शिरकियेहुये लटकाये वा छोडि दिये जातेहै—१८ अंधतासिल नाम नरक यह तामिससे भी बहुत बढियाहै कि जहाँ पर सहाँ निविड घनेरा अंधेरा और अनेक भातिके भयउत्पन्न हातेहै तिसमें महा पापी को उसके दूत छोडि आते हैं वह पापी निज आप भी अंधा होकर वहाँ टहोलताफिरता है—१९ कुम्भीपाक बड़ नरक है जहाँ छोटे सुहड़ेके सटकेमें तैल गरम किये उसके दूत पापियों को घुसेड़ देतेहै छोटे सुहड़ेसे निकसने नहीं पाते और इतना गरमतेल होताहै कि निपट प्राणी नहीं जानेपाते किन्तु पड़े पड़े उबाल खाया करता है इसमें प्रायश्च ऐसे पापी जातेहैं जिन्होंने जीतेहुये जीवोंकी अग्नि आदिमें जलाया

भूना-२० अग्निपत्रवन वहनरकहे कि एकवन में ततवारकी धाराचालेपत्ते टपकते
 रहें तिसमें यमके दूत उन पापियों को लेजातेहे जिन्होंने वेदकामार्ग अपना धर्म
 ङ्ग के पाखण्ड मतलियाहो वहाँ उनकी चमड़े की रस्सियों से पीटते हे तब जहाँ
 तहाँ भागते हुये ऊपरसे वनके पत्ते गिरगिर नांस काटतेहे तब अत्यंत विज्ञाप करता
 हे-२१ तापन वह नरक हे जहाँ नीचे धरती भी तपाये लोहे के समान तथा रेत
 बालू भी भाड के समान और ऊपर से करोड़ों सूर्य के समान घाम और लुंकी लपट
 सी वायुके झकोरे जिसमें गरम रेत वरसताहोताहे-येइक्कीसनाम नमूना भागसे दशपिं
 इनसे उपरालुभी अनेक नरक होतेहे सो सब समुक्तलेने ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ इनमें वेही
 अधम लोग जाते हैं जो सड़ा पातक या उपपातकों से उत्पन्न दोषों से युक्त होकर
 प्रायश्चित्तनहीं आचरते हैं ॥ २२५ ॥

प्रायश्चित्त करनेसे कौन पातकी नरकनहीं जाता यह विशेष्यता आगेकहिते हे ॥

(प्रायश्चित्तस्यविशेषफलं)

प्रायश्चित्तोपेत्येनोद्यवहानकृतंभवेत् । कामतोष्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते २२६ ॥

अर्थ-जो अज्ञानता से किया पाप होय सो प्रायश्चित्तों से दूर होता हे कामना
 से किये पाप में वचन के बल से व्यवहार योग्य होता है-अर्थात्-जो पाप सिर्फ
 धोखासे होगया हो सो उन प्रायश्चित्तोंसे मिटिजाता हे जो आगे कहे जायेंगे परंतु
 जो इच्छा सहित जानि बूझिके पाप किया जाय वह नहीं मिटता हे (अर्थात् नरक
 चादिका भोग भोगना जन्मांतरमें अवश्य होगा) तथापि इच्छासे पापकरनेवालों
 को यह लाभ हे कि प्रायश्चित्त करनेसे उसी प्रायश्चित्तके वचन रूपीविधानके
 बलसे संसारी व्यवहारों के बतवि योग्य होजाते हैं नकरने से पच और भादयों के
 व्यवहार योग्यभी नहीं रहते ॥ २२६ ॥

२२६ अधिकीर्तिः इम अधिकीर्ति में शास्त्रार्थ के प्रकारसे अर्थवादका स्वरूप
 निर्णय करैगे कि प्रायश्चित्त करने का अधिकार किसकी हे-इसलिये यह
 तर्क हे कि (प्रायश्चित्तों से पाप दूर होता है जो अज्ञानता से हुआ हो यह सूत्र
 श्लोकमें कहा गया) इसके जोडा में यह कहना योग्य था कि (ज्ञानमें कियाजाय
 सो नहीं दूर होताहे) इसके स्थल पर मूल श्लोकमें यह कहा गया कि (कामसे जो
 पाप किया जाय सो नहीं नाश होता है) ऐसा कवन इसलिये हे कि ज्ञान और
 काम दोनों बराबरा समुक्ति जायें अर्थात् परस्पर दोनों में भेद नहीं तैसा यह वचन हे

कि (विहितयदकामानां कामात्तद्विद्विषुतांभवेत्) विनाचाहे पापवालों का जो प्रायश्चित्त कहा गया हो तिससे दूना चाहसे पाप करने मध्ये किया जाय—तथा (अ-
 पूर्ण क्रियायामर्थं प्रायश्चित्तं) विना जाने जो अपराधवाली क्रिया होय तिसमें आध-
 प्रायश्चित्त चाहिये—तथा (स्लेच्छेनाधिगताशूद्रा स्वज्ञानात्तु कथंचन क्लृप्तयंत्रप्रक-
 र्वीत ज्ञानात्तद्विषुतांभवेत्) जहाँ स्लेच्छ से शूद्री पकड़ी गई हो किगीभर अज्ञान से
 तो वह शूद्रिणी तीनवार क्लृप्त व्रत नामका प्रायश्चित्त करे जो शूद्राके जानते हुये
 स्लेच्छ ने पकड़ा होती उससे दूना प्रायश्चित्त छः क्लृप्त व्रत साथे इत्यादि बहुवा
 बयनों से ज्ञान और कामना इन दोनों का बराबर प्रायश्चित्त देखिये परने से दोनोंका
 एकही फल टहिरा क्योंकि विययज्ञान सामले का वाक्फि होना और चाटकाना
 इन दोनों सेही स्तव प्रवृत्ति नियत हुई और होती है (अर्थात् खुद अखितयारी से
 अमल करना शास्त्र में इन्हीं दो बातों से टहिराया गया है कि या तो उत अमर से
 वाक्फि हो या उस अमरसे खुद गर्जीशखे ये दोनों एकसाँ समझे जाकर खुद अखित-
 यार टहिरें कि शास्त्र को आज्ञा नहीं मानी) क्योंकि इन दोनों में किगी एक को
 होने विना स्वतंत्र प्रवृत्ति असंभव और मोहतमिल है तिससे जो कुछ अपराध ज्ञान स-
 द्धित किया वह कामना सेभी किया नमझा जायगा व्याप्तिके होनेसेही परंतु व्याप्ति
 भी ऐसे दशाओंमें नहीं कही जासकती है कि जैसे चोर बटमार आदि की प्रवृत्ता में
 दना हुआ कोई पुरुष उस वियय को यद्यपि जानता है कि शस्त्र फेंकने से मनुष्य
 मारा जायगा जिसका मारना महापाप है परंतु मारने की कामना उसके भीतर से
 नहींयी तो इस दशामें ज्ञानया होना कामना नहीं समझा जायगा क्योंकि व्याप्ति
 उसकी नहीं थी और जोकि यह कहावत न्याय शास्त्र में पसिद्ध है कि सुखमें भी
 रपटपरा भांति से कोच का रपटना टहिरै तहोभी अर्थार्थ ज्ञानके नहोने से उसविय
 य की कामना का भी न होना सिद्ध हुआ इस तरहसे अज्ञान और कामना का भी
 परस्पर योग सिद्ध होता है ॥ पुनर्विचर्कः—क्योंकी यह कहना ठीकनहीं है कि प्राय-
 श्चित्तों से पाप दूरहोताहै क्योंकि पापदूरहोनेसे कर्मोंका फल भी नाश हो जायगा
 तब कर्मभंडे टहिरेंगे—ऐसा नहीं सुनो जैसेपापोंकी उत्पत्ति शास्त्रके वचनोसे पनाया
 होती है तैसे उतका विनाश भी शास्त्र के वचनोंसे पनाया है इसमें किगी दूहरे
 प्रचारका दुंदना जखरतनहीं है इतोलिये सौतनने यही अर्थ उलटफेरके कथन द्वारा
 दगायाहै—अथा) त्वप्रायश्चित्तज्ञानात्तु कथंचन क्लृप्तयंत्रप्रकर्वा (अर्थात्—तहाँ जानकर
 पाप करने से प्रायश्चित्त करे या नकरे यह सौतनने कहा क्योंकि इसमें विचार से

निर्वायकियाजाताहै कि (नकृष्टप्रतिद्वयेकेनद्विकर्मसोयते) विरलेमुनि कहतेहैं न करे
 क्योंकि पापकर्मका नाशही न हुआ तो करनाफजूलहै और (कृत्यादित्यपरे) कौं यह
 अनेक मुनि कहते हैं—क्योंकि (पुनः स्तोमेनेष्वापनः सवनमायांतीतिविज्ञायते) फि
 भी प्रायश्चित्त के बाद स्तोम नामक यज्ञ सावन करने से उक्त पापी लोग—फिर भी
 सवन को आइ पहुँचतेहैं अर्थात् द्विजाती के धर्म में निजाये जासकते हैं कि जिससे
 ज्योतिष्टोम आदि कर्म करनेके अधिकारी होजातेहैं ऐसा विचार यह सोमांसा से
 जाना गया है—इसका प्रमारा और भी अग्रोक्त वचन है कि (ब्राह्म्यःस्तोमेनेष्ट्यात्रह्य
 चर्ष्यचरेदुपनयनत इति सर्वपाप्मानंतरति भूयादृष्ट्यांशोऽश्मभेनयजतइति) ब्राह्म्य जो
 पंचायती कर्म धर्मों से गिरायाहो वह स्तोमयज्ञ करके यज्ञोपवीत करावे तिससे
 अनन्तर फिर ब्रह्मचर्यका आचरणा क्रियाकरै तो इस प्रकार से सब पापोंकी तरि
 जाता है जैसे अश्वमेध करने वाला भूयादृष्ट्या को पार उतरता है—यह वर्तान केवल
 अर्थवाद मात्र नहीं है किंतु विरले किसी योग्य अधिकारी का विशेषरा ठंडने के
 निमित्तमें राधिसत्र नामक न्याय की रीतिसे अर्थवादके फलहीकी कल्पनाहै इससे
 योगीश्वरके मूल प्रतीकमें यह पद ठीकहै कि प्रायश्चित्तोंसे पाप नाशहोताहै ॥ अत्र
 वितर्कः—क्योंकी कामनासेकियेपापमें प्रायश्चित्तके अभावसेकेसेव्यवहारयोग्यहोगा
 औरप्रायश्चित्तका अभाव अगिले वचनोंसे प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै—यथा (अनभिसंवि
 कृतेऽपराधेप्रायश्चित्तं इतिवशिष्यः) तथा (इयंविशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतोद्विजं
 कामतोत्राह्यरावर्धेनिष्कृतिर्नविधीयते इतिमनुः) अर्थात्—वशिष्य ने यह कहाहै कि
 प्रायश्चित्त उस अपराध में चाहिये जो बधिके प्रतिज्ञा से न किया हो—तैसाहो मनु
 ने यह कहा कि यह विशुद्धि उसको कही गई जो ब्राह्मण को इच्छा बिना सारिके
 पापी हुआहो किन्तु इच्छासे ब्राह्मण का बचकरनेमें निष्कृति नहींहोती है ॥ नमा
 खान—मुने जैसा तुमने समझा सो नहीं है क्योंकि अगिले वचनों की समझी—
 यथा (यःकामतोमहापापं नःकृत्यान्कथंचन नतस्यनिष्कृतिहं याभुवगिरितपतनाइते)
 तथा (विहितंयदकामानां कामात्तद्विद्वेषामभवेत्) अर्थात्—जो आत्मो किसीप्रकार
 भी कामना से महापाप करे तिसकी निष्कृति नहीं देखी गई है निपाय देवातों के
 कि यातो बहुत ऊंचे पर्वत से गिरै या अग्नि के अगमों कूदि परे तो यह एक सार
 नांतिक प्रायश्चित्त देखागया है—तथैव दूधरा यह वचन है कि जो बिना चाहे पाप
 करके वालों को प्रायश्चित्त कहा हो यदा चादना से करने वाले को दूना होय तो
 यह कामना से पाप करने वालेको भी प्रायश्चित्त करना पाया गया अर्थात् यदी

नियम नहीं है कि निपट प्रायश्चित्त करे नहीं। और ऊपर जो वशिष्ठ का वचन तुमने सुनाया तिसमें भी बिना इच्छा पाप करनेवाले को प्रायश्चित्त कहा गया परंतु यह नियम उसमें नहीं है कि इच्छा से करने वाले को प्रायश्चित्त नहीं और जो मनु का वचन तुमने सुनाया उसमें निष्कृति से उसका मोक्ष नहीं होता यह तात्पर्य है कुछ निपट प्रायश्चित्त करने का नियम नहीं है क्योंकि प्रथम तो उसी वचन के अंत में सरणांतिक प्रायश्चित्त करना कहाया फिर वैसे और भी अनेक वचनों में तात्पर्य पाये जाते हैं ॥

पुनरपिचित्तकः—क्यों जी जब कामना से पाप करने वाले को भी प्रायश्चित्त करना ठहरा तो फिर उसका पाप भी क्यों नहीं नाश होता है और जो पापही नाश नहीं होता तो फिर पंचों में संसारी व्यवहार उसका कैसे सिद्ध होता है ॥ समाधान—सुनो यद्यपि प्रायश्चित्त दोनों दशा पर आरुढ़ है तथापि प्रायश्चित्त के फलमें भेद है सो शास्त्र के द्वारा समझा जाता है जैसा कि अज्ञानता से किये पाप में सर्वत्रही पापका क्षय होता है पाप चाहे छोटे या बड़े हों—परंतु जहां गौतमके बताये महापातक आदि पापों में जिस पापी का संसारी व्यवहार भी भैयापन और पंचायत से छुट्टिजाना कहा है सो श्लासकर इतने हैं—यथाह गौतमः—ब्रह्महा सुरापो गुरु तल्पयो सातृपितृयोनिबंधांगाः स्तेननास्तिकनिन्दितकर्माभ्यासीपतितत्यागपतितत्यागिनः पतितः पातकसंयोजकाप्रच=अर्थात्—ब्रह्महत्यारा • सुरापाने वाला • गुरुओं कीछी गामी • माता या पिता की यौनि में विवाह संबंध करने वाला • चौर • नास्तिक • किसी निन्दित कर्म को बारंबार करने वाला • पतित को नहीं छोड़ने वाला • अपतित को त्याग देनेवाला • आपहीपतित हो • पातक संयोजक जोपापकर्मकी महायतादें वेभी • ये सभी पतितहोतेहैं अर्थात् इनसे भैयापन और पंचायती व्यवहार छुट्टिजातेहैं—अब ऊपर की वार्तापर ध्यान करो कि इतने जो पतनीय कर्मकहे इनमें भी दो भेद होते हैं कि सक तो बिना इच्छा इन्हीं कर्मों को किया हो दूसरा इच्छा सहित जावि दूष्कित के करै तिस ज्ञान दूष्कित के करने वाले को प्रायश्चित्त करनेसे छुटा हुआ संसार व्यवहारवाच मिलजाता है परंतु पापोंका नाश नहीं होता यह भेद है परंतु यह तात्पर्य नहीं है कि पापोंका क्षयनहींहोता तो व्यवहार भी अक्षयत होजाय क्योंकि पापके दो शक्ति होती हैं एकती जरक भोग उत्पन्नकरने वाली दूसरी संसारी व्यवहार विशेष करके वाली • तिन में पहिली का विनाशन होनेपरभी दूसरीका विनाश होना अज्ञात नहीं है तिसने पापका विनाश नहीने पर भी संसारी व्यवहार जारीही

जाना अयुक्त नहीं है यदि प्रायश्चित्त होनाय—और जो अग्रोक्त मनुका वचन है कि (अक्रामतःकृतपापे प्रायश्चित्तविदुर्मुधाः कामकारकतेष्याहुरेकेषुतिनिदर्शनात्) विना चाहे पाप होजाने में पण्डितों ने प्रायश्चित्त कहा और कामना से किये हुये पाप में भी बिरले लोग युति की आज्ञा से बताने हैं—तो इस वचन का भी यही तात्पर्य है कि इच्छा सहित किये पाप में भी प्रायश्चित्त पहुँचता है परंतु यह तात्पर्य नहीं है कि पाप भी नाश होसकेगा—फिर भी अपनी ऊपरकी पहिलीबार्तापर ध्यान करों कि—गौतम के गिनाये पतनीय कर्मों के दो भेद जो कहिचुके तिनको छोड़ि के उनसे उपरालू जोजो अपतनीय पापकर्म होते हों कि जिनसे संसारी व्यवहार नहीं रुकता हो तिनको यदि इच्छा से भी कियाहो तोभी प्रायश्चित्त करने से पाप नाश होजाता है इसका पुसारा आगे मनुका यह वचन है कि (अक्रामतःकृतपापे वाभ्यासेनशुध्यति कामतस्तुकृतंमोहात्प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः) अपतनीय कर्मों में जो विना चाहे पाप किया हो सो वेदका अभ्यास पाठकरने से शुधि जाताहै कदाचिद मोह के अंधेरे से इच्छा सहित किया हो सोभी उन पापों के जुदे लिखे प्रायश्चित्तों से विनाश होता है—फिर भी अपने ऊपरले मुख्य प्रयोजन पर ध्यान करों कि—पतनीय कर्मों के दो भेद जो गौतम के वचन से कहिचुके उनका बहुत बड़ा भेद जो इच्छा सहित किये पापोंका ठहर चुका—तिसमें भी बिरले प्रायश्चित्त से पापों का सय होता है कि जो जो अरसांतिक प्रायश्चित्त किये जाय क्योंकि देह त्याग होजाने से संसारी व्यवहार आदि कोइहा दूसरा फल मिलना शय नहींहै तिससे पाप का नाश ही फल उत्पन्न होता है—तदाह आपस्तंब.—नान्यस्मिन्लोकैःप्रत्यापत्तिर्विद्यते कल्मषतुनिर्हरणते=अथदि—देहत्यागकपी प्रायश्चित्त से फिर लोकमें कोइभी प्राप्ति उसके लिये नहीं विद्यमान रहती है तिससे पाप भी मारा जाताहै ॥ २०६ ॥ महापातकआदि पापोंके भेद आगे बरान होये सोमव अगिले परिच्छेदमें देखें ॥

अथयंचमहापातकिनांपातकभेदेनस्वरूपलक्षणादि
निर्णयकारकोऽयंपरिच्छेदःचतुर्विंशः २४ ॥

—*—

इस परिच्छेद में पाँचो महा पातकियों के जुदेनाम और लक्षणा भेद उनके क्रिये पातकोंके अनुरूप निर्णय होंगे ॥

(महापातकिनः)

ब्रह्महामयप.स्तेनस्तथैवगुरुतल्पगः । एतेमहापातकिनोयदचतैःसहसंवसेत् २२७

अर्थः—ब्रह्महा.मद्यप.स्तेन.तथैव.गुरुतल्पग.और जो कोई तिनके साथवसे इतने महापातकी होतेहैं=अर्थात्—यद्यपि इनके अर्थ बहुत बड़ेहैं तौभी समष्टि व्यष्टि रूप से जुदेनाम धरनेका यह तात्पर्यहै कि छोटासा एकनाम कहने से अनेक अर्थसमझे जायें—तहाँ—ब्राह्मणा का हता मारने वाला ब्रह्महा वह कहाता जिसने शस्त्र आदि किसी प्रकारसे ब्राह्मणा के प्राण हरेंहैं चाहेप्राण हरनेयोग्य उपाय करतेके साथही प्राण गयेहों या उस कालके बाद किसी काल में उभी उपाय के प्रभावसेही प्राण छुदेहों—मद्यप उसे समझना जिसने नियिद्धमदिगपीहो—स्तेन चोरकानामहै पर्यहों उस चोरकी समझना जो ब्राह्मणा का सोना हरें—गुरुतल्पग उसे कहतेहैं जो गुरुओं की तल्पशय्यापर सयाहो अहांशय्यासेज कहनेसे भाठर्याके पासगया यहतात्पर्यहै—इतन चारिमनुष्य महापातकी कहेजातेहैं और वहभी महापातकीहैं किजो इनचारिमें किसीके भी साथवसे—सूतप्रलोकमें तथैव यहतथा औगव शब्दजोआया हो इसलिये है कि तैसेही प्रकार वाले और भी जे कोई पुरुष होत हों तिनको भी महापातकी समुभि लोगो को अधिकोक्ति मे देखी २२७ ॥

२२७अधिकोक्ति—(ब्राह्मणासुवर्णापहरणं महापातकमित्यापस्तम्बः) अर्थात्—आपस्तम्बने कहा है कि ब्राह्मणा का सोना किसी प्रकारसे हरनेना महा पातकों में गिनती है—यहां यद्यपि केवल सोना कहा परंतु यह रोक नकदी साथका उपलक्षणा समझना क्योंकि ब्राह्मणा की चाँदी चुराना कहींजुदा नहीं कहा तिससे यहदृष्टया आता है कि रूपये चाहे सहस्रतक हरें तौभी महापातक न होगा पर सोना केवल वीस रूपये का हरने से महापातक है और भी इसी तर्कनासे सिंघाप्रं का हरना भी

सहापातक समझ लेना—कदाचित्त कहे कि आपस्तंब के वचन में नहीं है इसका उत्तर-योगीश्वर के वचन में सोना भी नहीं है० किंतु सुवर्ण शब्द नक्षत्रीका भी वाचक है ॥ ब्रह्मइत्या आदि पापोंकी पातक इस हेतु से कहाकि (पातयति इतिपातकाः) मनुष्य को लोक धर्मसे गिराय देतेहैं इसलिये पातक इनका नामह औरसहा शब्द जोड़ने से उनकी बढ़ाई जाहर होती है कि. महापातक बहुत बड़े होते हैं तिनका उत्पन्नकर्ता महा पातकी कहता है और उसको सहायता देने आदि कारणां से या बिना कारणके भी जोकोई उसके साथवसे सोभी महापातकी होताहै यह न्याय भी उस भांति से समझना जैसा २६१ दो सो इकसठि मूल प्रलोक में (सभित्तु संवसे द्योवैवत्सरसोपितत्समः) यही अद्वा-आवैगा कि इनके साथ जो कोई एक सालभर निवासमात्र करे सो भी इनके समान दोषीहोजाताहै ॥ २० ॥ मूलप्रलोक में तथा शब्द जो आयाथा सो और प्रकारसे भी पापके कर्ता लोग अनुग्राहक प्रयोजक आदि होते हैं तिनका भी संग्रह-मानलेने के लिये आया था तिनके लक्षणा यहाँ समझाते हैं कि—अनुग्राहक उसका नामहै जोधनप्राणोंके भयसे भगेहुयेको याबिनाभगेहीकिसी को घेरके मारनेवाले के तर्फ पहुँचावे जिससे मारनेवाला उसको मारिसके अथवा ऐसाकरे कि मारनेवाले को बचावे या उसको अपनी रक्षामेराखे कि जिससे मारि सकनेकी दृढ़ता उसकी होजाय तीं भी अनुग्राहकने सहायताकरी कहाती है० इसी लिये मनुके फौजदारी के व्यवहार में उनको भी मारनेका फलभागी होनाकहाहै जो मारनेवालेके साथ एकहने घेरनेवाले आदि ग्राहक हों (ग्राहक अर्थात् अनुग्राहक) यथा=बहुनामेककार्यग्रांसर्वेयांशस्त्रधारिताय यद्य कीवातयेत्तवसर्वेतेघातकाःस्मृताः अर्थात्—बहुत मनुष्य-सकही साथ कार्य करनेवाले शस्त्र बाँधेहों तिनमें यद्यपि कोई एकही शस्त्र चलाकर घातकरे तड़ा सब साथवाले भी घातक ठहरे० इति अनुग्राहकलक्षणां—इसीप्रकार—प्रयोजक आदि सहायकोंको फलभागीहोता आपस्तंब ने दर्शायाहै=यथा= प्रयोजयिताऽनुमंताकर्ताचेतिस्वर्गनरकफलयुक्तसंसुभागिनो यो भयआरभतेतस्मिन्फलविशेषः=अर्थात्— प्रयोजक और अनुमंता और स्वयंकर्ता भी ये तीनोंही जैसा कर्महो तैसे फलके भागीहोतेहैं कि स्वर्गफल मिलनेवाला कर्म हो तिसमें स्वर्गभागी या नरक फलानिलनेवाला कर्महो तिसमें नरकभागी और जो कोई सुखियात्रनिके कर्मका आरम्भ करता या करता है तिसकी सुख्यताए विशेषफल होता है—इस वचन में जो नाम कहे तिनके भी लक्षणा समझाते हैं कि—प्रयोजिता या प्रयोजकनाम उसकाहै जो अपने प्रयत्न से किसी को ऐसे किसी कार्यमें प्रवृत्त

करें जो नहीं उसमें प्रवृत्त होसक्ता था—सो यह प्रयोजक पुरुष तीनभौति के होते हैं १ आज्ञापयिता २ अभ्यर्थयमान ३ उपदेष्टा—इनमें आज्ञापयिता आज्ञादेने वाला कहाता है जो आप ब्रह्मा आदिमी ही अपने से नीचे नौकर आदि किसी को आज्ञादेवे कि तू जाकर मेरे अमुकशत्रुको मारडालना तो यहहुकुमरूपी प्रयोग उसने किया तिससे प्रयोजक आज्ञापयित्त उसका नामठहिरा १—दूसराअभ्यर्थयमान उसका नाम है जो आप असमर्थ हो तिससे किसी समर्थ से प्रार्थना बिनती करे कि आप अपनी शक्तिसे मेरे अमुक शत्रुको मारडालें तो मैं भी तुम्हारा अमुक रीतिसे प्रतिकार कछंरा सो यह प्रार्थनारूपी प्रयोग उसका ठहिरा जिसने बिनती आदिसे बलसे उसे कार्य में लगाया तिससे अभ्यर्थयमान प्रयोजक उसका नाम ठहिरा २ (ये दोनों सिर्फ अपने मततबके लिये प्रयोजक होतेहैं) तीसरा उपदेष्टा उपदेश करने वाला होताहै वह अपने मततब के बिनाही उपदेश देताहै कि तू अपने शत्रु अमुक मनुष्य को इस तीरसे मारना तौ शीघ्र तेरे कान्ठ में सुगमता से आसकेगा इत्यादि मर्म भेद बतलाने वाला निज उपदेशके द्वारा उसको कार्यमें प्रवृत्त करता है तिससे यह उपदेष्टा प्रयोजक नाम कहाता है ३—आप स्तंबके ऊर्ध्वोक्त वचनमें अनुमंता जो सहायक दर्शाया तिसका यह लक्षणा है कि वह किसी को कार्य में लगे हुये कीही अधिक प्रवृत्त करता है सो भी दो प्रकार का होताहै कोई अपने मततब के लिये कोई पराये मततब को अनुमनन करिके उसका उत्साह बढ़ाता है—इसमें तत्त्व निर्णय करने के निमित्तसे शंकारूपी तर्कना खड़ी करतेहैं कि—अनुमनन करने वाले को हिंसा का हेतु कैसे पहुँचि सक्ता है क्योंकि न उसने कोई सामग्री प्राण विनाश करने वाली मारने वालेकी समर्पण करी न पूर्वोक्त प्रयोजक पुरुषोंकी तरह साक्षात् कर्ता की प्रवृत्ति उत्पन्न करिके सहायता करी किंतु केवल (प्रवृत्तका प्रवर्तक होना) यह लक्षणा इसका कहागया तिसका तात्पर्य भी यही प्रतीत होताहै कि जब कोई किसीको मारताहो या मारने का पूरा उपाय सिद्ध करताहो तिसको देखि सुनिकेसेसा कहि देना कि तुमने अच्छा विचार किया तौ इस प्रकार का अनुमनन कर देनेसे हिंसाके कर्म तक हेतु इसका नहीं पहुँचता है क्योंकि इतना (अनुमनन) उम बात का परसंद करना न होनेसे भी कर्ता अपनी क्रिया पूरी कारसक्ता या तिससे ऐसा अनुमनन भी व्यर्थही ठहिरा चाहें स्वार्थ या परार्थ दो में कोई एक हो—इसका—समाधान सुनो० जहाँ कोई राजा या चौवरी आदि किसी प्रजाव या स्वाभी के पराधीन रहिते आप अपने सनसे किसी काम के करने में प्रवृत्त हो

तौ भी उस प्रवृत्ति के भंग होजाने के भयसे यद्वा दण्ड अपारनेके भयसे अपने कर्त्त-
 त्वमें शिथिल ढीला होके राजा आदि स्वामी से या उस प्रकार के औरही किसी
 समर्थ से हिंमति बंधने की अनुमति चाहता हो तहां (यह काम तुमने अच्छा
 शौचा बेखरकेकौ) इतनी हिंमति के बंधने से उसका ढीलापन जाता रहिता
 है कि जिस ढीलापन से उस कामके करनेतक हाथ उसका नहीं पहुँचता इसी
 हेतुसे हिंसा कर्म का फल भी हिंमति बंधाने वाले अनुमता को पहुँचता है ॥ ० ॥
 इनके सिवाय एक और भी निमित्तो नाम आरथो होताहै अर्थात् यद्यपि साक्षात्कार
 अपने देहसे हत्या नहीं करता है पर हत्या होनेका निमित्त हेतु वही उत्पन्न करता है
 इसदंगसे कि ब्राह्मणाका अपमान बड़ी क्रूरतासे करना या घुड़कोदेनी ताड़नाकरनी
 या धन छीनिलेना आदि प्रकारों से इतना क्रोध पैदा करावै कि वह जिस के ऊपर
 अपघात करिके आपही भरजाय तौ यह क्रोधका दिलानेवाला निमित्त कर्त्तानामक
 ब्रह्मघाती ठहरेता है और उसी क्रोधके दितानेद्वारा हिंसाका फलभागो भी होता है
 क्योंकि उसके सरजाने का हेतुरूप निमित्त इसीने उत्पन्न किया=यथाह विष्णुः=
 आकृत्यस्तादितोवापिधनैर्वापिप्रयोजितः यमुच्चिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकश्च=
 तथा=जातिमिवकंजघार्थसुहृत्क्षेत्रार्थमेवच यमुच्चिश्यत्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकश्च
 =अर्थात्=जब कोइगालीगलीज या खींचाखींचो कियाहुआ या पीटाहुआ या धनों
 से विमुख कियाहुआ जिसके नाम निशानपर अपने प्राण त्यागिदेवै तिसको ब्रह्म-
 घातक कहितेहैं=तैसेही=क्रुद्धजाति कलंक लगने आदि प्रयोजनोंसे या प्रिय मित्रके
 वाचत या छियोंके निमित्त से या थ्यारे खेत आदि स्यानों के निमित्त से भगवद्वा
 उदनेमे जिसके ऊपर नामलेकर अपनेप्राणखोदेवै तिसको ब्रह्मघातक कहितेहैं=इस
 वार्त्ता में=यह विचार करना आवश्यकहै कि जब किसीका अपमान गाली आदिसे
 कियाजाय या धनसे दुर्भागो कियाजाय तब उसके प्रत्यक्षमे क्रोध न देखपरनेसे भी
 यहनहीं कहाजासक्ता है कि क्रोधवाला कारणा कोई नहीं था वह ट्याही मरगया
 क्योंकि मनुष्योंके स्वभाव नाना भाँतिसे विचित्र होतेहैं किरले पुरुष अतिशय योडे
 कारणासे भी बहुत बडा क्रोध उत्पन्न करिलानेहैं तिनमें क्रुद्ध दोषरूपी हेतुनहीं कहा
 जासक्ताहै इसी प्रकार बहुतेरे बहुत बड़े अपमान आदि कारणा में भी अपना भीतते
 क्रोध नहीं जाहर करतेहैं तिसते क्रोध प्रत्यक्षमें न देखि परनेसे भी मरजानेमें क्रोधका
 हेतु पक्का होताहै=आवश्यक न्यायः इस अविक्तीकृत मे अनु ग्राहक प्रयोजक आदि
 जो जो सहायक वर्तान कियेगये तिनकी मुख्य पापीसे या उस पाप कर्म से समी-

प्रता की दशा ढँकी छिपी होने या खुल्लम होनेके अनुसार और पराये में पहुँची हुई सहायता की छोटारड़े बड़ाईके भी अनुसार उसके फलकी छोटारड़े बड़ाईसे प्रायश्चित्तमें भी छोटारड़े बड़ाई आदिभेद कल्पित करने चाहिये क्योंकि आपस्तंब के वचनमें ऐसा (सोभ्यन्नाभतेतस्मिन् फलविशेषः) कहिचुके हैं कि जो मुखिया वनिके काम का आरम्भकरे तिसमें विशेष फल होताहै—इसके दोसक उदाहरण भी समझतेहैं कि—अनुग्रहक यद्यपि हंताकी प्रार्थनाविना आपही खुद अस्तित्यारीसे हिंसा के कार्य में सहायक बनाहो तो भी उस के हाथ से साक्षात् प्रणाविनाशवाला व्यापार दाल तलवार की चोटलगाना आदि कुछ न हुआहो तिसते और इसतेभी कि साक्षात्कर्ता की तरह मुख्यतासे हिंसाका कार्य उसने आपनहीं आरम्भ कियाहो तो कर्ताकी अपेक्षा उसको दण्डरूपीफल थोड़ा तथा प्रायश्चित्त भी थोड़ा पहुँचताहै यहन्याय निर्मित कियागया—एवं—प्रयोजक यद्यपि मारसकने मध्ये कर्ता की स्वतंत्र प्रवृत्ति को उत्पन्न करता है (अर्थात् मारनेवाले को यही उताख करवाता है यह बहपन इसमें प्रत्यक्ष देखिएपरता है) तौभी यह करना उसका ढँका छिपा प्रायश दूरिही से होता है तिसते अनुग्रहक से भी थोड़ा फल इसको पहुँच सकताहै अर्थात् दण्ड और प्रायश्चित्त इसको उसते भी कम होना चाहिये यही न्याय ठहिरा—एवं—इन्हीं प्रयोजक तीन भाँति में से एक परास अर्थ उताख होने वाला जो उपदेया कहा गया था तिसको अन्य प्रयोजकों से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचता है क्योंकि वह खास कर अपने मतलबको नहीं प्रवृत्त हुआ (इनके सिक्का २७३ की अधिकोक्ति में पैठीनासि मुनिके वचन से कुछ और भी इसी प्रकार के सहायक प्रोत्साहक आदि नामोंसे आवेंगे और सब तरह के सहायकों के साथी सहायक जतास जायेंगे तिनका भी दण्ड या प्रायश्चित्त इनकी अपेक्षा न्यूनधिक शोचना होगा भी यहाँ वहाँ दोनों स्थान का पाठ मिलाकर शोचि लेना) अबच ऊहापोह वितर्कः—भला जो प्रयोजक पुरुष के एक हाथके समान प्रयोज्य वह पुरुष है जिसको प्रयोजक ने अपनी प्रेरणा से किसी कामपर उताख किया (जैसा मनकी प्रेरणासे हाथोंकी किसी काम पर उताख करते हैं) तो उउ उताख किये हुये प्रयोज्य पुरुष को फल मिलना ठीक नहीं है क्योंकि जब विज्ञान लगानेसे लगे हुये को फल का संबंध ठहिरा तो फिर इसी न्यायसे तलाब आदि बड़ी इमारतों के कार्य में तेनाय कियेहुये दोगा मिस्त्री बेल्लार आदि जो मजूरीसे प्रवृत्त होते हैं तिनकोभी उसकार्यके स्वर्गादिफल जो कुछ होतेहैं तिनमें फल पानेका प्रसंग जाना जाताहै (सो यह प्रसंग श्राद्धों की मर्यादा

मे आपत्तिरूपी दोष माना जाता है) अत्र संदेह का निवारण कहिते हैं सुनो-शास्त्रोक्त फल कार्यमे लगाने वाले प्रयोक्ता को होय इस न्यायसे अधिकर्ता स्वामीको पहुँचने योग्य फल उत्पन्न करने के हेतुसे कृप तद्वाग देव मंदिरका बनाना आदि होता है पर रोगा या मिस्तरी आदि कारीगर इन कामोके बनाने आदिमें स्वर्गफल प्राप्त होने आदिके मालिक नहीं होते क्योंकि स्वर्ग आदि फल पानेकी कामना से काम नहीं किया मजरी मिलने की कामना से करतेहैं वही फल मिलताहै-और इसमेंभो यही दूसरा भेदहै कि रोगा और कारीगर आदि भो बिराने प्रयुक्त किन्हेहुये अहिता के अधिकारी होतेहैं कि किसी प्राणीको हिंसा नहोये पावे इस ढंगसे कामकरना तहां जो उन लोगोसे व्यतिक्रम होजाय किंतु किसी मनुष्यके प्राण खोसजायें तो उस व्यतिक्रम करने के दोषमे फलभागीभी होतेहैं यह न्यायभी समाजभया-एवं-अनुमंता पुरुषको प्रयोजको से भी थोड़ा फल प्रायश्चित्त पहुँचना उचित है क्योंकि प्रयोजक वाले व्यापारसे वह बाहर गिनाजाता है तिसते और इससे भी कि उसका अनुमन रूपी कर्म जो है सो उन सबके कामोसे छोटाहै-एव-निमित्तकर्ता जो विष्णु के वचनमें उपराल ब्रह्मघातक ठहिराएथे कि यद्यपि हृदियार से नहीं मारा परंतु कुवचन सुनाना आदि कोई उपद्रव रूपी निमित्त पैदा कियाहो जिसे आपही अपने प्राण उसको त्याग देने परे-इसे निमित्तकर्ता भी अपराधी अनेक होते हैं-इसे निमित्त कर्ताओंको अनुमंतासेभी छोटा फल प्रायश्चित्त पहुँचनाहै-क्योंकि यद्यपि मरनेपर उतारू होने योग्य क्रोधरूपी कारणा उसीने उत्पन्न किया परंतु निपट मार डारने के विचार से नहीं उद्यत हुआ था तिसते यह ठेका छिपा घातक ठहिरा यही न्याय निश्चित कियागया इसमें कुछ संदेह शयनहीहै-तथापि-बारी अपनी वाचालतासे वितर्क वाद खडा करता है कि भला जब ठेके हुये कोभी हत्या होने का कारणा पहुँचगया तो फिर उसके माता पिताकोभी हत्याग प्रसूय पैदा करनेके सम्बन्धद्वारा हत्या करकेका प्रसंग दोष कहिना चाहिये कि वेभा एक ठेकेहुये हत्यारे और वेभी प्रायश्चित्त करें क्योंकि हत्या करनेवा ता पुरुष पैदा करचुकेथे-उत्तर-सुनो पहिले होचुकरने नामसे नहीं कारणा पहुँचताहै किंतु कारणाको ठाक कारणाता स युक्ति भी देखी जातीहै अर्थात् कारणाभी वही माना जासक्ताहै जहां उसका कार्य का गुण भी उनीके अनुकूल देखिपर (इनपर एक मीमांसका दृष्टांतहै जो रथतर नामय वेदमंत्रसे सोमयाग रूपी न्याय कहाजाता है तहां जैसे वह सोमयाग अपने स्वरूपईसे नहीं कारणा होताहै तैसे हेतुदोष रूपी अर्थभिचारसे) माता पिता में उस

कारणा कारणाका लक्षणा नहीं पहुँचताहे इसते इसमें प्रसंग दीय न कहिना चाहिये—इसी न्यायसे वह नियमहे कि जहाँ धर्मकी इच्छा से वनवास कूप वावडी आदि में प्रसाद गफलतसे गिरिके जो ब्राह्मणा आदि कोई मरजाय तहाँ खोदवानेवालेका दीयनहीं क्योंकि उसने किसी डूबना चाहि के नहीं खोदवाया था (पर यह नियम उसमें नहीं कि जहाँ ऐसा प्रसिद्ध करिके डूबै कि उसने यहाँ कूप वनवाया इसीहेतु से में प्राणा दिये देताहूँ इसते कहीं कुआ खोदाने वाले को भी कारणा की कारणाता पहुँचती हे) तौभी इसकारणात्वसे हिंसाका हेतु उसको नहीं पहुँचता हे उस प्रकारसे कि जैसे माता पिता यद्यपि घाती पुरुषके उत्पन्न करनेवाले कारण होतेहैं तथापि उन्होने इस अपेक्षासे नहीं पैदा किया कि यह अमुक पुरुषके प्राणघात करे—और भी बिरहो दशा ऐसीहैं कि उनमें प्राणहिंसा का योग होतेहुये भी परोपकारके लिये उताहूँ होनेमें वचनके प्रभावसे ही दीय नहीं है=यथाह संवर्तः=बंधनेगोश्रिचक्रित्तार्थे गूढगर्भविसोचने यत्नेकृतेविपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तंनविद्यते • ओयधंस्नेहमाहारंददद्गो ब्राह्मणादियु दीयमानेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते • दाहच्छेदसिराभेदप्रयत्नैरुप क्वर्ततास प्राणसंचारासिद्धयर्थंप्रायश्चित्तंनविद्यते=अर्थात्—संवर्त मुनिका वचनहे कि—गऊको बाँधते हुये चिकित्साके अर्थसे या अटजा हुआ गर्भ छुटानेमें यत्नसे काम करनेमें भी जो प्राणा जातेरहे तौ प्रायश्चित्त नहीं लगताहे—दवाइँ या घी दूध आदि अच्छा भोजन ब्राह्मणा आदि किसी को देते खिलाते हुये देनेके समय पर भी प्राणा जातेरहे तौ वह देनेवाला पापी नहीं कहाताहे—प्राणा वचानेके लिये पशु या मनुष्य के भी रोगहेतुसे किसी अंगमें तपास लोहेसे बाध देना या फोडा गमडा आदि चीरना काटना या रक्तपातके लिये नस्तर लगाना इत्यादि कामोंको बड़े प्रयत्नोंसे उपकार करते हुये पाण्य चलेजानेसे भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है—सो ये नियम भी उनबंधों के निमित्त हे जो उन रोगोंके लक्षण उत्पत्ति आदि निदानमें निपुणहों=अन्यथा जो सुख अज्ञानी होते ऐसा व्यतिक्रम करे तिनके लिये (भियङ्गमिथ्याचरन्दाप्यः) इत्यादि वचनोंसे मनु आदि ज्योतिश्रोने दीयभी दर्शाया हे ॥ ० ॥ इनके सिवाय जहाँ क्रोध करानेके योग्य गाली गुपतार आदि नकरते हुयेका भी नाम लेकर कोई उन्माद आदि रोग हेतुओंसे अपने प्राणा बिनाशकरे तहाँभाँ उसका दीयनहीं हे जिसका नाम लियामया वन उसीका अपराधहे कि जिसने वृथा प्राणा त्यागेहों=यथावचनं=अ कारणाहयःकश्चित्तद्विजःप्राणान्पस्तिजैव, तस्यैवतवदीयःस्यान्नतुयंपरिकीर्तयेत्=अर्थात्—जो कोई द्विज अपने प्राणांको कारणाके बिना त्यागिदेवै उसमें उसीका दीय

दहिरै पर उसका नहीं कि जिसका उसने वृथा नाम धरा हो-तथैव-जहां ठीकही गाली गुपतार आदि कोई सा कारणा क्रोध उपजानेवाला उत्पन्न किया गया हो जिस के हेतुसे छुी आदि अपने अंगमें घुसेड़कर जवतक मरा न हो उसके क्रोधका उपजाने वाला पुरुष धनदेने आदि किसी प्रकारसे प्रसन्नकरि संतुष्ट करिलेवै कि जिससंतुष्टि के प्रभावसे बहुत मनुष्योंके सामने ऊँची आवाजसे पुकारिके सुनाय देताहै कि अब मेरे मरजानेमें भी खोंटावचन सुनानेवाले अमुक मनुष्यका कुछ दोष नहींरहा मैं स-
 तुष्टहुआ फिर चाहै वह मरजाय या जीतारहै दोनों दशामें उसकी दोष नहीं लगता सो यह दोषका न रहिनाभी वचनके प्रभावसेही जैसा यह आगे विष्णाका वचन है
 =यथाह विष्णाः=उद्दिश्यकृपितोदत्वातोयितःश्रावयेत्पुनः तस्मिन्मृतेनवैयोऽस्तद्वयो
 रुच्छ्रावरोक्तै=अर्थात्-क्रोध कारायाहुआ कोई जिसका नामलेकर अपने प्राणोंको
 विनाश कर संतुष्ट कियाहुआ सर्वोंको सुनाइ देवै कि मैं सन्तुष्टहुआ और वह अप-
 राधीभी अपने अपराधको सुनाइदेवै कि मैंने इसका यह अपमान किया था लेकिन
 अब अमुक प्रकारसे सन्तुष्ट करदिया तौ इनदोनों के ऊँचे स्वरसे सुनाइ देने बाद जो
 मरजाय तौभी इत्याका चिह्न उसमें नहींरहा ॥ २२७ ॥

इसअधिकोक्तिमें महापातकियोंके प्रसंगसे ब्रह्मघातीके साथी लोग अनुयाइक प्रयोजक आदि जो जी कहेगए तिन सबकी वडाई छोटाईके अनुसार प्रायश्चित्तों में न्युनाधिक विशेषता जैसी चाहिये सोदोसौतेतालि स २४३ की अधिकोक्तिमें देखना
 व्योरे वार वरान करैगे ॥ २२७ ॥

॥ जैसा ऊपरले परिच्छेदमें महापातकों का स्वरूप समुन्नाया तैसा निचले परि-
 छेदमें अतिपातक और पातकोंका स्वरूप कहा जायगा अर्थात् महापातक सबसे
 बड़े प्रधानहं अतिपातक उनसे कुछ नीचे केवल उन्नीस बीस के अंतर समान समुक्ते
 जातेह तथा पातक अतिपातकोंसे भी कुछ नीचेहों या बराबर सिर्फ नामहीका भेदहै
 इन सबकी वडाई छोटाईका विशेष भेद आगे दोसौवयालिस २४२ की अधिकोक्ति
 में देखना क्योंकि वहांपर अनेक ऋयियोंके वचन इकट्ठे कियेजायँगे तिनमें चौदह
 तक भेद इन्हीं पापोंके होजायँगे ॥

अथातिपातकपातकयोः स्वरूपादर्शकोऽयं परिच्छेदः

द्वः पंचविंशः २५ ॥

इस परिच्छेद में अतिपातक और पातकों के लक्षणा भेद कहे जायेंगे कि जिनसे अतिपातकी और पातकी का स्वरूप पहिँचाना जाय ॥

(ब्रह्महत्यासमपापानि)

गुरूणामध्यधिभेपोवेदनिन्दागुहृदयः । ब्रह्महत्यासमंज्ञेयमर्थात्स्वचनाज्ञानम् २२८ ॥

अर्थः—गुरुओं का अतिशय अधिसेप-वेदोंका निन्दा-भिवका बचकरना-पढेहुये वेदका मुलाइदेना-ये पाप ब्रह्महत्याके समानजानने—अर्थात्—गुरुओंके सन्मुखउनकी निरादर वाला कोई कठोरवचन बोलना या किसी प्रकारसे अपमान करना या किसी रूम्बके समयपर नहीं बोलने आदि मार्गोंसे तिरस्कार करदेना या उनके मुहपीछे किसीके आगे कोईसी निन्दाकरना आदि सबलक्षणा अधिसेपमें गिनती होते हैं और गेय व्यवस्था अधिकोक्तिमें—वेदकी निन्दा जो नास्तिकताका फललेकार करै—मिथ चाहिँ ब्राह्मणोंके सिवाय किसी वर्गका हो तिसको प्रारणोंसे विनाश देना—वेदका मुलाइदेना आलस्य आदि कारणोंसे या और किसी शास्त्रके विनोद से भी—ये सब कर्मएकहीएकजुद्धे ब्रह्महत्याके समानपातकहोतेहैं अर्थात् उससेकमती नहींहैं ॥ २२८ ॥

२२८ अधिकोक्तिः—गुरूणामाधिक्येनाधिकेपः अनृताभिशासनं (गुरोरनृताभिशासनमितिमहापातकममानीतिगौतमस्मरणात्) एतच्च लोकाविद्वितदोषाभिशासनवियत्रं (दोग्यबुध्वाणपूर्वपरैर्यां समाख्यातास्यात् सत्यवहारेचैतंपरिहरे दित्यापस्तस्वस्मरणात्) अर्थात्—गुरुओं का अधिक अधिसेप जोकहिचुके तिसके लक्षणासे अनृताभिशासन भी समुभिलेना कि शिष्य अपने गुरुओंका कोई असत्यदोष मुखसे न कहे क्योंकि (गौतमने गुरुका अनृताभिशासन भी महापातकोंके समान कहाई) परंतु इस वचनका यह तात्पर्य नहींहै कि गुरुका असत्यदोष न कहै पर सत्यदोष मुखसे कहै किंतु इसका यह तात्पर्य है कि गुरुके पातकमन्वन्वी जिसदोषकी संसारी लोगोंने नहीं जाना तिसको शिष्याद्विषगं अपने मुखसे न प्रकाशकरै जैसा इतपर (आपस्तंब का यह वचनहै कि गुरुका दोष जानिके औरोंके सामने पहिले समुभलाने वाला न बने न आपही पहिले द्रव्यहारों मध्ये इसको त्यागि देवै) तात्पर्य यह ठहिरा कि

जो आपही सबलोग जानि जायँ और संसारी व्यवहारसे गिराने लगेँ तो फिर सबको साथमे शिष्यादिक दोषी न ठहरैरगे अन्यथा जो शिष्यही पहिले प्रकाश करने लगेँ या व्यवहारसे गिराने लगेँ तो वह शिष्य ब्रह्म हत्या करनेका पातक माना जाकर उससे प्रायश्चित्त कराया जाय तथा प्रायश्चित्त करने से पहिले व्यवहारों से भी त्यागि दिया जाय—अब ऊपरकी वार्तापर ध्यानकरे कि शुरुका दोष यद्यपि सच्चाहै परन्तु जब तक सबलोगोंने नहीं जाना तब तक भूँटेकी बराबरहै तो इस दशा में जो शिष्य प्रकाश करै सो भूँटा दोष प्रकाशकिया कहाता है इसी लिये (अनृताभिषं सन) यह नाम धरागया ॥ २२८ ॥

॥ अत्र आगे सुरापान महापापके समान पाप कहेजायँगे इसके मध्ये यहभी याद राखना कि जो जो पाप समानके नामसे दर्शाये जातेहैं उन सबका एक मुख्य नाम अति पातक समझते रहिना जो परिच्छेदके प्रारम्भमे लिख चुके हैं ॥

(सुरापानसम पापानि)

निषिद्धभक्षणजैहृष्यमुक्त्तपंचवचोऽनृतम् । रजस्वलामुखास्वादःसुरापानतमानितु २२९

अर्थ—निषिद्ध चीजों का भक्षण जैसी लहसुन आदि अनेकहैं—जैहृष्यकृदिलता का नाम है जो अनेक तरह से होती है जैसे किसी की प्रशंसा द्वारा निंदा दर्शनी या और के बहाने से औरोंको दुर्वचन सुनाना या और किसी काम के बहानेसे औरही कोई छल उत्पन्न करना या और किसी मनुष्य का नाम और प्रतिष्ठा बनाकर उसके प्यारे किसी चाहने वाले संबंधी को जाकर धोखा देना आदि—उत्कर्ष के स्थलपर असत्यबोलना दृष्टांत जैसा राज घर आदि में बरगी प्रतिष्ठा लाभ आदिके निमित्तपर में चारों वेदवज्जाताहूँ इस भाँति कोइसी असत्य कहिना—रजस्वला नागीका मुह चूसना—ये प्रत्येक पाप जुदे जुदे सुरापानके समान महापातक होते हैं ॥ २२९ ॥

२२९ अधिकोक्ति—निषिद्ध चीजों का खाना महापातक उस दशा में होताहै जो जानि वृभिक्षे खाय कितु बिना जाने खा लेने से पापमात्र या उपपातक में गिाती और प्रायश्चित्त उसका छोटा है—इसीलिये मनु के अप्रोक्त वचन है—यथा=ऊपाकं विड्वराङ्गचलशुनंघ्रासकृक्लृष्य पलांडुंशृङ्गं चैवमत्याजग्ध्यापतेचर=अमत्येतानियंजग्ध्याकृच्छंसांतपनंचरंत यदिचांद्रायरांवापिशोयैयूपचहेदहः=अथवि—ऊपाकाजिमके नाम धरती फूला कटफूला कूहमुत्ता गोबरछत्ता आदि देशभेदसे अनेकहैं—विड्वराङ्ग विष्टा खानेवाला मूअर•लहसुन• वस्तीका मुर्गा• प्याज•गाजर•इनको जानसहित

खाकर मनुष्य पतित होय अर्थात् जाती धर्मसे छूटि जाय इसका प्रायश्चित्त महा-
पातकों में देखो—येही छः चीजें विनाजाने खाकर कृच्छ्रनांतपनकरै यदि वा चांद्र-
यरा व्रतकरै जैसी दशाही उसके अनुसार सोचा जाय इनके सिवाय जो नाम दियत
चीजें छोटी छोटी अनेक हैं तिनको विनाजाने खाकर एकही दिनका व्रतकरै ॥०॥
जैहम्य कौटिल्य जो महा पातकों में सुरापान के समान गिनागया जिसके रूप ल-
क्षणा छोटे बड़े कर्मभेद से अनेक भाँति होते हैं तहाँ मूल श्लोक में जैहम्य शब्द की
साथ कोई विशेषण यद्यपि नहींहै तिससे सामान्य संवतरह की कृत्तिलता सुरापान
के समान समझी जाती है और यहभी समझा जाता है कि छोटे बड़े किसी प्रकार
की प्रतिष्ठावाले साथ कृत्तिलताहो—तथापि ऐसा तात्पर्य नहीं है किंतु उसी जैहम्य
शब्द से बहुत बड़ी कृत्तिलता मानी जाय चाहें छोटेही मनुष्य साथ करी जाय यह
तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि वह कृत्तिलता चाहें छोटीही परन्तुबहुत बड़े के
साथ अर्थात् शुरु के साथ करीगई हो तौभी सुरापान के समान मानी जाकर बड़ा
प्रायश्चित्त भी कराया जाय—प्रयोजन की वार्ता केवल इतनीथी सी लिखीगई अब
आगे इसपर वाद विवाद है कि—सामान्य शब्द से इतनी बड़ी विशेषता कैसे मानी
जासक्ती है • इसका यह उत्तर है कि जब सुरापान के योग्य बड़ा प्रायश्चित्त इसपर
आरुद्धहुआ तौ वह छोटी कृत्तिलता पर नहीं माना जासक्ताहै—क्योंकि—कृत्तिलताएक
निमित्त है प्रायश्चित्त उसका नैमित्तिक धर्महै और न्याय तथा मोर्मांसा में यह भी
एक नियम है कि जैसे निमित्त की बड़ाई छोटाई से नैमित्तिक धर्मकी कल्पनाकरी
जातीहै तैसे नैमित्तिक स्वरूपकी पर्यालोचनासे निमित्तकाभी बड़ापनयाछोटापनका
विशेष ज्ञान होजाता है—इसपरयह दृष्टान्तहै कि—जैसेजिसकिसीके कुलमें दो अग्नि
की सेवा क्रमागत चलीआती हो वह अपने प्रसाद राफल आदिसे बुझाई डारै उस
की फिर स्थापना करनीचाहिये तहाँ वह पुरुष प्रायश्चित्ती भी होता है • इसमें यह
सोचना है कि दोअग्निबुझे तिससे दो निमित्त टाँहरे विना कहे उनके नैमित्तिक भी
दोही समझे जायँजैसे किसीनेदोजगह होम करनेको दो वेदीरचिके आजादीही कि
इवि पहुँचाना तहाँ दो इविसेसाविना कहेभी दो इवि पहुँचाने सिद्ध होतेहैं तैसे दो
अग्नि जोबुझे तिनके फिर उत्पन्नकरनेवाले स्थापना के कर्मभी दोही समझे जातेहैं
ज्याकि नैमित्तिक दो विधि दहरीं तौ फिर दो विधियों की बलवत्ता से निमित्त छप
अग्निभी दोही समझे जातेहैं अर्थात् जैसा यह निमित्त और नैमित्तिक दो।तीकापर-
स्पर धर्म प्रसिद्ध है—तैसे उस कृत्तिलता के नैमित्तिकरूपी बड़े प्रायश्चित्तकी प्रभाव से

ही कृतिज्ञता रूपो निमित्त में बड़ाई कल्पित करना योग्य है ॥ और छोटी मोटी कृ-
तिलता का प्रयोजन आगे उपपातकों में देखना ॥ २२६ ॥

(सुवर्णस्तेयसमपापानि)

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रिभूषेनुहरणतथा । निक्षेपस्यचतुर्विहिसुवर्णस्तेयसंमितम् २३०

अर्थ—घोड़ा•रत्न•मनुष्य•स्त्री•वस्ती•हालकी विआनी दूधवाली गऊ•इनकाहर-
ना तथा धरोहरि का हरना यह सब सुवर्ण की चोरीतुल्य महापातक हैं ॥ २३० ॥

२३० अधिकोक्तिः—इस वचन में रत्नशब्द जो है तिसका अर्थ अनरत्नों से नहीं
मिलना जो हीरा लाल आदि जवाहिरात पत्थर की जाति में प्रसिद्ध और सोने की
अपेक्षा उनका बहुत मोल होता है इसका यह दृष्टांत देते हैं कि और सर्गाओं से
गोमेद सर्गा थोड़े मूल्यकी होती है तिसका भी यदि बहुत उत्तम किस्मकी होतो सोने
से दूना मोल होता है या संगी के मोल बराबर (शूद्रस्थगोमेद सर्गास्तु मूल्यं सुवर्णं
तौ द्वैयुगमासाहुरेके अन्येतथा विद्मः मूल्यमूल्यं) तिससे अनरत्नोंकी चोरी तो मुख्यम-
हापापों में समझना जो २२७ श्लोक वाली अधिकोक्ति से कहि चुके—और यहां
इसी रत्न शब्दकी उस अर्थ में लगाना कि जो वस्तु अपनी जिम्नि जातिमें अति उ-
त्तमहो सोई रत्न कहाती है जैसा (अश्वरत्न) कहिने से घोड़ों में अति उत्तम घोड़ा
समझा जाय—और जो यह अश्व घोड़े का नाम कहा तिसके उपलक्षण में हाथी भी
समझ लेना बल्कि सवारी मात्र जो उत्तम होतीहो तिनकी भी चोरी सुवर्णकी चोरी
तुल्य दहरानी क्योंकि घोड़ा आदि ये भी सब चीजें नगदीके समानहैं—यद्यपि टीका
कार ने ऐसा अर्थ किया है कि घोड़ा आदि ये सभी चीजें यदि ब्राह्मणकी हरीजायें
और धरोहरि जो सुवर्ण से उपरालू हरीजाय तभी सुवर्णकी चोरीतुल्य पातक दहि-
राना परंतु इसमें यह भांति भी होती है कि येही सब चीजें यदि ब्राह्मणने उपरालू
किसीवर्णकी हरी जायें तो किंस पातक मे गिनतीकरें कहीं दूसरा गियस इसका
ठीक ठीक नहीं है तिससे यह व्यवस्था समझ लेनीकि येही चीजें यदि ब्राह्मण की
हरीजायें तबतो चीजोंकी उत्तमता का विवेक न करना चाहिये किंतु घोड़ा या गऊ
आदि उत्तम या अनुत्तम किसीप्रकार कीहो तोभी सुवर्ण की चोरी तुल्य दहराना•
जहां ब्राह्मण से उपरालू किसी येही चीजें हरीजायें तहां चीजोंकी उत्तमतापर वि-
चार करना चाहिये कि जो घोड़ा बहुतउत्तम हो या गऊ दूधदेती हुई हातकी वि-
यानीहो इसीतरह सबचीजें जो अपनीजातिमें रत्नभूत दहरै तो इसदशामें भी सुवर्ण

की चोरी तुल्य पाप समझना अन्यथा जो येही चोरी बहुत कीमती या अति उत्तम न हों और ब्राह्मण से उपरालू किसी की हों तो उनकी चोरीका पापइसमे अगिले परिच्छेद में जाकर देखना जहां उपपातक बरान होंगे ॥ अब दोसौ इकतीसके प्रलो क में गुरुभार्या भोग महापाप के समान पातक दर्शावेंगे ॥ २३० ॥

(गुरुतल्पसमप्रापानि)

सखिभार्याकुमारीपुस्वयोनिस्वत्यजातुच । सगोत्रासुसुतस्त्रीपुगुरुतल्पसमंस्मृतम् २३१ ॥

अर्थः—सखा मित्र होताहै तिसकी पत्नी में•कुमारी कन्याओं में जो उत्तम जाति हों•स्वयोनि अपनी बहिनोंमें•अत्यजात्रांडालियोंमें•सगोत्रा अपने समान गोत्रवालियोंमें•सुत स्त्री पुत्र बधुओंमें•जो कोई संगम करे तो यह गुरुतल्पगमनके समान महा पातक होते कहें ॥ २३१ ॥

२३१ अधिकोक्तिः—कुमारीके प्रसंगसे व्यवहारकांडमें यह वचन आया था (स कामाखनुलोमासुनदीयस्त्वन्यथादमः—दूयरोत्तुकरच्छेद उत्तमायांबधस्तथा) कि जो कन्या कामसे पीडित होके निज इच्छासेही पुरुषको चाहे और अनुलोम जातिहो अर्थात् पुरुषसे नीचेवर्गा कीहो तो इस दर्शानें उस पुरुष का कुछदोष नहीं है परन्तु जहां इससे अन्यथा डीलहोय कि पुरुष नीचा और कन्या उत्तमजाति की या नीची जाति होनेपर भी कन्याने कामपीडा और इच्छा अपनी न उत्पन्न करीहो तहां पुरुष दोषी होकर दण्डपावै=और हाथसे दूयित करनेमें हाथ कटायाजाय जो उत्तमजाती कन्या में ऐसा कियाहो तो उस पुरुषको बधदण्ड दियाजाय—जिस अपराध में दंड बड़ा होताहै उसमें प्रायश्चित्त भी बड़ा कराया जाता है यह तात्पर्य ठहिरा—इन्हीं दो वचनोंके आशयसे विज्ञानेचरणे मूलप्रलोकमें भी उत्तमजाती कन्या ठहिराई ॥०॥ मूलप्रलोकमें जिन स्त्रियोंका स्ङ्गम गुरुतल्पके समान कहा सोभी उसदर्शानें मसभ्मना जहां योनिसमें वीर्यभी सींचाहो•अन्यथा जो वीर्यपात होनेसे पहिले लींदिगायाहो तो वह पाप भी गुरुतल्पकी बराबर नहीं किन्तुथोडाही प्रायश्चित्त कराने योग्य ठहिरै क्योंकि मनुने वीर्यपातकेही लक्षणासे गुरुतल्प के समान पाप ठहिराया है=यथा=रेतःसेकःस्त्रयोनीयुकुमारीप्वत्यजाद्वच सख्युःपुत्रस्यचस्त्रीयुगुरुतल्पसमंविदुः=अर्थात्—वीर्य सींचना अपनी बहिनोंमें•कुमारियों में•चंडालियों में•मित्र की स्त्रियों में•पुत्र की स्त्रियोंमें•गुरुतल्पके समान कहिते हैं ॥ ० ॥ योयोचरणे मूल प्रलोक में सगोत्रा स्त्रियों कहीं पुत्रकी बधुभी सगोत्राहोतीहै उनको फिर दुबारा पुत्रवधुके नामसेकहिना

कुछ आवश्यक नहीं था परंतु नारानामधस्नेसे उसके मध्ये बहुत बड़ा दोष और बहुत बड़ा प्रायश्चित्त दर्शाया है ॥ ० ॥ एकसौ उनतीस पल्लोकसे आदि लेकर ब्रह्म इत्या आदि के समान समझाने वाले जो वचन हैं तिनका यही तात्पर्य है कि गुरुओं का अधि क्षेप आदि जो जो कर्म यहां तक बताये गये तिनमें वही ब्रह्म इत्या आदिका प्रायश्चित्त कराना समझा जाय तहां यह शंका खड़ी होती है कि वेदकी निंदा आदि जो छोटे छोटे दोष हैं तिनमें ब्रह्म इत्या आदि के बहुत बड़े प्रायश्चित्त कराने योग्य नहीं समुक्ति परते हैं—इसका यह समाधान है कि ऐसा उजटा मत समुक्तों किंतु बड़े प्रायश्चित्त का उपदेश होनेसे उपदेश की प्रवलासे ही दोषका बड़ापन पाया जाता है—क्योंकि वह वचन केवल ब्रह्म इत्या आदि प्रायश्चित्त ही के अतिदेश मध्ये नहीं किंतु दोनों की बड़ाई सिद्ध करने केभी निमित्त है—जिससे कि जो केवल वही दर्शाना अभियहोता तो जुदा जुदा ऐसे भेदसे न कहिते कि ब्रह्म इत्या के समान या गुरु तत्त्वके समान या सुवर्गास्त्य के समान या सुरापान के समान अर्थात् सभीको समान्य भाव ऐसा कहिते कि ये सभी महा पातक हैं ॥ ० ॥ और भी यह विशेषता है कि सम शब्दसे उपदेश किये प्रायश्चित्त भी सर्वत्र कुछ कमती करिके आदेश किये जाते हैं बराबर नहीं—इसपर यह दृष्टांत है कि जैसा न्याय और च्याकराके प्रयोगों में यह नियम रक्खा गया है कि (लोकराज समी मंत्री) इत्यादि ऐसे अन्यवाक्यों में भी जिसकी उपमासम कहिके दी जाती है वह प्रधानसे कुछ न्यून होता है जैसे इसीवाक्यमें देखो कि यद्यपि मंत्रीको लोकराजके समान कहा तो भी प्रधान लोकराजके साथ मंत्री कहतक बराबरी कामता है मंत्री औ राजाको बराबरी कदापि नहीं—इसी प्रकार महापातक और उनसे दूसरे दज्जिके पातकोंमें परस्पर तुल्यता होनी अनुचित है तिससे इनमें कुछ न्यून अर्थात् एकपाद कम करिके प्रायश्चित्त देना चाहिये (इसका विशेषध्वारा २५२ की अधिकोक्तिके प्रारंभमें देखना) यह व्यवस्था इस प्रकारसे निश्चित हुई तो फिर इसके विरोधी वचन शोचने चाहिये कि—याज्ञवल्क्य ने जिनपापोंको ब्रह्म इत्याके समान कहा तिनको मनुने सुरापानके समान कहा = यथाह मनुः—ब्रह्मो ज्ञाता वेद निंदाकी तस्मात्स्यसुहृदवः गर्हिताऽनाद्ययोजगिः सुरापानमना नियतः—अर्थात् पद वेदका छोड़ि देना • वेदकी निंदाकला • जालसाजी से गवाही देना • सिक्की घब कला • निंदित चीजें खाना • अनादि चीजें कि जिनकी पैदाइशका हाल नहीं मालूम तिनका खाना • ये छः काम सुरापानके समान हैं—इनमें वेदका भुलाइ देना १ वेदकी निंदा २ सिक्कावचन ३ ये तीन पाप वे हैं कि जिनकी याज्ञवल्क्यजी ब्रह्म इत्याके

समान कहिचूके•सो इस द्विविधा में यह तात्पर्यहै कि चाहें ब्रह्महत्यावाला प्रायश्चित्त कराया जाय या सुरापान वाला प्रायश्चित्त हो दोनोंका विकल्पहै कि जैसी दशा देखीजाय तिसके अनुसार दोमेंसे कोई एकप्रायश्चित्त किया जाय•इसीप्रकार अन्यवचनभी जहाँ कहींविरोधी मिलिजायँ तहाँ सेसी युक्तियोंसे विरोध दूरकरदेना वृद्धिमानोंका कामहै ॥ इसके सिवाय जो वशिष्ठका यहवचनहै कि (शुरोस्लीकनिर्घं धेकच्छन्दादशरात्रं चरित्वा मच्चैलस्नातो गुरुप्रसादात्पूतो भवति) शुद्धके सामने झूठे वा अप्रिय वचनोंसे आग्रह करनेके पापमध्येवारहदिन का द्वाकच्छत्र करिके पीछेसर्गेल ज्ञान किया हुआ शुद्धके चरणोंमें माथावरने और शुद्धकी प्रसन्नकरि आशीर्वाद लेने से पवित्र होताहै— सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसदशापर समझना जब धोखासे बिना जाने सिर्फ एकवार सेमापापहुआहो ॥ २३१ ॥ इनसे उपरालू अभी और भी शुरुतल्प के समान महापातकहैं तिनका अतिदेश अगिले श्लोकों में दशाति हैं ॥

(पुनश्चगुरुतल्पमपापातिदेशः)

पितुःस्वसारमातुश्चमातुलार्नीस्तुपामपि । मातुःसपत्नीभिगिनिमाचार्यतनयांतथा २३२

आचार्यपत्नीस्वसुतांगुष्ठस्तुगुरुतल्पगः । सिंगुष्ठित्वावधस्तत्रतकामायाःस्त्रियाभपि २३३

अर्थः—पिताकी बहिनकी• माताकी बहिनकी•मासीकी•और इन सबकी पुत्र बधुकी• जो नातेसे बहिन होती हो तिसकी• आचार्यकी बेरीकी•तथा आचार्यकी पत्नीकी• अपनी बेरीकी• गमनकरता हुआ (शुरुतल्पग) शरानीगामी दहरताहै तहाँ निपट लिंगेन्द्री कारिके राजा उसका प्राणवधकरे यहीदण्डरूपी प्रायश्चित्तहै और कुछ नहीं (केवल पुरुयही को दंड उसी दशामें जब उसने प्रवृत्तता या धोखा आदि प्रकारों से शेषाकिया हो अन्यथा) जहाँ उन स्त्रियोंमें भी अपनी काम इच्छा आदि प्रकारोंसे इन पुरुयोंकाभोग अंगीकार कियाहो तो उसस्त्रीकाभी ववक्तियाजाय यही दंड और यही प्रायश्चित्त है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

२३२ अधिकीक्तिः—सातुप्रच यह मूलश्लोकमें चकार जो आया तिसके ध्वन्यर्थ से रात्री और संन्यासिनि आदि जो नहीं गिनाई तिनका भी संग्रह कियाजाता है क्योंकि उनको नादने गिनाहै=यथाह नारदः=मातामातृपुत्रमाश्रयमातृजानीपितृपुत्र सा पितृपुत्रस्त्रिशिष्यस्त्रीभिगिनीतत्तन्स्त्रीस्तुयादुडिताऽऽचार्यभार्याचसतीवाशरणाग ता रात्रीप्रप्रजिताधाधीमाध्वीवर्षीत्तमाचथा आसामन्यतर्मागच्छन्शुरुतल्पगउच्यते र्ग्यशयोत्कर्तनात्तवनान्योदंडोविधीयते=अर्थात्—माताऔर माताकीबहिनमावनी•

सासु•सामी•पिताकीबहिनवृआ•चचाकीस्त्री•मित्रकीस्त्री•शिष्यकीस्त्रीबहिन•बहिन
 कोभनेलीचाहेंवहकिसीकीकन्या वास्त्रीहो•पुत्रकीवधू•बेटी•आचार्यकीपत्नी•सगोत्रा
 अपने गोवभरकोई स्त्रीमावहो•शरणागत जो कहींसभगो वहीरसा समुभिके अपनी
 छायामें कुछ समय बितानेकी टिकी हो• रानी जो राजकरनेवाले राजाकी भार्याहो
 (किंतु सामान्य क्षत्राणी जातिमात्र समझनी क्योंकि उसके गमन मध्ये जुदाप्राय-
 श्चित्तकहागयाहै)प्रव्रजितासंन्यासिनिष्ठादि साधिनी•धात्रीवाय जिसनेदूधपिलाकर
 पालाहो•साध्वी जो किसीत्रतादिक नियमोंकीसाधनामेंतत्परहो•वर्णोत्तमात्राह्यणी•
 इनमें से किसी एकहीको गमनकरताहुआ पुरुष शुभभार्यागामी कहाता है लिंग उस
 का कस्वाय डारनेके सिवाय कोई और दंड येसानहींहै जिससे उस के प्राणवर्चै=
 परन्तु=यह लिंगच्छेद और बधरूपी दण्ड ब्राह्मण से उपरालू मनुष्यको भूचित्तहुआ
 है- क्योंकि (नजातुब्राह्मणान्हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थित मितित्तस्यवदनिषेधात्) ब्रा-
 ह्मण को कदापि न सारै सब तरहके पापों पर आरूढ होने में भी यह उसके मारने
 का नियेध सर्व शास्त्र में उपस्थित है तिससे• तथापि उक्त क्रकर्मों का प्रायश्चित्त
 यही बधरूपी जो लिखचुके तिसका विरोध दूरकरने वाली व्यवस्था आगे उसस्थल
 पर लिखी जायगी जहाँ गुरु तल्पिके प्रायश्चित्त का प्रकार आचै (२५६श्लोक
 पर देखना) ध्यान करो कि २२८ दोसौ अष्टाडस मूलश्लोक से लेकर यहाँतक छः
 श्लोकों में शुरुओं का अधिक्षेप आदि पुत्री गमन पर्यंत जो क्रकर्म बरानहुये सोसब
 महापातकों का अतिदेश हैं (सद्यही पतन का हेतु होने से पातक कहे जाते हैं) त-
 दाह यसः=मातृप्वसासाहसखीदुहित्वाचपितृप्वसा मातृलानीत्ससाञ्चभ्रूगत्वासद्यःप-
 तेन्नरः=अर्थात्-मातृप्वसा मावसी•माताकी सखी भनेली•बेटी•पिताकी बहिन•
 मामी•बहिन•सासु•मनुष्य इनकी गमन करिके सद्यःतत्काल ही पतित होय अर्थात्
 जाती और लौकिक धर्मकर्मों से गिराया जाय ॥ गौतमने कुछ औरभी पातकी पुरु-
 य कहेहैं=यथा=मातृपितृयोनिस्बंधांगस्तेननास्ति कनिन्दतकसाभ्यासि पतित्वात्या
 गिनःपतित्वाःपातकसंयोजकाश्च=अर्थात्-माताया पिताके योनि संबंधी रिपतेदारों
 में विवाह करिलानेवाला•चोरिकरने वाला•नास्तिक जो जाती धर्मकोन मानै•निदि-
 त कर्मों का अभ्यास रखने वाला दुर्जीवी•पतितकी नहीं र्यायै सोभी•पातकोंका
 संयोग करावै सोभी•ये सभी पुरुष पतित होतेहैं-गौतमने इन पातिक्रियों को महा
 पातक और उपपातकों के बीच में गिनती कियाहै तिससे ये ऐसेहैं कि महापातक-
 यों से कुछ न्यून और उपपातकियों से कुछ ऊंचे पापवाले समझे जाते हैं=तथाच

वचनं=महापातकतुल्यानिपापान्युक्तानियानितुतानिपातकसंज्ञानितन्यूनमुपपातक
 स=अर्थात्-जो पाप महापातकों के तुल्य या केवल पापही के नाम से दर्शाए हों वे
 सब पातक नाम कहलें हैं उनसे भी जो न्यून हों सो उपपातक जानौं=यह नियम अ-
 गिरा के वचन से भी सिद्ध होता है=यथाहंगिराः=पातकेयुसहस्रस्यान्महत्सुद्विगुणां
 तथा उपपापेतुरीयस्यान्नरकंवर्यसख्यया=अर्थात्-नरकोंकी अवधि जानतेसव्ये वर्षों
 की संख्या से• पातकों में हजार वर्ष नरक भोग तथा महापातकों में उससे दूना दो
 सहस्र वर्ष और उपपापों में चौथा भाग २५० दोसौ पचास वर्ष नरक होता है यह
 नियम जानौं ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

इस प्रकारसे चौबीसवें परिच्छेदमें महापातकोंका स्वरूपकहाऔर पचीसवेंपरिच्छेद
 मेंपातकोंकास्वरूपकहाअबअगिलेपरिच्छेदमेंसबसेछोटेउपपातकजुदेनामोसेदर्शावेंगे॥

अथ उपपातकादीनां स्वरूपपापानां विवेक विषयोऽयं परिच्छेदः षड्विंशः २६ ॥

—*—

इस परिच्छेद में तीसरे दर्जावाले उपपातक और उनसे भी छोटे
 अनुपातक आदि दर्शाए जायेंगे ॥

(गोवधाद्युपपातकानि)

गोवधोवात्पतास्तेवमृष्टानां चानपाक्रिया । अनाहिताग्निताऽप्यविक्रयः परिचेदनम् २३४

अर्थः—गोवध• ब्रात्यता• चोरी• ऋणोंका उधार न करना• अनाहिताग्नित्व•
 अपर्याविक्रय• परिवेदन• ये प्रत्येक जुदा जुदाही उपपातक होते हैं यह दोसौ बया-
 लीस के प्रलोक में जाय कर कहेंगे तहां देखौं=अर्थात्- गऊ को मारडारना यह
 गोवध एक उपपातक है—ब्रात्य वह कहाताहै कि यज्ञोपवीत जिन अवधिके भीतर
 करना लिखा है उस अवधि को उलांचि जाय—स्तेय चोरी सामान्य जो बाह्यपाके
 सुवर्ण से उपराल और दोसौतीस मूलप्रलोकमें लिखे उसके समान द्रव्य (घीडा रत्न
 मनुष्य स्त्री वस्त्रा गऊ तिलोप) इनसेभी उपराल कोई द्रव्यचूरावें या लोभागे या खीनें
 या लूटे—ऋणाका उधार न करना अर्थात्मोना चांदीआदि किसीसेलोक न देनातयैव

देव ऋषिपितरोंको ऋणा उद्धारन करने—अनाहिताग्नित्व अर्थात् जिसको कुलमें अग्नि स्थापनका अधिकारहै सो अग्निको नहीं स्थापै तो यह भी उपपातकहै—अपराध जो नहीं वेचने योग्य चीजें कि जिनका नियेव कृत्तीमर्षे मूलश्लोकसे आदि लेकर हो-
चुका तिनको वेचै तो यह उपपातक होताहै—परिवेदनदोय उसकानामहै कि जेदेभाई का विवाह न होकर पहिले छोटेभाईका विवाह कियाजाय और जेदेभाईको अग्नि का स्थापन न होतेहुये छोटेभाई अग्नि स्थापनकरै तो छोटेको परिवेदन पापहोता है—ये सब एक एक उपपातक होतेहैं ॥ २३४ ॥

२३४ अधि शोक्तिः—मूलश्लोक में यहकहाया कि स्थापनाका अधिकार कुलमें होते हुये जो अनन्याधान को न राखै सो उपपातकी होताहै—इसमें एक तर्कना है—क्यों जो ज्योतिषोम आदि यज्ञोंकी अनुज्ञा देनेवाली युक्तियाँ अपने संगभूत अग्नि की सिद्धि होने के लिये अग्निका आधान स्थापन अवश्यही प्रयुक्तकर वातीरिह-
तीहैं यहवात भीमांसा से प्रसिद्ध है—तो इसनियमसे यह वातभी स्वतः पाईजाती है कि जिसको कुल में अग्निर्थासे प्रयोजनहोगा तिसकी उसके उपायरूपी आधान में स्वतः प्रवृत्ति होतीरहेगी जैसे हरतरहकेधन संचय करनेवालों में जिसको नाजलेनेकी गर्जहै वह नाजहीपर उताखहोगा—और जिसको कुलमें अग्निर्थासे प्रयोजन कृद्धनहीं है तिसकी प्रवृत्ति उसके आधानपर न होगी—तो फिर कैसे अनाहिताग्नित्वकादोय ठाँहराआगया= समाधान—सुनो इसी मूलश्लोककछपी वचनसे(कि जिसमें उपपातक दशानेद्वारा आधानकी आवश्यकता ठाँहराईगई तिसमें) नित्ययुक्तियोंभी और अचि-
कारवाला पुरुष भी अविश्वेयता से आधानको प्रयोजक होते हैं अर्थात् स्थापनाकी प्रयुक्ति करवाते और करते भी रहिते हैं यही स्मृतियोंके बनानेवालों का अभिप्राय पायाजाताहै ॥ २३४ ॥

(अनन्यानिचउपपातकानि)

भृतादध्ययनादानंभृतकाध्यापनंतथा । पारदायपारिविच्यंवार्युप्यंलवयक्रिया २३५ ॥

स्वांशुद्रविदक्षत्रयथानिदिताधोपजीवनम् । नास्तिक्यत्रतलोपश्चमुतानाञ्चेवविक्रय २३६ ॥

अर्थः भृतादीदेकर वेदपठना—भृतादीदेकर वेदपठना—पारदार्य पर स्त्री से भोग(पर स्त्री उनको संसभना जो पहिलेदेो परिच्छेदोमें वर्णन होचुकीं तिनसे उपगलू हों)—
पारिवित्य अर्थात् सद्गोदर छोटेभाता का विवाह प्रथम होजाय तो जेदे यिना विवाहे को परिवित्तोद्यै लगता है सो यह सक उपपातक है (इसीदशा में छोटेकी परिवे-

दनके नामसे उपपातक होता है सो २३४ केशलोक में कहिचुके) वाधुंष्य कर्म जो उस प्रकारसे व्याजृष्टि की जीविका करै जिसका नियेव है—लवरा क्रिया अर्थात् खानिसे नसक सोरा आदि अपने हाथसे बनाना सक उपपातकहै ॥ २३५ ॥ स्त्रीका वध करना चाहें ब्राह्मणी आदि कोइजातिहो (परंतु रजस्वला आदि आवेषी स्त्रियों की छोड़िके यह नियम समझना आवेषीको ठीकलसरा दोसौ इकावन की अधिकोक्तिमें देखना) शूद्रका वधकरना सक उपपातकहै—वैश्य या क्षत्री जो किसी यज्ञ आदि बीसा में दीक्षित नहीं तिनका वध करना उपपातक है—निंदित अर्थसे उपजीवन करना अर्थात् जीविका करनेका जो प्रकार राजाने नहीं स्थापित किया और लोकमें भी निंदितहो तिमके द्वारा—नास्तिक्य उसका नामहै कि हठपूर्वक ऐसा कहे कि परलोक आदि भूंदी कल्पना है—व्रत का लोप करना दुष्टांत जैसे व्रह्म चारी होकर स्त्रीसे प्रसंगकरै—सुतानां विक्रय अर्थात् लडका लडकी आदि संतान बेचना—ये सभी बातें एक एक उपपातक हैं ॥ २३५ ॥ २३६ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

धान्यहुष्पपशुस्तेयमयाज्यानांचयाजनम् । पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः २३७
कन्यासंपुणंचेवपरिविदकयाजनम् । कन्याप्रदानंतस्येवकोटित्येवव्रतलोपनम् २३८

अर्थः—धान्य सब तरह के नाज की चोरी—कृष्ण सीसा राँग पीतल आदि छोटी धातुओं की चोरी—उन पशुओं की चोरी जो दोसौ तीस २३० मूल क में लिखे हुये कीमती घोड़ा हाथी आदि या हाज की वियानी दूब देती उत्तम गऊ से उपरालू गऊ आदि हर किस्मके पशु जो कमकीमत समझे जाते हैं—अयाज्य शूद्र आदियां व्रात्य दोग वाले त्रैवर्गिक भी हैं अथवा जाति या कर्मों से दूयितहैं तिनकोयजन करावै अर्थात् उनको पुरोहितारै पावाड़े करै तो यह भी उपपातक है—अपतित माता पिता या पुत्रों को पालनासे त्यागै अर्थात् घरसे निकामिदेवै तो यह उपपातक है—तडाग बागीचा धर्मशाला आदि जो पुण्य के निमित्त से बनाये गये यथा कुल का नाम रहिने के लिये बनाए हों तिनका वैचिदेना ॥ २३७ ॥

कन्या को दूयित करना अर्थात् भीस बिनाही अशुभ आदि से योनि विगाना या औरही किसी प्रकार से छेड़ छाड़ करना उपपातक है और यह भी कि यदि किसी कुमारी कन्या को ऐसा कोड़े दोग लगावै जिससे विवाह सकिजाय (कुमारी से सम्भोग करना इस पाप से बड़ापातकहै जिसको २३१ श्लोक में गुरुतल्पकेसमात्

काहिचुकु है)—परि विन्दक पुरुष को विवाह कर्म आदि कोई सा यजन कारना (परिविन्दक उसको समझना जो जेठे पुत्रको विवाहे विना छोटेका विवाह करे या जेठो पुत्री विवाहे विनालघुरी का विवाह करे तिनको विवाह करानेवाला परिण्डत भी उपपातकी होता है)—परिविन्दक पुरुष को कन्यादान करिके देनाभी उपपातक है—कौटिल्य कुटिलता के लक्षण पहिले दोसो उन्तीस मूल श्लोक में लिखि चुके तहां देखो परंतु वहांपर बहुत बड़ी कुटिलता का प्रयोजन था कि जिसका न्याय निराय उसी की अधिकोक्ति मे दर्शाया गया किंतु यहां छोटी मोटी कुटिलता करे सो उपपातक है बल्कि इस प्रकार से भी भेद किया गया है कि वहांपर अपने गुरु के साथ कुटिलता करने का तात्पर्य था यहां जो औरों के साथ कुटिलता करे सो उपपातक है छोटी बड़ी से कुछ भेद नहीं पर विवेकी पुरुष दोनों प्रयोजनके सी ज्ञान से न्याय करे—वृत्त का लोप करना उपपातक है यद्यपि दोसो छत्तीस मूलश्लोक में वृत्त लोप करना काहिचुकु परंतु यहां पर अशुष्ट और अप्रतियुद्ध सामान्य छोटे व्रतोंका प्रयोजन है दृष्टांत जैसे श्रीहरि चरणां के दर्शनकिये विना तांबूलआदि कुछ नहीं खाताहूँ यह मेरा नियम है इसको बहुत दिन साधने पीछे छोड़ि देना आदिस-मझने किंतु २३३ के श्लोक में स्नातक वृत्तचारी आदिके व्रतभंग होने कहेथे यहां स्नातक व्रतवाले स्वल्प नियमों की भी पहुँच नहीं मानी गईहै क्योंकि स्नातकों के छोटे व्रतलोप होजाने मध्ये मनुने छोटा प्रायश्चित्त ही जुदा कहा है कि एक दिन भोजन का त्याग राखे यही प्रायश्चित्त है ॥ २३८ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

आत्मनोऽपेक्षियारंभोमयपस्त्रीनिषेवणम् । स्वाध्यायाग्निसुतत्वागोवांषवत्यागएवच २३९
 इधनार्थद्रुमच्छेद स्त्रीहिंसैपथजीवनम् । हिंस्रयंत्रविधानेचव्यसनान्यात्मविक्रमः २४०
 शूद्रप्रेम्पंहीनसस्यंहीनयोनिनिषेवणम् । तपैवानाश्रमेवास पराश्रपरिपुष्टता २४१

अर्थः—अपनेही आत्मा के अर्थ रसोत्रे आदि पाक लक्षण वाली क्रियाओं का आरम्भ करना—सद्यपिने वाली स्त्री जो अपनी भार्या भी हो तिसका सेवन भोगआदि—स्वाध्याय अर्थात् अपना पाठ जो गीता आदि कोईसा नैतिक चला आताहो तिस का त्यागदेना—अग्नि जो जिसके घर श्रौत वा स्मार्त सदा रहती हो तिनका उठाइ देना—सुतत्याग अर्थात् पुत्रका संस्कार आदि न करनेसे त्याग करना—वाँधवोंकात्याग अर्थात् रेच्यके होतेहुय चचा मामा पूफू आदि वाँधवों को रखा न करनी ॥२३९॥

ईधनके लिये गीला वृक्ष काटना हवनसे उपरालू निमित्तों में-स्त्री के द्वारा उपजीवन करना अर्थात् द्रव्यलेकर परपुरुषोंसे संयोग कराना आदि और स्त्री धनका हरिलेना आदिभी इसीमें समझना-हिंसाके द्वारा उपजीवन करना दृष्टांत जैसे पशु पक्षी आदि जीव पकड़िके बेचना आदि-औषधीसे उपजीवन अर्थात् जंगल से जरी बूटी लाकर बेचना और वशीकरण आदि प्रयोगोंके मार्गसे औषधी देना कि इसका तिलक लगानेसे अमुक वृक्षमें आज्ञायगा इत्यादि क्योंकि सूखी औषधी हाटकें द्वारा बेचनेका दोष नहींहै यह निराय पहिले अपरायविक्रयके प्रकारमें होचुका और मुख्य तापर्य उसका यहहै कि उसमें कोई विय रूप औषधी किसी अज्ञानीको न देदीजाय-रहिंसकयंत्र जीवोंके प्राण विनाश करनेवाली कर्तोंका बनाना तथा तेल पेरने आदि की कलें जारी करना अपने नामसे-व्यसन मृगया शिकार आदि अटारह प्रसिद्ध हैं आचार मर्यादा परिपाटीके राजधर्म प्रकारमें देखोवे सब जुदेजुदे अटारह उपपातक समझने-आत्मविक्रय अपना शरीर जन्मभर के लिये बेचिदेना या धनलेकर दास होजाना आदि जिसमें निपट पराधीन होजाय ॥ २४० ॥ शूद्रप्रेष्य अर्थात् शूद्रकी अति छोटी नौकरी जिसमें संदेसा आदि पहुँचानेकी छोटी सेवा करनीहो-हीनसख्य अर्थात् हीनजातिसे मित्रता करनी या हीनकर्म करनेवालेसे मैत्रीकरनी आदि-हीन योनिका सेवन करना अर्थात् वेश्या आदि जो साधारण सवजनोंकी स्त्री होतीहैं तिनका भोग और बिना विवाही जो अपनेही वर्गकी हो तिसका भोग भी हीनयोनिकी सेवा गिनोजाती है-अनायमका वास अर्थात् ब्रह्मचारी या शूद्रस्थी या वानप्रस्थ या संन्यासी इनमें किसीके भी आश्रमसे नमिलना अधिकोक्तिमें देखो-परान्तपरिपुष्टता अर्थात् केवल पराये अन्नसे शरीर पालना किंतु दशदिन किसीके घर खाया दौदिक किसीके इसीरितसे अवस्थाकी दृष्टाखोदेना कभी अपना चौका चूल्हा बनाकरनहीं बैठनाएकउपपातकहै-इसीप्रकार ऊपरलिखी सभीबातेंजुदे जुदेउपपातकहैं ॥ २४१ ॥

२३६ अधिकोक्तिः-(अयंसकेवलभुंक्तयःपचत्यात्मकारणात्) यह वचनहै कि जो कोई केवल अपनेही निमित्तसे खोदेंमें पकाता है वह केवल पापही का भोजन करताहै अन्न मतसमझना इसीप्रकारसे मूलश्लोकमें कहागया कि अपनेही निमित्त ने जो पाक चढावै सो उपपातक है ॥ ० ॥ अनायमवातं का विग्रह तात्पर्य यहहै कि प्रायः शूद्रस्थी जो कल्याणार्थ्य होजाय उसको शीघ्रही दारुगिन संग्रह करना आचार मर्यादा में कहिचुके हैं और भी यह वचन है कि (अनायमीनतियेतदिनने कमपिहितः) दिनतीमात्र कोई पुरुष एक दिन भी बिना आश्रम को न रहे अर्थात्

यातों किसी औरही आश्रम का सहारा लेंवें या शीघ्र अपना विवाह करिके गृहस्थ का आश्रम सार्धे परन्तु यह नियम केवल उसके लिये है कि जो विवाह करने का अधिकारी सचाहोय अर्थात् पुत्र लाभकी कामना श्रेयहोय या रति भोग की इच्छा श्रेयहोय यदा गृहस्थवाले धर्मोका आराधन करना चाहे किंतु इनमेंसे कोई वात जिस को चित्तमें नहो अर्थात् जिसके पुत्रपौत्र आदि मौजूदहों या इनके मौजूद न होने पर भी शरीरसे बूढा शिथिल होय या शिथिलताके न होनेपर भी कामभोग की इच्छा श्रेय न होय यदा किसी विशेष परमधर्मरूपीकार्यमें संलग्नहोनेसे गृहस्थका आङ्गन नहीं रोपाचाहै तो वह पुस्त्यविवाहकरनेका अधिकारी नहीं है जो अधिकारी नहीं उसको उपपातकभी न है ॥ तथाच विज्ञानेश्वराचार्यः—अगृहीताश्रमस्त्वंसत्यधिकारैः ॥ २४१ ॥

(अन्यानिच उपपातकानि)

असत्त्वास्त्राधिगमनमाकरेण्वधिकारिता । भार्यायाविक्रयश्चेयामेकैकमुपपातकम् २४२

अर्थः—असत् शास्त्रोका विचारनाश्रम्यासकरना (असत्शास्त्रउनकानामहै जो चा-
र्वक आदि नास्तिक जनोंके शास्त्र हों जिनमें विरोधीरति होती हैं) आकर खानि जो सुवर्ण आदि सब चीजोंके उत्पत्तिस्थान कहते हैं तिनमें राजकी आज्ञासे देका आदि अधिकार करना—भार्या का व्रेचना—इन सबमें कि जो जो कर्म कुकर्म गोवध आदि दोस्रो चौंतीस प्रतीक से लेकर यहां तक वर्णान किये सो एक एक जुदे उप-
पातक हे ॥ २४२ ॥

२४२ अघिकोक्ति—योगीश्वर के बवनोंसे उपपातक लिखेगये—परन्तु—मनुके और भी निमित्तदर्शाए हैं तिनके नाम भेद भी जातिधन्य कर आदि पातक धरे हैं—
यथाह मनुः—ब्राह्मणस्यरुजःकृत्वाघातिरघो यमद्ययोः जैहृश्यं पुंसि च भैशुन्यं जातिध्नं प्र-
करस्मृतम् • खराद्योष्टसूरोभानामजाविकवधस्तथा सकरीकरणात्त्रेयमीनादिमिहियस्य
च • निदितेभ्योवनादीनवाराड्यभूद्रसेवनस अपात्रीकरणात्त्रेयससत्यस्येवभायराह •
क्षमिकीदवग्रोहत्यामद्यानुगतभोजनस फलेधकुसमस्तेयसधैर्यचमलावहस (अतो न्य
निमित्त जात प्रकीर्णकं कथ्यते)=अर्थात्—ब्राह्मण के शरीर में चोरलगाना • न मूँघने
योग्य अपवित्र चीजों तथा मद्यका सुंघना • जैहृश्यकृदिलता • पुरुय की गुदासे भैशुन
करना • ये सब जाति भंश कर घाप कहते हैं—सदहा ऊट घोड़ा मृग हाथी इनका बव
करना तथा बकरी भेड़का बधकरना और जलके मीन सर्प भैंसा इनका बधकरना ये
सब सकरीकरणा पाप कहते हैं—निदित कर्मों के सार्ग से धनका लेना तथा निदित

वाग्जाज्य और शूद्रकी सेवा करना ये सब अपात्रीकरणा पाप होतेहैं जैसे असत्य बोलनेकी भाँति—कर्म कीट पक्षी इनकी इत्या और मद्यानुरात भोजन अर्थात् जो चीजें बनाने वा परस्पर मिलानेसे मद्यके अनुरूप होजातीहैं तिनका भोजन करना फलकी चोरी ईबन की चोरी फूलोंकी चोरी और धीरज राखनेके स्थलपर धैर्य छोड़देना ये सब मलावह नामके पाप कहातेहैं (इनके सिवाय जो पापस्वरूपी निमित्तकीइ उरपन्न हों सो प्रकीर्णक कहाते हैं) ॥ ० ॥ दृढद्विप्याने सभी प्रायश्चित्तों के निमित्त छयी पाप यथाक्रमसे (उत्तरोत्तर) पीछे पीछे छोटे करिके जूदे संज्ञा भेदोंसे दर्शाएहें जोसत्र चौदह भेदहोते हैं—तथाच दृढद्विप्याः=ब्रह्मइत्यासुरापानं ब्राह्मणसुवर्णापहरणं शुरुग्रामनमिति महापातकानि तत्संयोगश्च—मातृगमनंभगिनीगमनं दृढिद्वगमनंस्नुयागमनं मित्यतिपातकानि—यागस्यस्रविद्यवधोवैश्वस्यच रजस्वलायाश्चांतवत्पत्याश्चात्रिगोत्रायाश्चात्रिजातस्यगर्भस्य शरणागतस्यचघातनं ब्रह्मइत्यासमानि—कौटसाद्यसुहृद्वध इत्येतोसुरापानसमी—ब्राह्मणस्यभूमिहरणं सुवर्णास्तेयसमं—पितृव्यमातामह मातृलनृपपत्न्याभगमनंशुरुदारगमनसमं—पितृष्वेव मातृष्वेव गमनं त्र्योविद्यत्विर्गुह्यपाध्य मित्रपत्न्यभगमनंचातिपातकसमं—त्वसुः सख्याः सगोत्राया उत्तमवर्णाधारजस्वलायाःशरणागतायाः प्रव्रजितायानिसिद्धायाश्च गमनमित्येतान्यनुपातकानि—अवृतवचनंसमुत्कर्षे राजगामिच पेशुन्यंशुरोश्चालीकनिर्वन्धो वेदनिंदाअधीतस्यत्यागोऽग्निपितृमातृसुतदाराराणां अमोज्यानांभक्षरां परस्त्रापहरणं परदारानुगमनमयाज्यानांचयाजनं व्रात्यताभृतकाव्यापनं भृतादध्ययनादानं सर्वाकरेष्वविकारो महायंत्रवर्तनंद्रुमशुल्मबल्लोलतौयवीनां हिंसयाजीवनमभिचार मूलकर्मसुच प्रवृत्तिरात्मार्थं क्रियारभोजनानिहताग्निता देवर्यं पितृणा मृदास्थानपात्रिया असच्छास्त्राविगमनं नास्तिक्ता कुशीलवता मद्यप ह्यी नियेव्रामित्युपपातकानि—ब्राह्मणस्यरुजःकरणमधेयमद्ययोर्वातिर्जेह्यचंपशुपुंसिच मैथुनाचरणा मित्येतानिजातिध्वंसकारिणि—ग्राम्थारण्यपगुनानिंसनं संकीकरणां—निंदितेभ्योवनादानं वाग्जाज्यं कूसीदजीवनमसत्यभायरां शूद्रसेवनमित्यपात्रीकरणानि—पक्षिणांजलचराणांचघातनं कर्मकीटघातनं मद्यानुरातभोजनंमलावहानि—यदनुकतत्प्रकीर्णकं=अर्थात्—विप्यामुनि की बड़ी स्मृति में क्रम सेसभी पापों के बड़े छोटे इतने भेद किये गए हैं कि—ब्राह्मण की इत्या • सुरापीना • ब्राह्मण का सोना हरना • गुह्य की दारा भोग करना • ये महापातक हैं ? और इनकी सिद्धजति वाला भी महापातकी होता है—माता या भगिनी या वैशे या पुत्रकी बधू गमन करना यह अतिपातक हैं अर्थात् महापातकों से कुछनीचे?

यज्ञ में लगे हुये क्षत्रीका बध करना तथा वैश्यभी यज्ञ में लगे हुये का बध करना या रजस्वला नारीका बध करना या गर्भवती का बध करना या अत्रिमुनि के गोत्र वाली किसी प्रकार की स्त्रीका बध करना या बिनाजाने गर्भका बध करना या अपने शरणागत का घात करना ये सभी पाप ब्रह्महत्या के समान हैं ३ जालसाजी की गवाही या मित्र का बध करना ये दोनों पाप सुरापान के समान हैं ४ ब्राह्मण की धरती हरना सुवर्ण की चोरी के समान है ५ चचा या नाना या मामा या राजा इनकी पत्नी से अभिगम करना गुरुद्वार गमन महापाप के समान है ६ पिताकी बहिन या माता की बहिन से गमन करना तथा योविद्य जो वेद की किसी शाखा के पढ़ने में तत्पर हो रहा यदा पढ़िचुके पीछे उसके अनुसार यत्कर्मों में निरत ब्राह्मणहो या ऋत्विक् या गुरु जो अपने मुख्य गुरु से उपरालू कोई सामान्य गुरुमाना हो या उपाध्याय या मित्र इनमें किसीकी पत्नी से अभिगम करना ये अति पातक के समान हैं ७ बहिन की सखी या अपनी सगोत्रा किसी स्त्री से या अपना से ऊँचेवर्णावली स्त्री से या रजस्वला चाहें निज अपनीही भार्या हो तिससे या शरणागते आई टिकी हुई किसी स्त्रीसे या संन्यासिनि आदि साधिनी से या किसीने कोई स्त्री अपने धरोहर की रीति से सौंपी तिसके साथ भी गमन करना ये सब इतने अनुपातक हैं ८ उत्कर्ष के स्थान में असत्य बोलना (उत्कर्ष के स्थान यज्ञ मंडप राजद्वार तीर्थ स्थान सभा पंचायत आदि अनेक हैं सो समझ लेने) बड़ पिशुनता जो राज तक पहुँचे गुरुके साथ प्रतिज्ञा पूर्व इठकरना • वेदकी निंदा करना • पढ़ेहुये वेदका छोड़ देना • अग्नि की सेवा छोड़ देनी • पिता या माता या पुत्र या भार्या इनको छोड़ देना • नखाने योग्य चीजों की खाना • पराया धन हरना अर्थात् चोरी करना और अपने भारी या साम्नी आदि का उचित भार न देना • पराई भार्याका भोग • अयाज्योंको यजन कराना • संस्कार विहीन प्राल्यहोके रहना • सजुरी से वेद पढ़ाना • सजुरीमात्र देकर वेद पढ़ना • सब खानियों में अधिकार लेना जिसमें प्रायश प्राणियोंकोहिंसा संभव हो • बड़ी कलों का ज़ारी करना कि जिनके द्वारा प्रायश जीव हिंसा अवश्य होती है • बड़ेदृस या गुल्म झड़ी या बेलियावों या छोटी औषधोंकेदृस इनकोकारि के हिंसा द्वारा जीविका करनी (इनके काटने से प्रथमतो उन्हीं का विनाश और बहुधा जीवोंका विनाश और अनेकप्राणियों का मुख मिरि जाता है जो उनसेहोता था इसीलिये औषधी केवल प्रयोजन मात्रको तोड़ितानी कही है समूल दृस नहीं उखाड़े) अभिचार वाले कर्म जो अथर्व वेदके द्वारा मारणा मोहन वशाकरा उखा-

रत आदि मंत्र यंत्र होते हैं तिनमें प्रवृत्तिकरना भी पाप है। अपने आत्माके निमित्तसे रसोईआदि क्रियाका आरम्भ अधिकारके होतेहुये अग्निको नहीं स्थापन करना। देवता या ऋषियों वा पितरों का ऋणा नहीं शोधना। असत शास्त्र नास्तिकजनों के वनाये हुये तिनको पढ़ना विचारना। कुशीलवता अर्थात् कुशील खाँटे स्वभाव के द्वारा नर नर्तक आदि वाली जीविकावृत्ति धारता करनी मद्यपीनेवाली स्त्रीसेसंभोग करना ये सब उपपातक हैं ९ ब्राह्मणों के देहमें घाव करना या चोटलगाना। नसंधने शय्य मैली चीज औ मद्य इनका संघना। जैहम्य कुरिलता। पशु में या पुरुष में सै-थुन करना ये सब इतने पाप जातिभ्रंशकर कहातेहैं १० गाँवके या वनके पशुओं को हिंसा करनी यह संकरीकरणा पाप कहाताहै ११ निन्दित कसाई-चंडालआदि मनुष्यों से और निन्दित प्रकारों से धन लेना या चौर आदि दुष्टों से धन लेना और उनके साथ वार्ताशय करना। व्याजसे जीविका करनी। असत्य बोलना। शूद्रकी सेवा करनी ये सब इतने पाप अपापी करणा कहाते हैं १२ पक्षियों वा जलचर जीवों का घात करना तथा क्षमि कीट इन जीवों का घातकरना। मद्यानुगत भोजन करना जो चीजें किसी रीतिसे बनाने या परस्पर मिलाने से मद्यके अनुरूप होजाती हैं ये सब इतने पाप मत्सावह्र कहाते हैं अर्थात् मत्स्यके धारणा करानेवाले १३ जोकुछ इस पाट में न कहाहै और वही उपरालू भगड़ा आनि परे तो प्रकीर्णक उनका नामकहा जाता है १४ ॥ ० ॥ कात्यायन ने सब पापों के मुख्य पांचही भेद कहे उनका भी दर्शाना इसजगह पर आवश्यक है कि ऊँच नीच का भेद समभाजाय=यथाह का-त्यायनः=महापापंचातिपापंतयापातकमेवचप्रासंगिकंचोपपापमित्येषांपंचकीगणाः= अर्थात्—महापाप १ अतिपाप २ पातक ३ प्रासंगिक ४ उपपाप ५ यह पांच भेदोंसे इनका गणा कहा=इस क्रमके अनुसार इतना भेदहै कि योगीश्वर के बताये महापाप के स-मान जो पाप हैं जिनको विष्णु ने अतिपाप समान और अनुपाप के नाम से बताया तिनको कात्यायन जो ने पातकही के नामसे उचारणा किया इत्यादि धर्मकारों के देश भेदकी अपेक्षासे कल्पना भेद पायाजाताहै ॥ अथ शास्वार्थः—इसके मध्ये यहभी एक शास्वार्थ के मार्ग से तर्कना खड़ी होतीहै कि—पातक उपपातक आदि निचले दर्जावाले पापों में पतन (गिरजाने) का हेतु पूरा न होनेसे पातकत्व (गिराइवेना)केमें सिद्ध होताहै। जबकि उनमेंभी पतनकाहेतु प्रायाजाय तोफिर (मात पितृयोनि मन्वं वांग) इत्यादि सौतम का वचन जो २२६ दोस्रो खबीसकी अधिकोक्तिमें आयाया उन्नमें जो गिनती गिनाई सी अनर्थक उहरतीहै तहां जो सेसेसमाधान कियाजाता है

कि यद्यपि पातकमें तत्कालही पातित्य उस तरहसे नहीं होता है कि जैसे महापातक और उनके समानपातकमें सद्यहीपतनहोजाता है तथापि बारंबार अभ्यासकी अपेक्षा से उनमें भी पातित्य (गिराइदने) का हेतु होना कुछ विरुद्ध नहीं है क्योंकि उसी पूर्वोक्त गौतमके वचनमें (निन्दितकर्मभ्यासी) निन्दितकर्मका अभ्यास बारम्बार करने वालाभी गिनती हुआ है तिससे यह समाधान किया करते हैं सो ऐसा नहीं माना जा सकता है क्योंकि अभ्यासका भी निरूपण उसकी तौलके द्वारा करना उचित है अथवा जो तौलकी विशेषता बिना ऐसाही साधारण अंगीकार कियाजाय कि एकबारके सिवाय जब दोबार किया तौभी अभ्यास है तैसा सौबार किया तौभी अभ्यास है तो इस अंगीकारमें यह दोष आता है कि जैसे (दिनमें सोना या राजका बंधकरना दोनों बराबर होतेहैं) जो दिनमें दोबार सोया और जिसने सौबारमें सौ गोरों मारों तिनदोनों का एकहीसा बराबर पातित्य होवे ॥ समाधान इसका सुनो—धर्मशास्त्रमें बहुधाकारके अर्थवाद खडा करनेसे भी सकप्रकारका पाप लगता सुनतेहैं (जैसा आचारकांडमें मनु के दो वचनहैं सो देखो कि-१ युतिस्मृतीउभेनेत्रे इत्यादि और २ तेउभेयोऽवमन्येत हेतुशास्त्राथयाव इत्यादि) अर्थात् नास्तिकता दोष लगता है—और—उस निन्दितकर्म रूपी छोटे दर्जाके पापमें जो बड़ा प्रायश्चित्त पहुँचने का तर्क तुमने उठाया तिसका यह तात्पर्य है कि बारबार अभ्यास करते हुये जबतक महापातकसे तुल्यता होजाय उतना अभ्यास पातित्य (गिराइदने) का हेतु ठहिरता है तभी उसको बड़े प्रायश्चित्त का अधिकार पाया जाता है अन्यथा छोटे प्रायश्चित्त का अधिकार—और दिनमें सोना आदि जो छोटे उपपातकहैं कि जिनसे केवल कर्ताकेही पुण्य पराक्रमकी हानि होती है किसी दूसरेकी कुछ हानि या पीडा होनी नहीं सम्भव ऐसे छोटे उपपातकोंमें सहस्रबारभी अभ्यास करनेसे महापातकसे तुल्यतानहीं होती है इसहेतु उनमें पातित्य नहीं होता है—और निराले उपपातक आदि सेसेहैं कि उनमें दोही चार वा दस पांच बारके अभ्यास होनेसे पातित्य लागजाता है—इसका दृष्टांत जैसे बूढ़े मातापिता या अदान पुत्र पुत्री या सुशीला भार्या घरसे निकालिदेना उपपातक कहागया है यद्यपि वचन प्रभावसे तौ यही अर्थ है कि निकालि देतेसार तत्कालही पातक लगा तौ भी महापातकसे तुल्यता होनेकी अपेक्षासे यह तात्पर्य है कि एक दो दिनके लिये निकालि देनेमात्रसे पातित्य नहीं लागि सकता है उपपातकमें गिनती रहिसक्ता है परन्तु जो बारम्बार सदा सर्वदा ऐसा कियाकरै या ढेर दिनके लिये निकालि देय तौ यह भी पूरापातक होजायगा कदाचिद् निपट निकालि देवे कि फिर अपने पास न आने

दे तो यह भी महापातक तुल्य होजायगा इत्यादि प्रकारों से अभ्यास का निरूपण किया जाता है और यही उसकी तोल है। तिससे वही नियम ठीक है कि उपपातक आदि छोटे दण्डोंके पापोंमें अभ्यासकी अपेक्षासे पतन [गिरजाने] का हेतु पैदा होता है ॥ २४२ ॥ ध्यान करना चाहिये कि योगीश्वरने पापोंके मुख्य तीनही भेद कहे जिनके तीन परिच्छेद जुड़े किये गये सेसेही कात्यायन ने पांच भेद कहे वृहद्विष्णुने उन्हींका विस्तार करिके चौदह भेद कहे परंतु तात्पर्य सबका एक है प्रायश्चित्त के विचारनेमें मुख्य योगीश्वरका वांछा कम देखना चाहिये कदाचित्त उसमें सन्देह या भ्रमडा बाकी रहजाय तब अधिकोक्ति में चौदह प्रकारों का मीलान करिके संदेह मिटाइलेना विवेकियोंका काम है क्योंकि जिन ऋथोश्वरोंने बहुतसेना भेदकिये सो केवल इसलिये हैं कि पापोंकी बड़ाई छोड़ाई शीघ्र समुभोजाय ॥ २४२ ॥

यहांतक व्यवहार बतविकी सुगमताके लिये प्रायश्चित्तों के निमित्तरूपी पापों को संज्ञा भेद से बरान करचुके अब आगे उनके नैमित्तिक रूपी प्रायश्चित्त कहे जायेंगे तिनमें ये सब संज्ञा काम आवैगी ॥

अथ ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तविवेकानां प्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः सप्तविंशः २७



इसपरिच्छेदमें ब्रह्महत्यारूपी महापापके प्रायश्चित्तवरान हेतु और ब्रह्महत्याके अनेक भेद हैं कि एकही ब्राह्मण मारा या अनेक मारे या घोखासे मारा या जानिबूझि के मारा या वदिकेमारा और प्रथम मारा कश्चर पहिले भी ब्रह्महत्याकरचुका इत्यादि कर्ताओं के भेदसे भी नियम किये जायेंगे ॥

(ब्रह्महत्यायांप्रायश्चित्तस्य द्वादशवार्यिकादि नियमाः)

शिरःकपालीभ्यजवान्भिक्षालीकर्मवेदयन् । ब्रह्महादादशब्दानिमित्तमुद्गुदिमाप्नुयात् २४३

अर्थः—शिरका कपाल (खपरा) जिसके हाथमें कपालही की ध्वजालेकर अपने किये कर्मको पुकारतेहुये भिक्षामोंगि खातेहुये थोड़ाभोजन एकवार खाइके वारह वर्ष नियम साधनेसे ब्रह्महत्यारा शुद्धहोय ॥ २४३ ॥

२४३ अधिकोक्तिः—आनीखापड़ी खपरावनाइके हाथमेंलेना कहा शेषखोपड़ी

लाठी आदिके सिरेपर बाँधिके ध्वजा बनानीकही तिसकोभी ऊँची किये बराल में दबायेरहें—यह खोपड़ी उसी ब्राह्मणको लेनी कही जिसको मारिके हत्याराबनाहो (कृत्वाश्रावशिरोध्वजमितिमनुः) मनुने यहकहाहै कि मुदाके शिरकी ध्वजाबनाकर लेजाय= ब्राह्मणोब्राह्मणघातयित्वातस्यैवशिः कपालमादायतीर्थान्यनुसंचरेदिति शातातपः=अर्थात्—ब्राह्मण ब्राह्मणकोमारिके उसीकेसूडकाखपरां हाथलेकर तीर्थों में विचरै यह शातातपनेकहा—परन्तु जो उसका शिर न मिलै तो औरही किसी मरे ब्राह्मणका लेआवै उसकी ध्वजाबनावै (खड्गांगकपालपागारित्तिगौतमोपि) गौतमने भी कहाहै कि खड्गांग और कपाल हाथमें हो—खड्गांगनाम यद्यपि खादकेपावे पट्टी आदि किसी एक अंगकाहै परंतु यहां केवल ध्वजाका प्रयोजन है तिससे गौतम ने यह तात्पर्य दर्शाया है कि खादकी पाटी में खोपड़ी बाँधिके ध्वजाबनावै (खड्गांग यद्यपि समस्त नरपंजर अर्थात् मनुष्यकी साजरिकाभीनामहै पर उससे कुछ प्रयोजन यहां नहींहै) (कपालआदिका धारणा करना यह केवल हत्यारेका तुकमा चिह्न है अर्थात् उस खोपड़ी के खपरा में न भोजन करनेका प्रयोजन है न भिक्षा मागनेका— क्योंकि (मृन्मयकपालपागारिभिक्षायैग्रामंप्रविशेदित्तिगौतमः) गौतमने उन्हीं गौतम ने यहभी कहाहै कि सड्डीका टीकरा हाथमैलेकर भिक्षाकेलिये वस्तीमेंघुसै अन्यथा जंगल आदिमें रहाकरै=तथाचमनुः=ब्रह्महा द्वादशाब्दानिकृदिकृत्वावनेवसेत् कृत्वा पनोवानिवसेद्ग्रामांतेगोत्रजेऽपिवात्रायमेवृक्षमलेवासर्वभूतहितेतरतः=अर्थात्—मनुने ये नियमकहेहैं कि ब्रह्महत्यारा बारहवर्षतक कृती बनाइके वनमेंवसे अथवा यह संभव न हो तो बालमुड़ाये वा जटारखाएहुये किसीग्रामके समीपरहै या गोत्रजमें कि जहाँ बहुत गौओं की चराईवाले जंगल में निवास हो या किसी प्रसिद्ध जंगलके वनेहुये आश्रमों में टिकै अथवा वृक्षके नीचे रहिके सर्वभूतों की भलाइवाले आचरणा करे (उक्तवचनोंमें कृत्वापनोवा) इसविकल्पसे कि मुडमुडाएहुये वा विनामुड़ाये यह तात्पर्य निकसताहै कि चाहें जटा रखावै इसलिये संबर्तने कहाहै कि (ब्रह्महाद्वादशाब्दानिवालवासाजरीध्वजी) ब्रह्महत्या करनेवाला बारहवर्षतक उनके वस्त्रोंकी ओटें औरजटारखावै और ध्वजासाथराखे=तथा उसका यहभी नियमहै कि भिक्षासे निर्वाह करै धनकोसाधनवावै=यथाह आपस्तंबः=लोहितकेनखड्गश्रावेराग्रामभिक्षायैप्रविशेत्=अर्थात्—भिक्षाकेलिये गावेंमें प्रवेशकरै ताँवा पीतलकापात्र कठोरा आदि लेकर या फूटेसड्डीके वासनका खपरा सकोरा सरावाआदि (ताँवा पीतल या सड्डीका खपराआदि यहपात्रका विकल्पभी जातिकी उँचाइ निचाइकी अपेक्षामें पायाजाता

है और जो यह तर्कनाकरीजाय कि जातीधर्म उससे छूटा हुआ है जबतक प्रायश्चित्त
 पूराहोकर शुद्धिहोजाय क्योंकि सबधर्मोंसे गिरगया विशेषकर जातीधर्म से अवश्यही
 छुटिरहाहै तो इसतर्कनके सम्मुख तांवा या मञ्जीका विकल्पभी दृष्टादहितराहै ति-
 ससे ब्राह्मणाकोतांवा शूद्रकोमञ्जी सत्रीवैश्यको पीतलआदि समभन्ते) भिक्षामागने
 का भी यहनियमहै कि ऐसा विचार न करे कि इसघरमें अच्छामिलेगा इसमें नहीं
 तिससे इसमेंमांगें इसमें नहीं किन्तु विनाविचारकिये सातहीघर मागें उनमें जो कुछ
 मिलजाय उसी से निर्वाह करे=यथाहवशिशयः=भिक्षायैप्रविसेत्सप्तागाराण्यसंकल्पि
 तानिचरेद्भैक्ष्यं=अर्थात्-भिक्षाकेलिये सातघरोंमें जावै और विना विचारकिये घरोंमें
 मांगें (एककालाहारइतिचवशिशयः) और उन्हीं वशिशयने यहकहाहै कि एकदिनमें
 एकहीबार आहारकरै तिससे सायंकालपर भिक्षा मागनी चाहिये= सो यह भिक्षा
 ब्राह्मणआदि वर्योंमें मागनीचाहिये=तदाहसंवर्तः=चातुर्वर्ग्येचरेद्भैक्ष्यं(खड्वांगीसंयता
 त्मवाच=अर्थात्-चारवर्गोंमें भिक्षाकरै खड्वांगनाम कपालकीध्वजा सायलिये रहे
 और अपने आत्माको अच्छीतरह वशमें राखेहै=तथा (वेप्रमनोद्वारितियासिभिक्षा
 र्थंविद्वधातकःइतिपराशरः) इसप्रकारसे अपनाकर्म सबकी सुनाता रहे कि मैं ब्रह्म-
 घातक धरकेदारपर खड़ाहूं भिक्षाकेलिये किन्तु घरोंके भीतर न घुसै यह पराशरने
 कहा ॥ ० ॥ भिक्षामांगनेकी रीति जो कही गई सोही उस दशामें आचरणाकरै कि
 जहाँ वनके मूलफलोंसे गुजारा न होसके क्योंकि संवर्तका यह वचनहै (भिक्षायैप्र
 विशेषग्रामवन्धैर्यदिनजीवति) जब कि वनके फलमूल आदिसे न जीसके तो भिक्षाके
 लिये गाँवमेंघुसै=और भी हत्यारेको इस बारहवर्षकी अवधितक ब्रह्मचर्यके नियम
 कानेचाहिये=तदाहगौतमः=खड्वांगपाशिाडादशवत्सरासुब्रह्म चारीभिक्षायैग्रामप्रविश्ये
 एकमचिक्षाराःश्रयोपक्रमेतसंदर्शनादार्यस्यस्थानासनाभ्यां विहरन्सवनैयूदकोपस्पर्शी
 शुद्धोद=अर्थात्खड्वांगध्वजा हाथमेंलिये बारहवर्षतकब्रह्मचारीहोकरहै भिक्षाकेलिये
 गाँवमेंघुसै अपनीहत्या सुनातेहुये तात्पर्य इसका यहाँहै कि भिक्षाकी जरूरत विना
 गाँवमेंनजावै और बस्तों में जातेसमय या वनमें स्थानआसनपर टिकतेहुयेआर्यपुरुषों
 को वचनरूपी निदर्शनसे उपायका आरम्भ करतारहै जो जो कुछ आर्यपुरुषतावै और
 वनमें विहार करतेहुये जहाँ तहाँ जलाशय पाकर स्नानकरनेका नियमराखै तो वा-
 रहवर्ष पूरेहोनेवादि शुद्धहोताहै ॥ ० ॥ हत्यारेको ब्रह्मचारी इनाकहा तिसका यह
 तात्पर्य दीहरा कि जो वार्ते ब्रह्मचारीको नियिद्धहै तिनका त्याग यहभीराखै बेवार्ते
 आचारकांडमेंब्रह्मचर्यके प्रकारगामेंवरानहो चुकोतहोदेखो=इसीलियेराखनेयहकहाहै

किं=स्थान वीरासनी मौनी मौजी दण्डकसंडजुः भिक्षाचर्याग्निकार्यचक्रुष्मांडी
 भिःसदाजपः—तस्यभवेदितिशेषः=अर्थात्—स्थानपर वीरासन जमाये मौनषाघे मौजी
 वारणाकिये डंड और क्रमंडलुभी लियेहुये भिक्षामांगि निर्वाहकरना और अग्निकार्य
 भी होस आहुति करना कूष्मांडियोंसे सदाजपकरै=ऊपर गीतसके वचनसे यह कहा
 गया कि वनोंमें सर्ववजलाश्रय पाकर स्नानकरनेका नियमराखै० तहाँ ज्ञानके विधान
 से उसके संगभूत सदादिकी प्राप्ति समझी जातीहै कि जो ज्ञानकरै ती मर्षोंका भी
 उच्चारण करै—तथैव(शुचिनाकर्मकर्तव्य)पवित्र होके सबकर्मकरने चाहिये यहवचन
 सर्वथ सब कर्मोंपर साधारण भावसेआच्छदहै तिससे भी यहवात पाईजातीहैकिप्राय-
 श्चित्तवर्ष, व्रतचर्यामितत्पर होनेसे उसवृत्तकी संगभूत जो शौचकी संपत्तिहैतिसकीतिये
 स्नानोंकी तरह सध्यापासन भी करना चाहिये तिसका भी यह प्रमाणा है कि संध्या
 करना सबकर्मोंके साथ पहिलेही आवश्यकहै जिसपर दसका यह वचन प्रमाणा है
 कि=संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यसनहःसर्वकर्मसुश्रुतिकांचित्कुरुस्तेकर्मनतस्यफलभागभवेत्=
 अर्थात्—संध्याकर्मसे विहीन जो पुरुष है सो नित्यप्रति अशुद्ध रहिता और सब तरह
 के कर्मोंमें अयोग्य होताहै अर्थात् जबतक संध्या कर्मनकरै तबतक देव पितर आदि
 सम्बन्धी कोई कर्म करनेका अधिकारी नहीं ठहरेता है क्योंकि ऐसा पुरुष जो कुछ
 कर्म थोड़ा बहुत करै भी तो उस कियेका फलभागी नहीं होताहै यह वैश्वरकी आज्ञा
 रूपा वचनका प्रभावहै (तो इसके बिना इत्यारि का ब्रह्मचर्य आदि व्रतभी निष्फल
 जासक्ताहै) और इसमें यह शंका खड़ी न करनी चाहिये कि पहिले वचनमें पातक
 लगनेसे पातकी का पतन (गिरजाना) कहा गया था कि वह द्विजाती धर्म कर्मों से
 गिरजाताहै अर्थात् द्विजस्यके कर्मोंकी हानि खडी होतीहै और संध्याकर्मभी द्विजाति
 कर्मोंमें मुख्य गिनाजाताहै तिससे उसकी अप्राप्ति होनीचाहिये—क्योंकि उसपत्तित
 (गिरहुये) कोही व्रतचर्याका उपदेश कियागया तिस व्रतका एक अंग संध्या कर्म
 भी करना नूचित होगया—इसलिये अब इसवात पर ध्यान देनाचाहिये कि जैसे द्वि-
 जातियोंके मुख्य तीनधर्म कहेगएथे कि शास्त्रपढना १ सबतरहके यज्ञपूजन करने२
 दानदेना ३ और ब्राह्मण्य जो सबसे बडा द्विजातीहै तिसके छेकर्म अर्थात् तीनतौ येही
 जो लिखेगए और तीन इनसे उपरालू कि एक शास्त्र का पढाना सुनाना कर्मों को
 आज्ञा देना आदि१ दूसरा यज्ञादिकर्म कराना२ तीसरा दानलेना भी ३ इत्यादि और
 भी ससारी व्यवहार जो द्विजातियोंके दशकर्म या याद्व आदि होतेहै जो इस व्रतचर्या
 के अंग भूत नहींहैं तिनकी हानि होजातीहै कुछ उतनी रोक से सबकी नहीं क्योंकि

तीसरेमें तिथिना करनाकहा चौथाभारने में अपराधीका निस्तार किसीप्रकारसे भी न है•सो इसनियमका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक पापके निमित्तपर पहिलेकी अपेक्षा अगिलेमें प्रायश्चित्तकी आवृत्ति बढ़ती जाय कि जितना प्रायश्चित्त पहिले पापमें कराया गयाहो तिससे दूना उनीपापके दुबाराहोनेमें इसीतरह तिवारामें सबसे प्रथम की अपेक्षा तिथिना करायाजाय• यद्यपि एकसाथ एकही प्रायश्चित्तवाला पहिला अथ इसमें नहीं सिद्धहोआ परन्तु जैसे इसमें नैमित्तिक दूना आदि वदताद्विरा तैसा इसीके न्यायसे अर्थात् यही वाक्यभेदका दृष्टांत लेकर दो तीन ब्राह्मण एक साथ भी जो नैमित्तिक शास्त्र का विचार है तिसकी आवृत्ति के अनुवादेसे यह निश्चित भया कि चौथा ब्राह्मण भारने मध्ये उस प्रायश्चित्त का न करना आया गया क्योंकि कारनेसे निस्तारनहीं होताहै तथापि यह वचन उसवार्ता मध्ये नहीं है कि कालान्तर से दूसरा ब्राह्मण भारनेमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान पहिलेकी अपेक्षा दूना आदि कराया जाय• क्योंकि मनु और देवल के उक्तवाक्य से इसवात में वाक्य भेद रूपी प्रसंगबोध पायाजाताहै तिससे—दोतीन ब्राह्मण भारणारनेमें भी बारहवर्ष आदि कोइसा प्रायश्चित्त एकहीवार कियाजाय यही समझमें आताहै क्योंकि (यहाँसक सीमांसाका दृष्टांतहै कि) जैसे अष्टाकपाल होमहै जो आठ मञ्जीके खपरोंमें चक्षुषि के होमहोताहै इसकालनासे कि भेरे सच घरोंमें कभी आगि न लगे उभमें यह नियम नहींहै कि अनेक घरोंके अलिजानेके निमित्त उतने जुदे होन किये जायँ किन्तु एक साथ अनेकघर जलने मध्ये एकहीवार अनुष्ठान कियाजाता है सेसे कामवती आदि और भी अनेकयज्ञहं जो इसीप्रकार एकजातिके अनेक निमित्तोंपर एकहीवारकिये जातेहैं—तथाच मिताक्षरा(यथा—अनन्येकासवतेपुरोडाशमष्टाकपालनिर्वपेत्—इत्यादि गृहदाहादिनिमित्तैयुधोदितानांकासवत्यादीनांयुगपदनेकेष्वपि गृहदाहादिनिमित्तैयु नक्षदेवानुष्ठानं) तैसे यहाँ भी दो तीन इत्याका प्रायश्चित्त एकहीवार किया जाय= नसाधान— इसकानिराण्य सुनो—वचनके विरोधमें न्यायनहीं सिद्धहोताहै और वचन जो मनु और देवलका लिखा गया वह दो तीन ब्राह्मणोंके भारने में प्रायश्चित्त के अनुष्ठानकी आवृत्ति बढ़ाने परही आखडहै परसेसा होनेमें न्यायलभ्य जो(तंत्रानुष्ठान) एकसाथ व्रतचर्याका करना तिससे रोकाहुआ आवृत्तिका विशेष करनेवाला न्याय होजायँ और इससे अन्यथा शास्त्रोंकी पहुच का अनुवाद खडाकरने से अनर्थक ल- ससा होजाने सकताहै और वाक्यभेदका चर्चा जो चलाया सोकुछ वाक्यभेदभी नहीं है क्योंकि मनुदेवलके उस वचन में चौथे ब्राह्मणको आदिलेकर जो बहुत भारजायँ

तिसवधका चर्चाछोड़कर जहाँ दोहीतीन सारेजायँ तिनका दूनातिशुना आवृत्तरूपी प्रायश्चित्तका विधानहै(क्योंकि चौथेको आदिलेकर चौथुना पचगुना छौथुनाआदि होसकनेकी शक्तिसे भी बाहरहै) तिससे वचनोमें एकहीअर्थ समझने योग्य तात्पर्यहै कुछ भेद नहींहै अर्थात् (चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः) चौथेके सारनेमें प्रायश्चित्त से उद्धार नहींहोता इस कथनसे पांचवाँ छटा आदि सब समझेजाते हैं कि बहुतो के सारने से दोय बहुत बढ़ाहै जो प्रायश्चित्त से नहीं भेराजासक्ता है यही आशय देवल आदि ऋषियोंके इसवचनसे भी दीकहै कि (यत्सप्रादर्नाभिसवायपापकर्मसद्वत्कृतम् तस्ये यनिष्कृतिदृष्ट्याधर्मवर्द्धिमनीयिभिः) जो पाप एकवार कियाहो और विना कामनाके इच्छारहित होगयाहो तिसका यह प्रायश्चित्तरूपी निस्तार बहुतसेधर्मज्ञ बुद्धिसानों ने निराय किया और प्रायश्चित्तलोक में ऐसाही वर्ताव देखा—और बिलक्षरा दोय जिनके परस्पर लक्षरा एकसे नहो और बड़े छोटेहो तिनका क्षयहेतु प्रायश्चित्त एक साथ नहीं सिद्ध किया जाता है—इन सब कारणोसे इस प्रकारके अपराधो में दोय के बड़ा पनसे और कार्यों के बिलक्षरा भावसे भी प्रत्येक पापके निमित्त पर जुदे जुदे प्रायश्चित्तकी फेरी होनी ठीकहै—औरसामवती आदि विधान जिनका स्वरूप और प्रयोजन दोसौ सतरह२१७की अधिकोक्तिमें कहिचुके कि एकही वारकरनेसे अनेक पाप क्षय होतेह, तिनमेंभीउनअनेक कार्योंकी बिलक्षणताके विनाही, एकसाथविधान होनायोग्यहै कि जब एकही लक्षणवाले अनेक पाप हो(इसका भी दृष्टांत जैसे पच यज्ञोके त्यागरूपीपापके निमित्तपर सामवती आदि नैमित्तिक विधान करना चाहा तहां यद्यपि पांचयज्ञोके स्वरूप सबजुदे जुदेपांच होतेहें तथापि लक्षणसवका एकही साना जायगा क्योंकि वे सभी नित्यकर्म कहातेहें) यहचर्चायहा प्रसंग मात्रसे किया गया=और जोवचनअभीलिखचुके, चतुर्थेनास्तिनिष्कृति) चौथासारडारनेमेंनिष्कृति नहींहोतीहै सोयह सहापातकोके विययपरआरुदहै क्योंकिपापकेअतिबड़ापनसे प्रायश्चित्तका अभाव इसमें कहागया तिससे—और इसीसेगूढ़का अचखाना आदि छोटे पापोंमें चौथीवारसेभी अधिकबहुतवारके अभ्यासकरनेपरभी उसकेअनुरूपप्रायश्चित्त कीपुन पुन (आवृत्ति) फेरी से कल्पना होनी चाहिये किंतु प्रायश्चित्तका अभाव इनमें न चाहिये ॥ ८ ॥ बारह बर्यका व्रत वर्गान किया सो यह मुख्य सारनेवाले के निमित्तमें कहा गया क्योंकि ब्रह्महा नाम उसीका कहिचुके हैं—अर्थात् अनुप्राहक प्रयोजक आदि हत्यारे के सहायक जो दोसौ सत्ताइस २२७ वाली अधिकोक्ति के प्रारभ मे दर्शागये तिनका जैसा दोयहो या जितनी सहायता हत्यारे को मिली हो

ज्ञानिका जो वचनहै सो जहां उसके प्रयोजनकी प्राप्ति देखीजाय तहां मानाजासक्ता है कि—इत्यारेसे न कोई पड़ै न उससे किसी कर्मकी आज्ञा बूझै न उसके द्वारापूजन आदि कोई कर्मकरै न उसको दानदेवै (यहां भी फिर वही विचार करनाहोगा कि उसको दानदेनेकी नियेध से भिक्षा देनेका नियेध न समुक्ति लेना क्योंकि भिक्षा का विधान उसके निमित्तपर लिखिचुके हैं तिससे भिक्षा देना एक वाचनिकधर्म है) इसी प्रकार न कोई इत्यारे को पढावै न यज्ञ आदि कोई सा कर्मट विधान उसको करावै न करनेकी आज्ञादेवै न संभायराकरै न रासरमौञ्चरि का सम्बन्ध राखै न उस से कुछदान लेवै न विवाह आदि सम्बन्ध उससे करै—अब ऊपरकी प्रकृति वार्ता पर ध्यान करी कि—इत्यारेकी वृत्तचर्या जो मनु और याज्ञवल्क्य और गौतम आदि ऋषीचर्याकी नियत करीहुई ब्राह्मण्य की अवधिसे एकही है कुछ जुदे जुदे ग्रन्थों में जुदी तरह नहीं है किंतु अविरोधी मत परस्पर सबका एकहीहै—तिसका यहउदाहरण समुक्तिलेना चाहिये कि जैसे इसी २४३के प्रलोकमें (भिक्षाशोकर्मवेदयत्) यह योगीचरने कहा कि अपना कर्म पुकारते हुये भिक्षा भोजन करै और कुछ नहीं कहा तो यह अपेक्षा शेरही कि भिक्षा मांगनेका कैसा पावहो या किनके घर मांगनी चाहिये या कितने घरोंमें तहां यह श्रेय अपेक्षा आपस्तंब आदिके उन वचनोंसे पूरीहोजाती है जो (लोहितकेनखंडशरावेणा इत्यादि) पहिले लिखिचुके हैं सो यह कोइना विरोध नहींहै—इसीलिये सब ऋषीचर्या का एकही कल्पना रूपी उपदेश होनेसे विरले संग्रहकारोंने अपने ग्रन्थमें यह लिखा है (मनुगीतमाद्युक्तोक्तकर्तव्यतायाःपरस्पर सापेक्षत्वेऽपि विकल्पपडति तदनिरूप्यैवाक्तमिति संतव्यमिति विज्ञानेचरः) अर्थात् मनु गौतम आदिकी कहाँ इस कर्तव्यताके परस्पर एकसी होने परभी विकल्प समुक्ताजाता है• सो यह विकल्प समुक्तने वाजोंने व्यवस्था निरूपणा किये बिनाही कहि दियाहै यह समुक्तिलेना ऐसा विज्ञानेचरने कहा कि जिनका निरूपणाकियाहुआ मिताक्षरा नाम ग्रन्थहै—अब ऊपरसे वर्णन किये हुये सबका तोड़ यहां करतेहै कि—इसी उक्त प्रकारसे ब्राह्मण्यकी वृत्तचर्या पूरीकारके ब्रह्मइत्यारा शुद्धिकी पहुँचै अर्थात् फिर भी पहिलेकी तरह अपने सब धर्म कर्मोंमें लगायाजाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था जोकही गई सो इच्छा बिना किसी धोखा आदि ओरही कारणासे ब्राह्मण्य मारहारने मर्षी समुक्तनी क्योंकि=मनुका यहवचन पहिले लिखि चुकेहै (इयं विशुद्धिर्विनाप्रनास्या कामतोद्दिजन कामतोद्दिजायवेत्किं कर्तव्यं विधीयते) कि यह विशुद्धि उसके लिये कहीगईहै जो कामनाके बिना ब्राह्मण्य मारिके इत्यारा हुआहो किन्तु कामना से बंध

करने में निस्तार नहीं होता=अत्राप्यर्थवादः—इसमें यह शीचना चाहिये कि बिना इच्छा मारडारने मध्ये जो विशुद्धि कही गई तहां क्या दो तीन ब्राह्मणों के मारने में प्रायश्चित्त का (तंत्रस्य) एकीभाव कहीके (आरति) उसके फेरें भी ठहिरार कि फिर फिर किया जाय० तहां कोई ऐसा मानते हैं कि (ब्रह्महाडादशाब्दानि) इसमें ब्रह्मशब्द है सो एक और दो और बहुत भी ब्राह्मणोंपर जाति वाचकता से साधारण आरूढहै तिससे जो एक ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तहै वही दूसरे और तीसरे में भी समुभ्नाजाय० तहां एक ब्राह्मणके मारनेनिमित्तसे एक प्रायश्चित्तका अनुष्ठान होनेमें यहकियागया यह नहीं ऐसी तकरारपर यह कहनेको सामर्थ किसीकी नहींहै कि० तरह तरहके देश जुदे जुदे प्रभावांवाले काल अनेक लक्षणोंवाले इत्याके कर्ता लोग नानाभाति उनके किये कर्मोंकी युक्तियां जिनमें विलक्षण चिह्नोंसे जुदे अनेक दोष फिर इच्छा या बिना इच्छासे मारनेका अनुबंध यह उपरालूहै तहां यह विशेष्य कारणा सबसे जुदाहै कि इन सबके जुदे भेदों से निर्णाय कियेबिना या इस अपेक्षासे कि भेद के बिनाही उन सबका विशेष्य कोई चिह्न हाय आजाय सो नहीं हाय आता है तिस कारणासे (तंनानुष्ठानहीसे अर्थात् एकही बार बारहवर्षकी व्रतचर्याकरानेसे पापनाश होजानेवाले कार्य की सिद्धि दरारानी ठीकहै० तैसा इसपर यह दृष्टांत है कि तंत्र रूपी (अर्थात्दोषातोनोंकेसकहीबार) अनुष्ठानोंसे प्रयाज आदि यज्ञोंके द्वारा अग्नि संवधी आदि देवताओंमें तंत्ररूपहीसे अनेकोंके उपकारवाले कार्योंकी सिद्धिहोतीहै—और ऐसा न कहिना चाहिये कि दो तीन ब्राह्मणों के वधमें पाप के गरुआपन ने गौतमका वचन लेनाहोगा यथाहगौतमः (सर्गसिधुत्तरिणपुत्रिणालघुनिलघुनि)अर्थात् बड़ेपापमें बड़ेप्रायश्चित्त औरछोटेमें छोटेइसवचनसेद्विबारात्तित्वाराजुदेप्रायश्चित्तों का करना ठीक होगा इसहेतुसे कि (विलक्षणा) अर्थात्) जिनके लक्षण आपस में सबसे नहीं ऐसे दोकार्योंकी सिद्धि एकसाथही कभी नहींहोती—ऐसा किमलिये न कहिनाचाहिये कि यह गौतमका वचनहीं (आरतिविवायक)फेरें करवानेवाला नहीं अर्थात् दो तीनबार जुदे प्रायश्चित्त करानेकी आज्ञा इसमें नहींहै० किन्तु एक समयपर एकसाथ बड़ेहुये बड़े छोटे पापोंकी व्यवस्था दर्शानेवाला ठीकहै और यह भी न कहिना चाहिये कि दूसरा ब्राह्मण मारने से मिलकर पहिले पापमें बडापन होवक्ताहै सो नहीं क्योंकि इसजातका प्रसारा कहीं नहींहै० बल्कि जो मनु और देवलका एकही यहवचनहै (विवेःप्रथमिकादस्मात्द्वितीयेधिगुणाम्भवेत् ततोयेधिगुणं प्रोक्तंचतुर्येनास्तिनष्कृतिः) कि इसपहिले अपराधपर कहे विधानसे दूसरेमें दूनाहोय

तिसके अनुसार उनके प्रायश्चित्तोंकी बड़ाई छोटाई कल्पित करनी चाहिये अथवा जहाँ सहायता की विषय तौल नाप न होसके तहाँ यह सामान्य एकनियम है सो लेना चाहिये कि अनुग्राहक पुरुष हत्यारेके प्रायश्चित्तसे चौथाई कम करे तिससे जहाँ हत्यारेको बारहवर्ष नियतहों तहाँ उसको चौबर्ष की व्रतचर्या करनी चाहिये और प्रयोजक पुरुष हत्यारेसे आधा कमकरे तिससे उसके बारह वर्षके नियम साय छेवर्षकी व्रतचर्या करनी चाहिये और अनुमन्ता पुरुष को अर्द्धाई पाद कम करके उदपाद करना चाहिये तिससे उसको बारह वर्षके स्थलपर४॥ साडेचार वर्षकी व्रत चर्या करवाई जाय और निमित्ती पुरुष हत्यारेसे चौथाई तीनवर्ष की व्रतचर्याकरे= अतएवसुमन्तुः-तिरस्कृतीयदविप्रोहत्वाऽऽत्मानंमृतोयदि निर्गुराःसाहसात्क्रोडाद्यु हसेधादिकारणात् धैवार्यिकं व्रतं कुर्यात्प्रितिलोमां सरस्वतीं च गच्छेद्वापि विशुद्धयंतया पश्यतिनिश्चितम्=अथर्वनिर्गुरोविप्रोहत्वात्तथैर्निर्गुरोपरि क्रोवाद्द्वैप्रियतेयस्तु नि निमित्तंभर्त्सितः वत्सरव्रतं कुर्यान्नाः कच्छु विशुद्धये(गुरावड्वाहारात्स्वर्षं नोत्रोव शुद्धति तदपिसुमंतुः) के श्रममयुनखादीनां कृत्वातुवपनं वने ब्रह्मचर्यं चरन्विप्रोदर्थेणो केनशुद्धति=अथदि-सुमंतुने निमित्तीके भी कई भेद कियेहैं कि-जब कोई गुरावार ब्राह्मण अपमान किया हुआ देखको विनाशिके जिसके निमित्तसे मरजाय या निर्गुरा ब्राह्मण घर खेत आदि छिन जानेसे साहस करि क्रोवसे जिस किसीके निमित्त पर मरजाय सो निमित्ती पुरुष तीन वर्ष का व्रत करे या इस पापकी शुद्धिके लिये सरस्वती नदीकी धाराके समुख उतने वर्ष यात्रा करे यह निश्चित हुआ=यद्वा=अतीव निर्गुरा ब्राह्मण हो सो अत्यन्त निर्गुरा किसी मनुष्यके ऊपर क्रोवसे मजाय जो घर खेत आदि किसी भगड् बाले निमित्त के विनाही घुडकी ताड़ना आदिसे मताया वा लज्जित किया गया तो जिसके ऊपर यह मरजाय सो पुरुष अपने पापकी शुद्धिके लिये तीनवर्षतक कच्छुनामक व्रतकरे तो शुद्धहोय(कदाचित्तगुरावाब्राह्मणके ऊपर किसीनिमित्तसे निर्गुरा ब्राह्मणाअपघात करे तोनिमित्ती गुरावानुब्राह्मण एकहीवर्षमें ब्रह्महत्या का व्रत करिके शुद्ध होजाता है यह भेदभी सुमंतुने कहाकि) विद्वान् क्रियान्नां विप्र एकवर्षसे पवित्र होताहै बाल दाडी मुँह नख आदिका मुँडन करायके वनमें ब्रह्मचर्य से आचरना करतेहूये ॥ ० ॥ जैसा यह अनुग्राहक प्रयोजक आदिकों का क्रम कहागया इसी नानसे यथाशौरय उनकी भी प्रायश्चित्त कल्पना कर्नी चाहिये जोकि इन प्रधान अनुग्राहक प्रयोजक आदिके साथी अनुग्राहक प्रयोजक आदिकेहों० इस दृश्यत्याका मूल बर्दी आपस्तंबका वचन है जो२२७दीर्घी

सत्ताइस की अधिकोक्ति में द्यौरेंद्वार अर्थसे लिखिचुके केवल मूलमात्र यहाँ फिर भी लिखे देते हैं कि (प्रयोजयिताऽनुमंताकर्त्ताचेति स्वर्गनरकफलैद्युक्कर्मभूभागिनो यो भूयःश्रमतेतस्मिन्फलविशेषः) ॥ ० ॥ तथैव प्रोत्साहक उत्साह दिलाने वाले आदि कुछ औरभी अपराधी होते हैं तिनकी भी दंड और प्रायश्चित्त दोनों विधि कल्पना करनी चाहिये—तदाह पैदीनसिः—हंतासंतोपदेयाच तथासंप्रतिपादकः प्रोत्साहकःसहायश्चतत्रमार्गानुदेशकःआययःशस्त्रदाताचभक्तदाताविकर्मिणास उपेक्षकःशक्तिमां प्रवेद्योयवक्ताऽनुमोदकः अकार्यकारिणास्तेयांप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत् यथाशक्त्यनुरूप चदण्डं चैयांप्रकल्पयेत्—अर्थात्—हंता•मंता•उपदेया•संप्रतिपादक(औरकुकर्मियोंका) प्रोत्साहक•सहायक•मार्गानुदेशक•आययदाता•शस्त्रदाता•भक्तदाता• उपेक्षक जो शक्तिमात्र ही• दायवक्ता•अनुमोदक•ये सब अकार्यकारी होते हैं तिनका जुदाजुदा प्रायश्चित्त निरूपण करें और उनकी यथाशक्तिके अनुरूप तथा कर्मोंकी सुस्ता लयुता के अनुरूप उनको बराड भी निरूपण करें—यहाँ—पैदीनसि के बताये अपराधियोंकी जो नाम संज्ञा लिखी गई तिसके अर्थ समझने चाहिये कि—सबसे प्रधान हंता माननेवाला दहिरता है—और मंता अनुमंता कोभी कहते हैं कि जिसके दो भेद पहिले २२७ वीसौ सत्ताइस की अधिकोक्ति में लिखिचुके तथापि अर्थांतर से इसमें कुछ विशेषता है कि वह अनुमंता प्रवृत्त हुये को प्रवृत्ति करता है सोभी अपने या परायेसतलवकेलिये किंतु यह मंतापुरुष बिना प्रवृत्तकोभी प्रवृत्तकराता है सोभी उपेक्षासे किजिस में न अपना सतलव न अपने किधीमिषकाहो(इसका यहदृष्टांतहै किदो रक्तदुर्जनोंने आकर ऐसाकहाकि आपकेसमीपही अग्निक देवदत्तका निवासहै इप्रलोग उसके साथ ऐसा उपद्रव किया चाहतेहैं जोआप इसमें दखलदेकर हरज नकरें अर्थात् निपट कुछ दखल न करें बल्कि गुलगफाडा के होनेपरभी चुपचाप होके अज्ञानबनि जायँ तो हमारा यह काम अच्छा बनिजाय बसऐसी प्रार्थना की जिसने सानिलिया वही मंता मानने वाला कहाया सो अनुमंता से कुछ विशेष अपराधी जानों वधोक्ति धर्म मर्यादा के अनुसार इसको यह चाहिये था कि प्रार्थनाकरने वालोंकी नियेधकरता और साफ कहदेता कि मैं ऐसे अनर्थ को नहीं मानि सकता बल्कि उनकोकिसी प्रकार भय सुनाकर हिम्मत तोड देता और मनर्थों के सम्मुख उसका प्रकाशभी करदेता कि ऐसा उपद्रव मेरे समीप न होने पावे तो कदापि न होसकता—उपदेयाके लक्षणा २२७ की अधिकोक्ति में लिखिचुके हैं कि वह तीन भाति के प्रयोगकों में एक उपाय का उपदेश बताने वाला होता है—संप्रतिपादक उसका नामहै जो मारने

वाले को जल्दो उपाय सामग्री आदिका अबसर दौर ठिकाना तैयार करै जैसे जहरमिली मिटाई बनाकर लावेना या जिसको मारना चाहते हैं तिसको किसी बढाने से बूलाकर मौजूद करवेना आदि सिद्धिके अनेक ढंग होते हैं—प्रोत्साहक तर्गीवदेनेवाला कहाता जो हंता की अतिशय उत्साह दिलाकर बुरा करने पर उतारू करै इसको प्रयोजिता भी कहिनेहैं—सहायक जो साथ रहकर सहायता करै इसीको २२७वाली अधिकोक्तिमें अनुग्राहक इस नामसे लिखिचुके हैं टीक वयोः। उभी जगह देखो—मार्गानुदेशक जो मारने वालों को साथलेकर मार्ग बतानै अर्थात् जिसको लूटा मारा चाहते हैं तिसके ठिकाने तक पहुँचावे—आश्रयदाता जो घातियों को उनकी घात टोक लगाने के लिये अपने पास ठिकावे—शस्त्रदाता जो तलवार छुरी या फांसी जहर आदि सौत के औजार घातियों को देवे—भक्तदाता जो विकर्मियां घातियों को भोजन देकर उनको मजबूत करै—उपेक्षक जो आप शक्तिमात्र बलवानहोकर टोकअवसरपर पुकार बुनिके उपेक्षा करके चुपकारहिजाय उद्वहोते देखै ब्राह्मणै परधावा करिके दुष्टों को मारै भगावे नहीं—दोषवक्ता जो घातियों को भेदबतावेकि जिसको मारना चाहते हो वह अमुक समयअमुक ठिकानेवैठताहै तहां अमुकहोशियारी आदिदोषके प्रभावसे तुम्हारा काबू न चलैगारातिको या दिनमें अमुकठिकानेबहनशापोके सोताहै तभी तुम्हारा कार्य बनेगा इत्यादि याइसरीति से दोषों को सुनावै कि उसके बेरा या भाई से इन दिनों पूरा वैरहै जो तुम उनको अपनी राहमें मिलाली तो बड़ो सुगमता से कार्य बनि सक्ताहै इत्यादिकोईसा दोषभेद बतावे सो दोषवक्ताहोता है—अनुमोदक जो घाती का अनुमोदन इस प्रकार से करै कि जो काम तुमने कसता बिचारा वह मॅने भी पसंद किया अवश्यकरौ—येसभीविकर्मी अकाजकस्नेवालेहोतेहैं यथा योग्य सबके लियेदण्ड और प्रायश्चित्तका निरूपणकरैयहपैठीनसि का कथन हो॥०॥ इन्हीं पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार जहां बालक बूढे आदि अपराधी यदि साक्षात्कार आपहो कर्ता बने हों तौभी उनकी मूर्चित प्रायश्चित्त से आधा करने की आज्ञा देनी चाहिये—तदोर्हांगिराः=अशीतिर्यस्यवर्षाणि वालीवाच्यूनयोः। प्रायश्चित्ताधर्मर्हित स्त्रियोरोगिराएवच=तथा१२अवचर्नांतरन्तु=तथा१२वर्षाद्वादशार्हयोर्दशोत्तरैर्धर्मवया अधर्मवभवैत्पूर्वां तुरीयंतत्रयोयितान्=अर्थात्—अंगिरा ने कहा है कि जिसकी अवस्था अस्मीवयं पूरी होचुकी सो बूढा समझना और बालक सोऽहवयंसे कमहो तिसकी समझना यद्वा विकल्पसे बारह वयंके भीतर भी बाल अवस्था होती है ये लोग आधा प्रायश्चित्त करने के योग्यहैं और स्त्रियां जो पूरी अवस्था की हों

मितासरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

३०१

बालक बूढ़ी नहीं सोभी अर्ध प्रायश्चित्तके योग्यहै तथैव रोगी पुरुष भी बूढ़ेके समान आधा करने के अधिकारी होतेहैं=ऐसाही दूसरा यह वचन है कि-तद्वत् वारह वयके भीतर और अस्सी वयसे ऊपरभी पुरुषोंको आधा प्रायश्चित्तहोय तहां स्त्रियों को चौथाई करवाया जाय क्योंकि पहिले वचनमें स्त्रीपनसे आधा कहाथा अब यहां उनके वृद्धापन और बालपनसे आधेका आधा रहिगया (बालकपनके दोभेद इस हेतु से कहेगए कि सोरह वय पूरे होनेपर वृद्धस्थी के व्यवहारभार सोंपे जातेहैं तवसे पूरा पुरुष गिनाजाता है सोरहके भीतर बाल अवस्था मानी जातीहै क्योंकि संसारी व्यवहारोंकी निपुणता नहीं आतीहै परन्तु विल्ला सोरहके भीतर भी डीलडोल और बुद्धि की चतुरतासे अति निपुण होजाता और व्यापार आदिके धंधे साधन करता है तिससे ऐसा सोरहके भीतरभी पूरे प्रायश्चित्तके योग्य माना जासक्ताहै तिससे यह वारहवय के भीतर बालक मानाजाता है और वारहके भीतरही आधे प्रायश्चित्तकी योग्यता इसकी रहितै किन्तु वारहवय पूरे होनेसे ऊपर यह पूरे प्रायश्चित्तका भागीहोता है)=और भी यह भेदहै कि=वारहवय के पहिले जिसका उपनयन कर्म जनेऊ आदि न हुआहो तिसके लिये आधेका आधा सिर्फ चौथाई व्रतचर्या प्रायश्चित्त की चाहिये=तदाह विष्णुः=स्त्रीगामर्धप्रदातव्यं वृद्धानांरोगिणांतथा पादोवालयुदात्तव्यःस वर्षापेष्वायंविधिः=अर्थात्=निरोगिनि पूरी स्त्रियों को आधा प्रायश्चित्त देना कहा तथा बूढ़े पुरुष औ रोगी पुरुषों को आधा कहा बालकों को चौथाई देना चाहिये सभी पापोंमें यह विधि जानो (यहाँ चौथाईकी अपेक्षामें बालक उन्हींकी समुभना जिनका संस्कार न हुआहो क्योंकि पहिले वचनों में आधा देना कहि चुके हैं तहां उपनीत बालक समुभना होगा) इस प्रश्नकी अपेक्षामें कि अज्ञान बालकोंसे क्योंकि प्रायश्चित्तकी साधना होगी यह उत्तरहै कि आगिला वचन देखो=यदाहशंखः=ऊ नैकादशवयस्यपंचवयस्यत्पिरस्यच प्रायश्चित्तचरेद्वातापितावाऽन्यःसहजजनः (इत्येवं प्रतिपाद्यप्रचादुक्तं) अतोबालतरस्यास्य नापरावोनपातकस राजदगडोनतस्यास्ति प्रायश्चित्तनविद्यते इति (तदपि संपूर्ण प्रायश्चित्ताभाव प्रतिपादनपरं न पुनः सर्वत्मना तदभाव प्रतिपादनपरं इति नितःक्षराकारः) अर्थात्=शंखने कहाहै कि पांच वयसे ऊपरका बालक जो ग्यारह वयके भीतर अवस्थामें हो तिसके किमी अपराध के होनेमें प्रायश्चित्त उसका भाई या पिता या कोई और हितहो सो करै (यहकहि कर पीछे यह भी कहा कि) अतः इस पांच वयसे भी नीचे अति बालक जो कोईसा पापकरै तो उसका न अपराध कोईजुमड़े न पातक (उसकी जातिसे गिराना) है न

उसके लिये राजदंड है न प्रायश्चित्त है (इसपर सिताक्षराकारने यह भी लिखा है कि यह नकारोंवाला शंखका वचन है सो भी संपूर्ण प्रायश्चित्तका अभाव दशनिवाला बेशक है परन्तु यह नहीं कि विल्कुलही प्रायश्चित्त न कियाजाय क्योंकि) शास्त्र में एक यह वचन है कि ब्राह्मण कहीं न माराजाय जहां मारेजाने के समय पुकार हो उसको मुनि कर भी मचलोग दौड़के बचावें किन्तु जहाँतक पुकार की आवाज पहुँचतीहो उस टप्पेके भीतर जो कोई कहीं मौजूदहों यह उजर नहीं कर सक्ते हैं कि हम इतनी दूरथे या हम अमुक आयम संन्यासी आदि कोई थे हमको कुछ सम्बन्ध न था•दूसरा यह वचनहै कि तिससे ब्राह्मण सत्री और वैश्य भी सुरा न पीवें इत्यादि ऐसे और भी वचनहैं इनमें अवस्था की विशेषता लिये बिनाही जातिमात्रके अधिकार प्रकट किये हैं तिससे उस पांचवर्षसे नीची अवस्थाके अपराधी वालोंके बदले प्रायश्चित्त उनके पिता धाता आदि को करना चाहिये कि जिससे पापों के द्वारा उनके प्रारंभ न बिगड़ने पावें (किन्तु पिता या धाताको अपराधी का प्रतिनिधि होना कहा तिसका यह कारण है•वेद और धर्मशास्त्र में पिता का अधिकार है कि पुत्रोंको जन्म देकर पाले फिर संस्कार करे वेद विद्यामें चतुर बनावें और सदाकेलिये उनकी जीविका वृत्ति भी कायम करदेवें•जहाँ पिता नहो तहाँ जेठे भाईको यह सब करनेका अधिकार होता है क्योंकि पिताके पदपर जेठा पुत्र स्थापित होताहै•जहाँ जेठा भाईभी न हो तहाँ बालकों की रक्षाके अधिकारी उनके कुटुंब या नाते रिश्तेके लोग रक्षक होतेहैं कि जिनको तन धन आदि सर्वथा रक्षा करनेका अधिकार न्याय मार्गसे पहुँचता हो) जहाँपर प्रायश्चित्तों का सन्निपात आनि परें तहाँ का निर्वाह आगे लिखते हैं ॥०॥ सन्निपातका यह उदाहरण है कि जैसे किसी पुरुषने एकजगह एक ब्राह्मण मारा तिसका पूरा प्रायश्चित्त उसको लगा और दूसरीजगह वही अपराधी किसी ब्रह्मघाती का प्रयोजक आदि सहायक बना तिस अपराधका पूराप्रायश्चित्त नहींहै अर्थात् आधा तिहाई चौथाई जो कुछ विचार से उसके जिम्मे ढहिरें सो ऊना प्रायश्चित्त भी करना चाहिये तो यह बड़े छोटे प्रायश्चित्तों का सन्निपात कहाता है तहाँ बारह वर्ग आदि का जो बड़ा प्रायश्चित्त है तिसके बीच आइ परने वाला प्रयोजयित्व आदिसे सहायता संबन्धी जो छोटा प्रायश्चित्तहो सो बिनाकिये भी प्रसंग नामक मर्यादासे कियेके समान माना जाता है अर्थात् एकही अनुष्ठान से दोनों कार्यकी सिद्धि होजाती है (धर्मशास्त्रमें प्रसंगमर्यादा इसीका नामहै कि एक प्रधान कार्य करनेसे उसका प्रासंगिक भी दूसरे पुरुषका सम्बन्धी कार्य बिना किये

भी सिद्ध हुआ माना जाय) परन्तु इससे यह शंका न करनी चाहिये कि जब यही निर्वाह की मर्यादा ठहरी तो इसके प्रभाव से सामान्य विशेष के समुभ्ने विना भी छोटे कल्पका अनुष्ठान करनेसे बड़े भी प्रायश्चित्तकी सिद्धि विना किये होजायाकरै • क्योंकि इसी शंका की अपेक्षा से इस निर्वाह के और भी तात्पर्य पाए जाते हैं कि प्रथम तो जहाँ देशकाल दोनोंके कुछ अन्तरसे बड़े छोटे दो प्रायश्चित्त लगेहोगे तहाँ दोनोंही भिन्न भिन्न अनुष्ठान करार जायँगे तिससे यह निर्वाह की मर्यादा केवल उसी जगहपर समुभ्नी चाहिये कि जहाँ एक साथही दोप्रायश्चित्त किसी पर आच्छेद हुयेहों अर्थात् अति स्वल्पकालके बीचमें कुछ आगे पीछे आच्छेद हुयेहों तहाँभी उन के निर्वाहका विचार आगे पीछे लगाने के अनुसार नहीं किया जासक्ता है कि जो पहिले छोटा लगाहो तो पिछला बड़ा भी उसके करनेसे सिद्धहुआ मानाजाय किन्तु यही नियम सिद्ध होताहै कि बड़े प्रायश्चित्तके करनेसे छोटा प्रायश्चित्त प्रसंगमात्र से सिद्धहुआ माना जायगा चाहें कोईसा पहिले या कोईसा पीछे उत्पन्न हुआहो कुछ इसपर नियम नहीं है—और—यह भी तर्क न करनी चाहिये कि चैवके वच करने से उपजे पापके विनाशको अनुष्ठान किये हुये से कैसे उस पापकी निवृत्ति होगी जो विष्णुस्मिन्नका मरवाना चाहने से उत्पन्नहो—क्योंकि चैव आदिकी अपेक्षा यहाँनहीं है—इससे यह समुभ्ना चाहिये कि जैसे कामनाके नियोगोंकी सिद्धि के लिये और स्वर्ग प्राप्त होनेके लिये भी अनुष्ठान किये आग्नेय आदि कर्मों से नित्य नियोग भी सिद्ध होजातेहैं तैसे यहाँ भी बड़े प्रायश्चित्तमें छोटे प्रायश्चित्तका करना सिद्धहोता है ॥ अब इससे आगे दो एक पंचायती व्यवस्था कही जायँगी क्योंकि यहाँ तक तो मनु याजबल्वय आदिके वचनों में विरोध कुछ नहीं था परन्तु अगिरा आदि कुछ ऋषीयों के ये से वचन आगे आँवेंगे कि जिनसे परस्परभी कुछ विरोध देखने में आता है और अबतक जो व्यवस्था सिद्ध होचुकी तिससेभी निराला मार्ग उनका प्रतीतहोता है उन सबकी इसीव्यवस्थाके अनुकूल सिद्ध करनेकेलिये सब ऋषियोंकी पचायती तोड़ सरोइसे व्यवस्था कही जायगी कि जिसमें सबकी रियाअत कुछ कुछ बनी रहे ॥ पंचायती अनुकल्प—ये अनुकल्प उनके लिये कहे जायँगे कि जो कोई प्रायश्चित्त की साधना में अशक्त हों परच धनसे कुछ सपन्न हों—तहाँ—एक अगिरा का वचन है (गवांसहस्रविधिवत्पात्रेभ्यःप्रतिपाद्येद ब्रह्महाविप्रमुच्येतसर्वपापेभ्य रवच) अर्थात्—एक सहस्र गौँँ जुदे योग्यपात्रों का विधि से समर्पण करे तो ब्रह्म घाती ब्रह्महत्या से और सबतरह के पापों से छूटि जाय—सो यह सहस्र गौँँ का

दान उस दशापर आरूढ़ है कि जहां गुरावाच ब्राह्मणा यज्ञमें वैदा हुआ माराजाय
 जैसा २५२ दोसौ बावन प्रलोकमें योगीश्वर कहेंगे (द्विगुरांसवनस्येतुवाहमरोब्रतमादि
 शोद) कि बारह वर्ष से दूना चौबीस वर्षका व्रत उसको आदेश करें जिसने यज्ञस्य
 ब्राह्मणा माराहोय) तहां जो चौबीस वर्षकी व्रतचर्या करसकनेमें अममर्थहो तिसको
 पूर्वोक्त हजार गऊका दानकरना सूचित हुआ है क्योंकि वह प्रायश्चित्त बहुतबड़ा
 है—अन्यथा जहां सिर्फ बारह वर्ष का व्रतप्रारंभ किये पीछे कभी पूरा करनेमें अस-
 मर्थ पाई जाय तहां सहस्र गऊदान करना नहीं सूचित है क्योंकि उसके लिये केवल
 ३६० तीनसौ साठि गोदान की योग्यता पाई जाती है क्योंकि वहां बारहवर्ष की
 व्रतचर्या में बारह बारह दिनके अनुष्ठान वाले अनेक प्राजापत्योंके फल सिद्ध होतेहैं
 तिनकी सब गिनती जोड़नेसे ३६० तीनसौ साठि प्राजापत्यहोते हैं तिनकी सावनाश्र-
 शाक्त मे न होसकने से तीनसौ साठि गऊदानकी योग्यता पाई जातीहै (प्राजापत्य
 क्रियाश्रक्तौ विनृदद्याद्विचक्षणः गवामभावेदातव्यंतन्मल्यं वानसंशयः) यह भी एक
 नियम है कि जिसकी किसी हेतुसे प्राजापत्य करनेकी आवश्यकता ठहरीहो और
 वह करने में अशक्त हो तहां विवेकी पुरुष दूध और बच्चा सहित गऊदान करे तो
 प्राजापत्य करने का फल पावे जो गऊ ना मौजूद हों तो निःसंदेह उनका मूल्य देना
 चाहिये—इस न्याय के अनुसार जो प्रत्येक प्राजापत्यके बदले एक गोदान क्रियाजा
 तो तीनसौ साठि प्राजापत्यों के प्रतिस्थान तीनसौसाठि गऊ चाहिये पर एक हजार
 गऊ देना इसमें नहीं चाहिये क्योंकि न्याय वही कहाताहै जो जिसके योग्यकाम
 या वस्तु हो उसीसे योग उसका किया जाय (यह तर्कना इसमें श्रेय रही कि प्राजा-
 पत्य के विधान में इतना विशेष नियम है कि बारह दिन में पूरा करिके पीछेतोन
 दिन उपवास भी होता है और यहां जो न्याय अभी लिखचुके तिसमें बारह वर्षके
 सभी दिन हिंसान में जोड़े गये उपवासों के निमित्त से तीन वर्षों और चाहिये तब
 तीनसौ साठि प्राजापत्य पूरेहों सो किसलिये अचुरे गिनती किये गये• इसका यह
 समाधान है कि प्रायश्चित्तो पुरुष को वनमें रहना वनफल खाना जटा रखना
 आदि अनेक भांति के तपकरने होते हैं तिनसे तीन दिनके उपवास विनाभी उसका
 प्राजापत्य अचुरा नहीं ठहरता किन्तु पूरेके तुल्यमाना जाता क्योंकि इसके निरंतर
 अनेक प्राजापत्यके समान व्रत देतेहै वह तीनदिन अधिकवाला नियम उसके लिये
 नमस्कना जो सिर्फ एकही दो प्राजापत्यकरै ॥ ० ॥ और जो शंखने बारहवर्ष प्राय-
 चित्त की व्रतचर्या पूरी करने परभी सहस्र गोदान करने कहे तिसका भी निर्णय

समभक्त लेना उचित है—यथाह शंखः=पूर्ववदमत्तपूर्वचतुर्वारोयुविप्रप्रभाष्य द्वादश
 वत्सरात् यदधीदसार्धसंवत्सरंचक्रतान्यादिशेत्तेयामते गोसहस्रं तदर्थं तस्यार्धं तदर्थं द
 द्यात्सर्वेषां वर्णाणां मानुषैर्योरोति=अर्थात्—पहिले नियम के समान अज्ञानतासे हो-
 गये पापों मध्ये चारों वर्णोंमें समझना कि ब्राह्मणों को मारिके बारह वर्षों क्षत्री की
 मारिके छः वर्षों वैश्य की मारिके तीन वर्षों शूद्रकी मारिके डेढवर्षकेव्रत आदेश करें
 तिनकेसमान होनेके अंतमें उसीवर्षा क्रमसे हजार गऊतिसकी आधी पांचसौ तिसकी
 आधी अर्थात् सौ तिसकीआधी सवाउसौ गऊदान करें—सो यह व्रत और गोदानदोनों
 कर्मकी आज्ञाआचार्य कुलप्रधान आदि उत्तमपुरुषोंको मारनेमध्ये समझनीक्योंकि
 दो बात मिलके बहुत बड़ा कर्म ठहरे तिससे उत्तम पुरुषों का विषय समझना—
 इस वचन में जो प्रायश्चित्त के बड़प्पन से उत्तम पुरुष के मारने मध्ये पापका बड़ा
 पन प्रकटकियारायातिसके प्रभाराकी अपेक्षापरदान और हिंसाका फलपुरुषहीकी
 उत्तमता से दक्षनेभी दर्शाया है तिसकी यहां लिखते है—यथाह दक्षः=समभक्ताह्यरा
 दानंद्विगुणाब्राह्मणव्रतं वे आचार्येशतसाहस्रंसोदर्येदत्तमक्षयम्—समद्विगुणासाहस्रमानं
 त्यंचयथाक्रमम् दानंफलविशेषःस्यात्विंशत्यांतद्वदेवहि=अर्थात्—दक्षने कहाहै कि
 अब्राह्मणकी देनेसे समानफल और ब्राह्मणव्रत की देनेसे दूनाफल और आचार्य ब्रा-
 ह्मणकी देनेसे सैकड़ों हजारफल हेतैहैं और सहोदर भाईको देनेमें अक्षयफलअर्थात्
 जिसका अंतनहीं होता ऐसा बड़ा फल मिलता है इसी वचनकी व्याख्या आगे अ-
 र्थांतर से फिर होगी क्योंकि दो अर्थ इसमें होते हैं) समान और दूना और हजारों
 और अनंत ये चारों भाँतिके फल यथा क्रमसे दानमें विशेषता रखते हैं तैसेही यथा
 क्रमसे हिंसा करने में भी विशेषता रखते हैं कि जैसे उत्तमको मारा होगा तसा अ-
 धिक पाप होगा उसीके अनुकूल प्रायश्चित्त भी अधिक ठहराया जाताहै (इस
 वचनमें अब्राह्मण और ब्राह्मणव्रत व जो कहेगये—तहां छः भाँतिके अब्राह्मण कहाते
 हैं—तदाह शातातपः=अब्राह्मणास्तुयत्प्रोक्ता ऋषिणातत्त्ववेदिना अर्थात् राजभूतस्तेयां
 द्वितीयः क्रयविक्रयो तृतीयोबहुयाज्यः स्याच्चतुर्थोप्रासयाजकः पंचमस्तुभृतस्तेयांप्रास-
 स्यनगरस्यच अनदित्यांतुयःपूर्वांसादित्यांचैवषष्ठिचमास नोपासीतद्विज.सर्व्यांसयथो
 १ब्राह्मणःस्मृतः=अर्थात्—तत्त्व जानने वाले ऋषियों ने छः अब्राह्मण कहे तिनमें प-
 हिला तीसरा का पलाऊ भूतक दूसरा क्रय विक्रय करने वाला तीसरा बहु याजक
 जो बहुत से समूहों में पाषांडे करे चौथा प्रासयाजक जो गावमें सब जातियों को
 पुरोहिताई रखे पांचवां जोप्रासया नगरमें मजूरीकरे छठा वहकि यद्यपि इनकामों

को नकरताहो परन्तु सौम्य सवेरे संध्या कर्मकी उपासना न रखताहो ये ब्रह्मअत्राह्न-
 राकहातेहैं और ब्राह्मण ब्रव उसका नाम है जो ब्राह्मणरात्र के संस्कार चिह्न आदि
 सब राखता हो तथापि नित्य नैमित्तिक धर्मोंका आचार नकरताहो और आचार्य
 अनेक तरहके होते हैं जैसे मंत्रोंकी व्याख्या सहित श्रुति स्मृति का पढ़ाने वाला
 अथवा किसी उत्तम संप्रदाय का आचारी जो अन्धयोगों को भी आचार के मार्ग
 पर चलावै इत्यादि—औरभी—आपस्तंबने बारह वर्ष की व्रतचर्या सामान्य कहिकार
 पोछे एक विशेष वचन कहाहै—यथा—अस्मिन्नेववियये० गुणं हन्त्वा श्रोत्रयं वा सतदेव
 व्रतमुत्तमादुच्छसाचरेत् (तत्र यावज्जीवमावर्त्यमानेव्रते यदा वैशुगयं चातुर्गुणं वा
 सम्भाव्यते तदा तत्रासमर्थस्य बहुधनस्यायं दान तपसोः समुच्चयो दृष्टव्य इति मिता-
 क्षराकारः) अर्थात्—आपस्तंब ने यह कहा कि इसी बारहवर्ष की अपेक्षा में गुह्रको
 मारि के या श्रोत्रिय को मारिके यही पहिले दर्शाया हुआ व्रत उनमें आसापर्यन्त
 आचरै अर्थात् जब तक जीवन की श्वासा बनी रहे तब तक करे केवल बारहवर्ष से
 प्रयोजन नहीं है परंतु सतदेव यही व्रत बारह वर्ष वाला जो इशारा किया तिसके
 बारहवर्षों काभी तात्पर्य कुछलेना चाहिये० इसी गूढहेतुसे मिताक्षराकार ने व्यवस्था
 इसपरलिखीहै कि(तहां जबतक जीवै तब तक बारह बारह वर्षों की कई आठतियां
 करतेहुये आयुको वितारवै इसी हिंसाव के अनुसार जहां सेमा संभव देखि परै कि
 प्रायश्चित्त की अवस्थाइतनी श्रेय है तिसमें दो या तीन या चार आठतिहोसकेंगी
 इसकादृष्टांत जैसे अनुमानहै कि छत्तीसवर्ष अभीजीवैगा तो बारह तिया छत्तीस, इसमें
 तीन आठति होसकेंगी तहां प्रायश्चित्तो सकही दो आठति परी करिके असमर्थ
 होजाय और बहुत धनवानहो तिसके लिये यह दान और तपस्या दोनों का समुच्चय
 समुभ्ना चाहिये कि एक दो आठति जो करिगुजारी सो तपस्या दहिरी और उसकी
 श्रेय अवस्थाके अनुमानसेदो या तीन आठति जो करने योग्य वाकी रहै तिनके पलटे
 में दान करदेना चाहिये पावै० यह सब तात्पर्य आपस्तंब और पूर्वोक्त शंख तथा दस
 के इन तीनों वचनके मोलानसे दहिगा० क्योंकि वर्तमान आपस्तंबके वचनमें दानका
 चर्चा नहींहै अर्थात् ऊपरके दो श्रेयियोंसे यह तात्पर्य लियागया कि शंखने ब्रह्म-
 हत्यापर एक हजार गऊ दान करना कहा और दसने यह भेद किया कि अत्राह्नण
 मारने को ब्रह्महत्या में समान दान करना चाहिये कि जो हजार गऊ शंख ने बताई
 और ब्राह्मण ब्रुवके मारनेमें दूना दान दोहजार गऊका और आचार्यके मारने में सी
 हजारकी संख्यासे उस मरे हुयेके सहाइस भाईको दियाजाय तो यह दान असत्य हो

जाता है•सो यह इतना बड़ादान केवल इसी दशा पर ठहियाया गया है कि जहां प्रा-
 यश्चित्तो पूरा धनवानही और आपेस्त्व के वचनानुसार (जनसकौनी केसमान) जन्म
 भरेका यावज्जीवन प्रायश्चित्त ठहिए जिसको वह पूरा पूरा न कर सक्ताहो तत्र यह
 विचार किया जाय—इस व्यवस्थाको रियासतसे पूर्वोक्त दसका वचन यहाँ दुबारा
 अर्थान्तर से दर्शातेहैं कि (समसत्राह्नरोदानंदिपुरांत्राह्नरात्रु वे आचार्यैशतसाहस्रसो
 दर्थेदत्तमक्षयं) इसकाअर्थ अभी इसीजगह लिखि चुकेहैं कि अत्राह्नरा की हत्या में
 समदान करना कि जितना शंखने कहा हो और ब्राह्मरा ब्रूवकी हत्यामें उससे दूना
 दान करना और आचार्य की हत्या में सौहजार की सख्यावाला दान जो उन्हीं के
 सगे भाइयोंको दियाजाय तो अस्यफल करताहै (यह सदेह न करना कि जो अर्थ
 इसका पहिले लिखि चुके सो ठीकया या यह ठीकहै क्योंकि दोनों सत्यार्थ हैं पर
 वहां उसी अर्थसे प्रयोजन था यहां इसीसे प्रयोजनहै) ॥०॥ व्यवस्था पंचायत-
 व्यवस्था की पंचायत वाद विवाद से इस लिये यहाँ लिखते हैं कि मुसंतु और
 पराशर आदिअनेक मुनीश्वरों के वचन जो कुछ पहिले लिखि चुके और बहुधा
 दोसो पचास २५० की अधिकोक्ति तक देखते रहिना लिखे जायेंगे तिनमें बारह
 वर्ष की अवधि छोडि के औरही और नियम पायेजाते हैं • तिनकी व्यवस्था
 वियय भेदसे कल्पना करी जायगी— तहाँ— उस पंचायत में सबसे प्रथम नैयायिक
 वाचालता से यह तर्कना खडी होती है कि—प्रायश्चित्तों में बारहवर्ष आदि अनेक
 तरह के कल्प जो जो मानेगये तिनकी व्यवस्था कहाँसे जानोगई और किसकारणा
 से बांधीगई• लेकिन यह उत्तर हम न मानेंगे कि बारहवर्ष आदिका विधान बताने
 वाले वचनों से जानी और बांधीगई क्योंकि उनमें प्रतीति नहीं लासक्तो हैं• और
 यह भी न कहिना चाहिये कि परस्पर प्रमाणों से जानेहुये बड़े छोटे कल्पों मे
 रुकावट, रूपीवावखडा न होसके इसकारणा से व्यवस्था में विययभेदकी कल्पना
 करीजाती है यह उत्तर इस हेतु से न मानेंगे कि जिसवाक की रुकावट दूरकरना
 चाहते हो सो अचछीतरह इन प्रकारों से भी दूर होसक्ता है कि यातो विकल्प या
 समुचय या अगांगीभावका सहारा लियाजाय• अर्थात् (विकल्प इसका नामहै कि
 बड़े छोटे सभी कल्पों मे चाहें इसको करो या उसको करना) और (समुचय
 यह कहताहै कि सभी कल्प ठीकहैं इसको भी करो फिर उनको भी करना) और
 (अगांगीभाव दो शब्द मिलिके अथ और संगीक्ता संबधहैं सो अगांगीभाव कहता
 है दृष्टांत जैसे देहमें शिर या धड प्रदान अगीहोता और शेष हायपैर आदि सब उसी

अंगीका अंगहैं तैसे यहाँ भी समझना कि सबसे बड़ा बारहवर्षकी कल्प जो है सो प्रधान अंगी और उससे निचले कल्प सब उसी अंगीके अंगहैं तो भी प्रथम बड़े का अनुष्ठान करिके छोटेभी सब अंगमानिके साधेजायँ) इन तीनोंमें कोई एक मार्गभी स्वीकार करने से उक्त वाच नहीं खड़ा रहिसक्ता• तिससे वियथ भेदपर व्यवस्था की कल्पना वृथादर्हैरंगी—सुनो उत्तर कहितेहैं व्यवस्था भेदोंमें कुछ बारहवर्षवाले और समन्तु आदि के दर्शाये वियस कल्पोंका विकल्प नहीं कल्पित होताहै कि चाहें इसको करो या उसको करो क्योंकि विकल्पका सहारा लेनेमें बड़े कल्पोंका अनुष्ठानहोना संभव न रहिनेसे अनर्थक दोगका प्रसंग आताहै कि जब इच्छाके आधीन होजाय तौ फिर बड़े कल्पका करना कौन चाहै• और ऐसा भी न कहिना चाहिये कि चन्द्रग्रहा का तरह छोटे बड़े दोनोंकी वियमता में भी विकल्प की सिद्धि पाई जासक्तीहै क्योंकि उसकी उपमादेना तौ दूररहा प्रथम उस ग्रहा में भी विकल्प का होना ठीक नहीं है अर्थात् जो किंचिन्मात्र भी ग्रहा का देखिपरना संभव हो फिर चाहें पीछे न देखि परो तौ भी ग्रहा होगा ऐसा मानिके मृतक आदि का स्वीकार करना उचित है विकल्प नहीं माना जासक्ता है कि चाहें मृतकमानों या मतमानों (उस उपमाको भंडी कहिनेका यह तात्पर्य है कि जब एक ग्रन्थके गणितसे चन्द्रग्रहाका न देखि परना सिद्धहोताहै दूसरे गणितसे कुछ समीक्षा देखि परने की दर्हिरती है तहां दोनों की वियमता दर्हिरती है और इसी में विकल्प का संदेह खड़ा होताहै तथापि विकल्प नहीं माना जासक्ताहै अर्थात् जहां दोनोंके विचारसे चन्द्रग्रहाका देखि परना सिद्ध होजाता या दोनों से न देखि परना पाया जाता हैं तहां वियमता के न.होंनेसे आपही विकल्प का प्रसंग नहीं आताहै) अथवा उसी चन्द्रग्रहा में पूराकरनेकी दृष्टिसे प्रारम्भ किया जो अतिराघनामा अन्न हो तिसके लिये यह कल्पना करनी चाहिये कि ग्रहा देखिपरनेसे शीघ्रही स्वर्गादिकल सिद्ध होगा कदाचित्त न देखि परा तौ भी कुछ विलंब से वही स्वर्गफल प्राप्त होगा किच और किसी तरह से विकल्प अंगीकार करने में अनर्थ होजानेका प्रसंग खड़ा होताहै कि यदि प्रथम से उसका न देखिपरना मानिके मृतकआदि विधिके त्याग पूर्वक भोजन आदि क्रियामया और भोजन करते ग्रहा देखि परने लगा तब कितना बड़ा अनर्थ होगा या अतिराघयज्ञ जिसका दोनों दशा में अवश्य फलहोता तिसको विकल्पका सहारा लेकर न करना आदि अनर्थ खड़ेहोते हैं—और—समुच्चय से काम चलसक्ता तुमने कहा वहसमुच्चय भी इसमें ठीकनहीं किन्तु उपदेश और अतिदेशके द्वारा प्राप्ति

हये बिना समुच्चय नहीं संभव होता है क्योंकि उपदेशकेद्वारा समझोहुँ जो निरपेक्षा है तिसके वाचका प्रसंग आता है—और—तीसरा आंगांगी भावका सहारा लेना तुमने जताया सो अंगांगी भावहू इसमें नहीं है क्योंकि श्रुति आदिसे उसका भाव विनियोगकरनेवाले कोई नहीं है अर्थात् किसी ने आंगांगी भावका स्वीकार करना कहा नहीं—इसीसे उन सब कल्पोंके परस्पर उपसर्द होना जो संभव है तिसका परिहार कर देनेके लिये वियय व्यवस्था की कल्पना करनी उचित है वह भी विशेषकर जाति और शक्ति और गुण धन आदि की अपेक्षा से कल्पना होनी चाहिये क्योंकि इसी विधि का प्रसारण भी देवलने कहा है—यथा=जातिशक्तियुगापेक्षसंस्तुद्धिस्ततथा अनुबंधाद्विज्ञायप्रायश्चित्तंप्रकल्पयेत्=अर्थात्—अपराधी तथा जिसके साथ अपराध किया गया इनकी ऊच नीच जातिके विचार से तथा उनकी शक्ति और गुण की अपेक्षा से और यद्भी कि अपराध यही एकवार हुआ या पहिले भी कर चुका है तथा यह अपराध सिर्फ़ोखे में हो गया यद्वा बुद्धिसहित किया और भी अपराधी के अनुबंध अवस्था आदि भेदों को जानि के विज्ञानी पाण्डित प्रायश्चित्त कावम करै क्योंकि इन भेदोंके समझे बिना प्रायश्चित्त बताने में अवश्य कुछ अनर्थ खडा होगा ॥ २४३ ॥

इसी दोसौ तैत्तलिस २४३के श्लोक और उसकी अर्थकोक्ति में यहां तक ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित्तमध्ये जो कुछ नैमित्तिक दर्शाया गया तिसके मध्यमकालमें भी समाप्त होजानेवासी अर्थात् समझाना चाहतेहैं सो अगिले परिच्छेदमें देखना ॥

अथ असंपूर्णद्वादशवार्षिकेऽपिकालितत्फलसिद्धिवि

वेकाविषयिकोऽयंपरिच्छेदःअष्टाविंशः२५

—*—

इसपरिच्छेद में यह विवेक जाना जायगा कि जो अर्थात् वारह बर्यकी कहिचुके जिसका किसी प्रायश्चित्तने प्रारम्भ करदिया हो वह बीचमें भी किसी समय पूरी होजाती और पूरे किये का फल देती है ॥

(आरव्यनैमित्तिकस्यसमाप्त्यवधिः)

ब्राह्मणस्यपरिग्राह्यद्वादशकस्यच । तथाश्वमेधावभूपजानाद्वाशुदिमायुयात् २४१
अर्थः—एक ब्राह्मण के परिवारा से या वारह गौओं की प्राणारक्षा से भी यद्वा

अश्वमेधमें भी अश्वभृथ नाम का स्नान करनेसे भी शुद्धि को पावै—अर्थात्—जहां किसी प्रायश्चित्तीने बारह बर्यका प्रायश्चित्त या दूनी अर्धचि चौबीस बर्यका प्रारम्भ किया हो और उसके बीचमें किसी समय देवकी इच्छासे ऐसा वानक वनिजावै कि वनमें किसी ब्राह्मणा को चोर बटमार मारे डारते हों या सिंह वाघ वन वाराह आदि कोई फाड़े डारता हो और प्रायश्चित्ती ऐसा देख के तत्काल अपने प्राण का लालच छोड़े हुये उसके ऊपर जाइ सिरै और किसी कठिनता के साथ उसके प्राण बचावै तो वह उसी समय शुद्ध होजाता है अर्थात् जो कुछ बर्यें बाकी रहिगई तिनका पर्यटन किये बिनाही पूराफल सिद्ध होजाता है वह अपने घर लौटि आवै—इसी प्रकार जो वारह गौओं के प्राण चाहें सक बार या दो तीन बार में बचावै तो वहभी पूरी अवधि फल उसी समय पाकर शुद्ध होजाता है (इसकी जो विशेषता है सो अधिकोक्ति में देखो) अथवा जहाँ किसी राजा आदि ने अश्वमेधका प्रारम्भ किया हो तिसका अंगभूत जो अश्वभृथ नामका स्नान विधान उसके यज्ञज्ञानको कराया जाता है तिसके दीर्घसमयपर यदि प्रायश्चित्ती पहुँचकर आपभी उस विधिसे स्नान करै तो भी अर्धचि पूरी हुये बिना ब्रह्महत्या से छुटकारा मिलजाता है (इसका भी विशेष व्योरा अधिकोक्ति में देखना ॥ २४४ ॥

२४४ अधिकोक्तिः—ब्राह्मणा या गौओंकी रक्षा करनेमें जो अपने प्राण खोये सभिक के उताख हुआ कदाचित् रक्षा न करि पाई पर उसके साथ आप भी सरिगया हो तो भी शुद्ध होजाता है अर्थात् श्रेय प्रायश्चित्तका पातक उसके साथ नहीं जाता है यही अभिप्राय मनुके वचनमें प्रत्यक्ष है—यथाहमनुः—ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणा न्परित्यजेत् मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्राणो ब्राह्मणस्य वा—अर्थात्—ब्राह्मणा की अर्थ या गौओंके अर्थ जो शीघ्र अपने प्राण खोदेवै सो ब्रह्महत्यासे छुटकारा पाइजाता है और वह भी जो गऊ या ब्राह्मणाकी रक्षा करिके आप मरा या वचिगया हो (इसमें जुदे जुदे दो डोल कहे गयेहैं कि यातौ रक्षा करते हुये अपने भी प्राण खोदेवै चाहें रक्षा न करिसका तोभी अपने पातकसे शुद्ध होके मराउहरता है अन्यथा जो रक्षाभी करि पावै और आप नाराजाय या वचिजाय सो भी शुद्ध होता है ॥ ० ॥ विराने अश्वमेध में स्नान करना कहा सो भी अपने पापको छिपाये बिना उजागर करिके और यज्ञकी यज्ञज्ञान आदि से आज्ञा पाकर करना कहा है—तदाह मनुः—शिष्ट्वावाभूमि देवानां नरदेवसमागमे स्वमेनोऽश्वभृथे स्नात्वा इयमेधीविमुच्यते (भूमिदेवा ब्राह्मणा ऋत्विज स्तेषां नरदेवेन राज्ञाय जमानेन समवाये स्वीयमेन-पापशिष्ट्वाचित्वाप्यश्वमेधावभृथे

स्नात्वाशुभयेत यदि तैरनुजाती भवतीत्यभिप्रायः) अर्थात्—यज्ञकरनेवाला नरदेव राजा तिसके और सवनेते में आयेहुये राजालोग तथा भूमिदेव ब्राह्मण जो यज्ञका विधान करवाने वाले ऋत्विज आदि इन सबके समाज में अपने पापका उच्चांत और इतने दिन प्रायश्चित्त करते बीते इतने वाकी रहे सब सुनाइ के ज्ञान की अभिलाषामात्र मनसे प्रकट करै किन्तु मुखसे न उच्चार करै इस दशामें यज्ञमान और विद्वान् अपनी धर्मज्ञा संमति से इसका कल्याण सोचिकरस्वतः स्नानोंकी आज्ञा देवें तो उस अश्रमेध में अश्रभृथ विधिसे स्नानकरिके शुद्ध होताहै—यही नियम शंखने दर्शाया है—यथा—अश्रमेधावभृथंगत्वात्—ज्ञानुजातःस्नात्वासद्यःपूतो भवति—अर्थात्—अश्रमेध में अश्रभृथ के समय पर जाइ के तहाँ अनुजा पाया हुआ प्रायश्चित्ती स्नान करिके सद्यही तत्काल शुद्ध होताहै—इन वचनोंमें अश्रमेधावभृथकी समस्या कहीजानेके उपलक्षणा से और भी अनेक यज्ञ जैसे अग्निष्टुत नाम जो अग्निष्टोमका रूपांतर विशेष होताहै और अग्निष्टुत को अतर्गत पंचदशरात्र आदि यज्ञ जो अग्निष्टुत की समाप्ति पर्यंत उसके अंगभेद हों तथा सर्वमेध आदि जो वेद में प्रसिद्ध हैं तिनमें से किसी एक यज्ञमें जाकर अश्रभृथ स्नान करिके पवित्र होसक्ता है जो देवकी इच्छा से धानक ऐसा मिलिजाय किन्तु अश्रमेधसे उपरालू यज्ञों में शुद्धिपाने का प्रसारा गौतमका वचन है कि (अश्रमेधावभृथेवाव्ययज्ञेऽप्यग्निष्टुतं प्रचेदित्यादिः) अश्रमेध के अश्रभृथ में वा और किसी यज्ञमें भी जो अग्निष्टुत अंत कहाता हो स्नान करै—यह सब नियम उसीकेलिये समझना जो वारह वर्षकी व्रतचर्याकरनेमें लंगिरहाहो और बीचमें कदाचित् वारहाराकी रक्षा आदि देवयोगसे वनिपरै तो उसव्रतचर्याकी अवधिपूरीहो जायगी—परन्तु यहतात्पर्य नहींहै कि प्रायश्चित्तका आरम्भ न करिके अपनी स्वतंत्रतासे इन्हींकार्त्तिकोंकेदूहेके कि यहभी एक प्रकारके प्रायश्चित्त हीरे—क्योंकि—शंखनेसन्देह मिटाइके स्पष्ट यही कहाहै—यथा—द्वादशैवर्षेशुद्धिप्राप्तोत्तरं तत्रावा ब्राह्मणामोचयि स्वासावांवाद्वादशानां परिवाराणां सद्यः एवाश्रमेधावभृथज्ञानाद्वापूतो भवति—अर्थात्—वारहवर्ष पूरा होने में शुद्धिकी पाताहै अथवा बीचने भी ब्राह्मण की सीतसे छुड़ाकर शुद्धहोताहै अथवा वारह गौओंकी रक्षा करने से यद्वा अश्रमेध में अश्रभृथ विधि का स्नान करने से सद्यही पवित्र होताहै—इसी लिये—तनुने यह डोल वांवा है कि प्रथम तो मुंडन कराइ के वनमें वसे इत्यादि वारह वर्षकी गुण विधि में तत्पर कराने पीछे बड़े विधानकहा जो अविज्ञीक्तिके शुद्धमे लिखि चुकेहै कि ब्राह्मणके अर्थ या गौओं के अर्थ अपनेप्राण खोदेवै इत्यादि अश्रमेधके स्नान पर्यंत बीचमें कइकर तिस

पीछे यह दर्शाया है कि जिसको बीचमें ब्राह्मणों की रक्षा आदिकोई प्रकारन वनिआवे
 सो बारह वर्षपूरकरै=यथा-एवंदुद्व्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः समाप्तो द्वादशवर्षे ब्रह्म
 हत्यां च्यपोहति=अर्थात्-इस प्रकार व्रतको मजबूतीसे यौभेहुये नित्यंप्रति ब्रह्मचारी
 बनाहुआ चित्तको सावधान रखिकर बारहवर्ष वर्षमाप्त होनेमें ब्रह्महत्या दूरकरदेता है
 ॥ ० ॥ जो नियम अभी कहिसुके उसपर वादी तर्क उठाता है कि ब्रह्महत्या से कुटि
 कर शुद्धि पावे यह उसी लपेट के साथ कहागया है जो ब्राह्मणों की रक्षाकरना आदि
 कई प्रकार या बारह वर्षोंका व्रतचर्या करना सबदशा में शुद्धि पासक्ता है तिससे सब
 कार्योंसे सकही तुल्य फल उठेगा इसन्यायसे अपराधोंको स्वतंत्रताहोनी-योरथ
 है कि वह चाहै तिस प्रकार से अपना पीछा छुड़ासके अर्थात् निज इच्छा से कोई
 एक प्रायश्चित्त इनमें से करै परन्तु ऐसा नहीं उचित है कि ब्राह्मणों की रक्षा आदि
 प्रकारोंको बारह वर्षोंका अंगत्व माना जाय कियेभी उसी प्रधानकर्मका अंगहै और
 अंगत्वभी नहीं सिद्ध होता है क्योंकि प्रधान कर्मका विरोधी (बीचही में रोकितनेवा-
 ला) होने से भी अंग नहीं कहा जासक्ता है किन्तु अंग बही होता है जो प्रधान का
 अनुग्राहक (पीछा पकड़ने वाला साथ देने वाला) हो और यह विधान भी बारह
 वर्ष आरंभ करने धाले का नहीं है जिससे कि उसी कार्य का जुदा विधानपायाजा-
 ता है-इसपर यह इष्टांत भी भीमांसा के अनुसार है कि जैसे सब नामक यज्ञ करने
 पर उताव्र होकर विद्यजित यज्ञसे यजनकरै यह सबके प्रयोगमें प्रवृत्तहुये का उसके
 पूरे करने में असमर्थ का विद्यजित विधान एकदृष्टान्त है इससेभी स्वतंत्रता का होना
 ही युक्त पायाजाता है कि जैसा (आगे दोसौमें तालिस २५७ प्रलोक से आदिलेकर)
 अग्नि में गिरके मरजाना• तीरन्दाजों का निशाना वनिके मरजाना आदि जो कल्प
 कहे जायेंगे तिनमें भी यह शंका न करनी चाहिये कि वेभी बारह वर्षोंके प्रारम्भ और
 समाप्ति के बीचमें लिखे पडे गयेहैं तोवेभी बारह वर्षोंका एक एक अंग होंगे इससे
 वे सभी कल्प बारह वर्ष के बीचमें करने होंगे इससे कि यद्यपि पाटवीच में आया
 पर उसके बीचमें होनेपर भी उनका प्रयोजक (लगानेवाला) जो नहीं जाना जाता
 और प्रयोजन की आकांक्षा भी बारह वर्षों से जुदी देखि परती है तिससे परस्परउनका
 अंग और अंगीपना नहीं सावित होसक्ता है जबकि अंगोंगत्व सावित नहुआ तो बारह
 वर्षों के बीच उनका सावन भी आवश्यक नहीं उठेगा-इसपर भी भीमांसासे दृष्टान्त
 है कि-जैसे वेदसे सामवेदो ऋचाओं के प्रकारा में अग्निवित्कर्म की ऋचाएँ भी
 वर्तमान है तिनके दो भाँति के कर्नहैं कि अग्निमन्चन और अग्निप्रकाशने दोनों

कर्म अग्निहीके साथहोते हैं तद्गर्भीअग्नि रूप एकही कार्यके हेतुसे सामिधेनी ऋचाओं के साथ उनका अंगत्व नहींमाना गया है—और बारह वर्ष की व्रतचर्चा मध्ये टीकटीक उनका पादह वीचर्म नहींहै जो अग्निमें प्रवेश होजाना आदि जुदे कल्पहैं क्योंकि वशिष्ठ गौतम आदि अनेक ऋषियों ने बारह वर्ष का चर्चा छेड़नेसे प्रथमही उनको लिखाहै और यही स्वतंत्रता जाहर कादेने के लिये मनुने हरएक वाच्यों के साथ विकल्प दर्शानेवाला वा शब्दभी लगाया है कि (लक्ष्यंशस्त्रभृतांवास्यात् प्रा स्येदात्मानमग्नीवा)या तो शस्त्रधारियोंका निशाना वने या शरीरको अग्निमें भस्म करे इत्यादि और उन्हींमनुजी ने प्रत्येक प्रायश्चित्त के साथ सर्वमेवं ऐसेही ऐसे यह प्रकार साथै यह ऐसा उपसंहार भी लगाया है तिससे भी सब जुदे जुदे प्रतीत होतेहैं और यहभी साफ कहा है कि (अतोऽन्यतममास्थायविधिंविप्रःप्रमाहितः ब्रह्महत्याकृतेपापंच्यपोहत्यात्मवितथा) इनमें से किसी एक विधिपर आच्छ हो ब्राह्मण अपने चित्तको सांघानराखे आत्मवेता होके रहे तो ब्रह्महत्या के निमित्त का पाप जो हे सो दूरहोजाता है—बादी सबका तोड़ करताहै कि इनसब कारणोंसेमेरो समझमें यह आता है कि अग्नि मेंजलजाना आदि प्रायश्चित्तोंमें स्वाधीनता प्रत्यक्ष बहुतरीकहै कि अपनीइच्छाके अनुसार कोई एकविधान साथै और इसीसे ब्राह्मण गऊकोरसा आदिवाले विधानों में भी बारहवर्षका अंगत्व नहीं सिद्धहोता है क्योंकि उनका और इनकाभी फल एकहीठाहै कि ब्रह्महत्यासे क्षुत्तिजाताहै तिससे भेद मानना नचाहिये—उत्तर कहतेहैं सुतो=परिहृतमेतदतराब्राह्मणसोचयित्वा इत्यादिनाशंखवचनेनांगत्वा वगसांश्च अंगस्यैवसत्प्रधानद्वारेणफलसंबंधः नचप्रधानविरोधः यतोब्राह्मणाचाराणावधिकस्यैवव्रतानुष्ठानस्य फलमाधनत्वविधीयते इतिनविरोधः=अर्थात्—सबकुछ कहाँ पर यहती छोड़िही दिया जो शंखके वचन में कि बारह वर्ष के बीचही में ब्राह्मण को मीत से बचाइ के इत्यादि व्यवस्था कही तिससे साफ साफ बारह वर्षों का यह अंग पाया जाता है और अग्नीके होते हुये प्रधान के द्वारा उसमें फल होता है और बीचहीमें प्रधान कर्म का त्याग होजानेपरभी प्रधानका विरोध इसमें नहीं है क्योंकि उस अनुष्ठान का पूरा फल ब्राह्मण के प्राण वचाने की ही अवधि तक विधान किया गयाहै तिससे कोई विरोध इसमें नहींहै ॥ २४४ ॥ ब्राह्मण गऊको रसा तथा अश्वमेध का ध्यान जैसे कहेगये तैसे उनकोसाथी कुछ औरभी ग्रथहें सो अगिले प्रलोकोमें देखना॥

(पूर्वोक्तानांशेषप्रकाराः प्रायश्चित्तभेदाः)

दीर्घतीव्रामयस्त्रांद्वाह्यपुंगामथापिवा । दृष्ट्वापयिनिरातंकरुत्वावात्रह्यहाशुचिः २१५

आनीयविप्रसर्वस्वंहृतंघातितपनवा । तन्निमिषक्षतंशस्त्रेर्जिवन्नपिचिशुद्ध्यति २१६

अर्थः—यद्वा अतिलंबे और तीव्र रोगोंसे प्रसे ब्राह्मणको अथवा ऐसी गऊकी मारों में देखि निरोग करिके भी ब्राह्मण शुद्ध होता है—अर्थात्—कृत आदि महारोगों से यदि कोई ब्राह्मण या गऊ दुखी देखे उसको औषधी भास्वरी आदि किसी अपनी युक्ति से चिकित्सा करिके निरोगी करे तो वहभी तत्काल शुद्ध होकर छुटकारा पावे, किन्तु बारह वर्ष पूरे करनेसे अपेक्षा कुछनहीं रहती ॥ २१५ ॥ और भी यदि ब्राह्मणको हरे हुये सर्वस्वकी त्यागकर देवे या चाहे घायलहोके मरजाय या उसधनके निमित्त शस्त्रों से घायल होकर जीतारहे तोभी शुद्ध होजाता है—अर्थात्—ऊपरले श्लोक में दो प्रकार से शुद्ध होना कहा इसमें तीनप्रकार से कहा है कि जिस किसी ब्राह्मणको कोई साधनचोरों आदि किसी बलवान ने हरा हो तिससे दुःखी देखि के या तो सवरावन कीनिके त्यागदेवे या उसधनकेलिये युद्धकरिके प्रायश्चित्ती आप माराजाय या घायल होके मरनेके समान होजाकर भी जीतारहे चाहे धनकी नहींलासका तोभी शुद्ध होजाता है ॥ २१६ ॥

२१६ अधिकोक्तिः—वादी ने फिर इसमें भी यह तर्क उठाया है कि एकसौचवालिसके श्लोकमें ब्राह्मण गऊकी रक्षा करनी कहिचुके थे अब यहाँ दुवारा फिर क्योंकहा—तिसका यह उत्तर है कि हों सत्यकहा वहाँ और यहाँ भी इसका यह तात्पर्य है कि वहाँ तो अपने प्राण खोड कर भी रक्षाकरनी कही थी और यहाँ केवल चिकित्सा या मंत्र यंत्र आदि उपायोंसे रक्षाकरनी कही कि जिसमें अपने प्राणोंकी संदेह नहीं यह दोनोंमें विशेषता है—इसी अभिप्राय से मनुने यह कहा है कि (विप्रस्यतन्निमित्तैवाप्राणालाभेविमुच्यते) ब्राह्मण के प्राण बचाइ के या उसके निमित्त अपने प्राण खोडके छुटकारा पाजाता है ॥ २१५ ॥ दोसौ कृत्वालिष में जो शस्त्रोंका बहुवचनहै सो इसलिये कि एकही घाबलाकर भागिपर तो यह प्रायश्चित्ती बारह वर्षकी अवधि पूरी किये बिना शुद्ध न होगा अर्थात् जो बहुत से घाव अपने देह पर खाकर भी न भागा और मरने के तुल्य होकर देवकी इच्छा से जीता रहिगया हो तिसकी अवधि अभी पूरी होगइ मानी जायगी—इसीहेतु मनुने ऐसा वचन कहा है कि (अथवरप्रतिरोद्धावासर्वस्वमवजित्यवा)तीन वा तीनसे अधिक डाकूओंकी रोकनेवाला

बने अर्थात् बहुतो को रोकने लड़ने से माराजाय या बहुत घायलहोके देव योग से बचिजाय फिर चाहे धन को न छीनि पावै तौ भी शुद्धि होजायगी क्योंकि छीनि पाउनेवालाकाम उसने सझावसे किया अथवा चाहे एकबारा वा ईद तक भी देहमें न लगीहो और डाक चाहे अनेक वा एकही हो पान्नु सबधन उनसे छीनके ब्राह्मण को ल्यादेवै कि जिसका जितना चोरो ने लूटा था तौभी यह प्रायश्चित्ती शुद्ध होजावै ॥ ये पाँचौ भौतिके कल्प भी ऐसेहै कि इनमें अपराधीको इच्छासे स्वाधीनता नहीहै कि बारह बर्योकी व्रतचर्या प्रारम्भ किये बिना प्रथमसेही गरु ब्राह्मण को चिकित्सा या लूटा हुआ धन छीनि के शुद्ध होजानेका अधिकारी बने किन्तु वो सौ चर्वालिस की २४४ कीअधिकोक्ति के अंत में जो कुछ निपटारा सिद्ध होचुका सो यहाँभी समझ लेना ॥ २४६ ॥

अगिले परिच्छेदमें प्रायश्चित्तके अनुकल्प कहेजायँगे कि जो बारह बर्य की व्रतचर्या करना न चाहै सो इनको करै ॥

अथ प्रायश्चित्तात्तरानुकल्पप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेद

२६ जनत्रिंशः ॥

—*—

इसपरिच्छेदमें ब्रह्मणके कुछ और भी प्रायश्चित्त कल्पनाहोगे कि उनमें प्रायश्चित्ती को स्वाधीनता भी ठहिरैगी कि चाहे यह करौ या वह करौ—यद्यपि बारहवर्यके स्थानी भूतकल्प कहेजायँगे तथापि उनमें भी अपराधीको विशेषता अनुसार विषय भेदसे विचार करना होगा सो अधिकोक्तियों में देखना ॥

(अग्निप्रवेशरूपप्रायश्चित्तात्तर)

लोमभ्य स्वाहेत्येवहिलोमप्रभृतिवैतनुम् । मज्जाताजुहुयाद्वापिमत्तैरेभिर्वपाक्रमम् २४७

अर्थः—यद्रा (लोमभ्य स्वाहा) इत्यादि शेषे इतमत्रो से यथाक्रम सोम आदि मज्जा पर्यन्त तनु (शरीर) को होमही करै=अर्थात्—इस वाक्यमें वापि यद्वा शब्द उस पक्ष से दूसरा पक्ष दर्शाने वाला है कि जो बारह बर्यका पक्ष पहिल कहि चुके और हि शब्द इस निमित्त है कि अन्य स्मृतियों में त्वचा आदि जो व्योरेवार प्रसिद्धे सोभी

समभिलेना क्योंकि यहां केवल रोमा आदि कहिके संसेप किया गया है—इससे यह अभिप्राय ठहरा कि यदि बारह वर्षकी व्रतचर्या न करना चाहै तो यह करै कि अग्नि में अपने शरीर को होमै सो किस विधान से कि (रोमा•त्वचा•रक्त•मांस•मेदा•स्नायु नसै•हाड•मज्जा) ये आठ वस्तु होम की सामग्री मानै और इन्हीं से प्रत्येक जुदे द्रव्यका स्वाहांत संव बनावै सो अतिकोक्ति में देखो ॥ २४७ ॥

२४७ अधिकोक्तिः—शरीरके धातुरूपी होम की सामग्री से जुदे जुदे आठौं संव बनाकर वशिष्ठ ने प्रकाश किये हैं=यथाह वशिष्ठः—ब्रह्महृदिग्निमुपसमाधाय जुहुयाद लोमानिमृत्योर्जुहोमि लोमभिमृत्युंवाशय इति प्रथमां १ त्वचंमृत्योर्जुहोमित्त्वचामृत्युं वाशय इति द्वितीयां २ लोहितमृत्योर्जुहोमिलोहितेन मृत्युंवाशय इति तृतीयां ३ मांसानिमृत्योर्जुहोमि मांसमृत्युंवाशय इति चतुर्थीं ४ मेदामृत्योर्जुहोमि मेदामृत्युं वाशय इति पंचमीं ५ ह्यायुनिमृत्योर्जुहोमि ह्यायुभिमृत्युंवाशय इति षष्ठीं ६ अस्थानिमृत्योर्जुहोमि अस्थिमृत्युंवाशय इति सप्तमीं ७ मज्जामृत्योर्जुहोमि मज्जामिमृत्युंवाशय इत्यष्टमीं ८ =अर्थात्—वशिष्ठ ने यह कहा है कि ब्रह्महृदयारा पुरुष अग्नि का बहुत बड़ा कण्ड अपने समीप नियत करिके इन आठौं चीजके आठ संवों से आठ होम करै (इसी हेतु मूल प्रलोक में योगीश्वर ने (लोमप्रवृत्ति) रोम आदि आठ द्रव्य जताये और (लोमभ्यःस्वाहा) सेसे संव बताये तिनको भी इन्हीं वशिष्ठ के बताये संवों में इस रीति से जोड़े कि) लोमानिमृत्योर्जुहोमिलोमभिमृत्युंवाशय लोमभ्यःस्वाहा १ यह एक संवना इसी प्रकार आठौं संव बना लेंवै=इस पर एक विचार है कि लोमभ्यस्वाहा कहिने से रोम आदि द्रव्यही देवता समझे जाते हैं क्योंकि जैसे (गरोशयस्वाहा सुर्यायस्वाहा इत्यादि) चतुर्थीं विभक्ति से देवता को संव कहेजातेहैं कि गरोश के लिये स्वाहा या सुर्यके अर्थ स्वाहा—तैसे यहाँ रोमों के अर्थस्वाहा खालके अर्थ स्वाहा इनमें रोमखाल आदि आठौं धातु देवतारूप प्रतीत होते हैं तथापि देवतारूप नहींहैं क्योंकि (रोम आदि शरीर को होमै) इस कथन से उनकी द्रव्यरूपही कल्पित कियाहै और द्रव्यही से होम सिद्धहोताहै बिना द्रव्यके नहीं और (लोमभिमृत्युं वाशय) इत्यादि वशिष्ठ के संवोंमें मृत्युही को हवि की आहुति बताने से देवता वहाँ मृत्यु इसमें प्रधान है जो अग्नि के द्वारा रोमादि हवि खायागी—इसीसे—यह तात्पर्य ठहरा कि फरसा गंडामा आदि शब्दसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार उक्त रोमा आदि अपने शरीर से जुदे करि करि मृत्यु के नामसे आठौं होम करिके पीछे सर्व शरीर अग्नि में भोजिक देंवै (इतना यह सदेह अभी शेष है कि एक संवसे एकही

आहुति वा अनेक वा अष्टोत्तर शत आदि कोई संख्या भी नियत करें क्योंकि आठ होम करने कहे पर इसकोसधे कोईसंख्या नहींवाँधी तिससे एकहोम एकहीआहुति का प्रतीत होताहै इसका समाधान यहहै कि (संख्या का नियम बाँधना कर्ता के स्वाधीन रहा कि प्रत्येक मंत्रकी आहुति जितनी करसके वही संख्या आठकी जुदी जुदी राखे इसीलिये यह लिखचुकेहै किअपनी सामर्थ्यके अनुसार लोमखालआदि उपाड़ै=यहाँ औसद्विज्ञानेश्वर कहते हैं कि रोम खाल आदि का हवि रूपी द्रव्य ठीकठीक सिद्धहुआ इसमें कुछ सदेहनहीं परंतु किसीबिचले टीकाकारोंने प्रथमेश्वा अर्थ लगायाथा कि मूलमें होमकेलिये कोईद्रव्यनहीं अदेशकिया तिससे इनसंबंधे घीका होम करना चाहिये•सो वह निरूपणा किये बिना घीका होम कहा तिससे उस अर्थका आदर न करना चाहिये ॥ ० ॥ मूलश्लोक में (जुहुयात्) होमै इसप्रयोग सेही अग्निका नाम लिये बिना उसका प्रयोजन सिद्ध होजाता है कि होम करें तो अग्नि भी अवश्य चाहिये परन्तु वशिष्ठ के वचन में जुहुयात् होने पर भी (अग्निं उपसमावाय)यहदुवारा कहागयाहै कि अग्निकोपासनाखिके होमकरें तो इसदुवारा के लेखसे लौकिक अग्निकी ध्वनि पाई जातीहै कि उसमें होम करें और यही बात उचितहै क्योंकि जो पुरुष अग्निमानहोके पतितहुयेहो तिनके अग्नि भी पतित हो जातेहै तिससे वे पतितअग्निपुरुष कहते और उनकेलिये एकविधानकहागयाहै कि जिसके हेतु से उनकोभी लौकिकाग्नि सेही प्रयोजन आपरैगा=यथाहोशना=आ-हिताग्निस्तथोविप्रोमहापातकभाग्भवेत् प्रायश्चित्तैर्नशुधेततदरनीनांतुकायतिः वै तानप्रक्षिपेतोयेशालाग्निंशसयेहृषः =कात्यायनस्तु =महापातकसंगुक्तोर्देवात्स्याद् अग्निमानयदि पुत्रादिपालयेदरनीवगुक्तश्चादोयसक्षयात् प्रायश्चित्तनक्षर्याद्यः कर्षन्वा भ्रियतेयदि गृह्णानिर्वापयेच्छ्रौतमपत्स्वस्वपरिच्छदत्=अर्थात्-जो ब्राह्मण (आ-हिताग्नि) अग्निमान् है वह महापात की होजाय और प्रायश्चित्तों से न शुद्धहोवै तिसके अग्निग्यों की क्यागति होगी (सो कहते हैं कि) उसका वैतान जो वेदकी विधिसे स्थापनकिया विस्तारहै मामयी उपकरणा औजार आदि सो सब जलप्रवाह में हत्यारा या कोई और जानी छोड़ि आवै तथा शाला के अग्निको बुझाड डारै= कात्यायन भी कहते हैं कि=जो अग्निमान् है वह देवयोगसे यदि महापातकी हो-जाय तो उसका कोई पुत्र वा शिष्य आदि अग्निग्योंको पाले फिर दोयी भी अपना दाय मिटाने के वादिसे पाले•अथवा यदि ऐसा हो कि प्रायश्चित्तको न करें यद्वा प्रायश्चित्त प्रारम्भ करिके सरजाय तो गृह्य अग्नि को बुझाये और यौत की जल में

सब सामग्री सहित छोड़ि आवें ॥ ० ॥ पूर्वोक्त होमका श्रेय कार्य अब कहिते हैं कि शक्तिके अनुमान होम कियेपीछे अग्निमें सबशरीर भोंकना कहासो तीनवार उठि उठि के औंधे मुख गिरना चाहिये=तदाह मनुः=प्रास्त्रेदात्मानमग्नौ वासमिद्वेविरवा कशिपराः=अर्थात्-जो पर्व कल्पोंको न करे तो अच्छे प्रज्वलित अग्निमें शरीरकोही औंधे मुख तीनवार भोंके=गौतम ने कुछ और भी विशेषता इसमें करी है कि (प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिव्रह्मप्रश्चिरवस्यातस्य) ब्रह्मघ्न को प्रायश्चित्त यह है कि अवस्थात नाम लंघन किये हुये का अग्नि में प्रवेश करना तीन वार उठि उठि का (लंघन इस लिये कहा कि शरीर दुर्बल और शुद्ध होजाने से अग्नि उसको शीघ्र भरस करसके) तैसेही काठकी शाखावालोंकी यह युक्तिहै कि (अनशनेन कर्पितोऽग्निमारोहेत्) लंघन से दुर्बल होकर अग्निपर सवारहोवै=अब यह विचार भी कर्तव्य है कि यह मरजानेका प्रायश्चित्त उसकेलियेहै जिसने कामनासे इच्छासहित महापाप किया हो जैसा अंगिराकी विचली स्मृतिका वचन है=यथाह मध्यमांगिराः=प्रासांतिकंचयत्प्रोक्तंप्रायश्चित्तमनीयिभिः तत्कामकारिविययंविज्ञेयंनवसंशयः=तथा=यःकामतोमहापापंनरःकुर्यात्कथंचन नतस्यशुद्धिर्निर्विद्याभ्रवग्निपतनाहते=अर्थात्-अंगिराने कहाहै कि जो जो मरसांतिक प्रायश्चित्त बुद्धिमानों ने कहे सो सब कामकारोंका विषय समझना इसमें संदेह नहींहै=तैसे=एक यह वचनहै कि जो आदमी किसी तरह कामना से चाइकर महापाप करे तिसकी शुद्धि नहीं होती कहींहै सियाय पर्वतके शिखर आदि ऊंचेसे गिरने के या अग्निमें गिरनेबिना=यह प्रायश्चित्त जो इसी २५७ भरमें कहा गया सो बारह वर्षोंके बिनाही स्वतंत्र किया जाताहै अर्थात् इससे पहिले परिच्छेदमें जो ब्राह्मणाकी रक्षा आदि कहेगये तिनकी तरह बारह वर्षोंके साथ करना नहीं सूचित हुआहै ॥ २५७ ॥

(अस्त्रसंपातमध्ये स्थितिरूपंप्रायश्चित्तांतरं)

संग्रामेवाहतो लक्ष्यभूतःशुद्धिमवाप्नुयात् । मृतकल्पःप्रहार्तो जीवन्नपि विशुद्धयति २४८

अर्थः-अथवा लड़ाईके बीच लक्ष्यभूत होके माराजाय तौभी शुद्धि को पावै या शस्त्रोंके प्रहारसे अतिपीड़ित मरनेके लक्ष्य होजाकर देवयोग से जीवता रहि कर भी शुद्ध होताहै=अर्थात्-जहाँ कहीं दुतरफा युद्ध होताहो या सीखनेवाले निशाना लगातेहो इत्यादि जिस ठिकाने पर बहुतसे बाणा आदि शस्त्रों का पात होता हो उठी जघे प्रायश्चित्तो जाकर युद्ध वालोंका निशाना बनिके बीचमें बैठे कि जिससे दुतरफा चले हुये बाणा आदि शस्त्र उसके ऊपर लगें तहाँ मरजाय तो यह शुद्ध होजाताहै यथा

बहुत घायल होकर मरनेके समान सूच्छा पाकर पीके दैवकी इच्छा से यदि होश में आजाय तो यह जीता रहिजाने पर भी शुद्ध होजाता है ॥ २४८ ॥

२४८ अधिकोक्तिः—निश्चाना बनिके बैठे इसमें राजा आदि किसी प्रबल की प्रबलता रूपी आज्ञासे प्रयोजन नहीं है अर्थात् आपही अपनी इच्छासे धनुय आदि शस्त्र विद्याके योद्धाओंसे प्रार्थना प्रकट करै कि मैं प्रायश्चित्तीहूँ इसलिये तुम्हारा निश्चाना बना चाहता हूँ—यथाह मनुः—लक्ष्यं शस्त्रभृतां वास्याह्निदुयामिच्छयात्मनः— अर्थात्—शस्त्रधारी विद्वानोंका लक्ष्य बनै अपनी इच्छासे ॥ यह प्रायश्चित्त जो सरणांतिक रूप ठहिरा तिससे यह सबके लिये नहीं किन्तु उसके लिये समझना जो प्रायश्चित्ती आप सत्रीहो और इच्छा सहित ब्राह्मणाको मारा हो वल्कि जिस क्षत्री में यज्ञ करनेकी समर्थता तो अश्वमेध आदि यज्ञोंसे विकल्प भी होसकताहै क्योंकि मूल श्लोक में अपि शब्द जो आया तिसके ध्वन्यर्थसे ऐसा क्षत्री अश्वमेध आदि यज्ञों से भी शुद्ध होताहै—तदाहमनुः—यजेतवाश्वमेधेनस्वर्जितागोसवेनच अभिजिह्विजिह्विदभ्यां वाचिहृत्ताग्नियुतापिवा—अर्थात्—पूर्व कहे कर्णोंको न करसके तो अश्वमेधसे यज्ञ करै या स्वर्गाजित नाम यज्ञकरै या गौसव यज्ञ करै या अभिजित यज्ञ या विद्युजित यज्ञोंसे यजन करै या विद्युत् नाम यज्ञसे या अग्निद्युत् नाम यज्ञसे प्रायश्चित्तकरै— इनमें एक अश्वमेधका यज्ञ केवल सार्वभौम क्षत्रीको सूचितहै जो सब धरतीके राजाओं पर आज्ञाकारक महाराजाधिराजहो—क्योंकि पराशर ने ऐसा कहा है (यजेतवाश्वमेधेनस्वविद्युस्तमहोपतिः) कि जो क्षत्री सब धरतीका पति होय वह अश्वमेध से यजन करै (नासार्वभौमोयजेतेत्यसार्वभौमस्यप्रतियेवदर्शनाच्च) और जो सार्वभौम न हो सो अश्वमेध न करै क्योंकि हरकाई अश्वमेधका अधिकारी नहीं यह प्रतियेव भी देखा जाताहै—सार्वभौम को यह अश्वमेध रूपी प्रायश्चित्त उस दशा में कि जहां इच्छा सहित हत्या आदि करने से सरणांतिक प्रायश्चित्त ठहिरा हो (इससे यह बात भी स्पष्ट होगई कि सार्वभौम से उपराल राजाओंको अश्वमेधके सिवाय जो अन्ययज्ञों के नाम कहे सो सब समझने) सार्वभौमके मध्ये यह वचनभी यमस्मृति का प्रमाण है कि—महापातककर्तारश्चत्वारोमतिपूर्वकम् अग्निंप्रविश्यभुष्टंतिस्थित्वावामहृत्तिक्रत्तौ—अर्थात्—चारो महापातकी जो जानि बूझिके पाप करने वाले हुये हों सो अग्निमें प्रवेश करिके शुद्ध होतेहैं कि जैसा २४७ में वर्णन होचुका अथवा महायज्ञ जो अश्वमेधहै तिसमें बैठके शुद्धहोते हैं सो यह अधिकार सार्वभौम को कहिचुके तिससे उसकी अग्निमें प्रवेश करना आवश्यक नहीं रहा किन्तु जिनको अश्वमेधक

अधिकार नहीं तिनको अग्निका अधिकार दहरा—क्योंकि यगस्मृतिके वचनद्वारा अग्निमें सरजाना और अश्वमेध करना दोनों फल बराबर सिद्धहुये ॥ ० ॥ और अनेक यज्ञ जो स्वर्जित आदि ऊपर दशासिगए तिनका अधिकार तीनोंवरामें जो आहिताग्नि पुरुयहों और पहिले भी यज्ञ कर चुकेहों उन्हींको आवश्यक है (सबको नहीं) सो उनके लिये बारह बर्यसि विकल्पहै कि चाहें बारह बर्य की व्रतचर्या करें या बड़ी यज्ञकरें जो पहिले कभी किया हो—परन्तु ऐसा नहीं कि प्रायश्चित्तही के निमित्त पर स्वर्जित आदि यज्ञ करना चाहिके अग्निका स्थापन करें या पहिला यज्ञ करें • क्योंकि जोपतित होचुका उसको द्विजातियोंवाले कर्मका अधिकार नहींरहा • और तर्कभी न करनी चाहिये कि जैसे दोसौ तैत्तलिस २४३ की अधिकोक्तिमें संध्योपासन करनेका अधिकार सिद्ध किया था तैसे उसकी तरह अग्निका स्थापन और प्रथम यज्ञका करना भी अविरोध दहराराया जाय • सो यह तर्क इस हेतुसे न करनी चाहिये कि वहाँ तो यह तात्पर्य था कि सभी कर्मोंके प्रारम्भमें शरीरकी शुद्धि करनी आवश्यक होतीहै वह शुद्धि ज्ञान और संध्यासे होतीहै जब कि प्रायश्चित्तकी स्थापना करना उस अधिकोक्तिमें कहागया तो यह बात आपही सिद्ध होजाती है कि शुद्ध होनेके लिये ज्ञान करना कहा तिससे ज्ञानकी अंगभूत संध्याभी अवश्य करनी शय रही सो करनी चाहिये—और यहां यह प्रयोजनहै कि अग्निका स्थापन और पहिला यज्ञ ये उस पहिले यज्ञके अंगभूत नहींहैं जो प्रायश्चित्त रूपी करना कहा तिससे उसका श्रेय कर्मभी ये नहींहैं जो संध्योपासनकी भाँति तत्काल करिलेना जातीकर्म से अविरोध माना जासके • क्योंकि यहां यही तात्पर्यहै कि जिसके अग्निकी स्थापना का अधिकार हीनेसे नित्यंप्रति अग्निहोत्र कर्म होता रहा और दोयी होजानेसे पहिले कीइसा यज्ञ भी उसने किया हो तिसको यह अधिकार पाया जाता है कि बारह बर्य वाले प्रायश्चित्त के बदले उसी यज्ञ को फिर करें जिसको पहिले कभी किया था—अश्वमेधके उपरालू जिन यज्ञोंका करना जिन लोगों पर दहराराया गया तिनके लिये यह विचार भी करना आवश्यक है कि साक्षात् इन्ता पुरुय को बारह बर्य के बदले पूरी दक्षिणा से कराया जाय और उसके सहायक आदि जिस किभी को आवा प्रायश्चित्त के बर्यका दहराहो तिसको आधी दक्षिणा से और जिसको चौथाई तीनबर्य के बदले यज्ञ दहरा हो तिसको चौथाई दक्षिणासे कराया जाय इत्यादि अपनी बुद्धि से व्यवस्था कल्पित कर लेनी चाहिये ॥ २५८ ॥

(अन्यच्चप्रायश्चित्तांतरम्)

अरण्येनियतो जप्त्वा त्रिवेदस्य सां हिताम् । शुद्धयेत वा मिताशित्वा प्रति स्रोतः सरस्वतीम् २१९
 अर्थाः—वनमें नियताहार होके वेदकी संहिता की तीनवार जपिके भी शुद्ध होय
 यदा मिताहारी होके स्रोत स्रोतके प्रति सरस्वती को जाइके भी शुद्ध होय=अर्थात्
 थोड़े भोजनका एकसा नियम बाँधिके निर्जन वन में किसी पुनीत स्थानपर वेद सं-
 हिताकी तीन आठुत्ति पाठकरै या उसी तरह थोरै प्रसारा का भोजन भिक्षा खाते
 हुये पर्व देशमें प्लक्षताम उपद्वीप के भरने से यात्रा प्रारम्भ करिके पश्चिम समुद्र
 तक पहुँचै फिर वहाँसे झरने और स्रोतोंके सहारे रास्तालेकर सरस्वती नदीको पहुँचै
 तौ शुद्ध होजाता है इसमें बारह आदि वर्षोंका कुछ नियम नहीं रहा किन्तु जितने
 दिनम उक्त कार्य होसके वही नियम है ॥ २४६ ॥

२४६ अधिकोक्तिः—इसप्रायश्चित्त वालेको वह भिक्षालेनी चाहिये जो हविष्य
 में गिनती हो जैसे हेमंतिका आदि मुन्यन्न बहुधा होतेहैं क्योंकि (हविष्यभ्रवानुच-
 रेत्प्रति स्रोतः सरस्वतीम्) मनुने यह कहाहै कि हविष्य भोजन करते हुये स्रोत स्रोत
 की द्वारा सरस्वतीकी चलाजाय अथवा इस वचनका यह अर्थहै कि नित्यं प्रति हवन
 करिके उसका श्रेय बचाहुआ हविष्य भोजन करै किन्तु भिक्षा मध्ये कुछ हविष्य
 का नियम नहीं ॥ वेद संहिताका जप करना कहा तीन बार सो मंत्र और ब्राह्मण
 रूप संहिता समझनी और संहिता लेनेसे वेदका पद क्रम इसमें नहीं सूचित किया
 किन्तु केवल मंत्र ब्राह्मात्मक संहिता का पाठ करना चाहिये सो यह प्रायश्चित्त
 केवल उसी पर आखड है जो वेद पढा हुआ विद्या हो और निर्धनी भी हो जिसने
 आप श्रुतावाच होकर निर्गुणा ब्राह्मणका वध किया हो और इच्छा बिना धोखा से
 वध कियाहो ॥ दूसरा सरस्वती को जाना कहा सो निर्गुणी विद्या विहीन हत्यारा
 जो धनसे भी हीनहो जिसने किसी निर्गुणी ब्राह्मणको मारा हो तिसके लिये आ-
 वश्यक जानो क्योंकि (तिरस्कृतो यदा विप्रो निर्गुणो म्रियते यदीत्यादिनाममनुवचन
 स्पदाश्रितत्वात्) ये मनुके वचन पहिले २४३की अधिकोक्ति में लिखेगये तिनको
 भी देखो=और जो मनुका यह वचनहै (जपित्वाऽन्यतमवेदं योजनानां शतं ब्रजेत्) कि
 अन्यतम किसी एक वेद को जपिकर सौ योजन (चारसौकोस) की यात्रा भी करै
 सो भी यह वही प्रकारहै जो वनमें संहिता जपना कहागया मनुके इस वचन में सौ
 योजनकी यात्रा अधिकहै सो चलसकने में समर्थहो तिसकेलिये समझना तहाँ वेद

का जप एकही आरुति है अर्थात् जहाँ मात्रा करनी नहीं कही उसमे तीन आरुति पाठ करना कहा ये दोनों बात एकसी बराबर हैं कुछ भेद नहीं ॥ अब जो बड़े धन-वाद्य हों तिनके लिये विकल्प नीचे कहेंगे ॥ २४६ ॥

(धनाढ्यानांप्रायश्चित्तान्तरं)

पात्रेपनंवापर्यासंदत्त्वागुद्धिमनाप्नुयात् । आवातुश्राविशुद्ध्यर्थमिष्टिवैश्वानरीतया २५०

अर्थः—ग्रहा पात्रमें ठीक धन देकर शुद्धि को पावे । तथा उस धनका प्रतिग्रह लेने वालीकी विशुद्धि के लिये वैश्वानरी इष्टि करनी चाहिये अर्थात् वैश्वानर देवता है जिसका ऐसा यज्ञकरे ॥ २५० ॥

२५० अधिकोक्तिः—पात्र ब्राह्मण वह कहाता है जो दान देने योग्य पात्र हो जिसके लक्षणा शास्त्रों में प्रसिद्ध और आचार मर्यादा में कहि चुके हैं तैसेकी धन धरती राऊ आदि उसके जीवन पर्याप्त ठीक ठीक देवै कि जिससे वह अपनी अवस्था भरका निर्वाह विधिपूर्व करसके ॥ ॥ जिस पात्रने इस इत्याका प्रतिग्रह श्रवीकार करिके लिया हो उसको भी अपने आत्मा की शुद्धि के अर्थ वैश्वानर यज्ञ करना चाहिये सो यह नियम अग्नि होवीपात्र का समभूता किन्तु जो अनाहितारिणपात्र होय सो अपने उस देवता का होमकरै जिसकी उपासना रखता हो (यथावाहितारिण धर्म-सप्तवीपासनिकस्येतिगृह्यकारवचनात्) क्योंकि गृह्य सूत्रके सप्तहकार ने लिखा है कि जो आहितारिण अग्निहोत्री काधर्म है वही उपासनीय देवतावाले का धर्म है बराबर समभूतो ॥ पात्रेधन वा यह विकल्प वाची वा शब्द जो मूल श्लोक में आया तिसके ध्वन्यर्थ से यह सूचना है कि इतना धन नहीं तो सामर्थी सहित घरही दान करै=यदाहमनुः=सर्वस्ववावेदिविदेवब्राह्मणायोपपादयेत् धनवाजीवनायालगृहवास परिच्छदस=अर्थात्=ननु ने तीन कल्प कहे हैं कि यातो अपना सर्वस्व जितना धन धरमें संचितहो सब वेदवेत्ता ब्राह्मण को समर्पणा करै या उस ब्राह्मण की जिदगी भरके अनुमान धनदेवै या निज मकान धरकी सामग्रियोंसे समुक्त भरापुरा दान करै तब शुद्ध होय=इसमें भी यह वियय व्यवस्था करनी आवश्यकहै कि सुपात्रकी धन का देना कहा सो उस विययमें समुभूता जहाँ मारनेवाला निशुणा और धनवान हो तथा निर्याणकी माराहो और इसी इत्यारिके यदि पुत्रादिक बश न होतो जैसे मनुने सर्वस्व दान कहा सोभी उचित है और जो उसके पुत्रादि बश हो तो सामर्थी सहित धर देना उचितहै सर्वस्व नहीं पर ब्राह्मणकी आयु भरके योग्य धनदेना यह बशके

उपस्थितहोते भी उचितहै ॥ पराशरस्तु=चातुर्विधोपन्नस्तुविधिवद्ब्रह्मघातके समुद्र
 सेतुगमनंप्रायश्चित्तविनिर्दिशते सेतुवन्धपथेभिर्सांचातुर्वर्ग्यात्समाहरेत् वर्जायित्वा
 विकर्मन्त्यान्कृत्रोपानद्विवर्जितः अहदुष्कृतकर्मावैमहापातककारकः गृहद्वारयुतिया
 सि भिक्षार्थीब्रह्मघातकः शोकलेयुचगोष्टेयुग्रामेयुनगरेयुच तपोवनेयुतीर्थेयुनदीप्रस्रव
 रोयुच सतेपुत्र्यापयन्नेनः पुरायंगत्वातुसागरम् ब्रह्महाविप्रमुच्येत स्नात्वातस्मिन्महो
 दधौ ततःपूतोऽहं प्राश्यकृत्वा ब्राह्मणभोजनम् स्त्वावस्त्रपवित्राणि पूतात्माप्रविशेद्गृ
 हम्=गर्वावापिशतं दत्त्वा चातुर्विधायदक्षिणास्य एवंशुद्धिसवाप्नोति चातुर्विद्यानुसो
 दितः=अथति-जहाँ चारों वेद आदि विद्यासे संपन्न ब्राह्मणही किसी विधि विधान
 के विज्ञाता ब्राह्मणको घातक करै तहाँ यह प्रायश्चित्त आदेश किया जाय कि स-
 मुद्रके पुल तक यात्राकरै और सेतुवन्ध रामेश्वरके मार्गमें चारों वर्गके घरोंसे भिक्षा
 मांगै परन्तु खोटे कर्म करने वालोंसे न मांगै और उनको साथ नलेकर और क्षत्री जूता
 छोड़े हुये इस रीतिसे मांगै कि मैं महापातकी कृकर्मा ब्रह्मघाती हूँ घरके द्वार खड़ा
 हूँ भिक्षा पानेकी और भिक्षा मांगनेके समयसे उपरालू भी जहाँ तहाँ गौओंके समूह
 पास जंगल और गौओंकी स्थायसके स्थानों पास तथा ग्रामों वा कसबों और बड़े
 शहरों में होकर जहाँ निकसनाहो और तपोवन जहाँ वनमें तपस्वी रहिते हों तिनमें
 तथा तीर्थके स्थानोंमें और नदीके घाट वा भरना सोता आदि कोइसा आश्रमहो तहाँ
 सर्वत्र अपना पाप सुनाते हुये पुनीत सागर समुद्र सेतुवन्धको पहुँचके उस महोदधि
 में स्नान करिके हत्यारा मुक्तिपावै वहाँसे पवित्र हुआ अपने घर जाइके ब्राह्मणभो-
 जन कराइके पवित्र वस्त्र आदि दान देकर शुद्ध हुआ अपने घर में घुसै=शुभवा=यह
 न होसके तो एकसौ गौंसे विधि विधानसे चारधेदके विज्ञाताको दक्षिणा देकर भी
 शुद्ध होताहै क्योंकि चातुर्विद्य दानपात्र के आशीर्वचनों से शुद्धि प्राप्त होती है-सो
 यह दोनों कल्प भी उसीके समान समुझने जेसा योगीश्वरके मूलश्लोकमें कहागया
 कि जो धनचांच और विद्यासे हीनहो तो धनदान करै तैसा यहाँ विद्याय हत्यारे का
 चर्चाहै कि यातो समुद्रकी यात्रा करै या एकसौ गौंसे दानकरै ॥ १ ॥ जोकि समुद्र
 का यह वचन है कि-ब्रह्महासवत्सरकृच्छ्रं चरेदथ श्राद्धी त्रियवशी कर्मावेद को
 भैसाहोरो विद्य नदीपुलिन सगमाश्रम गोष्ठ पर्वत प्रस्रवणा तपोवन विहारीस्यास्था
 न बीरासनी सवत्सरे पूर्यो हिरण्यमणि गोधान्यतिलभूसि सर्पा यि ब्राह्मणोभ्योददन्
 पूतोभवति-तदपिहनुसैर्खस्यवनवतोजाति मात्रव्यापादनेद्रष्टव्य=अथति-सुमन्तु ने
 जो कहा कि-ब्रह्महत्यारा एकवर्ष भर कृच्छ्रव्रत करै वरती मे सोवै तीनों संध्या मे

अपनी जाति के साथ किये जायँ या छोटी जातों के साथ किये जायँ उनके मध्ये चौथाई आदि कम करिके सभी आदिका नियम इस वचनमें टीकरहा (चार प्रकार के साहस मनुष्य मारडालना १ प्रबलता से चोरी करना लूटना आदि २ पराई स्त्री के साथ प्रबलता करनी ३ प्रतिलोम गालीदेना आदि कृवचन ४) इन अपराधों में चौथाई आदि कमका नियम नहीं होसक्ता यह तात्पर्य है ॥ १० ॥ तथैव, मूर्खावसिक्त आदि अनुलोम जातों का प्रायश्चित्त उनके दंडके अनुरूप विचारना चाहिये (दंड प्रणयनं कार्यं वर्गा ज्ञात्युत्तराधरेः) यहवचन व्यवहारकांडमें आचुका है इसीसेउनका दण्ड विचार होता है प्रायश्चित्त इस रीतिसे विचारा जाय कि जहां मूर्खावसिक्त ने ब्राह्मणका बध किया हो तो उसको ब्राह्मणसे अधिक और सभीसे न्यून प्रायश्चित्त चाहिये तिससे वारहवर्ष के जगह आठारह वर्ष निश्चितहुये इसी नमूनासे औरोंकी भी समुक्ति लेना और स्त्री बालक बूढा रोगी होनेआदिके विचार सबके साथकरने जो पहिले लिख चुके हैं ॥ ३ सी मार्गसे प्रतिलोमोत्पन्न जातोंका प्रायश्चित्त बढ़ाकर ऊहा करलेना चाहिये ॥ तथैव आयमके निवासियों को अंगिराने विशेषता दर्शाई है—यथा हांगिरा—गृहस्थोक्तानिपापानिक्त्वायमिगोयदि शौचब्रह्मचर्यावनंक्युर्वाग्ब्रह्मनि दर्शनात्—अर्थात्—गृहस्थोंके मध्ये कहे पाप जो ब्रह्मचारीआदि आयनीलोगभी करें तो अपने अपने शौचकेतुल्य पापोंका शोधन प्रायश्चित्त करें यह ब्रह्मनिदर्शन से पहिलेसमुक्तना(ब्रह्मके निदर्शनसे अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे पहिले) इसवातका यह तात्पर्य है कि जब तक अपने आयम धर्मोंकी सावनासे पूरे सिद्ध न होचुकेहों केवल अभ्यास किया करतेहों तभी तक अपने शौचके अनुसार वेही प्रायश्चित्त करें जो गृहस्थोंके निमित्त कहेगा और आगे कहेजायेंगे परन्तु जो बिरला कोई ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ य यती संन्यासी अपने धर्मकी सावना अति कालसे करते करते योग धारणाआदि परी सिद्धिको पहुंचिके ब्रह्मज्ञानमें पूरा और ब्रह्मस्वरूप की तन्मयतामें दृढ़ होगया है उसके लिये यह गृहस्थोंवाले प्रायश्चित्त नहींहैं क्योंकि प्रथम तो ऐसे महात्मा से महापाप होना भी सम्भव नहींहै तथापि जो कदाचित्काल जगदीश की इच्छासे कोई सा निमित्त आनि परै तब उनका नैमित्तिक प्रायश्चित्त भी उन्हीं के हाथ में इरवक्त रहता है कि बहुतर प्राणायाम आदि योगोंकी धारणा से विशुद्ध हंगि और अपने आप विशुद्ध करनेपर आच्छद्हंगि यहा अपने आप उपेक्षा देखिपरनेमें उन्हीं के परिकर वालोंकी प्रेरणा उनपर होगी कि जैसे गृहस्थी को गृहस्थी पतित कहि कर त्यागि देताहै अर्थात् गृहस्थी सावकी प्रेरणा उनपर उचित नहीं) इस प्रकार के

विशियोंको छोड़कर श्रेय आग्रसियोंकी शौच के तुल्य कहा तिसका यह तात्पर्य है (सतच्छौचगृहस्थानां द्विगुणां ब्रह्मचारिणाम् त्रिगुणां तुवनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणां) इस वचन से आचार मर्यादा में कहि चुके हैं कि यह शौच का प्रमाण कहा सो गृहस्थोंका जानना और ब्रह्मचारियों को इससे दूना चाहिये वानप्रस्थों को तिगुना चाहिये यती संन्यासियों को चौगुना—इसी के तुल्य प्रायश्चित्त भी दूना तिगुना चौगुना समुझलेना ॥ परन्तु ब्रह्मचारीको सोरह वर्षकी अवस्था उपरान्त दूना चाहिये क्योंकि (बालोवाप्यनयोद्देशः) सोरहसे कम अवस्थामें बालक कहाता है (प्रायश्चित्ताद्मर्हति) बालक बूढ़े आदि आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हे यह पहले कहि चुके ॥ ० ॥ यह शंका न करनी चाहिये कि यती को बारह वर्ष का चौगुना अरतालीस वर्ष करनेका अवकाश मिलसकना सम्भव नहीं क्योंकि इतनी अवस्था उसकी कहां रही बीचहीमें देह छूटिकर प्रायश्चित्त पूरा न होगा तिससे प्रारम्भ न करना चाहिये—सुनो प्रारम्भ करना चाहिये क्योंकि प्रारम्भ करिके मरजाने पर भी पापका विनाश होजाता है—तथाच हारीतः=प्रायश्चित्तेत्यवसितेकर्तार्यदिविपद्यते पतस्तदहरेवासा विहलोकपरत्रच=व्यासोप्याह=धर्मार्थयत्मानस्तु नचेच्छक्नोति सा नवः प्राप्नोभवतितत्पुण्य मवनैवास्ति संशयः=अर्थात्—प्रायश्चित्त करने पर निश्चय से उताहू होनेमें जो कर्ता मरजाय तौ वह उसी दिन पवित्र होजाता है इसलोक और परलोक में भी यह हारीतनेकहा और=व्यासभी कहिते हैं कि=धर्म के निमित्त यत्न करता हुआ यदि कोई पुरुष न करसके तौभी उसके किये तुल्य पुण्य फल मिलता है इसमें संदेह नहीं ॥ २५० ॥

॥ अब निचले परिच्छेद में और भांतिके पातकमें भी इसी ब्रह्महत्या वाला प्रायश्चित्त अति देश किया जायगा ॥

स्नानकरै अपना कर्म सुनाता रहै भिक्षा भोजन करै दिव्य नदियों के किनारे और नदियों के संगम स्थानपर और जहां तपस्त्रियोंके आश्रम हों गौओंका निवास हो पर्वत के आश्रम और-भरने और तपोवन हों सबमें विहार करतारहै स्थानपर दिके तहां आसन का वीर होके रहै इततरह एकवर्ष पूरा होनेपर सोना चाँदी मरिगाऊ अन्न तिल धरती धी ये चीजें ब्राह्मणों को दान करता हुआ पवित्र होजाता है—सो यह नियम भी ऐसे विययपर मनभक्ता जहां मारने वाला मुख और धनवान् होऔर अपने वरां जाति माघ की हत्या करीहो ॥ और जो वसिष्ठ का यह वचनहै (द्वादशरात्रमन्त्रोद्वाद्दशरात्रमुपवसेत्) कि बारह दिन जलपीके रहै फिर वारह दिनकोप उपवास करै • सो यह कल्प ऐसे वियय पर आरूढहै कि जहां मन से ब्राह्मण का मारडालना चाहि के मारने गया फिर आपही कुछ शोचि के विना मारे लौट परा हो जैसा २५२ मूलप्रलोक में कहेंगे तहां देखना ॥ और जो यद्विशद मतका वचन है (यंतुब्राह्मणोद्दत्त्वाशूद्रहत्यावृत्तंचरेत् चांद्रायणांवाकुर्वीत् पराकद्वयमेववा इति तदप्रत्यानेय पुंस्त्वस्यसप्रत्ययवधेद्रष्टव्यं) कि नपुंसकब्राह्मणको मारि के शूद्रकी हत्यावाला व्रतकरै या चांद्रायण करै या दो पराक माघे—सौयह उस वियय पर विचारना कि जहां मरे ब्राह्मण की नामदीं निपट असाध्य हो अर्थात् पुंस्त्व चिकित्सा आदि से न होने योग्य ठहरै और प्रत्यय सहित वध किया गया हो—इसी विययपर अप्रत्यय वध होने मध्ये दृढस्पतिकका वचन है (अरुणायाःसरस्वत्याःसंगमेलोकद्वियुते युद्धोत्थियवरास्त्रायीविराषोपोयितोद्विजः) अर्थात्—अरुणा और सरस्वतीके संगमका स्थल जो लोकमें प्लसड्वीप से विख्यात है तिसमें त्रिकाल स्नान करने और तीनरात्रि निराहार व्रतकरनेसेद्विजाती शुद्धहोताहै—इसीप्रकार और भी स्मृतियोंके वचन दंडिकर जो वियम हों तिनकी व्यवस्था बुद्धिमानीसे कल्पित करनी चाहिये जो परस्पर समान हों तिनका विकल्प मानना चाहिये ॥ ० ॥ ध्यान करो कि बारह वर्षकी आदिलेकर धनवान पर्यंत जो प्रार्थप्रवृत्त लिखे गये सो सब केवल ब्राह्मण हत्यारे के निमित्त में मनभक्ते किन्तु सबी आदिके लिये दूना आदि नियम मनभक्ता सो अंगिराके वचनमें देखो—यथाहंगिराः=पर्ययात्रा ह्यरानानंतसारा जौद्विगुणामता वैश्यानां त्रिगुणाप्रोक्तापर्यद्वचव्रतंस्मृतम्=अर्थात्—ब्राह्मणोंकीपर्यंत सभाका परिमान जितवाहो उससे दूना राजाओंकी सभाका और त्रिगुणा साहकार वैश्योंकी सभामध्ये कहाहै और पर्यद्व के समान सबका व्रत भी होय दूना त्रिगुना—इसवार्ता से यह तात्पर्य ठहरा कि जिस दशा में दो ब्राह्मणों के परस्पर एकमारा

जानेमें दोनोंके गुरा लक्षणा आदि विचार से जो प्रायश्चित्त ठहरे वही प्रायश्चित्त उसी गुरावाले क्षत्री को दूना उपदेश किया जाय जिसने उसी गुरा वाला ब्राह्मण मारा हो तथा वही प्रायश्चित्त उसी गुरावाले वैश्यको तिसुना उपदेश किया जाय जिसने उसी प्रकारका ब्राह्मण मारा हो और इसी मर्यादासे यहभी नियम निश्चित हुआ कि जो जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंके परस्पर नियतहोचुके वही प्रायश्चित्त उत-नही परिमारासे उस दशामे क्षत्री आदिको भी दिये जायँ कि जब उनके अपने वर्रा-मात्रमें परस्पर कोई उसी वर्राका मनुष्य माराजाय (इसका विषय वयोरा नीचे चतुर्विंशतिके वचन से भी समझना) और इसी मर्यादासे जहाँ क्षत्री वैश्य या वैश्यऔर शूद्र में ऊँचे नीचे के विरुद्ध से ऊँचा मारा जाय तहाँ भी दूना आदि आदेश करना जैसा ब्राह्मण और क्षत्री आदिके मध्ये अभी कहिचुके—यह सब दोय की बड़ाई के अनुसार प्रायश्चित्तों की कल्पना होतीहै जहाँ कहीं दोय की बड़ाई छोटाई पहिँ-चानने में संदेह खडा होय तहाँ दराडकी बड़ाई से भी दोयकी बड़ाई समझी जातीहै जैसा व्यवहार में कहचुके है कि (प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणास्त्रिगुणोदमः वर्णानामा नुलोम्येचतस्मादर्धार्धानितः) अर्थात् प्रतिलोम अपवादोमे कि जहाँ नीचावर्ण ऊँचे वर्ण का अपराध करै तहाँ दूना तिसुना दराडहै अर्थात् शूद्र जो वैश्यका अपराधी होय तिस पर दूना जो क्षत्री का अपराधी होय तिसपर तिसुना इसी तरह वर्णोंके अनुलोम अपराध में कि जहाँ ऊँचा वर्ण नीचेका अपराधी होय तहाँ आधा आधा दराड घटजाताहै यह व्यवहार मर्यादा परिपारीमें देखो ॥ ० ॥ और जो चतुर्विंशति मतका वचन है कि (प्रायश्चित्तयदान्नात ब्राह्मणस्य प्रमहर्षिभिः पादोनसत्रियः कुर्या दर्वैश्य समाचरेत् शूद्रः समाचरेत्पादमशयेष्वपि पाप्मसु इति तत्प्रतिलोमानुसितचतुर्विंशसाहसव्यतिरिक्तवियथ मिति विज्ञानेश्वरः) अर्थात्—चतुर्विंशति मत वालोने कहाहै कि महर्षियोंने जो प्रायश्चित्त ब्राह्मणको बताया वही प्रायश्चित्त चौथाई कमकरिके क्षत्री करै और वैश्य आधा करै शूद्र चौथाईकरै यह अशेषसभी पापोंमें समुझना • इसपर विज्ञानेश्वर व्यवस्था देते है कि यह नियम उन पापों को छोडि के समुझना जो अपराध प्रतिलोम छोटी जातोने ऊँची जातोकेसाथ कियेहैं और उनको भी छोडिके समुझना जो चारभाँति के साहस व्यवहारकांड में लिखे गये क्योंकि जो ऊँची जातोंके साथ किये गये तिनका प्रायश्चित्त ऊपर आदिगा के वचन से दूना तिसुना ठहरे चुका और साहस चाहै किसी के साथ किये जायँ तौभी बड़े अपराध है उनका भी दूना तिसुना ठहराना चाहिये इनसे उपरालू और सब अशेष पाप जो

अथ क्वचिद्ब्रह्मवधादन्यथापि ब्रह्मवध प्रायश्चित्तान् तिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चिंशः ३० ॥

—*—

इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त विरले उनपापों पर भी अतिदेश दिया जायगा जो साक्षात् ब्रह्मवध नहीं हैं ॥

(यागस्थचत्रियथातकादिष्वतिदेशः)

यागस्थक्षत्रियविद्घातचिरेद्ब्रह्महणिव्रतम् । गर्भहाचयथावर्णतपाऽऽत्रेयीनिपूदकः २५१

अर्थ—यज्ञकर्म पर आरूढ स्त्री या वैश्यकी घात करनेवाला ब्रह्महत्या का व्रत करै एवं गर्भका मारनेवाला यथा वर्णको अनुसार तथा (आत्रेयी) रजस्वला आदि स्त्री का वध करनेवाला भी वर्णको अनुसार प्रायश्चित्त करै ॥ २५१ ॥

२५१ अधिकोक्तिः—यहां याग शब्दसे सोमयाग लिया गया है कि सोमयाग की दीक्षा प्रारम्भ होनेसे लेकर समाप्ति पर्यन्त मध्यकाल में जो स्त्री या उस भाँति यज्ञमें लगे हुये वैश्यकी मारै सो ब्रह्महत्यारै मध्ये वारह वर्ष आदि व्रत कहा गया वही करै (ब्रह्महरिणपुस्येयद्रतमुपविष्टं द्वादशवार्यिकादितदेवचरेत्) —यद्यपियाग शब्दसे सब यज्ञ समुभू जातेहैं तथापि यहां सोमयागही मानागयाहै क्योंकि (सवन गतीचराज्ञान्यवैश्यावित्वासिष्ठे सवनत्रयसंपाद्यस्य सोमयागस्यैवनिर्दिष्टत्वात्) वसिष्ठ की स्मृति में सोमयागही का निर्देश इस रीतिसे हुआ है कि सवन में लगे हुये स्त्री वैश्यकी इत्यादि कहिकर तीन सवनसे परा होने योग्य सोमयाग दर्शाया है—इसमें भी=बड़े छोटे व्रत वारहवर्ष आदि के जैसे ब्रह्महत्या पर कहेगए तैसे बड़े छोटे आदि यहां भी हन्ताकी जाति शक्ति गुरा आदिको अपेक्षासे विचार कर लेने चाहिये—ऐसेही गर्भका वध करने और आत्रेयीका वध करनेमें भी समुभूता—परन्तु—इसविषय पर कोई प्रायश्चित्त वह नहीं आरूढ है जो मरणांतिक अग्निमें जलिताना आदि कहे गए थे क्योंकि योगीश्वरकी मूलप्रलोकमें व्रत करना कहागया है इसी कारणसे यह व्यवस्था सिद्ध होतीहै कि जिसने बिना इच्छाके वध किया हो तिसकी बारह वर्षका व्रत रहा और जिसने इच्छा से चाहिके वध किया हो तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्तके बदले वारहवर्ष का दूना चौबीस वर्ष व्रतही आदेश कियाजाय सोभी

हे (अत्रि मुनि के गोत्र की सब स्त्रियों कोभी आश्रयी कहितेहैं रजस्वला होनेबिना भी उनके सारने का विशेष पाप समझना जैसा रजस्वलाका कहिचुके) यथाह वि-
 प्याः=अत्रिगोत्रजावानारीस=यह बातभी अगिले वचन में स्पष्ट है=यथा=ब्राह्मराग-
 भवधे ब्राह्मणयाश्रयीवधेचद्रहत्याव्रतं (अथसाश्रियगर्भवधे साश्रियाऽऽश्रयीवधेचक्षत्र
 हत्याव्रतमेवमन्यवापि) अर्थात्-ब्राह्मण का गर्भ बध करने में और ब्राह्मणों जो
 आश्रयी रजस्वला या साक्षात् अत्रिके कुलकी हो तिसके बध करने में ब्रह्महत्या का
 व्रत करै (इसमें इसी रीति से यह भी जोड़ि लेना कि सभी का गर्भ बध करने और
 साराणी जो आश्रयी रजस्वला हो तिसके बध करनेमें सभी की हत्या वाला व्रत करै
 इसी तरह वैश्यआदि मेंभी जोड़ि लेना) यह प्रयोजन यहांनहींहै कि रजस्वला मांसी
 गईहो क्योंकि यद्यपि ऊपर के वरानमें आश्रयी ऋतुस्वलाता मात्र प्रतिपादन करीगई
 तथापि ऐसा मत समझना किंतु इस वार्ता का यह तात्पर्य है कि जितनी अवस्था
 तक रजो वर्म होता बना रहे उस अवस्था को भीतर जो बध करै तो यह आश्रयी बध
 कहावै क्योंकि अनेक संतान होने संभवथी अर्थात् जिस स्त्री का मासिकवर्म निपट
 बंद होगया हो सो आश्रयी नहींहै उसके बधकरने में सामान्य स्त्री बध कहावै और
 प्रायश्चित्त भी उपपातकों वाला करना ठीकरै क्योंकि निपट कोई भी संतान होने
 की आशा नहीं रही यही न्याय दाय भाग के अनुसार ठीक ठीक है अन्यथा जो
 केवल उन्हीं तीन दिवसों में गर्भ होना सम्भव जानि के आश्रयी ठीकाओगे तब
 यह अत्यंत प्रबल दूयरा खड़ा होगा कि यदि रजस्वला होने से पांच दिन पहिले
 उसकावध किया जाता तोभी अनेक गर्भ होना संभव थे क्योंकि अभी दश वर्षतक
 जीवतीरही आती उसमें १२० एकसौ बीस बार रजोवर्म होता और अनेक संतान
 होसक्तो फिर क्योंकिर उसके इन्ता को छोटा सा प्रायश्चित्त कराया जाय) इस
 व्यवस्था को सूक्ष्मता पर दृष्टि देनी चाहिये कि यद्यपि स्त्रियों की हत्या पुरुषोंसे
 आधी कहिचुके तथापि आश्रयी बध करने से पुरुषकी बराबर हत्या होती है ॥० ॥
 योगीश्वर के मूलश्लोक में (गर्भहाच) यह चकार जो फालतू रहा तिसके ध्वन्यर्थ
 से भूँटी गवाही देने वाले आदि भी समझने=यथाहमनुः=उत्काचैवानृत्तंसाद्ये प्रतिर
 भ्यगुरुंतथा अपहृत्यचनिसेपकत्वाचस्त्रीसुहृद्वधं=अर्थात्-जिन सुकहमात में असत्य
 बोलनेसे किसी वर्राके मनुष्यको मौत दगाड मिलना सम्भवहो ऐसी गवाहीमें असत्य
 बोलिके और शुकके साथ क्रोध करिके और ब्राह्मणको बरोहरि इजम करिके और
 स्त्री तथा मित्रका बध करिके ब्रह्महत्याका व्रतकरै-इसमें जैसे असत्यको विशेषता

बहुत बड़ी कही और गुस्से क्रोध करना भी विशेष है और धरोहरि भी ब्राह्मण की ढीहराई तैसे स्त्रियांभी विशेष लक्षणावाली समझनी क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत बड़ा है तिससे आहिताग्नि पुरुष अग्निहोत्रीकी भाया और पतिव्रत आदि गुणसंयुक्त जो स्त्री हो और सबमस्था जो यज्ञपर समुद्यत होरहीहो तिसका वध समझो सब स्त्रियों का नहीं (क्योंकि आश्वेयीकी अभी ऊपर कहिचुके और उससे उपरालू अनार्त वा स्त्रियां उपपातकों में गिनतीहैं तिससे इन दोनोंसे उपरालू जो विशेष लक्षणा वाली हों तिनका वध मनुने दर्शाया है तिसका स्पष्ट व्यौरा आगे अंगिरा और पराशर के वचनों में देखो) यथाहांगिराः=आहितारनेर्द्विजाश्रयस्य तथापत्नीमनिदिताम् ब्रह्म हत्याव्रतकुर्यादाश्वेयीमस्तथैव च=सवनस्थांस्त्रियहत्वा ब्रह्महत्याव्रतंचरेदिति पराशरोपि =अथति-द्विजातियोंमें अग्रगण्य अग्निहोत्री की पत्नी तथा और जो पतिव्रत आदि गुणोंसे अनिदिताहो तिसको और आश्वेयीकी मारने वाला ब्रह्महत्याका व्रत करै यह अंगिराने कहा=सवनस्था जो किसी प्रकारके यज्ञ पर उताहो ऐसी स्त्रीकी मारिके ब्रह्महत्याका व्रतकरै यह पराशरने कहा=इन वचनोंसे यह तात्पर्य ढीहरा कि सवनस्था स्त्री और अग्निहोत्री और पतिव्रता और आश्वेयी इनको मारने वाला ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करै यह अतिदेश कहागया इसी से यह बातभी स्पष्ट हुई कि दोसौ छत्तीस २३६ मूलश्लोक में जोस्त्रियों का वध कहाया सो इन उत्तम स्त्रियों से उपरालूका समझना=यहांभी=वादी तर्क उठाता है कि (ब्राह्मणानंहंतव्यः) ब्राह्मण न मारना चाहिये यह नियेधका वचन जो नियत है तिसमें कोई ऐसा चिह्न नहीं है जिससे लिंग वचन आदिकी विशेष विवक्षा जानीजाय और ब्राह्मणकी जातिभी स्त्री पुरुष दोनों मिलिके बिना विशेषताके होती है. उस निषेध का अति क्रम करने के निमित्त पर प्रायश्चित्तकी विधि जो (ब्रह्महाडादशावदानि) इत्यादि पहिले कहि चुके सो स्त्री पुरुष दोनोंकी जुदी जुदी हत्यापर पहुँचतीहै तो फिर किसलिये आश्वेयीको मारने वाला यह अतिदेश वचन कहागया-सुनो-इसलिये कहा गया कि ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व के होते हुये भी जो ब्राह्मणी आश्वेयी नहो तिसके वध होने में महापातकोंका प्रायश्चित्त निकारि देनेके लिये वचन कहागया इसीसे दोसौछत्तीस श्लोकसे उपपातकोंमें उसका पाठ और प्रायश्चित्तभी उपपातकों वाला सूचितहूया है (और अतिदेश वाले जो अपराध हैं तिन में केवल प्रायश्चित्तही का अतिदेश दिया गयाहै किन्तु पातित्य का अति देश नहीं इससे पातित का त्याग आदि कार्य इसमें नहीं होता इति विज्ञानेश्वराचार्यः ॥ २५१ ॥

अब नीचे यह कहेंगे कि मारनेको जाइके लौटि आवै सोभी व्रतकरै
और विरली हत्यामें दूना व्रत करना होगा ॥

(अह्ननेपिकचित्प्रायश्चित्तह्ननेतुक्चित्रद्विगुणं)

चरेद्रुतमहत्वापिघातयेत्तमागतः † द्विगुणं तवनस्थेतुब्राह्मणेव्रतमादिशेत् २५२

अर्थः—न मारिके भी व्रतकरै जो घातके लिये पास आयाहो † सवनस्य ब्राह्मरा
के मारनेमें द्विगुण व्रत आदेश करै=अर्थात्—यथावर्षाके अनुसार यह संवन्ध पहिले
प्रश्लोक में से चला आताहै कि यदि कोई किसीको शस्त्र लेकर मारने उसके समीप
तक गया हो और बिना मारे कुछ सोचिके लौटिआवै या उसके न मिलने से घात
खाली चलाजाय तो यह हत्यारा टडिग्रा तिससे जिस वर्षाके सनुष्य को मारने गया
उसी वर्षाकी हत्या में जो प्रायश्चित्त का व्रत लिखा हो सो इसको करना चाहिये
ब्रह्महत्या या सवहत्या आदि के प्रायश्चित्त करै श्रेय अधिकोक्तिमें देखो † सवनस्य
अर्थात् सोमयाग में स्थित होते ब्रह्मरा को जिसने मारा हो तिसके लिये बारह वर्ष
आदि का दूना व्रत बताया जाय ॥ २५२ ॥

२५२ अधिकोक्तिः= सृष्टप्रचेद्ब्राह्मराववे अहत्वा पीति गौतमः=अर्थात्—गौतमने
भी कहाहै कि जो ब्राह्मरा को बध करने में गयाहो फिर चाहै किसी हेतुसे न मारि
पावै तोभी वही पाप है जो मारने में होता—अवितर्कः—क्यों जो मारडारने और
न मारनेमें भी एकही प्रायश्चित्त तो नहीं ठीक है—यह सत्य कहा इसी लिये औ-
पदेशिकों से आतिदेशिकों की न्यूनता अनुसार उनमें चौथाई कम करिके ब्रह्म-
हत्या आदि के व्रत होते हैं जो बारह वर्ष आदिके कहे गये यह प्रबंध पहिले २३१
दोसोडकतिस की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहां देखो (औपदेशिक विषय वे
कहाते हैं कि जिनके ऊपर मुख्यतासे उपदेश किया गया हो जैसे ब्रह्महत्याके ऊपर
बारह वर्ष आदिके अनेक उपदेश किये गयेहैं और आतिदेशिक विषय वे कहाते हैं
जिनके ऊपर मुख्यता से उपदेश नहीं कियागया किसी और का उपदेश लेकर उस
पर भी उतार दिया गया सो अतिदेश होताहै उसी अतिदेश के प्रभाव से वह विषय
भी आतिदेशिक कहाता है जैसे २५१ के प्रश्लोक वाले विषय पर ब्रह्महत्या का
अतिदेश उतार दिया गया तिससे यह विषय आतिदेशिक ठडिग्रा यह पूर्वार्थ की
अधिकोक्ति पूरी हुई अब आगे उत्तरार्ध की कहेंगे † सवनस्य के मारेजाने में दूना व्रत
कराना कहागया तहां मूलप्रश्लोकमें यद्यपि सवनस्य ब्राह्मराके साथ कोशविशेषण

ऐसा नहीं है कि जिससे उसका शरावान या निर्गुणा होना आदि विशेष चिह्न पायाजाय या हंताके विशेषरा जाति आदि कुछ समझे जायँ• तथापि दोसौहंता-
लिख २४३की अधिकोक्ति और दोसौ सताइस २२७की अधिकोक्तिमें पहिलीकही
रीतीसे यहांभी सवनस्थ ब्राह्मरा और उसके हंताकी जाति शक्ति गरा विद्या आदि
और बड़े छोटे व्रतों की अपेक्षासे व्यवस्था निर्राय करनी चाहिये क्योंकि मुख्यनिय
जो एक स्थलपर कहाजाता है वही सर्वत्र काम आता है• इन बातों का दृष्टान्त जैसे
अति बड़े या बालकने मारा तो उनकी वृद्धापन और बालपनके हेतुसे चौबीस वर्ष
की आधी बारहवर्ष रहिगई इत्यादि=इसी दोसौवावनके श्लोकमें उपदेश और अति-
देश दोनों सबजदहैं तिनकी सोचो कि उत्तरार्द्धमें सवनस्थके मारनेपर जो दूना प्राय-
श्चित्त बताया सो तो साक्षात् उपदेशहै किसीका अतिदेश इसमें नहीं है तिससे यह
पराही प्रायश्चित्त कराया जायगा केवल मारनेवाले की अवस्था आदि के अनुसार
रिश्चायत होगी और नहीं-और इसी मूलश्लोक पूर्वार्द्धमें जो मारने को पहुंच के न
मारिपावै तिसके लिये जो ब्रह्महत्या वाले व्रतका आचरण कहा सो उपदेश नहीं है
अर्थात् अतिदेश उतार दियाहै तिससे यद्यपि पूरे बारह वर्षका अतिदेश कहा तो भी
परा नहीं कराया जाय किन्तु चौथाई कम करके नौवर्ष का व्रत कराना होगा यही
तात्पर्य दोसौ श्लोककी अधिकोक्ति में दर्शाइ चुके सो सर्वत्र समझते रहिना ॥ ० ॥
दूसरी यह व्यवस्था याद रखो कि ब्रह्महत्या के समान जो पाप दोसौ अट्टाइस मूल
श्लोकसे शुरुआंका अधिक्षेप आदि कहेगए सो सब आतिदेशकों से भी कुछ हलुके
पापहैं तिससे उनमें बारह वर्ष आदि का आधा कम करके व्रत करायाजाय क्योंकि
एक चौथाई तो आतिदेशिकमें कम होचुकी ये उनसे भी हलुके छोटे पातकहैं॥२५२॥

इति ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्त प्रकरणां ॥

इस प्रकारका में समस्त दश परिच्छेद हैं इक्कीस से तीसतक तिनमें तेइस तक तीन
परिच्छेद परलोक और नरक आदि के स्वरूप मध्ये नियत हैं चौबीसवें परिच्छेद से
पांच महापातकियों के लक्षण कहि कर यहां तक ब्रह्महत्या का निपटारा किया
गया—अब आगे सुरापान महापाप का प्रायश्चित्त और यथा क्रमसे सभी पापोंके
प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥

अथ सकाम सुरापानमहापातक प्रायश्चित्त विवेको नाम परिच्छेदः एकत्रिंशः ३१

—*—

इस परिच्छेद में उन महापापों के प्रायश्चित्त जाने जायेंगे जो नियिद्ध मदिराके इच्छा सहित पीने से होते हैं अर्थात् उत्तम और मध्यम, और सुरा इनसे उपरालूसभी मद्यों के ॥

(सुरापान प्रायश्चित्तानि)

सुराम्बुधृतगोमूत्रपयतामग्निसंनिभम् । सुरापोऽन्यतमंपीत्वामरणच्छुद्धिमृच्छति २५३

अर्थः—मदिरा•जल•घृत•गोमूत्र•दुग्ध•अग्निके समान तपेहुये इनमें किसी एकही को पीकर सुरा पीनेवाला मरजाने से शुद्ध होताहै—अर्थात्—जिसने सुरापान कियाहो तिसका यही प्रायश्चित्त है कि मदिरा आदि पांच द्रव्यों में से किसी एकही को गरम करि खूब तपाइके पीजावै जिससे हृदय जलित के मरजाय तब शुद्धि उसकी होय ॥ २५३ ॥

२५३ अधिकोक्तिः—गोमूत्र के साथ कड़िने से घी दूध भी गायके लेने चाड़िये तथा मूत्र गरुका हो बेलका नहीं—यह पीना उसको भीगे वस्त्र पहिन के करनाचाड़िये—तदाह पैठीर्नासः—सुरापआर्द्रवासाप्रच अग्निवर्णांसुरांपिबेत्—अर्थात्—सुरापीने वाला पाप भीजे वस्त्र पहिने हुये अग्निके समान खूब तपी हुइ सुराको पीवै=प्रचेताने लोहेका पात्रभी कहाहै=यथा—सुरापोऽग्निवर्णां सुरानायसेनपात्रेसावापिबेत्=अर्थात्—सुरा पीनेवाला अग्निके रूपसमान तपाइ हुइ सुराको लोहेके वासनसे पीवै तब शुद्ध होय=यह प्रायश्चित्त भी उसको है कि जिसने एकही वार सुरापो हो=तदा हांगिराः—सुरापानंसकृत्कृत्वा अग्निवर्णांसुरांपिबेत्=अर्थात्—एकही वार सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करै कि अग्नि के समान सुरापीवै=और जो वाशियका यह वचनहै कि (अभ्यासेत्सुराया अग्निवर्णांसुरांपिबेत्द्विजः) अभ्यास से बारम्बार सुरा के पीने में हिजाती अग्नि के तुल्य सुरा पीवै सो यह वचन मुख्य सुरा से उपरालू मद्यों के अर्थात् गोड़ी और माद्यों के पीने मध्ये समभना ॥ सुरापान का प्रायश्चित्त जो

कहा गया सो उस दशापर आरुह्य समझना कि जिसने इच्छा सहित सुरा पी हो
 क्योंकि अगले वृहस्पति के वचन से यही तात्पर्य है—यथाह वृहस्पतिः=सुरापाने
 कामहतेज्वलतींतांविनिक्षिपेत् सुखेतयाविनिर्दग्धे मृतः शुद्धिमवाप्नुयात्=अर्थात्—
 इच्छा से सुरापान करने में जलती हुई सुराकोही सुखमें छोड़ें तिससे हृदय जल
 जाने से मरिक्के शुद्ध होय=और जो मनु का वचन है कि (सुरापीत्वाडिजोमोहाद-
 ग्निवराणांसुरांपिबेत्) इसमें जो मोहसे पीकर-सेसा कहा सो इसलिये कि शास्त्रार्थके
 तात्पर्य की न जानिके जिसने पीहो ॥०॥ इसमेंयह विचारनाचाहियेकि सुराशब्दजो
 हे सो सभी मद्यमात्रपर आरुह्यहै या गौडीगुड़की बनी माध्वी महुआकी बनी पैँछी धान
 आदि पिसान की बनी केवल इन्हीं तीन मद्यों पर अथवा इनमें भीकेवल पैँछी पर
 आरुह्य है—तहां—कितने सक विरले सेसा कहिते हैं कि सुरा शब्द सभी मद्योंका बोव-
 क है इस तर्कसे कि वाशय का वचन जो ऊपर लिख चुके तिसमें सुराका अभ्यास
 जो बार बार का पीना कहा वह गौडी १ माध्वी २ पैँछी ३ तीनों से उपराल छोटेम-
 द्यों परभी प्रयुक्त दहिहा—तिससे बड़े छोटे सभी मद्य सुरा कहिने से समझ जासके
 है—और यहशंका नकरनी चाहिये किवह प्रयोगहीगौरा मद्यमहै क्योंकि सभीमद्यों
 से मद पैँदा होनेकी शक्तिरूपी उपादिसे सर्वत्र मुख्यताही सिद्ध होनेमें गौरात्व कहिना
 अन्याय दहिहता है सो यह न्याय अयुक्तहै टीकनहीं क्योंकि पुलस्त्यमुनि के वचनों
 को देखीं=यथाह पुलस्त्यः=पानसंद्राक्षमाधूको खार्जूरतालमैषवम मधुजसैरमारियंमैरे
 यंनालिकेरजस समानानिविजानीथान्मद्यान्पेकादशेवतु षादशन्तसुरामद्यंसर्दयामव
 संस्मृतस=अर्थात्—ये मद्योंके नामहैं कि पानस जो कटहर के दूधसे बनता हो १ द्राक्ष
 जो दाखसे बने २ माधूक जो महुआसे बने ३ खार्जूर मद्य जुहारे खजूरसे बनता है ४
 ताल मद्य जो ताडीसे बनता है ५ ऐक्षव जो ईख गन्नेका बनताहै ६ मधुज सहत्मे ७
 सैर जो सीरासे बने ८ आरिय जो मट्टा और अनेक फल फूलोंके अरियसे बनता है ९
 मैरिय जो मिरादेशकी प्रक्रिया से धात की फूल आदि कट्टे चीजों से बनता है १०
 नालिकेरज नारियर के दूधसे बनताहै ११ इन ग्यारह मद्योंको एकसां बराबर जाने
 कोइ इन्म कम दर्जेका नहींहै और बारहवां सुरा मद्यहै जो सबसे अवम ओछा कहा
 गयाहै इस प्रकारसे पुलस्त्यने सुराको एक प्रकारकी विषयता निर्दश करी है इसमें
 भी सुरा शब्दका प्रयोग मद्यमात्र सभीमें गौरा पायाजाता है=दूसरे लोग यों कहिते
 है कि=पैँछी गौडी माध्वी ये तीन भाँति मुख्य जो प्रसिद्धहैं इन्हींमें सुराशब्द निरुह्य
 है सर्वत्र नहीं क्योंकि यह तर्क देखीं (यद्यग्रनेकजसुराशब्द प्रयोगोदश्यते तथापि

कृत्रानादित्त्वं इति संदेहे गोडो माध्वी च पैथी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा इति मनुवचनात्
 गुड पिष्ट मनु विकारेष्वनादित्त्वनिर्वासात् तत्रैव मुख्यत्वं युक्तं अर्थात् (सुरा शब्द
 का प्रयोग यद्यपि अनेक मद्यों पर दिखाई देता है तथापि जो ऐसा संदेह किया जाय
 कि ठीक ठीक अनादित्त्वं किन मद्यों पर मिलता है तहां यह सोचना चाहिये कि मनु
 ने गोडो पैथी माध्वी तीन भौतिकी सुरा दर्शाई हैं तिससे गुड पिसान महुआ इनकी
 बने विकारों में आदित्त्वं प्राचीनता स्वीकार करने से उन्हीं तीनों पर मुख्यता ठीक
 आती है) परन्तु ऐसा होनेसे भी मद उत्पन्न करनेवाली शक्तिकी कल्पना अनेक मद्यों
 पर करना कुछ दोष नहीं है क्योंकि मदशक्ति की उपाधिका सहारा लेने से मद्य का
 त्याग करना और कराना बहुत सुगम है इधीलिये यह वचन है (यथैवैका तथा सर्वादि
 पातव्याद्विजोत्तमैः) कि जैसी एक तैसी सर्व द्विजोत्तम लोगों को न पीनी चाहिये
 यह वचन तीनों सुराका बराबर दोष जताता है पर गोडो माध्वी दोनों को कुछ पैथी
 को बराबर नहीं जताता है वचनमें द्विजोत्तम शब्द जो है सो द्विजाती मावका उपलक्षण
 है—यह दूसरोंका मत भी ठीक नहीं है क्योंकि पुलस्त्य का वचन ऊपर लिख चुके ऊ
 में सुरा मद्यकी सबसे अवम कहिकर गोडो माध्वीसे भी जुदाई प्रकट करी है तिससे—
 तथैव (सुरावैमलमन्त्रानां पाप्माचमलमुच्यते) यह वचन है कि सुरा निश्चय करिके
 अन्नोंका मल है और पाप भी मल कहाता है इस वचनसे यह तात्पर्य पाया गया कि
 सुरा उसीको कहिना चाहिये जो धान आदि अन्नको कीट से बनती हो किन्तु गोडो
 माध्वी जो गुड और महुआसे बनती है तिसमें सुरा शब्दकी प्राप्ति इसी हेतुसे नहीं वदेर
 सक्ती है कि ये दोनों वस्तु स्व रूपमें कुछ अन्नमें गिनती नहीं वलिक सोबामणी नाम
 एक यज्ञ वेद विदित है कि जिसमें ब्राह्मणको भी सुरा पीनी कही है पर वहां भी अन्न
 हीके रसमें सुरा शब्द युक्तियोंने कहा है—इन सब तर्कोंसे यह निश्चित भया कि पैथी
 जो है सो द्वै मुख्य सुरा है और गोडो माध्वी दोनोंमें सुरा शब्द गौण मध्यम है—और
 यह तर्क जो ऊपर लिखा था कि मनुके वचनसे गोडो माध्वी पैथी तीनोंमें सुरा शब्द
 की प्राचीन निर्वासा स्वीकार करे सो भी ठीक नहीं है जिससे कि यह विषय कुछ
 शब्दानुशासन की तरह अर्थ संपादन करनेका सम्बन्ध नहीं रखता है केवल प्रयोजन
 की वातसे सम्बन्ध राखता है इससे प्रायश्चित्तकी बड़ाई पर ध्यान कर्ते कि प्राय-
 श्चित्त बहुत बड़ा कहा गया है तिसमें गोडो और माध्वीमें सुरा शब्दका प्रयोग गौण
 रूपसे समझना इसरीतिसे नती अनेक जघे शक्तिकी कल्पना खपे होयरहा न उपाधिका
 आयय लेना परा न इसमें द्विजोत्तम शब्दसे द्विजाती मावका उपलक्षण दिहा—इसी

लिये यह वचन है कि=सुरावैमलसन्तानांपापमात्रमलमुच्यते तस्माद्ब्राह्मणाराजन्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिषेत्=अर्थात्-निश्चय हुआ कि सुरा जो है सो अन्नोक्ता मलहै और
 मलहै सो पाप कहाताहै तिससे ब्राह्मण सत्री और वैश्य भी सुराको न पीवै-इस वचन
 में केवल पैंथी सुराका नियेध तीनों वर्गों के लिये किया गया है परन्तु गौड़ी आदि
 सुराओं और मद्यों का निषेध केवल ब्राह्मण के संबन्ध पर नियत है सत्री वैश्य को
 नहीं नियेध है० क्योंकि मनुका यह वचन देखौ (यस्यसःपिशाचानांमद्यंमांससुराः२२स
 वसु तद्ब्राह्मणाननात्तद्वेवानामभ्यताहविः) अर्थात्-यस्यस्यस्य पिशाच इनका आ-
 हार है मद्य मांस सुरा आसव सो यह चीजें ब्राह्मणको न खानी चाहिये जो देवताओं
 का हवि खानेवाला प्रसिद्धहै-इसमें भी सुरा आदि चीजों का नियेध मनुने केवल
 ब्राह्मणकी विशेषता पर कियाहै तिससे-और अगोक्त दृढद्विष्णु का वचन है किं
 (मधुकर्मैसर्वंसेरंतालंखार्जूरपानसे मधुत्यं चैवमाध्वीकं मेरैथनालिकोरजस अमेध्यानि
 दशैतानिसद्यानिब्राह्मणस्यतु) अर्थात्-ये दश मद्य हैं कि माधुक १ सेक्षव २ सरै ३
 ताल ४ खार्जूर ५ पानस ६ मधुत्य ७ माध्वीक ८ मेरैय ९ नालिकोरज १० ये दश मद्य
 ब्राह्मणकी सदाही अपवित्र हैं-इसमें भी ब्राह्मणकोही प्रतियेध कियागयाहै-सर्व-
 दृढद्वयज्ञवत्क्यने भी सत्री वैश्य दोनोंको दीयका नहीना दर्शाया है=यथा=कामा
 दपिहिराजन्यो वैश्योवापिकथञ्चनमद्यमेवसुरांपीत्वा नदीयंप्रतिपद्यते=अर्थात्-सत्री
 या वैश्य ये किसी प्रकार कभी इच्छासेभी चाहिकर मद्य वा सुरा पीकर दीयी नहीं
 होतेहैं=अब इस व्यवस्थाके तोड़पर ध्यान धरौ कि इसप्रकार उक्त वचनोंमें ब्राह्मण
 के लिये मद्यमात्रका नियेध दर्हिरा तथापि यह मनुका जो वचनहै कि (गौडोमाध्वी
 चपैथीच विज्ञेयाधिविधासुरा यथैवैकातथासर्वा नपातव्याद्विजोत्तमैः) इसमें जैसी
 एक तैसी सदैव यह कहिके जो गौड़ी और माध्वी दोनोंका जुदा निर्देश दर्हिराया सो
 उनके दीयकी वडाईसे सुरा कोही समान दर्शाने के लिये दर्हिराया और द्विजोत्तम इस
 में ब्राह्मणहीको समुक्तना किन्तु तीनों वर्गोंको नहीं ॥०॥ सुराका नियेध जो ब्राह्मण
 आदिको दर्हिरा सो बिना जनेऊ के लड़कों तथा बिना विवाही कन्याओं को भी
 हीताहै कि लड़का लड़की भी न पीवै क्योंकि यह वचन है (तस्माद्ब्राह्मणाराजन्यो
 वैश्यश्चनसुरांपिषेत् इतिजातिमात्रवच्छेदेननिषेवाद) अर्थात्-ब्राह्मण सत्री वैश्य
 भी सुराको न पीवै इसमें जातिमात्रको नियेध कियाहै कि ब्राह्मण या सत्री या वैश्य
 न पीवै तो उनके लड़का लड़की भी उसी जातिमें शामिल हैं-इसलिये अगोक्त मनु
 का वचन है कि (सुरांपीत्वाद्विजोमोहा दग्निवर्णासुरांपिषेत्) इसमें द्विज शब्द

तीनों द्विजातियों पर आवश्यक है कि ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यभी सुरा पीकर यह प्रायश्चित्त करें क्योंकि जब ऊपरले निमित्तरूपी वचनमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्गों का नाम लेकर सुरा पीनेका नियेध करचुके तो फिर यहां भी उसके वास्ते वार नैमित्तिक विधिके वचनमें द्विज शब्दतीनों वर्गोंके प्रायश्चित्त पर आरूढ हुआ• जब कि इस रीतिसे दोनों संबंध में जातिमात्र को नियेध पक्काहुआ तब लड़के लड़कियां क्योंकर जातिमात्रसे बाहर समुझे जायें—इसपर—एक मीमांसका दृष्टांतहै कि (यथा अभ्युदेति दृष्ट्यायस्यहविर्निरूप्यत्परस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदेति इतिनिमित्तवाक्ये हविर्माषाभ्युदयस्य निमित्तत्वावती तत्सापेक्षनैमित्तिकवाक्ये ग्र्यमारामपित्रेवा तन्दुलान्विभजेदिति तन्दुलग्रहणं तन्दुलादिस्वरूपहविर्मात्रोपलक्षणां) अर्थात् (जैसे अभ्युदय रूपी यज्ञमें जिसके हविस् यथा विभागसे धरागया तिसके आगे पूजाचन्द्रमा उदय होताहै उस फलके जतानेवाले निमित्तरूपी वाक्यमें सकल हविमात्र चन्द्रमा उदय होनेका निमित्त होता है यह समुभिलेनेमें इसीके संबंधी नैमित्तिक वाक्य में यद्यपि ऐसा कहाजाय और सुनिपरै कि तन्दुलोंको तीनजधे विभागकरो तो यह केवलतन्दुल कहिना भी तन्दुल आदि सभी साकल्य हविमात्र का उपलक्षणा होताहै कि तन्दुल तिल जो घृत शर्करा मेवा आदि मिलेहुये साकल्यको तीन जधे विभागकरनाचाहिये) क्योंकि तन्दुलोंमें सभी चीज शामिलहैं और तन्दुल नाम अनेक चीजोंके संघको भी कहिते हैं तैसे तीनोंवर्गों कहिनेसे उसीजातिमें लड़कालड़कीभी शामिलहैं कुछ जुदा नाम धरनेकी जरूरत नहींथी• परन्तु जातिमात्रके पुरुषोंमें लड़का लड़कियोंमें इतना भेदहै(पादोवालेपदातव्यःसर्वपापेष्वयंविधिः) सभी पापों में यह विधिहै कि बालकों को एक चौथाई प्रायश्चित्त देनाचाहिये—इसवचनके तात्पर्यसे बालकोंको मरणांतिक प्रायश्चित्त उस दशामेंभी नहीं है कि जब उन्होंने इच्छा से चाहिकर सुरापान कियाहो परंतुमरणा के पलटे उस चौथाई को दूना करिके छःवर्षका व्रत करानाचाहिये कि जैसा आगे २५४की अविकीर्णमें दशावैशे तैसा यहांभी समुभिलेना और दूना कराने मध्ये अंगिराका वचनहै कि=विहितंयदकामानां कामात्तर्द्विदुष्टांचरत्= अर्थात्—विना इच्छा किये पापवालों को जो कुछ प्रायश्चित्त कहागया हो वही उगको दूना करवाया जाय जिन्होंने इच्छा से पाप किया हो•यही व्यवस्था ब्रह्म या रोमी आदि में जोड़लेनी चाहिये=तथैव (यस्मिन्पिशाचानांनचं मांसंमुरात्सदस तद्वाह्यरोननात्तद्यदेवनामश्नतादिविः) इस वचन में मद्य भी ब्राह्मण की जातिमात्र को नियेध है तिससे विनाजनेऊ के बालक सुरा और मद्यभी न पीवें यह व्यवस्था सिद्ध

होचुकी-तथापि थोड़ासा तर्कवाद है कि-कैसे बिना जनेऊको दाय वताया (प्रा
 उपनयनात् कामचार वादभक्षाः इति गौतम वचनात्) तथा मद्यमंत्रपुरीयारागभक्षारो
 नास्तिकप्रचनदोयस्त्वापंचमाहर्ष्यादूर्ध्वपित्रोः सहृदयुरोरितकृमावचनाच्चदोयाभावा
 वगतेः) अर्थात्-गौतम का वचन है कि बालक जनेऊ से पहिले चाहे तैसे हठे फिरें
 चाहेसो मुखसे बर्के चाहेसो भक्षणा करें तो कुछ दाय नहीं है) तथैव (कुमारकावचन
 है कि मद्य या मंत्र या विद्या इनके भक्षणा करनेमें कोई दाय नहीं है पांचवर्षके भीतर
 और पांचके उपरांत जो ऐसा करें तो उनके पिता माता बड़े भाता आदि मित्रजनों
 तथा गुरुओं को दाय है • तो यह कैसे कहा कि बालक भी मद्य पीवें तो दाय है प्राय-
 श्चित्तभी कराना होगा-इस का समाधान कहिते हैं-सुनो सुरा और मद्य इनके नि-
 येध वाले वचन में जातिमात्र के लिये जो निश्चय होचुका तिससे वह नियेध की
 प्रवृत्ति रोकी नहीं जा सकती है जिससे बालकों वाले नियम स्वीकार किये जायें-
 ऐसाही स्मृत्यंतर में यह नियेध का वचन है कि (सुरापाननियेधस्तुजात्याग्रयइति
 स्थितिः) सुरा पीने का निषेध जो है सो समस्त जातिमात्र के आग्रयभूत है यही
 मर्यादा जानो अवस्था भेदका प्रयोजन इसमें नहीं है-इसी हेतुसे(पादोवालेयुदातव्य
 सर्वपापेष्वयंविधि रितिसर्वपापेषुसुरापानादिषु इतिवचनात् पादएवसुरापानेप्राय-
 श्चित्तं) चौथाई बालकों को देना चाहिये सुरापान आदि सभी पापों में यह विधि
 जानो इसवचन से चौथाई प्रायश्चित्त सुरा पीने में दीक रहा • इच्छा सहित पीने में
 चौथाई का दूना कर्तव्य होगा-तथैव-सुरा से उपराल मद्यपीने में भी जातकराणि
 प्रायश्चित्त कहा है-यथाहजातकराः-अनुपेतस्नुयोवालो मद्यभोद्वारिपवेद्यदि तस्यक
 च्छप्रयं कृत्यान्माताभ्रातातयापिता-अर्थात्-बिना जनेऊका बालक जो अज्ञानता से
 मद्य पीलेवे तिसका पिता या माता या भ्राता तीन कृच्छ्र व्रत करें-तिससे यह बात
 सिद्ध हुई कि (चाहे सो भक्षणा करें) इत्यादि गौतम का वचन जो अभी ऊपर
 लिख चुके सो कुछ विशेष कर सुराके नाम से भी नहीं है न सुरा और मद्यके ऊपर
 उसका तात्पर्य कुछ पहुँचता है अर्थात् सुरा और मद्य आदिसे उपराल नियेध अत्रा-
 दिक जैसे सुखी और वासी भोजन आदि के विषयपर आरूढ़ हैं-और कुमार का
 जो वचन कहा सो केवल इस आग्रय पर आरूढ़ है कि जो पांचवर्षके भीतर अति-
 प्राय अज्ञानता में यदि कोई वस्तु सलीन भक्षणा करि बैठे तो अत्यन्त दाय नहीं है
 पर थोड़ा दाय उसमें भी अवश्य होता है-इसीलिये मनुने यह कहा है कि उपनयन
 कर्मसे पहिले जो कुछ बालक से दाय हुआहे तिमका प्रायश्चित्त बड़ी उपनयन

व्यंतृतस्योक्तप्रत्यहंकायशोधनम्=अर्थात्—यही व्रत मद्यपकारे छर्दि किये पीछे और
 पंचगव्य उसका शरीर शुद्धकरने को रोज रोज पीना कहा है—परंतु ऐसा तात्पर्य-स-
 मझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना सासात सुराके पीने मध्ये ठीक
 है परन्तु जिसने उस वासनमें धरा हुआ या डारिके जल पिया हो जिसमें कुछ थोड़ा
 सुरालगी लिलपी गंधभी आती हो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ
 आवश्यक नहीं—क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं
 होता है तिससे—इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भाव नहीं
 मिटि जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छीटे लगा घी
 पीने वालों को घृतपान करै या निप्रचय करने किन्तु पृथदाज्यके पीवै या न कहिने
 चाहिये अर्थात् पृथदाज्य उसी घी का नाश है जिसमें दहीकेबूंद छीटे गयेहों ॥ ० ॥
 और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयं कृत्वा सुरांपीत्वा शुरुदारचगत्वा ब्राह्म-
 राहत्यांकत्वा चतुर्यकालंमिति भोजनोयोभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां
 विहरद्विभिवर्यैः पापं व्यपनुदति=संबन्धत्वांगिरोवचनं=महापातकसंयुक्तावर्यैः शुद्ध्यति
 तेषामि=अर्थात्—आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके शुरुभार्या गमन
 करिके ब्राह्मणाका वध करिके तीनिवर्यमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के
 अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्य तक
 विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संव्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्रावाधारणा
 मात्र किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है अथवा ऐसा अर्थ
 लगताहै कि (सः पापात्मापुरुयः वनानुकल्पं अभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आ-
 सन छोड़े हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गी
 व्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्यतक सायंकाल थोड़े भोजन करिके पापमोचन परनेश्वर
 का भजन क्रियाकरै—तीनी उसी अर्थके समान ठाहरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन
 यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तम्बका कथन है—ऐसाही अंगिराका यहकथन
 है कि=महापातकोसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्यसे पवित्र होतेहैं—इन दोवचनों
 में जो तीनि वर्योंका नियम वांवागया सोभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक
 में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों
 पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और
 भी कहेहैं सो देखी=यथा=उहस्पतिसवननेनेष्वासुरापो ब्राह्मणः पुनः समत्वं ब्राह्मणं गौर्गच्छे
 क्रियेयावैदकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानं यः कुर्यात्सुरांपीत्वा द्विजोत्तमः पुनर्न चर्षपिवेत्तां

तुसंस्कृतःसविशुद्धति=अर्थात्-दृहस्पतिके नामसेसवन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण
 फिर भी ब्राह्मणोंके साथ वरावरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी युति से प्रसिद्ध है=
 तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको
 न पीवै तो यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी
 पहिलेके साथ मिलिकर सकही विषय समझना कि तीनवर्ष पीना आदि भस्मरा
 किये पीछे यह सवन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा दृहस्पति स-
 वन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वाह्न
 मूलप्रलोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष
 की योग्यता जिसको दहिरे और वही अपराधी बहुत धनवानहो तो अधिक दसरा
 वाला दृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामेंभी
 स्त्रियां और बालकबूढ़ेआदिको तीनवर्षकाआवाडेदवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक
 जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेनाचाहिये
 इत्यादि पहिली रीतोंसे कल्पना करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन
 है कि (करान्वाभक्षयेद्वदं पिण्याकवासकृच्छिश्च सुरापानापनुत्यर्थं बालवासाजती
 श्वजी) छरे-कूटे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर सकही वार सदा रात्रिमें भस्मरा
 कियारके सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो सकही वर्षकहा सो यह प्रा-
 यश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके घोरखे मुखमें डालिके सिर्फ
 तालतक पं चौ हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवचोर्जे जो पीनेयोग्य
 पतलीहोती है तिनका घृष्टिजाना पान कहाता है और घृष्टिजाना कंठ के नीचे उतर
 जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग भावसे पीना या घृष्टिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर
 कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त र-
 र्थाया गया-सुनी-जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती
 है तिससे पानक्रियाके निषेध से तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध क्रिया है० इसी
 कारणसे यद्यपि वेद पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके नि-
 षेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतिषिद्ध दहिरा क्योंकि तालू तक
 पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका
 यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतसहस्वापिघातार्थंचेत्समागतः) इस वचन
 में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणको मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहें न मार-
 रिपावै तो भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के नियेध से उसका अंगभूत जो नि-

व्यंतुतस्थोक्तप्रत्यहंकायशौचनम=अर्थात्-यही व्रत मद्यपकर्तृ हृदि किये पीछे और
 पंचगव्य उसका शरीर प्राङ्करणे को रोज रोज पीना कहा है-परंतु ऐसा तात्पर्य स-
 मझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना सासाद सुराको पीने मध्ये ठीक
 है परन्तु जिसने उस वासन में धरा हुआ या डारिके जल पिचाहो जिसमें कुछ थोड़ी
 सुरालगी लिलपी रांभभी आतीहो तिसके लिये हृदि करना और पंचगव्य पीना कुछ
 आवश्यक नहीं-क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं
 होता है तिससे-इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलावेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं
 मिटिजाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छीटे लगा घी
 पीने वालों को घृतपान करै या निश्चय करने किन्तु प्रयदाज्यके पीवै या न कहिने
 चाहिये अर्थात् प्रयदाज्य उसी घी का नाम है जिसमें दहीकेबूंद छीटे गयेहैं ॥ ० ॥
 और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयंहात्वासुरापीथा गुरुदारान्गत्वा ब्राह्म-
 राहत्यांक्त्वा चतुर्थकालंमिति भोजनोयोभ्युपेयात् सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां
 विहरत्स्त्रिभिर्यैः पापंन्यपनुदति=संबन्धस्वंगिरोवचनं=महापातकसंयुक्तावर्यैःशुद्ध्यति
 तेषामिः=अर्थात्-आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके गुरुभार्या गसन
 करिके ब्राह्मराका वध करिके तीनिवर्यमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के
 अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनको बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्य तक
 अचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राराधारणा
 माच किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है-अथवा ऐसा अर्थ
 लगताहै कि (सःपापात्मापूरुयःवनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आ-
 सन छोड़ेहुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुकल्प बेहड़ गी
 व्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्यतक सायंकाल थोड़ भोजन करिके पापमोचन परमेस्वर
 का भजन कियाकरै-तीभी उगी अर्थके समान ठहिरा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन
 यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तम्बका कथन है=ऐसाही अंगिराका यहकथन
 है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्योंसे पवित्र होतेहैं-इन देववनों
 में जो तीनि वर्योंका नियम वांवागया सीभी उसीके अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक
 में योगीचरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों
 पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वव नहीं ॥ ० ॥ जोकि यमने दो प्रायश्चित्त और
 भी कहेहैं सो देखो=यथा=दृश्यतिसवननेपुत्रासुरापीब्राह्मणःपुनः समत्वंब्राह्मणोर्गच्छे
 वित्येयावैदकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानयःकुर्यात्सुरापीत्वाद्भिजोत्तमः पुनर्नचपिवेतां

तुसंस्कृतःसविशुद्धति=अर्थात्-दृहस्पतिके नामसे सबन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मण
 फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी युति से प्रसिद्ध है=
 तथैव=जो ब्राह्मण सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको
 न पीवै तो यज्ञोपवीत संस्कारसे संयुक्त होके शुद्ध होजाता है=सो ये दोनों भी उसी
 पहिलेके साथ मिलिकर एकही विषय समझना कि तीनि वर्ष पीना आदि भक्षणा
 किये पीछे यह सबन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा दृहस्पति स-
 वन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वाह्न
 मूलश्लोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष
 की योग्यता जिसकी दहिरे और वही अपराधी बहुत धनवानहो तो अधिक दक्षिणा
 वाला दृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामेंभी
 स्त्रियां और बालक बूढ़ेआदिकी तीनवर्षकाआधाडेहवर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक
 जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसकी चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेनाचाहिये
 इत्यादि पहिली रीतोंसे कल्पना करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनु का यह वचन
 है कि (कर्णान्वाभक्षयेद्वदं पिण्याकवासकृच्छ्रिणि सुरापानापनुत्यर्थंवालवासाज्जी
 श्वजी) करे-कटे अन्नकी कनकी या पीना एकवर्षभर सकही बार सदा रात्रिमें भक्षणा
 कियकरै सुरापानका दोय मिसानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रा-
 यश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ
 तालतक पं ची हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवचीर्जे जो पीनेयोग्य
 पतलीहोती हैं तिनका घंटिजाना पान कहाता है और घंटिजाना कंठ को नीचे उतर
 जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घंटिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर
 कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त र-
 र्थाया गया=सुनी=जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती
 है तिससे पानक्रियाके निषेध से तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध किया है= इसी
 कारणसे यद्यपि देठ पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके नि-
 षेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतियिद्ध दृष्टिग क्योकि तालू तक
 पहुँचनेमें भी दोय मौजूदहै उस दोयके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका
 यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्रव्रतसदृश्वपिघातार्थंचैत्समागतः) इस वचन
 में जैसा कहिचुके है कि ब्राह्मणकी मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहें न मा-
 रिपावै तो भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के नियेध से उसका अंगभूत जो नि-

संस्कार होता है—यथाह मनुः—गर्भंहीमैजातकर्मचूडा मौञ्जीनिर्वन्धनैः वैजिकंगार्भिकं
 चैर्नोद्विजानामपसृज्यते—अर्थात्—द्विजातियों के गर्भ में आतेहुये जो गर्भ संस्कार
 संबंधी होत होते हैं तिनसे और जन्म होनेसे जातकर्म और मंडनआदि चूडाकर्म और
 मौञ्जीवन्धन आदि यज्ञोपवीत कर्म इन कर्मोंके होनेसे पिता के बीज का दोग और
 माताके गर्भरक्तका दोग और बालपनकी अज्ञानतासे जो कुछ पाप लड़केने किया
 हो सो भी दूर होजाता यह द्विजाती लोगोंका विधान है ॥ अतिकोक्तिफल—अत्र स-
 मस्त अतिकोक्तिका निपटारा यह समुझना चाहिये कि पैंथीसुरा का निषेध तीनों
 वराणों जन्महीसे लेकर निश्चितहुआ और ब्राह्मण को जन्मही से लेकर सभी मद्य
 मात्रका निषेध है परन्तु क्षत्री और वैश्यको पैंथीसुरा छोड़िके गौड़ी आदिका निषेध
 किसी भी अवस्थामें नहीं है और शूद्रको न सुराका प्रतिषेध है न किसी मद्यमात्र का
 निषेध है—इसी के अनुसार प्रायश्चित्तों का विचार करना चाहिये ॥ २५३ ॥ यहाँ
 तक इच्छा सहित सुरा पीनेके प्रायश्चित्त सब कहे गए अगिले परिच्छेद में इच्छा
 विना धोखे आदिसे पीने मध्ये कहेंगे ॥ २५३ ॥

अथ अक्रामतः सुरा मद्यादीनां पाने प्रायश्चित्त

विवेको द्वात्रिंशः परिच्छेदः ३२

इसपरिच्छेदमें कामना और इच्छाके बिना धोखे आदिसे सुरा पीजाने के
 प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

(सुरापानेप्रायश्चित्तांतराणि)

वालवासाजटीवापिब्रह्महत्याव्रत चरेत् । पिण्याकंवाकरणान्वापिभक्षयेत्तितमानिश्चि २५४

अर्थः—यहा ब्राह्मणों का वस्त्र वारणा किये जटा रखाये ब्रह्महत्या का ही व्रत आच-
 रें । अथवा तीनवर्ष रात्रि में पीना या अन्न के कणों कोही भक्षण करै—अर्थात्—
 दोसोपेन २५३ प्रतीकसे कहे प्रायश्चित्त यदि होने संभव नहो तो राज बकरी आदि
 के ऊन से बना कंबल ओढ़िके जटा रखाकर इस विशेष चिह्न के साथ पूर्वोक्तव्रत-

इत्या वाला व्रत बारह वर्षका करै ॥ १ ॥ अथवा तीन वर्ष तक तिलों की खलि पीना तिसके पिराडवना के रात्रि में खाया करै दिन में निराहार व्रत किया करै यद्वा चावलों की कचकी या ससा आदि मुन्यन्न को रात्रि में चबाकर तीन वर्षें काटे ॥ २५४ ॥

२५४ अधिकोक्तिः—ऊन वस्त्र के उपलक्षणा में चौर और वक्कल भोजन आदि भी समझने क्योंकि प्रचेता का वचन है—यथा=सुरापगुरुतल्पगौ चीर वक्कल वाससौ ब्रह्महत्याव्रतंचरेयाताष=अर्थात्—सुरापीनेवाला और गुरु भार्या गामो ये दोनों चौर वस्त्रयावक्कल देह में लपेटे हुये ब्रह्महत्या वाला व्रत बारह वर्षकरै(चौरफरे पुराने वस्त्रों केचीथड़े कहातेहैं) जरा रखाना कहा तिससे बाल मुडाने का नियेध प्रायागया=ब्रह्म हत्या का व्रत करना कहा तिसके साथ बालों का वस्त्र आदि जो अधिक दर्शाया तिसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या में खीपडी की ध्वजा बनानी जो कहिचुके तिसका वर्जित करना इसमें सिद्ध हुआ=यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये आवश्यक है जिसने सुरा मद्यकी इच्छा विना जल के धोखे पीलिया हो क्योंकि (इयंविगुह्नि-रुदिता प्रमाप्याकामतोद्विजं) ब्रह्महत्या के स्थलपर इस नियम से बारह वर्ष कहे गयेथे कि जिसने विना इच्छाके ब्राह्मणा मारा हो उन्हीं बारह वर्षों का अतिदेश यहां उतारा गया तो यहां भी वही उपाधि लगी रही कि जिसने इच्छा विना मद्य पियाहो=यहां यद्यपिव्रतका अतिदेश उतारागया तिससे दोसौवावन२५२अधिको-क्ति के प्रारंभ में चेताई हुई दोसौ इकतिस २३१ की अधिकोक्ति वाले नियम से चौथाई कामकरिके प्रायश्चित्त ठहरता परंतु सुरापान महा पातकों में गिनती हो-चुका है तिससे अतिदेशके होनेपर भी पीना नहीं किंतु पुराही बारह वर्षका व्रतक-राया जाय• इसपर बृह हारोत का यह वचन भी प्रमारा है कि (हादशभिर्वर्षैर्महा पातकिनःपुंयंते)सवतरह के महापातकी बारह वर्षों से शुद्ध होतेहैं तिससे यह उपदेश ही महा अतिदेश नहीं ठहरा जो पीना किया जाता ॥ १ ॥ तीन वर्षवाले प्रायश्चि-त्तमें जो पीना या कचकी चावनी कही सो रात्रि में एकहीबारका नियमहै बारंवार नखाय यही बात अगिले वचन में स्पष्ट है=यथामनुः=करान्वाभसयेददपिगयाकं वासहान्निशि=अर्थात्—रात्रि में एकहीबार वर्षमात्र भर पीना या तंदुल के किनके भ-सरा करै—यह पीना आदि उसका भोजन कहा गया है तिससे और कोई वस्तु न भोजन करै• यह प्रायश्चित्तभी उसीके निमित्त में समझना जिसने जलके धोखे सुरा पान किया हो•सो यह साधना भी तब करै कि पहिले उलटी रद करिके हृदय शुद्ध करचुको क्योंकि ब्यासका यह वचन है कि=एतदेवव्रतंश्रयान्मद्यपशुद्धनेकते पंचा-

व्यंतुतस्योक्तंप्रत्यहंकायशोचनम्=अर्थात्—यही व्रत मद्यपकरै छर्दि क्रिये पीछे और पंचगव्य उसका शरीर शुद्ध करने को रोज रोज पीना कहा है—परंतु ऐसा तात्पर्य समझना अच्छा नहीं है कि यह पंचगव्य का पीना साक्षात् सुराको पीने मध्ये दीक है परन्तु जिसने उस वासन में धरा हुआ या डारिके जल पियाहो जिसमें कुछ थोड़ी सुरालगी लिपटी गंधभी आतीहो तिसके लिये छर्दि करना और पंचगव्य पीना कुछ आवश्यक नहीं—क्योंकि जलके संसर्ग में होजाने से भी सुरा का सुरापन नाश नहीं होता है तिससे—इसपर यह दृष्टांतहै कि जैसे दहीमिलायेहुये घीमेंसे घी का भावनहीं मिति जाता है (इसीलिये न्याय जानने वालोंने कहा है कि दही के छींटे लगा घी पीने वालों को घृतपान करै या निप्रचय करने किन्तु पृथदाज्यको पीवै या न कढ़िने चाहिये अर्थात् पृथदाज्य उसी घी का नास है जिसमें दहीकेबूंद छींटे गयेहों ॥ ० ॥

और जो आपस्तम्ब का वचन है कि=स्तेयकृत्वासुरापीत्वा शुरुवारारुगत्वा ब्राह्म-
साहत्यांश्चत्वा चतुर्थकालमिति भोजनोयोभ्युपेयात् सव्नानुकल्पं स्थानासनाभ्यां
विहरश्चिभिवर्ष्यः पापं च्यपनुवति=सव्यत्वंगिरावचनं=महापातकसंयुक्तावर्यैशुद्धांति
तेत्रिभिः=अर्थात्—आपस्तम्बने यह कहा कि चोरी करिके सुरापीके शुरुभार्या गमन
करिके ब्राह्मणाका वध करिके तीनिवर्षमें पाप नाश होता है जो पापी सवनयज्ञ के
अनुकल्पको पहुँचै अर्थात् स्थान और आसनकी बैठक सब छोड़ेहुये तीनि वर्ष तक
विचरता हुआ निरन्तर नियमसे चौथेका संध्यासे पहिले थोड़ासा भोजन प्राराधारणा
मात्र किया करै तो यह एक यज्ञही का अनुकल्प होजाता है• अथवा ऐसा अर्थ
लगताहै कि (सःपापात्मापुरुयः वनानुकल्पंअभ्युपेयात्) वह पापी अपना स्थान आ-
सन छोड़े हुये वनके अनुकल्पको अर्थात् वनको नहीं परन्तु वनके अनुरूप बेहड़ गो
ब्रज आदि जंगलोंमें तीनि वर्षतक सायंकाल थोड़ भोजन करिके पापमोचन परमेस्वर
का भजन कियाकरै• त्रींभी उसी अर्थके समान दहिहा क्योंकि पहिले अर्थमें भी सवन
यज्ञ करनेका उपदेश नहींहै यह आपस्तम्बका कथन है=सेषाद्दी शंशिराका यहकथन
है कि=महापातकोंसे संयुक्त हुये पापीलोग तीनिवर्षोंसे पवित्र होतेहैं—इन दोवचनों
में जो तीनि वर्षोंका नियम बांधागया सोभी उसीको अनुरूपहै कि जैसा मूलश्लोक
में योगीश्वरने पीना आदि खानाकहा तिससे सिर्फ मूलश्लोककी विवक्षा वाले पापों
पर इन वचनोंको जोड़िलेना पर सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ जौकि यमने दो प्रायश्चित्त और
भी कहेहैं सो देखीं—यथा=उदस्पतिसवनेनेद्वाष्ट्रापोब्राह्मण पुनः समत्वंत्राह्य गौर्गच्छे
दित्येयावैदिकीयुतिः (तथा) भूमिप्रदानंयः कुर्यात्सुरापीत्वाद्द्विजोत्तमः पुनर्नर्चपिवेतां

तुसंस्कृतःसविशुद्धति=अर्थात्-दृहस्पतिको नामसे सबन करिके सुरापीनेवाला ब्राह्मणा फिर भी ब्राह्मणोंके साथ बराबरी दर्जेमें आजाताहै यह वेदकी श्रुतिसे प्रसिद्ध है= तथैव=जो ब्राह्मणा सुरा पीकर संस्कार कराइके भूमिदान करै और फिर कभी उसको न पीवै तो यज्ञोपवीत संस्कारसे सयुक्त होके शुद्ध होजाता है-सो ये दोनों भी उसी परिहारेके साथ मिलिकर एकही वियय समझना कि तीनि वर्ष पीना आदि भक्षणा किये पीछे यह सबन या संस्कार और भूमिदान करना होगा (अथवा दृहस्पति सबन करना जो कहा तिसका बारहवर्षोंके साथ बदल भी होसक्ता है कि जैसा पूर्वाह्न मूलश्लोकमें योगीश्वरने बारहवर्ष ब्रह्महत्याके व्रतवाले को कहे और उन्हीं बारहवर्ष की योग्यता जिसको ठहिरै और वही अपराधी बहुत धनवानहो तो अधिक दक्षिणा वाला दृहस्पतिसवन करिके छुटकारा पासके यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥ इस व्यवस्थामें भी स्त्रियां और बालक बूढ़ेआदिकी तीनवर्षकाआधाडेद्वर्ष व्रतदेनाचाहिये और बालक जो बिना जनेऊका अनुपनीतहो तिसको चौथाई अर्थात् नौ महीने का व्रतदेनाचाहिये इत्यादि पहिली रीतोसे कल्पना कालेनी चाहिये ॥ ० ॥ एक जो मनुका यह वचन है कि (कयान्वाभक्षयेद्वन्दं पितृयाकवासक्तन्निशि सुरापानापनुत्यर्थबालवामाजती श्वजी) करे कटे अन्नकी कलकी या पीना एकवर्षभर एकही बार सदा रात्रिमें भक्षणा क्रियाकरै सुरापानका दोष मिटानेके लिये) इसमें जो एकही वर्षकहा सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने बिना समझे जलके धोखे मुखमें डालिके सिर्फ तालतक पँची हुईको उलटि दीहो=इसपरभी तर्कनाहै कि=द्रवजीर्ण जो पीनेयोग्य पसलीहोती हैं तिनका घृष्टिजाना पान कहाता है और घृष्टिजाना कट के नीचे उतर जाना प्रसिद्धहै कुछ तालूके संयोग मात्रसे पीना या घृष्टिजाना नहीं सिद्धहोताहै फिर कैसे मनुके वचनमें सुरापानापनुत्यर्थ यह कहिके पीजानेके निमित्त प्रायश्चित्त र-श्राया गया-सुनौ-जिस तालू आदिमें पहुँचने बिना पीनेकी क्रिया नहीं चलसक्ती है तिससे पानक्रियाके निषेध से तालू आदि में पहुँचना भी निषिद्ध क्रिया है० इसी कारणसे यद्यपि देह पीलेने बिना महापातक नहीं सिद्धहोता तथापि पीलेनेके निषेधसे उसका अंगभूत तालू आदिका संयोग भी प्रतिषिद्ध ठहिरा क्योंकि तालू तक पहुँचनेमें भी दोष मौजूदहै उस दोषके होनेसे प्रायश्चित्त भी अवश्य होताहै इसका यह प्रमाण भूत दृष्टांत है कि जैसे (चरेद्व्रतमदत्त्वापिघातार्थचेत्समागतः) इस वचन में जैसा कहिचुके हैं कि ब्राह्मणकी मारडारना सोचिके गया हो फिर चाहें न मारिपावै तो भी प्रायश्चित्त करै जैसा मारडारने के नियेध से उसका अंगभूत जो नि-

प्रचय करिके पहुँचना आदि तिसका भी निषेध होनेसे प्रायश्चित्त कहा गया तैसा पीजानेके निषेध से तालूतक पहुँचाना नियिद्ध हुआ ॥ ० ॥ एक बौधायनका वचन है कि=त्रैमासिक ममत्या सुरापाने षड्द्वयपादंचरित्वापुनरुपनयनमिति=दूसरा यमका वचन है कि=सुरापीत्वादिजंघत्वात्सर्वमंहत्त्वादिजनमनः संयोगंपतितैर्गत्वा द्विजप्रचान्द्रायरां चरेत्=तीसरा वृहस्पतिका वचन है कि=गौड्रीभाध्वीसुरांपैथीपीत्वा विप्र.समाचरेत् तप्तकच्छं पराकंचर्चाद्रायरामनुकमात् (तत्त्वितयमप्यनन्यौयवसाध्य व्याध्युपशमार्थेपानेवेदितव्यं प्रायश्चित्तस्याल्पत्वात्=अर्थात्-बिना जाने सुरापान में एक वर्ष के षड्द्वय व्रतकी चौथाई तीन महीने करिके पीछे उपनयन संस्कार करें यह बौधायन का कथन है=और यमस्मृति का यह वचन है कि=सुरा पीकर ब्राह्मण को मारिके ब्राह्मण का सोना चुराथ के पतितों के साथ संयोग संसर्ग में जाइके ब्राह्मण चांद्रायरा व्रतकरै=और वृहस्पति का यह कथन है कि=गौड्रीभाध्वी २ पैथी सुरा ३ को पीकर ब्राह्मण यथा क्रम से तप्तकच्छ १ पराक २ चांद्रायरा ३ इनको करै प्रत्येक पर एकएक समझ लेना (सो यह बौधायन आदि के तीन वचन वाले प्रायश्चित्तों को उस रोगी के निमित्त में समझना जिसका रोग सुरा के सिवाय किसी औषध से न जाता देखै और सुरा पीनेसे साध्य जानिके वैद्यने पिलाई हो चाहें बिना जाने या कहिके पिलाईहो क्योंकि इनवचनोंमें प्रायश्चित्त अतिछोटे कहोगे हैं तिससे ॥ ० ॥ जब कहीं सुराका मिला हुआ सूखेही रस का अन्न कोई भक्षया करै बिनाजाने तिसका फिर उपनयन कर्म यज्ञोपवीत होना चाहिये=यदाह मनुः=अज्ञानात्प्राशयिवरानुसुरासंसृष्टमेवच पुनःसंस्कारमर्हतिवयोवर्णाद्विजातयः= अर्थात्-बिनाजाने विद्या या मूत्रमुहमें जाय या सुरा से संसृष्ट कोई सूखी वस्तु जैसे सुरा के सूखेपात्र में धरीगई हो इत्यादि तिसको मुह में धरिके तीनों द्विजाती लोग फिर संस्कार होने के योग्य हैं ॥ ० ॥ जबकोई सूखे सुराके वासन में धरा हुआजल पीलेवै तब शातातप का कहा प्रायश्चित्त करै=यदाह शातातपः=सुराभांडोदकपाने ऊर्ध्वनघृत प्राशनमहोरात्रोपवासश्च=अर्थात्-सुरा के पात्रमें धरा जल पीनेमें छर्दि उलटी करै धो चाटै और एक दिन राति का उपवास भी करै=इसी मध्ये बौधायन का जो वचन है कि=सुरापानस्ययोभांडेप्लवःपर्ययिताःपिवेत् शंखपुष्पीचिपक्वतुक्षोरम तृपिवेत्प्रहस=अर्थात्-सुरापीने के पात्र में धरा हुआ जल अनेक दिनका जो कोई पीलेवै सो शंखपुष्पी (शंखाहली) में खूब छोटै हुये दूध को तीन दिन पीवै=सो यह अधिक विधान इसी हेतु से जानी कि अनेक दिनका धराजल पीने में शातातप

का कहा बसन घी उपवासये तीनों पहिले करिके पीछे दूधभी तीनदिन पीवै=इसी जल को बिना चाहे जिसने कई बार घोखा से पिया हो तिसको लिये मनु ने पांच दिनका प्रायश्चित्त कहा है=यथा=अप.सुराभाजनस्थामद्यभांडस्थितास्तथा पंचरात्रं पिवेत्पीत्वाशंखपुष्पीशृतंपयः=अर्थात्-सुराके पात्रमें धरेहुये तथा मद्यके पात्रोंमें धरे जल पीकर पांचदिनतक शंखपुष्पीका औंटाया दूधपीवै तब शुद्धहोय ये पांचदिनभी शातातप की कही विधि करनेसे उपरालू करनेहोगे=जो कि विष्णुने सातदिन कहे है कि-अप.सुराभाजनस्थाः पीत्वासन्नरात्रंशंखपुष्पी शृतंपयःपिवेत्=अर्थात्-सुरा के भाजनमेंधरे,हुये जलपीकरशंखपुष्पी मिलाकर औंटा दूध सातदिन पीवै=सी यह सात दिन उसके लिये कि जिसने जानिवृष्कि के पिआहो और,शातातपकी कही विधि करिके पीछेउपरालूदूध पीवै=और, जिसने जानिवृष्किके अनेकवार पिआहो तिसको लियेदृढद्वयमकावचनहै=यथादृढद्वयमः=सुराभांडस्थितंतोयं यदिकाप्रचरित्पिवेद्विज्ञः सदादशाहंक्षीरेणापिवेद्ब्राह्मीसुवर्चलात्=अर्थात्-सुराके भाडमेंधरेजलको यदि कोई द्विजाती पीलेवै हो बारह दिन तक दूधमें औंटी हुई ब्राह्मी बहानेटी सुवर्चला,औयवी जो वही शंखपुष्पीहै तिसको पीवै यह भी शातातपकी विधिसे उपरालू करनाहोगा ॥ ० ॥ सुरा पिये हुयेके मुखको दुर्गंधि सुंघने मध्ये मनुका बचन है=यथा=ब्राह्मणस्यसुरापस्य गंधमाघायसोमपः प्राणानप्सुधिरायस्य घृतंप्राप्रयविशुद्धति=अर्थात्-जहां,कोई सोमप सोमयज्ञमें सोमपीने पीछे किसी सुरापियेहुये ब्राह्मण के मुख की गंधि मंथे सो जलमें खडा होके तीनवार प्राणायाम करिके और घी चाटिके विशुद्ध होताहै (इसमें शातातपकी विधिसे कृच्छ्र संबध नहीं) यह नियम केवल सोम यज्ञ करनेवालेका उस दशामें समझना कि जब बिना जाने घोखामें गंध सुंघी हो किन्तु जानि वृष्किके सुंघनेमें यही उसकोदूना कर्तव्य होगा=इसीके अनुसार जो सोमयाजी या सोमपीनेवाला न हो तिसने गंधि सुंघीहो उसके लिये कल्पना कर लेनी चाहिये इसरीतिसे कि (धात्तिरघेयमद्ययोः) इस वचन से सुरा और मद्यकी वाम का सुंघना तथा न सुंघने योग चीजोंका सुंघनाभी जाति भंगकर पापोंमें गिनती होचुकाहै तिस से इसमें जाति भंगकर पापोंका प्रायश्चित्त देनाचाहिये जो मनुने कहा है=यथाह मनुः=जातिभंगकरकर्म कृत्वाऽन्यतसमिच्छया चरेत्सांतपनंऽकृच्छं प्राजापत्यमनिच्छया=अर्थात्-जातिभंगकर जो जो कर्म पहिले कहिचुके उनमें से किसी एकही कर्मको जानि वृष्किके कियाहो तो कृच्छ्रसांतपन व्रतकरै जिसने बिनाजाने अनिच्छा से कियाहो सो प्राजापत्य व्रतकरै ॥ २५७ यहां तक मुख्य सुरापान के प्रायश्चित्त

कहेगए अब अगिले परिच्छेदमें सुरासे उपरालू मद्योंके पीनेमध्ये कहेगे ॥ २५४ ॥

अथसुरावर्जित मद्यानां पानविषये प्रायश्चित्तांतर प्रदर्श कोऽयंपरिच्छेदः त्रयस्त्रिंशः ३३ ॥



इस परिच्छेदमें उस भाँतिके मद्यपान मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो मुख्य सुरासे उपरालू मद्य होतेहैं ॥ मद्य उनका नामहै जिनमें सुरा के समान मद नशा होताहै—और मद्यसे उपरालू जो अभस्य वस्तु होती हैं तिनके प्रायश्चित्त का चर्चा दोही छापन की अधिकोक्ति मे ॥

(सुरेतरमद्यपानप्रायश्चित्तं)

अज्ञानानुसुरांपीस्वारेतोविष्मूत्रमेव च । पुनःसंस्कारमर्हतित्रयोवर्णाद्विजातयः २५५

अर्थः—अज्ञानतासे जलके धोखे जी कोई मद्यरूपी सुरापीवै या पुरुष का वीर्य या मूत्रको मुखमें जानेदे सो तीनोंवर्णों के द्विजाती लोग पुनः संस्कार उपनयन होने के योग्य होते हैं ॥ २५५ ॥

२५५ अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसपर व्यवस्था देतेहैं कि तप्तहाच्छका प्रायश्चित्त करनेके बाद अनन्तर पुनः संस्कार यज्ञोपवीत होना चाहिये परन्तु तीनोंवर्णों को यह संस्कार वीर्य और मूत्रहीके पीनेमें समझना किन्तु मद्यपान मध्ये केवल ब्राह्मण का पुनः संस्कार होना चाहिये क्योंकि क्षत्री और वैश्यको मद्यपाने की अनुज्ञा सिद्ध होचुकीहै २५५ की अधिकोक्तिमें देखो तिससे इन दोनोंको केवल तप्तहाच्छ करना होगा—और यहां जो मूलश्लोकमे सुराशब्द आया तिससे मद्य समझना मुख्य सुरा नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त बहुत छोटाहै तिससे और इससेभी कि अज्ञानतासे मुख्य सुरा पीजानेपर वारहवर्ष का प्रायश्चित्त पहिली अधिकोक्ति में कहिचुके है—इसी हेतुसे गौतमने इस विषयपर मद्य शब्दहीका बर्ताव कियाहै कि जिससे सदेह न उदै= यथाह गौतमः=अमत्यामद्यपानेपयोवृतमुदकंवायुं प्रतिव्यहृतपानि पिबेत्सतप्तहाच्छः ततोऽस्यसंस्कारो मूत्रपरीयकुरापरेतसंप्राशनेच=अर्थात्—बिना जाने मद्य पान करने में तीन तीन दिन दो चोर्जे गरम करि करि पीवै कि पहिले तीन दिन दूध फिर तीन दिन घृत फिर तीनदिन जलही गरम पीवै फिर तीनदिन केवल वायु जो सूर्यके आताप

से स्वतः तत्र हुई हो-तिसमें पीके रहें सो यह तत्र कृच्छ्र नाम का प्रायश्चित्त कहाता है यह करने पीछे इसका उपनयन संस्कार भी कियाजाय तब शुद्ध होताहै और यही प्रायश्चित्त उपनयन सहित उनकोभी कराना कि जिसने सूत्र या विद्या या धीवराधि वगैरे कोई सड़ाईध या पुरुषका वीज भक्षणा कियाहो-इसी पर और भी वचनांतर है कि (तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् प्रतिच्यवहंपिवेदुद्यानसकृत्स्नाथीस माहितः) अर्थात्-ब्राह्मणा जो तप्तकृच्छ्र करना चाहें सो जल और दूध और घी और इवा इन प्रत्येकको तीन तीन दिन गरम करिके पीवें तबतक सकही बार स्नान किया करै-पराशरने इन चीजोंका परिमाण विशेषभी कहाहै-यथा=यत्पलंतुपिवेदंभस्त्रि पलंतुपयःपिवेत् पलमेकांपिवेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते=अर्थात्-तप्तकृच्छ्रव्रत उसका नामहै जो छेपलकी तोलसे जलपीवें तीनपल दूधपीवें एकपल घी पीवें आगे तीन दिना केवल वायुभक्षणा कहिचुके हैं=और जो मनुका यह वचनहै कि (अज्ञानाहारु र्गापीत्वा संस्कारैराविशुद्धति) विना जाने वारुणा मदिरा पीकर संस्कार होने से विशुद्ध होताहै) सो इसमें भी वही तात्पर्यहै कि पहिले तप्तकृच्छ्रकी साधनाकारिके तबसंस्कार कियाजाय क्योंकि गौतमके वचनसे मुताविक 'होना चाहिये (पुनःसंस्कार द्विवारा जनेऊ करना कहाताहै) सो यह आचलायन आदि कर्मकांडियों के बांधे क्रमसे करना चाहिये कि जैसा (अथोषेतपर्वस्यकृताकृतंकेशवपनं मेघाजननंचानिरु क्तंपरिदानं कालप्रचतत्सवितृतुर्यामहे इतिसावित्रीस) प्रथम वेदीके पास बैठारे हुये का मुंडन कियाजाय चाहें बाल मुड्ड हों या नहीं दोनों दशांसे रखे और बिना रखेबाल सर्वथा कृताकृत पवन कियाजाय फिर मेघाजनन कर्म कियाजाय जिससे उत्तमबुद्धि उत्पन्न होय फिर अनिरुक्त कर्म कियाजाय फिर परिदान कर्म होय फिर कालकर्म तत्सवितुः इत्यादि ॥ ० ॥ जिसने जानि बृहिके मद्यपान कियाहो तिसको वसियोक्त विधिसे प्रायश्चित्त देना चाहिये=यथाहवसिद्यः=मत्यामद्यपानेत्सुरायाःसुरायाश्चा ज्ञानेकृच्छ्रातिकृच्छ्रीघृतप्राशनं पुनःसंस्कारश्च=अर्थात्-सुरा के बिना उपपल्लु मद्य जानि बृहिकपीने में कृच्छ्रनामक व्रतकरै और सासात सुराका अज्ञानतासे पीनेमें भी अतिकृच्छ्र व्रतकरै और दोनोंके व्रतक्रिये पीछे घी चाटे और दुधारा संस्कारकरावै=अथवा (असुरामद्यपायोचान्द्रायणांचरे दितिशंखीक्तविकल्पं) सुरा विहीन मद्यां का पीनेवाला चान्द्रायणा व्रतकरै यह शंखमुनिका कहा विकल्प भो कियाजासक्ता है (यहां जिन व्रतोंके नामही केवल कहेगए तिन सबके विधान आगे आवेंगे तहां च्यौरा समभिलेना क्योंकि चान्द्रायणा व्रत सकही नामहै उसके चारिभेद होतेहैं सब

प्रायश्च बारहदिनके नियम साथ रुच्छ और अतिरुच्छ ये दोनों जुदेव्रतभीहोतेहैं, तथा रुच्छातिरुच्छ दोनों मिलिके एक तीसरा जुदा होताहै और भी छे दिन का रुच्छार्द्ध होताहै फिर रुच्छर्द्धकी नामसे रुच्छसान्तपन आदि व्रत होते हैं तिससे इनका बिस्तार लिखनेको यहां पर अवकाश नहींहै ॥ ० ॥ जिसके सिर्फ मुखहीमें मद्यपहुंचा हो गलेकीनीचे नउतरा हो तिसके लिये छेदिनका व्रत आपस्तंबके विधानसे विचारना चाहिये—यदाहापस्तंबः—अभक्ष्यारासपेयाना मलेद्धानांचभक्ष्यारो रेतोमूत्रपुरीयाणां प्रायश्चित्तंकर्यंभवेत् पशोदुम्बराविल्वानांपलाशस्यकुशस्यच सतेयामुदकंपौल्वायडा त्रेणाविशुद्ध्यति—अग्रत्ति—नखानेकी न पीनेकी न चाटनेकी नियिद चीजों के भक्ष्या करिजानेमें तथा पुरुयका बीज और मूत्र और विद्या इनके भक्ष्या करनेमें प्रायश्चित्त कैसे होवै सो कहितेहैं कि० पत्र० उदुंबर गूलर० बेल० पलाशदाख० कुशा० इनपतोंका जल औंटिके छेदिन तक पीने से पवित्र होता है—सो यह नियम सिर्फ ताड़ी आदि मद्योंके वियग्रपर समझना कि जैसे गूड़ मूत, आदि बोखा से मुहमें जाते सार, धूक दिया तैसे ताड़ी आदि मद्यको मुहमें जातेसार धूक दियाहो तिसकी शुद्धि छेदिन में होजायगी—अन्यथा गोडो और माध्वीको बिनाजाने मुखमें डारिके बिना धूटेजो धूकदेइ तिसके लिये जैसा वसिष्ठ के वचनमें ऊपर (अधुरायाः सुरायाश्चाज्ञानतः) यह लिख चुके सो रुच्छातिरुच्छ सहित दुवारा संस्कार और घृत का चारना भी कराना होगा, (परंतु यह संवेद न करना कि पहिली अघिकीक्ति में तालू तक पहुंचने मध्ये मनुके वचन से एक वर्गभर पीना खाना कहाया, यहां क्योंकर थोडा रहिगया० क्योंकि वहाँ मंत्रसे बड़ी पैथी सुरा का प्रायश्चित्त कहा और यहां उससे छोटी गोडी माध्वी का प्रसंग है तिससे थोडा रहिगया वल्कि (उन्हीं गोडों और माध्वी की जानि वृभि सक्वार के निपट पीजाने मध्ये (पिययाकंबाकृतान्वापी तिवैवारिथिकं) यह दोसो चीवन के उत्तरार्द्ध से कहिचुके तैसा तीनि वर्ग तक पीना खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये—और जिसने अपनी चाहना तथाकामनासे उन्हीं गोडो या माध्वी को बारम्बार पीने का अभ्यास कियाहो तिसके लिये वसिष्ठ का दर्शाया मरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये जैसा २५३ दोसो वेपन की अघिकीक्तिमें लिख चुकेहै कि (अभ्यासेतुसुराया अग्निवर्णांसुरांपिपेनमरणात्पूतोभवतीतिवसि यः) सुरा के बारम्बार अभ्यास पूर्वक पीने में यही प्रायश्चित्तहै कि अग्नि के समान लाल तपाइ हुइ सुराकोही पीवे जो हृदय जलिकर मरजाने से पवित्र होता है, इसमें सुराकहिनेसे गोडो और माध्वी सुरासे प्रयोजनहै किंतु पैथी सुराका अभिप्राय

इसमें नहीं है— क्योंकि ऐसी धरा मन्त्रमें मुख्य होती है तिसके एकही वार पीनेपर मरणांतिक प्रायश्चित्त २५३ दोसौ घेपन श्लोक और उसीकी अधिकोक्तिसे कहि चुके हैं तिससे ॥ • ॥ मद्य धरने के मुखे वासन में भरा हुआ जल बिनाजाने एकही वार पीनेमें वृहत्तयसका कड़ा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह वृहत्तयमः=मद्य भांडस्य तंतोयंयदिकश्चित्पिबेत्द्विजः कृशमल्लविपक्ते नञ्यइंसीरेणवर्तयेत्=अर्थात्—मद्य के भांडमें धराहुआ जलशो कोइ द्विज पीवै सो दूधमें कृशा की जडका काय प्रकाय के तीन दिन पीवै=बिना जाने अनेक वार पीते रहने में वमिष्ठ का कड़ा प्रायश्चित्त विचारना=यदाहवसिष्ठः=मद्यभांडस्यतंतोयंयदिकश्चित्पिबेत्द्विजः पसोदुंबरावित्वा नांपलाशस्यकृशस्य चरुनेयामुदकंपीत्वाचिरात्रेयाविशुद्यति=अर्थात्—मद्यके भांड में धराजलजो कोइ द्विजपीवै सो पत्र•गलर•बेल•ढाखा•कुशा•इनकाकाडा रोजपीकर तीन दिनमें शुद्ध होताहै=जानते हुये पीलेनेमें विष्णाकाकड़ा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह विष्णाः=मद्यभांडस्थितंतोयं पीत्वापंचरात्रंशंखपुष्पीशृतंपयःपिबेत्=अर्थात्—मद्यके वासन का जल पीके पांच दिनतक शंखपुष्पी का ओटाया दूध पीवै=जानते हुये बार बार पीने में शंखजीका कड़ा विचारना=यदाहशंखः=मद्यभांडस्थितंतोयंपी त्वाप्तपरात्रांगोमंत्रंयावत्किंपिबेत्=अर्थात्—मद्यभांडका जल पीके गोमूत्र लाखवे सात दिनतक पीवै=जिसने अत्यंत अभ्यास कियाहो किंतु जानतेहुये बहुत दिनतकपिआ हो तिसकेलिये हारीत का कड़ा प्रायश्चित्त विचारना=यदाह हारीतः=मद्यभांडस्थितंतोयंयदिकश्चित्पिबेत्द्विजः द्वादशाङ्गुलपयसापिबेद्वाहीसुवर्चलान्=अर्थात्—मद्यपात्रका धरा जल जोकोइ द्विज पीवै सो दूधमें औटिके ब्राह्मी वज्रनेटः नाम सुवर्चला का पंचांग धारह दिनतक पीवै तब शुद्ध होय (मर्भा इन वर्चला में द्विज शब्द जो आया सो केवल ब्राह्मण का बोधक है) क्योंकि क्षत्री और वैश्य को मद्यका निषेध नहीं है यह पहिले कहि चुके हैं दोसौ घेपन आदि अधिकोक्तों में देखो) मद्य के पात्र में धरे जलके मध्ये जो जो वचन यदापर लिखे गये सो मन्त्र गोश्री माध्वीके पात्र में धरे जलका वियत्र समुभक्तान् क्योंकि प्रायश्चित्त के बड़ापन से यही तात्पर्य ट्ठेरेता है तिससे ताडो आदि छीटे सर्षों के मुखे पात्रका धरा जल पीने मध्ये कृच्छ्र न्यून कल्पना करनी चाहिये ॥ २५५ ॥

यदांतक पुरुषों को प्रायश्चित्त कहेगये अब आगे जो चियां मदिरा पीवै तिनके प्रायश्चित्त रणविगे ॥

(स्त्रीणांसुरापाने प्रायश्चित्तानि)

पतिलोकेनसायातिब्राह्मणीयासुरापिबेत् । इहेवसाशुनीशुभ्रिकरीचोपजायते २५६

अर्थः—जो ब्राह्मणी सुरा पीवे सो पतिके लोक को नहीं जाती है वह इसीलोक में कृतिया मिद्धिनी सुकरी होके जन्मती है—अर्थात्—ब्राह्मणी आदि तीनों द्विजातियों की भार्या यद्यपि पतिकी सेवा आदि अनेक पुरय करने वाली हो तौभी जोसुरा पीवे सो पतिके पुरय लोकों को नहीं जाने पाती है इसी लोक में कृत्ता आदि तिर्यक् योनियों में बारबार क्रम से जन्म पाती है ॥ २५६ ॥

२५६ अधिकोक्तिः—मूल प्रलोक में योगीश्वर ने केवल ब्राह्मणी शब्द रक्त्वाहे तौभी मिताक्षराकारने व्यवस्थाको अपेक्षा से तीनों वर्णोंकी भार्या अर्थ कियाहै इस हेतुसे कि आचार मर्यादा परिपाटीमें ५७ मूलप्रलोक से आवश्यक निर्वाह निश्चित होचुकाहै कि ब्राह्मणके ब्राह्मणीआदि चारोंवर्णों की भार्याभी होती हैं सत्रीके सशराओ आदि तीनिवर्णों की भार्याभी होतीहैं वैश्यके वनेनो आदि दोवर्णोंकी भार्याभी होतीहैं(शूद्रके केवल शूद्रा भार्याहोतीहै) इसोन्यायसे यहांभी जिसद्विजातीकेजितनी भार्याएँ होनीकहीगई तिनसबहीका उपलक्षण एकब्राह्मणी कहिनेसे लियाहै इसका इसीसे दृष्टांत समझीं किब्राह्मणी भार्या अर्थात् ब्राह्मणकी भार्या चाहें सत्रीवर्णा या वैश्यवर्णा या शूद्रवर्णा की कन्या हो तौभी सुरा पीने से पतिकी लोक न पावेगी इसी प्रकार सत्री और वैश्य की भार्याएँ समझलैना=इसीआशयपर मनुका वचन है, कि=पतत्यर्द्धशरीरस्थस्यभार्यासुरापिबेत् पतितार्द्धशरीरस्थनिष्कतिर्नविधीयते=अर्थात्-जिस किनीकी भार्या सुरापीवे तिसके शरीरका आधा भाग पतित होजाताहै पतित हुये आधे शरीर की निष्कति नहीं होती है—क्योंकि धर्म अर्थ काम इन तीनों में छौं पुरुष दोनों का साथही अधिकार होने से दोनों का एकही शरीर माना गयाहै तिससे भार्या रूपी आधा शरीर पतित होजाता और इसीसे उसकी युक्ति नहीं होती है—तिससे द्विजाती माय की भार्या ब्राह्मणी आदि की सुरा न पीवी चाहिये यह प्रतियेध निह्न हुआ—यह वचन पहिले आचुका है २५३ की अधिकोक्ति में देखी (तस्माद्ब्राह्मणाराजन्त्यो वैश्यश्चनसुरापिबेत्) कि ब्राह्मण सत्री वैश्यभी सुरा न पीवे इसमें पुरुषही या छौं न पीवे यह लिंग भेद नहीं किया तिससे तीनों वर्णोंकी समस्त जातिमाय को नियेध दहिना कि पुरुष और छौं और बालकभी न पीवे—इसने वचन से तीनोंवर्णोंकी भार्याओं का नियेध सिद्धहोचुका था तौ फिर दुवारा भार्याओं की

विशेषता यहां इसलिये कही गई समुक्तों कि द्विजातियों के कदाचित् शूद्रों भाया हो तिसको भी सुरा न पीना चाहिये—इन सब कारणों से यह बात सिद्ध हुई कि द्विजातियों की भाया चाहें शूद्रों पर्यंत किसी वर्गकी हों सो कदाचित् सुरा पीवें तो उनको भी, अपने पुरुषों से आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये (२५४ दोसौं जीवन की अधिकोक्ति में भी लिख चुकेहैं कि स्त्रियों और बालक बृद्ध आदि को आधा प्रायश्चित्त देना चाहिये वही तात्पर्य सर्वत्र और यहां भी समुक्त रहिना) परन्तु जो शूद्रकी भाया सुरा पीवें तो उसके लिये शूद्र के समान सुरा पीने का नियेध नहीं है तिससे प्रायश्चित्त भी आवश्यक नहीं है ॥ ० ॥ और जो २०६ दोसौं उन्तीस मूल श्लोक वा उरुकी अधिकोक्ति में नियिद्ध चीजों का भक्षणा करना भी सुरापान के समान कहा गया है तिनके भक्षणा करने में सुरापान ही का प्रायश्चित्त आचरणा करना चाहिये अर्थात् सुरा पीजाने मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त जिसके लिये जितना करना कहा हो वही उससे आधा करे जिसने नियिद्धचीजें भक्षणा करीहों यह पहिले कहिचुकेहैं ॥ २५६ ॥

इतिसुरापान प्रायश्चित्त प्रकरणं



॥ इस प्रकरणा में इकतिस से तैंतीस तक तीन परिच्छेदों से मुख्य सुरापान और असुर्यसुरापान और मद्यपान के समस्त प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था कहीगई अबआगे चोरीकरने मध्ये चोरोंके प्रायश्चित्त कहे जावेंगे ॥

अथ सकामस्वर्णापहारिप्रायश्चित्तानांभेदाविवेचकोऽथं

परिच्छेदःचतुस्त्रिंशः ३४ ॥



इस परिच्छेद में उन प्रायश्चित्तों का भेद विवेचन किया जायगा जो इच्छा और कामना से द्राह्मणाका स्वर्गा आदि हरने के पापों पर आवश्यक होतेहैं ॥

(स्वर्णापहार प्रायश्चित्तं)

ब्राह्मणसर्णहारीतुराज्ञेमशालमर्षेयत । सकर्मख्यापयस्तेनहतोमुक्तोपिवाशुचिः २५७

अर्थः—ब्राह्मणाका सोना हरनेवाला चोर अपने कर्म (चोरी) को सुनाता हुआ (आपहीजाकर) राजाको मूलज सनर्पणा करे (उसी मूसर से राजा करके वहचार)

निपट माराहुआ या छोड़ दिया हुआ भी पापसे छुटिजाता है—अर्थात्—यहीउसका प्रायश्चित्त है कि आपही राजाको शस्त्र समर्पण करें फिर चाहें राजा अपने न्याय विचार से उसको निपट मारिही डारें या दंड देकर छोड़ि देवें तो भी शुद्ध होजाताहै अन्यथा नहीं ॥ २५७ ॥

२५७ अधिक्तोक्तिः—सोना हरनेका शब्द कहिने से इतनी बातें सूचित करी हैं कि चाहें स्वामीके सन्मुख या औरही किसीके सन्मुख हरलिया हो या स्वामी की आंख पीछे हरा ही या जबरदस्ती से छीना ही या चोरों की तरह चुराया हो—परन्तु उन बातोंको छोड़ि के समझना कि उसने खरीदने आदि प्रकारों से हरा ही जिसमें निज उसीका स्वत्व (इकमालिकियत) किसी हेतु से पहुँचता हो ॥ ० ॥ सुसल समर्पण करें यद्यपि यह सामान्य भाव से किसी लोहा लकड़ी आदि के विशेषता बिना कहागया है तथापि जाहरहै कि मारने के निमित्त देना कहा तिससे मारनेमें समर्थ लोहे आदि का सुसल समझना=इसी हेतु मनुने यह कहा है कि=स्कन्धेनावायमुशलेनमांघातयस्वेति अस्मिन्चोभयतस्तीक्ष्णया सायसंदंशमेववा=अर्थात्—काँपेर मूसर या खैर का डण्डा लाठी लौकर या तलवार जो दुधारा खोंडा दोनों ओरसे तोड़ना पैनी धारवालीहो यद्वा लोहेका डण्डालाहो=शंखनेभी विशेषता इसपर कही है=यथा=सुवर्णास्तेनःप्रकीरकेशिआर्द्रवासा आयसंमुशलमादायगजानमु पतियेद्विदंमयापापं कृतमनेन मुशलेनमांघातयस्वेति मराज्ञाशिशःसन्पूतोभवति=अर्थात्—सुवर्णाका चौरवाला छिटकार और भीजे वस्त्र पहिने लोहेका मूसरलेकर राजा के पास जाय खड़ाही कि यह पाप मैंनेकिया इस मूसरसे मुझे मारडाली यह सुनि के राजासे ताडना पाया हुआ पवित्र होताहै ॥ ० ॥ उस चौरका मारना भी वारम्बार चौदोंसे नहीं किन्तु एकही बार करना चाहिये=इसीलिये मनुने कहा है कि (ततो मुशलमादायसकृद्व्यात्तुतंस्वयं) चौर की बात सुने पीछे राजा आपही मूसर लेकर अपने हाथसे एकही बार उसको मारे• इस प्रकार एकही बार मारने से मौत पाकर शुद्ध होय यद्वा उस एकही चौदमें मरनेसे बचिकर जीवतेहुये भी शुद्ध होजाता है=तैसाही संवर्तने कहाहै=ततोमुशलमादाय सकृद्व्यात्तुतंस्वयम् यदिजीवतिसस्तेनस्ततः स्तेथाद्विशुध्यते=अर्थात्—तिसर्कवाद राजाआपही मूसरलेकर उसको एकहीचौदमारें जो उन एकचौदमें वह चौर जीवता बचिजाय तौभी चोरीकेपाप से विशुद्धहोजाताहै (ऐसाही ब्रह्मइत्याकोप्रायश्चित्त मध्ये२४ ऽद्वेसोअज्ञतालिस मूलप्र तोकमेंकहाया कि (मृतकल्पःप्रहारतो जीवन्नापिबुद्धति)=यहां=वादी अपनी तर्क से शंका खड़ी

करता है, क्योंकि ऐसा अर्थ क्यों नहीं लगाते कि, राजा यदि बिना मारे कोहि दे तो भी शुद्ध हो जाय क्योंकि मूल श्लोक में यह भी अर्थों दोक, दोक होसक्ता है—सुनो यद्यपि दोक होसक्ता है तथापि (अचन्नेनस्वीराजा० इतिगौतमीये ताह्नमकुर्वतो राजो देवोयाभिधानात्) न मारते हुये पापी राजा हो• यह गौतम के वचन में राजा को दोष कहा है तिससे नहीं वैसा अर्थ लगाते हैं—अच्छा होउ राजा को दोष, तो भी नियम के उल्लंघने वाले राजा ने, स्नेह, दया भाव आदि किसी हेतु से छोड़ दिया न मारा—तो कैसे नहीं शुद्ध होगा—सुनो ऐसा होने में (व्याहीः) अकारणांशुदि का आपरना होता है—क्योंकर होता है कुटिजाने के पीछे बारह वयं आदि को किसी अनुयानसे शुद्धि करना स्वीकार करने से क्या अशुद्धि न रहेगी• सो भी, यह आशय अच्छा नहीं क्योंकि मूल श्लोक में (मुक्तःशुचिः) बचिकर कुटकारा होवाही शुद्धि का हेतु कहा गया है तिससे (मुक्तोवा मरणाञ्जीवन्नापि विशुद्धो दिति प्राच्येव च्याख्यायां यमी) वही पहिली व्याख्या, श्रेय है कि मूल आदि मारने में, मरने से बचिगया जीवते हुये भी शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ यह मरणांतिक, प्रायश्चित्त, सभी वर्णों के चोर को समझना किन्तु केवल ब्राह्मण हीको नहीं क्योंकि (ब्राह्मणस्वर्णाद्वारी) यह मूल श्लोक में कहागया, सो बिना किसी विशेषता के सामान्य भाव कहा है कि ब्राह्मण का सोना-हरते वाला कोई जाति वर्ण का नियम कुछ नहीं है, और महापातकों वाले परिच्छेद में सभी आदि को भी महापातकत्व, अविशेषता से कहिचुके हैं और मनुके लिये, कोई जूय प्रायश्चित्त भी वर्ण के अनुसार नहीं कहागया—इस वशाके हीनेपर भी जो मनु के वचन में (सुवर्णास्तेयहृदिप्रः) यह विप्रही का नाम धरागया, सो भी समस्त नरमाव, का उपलक्षणा है कि सबसे मुख्य ब्राह्मण को कहि दिया तब और सबकोई भी न वाकी रहे• वलिक इसी मनु वचन के पहिले प्रकृत वचन में (प्रायश्चित्तीयतेनरः) यही नर शब्द आचुका है जो सम्पूर्ण मनुष्य मात्रका वाचक होता है—और भी यह प्रमारा है कि पातकरूपी निमित्तों का यह वचन है (ब्रह्मइत्यासुरापानस्तेयंशुर्वगनागमः) इसमें कोई विशेषता न कहोगई कि ब्राह्मण या क्षत्री आदि कौन करे• तिससे सभी मनुष्य मात्रपर आरूढ जानो• जब कि इस निमित्तरूपी वचन में सभी मनुष्योंका तात्पर्य मनिचुके तो फिर इसी वचनका संबंधी जो नैमित्तिक वचन है कि (सुवर्णास्तेयहृदिप्रः) इसमें विप्र शब्द सुना जान पर भी सर्व मनुष्यों का उपलक्षणा माना चाहिये कि, जैसा इसके पूर्व संबंधी वचन में मनुचुके कोकि ब्राह्मण सबमें प्रधान है उस प्रधान का नाम कहिने से अप्रधान भी

सब समझिले जाते हैं यहाँ भी मानासाका वही दृष्टांत है जो २५ श्लोकी अविकोक्ति में द्योरेवार लिखिचक्र तहाँ देखो कि तंदुलका नाम कहिने से होमका सर्वसाकल्य समझ लेते हैं) तैसा इसमें भी विप्र के उपलक्षणा से सकल मनुष्यमात्र समझ जाते हैं ॥०॥ मसुरआदिसे मारना कहा सो ब्राह्मणाचोरसे उपरालसमझना चाहिये क्योंकि (चिन्तातुत्राहाराहिन्यात्मवपापेष्वपिस्पृताः सन्तिमानवेत्राहाराववनिषिद्धत्वात्) मनुस्मृति में यह नियेव है कि ब्राह्मणा को कदाचित्त भी न मारे यद्यपि सबतपहं के पापोंपर आरुढ हो तथापि जो कभी किसी राजाने नियेव को न मानिके मार दिया तो भी शुद्ध होता है क्योंकि अगिता वचन देखो उसमें वधके द्वारा ब्राह्मणा को भी शुद्ध होना कहा है यथा (वधेनशुद्ध्यतिस्तेनो ब्राह्मणास्तपसैववा इतिविकल्पा भिधानात्) अर्थात् वध होने से चोर शुद्ध होता है पर जो ब्राह्मणा हो तो तपस्या से भी शुद्ध होता है यह विकल्प कहा गया है कि या तो वध होने से या तप करने से भी ॥ ० ॥ पान्तु तपसैववा इसमें सब शब्द जो हीका अर्थ देता है तिसकी धांतिसे कुछ ब्राह्मणाचोरके वधका निषेव निषट नहीं है कि वध वधसे शुद्ध न होगा केवल तपसे शुद्ध होगा क्योंकि यह एककार इस लिये है कि जो वध न हो तो केवल तपसे भी शुद्ध होता है और भी इस अर्थकी ध्वनि देखो चाहिये कि जो वधसे शुद्ध न होना मानाजाय तो फिर (तपसाएववा) यह विकल्प की या और ही दोनों किमके साथ जोड़ी जाय किन्तु केवल एकही विधि में विकल्प नहीं सिद्ध होता है और यह भी नहीं कहि सक्त है कि दंडके अभिप्राय से विकल्प माना जाय क्योंकि दंडका आदेशही नहीं किया गया और भी यह विरोध है कि (सकार्यास्तुविकल्पेरक्षितिन्या येनेकाथनामेवविकल्पोत्रोहियवयोरियनचदंडेतपसोरेकार्यत्वं दंडस्पदमनार्थत्वात् तपसप्रचपापक्षयहेतुत्वात्) अर्थात् जिन दोनोंका एकहीसा प्रयोजन हो वेही परस्पर विकल्प में काम आवें इस न्यायसे एकही अर्थ वालाका विकल्प होता है वान और जो को तपहं दंड और तपका एक प्रयोजन नहीं है क्योंकि दंड तो दमन के प्रयोजन से किया जाता है तपस्या पापोंका क्षय करने के लिये होती है तिससे दोनों का एक अर्थ नहीं ठहिरा और यह भी इसमें विचार है कि (वधेनशुद्ध्यतिस्तेनो ब्राह्मणास्तपसैववा) यह पहिला पाद सामान्य विषय और दूसरा पाद विशिष्ट विषय है कि जो केवल ब्राह्मणा पर आरुढ है तो भी सामान्य और विशेष दोनों का परस्पर विकल्प नहीं सिद्ध होता है अर्थात् सामान्य विषयिक वधके साथ विशिष्ट विषय तपका विकल्प नहीं बनता है किन्तु ऐसा विकल्प वाक्य नहीं होता है कि

ब्राह्मणों को दही देना चाहिये या कौंडिन्य मुनिको मट्ठा • तिससे दोनोंका सामान्य ही वियय हो ॥५० ॥ अथवा इसरीतिसे भी व्यवस्था है कि इस चोरीके विययवाले प्रकृत प्रायश्चित्त में राजा आदि क्षत्रियोंकी भी ब्राह्मणोंके वधका नियेध नहीं है क्योंकि (सुवर्णास्तेयकद्विप्रः) मनुने इस वचन में विप्रोंकी को कहिकर पीछे (गृहीत्वामुशल राजासकृद्वन्यात्तत्सख्यः) तं ब्राह्मणं यह सर्वनाम शब्दके द्वारा चर्चा किये ब्राह्मण ही की परामर्श लेकर संक्रान्त मारने का विधान किया है तिससे • इसमें कदाचित्त यह कहोगे कि ब्राह्मणोंको मारनेका निषेध वचन ऊपर कहिचुके हैं • तिसका तात्पर्य ही कुछ और कि (नजातुब्राह्मणान्हन्यात्सर्वपापेष्वपिस्थितं) यह मारनेका निषेध प्रायश्चित्त वाच्य नहीं किन्तु प्रायश्चित्त से उपराल बंध देने की रीति से मारनेका निषेध सिद्ध होता है क्योंकि प्रायश्चित्तके मध्ये सासात्वसूत्र आदि लेकर मारनेका आदेश ही जो कहा गया ॥ ० ॥ यह मरणापर्यन्त का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सेो बृद्धिपूर्व सुवर्गा हनेपर आरुढ है • क्योंकि क्षत्रियोंकी विचली मध्यम स्मृतिका यह नियम है कि = मरणांतिकं च यत्प्रोक्त प्रायश्चित्तमतीयभिः तत्कामकृतेपापे विज्ञेय नावसंशयः = अर्थात् = बृद्धिमानोने मरणांतिक जो प्रायश्चित्त कहीं कहा हो सो सर्वव कामनासे किये हुये पापमें समभक्ता इसमें सदेह कुछ नहीं है ॥ ० ॥ इस प्रायश्चित्त के प्रसंग में सुवर्गाका हर्णाजो कहागया वह सुवर्गा भी एक परिमार्ण विशिष्ट तौल का नाम है कि इतना सोता हर्णे से सुवर्गा की चोरी कहावै कुछ सोने की जाति हीका नाम नहीं • तिससे वह तौल भी समभक्तों चाहिये सो लिखते हैं = यथा = ज्ञातसूर्यमरीत्यसुरेण रजः स्तुते त्वं तेऽथौ निद्वयातुतास्तिसो राजसर्पपउच्यते गौरस्तुते वयः यद्भिर्ब्रह्मो मध्यस्तुते वयः कयाल पचते नायस्ते सुवर्गास्तुयोऽथ = अर्थात् = आन्तर मर्यादा के अन्त में जो मान की परिभाषा योगीश्वर आप कहिचुके उसके दोही प्रतीको से यहां प्रयोजन है कि - धातु के जालोदार भरोखों में सूर्यको किरणों जो घुमती है तिनमें जो ब्रह्म हलुके छोटे अति सूक्ष्म किनु के से उड़ते देख परते हैं वही सुरेण रज कहाते है वे आट मिलि के एक लीख कही जाती है तीन लीखें मिलि के राजरूप अर्थात् राई कहाती है तीन राई मिलिके पीली ससां होती है छः सुरसो मिलिके एक मध्यम जो कहाता है तीन जो मिलि के एक कयात अर्थात् घुंघुची की तौल ठीकरती है ऐसी पांच घुंघुची मिलिके एकमासा होता है इन्हीं सोरह मासे का एक सुवर्गा अर्थात् लोके म अरुणा कहाती है - इसी तौल के अनुसार इतना सोना हर्णे से सुवर्गा की चोरी कहाती है (काकि योगीश्वर आपही यह

परिभाषा पहिले नियत कर चुके) इस हेतु से जहां कहीं ऐसा लिख चुके हो कि ब्राह्मणों को सुवर्ण चुराना महापातक होता है तहां सर्वत्र उसी परिभाषा को सम्मिलित करना कि इन्हीं मांसों से सोरह मासे सोना चुराने का तात्पर्य है (क्योंकि जो कोई ग्रन्थकार अपने निर्मित किये ग्रन्थ में कोईसी परिभाषा या परिमाण-विशेष नियत करते हैं सो निष्फल या निष्प्रयोजन कभी नहीं होती किन्तु उसी ग्रन्थ की आदि से अन्त तक वर्तने में आता है) और यह भी नहीं कहिसकते हैं कि यह मान परिभाषा ससारी व्यवहारों के लिये कही गई क्योंकि लोक में उसका वर्तना नहीं है लोक व्यवहार के मासे तोले आदि जुदे होते हैं यह केवल स्मृतिकारों की प्रवृत्ति एक निराली होती है—इसी लिये न्यायज्ञों ने यह कहा है कि मज्ञा और परिभाषा इनकी उपस्थिति अपने अपने कार्य के समय पर आवश्यक होती है कि जहां उसका प्रयोजन आनि पर तथैव नाम भी अपने गुण या फल के उपयोग से अर्थवाला ठहरता है जैसे पदह घी इत्यादि में—तिससे यह भी नहीं कहिसकते हैं कि योगीश्वर ने ब्रह्म मान परिभाषा केवल व्यवहारकारण की उपयोगी सिर्फ जूमनि के वर्तना को नियत करी होगी क्योंकि इसका कोई प्रमाण कहीं नहीं है कि यह परिभाषा केवल उसी काम के लिये नियत हुई और जब कि कोई प्रमाण की विशेषता न टहरी तो फिर समस्त ग्रन्थ मात्र पर वर्तना उसका आश्रय हुआ—क्योंकि दजुहो माना केवल इसलिये होता है कि वह अपराधी दमन होकर आगेको सावधान इजाय सो ऐसा ठीक ठीक दमन उस दशा में नहीं होसकता जो जूमनि का कोई परिमाण विशेष नियत न होता (किसी पर दसगना दंड होजाता किसी पर चौथाई भी न होता) तिससे स्मृतियों में परिभाषा खूबी याददास्त लिखी जाती है—इसी प्रकार प्रायश्चित्तों के मुआमिले में न्यूनान्विक रीति से व्यभिचार दूर करने के लिये परिभाषा खूबी याददास्त का उपयोग होता है—तिससे सर्वथा यहीं सिद्धांत आकर ठहरा कि सोरह मासे का सुवर्ण (अशरफो) भर तोले से सोना इरना महापातक है उन्हीके निमित्त भरणांतिक आदि प्रायश्चित्तों का भिदान है ॥ ० ॥ इसी के सबब में यह न्याय भी विशेष है कि ब्राह्मणों को दो तीन आदि मासे भर सोनेके इरनेमें महापातक न होगा किन्तु उपपातक होगा कि जैसे सभी आदि का सुवर्ण इरने से उपपातक होता है—सो यह न्याय भी यद्विशन्मत के ग्रन्थमें व्यौर कर कहा है—यथा=वाला प्रमाणे २५हत्ते प्राणायामानसमाचरेत् लिख्यामात्रेपि चतया प्राणायामानस्य च राजसर्पण नापेत्प्राणायामचतुष्टयस गायत्र्यष्टसहस्रचतरेत्पापविशुद्धये गौरसर्पणानेचसावित्री

वैदिकजपेत्, यत्रमावेसुवर्गासंप्रप्रायश्चित्तदिनद्वयम्, सुवर्गाक्षयालं ह्येकमपहत्यद्विजो
 त्तमः कृत्यात्सांतपंतं कच्छ, तत्पापस्यापनुत्तये, अपहत्यसुवर्गास्यमायमात्रद्विजोत्तमः सो
 मवर्गयावकाहारश्चि भिर्मासैर्विशुद्धमित्सुवर्णास्यापहरणोत्तरं यावको भवेत्कृत्वा प्राणां
 तित्वं होयमयत्राब्रह्महाव्रतम् (इदञ्चवत्संयावकाशार्थं किञ्चिन्नूनसुवर्गापहारविययं
 सुवर्गापहारे सन्वादिमहास्मृतिंश्च षादश्वार्पिकविदानात्) अथ द्वि-वा, तकोनो कभर
 सोना, हरने में प्राणायाम करै, तब शुद्ध होय यही प्रायश्चित्त है, तथा एकः लीख
 वरावर सोना, हरने में तीनवार प्राणायाम करै (सुवःपंडितः) यदि वरावर सोना हरने
 में चारि प्राणायाम करै, और आठहजार गायत्री भी जपै उस पापकी निवृत्तिकेतिये
 सरसों वरावर सोना, हरने में आठप्रहरभरि गायत्री जपै एक जो भरि सोना, हरने में दो
 दिनका प्रायश्चित्त करै एक कृपात घुंघुची वरावर, सोना, हरने में वैदिकजोत्तम सांत-
 पनहृच्छ्रव्रत करै ७ सपापकी, शुद्धिकेतिये एक मासभर सोना हरिके, वैदिकजोत्तम
 गायत्री जपके सिवाय तीनि सांतक गोमूत्र और यावक अर्थात् ताखका रस, इन दोही
 का आहार करै तंत्र शुद्ध होय सुवर्गा अर्थात् सोरह मासे सोना हरने में एकवर्षतक यात्रक
 खाइके रहे इस्से अधिक सोना हरने में प्राणांतिक प्रायश्चित्त जानो कि जैसे कहीं
 लिखिचुकैहों अथवा ब्रह्मइत्यांवाला व्रतकरै (यह एक वर्षतक यावक आहारकरना
 कहा सो भी कुछ कमती सोरह मासेके हरने मध्ये समभूता, क्योंकि पूरे सुवर्गाके हरने
 मध्ये मनुआदि, बहीनिही स्मृतियोंमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त लिखा है तिससे त्रैलोक्य-
 जंबवर्दतीसे खीनने आदि प्रकारोंमें सुवर्गाके परिमारासे कम सोना भी हरने में मरणांतिक
 प्रायश्चित्त होता है = यथा = वलाद्ये कामकारेण गृह्णाति स्वर्गं राधमाः तेषां तु वलहः दृशां
 प्राणांतिकमिहो ज्ञयते, (सुवर्गापरिमारादवर्गपीत्यभिप्रेतं) अथ च-जे कोइ अवन
 नर इच्छासे जंबवर्दती धन हरते है तिन जंबवर्दती हरने वालोंको इसमें प्राणांतिकही
 प्रायश्चित्त कहा है (सुवर्गा के परिमारा से भीतर भी हरने में यह अभिप्राय जानो)
 वरन सोनेके उपलसरा से चांदी आदि सब समझि लेने ॥ ० ॥ यह चोरी का प्राय-
 श्चित्त जो कुछ कहा गया सो हरा हुआ धन स्वामी को देकर करना होता है-विज्ञा
 वापिस किये नहीं = तथा च वचनं = स्तेये ब्रह्म स्वभूतस्य सुवर्गादिः कृते पुनः स्वामिनेऽपहृतं
 देयं इति त्वेकादशाधिकम् = अर्थात् ब्राह्मण के स्वभूत सुवर्गा आदि किसी धन को
 चोरी करने में फिर हरनेवाले करके आपही स्वामीको हरा हुआ देवेना चाहिये (तु
 अथ यथोऽवपसांतरे समुच्चये नियोगे विनिग्रहे च तस्मात्) यदि इति स्वयं न ददाति तदा रका
 दशगुरां कृत्वा दास्यति तदा त्पर्यायः) अर्थात् जो हरने वाला हरे हुये वचको आप ही

न वापि स करै तब राजा उसपर ग्यारह गुणा दिवावै परन्तु ऐसा अर्थ नहीं है कि वह आपही ग्यारहगुणा देनेलौ क्योँकि अपहृतहृत्प्रदिय यह प्रयोग प्रलोक में साफ है कि हरा हुआ धन धनीको देवेवै—बलिक-मनुके भी अप्रोक्त वचन मे उतनाही देनेका अर्थ है कि जितना चुराया ही=यथा=चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्दाप्यात्मशुद्धये=अयत्न-जो हराहो सो नि.श्रेय देकर अपनी शुद्धिकेलिये सांतपन कृच्छ्र व्रतकरै=और ग्यारह गुणा राजा दिवावै यह कहिचुके सो यह एक दंडकी रीति से दिवाना कहा कृच्छ्र प्रायश्चित्त का संबध उसमें नहीं समझना क्योँकि दंडके प्रकरणा में भी ऐसा काहचुके हे (श्रेयेष्वेकादशगुणांदाप्यस्तस्य चतुर्दशं) कि बाकी सूरतों में उसकावह धन भी ग्यारह गुना करिके दिलावे ॥ ० ॥ जहां कहीं अशक्ति से राजा मारने की असमर्थ हो तहां वसिष्ठजीका कहा प्रकार करना=यथाह वसिष्ठः—स्तेनःप्रकीर्णकं शो राजानमभियाचेत् ततस्तस्मैराजौदुर्वरंशस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेत् मरणात्पु तोभवतीति विज्ञायते (औदुर्वरंताम्रमयं) अयत्न-बाल छिटिकाये हुये चौर राजा के पास जाकर याचना करै कि मैंने यह महापाप किया मुझे प्रायश्चित्त देना चाहिये यह क्षनिके राजा उमे औदुर्वर नामका शस्त्र शिश्य जो ताँबेका बना समझा गयाहै सो देवै उसीसे वह चौर अपने शरीरको घातकरै मरनेसे पवित्र होताहै यह जाना गा-या-यद्यपि उन्हें वसिष्ठने दूसरा भी प्रायश्चित्त कहाहै कि=निष्कालको गोघृताक्तो गोयमारिनापादप्रभृत्यात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पुतोभवतीति विज्ञायते=अयत्न-निःकालकनाम समस्त बाल मुझाये हुये गरुका धौ शरीरमें लपेटेहुये गरुके गोबरके कपडोंकी प्रवीण अग्निमें पौरोंको आदिलेकर सब शरीर भस्म करै ती मरनेसे पवित्र होताहै यह जाना गया—सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने गुरु या योत्रिय या यारास्य ब्राह्मण आदिका द्रव्य हराहो यहा क्षत्री आदि हरने वालाही तिसके लिये भी ॥ ० ॥ तथैव अथमेव आदि यज्ञ करने से भी शुद्धि होनी कही है जैसा प्रचेताने मरणांतिक प्रायश्चित्त पहिले दर्शायाकर पीछे से कहाहै कि(इन्द्रा वाऽश्मघेनसोसवेनवाविशुध्येत) यहा अथमेव से या गोमेव से यजन करिके भी शुद्ध होय-सो यह प्रायश्चित्त उनके लिये समझना जो वैश्य वा क्षत्री आदि हरने वाले अपराधीहों॥२५॥अथअग्निगलेपरिच्छेदमें अग्निच्छासे हरनेवालोंके प्रायश्चित्तकहेगे॥

कि जिसने बिना कामना के सुवर्ण चुराया हो क्योंकि (इयंविशुद्धिरुदिता प्रनाप्या कामतो द्विज इत्यकामतो विदितस्यैव द्वादशवार्यिकस्यातिदेशात्) बिना कामना केही द्विज मारने मध्ये जो बारह वर्य नियत हुयेये उन्हीं का अतिदेश यहां दिया गया तिससे=अर्थापि वितर्क—क्योंजी बिना कामना के अपहारही नहीं मभव होताहै क्योंकि जिसको अपहार करने की कामना नहीं वह अपहारही क्यों करैगा० तीफिर अकामकार का वियय कैसे यहाँ कहिते है—सुनो जब किमोरे बिना कहे उसके कपडेकी गाँठि मे बाँधि दिया यद्वा किसी कपडे में बँवाहुआ सुवर्ण आदि कहींपरा पाइकर लोलिया यद्वा चाँदी आदि अन्य द्रव्य जानिके हरा और तत्कालही किसी औरको देदिया या खोइदिया परन्तु मालिकको तत्ताश करिके नहीं वापिस किया तब यह कामना के बिनाभी अपहार होता है ॥ ० ॥ जो कोई/तोडे आदिको स्वैव आदि लागों के योग से बनाये हुये सुवर्ण का रूपमात्र कृपिस कूट को हरे तिसपर यह प्रायश्चित्त न चाहिये,क्योंकि सुवर्ण को मुख्यजातिका समवाय न होनेसे और यह कारणा है कि मुख्य वस्तु के सदृश रूप होने मात्र से उस नकली मे असलकी गुणा धर्म नहीं होते हैं० यद्यपि येसाही नकली सोना जो सोना नहीं है तिसको सोने की भ्रान्ति से अथवा सोना समझके हराहो तथापि यह सुवर्ण की चोरी वाला प्रायश्चित्त इसमें नहीं चाहिये क्योंकि उसने सोना नहीं चुराया तिससे—और यहभी न कहिना चाहिये कि जैसा दोसो बावन की प्रवर्द्धि से यह कहाया कि (चरेद्वृत्तमइववापि वातार्यचेत्समारुहः) ब्राह्मणाके मारने को गयाहो तो न मारि पानेमेभी प्रायश्चित्त करै तैसा यहाँ भी दोष मानना चाहिये कि सोना हरने वाला कृत्य उसने किश्रा पर नहीं सोना हरि पाया तोभी दायी उसी कामका ठहरे—यह इस हेतु से न कहिनाचाहिये कि वह सुवर्ण के हरने पर नहीं प्रवृत्त हुआ असुवर्णपर प्रवृत्त हुआ (औरयह इसका वियय न कहिना चाहिये कि ब्राह्मणा से उपरानु कोई अबाह्या सोनाचुग ने पर उताऊ हुआ हो) और जो यह बचन है कि=इदमनासापापव्यात्वाप्रणावपूर्वव्या हतीर्ननाजपेत्स्याहत्याप्रणाया मविराचरेत्प्रवृत्तीकच्छ द्वादशरात्रचरेत्=अर्थात्—यह पाप मनही से विचारि की न कियाहो तोभी प्रणाव सेद्वित व्याहृतियों को मनसे जपे और व्याहृति से तीन बार प्रणायाम आचरे और जो उस पाप की करने पर प्रवृत्त भी होगया हो ती बारह दिनका कच्छ वृत्त करे—सो यह बचनभी उमी दशापर आरूढ है कि जो कोई मुख्यही द्रव्य आदि पर प्रवृत्त हुआ हो असमुख्य का तात्पर्य इसमे नहीं है—तिससे ऐसा नकली सोना बिना जाने हरनेसे प्रायश्चित्त का निमित्त

नहीं ठहिर सकता है • परंतु जैसा ऊपर कहि चुके कि चौबी आदिके ज्ञान से मुख्य सोना है या गांठि में बंधा हुआ आदि तौ वह बिना कामना का अपहार कहाता है उसमें प्रायश्चित्त भी करना होगा । इसी पहिले विषय पर कि बिना कामना के सुवरा जिसने हराहो और बिना राजा के जताये शुद्ध होना चाहे और अपहर्ता पुरुषव अतिशय धनवाच हो तौ अपनी देह की बराबर तौल के सोना दान करे अथवा देह की बराबर सोना जिसके पास न हो और पूर्वार्ध में कही वृत्तचर्या भी चार वर्ष करने की समर्थ जिसकी न हो तौ ब्राह्मणकी आधु भर उसका कुटुंब पालनहो सकने योग्य धनदान करे कि जिससे ब्राह्मण उसपर संतुष्ट होय ॥ ० ॥ जव किसी निर्गुणी स्वामी का द्रव्य हरा हो तौ व्यासजीका कहा नौवर्यका प्रायश्चित्त करे (सतदेवव्रतंस्तेनःपादन्यूनं समाचरेत्) अर्थात् व्यास ने कहा है कि यही व्रतचोर करे चौथाई कम करिके अर्थात् बारह की चौथाई तीन छोड़ि के नौ वर्ष करे= और जहां कहीं इसी प्रकारका धन ऐसा कोई हरे जो भूखों मरते कुटुंब की रक्षा हेतुसे हरने गया हो तहां अग्निमुनिका कहा छेवर्षका प्रायश्चित्त या स्वर्जित आदि यज्ञ या तीर्थों की यात्रा कावै=यथाहाविः=ग्रहब्दवाचरेत्कच्छ यजेद्भक्तुनाद्विजः तीर्थानिवाभ्रमन्विद्वांस्ततःस्तेयाद्विमुच्यते=अर्थात्-द्विजाती ऐसी चोरी में यातौ छेवर्यका कृच्छ्रव्रत करे या क्रतुयज्ञसे यजन करे या विवाह हो तौ तीर्थोंका भ्रमण करे तब चोरी के पापसे छूटे (इसमें लेख विद्विजाने के भयसे आधुनिक लेखक इस तर्कपर आकूट न होसके कि प्राक्तन संग्रहीताने क्या सोचिके ऐसा कहा होगा कि जिसका कुटुंब भूखों से मरता या वही स्वर्जित आदि यज्ञभी कर सकैगा-तथापि उत्तर इसका बहुत सुगमहै कि सिर्फ यज्ञही करने नहीं कहे और प्रकार के भी प्रायश्चित्तोंका विकल्प कहाहै कि इनमें से जो कुछ करसके सोईकरे) ॥ ० ॥ जव कोई अपहर्ता अपहार करने के साथही तत्काल ऐसा पछितावा करे कि मैंने बहुत बुरा किया इस पछितावेके साथ अपना हराहुवा द्रव्य उसके स्वामीको प्रत्यर्पण करे या छोड़ि भागे सो आपस्तंब का दर्शाया चौथे काल में एकवार भोजन तीन वर्ष तक सावैऔर एक ठिकाने पुरश्चरणा की रीति के अनुसार बड़े अथवा अंगिरा युनि का कहा तीन वर्ष का वज्र नामक प्रायश्चित्तकरे=यहाँ भी= वादी तर्क उदाता है कि स्वामी को वापिस करवैने या छोड़ि भागने में अपहार की धातुवाला अर्थ सिद्ध हो जाने अर्थात् हरना सावित होजानेसे जैसे प्रायश्चित्तमें छोटाईकी रियायत करीगई और जो यां कहो कि हरना सावित न हुआ तौ फिर प्रायश्चित्त का निषेध न होना

चाहिये तौभी प्रायश्चित्तको छोटाई उचित नहीं है—सुनौ ऐसा नहीं हरना जोहै तिस के धनका उपभोग आदि फल भोगनेसे हरना सिद्ध होताहै तिससे उपभोग के पहिले निवृत्ति होजाने में उत्तम और पूरे अपहारका अर्थ नहीं सिद्ध होताहै तिसके न होनेसे प्रायश्चित्तमें सूक्ष्मत्व कमी करना ठीकहै अन्याय नहीं जैसे न पीने योग्य चीजोंको पीते साथ मुहसे उलटी करदेनेमें छोटे प्रायश्चित्त वियेजाते हैं तैसा न्याय यहां भी न-सक्तना चाहिये—पुनरापिबित्तकः—वादी फिर भी छेड़ करताहै कि ऐसा होने में भी यों कहिसक्ते हैं कि चोरके हाथमेंसे जवर्दस्ती अपना धन छीनिके लेलेने में भी चोरने उस धनका उपभोग वर्तविका फल नहीं पाया तिसके न होनेसे सूक्ष्म प्रायश्चित्तपहुँचनेका प्रसंगदीय आताहै कि जैसा न्याय अभी ऊपर कहिचुके—सुनौ ऐसा नहीं उसके त्यागि देनेमें आपही चोरकी तर्फसे प्रवृत्ति नहीं दहेरतीहै तिससे और फल भोग पर्यंत जो अपहार है तिसमें स्वतः उसीका प्रवृत्त होना सिद्ध होताहै तिससे भी तुम्हारी तर्कनहीं दीक है ॥ ० ॥ और जहां चांदी तांबा आदि मिला सोना इराजाय तहां यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं कराया जासक्ताहै क्योंकि मिजा हुआ होनेमें सुवर्ण का सोना पन नहीं नष्ट होसक्ता है जैसे घीमें दही मिलाने या दहीके छीटे देनेसे घृतका प्रभाव नहीं जासक्ता है तिससे ऐसी दगामें बारह वर्ष काही प्रायश्चित्त कराना ठीक है ॥ ० ॥ जहां कहीं प्रत्यक्ष सोनेके तुल्य चमकीला कीड़े औरही द्रव्य इराजाय तहां यद्यपि यह शंका खड़ी होतीहै कि उसमें छोटा प्रायश्चित्त चाहिये तथापि उसमें अत्रोक्त तीनवर्ष आदिके प्रायश्चित्तोंकी पहुँच नहींहै क्योंकि सुवर्ण नहीं इरागाय तिससे परन्तु उसमें उपपातकों वाला प्रायश्चित्त होगा कि जैसा उपपातकों के प्रकारा में वर्णन किया जाय तहां देखना ॥ ० ॥ जो कि आपस्तंब का यह वचन और है कि (स्तेयं कृत्वा मृगां पीत्वा कृच्छ्रं सां वत्सरं चरेत्) कि चोरी करिके या मुरा पीके एक वर्षभर का कृच्छ्र व्रतकरै—सो यह उसके लिये समक्षना कि जिसने सोरह माय सुवर्णके भीतर एक मायसे अधिक परिभाराका द्रव्य चुरायाहो ॥ ० ॥ जोकि सुमंतु ने कहाहै कि (सुवर्णं स्तेयो सा संसा विद्या २४ स ह स मा ज्ञ्या हु ती जुं हु या त प्र त्य हं वि रा व षु प वा सं त त्त कृ च्छे रा च पू त्तो भ यति) सुवर्ण हरनेवाला एक महीना तक रोज रोज आठ हजार गायत्रीके मंत्रसे धीकी आहुतिका होसकरै और पीछेसे तीनदिन निपट निराहार उपवास करै तब शुद्ध होय या बारहदिनके तप्तकृच्छ्रसे भी शुद्ध होताहै—सो यह नित्यन उसके साथ विद्वत्प (बदल) किये जासक्ते हैं कि जो दोस्रो सत्तावन २५७ की अ-विकीर्णमें यद्विंशन्मतके वचनोंसे एक मायभर सोना हरने मध्ये तीन महीना गो

सुं और यावक पीना कहाया • तथापि इतना भेद समुभिलेना कि वहां तौ इच्छा सहित चुराने मध्ये तीनमहीने कहे और यहां एक महीना या बारह दिवस केवल अनिच्छासे हरने मध्ये नियत हुये ॥ ० ॥ मुमन्तुने एक दूसरा भी यह कहाहै कि (सुवर्गास्तेयोद्वाद्वाश्रांवायुभक्षःपत्तीभवति) सोना चुराने वाला केवल वायु की पीकर बारह दिनकारे और कुछ न करै तौभी शुद्धहोताहै • सो यह उसके लिये समझना जो केवल मनके विचारसे अपहार करनेपर उताखमाव हुआ परन्तु आपही अपहार करने से निवृत्त होगया किन्तु नहीं कियाहो ॥ ० ॥ यहां भी स्त्री बालक बूढे आदि जो चोरहों तिनसे जो जो प्रायश्चित्त कहिचुके सो सब आधे आधे करवाने चाहिये ॥ ० ॥ जिन चोरियोंको दोसौ तीस २३० मूलश्लोक में घोडा रत्न मनुष्य आदि को सुवर्गाकी चोरीके समान कहिचुके तिनके चुरानेवालों को अशोक प्रायश्चित्तों से आधा करवाना चाहिये उनमें भी यदि स्त्री या बालक बूढे आदि चोर हों तिन पर आधेका आधा चौथाई करवाना होगा ॥ ० ॥ और ये वचन चतुर्विंशतिमतकोहै कि—
 रूप्यहस्तवादिजोमोहाक्षरेघांद्रायरात्रतस गद्यारादशकादूर्ध्वमाशतात्तद्विद्युगांचरेत् आ सहस्रात्तुविद्युगासुध्वेहेमविधिःस्मृतः सर्वेषांघातुलोहानांपराकन्तुसमाचरेत् धान्यानां हरणोद्गच्छत्तिलानामेंदवंस्मृतम् रत्नानांहरणोविप्रश्चरेच्चान्द्रायरात्रतस (याद रक्तवौ कि गद्यारा एक वांटहै सो वैद्यक परिभाषा में यद्यपि द्वाइयों की तौल मध्ये ६४ चांसदियुंजा भरि होताहै तथापि यहां धर्मशास्त्रमें ४८ अडतालिस रत्तीभरि गद्यारा कहाताहै सिर्फ चांदी की तौल मध्ये उसका प्रयोजन है कि) जो कोई द्विज सोह अज्ञानतासे रूपा चाँदी हरै दश गद्याराके भीतर और पूरे दशगद्यारा हरनेमें भी चांद्रायरा व्रतकरै और दश गद्यारासे ऊपर सौगद्यारा तक चाँदी हरै वह दोवार चांद्रायरा करै और सौगद्यारा से लेकर हजार गद्यारा तक चाँदीहरै सो तियुना चांद्रायरा करै इसके ऊपर सोने वाली विधि कही है अर्थात् पूरे हजार गद्यारा या इससे भी अधिक चाँदी हरै तिसके लिये सुवर्गाकी चोरीवाले प्रायश्चित्त बारहवर्ष आदि के समझने और तांवा लोहा पीतल आदि सब धातुओं की चोरी करिके पराक नाम काव्रत प्रायश्चित्त करै और नार्जों के हरने मध्ये शच्छु व्रत करै और तिलोंके हरने मध्ये चांद्रायरा व्रत करै तथा रत्नों की चोरी मध्ये ब्राह्मरा चांद्रायरा व्रतकरै—इन वचनोंमें जोहजार गद्यारासे अधिक चाँदी चुरानेका प्रायश्चित्त सुवर्गास्तेयकेसमान कहा सोभी सोनेका बडापन दर्शानेके निमित्त है पर उसकी निवृत्तिकेलियेनहींहै— और जो रत्नोंके हरने मध्ये सिर्फ चांद्रायरा कहा सोभी हजार गद्यारासे कम चाँदी

के मूल्य वाले रत्नों को समझना किन्तु हजार से लेकर ऊपर अधिक मूल्य की रत्नों में सुवर्ण की चोरी समान प्रायश्चित्त होंगे ॥ २५८ ॥

इति सुवर्गास्तेय प्रायश्चित्त प्रकारां ॥

—*—

(यह प्रकारका केवल चौंतीस पैंतीस दो परिच्छेदों से पूरा हुआ अब आगे गुरु-दार गान्धीके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे)

अथ जनन्यादि गुरुद्वार गमन प्रायश्चित्तानां

भेद प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः षट्त्रिंशः ३६

—*—

इस परिच्छेद में केवल उन्हीं पातकों के प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे जो टेट जननी या पिता की सबर्गा आदि भार्या या उनके तुल्य जेकोई अन्य स्त्रियांमानी जाती हैं तिनके सकाम और अकाम गमन करनेसे होतेहैं या भोग करने पर उताह्न होकर लौटि जाने से भी जो पाप होतेहैं ॥

(सकामगुरुस्तल्पगानां प्रायश्चित्तं)

तत्तेयःशयनेतार्धमापस्यायोपितास्वपेत् । गृहीत्वोत्कृत्ववृषणीनेऋत्पांचोत्सृजेत्तनुम् २५९

अर्थः—तत्र लोहे के अथन पर लोहे की स्त्री साथ सोयें या दोनों उद्यथा काटि हाथ मे लेकर निश्चरति दिशा में तनु को त्यागें—अर्थात्—दोसी साठि के श्लोक मेंगुरु तल्पग नाम कहेंगे उसीका संबंध यहां परभी विद्यमान है कि जिसने गुरुद्वारा गमन करीहो उसका यही प्रायश्चित्तहै—कि निपट लोहेकी बनेहुये प्रलंगपर लोहेकी वनी हुई मूर्ति भी साक्षात् स्त्री के आकार हो यह दोनों खूब अग्निमें तपाये जायें जो अग्निहो के समान हाल होकर अग्नि का रूप होजायें तिसपर उस जलती हुई मूर्ति को चिपिट कर सोयें किन्तु इसी तरह देह को जलाइ को नरजाय तब शुद्ध होय ॥ अथवा दूसरा यह प्रायश्चित्त है कि आपही अपने लिंग समेत दोनों आड़ जड़ से काटिके दोनों हाथकी अंगुरी में लेकर दक्षिणा पछाँह के कोने वाली नैऋत्य दिशा मे तर्जो तक सूधा च लाजाय कि जहां पर प्राण छूटिके देह गिरि परै किन्तु बीच में न र्थमें कहीं इस रीति से देह छोड़ें तब शुद्ध होय ॥ २५९ ॥

२५६ अधिकोक्तिः—लोहेकी स्त्री साथ सोते समय पहिले अपना पापमवलोगों को ऊँची आवाज से सुनाइ देवै कि मैंने गुरुभार्या गमन किया तिसकी शुद्धि को यह प्रायश्चित्त करताहूँ (गुरुतल्पोऽभिभाष्यैः इति मनुः) कोकि मनुने ऐसा कहा है गुरुतल्पग अपना पाप सुनाइ के लोह शय्या पर चढ़ै = और यह भी एक नियम है कि जैसे स्त्री की आलिंगन किया था उसी तरह लोहे की मूर्ति को लिपटाइके सोवै • जैसा टुडहारीत ने कहाहै कि = गुरुतल्पगोमृन्मयी मायसींवास्त्रियाः प्रतिकृति मरिचवर्णां कृतेकाष्णाथसशयने अयोमय्यास्त्रीप्रतिकृत्या कृत्वातामालिग्यपूतोभवति = अर्थात्—काले लोह के बने पलंग तपेहुये पर मिट्टी या लोहेकी स्त्री की नकली मूर्ति अग्नि के वर्णा समान तपो हुइ लाल करिके उस लोहे की मूर्ति साथ आलिंगन कम करिके मरने से पवित्र होता है = तथा बालों को सर्वथा मुड़ाइके सब देहमें घी लपेटिके यह शयन करना चाहिये = यथाह वशिष्ठः = निष्कालकोधृताभ्यक्तस्तत्रास्त्रीं मृन्मयीं परिप्वज्य मरणात्पूतोभवतीति विज्ञायते = अर्थात्—सब देह के बाल वा रोमा पर्यंत मुड़ाये और घी लपेटे हुये मट्टीकी तपाइहुइ स्त्री को खूब आलिंगन करिके मर-जानेसेही पवित्र होताहै यह जानागया (यहां केवल मट्टी कही तोभी लोहे और मट्टी का विकल्प बदल समझलेना कोकि लोहा भी मृदिकार धातु होता है दोनोंमें कुछ भेद नहीं है ॥ ० ॥ अगोक्त मनुके वचनमें लोहेकी पलंग पर सोना या लोहे की मूर्ति को चिपटाना किजोल करना ये दोनों बात जुबी जुबी प्रतीत होती है = यथाह मनु = गुरुतल्पोऽभिभाष्यैः नस्तत्रै स्वभ्यादयो मये सुभी ज्वलतोवाप्रितप्यमृत्युना सविशुद्ध्यति = अर्थात्—गुरु तल्प घापी अपने पाप को सुनाइ के तपाये हुये लोहे के शयन पर सोवै या जलतीहुइ मूर्ति को खंग से लगाय के सौतही से विशुद्ध होता है • इसमें या शब्दके विकल्प से साफ दो जुबी बातें होगई कि चाहं यह करो या बह—तो भी मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि मनु को इस वचन का अविरोधी सहारा चाहि कर योगीश्वर के मूलश्लोक में भी ऐसा न संशयि लेना कि दो जुदे प्रायश्चित्त है क्योंकि (आथस्यायोगितास्त्वपेत) जब यह कहागया कि लोहे की स्त्री साथ सोवै तब यहभी संसक्तना वाकीरहा कि कहां सोवै तिसका यही संशय है कि लोहेके शयन पर सोवै तिससे दोनों बातका संबंध परस्पर निजाहुआ सकहे एकही प्रायश्चित्त संसक्तना कि जैसा पहिले कहिचुकी • यह पूर्वार्दकी व्यवस्था हुइ ॥ अब उत्तरार्द पर ध्यान धरो कि दूसरे प्रायश्चित्त मध्ये मनुने भी लिङ्ग और आँड काटने कहे है = यथा = स्वयंवाशिष्ठमृत्पावुत्कृत्या धाय चांजतो नेत्रतो दिशमातिष्ठे दानिया

तार्दजह्मः=अर्थात्=जो पहिला कहा न करसके तो आपही लिंग और वृथरांको काटि के अंजरी में धरि के वैज्ञत्य कोने की दियामें देही चालिके बिना सुधा चला जाकर शरीर गिरपरनेको जगह पर धर्म=यह चलाजानाभी पीठि पीछे घूमिके न देखे विना करना चाहिये=अथाहत्तःशंखलिखितौ (सुरेणाशिश्रुवृथराावृत्कृत्यानवेसमारो ब्रजेत्) अर्थात्=शंख और लिखितमुनि दोनों भाइयोंनि निज निज ग्रन्थमें सकही वचन कहाहै कि• छुरी छुासे लिंग और आंड काटिके पीछे को न देखताहुआ सुधा चला जाय =तथा यह वशिष्ठका अग्रोक्त वचन है कि जहां प्राण छूटनेलगे उसीजघे धर्म कहौं बीच सें न लके=यथा=सवृथरांशिश्रुवृत्कृत्यांजलानाधायदक्षिराभिमुखो गच्छेद्यैवप्रतिहतस्त्वैव तियेदाप्रलयादिति=अर्थात्=आंड सहित लिंगको काटिके अंजलीमें धरि के दक्षिरा दिशाके सन्मुख सरनेपर्यन्त चलाजाय जहांकहीं दीवार ठीले आदिके बछासे गिर परै उसी जघे प्राण छूटने तक धर्म=जैसा नारदने दण्ड देने की अपेक्षा से भी लिंग काटना कहा है=तथाच=आसासन्यतमंगच्छन्त्युस्तल्पगउच्यते शिअस्योत्कर्तनातत्रान्योदंडोविधीयते=अर्थात्=इतनी खियां जो मेंने गिनाई इनमें किसी एकको गसन करते हुये गुरुतल्पग रहिरताहै तहां शिअ काटिलेनेके सिवाय और कुछ दण्डभी नहीं दिया जाताहै अर्थात् उसका यही प्रायश्चित्त और यही दंड है ॥ ० ॥ इस प्रकार दण्ड देनेके लिये जो लिंग आदि किसी अंगका काटना होताहै सोभी पापहीके विनाश हेतु होताहै=इसी नरणांतिक दंडका अभिप्राय लेकर मनु ने यह कहाहै कि (राजभिधृ तदंडास्तुह्रत्वापापानिमानवाः निर्मलाःस्वर्गमायांतिष्ठं तःसुकृतिनोयथा) पाप करनेवाले मनुष्य प्रायश्चित्त के बिना राजाओंसे ठीक दण्ड दिये हुयेभी निर्मल होकर स्वर्गमें आतेहैं जैसे सुदृढ करनेवाले सदृष्टय स्वर्गमें जाते हैं=इस नियमसे यह तात्पर्य है कि जहां राजा केवल वनदण्ड जुर्माना लेकर छोड़ि दे तहां उस दण्डसे उपरालू प्रायश्चित्त भी लगता है=क्योंकि उन्हीं मनुने यह वचन भी कहा है कि=प्रायश्चित्तंक्षुवाणाःशर्वेषरायियोदित्थ वांक्षयाग्नानल्लाटेस्युदा प्यास्तुनमसाहसम्=अर्थात्=जिन पापोंपर जैसा प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहाहै तिसको ठीक ठीक करनेवाले सभी वर्षों के लोग केवल उत्तम साहस आदि वन दण्ड लेकर छोड़ि दियेजायें किन्तु राजाको उनके नाशपर दण्डदेनाआदि कोईसा चिह्न न करना चाहिये अर्थात् इस चिह्नके नियंत्र से सशस्त देहदंडों का उपलक्षण प्रकार किया है कि नारना पीटना आदि कोईसा देहदण्ड न देना चाहिये ॥ ० ॥ मलश्लोकमें योगीश्वरने दो प्रायश्चित्त कहे दोनों नरणांतिक हैं इनमें कोईसा एक प्रायश्चित्तकरने

से गुरुतल्प गामी शुद्ध होता है—गुरुतल्पगामी कहा इसमे गुरु शब्द जो है सो मुख्य वृत्तिसे पितामें वर्तमान समझा जाता है क्योंकि मनुने वडे पुरुषोंका गुरुत्व सपत्नाने मध्ये यह कहा है कि=नियेका दीनिकर्माणि य करोति यथाविधि स्वभाववर्तितचान्नेन सविप्रोगुरुरुच्यते=अर्थात्—नियेक नाम गर्भमें बीज धरना आदि सभी संस्कारकर्तव्यों को जैसी उनकी विधि होती है तिस गतिसे जो कीर्ति करता है और अक्षसे भी पोषण करता है वही गुरु कहाता है•तो यह मुख्य गुरु पिता ठहिरा—इसी तरह योगीश्वर ने भी नियेक आदि कर्मोंके अभिप्रायसे ऐसा कहा है (सगुरुयः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति) अर्थात्—आचारमर्यादामें कहि चुके है कि वह गुरु है जो सब संस्कारों की क्रियाएँ करिके लड़केको वेद विद्या देता है•ये सभी काम पिताके करनेसे होते हैं—क्योंजी—गुरु शब्दका वर्तवा अन्य पुरुषों में भी देखि परता है जैसा आचार मर्यादा परिपाटी में (उपनीयगुरुः शिष्यं) इत्यादि मूलश्लोकसे आचार्य को भी गुरु कहा था•और भी यह वचन है कि (स्वल्पं वा बहु वा यस्य द्युत्सरोपकरोति यः तमपि हगुरुविद्यादित्युपाध्याये) इसमें उपाध्यायको भी गुरु ठहिराया है कि थोडा या बहुत जिसका पढ़ने सुनने में उपकार जो करता है तिसको भी गुरु जानो—इयासजी ने भी इसको गुरुओं में गिना है=यथा (गुरु वो मातृ पितृ पत्याचार्यं विद्यादातृ ज्येष्ठ धातृ ऋत्विजोऽभयवाताऽन्नदातार्चेति) अर्थात्—माता पिता पति आचार्य विद्या का दाता जेठे भैंये ऋत्विज अभय देके रक्षा करने वाला प्राणाँ के संकट से और अन्नदाता भी कि जिसके सहारे से उदर पूर्ण होती हो ये सब गुरु हैं अर्थात् वडे हैं और इसी मान्यता के योग्य हैं•देखी पिता के सिवाय ये भी सब गुरु ठहिरे और अरेकों में गुरु के अर्थ की कल्पना होना कुछ दोषभी नहीं क्योंकि जिस मान्यता और पूज्यता का पण्ड्यता के निमित्तसे गुरुशब्दकी प्रवृत्ति ठहिराई गई वह मान्यता और पूज्यता का निमित्त इन सबही में कुछ न कुछ लगा हुआ है बल्कि उस मान्यता का निमित्तत्व योगीश्वर ने आचार मर्यादामें दर्शाया भी है कि (स्तेमान्प्रायथा पूर्वगैभ्यो मातागरी यसी) इतने जो गिनाये सोसभी माननीय हैं तथापि जिससे जो पहिले कहा वह उस से अधिक मान्य होता है और माता इन सबसे बड़ी पूजनीय है—इसमें प्रथमसभी को मान्य कहिकर जाता उनसे भी बड़ी ठहिराई—और (उपाध्यायाद्गशाचार्यं आचार्यां शां शर्तपिता) जैसा यह वचन है कि उपाध्याय से दश गुणा आचार्य बडा और आचार्यों में पिता सो गुना सो इस कथन के अनुसार उपाध्याय से अधिक आचार्य है तिससे भी पिता अतिशय बडा इससे पिताकोही यदि मुख्य कहा चाहै सोन

कहिना चाहिये क्योंकि ऐसी अतिशय मुख्यता आचार्यमें भी कही है यथा (उत्पादकब्रह्मदारोगरीयाचब्रह्मदःपिता) किंतु देह उत्पन्न करनेवाला और वेद विद्या देकर देह को योग्यता देनेवाला ये दोनों पिता होते हैं तिनमें वेदकार देनेवाला पिता श्रेष्ठ है—तिससे पिता और आचार्य दोनों में वरावरी के सिवाय कोई विशेष लक्षणा किसी एक में न दहिग—वस्तु गौतमने भी आचार्यही को श्रेष्ठ गुरु कहा है (आचार्यः श्रेयोगुरुणां) कि सब तरह के गुरुओं में आचार्य गुरु श्रेष्ठ है—और भी यह तर्क है कि जो ऐसे वचनों के अनुसार अतिशयित्व से ही पिता को मुख्यता बताते ही तो फिर (सहस्रसिद्धि वचनान्मातुरेव गुरुत्वंव्याप्त) जिस वचन में ऊपर पिता को गौतमना कहा था उसके श्रेष्ठ पाठ में साता को हजार गुराणा कहा है तिससे पिता को भी छोड़ कर साताको ही मुख्य गुरु मानना चाहिये—भला यह भी कोई नियम नहीं दहिग किसी वचनमें कोई बड़ा किसीमें कोई तिससे जो जो गुरु कहे गये सो सबही गुरु हैं यह मानिके ऐसी व्यवस्था लगानी चाहिये कि इन सबही की पत्नियों का रसन करना गुरु दारगरसन माना जाय तो यह व्यवस्था निर्दूषित हो जाय—सुनो ये सब तर्क तुम्हारी ठीक हैं तथापि गर्भ में बीज धरना यह सबसे बड़ी बात है इसीलिये (निथेकादौ चिकर्माणि) इत्यादि मनुका वचन जो हम लिख चुके उसमें मनुने बीजबोने वाले पिताका ही गुरुत्व प्रतिपादन किया है और किसी का अधिकारही उसमें नहीं पहुँचा है—और तुमने जो व्यास और गौतमके वचन ऊपर सुनाये सो गुरुओंकी सेवा पूजा आदि करने की विशेषता से पिता से उपरालू गुरुओं की स्तुति प्रशंसा पर आसक्त है ॥ तिससे गर्भाधानकी प्रधानता द्वारा पिताका गुरुत्व दर्शानेवाली मनुके वचन से यह ठीकभया कि पिताही मुख्यगुरु है औरोंका असुल्य गुरु समझना—इतीहेतुसे—बसियने (आचार्यं पुत्राश्रयभार्यासुचैवं इत्याचार्यदारैर्ष्वार्तिदेशिकं गुरुतल्पप्रायश्चित्तबुद्धं) इस वचनमें सब कहि कर आचार्यकी स्त्रियाँ भोग करने पर गुरुतल्प प्रायश्चित्तका अतिदेश उतार दिया है—तैसे ही जातकरा आदि ग्रन्थकारोंने भी (आचार्यां देस्तुभार्यां सुगुरुतल्प व्रतचरेत) इत्यादि वचनों से कहा है कि आचार्य आदिको भार्याओं से संशय करने वाला गुरुतल्प का व्रत करे कि जैसा मुख्य पितारूपी गुरु को स्त्रियाँ भोगने वालेको उपदेश किया गया—अब सोची कि जब—ऐसी दशापर भी आचार्य आदिको मुख्य गुरु समझा जाय तो बही प्रायश्चित्त इसमें पहुँचे जो मुख्य गुरु सब्धी उपदेश किया गया है। तिससे यह दौल खडा होता है कि आचार्य आदि के नाम पर अति देश जो उतारा गया सो अनर्थक दहिरे—इन्हीं सब कारणों से साफ

साफ पिता की ही स्त्रियां कहिकर नियम बाँधा है (पितृवरान्प्रमासद्गमात्प्रवर्धनं नराधमः) कि जो कोई अधम नर निज माता की छोड़ि पिता की अन्य दाराओं पर वर्द्धिके इत्यादि० सो गुरुदार गामी कहाता है—सेसाही—यद्विंशन्मत्त में कहा है कि (पितृभार्यातुविज्ञाय स्वर्गाद्योऽविगच्छति) पिता की स्वर्गाभार्या की जानि के अविगमन करे इत्यादि० सो गुरुदार गामी होता है— इन वचनोंसेभी निपेक गर्भाधान करने वाला पिताही मुख्य गुरु ठहिरा ॥ ० ॥ यह गुरुत्व जो पिता पर आरुढ हुआ सो चारों वर्गों में अविशिष्ट एकसाँ समुभूना क्योंकि गर्भाधान सभी वर्गों में एकसाँ होता है— इन कारणों से (सर्वप्रो गुरुरुच्यते) गर्भाधान वाले मनु के वचन मे यह विप्र शब्द जो आयाथा सो भी एक मुख्यता का उपलक्षण है ॥ तिससे पिताकी पत्नी गमन करनाही महापातक है (यहाँ निज जननी से उपरालू विमाता आदि का चर्चा है इसी लिये माता शब्द नहीं कहा पिता की पत्नी शब्द कहा गया) गमनका अर्थ भी चरम धातुके विसर्गंतक सिद्ध होता है कि जिमने वीर्य भी गिराया हो—इसी हेतुसे यह नियम है कि वीर्यपात से पहिले जो लौटि परा हो तो महापातक नहीं सिद्ध होता है अर्थात् पातक सिद्ध होता है तिसके भी दो भेद हैं कि एक तो इच्छासहित पास पहुँचा दूसरे जो इच्छा विना पास जा पहुँचा हो इसभेदके अनुसार आगे इसी अधिकोक्तिमें बारह और छेवर्यके दो जुदे प्रायश्चित्त कहेजायेंगे मरणांतिक नहीं अत्रोक्तप्रायश्चिन्नानांविभागः—मुख्य गुरु जो पूर्वोक्तव्यवस्था से पिता ठहिरा तिसकी अन्य पत्नी में जानिकर वीर्य सींचने से महापातक होता है उस महापातक में वही दोनो प्रायश्चित्त सूचित हुयेहैं कि जिनको इसी दोसौउनस-दि २५६ मूलश्लोक से कहिबुकेदोनों मरणांतिक विधान हैं दोमें से कोई एक अनुष्ठान कियाजाय—कदाचिद्विनाजाने घोखा आदि से वीर्यपात किया हो तिसके लिये मरणांतिक नहीं किन्तु बारह वर्यकी व्रतचर्या है सो आगे बढिकर शंखजीके वचन में देखो— परन्तु उद जननी में अज्ञानता आदि धोखे से भी वीर्यपात करने पर वही दोनो मरणांतिक प्रायश्चित्त है—किन्तु जननी की सौति जो पिता और जननी की स्वर्गा हो या केवल पिता की स्वर्गा हो या केवल जननी की स्वर्गा हो या जननी से उत्तम वर्गा की हो या पिता से भी उत्तम वर्गा की हो तिसमें जानि के वा इच्छासे वीर्यपात करनेपर वही दोनो मरणांतिक प्रायश्चित्त हैं (अर्थात् नीचेवर्गा की विमाता के भोग मध्ये अगिली अधिकोक्ति में दयवस्था कही जायेंगी) यहाँ केवल जननी और स्वर्गा तथा उत्तमवर्गा सौतिका प्रसंगहै इसी मध्ये यद्विंशन्मत्त

का यह वचन है कि (पितृभार्यातुविज्ञायसवर्णांयोऽधिगच्छतिजननीचाप्यविज्ञाय
 नामृतःशुद्धिमाप्नुयात्) पिता की भार्या सवर्णां को जानिके जो गमन करता है या
 जननी को विनाजाने से सरजाने विना शुद्धि नहीं पाताहै ॥ कदाचित्त कोई जननी
 में इच्छासाथ गमन करे तिसके लिये वशिष्ठ का दर्शाया प्रायश्चित्त है—यथा=नि-
 प्कालकोघृताभ्यक्तोगोमयारिननापादप्रभृत्यास्मानसवदाहयेत्=अर्थात्—सबदेहकेरोम
 और बाल मुड़ाये धीलगाये गऊ के गोवस्वाले कंडों की अरिन के समूह में पैरों की
 आदि लेकर थोड़ा थोड़ा देह क्रमसे सब जलावे= जननी या जननीकी सौति सवर्णा
 या उत्तम वर्णा में कामना के विना भी ब्राह्मण धोरसे अभ्यास गमन होने में यही
 प्रायश्चित्त है जो वशिष्ठ ने कहा (सवर्णा और जननी दोनों को श्रेय प्रायश्चित्त जो
 सरर्णांतिक नहींहैं सो आगे शंखको वचन में देखना) और सवर्णा विमाता जो व्य-
 भिचारिणी हो तिसके मध्ये अगिली अधिकोक्त के प्रारम्भसे देखो ॥ शंका क्योंजी
 (मातुःसपत्नीभिर्गनीमाचार्यतनयांतथाआचार्यपत्नींस्वसृतांगच्छंस्तुशुरुत्तल्पगः) माता
 की सौति=वहिन+आचार्य की बेटी • आचार्य की पत्नी • अपनी बेटी • इनकी गमन
 करते हुये भी शुरुत्तल्पग होताहै—इस वचनमें माताकी सौति पर भी अतिदेश उतारा
 गयाहै तिससे सौति के गमन में उपदेशक प्रायश्चित्त ठीक नहीं समझाजाताहै=
 सुनी अभी जो यद्विशंभतका वचन लिखा गया है उस में माताकी सौति सवर्णा
 कही तिससे इस वचन में हीन वर्णा सौतिका अभिप्राय ठीकरा तिसपर अतिदेशका
 उतारना भी विरोध नहींहै ॥ ० ॥ ये प्रायश्चित्त और नियम जो कुछ कहे गये सो
 सब मुख्यही पुत्रपर आरुढ है क्योंकि और जो अनेक तरह के दनाये हुये नकली पुत्र
 होतेहैं सो केवल पुत्रोवाले कार्यही करनेका अनुकूल्य होतेहैं ठीक ठीक पुत्रत्व उत्तम
 नहीं होता=यथाहमनुः=क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादशयथोदितान् पुत्रप्रतिनिधिनाहुः
 क्रियालोपान्मनीयिणा=अर्थात्—क्षेत्रजआदि जो ग्यारहपुत्र गिनाये तिनकी मनीयों
 लोग पुत्रके प्रतिनिधि इसलिये कहिते हैं कि संसारी कामधंधे लोप न होजाय ॥ ० ॥
 माता और विमाता आदि जो पिता की पत्नी ऊपर कही गईं तिनमें जो स्त्री पुरुष
 दोनोंकी चाहना से परस्पर संगम हुआ हो तहाँ सकही प्रायश्चित्त है जो इसी दोसां
 उनसदि २५६ मूल श्लोक में पूर्वाह्न से कहा गया=जहाँ पुरुष ने आपही उत्साह
 दिलाकर संगम होने पर स्त्री की उताख क्रिया हो तहाँ भी सक प्रायश्चित्त है जो
 इसी दोसां उनसदि के उत्तरार्द्ध से कहा गया क्योंकि पाप की चाहना में अधिकता
 होनेसे प्रायश्चित्तका बहापन होताहै=जहाँ=स्त्रीने स्वतः पुरुष की उत्साह देकर सं-

गम किया हो तहाँ ऐसे पुरुषको मनु वचनके अनुसार दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त देना चाहिये यथाह मनुः (गुरुतल्पोऽभिभाष्यैतस्तत्रैस्त्वप्याद्योमये सुमींश्चलतीं वाश्लिष्यमृत्युनासविशुद्यति) अर्थात् गुरुतल्प गामी अपनापाप सुनाइ के तपे हुये लोहेके शयन पर सोवै या दूसरा यह कि लोहेकी बनी खी जड़ती हुईको लिपटाइ के मोतही से वह शुद्ध होताहै) इन दोमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त जो मौजूद दगाके अनुसार जानमानों के विचार में आवै सो कराया जाय ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक जुबोहै कि जैसा शंखने द्वादश वार्षिक प्रायश्चित्त कहाहै=अवःशायी जराधारी प-
 र्णामलफलाशनः एककालंसमन्नीयाद्वयैतुद्वादशोगते रुक्मस्तेवीसुरापप्रचव्रह्महागुरुत ल्पगः व्रतेनैतेशुद्धान्तिमहापातकिनस्तिवमे=अर्थात्- धरती में लटे जरा खवावै पत्ते मूल फल भोजनकरै सोभी नियमसे एकहीवार भोजन करै अन्न आदि कुछ न खाय इस रीतिसे बारहवां वर्ष वीति जानेपर इस व्रतसे ये सब इतने महापातकी शुद्ध होते हैं कि सोना चुरानेवाला • सुरापानेवाला • ब्रह्म इत्यारा • गुरुदारगामी भी—सो यह शंखोक्त सर्वसामान्य प्रायश्चित्त भी यहां गुरुदारगामी के लिये उस दगापर विचा-
 रना कि समवर्षा या उत्तम वर्षा पिता की भार्या इच्छा बिना किसी धोखे आदि से भोगी हो—इसीमें जो कामना से संगम करनेपर उताह होकर वीर्य सींचने से पहिले लौटि गयाहो तिसकेलिये यही प्रायश्चित्त आधा किन्तु छैवर्षका विचारना—और इसीमें जो इच्छा बिना संगम करने पर उताह होकर वीर्यपात से पहिले लौटि पा हो तिसके लिये चौथाई किन्तु तीति वर्षका यही प्रायश्चित्त देना चाहिये=और= यही प्रायश्चित्त पूरा बारह वर्षका उसको देना चाहिये जो अपनी खास जननी मे कामनासे उताह होकर वीर्यपात से पहिले घूमि गयाहो • यदि उसी जननी में कामना के बिना उताह होकर वीर्यपात से पहिले घूमिगया हो तिसके लिये यही प्रायश्चित्त आधा छै वर्षका देना चाहिये इत्यादि कुछ और भी जैसी ओछी दगा हो तैसी औंछी अवधि चाहिये सो सब अगिली अतिकीर्ति में व्योरेवार कल्पना करोजायगी वहिक पिताकी सवर्षा भार्या जो व्यभिचारिणी हो तिसके भी संगम का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ ० ॥ जो कि संवर्तने वीर्य सींचने से पहिले लौटिजाने मध्ये बहुत छौरा प्रायश्चित्त कहाहै कि (पितृदारान्उमारुह्यमाह्ववर्जनराधमः इत्यादिनासमारोहण साधेतप्तहाच्छूउक्तःउहीनवर्षापितृदारैर्युरेतःसेकादर्वाग्रदृश्यः) अर्थात्—कोई अवमनर सातासे उपरालू पिताकी दाराओं पर चढ़ि कर फिरजाय इत्यादि पूरे वचन से चढ़ने मात्र में तप्त छच्छू व्रत करना कहाजिसकी साधना सिर्फ बारहदिनमें होतीहै—सो यह

प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने पिता से झीने वर्गावाली भार्याओंमें संगम करनेपर उताख होकर वीर्यपातसे पहिले छोड़िदिया किन्तु पुरा संगम न करने पाया हो—ये सब नियम व्यौरवार अगिली अधिकोक्ति में क्षत्रियां बनेनी शूद्रा जो पितासे ओछे वर्गाकी विमाता हों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त पूरे और ओछे भोगभेद से तथैवइच्छा और अनिच्छा वा परस्पर इच्छाके भेदसे भी कहे जायेंगे—अर्थात् गुरु चारा भोग संबंधी पातक भेद अनेक अभी उपरालहैं कि जिनके प्रायश्चित्त इस अधिकोक्ति में नहीं कहे सो सबअगिली में दर्शावेंगे ॥ २५६ ॥

(गुरुतल्पातिदेशादिप्रायश्चित्तानि)

प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रं तमावागुरुतल्पगः । चान्द्रायणवात्रीन्मास्तानभ्यसेदसंहिताम् २६० ॥

अर्थः—अथवा गुरुतल्पगामी कृच्छ्रप्राजापत्य तीन वर्ष करै ॥ या तीन महीना चान्द्रायण करै और वेदकी संहिता भी अभ्यास करै=अर्थात्—इस ग्रन्थ के अन्तमें सभी अनुष्ठानोके स्वरूप कहे जायेंगे तहां कृच्छ्रप्राजापत्य नामका व्रतभी कहाजाय गा तिसको तीनवर्ष करै (अत्र समाः इत्यमराचार्यसतेन वर्षवहुत्वज्ञेयः) या तीन महीनामें तीन चान्द्रायण व्रत यथोक्त विधिसे पूरे करै उन्हें तीन महीना तक वेदकी संहिता को बारम्बार पाठ करतारहै किन्तु नियत महीनामें पाठकी जितनी आठति होसके सो निरन्तर करै तब शुद्धहोय • विशेष्य व्यौरा अधिकोक्तिमें देखो ॥ २६० ॥

२६० अधिकोक्तिः (इस प्रकारगामें सर्वत्र गुरुशब्द को पिताही समझना) यह तीनवर्षका प्राजापत्यभी उसकेलिये विचारना जो ब्राह्मणकीका पत्र होकर पिताकी शूद्रापत्नी इच्छा सहित भोगे किन्तु अनिच्छासे धोखा आदि में वीर्यपात करने पर एकही वर्षका प्रायश्चित्तहै सो आगे बढ़िकर मनु और सुमन्तु के वचनों से देखना काँटोके वृक्ष वाली शाखा बगल में दाविके सीडना आदि कहेगे तथैव उसके लिये विचारना जो ब्राह्मणका पिताकी बनेनी भार्यामें धोखेसे एकबार गमनकरै (आगेइधी अधिकोक्तिके वीचमें (गमनेगुरुभार्यायाःपितृभार्यागमेतथा) यह वृद्धमनुका वचन देखो=उत्तरार्द्ध मूलप्रलोकसे तीन महीनेका उसके लिये विचारना जो पिताकी सवणापत्नी व्यभिचारिणीहो तिसको बिना जाने धोखामें गमनकरै—जो इसी सवणा व्यभिचारिणी मे इच्छा साथ चाँइके गमन करै तिसके लिये उशना का निर्मित किया प्रायश्चित्त देखै=यथा=गुरुतल्पाभिगामी संवत्सरं ब्रह्मइत्याव्रत यरामासान्वा तत्रकृच्छ्रं चरेत्=अर्थात्—गुरुतल्पगामी एकवर्ष भर ब्रह्म इत्या मे कहा व्रत करै या

एक हमाही भर तप्तकचक्र करै ॥०॥ जिसेने आप ब्राह्मणोंका पुत्रहोते पिताकी स-
 विद्या भार्या जानिवृत्ति गमनकरीहो तिसके लिये दोसौ बत्तीस मूलश्लोक में उतारे
 हुये श्रुतत्वके अतिदेश हेतुसे बारहवर्षका पौना नौवर्ष प्रायश्चित्त विचारना होगा
 (इन बारहवर्षों का नियम इससे पहिली अधिकोक्ति के अन्तमें लिखि-चुके तहां
 देखो अत्रःश्रायी जरावारी इत्यादि शंखके वचनसे) उसीकी पौनी नौ वर्षे यहां स-
 मझनी-इसपर एक दलीलहै कि यहांपर सविद्या भार्याके गमनमध्ये नौवर्षे नियत
 करीगई और (मातृसंपत्तीभिगिनीमाचार्यतनयांतया) इस दोसौ बत्तीसके श्लोक में
 माताकी सौति सामान्य भावसे कहीहै तिसका हेतु यहां सविद्या सौति पर-घटाया
 गया क्या कारणहै सो कहो-सुनो इस दोसौ बत्तीस वाले श्लोक में सामान्य वचन
 होनेपर भी सवर्णां गुरुभार्याका विषय नहीं मानिसक्ते हैं क्योंकि अभी इससे पहिली
 अधिकोक्तिमें सवर्णां गुरुभार्याके इच्छा सहित गमन मध्ये सरणांतिक प्रायश्चित्त
 कश्चित्तुके और कामनाको बिना गमनहोनेमध्ये शंख वचनसे बारहवर्षका कश्चित्तुके
 तिससे दोसौ बत्तीस मूलश्लोक में जो माताकी सौति कही सो सवी आदि हीन वर्णा
 की समझनी कि जिसके भोगमध्ये बारहवर्षोंका पौना प्रायश्चित्त कहा (इस बात
 का निराय पहिली अधिकोक्तिमें भी निप्रदिचुका तहां शंका वाले पाठकी देखो)
 और जो इसी सविद्या विमातामें कामनासे बारन्वार का अभ्यास करै तिसके लिये
 करावस्युतिके अनुसार सरणांतिक प्रायश्चित्त चाहिये=यथाह करावः=मत्यागत्वा
 शुभेभार्यापुनःसवसुतां द्विजः अडाभ्यारहितं लिङ्गमुत्कृत्य समृतशुचिः=अर्थात् ब्राह्मण
 अपने पिताकी भार्या जो सवी की बेटीहो तिसको दुवार इच्छा सहित गमन करै
 सो पहिले दोनो अंडिकाटे फिर लिंग काटे तब मरनेसे शुद्धहोय (यद्यपि इस वचन
 में ऐसा अर्थभी लगताहै कि पिताकी सवर्णां भार्याको एकवार या पिताकी सविद्या
 भार्याको अनेक बार जानिवृत्ति गमनकरै सो इसमें भी पूर्वोक्त नियमसे विरोधनहीं
 है क्योंकि सवर्णांके मध्ये लिंग काटना पहिले भी कहिचुके है सो एकवार में सम-
 झना जो सविद्याके मध्ये कहा सो अनेकवारके अभ्यासमें समझना और इसीसे प्र-
 योजन यहाँ विशेषहै) इसी सविद्या विमाताकी अज्ञानतासे एकवार वा अनेकवार
 भोगने मध्ये जो प्रायश्चित्त है सो आगे इसी अधिकोक्ति में यमके और जातुकरां
 के वचनसे जुदे दोनोकी देखो ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थामें यह नियम है कि जब कोइ
 पातकी लिखे प्रायश्चित्तकी न करना चाहै तत्र उसा प्रायश्चित्तके बदले यही दंडहै
 कि जैसा दोसौ इकतिस और दोसौ बत्तीस और तैंतीस मूलश्लोकों में योगीश्वर ने

कहा है (छिद्वालिंगवधस्तस्यसकामायाःस्त्रियाश्चपि) कि उन श्लोकों वाला कोई अपराधी यदि प्रायश्चित्त करना अस्वीकार करे तो भी उसका लिंगकारिके प्रार्थान्त वध क्रियाजाय गृही दंड और यही प्रायश्चित्त है (यदि स्त्रीने अपनी ओरसे उत्साह देना आदि कामना खड़ी करीहो या दोनोंकी परस्पर इच्छासे संगम हुआहो तहां उस स्त्री का भी योनिच्छेदन पूर्वक वधकिया जाय अर्थात् जहां पुरुष जोराबरीसे स्त्री की इच्छा बिना कामकरे तहां स्त्री का वध नहीं चाहिये ॥ ० ॥ जहां कहीं पिता के बनेनी भार्याहो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र इच्छा सहित भोगे तहां छेवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये—इसी आशयसे यह स्मृत्यन्तर बचनहै कि—ब्राह्मणीपुत्रस्यस्त्रिया यांमातरिरामनेपादहान्याद्वादशवार्यिकमेवमन्यवरास्त्रिपि—अर्थात्—ब्राह्मणीकापुत्र अपनी विमाता स्त्रिया में जो गमन करे तिसको चौथाई कम करिके बारह वर्ष वाला जो वर्ष का प्रायश्चित्त है (मरणांतिक नहीं) ऐसेही अन्य वर्णों की विमाता में समझना कि ब्राह्मणी के पुत्र ने पिता की बनेनी भार्या भोगी हो तहां दो चौथाई कमी करिके छे वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय • ऐसेही ब्राह्मण पिता की शूद्रा भार्या हो तिसको ब्राह्मणी का पुत्र भोगे तहां तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कराया जाय—यहां तक ब्राह्मणी के पुत्र की व्यवस्था पूरी होचुकी • अब स्त्रिया आदि के पुत्रों की व्यवस्था जुदी जुदी कही जायगी • तिसके मध्ये सर्वत्र ग्रहयाद राखी कि पहिली अधिकोक्ति में देठ जननी और सबर्णा विमाता की व्यवस्था जो कहिचुकी सो सबके लिये चारों घरों में बराबर है दृष्टान्त जैसे सती पिता के दूसरी क्षत्राणी भार्या हो तो वह सबर्णा विमाताहुई या शूद्र पिताके दूसरीशूद्रा हो तो सबर्णा विमाता हुई या वैश्य पिता के दूसरी बनेनी हो तो पुत्रों की सबर्णा विमाता हुई इसी दृष्टांत से अनुलोम प्रतिलोम वर्यासकर जातिधर्मों में भी समझना यह चर्चा सक याद रखने के प्रसंग से किया गया ॥ ० ॥ जैसी ऊपर ब्राह्मणी के पुत्रकी व्यवस्था कही तैसे जो स्त्रिया साता का पुत्र होकर ब्राह्मण पिताकी बनेनी भार्या भोगे तिसको नौवर्ष का प्रायश्चित्त विचारना • जो वही पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की शूद्रा भार्या भोगे तिसको ऋः वर्षका प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इसी न्याय के अनुसार बनेनी के पुत्र की व्यवस्था है कि जो बनेनी का पुत्र होकर अपने ब्राह्मण पिताकी शूद्रा भार्या भोगे तिसको भी नौवर्षका प्रायश्चित्त जानो—परन्तु जो वही बनेनी का पुत्र अपने ब्राह्मण पिता की दूसरी भार्या बनेनीकी वास्वार के अस्थान पूर्व इच्छा सहित भोगे तिसको मरणांतिक प्रायश्चित्त है—तदाह लौगाक्षिः—गुरो

भार्यातयोर्वैश्यां, सत्याः। च्छेत्पुनःपुनः, लिंगाग्रं देवयत्वात्, ततः शब्देऽसकित्त्व्यात् = अर्थात्-जो पिता की बनेनी भार्याको जानि ब्रूमि बारम्बार भोगों सोलिंगका समग्र भाग कटवाइके उस पापसे विशुद्ध होयः (यही व्यवस्था, अनंतर उक्तः क्षत्रियां पुत्र में भी जोड़िलेनी कि, जो क्षत्रिया का पुत्र अपने ब्राह्मण पिताकी दूसरी भार्या क्षत्रिया को जानिब्रूमि बारम्बार भोगों सोभी लिंग कटाय के शुद्ध होय, और यही व्यवस्था इसी रीति से शूद्रों के पुत्र में भी जोड़िलेनी) और वही बनेनी का पुत्र जो ब्राह्मण पिता की शूद्रा भार्याको जानि ब्रूमि कामनासे बारम्बार भोगों तिसके लिये बारह वर्षों का प्रायश्चित्त है कि जैसे उपमन्यु ने कहा=पुनःशुद्ध्यां, गुरोर्गत्वात्तुद्याविप्रः समाहितः, ब्रह्मचर्यसदुत्पत्साः। सचरेत्तद्वाद्यदिदकम=अर्थात्-बारम्बार पिता की शूद्रा भार्यामें ज्ञान सीद्ध गमन करिके वह बारहवर्षों का ब्रह्मचर्य अच्छाचित्तलगा कर साथै तब शरीर उतका शुद्ध होय (यद्यपि इस वचन में कर्ता का उद्देशक विप्र शब्द है तथापि यहाँ वैश्य का प्रयोजन है क्योंकि ब्राह्मण के लिये इसी २६० के मूल श्लोक द्वारा तीनिही वर्ग नियत होचुके हैं तिससे) और बनेनी का पुत्र होकर पिता की सप्राणी भार्या भोगों तिसका नियम पहिली अधिकोक्ति में होचुका है कि सर्वथा या उत्तमवर्गा विमाता भोगों तिसको सरणीतिक प्रायश्चित्तभी उसी अधिकोक्ति में लिखिचुके ॥०॥ ब्राह्मणों का पुत्र होकर जो क्षत्रिया विमाता में अज्ञानतासे धोखेमेंगमनकरै तिसकेलिये यमकाकहा प्रायश्चित्तहै=यथाहयमः=का ले२४मेवाभंजानो ब्रह्मचारीसदाव्रती स्थानासनाभ्यां विचरं विरहोभ्युपयत्नः अथः शायीश्चिर्भर्ष्येस्तदपोहेतपातकम्=अर्थात्-तीनिवर्षतक चारघड़ीदिनसेरहेपरआठवां समय होता है तिसमें भोजन का एक बार नियम राखै इन्द्रियों की जीति कर ब्रह्मचारी बने और ब्रह्मचर्यके व्रतभी साथै और स्थान तथा आसन इन दोनों को छोड़िके विचरते हुये दिन में त्रिकाल स्नान करते हुये धरती में सोवै तब तीनि वर्षों से वह पातक दूर होय=कदाचित्त=इसी ने सक्रवार से उपराल दुबारा आदि अज्ञानता से ही गमन कियाहो तिसके लिये जातकरा का कहा प्रायश्चित्त विचारना=यथाह जातकराः=गुरोःक्षत्रसुताभार्यापुनर्गत्वात्त्वकामतः अंडमात्रं समुत्कृत्य शुद्धोऽजीवन्मृतोऽपिवा=अर्थात्-पिता की भार्या जो सत्री की बेटी हो तिसको एक बार से उपराल दुबारा आदि विना चाहे गमन करै सो अंड पर्यंत मात्र लिंग सूत्र कारिके अर्थात् आंडों को छोड़ि सिर्फ आंडों के ऊपर से लिंग मात्र कारिके मरजाय या जीवता रहिजाय दोनों दशा में शुद्ध होजाता है-इस वचन में नियत सर जाना नहीं कहा

ने उत्साह देकर पुरुष को मोहित किया हो तहां पुरुष अति क्लृप्त व्रत करे • ये सब उसी दशामें समझने जहां संगम न हुआ हो किन्तु वीर्य सींचने से पहिले लौटि परे हैं • इन प्रायश्चित्तोंमें कोई महीना आदिकी अवधि नहीं कही तिससे इनकी वही अवधि समझनी कि जितने दिनों में एक अनुष्ठान पूरा होता हो जैसा चान्द्रायण एक महीना भरमें होता है क्लृप्त अतिक्लृप्त ये वारह दिनमें होते हैं ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भायमें जानि ब्रूमि संगम करने पर कामनासे उताह होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि गया हो तिसके लिये भी कराव मुनिका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह करावः=तप्तक्लृप्तं पराक्चतया सांतपनंशुरोः भार्यावैश्यांसकृद्गन्वावुद्ध्यासासच रेतद्विजः=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी वैश्याभार्या के पास एक वार जान सहित जाइके तप्तक्लृप्त या पराक् या सांतपन व्रतकरे—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जहां पुरुषने आपही उत्साह दिलाया हो तहां पराक् व्रतकरे जिसकी स्त्रीने उत्साह देकर मोहित किया हो सो सांतपन व्रतकरे जहां दोनोने परस्पर प्रीति उभारी हो तहां पुरुष तप्तक्लृप्त व्रतकरे • ये सब उसी दशापर आरुबहैं कि संगम न होने पाया हो वीर्य सींचनेसे पहिले जुदे हो जायँ=इसी प्रकार—जो कामना के बिना ही न जानिकर संगम करनेपर उताह होकर वीर्य सींचनेसे पहिले फिर जाय तिसके लिये प्रजापतिका वचन है—यथाह प्रजापतिः=पंचरात्रतुनाश्रीयात्सप्रायैवात्तथैवच वैश्याभार्यांशुरोर्गत्वा सकृदज्ञानतोद्विजः=अर्थात्—ब्राह्मण निज पिताकी बनेनी भार्या पास एकवार बिना जानेबुझे जाइके निपट निराहार व्रत पांच या सात या आठदिन करे—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था है कि जिसकी स्त्रीने उत्साह दिया हो सो पांच निराहार करे जहां दोनो औरसे परस्पर प्रीति उठी हो तहां पुरुष सात निराहार करे जिस पुरुष ने स्त्री को उत्साह दिया हो सो आठदिन तक निरन्तर निराहार करे • ये सब उसी दशापरहैं कि संगम न हुआ हो वीर्य सींचनेसे पहिले घूमि जायँ ॥ ० ॥ जो ब्राह्मण अपने पिता की शूद्री भायमें जानि ब्रूमि कामनासे उताह होकर वीर्यसींचनेसे पहिले विवालि जाय तिसके लिये जाबालिमुनिका वचन है—यथा=अतिक्लृप्तं तप्तक्लृप्तं पराक्चतथैवच शुरोःशूद्रांसकृद्गन्वावुद्ध्या विप्रःसमाचरेत=अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिता की शूद्रीभार्या पास जानिब्रूमि कामनासे एकवार जाइके अतिक्लृप्त या क्लृप्त या पराक् व्रत आचरे—इसमें भी इसरीतिसे व्यवस्था है कि जिसकी स्त्रीने मोहित किया हो सो अतिक्लृप्त करे जहां दोनोकी इच्छा से प्रीति उठी हो तहां पुरुष तप्तक्लृप्त करे जिस पुरुषने स्त्रीकी आपही रागत दिलाइ हो सो पराक् नासा व्रतकरे • ये सब उसी

दशापर समझने कि जहां संगम न होनेपायाहो—इसीप्रकार—जहाँ कामनाके बिना संगम करनेपर उताह्र होकर वीर्य सींचनेसे पहिले घृमिगयाहो तहां दीर्घतमस् नाम ऋयिका वचनहै सो देखो=यथा=प्राजापत्यंसांतपनंसप्तरात्रोपवासकम गुरोःशूद्र्यांस कृद्गत्वाचरेद्विप्रःसमाहितः=अर्थात्—ब्राह्मरा अपने पिताकी शूद्री भार्या में कामना के बिना एकबार पहुँचिके प्राजापत्य करै या सांतपन करै या सात दिन निराहार उपवास करै—इसमें यह व्यवस्था है कि जिस पुरुष को स्त्रीने उत्साह देकर मोहित कियाहो सो प्राजापत्य करै जहां दोनो ओरसे परस्पर प्रीति उदीहो तहां पुरुष सांतपन व्रतकरै जिस पुरुषने स्त्री को आपही उत्साह दिया हो सो सात दिन निराहार उपवास करै•ये सब उसी दशापर होसकतेहैं कि जहां संगम न होने पाया हो ॥ ० ॥ इन्हीं प्रकारोंसे और भी जो स्मृतियोंके वचन उपरालु मिलें तिनकी भी विषयभेदा व्यवस्था ऊहा करनी चाहिये=और=पुरुषोंकी तरह स्त्रियों को भी महापातक वरावर है अर्थात् जिन स्त्रियोंके साथ जिन पुरुषोंको महापातक होना कहा उनपुरुषों के साथ उन स्त्रियोंकी भी वरावर महापातक लगता है=तथाच कात्यायनः=स्यदोष प्रचशद्दिश्व पतितानामुदाहता स्त्रीणामपिप्रसक्ताना मेयसर्वविधिःस्मृतः=अर्थात्—यह दोष और उस दोषकी शुद्धि भी पतितों की कही, और यही विधि उनमें फँसी हुई स्त्रियोंकी भी होतीहै—इस नियमसे कि जो स्त्रियां काम की चाहना से उताह्र होकर परे महापापकी दशातक पहुँचीहो तिनको भी सरगांतिक प्रायश्चित्त वही है कि जो पुरुषको कहिचुके इसमें कुछ भेद नहींहै—इसीलिये योगीश्वरने दोसौवत्तीस तेंतीस श्लोकों में (छित्वालिंगवधस्तस्य सकामायाःस्त्रियाग्रपि) पहिले पुरुष को वध प्रायश्चित्त कहिके कामातुर स्त्रियोंकीभी वही सरगांतिक विधिकहीहै ॥ ० ॥ जो स्त्री कामातुर होने बिना अनिच्छा से इन पुरुषों के फंद मे आगई हो तिसके लिये सरगांतिक प्रायश्चित्त नहीं है परन्तु मनु का कहा नियम है=यथा= एतदेव व्रतंकार्यथोयित्सुपतितास्वपीति द्वादशवार्षिकमेवाहं कल्पनीयम्=अर्थात्—यही व्रत बारह वर्ष का पतित स्त्रियों को भी कराना चाहिये इस नियम से बारह वर्ष का आधा ऋः वर्य कल्पना किया जाय (क्योंकि स्त्री और बालक बूढ़े आदिको आधा व्रत कराने का नियम पहिले दृढ होचुका है) यह सब नियम यहां तक मुख्य महापातकपर कहा गया जिसका लक्षणा २२७ दोसो सत्ताइस मूल श्लोकमें गुरुतल्प गामी कहा गयाथा ॥०॥ उसके बाद दोसो इकात्तिस २३१ मूल श्लोकमें मित्र की भार्या कुमारी कन्या आदि स्त्रियों मे गमन करना भी गुरुतल्प के समान पाप

किन्तु देवेंद्रों से जीवते ब्रह्मजानेका भी विकल्पहै तिससे आंडोंका जड़से काटना भी नहीं कहा (इसी क्षत्रिया विमाता को जानि ब्रह्मि इच्छा सहित गमन करने की दोनोदशा किन्तु एकबार या अनेक बार मध्ये दोनो प्रायश्चित्त इसी अतिकोक्ति की आदि में कहि चुके—और फिर भी आगे इसी अतिकोक्ति में उसका प्रायश्चित्त कहेंगे जो क्षत्रिया विमाता में गमन करने पर उताह होकर वीर्य सींचे विना लोडिया हो ॥०॥ एवं पिता की बनेनी भार्यामें ब्राह्मणी का पुत्र होकर जो विना इच्छा के बोखा से गमनकरे तिसकी लिये याज्ञवल्क्यजी ने जो इसी दोसोसाटि मूल श्लोक पर्वार्धसे त्रैवार्यिक प्राजापत्य कहा सो कारवावा चाहिये और यद्गीप्रमारा वृद्ध मनुके वचनसे मिलताहै = तथा च वृद्धमनुः = गमने गुरुभार्यायाः पितृभार्यागमेतया अद्वयमकामात् कृच्छ्रं नित्यसमाचरेत्—अर्थात्—गुरुकी भार्या या पिताकी दूसरी भार्या होनेवाली की इच्छा विना भोगे सो तीनिवर्षतक नित्यं प्रति कृच्छ्रं व्रत कारताहै किन्तु बीच में अन्तर कभी न परने देय तब शुद्ध होय—और जो उसी बनेनी विमाता में अज्ञानता से बार बार गमन कियाहो तो हारीत का कहा जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्यरूपी प्रायश्चित्त है—यथा हारीतः—अभ्यस्य त्रिप्रोवेश्यायां गुरोरेजानसोहितः यदंगव्रह्मचर्यं च संचरेद्यद्वादायुयम्—अर्थात्—ब्राह्मण अपने पिताकी बनेनी भार्यामें अज्ञानता से भूला हुआ यदि बार बार संगमको अभ्यासकरे और पीछे भेद जाना जाय तब यह प्रायश्चित्त है कि जबतक जीवै तबतक यडा वेद पाठ की वारणा राखे और ब्रह्मचर्यसे रहै किसीस्त्रीसे संगम न करे (इसी बनेनी विमाताको इच्छा सहित भोगनेमध्ये ऊं वषं का प्रायश्चित्त ऊपर कहि चुके हैं इसी अतिकोक्ति में स्मृत्यंतस्वचनहुं हौं ॥०॥ एवं पिता की शूद्री भार्या में ब्राह्मणी का वेश विना जाने गमन करे तिसके लिये मनु का कहा प्रायश्चित्त है—यथा—खड्गवागीचीर्यासावाश्रमयुतो विजनेवने प्राजापत्य चरेत्कृच्छ्रं मन्दमेकसमाहितम्—अर्थात्—मनुष्य की खोपड़ी लाठी आदि लकड़ी के सिरेपर जड़ो हुड्डिका नाम है खट्वांग जो ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त में कहि चुके तिसको लिये हुये और पुराने चौयड या भोज पत्र आदि बकल पीड़े लपेटे हुये दाढ़ी मूछ आदि सब जडा रखाये हुये निर्जन वन में एकला एक वर्षतक ठीक ठीक बिबि से कृच्छ्रं प्राजापत्य व्रत करे तब शुद्ध होय—अथवा—यह नहीं तो दूसरा सुमनु का कहा प्रायश्चित्त करे—यदाह सुमनुः—गुरुदाराभिया नीसवव्यसं कारकतोशाखां परिष्वज्यावः शायी त्रियवयाभिक्षाहारपूतो भवति—अर्थात्—गुरु भार्या में गमन करने वाला एक वर्ष भर बेरी बर्र आदि कांठो वाले टुक की लकीयाखा रहनी बगल में बावि

चिप्टाय के धरती में सोवें त्रिकाल स्नान किया करै भिक्षासे पेटभरै तब शुद्ध होय—
 और—जो एक बार के सिवाय दुबारा तिवारा आदि बार बारका अभ्यास किया हो
 तो मनुका कहा प्रायश्चित्त है—यथा—चांद्रायणावात्रीन्मासानभ्यनियतेन्द्रियः—अ-
 र्थात्—बार बारका अभ्यास करिके तीन महीना तक निरन्तर चांद्रायणा व्रतकरै तब
 शुद्ध होय (इसमें यह शंका न करना कि एकवारके भोगमध्ये वाह महीनेका प्राय-
 श्चित्त और बारवार के अभ्यास में सिर्फ तीन महीने कहे क्योंकि उस एक वर्ष की
 अपेक्षा ये तीन महीने बहुत कठिन हैं इस हेतुसे कि चांद्रायणामें एक एक प्रास अन्न
 बढ़ाया घटायाजाताहै ऐसा निरन्तर तीन महीनेतक साधना उसकी अपेक्षा कठिन
 है जो एक वर्ष तककांटों की शाखा आदि कहागया) इसी शूद्रा विमाताकी जानि
 वृक्षि कामनासे भोगने मध्ये तीनवर्ष का प्रायश्चित्त इसी अधिकोक्तिके प्रारम्भमें
 और पहिलीअधिकोक्तिके अन्तमेंभी कहिचुके तहां देखौ ॥०॥ और जो ब्राह्मणीका
 पुत्रहोकर सविद्या विमातामें कामनासे जानिवृक्षि उताख होकर वीर्यसींचनेसे पहिले
 घूमिगयाहो तिसकेलिये व्याघ्रोक्त प्रायश्चित्त है—यथाह व्याघ्रपादः—कच्छ चैवाति
 कच्छ चतथाकच्छातिकच्छकम चरेन्मासवर्षविप्रःसविद्यागमनेगुरोः—अर्थात्—पिता
 की सविद्या भार्या के पास ब्राह्मणी का वेदा यदि पहुँचै सो कच्छयाअतिकच्छया
 कच्छातिकच्छ तीनि महीना करै—इसमें इसरीति से व्यवस्था है कि जिस पुरुष को
 स्त्रीने अपनी और से उत्साह दिलाकर मोहित किया हो तिसको तीन महीना कच्छ
 प्राजापत्य करना चाहिये जो दोनों की इच्छा से परस्पर प्रीति उदीहो तो पुरुषको
 अति कच्छ व्रत करना तीन महीना चाहिये जहां पुरुषही ने स्त्री को तसोव दा हो
 तहां ऐसे पुरुष को कच्छातिकच्छ व्रत तीन महीने करना चाहिये•ये सब तीनों
 उसी दशापर कहे गये हैं कि जहां संगम न होने पाया किन्तु वीर्य सींचने से पहिले
 लौटि परेहो—इसी प्रकार—जहां सविद्या विमाता में कामना के बिना किसी धोखे
 से संगम काने पर उताख होकर वीर्य सींचने से पहिले बोव होजाने आदि कारणों
 से लौटि परा हो तहां कराव मुनिका कहा प्रायश्चित्त है—यथाह करावः—चांद्रायणा
 तप्तकच्छमतिकच्छ तथैवच सकृद्व्यागुरोभार्यामज्ञानात्सविद्यादिजः—अर्थात्—ब्राह्म
 णा अपने पिता की सविद्या भार्या के पास बिना जाने ठुके एकवारभी जाइकेचां-
 द्रायणा करै या तप्त कच्छ करै या अतिकच्छ करै—इसमें भी इस रीतिसे व्यवस्था
 है कि जिस पुरुषने आपही स्त्री को उत्साह दिया हो सो चांद्रायणा करै जहां दोनों
 ने बराबर प्रीति उभारी हो तहां पुरुष को तप्त कच्छ करना चाहिये जहां सिर्फ स्त्री

कहा गयाथा जो समान कर्हिने सात्रसे कुछ नीचा समझागया है तिनमें और दोसो बतीस तैंतीस श्लोकों में जो जो स्त्रियाँ ब्रूया माभी आदि गिनाईं जिनका गमन करना शुरुतल्प के अतिदेश में ठहिराया गया वहुंशो शुरुतल्प से कुछ नीचा पातक है तिनमें भी यदि कोई पुरुष वीर्य सींचे तिसके लिये भी वही वारह वर्षका प्रायश्चित्त है इस हिसाब से कि जिसने बिना जाने धोखा में एकही राति गमन किया हो तिसको वारह वर्ष का आवाहः वर्ष प्रायश्चित्त दिया जाय—और जिसने एक राति से उपरान्त भी जानि बुझि वार वार ऐसा किया हो तिसको वारह वर्ष का पौना नौवर्ष दिया जाय—इसमें भी यह विशेष्य कर विचार है कि यद्यपि इनपापों को शुरुतल्प से कुछ न्यून कहा इसी हेतुसे प्रायश्चित्त भी कम किया गया तथापि जो इन्हीं स्त्रियों में अत्यन्त ही अभ्यास कियाहो तौफिर इसमेंभी बही सरांतिक प्रायश्चित्त कराया जाय जो पहिली अधिकोक्ति में कहा गया इसीलिये योगेश्वर ने उसी दोसो तैंतीसमें यह कहाहै कि (लिंगछिन्त्वावधस्तस्यसकामायाःस्त्रियाभ्यपि) परंतु उन श्लोकों से गिनाई हुई स्त्रियों में माता की सीति भी कही गई है तिसकी व्यवस्था पहिली अधिकोक्तिमें और वर्तमान अधिकोक्ति मेंभी ऊपरवर्जान होचुकी है तिससे विभातासे उपरालू स्त्रियाँ जोइन चर्चा किये तौनि श्लोकों में हैं तिनका नियम यहाँ पर लिखा गया समझना और उनमें अत्यन्त अभ्यास करने वाले की सरांतिक जो बताथा तिसका प्रमाण वृहद्यमका यह वचन है—यथा=रेतःसिक्ता कुमारीशुस्त्रयोनिष्वंत्यजासुच सपिंडापत्यदारैयुप्राणत्यागोविधीयते=अर्थात्—कुमारी कन्या चाहें किसी की भी उत्तम जातिहो और अपनी भगिनी और अंत्यजा चांडालियों और अपने सपिंडों की पुत्र वधुओंमें वीर्य सींचिके प्राण त्यागही प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ इस व्यवस्था में अंत्यजाती स्त्रियों का भोग भी शुरुतल्प के समान पातक ठहिरायागया और अंत्यजाके कईअर्थ होतेहैं तिससे मिताक्षराकार ने व्यवस्था इस पर दीहै कि इस श्लोक पर अंगिरा मुनि के कहे अंत्यजों की स्त्रियाँ समझनी=यथाह मध्यमंगिराः=चांडालःअपचःक्षतामृतीवैदेहिकस्तथा सागवा१२योगवीचैव सन्नैतेन्यावसायिनः=अर्थात्—चंडाल• अपच• क्षता• मृत• वैदेहिक• सागव• आयो गव• ये सात जातें अंत्यावसायी किन्तु अन्त्यज कहाती है तिनकी स्त्रियों से भोगकरना अधिक अशुद्धता के हेतु से शुरुतल्प के समान महापाप ठहिरा परन्तु (राजक श्वर्माकारप्रचनटोबहुइत्येव कैवर्त्तमेवभिलाप्रचसन्नैतैअंत्यजाःस्मृताः) इसवचनमें यम को कहे सात अंत्यज ये प्रसिद्ध है कि• धोत्री• चमार• नद• वरद• कैवर्त• मेद• भिल्ल•

ये सातो अत्याजाति है सो इनको इस ऊपरकी व्यवस्थामें न शामिल करना क्योंकि इनके मध्ये छोटा प्रायश्चित्त है सो आगे उपपातको के साथ पापदाय परिच्छेद में देखना=और ऊपर की व्यवस्था में जिन अत्याजाओ का प्रयोजन है तिनके लिये मनुने भी बहुत बड़ा प्रायश्चित्त हेतु गर्भित वचन के द्वारा प्रकाश किया है=यदाह मनु=चांडालात्यस्त्रियरात्वाभुरकाचप्रतिगृह्यच पतत्यज्ञानतोविप्रोज्ञानात्साभ्युत्तगच्छति=अर्थात्-कोई ब्राह्मण बिना जाने चाण्डाल और अन्त्यजों की स्त्री में गमन करिके या उसके हाथ से कुछ खाइके या उसस्त्रीको धरिणी बनानेके लिये प्रतिग्रह लेके पतित होजाता अर्थात् जाती धर्मसे गिरजाता है और जिसने जानि वृष्णि के इच्छा सहित ऐसा कियाहो सोउन्ही चंडालोंकी समता की पहुँचता अर्थात् निपट चंडाल होजाताहै-अब इनदोनों बातको जुदीजुदी सोचौ कि जो पतितहोताहै सोती प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होसक्ता है दूसरा जो निपट चंडालोमे मिलिगया वह प्रायश्चित्तसेभी नहीं शुद्ध होताहै अर्थात् उसकेलिये कोई प्रायश्चित्त नहींहै मरजाने के सिवाय-तिससे यह व्यवस्था नियत हुई कि जिस ब्राह्मण से बिना जाने धोखेमें ये पापहुये हो सो पतितहोने के हेतुसे पतितो वाला प्रायश्चित्त पूरा बारहवर्ष साथै तब शुद्ध होय- और दूसरा जिसने जानि वृष्णि इच्छासहित चण्डालोसाथ बहुतदिनोतक सगम या खाना पीना या घरमेरखिलेना विवाह कल्लेना आदि किया हो वह शुद्ध होनाचाहै तो बारहवर्षोंसे अधिक मरणांतिक प्रायश्चित्तहै तिसकोकरैक्योकि प्रायश्चित्तकी अपेक्षासेमोतके बिना उसकी शुद्धि संसारमें नहीहै=परन्तु येदोनों बहुतबड़े प्रायश्चित्त जो कहे गये सो बहुतदिनोके अभ्यासपर समझना किन्तु एकरात्रिभरके अभ्यासमें यद्यपि कई बार सगम हुआ हो तौभी ये प्रायश्चित्त न होये क्योंकि, एक रात्रिकेअभ्यास मध्ये मनुने तीन वर्षका प्रायश्चित्तकहाहै=यथा=यत्करोत्येकरात्रि राट्यलीसेवनात्तद्विज तद्वैश्वभुगजपन्नित्यत्रिभिवर्षेव्यपोहति=अर्थात्-ब्राह्मण जो पापदृष्टीके सेवनसे एक रात्रिभरमे उपन्न करता है सो तीन वर्ष भिक्षा खाइके जप कालेहुये दूर होजाताहै-इस व्यवस्थासे यहतात्पर्यदर्शाहै कि चंडालोका सगमआदि कोई काम जिसने बिना जाने सिर्फ एक राति भर किया हो तिसको तीन वर्ष का प्रायश्चित्त है और बहुत दिन सेवन काले वाले को बारह वर्ष का प्रायश्चित्त है और जिसके लिये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा उसने जो अतिकाल का अभ्यास न किया हो किन्तु जानि वृष्णि के इच्छा से दोहो चार दिन अभ्यास करिके पकित-या हो कि भुक्त को शुद्ध होना चाहिये तौ उसको भी मरणांतिक प्रायश्चित्त के

वदते सिर्फ ब्राह्मण वर्षका व्रतकरना चाहिये कि जिससे फिर जातिमें मिलिसके और प्राणाहानि भी न हो परच बहुत दिनोंके अभ्यास में सराांतिक जो लिखिचूके वही नियम है ॥ ० ॥ यदां मनु के वचन में वृथली कही सोभी चांडाली समझनी क्योंकि अन्य स्मृतियों में पांच भाति की वृथली कहीं उनमें चांडाली भी गिनतीहै) तथाच स्मृतं तरे=चांडालीवधकीवेश्यारजस्यायाचकन्यका ऊदायाचसगोवास्याहृयत्य.पच कीर्तिताः=अर्थात्-चांडाली १ वधकी जो स्वैरिणीहो २ वेश्या ३ जो कन्याकुमारी अपनेपिताकेघर कपड़ोमेहोनेलगी वह किसीको विवाहीजाय तोभी वृथलीकहातीहै ४ रजस्रला न होनेपरभी जो कन्या अपने सगोषीकी विवाहीजाय सोभी वृथलीकहाती है ५ ये पांचवृथली कहीगईहै (परन्तु इनमेंसे केवल चांडालीकाप्रयोजन ऊपरले मनु केवचनमेंसमझना पांचौकी नहीं क्योंकि योगीश्वरनेभी २३१ मूलश्लोकमें अत्यजाभाव कहीहै=इसके सिवाय जहां सिर्फ एकहीवार चांडाली आदि भोगी अर्थात् एकराति भर नहीं सेवन किया केवल दो घटिकामात्र संगम किया हो तिसके लिये अग्रीक यमादिस्मृतियों का वचन देखो=यथाह यमः=चांडालपुल्कसानांतुभुत्कारागत्वाचयौ यितम् कृच्छ्राव्दमाचरेत्तजानादजानादैन्दवद्वयम=अर्थात्-चांडाल और पुल्कसजाति योंकी स्त्रीकी जानते हुये पास जाइके या केवल भोगमात्र करिके एक वर्षभर कृच्छ्र व्रतसाथै परन्तु जो बिनाजाने पास गयाहो या केवल भोगमात्र कियाहो तो दोसहीना के दो चांद्रायण करै (व्यवस्थापर ध्यानकरौ कि चांडालियोंके पास जानामात्र या भोगमात्र दो बातें कहीं तिनमें केवल भोग तो सुदृत्त भरमें निपरिजाताहै इससे अधिक सेवन कुछ न कियाहो यह तात्पर्य है और पास जाना भोग के बिना भी बैठने आदि प्रकारसे प्रीति जोडना यह अनेकवारके अभ्यास द्वारा एकवारके संगम की बराबर अपाबिब करसक्ता है तिसमे दोनोवात एकसी बराबर उद्धरिं इसीलिये दोनो पापका एकही प्रायश्चित्त कहा केवल ज्ञान और अज्ञानताके भेदसे दोतरहके व्रतकहे ॥०॥ ध्यानकरौ कि जिस अत्यजा चांडाली के मध्ये यह व्यवस्था सब कही तिसके साथ दोसौ इकतिस मूलश्लोकमें (सखिभायांकुमारोयुत्त्वयोनिष्वत्यजामुच) भगिनी आदि और भी अनेक अस्या लिखी गईहै तिससे भगिनी आदिसे संगम करनेमे भी यही व्यवस्था समझलेनी=और इस व्यवस्थामें जहां जहां केवल सराांतिक प्रायश्चित्त कहागया तहां तहां सर्वत्र अग्निमें गिरिके जलजाना समझ लेना ० और इसका प्रसादा यह काल्यायनका वचनहै कि=जनन्यांचभगिन्यांचत्वमुतायांतयैवच न्युयायां गमनचैवविज्ञेयसतिपातकम अतिपातकिनस्वेते प्रविशेयुर्हुताशनस=अर्थात्-जननी

या भगिनी या निजवेदी या वेदाकी वधू इनमें गमन करना अति पातक जानो सो इतने सब लोग जो अतिपातको होजाय वे अग्निमें प्रवेश करें (इस वचनके अनुसार भी यह विचार करना सूचितहै कि जननीके एकही बार गमन करनेसे अग्निमें गिरना और भगिनी आदि श्रेय स्त्रियोंको कईवार गमन करनेसे अग्निमें गिरना सिद्ध होताहै क्योंकि यह वात्ता पहिले कई स्थलोंपर निर्णय हो चुकीहै कि साह्यगमन महा पातकहै और भगिनी आदिका संगम यह उशीका अतिदेश होने से अतिपातक है महापातक नहींहै तिससे दोनोकी तुल्यता एकसी बराबर होनी उचित नहींहै ॥ ० ॥ इसी व्यवस्थाके विचारमें यह भी ध्यान करना कि वृहद्वयमका एकवचन विशेष्य है यथा (चंडालींप्लक्ष्मींस्त्वोच्छ्वींस्तुयांचभगिनींसखीम मातापित्रोःस्वभारंचनिसिन्नां शरणागतस मातुलानींप्रव्रजितांस्वगोवांनृपयोजितं शिष्यभार्यागुरोर्भार्यागांस्वाचां द्रायसांचरेत्) अर्थात्—चंडाली • प्लक्ष्मी • स्त्वोच्छ्वी • पुत्रवधू • भगिनी • सखीसहचरी वह कि जिस स्त्रीको जिस पुरुषके साथ एकसी अवस्था होने के हेतु से या औरही किसी कारणा या बिना कारणा भी प्रायश रहिना फिरना होताहो और मित्रकी पत्नी भी सखी होतीहै • माताकी बहिन • पिताकी बहिन • निसिन्ना जो किसी भयादिक सन्देशसे धरोहरिके तौर सौंपीहुई अपने यहाँ रहितीहो • शरणागता जो देशके उपद्रव आदि कारणासे कुछ दिनके लिये अपनी रक्षा चाहिकर शरणामें आ टिकीहो • मांसी • प्रव्रजिता संन्यासिनि आदि • स्वगोवा अपने गोव भर की कोड़े स्त्री हो अर्थात् तीन पीढ़ी या सातशाख भीतर जहांतक परस्पर एकही पुरुषका कूल मानाजाताहो परंतु उसको स्वगोवा न समझनी कि जैसे एकही ऋषि गर्ग भारद्वाज आदि गोववाले कहीं दूर बसतेहों तिनकी स्त्रियोंका विचार पर स्त्री सगमके प्रकरणामें आवैसा • राजा या ग्रामके दाऊरकी भार्या • शिष्यकी भार्या • गुरुकी भार्या यहाँपर गुरुशब्दसे आचार्य हीकी समझना किन्तु पितानहीं • इन स्त्रियोंके पास जाइके चान्द्रायणा व्रतकरे जो एक महीनामें पूरा होताहै—और एक अगिराका यह वचनहै कि (पतितोत्स्त्रियो गत्वाभुक्त्वाचप्रतिगृह्यच मासोपवासं कुर्वीतचंद्रायणमथापिवा) अर्थात्—पतित स्त्री जो किसी महापातक या पातकसे पतित होचुकीहो अथवा पतित जातों की स्त्रियों और अत्य चंडाल आदि जातोंकी स्त्रियों पास जाइके या उनके हाथ का कुछ खाइ के या उनकी परिग्रहमे लेकर एक महीने भर उपवास करे या चंद्रायणाकरे तब शुद्ध होय—सो यह अगिरा और वृहद्वयकी दोनो व्यवस्था गुरुतल्पके अतिदेशपर उतारी गईहै और इनमें लिखे प्रायश्चित्तोंको उस दशापर समझना कि पुरुष अपनी अज्ञा-

नतासे भोग करनेपर उताख होकर वीर्य सौंचनेसे पहिले धूमि गया हो किन्तु पूरा भोग नहीं किया इसी तरह श्रांगरा के वचन से परिग्रह में लेनेको समझि लेना कि विवाह फेरमाव पूरी रीतिसे न होनेपायाहो तभी तक यह खोटा प्रायश्चित्त है—और भी संवर्त का यह वचन है कि (भगिनीमातुराज्ञांचस्वसारंचान्यमातृजास सतांरात्वा स्त्रियोमोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्) अथदि—माताके उदरसे प्राप्त हुइ सर्गी बहिन और विमातासे उत्पन्न हुइ सौतेली बहिनकी और इनसे पहिले जो स्त्रियां कहीं इनस्त्रियों के पास तक अज्ञान, मोह से जाइ के तप्तकृच्छ्र व्रत करै—सो यह प्रायश्चित्तभी गुरु तल्प के अतिदेश मध्ये ऐसी दशा पर समझना कि बिना जाने और बिना चाहे अज्ञानमोहसे सगम करने पर उताख होकर वीर्य सौंचनेसे पहिले ज्ञान होजानेमें लौटि राया हो क्योंकि इन सभी वचनोंमें पाम जानासावकहाहै पूरा भोग नहीं कहा ॥ ० ॥ कदाचिच्च येही सब स्त्रियां कि जिनके भोग मध्ये ऊपर से गुरुतल्प का अतिदेश उताखते चलेआते है उनमें जो कोई सी अत्यन्त व्यभिचारिणी हैं तिनको पूरी रीति से भोगने मध्ये वही दोनों प्रायश्चित्त होरो जो अभी ऊपर वीर्य सौंचे बिना करने कहिचुकेसो इस क्रमसे किये जायंगे किजिसने उनमेंसे किसी व्यभिचारिणी को जानि ब्रह्म कामना से वीर्य सौंचा हो सो चांद्रायण करै और जिसने अपनी रिशतेदारी की न जानिकर केवल व्यभिचारिणी समझते हुये वीर्य सौंचाहो सो तप्त कृच्छ्र करै तब श्राद्ध हीय=इनके सिवाय=उन स्त्रियों की भोगनेमें गुरुतल्प दीयनहीं है जो सामान्य सबलोगोंके भोग निमित्त सब देशोंमें कृच्छ्र वेश्या जन पातुर भगतानी रामजनी आदि नामों से प्रसिद्ध होतो, है तिनको यद्यपि गुरुने भोगाहो तभी उनके भोगने से गुरुतल्प दीया नहीं दहरि सक्ता है जैसा व्याघपाद का यह वचन है कि (जात्युक्तपारदार्यचक्रन्याद्वयसामेवच साधारणस्त्रियोनास्तिगुरुतल्पवसेवच) अर्थात्—नट नर्तक वेडिंगी आदि जिन जातों में यह रीति प्रसिद्ध है कि अपनी स्त्रियां और बेटियां परये पुरुषों की मिलाइके या उनके सन्मुख नचाइके जीविका करते हो तिनकी स्त्रियों से संगम करना पर स्त्री संगम नहीं है तथैव उनकी कुमारियों से संगम या किसी प्रकारकी छेड छाड करना कन्या दूयरा के अपराध से गिनती नहीं तथैव साधारण स्त्रियां जो रामजनी भगताइन आदि नामों से सामान्य सब लोगों के भोग निमित्त से सब देशों में अवश्य कृच्छ्र होती है तिनका संगम गुरुतल्प दीय नहीं बल्कि गुरुतल्प के अतिदेश में भी गिनती नहीं चाहै उनकी गुरु पहिले भोगिचुकाहो या नहीं दोनों दशा में यह नियम है ॥ इनी प्रकार और भी स्मृतियों के वचन प्राय-

प्रिचत्त की व्यवस्था वाले मिलें जिनसे ऊँच नीच का अन्तर देखि परै तो उनकी भी व्यवस्था ऊँचे नीचे विषय भेदसे कल्पना करनी चाहिये कि जिससे कुछ विरोध न रहे • क्योंकि बहुधा वचनों को ग्रन्थ बहि जाने के सन्देह से यहाँपर नहीं लिखा तो इस न लिखनेसे भी जीवचन कहीं देखिपरै तिनको निरर्थक न समझिलेना ॥ २६० ॥

(इतिगुरुतल्पप्रायश्चित्तप्रकरणा)

इस प्रकारका में अग्न्यागमन मात्र केवल एक विषय होनेके हेतुसे परिच्छेद भी एकही रहा अब अगिले सैतीसके परिच्छेदमें संसर्ग दोषके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

अथ पूर्वोक्त महापातक्रिणां सर्वसंसर्गज महापातकस्य
प्रायश्चित्त प्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः सप्तत्रिंश ३७

इस परिच्छेदमें संसर्गी पुंस्य के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे संसर्गी यद्यपि पाँचमा महापातकी होनेसे एकही मानाजाता है तथापि यह चारप्रकार का होताहै क्योंकि ब्रह्महा • मद्यप • सुवर्गस्तेयी • गुप्तवारगामी • इनचार महापातकियों में जिसका संसर्ग उसने किया हो ॥

(संसर्गगतिदेशः)

एभिस्तुसंबन्धेद्योवैवस्वरतोपितत्तम । २६१

पूर्वाद्दश्लोक

अर्थ.—इन करके जो वर्षभर मन्थक बसै सोभी उसके समान है—अर्थात्—पेड़ीजो ब्रह्महृत्यारे आदि ४ महापातकी कहेगये इनके साथ जो कोई एकवर्ष मात्र अचड़ी तरह बसै किन्तु इन चारोंमें जिस किसी के पान बसै या साथ रहिकर किसी तरह का बर्तावा आचरना करै सो उसीके समान ठहिरै अर्थात् उसी के निमित्त मे लिखे हुये प्रायश्चित्तको करै यह अतिदेश उतारा गया इसी अतिदेशके प्रयोजनसे उसके समान होना मूलश्लोकमें कहा (किन्तु पातकत्वके अतिदेश निमित्त नहीं क्योंकि

पातकत्वका अतिदेश(यश्चतैःसहस्रसंवेत्)यह दोस्रो सत्ताइस २२७ मूलप्रलोकमें चौथे पादसे कहिचुके तिससे यहां केवल प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारनेकी उसके समान कहागया) और भी यह विशेषताहै कि यद्यपि अतिदेश उतारागया तिससे चौथाई कम करिके प्रायश्चित्त होय या तीभी कम न करना चाहिये किन्तु पूराही बारह वर्ष आदि जो अर्वाच मुख्य पापीकी नियत हुईहो सो इसकी भी कारयाजाय क्यां कि यह संसर्गो एरुयभी साक्षात् महापातकी कहागया है सोसौ सत्ताइस मूलप्रलोक में देखो कि पांचोंका बराबर दर्जा दहर चक्रा-परन्तु-इतना अन्तर है कि महापातकियोंके समान प्राण हानि वाले प्रायश्चित्त की आज्ञा इसको नहीं है यह अर्गे वर्णान होगा तहां समभिल्लोना अधिकोक्ति में ॥ २६१ ॥

२६१ अधिकोक्तिः-इसी पूर्वार्द्ध मूलप्रलोकमें अपि शब्द जो आया तिससे यह तात्पर्य है कि जैसे इन महापातकियों का संसर्गो उनके समान कहा तैसे और भी अतिपातकी और पातकी और उपपातकी आदि जो जो पतित होते हैं तिनमें से जिस किसी के साथ कोई संसर्ग करै सो उसी के समान ठहिरै और उसी के समान प्रायश्चित्त करै-इसीलिये मनुने बड़े छोटे सभी पापों के प्रायश्चित्त कहिकार पीछे से यह वचन कहा है (योषेनपतितेनेयांसंसर्गायातिमानवः सतस्यैवव्रतंक्षयति तसंसर्गो विशुद्धये) अर्थात् इन सभी प्रकार के पतितों में जिसकिसी के साथ जो कोई संसर्ग में जाता है वह उसीके समान होता है तिससे उसका संसर्ग बोध मिटाने को उसी का व्रत करै-दिय्या ने भी सामान्य भाव से उपपातकी आदि पापीसाव के संसर्ग में उन्हीं का प्रायश्चित्त भजना दर्शाया है कि (पापात्मनायेजसहयःसंसृज्यते सतस्यै व्रतंक्षयति) जिस पापी के साथ संसर्ग जो करै सो उसी का व्रत करै-इसी लिये मनुने सामान्य पापी साव का निषेव किया है कि (सनस्त्रिभिरनिराकार्तायिकंचित्समाचरेत्) किसी भी सनस्त्री के साथ कोईसा व्यवहार न करै कि जवतक उसका निराय और शुद्ध न होजाय-तथैव सनस्त्री को भी यह शिक्षा दईहै कि (नसंसर्गंभजेत्सद्भिःप्रायश्चित्तेऽहतेसति) प्रायश्चित्त किये बिना शुद्ध लोगों से अपना संसर्ग न करै ॥ ० ॥ पतित के संसर्गसे यह बारह वर्ष आदि का प्रायश्चित्त जो कारना ठहिरा सो जानि ब्रूमि के संसर्ग करने पर आछद है जैसे देवल का वचन है कि-पतितेनस होयित्वाज्ञानन्सवत्सरंनरः मियित्तत्तेनसोऽहंतेस्त्रयंचपतितोभवेत्-अर्थात्-पतित को जानते हुये उसके साथ सक वर्ष निजा हुआ वसिकर मनुष्य वर्ष पूरा होजाने बादि आपहा पतित होवै ॥ अथाज्ञानकृत संसर्गो प्रायश्चित्तं ॥ जिसने बिना जाने

अज्ञानतामें संसर्ग क्रियाहो तिसकेलिये वशिष्ठकाकहा प्रायश्चित्तहै=यथा=पतितसं
योगेनुवाहारो न वेदाध्यापनेनयौनेनवा सौवेरावायास्तैभ्यःसकाशान्मावाउपलब्धा
स्तासांपरित्यागस्तैश्चनसंवसेदुदीचींदिशंगत्वा७नश्नसंहिता२४यग्रनमवीद्यानःपतोभ
वतीतिविज्ञायते=अर्थात्-पतित के संयोग में विवाह ब्राह्मणपुरोहित आदिने जो
कुछ माचार्ये दक्षिणारोक आदि पतितों के विवाह आदि काम कराइ के या वेद
पढ़ाने आदि पूजा पाठसे या होम यज्ञ कराने आदि से पाई हों तिनका परित्याग
अर्थात् भूखे दुखे को देवेवै याकिमी तडाग मंदिर आदि की सरम्मतमें समर्पण करे
और उनके साथ निवास आदि कर्मोंके संबन्ध न राखे और उतर दिशामे पवित्रधरती
पर जाइके भोजन का त्याग कियेहुये वेदकी संहिता का पाठ यथा विधि से करता
हुआ पवित्र होजाता है यह जाना गया (यद्यपि इसमें कुछ अवधि नहीं कही गई
कि भोजनका त्याग कितने दिनकरे तथापि यह सिद्धान्त पाया जाताहै कि जितने
दिनमें संहिताका एकही पाठ पूरा होसके वही अवधि जानों क्योंकि पाठकी अनेक
आवृत्ति करना नहींकहा ॥०॥ संसर्गिणांसंसर्गिणश्च—मुख्य महा पातकियोंके
संसर्ग से पूरा सहापातक संसर्गी को होताहै यह निराय किया गया परन्तु निराय
वाले वचनोंका यह तात्पर्य नहीं है संसर्गी के संसर्गी तीसरे को भी सहापातकलगी
इसी से यह नियम है कि संसर्गी से जिन लोगों का संसर्ग अर्थात् हेल मेल होजाय
तिनको द्विजातियों वाले कर्मधर्म की हानि नहीं पहुँचती है अर्थात् जातिसे गिरि
जाना आदि जैसा मुख्योंके संसर्गी को होताहै तैसा संसर्गी का संसर्गी तीसरा पुरुय
जाती धर्मसे नहीं गिरायाजाता है तौभी कुछ प्रायश्चित्त इसको भी अवश्य लगताहै
(और इसमें यह तर्कना या शंका न कहिनी चाहिये कि जिसको जाति से गिराना
नहीं है तिसको प्रायश्चित्त क्यों लगता है) क्योंकि ऊपर जो मनुका वचनलिखा
गया कि एनस्त्री अर्थात् पापी मात्र किसी को साथ कोई व्यवहार न करे जबतक
उनके निराय से प्रायश्चित्त होकर शुद्ध न होजाय•सो इस वचन में सभी पापी मात्र
के निषेध के द्वारा पाँचवें सहापातकी संसर्गी का भी संसर्ग हेलमेल करना नियिद्ध
दृष्टि चुका तिससे उसका हेलमेल करनेवाला यद्यपि जाति से नहीं गिराया जाय
तौभी प्रायश्चित्त करना ठीकही मूर्चित हुआ है—परन्तु इस तीसरे को पूरा प्राय-
श्चित्त नहीं किन्तु चौथाई कम करिके तीनपाद होना चाहिये जैसा यह न्यायमज्ञी
का वचन है कि=योगेनसवसेदुपसोपितत्समतामियात् पाददीनंचरेत्क्षोपितस्यतस्य
वर्तद्विजः=अर्थात्-गकवर्य जो कोईद्विजाती जिसके साथ हेलमेल करे सोभी तिसको

बराबरी को पावें और वह उसी वाला व्रत चौथाई कम करें ॥ ० ॥ जैसा यह दूसरे संसर्गी को कहा गया तैसा इसको हेलमेल से तीसरे को फिर उसके हेलमेल से चौथे को भी यह नियम है कि जानि ब्रह्मि इच्छा से हेल मेल करने वाले तीसरे को दो पाद कम करिके दोहीपाद अर्थात् आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये और चौथेको जानि ब्रह्मि हेल मेल करने के दोय में तीन पाद कमकरिके सिर्फ एकही चौथाई करना चाहिये—इस में यह शंका है कि एक संसर्गी को पूरा व्रत करना कहा कि जैसा बारहवर्षका ब्रह्महृत्यारे आदिको कहिचुकथे फिर दूसरे संसर्गीको पौनाबताया और तीसरे को आधा और चौथे को चौथाई इसका क्या कारणहै कि एकसंसर्गीपर मुख्य पातकियों से कुछभी रिश्नायत न करीगई•सुनों २२७ मूलश्लोक देखौ उसको भी पांचवौं सहापातकी कहिचुके तिससे उन्हीं चारों की बराबर प्रायश्चित्त उत पर चाहिये और रिश्नायत उसपर इतनोबढ़ी करीगई कि साक्षात् ब्रह्महृत्यारे आदि चारों को इच्छा सहित पाप करने मध्ये मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा गया था सो इसको नहींहै अर्थात् इच्छासहित उनका हेलमेल करनेमें उन्हींकी बराबर व्रतकरना इसको कहागया जो उनकी इच्छा बिना पाप होजानेपर बारहवर्षका व्रत ठहिरा था क्योंकि (सतस्यैवव्रतं कुर्यात्) इस वचन के तात्पर्यमें उसके व्रतही का अतिदेश दियागयाहै मरजानेका नहीं क्योंकि मरजाना व्रत शब्दके उच्चारणमें नहींहै• तिससे यह व्यवस्था आकर सिद्ध हुई कि जिसने कामनासे चाहिकर हेलमेल कियाहो तिसके लिये बारह वर्षकी व्रतचर्या प्रायश्चित्त है जिसने बिना इच्छा के संसर्ग किया हो तिसकी बारह का आधा ऋषय व्रत करना चाहिये—इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि संसर्गियों को इच्छा सहितके सुआमिलेपर एकएक चौथाई कमहोती चलीजाय और अनिच्छा के हेलमेल मध्ये उससे आधा संभक्ति लेना ॥ ० ॥ अथसंसर्गलक्षणं—संसर्ग अर्थात् हेल मेलका चर्चा जो अब तक किया गया वह संसर्ग भी कर्मोंके निबंध भेदसे अनेक तरह का होताहै जैसा वृष्टहृरूपतिने कहाहै कि—एकशरदा १००सं२ पंक्ति ३ भंडिं४ यत्तद्यन्मम मिश्रणस्य याजना ईध्यापने ७ योनि ८ स्तथा च सहभोजनस्य ९ नवधासक १० प्रोक्तो न कर्तव्यो ११ धर्मैः सह—देवलोपि—संलापस्पर्शनिश्वास सहयानासनाशनात् याजना ध्यापनाद्यौनात्पापसंक्रमते नृणां स—अर्थात्—सकही खाएपर दोनोका पीडना १ तथा एक आसनपर बैठना २ एकपातितमें भोजन करना आदि ३ एकही साथ वासनकपड़े आदि मिलाकर धरना ४ एक साथ मिलाकर अन्न पकाना ५ पाधाई पुरोहितताई के तौर से यजन आदि कर्म कराना ६ वेद विद्या पढाना ७ योनि का संबंध विवाह

करना ठ एकथाली वा एक चौकेमें साथ भोजन करना ६ यही नीं भांति का सकर अर्थात् समर्ग हेतुमेल कहा गया है कि अथसो की साथ न करना चाहिये यह वृहस्पतिकी सबसे बड़ी स्मृतिका नियमहै—देवलने भी कहा है कि=मलाप अर्थात् परस्पर पासही भिडिके प्रेम आदिकी वातचीत करने से और स्पर्श उसको छूने से और उसकी आसकी वायु वाफ लगानेसे और एक साथ यात्रा करने एक सुवारी पर बैठने से और एक साथ आसन खाट आदिपर बैठने सोनेसे और एक साथ भोजन करने से और यजन आदि कर्म कराने तथा वेद विद्या पढानेसे और यौन संबध कन्यादेने या लेनेसे इतनी बातोंसे मनुष्योपर पाप चढ़िजाताहै (इन वचनों में जैसा विवाह यौन संबधका बोध दोनो ओर से दर्शाया गया कि उसकी कन्या देना या उसी से आप लेना तैसा सभी बातों का नियम समझि लेना कि विद्या पढाना या उसीसे पढना स्वयंजन उसकी कराना या उसके द्वारा आप करना इसीतरह और बातोंकी समझना) अब यह बात जाननी चाहिये कि इनमेंसे कौत सा हेतुमेल कितने दिनमें पतितकर देताहै तिसके लिये वृहद्विष्णु आदिके वचन आगे देखो ॥ ० ॥ वृहद्विष्णु =सर्वस्व रेरापतितेनसहाचरभ्नेकयानभोजनासन शयनैर्यौनसौवमुख्यैस्तुसुबधै सद्यस्वपतित= अर्थात्—एकसुवारी• एकपांतिमें भोजन• एकही आसनपर• एकहीशयन पलंगआदि पर• प्रतिपन्नके साथ इन चारों प्रकारसे आचरणा करता हुआ पुरुष एकवर्ष में पतित होताहै और यौनिके संबध से• सुवाके संबध से• मुखके संबध से• तत्काल पतित हो जाताहै (यहां यौनि का संबध कन्या देना या लेना तथा सुवे का संबध होम यज्ञ आदि उसको करवाना या उसके द्वारा आप करना तथा मुख्य संबध जो मुख से उत्पन्न होय किन्तु वेद विद्याका पढाना या उससे आप पढना भी कहाता है) और इसी श्लोकमें जो एक भोजन कहा सो केवल एक पांति में बैठि भोजन करने मात्र को समझना किन्तु एकही चौके वा एक थालीमें साथ भोजन मत समझना क्योंकि एक वर्ष में पतित होना कहा गया तिससे और साथ भोजन करनेवाला तत्काल पतित होजाता है तिससे भी• बल्कि उसी समय तत्काल पतन होजाने सध्ये देवल का यह वचन प्रसारा है कि (याजनयौनिसवध• स्वाध्याय सहभोजनर हत्वासद्य पतत्यैवर्षाततेननसशयः) अर्थात्—याजन कर्म जो पहिले सुवेके नाम से कहि चुके और वही पड़िला कहा यौनिका संबध और स्वाध्याय पढना पढाना और एकसाथ भोजन करना पतितके साथ इनकानोंका संबध जोड़ि के तुरन्तही पतित होजाता किन्तु जातिसे गिरजाता है इसमें कुछ संदेह नहीं और यह भी नहीं कि ये चारो

कान इकट्ठेकरे सोई पतित होवै किन्तु इनमेंसे किसी एकही संबंधके जोड़तेसार जातिसे छुटिजाताहै—इस बातका प्रमाणा भी सुमन्तुका यह वचन है कि (यःपतितैः सह यौनसुखस्त्रीवानां, संवंधानानन्यतमसंवंधंक्रुयति तस्याद्येतदेवप्रायश्चित्तमिति) जो कोई पतितोंके साथ० योनि० सुख० सुवे०के संबंधोंमें किसी एक संबंधको जोड़े तिसको भी यही प्रायश्चित्त है जो मुख्य पतितोंके लिये हम कहि चुके—परन्तु पहिली चार बातें एक सवारीआदि जिनसे एकवर्ष भरतक हेलमेल होनेमें पतन होना कहाया सो सबकीसब चारोंसे संबंध जोड़नेसेही पतन होताहैजुदीएकसे नहीं० क्योंकि उनके लिये ऊपर वृहद्विष्णुका वचन देखो तहां (एकग्रामभोजना नशयनैः) यह इतरतर युक्त निर्देश किया गया था तिससे किसी एक दोके अनुसार संसर्ग अपने जाती धर्मसे नहीं गिर सकताहै० तथापि एकही दोके सेवनसे दोयका हेतुखडा होता है प्रमाणा इसमें पराशर का वचन आगे देखो (आसनाच्छयनाद्यानात्सभायात्सह भोजनात् संकसंतिहिपापानितैलविंदुरिवांभसि) अर्थात् पराशर ने इस वचन में जुदे जुदे एकही एक से पापका हेतु जाहिर कियाहै कि आसन बैठने से या खाद आदिपर साथ सोने से या सवारी पर साथ बैठने से या वार्तालाप से या समीप बैठि भोजन करने से पाप इसतरह चडि आते हैं कि जैसे जल में तेल का बूंद फैल जाता है—इनके सिवाय (संलाप स्पर्श निःश्वास) इत्यादि देवल के वचन में कहेहुये येही तीनों हेलमेल अर्थात् पास भिडिके विशेष वार्तालाप करना और देहसे देह भिडाना और मुहकी वाफ अपने ऊपर लगनेदेना यह तीनों बात बहुत छोटीहैं तिससे इनमें किसी एकहीके होने मात्र से संसर्ग का जाति से छुटना आदि पतन कभी नहीं होता न इनका कोई जुबा नियम है क्योंकि ये तीनों बात अधिक हेल मेल से उन्हीं चारोंके साथ में उत्पन्न होती हैं कि जिनसे एक वर्षभरके हेल मेल में पातित्य होनाकहि चुके यह समझ लेना० परन्तु पापरूपी दोय मात्र इनसे भी होता है कि जैसा पहिले देवल के वचन में पाप का चडिआना कहा गया था ॥ ० ॥ तात्पर्य निर्णयः—इस व्यवस्था से यह तात्पर्य दर्शिरा कि जिनसे (संलाप० स्पर्श० निःश्वास) इन तीन के विना सवारी आदि चारों भाँति के संसर्ग एक वर्ष भर किये हों तिसको पूर्वाक्त आरह वर्षका प्रायश्चित्त पाँचवां भाग छोडिके करना चाहिये० और जिनसे ये तीनों बात भी उनके साथ अधिक हेल मेल से करी हों तिसको एक वर्ष वीति जाने पर बारह वर्ष का पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिये० इस रीतिसे योगीश्वर का यही मूल प्रतीक (सर्भस्तुसवलेद्यैवैवत्सरंशोपितस्मजः) कि इनके साथ जो कोई एक वर्ष

आच्छी तरह बसे सोभी उसके समान पातकी ठहरे और उसीका प्रायश्चित्त करे—
 यहभी उन्हीं सवारी आदि चारिही बातों के हेतुमेल पर ठीक रहा जिनमें एक वर्ष
 से पतित होना कहि चुके अर्थात् जिनसे तत्काल पतित होजाना कदा तिनको
 मध्ये योगीश्वर का मूल प्रलोक नहीं है। इसी आशय पर मनुका यह वचन है कि
 (सवत्सरेणा पततिपतितेनसहाचरन् याजनाध्यापनाद्यौनान्तुयानासनाशानात्) अक्ष-
 रार्थ इसका यही है कि एक वर्ष से गिरजाता है गिरे हुये के साथ आचरणा करते
 हुये याजन अध्यापन से यौन से नहीं सवारी आसन भोजन से—प्रत्यक्षतो व्याकरणा
 काव्य दोनो मार्ग से यह अर्थ अनमेल है इसी से भाष्य से भी ठीक नहीं समझि
 परा कि यह क्या कहा और इसी लिये मिताक्षराकार ने इस वचन को ऊपर बहुत
 कुछ अर्थवाद खडा किया है कि जिसका लिखना कुछ यहां पर आवश्यक,
 नहीं वल्कि निरर्थ जानि के छोड़ि दिया गया तथापि केवल प्रयोजन की बात
 लेनी आवश्यक है तिसके लिये व्यवहित योजना का सबव मानि लेना कि (पतित
 के साथ सवारी, वैठका और बैठका के उपलक्षणा से खाट आदि शब्दाः और एक
 पतित में भोजन इन चारों के हेतु से आचरणा करते हुये एक सबव की अवधि से
 पतित होता है परन्तु होम यज्ञ और पढना पढाना और योनि के सवन्ध विवाह से
 नहीं एक सबव में पतित होता है अर्थात् इनसे तुरन्तही पतित होता है जैसे ऊपरले
 अनेक वचनों से अर्थ सिद्ध होचुका तैसा इसमें भी वही तात्पर्य है कुछ और नहीं
 क्योंकि इसमें ढँका हुआ तात्पर्य है उन वचनों में खुला हुआ सिर्फ इतना भेद है
 अन्यथा धर्म शास्त्रमें एक वचन के लिये अनेक वचनों की स्पष्ट व्यवस्था नहीं
 उलटी चल सकती है ॥ ० ॥ सिद्धांतार्थ निर्णय—जबकि यह व्यवस्था ठीक हुईकि
 विवाहभोजन आदि चारवातोसे तुरन्त पतित होजाता है और सवारी में बैठनेआदि
 चार वातों से निरन्तर एक वर्ष भर अभ्यास करने में पतित होता है तो फिर इसके
 लिये यह बात भी आवश्यक है कि एकवर्ष के पूरे ३६० तीनोंमासि दिनकी गिनती
 करनी चाहिये इसका यह तात्पर्य है कि जिसने कोई महीने सर्ग करिके बीचमें कहीं
 चलेजाने आदि कारणों से छोड़िदिया फिर कभी आकर उनीका सर्गकिया तिसका
 हिसाब जोडना चाहिये जोडने से भी ३६० तीनों मासि दिवस जिसके पूरे नहो तो
 फिर पतित वाला पूरा प्रायश्चित्त भी उसको नहीं चाहिये किन्तु औरती रीति से
 प्रायश्चित्त कराना चाहिये कि जैसा गार्गे पराशर के वचनों से पाया जाय=यथाह
 पराशर=सर्गमाचरन्निप्र पतितादिप्रकामत् पचाद्वादशह्रबाद्वादशाहमथापिवा

नासाहंभासमेकंवासासवयमयापिवा अन्दाहंमेकसहवाभवेदुध्वंतुतससः (अथप्रा-
यश्चिनभेदाः) विराचंप्रथमेपक्षेद्वितीयेकृच्छ्रमाचरेत् चरेत्संतपन्कृच्छ्रं तृतीयेपक्षएवतु
चतुर्थेदशरात्रस्यात्पराकःपंचमेतत्तयुचेचांद्रायणांकुर्यात्सिद्धमेत्वेन्दवहयम् अथमेचतया
पक्षयरासासांनकृच्छ्रमाचरेत्=अर्थात्-ब्राह्मणा किसा पतितआदिके सायविना चाहे
यदि मूलमेसंसर्गकोआचरै यदि पांच वा दशदिन या बारहदिन या एकपाख वा एक
महीना वा तीनमहीने वा एककृष्णमाही वा पराएकवर्ष तिसकोउपरान्त उसीपतितकेसमा-
नआप होजाताहै (इनकेजुदे प्रायश्चित्तकोभेदहै कि) जिसका प्रथमपाखबाराके भीतर
संसर्ग हो सो तीनदिन व्रतादि प्रायश्चित्त करै. जिसका संसर्ग दूसरे पाखबारामें जा
पहुंचाहो सो कृच्छ्रव्रत करै. जिसका तीसरेपाखमें पहुँच गया हो वह सांतपन कृच्छ्र
करै. चौथे पाखमें संसर्ग पहुँचाहो सो दशरात्र प्रायश्चित्त करै. पांचवें पाख में संसर्ग
पहुँचाहो तो पराक नामका प्रायश्चित्तकरै छठेपाखतक पहुँचाहो तो एकमहीनाचां
द्रायणा करै. सातवें पाख तक संसर्ग हुआ हो तो दो महीना चांद्रायणा का आठवें
पक्षतक संसर्गभयाहो तो छेमहीनेभर कृच्छ्र व्रतकरै ॥ अत्रापिकासकृतसंसर्गप्रायश्चित्त
जिसनेजानिबूझिं कामनासेसंसर्गकियाहो तिसकोसुभंतुने प्रायश्चित्त विशेषकहेहैं=य-
थाहसुभंतुः=पंचाहेतुचरेत्कृच्छ्रं दगाहेतुसकृच्छ्रकम् पराकस्त्वब्नासेयान्नासासेचांद्रा-
यणाचरेत् सासव्येप्रकूर्वातकृच्छ्रं चांद्रायणांतरस यरामासिकेतुसंसर्गकृच्छ्रं स्वदरिद
माचरेत् संसर्गत्वन्दिक्कुर्याद्विद्वंचांद्रायणांतरः=अर्थात्-पांच दिनके संसर्गमें कृच्छ्र
व्रत साधै और दशदिन के संसर्ग में तप्त कृच्छ्र करै एक पाखभर संसर्ग किया हो तो
पराक व्रत करै एक महीना भर संसर्ग किया हो तो चांद्रायणा करै तीन महीना के
संसर्गवाला कृच्छ्रात्मक चांद्रायणा करै छे महीना के संसर्गमें एक कृष्णमाहीभर कृच्छ्र
व्रतकरै एक वर्ष के भीतर संसर्गवाला मनुष्य एक वर्ष तक चांद्रायणा करै (इसमें
जो पूरे एक सालके संसर्गपर एकही सालका प्रायश्चित्त कहागया तिसको कृष्णमाही
से ऊपर और बारह सालके भीतर वाले संसर्गोंपर समझना क्योंकि पूरे वर्षके पूरे वा
पूरेसे अधिक संसर्ग मध्ये मन्वादिन ऋथीयरोने बारहवर्ष कहेहैं जिसका वरान्त प-
हिले होचुका सो निरर्थक न उहिरै ॥ अत्रापिनियमांतर व्यवस्थासाधन-इत
व्यवस्थामें यह बात सिद्ध होचुकी है कि एक पाखमें पतितके साय निलके भोजन
करने या पतितको लड़की वा लड़केसे बिवाह संबंध करने या होन यज्ञ आदि पा-
वारिके कर्म करने कराने या पतितसे विद्याका संबंध पढ़ने पढ़ानेसे तुलन्त पतित हो-
जाता है. तथापि इन्हीं चारो संसर्गोंके नश्रे एक एहस्पति के वचन में कृष्णमाही भर

संसर्ग करनेसे पातित्य लगाना कहा है—यथाह वृहस्पतिः—यसामसिकेतुसंसर्गोयाजना
 ध्यापनादिना संकवासनश्रद्धयाभिःप्रायश्चित्ताहमाचरेत्—अर्थात्—छे महीनेकी याजन
 अध्यापन आदि चारों में किसी एक संसर्ग के होने में तथा एकही वेदका सोउना
 आदि से भी आधा प्रायश्चित्त करै अर्थात् जो पतितके बारहवर्ष-हों तो संसर्ग को
 छे वर्ष चाहिये—सो इस नियम को ऐसी दशा पर जोड़ना चाहिये कि जहां संसर्ग
 करनेकी इच्छा तो नहीं थी परन्तु अत्यन्त आपत्ति आनि, परनेसें धरही, की पातकी
 साथ भोजनका संसर्ग करना परा या केवल पंच महायज्ञ आदि में, यजन का संसर्ग
 या पतित अपना वेदा भतीजा आदि अंगही गिना जाता हो तिसका पढ़ाना या
 योनिका संबंध निज पतित की वेदी ब्रह्मिन आदि के सिवाय उसके कुल में किसी
 गौर कन्या वा गौर लड़के से किया गयाहो तहां तत्काल के सिवाय छः महीनातक
 संसर्ग बना रहने से पातित्य और उसके लिये आधाही छः वर्ष का प्रायश्चित्त क-
 राना ठीक होगा और श्रेय वातें एक सवारी आदि चारों कि जिनका पहिले एक
 वर्षभर पूरे से अधिक संसर्ग रहने मध्ये बारहवर्ष का प्रायश्चित्त कहा गया उन्हीं
 को इस वेचन में आधा कहा सो यह स्वतः ठीक ठीक है कि छः महीना के संसर्ग
 से आधा रहिगया—यहां तक महापातकियों के संसर्ग को प्रायश्चित्त वर्गान हो
 चुके ॥ अघातिपातक्यादीनां संसर्गप्रायश्चित्तविचारः—इसी पूर्वोक्तडोलमार्ग
 का सहारा लेकर उनसे नीचे अति पातकी आदिका संसर्ग देखना चाहिये कि जहां
 कहीं वेदी या ब्रह्मिन या पुत्रकी वृद्ध गमन करने वाले अति पातकी का संसर्ग जि-
 सने कियाहो तहां चाहिके संसर्ग करनेवालेको नौवर्ष का प्रायश्चित्त और विना
 चाहे संसर्ग करने वाले, को उससे आधा साठे चार वर्ष का करना चाहिये—एवं—
 जहां मित्र या चचा की दारा आदि पूर्वोक्त स्त्रियों जिनसे पातकमात्र होता, कहा
 गयाथा तिनकी गमन करने वाले पातकी पुरुष का संसर्ग जिसने किया हो तहां
 कामना से संसर्ग करैया को छः वर्ष और विना कामना के संसर्ग वाले को तीनवर्ष
 का प्रायश्चित्त करना चाहिये—इसी प्रकार—जहां उपपातकी आदि छोटे पापियों
 का संसर्ग जिसने किया हो तहां कामना से संसर्ग करने वाले को उन्हीं का प्राय-
 श्चित्त तीन महीना और कामना विना संसर्ग वाले को उससे आधा डेढ़ महीना व्रत
 करना चाहिये ॥ स्त्रीगामपिसंसर्गप्रायश्चित्तं—पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंकी भी महा-
 पातकी आदि के संसर्ग से पातित्य बरानर होता है—यदाह ग्रीनकः—पुरुषस्ययानि
 पतननिमित्तानिस्त्रीगामपितान्येव ब्राह्मणोहीनवर्षासेवायामविकंपततीति—अर्थात्—

त-जाति से गिरजाने के जो जो निमित्त पुंस्य को होते हैं वही सब स्त्रियों को भी होते हैं और ब्राह्मणी होकर जो हीनवर्णा की सेवा करें सो पुरुषसे भी अधिक पतित होती है यह शौनक ने कहा—इस हेतुसे उनको भी महापातकी आदि पापियों में जिस किसी प्रकार के पापी साथ हेल मेल होजाय उसी पापी के ज्ञिये जो कुछ प्रायश्चित्त ठीक होय तिससे आधा करवाना चाहिये क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों से आधाकरना कहिचुके हैं—इसी प्रकारवालक बूढे रोगिओंको भी समझौ कि जिसने कामनासे चाहिके संसर्ग कियाहो तिसको मुख्य पापीसे आधा और विना कामना के संसर्ग वाले को चौथाई करना चाहिये—तथा जो वालक विना जनेऊ का हो तिसको कामना के संसर्ग में चौथाई और विना कामना के संसर्ग में आठवां भाग प्रायश्चित्त चाहिये यह व्यवस्था का सार्थ है । ॥ २६१ ॥ यह पूर्वार्धकी अधिकोक्ति पूरीहुई अब दूसराअर्धा अगिले परिच्छेदमें शामिल होगा कि जिसमें पतितकी कन्या विवाहि लेनेकी आज्ञा भी बिरली दशा मध्ये दीजायगी ॥ २६२ ॥

अथ पतितसंसर्ग प्रतिषेधात्प्रतिषिद्धस्य यौनसंबंधस्य प्रतिप्रसव निदर्शकोऽयं परिच्छेदः अष्टाविंशः ३६

—*—

इस परिच्छेद में पहिले निषेध का कुछ थोड़ासा प्रतिप्रसव दियाजायगा अर्थात् ऊपर के परिच्छेद में पतित की कन्या से विवाह करना भी निषेध किया गया था तिसके साथ विवाह बिरली दशामें करिलेना योग्य होता है उस बिरली दशा का स्वरूप कहा जायगा ॥ प्रतिप्रसव इसी का नाम है कि जो बात पहिले मने कारचुके हों उसमें थोड़ीसी करने को भी आज्ञा दीजाय ॥

(यौननिषेधेप्रतिप्रसवः)

कन्यासमुद्धहेदेषांस्तोपवासात्मकिंचनाम् २६१

अर्थः—इनकी कन्या को सोपवासा को अकिंचना को भलेही विवाहि लेवै—अर्थात्—इन्हीं पूर्वोक्त पतितों की कन्या जो पतित होनेकी दशा में उत्पन्नहुई हो तिसको यदि इच्छा किसीकी हो तो वेखटके विवाहि लेवै कुछ दोय नहीं है परतु इस रीति से विवाहनी चाहिये कि निराहार उपवास करो हुई और अकिंचना कि

जिसको साथ कपड़े गहना आदि उसके वाप का कुछ न लिया जाय (और निराहार उपवास का यह तात्पर्य है कि जितना पतित वाप आदिसे संसर्ग रहाहो उसके अनुसार पंचगव्य आदि से संक्षेप यथार्थात् प्रायश्चित्त करवाइके विवाहनी चाहिये) और विवाह लेवै इस कथन का यह तात्पर्य है कि पतितको हाथ से कन्या दान आदि करवाइके न लेवै क्योंकि उसको जाती धर्मोंका अधिकार नहीं है तिससे आपही जिस कन्या ने पतितका संसर्ग छोड़ि के विवाहकी इच्छा करीहो तिसको पतित के घर से उपरालू किसी देवस्थान आदि में शास्त्रोक्त मर्यादा से विवाह लेवै तो इस रीति से उस विरोध को शंका भी नहीं खड़ी होसकी है कि पहिले परिच्छेद में पतितों की कन्यासे यौन संबंध का निषेध कियागया था फिर कौंकर उसी कन्या से विवाह करना कहा गया ॥ २६१ ॥

२६१ अधिकोक्तिः—जो व्यवस्था ऊपर कही गई तिसको वृद्ध हारीतने विशेष व्यौरा से स्पष्ट करिके दर्शाया है—यथा=पतितस्यकुमारीन्विष्वस्त्रानहोरात्रमुपो-यित्वांप्रातःशुक्तेनाहतेनवाससाच्छादितानाडमेत्यांनसमैतेइतित्रिहृचैरभिक्षानांतोर्ये स्वगृहेवोद्धहेत्=अर्थात्—पतित की कुमारी कन्या को विना वस्त्रों के एक दिन राति उपास करी हुई की प्रातःकाल होतेसार नवीन शुक्त वस्त्रकी धोवती पहिनाइ ओ-डाइके उसकन्याकेमुखसेतीन बार ऊंचेशब्दसे ऐसाकहवाइके कि (आजसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरे रहे) तिस पीछे कन्या लेजाइके किसी देवालय आदि तीर्थ में या अपने घरपर यथा विधान से विवाह करै ॥ ० ॥ मूल प्रलोक में (एयां कन्यांसमुद्धहेत्) यह कहा गया कि इनकी कन्या को चाहें विवाह लेवै तिसका यह तात्पर्य उहिरा कि सिर्फ कन्या चाहें इन्हीं रीतों से विवाह लेवै पन्तु पतित के लड़कोंकी अपनी कन्या न देवै कि जो जो लड़के अपने पतितपिता धाता आदि में संसर्गी बनेरहे हों या पतित होनेकी दशा में उनके पतित वीर्य से उत्पन्न हुयेहों—इसीलिये वसिष्ठने कहा है कि (पतितेनोत्पन्नःपतितोभवति अन्यवस्त्रियाः साह्विर गामिनीमातृस्त्रियमुपेयात्) पतितसे उत्पन्न होय सोभो पतित होताहै पन्तु कन्या के सिवाय पुत्रही की समझना कौंकि यह स्त्रीकी जातिहै पराये घर जाने योग्यहै माता का संगी उस में अधिक होने से माता का धन पावैगी घोडासा प्रतिप्रसव इसी हेतुसे यहउहिरा किलड़का लड़की दोनोंसे यौन संबंधका निषेध पहिले किया था उसमें केवल पुत्रीसे यौन संबंध की आज्ञा यहाँ दीगई ॥ ० ॥ मूल के अर्थोंमेंयह कहा गया कि पतित होने की दशा में जो पतित के वीर्य से उत्पन्न कन्याहो तिस-

सको इन रीतों से विवाह लेवे—इस कथन का प्रत्यक्ष यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्त का स्वीकार और उद्योग जिसने नहीं किया और पत्नीने भी संसर्ग उसका नहीं छोड़ा ऐसीदशामें जो गर्भ रहिकर कन्या हुईही फिर गर्भ रहे पीछे चाहेपतित पुत्र्य प्रायश्चित्त करने चला गयाहो तौभी वह कन्या पतित वीर्यसे होचुकी तिस को उक्त रीतों से विवाह लेने में कुछ दोष नहीं है—परन्तु इसी गर्भ से जो पुत्र पैदा हुआहो तिसको कोई अपनी कन्या देकर यौन संबंध से संसर्ग न करे यह नियेध पूरंपूर है—औरभी—उसी कथन का यह तात्पर्यहै कि जिस किसीने प्रायश्चित्त का प्रारंभ ही करदियाहो परन्तु जवतक पूरा न हो तवतक उसको शुद्धि नहींप्राप्तहोती है और वह प्रायश्चित्त अपने ग्राम नगर के समीपही किसी जंगल या गोत्रज देवस्थल आदि में आरम्भ किया गयाहो ऐसी दशा में अर्थापि ब्रह्मचर्य से जितेंद्रीहोके रहिने का आदेशहै और पत्नीको भी पतित पतिसे संसर्ग करनेका निषेध है तथापि जो दोमें से कोई एक या दोनों दंपती कामातुर होके धर्म मर्यादाका अतिक्रम करें अर्थात् निकट होने से दर्शन के वहाने मिलिके संगन करें और इसी दशामें जो पतित वीर्य से गर्भ रहिजाय तहां पत्नीभी संसर्ग दोषसे पतित हुई दहिरेगी और इसी गर्भ से यदि पुत्रपैदा होजाय सोभी पतित होगा तिस पतितको कोई अपनीकन्या न देवे यह पहिले परिच्छेद के अनुसार यौन संबंध से संसर्ग का निषेध दहिरा परंतु जो इसी गर्भसे कन्या पैदा हुईही तिसको उक्त रीतों से विवाह लेने में कुछ दोष नहीं है यह इसी परिच्छेद के अनुसार प्रतिप्रसव दहिरा—औरभी—उसी कथन का यह तात्पर्य है कि जिस किसीने निपट प्रायश्चित्त करनाही स्वीकार न कियाहो अर्थात् जाति विरादरी से छुटा रहिना स्वीकार करलिया और उसको पत्नी आदि परिवारने भी उसको नहीं छोड़ा इसी हेतुसे उसका घरकुटुंब सभी पतित दहिरे और इसी हेतु से उसके लडका लडकी विवाह से रुके रहिके बहुत बड़हुये होंगे (चाहे पतित होनेकी दशा में उत्पन्नहुये यद्यपि पहिले अच्छी दशामें होचुक्तये कुछ इसका नियम नहीं क्योंकि जो पहिले पैदा होचुके हों वेभी संसर्गी बने रहिने से उसके समान पतित दहिरे) तहां उसके लडकों को कोई अपनी कन्या न देवे—यह पहिले परिच्छेद से यौन संबंधका संसर्ग नियेध होचुकाहै सो ठीक रहा और लडकियाँ जो सयानी होचुकीं तिनको इसी परिच्छेद वाली प्रतिप्रसवकी मर्यादा से लिखी हुई रीतों के अनुसार जो चाहीं सो विवाहिले इसमें दोष नहीं है (स्वीरत्नदण्डकुलादयि) यह वचन केवल इसी दशाके निमित्त पर आरूढ है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ इसमें दोष

नहीं बल्कि एक प्रकार का अत्यंत सूक्ष्म और प्रबल पुराय प्राप्त होता है क्योंकि दोषाभाव तो इसी परिच्छेद के वचनोंसे संसिद्ध है और पुराय इस ध्वन्यर्थ से उत्पन्न होता है कि जैसे धर्मात्मा लोग विरानी कन्या सयानी न होने पावें शीघ्र उद्धारकर देने के लिये आप द्रव्य देते और दूसरोंसे दिवाते हैं इसकी वरवार कोई और पुराय नहीं है जो अपनी या विरानी कन्या उचित समयपर सत्पात्र को देदीजाय—तिससे इस पुरुष को वही पुराय होगा जो बहुत्वद्मे प्रतिबंधसे रुकोहुई कन्या का उद्धार करे या और से करावे—परन्तु इसके साथ यहभी एक प्रतिज्ञाई जो ऊपरले वचनों में टुडहारीतने दर्शाई कि (आज्ञसे न मैं इन सबकी न ये सब घरवाले मेरेरहे) यह तीनि बार कन्या के मुखसे पंचों के सन्मुख उच्चारणा कराइ लेवै अर्थात् कन्या भी अपने हृदयसे ऐसा विवाह चाहती हो और उसके घरवालेभी यही चाहतेहैं किसी तरह का दावा भराडा श्रेय न रहि जाय और घरवाले कभी कन्याकोदेखने मिलने आदिके अधिकारी न रहें क्योंकि पतितांसे संसर्ग अपेक्षित नहींहै केवल कन्या का उद्धार करना एक धर्म है यदि कन्या इन्हीं नियमों पर आखुद होकर पक्की हो और धर्म तथा अघर्म दोनों को समुभक्तोही सो सब नियम ये सयानी और होशदार कन्या से संबंध राखते हैं अबुक्त वचों से नहीं यह सिद्धांत है ॥ २६१ ॥

इतिसंसर्ग प्रायश्चित्त प्रकरण

इस प्रकारा में मैतीस और आतोस दो परिच्छेद हैं जो ऊपर होचुके ॥ अब यह बात सोचनी चाहिये कि यहाँ पर उन दोही परिच्छेद में नियह संसर्ग का चर्चा या उभी चर्चा के प्रसंग से अगिले परिच्छेद में भी उस भांति को प्रायश्चित्त कहे जायँगे जो नियह संसर्ग (खोटेसंयोग) से उत्पन्नहुये प्रतिलोम जाती अति नीच अनुष्णों का वध करने वाले पर आखुद हों ॥

अथ प्रतिलोमानां वध प्रायश्चित्तस्वरूपस्य च पुनः स्त्री

शूद्रादिनिमित्तानां प्रायश्चित्तकरणोऽधिकारस्य च
प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः जनवत्वारिंशः ३६



इस परिच्छेदमें दो नियम विशेष्य कहे जायँगे कि प्रथम जो प्रतिलोम जाती पुरुषोंका वध करनेवाले वैवर्णिकहों तिनके प्रायश्चित्त विशेष्य कहे जायँगे—
फिर—स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जन्मा सूत मागध आदि जातें जो वेद आदि मंत्रोंके अधिकारी नहीं हैं या अधिकार होते भी जो मंत्रज्ञानसे विहीनहों तिनको प्रायश्चित्त करनेका अधिकार विशेष्य रीतिसे दर्शाया जायगा कि मंत्रोंके बिना भी करसक्ते हैं इत्यादि ॥

(अवकृष्टवधप्रायश्चित्तं)

चांद्रायणं चरेत्सर्वानवरुष्टान्निहन्यतु । २६२ पूर्वाह्नरत्नलोकः ॥

अर्थः—सभी अवकृष्टोंको मारिके चांद्रायण करै=अर्थात्—प्रतिलोम जन्म होने से खींचकर दूर निकासे हुये सूत मागध आदि जनों में से किसी एकही पुरुष को प्राणों सहित वध करिके एक सहोनेका चांद्रायण व्रतकरै तब शुद्धहोय ॥ २६२ ॥

२६२ अधिकोक्तिः—जैसा इस पूर्वार्ध मूलश्लोकमें योगीश्वरने नियम कहा तैसा शंखने भी कहा है—यथा=सर्वथासवकृष्टानां वधे प्रत्येकं चांद्रायणं=अर्थात्—सभी अवकृष्टोंके वधमें प्रत्येक जुदे जुदेके मारने मध्ये एक चांद्रायण करै ॥ और जो अगिरा का यह वचन है कि (सर्वान्यजानांगमनेभोजनेचप्रमापणो पराकेराविशुद्धिः स्यादित्यां गिरसभायित्तम्) सबही अंत्यजों के साथ मिलिके कहीं जाने आने या उनके पाप वैदिके भोजन करने या उनके प्राण वध करने में पराक व्रत करने से विशुद्धि होय यह अगिराने कहा• सो इस वचनमें ऊपरले चांद्रायण को मिलाइके यह व्यवस्था समुभिलेनी कि जहाँ इच्छा सहित जानि वृत्ति के वध किया हो तहाँ सूत आदि सबके वधमें प्रत्येक चांद्रायण चाहिये और इच्छा बिना वध होनेमध्ये केवल सूत जातिके मारनेमें पराक व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें पूरा होता है यही पराक

व्रत पौना करिके नौरोजका वैदेहकी मारने में करना चाहिये और यही पराक व्रत आधा सिर्फ छेदिनका चंडालकी मारने में करना चाहिये एवं मागधके वध करनेमें भी यही पराक चौथाई कम करिके नौरोज करना चाहिये और क्षत्ताके वध करने में आधा सिर्फ छः दिन करना चाहिये और आयोगवधके वध करने में भी दोही पाद अर्थात् छेदिन व्रत करना चाहिये—इन्हीं भेदोंके अनुकूल इसी मार्गसे चांद्रायण में भी भेद कल्पना करनी चाहिये कि जिसको कामनासे वधकरने मध्ये करना कदा ॥ और एक ब्रह्मगर्भका यह वचन है कि (प्रतिजोमप्रसूतानां स्त्रीणामासावधिष्मृतः अन्तरप्रभाधानांचसूतादीनांचतुर्द्वियत्) अर्थात्—प्रतिलोम जातियों की स्त्रियां वध करनेवाले को एक महीने का व्रत कदा और उन्हीं सूतादि प्रतिलोम जातियों के पुंस्य वध करने में चार दो छे महीने व्रत समझना—सो यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त आर्तित्त के निमित्त पर आवश्यक है कि जिसने तर ऊपर लगातार दो तीन पुंस्य मारे हों तिसके लिये और इसमें जो चार दो छे मास कहे तिनको जातियों को बड़ाई छोटाई के क्रमसे नहीं कहे किन्तु उनकी बड़ाई छोटाई की योग्यता पर संयुक्त करिके आगे के पीछे व्यवहित मार्गसे समझिलेने अर्थात् मृतजाति के पुंस्य वध करने में छे महीने और वैदेह जातिके वध करने में चारि महीने चंडाल जातिके वध करनेमें दोमहीने प्रायश्चित्त करें—तथा मागध जातिके पुंस्य वधकरने में चारि महीने और क्षत्ताजातिके पुंस्य वधकरनेमें दोमहीने और आयोगवध जातिके पुंस्य वध करने में भी दोमहीने प्रायश्चित्त करें तब शुद्ध होय—इस व्यवस्था में यद्यपि किसी प्रायश्चित्त का नाम नहींकहा सिर्फ महीनोंकी तादाद कही तथापि चांद्रायण व्रत समझना जो एक महीनेमें एक परा होताहै दोमें दो इत्यादि ॥ २६२ ॥

अब आगेउत्तरार्द्ध मूलश्लोकपर यह बात सिद्ध होगी कि स्त्री और शूद्र आदि जो जो नंत्र आदि विद्याके अधिकारी नहीं सोभी अपने योग्य प्रायश्चित्तों को संघों के विनाही कर सकेंगे ॥

(शूद्रादिकर्तव्यमंत्रप्रायश्चित्तं)

शूद्रोऽधिकारहीनोपिकासेनानेनशुद्धयति २६२

अर्थः—शूद्र अधिकारसे हीनहै तोभी उक्तअर्वाधिके काल सेही शुद्ध होगा—अर्थात्—अवतक यह संदेह खड़ा रहाथा कि प्रायश्चित्तों के नैमित्तिक व्रत जो बहुधा कहे गये था आगे कहेजायेंगे सो प्रायश जप पाठ आदि प्रकारों से करने कहे गये—तहां

जो पुस्तक विद्या पढे नहीं या स्त्री और शूद्र आदि अनेक जातें जो निपट मंत्र विद्या के अधिकारी नहीं तिनको उन प्रायश्चित्तों का करना संभव नहीं होगा क्योंकि (जिन कर्मों में धी का दर्शन अर्थात् धीमें अपने मुँह की छाया देखना आदिकोई नियम विशेष लगाही उन कर्मों में अंधे पुस्त्यों का अधिकार नहीं सिद्ध होता है) इस न्यायसे विद्या विहीन आदि उन प्रायश्चित्तों के अधिकारी ही न होंगे—यह संदेह निराने को अब कहितेहैं कि यद्यपि शूद्र आदि बहुतेरे मनुष्य जप, प्राण आदि करने के अधिकारी नहीं तभी इसी काल से संशुद्ध होते हैं जो वारह वर्ष आदि के काल नियम कहे गये (यद्यपि मूल में शूद्रही मात्र कहा तभी यह शूद्र कहिना वै-
र्षायां क्विचिद्यं तथा प्रतितीन जाती पुस्त्यों का भी उपलक्षणा है ॥ २६ ॥

२६२ अधिकोक्तिः—यद्यपि शूद्र आदिको गायत्री आदिके जप करने अंतर्भव हे जो प्रायश्चित्तों में होतहे तभी इनको नमस्कार रूपी जो मंत्र है वही जप करना चाहिये इसीलिये स्मृत्यंतर वचन से यह कहा है कि (उच्चिच्छयं चास्यभोजन मनुजा तोऽस्य नमस्कारो मंत्रः) शूद्रकेलिये तीन वर्षाकी जूटनि भोजनकहा और नमस्कार एक मंत्र है—अथवा यह न माना जाय तभी वचन की प्रबलता से जप आदिकिये विनाही व्रत करे यह तात्पर्य है कि जैसा यह अंगिराका वचन है—यथा—तस्माच्छू-
द्रं समासाद्य सदावर्षपर्ये स्थितम् प्रायश्चित्तप्रदातव्यं जपही मन्त्रवर्जितम्—अर्थात्—शूद्र को किसी जपमें अधिकार नहीं है तिससे जो मन्त्र धर्मके सार्वपर चलनेवाला शूद्रही तिलको किसी प्रायश्चित्तके अवसर पर आच्छद करिके जप होम से रहितही प्राय-
श्चित्त देना चाहिये—उन्हीं अंगिराने इसकेलिये दूसरा भी प्रकार दर्शाया है—यथा—
शूद्रः कालेन शुद्धो तमीत्राह्वराहितेरेतः ननुर्वाप्युपवासैर्वीडजभुयुययातया—अर्थात्—
प्रायश्चित्तकी अवधि भर कहे कालसेही शूद्र होता है जो गऊ ब्राह्मणको दित से लगा रहे अथवा नियत काल भर अनेक दानों से—करने से यद्वा उपवासी से और तीनों वर्षाकी जिलोभ सेवा शूयया करनेसे भी शुद्ध होता है—और जो मनु का यह वचन है कि (नचास्योपदिशोद्धर्मं चास्यव्रतमादिशेत्) अर्थात् शूद्रको न धर्मका उपदेश देना न कीड़े व्रत आदिश करना—इसपर मितासराकार कहिते हैं कि यह उप-
पत्तन शूद्रके वियय पर आच्छद वचन है कुछ यज्ञ इस वचनसे तात्पर्य नहीं लेना है—
इसी प्रकार—सकस्मृत्यंतर यह वचन है कि (जश्चारायेतानि—प्रायश्चित्तं सदावर्षपर्य-
येषामु हाच्छे ज्वेतेषु शूद्रन्त्याधिकारो विधीयते) इतने कच्छव्रत जो कहेगए सोसदा तीनों वर्षाको करने चाहिये किन्तु इतने कच्छमें शूद्रका अधिकार नहीं कहा—सा

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड ।

४०१

यह निषेध काम्यकृच्छ्रोंके अभिप्रायसे किया गया है कि शूद्र इनको कासना से न साथे किन्तु प्रायश्चित्त मध्ये शूद्रको करनेका निषेध न समझना इसीलिये सदाशुद्ध का प्रयोग है कि वैवाहिक लोग जब चाहें तब सदाही कासनाके हैं शूद्र सदा नहीं=इन सभी वचनोंसे यह तात्पर्य सिद्ध हुआ कि तीन वर्गोंकी तरह स्त्री और शूद्र और प्रतिलोम जातोंकी भी प्रायश्चित्तके व्रत करने चाहिये=और जो गौतमका यह वचन है कि (प्रतिलोमा धर्महीना) सोभी यह प्रायश्चित्त का संबंधी नहीं किन्तु इसके उपरालू यज्ञोपवीत आदि विशेष धर्मों की अपेक्षा मध्ये कहा समझना ॥ २६२ ॥

इतिशूद्रायवकथजातिपर्यंतप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥

यह प्रकरणा केवल उनतालिमके एकही परिच्छेदसे पूराहुआ दूसरा इसमें नहीं है ॥

इत्यशेष महापातकादि प्रायश्चित्त प्रकरणानां बृहत्प्रकरण ॥

समस्त महापातकोंके अगले पिछले कई प्रकरणों के परिच्छेद मिलानेसे यहां तक उन्नीस परिच्छेद होतेहैं क्योंकि तीसवें परिच्छेद तक ब्रह्मविद्याकी समाप्तिहुये पीछे इक्कीसवें परिच्छेदसे लेकर तीसवें तक दश परिच्छेदों में अनेक भेद होनेपर भी केवल ब्रह्महत्याके नाम से प्रकरणा पूरा किया था—तिस पीछे इकतीसवां परिच्छेद लेकर यहां उनतालीसवें तक नौ परिच्छेदोंमें छोटे छोटे कई प्रकरणा भेद किये उन सबहीको मिलाकर यहाँ (अशेष महापातकोंके) नामसे एतद्व प्रकरणा मानागया कि जिसमें कुल १६ उन्नीस परिच्छेद हैं ॥

॥ जैसे २४२ दोसो ब्यालिसकी अथिकोक्ति में पापोंके अनेक भेद तेरह चौदह तक दर्शाइकर उनमेंसे मुख्य पांच भेद माने गयेथे कि महापातक १ अतिपातक २ पातक ३ उपपातक ४ अनुपातक ५—इनमें से महापातकों के प्रायश्चित्त ऊपर के प्रकरणमें वर्णन कियेगये उनके साथ अतिपातक और पातकोंके भी प्रायश्चित्त प्रदर्शित होतेरहे (और कुछ शेष रहाहोगा सो आगे कहीं दर्शावेंगे) परन्तु महापातकों का निःशेष वर्णन होवुका ॥ अब अगले परिच्छेद से उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥

अथोपपातकविषये गोहृत्यायाः प्रायश्चित्तैकदेश प्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चत्वारिंशः ४०



इस परिच्छेद में उस प्रकार की गोहृत्या के प्रायश्चित्त भेद कहे जायेंगे कि जो गाय अति उत्तम स्वामी की नही और वह गाय आपभी सामान्य जाति मात्र सेही गऊ कहातीहो विशेष गुरावाली गऊ न ही तिसका वध बिनाचाहे देवयोगसे यदि किसी से होजाय—कोकि विशेष गुरा वाली गऊ जो उत्तम स्वामी की हो तिसका वध होने मध्ये बडेप्रायश्चित्त है सो अगिले परिच्छेदों में हारीत आदि के वचनोसे दर्शाये जायेंगे (गाय की जाति मात्र में वृथभकाभी उपलक्षणा वर्तमानहै) इस गो-वधके अनेक भेदहैं तिससे इसके प्रायश्चित्त भी चार परिच्छेदों में जाकर पूरेहोंगे— २३४ मूल श्लोक से लेकर २४३ श्लोक तक पचास के लगभग उपपातक वर्णित हुयेये उनमें गोहृत्या यह सबसे पहिला एक उपपातक है ॥

येही ५० नहीं किन्तु औरभी बहुत हैं ॥

(गोधनस्यप्रायश्चित्तं)

पंचगव्यंपिबेद्गोघ्नोनासमासीतसंयतः । गोपेशयोगोऽनुगामी गोप्रदानेनशुद्धयति २६३
कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं च वरेद्वापिसमाहितः । दद्यात्त्रिरात्रं चोप्यष्टपभेकादशास्तुगाः २६४

अर्थः—गोघ्न पुरुष सहीना भर संयत हीकी गोष्ट में सोवै गौओं को पीछे फिर पंच गव्य पीवै फिर एक गऊदान करिके शुद्ध होताहै—अथवा पंचगव्यके पीने बिनाही इन्हीं सब नियमों से सहीना भर कृच्छ्र व्रत करै यद्वा उन्हीं नियमों से सहीना भर अति कृच्छ्र करै यद्वा उन्हीं नियमों से सहीना भर संयत रहेपीछे तीन दिन उपवास करिके दसगौओंके साथ ग्यारहवाँ आँडूवृथभदान करै तब शुद्ध होय ये सब चारि प्रायश्चित्तकहे तिनको ब्राह्मणा आदि वर्णोंके भेदसे व्यवस्था करिके कहेंगे सो सब अधिकोक्ति मे देखना ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

२६३ अधिकोक्तिः—इन चारोंप्रायश्चित्तोंमें कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र भी कहाये तिनकालक्षणा समभक्तलेवाचाहिये जिससे इनकीव्यवस्था जोवर्णानहोगी सोभीसमभी जाय—तहाँ कृच्छ्र नाम है प्राजापत्य और सांतपन आदि अनेक व्रतों का जो कष्ट के

साथ साधनहोते हैं क्योंकि कच्छहीका नाम कच्छ होता है—तिससे यहां पर कच्छ कहने से प्राजापत्य समझना जिस कर्मका प्रजापति देवताहोता है उस प्राजापत्यका यह लक्षण है कि (त्र्यहंप्रातस्तत्र्यहंसायत्र्यहमद्यादयाचित्तमत्र्यहंपरंचनाश्रीयात्प्राजापत्यमित्तिस्मृतम्) तीन दिन सवेरे और तीनदिन सांभको किंचित् अन्नखाय और तीन दिन बिना सांगे जो कुछ आजाय सो खाय फिरपीछे तीन दिन कुछ भी न खाय यह चारह दिनका प्राजापत्य कहाता है इसको कच्छभी कहते हैं—इससे आधा छः दिन का कच्छार्द्ध भी कहाता है (सायंप्रातस्तथैकैकीदिनद्वयमयाचित्तम् दिनद्वयंचनाश्रीयात्कच्छार्द्धःसोऽभिधीयते) अर्थात्—उसी पूर्वोक्तप्रकार से एक दिन सांभ को एक दिन सवेरे किंचित् अन्न खाय फिर दो दिन बिना सांगे जो कुछ आजाय सो खाय तिस पीछे दोदिन कुछभी न खाय सो कच्छार्द्ध कहलाता है इसको लघु प्राजापत्यभी कहिना चाहिये=अतिकच्छ इनसे जुदा व्रत है तिसका यह लक्षण है (एकैकंप्रास मश्रीयात्त्र्यहाराश्रीयापर्ववत् त्र्यहंचोपवसेदंत्यमितिकच्छं चरन्दिजः) अर्थात्—पूर्वोक्त किसी रीति से नौदिन तक एक एक प्रास भोजन करे फिर तीन दिन कोरा उपवास करे यह अतिकच्छ करते हुये द्विजाती का विधान है ॥ ० ॥ मूल श्लोकों की व्यवस्था अब कहिने का प्रारंभ करतेहैं कि—पंचगव्यका विधान जो शास्त्रमें प्रसिद्ध है उसीतरह बनाकरउतनाहीपीवै किन्तु पेट भरौआनहीं पर यही उसकाआहारहै कुछ और भोजन नहीं और (संयतः) अर्थात् शास्त्रोक्त सब नियमों को साधे हुये गौश्रों के गोष्ठ गौंदरे में सोया करे प्रातःकाल उठि कर उन्हीं गौश्रों के साथ जाकर पीछे फिर अर्थात् गौधे जहां बियाम लें तहाँ आपभी थंभि जाय जहां उनको कोई ऊँचे नीचे की अड़चल हो तहां युक्ति से उतारें कि उनको विपत्ति न होने पावै इत्यादि अनेक विधि हैं तिनकी करतेहुये फिर सांभ को साथजाकर गोष्ठमें उनकी उचित सेवाकिये पीछे घरती पर सोवै और बाकी मूल श्लोकों के अर्थमें देखौ—यह विधि तीसर्वथ लगीरहेगी पर अगिले प्रायश्चित्तमें पंचगव्यका आहार कूटि जायगा क्योंकि कच्छ प्राजापत्य आदि व्रत करने कहे उन्हीं की विधि वर्ती जायगी यह समझ लेना ॥ दूसरा प्रायश्चित्त जिसकानाम कच्छकहा तिसकी प्राजापत्य समझना—इसी हेतुसे जावालिगुनिने महीनाभर प्राजापत्य करना यह जुदा प्रायश्चित्त दर्शायाहै—यथाह जावालि—प्राजापत्यचरेन्नासंगोहंताच्छेदकासतः गौहित्तोगोश्रुगामसीस्याद्गोप्रदानेन शुद्ध्यतीति—अर्थात्—एकमहीना प्राजापत्य कच्छव्रतकरे और गौश्रोंकी भलाई वाले काम करतेहुये उनकी पीछे फिर तिस पीछे गोदान करके शुद्ध होताहै पर वही कि

जिसने इच्छा बिना किसी धोखे आदि कारणसे गऊ मारी हो—यह दूसरे प्रायश्चित्त का स्वरूप जो मूलप्रलोकमें कहाया तिसका निर्णय किया गया २ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीनाभर अतिदृच्छं व्रतकरै यह तीसरा है ३ ॥ इन्हीं प्रकारोंसे महीना भर गोसेवा किये पीछेग्यारह गऊ वृथभ देनेकाहे वह चौथा है ४ ॥ इनमें किसप्रायश्चित्तको कौन करै यह व्यवस्था आगे देखो ॥०॥ जो विशेष गुणावाली गऊ न हो किन्तु सामान्य जातिभावसेही गऊकहातीहो और सामान्य ब्राह्मणाकोही जो केवल जातिहीसे ब्राह्मणाकहाताहो तिसको बिनाइच्छाके बचकरनेवाला पुरुष चौथेप्रायश्चित्तकोकरै जिसमें महीना भर गोसेवा किये पीछे तीन दिन उपवास करिके दशगऊ एक आँडु वृथभ देना कहागया (उत्तम स्वामीकी गऊ तथा उत्तम गुणा वाली गऊ मारने मध्ये बड़े प्रायश्चित्तहो जो द्वारित आदिके बचनों से अगिले परिच्छेदमें आवेंगे तिससेयहां सामान्य जाति गऊ और सामान्य जाति ब्राह्मणा उसका स्वामी कहा गया यह विशेषता समझि लेनी चाहिये) ५ उसी प्रकारकी गऊ जो सत्री स्वामीकी हो तिसको इच्छा बिना मारनेवाला पहिले प्रायश्चित्तकी करै जिसमें पंचगव्य पीना कहाया • तिसपर मिताक्षराकारने यह व्यवस्था भी आरोपित करीहै कि महीनाभर पंचगव्य का आहार बहुतही थोडा करना होताहै तिससे वह भी महीना भर उपवास के तुल्य दहरता है तिस हेतु से उसमें भी दृच्छाई छपी छः दिनके आवे प्राजापत्य पांच माने जासक्तोहें अर्थात् (छपंजेतीस) छे छे दिनके उपवासोंका एक एक लघु प्राजापत्य कल्पना करनेसे पांच दृच्छाओंका अभ्यास दहरता है तिसमें एक एक दृच्छाके साथ एक एक गौदानकी पाँच गऊ होतीहैं तथा एक उस गऊकी समभत्ता जो महीनाके पीछे देनी कही थी तिससे कुल छे गऊ होतीहैं जो सत्रीकी गऊ मारने मध्ये दान करनी ठाँहीरीं तीभी उनसे कम संख्या ठाँहीरी जो ब्राह्मणा की गऊ मारने मध्ये एक वैल दश गऊ देनी कहीं अर्थात् ऐसा हिसाब लगानेसे भी यह प्रायश्चित्त उससे छोटा ठहिरा • तिसपर यह तर्कानहै कि ब्राह्मणाकी गऊ मारने मध्ये इतना बड़ापन क्योंरक्त्वागया • इसका यह उत्तर है कि (देवब्राह्मणाराजांतुविज्ञेयंद्रच्यमुत्तम इतिनावेनततद्द्रव्य स्योत्तमत्वाभिधानात्) देवता और ब्राह्मणा और राजा इनका द्रव्य उत्तम होताहै यह नारदने कहा और (गोयुब्राह्मणसंस्थित्विति दंडभूयस्त्वदर्शनाच्च) व्यवहारकांड में ब्राह्मणा की गऊ मध्ये दंडभी अधिक देखनेमें आताहै तिससे भी यहाँ ऐसा बड़ापन रक्त्वागया १ ॥ उसी प्रकारकी गऊ जो वैश्यकी हो तिसको इच्छा बिना बच करने वाला महीना भर अतिदृच्छं नामक तीसरा प्रायश्चित्त करै और उसी प्रकार गोओं

को सेवा आदि भी महीनाभर करने पीछे पाँच गोदान अर्थात् धेनुकल्प विधान से धेनुका अनुकल्प पाँच प्रकारसे करे इनमें एक गऊ साक्षात्कार अपने स्वरूपहीसे देनी होगी जैसा योगीश्वरने महीनाके अन्तमें एक गोदान करना कहा ३ ॥ उसी प्रकारकी गऊ जो शूद्र स्वामीकीही तिसको इच्छा बिना मारनेमें दूसरा प्रायश्चित्त कृच्छ्र नामक अर्थात् प्राजापत्य व्रत एक महीनाभर करे और गौओं की सेवा शूयूया आदि करने पीछे दो धेनुकल्प और एक गऊ साक्षात्कार दानकरे २ (इसी प्रकार जिसमें छे गौओंका विधान पहिले लिखचुके तहाँ भी पाँचधेनुके अनुकल्प और छटा साक्षात्कार गोदान समभिलेना परन्तु जिसमें दशगऊ एक आँडू दृयभ कहिचुकेतहाँ धेनुकल्प नहीं किन्तु साक्षात्कार सभी गौयें समझनी ॥ ० ॥ यह व्यवस्था एक उपरालू याद-रखनी चाहिये कि येही चारों प्रायश्चित्त जो साक्षात्कर्ता अर्थात् गोवध करनेवाले पर कहेगये सो कर्ताके अनुग्राहक और प्रयोजक और अनुमन्ताओंमें बड़े छोटे भाव की तरतमता देखिभाल के पूर्वोक्तही विषय में संयुक्त करने चाहिये कि जहाँ उनकी इच्छा और चाहना बिना सहायता करनी बरो हो ॥ ० ॥ इसी गोहत्या मध्ये जो विप्राको कहे तीन व्रतहे कि (गोघ्नस्पृशपंचगव्येन मासमेकंप लवयं प्रत्यहंस्यात्पराकोवाचांद्रायणामयापिवा) गोहत्या करनेवाले की एकमहीना भर तीन पलके परिमान पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त चाहिये अथवा पराकव्रत करना चाहिये अथवा चांद्रायण करना चाहिये) ये तीनों प्रकार उसी के समान हैं कि जैसा याज्ञवल्क्यने पंचगव्य कहा सो जिसके लिये करना उचित उद्देरचुका उसी के निमित्तमें इनकी भी समभिलेना=और जो कश्यपजीने कहा हे कि (गांहत्वातश्च मृगाप्रावृत्तोमासंगोष्टेऽथ स्त्रियवरास्त्रायी नित्यपंचगव्याहारः) गाय को मारिके उसकी खालकी ओड़ि कर गौहरे में सोया करे त्रिकाल स्नान भी कियाकरे नित्य प्रति पंचगव्य पीताहै) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके बताये पंचगव्यवाले प्रायश्चित्तका विषय है कि इसकी भी उपरालू बातें उसमें मिला लेनी चाहिये=एवं शातातप का वचन भी खुलाना है कि (मासपंचगव्याहारः) एक महीना पंचगव्य का आहार करे—यह भी याज्ञवल्क्यजीके बताये पंचगव्य वाले व्रतके समानहे=और जो शंख तथा प्रचेताने एकही वचन कहा है कि (गोघ्नपंचगव्याहारः पंचविंशति रात्रमुपवसेत्सिंहाखं वपनं हत्वा गोचर्मणा प्रावृत्तो गार्शानुगच्छन् गोष्टेऽथ गोर्गाचदद्यात्) गाय मारनेवाला पचीमदिन पंचगव्य खायके उपवास करे चौटी सहित मुडनकराय के गऊकी खाल ओढे हुये गौओंके पीछे फिरे गौधमें राति काटे और पीछे से गऊ

दान करे) यह भी पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यजीके एक महीनावाले अतिद्वन्द्वके समान है कि इसमें से उपरालू नियमलेकर उसमें जोड़े जासक्ते हैं• और भी याज्ञवल्क्य ने दोसौ चौंसठिके उत्तरार्द्धमें जो तीनदिनका व्रत करिके स्यारह गऊ दानकरना कहा तिसके साथभी अश्रोक्त शंख प्रचेतावाले नियम उसदश्यामें जुडिसक्ते हैं जो गऊ मारनेवाला अत्यन्त सुरावाचही यह सितासराकारने व्यवस्था कही ॥०॥ इसी पहिले विययपर कि जिसमें पंचगव्य का आहार कहागयाया कदांचित्त वही प्रायश्चित्त जिसको कानाटाहिरै और पंचगव्य उसपर न पियाजाय अथवा न मिलसके तिसकेलिये कश्यप का कहा एक दूसरा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये जो कश्यपने महीनाभर पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त पहलेकाहिकर दूसरा यहकहाहै कि (यथेकालेपथोभसोवागच्छं तीस्त्रनुगच्छेत्तामुखोपविद्यासु चौपविशेत्तातिपुवंगच्छेत्तानिवियमेनावतारयेत्ता त्योदकेषापयेदन्तेब्राह्मणान्भोजयित्वातिलधेनुदद्यादितिद्वष्यन्) अर्थात्—जो पंच-गव्यपीना न होइके ती छठेकालमें केवल दूधपीवे और चलतीहुइ गौओंकोपीछेचले और वे गऊ जब आरामसे बैठे तब आपह उनके निकर बैठे और अतिशय दहदहलके पानीमें न लीजाय उनकी ऊंचे नीचे टीलोंमें नहीं निकासै किन्तु सूधे मार्गसे निकासै और थोड़े जलमें नहीं पिआवे अङ्गुठे निर्मलपानीमें पिआवे इसतरह प्रायश्चित्तकी अवधि पूरीकरिके अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजनकराय तिलधेनुका दानकरे (केवल दूध पीनाजो प्रायश्चित्तकेनिमित्तोंपर बताया तिसका यहतात्पर्यहै कि जीभस्त्रादुकेअर्थ उसमें सीटा कुछ नहो) जो बिरला पुरुष ऐसा भी न करसके तिसके लिये अश्रोक्त पैटीनलि का बताया अनुकल्प विचारना चाहिये=यथाह पैटीनलिः (गोघ्नोमासंय वाशंप्रसृततंदुलच्यतां भुंजानोगोभ्यःप्रियं कुर्वन्शुश्रूयति) अर्थात्—गऊ मारने वाला एक महीना तक एक पसर तंदुल राविके उसका दलिया खाते हुये गौओं का हित प्रिय करते हुये भूद्व होता है ॥ ० ॥ सुसंतु ने जो प्रायश्चित्त कहा है कि (गोघ्नस्य गोप्रदानंशोशयन् द्वादशरात्रंपंचगव्यप्राशनं गवानुगमनंच) गोहत्यावालेको गऊका दान गोशाला में सीना वासह दिन पंचगव्य चीखना गौओं कोपीछे फिरनाभी योग्य है=और जो संवर्त ने कहा है कि (सक्तुयावकभैसाशोपयोर्दावधृतंसकृत एतान्क्रम शोऽनीयान्मानार्द्धतुषमाहित्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वातुगां दद्यादात्मशुद्धये) पंद्रह दिन सावधान होके सतुआ या गोसूयमें रावे यवोंका यावक दलिया भिक्षा भोजनकरते हुये गायके दूध दही घी येभी क्रम से प्रत्येक दिन एक एक बार चाटतारहे फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराइके अपने भूदहोने को लिये गौदान करे=और जो बृहस्पतिने

कहा है कि (हादशरावपचगव्याहार) बारहदिन पचगव्यका आहारकरै सो शुद्धहोय—
यहतीनो प्रायश्चित्तभी याज्ञवल्क्यजीकेकहे सहीनाभरके प्राजापत्यके समानसमझने
चाहिये यहमितासराकारकाकथनहै अथवा जोगऊ मरनेकेतुल्य आपहीथी तिसकी
हत्याकरनेवालेके निमित्तमेंसमझलेने कोकि प्रायश्चित्त बहुतछोटेहैं अथवा जिसने
गऊको बहुत ऊँचेनीचे चढाइ घेरि पीठि घाटिके त्रासमात्र दिया हो जिससे रोगपैदा
होकर कुछ दिन बाद आपही गऊ मरजाय तिस हत्या के निमित्त में इन प्रायश्चित्तो
को विचारना चाहिये ॥ अधिकोक्तिके प्रारम्भसे यहां तक जो कुछ प्रायश्चित्तोंके
भेद वर्णन हुयेसो सब केवल उसी दशापर आरूढहैं कि विना इच्छा के जिसपर गऊ
देवयोग से मरगई हो=तथापि उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ जिसपर विना इच्छा के
मरगई हो तिसके बड़े प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में सकाम वधके साथ भी प्रसंग
से दशाये जायेंगे तबैव देखौ ॥ इत्यकामगोवधविचारः ॥ अगिले परिच्छेद मे
सकाम गोवध के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे (तथापि उसमें हारीत आदिकडे एक ऋ-
यियों के बताये प्रायश्चित्त निष्काम गोवधके ऊपर भी आवेंगे) और यह चर्चाभी
उसी परिच्छेद में आवैगी कि इस परिच्छेद में दशाये प्रायश्चित्त भी सकाम गोवध
में द्विगुण क्रिये जासक्ते हैं अर्थात् केवल वही नहीं कि जो अगिले परिच्छेद में स-
काम वधके नामसे वर्णन होगे—अगिले परिच्छेद में कोडे मूल श्लोक इस हेतुसे न
आवैगाकिवह पाठभीइसी अधिकोक्तिके शेष वकायासे गिनतीहै ॥२६३ ॥२६४॥

अथोपपातकेषु सकामगोहत्यायाश्च विशिष्ट

**स्वामिक गोहत्यायाश्च प्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽथ
परिच्छेदः एकचत्वारिंश ४१**



इस परिच्छेद में उस प्रकार के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिसने जानि बुझि
इच्छा सहित उसी प्रकार की गाय सारी हो जैसी गऊ देवयोग से मरजाने के प्रा-
यश्चित्त ऊपरले परिच्छेद में काहि चुके=तिस पीछे इसी परिच्छेद में बढिया प्रा-
यश्चित्तभी दशावैगे जो उत्तम स्वामी की उत्तम गऊ देव योगसे मरजाने मध्ये और
जानि बुझि इच्छा सहित मारने मध्ये दोनो दशापर दो भांति के होंगे ॥

जहाँ उसी प्रकार की गऊ जिसका पहले कथन हो चुका है कि जिसमें कोई विशेष उतमता वाले शराका चिह्न नहीं और जातिसे सामान्य ब्राह्मण की गऊ हो तिस की कोई इच्छा सहित चाड़िकार बचकरै तिसके लिये अग्रोक्त मनु का कहा प्रायश्चित्त विचारै कि जैसा मनुने सक महीना चौथे काल में जौका दलिया राँवि पीना कहा और दो महीना हविष्य भोजन चौथे काल करना कहा इस तरह तीन महीना गोसेवा तथा ग्यारह गऊ दान यह सब मिलाकर यद्यपि तीन महीने का एकही प्रायश्चित्त प्रतीत हुआ है तथापि मितासराकारने इसीके तीन प्रायश्चित्तभी माने और सबके छे महीना जोड़ि दियेहैं कि पहला एक महीने का दूसरा दोमहीनेका तीसरा तीन महीनेका जुदा प्रायश्चित्त है सो इस अंतरको मनुके बचनों से बुद्धिमान पुरुष विचार करैगे—यथाहमनुः=उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासंयवान्पिवेत् कृत वापो वसेद्गोये चर्मणा र्द्रं गा संवृतः चतुर्थकालमग्नीयादक्षारलवणमितम् गोमूत्रेण चरेत्क्षानं द्वीमासौ नित्यं त्रिद्वयः दिवा २ गुणच्छेत्तामास्तु तिस्रून्ध्वं रजःपिवेत् शुश्रूषित्वा नमस्कृत्यारात्री वीरासंनत्रजेत् तिस्रं तीष्वनु तिस्रं त्रजं तीष्वनु त्रजेत् आसौ नामृत थासीत नित्यतो वीतमस्तस्यः आतुरासंभियक्तांवा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः पतितांपंकलरनां वासर्धंप्रासौर्विनोसयेत् उष्णोर्वंपतिशतेवासा रुतेवातिवाभृयश्च नकुर्वीतारमनस्वारां गोरक्षत्वात्शक्ततः आत्मनोयदिवा न्येयांगृहेक्षेत्रेथवाखले भक्षयतीं न कथयेत्पिपवंतं चैव वत्सकम् अनेन विघिनायस्तु गोघ्नो गा अनुसच्छति सगोहत्याकृतं पापं विभिसिं व्यपोहति अथ भैकादशागाप्रचदद्यात्सुचरितत्रतः अविद्यमाने सर्वस्ववेदविज्ञो निवेदयेत् (संतत्रितग्रंयाज्ञवल्कीयमासंप्राजापत्य • मासंपंचगव्याशन • दृयभैकादशगोदान युक्तत्रिरात्रोपवासरूप • व्रतत्रितयविययं यथाक्रमेण रात्र्युच्यमित्यथ मितासराकारः) = अर्थात्—मनुने यह कहा है कि इच्छासहित गोवध करनेवाला उपपातकी प्रथम गऊ महीना जौ का दलिया राँवि पीवै और मुंडन कराइके गोथ गौंहरमें टिके कि जहाँ सैंकरों इजायें गऊ का समूह किसी जंगल में रहिता हो परन्तु मरी गऊ का गीला चमड़ा ओड़िके टिके (मितासराकारने इसी इतनेको जुदाएक प्रायश्चित्त मानाहै) और दिन के चौथे काल में दो महीना तक सेमा भोजन थोड़ासा करै जिसमें खारी नमक आदि कुछनही किन्तु अलीना फीका भोजन होय और जितना थोड़ा नियम साथे उतनाही नित्य निरन्तर भोजन करै न्यूनान्विक नहीं अर्थात् पहिले महीना में जौका दलिया पीवै फिर दूसरे तीसरे दो महीना यह पिछला कहा भोजन करै तौ यह पूरे तीन महीनेका सकही प्रायश्चित्त टहिरै और इन्हीं पिछले दोमहीना भर

गोमूत्रसे स्नान भी किया करें सब इन्द्रियों को जीति के वशमें राखें (मिताक्षराकार इसको भी जुदा एकप्रायश्चित्त बतातेहैं) और दिनमें उन गौओंके पीछे पीछे फिरता रहे जहां कहीं खड़ी होकर टिकिजाय तहां आप भी खड़े रहिकर ऊपर की मुह पसारि उड़ती गोधूलिकी रज पीनेलगे फिर सध्या समय उनकी सेवा श्राय्या अच्छे करिके और पुनः पुनः दंडवत् प्रणाम नमस्कार और प्रदक्षिणा आदि उपचार किये पीछे रातिमें उनके समीपही वीरासन बाँधि घुटनोंके भर घौंस बनिकर रहे कि जिससे गौयके भीतर जो खड़ीहोय तिनकेपास आपभी खड़ा होजाय और जो टहलती हों तिनके पीछे आप भी टहिलनेलगे और जो बैठीहों तिनके पास आपहू बैठिजाय इसीतरह जब गौयें सोजाय तब आपहू धरतीपर सोवें यह सब आचार मामूली तौरसे मन्सरता को छोड़िके निरन्तर कियाकरे औरभी ये नियम उपरालूराखें कि जब कभी किसी गऊकी कुछ रोगसे आतुर देखें या पानीसे भीगीदेखें या सूतगोबरसे चिपको देखें या चौर व्याघ्र आदि किसीके डरसे भयभीत देखें या गिरपही देखें या कीच दहदह में लिपी वा फँसीदेखें तो इन सबको प्राणोंसे बचावै इसप्रकारसे कि चाहें धी-पमकाल की लूँ चलतीहो या तीव्रवर्षा होती हो या बहुत जाड़ेका पाला परता हो या भूभ्ता वायु तथा भयानक आँवी चलतीहो तभी दुखी गऊकीरक्षा अपनीशक्ति को बराबर किये विना अपने देहकी रक्षा न करें (यहां गऊ कहिनेसे उसकी जाति मात्रसे गोपुत्रोंकी रक्षाभी समझनी इसका दृष्टांत जैसे किसी बोधित गाड़ीका बैल गिरिके गाड़ी से दबा फँसा हो तहां आपही गाड़ीमें कंधा देकर बैलको दुख पीड़ासे उभारै इत्यादि) और भी यह नियम राखै कि चाहें निज अपने या और किसीकेघर में या खेतमें या खलिहानमें कुछ खातीहो या बछरा छूटा दूध पीताहो तो मालिकों से न कहें इस कहरीगई समस्त विधिसे जो कोई गौ मारनेवाला गौओं के पीछे शरणा में जाताहै सो गऊइत्याने किये पापकां तीन सहीनां से दूर कदेताहै अर्थात् पहिले एक सहीना जाँका दलिया फिर पीछे दो सहीना अलोना कुछ और भोजन ये तीन सहीने जो कहिचुके उन्हींका इसजय उपसहार है और उन्हींकी साथ यहविधि सब दर्शाईगई तिससे आदिसे अन्ततक सकही प्रायश्चित्तहे दोतीनक जुदेनहीं (मिताक्षरा कार अयोक्त तीन सहीने सबसे जुदेसानिके इसको भी जुदा तीसरा प्रायश्चित्त बताते हैं पर आधुनिक अनुवादक ऐसा नहीं कहिसक्ता क्योंकि उस एकही प्रायश्चित्तका सबध मिलाचला आताहै जो विधि कुछ बाकीरही सो आगे देखौ कि) जिसने तीन सहीना तक अच्छीतरह व्रतका आचरण किया हो सो पीछे से दशगऊ ग्यारहवां

एक आंडू च्युभ दानकरै परन्तु जिसके पास ग्यारह गऊराज काने योग्य द्रव्य न हो वह अपना सर्वस्व अर्थात् जो कुछ योद्धीबहुत सामग्री वर्तनभांडे कपडे पशुआदि घर में हो सो सब लेकर वेदके विज्ञाता विद्वान् विप्रोंको समर्पणाकरै तौभी शुद्ध होजाता है ॥ ०॥ अंगिराने इसी मनुके कहे प्रायश्चित्त को साथमें कुछ और भी आविश्य दर्शायाहै अर्थात् ऐसा लिखा है कि तीन महीने मनुका कहा प्रायश्चित्त साथै पर उसके साथ इतना और करै कि (अक्षारलवरांरुसं द्येकालेऽस्यभोजनम् गोमतीं वाजपेद्विद्यामोङ्कारं वेदमेव च व्रतवद्वारयेद्ग्राह्यसंभ्रं चैव मेखलास) अर्थात् इसपापीको मनुका कहा प्रायश्चित्त करतेहुये छठे काल में भोजन करना चाहिये जो खारकी दस्तुनहो अलोनी हो रुसनही और गोमती नामक घेदमंत्र की विद्याका जपकरै जो गायत्री प्रसिद्धहै यद्वा न बनिआवै तौ केवल आंकार जपे अथवा विद्या में पूरी शक्ति हो तौ वेदकी संहिता पाठकरै और व्रतके नियम की भांति दंड भी धारणा करै तथा मन्वाक्रिया सहित मेखलाभी धारणाकरै—मिताक्षराकार कहितेहै कि इतना अधिक ब्रह्मकर अंगिराने मनुके प्रायश्चित्त में बड़ापन दहिराया तौ इस बड़े कोभी उसीविषयपर विचारना चाहिये कि जिस पर मनुका प्रायश्चित्त करना कहिचुके तिसमें इतनी और भी विधेयता समुभिलेनी कि जिसने सोटी ताजी या तरुणा अवस्थाकी कलौरि आदि छोड़े गुरासे अतियुक्त गऊ मारीहो तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त का बड़ापन अंगिरा के वचनानुकूल विचारा जाय—जवकि—मनु और अंगिरा के कहे ये दोनो प्रायश्चित्त केवल उसकेलिये दहिरै कि जिसने सामान्य ब्राह्मणाकी सामान्य गऊ इच्छासहित मारीहो—तौ फिर जिसने सामान्य स्त्रीकी गाय या सामान्य वैश्य की गाय या शूद्र की गाय इच्छासहित मारी हो तिनकी क्या प्रायश्चित्त विचारा जाय सो आगेदेखौ ॥ ०॥ (विहितंयदकामानांकारारत्तुद्विगुरांचरेदितिन्यायःप्रमिदः) जो कुछ प्रायश्चित्त अनिच्छासे पापहोजानेपर कहा गयाहो वही इच्छासहित पाप करनेवाला हुना प्रायश्चित्तकरै यह न्याय घंटायोय है तिससे जिसने स्त्री या वैश्य या शूद्रकी गाय मारीहो तिनको वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त यहां इच्छा सहित मारने के निमित्त पर हुने अर्थात् दोहरै करने चाहिये जो पहिले परिच्छेद में अनिच्छा से इन्हीं तीनों वर्गों की गाय मारने मध्ये जुदे जुदे तीनों कहिचुके हैं वहांपर योगीश्वरके (२६३ । २६४) मूल प्रलोकों का अर्थ देखौ ॥ शंका—क्योंकी गोइत्या सब रक्खी बराबर होनी चाहिये अभी ऊपर जो अंगिराके वताये प्रायश्चित्त में सोटी ताजी कलौरि आदि लसणों की पख लगाई गई वह क्या बात है—

मुनो(अतिवालासत्क्रिशासत्तृद्वांचरोगिरासि हस्वापूर्वविधानेनचरेदद्वं व्रतं द्विजः)
यह वचन आगे आवैगा कि अति बालक वच्चा या अस्थान्त दुर्बल शरीर की या
अति बूढ़ी या अति योगिन जो स्वतः मरनेवाली होरहीथी इनको मारने से द्विजाती
को उस से आधा व्रत करना चाहिये जो पहिले पूरी गाय के मारने मध्ये विधान
होचुका है-तौ इसी व्यवस्था के अनुरूप यद्वां मोटी ताजी जुवान अवस्था आदि
उत्तम शूरा के ऊपर प्रायश्चित्त में बडापन कियागया सो अविस्त जानो ॥०॥
अथविशिश्वस्वामिगोहत्याप्रायश्चित्त=हारीत मुनिका यह वाक्य है कि=गोत्र
स्तर्चर्माध्वंवालपरिवाय • इत्यादिना मानवी मिति कर्तव्यता सभिधायोक्त • वृ-
यभैकादशाश्चगादश्वा प्रयोदशेमासेपुतोभर्वात् • तत्सवनस्यश्रोत्रियगोवधेऽक्राम
हृतेद्रष्टव्य=अर्थात्-गऊ मारने वाला उसी गऊ का चमडा जिसके बाल ऊपर को
रखवै सो पहिनके • इत्यादि वचनके द्वारा यही मनुकी कर्तव्यता है सो कहि कर हा-
रीतने पीछेसे दशगऊ एक आंडू ट्यभ देकर तेरहवें मासमें पवित्र होना कहाहै-सो
यह बारह महीनेका प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना कि जिसने सवन यज्ञमें लगे
हुये श्रोत्रिय ब्राह्मणाकी गऊको इच्छा विना किसी धोखे आदि कारणसे धक्किया
हो ॥ ० ॥ और जो वशिष्ठका यह प्रायश्चित्त है कि=गांवेदन्यात्तस्याश्चर्मणाद्देगा
परिवेशितः यरामासान्द्रहृच्छतप्तहृच्छावातिष्ठेत् ट्यगवेहतौदयात्ता • सितिविशिष्टे न
हृच्छतप्तहृच्छानुद्यानयरामांसिकमुक्ततद्वारीतीयेनसमानवियय=अर्थात्- यदि गऊ
मारडाले तौ उसके गोलेही चमडे से अपना देह ढांकि ओढिके छे महीना भर हृच्छ
और तप्तहृच्छ दोनो तरहके व्रत कियाकरै (इस रीतिसे कि पहिले हृच्छव्रतका एक
अनुद्यान करिके फिर तप्तहृच्छ का अनुद्यान करै फिर हृच्छका फिर तप्तहृच्छ का
इसी तरह सकलितरूपसे निरन्तर करतारहे) और ट्यभके मारनेमें गऊदानभी देवै-
यह वशिष्ठने छमाही के दोनो व्रतकहे सोभी हारीतके समान मुद्यामिले पर समभि
लेना कि जैसा हारीतका बारहमासी व्रत सवनस्य श्रोत्रिय ब्राह्मणाकी गऊ मारनेपर
कहागया तैसा यह छमाही व्रत सवनस्य किसी क्षत्रीकी गऊ मध्ये विचारना चाहिये
जो विना इच्छाके वध कियाहो ॥ ० ॥ और जो देवलका कहा प्रायश्चित्तहै कि=
गोघ्नयरामासांस्तर्चर्माध्वंवात्तौगोत्रसाहारो गोत्रजनवासो गोभिरेवसहचरत्प्रमुच्यते=
अर्थात्-गऊ मारनेवाला छे महीना उसी का चमडा ओढिके गऊप्रास का आहार
करै और गौत्रोके गौहरमें निवास करै और गौत्रोके साथ फिरताहै सो निज पाप
से छुटिजाताहै (इसमे गोत्रासका आहार कदा तिसका यह तात्पर्य कि प्रायश्चित्तो

गुराँ से भी उतमहो यह एक व्रत ठहिरा) फिर इस बातका प्रसारा भी मिताक्षरा
 कार देतेहैं कि अत्रोक्त सवगायके विशेषगणोंको वृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि०ग-
 र्भवती और कपिला और दुधार और होमके निमित्त दूध देनेवाली और सुत्रता गऊ
 कि जिसका दर्शन पूजन आदि सत्कार व्रतके नियम साथ कियाजाताहो ऐसी गाय
 को तलवार आदिसे वध करिके दुग्धना व्रतकरै जो वृहस्पति पहिले सामान्य गऊ
 के मारने पर कहिचुकेहों तिससे० यह विशेष लसारावाली गऊके वध करने में वि-
 शेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह
 मिताक्षराकारोंने कहा० फिर कहिते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है
 कि० गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और बड़ेका वध करनेवाला भू या
 हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं
 प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि गाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर
 कहे व्रतको करै० इनबातोंको देखनेसे स्वतः सिद्ध होताहै कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त
 जो सहस्र गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये० यहाँ
 तक यमके कहे एकही बड़े प्रायश्चित्तका निराय पूरा हुआ)=तैसाही यम का
 कहा दूसरा व्रत अन्नके गोशत १०० दान सहित दो महीनेवाला जो ऊपर कहिचुके
 तिसको काल्यायनके कहे तीनि वर्य वाले प्रायश्चित्त के साथही जोड़िके धनवान्
 हत्यारेपर आखड किया जासक्ताहै यदि कोइसी अत्रोक्त विशेषता भी पापमें पाई
 जाय अन्यथा नहीं ॥०॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त० एक
 आँडू बृयभ और सौ गायके दान सहित तीनिवर्षका प्राज्ञत ब्रह्मचर्य रूपी० वैश्यका
 वध करनेवालेको उपदेशक प्रधानतासे कहिकर पीछे गौहत्या पर भी० उसीका अ-
 तिदेश उतार दिया है (गांघहत्वावैश्यवदिति) इस वचन से—यद्यपि—यहाँ विचार
 से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहाँ सवनस्थ सबी और सवनस्थ वैश्य दोनों
 की गाय वध होनेपर एकही प्रायश्चित्त केवल शंखजीके वचनसे कहागया तहाँ
 पर इस प्रायश्चित्तको सवनस्थ वैश्यकी गाय मारनेमध्ये धनवान् हत्यारेपर आखड
 करै अर्थात् उसीशंखीके साथ इसका बदलधनवान् हत्यारेपर ठहिरायाजाय निर्धन
 पर नहीं—परन्तु—विज्ञानेच्चर मिताक्षराकारके विचारसे किसी वैवाशिक व्रतमें कहीं
 नच्चे६० धेनुके साथगौतमोक्त १०१ एकसौएक जोड़नेसे १६१ नौकास दोसीसंख्या होती
 हो या नहो तोभी हजार गऊ सहित दोसहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा वैधि
 परताहै तिसहेतुसे इसगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गौहत्यापरसमभिलेना

किं जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहि चुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ा ही तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊ का वध कोई इच्छा सहित करे तिसकेलिये समझना अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समझना और भी जैसी उत्तम गऊ सवनस्थ स्वामीकी हालहीके वर्णन में कही गई सो यद्यपि गर्भ सहित हो और इच्छाविना मारी गई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनिवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तौ इच्छाविना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीनि वर्षोंसाथ इजागराऊ या सौगऊका दान भी वो सहोने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो इत्यारा धनवाच होय यह सब ऊपर वर्णन हो चुका है परन्तु जिसमें बहुत गौओंका दानही सो धनवानका प्रायश्चित्तहै निर्वनकी सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथशस्त्रविशेषैर्गौहनन प्रायश्चित्तनिर्यायः—जिस किशोरे जैसे शस्त्रोंसे गायमारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्याय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं—यदाहयमः=कायलोद्याप्रमभिर्गावःशस्त्रैर्वनिहता यदि प्रायश्चित्तकथं तत्र शस्त्रेशस्त्रैर्विधीयते काये सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यन्तु लोयकेतन कृच्छ्रं तुपायासो शस्त्रेष्वप्यतिकृच्छ्रकथं प्रायश्चित्तेतत्प्रचीरां कुर्याद्ब्राह्मणभोजनस- त्रिंशद्गाव्यभक्षकंदद्यात्तैभ्यश्चदक्षिणास=अर्थात्—जो लाठीलकड़ी या मट्टीकाठीम या पत्थरों से गौरों मारी हों या शस्त्रोंसे तिनका प्रायश्चित्त कैसे हो तहाँ जुदे जुदे इधियार पर विधान किया जाता है कि जहाँ काटसे मारी हो तहाँ सांतपन व्रत करे हलेसे मारी हो तौ प्राजापत्यकरे पत्थरसे मारै सो तत्र कृच्छ्र करे लोहेके इधियारसे मारी हो तौ अतिकृच्छ्र करे और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावे और तीस गौरों तथासक दृयभऔर दक्षिणा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरे यहविधि इतनी सबके पीछे लगाई यह समुझिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोड़े तिससे ऐसी दशापर समुझिलेना कि जहाँ लकड़ो पत्थर आदिसे गऊकी बहुत सारने परभी गऊ प्रारांसे बर्चगड़े हो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं इधियारोंसे मर गई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारोंसे प्रायश्चित्त कायम किये पीछे उसी ने इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इसका यह दृष्टांत है कि जैसे जिस किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त विचार में ठ- हिरा हो या उसकेसाथ हजार या सौगौरों देगी ठहरी हों तहाँ यदि यह भी सातिव

गुणों से भी उत्तमहो यह एक वृत्त ठहिरा) फिर इस बातका प्रमाण भी मिताक्षराकार देतेहैं कि अत्रोक्त सबगायको विशेषणोंको वृहस्पतिने भी ऐसे कहाहै कि-गर्भवती और कपिला और दुवार और होसके निमित्त वृध देनेवाली और सुव्रता गऊ कि जिसका दर्शन पूजन आदि सरकार वृत्तके नियम साथ कियाजाताहो ऐसी गायको तलवार आदिसे वध करिके दुगुना वृत्तकरै जो वृहस्पति पहिले सामान्य गऊके मारने पर कहिचुकेहो तिससे-यह विशेष लक्षणावाली गऊके वध करने में विशेष प्रायश्चित्त देखा गयाहै तिससे ऊपरली व्यवस्थाको अनर्थक मत समझना यह मिताक्षराकारोंने कहा- फिर कहते हैं कि (इसी हेतुपर प्रचेताने भी ऐसा कहा है कि-गर्भवती नारी और गर्भवती गाय तथा बालक और बड़ेका वध करनेवाला भू या हत्या भागी होताहै इस हेतुसे इसी प्रकारके गोवधपर ब्रह्महत्यावाला व्रत भी उन्हीं प्रचेताने अतिदेश उतारा है कि गाभिन आदि गाय का वध करिके ब्रह्महत्या पर कहे वृत्तको करै- इनबातोंको देखनेसे स्वतः सिद्ध होताहै कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त जो सद्गुरु गोदान सहित कहागया वह सामान्य गऊके वधपर नहीं चाहिये-यह इतक यमके कहे एकही बड़े प्रायश्चित्तका निराय पूरा हुआ)=तैसाही यम का कहा दूसरा व्रत अन्नके गोशत १०० दान सहित दो महीनेवाला जो ऊपर कहिचुके तिसको कात्यायनके कहे तीन वर्ष वाले प्रायश्चित्त के साथही जोड़िके धनवान् हत्यारेपर आह्वद किया जासक्ताहै यदि कोइसी अत्रोक्त विशेषता भी पापमें पाड़े जाय अन्यथा नहीं ॥ ० ॥ एक और व्यवस्थाहै कि गौतम ने जो प्रायश्चित्त- एक आँडू वृथभ और सौ गायके दान सहित तीनवर्षका प्राज्ञत ब्रह्मचर्य कूपी, वैश्यका वध करनेवालेको उपदेशक प्रधानतासे कहिकर पीछे गोहत्या पर भी-उसीका अतिदेश उतार दिया है (गांचहत्वावैश्यवर्दिता) इस वचन से-यद्यपि-यहां विचार से यह तात्पर्य ठीक होताहै कि ऊपर जहां सवनस्थ सत्री और सवनस्थ वैश्य दोनों की गाय वध होनेपर एकही प्रायश्चित्त कीवल शंखजीके वचनसे कहागया तहां पर इस प्रायश्चित्तकी सवनस्थ वैश्यकी गाय मारनेमध्ये धनवान् हत्यारेपर आह्वद करै अर्थात् उसीशंखीके साथ इसका बदलधनवान् हत्यारेपर ठहिरायाजाय निर्वन पर नहीं-परन्तु-विज्ञानेच्चर मिताक्षराकारके विचारसे किसी वैवायिक व्रतमें कहीं नज्जेर्द-धेनुके साथगौतमोक्त १० १सकसोसक जोड़नेसे १६ १नौकान दोसोसंख्या होती हो या नहो तोभी हजार गऊ सहित दोमहीना वाले व्रतसे यहगौतमका छोटा देखि परताहै तिसहेतुसे इसगौतमके कहेप्रायश्चित्तकोउसप्रकारकी गोहत्यापरसमझिलेना

कि जिस गऊ का स्वरूप इससे पहिले परिच्छेद में कहि चुके परन्तु उस परिच्छेद में लिखे प्रायश्चित्तों से यह गौतम का बड़ा है तिससे यह भेद है कि वैसेही स्वरूप वाली गऊका वध कीइ इच्छा सहित करै तिसकेलिये समभक्ता अथवा उसीस्वरूप की गऊ यदि गर्भ सहित किसीने इच्छा विना धोखे आदि से वध करी हो तिसके लिये भी समभक्ता और भी जैसी उत्तम गऊ सबनस्थ स्वामीकी हालहीके वर्सान में कहीगई सो यद्यपि गर्भ रहितहो और इच्छाविना मारीगई हो तौभी कात्यायनका कहा तीनिवर्षका प्रायश्चित्त कराना चाहिये अर्थात् जो ऐसी उत्तमगऊ गर्भवती हो तौ इच्छाविना मारीजाने में भी इसी कात्यायनके तीनि वर्षोंसाय इंजारगऊ या सौगऊका दान भी वो सहोने के प्रायश्चित्त सहित जोड़िलेना चाहिये जो इत्यारा धनवान् होय यह सब ऊपर वर्सान हो चुकाहै परन्तु जिसमें बहुत गौओंका दानहो सो धनवान्का प्रायश्चित्तहै निर्धनको सर्वस्व दानकरना आदि उसकी दशाके अनुसार उपाय सोचिलेना ॥ ० ॥ अथशस्त्रविशेषैर्गौहनन प्रायश्चित्तनिर्णयः—जिस-
 किसीने जैसे शस्त्रोंसे गायमारी हो तिसके भी जुदे जुदे प्रायश्चित्तोंका निर्णय यहाँ यम के वचनों से लिखते हैं—यदाहयमः—कायलोषाप्रमभिर्गावःशस्त्रैर्वनिहतायदि प्रायश्चित्तकथं तत्र शस्त्रेशस्त्रैर्विधीयते काये सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यन्तु लोयकेतत्र कृच्छ्रं तुपायासो शस्त्रेचाप्यतिकृच्छ्रकस प्रायश्चित्तेतत्पचीसां कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम-
 त्रिशृङ्गावृथभचैकंदद्यात्तेभ्यश्चवसिस्त्रास—अर्थात्—जो लारीलकड़ी या महीकाढीम या पत्थरों से गौयें मारीहों या शस्त्रोंसे तिनका प्रायश्चित्त कैसेहो तहां जुदे जुदे हथियार पर विधान किया जाताहै कि जहाँ काठसे मारीहो तहाँ सांतपन व्रत करै डलेसे मारीहो तौ प्राजापत्यकरै पत्थरसे मारै सो तत्र कृच्छ्र करै लोहेके हथियारसे मारीहो तौ अतिकृच्छ्र करै और प्रायश्चित्तों के पूरे होनेपर ब्राह्मण भोजन करावै औरतीस गौयें तथासक वृथभऔर वसिस्त्रा भी उन्हीं ब्राह्मणोंको दानकरै यहविधि इतनी सबके पीछे लगीहै यह समुभिलेना—सो ये यमके कहे व्रत छोटेहैं तिससे ऐसी दशापर समुभिलेना कि जहाँ लकड़ी पत्थर आदिसे गऊको बहुत मारने परभी गऊ प्राणोंसे बचिगईहो तौभी इतना प्रायश्चित्त कराना चाहिये अथवा यदि गऊ इन्हीं हथियारोंसे मरगई हो तौभी पूर्वोक्त प्रकारोंसे प्रायश्चित्त कायम किये पीछे उसी से इन वचनों की विशेषता जोड़िलेनी चाहिये इसका यह दृष्टांत है कि जैसे जिस-
 किसीपर पूर्वोक्त कात्यायन के वचनों से तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त विचार में ठ-
 हिराहो या उसकेसाथ हजार या सौगौयें देगी ठहरी हों तहाँ यदि यह भी सातव

के विधानमें ग्रंथार्थ एक ग्राम वही कहा गया है जो एक बार बड़े मुहवाले आदिमी के मुहमें जासके अथवा सुगंधके छंडे समान अन्नका परिमाण भी कह दिया है तथापि छेसहीने तक इतने अन्नसे देह थांभना संगत नहीं है तिससे यहां गोयास कह कर गऊके मुहका लसारा दर्शाया है कि जितना अन्न गऊके मुहमें एक बार जासता हो उतना खाकर प्रायश्चित्तका व्रतसाधै) यह देवलमुनि का कहा हुआही व्रत भी पूर्वोक्त हारीतके समान चियथपर समझिलेना कि जैसे उसमें सवनस्थ ब्राह्मणकी गऊ कही गई हैसे इसमें सवनस्थ किसी वैश्यकी गऊ वध करने मध्ये इसी प्रायश्चित्तकी दहराना जो इच्छा विना गऊ मारी हो ॥ अनापिसकामवधप्रायश्चित्त—जिसने कामनासे चाहिकर सवनस्थ श्रोत्रियकी गऊ मारीहो तिसको अप्रोक्त कात्यायनके वचनसे तीनिवर्षका व्रतज्ञानो=यथाह कात्यायनः=गोव्रस्तुचर्मसंबोतोवसेदुगोयेथवा पुनः गाप्रचानुगच्छेरसततंमौनीवीरासनादिभिः वर्षशीतातपक्लेशवर्द्धिपंकभयादिताः मौसपेत्सर्वयत्नेन प्रयतेवत्सरैस्त्रिभिः=अर्थात्—कात्यायन ने कहा है कि गऊ मारने वाला उसीके चमडसे देह ढाँकेहुये धनमें गोव्रजकी दिकाने अथवा गोंहरेमें वसे और तीनिवर्ष तक निरन्तर गौओंके पीछे फिरें तथा मौन साधै और वीरासन होकराति में बैठाहुआ गौओंकी चौकसाई आदि सेवा करते हुये वर्षा शीत आताप तीनोंऋतु के क्त शौकी आप सहिकर उन्हीं क्तशौसे भयभीत गौओं की सब यत्नों से बचाता रहे सो तीनि वर्षोंसे पवित्र होताहै—यह तीनि वर्षोंका प्रायश्चित्त उसी हारीतवाले विषय पर विचारना चाहिये कि जिसने सवनस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मण की यज्ञ संबंधी गायकी इच्छा सहित माराही तिसके लिये—परन्तु—जो उस गऊमें थोड़ी बहुत कोई सी विशेषता भी उस तरइकी मौजूदहो जैसी आगे यम और वृहस्पतिके वचनों साथ कही जायँगी तो उस विशेषता पर इसी प्रायश्चित्तके साथ दूसरा वधभी जोड़िलेना होगा जो आगे यमके वचन में गो व्रत १०० दान सहित दोमास का व्रत आवँगा—यह विशेषता याद रखनी चाहिये कि जो इत्यारा धनवान् हो तिसके लिये ऐसा नियम है ॥ ० ॥ सवनस्थ स्त्री और वैश्यकी गाय मारने मध्ये अगिला एकही प्रायश्चित्त है—यथाह शांखः=पादन्तुशूद्रइत्याद्यामुदक्यागमनेतथा गोवधेचतथाङ्गयन्तिपरस्त्री गमनेतथा=अर्थात्—पूर्वोक्त महापातकमें दर्शाये चारह वर्ष वाले व्रत का एक चौथाई प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेमें तथा राजेस्त्वामि संगम करनेमें और गायका वध करने तथा पराई स्त्रीसे संगम करनेके पापोंमें भी करै—सो यह तीनि वर्ष का प्रायश्चित्त जिस चियथपर कात्यायनका अभी ऊपर लिख चुकेहैं उसीपर इसको समझि

लेना कि जिसने सवनस्थ क्षत्री या सवनस्थ वैश्यकी गाय मारीहो—किन्तु वैश्य को गऊ मध्ये विरले कर्मके अथवा कर्मकरिके इसी प्रायश्चित्तको करवाना यथा ह्ययारा धनवाचहो तो कुछ दूर आगे बढ़िकर (गांचहृत्वावैश्यवदितिगोतमः) यह गीतमका वचन जहाँ आवै तहाँ इसकी अर्थों सहित व्यवस्था देखि भाल कर यहाँ वैश्य की गायमध्ये उसको भी विकल्प से समझि लेना कि ऊँच नीच दशा के अनुरूप वही किया जाय या अत्रोक्त किया जाय परन्तु अबधि तीनि वर्ग की दोनो मे बराबर है केवल विधानका विकल्प लेना होगा ॥ ० ॥ पूर्वोक्त सवनस्थ श्रोत्रिय की गाय माने मध्ये सक और भी विशेष प्रायश्चित्त है कि—यसने जो अगिरा मुनि की कही कर्तव्यता पहिले दशाइके सहस्र गऊ दान और गौशत १०० दानरूपी दो प्रायश्चित्त दो दो महीनाकी अबधि वाले कहेहैं उनका भी निराय यहाँ करना चाहिये=यदाह यम=गोसहस्रशतवर्षापदद्यात्सुचरितत्रतः अत्रिद्यमानेसर्वस्ववेदविज्ञोनिवेदयेत् (तत्र यदासवनस्यश्रोत्रियातिदुर्गत बहुकुटुंबत्राह्यगासवधिनीं कपिलां कर्मांगभूतां गर्भिणीं बहुक्षीरतरुगामाऽऽदिसुरागालिनीम् निर्युगोधनवाच सप्रयत्न ब्रह्मादिनाव्यापादयति तदागोसहस्रयुक्त हैमासिककुर्यादित्येकत्रत मितिमिताक्षराकारा) गर्भिणीं कपिलां दोश्रोहोमधेनुचस्रत्रताम् खडगादिनाघातयित्वाद्विषयाव्रतमाचरेदिति विशिष्यायांगविवाहैरूपस्येप्रायश्चित्तदर्शना दितित्च मिताक्षराकारा (अतएव प्रचेतसा स्त्रीगर्भिणी गोगर्भिणी बाल वृद्ध वधेषु भूराहाभवतीति श्रेष्ठमिधमेव गोवधमभिसघाय ब्रह्मइत्याव्रतमतिदिष्ट इत्येकस्यैवव्रतस्यनिराया) =तथाद्वितीयव्रत धान्य गोशत १०० दानयुक्त हैमासिकमेव कात्यायनीय व्रत वियये धनवती द्रष्टव्य मित्यपि मिताक्षराकारा= अर्थात्—यह सब निराय यसके कहे दोनो व्रतोका मिताक्षराकार लिखते हैं कि यमने अगिरामुनिकी कही दोमासकी कर्तव्यता दशनिके साथ रेसा कहा है कि—इस व्रतका अच्छा आचरणा किये पीछे एक हजार गाय अथवा गऊ १०० सी गाय दानकरै यदि उसके पास इतना न हो तो अपना सर्वस्व लेकर वेदके विज्ञाता विशेषकी निवेदन करदेवै (तहाँ मिताक्षराकार कहिते हैं कि पहिला एक सहस्र गाउदान वाला प्रायश्चित्त दोमासका उसको करना चाहिये जो आप निर्युगा और धनवाच होते इच्छा सहित बड़े उपायोसे तनवार आदि शशोसे उसगऊ का वधकरै जिसका सालिक श्रोत्रिय ब्राह्मण बड़े कुरवसे धनहीन दुर्गति में घिरा होनेपर भी सवनयज्ञमे लगाहो और वह गाय भी निज आप कपिला वर्गा से और यज्ञमे कर्मांग भूत सानी गई और गर्भसे सधुक्त और बड़ी दुधार और तरुगाई आदि

होजाय कि पत्थरों से मारी गई तो फिर उन्हीं तीन वर्षों तक तत्र कच्छव्रत बाराबार
कारतारहै इसीतरह और भी समुभिलेना परन्तु केवल यद्गीत्रतकरना असंगतहै ॥ २६ ॥
२६ ॥ इन्ही प्रतीकोंकी अतिक्रान्ति के शेष पाठमें यह परिच्छेद है ॥

—*—

अतिवृद्धवालादिगौहनन-बहुकर्तृभिहननाद्यनेक गोवध भेदानां प्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः द्विचत्वारिंशः ४२

इस परिच्छेद में गोहत्या के छोटे मोटे अनेक भेदों से प्रायश्चित्त बरान होंगे—
अर्थात् अति बूढ़ी बालक आदि मारने का प्रायश्चित्त १ और गर्भ गिराने मारि-
देनेका प्रायश्चित्त २ एकगायकी अनेक मिलिके मारें तिनका प्रायश्चित्त ३ कूँधि
घेर अनेक गौओंको एकही कोड़मारें तिसका प्रायश्चित्त ४ पुरायके हेतुसेभी अवि
आहार आदि खुलाइके मारें तिसका प्रायश्चित्त ५ गाय मरजाने योग निमित्त क
रनेवाले का प्रायश्चित्त ६ इतने उक्त भेदोंके प्रायश्चित्त इसी क्रमसे लिखे जायेंगे ॥

(अतिवृद्धरोगिन्यादिवधप्रायश्चित्तं)

अतिवृद्धामतिक्रमामतिवालां चरोगिणीम् हत्वापूर्वाविवानेन चरेद्वैव्रतं द्विजः त्रा-
ह्यसान्भोजयेच्छकृत्वा दद्याद्देमतितांस्तथा=अर्थात्—अतिशयबूढ़ीया अतिशय ब्रह्मा
या अतिशय दुर्बल या अतिशय रोगिणी गायकी इच्छा बिना वैवयोमसे यदि कीड़े
द्विजाती पुरुषवधकरै सो उसव्रतका आधा प्रायश्चित्त करै जो चालिसके परिच्छेद में
निरोगिनिआदिपर कहिचुके—या—जिसने इच्छासहित सेसीहत्या करीहो सो आवा
नहींकिन्तु इन्हीं व्रतोंको पूरा पूरा करै जो बिना इच्छाके निरोगिनि आदिकाव्र
होजाने मध्ये चालिसवै परिच्छेद में कहिचुके अथवा उन व्रतों को आवा करै जो
इकतातिस के परिच्छेद में इच्छासहित गोहत्यापर कहिचुके=इसी व्यवस्थामें=ब्रह्मा
के मरने मध्ये वृहस्पति ने छोटे प्रायश्चित्तों के प्रयोजन से विशेष भेदभी दर्शाये हैं
कि ब्रह्मा कितनी अवस्था का हो=प्रयाइ=एकवर्षहतेवत्सेकच्छुप्रादोविधीयते अत्र-
द्विपूर्वेषुः श्याद्विपादस्तु द्विहायने विहायने विपादस्यात्प्राजापत्यमतः परस=अर्थात्—

लाह प्यार से राखते हुयेभी एक वर्ष का बच्चा पुरुष की अज्ञानता में यदि आपही मरजाय (अवनहीं जाना जासक्ताहै कि भूख पियास आदि किस हेतु से मेरी गफलत में मरगया) ऐसी दशा में केवल एकछू प्राजापत्यव्रतका एक पाद चौथाई व्रतकिया जाता है जो तीनही दिनमें निपटै आय० इसी प्रकार दो वर्षका बच्चा मरजाने में दो पादव्रतकिया जाय जो छे दिन में निपटै० इसी ढग से तीन वर्ष का बच्चा मरधाने से तीन पाद व्रत कियाजाय जो नौ दिनमें निपटै (अतःपरंप्राजापत्य) जो तीनवर्ष से अतिक अवस्था का बच्चा मराहो तो पूराही प्राजापत्य व्रत करना चाहिये जो बारह दिनमें होता है (इससे ऊपर के बच्चों में जो अति बालक बच्चा के मरने पर बड़े प्रायश्चित्तोंका आवाव्रत करना कहा जो यहाँ के पूरे से भी बहुत बड़ा व्रतहोता है तिसका यह कारण है कि (वहाँपर इस्वा और यहाँ पर वत्सेइते) इन क्रियाओं के अर्थ भेद सोचो कि वहाँ तो इच्छा विनाभी पुरुष के हाथ से बच्चा मरने का प्रायश्चित्तहै यहाँपर गफलतसे आपही मरजाने मध्ये छोटे प्रायश्चित्तहै ॥ ० ॥ गोगर्भनिपातनप्रायश्चित्त—गर्भिणी गाय मारनेसे गर्भके इतहीजानेमें पापका दूसरा निमित्त खडा होताहै कि इसपर दो प्रायश्चित्त कराने चाहिये सो इस गर्भके प्रायश्चित्त पर एक जुदी व्यवस्था है जो यद्विंशन्मत नामके शास्त्र में विशेष ब्यौरासे वर्णन करी गई है—यथा=पादउपन्नमाचेतुर्दोपादोदृढतांगते पादोनं व्रतमुद्विहृत्वा भंसचेतनस्य श्रंगप्रत्यंगसंपूर्णगर्भचेतःभसन्विते द्विप्राणीव्रतज्ञयदियागोत्रस्यनिष्कृतिः—अर्थात्—गर्भजो पेटमें हालही जन्म चुकाहो तिसके माताके साथ इनन होजाने में सवाया प्रायश्चित्त कराना चाहिये परन्तु जो गर्भ कुछ सज्जत भी होचुका हो तिसके मध्ये ह्योद्वा प्रायश्चित्त और जिस गर्भ को चेतना अवतक नहीं उदपन्नहुई पर बरवारी में पूरा पिंडहोचुका हो तिसके मध्ये पौनदूना अर्थात् तीनपाद अतिक प्रायश्चित्त चाहिये परन्तु जो गर्भ अपने श्रंग और प्रत्यंगों से युक्त होकर चेतना से भी संयुक्त हो अर्थात् पेटमें चलता फिरता भी हो तिसके बध होजाने से पूराही दूना प्रायश्चित्त चाहिये किसक उसका और एक उसकी माता का यह दोनों निरन्तर एक साथही दूनी अवधिमें साधन किये जायेंगे दोवारमें नहीं—अथवा किमी दशा में यदि गर्भका विनाश होकर माता धर्चजाय तहाँ माताके निमित्तका प्रायश्चित्त छोड़िके इसी उक्त हिंसाव से एक पाद या दोपाद या तीन पाद या पूराही प्रायश्चित्त किया जाय किन्तु ऊर्ध्वोक्त छोटे बच्चे वाले छोटे प्रायश्चित्त इसमें उचितन हेतु ॥ ० ॥ बहुकाल कहननप्रायश्चित्त—जहाँ अनेकों ने मिलिकर गऊ मारी हो

तिसके मध्य संवत् और आपस्तंब दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कहीहै=यथा=एका
 चेह्रुभिःकाचिह वैवाद्यपादिताकचिद पादंपादंतुइत्याया प्रचरेयुस्तेपृथक्पृथक्=
 अर्थात्-कौड़े एकही गऊ कहीं देवयोगसे बहुतों ने मारीहो तो वे सभी इत्यार लोग
 प्रायश्चित्तकी एक एक चौथाई जुदेजुदे जाकर करें परन्तु यह नियम उसी दशापर
 समझा जासक्ता है कि जहां मारनेवाले अधिक संख्यामें चाहें तितनेहो पर चारिसे
 कमनहोंक्योंकि दोके उपरान्त तीनि को आदिलेकर बहुत्व कहाताहै जहां तीनिही
 पुरुषोंने मारीहो एक एकपाद करने से तीनिही पाद प्रायश्चित्तकेहोंगे चौथाशेष
 रहिजायगा तिनसे दो या तीनि पुरुषोंके होनेमें दो दो पाद उसीप्रायश्चित्तकेकराये
 जायें जो उस भाँतिकी गरुमध्य पहिले वर्णन होचुक्ताहो सब पाँच पुरुषोंको आदि
 लेकर निःशुदेह एक एक पाद कराया जाय और जैसा एक गाय पर कहिचुकेतैसा
 जहां दोगौओंको अनेक मिलिकेमारें तिनसे दोदोपाद प्रायश्चित्त कराना चाहिये-
 परन्तु तीनि आदि अनेक गौओं को अनेक जने मिलिके मारें तहां निर्विकल्प यही
 नियम जानों कि मारने वाले सब जुदे जुदे तीनि पाद अर्थात् पौन पौन प्रायश्चित्त
 आचरें-यह सब नियम इच्छा के बिना वध करने का समझना क्योकि श्लोक. तैः
 देवात् देवयोग से मरजाना कहा गया=तिससे=जहां इच्छा सहित अनेकोंने मिलि
 के एक गाय का वध कियाहो तहां सब जुदे जुदे पुराही प्रायश्चित्त करें कि जैसे
 सब यज्ञ कार्य में अनेकों का मिलाप प्रत्येक जुदे पुरुष को व्यापार साधन करनेका
 पूरा फल होता है तैसे ये सब इत्यारे भी पूरे पापके भागो होते हैं बल्कि, व्यवहार
 काण्ड में (सक्तवर्तावहनांतुययोक्तोद्विगुरादिसः) यह दण्ड के स्थलपर कहा गयाहै
 कि यदि एकही मनुष्य को बहुत जने मिलिके मारें तिन सबको दूना दण्डदेना चा-
 हिये जो मनुष्यके मारनेका दण्ड लिखाहो तिससे-इस प्रभारा से भी सब जुदे जुदों
 को पूरा प्रायश्चित्त सूचित होताहै ॥ ० ॥ रोधादिनापिगोसमुदायहननप्राय-
 श्चित्त-कंधने बांधने आदि प्रकारोंसे एकही ने बहुतसी गौएँ मारडाली हैं तिसके
 मध्ये संवत् और आपस्तंब दोनोंने एकही तुल्य विशेषता कहीहै=यथाहस्तु=व्याप-
 नानावहनांतुरीधनेबंधनेतथा भियङ्गुसिथ्योपचारेचद्विगुरागोत्रतचरेव=अर्थात्-कंधने
 या बांधने में जो बहुतसी गौएँ मारडाली और भी विरोधी चिकित्सा के उपचार में
 जो गाय बैल मरजाय तिसको भी दूना प्रायश्चित्त करना चाहिये यही नियमहै-
 अर्थात् सेसी दशामें बहुतोंके मरजाने परभी प्रत्येक जीवहानि का जुदा प्रायश्चित्त
 नहीकरिजायसक्ताहै (और तंवात्मक न्याय की प्रधानताके एकभी नहीकरनायोग्य)

तिससे इसीअत्रोक्त वचन के बलसे दुग्नाही व्रत करना चाहिये कि जैसी प्रतिय्या वाली एकगाय के मरजाने पर पहिले बर्षान होचुका हो उसी प्रतिय्या वाली एक जनेसे अनेक मरजायें तिनमें सिर्फ दूनाकरै-तथैव इसी अत्रोक्त वचन के बलसे गौश्रों का चिकित्सक भी विरोधी दवादाह आदि करने से इच्छा बिनाही अनेक वा एक भी गऊका प्राण बिनाशै सो दूना व्रत करै-यहां पर इच्छा बिनाभी गोवध होजाने में ब्रह्म बड़े प्रायश्चित्तों का दुग्ना करना कहा तिसका हेतु केवल ब्रह्म गौसै एक साथही मरजाना समझ लेना-अन्यथा रोध वंधन आदि से एकही मरजाने मध्येछोटे प्रायश्चित्त हैं सो अगिले परिच्छेद में देखना ॥ ० ॥ आहाराद्याधिक्येनापिगो हननप्रायश्चित्तं-पशुवैद्यसे उपरालू जो कोई केवल उपकार के निमित्त से ही विपरीत औषध आदि कृच्छ देकर इच्छा बिनाभी यदि प्राण हर्षै तिसके मध्ये न्यास का अग्रोक्त वचन है-यदाह न्यासः-औषधंलवसांचैव पुरयार्थमपिभोजनम् अतिरिक्तं नदातव्यं कालपेत्स्वल्पंतुदापयेत् अरिक्तेविपत्तिप्रचेत्कृच्छयादोविधीयते-अर्थात्-दवाई या नमक जो-पशुओं को दियाजाता है या कोई अपने पुरयकेलिये अच्छा भोजन यादके पिंड आदि वा सुखानाज आदि कृच्छ खवानाचाहै सो अनुचित समय पर भुंख परिमान और डील डोल के अनुमान से अधिक न खवावै यह शिखा देकर कहते हैं कि नमक हलदी तेल आदि कोई चीज इतके लिये रोज रोज कल्प की विधान से जो देनी परै सोभी उचित परिमान से कृच्छ कम करिके ठीक समय पर देना चाहिये जो हजम होके गुरा करसके-अन्यथा जहां बहुत खवाइ देने आदि से यदि गायकी प्राण हानि होजाय तहां कृच्छ व्रतकी एक चौथाई प्रायश्चित्त कराया जाता है ॥ ० ॥ निमित्तकर्तुः प्रायश्चित्तप्रसंगात् रोधादिपुविशेषोक्तिः-अंगिरा ने रोधबंधन आदि से मरने में विशेषता कही है तिसका ब्यौरा समझना चाहिये-यथाहार्गिरा-पादमेकंचरेत्रौधेहोपादौबंधनेचरेत् योऽनेपादहीनंरुधाचरेत्सर्वं निपातने इति (तद्वयवहितव्यापारिणोनिमित्तकर्तुर्विज्ञेयंनसासात्कर्तुः-अर्थात्-सर्विके मारने में एक चौथाई व्रत करै और बांधने से मारने में आधा प्रायश्चित्तकरै और दोहने को बछरा जोड़ने से अर्थात् जांघ में जुड़ा रहिजाने आदि किसी हेतु से मरजाने में एक चौथाई छोडि शेष तीन पाव प्रायश्चित्तकरै और निपातन अर्थात् ऊंचे नाचे गिराइके मारने में पूराही प्रायश्चित्त करै (यह तीन महीना वाले मनु के कहे प्रायश्चित्त की योग्यता यहां समझनी जो २६५ की अविकोक्ति में कही चुके हैं) यह अंगिराने कहा-सो उसकेलिये समझना जो सासात्कार इत्यारा न हो

किन्तु—निमित्त कर्तास्वरूप होय—निमित्त कर्ता का स्वरूप ब्रह्महत्या के प्रकरणा में आचुका है कि ब्राह्मणा का मारना नहीं चाहता था पर किसी तरहसे खिभ्ताने लगा या गाली आदि अपमान करने लगा तिससे ब्राह्मणा आप उसके हेतुसे मरगया तो वह निमित्तकर्ता इत्यारा टहिरा—तैसा यहाँपर भी समझलौना कि यद्यपि गाय को मारना नहीं चाह्ना परन्तु ऐसा कोई निमित्त पैदा कि जैसा अपने घर खेत आदि पर आती देखि संकट का मार्ग होतेहुये तीव्र वेग से खेदिकर ललकार मारो या गाय का पीछा किया जिससे वह घबड़ा कर किसी ऊँचे नीचे या जल अग्नि आदिमें आपही गिरिके मरो तो यह निमित्तोइत्यारा टहिरा• यहा इन ढंगों से भी मौतका निमित्त होता है कि जंगल में चराते या बाँवते खोरते समय श्वालिया को किसी तरह का भुँद घोखा देवै कि इवर के भुंजवन में तेरा एक बच्चा फुत्ते खींचे लिये जाते हैं जल्दी दौड़ वह घबड़ा कर उवर भागा इवर सिंह वा भेड़िये ने आकर एक गाय मार डाली तो यह घोखा देने वाला यद्यपि सासाव इत्यारा नहीं है पर निमित्तो इत्यारा टहिरा इत्यादि नाना प्रकार से निमित्त पैदा होसकते हैं किन्तु (सासाव इत्यारा जो खँधियाँ आदि किसी प्रकार से बहुत गाय मारे तिसको हुना प्रायश्चित्त ऊपर कहिचुके हैं संवत् और आपस्तंब के वचन में देखो)—यहाँ पर—मिताक्षराकार कुछ औरही प्रकारसे मुख्य कर्ता और निमित्तो कर्ता के लसगा भेद बताते हैं और ऐसा कहिते हैं कि दोनोंका भेद उन्हीं अगिराने दर्शाया है सो उनका दूसरा वचन आगे देखो—यथाहंगिराः (पायासौलंकुटैर्वापि शस्त्रेणान्येनवाबलाव निपातयतिपेगास्तुत्तन्नुच्युर्नतं द्विते तथैववाहुजंघोत्त पाश्र्वंघ्रीवांग्रिमौर्नैरिति) इस वचनका अर्थ तो प्रत्यक्ष यहीहै कि—पत्थरों या लाठियों या और किसी शस्त्र से अत्रदंस्ती जे कोई गोएँ विनाश करे वे पूराही व्रतकरें तथा वे भी पूरा व्रतकरें जो गायकी बाहें जाँघ घूटे पंशुली आदि और गर्दन खुर चरसा इनको मारोहा देकर मारे (यद्यपि सब तरहके गोवध पर प्रायश्चित्त वर्णन होचुके हैं तिससे इस कुनेल विशेषणों वाले वचनसे प्रयोजन भी कुछ नहींरहा क्योंकि जिसने दुर्जनतासे इच्छा रहित गाय मारनी चाही तिसने चाहें तैसे मारो सर्वथा इत्यारा टहिरा उसके लिये दुगुने और बड़े बड़े प्रायश्चित्त कहिचुके तो फिर यहाँ पूरा और अवरु कहिना हयाहै) इस थोथरी दशाके होनेपर भी इनारे परमपूज्य युक्त मिताक्षराकार अपना मतमौजी नाटक इसी वचनके साथ आगे लिखते हैं कि जितमें प्रथम सकही अर्थ ऊपर लिखागया उसमें पहिला वचन खींचकर दो भेद खड़ेकरते हैं सो देखो—यथा

दुर्मिताक्षराकाराः (अथैतदुक्तं भवति पायासाखड्गादिभिर्ग्रीवाभोस्नादिनावांयेगां निपातयति तेसाक्षादन्तारस्तेष्वेव कृत्स्नंप्रायश्चित्तं • येतुव्यवहितरोध वंधाद्विद्या-
 पारयोगिनस्तेनिमित्तिनः तेयानंरुत्सन्नव्रतसंबंधः किन्तु तदवयवैरैवंपादद्विपादादिभि
 रिति • तत्रचरोधादीनांव्यवहितव्यापारत्वाविशेष्येपि क्वचित्पादं क्वचित्त्रिपादं पा-
 दोनंकचिदित्युक्तं)=अर्थात्-यहाँ अंगिराके वचनपर ऐसा कहीं कहा है कि प-
 त्थर तलवार आदिसे या गर्दीन सिरोहने आदि प्रकारोंसे जो लोग गायको विनाश
 करते हैं वे साक्षात् मारनेवाले इत्यारे कहाते हैं उन्हीं में परा प्रायश्चित्त चाहिये •
 और जो कोई ढँकेहुये रोध वंधन आदि उपाय मिलाने वाले हों सो निमित्ती कहाते
 हैं उनके लिये पूरे व्रतकी योग्यता नहीं है किन्तु रोध वंधन आदि पूर्वोक्त उसके अंग
 भेदोंसेही एक पाद या दोपाद आदि व्रत चाहिये जैसा इन्हीं अंगिराके पहिले वचन
 में ऊपर कहि चुके • तहां रोध वंधन आदि जो जो निमित्त कहे गए तिनमें यद्यपि ढँके
 उपायों का विशेषता कोई नहीं है तौभी उस वचनकी यहाँपर निमित्तीके साथ मि-
 लानेकी गरजसे अज्ञोक्त वचनके अनुसार वहाँ भी यही समझिलेना कि ढँकेहुये उ-
 पायों वाले निमित्तीके लिये वहां एकपाद दोपाद कहीं तीनपाद प्रायश्चित्त ठीक
 होगा (ध्यानकरो यह दूसरी भाँति के निमित्ती वाली व्यवस्था अंगिरा के पहिले
 वचनसे खोचिके बनाई गई जिस निमित्तीकी गर्ज से उस ऊपरले पहिले वचन का
 सचा अर्थ भी बिगड़ने लगा • क्योंकि यहाँ पर ढँके हुये उपाय करने वाला निमित्ती
 टहिराया गया ढँकेहुये उपाय भी ऐसे ढंगोंसे होते हैं कि जैसे जिस मार्ग में रातिको
 बेखटक गौसे निकसा करतीहो उभी मार्गमें कोई दुर्जन ऐसा ढँका उपाय रचिराखे
 कि जैसी हाथी पकड़नेको आगी पाटी जाती है उसमें गिरिके गाय मरजाय अथवा
 बहुतेसे सुखे घास फूसके स्थानपर जहां गौसे सीती बैठतीहो तहां कोई दुष्ट जो छिपि
 के आगि लगादेवे जिससे गौसेजलिमरे ती यह दोनों भाँतिके ढँके निमित्ती टहिरें
 परन्तु ऐसे दुर्जन आततायियोंकी काँकर एक पाद दो पाद आदि छोटे प्रायश्चित्त
 कहेजासक्त हैं किन्तु ऐसे महापापियोंकी डिगुणा चतुर्गुणा प्रायश्चित्त कहेजायँ सो
 भी थोड़ हैं-और ऊपर (पादमेकचरेप्रोधे इत्यादि) इस अंगिरा के वचन में जो नि-
 मित्ती सानेगए तिनके निमित्त सब खुल्लमहुआ करते हैं जिनसे प्रायश हरकोई धोखा
 नहीं खासक्ता और यथार्थमें उनके किये खुल्लम निमित्त इस बाँझसे नहींहोते कि
 गायको मरवाइ डारें केवल वे अपनी दिल्लगी या क्रोधके स्वभाव से निमित्त पैदा
 करते हैं तिसमें दैवयोगते यदि सा प्रको प्राणा चलेजायँ तिससेनिमित्ती टहिरके एक

दो पाद आदि प्रायश्चित्तके भागी होजाते हैं—इसके सिवाय—उम ऊपरके निर्लेप वचनको खींचिके ऐसे वचनके साथ जोड़िलेना जिसमें पत्यर हीय्यार आदिसे और गर्दिन आदि श्रमोंकी तोड़ि मड़ोरिके मारने वाले निर्दयी कसाइयोंका चर्चाहै यह कोई बात न्यायात्मक नहीं देखि परतीहै वल्कि विचारसे वह पत्यर आदिवाला वचन अपने मूलरूपहीमें निरर्थक है तिससे इतनी बड़ी व्यवस्थामें कोई ठीकठीक सारांश नहीं पाया गया—अथवा—ऊपर जो मिताक्षराकार-ने संस्कृत व्यवस्था में यह लिखाहै कि (येतुव्यवहितरोधबंधादिव्यापारयोगिनः तेनिमित्तिनः तेषांनक्त रत्नमतसंबंधः) इस पंक्ति का ऐसा अर्थ लगाया जाय कि-जे कोई लोग व्यवहित अर्थात् दीवार आदि किसीआइमें या दूसरे शून्यमकान गोंदरेधरे आदिमें गौओंकी बुद्धा संविक्के या रस्मी आदिसेवादिके आप जुदे स्थनआदि परव्यापार बंधोंका योग प्रबंध करते,रहें कि जिन बंधोंकी भूलमें अकेली बंधी गौओंके प्राणा किसी प्रकारसे जातेरहें तो यह भूलवाले रक्षक या मालिक निमित्ती होतेहैं अर्थात् साक्षात् हत्यारे तो नहींहैं परन्तु निमित्त रूपी हत्याके प्रायश्चित्त होतेहैं क्योंकि वेखबरीका निमित्त उनपर टाहिरा—फिर इस अर्थके अनुधार श्रगिराके सबसे पहिले वचनमें इस तरहसे व्यवस्था जोड़ीजाय कि रूचनेसे मरीहोय तो सकपाद व्रत करे (यह सकपाद २२॥ साडे वाइस दिनमें होताहै) जो मंत्रोहुई मरी होय तो दोपाद व्रतकरे जो ऊंचे नीचे गिरायके मारीहो तो पूरा प्रायश्चित्त करे जैसा हायसे मारने मध्ये काहिलेके हैं—तो इस व्याख्यासे सारांश यद्यपि निकसता है (तथापि दूसरे पत्यर लाठी हीय्यार वाले असंगत वचनको इसके साथ जोड़ना कुछ सारांश नहीं है क्योंकि वैसे मारनेवाले निपट कसाई समझने चाहिये तिनके लिये प्राणांतिक प्रायश्चित्तकी योग्यता पाडे जातीहै क्योंकि पूरा व्रतमात्र उनको कहें) और दूसरा यह विरोध खडा होताहै कि जिस प्रकारके निमित्ती इस व्याख्यामें कहेगए तिन के लिये भूलजात्रका प्रायश्चित्त आरी पराशरके वचनसे छोटसा प्राजापत्य मात्र सभीको एकसाँ कहा जायगा और संबर्तके पहिले वचनमें बडे प्रायश्चित्तकी चौथाई और आधा और पौना कहे गए तिनकी चौथाई भी (साडेवाइस दिन) प्राजापत्य से बहुत बडा होतीहै फिर आधा और पौना यहाँ भूल गफलत के ऊपर कैसे उचित दाहरे—तिससे जिस प्रकारके निमित्ती ऊपर संबर्त वाले पहिले वचनके साथ ही लिखिचुके तिनके लिये तत्रोक्त प्रायश्चित्त ठीक प्रतीत होतेहैं क्योंकि वे निमित्त

पैदा करने की हेतुसे एक प्रकारके मध्यम अपराधी समझे जाते हैं यह जानो ॥ और शूने सकानमें अकली बँधी, रड़िना आदि छोटी छोटी बातें ऐसी बहुत हैं जिनसे भूल वा अज्ञानतामें सरजाने की छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं सो सब अगिल परिच्छेद में पराशर और आपस्तंब और संवर्त आदिके वचनोंसे देखना ॥ २६५ ॥ इसी मूलश्लोक वाली टीकासे यह पाठ चला आता है ॥ २६५ ॥

अथबंधनयोक्तृत्वाद्वाहादिकर्मसुबहुविधव्यतिक्र-

मभेदोपपातकानांप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः

त्रिचत्वारिंशः ४३ ॥

इस परिच्छेदमें केवल विरली बातें छोड़िके सर्वथा अनपेक्षित गोमरगाकाचर्चाहे कि, यद्यपि किसीने मारना या मरना नहीं चाहा परतु देवयोगसे बाँधने छोड़ने जोड़ने जोतने बाहने दागने आदि जरूरी कर्मोंके धंधोंमें व्यतिक्रम हो जानेसे कोईबैल गाय मरजाय तहां रक्षक या स्वामीको उपेक्षाके पलटे कुछ प्रायश्चित्त करना होता है- तिसके भेद सबक्रमसे आगे आवेंगे-तहां प्रथम बाँधने छोड़ने आदि बातोंका १ फिर दागने बाहने आदि का २ फिर घंटा बजिके मरने का ३ जंगल आदिमें रखवारी को भूलका ४ कहीं चिकित्सा आदि करते मरजाने का दोषाभाव ५ कहीं हाड़ आदि टूटिके न मरने में भी प्रायश्चित्त ६ विरानी मारी गायके सोल देने का नियम ७ गोवधके पहिले तीनों परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तोंका निराय वर्योंके भेदसे ८ फिर स्त्री बालक बूढ़े रोगी आदिके प्रायश्चित्त भेद ९ ॥

(बंधन योक्तृत्वादिभिर्मरणप्रायश्चित्तं)

ऊपरले परिच्छेदमें जो अगिराके वचनसे गाय बाँधते दुहते आदि समयपर मर जाना कहा सोतो केवल उपरालू निमित्तीका प्रायश्चित्त था कि यदि कोई गौर किसी निमित्त को उन्हीं समयों पर उत्पन्न करे-अर्थात्-इस परिच्छेद में साक्षात् प्रधान कर्ताके प्रयोजन से बाँधने छोड़ने आदिके नियम कहेजायेंगे कि-बैल या गौओं की नाथ गरखोल आदि बंधनसे यदि किसीके प्राणा भी जातेरहें तिसका प्रायश्चित्त

पराशरनेकहा है—यथाह पराशरः—गवां वंधनयोः कौस्तुभवेन मृत्युरकासतः अकामकृतपापस्य प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् प्रायश्चित्ते तत्तश्चोर्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनस्य अनडुत्सहितां गांच दद्याद्दिप्रायदक्षिरानाम् (अयंच प्राजापत्यो यद्विरोधादिकं कृत्वा तज्जन्यप्रसाद परि जिहीर्यया प्रत्यवेक्षमाणा आस्ते तदा द्रष्टव्यः अकामकृतपापस्येति विशेषस्योपादानादिति मिताक्षराकारः) = अर्थात्—जो बांधने जोहने आदि कारणांसे बैल वा गौओंकी सौत घिनाकामनाको होजाय तो इसअकामकृतपापका प्रायश्चित्त प्राजापत्यकराया जाय जो सिर्फ वारह दिन में एक होता है फिर प्रायश्चित्त पूरा होजाने बादि ब्रह्म भोज करै और आठुं वृथभ सहित एक गोदान तथा और भी दक्षिरा ब्राह्मणों को देवै—इस वचन में बंधन गरखोल आदि और योक्त बैलों के जोत इन बोही नाम के होने परभी तृतीया विभक्तिके बहुत्व से प्रयोग रक्खा गया तिसका यह तात्पर्य है कि इन्हीं दोबातों के तुल्य जो और बातें होतीहैं तिनकोभी समुक्ति लेना कि जो जो पहिले सर्त के वचन में भी आचुकी हैं खंधना बांधना आदि और इसी प्रकारकी और बातोंकी भी लोक-वार्ता से सोचि लेना जिनमें केवल भूल गफलतसे सरजाना होसक्ताहो तिससे प्रलोक में बहुत्व का कुछ दोय नहीं बल्कि (गवां वंधनयोः काष्ठैः) सेवा पाठ भी होसक्ता है—मिताक्षराकार इस पराशरके वचन परभी व्यवस्था देते हैं कि (यह प्राजापत्यरूपी छोटा प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसने गौओंकी प्रयोजनवाले रोध बंधनआदिमें रखकर उनके उपद्रवोंकी रखवारी करने को आप भी मौजूद रहा हो सेशी दशा में जो किसी उपद्रव के उठने से गाय बैल मर जाय क्योंकि प्रलोकमें अकामकृत पापका विशेषगाहै तिससे) परन्तु (जो आप चौकसी के लिये मौजूद न रहाहो और गौरहाजिरी में उपद्रव उठिके गाय मरीहो तो इस निमित्तों के लियेभी वेही पूर्वाक्त सर्त के वचन वाले प्रायश्चित्त चौधारै वा आधा वा पौना वा पूरा जो कुछ दशा के अनुसार ठीकहो सो करवाया जाय-सोयहचौधारै आदि पूरे तीन सहोना वाले प्रायश्चित्त से लेनीचाहिये अर्थात् एकपाद के २२॥ साठे वाइस दिन होते हैं दोपाद के पैंतालिस ४५ दिन तीन पाद के सवा दो सहोने और पूरे के तीन सहोने यह भी मिताक्षराकारों ने कहाहै यथा (वैभासिकपादिक-ज्विदौघिक द्वाविशत्यहर्गौवधन्नसकुर्यादिति मिताक्षराकारः) = यहाँभी—निराशय करने का स्थलहै कि पराशरके वचनमें (अकामकृतपापस्य) इस विशेषरासे यह बात नहीं सिद्ध होती है कि जो कोई उपद्रवों का बचाना चाहिके गौओं की रक्षा करने पर समुद्यत रहा तोभी वैवयोगसे कोई गाय सरजाने में उसके ऊपर प्रायश्चित्त लगाया

जाय क्योंकि धर्म की मर्यादा भी लोकवर्ता से विरोधी नहीं होती बल्कि लोकहीसे सब धर्म सिद्ध होते हैं कहीं ऐसा नहीं देखा कि स्वतः देव योग के उपद्रवों में गायमर जाने परभी रक्षक यामालिक पर प्रायश्चित्त लगाया जाय जबकि वह अपनी ओरसे चौकसाई पर मौजूद बना रहा तो फिर देवीगति के उपद्रवों में उसका क्या दोष है (इसके लिये (यंत्रगतोपश्रित्तिसार्थे इत्यादि) यह सर्वात् का वचन आगे आवेगा सो चार पाँच पादों को छोड़िके कुछ दूर जाकर हूँदों तहां अर्थोंको देखिके सदेह जाता रहेगा) तिससे पराशरके वचन में तात्पर्य केवल यही है कि जिसके सम्मुख मौजूद न रहिने आदि भूल गफलतमें उपद्रव खड़ा होनेसे यदि कोई गाय मरजाय तो हाजिर न रहिने के प्रसाद का अपराध उसपर आता है इसीसे अकामंक्षित पाप उसका ठहिरा कि गाय मरजाने की कामना उसके नहींथी परन्तु कामनाके विना भी गफलत से पाप उसने कमाया तो यह छोटा पाप ठहिरा इसीलिये वारह दिन का प्राजापत्य और वृषभ गायका जोड़ा दान और दक्षिणा सहित ब्रह्मभोज करना पराशर ने कहा (यह निराय पहिले सर्वात् के वचन वा नी व्याख्या में भी सब से अन्त में आक्षुका तहां देखीं ॥ ० ॥ अतिदाहवाहनादिभि र्मरयोगुस्त्रायश्चित्तं—जहां किसी की दाह देनेके प्रयोजन में अत्यंत दाह दियाजाने या अतिशयवाहने जोतने आदि बहुधारेसे कामोंमें उज टपनसे कोई गाय बैल मरजाय तिसके प्रायश्चित्त ऊपरले प्रायश्चित्तसे बड़े हैं सो आपस्तम्बके वचनसे देखीं—यथाह आपस्तव = अतिदाहातिवाहाभ्यांनासिकाच्छेदनेतथा नदीपर्वतसरोधेमृतेपादोनमाचरेत् (अत्रतु लक्षणाभाज्ञोप योगिनिवाहने दीयः) अन्यवांकनलसाभ्यांवाहनेमीचनेतथासायसगो पनार्थचनदुष्येद्रोधवधने इतिपराशरस्मरणात्(अकनस्परिचिह्नकारालक्षणासंप्रतोप लक्षणावाहनेशास्त्रोक्तभागैरीतिमितासरा=अर्थात्—दाह जो गरम लोहेसे पशुओं का रोग निदानेआदि को निमित्त कियाजाताहै सो अत्यन्त करनेसे या दाह जो हलवाहन आदि में जोतना प्रसिद्ध है सो अत्यन्त करायाजाय तिससे या नाथ लगाने की नाकछेदने में या नदी पर्वतआदि कतिन स्थानों में रोकने से यदि गरु वृषभ कोई मरजाय तहां तीन महीने वाले प्रायश्चित्त का एक पाद छोड़िके तीन याद प्रायश्चित्त करें (परन्तु इसमें जो चिह्न करने मात्र का जखरी दाह दिया जाय जिससे प्राणा हानि न होसके तो कुछ दोष नहीं है) क्योंकि पराशरके इसवचन से नियम है किआँकने और चिह्न करनेमें जोपशुआंका बन्धन करना परताहै तिससे अन्यत्र उपरालू तथा वाहन सवारी आदि में वृषभ जोड़ने या सांड छोड़ने या सध्या समय

रक्षा में राखने के लिये जो रूंधना और वांधना होय तिसका दोय नहीं है (आंकना वह कहाता है जो पक्का चिह्न करना होय हमेशके लिये और लक्षणा वह कहाता है जो अभी हालके लिये कोई चिह्न करना होय यह मिताक्षराकारोंनेकहा तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि आंकना तो वही समझना जो रोग मिटाने आदि के निमित्त से दाह दिया जाय और लक्षणा से नसरा उसको समझना जो सांड पहिचानने का चिह्न या नैलों की गिनतीके नम्वर अंक आदि दागे जातेहैं अथवा दोनों में लोहा गरम से दागना होता है निरफ जखरी प्रयोजन दो जुदे जुदे होते हैं तिससे अंकन और लक्षणाकाभेद किया गया कुछ हमेशा और हालका तात्पर्यतीक नहीं है • और वाहन सवारी आदि में जोड़ने वांधने का जो दोय नहीं कहा सो भी जितनालोक और शास्त्र के अनुसार उचित हो उससे अधिक में दोयभी होता है ॥ • ॥ यद्यपि राज वृथभकी रक्षा के निमित्त वांध राखने का दोय नहीं बताया तोभी विरले या बहुधा बंधन सेसेहैं कि उनसे वांधनेमें दोयकी उत्पत्ति होतीहै तिससे व्यास जो ने उन बंधनों से वांधने का नियेध भी दर्शाया है—यथाह व्यासः—ननालि करेसानशाखावालैर्नचापिसौत्रेननवन्वष्टखलैः सतैस्तुगावोननिधंवनीयावध्वाऽनुति एतपरशुश्रीत्वा कुशैःकांशैप्रचवधीयात्स्थानेदोयविवर्जिते—अथवा—न तौनारियर कीजटा बकल आदिकी वनी रस्म से न सनकी वनी रस्सीसे न बालोंकी रस्सीसे न सूजकी रस्सी से वांधै न ऐसी किसी मेखला चमड़े आदि की वनीसे वांधै जिससे पैर फंसिकर चलना फिरना बन्दहोय यहा उस मेखलासे न वांधै जिसमें अनेकपशु सक हीमें फंसेजायँ (मेखला या अंखला वही कहातीहै जो जंजरेके आकारहोय) इतने प्रकार केबंधनोंसेराज वृथभ न बांधने चाहिये और जो इन्हींसे वांधे तो इतनी बड़ी चौकसाइंकरै कि फरसा गंडासाआदि हाथ में लेकर उनकेपास पहिरादेवै कि यदि सौंपअग्नि आदिका उपद्रव कुछ उठ खडाहो तो तत्काल बंधन काटि दिये जासकै जिससे प्राणा हानि न होने पावै—इसीलिये यह आज्ञा है कि कुश कांश की रस्सी से वांधै जिसको उपद्रवके समय आपही तोडि भागै वक्तिक ऐसी जगहमें वांधै जहां उपद्रव न उठिके या उठनेपरभी प्राणा बचाइसकै खत्ती आदिमें न गिरजायँ ॥ • ॥ अथघंटादिदोषमरणे प्रायश्चित्तं—तराह आपस्तंबः—घंटाऽऽभरणादेषैराविपत्ति र्वादिगोभवेत् कच्छार्धतुभवेत्तत्रभूयराार्थैर्हितस्मृतत्वं—अथवा—गले बंधे घंटा की आवाज सुनिके सिंह आकरगाय मारै या पहिनाये हुये भूयरा के लालचसे चार डांकू आदि राज नार जायँ तहां घंटा और भूयरा पहिराने वाले स्वानीको कच्छ व्रतकी

आधा प्रायश्चित्त चाहिये यह दोनों बात भयसा बाँधने के निमित्तसे पाप हुआ क-
हाता है ॥ ० ॥ अतिदोहनादिभिर्मरगोप्रायश्चित्तं=तदप्याह आपस्तंबः=अति
दोहातिदमनसंघातेचैवयोजने वध्वाद्यंखलपाशैश्चमृतेपादोनमाचरेत्=अथति-अति
दूष दुहिलेने से यदि गऊ या बछरा सरजाय तितक्रे पाप में और प्रबल गाय वृथभ
की शिक्षा हेतु से अत्यंत दमन करने में अर्थात् उचित शिक्षासे अधिक ताड़न पीटन
करते यदि सरजाय तिसके पाप में भी और आपस के सघात में खवर न लेनेसे लडि
भिडके सरजाय तिसके पापमें और गरखोल आदिबंधनमें उक्तभिके सरजाय तिस
बेखवरी के पाप में और दुहिते समय बछरा जोड़ने खोरने के व्यतिक्रम या बैलोंको
रथ आदि में जोड़नेके व्यतिक्रम से दो में एक सरजाय तिसके पापमें और लोहेकी
जँजीर या रस्सी आदि की सरकफूंद से बाँधने में फाँसी लगिके सरजाय तिसकेपाप
में इतने उक्त निमित्तों पर निमित्तों इत्यारा पुरुष एक चौथाई कम करिके तीन
पाद प्रायश्चित्त करे=यह पौना प्रायश्चित्त भी कृच्छ्र प्राजापत्य का समझना जो
अभी घंटा के दोय में केवल आधा कडिचुक के कौंकि आपस्तंब के ये दोनों वचन
साथही मिले पाये हैं ॥ ० ॥ रचनादिब्यतिक्रमतोग्रपिमरगोप्रायश्चित्तं=उन्हीं
आपस्तंबने जंगल आदि में रक्षाके व्यतिक्रमसे मरजानेमें भी स्वामी को प्रायश्चित्त
करना कहा है क्योंकि स्वामीने चतुर सिहनती गोपालको नहीं सौंपी यही उसपर
निमित्त दहिंरा=यथाह=जलोघपल्वलेमरनामेघविद्युद्धताऽपिवा गर्तायांपतिताऽक-
स्माच्छ्वापदेनापिभक्षिताप्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोस्वामीव्रतमुत्तमम्॥ शीतवाताऽऽहता
वास्यादुद्धं धनहतापिवाग्नुन्यागारउपेक्षायांप्राजापत्यंविनिर्दिशेत्=अथति-बहुतजल
के ताल तलैयोंसे डूबी या अति बर्या और विजली की मारी सरजाय या गडहिले
खाड़े आदि से गिरिके मरे या अचानक सिंह व्याघ्र आदि भक्षरा करिजाय तो
उस गाय का मालिक उत्तम रीति विधान से कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे ॥ अथवा
अति शीत पाला के परने या भंभा वायु आंधी के चलने से या जेटकी लुसे मरी
हो या बंधनकी अलघेट फाँसोलगिजानेसे मरीहो या सुनेधरमें अकेली बँधीहोनेकी
उपेक्षासे भुंखी ध्यासी आदि होकरचाहे किसी तरहसे मरीहो तो प्राजापत्य करना
चाहिये क्योंकि येवार्ते सब स्वामीकीगफलत से उत्पन्न होतीहैं परन्तु यह पुराप्राय-
श्चित्त उसीकी करना चाहिये जो किसी बड़े कार्य मे न लगाहो किन्तु जोस्वामी
किसी कार्य में लगाहूआ व्यग्र हो तिसको आधा करना चाहिये और शेष आधा
गोपालपर आरूढ कियाजाय=तो इसआधेका प्रसादाभी अग्रोक्त विष्णाका वचन

ई=यदाह विष्णुः=पल्वलोघमृगव्याघ्रश्चापदादिनिपातने यत्र प्रपातसर्पाद्यैर्मृतेषु च्छा
 र्मसाचरेत् अपालत्वात्तद्वच्छः स्याच्छून्यामारउपप्लवे=अर्थात्-विष्णुने कहा है कि
 छोटे मोटे ताल तलैयां जहां जलके भीतर बहुत छिपीहों तिनमें डूबिके मरै या वन
 के बड़े पशुओंसे या बाघसे या भेड़िया कुत्ता आदि किसी से मारीजाय या धरती
 पोलोके छिद्रमें खुरचलाजानेसे गिरिके मरै या सांप आदि कोई चियैल जीव काहें
 तिससे मरै तो उस गऊका मालिक आधाही कृच्छ्रव्रत आचरै परन्तु जो मालिक
 ने रसक साथकिये बिना छोड़िदीहो या जहां जहां जो खुद रसाकरनी योग्य थी
 सो मालिकने न करीहो और इन्हीं उक्तप्रकारोंसे यदि गऊमरीहो तो फिर पूराही
 कृच्छ्रव्रत करना चाहिये तथैव जो सुने घरमें बांधीहुइ किसी उपद्रव से मरजाय तो
 भी स्वामीको पूराकृच्छ्रव्रत करना चाहिये (अब ऊपरसे मिलाकर देखौ कि आप-
 स्तंबके वचनसे यह विष्णुजीका वचन तुल्यात्मक होगया ॥ क्वचित्तगोप्राणहानी
 तुनदोषः-कहीं यहभी सकधर्महै कि जो कोईचाहै मालिकहो या गौर उसीगऊके
 उपकार निमित्तसे किसी व्यापारमें समुद्यत हुआहो उसमें गऊ यद्यपि मरजाय तो
 भी उसको दोष नहींहै अर्थात् प्रायश्चित्त करने की जरूरत नहीं। सो यह दोषका न
 होना केवल वचन के प्रभाव सेही सिद्ध होताहै कृच्छ्र और दलील की जरूरत इसमें
 न होगी और वह वचन है संवर्तमुनिका=यथाहसंवर्तः=यंत्रगोशिचिकित्सायैगुदगर्भ
 विमोचने यत्नेकृतेविपत्तिःस्यान्नसपापेनलिप्यते (यंत्रगंध्याध्यादिनिर्यातनार्थं सं-
 वंशांक्रुशादिप्रवेशनं) तथा-श्रौयधंस्नेहमाहारदंद्द्रोत्राह्नरादिजःदीयमानेविपत्तिप्रचे
 न्नसपापेनलिप्यते प्राप्तघातेशरीधेरावेश्यभंगान्निपातने-तथा-दाहच्छेदसिरामेदप्र
 योगैरुपकुर्वतार्षद्विजानांगोहितार्थंचप्रायश्चित्तंनविद्यते=अर्थात्-रोगवाली गऊकी
 चिकित्साके अर्थमें यंत्रगाकारमें करतेहुये या अटकहुये गर्भके निकालने में यत्नकरते
 समय या उस यत्नके होचुके पीछेही यदि गऊ मरजाय तो वह करने वाला पापी
 नहीं दहरता है (यंत्रगाकर्म उसका नामहै जो किसी बड़े गुमडके कोर आदि को नाश
 करनेको गरम सँडासी आदिसे दागें या अंकुश कील कांठ आदि जुभावें और उसी
 यन्त्रगां शब्द से रसना बंधन कर्म का अर्थ लियाजाताहै)=तथैव सक यह वचन है
 कि=दवाइये या घी तेल आदि चिकनाइये या दूध रवड़ी आदि या बहुत अच्छाभोजन
 किसी गऊको या ब्राह्मणको देते खिलातेहुये यदि उसकी मौतहोजाय तो वह देने
 खिलानेवाला कोई द्विजाती पापीनहीं दहरताहै क्योंकि उसने पुरायकी अभिलाया
 से यहकिया-परन्तु पहिले परिच्छेदमें (श्रौयबंधनवाचैवपुरायार्थमपिभोजनंअति

रिक्तनदातच्छ्रंश्रत्यादि) यह व्यासका वचन जो आचुका उसमें गाय की खुराक से अधिक भोजन अच्छा भी खवाना प्रतिषिद्ध होचुका तिससे—यहां भी पचि सकने के अनुमान साफिक देनेसेही यदि कोई गाय मरजाय तिसमें दोयाभाव समझना—अन्यथा ज्ञानमान प्ररुय जो मुखानाज पेटभरि तानि के खवावे जिससे गाय पेट फूलि के मरजाय तौ फिर उसी पहिले व्यासवाले वचनके अनुसार प्रायश्चित्त भी अवश्य करना होगा=तथैव गऊ का सालिक या रखवाला उस दशा में भी नहीं पापी होता है जो गावंपर धरि चडि आने से गावें माराजाय उसमें चाहें बाराणों के समूह से गऊ मारीजाय या घर दूने फुंकिजाने आदि से मारीजाय=तथैव सक यह वचन है कि=रोगवती आदि गऊके दितके लिये गरम लोहे सेदाह देने या गुमडा आदि चीरने या फस्त खोलने आदि प्रकारों से उपकार करने वाले हिजातियों को विपत्ति होजाने पर भी प्रायश्चित्त नहीं लगता है=ऐसाही पराशर ने भी कहा है कि=अतिदृष्टिहतानांचप्रायश्चित्तनविद्यते कृषवातेचधर्मार्थेगृहदाहेचये मृताः ग्रामदाहेतयाधोरेप्रायश्चित्तनविद्यते=अर्थात्—जौ गौर्ये कहीं अति वर्सा के होनेसे मरजायं यहांपर भयानक प्रलयरूपी वर्सा समुभिलेजी कि जिसका प्रबन्ध सब लोगोंसे न होताहो) या धर्मके निमित्त कोई कूप तडाग आदि खोदा गयाहो तिसमें गिरिके मरजायं या घरमें आगि लगिजानेसे मरजायं,या सब गावें में आगि लगिजानेसे या अतिशय धोर उपद्रव किसी भांतिका उदित्पडा होने से मरजायं तौ इन गौओंके सालिक या रखवाले या कूप तलाव के बनवाने वालोंको प्रायश्चित्त नहीं लगताहै=परन्तु=यहां निपट प्रायश्चित्तका न लगना सिर्फ उन्हीं पशुओं को सौत होजाने मध्ये माना जासक्ताहै जो बंधनके बिना लुडा रहितेहों और देवयोगसे कहीं आगिलगिजाने आदि किसी उपद्रवसे मरजायं,अन्यथा जो बंधनमें रहितेहों और इन्हीं प्रकारोंसे मरजायं तिनके मध्ये आपस्तंबकी विशेषता लेनीचाहिये=यथाह आपस्तंबः=कांतारेण्वयदुर्गुगृहदाहेखलेयुच यदित्तत्रविपत्तिःस्यात्पादसक्तोचिधीयते=अर्थात्—ऐसे किसी वनमें या पहाड़ीकोट आदिमें कि जहांसार्ग बडादुर्गमहो या घर खलिहान आदि में आगि लगिजानेसे यदि वहां गौओं को सौत अचानक होजाय तौ स्वाक्षी रक्षक आदि अधिकारीको सक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये (यह चौथाई उस प्रायश्चित्तकी समझनी जो ऊपर कहीं आपस्तंबके वचन में कच्छप्राजापत्य करना कहिचुके॥ क्वचित्प्राणहान्यभावेऽपिप्रायश्चित्तं—कहीं कहीं गायकेप्राण बचिजाने परभी प्रायश्चित्त होताहै यदि हाड आदि टूटेहों=य-

धा=अस्थिभंगं गवां कृत्वा लांगुलच्छेदनंतथा पादनंतं चृगाणां मासाधै च यवान्पिवेत=
 अर्थात्-गौश्रोकौ हाडोंको तोड़िके या पंख उनकी काटिके या दांत और सोंगों को
 उखाड़िके एक परववारामर जौका दलिया रांधिके पीवै तथा उक्त नियमों की भी
 साधै=इसी बातपर अंगिराने कुछ और भेद किया है=यथा=चृगादंतास्थिभंगे वा चर्म
 निर्माचनेपि वा दशरात्रोपवेद्भुजं स्वस्थापियदिगोर्भवेत् (अत्रतुवजशब्दवाच्यंसीरादि
 र्वत्तनमुक्तंतदशक्तवियर्थासित् मिताक्षराकाराः) अर्थात्-सीरा दांत हाड टुटिजाने या
 खाल उखिड़जाने में यद्यपि गरुको आराम होजाय तौभी तोड़नेवाला दशदिन तक
 वजपीकर प्रायश्चित्त साधै (वज्रनाम यद्यपि तालमखाने और सृपेदकृशोंका भी होता
 है परन्तु आचार्योंने दूधका फोला और दूधआदि पीके रहनेयोग्य आचारोंका नाम
 वज्र कहा है और इसके साथ यहभी आशय दर्शाया है कि यह दशदिनकी योद्धी अ-
 वधि और दूधआदि पीना उस प्रायश्चित्तकी निमित्तमें समझना जो अशक्तहो यह
 मिताक्षराकारोंने कहा ॥०॥ इतगोसमानमूल्यदानंच-यह प्रायश्चित्त जो जी क
 हिचुके सौ पीछेकरै किन्तु मरीहुई गरुके समान दूधरीगरु यहा बैसीगरुके बरा-
 बरमोल उसके स्वामीको प्रथम देकर प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करै=तदाहपराशरः=
 प्रमापरोप्राणाभृतांदद्यात्तत्प्रतिरूपकम् तस्यानुरूपं मूद्यं वा दद्यादित्यत्रवीन्मनुः=अ-
 र्थात्-गरुआदि प्राणियोंके मारडारनेमें वैसाही प्राणीलाकर स्वामी को समर्पणा
 करै अथवा वैसा जीव न मिलसके तौ उसके अनुमान जितना मोल उचित हो वही
 देवै यह मनुकी आज्ञा पराशरने कही=सर्वमनुजे आपभी यह दण्डके प्रकरणामें कहा
 है कि=योयस्य हिंस्यात्तद्रव्याणि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा सतस्योत्पादयेत्तुष्टिराज्ञेद
 द्यात्तत्समम्=अर्थात्-जो कोई जिसकीसी की कोई चीज बिगाड़ या चिनाई सौ
 उसकी संतुष्टि उत्पन्न करै किन्तु जैसेहो तैसे उसका राजीनामा प्रकाश करै और उसी
 द्रव्यकी बराबर वह राजमें भोजुमाना भरै ॥ ० ॥ उक्तप्रायश्चित्तानां सर्ववर्गभेदे-
 नप्राप्तिनिर्णयः-यहाँ तक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त मात्र जो गोवध के सद्ये वर्तानकिये
 गयेसौ सब केवल ब्राह्मण प्रायश्चित्तकी निमित्त में समझने किन्तु जो क्षत्रीआदि
 कोई अन्यवर्ग हत्यारेहो तिनके लिये दृढदृष्टिगाने विशेषता प्रकट करी है=यथा=
 विप्रहसकलंदेयंपादीनं क्षत्रियेऽस्मृतम् वैश्येऽर्धपदसकस्तुशूद्रजातियुशस्यते=अर्थात्-
 जहाँ जहाँ जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गया सौ ब्राह्मण हत्यारेमें पराकरवाना चा-
 हिये और क्षत्री से वही प्रायश्चित्त एक चौथाई कम कराना और वैश्यों से आधा
 और शूद्र जातोंमें सिर्फ चौथाई करवाना श्रेष्ठ होता है (यहाँ गोवध के प्रायश्चित्त

में जो ब्राह्मण पर अधिकता राखी गई सो इस हेतु से कि ब्राह्मण सब धर्मों की मूलहे यदि मूलही बिगड़ि जायगी तौ फिर संसार रूपी धर्मवृक्ष क्योंकर खड़ा रहेगा तिससे मूलकी सुधारना मुख्य धर्महे जिससे अन्य वर्गोंको शिक्षा प्राप्त होती है)= एक जो अंगिरा का वचन इससे विपरीत प्रतीत होता है कि=पर्यया ब्राह्मणानंतु स राजांश्चिद्विद्यामता वैश्यानां त्रिपुरा प्रोक्ता पर्यद्वचनं स्मृतम्=अर्थात्-ब्राह्मणोंकी सभा जितनी होती है राजाओं की उससे दूनी होनी कही और वैश्यों की तिथनी कही और पर्यद सभा के तुल्य उनके व्रत भी होने कहे हैं (सो इस वचन में व्रत शब्द से प्रायश्चित्त का तात्पर्य न लेना चाहिये क्योंकि यह वचन दंडके प्रकरण में प्रतिलोम नालिशों मध्ये जहां, वाग्दंड और वाक्पारुष्य आदि के अपराधी प्रतिलोम जातीहुये हैं तिसके विषय पर आसूद है ॥ ० ॥ अथ स्त्रीवाल्म्वृद्धादीनां प्रायश्चित्तविवेकाः-जैसा हीन वर्गोंके पुरुषों में हीन प्रायश्चित्त दर्शाया गया तैसा ही स्त्री और बूढ़े और बालक तथा रोगियों के लिये उन पुरुषों से भी आधा प्रायश्चित्त चाहिये कि जिन वर्गोंको जितना कम करिके कहि चुके और जो बालक अनुपनीत अर्थात् संस्कार से विहीन हो तिसके लिये आधे का आधा सिर्फ चौथाई प्रायश्चित्त चाहिये ये सब नियम पहिले वर्णान ही चुके हैं सो यहाँ भी समझि लेने=प्रिरोमुण्डनं-स्त्रियों के लिये पराशरने कृत् और भी विशेषता दर्शाई है=यथा=वपनं चैव नारीणां नानुब्रज्या जपादिकम् न गोप्ये शयनं तामांजवसीरवरावाजिनम् सर्वान्केशान् समुद्धृत्य दयेदंगुलद्वयम् सर्वत्रैव हि नारीणां शिरसो मुहुरं स्मृतम्=अर्थात्-स्त्रियोंकी प्रायश्चित्त की दशा में न मुण्डन कराना चाहिये न विदेशों का फिरना और जप पाठ आदि चाहिये जो विद्याकी सबधी बातहें और शोशालामें सीना कहा सो भी न चाहिये और गरुका चमड़ा ओदना जो पुरुषोंकी कहि चुके सो भी न चाहिये किन्तु यह करना चाहिये कि सब केशोंको हाथसे पकड़ि इकट्ठे ऊँचेकरिके दो अणुरमात्र कतरि डालें तौ यही उनका मुण्डन है जो सभी रेशे कामों में सर्वत्र उनका शिरसे मुड़ि जाना कहलाता है=सर्वं=पुरुषों के मुण्डन में भी संवर्त ने विशेष भेद प्रकट किये हैं=यथाह संवर्तः=पादेऽङ्गरो मवपनं द्विपादेऽङ्गुलीऽपि चिपादे तु शिखावर्जसशिखंतु निपातने=अर्थात्-जिस पुरुषकी एक चौथाई प्रायश्चित्त करने की योग्यता दहिरी हो तिसके कंदसे लेकर पैरों तक रोमा मुड़वाने चाहिये यही उसका मुण्डन है जिसकी आधा प्रायश्चित्त करना दहिरीहो तिसकी मूक दादीभी मुड़ानी चाहिये जिसकी तीनिपाद प्रायश्चित्तकी योग्यता दहिरीहो तिसकी केवल

चोटी छोट्टिके सब देहके रोमा और बाल भी मुझाने चाहिये जिसने राऊका पुराही निपात किया अर्थात् जिसको पुरा प्रायश्चित्त करना ठहरा हो तिसकी चोटी सहित सब देह मुझानी चाहिये ॥ श्रीमन्मितासराकार विज्ञानेश्वर आचार्य कहिते हैं कि इसी रीतिसे और भी जे कोई स्मृतियोंके अधिक वचन मिलजायँ तिनकी विषय व्यवस्था अपनी बुद्धिसे विचार लेनी चाहिये परन्तु इसी मार्गके सहारे से कि जैसा डोल हमने बांधा ॥ इतिगोवध प्रायश्चित्तप्रकरण इस प्रकरणा में गोवधके जुदे जुदे भेदोंसे चारि परिच्छेद हैं चालीसवेंको आदि लेकर ४३ तेंतालिम तक पूरे हुये ॥२६३॥२६४॥ इन्हीं दो श्लोकोंकी अविकोक्तिके शेष पादमें यह परिच्छेद है ॥

॥ अब अगिले परिच्छेदसे लेकर ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहे जायँगे तिनपर प्रायश्च गोहृत्यामें कहे प्रायश्चित्तों का अतिदेश उतारते रहेंगे और कुछ कुछ उनके जुदे प्रायश्चित्त भी दर्शाते रहेंगे सो सब उन्हीं दिक्कानोपरदेखना ॥

अथोपपातकसामान्येषु सर्वेषु पूर्वोक्तगोवधप्रायश्चित्त स्यातिदेशप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः चतुश्चत्वारिंशः ४४

इस परिच्छेदमें पूर्वोक्त गोवधके प्रायश्चित्त लेकर साधारण सभी उपपातकोंपर अतिदेश उतारा जायगा कि उन हरसकके जुदे प्रायश्चित्तों से उपरालु उनपर गोहृत्या वाले प्रायश्चित्तभी विकल्पसे लागू सकेंगे-परन्तु बिरलोपरनहीं भी लागू सकेंगे केवल अपने जुदेही उपदेशक प्रायश्चित्तउनपरल गे ॥

(सर्वोपपातकेष्वतिदेशः)

उपपातकशुद्धि स्यादेवचाद्रायणेनवा । पयसान्नापिमात्सेनपराकेणथवापुन. २६५

अन्तरार्थः—सय उपपातकसे शुद्धि होय या चांदायतासे या दूधके साथ एक स-हीना से अथवा पराकसेही ॥ २६५ ॥

अपमिप्रायः—२३४ दोसौ चौतीस आदि २४२ तक नौ मूलश्लोकों से जो जो उपपातक दर्शाए थे उनमें सबसे पहिला गोवध कहा था तिसके प्रायश्चित्त कई परिच्छेदोंसेपूरे हुये अब यहाँ ब्राह्म्यता आदि सभी उपपातकोंके प्रायश्चित्त कहिना

चाहते हैं—तिसके लिये चालीसवें परिच्छेद में जाकर २६३ दोसोत्रेसति आदि मूल प्रलोकोके अर्थ और अधिकोक्तिकोभी देखीं कि वहांपर योगीश्वरने जो कुछकहाथा उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश यहां श्रेय उपपातकोपर उन्हीं योगीश्वरने उतारा है—कि—एवं इसीप्रकार जैसा गोवधमें कहिचुके तैसा प्रायश्चित्त करने से श्रेय उपपात कांकी भी शुद्धि होसक्तीहै—परन्तु जो ऐसा करना न चाहे तो चांद्रायणके करने से भी शुद्धि होतीहै जिसका स्वल्पकहीं आगे कहाजायगा—अथवा एक महीना दूधपीने का नियम साधनेसे भी उपपातको की शुद्धि होजाती है अथवा पराकनाम का व्रत करनेसे भी शुद्धि होती है ॥ २६५ ॥

२६५ अधिकोक्तिः—यहां उपपातकोके प्रायश्चित्तमध्ये जो अतिदेशदियागया तिसकीसामर्थ्यसे पूर्वोक्तप्रायश्चित्तोंमें विरली बातोंका कमकरना भी पायाजाताहै कि जोजोवातें देकर गोवधसेही सवधरखतीहैं इसका दृष्टांत जैसे राजका चमड़ा ओढना या गौओंके पीछेपीछे सेवाकरते फिरना इत्यादि बातें खासकर गोइत्याकेही प्रायश्चित्तमें बंचितहोगी सभी उपपातकोंमें नहीं—क्योंकि जो सभी उपपातकोंपर आवश्यकहोतीं तो फिर २६३ दोसोत्रेसतिसे जो कुछ प्रायश्चित्त कहिचुके सो केवल गोध पुरुषकेनामसे न कहेजाते किन्तु सभी उपपातकी पुरुषकेनामसे कहेजाते—इसीलिये अतिदेशकी सामर्थ्यका चर्चा यहां कियागया कि यद्यपि अन्य उपपातकोंपर गोवधवाले प्रायश्चित्त कियेजासक्ते हैंतथापि उसकी सभोवातें सर्वत्रनहीं स्वीकार होसक्तीहैं अतिदेशका स्वभाव यही होताहै ॥ ० ॥ यहां जो २६५ मूलप्रलोक में चार प्रकारके व्रत कहेगये तिनकी उस प्रकारके उपपातकों पर समझना चाहिये जो इच्छाबिना धोखा आदिसे होगये हों तिनमें अपराधीकी शक्ति के अनुसार इन चारों मेंसे कोई एक व्रतकराना चाहिये कि जिसका बोझ उससे उठिसके—अथवा—जिसने जानिबिभ्र इच्छासे कोई एकउपपातक कियाहो तिसकेलिये मनुकाकहा तीनि महीने का प्रायश्चित्त विचारना चाहिये—यथाइमनु—एतदेवव्रतं कुर्युः उपपातकिनो द्विजाः अथकीर्णावर्जशुद्धार्थंचांद्रायणमथापिवा—अर्थात्मनुजो पहिले तीनि महीना का जो प्रायश्चित्त कहिचुके है उसी का अतिदेश अन्य उपपातकों पर दर्शाते हैं कि—यही तीनिमहीनेका व्रतहै सो और सब द्विजाती जो जो उपपातको हुये हों सो अपनी शुद्धिकेलिये करें अथवा चांद्रायण करें जो उनका उपपातक छोटा होय तो परन्तु यह नियम अथकीर्णांकी छोड़ि के समझना अर्थात् अथकीर्णां भी एक उपपातकी होता है पर उसके लिये जुदा प्रायश्चित्त कहेंगे वही उसकी चाहिये—अव-

कीर्णां इसकानामहै (ब्रह्मचार्यवकीर्णांस्थित्वात्कामतस्तुस्त्रियंत्रजव) ब्रह्मचारी होकर जो कामकी अपेक्षासे स्त्री गमनकरै या इसप्रकारका और कोई यती आदि अपना व्रत भंगकरै सो अबकीर्णां कहाताहै—योगीश्वरने २३६ के मूलश्लोकमें (व्रतलोपश्च) इतने पदसे अबकीर्णांका स्वरूप दर्शायाहै ॥ ० ॥ जबकि योगीश्वर और मनुकेदीनों के अतिदेश मौजूदहैं तौ इन वचनों के प्रभावसे यह प्रायश्चित्तका अतिदेश उनसभी जनोंपर आरूढ़ समुभन्ना चाहिये कि जो जो उपपातकों के गरा में नाम आये फिर चाहें उनमें किसीका जुदा प्रायश्चित्त भी कहागयाहो यद्वा विरलोकिलिये कोईजुदा प्रायश्चित्त न कहाहो तौभी यह अतिदेश सबकेलिये समुभन्ना केवल अबकीर्णांको छोड़िके ॥ ० ॥ यहां एक तर्कवादहै कि जिनकेलिये कोई जुदा प्रायश्चित्त न कड़ा जाय उन्हींके निमित्त यह सामान्य अति देशरूपी प्रायश्चित्त मानना उचित होता तौ ठीकथा क्योंकि जो सबकेलिये मानागया तौ यह सोय खड़ा होताहै कि जिनका नाम लेकर जुदे प्रायश्चित्त कहे जायेंगे उन प्रायश्चित्तों का वाव अर्थात् सकावट इन्हीं सामान्य प्रायश्चित्तोंके अति देशद्वारा पाईजातीहै कि जब सभीको सामान्य अतिदेश देखुके तौ फिर विरलोकौ जुदे प्रायश्चित्त बतानेका ठिकाना कहां रहा= इसका यही उत्तरहै कि=ऐसा नहीं क्योंकि जैसा तुमने कहा था समुभन्ना तैसा होने में यह दूयगाहै कि जब केवल उन्हीं के लिये अतिदेश होता तौ फिर उनका पाठही जुदा रक्वाजाता अर्थात् बैसे दूसरी भांति के उपपातकियों में मिलाकर उनके नाम जो रक्खिचुके सो अनर्थक हुयेजाते हैं•इसके सिवाय जो सामान्य भावसे उपपातकों के गरामें नाम लिखेगये तिनका अन्य स्मृतियों में जुदा प्रायश्चित्त मिलताहै•तथैव जो उपपातकोंके गरामें विरलेनामनहीं कहे तिनके भी प्रायश्चित्त इसमें लिखेदेख परते हैं इसका दृष्टांत जैसे अयाज्योंका याजक एक उपपातकी लिखिचुकेहैं (२३७ के मूलश्लोकमें देखौ) तिसका प्रायश्चित्त आगे दोसौनवासी मूलश्लोक में (जीवक च्छानाचरेद्रात्ययाजको-अभिचरन्पि) यह कहेंगे इसकेसाथ अभिचारकाभी वही प्रायश्चित्त कहिदिया है कि जिस अभिचार नामका उपपातक अपने गरामें कहीं नहीं आयाया इसीप्रकार शरणागत के त्यागनेका अधिक प्रायश्चित्त उसी दोसौ-नवासी मूलश्लोक में देखना ये सभी बातें मिति जावें और भूंदी रहैं जो तुम्हारे उक्त विचार के अनुसार जानाजाय•और यहभी नियम नहींहै कि जो जो उपपातक विशेष किसी सकनामसे लिखेगये उनका प्रायश्चित्त जहां लिखा गया तहां खास र विशेष उसी पूर्वोक्त नामसे लिखा हो इसका भी दृष्टान्त पहिले दोसौचालीस

मूलश्लोकमें (इंधनार्थद्रुमच्छेदः) इस पदको देखीं कि यह एक उपपातकहै विशेष्य कर वृक्षकारनेकेहीनामसे लिखागया • फिर इसका प्रायश्चित्तजाकर दोसौछिहत्तरि२७६ मूलश्लोकमेंदेखीं कि (वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृकशतं) वृक्ष•गुल्म• लता• वीरुध• इन चारोंमें किसी के कारने मध्ये एकसौ ऋचा जपनी कही हैं—इन बातोंके सेंचपेंच से यहसार समझिलेना कि उपपातकों के समस्त प्रकरणा में कोई सा एकही क्रम ऐसा सुधा नहीं है कि जिसके द्वारा मालाके श्रिआ समान गिनती गिनाई जासके—तिससे—यही सिद्धान्त ठीकहै कि दोसौचौंतीस मूलश्लोकमें ब्रात्यता को आदि लेकर दोसौच्यालिस मूल श्लोकतक भार्या के बेचने पर्यंत जो जो उपपातक हैं तिनकेलिये प्रायश्चित्त भी चाहें इसी ग्रन्थ के शास्त्रमें या और किसी ग्रन्थ में जो कुछ लिखेपायेजायँ सोभी और यहां जो २६५ के मूल श्लोक से चार प्रकार के प्रायश्चित्त कहे वे भी उनमें मीलानकरिके परस्पर उनको समता और वियमता और बड़ाई छोटाईकेविचारसे विकल्पनियतकरै यद्वा विययभेदसे विभागकरना और चाहिये—और वे अन्य स्मृतियोंके कहे प्रायश्चित्त भी ब्रात्यता आदिके पाठका क्रम लेकर आगे उन्हींके साथ जोड़े जायँगे तहां तहां सर्वत्र देखना ॥ २६५ ॥

इत्युपपातकसामान्यप्रायश्चित्तानि

इसी दोसौ पैंसठवाली अधिकोक्तिकापाठ बहुत लम्बा है सो आगे आगे अनेक परिच्छेदों में जाकर पूराहोगा कि जबतक (२६६) मूलश्लोक न मिलेक्योंकि मिताक्षराकारने इसी (२६५) परटीका बहुत बढ़ायाहै तिसके अनेक परिच्छेद किये जायँगे कि उनमें जुदे जुदे उपपातकोंकी व्यवस्था लिखीजाय ॥

यह भी यादराखना कि यद्यपि इस परिच्छेद में सभी उपपातकों के नामसे सामान्य प्रायश्चित्त कहेगये हैं तथापि बहुतेरे उपपातकोंपर अशोक्त प्रायश्चित्तोंकी पहुंच न होनेसे अपवाद मानाजायगा इसका दृष्टान्त जैसे अवकीर्णा ब्रह्मचारी आदि के लिये ये प्रायश्चित्तनहींहैं सबपरदारगामोक्तिलिये येप्रायश्चित्त नहींहैं तिससे उनके लिये बड़े बड़े औरही प्रायश्चित्त जुदे परिच्छेदों में दर्शायेजायँ तहां समझिलेना ॥ २६५ ॥

अथोपपातकिनां-ब्रात्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः पंचचत्वारिंशः ४५ ॥

—*—

इस परिच्छेदमें ब्रात्यपुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे—ब्रात्य उसका नाम है जो तीनवर्षोंका पुरुष जनेऊआदि सत्कारसे हीन होनेके कारण—ब्रात जो समूह संस्कृत पुरुषोंका या उसकी जातिमात्रका समूह ब्रात है तिससे गिरिजाय अर्थात् असंस्कृत होनेसे पतिततर्काहरे वही ब्रात्यकहा जाता है तिसकी ब्रात्यता दूर कर देनेके प्रायश्चित्त है॥

(ब्रात्यप्रायश्चित्तं)

ब्रात्यता एक उपपातक जो २३४ दोसौ चौंतीस मूलश्लोक में दर्शाया तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने २६५ दोसौपैंसठिके मूलश्लोकमें अतिदेश भागसे सूचन कर दिया अब जुदा कृच्छ्र न कहेगे—परन्तु—अन्य सुनीश्वरों के कहे प्रायश्चित्त यहां लिखने आवश्यक हैं तहां पहिले मनुका कहा देखो—यथाह मनु.—येयां द्विजानां सावित्री नानुच्छेदयथाविधि तांश्चारयित्वा वीच कृच्छ्रान्यथाविध्युपनायनेत=अर्थात्—जिन द्विजाती वर्णोंकी गायत्री का उपदेश उचित समय पर यथोक्त विधिसे नहीं किया जाता है (वही ब्रात्यकहलाते हैं) उनका उपनयन जब करनाही तो उनसे तीन कृच्छ्र ब्रत कराइके जैसी विधि होती है उसी तरहसे उपनयन करावै—यमने भी यही कहां है—यथा—सावित्रीपतितायस्य दशवर्षाणिपचच सशिकं वपनकृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितं एकविंशतिरावचपिषेत्प्रसृतयावकस इविष्यंभोजयित्वा वैवंब्राह्मणान्सप्तपचच ततो यावकशुद्धस्य तस्योपनयनस्मृतम्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणके जन्मसे पद्मह वर्ष पूरेतक सावित्री पतित हुई हो अर्थात् गायत्री की शिक्षा न मिली हो (तिसकी मत्ता ब्रात्य होती है) उसका जब उपनयन करना होय तब गिरवा सहित गुडन पहिले कराइके इक्षीय दल सावधान होके ब्रतकरै तब तक एक घसर भरि चौका दलियाराधि माइ पिथा करै तिस पीछे बारह ब्राह्मणोंको खीरि पूरी आदि इविष्य भोजन कराइके तब उस यावक पीकर शुद्ध हुयेका उपनयन करना कहा है—यहां पर इस बातकी शोचो कि गनु और यमके कहे येही दोनों प्रायश्चित्त उसकी बराबर हैं कि जैसा

योगीश्वरने २६५ मूलश्लोकमें एक महीना दूध पीना कहा क्योंकि यद्यपि योगी-
श्वर याज्ञवल्क्यने ब्राह्म्यताको नामसे कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु सामान्य
भावसे मूलश्लोकमें सभी उपपातकोंकी शुद्धिहोना चाहिये है—इसी ब्राह्म्यतामध्ये=
वशिष्टजीने कुछ बढ़िया प्रायश्चित्त कहा है तिसका तात्पर्य भी कुछ और है सो
देखो—यथाह वशिष्टः—पतित सावित्रीकउद्दालकप्रतंचरेत् हौमासौयावकोन वर्तयेन्मा
संपयसापसनाऽऽमिसयाऽऽयरात्रंघृतेन यडाघमयाचितेन विरात्रमवभसोऽहोरात्रमुष
सेदश्रमेधावभृथंगच्छेत् ब्राह्म्यस्तोमेनवायजेतेति—अर्थात्—जो पुत्र्य सावित्री से पतित
होय सो उद्दालक प्रतकरै कि दो महीना यावक पीकरहै फिर एक महीना गऊका
दूध पीके रहै फिर एक पाख आमिसा पीके रहै फिर एक अठवारा गऊ का घी
चाटिके रहै फिर छेदिन विना सांगे जो कुछ आजाय उसीको भोजन करै पर मुहसे
न सांगे फिर तीन दिन केवल जल पीके रहै फिर एक दिन कोरा उपवास निर्जल
करै तब अश्रमेधके अवभृथ स्नानकी तुल्यताको पहुँचै यदा (अश्रमेधके सासात्कार
अवभृथ स्नानमें जाकर शुद्धहोय सो यह देशकालके अनुकूल अवसर बनि परे का
नियम है सर्वत्र नहीं क्योंकि अश्रमेध हरकोई नहीं करसक्ता है न हरसक समयपर-
येसा बानक मिलसक्ता है कि विराने अश्रमेधमें जाकर करै) यदा ये बातें भी नहीं
सो ब्राह्म्यस्तोम नामक वेदोक्त यज्ञ करै तब शुद्ध होय तिस पीछे उपनयन किया जा
सक्ता है अन्यथा नहीं—इस प्रायश्चित्त में यावक पीना कहा गया सो गोमूत्र में जो
रोंधिके उसका गाढा साड मसलिके छानिलिया जाताहै तिसका नाम यावक होता
है त्रिसपर निपट गोमूत्रका रंघा यावक न पियाजाय सो निर्वाह के लिये थोड़े गो
मूत्रमें जलको मिलाकर पकायै—परन्तु जहां कहीं पहिलेभी यावक नाम आचुकाहो
तहाँ तहाँ सर्वत्र ठीक यही अर्थ समझना किन्तु जो कुछ और लिखा गया हो सो
नहीं—इसी प्रायश्चित्तमें आमिसा पीनाभी कहागया सो हालके जमाये तरुणा वही
का नाम आमिसा कहा जाताहै प्रायश्चित्त में यहभी गऊके दूधका जमाया हुआ
पीना चाहिये ॥ अत्रसर्वेपाठव्यवस्थाच यहाँ पर. मनु.योगीश्वर. यम. वशिष्ट. ब्रह्म
सूक्तके कहे ऊँचे नीचे प्रायश्चित्तों की एकसार व्यवस्था यह समझि लेनी चाहिये
कि—जिस किसी ब्राह्मरा या क्षत्री आदि वर्णों की आठ वयें आदि जो कुछ अवधि
यज्ञोपवीतकी होतीहै वही अवधि जिसके उपनयन करानेवाले आदि किसी को न
होने या न मिलनेसे हटि गइ हो तिसके हटिजाने से थोड़े काल पीछे जो उपनयन
करना परै तब तो २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारो प्रायश्चित्तों में कोई

एक प्रायश्चित्त करनेवाले की प्राणिके अनुत्प देना चाहिये और उसके साथ यम के कहे नियम भी मिला लेने चाहिये=और जिसके सब सामग्री मौजूद होतेहुये अनापत्काल में भी बेपरवाही की उपेक्षासे वह अर्वाधि वीतिगर्हो तिसके लिये ऊपर मनुके कहे तीन कच्छोंका तीया प्रायश्चित्त कराना चाहिये=और जो इसी अनन्तर चर्चावालेको इतना काल वीत गया हो कि अपनी मुख्य अर्वाधि से दूना जो गौराकाल माना जाताहै सोभी वीतिजाय (इसका दृष्टान्त जैसे ब्राह्मराकी ठीकठीक साडेसात बर्यकी मुख्य अर्वाधि होतीहै तिसको पूरे पंद्रह बर्य बिना जनेऊ के वीति जाय इसी प्रकार सर्षी आदिको उसकी अर्वाधिसे दूना समझ लेना) तिसके लिये वर्शयका दर्शाया उद्दालक नामी व्रत करवाना या ब्रात्यस्तोम नामी यज्ञ कराना चाहिये=इनके सिवाय जिस किसीके बाप दादे आदि भी बिना जनेऊके रह गये हों (जैसे संप्रति बहुधा सखी और वैश्य भी अनेक पीढ़ियों से असंस्कृत चलेआते हैं तिनका यह चर्चा है कि) उनके लिये आपस्तंबका कड़ा प्रायश्चित्त कराना=यदा द्वापस्तंबः=यस्यापितापितामहाबनुषनीतोस्त्यातां तस्यसंबत्सरवैविद्यकंद्रहचर्यथस्य प्रपितामहादेर्नानुस्मर्यतेउपनयनं तस्यद्वादशवर्षागिरिवैविद्यकं ब्रह्मचर्यमिति=अर्थात्-जिसका बाप और दादा भी असंस्कृत रहके मरे हों ऐसा पुरुष जो अपना संस्कार करानेपर समुद्यत होय तो उसको एक बर्य भर वैविद्यक नाम का वेदोक्त ब्रह्मचर्य व्रत करना चाहिये और जिसके परदादे आदिकी भी यह ठीक यदि न हो कि उनके संस्कार जाने हुयेये या नहीं तो यह पुरुष बारहवर्षका वैविद्य ब्रह्मचर्य साथै तिस पीछे अपना संस्कार करावै तो फिर आगेको उसके बेटा पोता आदि कुलमाय के संस्कार बिना प्रायश्चित्त किये जारी होसके हैं (यह बात भी कुछ बहुत बड़ी नहीं है जो कोई अपने कुलका उधार करना चाहै सो घरमें एक बड़ा बड़ा इस प्रायश्चित्त की साधना करिके अपने कुलमें लुप्तहुये संस्कारोंको जारी करावै क्योंकि अपने आगाभी कुलके कल्याणार्हेत अगिले बड़े बड़े बहुत बड़िया तप करतेये उसी तप के प्रभाव से उनकी अविच्छिन्न सन्तति अर्थापि सुख भोगती है-अन्यथा जो वर्त्तमान कालमें बहुतसे असंस्कृत सखी और वैश्य भी केवल मनके आकर्षण से पुरोहित पावाओंकेद्वारा बहुधा सभा जोड़िके यह वाद त्रिवाद करते हैं कि हमारा संस्कार होनेमें क्या दोषहै सो यह केवल उनका तुयकागडनहै क्योंकि पुरोहितपावा आदिमें कुछ ठीक ठीक उत्तर इसका नहीं बनिआता है जैसे जल के जीव न्यून की बातोंको क्या जानिसके हैं कुछसे कुछ उत्तर दिया करतेहैं कितनेही अपनी धुमेरमें

आकर जनेऊकी साला जैसे गुलकंठी के समान पहिराई भी देते हैं ॥ २६५ ॥ इसी मूलश्लोकसे यह पाठ चला आता है ॥

इतिव्रात्यप्रायश्चित्त

अथ स्तेयोउपपातकयुक्तपुरुषस्यप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षट्चरवारिंशः ४६



इस परिच्छेद में उन चोरोके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो सुवर्गस्तेयो से उपरालू हों—अर्थात् उस चोरी के करने वाली हो जो उपपातक कहाती है कि जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में आचुका—किन्तु उन चोरोका प्रयोजन यहाँ नहीं है जो पहिले बृहन्नृत्यारे आदि महापातकियो में गिनती हुये थे—क्योंकि यहाँ उपपातको का प्रकरण है ॥

(स्तेयप्रायश्चित्त)

ध्यान करना चाहिये कि २६५ मूलश्लोकमें योगीश्वरके कहे चारों प्रायश्चित्त सामान्य सभी उपपातको पर नियत हुये तिससे उपपातक सबही चोरी में भी उन चारोकी पहुँच देखि परती थी परन्तु मनुके कहे प्रायश्चित्तसे उस पहुँचका अपवाद सिद्ध होताहै कि योगीश्वर वाले चारों प्रायश्चित्त एक चोरी को छोडि कर अन्य उपपातको पर आरुद्ध होये अर्थात् चोरी के उपपातक में मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना होगा=तथाचाहमनु = धान्यान्नधनचौर्याग्निाकृत्वाकामातृद्विजोत्तमः स जातीयपृहादेवकृच्छ्राब्देनविशुद्ध्यति (द्विजोत्तमस्यसजातीयो ब्राह्मणसवातोविप्रप्र रिग्रहे ब्राह्मणस्यहंतुरिदंप्रायश्चित्त क्षत्रियादेस्त्वल्पकल्प्य) =अर्थात्—धान्य जो नाज माव कोई सा हो और अन्न जो तैयार सिद्धान आरा दालि चाउर आदि हो और धन शब्दसे चाँदी तथा ताँबा पीतल आदि समझने इन चीजो की चोरी जो इच्छा सहित जानि वृत्ति कोई ब्राह्मण होकर किसी सजातीके अर्थात् ब्राह्मण के घर करै यदि इतनी बातें सब इसी तरह ठीक ठीकहो तो यह ब्राह्मण एक वर्ष भर कृच्छ्रत करिके शुद्ध होताहै (इस बातका यह तात्पर्य दहिंरा कि इतना बड़ा प्रायश्चित्त केवल ब्राह्मणके निर्मित कहा गया है यदि सभी आदि नोचे वर्गो वाले

चोरहों तो उनके लिये छोटे प्रायश्चित्त कल्पित करने चाहिये—क्योंकि (अथापाद्यं स्तेर्याकिल्वयं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्षा विदुयोऽतिक्रमेदंडभयस्त्वमितिसन्नियामेरेषुर्दुराडालपत्वस्यदर्शनात्) इस वचन में सत्री आदि हीने वर्गों के चोरोंको दंड भी थोड़ा कहा देख परता है कि—चोरीका दण्ड अठगुणा तक बढ़ता है जिस चोरी में जितना दण्ड शूद्रपर ठहरे उसी चोरी में औरोंको प्रत्येक ऊँचेवर्गों पीछे दूना दूना दण्ड बढ़ाया जाय अर्थात् जो वैश्य ने चोरी करीहोती दूना दण्ड और सत्रीने करी हो तो चौगुना दण्ड और ब्राह्मणा चोर हो तो अठगुणा दंड इसी लिये (अथापाद्यं स्तेर्याकिल्वयं) यहपदकहा गया—इसके सिवाय प्रत्येक वर्गोंमें जो कोऽपिदुय ज्ञानी पदा पंडितहो वहीधर्ममर्यादाका अतिक्रमकरे तिसपर उक्तद्विसाव सेभी अधिक दंड बढ़ायाजाय) तिससे इसीदंडके अनुसार प्रायश्चित्तभी ऊँचेवर्गोंपर अधिक लगाना चाहिये—तैसाही यह वचनभी प्रसिद्ध है (विप्रेतसकलदेयपादीनं क्षत्रिये स्मृतमित्यादि) अर्थात् जो कुछ प्रायश्चित्त कहींमासान्त्य लिखाहोसो ब्राह्मणसे परं प्रकारवानाचाहिये सत्रीसेपौना और वैश्यवर्गसे आधाकरवाना चाहिये शूद्रसे चौथाई—इसमें प्रायश्चित्तभी सकसकचरणा घटाकरदेनाकहाहै यहसर्वनियम ब्राह्मणके घरमें चोरीकरनेके प्रायश्चित्तमध्ये कहागया ॥०॥ कदाचित्त सत्री आदि नीचे वर्गोंके परिग्रह में जाकर चोरीकरी हो तो इस न्यूनतासे भी दंडको अनुसार प्रायश्चित्त में कुछ कमी करनी चाहिये सो यह कमी उसमेंसे करनी होगी जो ऊपर सकवर्गभर का कच्छव्रत कहिचुके हैं—अर्थात् जो ब्राह्मणने सत्रीके कच्चे में चोरी करी हो तो बर्ग भरके स्थान रुमाहीका प्रायश्चित्त चाहिये—यदि वैश्यके कच्चेसे चोरी करीहो तो तीनसहीनेका गोवधवालाव्रत चाहिये जो (२६३ । २६४) इन मूलश्लोकोकी अधिकोक्ति में लिखिचुके हों तहां देखो— यदि शूद्रके परिग्रह में जाकर ब्राह्मणा चोरीकरे तो सक सहीनेका पूरा चांद्रायणा व्रत करना चाहिये—यह सब नियमसिर्फ ब्राह्मणा चोरके मध्ये कहागया इसी रीतिसे यदि सत्रीआदि कोई चोर किसी ऊँचे नीचे वर्गकी चोरीकरे तहाँ भी पूर्वोक्त नियमोंसे विचारकरि लेना चाहिये जिसमें ठीक ठीक व्यवस्था पावे ॥ ० ॥ ऐसा भी न सजभिलेना कि चोरी छोटी बड़ी चाहें तैसीहो सब में येही प्रायश्चित्त होंगे किन्तु ये प्रायश्चित्त केवल दण्डकंध परिमाण धान्य हरने मध्ये नियतहैं—क्योंकि दण्डकंधसे अधिक धान्य हरनेमध्यं मनुने उक्तम साहसका दण्ड देना कहा है (धान्यं दण्डान्यः क्रमभ्योदरतोऽमउत्तमः) क्रमके परिमारा अनेक तरहसे भाषाओं में प्रसिद्ध हैं परन्तु जो वर्मके अनुकूल हो सो यहाँ पर

समभक्ता और यथार्थसे कुम्भनाम लोकात्से मत्केका प्रसिद्ध है तथापि इसकापरिभारा बहुत है तिससे डिहराडिहरियाका नाम सामान्य भावसे कुम्भ समभिलेना सेसेदश कुम्भकेभीतर नाजहरनेमध्ये ये प्रायश्चित्त ऊपर कहेगये—और (धान्यान्नघनचौर्या गिा) इसमनुकेवचनमें ऊपर जो धान्यकेसाथअन्न और घनकीचोरी कहिचुकेतिसका भीपरिभारा उतना समभिलेना जो दश कुंभ धान्यकेमोल बराबर हों अधिकनहीं= इस परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर जो कुंभ प्रायश्चित्त कहा गयासो सब कामकार-विय समभक्ता कि जिसने कामनासे विचारिके चोरीकरीही उसीपर ये प्रायश्चित्त पहुँचते हैं ॥ ० ॥ अकामकृत चौर्य प्रायश्चित्त— जिसने चोरी कामना के बिना केवल धोखा आदि कारणां से करीहो तिसके लिये तीन महीने वाला गोवध का प्रायश्चित्त चाहिये जो कि (२६३ । २६४) इन मूल श्लोकों की अधिकोक्ति में लिखि चुके तहां देखीं—यहांपर बहुत बड़ेविचार को यह स्थ नहै कि (तथा—मनुष्यां गां चहरणोस्त्रीणांसेवगृहस्यच कूपवापीजलानां चशुद्धिश्चांद्रायणान्तु—इति सार्द्धशत द्वयपरालभ्यजलापहारे इदंचांद्रायणां प्राप्तमपीतरगोवधवतनितृत्यर्थविधीयते इति मितासराकाराः रावन्मृत्यजलापहारे पानीयस्यद्वारास्यचतन्मृत्यद्विगुणोदसाइ इति पंचशत इति च मितासराकाराः)=अर्थात्—मनुष्योंका हरना छियों का हरना खेत जमीन का हरना घर मकान का हरना कूप बावड़ी आदि जलों का छीनना इन पापों में चांद्रायणा करने से भी शुद्धि होती है—इस वचन को दर्शय कर मितास-राकार कहिते हैं कि २५० अटाई सौ परा मोल या सहस्रल प्राप्त होसकने शीघ्र जलाशय के हरिलेने में यह उक्त चांद्रायणा यद्यपि पहुँचता है तीभी दूसरा गोवध वाला व्रत जो हम दर्शाइचुके तिसकी निवृत्ति इस चांद्रायणा से ठहिरतीहै और उतनेही मोल वाले जलके हरने मध्ये कहीं यह भी कहा है कि पानी और तूराफूस के हरने में उस चीज के मूल्य से दूना दंड चाहिये तो इस हिमाव से पाँच सौ परा का दंड पाता है क्योंकि अटाई सौ परा मोल अभी कहिचुके हैं तिससे दूने पाँचसौ परा दंड समभ में आताहै (यहाँ परा कहिने से वही रूपया समभिलेना जोजिस राज से चलता हो अन्यथा चाँदी के परा का और ताँबे के पराका परिभारा आ-चार मर्यादामें देखीं बहोठीकहै) इतना कहिकर फिरभी मितासराकार इसी बात पर यह लिखते हैं कि (तथेतिचांद्रायणावियये पंचशतपरा दंड विधानात्तावत्परि-भारादंड चांद्रायणायोगैवाधवादीसहचरित्वात् तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्रैर्न्यवयोःपरापच शत तथेति चांद्रायणावियये पंचशतपरादंडविधानाच्च० सतचक्षयिादि द्रव्यापहारे

द्रष्टव्य इतिचमिताक्षराकारः)=अर्थात्-फिर कहते हैं कि उसी उक्त चांद्रायणाके मध्ये पाँच सौ पणदंड ठीक होनेसे उतने परिमाण का दंड और चांद्रायणा इन दोनों का गोवध आदि उपपातकोंमें सहचार सिद्ध होने तथा २६४ मूल श्लोक में कहे गये कच्छ और अतिकच्छ के साथ अशुक्ल चांद्रायणा से पाँच सौ पणा का योग पाया गया क्योंकि यहाँपर चांद्रायणा के मध्ये पाँच सौ पणा दंड कहा जानेके हेतुसे-यह भी सब नियम सत्रीआदि वर्गोंके धन हरने मध्ये विचारने चाहिये किन्तु ब्राह्मणा का धन हरने मध्ये आगे देखना=यद्यपि=सार हूँदने वाले को सर्वत्र सारही देखि परता है यह नियम अंग है-तथापि इस बात को हरकोई साफ साफ नहीं कहि सक्ता है कि यहाँपर इन वर्गों की विलोड से मिताक्षराकार ने क्या सार निकाला किन्तु जिसने कहा वहीं समझा तौभी कुछ सार नहीं पाया गया इसीलिये बातवही है कि जिसका सार हर किसी के प्रत्यक्ष आवै परन्तु हमको उनका लिखा नेटना योनय नहीं था ॥ ० ॥ ब्राह्मणा संबंधी धनके हरने में यह वचन लेना होगा कि= नितोपस्थापहरांतराश्वरजतस्यच भविजस्योनांचरुक्मस्त्यसमंसृत्तम-तथा- इव्याणांमल्पसाराणांस्तेयंकृत्वाऽन्यवेश्मनःचरेत्सांतपनंकच्छन्तन्नियत्यात्मशुद्धये इत्यनेनाल्पप्रयोजनप्रपुसीसाविद्व्यापहारविशयेनास्तेयसामान्योपपातकप्रायश्चित्तापवाद इदंचचांद्रायणांनिमित्तं मूर्तार्द्धततीयशतमल्पस्य पंचदशांशाद्ब्रह्मपुसीसाद्य पहारे प्रायश्चित्तं चांद्रायणा पंचदशांशत्वात्तस्यइतिच मिताक्षराकारः=अर्थात्- धरोहरि या सौंप का हरना तथा मनुष्य का हरना तथा घोड़े का हरना तथा चौंढी का हरना तथा धरती का हरना तथा बालक या डोरे का हरना तथा सरिआओं का हरना यह सब सुवर्ण की चोरी तुल्य कहाता है-तथा-घोड़े सार वाले द्रव्यों की चोरी किसी और के घरसे करिके अपनी शुद्धिके लिये वह चुराया यदा डोनाह-आ द्रव्य वापिस देकर सांतपन कच्छ व्रत आचरै-इसमें घोड़े सारकी वस्तु कहिने मात्र से घोड़ामा काम देसकने योग्य लोहा सीसा रौंग आदिद्रव्यों के हरने का विशेष चिह्न देने से यह बात सिद्ध होती है कि जितनी तरह की चोरी सामान्य भाव से उपपातकों में गिनती हैं तिनसबके लिये जो कुछ प्रायश्चित्त कहीं कहि हो तिसका अपवाद इस खकीफ़ चोरीमें समझना अर्थात् उस प्रायश्चित्तकी बड़ासम-भिके इन घोड़े प्रयोजन वाली वस्तुओं की चोरी पर नहीं आच्छूद करना चाहिये (और इस खकीफ़ चोरी का परिमाण कहां तक समझा जाय इस प्रश्न का यह उत्तर है कि) यह सांतपन कच्छ व्रत ऐसी खकीफ़ चोरीका प्रायश्चित्त समझना

जो ऊपर के पाठ में, चांद्रायण प्रायश्चित्त के निमित्त पर २५० अर्थाई सौ परा के सोल योग्य चोरी कही गई थी उसका तीसवां भाग चोरी करीहो अर्थात् आठ परा के लगभग सोल वाले राँग सीसा लोहा आदि चुराये हों ॥ ० ॥ इसी प्रकार विरले द्रव्यों की विशेषता (खसूतियत) से भी उन प्रायश्चित्तों का अपवाद (इ-स्तस्ना०) समझना जो सामान्य (आम तौरसे) उपपातकों पर आसूढकियेगयेहैं। इसका व्यौरा आगे देखो=भक्षभोज्या पहरसोयानश्यासनस्यच पुष्पमूलफलानांच पंचगव्यविशोधनम्=अर्थात्-चाबने खाने की वस्तु हरने में या चढ़ने और सोउने और बैठने की चीजें हरने में या फूल मूल फल कन्द आदिके हरने में पचगव्यका पीना प्रायश्चित्त है-यह एक दिन का प्रायश्चित्त है सो केवल एक बार पेट भर भोजन करनेयोग्य भक्ष भोज्यकी वस्तु चुराने मध्ये समझना किन्तु अनियत परिमाण से चाहे तितनी हरने मध्ये नहीं क्योंकि यह बात अगिले पैटीनसि के वचनसे साफ स्पष्ट होती है=यथाह पैटीनसिः=भक्ष्यभोज्यान्नस्योदरपरसामाप्रहरसोविरात्रमेकरात्रं वापचगव्याहारतेति=अर्थात्-खाने चवाने आदिके अन्न जो पेट भरनेसाथ परिमाण से हरे तिसकी तीन वा सकही दिन पचगव्य पीकरदिना प्रायश्चित्तहै-ध्यानकरों केवल पेटभरनेयोग्य अन्नहरने मध्ये तीन वा सकही दिनका विकल्प दर्शाया तिससे दोनो बार सवरे सांभ पेट भर सकने योग्य हरने में तीनदिनका प्रायश्चित्त और एक ही बार पेटभरनेयोग्य हरने का एकदिन प्रायश्चित्त ठहिरा-और जिसवचनमें भक्ष्य भोज्यकानाम आया उसीमे यान शैया आसन पुष्प मूल फल ये भीकहे अर्थात् इनका भी वही पचगव्य का पीना प्रायश्चित्त ठहिरा तिससे भोजन के साथ गिनती होनेसे इनका भी वही परिमाणा समझना कि जितने सोलका भोजनहोताहो और उभी रीति से इनमेंभी दोनोंतरह का प्रायश्चित्त समझलेना कि एकवार पेट भरनेयोग्य अन्नके सोल वरावर जो इन चीजोंकी कीमति ठहिरै ती सकही दिन पचगव्य पीनाचाहिये जो दोनोंवार पेट भरने योग्य अन्नके सोलवरावर इनचीजों का सोल ठहिरै ती इनमें भी तीनादिन पचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त जानो अर्थात् यही न्याय सर्वत्रहै कि चोरी करी हुई वस्तु के घोड़े बहुत परिमाणा के अनुसार प्रायश्चित्त को छोडादे बडाई कल्पित करी जाय=इसी प्रकार यह वचन है कि (द्वाकायासुद्रमाशांच शुष्कान्नस्यगुडस्यच तैलचर्मामियारांच विरात्रस्यादभोजनम्-इत्येनांचदण्णादीनां भक्षादि त्रियुगाविरात्रप्रायश्चित्तस्यदर्शनादतत्रियुगामन्-पार्थागामेतत्प्रायश्चित्त)=अर्थात्-फूल काठ वृक्ष मूलाअन्न गुड तेल चमडा मांस इनको हरने में तीन दिन चिराहार

व्रत करे—इस वचन में फूस घास आदि सभी के हरने मध्ये भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों से तिसुना तीन दिनका प्रायश्चित्त है तिसके देखने से यह ठीक हुआ कि भोजन आदि पूर्वोक्त चीजों के मोलसे तिसुने मोलवाली अत्रोक्त चीजों का यह प्रायश्चित्त चाहिये—इसी प्रकार यह वचन है कि (मरिगामुक्ताप्रवालानांताप्रस्थरजतस्य अयस्कान्स्थोपलानांचद्वादशाहंकराान्विता—अत्रापिभक्ष्यादिद्वादशाशुयाप्रायश्चित्तदर्शनात् तन्नूल्यद्वादशाशुयानस्य मरिगामुक्ताद्यपहारिसत्तप्रायश्चित्तमितंद्रष्टव्यं)= अर्थात्—मरिगामोती मंगा तौवा चांदी लोहा कौसी रत्न पत्थर आदि इनके हरने मध्ये बारह दिन धानों के कन खाइके रहिना यही व्रत प्रायश्चित्त है—इसमें भी उस से बारह गुणा व्रतदेखि परता है कि जो भक्ष्य भोज्य आदि में एकदिनका कहाया तिमसे यह बात यहां टहिरो कि उन चीजों का मोल परिमान जैसा वहांपर कहि चुके तिरुसेबारह शरो मोलवाली अत्रोक्तचीजें चुरानेका यह बारहदिन प्रायश्चित्त जानो—इसी प्रकार यह वचन है कि (कार्पासिकीर्णाजीरानां द्विखुरैकखुरस्यच पक्षिगंधीयधीनांचरज्ज्वाप्रचैवव्यहंपयः—अत्रापिभक्ष्यादिचिद्युशप्रायश्चित्त दर्शनात्त त्विगुणामूलयानामपहारसर्वेत्तप्रायश्चित्तंतयतः द्वीयमाणद्रव्यन्यूनानधिकभावेन प्रायश्चित्ताल्पत्वसहत्वंकल्प्यमेव)=अर्थात्—सईकी भरी रजाई गदेली आदि पुराने बख औरदोखुरवाले तथा सकतुरवाले जीवोंके बालआदि और पक्षीकेपर खाल आदि वा सदेइ छोटे पक्षी और सुगन्ध की चीजें तथा दवाइयोकी चीजें तथा रस्मीआदि इनकी चोरी मध्ये तीन दिन दूबपोके रहिना प्रायश्चित्त है—इसमें भी पूर्वोक्तभक्ष्य भोज्यादि से तिसुना प्रायश्चित्त देखिपरता है तिमसे उन चीजों के तत्रोक्त मोलसे तिसुने मोल वाली अत्रोक्त चीजें हरने पर यह प्रायश्चित्त समझना क्योंकि यह सर्वथ आवश्यक है कि चोरी किये हुये द्रव्य के न्यून वा अतिक हीने अनुसार प्रायश्चित्त को लघुता गुरुता कल्पना करीजाय—चोरियों के प्रायश्चित्त जोकृष्यहैं तके लिखे गये सो सब उक्त दशा में होसके है कि पहिले अपहार किया हुआ धन धनी को प्रत्यर्पाकरै तिस पीछे प्रायश्चित्त करै इसका प्रनारा यह अत्रोक्त विष्णा का वचन है (दत्तैवापहतद्रव्यंस्वामिनेन्नतमाचरेत्) अर्थात् चुराया धन स्वामीको देही वर प्रायश्चित्त करै बिना दिये नहीं ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक से यह पाठ चला आता है

(इतिचौर्यप्रायश्चित्तं)

अथ ऋणानामनपाक्रिया या अनाहिताग्नितायाश्च
अपरायविक्रयस्य च चयाणामुपपातकानां प्रायश्चित्त
प्रकाशकोऽयं सप्तचत्वारिंशःपरिच्छेदः ४७ ॥



इस परिच्छेद में तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि पहिले ऋणा उद्धार न करने के पाप में अर्थात् ऋणा लेकर पचाइजाने का प्रायश्चित्त—फिर अनाहिताग्निता में कि जिसको कुल में अग्नि स्थापन करने का अधिकार सो नहीं राखें तिसके पापका प्रायश्चित्त—फिर अपराय विक्रयमें कि जिन चीजोंका बेचना प्रतिबिद्ध है तिनको बेचनेके पापका प्रायश्चित्त कदा जायगा ॥ इन तीनोंके स्वरूप २३४ मूल श्लोक में देखी ॥

(ऋणस्याशीघ्रन प्रायश्चित्तं)

ऋणाका उद्धार करदेना व्यवहार मर्यादा में कहिचुके हैं कि (पुत्र पौत्रैः ऋणादेयं) बेटा पोता को भी बाप दादा का ऋणा देना चाहिये—तिसके उद्धार न करने में उपपातक लगने से प्रायश्चित्त करना होता है—तथा (जायमानो वैवाह्या) इत्यादि ऋचा में वैदिक ऋणा भी तीन भौति के देव ऋयि पितर इनके निमित्त देने होते हैं तिनके उद्धार न करनेसे भी प्रायश्चित्त होता है—इन सबके लिये वेही प्रायश्चित्त है जो २३५ वे सो पेंसदिमूलश्लोक में सामान्य भाव सभी उपपातकों पर चारभौति के दर्शाइचुके उनमेंसे कोई एक प्रायश्चित्त कर्ता की शक्तिके अनुरूप कराना चाहिये—उनके सिवाय मनुने और प्रायश्चित्त भी कहा है—यथा=इयं वैद्यानरीं चैव निर्वपेद-द्वपर्यये लुपानां पशुसोमानां निष्कृत्य र्यसंभवे=अर्थात्—लोप हुये देव यज्ञों को असंभव दशा म एक वर्य वीति जाने पर निष्कृति प्राप्त होने को लिये वैद्यानरी यज्ञ की विस्तारै—इति ऋणानां प्रायश्चित्तं ॥ ० ॥ अथ अनाहिताग्नित्वप्रायश्चित्तं—अनाहिताग्निता भी एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूलश्लोक में वर्णन होचुका—उसके लिये भी वही चारों प्रायश्चित्त हैं जो २३५ मूल श्लोक में दर्शा गये—परन्तु यहां यह नियम है कि जिसको कुलमें अग्निस्थापना का अधिकार चला

आता है ऐसा पुरुष यदि किसी आपत्काल के हेतुसे सकवर्ष भर अग्नि का यजन पूजन न करसके सो उस वर्ष को उपरांत उन्हीं चारों प्रायश्चित्त में से कोई एक प्रायश्चित्त अपनी शक्ति के अनुसार चाहे जो एक महीना में होना लिखिचुके हैं= किन्तु जिसके कोई प्रबल आपदा नहींयो अच्छे भलेमें एक वर्षभर अग्निका पूजन बन्द कियाहो तिसकी अनुका कहा वैसासिक प्रायश्चित्त करना चाहिये—यदाह मनुः (एतदेवव्रतकुर्व्युरुपपातकिनोद्विजाः अवकीर्णवर्जशुद्धर्षचांद्रायणामथापिवा) इसकाअर्थ दोनोपैसठिकी अविकीर्णमेंदेखो वहां तीनमहीने लिखिचुकेहै ॥ कदाचिद कोई वर्षके भीतरही प्रायश्चित्तकियाचाहै तिसकेलिये काय्या जिन मुनिका वचनहै=यदाह काय्याजिन =कालैत्वावायकमार्गिकाकुर्याद्विप्रोविधानतः तदकुर्वच्च धिरावेणामसिमासिविशुद्ध्यति—अनाहिताग्नीपिवाद्यसमाया सुतोयदि सहिब्रात्येन पशुनायजेत्तन्निष्क्रयायतु—अथदि—ब्राह्मणा किली समयपर कर्मकी स्थापन करिके माधे यदि उन्ही कर्मका नियमछूटिजाय तौ हरसकमहोनापीछे तीनदिनकाव्रतकरने से शुद्धहोताहै अथदि यदि एकमहोना कर्म छूटिजाय तौ तीनदिनका व्रतचाहिये दो महीनापर छेदिन इत्यादि क्रमसे—दूसरा यहनियमहै कि जिसकेपिता और जेठेधाता या दादा आदि कोई अग्नि की स्थापना बिना जीते दैदे हो ऐसा पुत्र जो अग्निका स्थापन यजन करना चाहै तौ उन बड़ों के परामभव बोयका भारीहोकर प्रायश्चित्तो होताहै तथापि ऐसे उत्तम कामकी प्रवृत्त करना आवश्यकहै किजिसकी बड़ पुरयो ने मेटि दिया था तिससे इस दोगकी शुद्धि के लिये ब्रात्यपशु नाम का वेदोक्त यज्ञ करिके तत्र आरम्भ करै इस व्यवस्थाका ध्वन्यर्थयहभीहै कि जिसके जेठेभाईपिता आदि मरचुकेहो सो ऐसा यज्ञ किये बिनाही अग्निका स्थापन कर सकीगा=उन्हीं काय्याजिन मुनिने एकाग्नि पुरुष के मध्येभी विशेषता कहीहै=यथा=ज्ञतदारोगृहेऽद्येयोयोऽनादध्यादुपासनम् चांद्रायणाचरेद्व्यप्रतिमासमहोपिवा=अथदि—जिसघर में जेठा पुरुष विवाहिता स्त्री सहित हो जिसके केवल वैवाहिक अग्नि होती है सो यदि उपासन अग्नि की नहीं स्थापन न उसकी उपासना करै सो प्रत्येक वर्ष पीछे एक महीना चान्द्रायणा किया करै यदा प्रत्येक महीना पीछे एक दिवस निराहार उपवास किया करै तब शुद्धि होय—इत्यनाहिताग्निप्रायश्चित्त ॥ ० ॥ अथअप्रणय विक्रयप्रायश्चित्त—जिन चौजो का वेचना शास्त्र से नियिद्ध है तिनको वेचै सो अप्रणय विक्रय नाम उपपातक से संयुक्त होता है यह २३५ मूल श्लोक में कहिचुके तिसके प्रायश्चित्त यद्यपि सामान्य भाव से वही पाये जाते हैं जो २६५ मूलश्लोक

में चार प्रकार वर्णन हो चुके तथापि श्रुत्यंतरमें विशेषताके साथ प्रायश्चित्त कहा है—यथाहारीतः—गुड तिल पुष्प मूल फल पक्वान्नविक्रये सोमपानं सोमहृच्छः—जासा लवणा मधु मांस तैल क्षीरद्विघृतं वतक्रचर्मवाससामान्यतमविक्रये चांद्रायशां—तथा ऊर्णाकेश केशर भूधेनु वेश्माशमशस्त्र विक्रये च भक्षमांसं स्नाय्वस्थियुगं नखशुक्ति विक्रये तप्तकच्छः—ह्रियगुग्गुलहरितालमनः शिलांजनगौरिकजासा लवणामरिगामुक्ता प्रवालवैराववेरासृन्मये युक्ततप्तकच्छः—आराम तडागोदपानपुष्करिणी सुकृतविक्रये त्रियवसान्नाप्यवःशायी चतुर्थकालाहारोदशसहस्रजपनसंवत्सरेणोभवति इति नाना नोन्मानसंकरसंकीर्णाविक्रये चेति—अर्थात्—गुड तिल फूल कन्दमूल फल पक्वान्न बेचने में सोमपान अर्थात् जल पीकर सोमहृच्छ व्रतकरे तब शुद्ध होय—और लावण नमक सहत मांस तेल दूध दही घी सुगन्ध छाछि चमड़ा कपड़ा इनमें कोई एक जीव बेचने वाला चांद्रायण करे—तथा ऊन बाल केशर धरती गऊ घर पत्थर हथियार इनके बेचने और रोटी भात आदि खानी चीजे मांस नसें तांति आदि हाड सींग नख सीप घोंघी आदि इनके बेचने वाला तप्तकच्छ व्रत करे—और हींग गुग्गुल हरिताल सर्नमिल सुरमा गोष्ठ लावण नमक सर्गा सोती मूगा बांस की बूनी टोकरा आदि बांस मट्टी के वासन इनका बेचने वाला भी तप्त कच्छ व्रतकरे तब शुद्ध होय—और वाग बगीची तालाव कुआ कमल आदि सहित पक्का जलाशय अपना किया हुआ कोई सुकृत पुण्य सुकर्म आदि इनका बेचने वाला यह प्रायश्चित्त करे कि सांभ्र सत्रे दुपहर तीनों काल में स्नान करते रहिकर धरती पर शयन करे सायंकाल चौथे पहर भोजन करे और दस हजारमंत्र जपते हुये एक वर्ष पूराकरे तब शुद्ध होय और यही प्रायश्चित्त उसकी करानाचाहिये जो घटिया वारों से बेच आ बाँट परे होने में भी तराजू की भाँक से घाटि बेचे या घटिया मोल वस्तु उत्तम वस्तु में मिला कर बेचै और जिन्स की चीज दूसरी चीज में मिलाने जैसे घी तेल का मिलाना आदि—इस प्रकार और भी श्लेष विष्णु आदि के कहे वचनों से युक्त प्रायश्चित्त की विशेषता से कहा है—तहां साधारण उपपातकों पर जो जो प्रायश्चित्त २६५ मूल श्लोक से कहे गये उनको भी पहुँच यहां अपण्य विक्रयपर होती है तिससे यह डील समझि लेना कि जिसने आपत्काल के हेतुसे अपण्य विक्रय किया हो तिसके लिये उसी २६५ मूल श्लोक में दशमि चार भाँति के योगीचर वाले प्रायश्चित्तों में कोई एक चुनिकर कर्ताको शक्ति के अनुसार कराना चाहिये परन्तु जिसने अनापत्काल अच्छी दशा में अपण्य विक्रय

कि याही तिसको उसी अतिकोक्ति के प्रारम्भ में मनुका कहा तीन महीने वाला प्रायश्चित्त देना ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोक के टीका से यह व्यवस्था चली आतीहै जिसके कई परिच्छेद हो चुके और आगे भी अनेक होंगें ॥ २६५ ॥

अथ परिवेत्ता परिवित्यादीनामुपपातकिनां

भृतकाध्यापकादीनांच प्रायश्चित्त प्रकाश

कोशयं परिच्छेदः अष्ट चत्वारिंशः ४८



इस परिच्छेद में परिवेत्ता और परिवित्ति आदि कई उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो सबके सब एकही परिवेदन कर्म के सम्बन्ध से पापी होते हैं जिस परिवेदन का स्वरूप २३४ मूल श्लोकमें कहि चुके हैं—और इन्हीं के प्रसंग से अग्रे दिव्यु दिव्यु आदि सगी वद्विनोके विवाहको व्यवस्थाआवैगी कि उनके पति और वे वद्विनें भी उपपातक से युक्त होकर प्रायश्चित्त के भागी सब होते हैं—और सबसे पीछे भृतकाध्यापक आदि उपपातकियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जो मजूरी लेकर वेद पढावें या देकर पढ़ें ॥

(परिवेदनप्रायश्चित्तं)

परिवेदन एक उपपातक है जिसका स्वरूप २३४ मूल श्लोक में आचुकाहै उस का करने वाला परिवेत्ता कहाता है तिसका विशेष प्रायश्चित्त वक्ष्य जौने कहा है—यथा—परिविविदानः कृच्छ्राति कृच्छ्रीचरित्वातांतस्मै दत्त्वापुनर्निविशेत् तांचे-
वोपयच्छेतेति—अथात्र—परिविविदान छोटा भ्राता जो जेदे का विवाह विनाहुयेही अपने लिये किसी कन्या का फलदान सगाइ आदि स्वीकार करे यदा किमी प्रकार से कोई कन्या कहींसे अपना विवाह करने के निमित्त से लावै तो यह परिवेत्ता कहाता है इसको परिवेदन स्वरूप दीय लगता है कि जेदे का अपमान किया तिससे यह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र नामक दोनो व्रत करिके बड़ कन्या उस जेदे को देकर फिर विवाह करे (अथात्र जैसे ब्रह्म चारी भिक्षा मांगि लाता है उसका धर्म

यही है कि शुरुका अपमान सिटाने के लिये शुरु के आगे लाकर वरता है कि यह भिक्षा आपके लिये लाया हूँ तहां शुरुका यह धर्म है कि उसी को आज्ञा देता है कि लोजाकर भोगो तैसेही) उस अपनी लाई कन्या को जेठे भाताके समर्पणकरे कि यह तुम्हारे विवाह के लिये लायाहूँ तहां यदि जेठा उसी को आज्ञादेवे तब उसकन्या से विवाह करे—यह तो केवल वररक्षा फलदान आदि कर देनेका प्रायश्चित्त कहा—परन्तु जिसने सब सबियां विवाह भी कर डाला है तिनके प्रायश्चित्त बड़ेबड़े हैं सो आगे हारीत आदि के वचनसे देखी=हारीत ने ऐसा कहा है कि=ज्येष्ठेऽनिविष्टेक नीयान्निशमानः परिवेत्ताभवति परिविच्छिज्येष्ठः परिवेदनीकन्या परिदायीदाता परिश्रययाजकः तेषर्वपतिताः संवत्सरं प्राजापत्येनकृच्छ्रं गापावयेयुः=संवशंखोपि=परिविच्छिःपरिवेत्ता चसंवत्सरं ब्राह्मणगृहेयुर्भैर्यं चरेयाताम (तदुभयमपिकासकारेणा कन्यापिंचायनुज्ञातोद्वाहविययं प्रायश्चित्तस्यशुरुत्वात्)=अर्थात्—जेठे के विवाहे बिना छोटा विवाह करे सो परिवेत्ता होता है और जेठाः परिविच्छि कहाता है कि उसका अपमान हुआ और वह कन्या परिवेदनी कहाती है कि उसके हेतु से दोनों भाता दीयी हुये और कन्या का दान करने वाला परिदायी कहाताहै कि उसीने तीनों को दीयी-किया और व्याह कराने वाला परिश्रयत कहाता है कि उसने इतने दीयियों को यजन कराया ये सभी लोग पतित होते हैं यदि एक वर्यमात्र का प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत जुड़ेजुड़े साथे तब शुद्धहोयें=ऐसेही शंखनेभी कहा है कि=परिविच्छि और परिवेत्ता दोनों एक वर्य भर ब्राह्मणों के घर भीख मांगि पेट भरा करे तब शुद्ध होयें (सो यह दोनों के वचन वाले प्रायश्चित्त उस दशा पर समझने कि जहां कन्या के पिता आदि का लुभाया यद्वा अपने पिता की आज्ञा दियाहुआ छोटा भाता कामना से विवाह निपट कर चुका हो क्योंकि प्रायश्चित्त के ब्रह्मपन से यही तात्पर्य है=यहां तक जो लिखा गया सो तीं ज्ञानमान और स्वाधीन वर की व्यवस्था है=अन्यथा=जो अज्ञान वर पिता आदि के अधीन रहिते पिता आदिकी दीहुई कन्या साथ कामना से विवाह कर चुका तिसको २६५ की अधिकोक्ति में लिखे मनु के वचनसे तीनि महीनेका प्रायश्चित्त चाहिये और पिता परिश्रयत आदि पर वेही व्रत आरुद्ध होंगे जो ऊपर की व्यवस्था में लिखिचुके—और—जिस वर ने इन बातों का बोध न होने में निपट अज्ञानता से विवाह अपना किया चाहे पिता के अधीन रहिते या अपने ही स्वाधीन कियाहो तिसको २६५ मूल श्लोक में योगीश्वर के कहे चारि प्रायश्चित्तों में कोई एक दशा और शक्ति के अनुसार क-

रत्ना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ के वचन से ऋच्छ अतिऋच्छ दो प्रायश्चित्त जो कहिचुके तिन में भी इसका अधिकार से चाहें उन्हीं को विकल्प से करै (पर दोनों एक साथही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानताके मुञ्जामले पर यमने सबके लिये सुगमता करी है=यदाह यमः=ऋच्छोडयोःपरिवेद्येकन्यायाःऋच्छयवचनअतिऋच्छचरेद्वाताहोताचांद्रायणांचरेत्=अर्थात्-परिवृत्ति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में क्रम से ऋच्छ और अतिऋच्छ करने चाहिये तथा कन्या को भी ऋच्छ व्रत करना चाहिये कन्यावान करने वाला अतिऋच्छ करै और होता जिसने फेरै करवाये सो परिपुडत चांद्रायणा व्रत करै (जैसी यह छोटे बड़े भाइयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहनों के विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिसके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखो ॥ ० ॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्त मिदमेव-इस परिच्छेद में यहाँ तक जोजो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समझिलेना जो पृथ्यां हित्वाग्नि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे गौतम के वचन में देखना= यदाहगौतमः=परिवृत्ति परिवेत्त, पर्याहृत, पर्यावाह, अथ दीवियु, दिवियुपतीनां, संवत्सरप्राकृतब्रह्मचर्यं मिति=अर्थात्-परिवृत्ति और परिवेत्ता वही कि जिनके लक्षणा ऊपर कहिचुके और पर्याहृत वह जेदा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बैठे और पर्यावाह यही छोटा भ्राता है कि जिसने जेदे भाई के न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्नेर्दिवियु आदि तीनों के लक्षणा आगे मनु के वचन से कहेंगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक वयं भरि प्राकृत ब्रह्मचर्य गौतम ने कहा (इन सबको एक साथ कहे जाने से समानता बहिरी इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कहिचुके तिनकीपहुंच इनमें भी होसक्ती है) उनके सिवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायें तिनको भी समझना जैसा कि अग्नेर्दिवियुपत्ति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्नेर्दिवियुपत्तिः ऋच्छं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत् तांचैवोपयच्छेत् दिवियुपत्तिः ऋच्छातिऋच्छोचरित्वात्स्मैदत्तां पुनर्निविशेत्तिति (अग्नेर्दिविप्रादेर्लक्षणां स्मृत्यंतरं १ भिदित्यथा-उपेष्टार्यायद्वन्द्वायां कन्यायानूहते २ बुजायामाग्नेर्दिवियुर्ज्ञेयापूर्वात्तुदिवियुःस्मृतेति) तयाग्नेर्दिवियुपत्तिः प्राजापत्यं कृत्वा तानेवउपेष्टांपश्चाद-

न्येनोढामुद्दहेत् । दिव्युपतिस्तुक्कच्छात्तकच्छौकत्वात्सोडांशेयांकनीयस्याःपूर्ववि
 प्रेन्देद्वान्यामुद्दहेदिति मिताक्षराकारः=अर्थात्-वर्षयत् ने यह कहा कि अग्ने दि-
 व्युपति चारह दिन का कृच्छ्रव्रत करिके विवाह करे और उसको भी अपने पास
 लाकर स्वीकार करे तथा दिव्युपति का पतिभी कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनो करिके
 उसके लिये दोहुड़े को फिर विवाह (इस बात के मध्ये अग्ने दिव्युपति आदि का ल-
 क्षणा भी मनुस्मृत में कहा है यथा-यदि जेटी कन्या के विवाह विना जो छोटी
 बहिन विवाहिली जाय वही छोटी अग्ने दिव्युपति नाम जानों और पहिली जो विना
 विवाही रही जेटी सो दिव्युपति कहाती है (तहाँ मिताक्षराकार यह व्यवस्था दर्शाते
 है कि अग्ने दिव्युपति का पति जिसने छोटी को विवाह के अपने ऊपर दाय लिया
 सो प्राजापत्य करिके उसी जेटी बहिन को जो पीछे किसी औरने स्वीकार करी हो
 तिसे विवाह लेवे और दिव्युपति भी कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करिके
 अपनी स्वीकार करी जेटी छोटी के पहिले विप्रेन्द्रको देके और कन्या विवाह यह
 मिताक्षराकारों का कथन है-इस व्यवस्था में ऊपर की संस्कृत जो वर्षयत् के वचन
 से लेकर लिखिचुके उसी के अनुरूप अर्थ लिखे गये-परन्तु बहुधा विज्ञानी इसके
 समझने में भ्रंति खड़ी करेंगे तिससे फिरभी निरायकरना परा-तहाँ ऐसा समझि
 लेना कि यद्यपि अग्ने दिव्युपति को कृच्छ्र व्रत करना कहा तथापि इसको कृ-
 च्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों व्रत चाहिये क्योंकि अतिकृच्छ्र दायी यही है और दिव्युपतिके
 लिये जो दोनों व्रत कहे तिस के लिये एक कृच्छ्रही चाहिये क्योंकि उसमें दाय
 योद्धाहै और यही न्यायकी रीति है (अन्यथा संस्कृत व्यवस्थामें नहीं कहि सकते
 कि लेखक प्रमाद से वैपरीत्य हुआ हो या किस हेतु से) इसके सिवाय ऊपरली
 व्यवस्था को सेशी दशापर समझना कि जब किसीने पहिले छोटी बहिन से सगाई
 माव करीहो और उसकेबाद किसी दूसरेने बड़ी बहिनसे सगाईमाव करीहो किन्तु
 विवाह किसीका नहुआहो क्योंकि विवाहके होजानेपीछे विवाही कन्या किसी
 दूसरे को देना यह लोक शास्त्र दोनों से विरुद्ध है और ऊपर की व्यवस्था में दूसरे
 को देना लिखा गया है-तहाँ खुलासा अर्थ इसरीतिसे लगाना कि अग्नेदिव्युपति
 वही है जिसने जेटी बहिन को सगाई हुये विना छोटी बहिन से सगाई करी तिस
 को अपने उपपातक पर कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों प्रायश्चित्त करने बादि पहिले वह
 जेटी बहिन भी विवाहिलेनो चाहिये जो दिव्युपति होजानेके दायमें किसीने स्वीकार
 न करी हो या स्वीकार किये पीछे यह दशा सुनिके सगाई खंडिदी गये हो-इसी

रना चाहिये और ऊपर इसी परिच्छेद में वशिष्ठ के वचन से कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त जो कर्हिचूके तिन में भी इसका अधिकार से चाहें उन्हीं को विकल्प से करै (पर दोनों एक भावही करने कहे हैं केवल एक नहीं) सो इस अज्ञान वर को एकही करना चाहिये और कन्या को वर से आधा व्रत कराया जाय=इसी अज्ञानताके मुञ्चामिले पर यमने सबके लिये दृगमता करी है=यदाह यमः=कृच्छ्रोडयोःपरिवेद्येकन्यायाःकृच्छ्रगवच अतिकृच्छ्रं चरेद्वाताहोताचांद्रायसां चरेत्=अयति-परिविक्ति और परिवेत्ता इन दोनों को परिवेदन की दशा में कम से कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करने चाहिये तथा कन्या को भी कृच्छ्र व्रत करना चाहिये कन्यादान करने वाला अति कृच्छ्र करै और होता जिसने फेरै करवाये सो पण्डित चांद्रायण व्रत करै (जैसी यह छोटे बड़े भाद्रयों की व्यवस्था कही तैसे बड़ी छोटी बहनों के विवाह पीछे आगे होजाने में भी उपपातक होता है तिसके प्रायश्चित्त आगे की व्यवस्था में देखो ॥ ० ॥ अथान्येषामपि प्रायश्चित्तमित्मेव=इस परिच्छेद में यहाँ तक जोजो कुछ प्रायश्चित्त कहेगये सो औरों परभी समान भाव समभिलेना जो पर्य्या हितानि आदि कई एक उपपातकी और होते हैं क्योंकि इन सबका प्रायश्चित्त एकही साथ कहा भी गयाहै कि जैसा आगे गौतम के वचन में देखना=यदाह गौतमः=परिविक्ति परिवेत्त, पर्याहित, पर्यावाह, अग्नेर्विधियु, दिविद्युपतानां, संवत्सरं प्राज्ञतब्रह्मचर्यं मिति=अर्थात्-परिविक्ति और परिवेत्ता बंदो कि जिनके लक्षणा ऊपर कर्हिचूके और पर्याहित वह जेठा भाई कि जिसके अग्नि स्थापना न होते हुये छोटा भाई अग्निस्थापन करि बंदे और पर्यावाह यही छोटा भ्राता है कि जिसन जेठे भाई के न होते अग्निस्थापन करलिया और अग्नेर्विधियु आदि तीनों के लक्षणा आगे मनु के वचन से कहेगे तब देखना तिन सबके उपपातकों का प्रायश्चित्त एक बर्य भरि प्राकृत ब्रह्मचर्य गौतम ने कहा (इन सबकी एक साथ कहे जाने से समानता दृष्टिरी इसी हेतु जिन प्रायश्चित्तों को ऊपर कर्हिचूके तिनकीपहुँच इनमें भी होसकी है) उनके निवाय जो प्रायश्चित्त अब आगे कहे जायें तिनको भी समझना जैसा कि अग्नेर्विधियुपति आदि का प्रायश्चित्त वशिष्ठ जीने कहा है=यथा=अग्नेर्विधियुपतिः कृच्छ्रं हादगुराथं चरित्वा निविशेत् तांचैवोपयच्छेत् दिविद्युपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रोचरित्वा तस्मैदत्तां पुनर्निविशेत् (अग्नेर्विधिव्वादेर्लक्षणा स्मृत्यन्तरेऽभिहितयथा=उपेयायां यद्यनुदायां कन्यायानुह्यतेऽनुजायासाथे दिविद्युर्ह्यापूर्वातुर्दिवियु स्मृतेति) तथार्थे दिविद्युपतिः प्राज्ञापत्यज्ञत्वा तानेवउपेयां पचाद-

अथपारदार्यापपातकप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

परिच्छेदः एकानपचाशत्तमः ४६ ॥

इस परिच्छेदमें उसभाँतिके परस्त्री गमन पापोंका प्रायश्चित्त भेदकहा जाय
गा कि जो उपपातकों में गिनती है अर्थात् उन स्त्रियोंका चर्चा इसमें
नहीं है जिनके लक्षरा पहिले महापातकों में आग्या गमनके रूप
से वर्णानुद्देश्ये ॥ यहाँ इस परदारा गमनके अनेकभेद कहेजा-
येंगे तिन सबके जुड़े प्रायश्चित्तभी दर्शाये जायेंगे ॥

(परस्त्रीगमनप्रायश्चित्तं)

पारिदार्या भोगकरना उपपातक होता है जिसका स्वरूप लक्षरा २३५ मूलप्रलोक
में आचकाहे और इसीसे सामान्य उपपातकों वाला तीन मासका प्रायश्चित्त जो
२६५ की अर्थिकोक्ति में मनुके वचन से आया था सो भी इसपर पहुँचता और उसी
२६५ के मूलप्रलोक में चारप्रकार प्रायश्चित्त योगीश्वर ने कहेये उनकी भी पहुँच
इसपर होसक्ती परन्तु गुरुदारागमन और उसके समान पचीसवें परिच्छेदमें भी इस
का अपवाद कहाजाचुका है=तथैव अन्यत्र भी गौतम आदि ऋषियों ने विशेष पा-
रदार्य के द्वारा भी अपवाद कहा है (तिससे उन छोटे प्रायश्चित्तों को पहुँच इसपर
नहीं है)=अवाहगौतमः=द्वेपरदार्येत्रीशियोऽधियस्येति=तथावार्यिकंप्राकृतं ब्रह्मचर्यं प्र-
स्तुत्यतेनेवेदमभिहितं=उपपातकेयुधैवमिति=अत्रेयं व्यवस्था (ऋतुकाले कामतो जाति
सावत्राह्नयागमने वार्यिक प्राकृतब्रह्मचर्यं—तस्मिन्नेवकाले कर्मसाधनत्वात् द्विगुणाशा-
लिन्यात्राह्नयागमनेद्वैवर्षे प्राकृतब्रह्मचर्यं—तादृश्यामेवयैश्वर्याभार्यागमनेत्रीशि-
व्याशियाप्राकृतब्रह्मचर्यं (यदायैश्वर्यं प्रांशुतावत्यां ब्राह्मरायां वैवार्यिकं) तदाताहु-
शिववायामेवक्षत्रियायां वैवार्यिकं तादृश्यामेवयैश्वर्याभार्यागमने वार्यिकं तद्व्यवस्था इति
मिताक्षराकारः=अर्थात्—गौतमने यह कहा कि—दोवर्ष परादिदारामें तीन योऽधिय
को दारामें=तथा पहिले वार्यिक प्राकृत ब्रह्मचर्यको प्रधान कहिकर उन्हींगौतम ने
यह कहा कि=इसीतरह उपपातकों में भी वार्यिक ब्रह्मचर्य होय=इसके ऊपर मि-
ताक्षराकार व्यवस्था नियत करतेहैं कि=मासिक ऋतुकाल में कामको चाहना से

प्रकार वह जेठी बहिन जो दिविधू रहर गई तिसके साथ जिस किसीने बोखे में सगाई करली हो तिसको अपने उपपातक पर यह करना चाहिये कि प्रथम तो कच्छव्रत प्राजापत्य को आचरे फिर उस जेठी बहिन दिविधू को सगाई छोड़ि छोटी का विवाह न होने से पहिले उसी को देनी चाहिये जिसने पहिले छोटी से सगाई करी अथवा यह वानक न बनपरै तो किसी ज्ञानी विप्रेंद्र को देकर आप किसी और निर्दोषा कथा से विवाह करै (परन्तु किसी विप्रेंद्रको देना यह मितासराकारों का लेख है अथवा वशिष्ठ के वचन में यह चर्चा नहीं है) इतिपरिवेदनप्रायश्चित्तं ॥ आगे इसी परिच्छेद में अन्य उपपातकों का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥ ० ॥ अथ भूतकाध्यापकभृताध्यापितयोः प्रायश्चित्तं-इन दोनों का लक्षण २३५ मूल श्लोक में कहिचुके हैं=प्रायश्चित्तं यदाह विष्णुः=(पयसा ब्रह्म सुवर्चलापिवोदत्यविहृत्यविष्णुनोक्तं-भूतकाध्यापनं कृत्वा भृताध्यापितकस्तथा अनुयोगप्रदानेन जीनृपक्षान्द्रियतःपिवेव=अथवा-विष्णुने किसी प्रायश्चित्तमें दूधसे ब्रह्मसुवर्चलाका पीना पहिले कहिकर पीछे वही प्रकार इनके मध्येभी कहाहै कि-सजुरी देने लेने आदि अनुयोग के प्रदान से विद्या पढिकर या पढाइ के दोनों पक्ष उपपातकी होते हैं सो तीन तीन पाखतक नियत व्रत होके दूध में ओटी हुई ब्रह्मसुवर्चलापिवें तब शुद्ध होय=इसीलिये=मनु के प्रमाण से स्मृत्यंतर में कहाहै कि (दत्तानुयोगानभ्येतुःपतितान्मनुस्ववीत) पढने वाले से सजुरी आदि अनुयोग जिनको दिये जाय तिनको मनु जी पतित कहिचुके हैं=यहां भी इन व्रत के साथ पूर्वोक्त व्रतों को मिलाकर कर्त्ताओंकी शक्ति आदिकी अपेक्षासे यथोचित विकल्प सोचलैना चाहिये यह मितासरा कारोंने कहा ॥ २६५ ॥

इसी मूल श्लोकसे पाठ अवतक चला आताहै ॥ २६५ ॥

(इति भूतकाध्यापक प्रायश्चित्तं)

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेंद्रप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनंपादपादन्यूनकल्प्यं)
 एतत्सर्वकामकारविययं=अर्थात्-आपस्तंबने कहाहै कि जो कोईपुरुष अपने स्वयं
 पुरुष की स्वर्णाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न होचुकी हो अर्थात् उसीकी
 विवाहिता हो तिस) में एकहीवार यदि संगमकरे तो वारहवर्षवाले आश्रागमनकी
 प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तानिवर्ष प्रायश्चित्त उसपर लगाताहै इसीक्रमसे वारवार
 के अभ्यास में एकएक पाद बढ़ताजाताहै कि दो रात्रिके संगम से आधा प्रायश्चित्त
 और तीन रात्रि के संगम से तीन पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी वारहवर्षों का
 पूरा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तंबका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे
 तानिवर्षोंकी बराबरहै क्योंकि गौतमने तीन वर्षोंकेवल एकवारके संगमपर कहीहैं
 और यहाँ अन्यत्र पूर्विकाके चारवार गमन करनेमें वारहवर्षकहेगये) अकामकृ-
 तगमनप्रायश्चित्तं-यहसब जोकृच्छ्र यहाँतक प्रायश्चित्तकहेगये सोकामकी इच्छा
 से संगम करनेमध्ये समझने=परन्तु जहाँ कहीं=कामकी चाहना बिना किसी धोखे
 आदिसे उषीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसाजैसा ऋतुकाल आदि लक्षणा
 ऊपर कहिचुके तहाँ वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेसौकेपर आवेआवे
 क्रियेजायेंगे ॥०॥ ऋतुकालविनागमने-जहाँ कहीं ऋतुकालके बिना संगमकिया
 जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिमात्र की
 ब्राह्मणोंमें ऋतुकालके बिना कामकी इच्छासाथ गमन करे तब मनुका कहा तीन
 महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो २६५ दोसौपैसठिकी अधिकोक्ति में लिखि
 चुकेतहाँ देखो ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना किसी ब्राह्मणकी स्त्रिया विवाहिता
 यावैश्या विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिमात्रसे प्रसिद्धहो पतिव्रतआदि किसी
 गुणासे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे विगडहै सो उन्हीं मनु
 का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्याकी अपेक्षासे एक महीना चांद्रायणकरे ॥
 इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई स्त्री किसी गैर स्त्रीकी विवाहिता क्षत्राणी या
 वनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे विगडहै सो क्षत्राणी की अपेक्षा दोमहीना चांद्रा-
 यण और वनेनीकी अपेक्षा एक महीना चांद्रायण करे तथा शूद्रा में विगडने मध्ये
 इससे आधा समझिलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई वैश्य किसी गैर वैश्य
 की विवाहिता वनेनीमें कामकी इच्छासे विगडहै सो दोमहीने चांद्रायणकरे जो वैश्य
 की विवाहिता शूद्रा में विगडहै सो एकमहीना चांद्रायणकरे ॥ ० ॥ अथाप्यकामकृ-
 तगमने-जहाँ कहीं इन्होंने सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुरुष काम की इच्छा बिना कि-

जो कोई ब्राह्मणमात्र किसी जातिमात्र ब्राह्मणाभि गमनकरै तो एकवर्षभरका प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त कराया जाय—और उसी ऋतुकाल में गर्भरूप कर्मका साधन होसकने से दोशरावाली स्त्री ठहरतीहै ऐसी दोशरावाली ब्राह्मणाभि गमन करने में दो वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये—तैसेही लक्षरावाली यौत्रिय की भार्या साथ गमन करने में तीनिवर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य कराना चाहिये (जब यौत्रिय की पत्नी ब्राह्मणी शरावती में गमन करनेसे तीनिवर्ष प्रायश्चित्त ठहरा) तो इसीहेतुसे वैसे लक्षरावाली ब्राह्मण की पत्नी सवारागी गमन करने में दोवर्षका प्रायश्चित्त चाहिये और उसी लक्षरावाली ब्राह्मणाकीपत्नी बनेनी गमन करनेमें एकवर्षचाहिये यह मिताक्षराकारों ने व्यवस्था कही फिर कहते हैं कि—इसी न्यायके समान दृष्टि देनेसे ब्राह्मणाकी शूद्रामें भी गमनकरनेसे छेमहीनेका प्राकृत ब्रह्मचर्य कल्पनाकरना चाहिये—इसी न्यायके अनुसार शंखने भी चारौवर्षाकी स्त्रियां ब्राह्मणा की विवाहिता कहिकर वर्रा क्रमसे प्रायश्चित्त में कसी दशांदि है—यथाहशंखः—वैश्यायामव कीर्णसंवत्सरं ब्रह्मचर्यं त्रिव्यवसांचानुत्तिष्ठेत् सत्रियायां द्विवर्षं त्रीणां ब्राह्मणयां (वैश्यायां शूद्रायां) ब्राह्मणपरिणीता यामिति वर्राक्रमेण ह्यसोदर्शितः—अर्थात्—बनेनी में विराडा हुआ ब्राह्मण वर्षे एकभर ब्रह्मचर्यसाधे और त्रिकाल स्नानकियाकरै सर्वसत्रियामें विराडा हुआ दोवर्ष ब्रह्मचर्यकरै ब्राह्मणी में विराडा हुआ तीनिवर्ष करै—और ये बनेनी या शूद्रा आदि जो कही सो किसी ब्राह्मणाकी विवाहिता हों उन्हींका यह चर्चाहै अर्थात् जो घरीवैठारी ब्राह्मणाके घरमें तिनका प्रायश्चित्त कहीं आगेकहाजायगा—इसी न्यायके आधीन—कोई क्षत्री किसी सत्रीकी विवाहिता सत्रिया या बनेनी या शूद्रा जो वैसेही पूर्वोक्त ऋतुकाल आदि लक्षरावाली हों तिनमें विराडै सो वर्राक्रम से दोवर्ष या एकवर्ष या छमाही भर प्राकृत ब्रह्मचर्यसाधे तब शुद्ध होय—इसी प्रकार—कोई वैश्य किसी वैश्य की विवाहिता बनेनी या शूद्रा जो पूर्वोक्त लक्षरावाली हों तिनमें विराडै सो वर्रा क्रमसे एकवर्ष या एक छमाही ब्रह्मचर्यकरै तब शुद्ध होय—इसी प्रकार—कोई शूद्र किसी गौर शूद्रकी विवाहिता शूद्रा भार्यामें विराडै सो छमाही भर ब्रह्मचर्य साधे—गौतमके वचनसे लेकर यहां तक जो कुछ नियम कहेगये सो सब केवल एकवार परांदि भार्या में विराडने मध्ये संभक्तना यही तात्पर्य अगिले आपस्तंबके वचनसे पायाजाताहै तिसको देखो—यथाहापस्तंबः—सवरायामनन्यूपूर्वायांसकृत्संनिपातेपादः पतत्येवमभ्यासेपादः पादश्चतुर्थ्ये सर्वानिति (एतदपि गौतमीय विवायिकेण समानविययं अनन्यपूर्विकायांचतुरभ्यासे षाडशवार्यिक प्रायश्चित्त

विधानादेकस्यामेव गमनाभ्यासेनेदंप्रायश्चित्तं किन्तुप्रतिगमनंपादपादन्यनंकल्प्यं)
 एतत्सर्वकामकारविषयं=अर्थात्-आपस्तंबने कहाहै कि जो कोईपुरुष अपने स्वर्ण
 पुरुष की स्वर्णाभार्या (जो पहिले किसीकी भार्या न होचुकी हो अर्थात् उसीकी
 विवाहिता हो तिस) में एकहीवार यदि सगसकरै तो वारहवर्षवाले आभ्यागमनके
 प्रायश्चित्तकी एकचौथाई तानिवर्यं प्रायश्चित्त उसपर लगताहै इसीक्रमसे बारवार
 के अभ्यास में एकएक पाद बढ़ताजाताहै कि दो रात्रिके गमन से आधा प्रायश्चित्त
 और तीन रात्रि के संगम से तीन पाद चौथी रात्रि के संगमसे सभी वारहवर्षों का
 पूरा प्रायश्चित्त चाहिये (यह आपस्तंबका प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्त गौतम के कहे
 तीनवर्षोंकी बराबरहै क्योंकि गौतमने तीन वर्षोंकेवल एकवारके संगमपर कहीहैं
 और यहाँ अन्यन्य पूर्विकाके चारवार गमन करनेमें वारहवर्ष कहेगये) अक्रामकृ-
 तगमनप्रायश्चित्तं-यहसब जोकुछ यहाँतक प्रायश्चित्तकहेगये सोकामकी इच्छा
 से संगम करनेमध्ये समभूने=परन्तु जहाँ कहीं=कामकी चाहना बिना किसी धोखे
 आदिसे उभीप्रकारकी स्त्रियोंमें संगम होगया हो जैसाजैसा ऋतुकाल आदि लसरा
 ऊपर कहिचुके तहाँ वेही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त सब अपनेअपनेभौकेपर आधेआधे
 कियेजायँगे ॥०॥ ऋतुकालविनागमने-जहाँ कहीं ऋतुकालके बिना संगमकिया
 जाय तिसकी व्यवस्था अब कहते हैं कि=जब कोई ब्राह्मण किसी जातिभाव को
 ब्राह्मणोंमें ऋतुकालके बिना कामकी इच्छासाथ गमन करै तब मनुका कहा तीन
 महीनेवाला प्रायश्चित्त करायाजाय जो२६५ दोसौपैसदिकी अधिकोक्ति में लिखि
 चुकेतहाँ देखीं ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना किसी ब्राह्मणकी सविया विवाहिता
 यावैश्या विवाहिता भार्या जो सामान्य जातिभावसे प्रसिद्धहो यतिव्रतआदि किसी
 गुरासे युक्त न हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण कामकी चाहनासे विगडँसो उन्हीं मनु
 का कहा दोमहीना चांद्रायण और वैश्याकी अपेक्षासे एक महीना चांद्रायणकरै ॥
 इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई सत्री किसी गौर सत्रीकी विवाहिता क्षत्राणी या
 वनेनी भार्यामें कामकी चाहनासे विगडँसो क्षत्राणी की अपेक्षा दोमहीना चांद्रा-
 यण और वनेनीकी अपेक्षा एक महीना चांद्रायण करै तथा शूद्रा में विगडँने मध्ये
 इससे आधा समभिलेना ॥ इसीतरह ऋतुकालके बिना कोई वैश्य किसी गौर वैश्य
 की विवाहिता वनेनीमें कामकी इच्छासे विगडँसोदोमहीने चांद्रायणकरै जो वैश्य
 की विवाहिता शूद्रामें विगडँसो एकमहीना चांद्रायणकरै ॥ ० ॥ अवाप्यकामकृ-
 तगमने-जहाँ कहीं इन्हीं सब स्त्रियोंमें येही उक्त पुरुष काम की इच्छा बिना कि-

श्री श्रीखेआदि हेतुसे गमन करिबैदेहीं तहां ऊर्ध्वोक्त तीनमहीने आदि प्रायश्चित्तों
 के स्थानपर इनके बदले यथाक्रमसे जो जो प्रायश्चित्त इनसे छोड़ेहोने चाहिये ति-
 नका स्वरूप (२६३ । २६४) मूलप्रतीकों में कहिचुके हैं परन्तु यहां उनका क्रम
 इसरीतिसे लेना कि ग्यारहवां आंडुट्टयभ दशगुरुवाला प्रायश्चित्त यहां के तीन
 मासके स्थानपर लेना और यहां जिसको दोहीमासका प्रायश्चित्त कहागया हो
 तिसकोलिये इच्छाविना गमन करनेमध्ये एकमहीना पंचगव्य पीनेका प्रायश्चित्त
 ठहराना और यहां जिसको एक महीनेका चांद्रायता कहागया तिसकोलिये इच्छा
 विना गमन करनेके हेतुसे एक महीनेका प्राजापत्य ठहराना=इनके सिवाय शूद्रा
 के गमनमध्ये जो कामनासहितपर एकमहीना व्रत कहिचुके वही कामना से रहित
 भोगमें आधा करिके एकपाख ठहराना चाहिये=इसी लिये संवर्त्तने सेमा कहाहै
 कि=शूद्र्यांतुब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्धमेव वा गोमूत्रयावकाहारस्तिष्ठेत्तत्पापमुक्तये
 इत्येकामतोऽर्धमासिकमित्यभिप्रेतं=अर्थात्-ब्राह्मण शूद्रोंमें गमन करिके एकमहीना
 वा आधा महीनाभरगोमूत्रमें पकाया जौका दतिया खाकर व्रतकरै=श्री यह आधा
 महीना विना कामनाके भोगमध्ये अभिप्राय सोचि के कहा है=और भी यह कहा
 है कि=ब्राह्मणाप्रचरेषोऽप्येवं ब्राह्मणदाराभिगच्छेन्नित्तत्तधर्मकर्मणाः श्चच्छेन्नित्त
 त्वसंस्कर्मणांति (कृच्छ्रइतिहासाभाष्यांशूद्रायां द्रष्टव्यं विजातिस्त्रीषु च विप्रोडा
 मुत्तिस्त्रिव्यभिचारितासु अर्थात्पूर्वगमनेवा=अर्थात्-यदि ब्राह्मण काम क्रीडा की
 अपेक्षा से चाहिकर किसी ऐसे ब्राह्मण की दारा में संगम करै जो धर्म कर्मों से
 विहीन हो और संगम करनेवाला ब्राह्मण भी धर्म कर्मों से विहीनहो तो इसदशा
 में कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत कराना चाहिये (श्री यह दारा शब्द सामान्य होनेपर भी
 शूद्र जाति की दारा पर आरूढ समझना अर्थात् शूद्रजाती कन्या यदि ब्राह्मणको
 विवाही गईहो क्योंकि प्राजापत्य नामक प्रायश्चित्त के छोड़ापन से यहीवात पाई
 जातीहै दूसरे धर्म कर्मों से विहीन कहा तिससे भी यही बात सिद्ध होती है कि अ-
 पने जाती धर्मकर्म छोड़िके शूद्रा कन्यासे विवाह कियाहो तिस दारामें यदि कोई
 ओखा ब्राह्मण काम क्रीडा को अपेक्षा से संगमकरै तिसपर यह छोडा प्रायश्चित्त
 चाहिये) और (व्यभिचरितायांगमने) उनीवचन में ब्राह्मणात्त्यदारान् दाराओंका
 बहुत्व कहाजानेसे दूसरा अर्थ यहभी सिद्ध होताहै कि (जिन ब्राह्मणों के सविया
 और वैश्या दारा विवाहिता हों या ब्राह्मणों की दारा होय परन्तु ये सबदारा दो तीन
 वार तक व्यभिचारसे बदनाम होचुकी हों तिनमें यदि कोई धर्म कर्म से विहीन

ब्राह्मणा काम क्रोडा की अपेक्षा से गमन करै तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि दारायें यद्यपि ऊँचे वर्गों की कन्या टहिरों परन्तु व्यभिचार से वदनाम दो तीन बार हो चुकीयाँ तिससे बहुत बड़े प्रायश्चित्त की जरूरत भोगनेवाले पर नहीं रही और पूर्वाक्त शूद्रा भार्या यद्यपि नीच वर्गों की कन्या टहिरा तथापि व्यभिचार से वदनाम नहीं थी इसलिये उसके भोग मध्ये इन्हीं तीनों को बराबर प्रायश्चित्त कहा) और भी इसी वचन में दाराओं का बहुत्व कहा जाने से तीसरा अर्थ यह भी सिद्ध होता है कि (तीनों ऊँचे वर्गों की कन्या जो ब्राह्मणा की विवाहिता दारा हैं और व्यभिचार की वदनामी भी उनमें जाहर नहीं तिनमें कोई ब्राह्मणा विनाजाने या अपनी भार्याके दोखे आदि से गमन करै तिसपर भी यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि धर्म कर्म से विहीन पुत्र्य की भार्या उनको कहि चुके और भोगने वाला भी धर्म कर्म से विहीन कहा गया था ॥ ० ॥ येय ब्राह्मणा की दाराओं मध्ये यदि कोई गैर ब्राह्मणा विना जानेह व्यभिचार करै तिसमें भी संवर्तने दो भेद से प्रायश्चित्त कहा है—यथाह संवर्त—विप्रास्त्रजानतात्वाप्राजापत्यसमाचरेत्—अर्थात्—उत्तम गुरावाच ब्राह्मणा की दाराओं में विना जाने गमन करिके प्राजापत्य जो बारह दिनमें एक पूरा होता है तिसको मन्थक्य अच्छी विधि से आचरै यह एक तरह का अर्थ टहिरा—दूसरा अर्थ ऐसा है कि प्राजापत्य नामक जोत्रत है बारह दिनवाला तिसको समा चरेत् एक वर्ष भर निरन्तर आचरै क्योंकि समा संजा एक वर्ष की होती है सो इस दो भाँति का यह भेद है कि जहाँ गुरावाच ब्राह्मणा की भार्या व्यभिचारिणी हो तिसमें विनाजाने जो गमन करै सो केवल एकही प्राजापत्य करिके शुद्ध होजाय • जहाँ उसी गुरावाच ब्राह्मणा की भार्या निष्कलक हो तिसमें विना जाने यदि कोई गैर ब्राह्मणा संगम करै सो निरन्तर एक वर्ष भर अनेक प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ रानो मन्थानिनिआदि अनेक उत्तमस्त्रियों जिनका संगम करनेवालेकी इन्द्री कस्वाना पहिले कहि चुके २३२ दोसो बत्तीस की अधि क्रीडि में नारद के वचन देखो अथवा इन्द्री कस्वाने विनाभी बारहवर्ष आदि के बड़े प्रायश्चित्त उसको ऐसी दशापर आरुढ हो चुके है कि जहाँ उन स्त्रियोंने आपही पुत्र्य को उत्साह देकर मोहित किया हो • उन्हीं स्त्रियों के भोग मध्ये यहाँ पर बहुत छोटा सा प्रायश्चित्त यमने कहा सो अब लिखते हैं तिसका यह कारणा है कि वहाँ तो कलक से रहित अतिगय शुद्ध स्त्रियों का चर्चा था और यहाँपर

छोटा प्रायश्चित्त इसलिये है कि यदि वेही स्त्रियां पहिले व्यभिचार भी कर चुकी और वदनाम हों तिनको यदि कोई पुरुष कामकी चाहना से भोगे यद्य काम की चाहना बिना उन्ही स्त्रियों ने उत्साह देकर फाँसलिया हो तो यह एक उपपातक है तिसपर यह छोटा प्रायश्चित्त चाहिये किन्तु इन्ही कटवाना आदि कुछ नहीं= यथाह यमः=राज्ञीप्रव्रजितांवाशींसाध्वींवर्यांस्तमामपि ह्यच्छुद्धयंप्रकुर्वीतसर्गोवाम भिगम्यच=अर्थात्-रानी•संन्यासिनि आदि साध्विनी•वाशी धाड़ जिसने अपने को दूध पिलाकर पाला हो•साध्वी जो नेम धरम आदि से संयुक्त हो वर्यांत्तमा जो अपने से ऊँचे वर्यां की स्त्रीहो•सर्गोवा जो अपने गोव भर में दूर नाते की हो• इनके पास जाइके दो कच्छ प्राजापत्य करनेचाहिये (केवल उसीदशामें कि यदि स्त्रियांपहिले से व्यभिचार में प्रसिद्ध हों और पुरुष ने किसी घोखा आदि अज्ञानतामें संगम एक बार कियाहो अन्यथा इसके बड़े बड़े प्रायश्चित्तों जैसा अनन्तर अभी लिखचुके सो देखौ ॥ ० ॥ ऊपर के पाठ में यह चर्चा आचुका है कि (ये सब दारा दो तीन बार तक व्यभिचार से वदनाम होचुकी हों) तहां यही तात्पर्य था कि चौथीवार जिन के व्यभिचार की वदनामी न सुनीहो तिनके मध्ये तशोक्त प्रायश्चित्त है-अन्यथा जो चौथीवार किन्तु चौथे पुरुष से वदनाम हुईहो वह स्त्रैरिणी और पांचवें से वन्धकी आदि होजाती है (चतुर्थैस्त्रैरिणीप्रोक्तापंचवन्धकीमता) फिर चाहें किसी कुलकी हो इसका नियम नहीं रहिता=स्त्रैरिण्यादिपुगमने-ऐसी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मण जाके विगडै तो फिर तशोक्त से थोडा प्रायश्चित्त चाहिये=यथा हर्षाखः=स्त्रैरिण्याद्यत्यामत्रकीर्णाःसचैलंस्त्रात्योदकुंभंदद्याद्ब्राह्मणाय वैश्यायांच च तृथकालाद्दाराः ब्राह्मणान्भोजयेद्यवसभारंचगोभ्योदद्यात् क्षत्रियायां विराजोपोयित्वा घृतपाण्डद्यात् ब्राह्मणायाम्भोजयेद्यवसभारंचगोभ्योदद्यात् गोप्वधकीर्णाःप्राजापत्यंचरेत् अन- द्यायानवकीर्णाःपलाहभारंसोममायस्कंचदद्यात्=अर्थात्-स्त्रैरिणीके कुलसरा अभी लिखचुके तैसे कुलसरा वाली टयली अर्थात् शूद्रकी भार्या जो कोई ऐसीहो तिस में जो कोई ब्राह्मण जाकर एक बार विगडै सो वस्त्रों सहित स्नान करिके जल का भरा घट ब्राह्मण की धान करै यही प्रायश्चित्त है• एवं जो बनेनी कोई स्त्रैरिणी प्रसिद्ध हो तिसमें जाकर एक बार ब्राह्मण बिगडै सो एक दिन का व्रत करिकेचौथे काल संध्यासे पहिले थोडा भोजन करै दूसरे दिन यथाशक्ति संख्या से ब्राह्मणोंको भोजन करावै और शास्त्रोक्त परिमानसे एकभार घास लेकर गौओंकोदेवै•एवं कवी की भार्या क्षत्राणी कोई स्त्रैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक बार यदि

संगम करै सो तीनदिन उपवास करिके घीका भरा पूजापात्र दान करै• एवं ब्राह्मणी जो स्वैरिणी प्रसिद्ध होय तिसमें कोई गैर ब्राह्मण एकवार संगम करै सो छेदित उपवास करिके गऊदान करै तब शुद्ध होय• एवं जो गौआंके साथ मैथुन करै सो प्राजापत्य करै तब शुद्ध होय• एवं अनूदा कन्या चाहें किशोवराकी होय जो विवाहके न होने से पिताके घर में रहिते रजोवती होकर पीछे स्वैरिणी हो गई हो तिसमें यदि कोई ब्राह्मण एकवार संगम करै सो एक भारके परिमान से धान कोदो आदि का पथार गौआं को देकर सीसा लोहाभी दान करै तब शुद्ध होय यह शंख जीने कहा ॥ ० ॥ और इसी उक्त विषय पर यद्विंशत् मत के ग्रन्थ में भी ऐसा प्रायश्चित्त कहा है कि ब्राह्मणीवन्धकींगस्वाकिंचिद्दद्यात्तद्विजातये राजन्यांचेदनुर्दद्याद्द्वैश्यांगत्वात्तुचैल क्तम शुद्रांगत्वात्तुर्वैविप्रउदकुंभद्विजातये द्विसोपयितोवास्यादद्याद्विप्रायभोजनस= अर्थात्-बंधकीके कुलसरा ऊपर कहि चुकेहैं कि चौथाछोडि पांचवें पुरुषके घर वैदें यहा पांचवेंसेव्यभिचार करै सो बंधकी कहाती है• ऐसे कुलसरावाली कोई ब्राह्मणी जो बंधकी प्रसिद्ध होय तिसमें यदि एकवार कोई गैर ब्राह्मण जाकर बिगड़ै सो कुछ एक दान ब्राह्मणाकी देकर शुद्ध होसक्ता है• एवं सवारी जो सत्रीकी भार्या बंधकी होय तिसमें एकवार कोई ब्राह्मण जाके बिगड़ै सो एकधनुय दान करै• एवं वैश्यानी जो वैश्यकी भार्या बंधकी होय तिसमें कोई ब्राह्मण एकवार जाके बिगड़ै सो एक बल्लदान करै• एवं शुद्रा जो शुद्रकी भार्या कोई बंधकी होय तिसमें कोई ब्राह्मण एक वार जाके बिगड़ै सो जलका भरा घट ब्राह्मणाकी दान करै अथवा एकदिन उपामकरिके ब्राह्मणाकी जिमाइ देवै तो शुद्ध होजाय (यद्यपि इस व्यवस्था में पहिली शंख मुनि की व्यवस्थासे कुछ भेद भी प्रतीत होताहै परन्तु दोनोंका विकल्प समझि लेना कि प्रायश्चित्ती पुरुषकी दशाके अनुसार दो बातोंमें जो एक सम्भव होय सो करवाना चाहिये ॥ ० ॥ अथगर्भधारणा प्रायश्चित्तं (अनुलोमस्यवायेगर्भे द्विगुरांयदिमा अतिदूयितान प्रतिलोमगानभवति तदैव-अन्यजाति गमनमात्रेपि द्वैश्यां) अर्थात्- उसी मैथुनका चर्चा है जो अनुलोम रास्तेसे होय किन्तु नीचे वराकी स्त्रियोंमें ऊंचे वराके पुरुष या समान वराके स्त्री पुरुष दोनों व्यभिचार करै तिनका जो कुछ प्रायश्चित्त जिस क्रमसे पहिले कहि चुकेहैं वही सब अपने अपने स्वतन्त्र पर यहां आकर देने किये जायेंगे यदि मैथुन से गर्भधारणा भी होगया हो• परन्तु यह नियम केवल उन्हीं स्त्रियोंका सम्भना जो अति दूयित बहुत बदनाम नहों और प्रतिलोम पुस्त्योंसे व्यभिचार जिनका न हुआहो (प्रतिलोमका व्यभिचार वही कहाता है जो

नीचे वर्गाके पुत्रियों से ऊँचे वर्गा की स्त्रियां करें) इसी प्रकार गर्भ रहिने विना भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त दूने कियेजाते हैं जो अन्य जातिमें व्यभिचार मात्र होय अर्थात् पहिले जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्गाके पुरुषको जिस वर्गा की स्त्री साथ गमन करने मध्ये कहियुक्त है वही दूना उस दशामें करना होगा जो उसी वर्गाका पुरुष उक्त स्त्रीके वर्गासे भी नीचे वर्गाकी स्त्री साथ व्यभिचार करे यद्वा ऐसे वर्गके समान कोई अन्यजाति ऐसीहो जो वर्गासे उपराल होय ॥ ० ॥ प्रतिलोमदूषितास्वपिगर्भधारणे=प्रतिलोमदूषितासु अंत्यावसायिस्त्रीयुच चांडालीगर्भेययाश्रुततल्पव्रतं तथा किंचिन्न्यूनतारतन्यकल्प्यं—चांडालीगमनेवार्थिकं तद्गर्भेश्रुततल्पत्वंतयैवज्ञेयं (इदं प्रायश्चित्तजातंगर्भानुत्पत्तिविययं=अर्थात्—द्विजातियोंकी स्त्रियां जो प्रतिलोमनीचे वर्गा से विगडी हों तिनमें यदि कोई समान वर्गा वाला पुरुष या उनसे ऊँचे वर्गा वाला पुरुष अश्रुतकालमें संगम करिके गर्भधारणाकरे अथवा सासात्कार अंत्यावसायी जो चंडाल आदि होतेहैं तिनकी स्त्रियोंके अश्रुतकाल में संगम करिके किसी वर्गाका पुरुष अपने बीजसे गर्भधारणा करे तो इन दोनों दशा में वह प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जैसे चांडाली में गर्भधारणा करने से श्रुततल्प स्त्री महा पाप दूर करने वाला व्रत होताहै तैसा तरतमके अनुसार कुछ न्यून प्रायश्चित्त होय—तितका यह दौलहे कि चांडाली में संगम करने मात्रसे एक वर्षवाला व्रत कराना और चांडाली में गर्भ जमि जाने से सासात् श्रुततल्प स्त्री पाप समझना तथापि प्रायश्चित्त उसके कुछ घटाइकर देना चाहिये जो श्रुततल्पके ऊपर व्रतस्त्री कदागथा हो प्राणत्याग स्त्री नहीं (गर्भके मध्ये जो कुछ प्रायश्चित्त यहाँ तक लिखा गया सो सब कबल उसी दशापर आरुह्य है कि यदि गर्भ रहिकर पैदा न होवै किन्तु पैदा होजानेमध्ये आगे देखो ॥ ० ॥ गभस्यजननविषये गर्भके उत्पन्न होजाने में उससे भी दूना प्रायश्चित्त चाहिये जो कुछ गर्भके जमने मध्ये टोकहोय=तदाह विज्ञानेश्वराचार्यः=तदुत्पत्तौ यद्येषोश्रेता यत्प्रायश्चित्तमुक्तं तदेवतव द्विश्रांक्त्यात् (गमनेतव्रतयस्यादृग्भैतव द्विश्रांचरेदित्युक्तानवःस्मरणात्=अर्थात्—इस परिच्छेदके प्रारंभ से लेकर जो जो कुछ प्रायश्चित्त जिस वर्गाके स्त्री पुरुषोंका व्यभिचार होने मध्ये लिखि चुके हों उन्हींके गर्भ रहिजाने पर वेही प्रायश्चित्त दूना तादात्त से करने काहे और वेही प्रायश्चित्त उन्हीं स्त्री पुरुषोंके गर्भका जन्म होजाने पर उससे भी दूने करवानेहोगे अर्थात् व्यभिचारकी तादात्तसे चौगुने करने होंगे क्योंकि उग्रनामुनिका यह वचन है कि (जिनका व्रत संगम करने पर कदाहो उसीकी गर्भके जमिजाने पर दूनाकरे)

इसी न्यायसे यह नियम टहिरा कि गर्भका जन्म होजाने पर उसी की चतुर्गुणा करें ॥ ० ॥ प्रादिके गर्भ उपजाने मध्ये चतुर्विंशतिमत ग्रन्थमे कृच्छ्र और भी विशेषता वर्णन हुई है=यथा=व्यत्यामभिजातस्तुवीर्या वर्याणि चतुर्थकालमस्येत्कर्मंजीते त्ति=अर्थात्-व्यली जो शूद्रिनी है तिसमें ऊँचे वर्णों का पुंस्य जो अपने वीज से गर्भ रूप होके जन्म धरै सो तीनों वर्ण भर सदा राति में चौथे काल के समय पर अर्थात् डेढपहर राति गये पीछे आधीरातके भीतर भोजनका एकवार नियम राखै तौ शुद्ध होजाता है=और=जो मनु का यह वचन है कि (शूद्रांशयनमारोप्यत्राह्नरागोजाल्य धोगतिम् जनयिस्वासुतंतस्यां ब्राह्मरायादेवहीयते) अर्थात्-शूद्रा को अपनी सेजपर सोवाइके ब्राह्मणअभोगतिकी पहुँचता है और उसमें निपट सतान पैदा करवाइ के निपट ब्राह्मणत्वके लक्षणसेही मितिजाताहै) सो यह मनुका वचन कृच्छ्र प्रायश्चित्त की बड़ाई छुटाईके निमित्त पर नहींहै केवल पापकी बड़ाई जाइर करनेके निमित्त पर आरूढ है• क्योंकि निपट ब्राह्मणपनेसे नहीं जाता रहिता किन्तु प्रायश्चित्तसे शुद्ध होकर ब्राह्मण बना रहिता है जो आगेकी फिर कभीऐसा न करै-और यहभी याद राखना कि, इस वचनमें उसका चर्चा नहींहै जो कोई ब्राह्मण किसी शूद्रकी कुमारी कन्यासे अपना विवाह करिके घर बसावै या सन्तान पैदा करावै या सेज पर सोवावै क्योंकि वह एक निंध्य विवाहोंका धर्ममार्ग जुदाहै उसमें कृच्छ्र प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं परती• तिसके यहां केवल वह शूद्रा समझलेनी जो किसी शूद्रकी विवाहिता भार्याहो तिसमे गर्भ धरने आदिका यह प्रायश्चित्त है क्योंकि यह परिच्छेदही पराई भार्या गसन करने मध्ये वर्णन होरहा है इसी से पारदार्य पाप के प्रायश्चित्त इनका नाम है ॥ यहां तक पारदार्य के जो कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहेगये सो सब अनुलोम व्यभिचार मध्ये कहेगये हैं कि नीचे वर्णों की स्त्री और ऊंचे वर्णों के पुंस्य हों यदा दोनों एकही वर्णों के हों अब आगे प्रतिलोम सैथुन की चर्चा होगी ॥ ० ॥ अथप्रतिलोमव्यवायेप्रायश्चित्त-ऊँचेवर्णोंकी स्त्रियों में यदि नीचे वर्णोंवाले कोईपुंस्य व्यभिचारकरें तहां सर्वव बवस्वरूपी प्रायश्चित्तहै व्रतस्वीनहीं= तथाचवचन=प्रतिलोम्येवध पंसोन्गार्या कर्यादिकर्त्तनम्=अर्थात्-विपरीत वर्णों के व्यभिचार में पुंस्यका बवकरना प्रायश्चित्तहै और स्त्रीके नाक कान आदि उत्तम अंग काटना=इसकेमध्ये=वृद्धप्रचेताका जो वचन आगे लिखतेहैं तिसमे कृच्छ्रभेदहै= यथाहवृद्धप्रचेताः=शूद्रस्यब्राह्मणोर्नोहाइराच्छत शुद्धिमिच्छतः पूराभेतद्व्रतदेयमाता यस्माद्वितस्यसा पादहान्याऽन्यवरासिगच्छतः सार्ववर्षिकामिताहादशवर्षातिदेश

कं तत्त्वभार्याभ्यांत्यागच्छतोवेदितव्यं मोहादिति विशेष्यसोपादानादिति मिताक्षराकाराः=अर्थात्-शूद्रपुरुष जो ब्राह्मणी में मोह (अज्ञान) से गमन करे सो अपनी शुद्धि चाहे तो यही सार्व वरिष्क जो वारहवर्षका व्रत पहिले कहागया परा परा उसको देना चाहिये क्योंकि ब्राह्मणी उसकी माताकहाती है किन्तु माता में व्यभिचारउमने किया तिससे इसीप्रकार ठकुरानी या वनेनी आदि किसी और वर्रा की छीमेंव्यभिचार शूद्रनेकिया हो तो वर्राक्रमसे एकएक पाद घटाकर प्रायश्चित्तकरै (यहइस वचनमें जो वधको वचाइकर वारहवर्षवाले पूर्वोक्त व्रतका अतिदेश उतारा गया सो इसहेतुसे कि ब्राह्मणीको समझे बिना अपनी भार्याके धोखेसे संगमकरि वैदाहो तिसको वधरूपी प्रायश्चित्त न देना चाहिये क्योंकि मोहात् यह अज्ञानता का बोधकशब्द भी श्लोकमें मौजूदहै तिससे ठकुरानी आदि औरोंमें भी अज्ञानतासे व्यभिचार करने मध्येयइ प्रायश्चित्त समझना अन्यथा इसप्रतिलोम व्यभिचारमें वधरूपी जो प्रायश्चित्त कहिचुके वही ठीकहै ॥ ० ॥ संवर्तनेअत्यन्तव्यभिचारिणी का प्रतिलोम प्रायश्चित्त कहा है=यथा=कथंचिद्ब्राह्मणींगच्छेत्सवियोवैप्रयस्रवा कृच्छ्रं सांतपनंवास्यात्प्रायश्चित्तंविशुद्धये शूद्रस्तुब्राह्मणींगच्छेत्कथंचित्काममोहितःगोमूययावकाहारोमासेनैकेनेशुद्ध्यात् (इतितदत्यंतव्यभिचारिणीविययं=अर्थात्-कदाचित् सत्री या वैश्य ब्राह्मणीसे गमनकरै सो सत्री अपनी शुद्धि के लिये कृच्छ्र प्राजापत्य करै और वैश्य अपनी शुद्धि चाहिकर कृच्छ्र सांतपन व्रतकरै कदाचित् कोई शूद्र कामसे मोहित होकर ब्राह्मणी में संगमकरै सो एक सहोनाभर गोमत्रमें पकाया जीका दलिया खाय तब शुद्धहोय (सो यह अत्यंत व्यभिचारिणी जो प्रसिद्धहोय तिस ब्राह्मणीका चर्चा है अन्यथा इस प्रतिलोम व्यभिचार में वधरूपी प्रायश्चित्त जो कहिचुके वही ठीक है ॥ अब आगे जो उत्तम जाती पुरुष अंत्यजा में संगम करै तिनके प्रायश्चित्त देखौ ॥ ० ॥ अंत्यजागमनप्रायश्चित्तं=शूद्रसंवर्तने अंत्यजाके संगमका भी प्रायश्चित्त कहाहै=यथा=रजकव्यावशैलूयवेराचर्मापजीवि नाम सतारुब्राह्मणींगत्वाचरेचांद्रायणाहयन) इतोब्रह्मणस्यक्वामतः सक्तदगम नचिययंक्षत्रियादीनांतुपादहीनंकरुष्यं=अवैवापस्त्वैनोक्तं (स्लेच्छीनटीचर्मकारीरजकीवरुडीतया सतासुगमनंक्रवाचरेचांद्रायणाहयमिति)=अर्थात्-धोवोरंगरेजछीपी आदि वधाव चिह्नोमार आदि शैलूय नट नर्तक आदि नीच जातों वेरा नामक अति नीची वर्रासंकर जातों चर्मोपजीवी चमार नीची खटोक आदि जो चमडा के काम से जीवन करै इनकी स्त्रियों में ब्राह्मण यदि एक बार गमन करै वह दो

साम के पूरे दो चान्द्रायण करे तब शुद्ध होय (जैसा यह ब्राह्मण को कामना से एक बार संगम करने मध्ये कहा तैसा सभी आदि पुरुषों को एक एक पाद कम करिके विचारना चाहिये=इसी बातों के मध्ये आपस्तंबने भी कहाहै कि (स्नेच्छ देशों की और अत्यन्त नीच अपवित्र जातों की स्त्रियाँ स्नेच्छी कहाती हैं तिनमें और नदिनी चमारी, रजकी वरुडी आदि महानीच जाति की स्त्रियाँ इनमें वैवर्णिक पुरुष गमन करिके दो चान्द्रायण करे तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ अन्त्यजोंके स्वरूप भेद उन्हें दृष्टसंवर्त ने कहे हैं=यथा=रजकप्रवर्तकारश्च नदीवरुडएवच कैवर्तमेदिभिश्चाश्चसप्तैतेऽन्त्यावसायिनः=रजक० चमार० नट० वरुड० कैवर्त० मेद० भिल्ल० येसात जाते अन्त्यावसायी अर्थात् अन्त्यज नाम से कहाती हैं इन्हींके संभोग मध्ये प्रायश्चित्त ऊपर कहे गये=इनके सिवाय=चण्डाल आदि और भी सात अन्त्यज इनमे भी अधिक नीच होते हैं तिनकी स्त्रियों के संभोग मध्ये बहुतबड़ा प्रायश्चित्तहे सो २६० की अधिकोक्ति में श्रुतलप प्रायश्चित्त के साथ में कहिचुके तहां देखो- किन्तु-यहां पर लिखी हुई अन्त्यजा स्त्रियों में जो एकही के मैथुन पर प्रायश्चित्त कहागयाहो सो इन सबही स्त्रियोंके मध्ये समझि लेना क्योंकि सब एकही साथ एक ही दर्शाई गई=इस बातका प्रमारा आगे उशनाका वचन हे=यथा=बहूनामेकधर्मागामेकस्यापिपदुच्यते सर्वेषांतद्भवेत्कार्यमेकस्वपाहितेस्मृताः=अर्थात्-बहुतसे ऐसे लोग जिनका एकहीसा व्रतवा या धर्महोय तिनमें किसी एकही के लिये जो कुछ कहाजाय वही कार्य उन सबके लिये होताहै क्योंकि सब एकही रूप है तिससे ॥०॥ चांडाल्यादिष्वकामकर्तृगमने अन्त्यजा भोगनेकी इच्छा न होतेहुये क्षीखाआदि से यदि कोई इनको भोगे तिसके मध्ये आपस्तंबने कहाहै=यथा=चंडालमेद्वपचकपालव्रतचारिणां अक्रामतःस्त्रियोगत्वा पराकत्रतमाचरेत्=अर्थात्-चंडाल० मेद० श्वपच० कपाल व्रतचारी जो कपालका चिह्न पास रखनेका व्रत रखतेहैं कापालिक जाति उसका नामहै यहभी एक अन्त्यजोंकी जाति विशेष होती है इनकी स्त्रियाँ जो हृदय की इच्छा बिना एकवार भोगे सो पराक नाम व्रतकरे जो वारह दिन में पूरा होता है परन्तु यह भी नियम नहीं है कि पराक व्रत एकही आरति करे=संवर्तका यह वचन है कि=रजकव्याधशैल्यवेणाचर्मोपजीविनास्त्रियोविप्रोयदागच्छेत्कच्छृज्वांद्रायणांचरेत्=अर्थात्-रजक० व्याध० शैल्य० वेणा० वंसफोर की जीविका वाले चमडाली जीविका वाले इनकी स्त्रियोंमें यदि कोई ब्राह्मण एक बार गमन करे सो कच्छू चांद्रायणका प्रायश्चित्त आचरे (यह वचन उभी दशापर आच्छ है

किं जैसा आपस्तंबका इच्छाके विना भोग होजाने मध्ये कहिचुके=जोकि शातातप का यह वचन है कि (कैवर्ती रजकीं चैवयेराचर्मापजीविनीम प्राजापत्यविधानेनह दृष्टे गौकेनशुद्धतीति) अर्थात्-कैवर्त जो वीवर और जालवाले मछेदरे तथा मत्ताह कहाते हैं तिनकी स्त्री कैवर्ती रजकी रंगरेजिन स्त्रीपनि घोबिन आदि० बांस की जीविका करनेवाली बंसफोरिन आदि० चमड़ाकी जीविका वाली चमारो मोचिन आदि० इनमें व्यभिचार करनेवाला पुरुष प्राजापत्यके विधानसे एकही कृच्छ्रकरिके शुद्ध होताहै जो सिर्फ बारह दिन का प्रयोग है (इस वचन का यह तात्पर्य है कि बौर्य सौचनेसे पहिले जो फिर परै तिस पर यह छोटा प्रायश्चित्त लगाया जाय= और जो=उशनाका यह वचन है कि=कापालिकात्र भोक्तृशांतकारीगामिनांतया जानारुक्छान्दमुद्दिष्टमज्ञानादेद्वंस्मृतम् इतितदभ्यासविषयं=अर्थात्-कापालिक जातिका अन्न खानेवाले और उनकी स्त्रियोंमें संगम करनेवालोंको ज्ञानपूर्वक ऐसा करनेमें एकवर्ष भर कृच्छ्र व्रत करना कहा और विना जाने ऐसा करने पर चांद्रायणा करना कहा० सो यह अभ्यासका विषय समझना कि जिसने बार बार ऐसा किया हो तिसके लिये यह बड़ा प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ चांडाली गर्भ प्रायश्चित्त जहाँ कहीं ऊर्ध्वोक्त चंडाली आदि स्त्रियों में संगम करनेसे गर्भ जमिजाय तहाँ वारह बर्यका प्रायश्चित्त है=यदाहोशनाः (चाण्डाल्यांगमसारीप्य गुरुतरुपव्रतंचरेत्) अर्थात्-चाण्डाली आदि में गर्भधारणा करिके गुरुतरु रूपो महापातकवाला वारह बर्यका व्रतकरे तब शुद्धहोय=और जो=आपस्तंब का यह वचन है कि=अन्यजायां प्रसूतस्थनिष्कृतिर्निविधीयते निर्वासनंशतंकास्यतस्यकार्यमसंशयम् (तदेतत्कामकार विषयं)=अर्थात्-अन्यजा नामक महाचाण्डाली (दृष्टांत भंगिनि आदि) में जोकोई चार बर्योंका पुरुष अपने वीज से गर्भरूप होकर जन्म धरे तिसकी निष्कृति नहीं कराई जातीहै अर्थात् उसका प्रायश्चित्त कोई नहींहै कि जिसके करनेसे फिर भी अपनी जातिमें मिलिसके तिससे निःसन्देह उसका यही कार्यहै कि साथेपर कृष्म की निशानी पक्की रीति से मजबूत दागदेकर निर्वासन रूपी दराड दियाजाय अर्थात् उसकी देश निकाला देकर किसी ऐसे द्वीप (रापू) के वनमें बास करायाजाय जो प्रत्येक राज्योंके अधिकार में कोई एक दुर्गम भूभाग कालापानी आदि नामों से विख्यात होता और इसी निमित्त रहा आता है कि बहुत बड़े अपराधी लोग वहाँ छोड़दिये जायँ (सो यह आपस्तंबका वचन केवल उस दशा पर आवश्यक है कि जिसने काम की इच्छा से चांडाली को जानते हुये ऐसा किया हो अन्यथा जिसने

चांडालो को जाने बिना किसी और बोखा आदि से गर्भ धारण किया हो तिसके लिये ऊर्ध्वोक्त उग्रना के वचन से वारह वर्षका प्रायश्चित्त है कि जिसको साधन करिके फिर जाति में मिलि सकाहे ॥ ० ॥ अन्यजों के चौदह भेद यहिले लिखि चके हैं उनमें सात जातें अभी ऊपर अन्यजागमन प्रायश्चित्त की पाठ में वृहत्संवत् के वचनसे लिखी गईं (रजकश्चर्मकारश्चनटोयस्तुडगवच कीवर्तमेदभिह्लाश्चसप्तैते, श्रंत्यजाःस्मृताः इति यमस्तु) यही वचन यमका है कि जैसे वृहत्संवत् का लिखि चके तहां अर्थों सहित इसको देखो=और इनसेभी अधिक नीच सात जातें श्रंत्यजों की और हैं (चंडालःश्चपचःक्षत्तासूतोर्वेदेहकस्तथा मागदाःऽऽयोगाशौचैवसप्तैतेऽन्या वसायिनः इत्यागिराः) यह मध्यम अगिरा का वचन दोस्रो साति की अतिकोक्तिमें आचुका तहां अर्थों सहित इसको देखो उन्हीं नात में चंडाल श्चपच आदि में भंगी भी एक प्रकार का अन्यावसायी जाति होता है. उन्हीं चंडाल आदि अन्यजोंकी स्त्रियों में गर्भ पैदा करने का यह चर्चा ऊपर लिखा गया कि जानते हुये तो कुछ प्रायश्चित्त नहीं केवल बनेवास छपी दगडहे परन्तु अज्ञानता से उनके गर्भ धरने मध्ये वारह वर्षका प्रायश्चित्तहे यह दगड नहीं=यद्यपि अन्यावसायी सात भौतिके चंडाल और श्चपच आदि कहे गये तथापि अन्यावसायी एक जुनी जाति भी इवामकर इसी नामसे होता है जो मुर्दों के ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र आदि लेने की आशासे श्मशानकी धरपर सदा विचरता फिरताहे यहभी एक भंगियोंमें से भेदविशेष होता है-यथाह मनुः (नियादस्त्रितुचंडालात्प्रवसत्यावसायिनं श्मशानगोचरंभूतेवाद्यानामपिगर्हितं) अर्थात्=नियाद जातिकी स्त्री चण्डाल के बीज से अन्यावसायी नामक पुत्र को उत्पन्न करती है जो अपना उदर भरने को चिताकी श्मशान धरते पर विचरता है ॥ ० ॥ यहां पर प्रसंग से यह बात दगति है कि यद्यपि चारों वर्गों में शूद्रभी अन्त्यज कहाजाहे तथापि यहां शूद्रवर्गका प्रसंग नहीं केवल अचमजातों का प्रसंग है और अन्यज वा अन्य जातिकी अर्थभी सिद्धान्त में मकड़ी होताहै कि जैसे अभी ऊपर सात भौति या चौदह भौतिके अन्यज वर्गान होचुके तहां देखो-उसी अन्या जाति का घरमें घुमि आना भी प्रतिबिद्द है कि उस घर वाले ब्राह्मण सत्री वैश्य और शूद्र कोभी प्रायश्चित्त करना कहा है=तथाच प्रायश्चित्ततरव=श्रंत्यजातिरविजातीनिवसेद्यस्येषेप्रमनिसवैजात्यातुकालेनकृत्यात्तथाविगोधनम चांद्राय सांपराकीवादिजातीनांविगोधनम प्राजापत्यंचगूद्राणांतयासंनगद्वयणो येस्त्वभुक्तं पकाचक्रच्छन्तेयांविनिर्दिशेत् तेयामपिचयैर्भुक्तंतयामर्वाववायते तयामपिचयेभुक्तं

कृच्छ्रपादोविधीयते इति—अर्थात्—अन्याजाति चौदह भाँति में किसी प्रकार का मनुष्य जो विना जाना हुआ किसी अच्छी जाति के धोखे से जिसके घरमें दिके निवास करे सो घर वाला जब कुछ दिनों के बाद उसको अन्यजाति जानिपावे तभी जानिकर उस जगह को अच्छी तरह शोधै कि जैसा आचार मर्यादा परिपाठी के द्रव्य शुद्धि नामक प्रकरणा में भूशुद्धि का प्रकार वर्णन हुआ था उसी रीति से इस घर को शोधै) और काल के अनुसार शोधै अर्थात् जो चंडाल आदि थोड़ीदेर घुसिके उसी समय लौटि गया हो तबतौ केवल उस प्रकार की लीपा पोती आदि शुद्धिकरै कि जैसा इसी प्रायश्चित्तकांड के तीसरे ३० मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में चण्डाल आदि अनेकोके छुड़जाने पर स्नान आदि क्रिया करिके शुद्ध हो जाना वर्णन होचुका है—परन्तु जो उस घरकी धरती में चण्डाल आदि के घुसने से किसी प्रकार की मलीनता आदि चिन्न भी होगया हो, या चण्डाल आदि बहुत दिन तक टिका हो तो फिर ३१ इकतीस मूल श्लोक वाली अधिकोक्ति के विचार से और आचार कांड में लिखी हुई पाँचप्रकार की भूशुद्धि के अनुसार कुछ सूतक-रूपी कालभी मानना और उन्हीं पाँचप्रकारोंमें जो कोईसा प्रकार शोधनके योग्य समुभ्ता जाय तिसका दर्तावाभी करना चाहिये—इतना शोधन करनेके उपरांत प्रायश्चित्त भी यह करना कहाहै कि ब्राह्मण का घरहो तो उसको चांद्रायण करना चाहिये जो सत्री अथवा वैश्यका घरहो तो सत्री को दो पराक और वैश्य को एक पराक व्रत करना चाहिये जो शूद्र का घरहो तो शूद्र को प्राजापत्य करना चाहिये और उसको भी प्राजापत्य करना चाहिये जो उस घरकी शुद्धिहुये विना किसीवर्ण का मनुष्य जाकर बंटा हो या घर वाले के साथ प्रायश्चित्त करने से पहिले कुछ ससर्ग मेल सिताय किया हो और जिन मनुष्यों ने उस इयित घरमें बैठ के पकान भोजन कियाहो उनको कृच्छ्रव्रत करना चाहिये और उन पकान खाने वालोंका भोजन और मनुष्योंने कियाहो तिनको आधा कृच्छ्र करना चाहिये और इन आधे वालों का अन्न जिन मनुष्योंने खाया हो तिनको चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये ॥ इसपर ध्यान देना चाहिये कि जब ऐसी छोटी दशापर इतना प्रायश्चित्तहै तोफिर जिन मनुष्यों ने मासाव चण्डालोंमें सगम करिके गर्भ धारण किया तिनको बारह वर्ष का प्रायश्चित्त जो कर्हचुके सो कुछ बड़ा नही है ॥ ऊपर जो वर्णन होचुका उसमें चण्डाल नामसे प्रायः कसाई आदि समभन्ने और श्वपच नामसे प्रायः भंगी और मलीन कंजर आदि समभन्ने जो कृते कोभी मारि पकाय खाजाते हैं और अन्या-

वसायी नाम का अर्थ अभी अनन्तर लिखिचुके है कि वह श्मशानमें रहिकर मुर्दों का उतारन लिया करता है इत्यादि सब चौदह भेदों के लिंगार्थ लोक बर्तावा में प्रसिद्ध है सो समझि लेने ॥ अब आगे के परिच्छेद में स्त्रियों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥ २६५ ॥ इसीमूलश्लोकवाले टीकासेयहपाठ अबतकचलाआताहै ॥२६५ ॥

अथस्त्रीणां परपुरुष व्यभिचारोपपातकप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचांशमः ५०

इस परिच्छेद में स्त्रियोंके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जो स्त्रियाँ पराये पुरुषों के साथ व्यभिचार से उपपातक उत्पन्न करें सो किस रीति से शुद्ध होयें ॥

(व्यभिचरितस्त्रीषु प्रायश्चित्तं)

स्त्रीणामपि सवर्णानुलोमव्यवायेपुरुषस्योक्तं विवार्थिकादि

तदेवभवतीतिमितासरा ॥

अर्थात् पहिले परिच्छेदमें जो प्रायश्चित्त परस्त्री संगमकेमध्येपुरुषोंकेलिये कही चुकेहैं वहीतीनिवर्ष आदि के प्रायश्चित्त स्त्रियोंकोभी योग्यहै परन्तु उन्हीं मरतोंमें कि जैसा अपने वर्ण का संगम या अनुलोम संगम कहिचुके है कि ऊँचे वर्ण का पुरुष और नीचे वर्ण की स्त्री हो (यत्पुंसपरदारयुतचैनांचारयेद्वर्तमितिमनुः) यह मनुका वचन प्रमाणा है कि जो कुछ प्रायश्चित्त पुरुष को पराई दाराओं में संगम करने का कहाहै वहीव्रत स्त्रीसे उसी संगम के दाय पर करावै यह मितासराकार ने व्यवस्था कही ॥०॥ परन्तु जहां प्रतिलोम सार्ग से संयुक्त हुआहोय कि ऊँचे वर्ण की स्त्री और नीचे वर्ण का पुरुष होय तहां प्रायश्चित्त में भेद है सो वगिय के वचन से देखीं—यदाह वशिष्ठः—शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्दैर्वावैर्ष्यित्वाशूद्रमग्नौप्रास्येत ब्राह्मणयाःशिरसिवपनंकारयित्वासर्पियाःशूद्रश्चयनग्नौगौरखरमारोप्य महापथ मनुसंत्राजयेत्पताभवतीति• वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेत्क्षेत्रोदित दैर्वावैर्ष्यित्वा वैश्यमग्नौप्रास्येत ब्राह्मणयाःशिरसिवपनं कारयित्वा सर्पियाःशूद्रश्चयनगौरखरमारोप्य महापथ मनुसंत्राजयेत्पताभवति• राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपर्वैर्ष्यित्वा राजन्यमग्नौप्रास्येत ब्राह्मणयाःशिरसिवपनंकारयित्वासर्पियाःशूद्रश्चयनग्नौगौरखर

मारोध्यमहापथ मनुसंज्ञाजयेत्पूताभवतीति विज्ञायत इति—एवं वैश्यो राजन्यां शूद्र
 प्रचराजन्या वैश्ययोरिति (पूताभवतीति वचनाद्राजवीथि परिव्राजन मेवदंडरूपंप्रा
 यश्चित्तांतर निरपेक्षंशुद्धिसाधनमितिदर्शयति इति मिताक्षरा=अर्थात्—वैश्या जी
 कहिते हैं कि जहां शूद्र पुरूय ब्राह्मणी गमन करे तो उसे फूस पतैल पतावरि से ल-
 पेटि बाँधिके शूद्र को प्रदीप्त बहुतसी अग्नि में छोड़ि देय और ब्राह्मणी का शिर
 मुड़ाइके सब देहमें घीलगाइके कपड़ों बिना नंगी करिके गोरखर नाम जो पंजावी
 गदहा प्रसिद्ध है तिसपर चढ़ाइ के महापथ राज मार्ग रूपी सड़कों पर घुमावै तो
 पवित्र होती है। एवं वैश्य जो ब्राह्मणी गमन करे तिसको लाज कुण काश डाम से
 लपेटि बाँधिके उस वैश्य को अग्नि में छोड़िके ब्राह्मणीका शिर मुड़ाय धीतगाय
 नंगी करिके गोरखर पर चढ़ाइ राजमार्गों में घुमावै सो पवित्र होती है। एवं स्त्री
 जो ब्राह्मणी गमन करे तिसको शर पर्वों के सरपत्ते से लपेटि बाँधिजलती अग्नि में
 गिराइके ब्राह्मणी का मूड मुड़ाइ सब देह में घी लगाय नंगी गोरखर पर चढ़ाइके
 सड़कों पर घुमावै सो पवित्र होती है यह जाना गया—इसी प्रकार वैश्य जो स्त्रा-
 णी में संगम करे या शूद्र सन्नारी और बनेनी में संगम करे तिनकी भी यहीव्यव-
 स्था समझि लेनी (पवित्र होती है इस कथन से वैश्या ने यह दर्शाया है कि राज
 मार्ग में घुमाना ही दंडरूप प्रायश्चित्त है किसी दूसरे प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं
 रही यह मिताक्षरा कार का विचार है) परन्तु महापथ संज्ञा केवल राज मार्गही
 की नहीं किन्तु हिमालय के उत्तर जाके स्वर्गारोहण नाम से जो मार्ग बरीनाथजी
 से आगे प्रसिद्ध है तिसको मुख्यता के साथ महापथ कहिते हैं (बल्कि राज मार्गों
 का नाम एक उपलक्षणा से महापथ कहा गया है यह भेद जानों) तिससे गोरखर
 पर चढ़ाइ के उस पाला रूपी देश में जहां तक गोरखर के जासऊने का मार्गमिले
 तहांतक घुमाइ लावै तो उस पवित्र भूमिपर धमरा करने से शुद्ध होसक्ती है यह व-
 श्या जी का तात्पर्य पायाजाता है। अन्यथा सड़कों पर घुमाने बाला अर्थ जो
 मिताक्षरा के अनुसार लिखागथा सो यह लोक में गदहा पर चरिके हँडाना प्रसिद्ध
 है इससे केवल पारलौकिक शुद्धि यद्यपि होसक्ती हो तो भी इस प्रकार से हँडाइ
 हुंइ नारी को लोक में कोई उत्तम नर घर में लेलेना स्वीकार नहीं करसक्ता है तो
 फिर किस अर्थ की यह शुद्धि ठहरी। अगर इसका उत्तर ऐसे दिया जाय कि स्व-
 र्गारोहण वाली शुद्धि भी प्रयोजन की साधक नहीं दिखाइ देती है क्योंकि उस भूमि
 पर जाके कोई जीता नहीं लौटता बल्कि वेही लोग जाते हैं जो ईश्वर निमित्त अपना

देह छोड़ना चाहते हैं दृष्टान्त मवजूद है कि पांडवों ने जाकर उसी हिमालय पर अपने देह छोड़े हैं• तौ इस उत्तर से भी इसी में जीति देख परती है कि जिनको उस नारी का लौटिके घर में लेना स्वीकार होगा वे तहांतक लेजायेंगे किजहांतकपाला से देह नहीं गिरताहै• अन्यथा जो लोग नारीका अपराध बहुत जानिके घरमें लेना नहीं चाहेंगे और यहभी नहीं चाहेंगे कि हंडाइ के त्यागी हुई फिरभी सर्वत्र कुकर्म ही करती फिर वे अवश्यही पूरे महापय में छोड़ि आवेंगे कि जैसे पांडव लोग स्वर्ग को गये तैसे यह नारीभी पापों से छुटिके स्वर्ग जायगी• इसी अर्थ से दोनों मुट्टी में मोदक देख परते हैं कदाचिद् ऐसा अर्थ न होता तौ फिर गोरखर पर चढ़ाने की जगह केवल खर गदहा कहा जाता किन्तु गोरखर इसी हेतुसे बताया है कि बहुत चलिमक्ता और तदेदेशों में जासक्ता है—और वशिष्ठने यह इतना कठिन प्रायश्चित्त जो कहा सो केवल कामना से चाहिकर व्यभिचार करने पर कहा है—क्योकि इससे पहिले परिच्छेद में (प्रातिलोम्येवधःपुंसो नार्याःकर्णादिकर्तनं) यह वचन आचुका है कि प्रतिलोम व्यभिचार में पुरुष का वध किया जाय और नारी के कान आदि कादेजाय और तात्पर्य इसका सर्वत्र यही समझे रहना कि प्रतिलोम मेशुन जो कामना चाहिकर किया जाय तिसका प्रायश्चित्त कोई ऐसा नहींहै जिसे शूद्र होकर स्त्री फिर घरमें आसके• सिर्फ उस दशा में शूद्र होसक्ती है कि देव गति से राज विग्रह आदि में फंसिकर बिगही हो तिसके प्रायश्चित्त आगे समीक्ये यीश्वर वरान करेंगे जैसे इसी जगह सर्वत्र का वचन देखीं ॥ ० ॥ अथनिष्कामप्रतिलोम व्यभिचारस्य शुद्धिः—यदाह संवर्तः=ब्राह्मण्यकामागच्छेच्चैस्त्रियवैश्य मेववा गोमूत्रयावकैर्मासात्तथासार्द्धाद्विशुद्धति (कामतस्तुद्विगुराकर्तव्यं कामात्तद्विगुरांभवेदितिवचनादिति मिताक्षराकारास्तदयुक्तं=अर्थात्—ब्राह्मणो जो इच्छा के बिना देव योग से स्त्री या वैश्य में जाकर फंसै सो स्त्री के मध्ये एक महीना भर गोमूत्र के रंघे जो भोजन करने से और वैश्य की अपेसा डेढ महीना जो का बलिया गोमूत्र में रंघा खाकर व्रत राखने से शूद्र होती है (मिताक्षराकार ने इस पर यह भी कहा है कि जो इच्छा से जाकर फंसी हो तौ इससे दूना व्रत करे क्योकि इच्छा सहित पापके मध्ये दूना करने का नियम शास्त्र में प्रसिद्ध है) सो यह दूने का नियम ठीक नहीं है इसका निराय आगे सकाम मेशुन के चर्चा में देखना ॥ ० ॥ यद्विशुद्धि सत के अर्थ विशेष में ब्राह्मणो आदि सभी स्त्रियों के जुदे प्रायश्चित्त कहेहैं=यथा=ब्राह्मणोस्त्रियवैश्य सेवायामतिक्रच्छन्क्रच्छातिक्रच्छीचरेत्•

सत्रिययोयिताब्राह्मरा राजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्राद्धं प्राजापत्यमतिकृच्छ्रं • वैश्ययो
 यिताब्राह्मरा राजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्रपाककृच्छ्राद्धं प्राजापत्यं • शूद्रायाः शूद्रसेवने प्रा
 जापत्यं ब्राह्मराराजन्यवैश्यसेवायां त्वहीरावं चिरात् कृच्छ्राद्धं मति=अर्थात्—ब्राह्म
 राी यदि एक रात्रि भर सत्री या वैश्य की सेवामें जाफँसे सो सत्री के व्यभिचारम-
 ध्ये अतिकृच्छ्र व्रतकरै और वैश्यके व्यभिचार वावत कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दोनों भाँति
 के व्रत करै तब शुद्ध होय • एवं सत्री की योगिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मरा या
 सत्री या वैश्य की सेवा में जाफँसे सो ब्राह्मरा के व्यभिचार मध्ये आधा कृच्छ्रकरै
 सत्री के व्यभिचार मध्ये प्राजापत्य पूरा करै वैश्य के व्यभिचार मध्ये अतिकृच्छ्र
 करै • एवं वैश्य की योगिता यदि एक रात्रि भर ब्राह्मरा या सत्री या वैश्य की
 सेवा में जाफँसे सो ब्राह्मरा के व्यभिचार वावत कृच्छ्र की चौथाई प्रायश्चित्त करै
 सत्री के व्यभिचार वावत कृच्छ्र का आधा व्रत करै वैश्य के व्यभिचार वावत प्रा-
 जापत्य पूरा करै • एवं शूद्र की योगिता यदि एक रात्रि भर और शूद्र की सेवा में
 जाफँसे सो प्राजापत्यकरै और ब्राह्मरा के व्यभिचार में जाफँसे सो एक दिन राति
 भर व्रत करै और सत्री की सेवा में जाफँसे सो तीन दिनका व्रत करै और वैश्यकी
 सेवा में जाफँसीहो सो आधा कृच्छ्र करै जो छः दिन में होसकैगा—इन प्रायश्चित्तों
 के छोटापन से प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि देव योगसे करा मात्र फँसिजाने वावत ये
 प्रायश्चित्त हैं तिससे एक राति भर लिखि चुके सो ठीक नहीं ॥ ० ॥ शूद्रसंगमे
 पिकाचित्तशुद्धिस्तुता=तदाह वृहत्प्रचेताः=विप्राशूद्रेणसंपृक्तानचेत्तस्मात्प्रसूयते प्रा
 यश्चित्तंस्मृततस्याःकृच्छ्रं चांद्रायणावयस (एतदनिच्छंत्यां स्वपतिभांत्यावावेदितव्य
 मित्यवाभिप्रायः) चांद्रायरोद्वेकृच्छ्रश्चविप्रायावैश्यसेवने कृच्छ्रचांद्रायरोस्यातांत-
 स्याःसत्रियसंगमे—सत्रियाशूद्रसंपर्ककृच्छ्रन्चांद्रायणावयस चांद्रायणासकृच्छ्रन्तुचरैहै
 प्रवेनसंगता—शूद्रंगत्वाचरेहैश्याकृच्छ्रन्चांद्रायणीतरस—आनुलोम्ये प्रकुर्वीतिकृच्छ्रन्पा
 दांतरोपितम्—अर्थात्—वृहत्प्रचेताने विरले क्रिया विहीन देशोंके आचार हीन ती-
 नों वर्या का हित सोचिके उनकी स्त्रियों की प्राड्वि शूद्र के व्यभिचार में भी होती
 कही है कि—ब्राह्मराी जो शूद्र के साथ इच्छा बिना या अपने पतिके धोखे से फँसि
 जाय और उससे गर्भ यदि न रहिने पाया'हो तो इस दशा में उस ब्राह्मराी के लिये
 प्रायश्चित्त कहा है कि कृच्छ्रात्मक तीन चांद्रायणा करै • इसी प्रकार जो वैश्यकी
 सेवा में जाफँसी हो तिसको दो चांद्रायणा और उनके वादि एक कृच्छ्र भी करना
 चाहिये • इसी प्रकार जो सत्रीके संगमें जाफँसीहो तिसको कृच्छ्रात्मक दो चांद्रायणा

करने चाहिये—ऐसेही जो सखी की भार्या किसी शूद्र के संपर्क में जाफँसी हो तिसको दो इच्छात्मक चांद्रायणा करने चाहिये और जो सखाणी किसी वैश्य के साथ फँसी हो तो एक चांद्रायणा और एक इच्छु नाम का जुदा प्रायश्चित्त करै—ऐसेही वैश्यकीभार्या जो किसीशूद्रसे फँसिगईहो तो एक चांद्रायणा के पीछे एक इच्छु व्रत भी साथै तब शूद्र होय—और जहां अनुलोम रीति का मैथुन होय कि पुस्त्य ऊँचे वर्गा का और स्त्री नीचे वर्गा की तहां इच्छु व्रत वर्णाक्रम से एक एक पाद घटा कर करै ॥ ० ॥ गर्भस्थितौचक्राचिच्छुदिःप्रोक्ता—ध्यान करौ कि विरले देश विशेष के वर्तावा और तबल्य सनुष्यों की प्रकृति चट्या के अनुसार उनके निर्वर्वाह सोचि के चतुर्विंशति सत नाम के ग्रन्थ विशेष में गर्भ रहिजाने पर भी प्रायश्चित्त से शूद्रि होनी कही है—यथा=विप्रगर्भपरक स्यात्सविश्वस्यतथैन्दवम् सेन्दवश्चपराकश्चवैश्यस्याकासकारतः शूद्रगर्भभवेत्यागश्चाराडालोजायते यतः गर्भसर्वैर्धत्तुद्येयेश्वरेचांद्रायणावयम् (अकामकारतइतिविशेषणोपादानात् कामकारेपुनःपराकादिकद्विगुराकुर्यादिति मित्ताक्षरातदयुक्तं=अर्थात्—ब्राह्मणा से गर्भ रहा हो तो पराक व्रत करै जो बारह दिन में होता है जो सखी से गर्भ रहा हो तो चांद्रायणा करै जो वैश्य का गर्भ रहा हो तो चांद्रायणा और पराक दोनों करने चाहिये यह सब कामना के बिना देवयोग से सगम होकर गर्भ रहिजाने के प्रायश्चित्त हैं और शूद्र से गर्भ रहिजाने से स्त्री का त्यागही किया जाय प्रायश्चित्त की जखरत नहीं है क्योंकि शूद्र के गर्भ से चाराडाल पैदा होता है तिससे अन्यथा जो गर्भ रहिकर कुछ दिन पीछे गिरजाय तौभी शरीर के भीतर उस गर्भ का रस फैलने से शरीर की मात्तों धातु में दीय पहुँचिजाने के हेतु से उस दीय की शूद्रि तभी होती है जो लगातार तीन नहीना के चांद्रायणा करै (मित्ताक्षराकारकहिते हैं कि इच्छाबिना के भोग मध्ये ये प्रायश्चित्त कहे गये तिससे जहां स्त्रीने कामना से सगम करिके गर्भ धराहो तहां ये प्रायश्चित्त दुगुने कराने चाहिये सो यह दुगुने का नियम ठीक नहीं है इसका व्यौरा पहिले भी लिखि चुके और फिर भी कहीं आगे लिखा जायगा ॥ ० ॥ जहां यह शूद्रका गर्भ गिरने नहीं पायाकिंतु दशवे महीना तक पेट में रहिकर जन्म पावै तहां फिर नियत प्रायश्चित्तकी जखरत नहीं रहिती क्योंकि स्त्री का त्यागही किया जाता है—तशह वशिष्ठः—ब्राह्मणासवि यविशांभार्याःशूद्रेणासंगताः अप्रजाताविशुद्धंतिप्रायश्चित्तनेनेतराः=अर्थात्—देवयो ग से ब्राह्मणा सखी वैश्य इनकी भार्याये यदि शूद्र से विगईं तो जिनके गर्भ का प्र-

सूत न होने पावें वेही प्रायश्चित्तसे शुद्ध होजाती हैं जिनको प्रसूत होवे वे नहीं शुद्ध होसक्ती हैं ॥ ० ॥ सगर्भायाः शूद्रादि संगमे नियमाः—यदि कोई द्विजाती की भार्या अपने पतिके वीज से गर्भवती होते हुयेभी शूद्रआदि से व्यभिचार में फँस गई हो तिसके लिये स्मृत्यन्तर में विशेष नियम कहे हैं=यथा= अन्तर्वत्नीतुयानारी समेता क्रम्यकामिना प्रायश्चित्तं कुर्यात्सायावद्गर्भाननिःसृतः जातेगर्भं तत्रतपश्चत्वार कुर्यान्मासंतुयावकश्च नगर्भदोयस्तस्यास्ति संस्कार्यः सययाविधि=अर्थात्—यदि कोई गर्भवती नारी किसी कासी पुत्र्य ने प्रव्रतता से पकड़ि के भोगी सो स्त्री तब तक प्रायश्चित्त न करै कि जबतक उसका गर्भ जन्म लेकर बाहर न निकसै (क्योंकि गर्भ की दशा में प्रायश्चित्त कराने से गर्भ गिर जाने की शंकाहै तिससे) जब गर्भ उसका जन्म लेचुके तिस पीछे एक महीना भर व्रत करै तिसमें गोमूत्रको रवे जोका साड़ पीके रवे पर उस पैदा हुये गर्भ में कुछ दूध नहीं है क्योंकि शास्त्रोक्त विधि से उसका संस्कार करना चाहिये ॥ ० ॥ इन में जो कोई स्त्री अपने उद्धतपन से प्रायश्चित्त न करै तब (नार्याः कर्णादिकर्तनं) यह वचन पढ़िले लिखिचुके हैं तिमका बर्तावा किया जाय कि ऐसी नारी के नाक कान आदि उत्तम अंग काटिके कुच्छप करै इस बंड के साथ उसका त्याग किया जाय यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ अन्त्यज चांडालादिव्यभिचारेपि क्वचित्प्रायश्चित्तं नशुद्धिः—और भी विरले देश विशेषों की अपेक्षा से तवत्य मनुष्यों के व्यवहार अनुसार उनके निर्वाहिके निमित्तसे विरली स्मृतियों में अन्त्यज से व्यभिचार होजाने में भी द्विजातीकी स्त्रियां प्रायश्चित्त करिके शुद्ध होजातीकही हैं=यथास्मृत्यन्तर वचनं=रजःक्रव्यादशैलूयवेणुचर्मोपजीविनः ब्राह्मण्येताम्रदागच्छेदकानादेदवत्रयमिति=अर्थात्—रजक. व्याध. शैलूय. वेणु से. चमडासे उपजीवन करनेवाले इनके साथ जो ब्राह्मणी इच्छाके विना एकवार संगम करै सो तीन चांद्रायणा करिके शुद्ध होती है—इन्हीं अन्त्यजों की वावत इससे बडा भी प्रायश्चित्त आगे सालभर का कहा जायगा—यद्वांपर (यहतर्क न करना कि इसमें केवल ब्राह्मणाकही रूपर द्विजातीको स्त्रियां ऐसा क्यों लिखिचुके किन्तु जब सबसे उत्तम ब्राह्मणी शुद्ध होसकी तब सवारागी वनेनी कहांरहों बल्कि ब्राह्मणीको तीन चांद्रायणा कहेगये तो सवारागी को दोही और वनेनी को एकही चांद्रायणा से और शूद्राको पन्द्रह दिन के व्रत करने से शुद्धि प्राप्त होसकेगी तिससे तर्कना की अवकाश इसमें नहीं है)=इसी प्रकार=इसमें भी अधिक सलीन चण्डाल आदि अन्त्यजोंके व्यभिचारमें भी प्रायश्चित्तसे शुद्धिहोनी विरली स्मृतियोंकेकही

है=यथा=चांडालंपुलकसंस्लेच्छंश्रवपाकंप्रतितंतथा ब्राह्मरायकामतोरात्वाचांद्रायरा
 चतुययम=अर्थात्-चाराडाल•पुलकत•स्लेच्छ• श्रपाक• प्रतित जो चारि प्रकार के
 महापातकी वरान हीचुके• इन के फंदा मे ब्राह्मणी बिना इच्छाके फंश कर चार
 चांद्रायरा करै (इनका भी बही अनुक्रम है कि सवारी तीनिही चान्द्रायरा करै
 वैश्यकी भार्या दोही करै शूद्र की भार्या सकही करै) परन्तु जैसा मितासराकारोंने
 इन वचनों पर यह कहा है (अक्रामतइतिवचनात् कामतोहिश्रांकाक्ष्यं) कि इन
 वचनों में अक्राम संगम के मध्ये जो प्रायश्चित्त कहागया सो कामनाके व्यभिचा-
 र मे दूना करवाना चाहिये-इस व्यवस्था पर आधुनिक लेखक संमत नहीं देसक्ते
 हैं क्योंकि मूल स्मृतिकारों ने केवल अनिच्छा के व्यभिचार पर प्रायश्चित्त से
 शुद्धि होनी कही है इच्छा के व्यभिचार में प्रायश्चित्तसे भी ऐसे महासंद पातकी
 शुद्धि होनी संभव नहीं है जो ऐसा होसक्ता तो मूलमें भी कुछ प्रायश्चित्त भेदकी स
 मस्या करीजाती तिससे ऐसी स्त्रियों का परित्याग ही सूचित किया है बल्कि इसी
 प्रकार का अगिला वचन देखो उसमें भी देवयोगसे यह नीच संगम होजानेका प्रा-
 यश्चित्तहै=तथाच=चांडालेननुसंपर्कयदिगच्छेत्कथंचनशिशुवपनं कुर्याद्भुंजीयाद्या
 वकीदनस विरात्रमुपवासःस्यादेकरात्रंजलेवसेत् आत्मनासंसितेकूपरोमयोदककदंमे
 तर्थास्थत्वानिराहारा सावित्रांत्रतःक्षिपेत् शंखपुष्पीलतामूलं पद्मवाकसुनफलम सीरे
 सुवर्गासमिद्यंकाथयित्वाततःपिबेत् सकभुक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवतीभवेत् वहिस्ताव
 च्छनिवसेयावच्चरति तद्गतम् । प्रायश्चित्ततत्तत्प्रचीरोक्त्याह्यराभोजनमगोद्वयदक्षिणां
 दद्याच्छुद्धे त्वायभुवोऽत्रवीत्=अर्थात्-यदि कथंचन कभी देवयोगसेवलात्कार किसी
 चांडालके साथ संपर्कमे कीरै नारीजाफंसीहो तो वहचोरोतक वालोंको मुझावै और
 गोमूत्रके पके जौ का भातखायके तीन रात्रि उपवासकरै फिर ऐसेकिसीकूपकेजलमे
 रूकरातिभर वसे जो उसकेगले से बँटेहुये जलहोय अथवा किसी तजावयादितीर्थके
 जल में वसे और अपनी वरावर गरिहरे खूबे गड़हिले में जो कूपहीके आकार खोदा
 जाकर उसमें गायका गोबर और जल छौडिके रवदड़ कीचड़ बनादे जाय उस को-
 चड़ में बँटिके तीन रात्रि निराहार वितावै तिसके बादि शंखपुष्पी (ब्राह्मी घास व-
 ह्मनेदी जिमके फूल शखही के आकार होते हैं तिस) के फल फूल मूल आदि प-
 चांग लेकर दूध मे पकावै और पकते समय कुछ सोना उसमें छौडि देय फिर पीछे
 सोना अशरफी आदि जोकुछ होय सो निकामिके उस दूधको खूब गरम गरम तीन
 दिन तक पीवै फिर इसके बादि रात्रि में सक बार भोजन करनेका व्रतराखै सो तब

तक कि जबतक मासिक रजोधर्म से पुष्पवती फिरको होय और तबतक मुख्य घर से बाहर किसी गौहरे आदि उचित स्थान में निवासकरै कि जबतक यहप्रायश्चित्त पूरा होय• फिर इसके पूरे होजानेपर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करायको दो गाय दान करै और दीक्षणा वांटिके तब शुद्ध होती है यह नियम स्वायंभू मनु आपही कहिरायेहैं । अत्रसकाममैथुननिर्णयः । यहां इनदोनों बातपर ध्यान देना चाहिये कि यद्यपि चांडाल के संगम से भी स्त्रियों का शुद्ध होजाना स्वायंभू मनु ने कहा परन्तु यह कैसी एक लाचारी दशा का संगम है कि जब किसी चांडाल ने देवयोगसे बलात्कार घोर लियाहो दूसरे इसलाचारी परभी केषाप्रबल प्रायश्चित्त दर्शाया है कि जिसको देखने सुनने से चित्त गवाही देता है कि हों ऐसा करने से बेशक स्त्री का शरीर शोधन होजायगा और यहीआशय ऊपरले मुनि वचनोंका सर्ववहै कि देव योगसे राजबिम्बंस या रादर लुटि फूटि आदि की दशा में यदि ऐसी विपत्ति किसी स्त्री पर आनि परै तौ इन प्रायश्चित्तोंसे शुद्धि मानी जासक्ती है• तौ इस घंटाघोष की होते हुये भी यह कैसे माना जासक्ता है कि जो स्त्री अपने काम भोगकी इच्छासे आपही जाकर चण्डालोंसेभी मैथुन करवावै सो छोटे प्रायश्चित्तों को डूना साधन करिके घरमें आवै (यहडूना करनेका नियम केवल अपने सवर्णों पुंस्यके मैथुनमें और अतुल्योमसार्गके मैथुनमें न्यायात्मक माना जासक्ताहै) यह डूने का नियम प्रतिलोम द्विजातीके मैथुनपरभी नहींशुभदायकहै फिरशुद्ध और शुद्धसे भी उतरिके चण्डालआदि अन्नमजातों से कामिनीको कामताका मैथुन• जिस चांडालको एक चमर की लंबाई के भीतर मार्ग चलते समय समीप निकसि जाने का नियम पहिले होचुका है सो तीसवीं अधिकोक्ति में देखो—इन इस व्यवस्था का पूरा निर्णय परिच्छेद के अन्त में अवकाश पाकर लिखैगे यहांपर अवकाश नहींहै—और इस परिच्छेद के प्रारम्भ से जो पंक्ति लिखी गई हैं तिनको लेकर वशिष्ठके कहे प्रायश्चित्त को भी देखो फिर इस डूने की व्यवस्था भी सोचना कितना अंतरहै॥

अंत्यजत्रयवायेप्रायश्चित्तांतरन्तु—अंत्यजों के व्यभिचार मध्ये तीनिही महीनाके तीन चांडायण रूपर लिखिचुकेहैं तिनके मध्ये ऋण्यग्रंगने चारहमासकाप्रायश्चित्त करना कहा है=यथाहृण्यग्रंगः=संपृक्तास्यादयान्त्यियासाकच्छाब्दंसमाचरेत् (अथ अव्ययोऽवसंशये) =अर्थात्—ऋण्यग्रं गजी कहिते हैं कि जहां इसप्रकारका संगय खडा होजाय कि नागहानी जब कोई द्विजातीकी भार्या या शुद्धकी भार्या अंत्यजाती रजक व्याघ्र आदि पुरुषोंसे फंसिजाय या उन पुरुषोंकी प्रबलतासे कुछदिन

मिलिके वासकरै (यत्संपृक्त शब्दःसंबद्धेर्मिथितेचतस्मात्संपृक्तास्यादित्यस्यायमेवार्थः) वह स्त्री एकसालभर कृच्छ्रव्रत अच्छे विधिकेसाथ आचरै तव शुद्धहोय-इसका निर्णाय सोचना चाहिये कि पहिले जो अंत्यजोके सैयुन में तीनिही महीना के व्रत कहिचुके सोती केवल एकवारके सैयुन मध्ये कहाथा और यहां जो बारह महीना कहे सो लाचारीसे परवश होकर कृच्छ्रदिन उनके फन्दमें निवास करना पराहो तिस हेतुसे यह बड़ा प्रायश्चित्त कहा-इसमें भी पूर्वोक्त रीतिसे यह डौलहे कि(ब्राह्मणी पूरे बारहमास करै क्षवाणी इसकी चौथाई छोडिके नौमासकरै और वनेनी वोपाद छोडिके एक छमाहीभर व्रत करै और शूद्रकी भायां हो सो तीनि महीने व्रत करै) यहां भी ऋष्यशृंगजीके कहे बारहमहीनोंको पहिले तीनि महीनोंकी अपेक्षा बहुत जानिके हमारे प्राचीन संग्रहकार ने यहकहिदिया हे (कामतःसकृदगमनेइदं) कि यह बड़ा प्रायश्चित्त एकहीवार कामनाके साथ संगम करनेमध्ये समभक्तना-सो इस कामना और इच्छाके व्यभिचारपर कदापि संमत नहीं देखकते हैं न किसी ऋष्यश्रने अपने किसी मूल वचन में यहभाव दर्शाया हे तिससे इच्छा बिना दैवयोग से कृच्छ्रदिन उनकेसाथ निवास करना छोटी बातहे और इच्छा साथ एकह बारका संगम बहुत बड़ी बातही नहीं बल्कि बहुत बड़ा अनर्थहे कि जिसका कोई प्रायश्चित्त त्यागिदनेके सिवाय सूचित नहींहे ॥०॥ सगर्भायाश्चांडालादिव्यवायेनियमाः-उन्ही ऋष्यशृंगजीने उस दशाके भी नियम कहेहैं कि जब कोई गर्भिणीनारी किसी अंत्यज चंडाल आदिने भोगीहो=यथाइऋष्यशृंगः=अंतर्वर्त्नीतयुवतिःसंपृक्ताचांत्ययोनिना प्रायश्चित्तनसाकुर्याद्यावद्गर्भाननिःसृतः नप्रचारंगृहेकुर्याच्चर्चागैयुप्रसावनसु नशयीतसमंभ्रानिवाभंजीतवांघवैः प्रायश्चित्तंगतेगर्भैर्विधिंक्षच्छाच्चिकंचरैव हिरण्यमथवाधेनुंदद्याद्विप्रायंदक्षिणासु=अर्थात्-ऋष्यशृंगने ऊपरले प्रायश्चित्तके साथही इस विधिको भी लिखाहे कि-यदि कोई गर्भवती युवती नारी अंत्यज के साथ फंसिजाय सो प्रायश्चित्तको तबतक न करै कि वहपतिकागर्भ बाहर न निकानिपावे क्योंकि ऐसी दशामें प्रायश्चित्त करनेसे गर्भका गिरजाना आदि उपद्रव खडाहोना संभव हे और तबतक प्रायश्चित्तके बिना घरके कामधंधे और घरमें चलना फिरना भी न करै और कंधी सुरसा आदि अंगोंकेसंस्कारभी न सावै और भर्त्तिके साथभी न सोवैतथा बंधुआदि कुटुम्बकेसाथ भोजनभी न करै फिर उसगर्भका जन्महोजाने बादि वही पूर्वोक्त एक सालभरका कृच्छ्रव्रत आचरै और पोछेसे ब्रह्मभोजकराइकी सुवर्णा या गौदान की दक्षिणा देवै ॥ ० ॥ अथप्रायश्चित्तकरणापरिणामः=यहां यह

त्यागस्वपी प्रायश्चित्त कहा तैसा सब तरहके चंडालों से मैथुन करानेवाली स्त्री को प्राणात्याग स्त्री प्रायश्चित्त सूचित है बल्कि यह बात इस परिच्छेद के प्रारम्भ में खुद मिताक्षरा कारही कहिचुके हैं कि जो जो प्रायश्चित्त पहिले पुरुषोंको कहे गये वेही तीनवर्थ आदिके प्रायश्चित्त उन पापोंकी करनेवाली स्त्रियों की भी सूचित है बल्कि (यत्पुंसःपरदारयुतघैनांचारयेद्वृतं) यह मनुका वचन भी मिताक्षरा-कारने प्रमारा दियाहै तिससे हम दूने प्रायश्चित्त में नहीं संमतिदेसकतेहैं—हौं—दूने का नियम प्रायश नरहत्या गोहत्या, और चोरीआदि पापकर्मोंपर जैसा जहाँ लिखिचुके सो सब ठीकहै पर इसमें नहीं और इसी द्विविध आशयके हेतुसे योगीश्वर याज्ञवल्क्य पहिले कहिचुके हैं कि(प्रायश्चित्तैरप्येनोयदज्ञानकृतंभवेत्कामतोव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते २०६) इस दोनों छन्दों के ठिकाने पर जाकर अर्थ देखो इसका यही तात्पर्य है कि प्रायश्चित्तोंसे वहपाप दूर होजाता है जो अज्ञानता से बनिगयाहो और जो कामनासे जानतेहुये पापकियाहो तिसमें प्रायश्चित्त करने से भी पापतो नहींमिटिसक्ताहै परन्तु संसार मे मनुष्यों के साथ व्यवहार आदि संबंध जोइनेके योग्य होजाताहै (इसीलिये दूनातिशुना आदि करायाजाताहै) पर इसमें इतना भेदहै कि (वचनादिहजायते) वचन के बलसे व्यवहार योग्य होताहै अर्थात् जिसकिसी पापकी वावत मुनीश्वरों ने वचन दियाहोगा कि इसमें दूना आदि करने से व्यवहार के योग्य होसके उसीपापमें उसखास वचनकेबलसे प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहारों के लायक होजायगा सर्वव सभीपापोंमें ऐसा नियम नहीं है—तो इस व्याख्याके अनुसार ठीकठीकहै कि इत्या आदिमें जहाँ जहाँ दूनेका वचन पाया तहाँतहाँ प्रायश्चित्त करिके संसारी व्यवहार करसक्ताहै अन्यथा स्त्री व्यभिचारिणी के मध्ये दूनेका वचन कोठि नहींमिला सो कैसे घरके व्यवहार योग्यहोसके—केवल एक शूद्रकी लिये दूना करनेका यहवचन मिला है कि (स्तोच्छेनाधिगताशूद्राद्यज्ञानात्तुकर्यंचन कच्छव्यप्रकुर्वीतज्ञानात्तुद्विगुणंभवेत्) अर्थात्—किसी शूद्रकी शूद्रिणी भार्या यदि कदाचित् नाराहानी अपनी अज्ञानतामें न्लेच्छ से फँसि जाय सो अच्छीतरह तीनिहच्छू साथै पर जो जानबूझि फँसीहोय सो दूने व्रतकरै तो संसारी घरके काम योग्यहोजाय—इसवचनमें (शूद्रादि) हि अत्यय विशेष्यअर्थ पर आच्छद होनेसे भी केवल शूद्राकी श्रमूनियत रक्खीगई है कि शूद्रा के सिवाय किसी ठिजाती की भार्या की यह दूनेका अधिकार नहीं समुक्तना और इसदूनेकी अधिकारी केवल ओछे शूद्रों की भादर्या समुक्तिलेनी कि जिनकी जाति में धरेजा

आदिभी होताहा—सो यहवार्त्ता केवल ओछी जाति का घरबसा रहिने को निर्वाह सोचिके कही अन्यथा जो शूद्र उज्ज्वल जातोंमें गिनती होनेसे धरेजा आदि नियि-
हाचार कुछ न करतेहों तिनकी स्त्रियोंकी यहभी नहीं मूचित है फिर उत्तम तीनि
वर्गों की का कथा २६५ ॥ इसी दोसोपैसति मूलप्रलोक वाली टीका से यह पाठ
चलाआता है २६५ ॥ इतिपारदार्यभेदेपरप्रुपसगमपरिच्छेदः ॥

इतिपारदार्यप्रायश्चित्तप्रकरणं ॥



यह प्रकरणा केवल उनचास ४६ पचास ५० इन दोहो

परिच्छेदो मे पूराहुआ (और यहभी यादरक्वो कि)

उनतालिष ३६ परिच्छेद को आदि लेकर ४३ तेतालिष परिच्छेदको अन्ततक
चारि परिच्छेदों मे गोवध का प्रकरणा पूराहुआया—तिसके बादि ४४ चवालिसके
आदि लेकर ४८ अठतालिष तक पांच परिच्छेदों में ऐसे फूटकर विषय वर्णानहुये
ये जिनका एक एक प्रकरण सकाही परिच्छेद मे बल्कि विरले परिच्छेद में दोदो
तीन तीन विषयतक छोटे होनेके हेतु से समाने तिससे उनके प्रकरणों का ऊहना
जुदा न होसका ॥

अथ परिवृत्ति-वार्धुष्य-लवणक्रियोपपातकत्रयाणां प्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः एकपंचाशत्तमः ५१ ॥



इस परिच्छेद मे छोटे छोटे तीन भांति के उपपातकों का जुदा जुदा प्राय-

श्चित्तकहा जायगा—अर्थात् एक तो परिवृत्ति दोष का फिर वार्धुष्य

दृत्तिके दोषका फिर तीसरा लवणा क्रिया रूपी दोष का—इन तीनों

के लक्षणा सब अपनी अपनी जगह पर देखना ॥

(पारदार्य•पारिवृत्यं•वार्धुष्य•लवणाक्रिया २३५)

ये चारोंनाम दोसोपैसि वाले मूल प्रलोकमें आचुकेहें तिनमेंसे पारदार्य नाम
का उपपातक ऊपरले दो परिच्छेदों में वर्णान होचुका=अत्र=उत्तसेअगिला पारिवि-

त्य नाम जो दोष है सो जिस पुरुष में होय तिसको परिवर्त्ति कहिते हैं उसके सब लक्षणा और प्रायश्चित्त भी ४८ अस्तालीश के परिच्छेद में परिवेदन कर्मके प्रसंग साथ वरान करचुके तहां देखौ—तथापि यहांक्रमसे उसका नाम आनिपरनेके हेतुसे मिताक्षराकार ने संक्षेपचर्चा लिखाहै सो देखो—परिवर्त्तिप्रायश्चित्तविषयः= तदाह विज्ञानेश्वरः=परिवर्त्तिप्रायश्चित्तानामपि परिवेदप्रायश्चित्तवद्भवस्या विज्ञेया इयांस्तुविशेषः परिवेत्तुर्थस्मिन्विषये कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ तत्रपरिवर्त्तेः प्राजापत्यं (परिवर्त्तिकृच्छ्रंद्वादशरात्रं चरित्वापुनर्निर्विशोत्तार्त्रैवोपयच्छेदिति वशिष्ठस्मरणात्)=अर्थात्—श्रीमद्विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहितेहैं कि—परिवर्त्ति पुरुष के प्रायश्चित्तों की जखरत अगर किसी को आनि परै तो उनकी भी व्यवस्था परिवेत्ता के प्रायश्चित्त समान जानिलेनी कि जैसी परिवेत्ता की व्यवस्था अस्ता-लिलखें ४८ परिच्छेद में कही गईयो पर इतना दोनों में अन्तर है कि जिस वियय पर परिवेत्ता की कृच्छ्र अतिकृच्छ्र दो प्रायश्चित्त करने लिखे हैं उसी वियय पर परिवर्त्ति की बारह दिनका प्राजापत्य करावै—क्योंकि वशिष्ठ जी ने यह कहा है (कि परिवर्त्ति पुरुष अपना दोष भेसने को बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके फिर अपना व्याह कहीं ढूंढि के करै अन्यथा उसी कन्या को अपने विवाह में स्वीकार करै यदि छोटे धाता ने इसको निपट समर्पणा करदी होवै कि जिस कन्याके साथ छोटे ने अपना व्याह रोपि लिया था जिससे ये दोनों दोयो ठहरे) अन्यथा जहां छोटे का विवाह निपटिचुके पीछे यह दोष का चर्चा खडा हुआ हो तहां उस कन्याका समर्पणा करना श्रेय नहीं रहा तिससे जेदा परिवर्त्ति अपना व्याह ढूंढिके करै यही अर्थ है• और छोटे का विवाह नहीं निपटि चुके में भी यह अर्थ बना रहित्ता है कि छोटेने प्रायश्चित्त करिके अपनी सगाईवह धाता को समर्पणा करी कि आपहीइस कन्या से विवाह अपना कीजिये परन्तु उस वड ने अपने वडापन से फिर उसी छोटे को अपनी तर्फ से पूरी पूरी आज्ञादेकर आशीर्वादसे अभिनन्दित किया कि हमने तुम्हारी दीहुई भेट को हाई भावसे स्वीकार करलिया पर अब तुम्हीं अपना व्याह करो फलो फूलो• तत्र इस दशा में भी जेदे को ढूंढिकर इतना शीघ्र अपना व्याह करना चाहिये कि उस छोटे से पहिले इसका होजाय और उस छोटे को भी अपना व्याह तबतक रोक्ना चाहिये कि जब तक जेदे का पहिले हो जाय—यैसव अर्थ ऊपरले वशिष्ठ के ही वचन को ध्वन्यर्थ हैं• वशिष्ठ और रौतस आदि मुनीश्वरों के वचन से स्वल्पाक्षर और अनन्त अर्थवाली होते हैं कि योही सी पांक्तिपर इतने बल्कि

इतने से भी अधिक अर्थ फैलते हैं—इस व्यवस्था को अतीति का परिच्छेद में मिलाकर समझिलेना क्योंकि विस्तार इसका उसी में लिखचुके है इतिपरिवि-
त्तिप्रायश्चित्तसमाप्तम् ॥

(अथवाधुं ग्य लवणक्रिययोः प्रायश्चित्तं)

वार्धुग्य और लवणाक्रिया नामों के अर्थ समझा चाहौं सो २३५ मूल श्लोक देखौं ये दोनों जुदे उपपातक हैं योगीश्वरने जैसे परिवर्त्ति का कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा जैसे इनका भी कुछ नहीं कहा परन्तु परिवर्त्ति का वार्धुग्य जो ने अच्छी तरह से दर्शाया था सो लिखागया इन दोनोंका छोटा विषय समझिके और भी मुनीश्वरों ने कुछ नहीं कहा तिससे इनके परिच्छेद भी जुदे नहीं नियत होसकते हैं तथापि उपपातकों में गिनती होचुके हैं इस हेतुसे २६५ दोसौपैसठि मूलश्लोक और उसकी अधिकोक्ति में सामान्य प्रायश्चित्त जो सभी उपपातकोंके निमित्तपर दर्शायचुके उन्हीं को इनके लिये विचारना सो सब चर्वालिप्त के परिच्छेद में जाकर देखौं—यही डौल सितासरा कारने प्रकाश किया है—यथा=वार्धुग्यलवणाक्रियोस्तुननु योगीश्वरोक्तसामान्योपपातक प्रायश्चित्तानिजातिशक्तिगुणाद्यपेक्षयायोज्यानि=अर्थात्—वार्धुग्य और लवणा क्रिया इन दोनोंके लिये मनु और योगीश्वर केकहे साधारण उपपातकोंवाले प्रायश्चित्त दोयीकीजाति और शक्ति सामर्थ्य और गुणों को आदि लेकर विशेषताकी अपेक्षासेबड़े छोटेप्रायश्चित्त सोचिके लगाने चाहिये कि जैसे २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने कई प्रायश्चित्त कहे और उसी अधिकोक्ति में मनुके वचनसे जुदे प्रायश्चित्त लिखे गयेहैं उनमें से अपेक्षा के अनुरूप चुनिकर समझिलेने इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं ॥ २६५ ॥ यहाँतक उसी दोसौ पैसठिवाले मूलश्लोककी टीकासे अनेक परिच्छेद होकर लिखेगये अब उसकाशेष पूरा होगया तिससे अगले परिच्छेद मे दोसौछासठिका प्रारम्भ होगा ॥ २६५ ॥ इस छोटेसे परिच्छेद मे भी जुदे जुदे तीन विषय अति छोटे होनेके हेतु से समा गये कि जिनके परिच्छेद भी जुदे न होसके फिर प्रकरणा तो बहुत बड़ी बातहै सो क्योंकर होता—तोभी कुछ प्रकरणाका नाम होना चाहिये ॥

इतिपरिवित्यादिविषयव्यप्रकरण ॥

पर कृपापावनकी दृष्टिराखै• शरीरको शुद्धराखै• मृत्युबोले• अपनी किसी इन्दी को कुमार्गपर न चलनेदेय• और अनेक हितोंके प्रवृत्तकरणपर उताख बनारहै अनेकहित बेही कहजाते हैं जिनके जारी करनेसे अनेक संसारी जीवोंकाहित होताहो दृष्टांत जैसे पित्राऊ लगवाना या अन्नका सदावर्त लगाना या किसी औरही से उपकार कराइ देना या तालाव कुआ बागीचा पथिकायम धर्मशाला आदिबनाना ये सभी वृत्त कहातेहैं ॥ यदांतक तौ इच्छासे चाहे विना मारडारने के प्रायश्चित्तकहे ॥०॥

अथ सकामवधप्रायश्चित्तं—जिसने कामना से विचार सहित किसीको मारडाला हो तिसके प्रायश्चित्त ऊपरलोसे बड़े हैं हो आगे हारीत आदिके वचनोंसे कहेंगे=यथाह वृद्धहारीतः=ब्राह्मणःसत्रियहृत्वायड्वययागिाव्रतंचरेत् वैश्यंहत्वाचरेद्देवत्रतवैवायिकीहजः शूद्रंहत्वाचरेद्दृष्ट्यभेकादशाश्चगाः=अर्थात्=ब्राह्मण कामना से चाहि- कर सभी का वध करै सो छः वर्य भर व्रत करै एवं वैश्यको मारिके ब्राह्मण तीनवर्य का व्रत करै एवं शूद्र को मारिके एक वर्य भर व्रत करै और व्रत के वादि एकआडू वृथभ तथा दसगाय दान करै (मारनेवाला जैसा इस वचन में स्पष्ट भाव से ब्राह्मण कहागया तैसा इस परिच्छेद भरमें ऊपरली सभी व्यवस्था में ब्राह्मण समझि लेना चाहिये जहां नाम लेकर नहीं कहा तहांभी यही तात्पर्य हैइसका व्यौरा परिच्छेद के अन्त पर जाके देखौ ॥ ० ॥ कामतःश्रीत्रियञ्त्रियादि वधप्रायश्चित्तं—उन्हों वृद्धहारीत ने फिर भेद किया है कि जे कोई सभी आदि शास्त्रोंको पढतेहैं या पढ़ि चुकेहैं तिसका वध करनेवाले के प्रायश्चित्त ऊपरलोसे बड़े हैं (योषियपराविद्या र्थी भी कहाता है जो अनेक शास्त्र पढने में तत्पर होरहाहो और ऐसा पूरा विद्वान भी योषिय कहलाता है जो वेद शास्त्र पढाहो या सब शास्त्रों में कुछ अच्छा बोध राखता हो)=यथाह वृद्धहारीतः=दुरीयोनक्षत्रियस्यवधेब्रह्महृणाव्रतम् अथवैश्यवधेकु यात्तरीयंवृत्तस्यतु=अथदि—जिसने योषिय गुरावाव सभी को इच्छा सहित मारा हो सो ब्रह्महत्या परकहे गये व्रतको चौथात्रे कम करिके तीन पादके नौवर्य आचरे• एवं योषिय वैश्यको जिसने चाहिकर माराहो सो आवे व्रतको छः वर्य भर आचरे• एवं बहुश्रुत शूद्रको (कि जिसने वेद शास्त्र के अधिकार विना भी संसार में बहुवा शास्त्र को मर्यादा विद्वानों से सुनी समझी हों और अपने ज्ञाते धर्म से निपटा हो तिसको) जिसने वधकिया होय सो चौथात्रे के तीन वर्य भर प्रायश्चित्त करै तब शूद्र उसकी होती है (इसमें भी मारनेवाला ब्राह्मण समझना) क्योंकि हारीत के

समान वशिष्ठ ने भी यही प्रायश्चित्त कहा तिसमें खुलासा ब्राह्मण कानाम भी क-
हि विद्या है=तथाच वशिष्ठः=ब्राह्मणो राजन्यं हत्वाऽथोर्व्यागिणो व्रतचरेत् यद्वैश्यांश्च
शिशाशुद्रमिति=अर्थात्-कोई ब्राह्मण सत्री को मारि के आठ वर्षभर व्रत करै और
वैश्य को मारिके छः वर्षभर व्रत करै और शूद्र को मारि के तीन वर्ष व्रत आचरै
॥ ० ॥ उभयगुणसंपन्नत्रिययादिवध प्रायश्चित्तं-जब कोई सत्री दीनों गुणसे
युक्तहो अर्थात् ऊर्ध्वोक्तप्रकार वाले लक्षणों से श्रोत्रिय और वृत्तस्य भी होय ति-
सको मारडारने में आपस्तव का कहा बारह वर्ष वाला प्रायश्चित्त चाहिये=प्रदाह
मिताक्षराकारः (यदात्त श्रोत्रियो वृत्तस्य प्रचभवति तदा पूर्वश्रोवर्ण शोर्वेदाध्यायिनं हत्वे
त्यापस्तवोक्तद्वादशवार्यिकं नृस्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्-जो मारा गया सत्री जहाँ
श्रोत्रिय और वृत्तस्य भी होता है तहाँ आपस्तवको उस वचनको देखना जिसमें (ब्रा-
ह्मण सत्री इन पहिले दो वर्णों में जो कोई वेद पढा होय तिसको मारिके बारहवर्ष
व्रत करै इत्यादि यही वचन पहिले तीसवें परिच्छेद में २५१ की अधिकोक्ति में
भी देखिके उसी से वृत्त का वध होनेपर विचारै=याद रक्त्वौ कि=जहाँ जहाँ के-
वल जाति सत्री लिखीहो कोई उतसगुण विशेष जिसमें नहीं वताया तिसको ऐसा
समझि लेना कि राजा आदि उत्तम सत्रियों में छः प्रकार के गुण होते हैं सो उसमें
नहीं है तिससे जाति मात्र सत्री कहा ॥ यही व्यवस्था जो केवल सत्री के नाम से
कही गई सो इस प्रकार के दो गुणों वाले वैश्य के मारे जाने में भी जोड़ि लेनी पर
बारह वर्षों के स्थान पर आठ वर्ष का प्रायश्चित्त लगाना यही न्याय का स्वरूप है
॥ ० ॥ श्रोत्रियस्य प्रारब्ध यागे च वध प्रायश्चित्तं-जहाँ कोई सत्री आदि श्रोत्रि-
य होय उसी श्रोत्रिय ने किसी यज्ञका प्रारम्भ रोपाहो ऐसी दशामें यदि कोई ब्रा-
ह्मण उसको मार डारै तहाँ उस हत्यारे ब्राह्मण को वही ब्रह्महत्या वाला व्रतकरना
चाहिये जो दोस्रो इकावन २५१ मूल श्लोक से तीसवें परिच्छेद में योगीश्वर आप
कहिचुके है कि (यागस्थसत्रिय विदधाती चरेद्ब्रह्महत्याव्रतं) यज्ञ करते हुये सत्री
या वैश्य को वध करने वाला ब्रह्महत्यापर दशमि व्रत को बारह वर्ष करै (या उस
सत्री और वैश्य से कुछ ओके गुण समझे जायँ तो बारह वर्ष से कमतीवाले व्रतभी
जो ब्रह्महत्या के प्रकरणा में उपस्थित हैं तिनका भी विकल्प से चर्त्तवा करै) और
इसमें यद्यपि सत्री वैश्य दोनो की अपेक्षा परा बारह वर्षका व्रत कहा तो भी वैश्य
की अपेक्षा इसकी एक तिहाई छोड़िके आठ वर्षों का व्रत समझि लेना और इसी
प्रकार ब्रह्महत्या के छोटे प्रायश्चित्तों में भी वैश्यको सभ्ये श्राद्ध भेद कल्पित करना

अथक्षत्रियादिवर्णत्रयबधोपपातकानांप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःटिपंचाशत्तमः (५२) ॥



इस परिच्छेद में क्षत्री वैश्य शूद्र इन तीन वर्गों में से किसी पुरुष को यदि कोई सारडाली से उपपातकी होता है तिसके सब जुदेप्रायश्चित्त कहेजायेंगे=क्योंकि सत्ताइस परिच्छेद में केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे और इनतालिस परिच्छेद में प्रतिलोम जातें जो चारौवर्गोंसे उपरालू सत सागव वैदेहक आदि वर्गों संकर होती हैं तिनकावध करनेके प्रायश्चित्त कहे गये=केवल बीचके तीनों वर्गों क्षत्री आदिका वध कहिना बाकी रहा था सो इस वागम के परिच्छेद में दशाति हैं ॥

(क्षत्रियादिवधप्रायश्चित्त)

ऋषभेकसहस्रागादयात्सत्रवधेषुमान् । ब्रह्महत्याव्रतंवापियत्सत्त्रितयंचरेत् २६६ ॥

वेदयहाब्दचरेदेतदथाद्विकशंतंगवाम् । परामासानशूद्रहाप्येतद्वेनूर्ध्वादिशापवा २६७ ॥

अर्थः—पुरुष किसी क्षत्रीका वध करनेमें एक आंडू टुपम और सहस्र गायें दान करै (तब शुद्धहोय यही प्रायश्चित्त है अथवा यह न करसके सो) ब्रह्महत्यावाले व्रतकोही तीनिवर्गभर आचरै ॥ २६६ ॥ यही ब्रह्महत्यावाला व्रत एकवर्गभर वैश्य का वध करनेवाला आचरै अथवा एक आंडू टुपम और एकसौगौर्यें दानकरै=यही व्रत शूद्रका वध करनेवाला पुरुष ऊमाहीभर करै अथवा हालकी विआनी बच्छा सहित दशधेनुका दानकरै) हालकी विआनी यह धेनु शब्दका ध्वन्यर्थ है ॥ २६७ ॥

२६६अधिकोक्तिः—दोनोंऊत्तीस मूलश्लोक में कहिचुके हैं कि (क्षीशूद्रविद्वंस व वधः) स्त्री•शूद्र•वैश्य•क्षत्री इनका वध करना उपपातक जुदे चार धर्मे—इतमें से छियोंके वधका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में योगीचर कहेगे और श्रेयतीनोंके प्रायश्चित्त इन्हीदोनों प्रतीकोंमें योगीचरने इमहेतुसे जुदेकरके दशातिहैं कि दोसौ पैसेदि २६५ मूलश्लोकवाले सामान्य प्रायश्चित्तोंको इनपरभी निरपेक्षमत्र समुक्ति लेना कि उन्हीं छोटे प्रायश्चित्तोंसे निर्वाह इनपापोंका होजाय—क्योंकि क्षत्रीवैश्य शूद्र ये तीनों सब सकहीसे बराबर नहीं होतेहैं अर्थात् इनमें भी उत्तम मध्यम आदि

कई भेद अपने श्रावणोंके प्रभावसे सर्वत्र होतेहैं तिनकावध होजानेसे प्रायश्चित्तों के भी कई भेद करने होंगे—तहां किसी निरुद्ध भेदका बंध होने में तत्रोक्त प्रायश्चित्त भी कदाचित्त काम आसकतेहैं सो आगे समझिलेना=और=यहां जो श्लोकों के अर्थ में व्यवस्था कही गई तिसको भी ऐसे भेदपर जोडना कि जहां उस सारे गये पुरुष में केवल सत्री आदि जातिही कहिलाना एक श्रावण होय किन्तु दूसरी कोई विशेषता उसमें नही और मारनेवालेने इच्छाके बिना देवयोगसे वधकिया हो क्योंकि (अ- कामतस्त्रुराजन्यविनिपात्येतिप्रक्रम्य एतेयामेवप्रायश्चित्तानांमानवेऽभिधानात्) मनुस्मृति में भी • कामना के बिना सत्री को मारिके • यह अनुक्रम पहिले आरम्भ कारिके इन्हीं प्रायश्चित्तोंका वर्णन किया गयाहै तिससे यहां भी वही तात्पर्य है— और यहां जो शौचोक्तादान या व्रतरूपी तपस्या करना कहा तिसकी व्यवस्था ह- त्यारेकी शक्तिके अनुसार सोचिलेना ॥ ईषद्वृत्तस्यचत्रियादीनां व्यवस्थाभेदः—जिन सत्री आदिमें कुछ थोडासा वृत्ताचार भी प्रसिद्धहोय तिनको मारडारनेमें ऊपरलीसे कुछ बड़े प्रायश्चित्त चाहिये (क्योंकि ऊपरके छोटे प्रायश्चित्त केवल जातिमात्र के एकही श्रावणपर कहेगये)अत्राहमनु—सुरीयोब्रह्महत्यायाःक्षत्रियस्यवधेस्मृतः वैश्ये २यमांशोवृत्तस्यशूद्रेज्ञेयस्तुथोडशः=अर्थात्—मनुने यह कहाहै कि वृत्तस्य सत्री का वध होने में ब्रह्महत्याका चौथाई प्रायश्चित्त कहाहै जो बारह बर्यकी चौथाई तीनि बर्य होतेहैं एवं वृत्ताचारसे संयुक्त वैश्यके वधमें ब्रह्महत्याका आठवांभाग जो डेढवर्य होताहै सो करना चाहिये तद्वत् शूद्रके वधमें ब्रह्महत्याका सोरहवांभाग जो नौमास होताहै समझना (सितासराकार कहिते हैं कि यद्यपि सत्री के वावत इस वचन में तीनिहीवर्य कहेगये तौभी जो वृत्तस्य सत्री माराजाय तौ फिर डौढदेकर साडेचार बर्यका प्रायश्चित्त कराना चाहिये क्योंकि ऊपरकी व्यवस्थाकी अपेक्षा यहां सभी प्रायश्चित्त डौढेहोजाने उचितहैं=और यहां जो वृत्ताचारसे संयुक्त या वृत्तस्य यह विशेषता दियागया सो कुछ जातिसे अपेक्षा नहीं रखताहै केवल एक शरीर से सं- बंध राखता है चाहे किसी जातिके पुरुष हो अपने गिटाचार से संयुक्त होय सो वृत्तस्य कहाताहै इसके भी लक्षणा मनुने कहेहैं—यथा(युक्तपूजाधृत्ताद्यौचंसत्यमिद्रि यनिग्रहः प्रवर्तनंहितानांचतसर्ववृत्तवृत्त्यते) अर्थात्—युक्तपूजा • धृतादशा • शौचक्रिया • नत्य • इन्द्रियोंका वधमें राखना • हितोंका प्रवर्तनभी • यह खचमिलाभूता आचरणा उतका वृत्त कहाता है जो कोई इनका अभ्यास राखे और खुतासा यह भावार्थहै कि जो कोई पुरुष अपनासे बड़ोंका सत्कार हमेशा किया करे • असमर्थों

यह न्याय का स्वरूप है ॥ और तीसरे परिच्छेद को भी देखो कि वहांपर या ग-
 स्यका अर्थ यद्यपि सोमयागमें वैदा माना गया है तथापि यहां उस बन्वतको नहीं
 मानना किन्तु यहांपर उपातकोंका प्रकरणा वर्तमान है तिससे सामान्य हरतरहका
 यज्ञ समझ लेना और इसी से यह भी इतना भेद है कि (वहांपर देवयोग से मारने
 मध्ये पूरा व्रतकरना और चाहिकर मारने मध्ये इसीका दूना करना कहा गया परंतु)
 यहाँ कामना से चाहिकर मारने मध्ये पूरा एक प्रायश्चित्त और देवयोगसे मारने
 मध्ये उससे आधा कल्पित किया चाहिये क्योंकि यह व्यवस्था केवल किसीतरह
 का यज्ञ करने के विचार से प्रारम्भ मात्र पर दर्शाई गई कि जो सत्री या वैश्य अब
 तक यज्ञ करने में न वैदितपाया और प्रथमसे माराजाय० किन्तु० निपटयज्ञ पर वैदे
 हुर्योकी व्यवस्था अब नोचे दर्शाते हैं ॥ ० ॥ यागस्थश्रोत्रियक्षत्रियार्दिवधप्राय-
 श्चित्तं—जहां कोई सत्री आदि जो अपनी विद्यामें श्रोत्रिय होय वहीश्रोत्रियकिसी
 यज्ञकी करिरहा हो और इसयज्ञस्थको यदि कोई ब्राह्मणमार डारे तिसद्व्यारे ब्रा-
 ह्मणकी अश्रोक्त गौतम का बताया प्रायश्चित्त है जिसमें दान और तपदीनों करने
 होते हैं—यदाह गौतमः—ब्राह्मणास्यराजन्यवधे यज्वार्यिकंप्राकृतब्रह्मचर्यं मृगभैक्षं
 महस्राप्रचगादद्यात् वैश्यवधेऽश्वार्यिकमृगभैक्षंशताराप्रचदद्यात् शूद्रवधेऽसौवत्सरिक
 मृगभैक्षाद् शाश्रवा दद्यात्—अर्थात्—ब्राह्मण को सत्री का वध करनेमें प्राकृत
 ब्रह्मचर्यं छः वर्षं भर करना कहा है तिसके पीछे एक आंडू वृथभ और हजार
 गौर्ये भी दानकरे तथा वैश्य का वध करनेमें तीन वर्ष का वही ब्रह्मचर्य करे तिसके
 बाद एक आंडूवृथभ और सौ गाय भी दान करे तथा शूद्र का वध करने में एक
 सात भर ब्रह्मचर्य साथै तिस पीछे एक आंडू वृथभ और दश गाय भी दानकरे (प-
 रन्तु यह व्यवस्था उस हत्यारे पर आकृष्ट है कि जिसने बिना जाने धोखा से वध
 किया हो) क्योंकि अगिले वचन में शखने भी इसीके समान व्यवस्था कही तिसमें
 अज्ञानता से वध करनेका निमित्त भी प्रकाश करिके कि द्विदिया है—यथाह शांखः—
 पूर्ववदमतिपूर्वचतुर्वर्षोयुप्रनाप्यद्वादशायुत्त्रीव साध्वत्सरचरतान्यादिशेत् तेषामते
 गौसहस्रचततोऽर्द्धतस्याधमधेदद्यात् सर्वेयासानुपूर्वोत्ति—अर्थात्—शांखने इस शीति से
 कहा है कि हम जैसा पहिले अज्ञानतासे वध करने का प्रायश्चित्त कहिके उसी
 पहिलेके तुल्य इसमें भी अमति पूर्वक समझना कि जिस विप्रने चारो वर्गोंमें किसी
 को मारिके इत्या कनार्द्ध हो तो ब्राह्मणा आदि सत्री के वधमें अनुक्रम से इन प्राय-
 श्चित्तोंका आदेश करे कि वारहवर्षं छेवर्षं तीनिवर्षं देसवर्षं (तो इस क्रमसे सत्री

के वधमें केवय का व्रत सावित हुआ) फिर इनके परे होजाने चादि उसी क्रमसे एक सहस्र गोदान० पाँच सौ गौसँ० अर्द्धाई सौ गाय० सवाउसौ गायें दान करे (इनमें भी केवल ब्राह्मण इत्यादि के प्रायश्चित्त कहे समझने)=(परन्तु इस भेद की समाधि कुछ नहीं लिखी जासक्ती है कि अमल मिताक्षरा में शंखशुक्ति का यही वचन दो सौ उनचास २४६ मूलश्लोक वाली टीकामें किस हेतुसे और तरह फिर यहाँपर किस हेतुसे और भाँति लिखा गया वही आधुनिकोंको लिखना परा यद्यपि हेतु यह प्रत्यक्ष है कि वहाँ ती सहापातकों के प्रसंगमें ब्राह्मणका वध होनेपर व्यवस्था लेनी स्वीकार थी और यहाँपर उपपातकों के प्रसंग में केवल शोधिय यागस्थ सखी का वध होने पर व्यवस्था की रचना करनी स्वीकार है० और यद्यपि यह कारण भी प्रमारा है कि मुनीश्वरों के वचन स्वल्पाक्षर तथा अनन्त अर्थों वाले होते हैं तथापि हम ऐसे पाठान्तर वाले भेदको मनोज नहीं कहि सकतें हैं किन्तु ऐसे भेदसे यहभाँति खड़ी होतीहै कि ज्ञाने शंखजने किस पाठको मुखते उच्चारण किया था) = अथ मिताक्षराकाराः—इदं च द्वादशवार्यिकं गौतमीयविषयमेव किंचिन्मृगशृगोसत्रिये शृगाधिकयोर्वैश्वशूद्रयोश्चद्रष्टव्यं (स्त्रीशूद्रविदसत्रचक्रः इत्युपपातकमध्येविशेष्यते सव पठितत्वेनेत्सर्गापवादस्यायगोचरत्वाभावादुपपातकसामान्यप्राप्तान्तर्यापि प्रायश्चित्तान्तर्ययोजनीयानि) तथदुर्दृत्तक्षत्रियादीकामतोव्यापादितेमानवं वैसासिकं ईसासिकं चांद्रायरांच वराकमेगायोऽयम्—अक्रामतस्तुयोगीश्वरोक्तं विराडोपवास सहितमृगभैकादशगोदानं सासपंचगव्याशनं सासिकंचपयोव्रतं यथाक्रमेणायोऽय स=अथादि—गौतम शंख इन दोनों के वचन ऊपर दर्शाने के चादि मिताक्षराकार कहिते हैं कि—यह बारह वर्य भी गौतमके समानही विषय समझना सो ऊँछेक न्यून गुणावाले सखीके वचनमें और बहुत गुणावाले वैश्य शूद्रोंके वधमें विचारना चाहिये और इनके सिवाय उन प्रायश्चित्तोंको भी यहां लाकर जोडना चाहिये जो चवालिसके परिच्छेद में सामान्य उपपातकों के मध्ये कहे गए थे यद्यपि वे छोटे प्रायश्चित्त हैं परन्तु (स्त्री० शूद्र० वैश्य० क्षत्री० इनका माराजाना विशेषतासे उपपातकों में लिखा गयाहै और विश्वके साथ अपवाद वाला न्याय भी इस स्थ तर्ने नहींदिख परता है तिससे उन सामान्य प्रायश्चित्तोंकी पहुँच भी यहाँपर पाई जातीहै० वाकी रही यह तर्कना कि वे प्रायश्चित्त बहुत छोटेहैं तिसके लिये यह अप्रोक्ता व्यवस्था कल्पितकरौ) अथदुर्दृत्तत्रियादिवधेप्रायश्चित्ताल्पत्व—किन्तु मिताक्षराकार हीआप कहितेहैं कि सखी आदि तीनों वर्णोंके मनु०श्रौतें जे कीडे दुशचारीहोयें तिन

को यदि कोई ब्राह्मण इच्छा सहित मारुडारै सो इस क्रमसे प्रायश्चित्त साधे कि उस ४४ के परिच्छेद वाली अधिकोक्तिसे लिखे प्रायश्चित्तमें मनुका कहा तीन महीने वाला दुष्ट सत्रीके वधपर करे और दोनहीने वाला दुष्ट त वैश्य के वध पर करे और एक महीनेवाला चांद्रायणा दुष्ट शूद्रके वधमें करे=परन्तु जिसने कामना के बिना वैश्यांगिक वध कियाहो सो उस परिच्छेदमें मूलश्लोकसे योगीश्वरके कहे प्रायश्चित्तको इस क्रमसे साधे कि तीन दिनके उपवास सहित ग्यारह गाय बैल के दानवाला प्रायश्चित्त दुष्ट सत्रीके वधपर करे और एक महीने पंचगव्य भोजन करने वाला प्रायश्चित्त दुष्ट वैश्यके वधपर करे और एक महीना गाय का दूध पीके व्रत करनेवाला प्रायश्चित्त दुष्ट शूद्रके वधपर करे ॥ अथ ब्राह्मणोत्तरकृत कवचप्रायश्चित्त-मिताक्षराकार अथ दूसरी याद दिलाते हैं कि (सूत्रप्रायश्चित्त व्रतज्ञानं ब्राह्मण कर्तव्यं सत्रियादिवधेद्रेष्टव्यं) यह परिच्छेदकी आदि से यहां तक पहिला वर्णन प्रायश्चित्तोंका व्रतरूपो सर्वथा ब्राह्मण इत्यारैके निमित्तमें समझना कि जब उक्तने क्षत्री आदि किसी वर्णकी इत्या करीहो तिसके प्रायश्चित्त कहेगए हैं क्योंकि मनु गौतम हारीत इनके वचन जो पहिले वर्णन हीचुके तिनमें ब्राह्मण वा नाम साक्ष साक्ष कहागया है यथा (अक्रामतस्तुराज्जन्यं चिनिपात्यद्विजोत्तमः शतं ननुः) तथा (ब्राह्मणास्तुराजन्यवधेयद्वयिकं इतिगौतमः) तथा (ब्राह्मणास्त्रि यं ह्वायद्वयोराजतंचरे दितिहारीतः)=इस हेतुसे=जहाँ क्षत्री आदि कोई इत्यारैहोयें और इन्होंने क्षत्री आदि तीन वर्णोंमें किसीका वध कियाहो तहां क्रमसे एक एक चौथाई घटाकर उन्हीं पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंसे व्यवस्था करिपत करीजाय यह सिद्धांत है और इसीपर अतीत विष्णुका वचन प्रसारा है=तदाह दृढ विष्णुः=विप्रेत सकलं देयं पादोनं सवियेस्मृतव वैश्येऽहं मिकपादस्तु शूद्रजातियुशस्यते=अयति-जो प्रायश्चित्त कहागया सो ब्राह्मण से पूरा करवाना चाहिये और क्षत्री से एक पाद कम कराना कहागयाहै वैश्यपर आवा करवाना और शूद्रसे एक चौथाई करवाना दही ठीक है (परन्तु इस कम कियेहुये को भी प्रातिलोभ्य वचकी दशाने हूने ति-युने दंडवाला न्याय गोचना होगा) क्योंकि सर्वोक्त विष्णु के वचनका यहां ता-त्यर्थ केवल इतना लेनाहै कि जिस क्षत्रीने क्षत्रीको मारा हो तो उस प्रायश्चित्त से चौथाई कमकरे कि जैसे गुरावाले क्षत्रीके मारनेपर ब्राह्मणको जितना प्रायश्चित्त कहागया हो और जिस क्षत्रीने वैश्यको माराहो गो उस प्रायश्चित्तसे आवाकरे कि जितना उस भ्रातिका वैश्य मारनेपर ब्राह्मणको लिखिचुके हैं और जिस क्षत्री

ने शूद्र का वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत करै कि जितना उस प्रकार का शूद्र मारने पर ब्राह्मण को करना कहि चुके—इसी प्रकार—जिस वैश्य ने किसी वैश्य को मारा हो सो उस प्रायश्चित्त से आधा कम करै कि जितना उसी योनयता वाले वैश्य के मारने पर ब्राह्मण को करना कहा गया। और जिस वैश्य ने किसी शूद्रका वध किया हो सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई व्रत साथै कि जितना उसी भाति का शूद्र वध करने पर ब्राह्मण को लिखि चुके हों—इसी प्रकार—कोई शूद्र जो किसी शूद्र का वध करै सो उस प्रायश्चित्त का चौथाई भाग साथै कि जितना उसी योनयता वाले शूद्र का वध करने पर ब्राह्मण को करना कहा हो—अन्यथा—जहां शूद्र किसी वैश्य या सत्रीका वध करै यहा वैश्य किसी सत्रीका वध करै तो यह प्रातिलोभ्य वध कहिलाता है इसके मध्ये चौथाई आदि कम करने की व्यवस्था इस रीति से लगाई जायगी कि अभी जितना प्रायश्चित्त शूद्रका वध करनेमध्ये शूद्रकेलिपे निश्चित हो चुका है (कि ब्राह्मणावाले प्रायश्चित्तको चौथाई करै) सो उसी चौथाईका दूना व्रत शूद्रसे उसदशामें करवाना होगा कि जबउसने किसी वैश्यका वध किया हो और उसी चौथाईका चौथना किन्तु पुराव्रत उसदशामें करवाना कि जत्र शूद्रने सत्रीका वध किया हो—इसी प्रकार—जहां वैश्यने सत्रीका वध किया हो तहां वैश्यको पुरा पुराव्रत करना होगा कि जितना ब्राह्मणको कहि चुके कोकि वैश्य का वध करने मध्ये वैश्यको आधा करना कहि चुके तिस आधे का दूना फिर पुरा हो सत्री के वध पर करना चाहिये यही न्याय का स्वरूप है। और इन्हीं अर्थों से यह विष्णु का वचन यहां माना जासक्ता है अन्यथा नहीं—और भी इस व्यवस्था का प्रमाण पुरा चाहिकर उनतीमवें परिच्छेद में २५० दोसी पचास मूल प्रलोक वाली अधिकांति का सबसे पिछला पाठ देखो जहांपर दूने तिथने प्रायश्चित्तका प्रमाण छोड़िके अगिरा के वचन से चतुर्विंशति के वचन तक अचछा निर्णाय किया गया है वही तात्पर्य यहां भी लेलेना होगा क्योंकि ये दोनों स्पज एकही रूप हैं अन्तर केवल इतना है कि वहांपर बहुत बड़े पापों का प्रकरणा है यहां उनमे छोटे पापों का प्रकरणा है तिस छोटाई से प्रतिलोम अपरावों में यह अपर्व शक्ति नहीं आसक्ती है कि उत्तम सत्री को मारि के शूद्र चौथाई प्रायश्चित्त करै (हां यही विष्णु का वचन तैतिलिस ४३ के परिच्छेद में गोवधके निर्णायपर मितासराकार ने आपही लिखा सोतो बहुत ठीक है क्योंकि वहां पर उसी न्याय की योग्यता पाई गई और वहां पर एकही सूचे अर्थ से काम चलसक्ताया) और वहांपर जैसा

सक अंगिरा का वचन पीछे से लिखा वही यहांपर भी लिखा है कि (यत्वं गिरो वचनं-पर्यधात्राहुरानान्तुसाराज्ञां द्विगुरासता वैश्यानां त्रिगुराणां प्रोक्तापर्यं वचं व्रतं स्मृतमिति तत्प्रति लोभ्येन वारुडं पाठ्यार्थं दिव्यं-इसीको यहांपर कितीने आदि शब्द छांडिके (वारुडपाठ्यविषयमित्युक्तं गोवधप्रकरणे) से मालिखि दिया है- इसी आदि शब्द के लगे रहने से प्रयोजन का अर्थ बना हुआ था कि वाक्पाठ्य गाली देना आदि और दण्डपाठ्य लाठीदाडाचलाना आदि और उसचर्चा किये आदि शब्दसे तीसरा काम निपट सार डारना सिद्ध होता है अथवा ये तीनों बात जो प्रतिलोम उल्टे मार्ग से करी जायं तहां यह अंगिरा का वचन बहुत ठीक है-परंतु किसी विद्वान् ही ने यहांपर उस आदि शब्द को निकामि डारा तिससे तीसरानिपट वध का अर्थ जाता रहा केवल दाही बातों पर अंगिरा का वचन समझा गया- सो उस विद्वान् की चतुराई केवल इस हेतुसे उत्पन्न हुई होगी कि ऊर्ध्वोक्त विप्या के वचन में उसने सूधा सूधा वही अर्थ समझा जो गोवध के स्थान पर सूचित हो चुका था इसी लिये गोवध की समस्या भी यहां की पीक में जताई है- सो यह व्योरा विज्ञाता जनों की समझना चाहिये कि ऊंचे वर्रां की नीचे वर्रां माली आदि कुवचन कहे या डंडा लाठी आदि हथियार कुछ दिखावें या चलावें तिसपर दूने तियुने दण्ड और प्रायश्चित्त भी कहि चुके तौ फिर निपट सार डारना जो सस्सेवडा काम है तिसमें यह विपरीत कैसे माना जासके कि शूद्र सत्रीकी सारि के चौथाई प्रायश्चित्त करे ॥ ० ॥ अथमर्धावसिक्तादीनां व्यवस्था-विज्ञाने चर कहिते हैं कि जैसे वध कहे गये तिनमें सुर्वावसिक्त आदि वर्रांसंकर जो हत्यारे वनें तिनको लिये ये प्रायश्चित्त नहीं हैं क्योंकि उनमें सत्रीपना या वैश्यपन आदि लक्षण नहीं है तिससे उनके योग्य लिखे दण्डों के अनुसार इसी भाँति के वध में पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों का घटाउ बढाउ व्यवहार कांड में दर्शात किया गया है कि (दण्डप्रणय नंकार्यवर्रांजात्युत्तरावरैः) यह वचन जहां पर आया हो तहां इसकी व्याख्या जाकर देखी फिर उनीके अनुसार प्रायश्चित्त की कल्पना करो ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

इति च त्रियादीनां वधनिर्णयः

अथमंदस्त्रीवधोपपातकप्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयं परिच्छेदः त्रिपंचाशत्तमः (५३)



इसपरिच्छेद में उन स्त्रियोंके वध करने मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिनका सार डारना केवल उपपातकों में गिनती होय— अर्थात् उत्तम गुणसे हीन बंध्या आदि या किंचित् व्यभिचारसेसंयुक्त या अत्यन्त स्वैरिणी आदिघोरी विख्यातहों तिन सत्रको वधपर योग्यता के अनुसार छोटे बड़ेप्रायश्चित्त भी दर्शावेंगे ॥

(स्त्रीवध प्रायश्चित्त)

दुर्वृत्तब्रह्मविदक्षत्रशूद्रयोपाःप्रमाप्यतु । इतिधनुर्वंस्तमविक्रमाद्याद्विशुद्धये २६८

अर्थः—ब्राह्मण आदि चारों वर्गों में जिस किसीकी स्त्रियाँ जो दुर्वृत्ता स्वैरिणी हों तिनको यदि कोई वध करे सो वध करिके इस क्रमसे प्रायश्चित्त करे कि ब्राह्मणी के मध्ये एक इति अर्थात् जत भरने की मुशक दान करे और सत्राणी की अपेक्षा एक धनुय दान करे और वनेनीकी अपेक्षा एक वस्तु बकरा दान करे और शूद्रिणी की इत्या वाचत एक अत्रि मेढा दान करे तब शुद्ध होय ॥ २६८ ॥

२६८अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार कहते हैं कि योगीश्वर के कहे प्रायश्चित्त अतिशय तुच्छ हैं सो केवल उन स्त्रियों के वध पर समझि लेना जिनहोंने प्रतिलोम नीचे वर्ण या नीची जाते चण्डाल आदि के बीज से संतान पैदा करी है औरइंता पुंस्य ने इच्छा बिना इनका वध किया हो=और=जहां कोई इन्हीं स्त्रियों की कामना से वध करे तहां ब्रह्मगर्भ का कहा प्रायश्चित्त लेना होगा=यसह ब्रह्मगर्भः=प्रतिलोमप्रसूतानांस्त्रीणांसांश्रधःस्मृतः अन्तरप्रभावानांचसूतादीनांचतुद्वियद्= अर्थात्—ब्राह्मणी आदि चारों वर्गोंकी स्त्रियाँ जो प्रतिलोम नीचीजातोंके बीजसेगर्भ लेकर प्रसूत करें या वर्गों के परस्पर नीचे वर्गों का बीजलेकर जो सूत आदि पैदा करें या सूतादिक प्रतिलोमोंका बीजलेकर पैदाकरे इनसत्रका वधकरना कहा गया है (औरयही वध इच्छा के साथ किया होताहै) तिससे इनकावध करनेमें चार दो छःसास का प्रायश्चित्त चाहिये—सो इस क्रम से कि ऐसी ब्राह्मणीके वध में छः सहीना और ऐसी सत्रियाँके वधपर चार सहीने और ऐसी वनेनी के वधपर दोसहीना

और इसी न्याय के अनुसार ऐसी शुद्धाके वच में भी एक महीना का प्रायश्चित्त करै तब शुद्ध होय=अन्यथा=जहां गर्भ रहिजाना मात्र या अतिशय व्यभिचार ही देखि भाल जिसने ब्राह्मणी आदि किसी स्त्री का वच कियाहो तिसके मध्ये अंगिरा का अश्रोक्त वचन है=यदाहांगिरा=जलकोशंचकूपंच ब्राह्मणयाः प्रतिपादयेत् वधेधेनुःक्षत्रियायावस्तोवैश्यावचेरमृतः शुद्रायाश्चाविकंवेश्यांहस्वादद्याञ्जलंनरः= अर्थात्-ब्राह्मणी मारने की हत्या में जलकोश मुशक और कूप भी दान करै तथा सवानी की हत्या में दुधार गाय दान करै तथा वैश्या बनेनी की हत्या में एक बड़ा बकरा दान करै तथा शुद्राके वच में आविक ऊन का वना कम्बल दान करै और पांचवीं वैश्या की सारि के मनुष्य जल दान करै तब शुद्ध होय (यहां जलकादान जो कहा सो जलाशय में जाकर अंजली देना मत समझना किन्तु पिआउ लगाइ देना या पशु पक्षी आदि को जहां जल न मिलता हो तहां जलका प्रदम्ब करदेना आदि अनेक प्रकारसे जलदेना समझ लेना) और (ऊपर ब्राह्मणीके मध्येजहां कूपका दान करना कहागया तहां भी कूपशब्दके कई अर्थ होतेहैं कि एक तो जल भरने का कुआ प्रसिद्ध है फिर छोटे मोटे कुण्ड आदि जलाशय गड्ढिले आदि भी कूप कहिलाते हैं और कूप कूप्या भी कहाता है जिसमें घीतेल भरा करते हैं सो इन सभी अर्थोंको समझलेना कि जैसी कृच्छ्र प्रतिष्ठा की योग्यता वाली ब्राह्मणी व्यभिचारके हेतुसे वच करीहोय तैसेही उत्तम-मध्यम आदि कूपोंके अर्थ मानिलेने अर्थात् जहां बहुत बड़ी प्रतिष्ठा वाली ब्राह्मणी मारी होय तहां बहुत अच्छा पूरा कुआ बनवा कर दान करना चाहिये इत्यादि कहां घी का भरा कूप्या कहीं छोटा मोटा कुण्ड गड्ढिला आदि सभी प्रयोजन के अर्थहैं और मुशक सब के साथ लगी रहेगी क्योंकि दोनों वस्तु देनी कर्हीं ॥ अथमिताक्षरा (यदातुवैश्याकर्मणा जीवन्ती व्यापादयति तदाकिंचिद्द्वैयं वैशिकेनकिंचिद्प्र-इतिगीतमस्तरणात्-वैशिकेनवैश्या कर्मणा जीवन्त्यांन्यापादितार्यां किंचिद्द्वैयं) अर्थात्-मिताक्षरामें इस पक्षसे यह कहागया है कि जब कोई व्यभिचारिणी आदि चाहे किसी वरांकी हो किन्तु वन्यापन हुकानदारी के काससे जीविका रखतीहो तिसको मारडारै तो इस हत्या में कृच्छ्र देना चाहिये क्योंकि (वैशिकेनकिंचिद्) यह गौतमने कहा है कि वैशिक से जीवन चलानेवालीको वधमें कृच्छ्र देना • फिर इन्हीं सात या साढ़े छः अक्षरों पर व्याख्या भी लिखीहै कि वैशिक जो वैश्यों वाला कर्महै तिससे जीविका वाली को मारनेमें कृच्छ्रदेना=इस इस व्यवस्थाको इन कारणों से अस्वीकार करते हैं कि

प्रथम तो गौतमका वह वचन पूरा पूरा यहांपर दिया जाता जिसका यह एक पद है अक्षर वाला लिखागया तो उसका अर्थान्तर देखाजाता• फिर इस बात का भी आप्रचर्य नहीं है कि गौतमने इसपदमें ऊपरले अंगिराके समान वेश्याओंवाले कर्म से जीविका करना दर्शायाही• जिसके अर्थकी प्राप्ति इसमें प्रत्यक्षहै और इसीलिये वेश्याकी अतिशय तुच्छ मानिके अंगिरा ने जलवेना माघ प्रायश्चित्त बताया तैसा गौतमने किंचित कहा इस किंचितसे किसी वस्तुका नामहीं प्रकट नहीं होता और अतिशय थोड़े का नाम किंचित होता है कि जिसका परिमाण भी नहीं कहा जा सकता है तो फिर क्या वस्तु और कितनी देनी चाहिये इस बात के समझे बिना प्रायश्चित्त क्योंकर पूरा होसकता है—इसके सिवाय यह विरोध है कि चारों वर्गों के लिये यह सक्ती बात कही इससे भी अन्याय खडा होसकताहै• सबसे ऊपर यह विरोध है कि वेश्यावाले कर्मकी जीविका मध्ये किंचित कुछ कहि दिया तो फिर शूद्रकी जीविका वाले कर्मसे या क्षत्री और ब्राह्मणकी जीविकावाले कर्मसे जीविका करतीहों तिनका बंधहोने में क्या क्या उत्तर दियाजाय• तिससे यहां वेश्याआदि किसीके कर्मका प्रसंग लाना निपट टयाहै न उसके चर्चासे कोईसा प्रयोजन देखि परता है• क्योंकि यहां न्यभिचारिणी आदि खोंदी स्त्रियोंकी व्यवस्था वर्णान हो रही है तिसमें जो ब्राह्मण व्यापारका विशेषण जोहों तौभी यह एक प्रकार का प्रतिष्ठा वाला चिह्न खडा होनेसे उलटा दूयरा पैदा होताहै कि उसी प्रतिष्ठाके अनुसार कुछ बडा प्रायश्चित्त कहाजाता• तहांसेसे निरादरके साथ किंचित कुछ कहि देना किस प्रकारसे न्यायात्मक मानाजाय• तिससे साफ निश्चित होताहै कि गौतमने वेश्याके बंधका प्रायश्चित्त निरादर के साथ प्रकट किया होगा फिर चाहें वह बजास्र वेश्या होय यहा घरू स्त्रियां वेश्या के तुल्य जीविका करने लगीं जो प्रायः खानगीके नामसे प्रसिद्ध होतीहैं ॥ ० ॥ अथसामान्योपपातकप्रायश्चित्त नामाध्यतिदेशः—सितासराकार कहिते हैं कि पहिले जो ४४ चवालिस परिच्छेद में २६५ दोसो पैसठि सुलश्लोक और उसीकी अधिकोक्तिमें साधारण उपपातकों पर गोवध वाले प्रायश्चित्तोंका अतिदेश उतारा गयाथा उसकी पहुंच यहां भी आवश्यक है—तिससे—जहां क्षत्री आदि नीचे वर्गोंके पुरुषोंमें ब्राह्मणों आदि ऊंचे वर्गोंकी स्त्रियां प्रतिष्ठीम न्यभिचारसे दूयित हुईहों तिनको यदि कोई सारडार तिसकी शुद्धिके लिये उसी परिच्छेदकेद्वारा पूर्वाक्त गोवधकी प्रायश्चित्त लगाने चाहिये और उनमें जो ब्राह्मण छोटापन देखिपरें सो सब यहां भी ब्राह्मणों आदि वर्गोंके

भेदसे लगाइलेना=परन्तु इस परिच्छेद की सभी व्यवस्था जो वर्णान् होचुकीं तिनमें
इन्ता पुरुष नारनेवाला जो प्रायश्चित्तो होताहै तिसकी जातिभेद से प्रयोजन कुछ
नहींहै कि उक्त प्रायश्चित्तों में चौथाई आदि किसी वर्ण को न्युनाधिक विचारा
जाय जैसा पहिले परिच्छेदों में भेद किया गया था ॥ २६८ ॥ अब निचले आदि
श्लोकसे उन छियोंका चर्चा किया जायगा जो अतिप्रय खोंदी नहीं ॥ २६८ ॥

(ईपत्त्व्यभिचारितावधप्रायश्चित्तं)

अप्रदुष्टास्त्रिवंहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत् २६९ (पूर्वार्धः)

अर्थः—अप्रदुष्टा स्त्रीको मारि के शूद्र की हत्या वाला व्रत आचरै=अर्थात्—दुष्टा
खोंदी और प्रदुष्टा अति खोंदी कही जातीहै जो अतिखोंदी नहो वही अप्रदुष्टा स-
सम्भिलेनी और तात्पर्य इसका यहहै कि यद्यपि व्यभिचार से दूषित होचुकी प-
रन्तु ऐसी अब तक नहूँ जो अपने खोंदा पत्त में विख्यात होजाती अर्थात् लुकी
छिपी व्यभिचार में होने से श्रेयद्वयभिचारित टंडरी• ऐसी ब्राह्मणी आदि का जो
कोई बधकरै सो शूद्रकी हत्यापर लिखा हुआ छमाहीका व्रतकरै या दश गाय दूध
देती हुई दान करै जैसा दोस्रो सरसठि २६७ के उत्तरार्द्ध मूल श्लोक में कहि चुके ॥
२६९ ॥ इति पूर्वार्द्धं श्लोकः ॥

२६६ आधिकोक्तिः—यहां मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह छमाही वाला व्रत
उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी ब्राह्मणी को इच्छाके विना घात कियाहो
और यही छमाही व्रत उसके लिये विचारना कि जिसने ऐसी क्षत्रणी को इच्छा
पूर्वक बध किया हो और जिसने इच्छा सहित ऐसी वनेनी का बध किया हो
सो दश गाय दूध देती हुई दान करै और जिसने इच्छा सहित ऐसी शूद्रा का
बध किया हो तिसके लिये चवालिस ४४ परिच्छेद के अनुसार साधारण उप-
पातकों पर कहागया एक महीने पचगव्य पीके रहिने वाला व्रत बताना चा-
हिये—परन्तु जो कोई इच्छा सहित ऐसी ब्राह्मणीका बधकरै तिसको बारहमहीने
व्रत करना चाहिये और जो ऐसी क्षत्रणी को विना इच्छाके बधकरै तिसको तीनि
महीने व्रत चाहिये तथा ऐसी वनेनीको विना इच्छाके बधकरै तिसको डेढमहीना
व्रत करना चाहिये तथा ऐसी शूद्राको इच्छा विना जो बधकरै तिसको डेढमहीने
से आवा २॥ सादे वाइस दिनका व्रत करना चाहिये—ये सब अर्थ आगले प्रचेता
के वचन से स्पष्ट होते हैं—यथाह प्रचेताः—अष्टमतीनाह्मणींहत्वा कच्छाद्वयगमा

सान्नेति सविद्यां हत्वा यरामासान्नासत्र खेति दैव्यां हत्वा सासत्रयसाई सास्येति शूद्रां
हत्वासाईमाससाईद्वाविशत्यहाजवेति=अर्थात्-जो ब्राह्मणी सासिकवर्षसे ऋतुमती
कभी न होतीहो तिसका वध करिके एक वर्षपर कृच्छ्रव्रत आचरै अथवा छमाही
मात्र (यहां बिकल्पका वही तात्पर्य है जो अतिकोक्तिके प्रारम्भमें कहिचुकेहैं कि
विना इच्छाके वध करनेवाला सकछमाही व्रतकरै तो यह चारह महीनेवाला कृच्छ्र
व्रत इच्छा सहित वध करनेवाले पर चाहिये सो यह भी ऊपर लिख चुकेहैं) इसी
तरह आगे सत्राणी आदिमें भी बिकल्पोंको समझिलेना और सबके साथ वधभी
जोडिलेना कि जो ऋतुमती कभी न होतीहो) सत्राणीको सारिके छेमास या तीति
मास व्रत करै सब बनेनीको सारिके तीनि महीने या डेढ महीना व्रत करै सब शूद्रा
को सारिके डेढ महीना या षीन महीना व्रतकरै=इसमें भी सारनेवाला पुरुष चाहे
किसी वराका होय प्रायश्चित्त सबके लिये एकसे बराबर हैं यह समझिलेना ॥०॥
एक हारीतके वचनमें प्रायश्चित्त बड़े होनेके हेतुसे कुछ भेद विशेषहै सो देखीं=
यथाहहारीत =यडवयागिराजने प्राकृतब्रह्मचर्यशीशावैश्वसार्हशूद्रे (इतिप्रतिपाद्य
पुनभक्तवान्) सविश्ववदब्राह्मणया वैशवत्सधियायां शूद्रवद्वैश्यायां शूद्रां हत्वा नवसा-
सात् (तदपिकर्मभावनेत्वादिगुरायोगिनीनां कामतोद्यथापादनेदृश्य अकामतस्तुस
दंवाहकल्प्य आश्वेयान्प्रशुक्तामिति सितासराकारा)=अथोत्र-हारीत ने पहिले
पुरुषोंके वधका प्रायश्चित्त कहाहै कि-सबोंके वधसे छे वर्ष प्राकृत ब्रह्मचर्य और
तीनि वर्ष वैश्यके वध में और डेढवर्ष शूद्र के वध में वही ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है
(यह कहिके फिर हारीत ने कहा है कि) सबोंके समान ब्राह्मणी के वध में और
वैश्यके समान सत्राणीके वधमें और शूद्रके समान बनेनीके वधमें समझिलेना और
शूद्रिनीको सारिके नौमासका ब्रह्मचर्य साथै (इस पर सितासराकार कहितेहैं कि
हारीतके वताये ये बड़े प्रायश्चित्त भी ऐसी उत्तम स्त्रियोंके वधपर समझिलेना जो
कर्मका साधन होसकने की सभावना आदि उत्तम गुणसे सयुक्त होयें तिनको इच्छा
सहित जब किसी ने वध किया हो-अन्यथा यदि इच्छा के विना दैवयोग से वध
कियाहो तो इन प्रायश्चित्तोंका आधा आधा व्रत सबके साथ कल्पित करिलेना-
और आवैयी लक्षणा की स्त्रियोंके वध का प्रायश्चित्त पहिले तीसरे परिच्छेद में
कहिचुके तहां देखी यह सितासराकारोंने सब कहा (परन्तु इसका व्यौरा आगे
सिद्धांत वाले पाठ से देखी कि जिन स्त्रियोंका नाम निकम्भो कहा जाय उन्हीके
वधसे ये हारीत वाले बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं) इस परिच्छेदका सर्व सिद्धांत आगे

देखो ॥ सर्वस्यैवसिद्धांतः—अब इस वातका सिद्धांत सोचना है कि उन्हीं ब्राह्मणों आदि का बंध करने मध्ये तीसरे परिच्छेद में बड़ेबड़े वेदी प्रायश्चित्तलिखिचुके हैं जो ब्राह्मण आदि पुरुषों का बंध करने में बारह वर्ष आदिके होते हैं—फिर उन्हीं ब्राह्मणों आदिके बंध पर यहां छोटे पापतंहारा कर छोटे छोटे प्रायश्चित्त कहे गये तिसका क्या कारण है—इसका यही कारण है कि यहाँ सब निकम्मी और खराब स्त्रियोंके बंध का प्रकरण जुदा किया गया है—इनमें निकम्मी तो उनको समझना जो निपट बन्ध्या होय या बध्या अर्थापि नहीं थी पर बुढ़ापा आदि कारणों से रजोवर्म होना बन्द होगयाइसे जिससे आगेकी संतान पैदाहोनेकी आशा न रही हो तो ये दोनों तरहकी निकम्मी समझी जातीहैं फिर इन्हीं में से तीसरा भेद और है कि जिसका नास्तिक ऋतुवर्म निपट बन्द तो हुआ नहीं लेकिन बन्दहोनेवाला झोरहा है तिससे कभी कभी दो चार महीने थंभिकर जारी होजाता है इसी ढंगसे वर्ष दो वर्ष पीछे निपट बन्द भी होजाता है तब तक यह आधी निकम्मी कहलाती है क्योंकि वीचमें देवावीन संतान पैदा होसकनेकी संभावना वर्तमान है—परन्तु इन तीनोंमें किसी प्रकारके व्यभिचारका बोध कुछ न हो और तीसरे परिच्छेदमें चर्चाकिया सबन यज्ञ वा अग्निहोत्रवाला उत्तम गुराभी इनमें न हो तो ये तीनों साधारण भावसे निकम्मी कहिनो चाइये (इन्हीं तीनोंके बंधका प्रयोजन हारीत के अनंतरोक्त वचनवाले प्रायश्चित्तों में समझिलेना) निकम्मीके सिवाय दूसरी खराब स्त्रियां भी व्यभिचारिणी आदि कई तरह से बन्धनाम होती हैं तिनके बंध पर जुदे जुदे सबछोटे प्रायश्चित्त लिखिचुके तिनको इसी परिच्छेद के प्रारम्भ से आदि लेकर २६८ दोसो अरस्तिकी अधिकोक्त भरसे देखो—फिर यह सोचो कि निकम्मी और खराब इन दोके बीचमें तीसरी भांतिकी स्त्रियां भी कुछ होतीहैं अर्थात् निकम्मीसे कुछ मध्यम और खराब खोंटीसे कुछ उत्तम तिससे दोनोंके बीचमें टंहरी (यहाँ खराब और खोंटीका एकही अर्थ है क्योंकि खोंटी यह देशभाषा और खराब उसका पर्याय यावनी शब्द है) दोनों के बीचमें टंहरी तिससे इसका प्रायश्चित्त भी बीचही में लिखागया सो दोनों उनदत्तरि २६६ के पूर्वाह्न से देखो कि (ईयत् व्यभिचारिता) यहीनाम उसका धरागया=समस्त परिच्छेद में इसक्रमसे इन तीनों हंताओंके प्रायश्चित्त धरेगएहैं कि सबसे पहिले अतिखोंटी और खोंटियोंके १ फिर बीचमें ईयत् व्यभिचारिता को २ फिर सबसे पीछे हारीत के वचन में निकम्मी स्त्रियोंके ३ इन्तीनों में निकम्मी सबसे अच्छी समझिलेना

क्योंकि इनमें व्यभिचार आदि दूयगा कुछ नहीं है और बीचवालीको इसलिये कुछ मध्यम ठहराया है कि यद्यपि वह बन्ध्या भी न हो अथवा होय तो भी कुछ तर्क इस पर नहीं है और यद्यपि वह अनार्तवा भी न हो किन्तु मासिक ऋतुधर्म उसके निरन्तर जारी होताहो अथवा न होताहो तौभी कुछ तर्क इसपर नहीं है परंच थोड़े से व्यभिचारमें सक्ती दो बार अपने सबर्गाँ किसी पुरुषसे या ऊँचे वर्गाँसे केवल इतना दूषित हुईहो जिसको भितरिया लोगोंने जाना कोई बाहरका बन्दाम न कर सकाहो न किसीने प्रायश्चित्त उसपर करवाया हो तो इसका वध करने वाले पर वही प्रायश्चित्त आल्हद होगा जो २६६ के पूर्वार्ध आदि से कहा गया (पर इसमें भी यह विशेषता है कि यदि सैमी स्त्री से प्रायश्चित्त करवाया गया हो तो फिर प्रायश्चित्तसे पवित्र होकर यह भी निकम्मी स्त्रियोंके बराबर समझी जायगी और प्रायश्चित्त करने के बाद यदि कोई मार डारै तिसकी हारोत वाला बड़ा प्रायश्चित्त करना होगा) अथवा जो इसके रजोधर्म जारी होता हो तो फिर यह भी प्रायश्चित्त करने के बाद आवेयी मानी जायगी जिस आवेयी का वध करने पर बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं सो सब तीसरे परिच्छेद में देखो (आवेयी वही कहाती है जिसका मासिक धर्म हुंश्या अपने समयपर जारी होताहो)—अब तीसरे परिच्छेद का सिद्धान्त सुनो कि उसमें भी चाहें किसी वर्गाँकी हो पर इतने उत्तम लक्षणों से संयुक्त स्त्री का वध करने पर पूरे प्रायश्चित्त है कि एक तो आवेयी १ दूसरी पतिव्रता २ तीसरी सवनस्था जो सवन यज्ञमें लगीहो ३ चौथी अग्निहोत्रीकी भार्या चाहें आवेयी के लक्षणा से संयुक्तहो या नहो ४ (इन चारोंसे उपराल जो बाकीरहीं सो सब यहाँ ५३ परिच्छेदमें आगई)—इनके सिवाय—उसी तीसरे परिच्छेदमें (गर्भ हाच यथावर्गाँ) यह कहाहै कि गर्भका विनाश करने वाला भी जिस वर्गाँ का गर्भ विनाशो उसी वर्गाँकी पुरुष हुंश्या वाला व्रत करै—सो यह तात्पर्य यहाँ ५३ के परिच्छेद में भी लेलेना होगा कि चाहें व्यभिचारिणी आदि कैसीही दुयाहो पर अपने पतिके बीजसे गर्भधारणा कियेहोय तिसका वध करनेमें गर्भका विनाश होजाने पर अशोक्त प्रायश्चित्तसे उपराल उस परिच्छेदमें वर्तान करी गर्भकी व्यवस्था भी लेनी होगी और उसमें जो गर्भका प्रायश्चित्त हो सो भी करना होगा क्योकि इन दोनों परिच्छेदों का संबंध परस्पर मिला झुलासा सक्ती है ॥ २६६ ॥ यह पूर्वार्ध की अधिकोक्ति कहो अब इसी मूलश्लोक का उत्तराहं अगिले परिच्छेद में जा पहुँचै गा—और यहाँपर हिसा दाले प्रायश्चित्तो का प्रसंग चला आता है तिसमें मनुष्यों

की हिंसा अबतक वर्णान करो• आगे इतिके प्रसंगसे मनुष्योंके उपरालू हायीआदि बड़े जीवोंसे लेकर लीख भुनका पर्यन्त सब तरह के प्राणियोंकी हिंसा वाले प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जुदे वर्णान करौगे कि वे पातक यद्यपि योगीश्वरकी विवसासे सभी उपपातकों में गिनती होचुके हैं यह व्यौरा २३४ मूलश्लोक से आदि लेकर देखो• परन्तु मनु और विष्णु आदि कई ऋषीश्वरोंने इन पापों का छोटापन समझिके उपपातकोसे भी छोटे भेद इनके माने और भेदोंके जुदे नाम कल्पितकिये हैं सो सब २५२ की अधिकोक्ति में समझी ॥ ऊपर जो इसी २६६ की पूर्वार्ध मूल श्लोकमें शूद्रकी हत्यावाला प्रायश्चित्त छेमाही और दश गायका दान जो स्त्रियों हत्यापर कहिचुके वही अगिले परिच्छेद वाले उत्तरार्ध मूल श्लोक में भी तु शब्द के संबन्धसे अतिदेश दियाजायगा यह याद रखलो ॥ २६६ ॥ इतिपूर्वार्धः ॥

इतिब्राह्मणोत्तरनरहिंसाप्रकरणां ॥

यह प्रकरणा दो परिच्छेदों में अर्थात् बाबन ५२ और धेपन ५३ में पूरा हुआ ॥

अथनरेतरसर्वप्राणिहिंसोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश कोशपरिच्छेदः चतुपंचाशत्तमः (५४)

इस परिच्छेदमें मनुष्यसे उपरालू सब जीवोंकी हिंसा मध्ये प्रायश्चित्त उनको जुदे भेदों के साथ कहे जायेंगे जो हायी की आदि लेकर मच्छर लीख पर्यंत भुनगा से भी अति छोटे जीव संसार में होतेहों ॥

(सूक्ष्मलघुजंतुसमूह वधप्रायश्चित्त)

अस्थिमत्तांसहस्रंतुतथाऽनल्पिमतामऽनः २६९

अर्थः—हाड वालोंका एक हजार और विन हाड वालों का एक अनसु गाडा भरि मारिके भी=अर्थात्—छोटी मछरी आदि तुच्छ जीव उस भांति को कि जिनके कुछ हाड भी होतेहों तिनको एक सहस्र सख्याके अनुमान जो कोई किसी प्रकार से चिनायें सोभी वही प्रायश्चित्त करे (जो स्त्री वध के ऊपर पूर्वार्ध मूलश्लोक में पहिले परिच्छेदमें अतिदेश देचुके हैं कि शूद्र की हत्यावाला छमाही ब्रह्मचर्य या

दश गायका दान करे) क्योंकि यहां उत्तरार्धमें तु अण्य के योगसे उमकी प्राप्ति चली आती है—और उसी प्रायश्चित्तकी वह भी करे जो एक अनस गाड़ा छकड़ा भरके अनुमान उन जीवोंका विनाश करे जिनके हाडही नियत न होतेहो इटांत जैसे जोक वसुंती सेना गिंडार गिंजाई सखी ततैये वर भींपुर खटमल चींटे दीसक आदि बहुधा योनि होती हैं ॥ २६६ ॥

२६६ अधिकोक्ति—इस २६६ के उत्तरार्धमें तु अण्य के अर्थसे उसी प्रायश्चित्तका अतिदेश उतारागया है जो ऊपरले परिच्छेद मे पहिलेअहासे कहिचुके हे(शूद्र इत्या व्रत्तरेव)कि शूद्रकी इत्या मध्ये जो २६७ दोसौ सरसति मूलश्लोक में छमाही ब्रह्मचर्य या ब्रधेनुदेना कहाया वही इसहत्यापरभी करे परतु यहाँ एक हजार छोटे जीवोंकी इत्याका नियम क्रियागया है तिससे जो अधिक जीवमारैसो उससे भी कुछ बड़ा प्रायश्चित्त करे इसीप्रकार बिना हाड वालो को गाड़ी भरसे अधिक मारै सो अधिक प्रायश्चित्त करे यह तात्पर्य है और जो एकही वो चार आदि जीव मारै हाडवाले या विना हाडवालो मे तिसको प्रत्येक जूरे जीव का प्रायश्चित्त आगे २७५ दोसौ पचहत्तर मूलश्लोकसे योगीचर कहेगे तहाँ देखो= और=जो मनुका एक वचन मिताक्षरा मे धरा है कि क्कामि कोट बयो इत्या० इत्या दि सलिनी करणीय पापों की गिनती किने पोखे—तत्र स्याद्यावकस्त्रह—यह प्रायश्चित्त सबका एक साथ कहागया है कि तीन दिन गरमारम यावक पीवै तत्र शूद्र होय) सो यह प्रायश्चित्त यद्यपि ऐसे धर्मात्मा पुरुष पर आरुदहै जो प्रायश्चा छोटेजीवों की इत्या से भयमानता हो यद्वा किमी प्रयोग पजन में लगा हो तिसकी ग्लानि मिटाने के लिये केवल एकही छोटा जंतु हाडो या विनहाडो वाला मरजाने पर यह प्रायश्चित्त है कि जिससे उसके मन को शूद्धि होसके) क्योंकि इसी मनुके वचन मे विना हाडो वाले क्कामि कोट भी कहे गये और इसी में हाडो वाले वयस पक्षी भी कहे गये किन्तु दोनों का जूदा भेद या जूदा प्रायश्चित्त नहीं कहा—इसपर असल मिताक्षरा ने यह न्याय लिखाधरा है कि ऊपर योगीचर के कहे हाडवाले और विना हाडवाले अतिशय सोद्विष्ट बहुत सूक्ष्म जंतु समुभते जैसे लीख जूआ मच्छर खटमल आदि जिनका एक हजार या गाड़ा भर मारने पर छे साही प्रायश्चित्त है क्योंकि हाडो या विन हाडो वाले स्थूल जंतु एकही के मारने पर मनुने तीन दिन गरम यावक पीना कहा है—इस इस न्याय को इस हेतुसे सुझोल नहीं समुभते है कि मिताक्षरा पहिले हाडवालो का दृष्टांत क्कजाम के-

कला गौरा आदि काहचुकी जो डेडपान से अविक्त भी स्थूल होता है फिर यहाँ इसन्याय पर लीख जुआ मच्छर आदि समुझाती है जिनका एक छकडाभर मारा जाना एकही पुरुषके हाथसे कदापि शक्य नहीं है फिर वही मिताक्षरा सनुके वचन में हासि कीसे को स्थूलरूप कहिती है—यथा (एतद्वक्षोदित्यजतुवियय स्थवियान स्थिगुरादिस्तुवधेतुर्जमिनीटवग्रोदृत्येत्यादिना मलिनीकरसीधान्यभिवाय मलिनीकरसीधेयुतप्त स्याद्यावकस्यहमितिमनुक्तदृष्टव्यमितिमिताक्षरा) इसीपान्त की व्याख्या ऊपर लिखी गई सो उभक्ति देखो इस न्याय से कुछ सार नहीं मिला ॥२६६॥ अत्र दोहोस्तत्रिके श्लोकमे इनसे बड़े जीवोकी इत्या वावतकहेगो ॥२६६॥

(मारजारदि वध प्रायश्चित्त)

मारजारगोधानकुलमंदूकाभचपतत्रिण । हत्वात्र्यहपिवेत्क्षरिफुच्छ्रंवापादिकंचेत् २७०

अर्थः—मारजार • गोधा • नकुल • भडक • पतत्रि • इनकी मारिके तीनि राततक दूध पीके रहै या एक पाद छच्छ करै=अर्थात्—बिल्ली • गोह • नेउरा • मेदुका • और पतत्रि उड़ने वाले पक्षी काक चाय घुघुआ आदि (जिनके नाम किसी मूल प्रसंग में न कहेजायँ) इनका एकही एक जीव घात जो कोईकरै सो तीनि राति तक थोडा दूध पीके व्रत करै या छच्छ व्रत प्राजापत्य की चौथाई व्रतकरै यहभी तीनि दिन में होता ॥ २७० ॥

मिताक्षरा म० प्रायश्चित्तकांड ।

५०१

वाय पक्षी और मेढुका भी मारिके या कुत्ता और गोह और उल्लू और कार्कोकी एक साथ मारिके अथवा इनमें एकही किसी जीवकी अनेक सख्या मारिके शूद्र भी इत्यावाला व्रत आचरै जो इमाही भरका शूद्र को वधपर कहिचुके हैं (यहाँ प्रह ध्यान करौ कि मनु का यह वचन मारि आदि वाला अनेक जीव मारने पर इमाही प्रायश्चित्त बताता है और योगीश्वर का मारि आदि वाला केवल एक प्राणी मारने पर तीन दिन प्रायश्चित्त कहिचुका कि जिसके मध्ये मनु के ऊपर ले वचन में अनेक प्रायश्चित्तों के अधिक भेद भी दर्शाये गये) इन सबसे निराला एक वशिष्ठ का वचन है—यदाह वशिष्ठः—अमाजार्जनकुलमडुकसर्पदहरसूयकात्र ह-त्वाकृच्छ्र द्वादशरात्रचरेत् किंचिद्दद्यात्—अर्थात्—वशिष्ठने जो बड़ा प्रायश्चित्त कहा है कि—कुत्ता• चिल्ली• नेउरा• मेढुका• साँप• दहर कौटेदार पहाड़ी वनमूसा• सूयक मूसा• इन प्रत्येक जुड़े जीवों का एक प्राणविनाशिके बारह दिन का कृच्छ्र अर्थात् प्राजापत्य आचरै (ये बारहदिन उससेचौगुने होतेहैं जो तीनदिनमनु और योगीश्वर कहिचुके तो इस चौगुने का यही प्रयोजन है कि जिसने इच्छा सहित दुबारा ति-बारा वधकियाहो तिसकेलिये यह प्रायश्चित्त है २७० ॥

(हस्त्यादिवध प्रायश्चित्त)

गजनीलवृषा पंचशुकेवस्त्रोद्दिहायनः । खराजमेपेपुष्टपादेय कौचेत्रिहायन- २७१

अर्थः—हाथी में पाँच नीले वृषभ• शुकपक्षी में द्विहायन बछरा• खर अज मेय इनमें एक वृषभ• क्राँच पक्षी में द्विहायन बछरा दातव्य है—अर्थात्—जिसने हाथी माराहो सो पाँच काले बैल दान करै• जिसने तोता पक्षी का वध कियाहो सो दो बर्य का बछरा दान करै• जिसने गदहा माराहो सो एक आँडूवैल• और बकरा मारने वालाभी एकवैल• तथा मेढा मारनेवालाभी एकवृषभदानकरै• जिसने क्राँचनाम मारस पक्षीका वध कियाहो सोतीनवर्यकी अवस्था वाला बछरा दानकरै २७१ ॥

२७१अधिकोक्ति—यद्यपि तोता और मारस ये हाथी आदि के बराबर डील डौलमेंभी नहीं और जातिसेभी पक्षीहैं चौपायेसे मेल इनकानहींहै तथापि इन दोनों की उत्तमता से बड़ापन जाहर करने के लिये बड़े चौपायों के साथ में कहे गये)—इसपर एक मनुके वचन से कुछ और भी विशेषता है—यदाह मनु—वासोदद्याइयह-त्वापचनीलान्वृत्यान्गजस्र अजमेयावतद्बाहखरहस्त्यैकहायनस—अर्थात्—घोडा मारि के जैसा घोडा होय तैसा उत्तम मध्यम आदि वध दानकरै और हाथी को मारिके

पाँच नीले बैलों का दान करै तथा बकरा या भेडा को मारिके एक एक आँडु-
यभ दान और गर्धव को मारिके एक वर्यका बछरा दान करै तब शुद्ध होय (यो-
गीश्वर के मूल वचन मे गदहा के सधे पूरा द्यभ देना कहा गया और यहाँ पर
उसके सधे एक वर्य का बछरा कहा सो इस दो भाँतिमें विकल्प गदहा को उत्तम
सधयम जाति के ऊपर समझि लेना ॥ २७१ ॥

(हसवानरगृह्णादि वधप्रायश्चित्तं)

हसभ्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखडिनः । भासंहत्वाचदद्याद्गामक्रव्यादस्तुवत्तिकाम् २७२

अर्थः—हंस• प्रयेन• कपि• क्रव्याद्• जलचर• स्थलचर• शिखडी• इनको और
भासको भी मारिके गार्थ दानकरै=अक्रव्याद्येको मारिके बछिया वा कलोरिगाय
दानकरै=अर्थात्—हंस जो अलभ्य पक्षी विख्यातहे सो अथवा उसी प्रकारके बतक
आदि और भी होते हैं• प्रयेन बाज का नाम है• कपि वदर प्रसिद्ध है• क्रव्याद उन
जीवों का नामहे जो मांस खायें (वे जल स्थल आकाश वृक्षादि के निवासी कई
भाँति होतेहैं• शिखडी मोर का नाम है• भास भी एक पक्षी इसी नामसे प्रसिद्धहे•
इनमे से किसी एकही का वध करै सो एक गाय दान करै—और जो क्रव्याद नहीं
किन्तु मांसको न खाने वाले जल स्थल दोनों जगहके निवासी जीव तिनमेसे किसी
एकहीको मारै सो कलोरि बछिया दानकरै (अक्रव्याद और क्रव्यादों के विशेष
नाम अधिकीक्ति से ॥ २७२ ॥

२७२ अधिकीक्ति—अक्रव्याद मांसके न खानेवाले वन जीवोंमें हरिणा आदि
अनेक मृग होतेहैं उडने पक्षियों में खजर आदि अनेक पक्षी होते हैं—क्रव्याद मांस
खाने वाले भी दो तीन भेदके होते हैं कि वन के मृगजीवों में शृगाल व्याघ्र आदि
अनेक और पक्षियों में आकाशी कक चील गृध्र आदि अनेक तथा जलके जीव भी
मगर आदि अनेक मांस के खवैया होते हैं—इनसे उपरालू जल के निवासी बशला
आदि समझने और स्थलके चरने फिरने वाले भी बलाका आदि बहुत होतेहैं—इन्हीं
सब जीवोंके वधको वावत मनुने भी इसी प्रकारसे विशेष भेद कियाहै=यदाहमनु=
हत्वाहसबलाकांचवकर्वाह्रामैवच वानरप्रयेनभासीचरपरशियेद्वान्नाह्यगायगास क्रव्या
दस्तुमृगान्दहत्वाधेनुंदद्यात्पयत्स्निनोः अक्रव्यादेवत्सतरोमुष्ट हत्वात्तुक्रयात्त=अर्था-
त्=हंस• बलाका• बगला• मोर• वानर• प्रयेन• भास• इनमें किसीको मारिक एक
गाय ब्राह्मणा को देवै और क्रव्याद वा मृगों को मारिके दूध वाली गाय दान करै

और जो अक्रव्याद जीव माराहो तो कलोरि वडिया दानकरै आर ऊँटको मारिके कयाल अर्थात् सोने की रत्तो दानकरै ॥ २७२ ॥

(उष्टोरगवराहाप्रव क्षोयानां वधे)

उरगेष्वायसोदंडोपंडकेलपुत्तीसकम् । कोलेधृतपटोदेवउष्ट्रेगुजाहयेंशुकम् २७३

अर्थः—उरग नाम सरीसृप जाति मात्र मे किसी एक जीके मारने मध्ये लोहेका दण्ड दान करै जितका अग्रभाग पैनी नोकदार होय • पडक हिजरा के मारने मे जस्ता सीसा राँगे दान करै • कीत सुकर के वध करने में घो का भरा घट दान करै • ऊँटको मारने में गुंजा अर्थात् सोने की कयाला रत्ती दान करै • घोडेको मारै सो उसकी उत्तमता आदि के अनुसूप धर्खाँ का दान करै ॥ २७३ ॥

२७३ अधिकोक्तिः=लोहे का दण्ड ब्राह्मणा को भोजन कराइके दसिया में देना चाहिये यह व्यवस्था आगे २७५ की अधिकोक्तिमें देखी जहाँ (इत्वा सूयक साज्जार इत्यादि) पराशर का वचन मिलै उसका अर्थ विचारौ ॥ पडक वाली व्यवस्था यहाँ देखी—पंडकंहत्वापलालभारत्रपुभीसकवादद्यादितस्मृत्यतरदर्शनात् पला लभारवादद्यात् त्रपुभीसकचमायपरिमितं दद्यात् इति मिताक्षराकाराः=अर्थात्=मिताक्षराकार कहिते हैं और किसी स्मृति मे यह वचन देखा गया है कि पडकका वध करिके यातौ एक बोझ धान कोदों के पयार का दानकरै या सीसा राँगे दानकरै तिससे पयार का बोझ भी विकल्प से समझि लेना और सीसे राँगे का परिमाण कुछ नहीं कहा गया है तिससे एक सासेभर देना चाहिये (चाहें यह पांचहीकीड़ी का साल क्यों न होताहो) भला इस अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्तको एकओर धरौ • प्रथम इस नामही पर संदेह स्त्री तर्कवाद है कि (पंडकोलिंगाहीन-स्थायस्स्काराई प्रचनैवसः इति देवल वचनेन सामान्येनैव स्त्रीपुलिगर्गहोतोनिर्दिष्टः) अर्थात्—देवल का यह वचन है कि जो बालक स्त्री या पुरुषों वाले प्रधान लिंग चिह्न से विहीन पैदा होय सो पडक अर्थात् निपट नपुंसक होता है उसका कुछ संस्कार भी जनेऊ मूडन आदि न करना चाहिये—यद्यपि—यह वचन सर्व सामान्य बोधक है तथापि इस वचन के अनुसार यहाँपर गाय ह्यध नपुंसक या ब्राह्मणा जाति का नपुंसकन समझि लेना क्योंकि इनके वध का प्रसंग इनकी जाति के प्रकरणों में आचुका समझना—इसी प्रकार स्त्री आदि का प्रसंग उनके प्रकरणों में आचुका होगा—और यहाँ पर पडक नाम सामान्य कहा गया है कि जिसमें हरकिमीका अर्थील-

या जासकै— तिससे यह कहिने में ठीक ठीक आसक्त है कि गृहस्थ को घरों में सौजद नपुंसकों का चर्चा छोड़ो किन्तु निपट नपुंसकोंका समूह, एक जुदाभी होता है जिसमें हर एक जाति शामिल होजाने से ब्राह्मण स्त्री आदि का कुछ भेद और नियम बाझी नहीं रहता उन्हीं का यह प्रसंग है जो लोक में हिजरा इस नाम से विख्यात हैं—परन्तु—मिताक्षरा ने यहांपर यह भी निश्चय किया है कि मृग और पक्षियों का प्रसंग वर्तमान है नरचर्चा यहां पर नहीं है तिससे पंडक शब्दसे मृग और पक्षी ही नपुंसक बताये होंगे—तथापि—सर्वादि परिपाटी उत्तर देती है कि हिजराओं का समूह भी ऐसे निरुप्य प्राणियों में प्रसिद्ध है कि जिसको मनुष्योंके प्रकार-ग में गिनती न करसके और इसी हेतु से उसको तिर्यक् योनि के समान मानि के यहां पर लाकर मृग पक्षियों के साथ वर्णन किया होगा बल्कि मृग पक्षियों की अपेक्षा वेकदरीके साथ उसके मध्ये अतिशय तुच्छ प्रायश्चित्त दर्शाया तो इस बात का अचंभा नहीं है (कि जैसा हाथी आदि चौपायों के साथ में तोता और मोर छोटे पक्षियों की उत्तमता दर्शाने के निमित्तसे मिलाकर प्रायश्चित्त कहये २७१ मूल श्लोक देखो उसी न्याय से अचंभा यहां नहीं है) और जो इस बात को न मानो तो फिर यह उत्तर देना चाहिये कि ऋषीचरों ने हिजरों का चर्चा किस परिच्छेद में वर्णन किया तहां देखें यदि नहीं कहीं कहा तो फिर यही है—अन्यथा यह उत्तर भी देना चाहिये कि आपने बनवासी मृग पक्षी जो नपुंसक बताये सो क्योंकर पहिंचाने जासकते हैं कि नपुंसक हैं या नहीं इसकी क्या परीक्षा (हों केवल बनाये हुये दोषार पण सेसे हैं जो पहिंचाने जाते हैं कि बकरा खस्ती और घोड़ा आश्रुता और बैल बांधिया आदि सो इनका यहाँ वन्यजीवोंके साथमें प्रसंग नहीं) कदाचित् प्रसंग भी अवर्दस्ती मानि लिया जाय तो फिर ये खस्ती आदि बड़े क्री-मती प्रयोजन वाले होते हैं तितपर यह तुच्छ प्रायश्चित्त भी नहीं सूचित होता—तिससे यह पंडकसंज्ञा केवल हिजरा पेशेवालोंकी समुझना बल्कि इसी विययपर मनुका एक वचनहै उसमें साफ साफ यंडसंज्ञा कहीहै जो विशेष कर मनुष्यही की बौधक प्रतीत होतीहै—यथाइननुः—अश्रिं काययसोऽद्यात्सर्पदृत्वाडिजोत्तमः पला-लभारकयदेसैसकंचेवमायकष=अर्थात्—सर्प सरीसृपजातिका कोड़े जीवमारै सो काठ और लोहेसे धनी अधिदानकरै जो जड़ान नीकाआदिका मेल कीचड़ साफकरनेके लिये लोहालकडोंकीबनी कुहालकहातीहै और यंड जो निपटनपुंसकहो तिसका वव करनेमेंसकनीभूपयारकावानकरै और सकनासेभर सीसारांगामोदानकरै ॥ २७३ ॥

(दानाशक्तौप्रायश्चित्तांतराणि)

तिनिरोतुतिलद्रोणं † गजादीनामशक्तुवन् ॥ दानंदातुंचरेत्कच्छ्रमेकैकस्पविशुद्धये २७७ ॥

अर्थः—तीतुर पक्षीका वध करने में तिलोंका द्रोणा दानकरै (अर्थात् अधिकोक्ति में कहे द्रोणा भरि तौलिके तिल देवै † हाथी आदि सब जीवों की जुदी इत्यापर जो जो कुछ दान करना लिखिचुके सो निर्धन होनेके हेतु से जो कोई उसके देने में असमर्थहोय सो प्रत्येक जुदी इत्याकी विशुद्धि होनेके योग्यही कच्छ्र आचरै ॥ २७५ ॥

२७४ अधिकोक्तिः=द्रोणास्यपरिमाणं यथा=अष्टमुखिभवेत्किंचित्किंचिदष्टौतु पुष्कलम् पुष्कलानिहचत्वारिआढकःपरिकीर्तितः चतुराढकोभवेद्द्रोणाइत्येतन्मान लक्षणासु=अर्थात्-धर्मशास्त्रकी स्मृतिग्रंथों में इस रीतिसे द्रोणा कहा गयाहै कि आधी छटांक के अनुमान कोई धान्य जो सुट्टी में आसके सो सुट्टी कही जाती है. आठ सुट्टी भर एक किंचित् कहाता है सो पाउ भरिका समभवा ऐसे आठ किंचितोंका एक पुष्कल होताहै वह दोसरेके उन्मान होगा ऐसे चारि पुष्कलोंका एक आढक होताहै यह आठसेरके अनुमान हीगा ऐसे चार आढकोंका एक द्रोणा कहाजाता है जो ३२ वत्तीम सेरके लग भग होताहै इतने तिल दानकरै जिसने तीतुर माराहो † ऊपर मूलश्लोक में दानके बदले कच्छ्र करना कहा गया तहां यदि कच्छ्रका विशेष कर वही एक प्रधान अर्थ माना जाय कि बारह दिन के प्राजापत्य का नाम कच्छ्र कहिते हैं तो यह बोध खड़ा होताहै कि हाथीके मारने में भी वही बारह दिन और वही तोताके मारनेमें भी कियाजाय सो यह न्यायका मार्ग ठीकनहीं माना जा सक्ता है (कि सब दान बारह एसेरी के भाव) तिससे कच्छ्र शब्दका सर्व सामान्य वह अर्थ लियाजायगा कि कष्टसे साधनकिये तपका नाम कच्छ्रहै चाहे तप छोटा होय या बडाहोय—इसी नियमसे छोटी बड़ी इत्याओं की शुद्धि के योग्यही कच्छ्र हीसक्ता है—तो इस मार्ग से यह न्याय ठहिरा कि हाथी को इत्यापर जहाँ पांच बैल देनेकहे तिनको न देसके सो दोमास भर गोमूत्रदे रंधे जवोका यावक खायके कच्छ्र तपकरै तो बारहदिन वाले पांच प्राजापत्यकी वरावर प्रायश्चित्त ठहिरै एवं गददा आदि के बधपर जहाँ एकही बैल देना कहा तिसको न देसकने में एकही प्राजापत्य करै जो बारह दिनमें होता है एवं जहाँ तीन वर्य का बछरा देना कहा तहाँ नौ दिनमें तीनपाद प्राजापत्य करै जहाँ दो वर्य का बछरा देना कहा तहाँ छः दिन में आवा प्राजापत्य करै जहाँ २७२ के श्लोक में गायदेनी कही तहाँ चौबीस

दिनमें दो प्राजापत्य करें जहाँ कलोरि देनीकही तहाँ एक पखवारेका उपवासकरै
 जहाँ २७३ के श्लोक मे घीसे भरा घडा देनाकहा तहाँ तौ दिन में पौन प्राजापत्य
 करै जहाँ वखकादान करना कहा तहाँ घीड़ेकी वडाइे आदिके अनुसार एकमहीने
 वाला चांद्रायण या चौबीस दिनका या पंद्रह दिनका व्रत करै जहाँ लोहे का दंड
 देना कहा तहाँ तीनदिनका व्रतकरै जहाँ तिलोंका दान करना कहा तहाँ तीनदिन
 का उपवास करै(फिर इन व्रतोंका परिवर्तन बदल भी जिस रीतिके व्रतों साय धर्म
 शास्त्रके विज्ञाता पुरुष विचारि के ठहिरावैं सोभी दोयीकी दशाके अनुसार कोम-
 लताके निमित्त माना जासक्ता है) और भी (जिन जीवोंके नाम यद्यपि नहीं लिखे
 गयेहैं तिनके मध्ये २७५ दोसौ पचहत्तरिका मूलश्लोक देखो परन्तु जे कोई जीव
 इन्हींके समान समक्षेजायँ जिनकेनाम यहां तक लिखिचुके तौफिर इसी व्यवस्था
 के अनुसूप उन जीवोंकी उपमा इनमें से हुंदि मिलाइ के त्रिज बुद्धि से प्रायश्चित्त
 कल्पित करलेना चाहिये ॥ ० ॥ सामान्य कृच्छ्र शब्द की व्यवस्था जैसी अनेक
 भेदों में लिखि चुके तिसका प्रमाराभी अथोक्त गौतमका वचन देखो=यथाहगौत-
 मः=संवत्सरःयसामासाश्चत्वारस्त्रयोदशविक्रश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशदशद्वयदहस्यहोऽराध
 इतिकलनाएतेऽन्येवाऽतितेष्टोविकल्पेनक्रियेरत्नेनसिगुरुग्रायस्त्रिगालधुनिलघूनीति=
 अर्थात्-एकवर्ष-एक छमाही-चारमहीना-तीनमहीना-दोमहीना-एकमहीना-चौ-
 बीसदिनका-बारहदिनका-छःदिनका-तीनदिनका-एक दिनरातिका भी तप होताहै
 यह कृच्छ्रोंकी कलना अर्थात् गणना गिनती कही (पर इतनेही नहीं किन्तु और
 भी अनेक गिनतीके होतेहैं तिससे) ये इतने या और जे कोई कृच्छ्र तप होते हों
 तिनकी अति देशके न्यत्रोंपर विकल्पसे वर्तै किन्तु बडे पापसेबडे कल्प और छोटे
 पापमें छोटे कल्पों की यथा योग्य सोचिके ॥२७५ ॥

(अतिसूक्ष्मजंत्वा दिवधप्रायश्चित्तं)

फलपुण्यांतरतजसत्वपातेघृताङ्गनम् । किंचित्तास्थिमतादिषं प्राणायामस्त्वनास्थिके २७५

अर्थः-फल-पुष्प-अंत-रसोंसे उत्पन्न प्राणियों के धातमे घीचाटना=अर्थात्-
 गालर आदि बहुधा फलोंमें और मधुक आदि बहुधा फलोंमें बहुत नन्हे जीव होतेहैं
 और बहुत दिनोंकी धरीहुई खानीपीनी चीजें और लकड़ीआदि चीजों के बीचमेंभी
 छोटे जन्तु होजातेहैं तथा मोटे खटमधुरे आदि रसों में भी जीव पडिजाते हैं • इन
 जीवों का प्राण विनाश के घीचादिजाना उतना कि जितने से मनकी शुद्धि प्राप्त

होसके यही प्रायश्चित्त है । हाड़वालों के घातमे कुछ दान करना चाहिये विन हाड़वालोंके घातमें प्राणायाम=अर्थात्-फल फूल आदिसे उपरालू जो प्रत्यस कुछ बड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संसार में अनन्त जीव हैं सबके जुड़ेना कहां तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे एकही दो प्रायश्चित्त दर्शाते हैं कि—यदि हाड़वाला कोई एक जीव केकलागंगा आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरै•यद्वा विन हाड़वाला कोई छोटाजीव भींशुर ततैया आदि विनाशकियाहो तो प्रत्येक जीवकेमध्ये एकप्राणायाम जैसा संश्याकेउपासनमें होताहै सोकरै तिससेशुद्धिहोजातीहै॥२७५॥

२७५ अधिकोक्तिः=घृताशनन्तुमिताक्षरा-पूर्वार्ध में जहां घीका चाटना कहा तिसके मध्ये मिताक्षरा में यह व्यवस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करै क्योंकि प्रायश्चित्तोंका रूपहै तपस्या सो किंचित घी चाटने से नहीं मानो जासक्तीहै• यहीवात अंगिराके अप्रोक्त वचनसे पाई जातीहै=यथाहांगिराः=प्रायानाम तपःप्रोक्तंचित्तनिप्रचयउच्यते तपोनिश्चयसयुक्तप्रायश्चित्तंतदुच्यते=अर्थात्-प्रायस्-चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धरायाहै—तिससे किंचित घी चाटना ठीक नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा—और मूलश्लोक में साफ साफ यही कहाहै कि (घृताशनंकिंचित) और (देयंकिंचित) अर्थात् किंचित शब्दकी योजना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अर्धामें प्रत्यसहै तो इसद्विविधा श्रे दोनों तरहसे व्यवस्था समझिलेनी कि जहाँ थोड़े श्रेफलफल आदिके जीव सरै तहाँ किंचितही घी चाटने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिकजीव मरेहों तहाँ निपट घी खायके उपवास करना भी उचितहै । वही किंचित देयके साथहै कि हाड़वाला कोई एकही जीव मरजाने में किंचित देना चाहिये तहाँ किंचित कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करनाचाहिये चाहें अन्न वा नगदी आदि जो कुछ वनिपरै फिर उसी किंचितका दूसरा अर्थ आठ मुट्टी भी कहाता है जैसा (अयमुष्टिभवेत्किंचित्) यह २७४ की अधिकोक्तिमेंभी आचूका है कि आठ मुट्टी भरनाज किंचित् कइताहै जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है—इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि जो धान्य आदि कोई नाज दानकरै तो एक जीवकी इत्यापर यही आठ मुट्टी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरै तो उसी किंचित् के अभिप्राय से तांत्रिका एक परा एक जीवकी इत्यापर देना चाहिये• क्योंकि (अस्थिसतांबवेपरादेयइतिसुसंतः) समन्तुने

दिनमें दो प्राजापत्य करै जहाँ कलोरि देनीकही तहाँ एक पखवारेका उपवासकरै जहाँ २७३ के श्लोक मे घीसे भरा घडा देनाकहा तहाँ नौ दिन में पौन प्राजापत्य करै जहाँ बखकादान करना कहा तहाँ घीड़ेकी बड्डई आदिके अनुसार एकमहीने वाला चांद्रायण या चौबीस दिनका या पंद्रह दिनका व्रत करै जहाँ लोहे का दंड देना कहा तहाँ तीनदिनका व्रतकरै जहाँ तिलोंका दान करना कहा तहाँ तीनदिन का उपवास करै (फिर इन व्रतोंका परिवर्तन बदल भी जिस रीतिके व्रतों साथ धर्म शास्त्रके विज्ञाता पुरुष विचारि के दहिरावैं सोभी दोषीकी दशाके अनुसार क्रोमलताके निमित्त माना जासक्ता है) और भी (जिन जीवोंके नाम यद्यपि नहीं लिखे गयेहैं तिनके मध्ये २७५ दोसौ पचहत्तरिका मूलश्लोक देखो परन्तु जे कोई जीव इन्हींके समान समक्षेत्रायँ जिनकेनाम यहां तक लिखिचुके तौफिर इसी व्यवस्था के अनुरूप उन जीवोंकी उपमा इनमें से हुंदि मिलाइ के निज बुद्धि से प्रायश्चित्त कल्पित करलेना चाहिये ॥ ० ॥ सामान्य कृच्छ्र शब्द की व्यवस्था जैसी अनेक भेदों से लिखि चुके तिसका प्रमाणाभी अग्रोक्त गीतमका वचन देखो=यद्याहगीतम=संवत्सर,यसामासाश्चत्वारस्त्रयोद्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोदादशाहःषडहस्यहोऽरात्र इतिकलनाएतेऽन्येवाऽतिदेशेविकल्पेनकिथेरन्नेनसिगुस्तिगुस्तिगालधुमिलधुनीति=अर्थात्-एकवर्ष,एक रुमाही,चारमहीना,तीनमहीना,दोमहीना,एकमहीना,चौबीसदिनका,त्रारहदिनका,छःदिनका,तीनदिनका,एक दिनरातिका भी तप होताहै यह कृच्छ्रोंकी कलना अर्थात् गणना गिनती कही (पर इतनेही नहीं किन्तु और भी अनेक गिनतीके होतेहैं तिससे) ये इतने या और जे कोई कृच्छ्र तप होते हैं तिनको अति देशके स्थलोंपर विकल्पसे वर्ते किन्तु बड्डे पापमेंबड़े कल्प और छोटे पापमें छोटे कल्पों की यथा योग्य सोचिके ॥२७५ ॥

(अतिसूक्ष्मजंत्वादिवधप्रायश्चित्तं)

फलपुष्पांतरसजसत्वघातेषृताशनम् । किंचित्सास्थिमतादिव्यश्राणायामस्त्वनास्थिके २७५
अर्थात्-फल, पुष्प, अंत, रसोंसे उत्पन्न प्राणिक्रमों के घातमें घीघ्रातना=अर्थात्-गालर आदि बहुधा फलोंमें और मधुक आदि बहुधा फूलोंमें बहुत नन्हे जीव होतेहैं और बहुत दिनाकी धरीहुई खानीपीनी चीजें और लकड़ीआदि चीजों के बीचमेंभी छोटे जन्तु होजातेहैं तथा सीते खटमधुरे आदि रसों में भी जीव पडिजाते हैं, इन जीवों का प्राण विनाश के घीघ्राटिजाना उतना कि जितने से मत्की शुद्धि प्राप्त

होसके यही प्रायश्चित्त है । हाड़वालों के घातमे कुछ दान करना चाहिये विन हाड़वालोंके घातमे प्राणायाम=अर्थात्-फल फूल आदिसे उपराल जो प्रत्यस कुछ वड़े जीव होतेहैं जिनका नाम कहीं नहीं लिखा क्योंकि संसार में अनन्त जीव हे सबके जुड़ेना कइौ तक लिखे जायँ तिनके मध्ये सामान्य रीतिसे एकही दो प्रायश्चित्त दशाति है कि-यदि हाड़वाला कोई एक जीव केकलागंगा आदि विनाश किया हो तो प्रत्येक जीवके मध्ये कुछ कुछ अन्न वा नगदी आदि दानकरै•यहा विन हाड़वाला कोई छोटाजीव भींशर ततैया आदि विनाशकियाहो तो प्रत्येक जीवकेमध्ये एकप्राणायाम जैसा मध्याकेउपासनमें होताहै सोकरै तिससेशुद्धिहोजातीहै॥२७५॥

२७५ अधिकोक्ति=घृताशनमुमिताक्षरा-पूर्वार्ध में जहां घीका चाटना कहा तिसके मध्ये मिताक्षरा में यह व्यवस्था है कि निपट घीखाय के एकदिन उपवास करै कौंकि प्रायश्चित्तोंका रूपहै तपस्या सो किंचित घी चाटने से नहीं मानो जासक्तीहै• यहीवात अंगिराके अग्रोक्त वचनसे पाई जातीहै=यथाहांगिराः=प्रायानाम तपःप्रोक्तंचित्तनिश्चयउच्यते तपोनिश्चयसयुक्तप्रायश्चित्तंतदुच्यते=अर्थात्-प्रायस्-चित्तइन दो शब्दोंका अर्थ है कि प्रायस् तप कहाता है चित्त निश्चयका नाम है सो तप और निश्चय मिलिकर प्रायश्चित्तनाम धरायाहै-तिससे किंचित घी चाटना ठीक नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा-और मूलश्लोक में साफ साफ यही कहाहै कि (घृताशनकिंचित्) और (देयकिंचित्) अर्थात् किंचित शब्दकी योजना पूर्वार्ध उत्तरार्ध दोनों अद्वामें प्रत्यसहै तो इसविधा से दोनों तरहसे व्यवस्था समझलेनी कि जहाँ थोड़ेसेफलफूल आदिके जीव सरे तहाँ किंचितही घी चाटने में शुद्धि होजायगी परन्तु जहाँ कुछ अधिकजीव सरेहों तहाँ निपट घी खायके उपवास करना भी उचितहै । वही किंचित देयके साथहै कि हाड़वाला कोई एकही जीव मरजाने में किंचित देना चाहिये तहाँ किंचित कुछ का अर्थ तो प्रधान है कि कुछ दान करनाचाहिये चाहे अन्न वा नगदी आदि जो कुछ दानपरै फिर उसी किंचितका दूसरा अर्थ आठ मुट्टी भी कहाता है जैसा (अस्पृष्टभवेत्किंचित्) यह २७४ की अधिकोक्तिमेंभी आचूका है कि आठ मुट्टी भरनाज किंचित् कहाताहै जो केवल पाउ भरके अनुमान होसक्ता है-इसपर मिताक्षराकार कहिते है कि जो घान्य आदि कोई नाज दानकरै तो एक जीवकी इत्यापर यही आठ मुट्टी भर देना चाहिये जो नगदी दानकरै तो उसी किंचित् के अभिप्राय से तांत्रिका एक परा एक जीवकी इत्यापर देना चाहिये•क्योंकि (अस्थिमतां वधेपरतो देयइतिसुभंतः) सुमन्तुने

से सांपकी जुदीजाति है शायद इसीको दुमुही कहते हैं। इनमें किसी एकही की हत्याकरै सो ब्राह्मणोंको भोजन करावै और पूर्वोक्त रीतिका बनाहुआ लोहेकादंड दक्षिणादेवै ॥ पराशर कहितेहैं कि०मेही०कजुवा०गोह० खरहा० शल्यकी० इनकी हत्यामें बैंगन और गुंजा गोंधुचीके पत्ते आदि खाइके व्रतकरै सो एकदिन राति भर में शुद्ध होताहै ॥ पराशरकहितेहैं कि०मृग॥ हरिणा०रोही बनजीव जो वृक्षपर चढ़ि जानेवाले वानर वियखपरा आदि होतेहैं०वराह०भेड०वकरा०भेडहा०युगाल० रीड० तरसू तेंदुआ तरख०इनमें किसीकी हत्याकरै सो एक प्रस्य परिमान तिलोंका दान करै और पूर्वोक्तरीतिसे वायुको पीकर तीलदिनतकव्रतकरै ॥ पराशरकहितेहैं कि० हाथी०मेडा०घोडा०ऊ०र०गवय नोलगाय रोभ इनमें किसीकीहत्याकरै सो एकदिन रातिका उपवास और तीनों संध्या के समय तीर्थ स्नान प्राणायाम करै ॥ पराशर कहितेहैं कि०गदहा०बन्दर० सिंह०चीता०वाघ०इनमें किसीकी हत्याकरै सो तीनदिन राति वायु को पीके निराहार उपवास करै और इन सभी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तों के पीछेसे यथाशक्ति सरव्यासे ब्राह्मणोंको भोजनकरावै यह विशेष नियम सर्ववसवके साथ समुभिलेना=और=यह भी यादराखना कि जिन जीवोंकेनाम इस व्यवस्था में न लिखेहैं और लोकमें नास जिनका प्रसिद्ध होय तो उन जीवों की हत्यापर इस व्यवस्थासे वेही प्रायश्चित्त हुँदिलेना कि जो जो उन जीवोंके तुल्य डील डोलवालों के नामसे इसमें लिखेहैं वनजीवों के साथ वनजीवोंकी उपमा और जल जीवोंकी पक्षियों के साथ पक्षियों के डीलडौल या उनके आचरण आदि एक से मिलाकर कामचलाना यह न्यायका स्वरूप है=इसीप्रकार=औरभी विशेष स्मृतियोंके बचन कहीं देखि परै तिनको भी न्युनाधिक विषय भेदसे कल्पना करिके समुभिलेना और परस्पर बचनों का विरोध बचाते रहिना २७५ ॥ यह व्यवस्थाभी इसी दीसों यहहत्तरि अधिकोक्ति का शेष है २७५ ॥

इतिनरेतरसर्वप्राणिहिंसाप्रकरणं ॥

इस प्रकारसामें एकही यह चीवनका परिच्छेद है दूसरा नहीं ॥

सब जीवोंकी हिंसा बर्णन होचुकी अब अगले परिच्छेद में इसी हिंसाके प्रसंग से वनवृक्ष आदि काटने तोड़ने उखाड़ने के प्रायश्चित्त बर्णन होंगे क्योंकि यह भी एक जड़ स्थावरोंको दुखदेना या बिनाश करदेना जड़जीवोंकी हिंसाहै और इसका उद्देश भी २४० दोसोचालिस मूलश्लोक से उपपातकों में आचुकाहै उसकी संवंधी

और जखरी अन्यबातोंको भी खींचिके यहां दशविंशे कि जिनका चर्चा वहांपर न होसकाहो सो सब आगे देखो ॥

अथ वृक्षगुल्मलतादिसर्ववनस्पतिच्छेदनोपपातकप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःपंचपंचाश्रनम (५५) ॥

इसपरिच्छेद में सबतरहकी वनस्पति वृथा काटने या तोड़ने वा उखाड़डारने आदि किसी प्रकारसे बिनाश कर देने में मध्ये प्रायश्चित्त कहे जायेंगे चाहें बड़े वृक्ष हों या गुल्म लता बीरुध आदि छोटे औषधियों पर्यंत कोईसी वनस्पतिहोय ॥

(वृथादिच्छेदनप्रायश्चित्त)

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृकशतम् । स्यादोपधिवृथाच्छेदेषीराङ्गीगोऽनुगोदिनम् २७६ ॥

अर्थः—वृक्ष•गुल्म•लता•बीरुध इनको काटने में ऋचाओं का शतक जपनाहोय तथा औषधिके वृथा काटनेमें एकदिन गौश्रांके पीछे फिरके दूध पीवै=अर्थात्—फल देनेवाले, आंव कटहरआदिके पेड़ और गुल्म जो वनवागोंमें भाड़ी हुआकरतीहैं लता जो हरतरहकी वेलिफल देनेवाली प्रसिद्ध होयें एवं बीरुध जो वन में बड़ी मोटी वेलि अधिक फैलती हैं। इत्यादि और भी इसी नमनेपर समझिलेना•इनमें से कुछ प्रयोजन बिना अर्थात् यज्ञादि जखरी कामों के बिना जो कोई कुछ काटे या तोड़े वा उखाड़े तिसको गायत्रीआदि पवित्र ऋचाओंका एक सैकरा जपना चाहिये=तथैव=जो वन की या वस्ती के समीप उत्पन्न होनेवाली हरतरह की औषधियों में किसी पेड़को रोगादि प्रयोजन के बिना उखाड़डारै या तोड़े तिसको यह प्रायश्चित्त है कि प्रातःकाल से सांभतक गौश्रांकी नरिहाई के पीछे पीछे उनकी उचित सेवाकरता फिरै पुनि रात्रि में थोड़ासा कच्चादूध पीके वतराखै तब शुद्धहोय ॥ २७६ ॥

२७६ अघिकोक्ति—यज्ञादि कामों के बिना•इस कथन का यह तात्पर्य है कि रोजके जखरी पंचयज्ञोंके निमित्त फलफल आदि या सूखी लकड़ी तोड़ने का दोष नहींहै—और दूसरा यह तात्पर्य है कि तोड़ने काटने का दोष जो कहा गया सो भी केवल उन वृक्षादिकोंकी अपेसापर आरुह है जो अपने फल फूल पत्र छालि रोंद आदिसे ससारका उपकार करतेहो—इसकेमध्ये यह वचन भी प्रमाराहै कि=फलदा नांतुवृक्षाणांछेदनेजप्यमृकशतमगुल्मवल्लीलतानांतुपुष्पितानांचबीरुधाम्=अर्थात्—

साफ यही कहा है कि हाइवाले जीवोंकी एक इत्यापरसक्त=इसपरा शब्दको अर्थात् कई अर्थ होते हैं कि सोने की अशरफी या चाँदी का रूपया या ताँबेका पैसा जो जिस राजके व्यवहार में चलता हो (क्योंकि परा और नाराक ये दो नाम सिक्के सरकारीके हैं) परन्तु यहाँ छोटे प्रायश्चित्तपर ताँबेकापरा समझना उचित है और पैसा अर्थात् सोरहसासेका होता है तिसको भी ताँबेकापरा समझते हैं तथापि शास्त्र की स्यादासे रूपयेकी सोरहकला अर्थात् आनेपरा समझने क्योंकि ताँबेके पराओंमें एक आनाही प्रधान है—किन्तु इसप्रायश्चित्तमें जो कुछ उचितज्ञानो सो मानो तहां यदि आठ मुट्ठी नाज के विकल्प को सोचै तबतौ उसके जबाब में केवल ताँबे का पैसा सर्वाधिक परता है अन्यथा जो शास्त्रके व्यवहारपर ध्यान दिद्याजाय तौ फिर ताँबेका परा ठीक ठीक एक आना बहिरता है—परन्तु इन बातोंकी अपेसा जैसा योगीश्वरने मूलप्रलोकमें कहा तैसा उद्योका त्यों वही किञ्चिदर्थ ठीकथा कि जो कुछ इच्छा नै समाप्त सो योगी बहुत दान करै—तिसके ऊपर धान्य और हिरण्य नाम धरिके फिर सेवे छोटे अर्थ दण्डियेयै इस व्याख्याको जखरत कुछ नहीं थी कि (अस्त्य मतां कुरुता यदि प्राणिनां प्रत्येक ववे किंचिद स्वल्पं धान्य हिरण्यं दिकं देयं तत्र किंचिदिति यथा हिरण्यं दीयते तथा परामात्रं अस्त्यमतां ववेपरादीय इति सुमंतस्मरणात्) अर्थ इसके लख ऊपर लिखिचुके ॥ २७५ ॥ अब नीचे वह व्यवस्था लिखी जायगी कि जब किसी जीव ने किसी तरह का अपराध किया अर्थात् खेत खाद्य जानाआदि नुकसान या ऊपरसे इगिदेना आदि किसीतरह का दुखदिया हो ऐसेही नाचा भाँतिके उपद्रव कहते हैं जो किसी जीवने कुछ कोई सा उपद्रव किया तिसके पलटे क्रोधमें आकर जिस किसीने उस जीवको मारडारा ही तिसके लिये भी अति छोटे प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखवा ॥

(अथ अपराधकृतप्रतिकारे सर्वजंतुवधप्रायश्चित्तं) ॥

अत्राह पराशरः—हंसवारस्यकालाहको वक्रकुर्यात्तकः स्यूरमेयौ इत्याचरकभक्तौ न शुद्ध्यति मुद्गद्विद्विभ्रं चैव शुकंपारावतंतथा । आँडिकांचवक्तइत्याशुद्वेनक्तभोजनात् चायकाककपोताणां कारितित्तरघातकः अन्तइजले उभेसंध्येप्राणायामेनशुद्धातिगृह प्रयेनविहंगाना मूलकस्यचयातकः अपक्षाशीदिनंतिथे तद्वैकालौमारुताशकः इत्याशुय कमानारसर्पा जगरहुंडुभात् । प्रत्येकभोजयेद्विप्रासलोद्वेदश्चदक्षिणा सेधाकचहपरा

घानां शशशल्यकघातकः पृंताकफल गुंजामीअहोरात्रेणाशुद्धतितमृगरोहिबराहागा
 सविकावस्तघातनेत्यजब्रुकञ्जसारांतरसूरांच घातकः तिलप्रस्थत्वसौदयाद्वापुभसो
 दिनत्रयसमाजमेयतुरगोयुग्मवयानां निपातने प्रायश्चित्तमहोरात्रिसम्यचावगाहनम् ख
 रवानरसिंघानां चित्रकच्याप्रघातकः शुद्धिमेतिविरात्रेणाव्राह्मणानाचभोजने रिति=
 अर्थात्—पराशर कहितेहै कि—इस•वदक•सारस•चकवा•क्रौंच अर्थात्सारससे जुदा
 एककरर वा कुररीपक्षी प्रसिद्धहै औरकहींकहींलोकमें टोंक या कोंचवक आदिजो
 पक्षी है तिनको क्रौंचकहिते है ये सब लक्ष्मी गर्दनिकेहोतेहैं। मुरगा•मोर•मेढा• इन
 की हत्याकरिके एकहीवार भोजनके नियमसे शुद्ध होजाता है ॥ मुद्गापक्षी जो देश
 भेदी नामोंसे मोगा मोगदर मूसर कहाताहै•टिट्टिभ टिट्टिहरी•मुवा• पारावत कबू-
 तर आदि• आंडिका अनेकजीव जो धरतीपर झडा धरतेहैं। वगला•इनको मारिके
 रात्रिमें भोजन करनेका नियम राखने से शुद्धहोताहै (इनदोनों प्रायश्चित्तके साथ
 २७४ की अधिकोक्तिवाली व्यवस्थाके अनुसार छोटे बड़े कछोकोदिन भी जोड़ि
 लेना कि वहाँपर जिसजीकी हत्यामें जितनेदिन कछू करना समुझिपर उतने दिन
 तक यह रात्रिमें भोजन वा एकवार भोजनका नियम समझिलेना सोभी उसदशमें
 कि यदि अपराध के प्रतिकारमें पाप बनिगया हो अन्यथा ज्ञानि ब्रूमि हत्या क-
 रने में उसी अधिकोक्ति के अनुसार उतनेदिन कछूही करना चाहिये• इसीप्रकार
 यहाँके अगिले प्रायश्चित्तोंपर युक्ति सोचिलेना (पराशर कहितेहै कि•चाय पक्षी
 जो ससारमें नीलकण्ठ इसनामसे प्रसिद्धहै अतिखुन्दर और सोनेकेवर्ण सरीखी पीली
 चोंचवाला•कौआ•पिंडक पिंडखुरी• मैना• तीतर• इनको मारनेवाला सांभ सवेरे
 दोनों सध्याके ठीक ठीक समयपर जलमें खडाहोके प्राणायाम करिके शुद्धहोताहै
 इसमें भी ऊपरली युक्तिको यथा योग्य सोचिलेना ॥ पराशर कहितेहै कि•गिद्ध-
 बाज आदिपक्षी जोजो बहुतऊँचे आकाशमें उड़तेहै•उलूक उल्लू घुग्घू•इनकीहत्या
 करिके एकदिन इस तरह उपवास करै कि आँचकीपकी वस्तु कुछ न खाय केवल
 कच्चेफल खायके रहे फिर दूसरे दिन सवेरे सांभ दोनो समय कुछ भी न खाय के-
 वल वायु हवा पोके रहे इसकी यह रीतिहै कि जहाँ वन बाग सबक आदिमें बहुत
 उत्तम फलफल आदिकी सुगन्ध वायु बहतिहो तहाँ उसके सन्मुख एक योजन अ-
 र्थात् चारकौसतक हवाको मुखनाक आदि छिद्रोंमें लेता चला जाय तब शुद्धहोय
 यह योजनभर चलाजाना २७० की अधिकोक्ति में मनुके वचनसे लिखिचुके तहाँ
 देखो॥ पराशर कहिते है कि•मूसा•विलती•सांप•अजगरडंडुभ डोडा सांप इसनाम

किसी तरह का गुण उपकार रूपी फल देने वाले वृक्षों के काटने में और इसी प्रकार के फल देने वाले शुद्ध बली लताओं के काटने में तथा पुष्पित वीरुधों के अर्थात् जिनमें कोई अन्य प्रकार से फल नहीं दिख परता हो तथापि जो वीरुध भूमिही वेलि आदि केवल फूलों से लदे हुये दिखनौट वनकी शोभा को बढ़ाते हैं। तिनके भी काटने में प्रायश्चित्त चाहिये=इसके सिवाय जो बातें प्रयोजनकी संसार में प्रसिद्ध हैं दृष्टान्त जैसे खेत खोदना या हलसे जोतना आदि ऐसे प्रसिद्ध प्रयोजनों में औषधीका वृक्ष कटिजाना आदि दोषमें गिनती नहीं है क्योंकि हल खींचने आदिसे जो कुछ दोष उत्पन्न होता है तिसका प्रायश्चित्त बही है जो खलयज्ञ कहाता है अर्थात् नाजकी राशि तैयार होने तक अनेक तरहसे किसान लोग अन्नादिवस्तुओंका दान पुराय जो कुछ उनकेलिये शास्त्रमें लिखा है सो करते रहते हैं उसीसे दोष दूर होजाता है—सबं गऊआदि पशुओंका पालनकरनेके निमित्त जो घासआदिकाटो जाती है उसमें भी प्रयोजनके हेतुसे कुछ दोष नहीं है क्योंकि पशुओं का पालन कर्म भी पंचयज्ञोंका संक अंगभेद है—और भी वशिष्ठजीका जो वचन है सो इसी प्रयोजनपर नियेव और प्रति प्रसवके साथही कहा गया है—यथाह वशिष्ठः=फलपुष्पोपभोग्यान् पादपात्राहंस्यात् कर्षणाकरणार्थंचोपहन्यादिति=अर्थात् फल फूल आदि किसी प्रकारसे भोगने योग्य वृक्षों को न काटे यह नियेव किया परन्तु जोतने के हेतु से धरती साफ करनेके लिये काटे भी यह नियेव कियेहुये का प्रतिप्रसव कहा ॥ ० ॥ परन्तु जहां कहीं स्थान विशेष के हेतुसे काटने पर अधिक दण्ड कहा गयाहो तहां उनके काटने में प्रायश्चित्त भी ऊर्ध्वोक्तसे अधिक लगाया जाता है—यथोक्त=चैत्य श्मशानसीमासु पुरायस्थानेसुरालये जातद्रुमारांद्द्विगुराो दमोवृक्षैतुवियुते=अर्थात्—चैत्य जो ऊँचे वृक्ष अस्तल (स्थल) आदि पर पुराने खड़े होते हैं या मुर्दा फुंफुनेकी धरती श्मशान पर होते हैं या सीमाके चिह्न मानेजाते हैं या राह घाट पथिकोंके विश्राम योग्य होते हैं या जिनसे ग्रामोंका दूरी अन्तर कोस योजन आदि जाना जाता है या जिनके नीचे जंगल में पशुओंको छाया मिला करती है या जिन बड़े वृक्षोंके विशेषणसे किसी ग्राम नगर मुहल्ला देवस्थान खेत रूप आदिका नामही बिख्यात या कोई अति प्राचीन वृक्ष किसी कोरे मैदानमें केवल अपने नामसे बिख्यात होय जिसके होनेसे पुराने कालका प्राचीन चिह्न माना जाताहो या देवालय आदि पुराय स्थानमें कोई वृक्ष नवीनही अपने आप पैदा हुआ या लगाया गयाहो इत्यादि वृक्षों के काटने में दूना दण्ड होता है कि जितना साधारण वृक्षों के काटने पर लिखा हो

तिससे—तो इस दण्डके अनुसार प्रायश्चित्त भी दूना करवाया जाय जितना लिख चुकेहें तिससे ॥ ० ॥ एकसौ ऋचाका जप करना जो कहागया सो केवल पढे लिखे द्विजातियों का विषय है तिससे स्त्री और शूद्र आदि के लिये जपके स्थान पर दंड के अनुसार दो रात्र आदि व्रतही आदेश किया जाय ॥ ० ॥ दोसौ पैसेदि २६५ मूल श्लोक और उसी की अधिकोक्तिसे चवालिस ४४ परिच्छेदमे जो जो प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब सामान्य उपपातकोंपर अतिदेश उतारे गये और इस परिच्छेद की व्यवस्था भी उपपातकों में गिनती होचुकी है तिससे उन प्रायश्चित्तों का अतिदेश भी इसपर जोड़ि लेना चाहिये • और यद्यपि वे प्रायश्चित्त बहुत बड़े ह तथापि यहाँ सेसे विख्यात पंडों के काटने मध्ये दूने किये बिनाही आरूढ होसक्ते हैं • अन्यथा इन वृत्तों से उपरालू सामान्य वृत्तों की वारम्बार काटने के अभ्यास पर भी आरूढ होसक्ते हैं ॥ २७६ ॥

पुंश्चली स्त्रियां और वानर आदि बहुधा दाँत वाले जीवों का मारना जो ऊपर चर्चा किया गया तिसके साथ यहभी सभव है कि जिसकी मारनेपर उताहू कीई होताहै तो वह भी क्रोधमें आकर प्रायः काटि खाताहै इसी प्रसंग से यह बातें यहाँ पर आकर्षणा करी गई है कि यदि कीई सेसे जीवों से काटि खाया जाय तिसकी प्रायश्चित्त करना चाहिये फिर चाहें तैसी दशामें काटा गयाहो कुछ मारनेके समय परही यह नियम आरूढ नहींहै किन्तु काटिखाने से अशुद्धि जो उत्पन्न होती है तिसका प्रायश्चित्त अगले परिच्छेद मे देखना ॥

अथपुंश्चलीवानरखरादिदंष्ट्रिजीवैर्दंष्ट्रपुरुषस्यप्राय

श्चित्तप्रकाशकोऽयपरिच्छेदः षट्षचाशतमः ५६

—२—

इस परिच्छेद मे उस पुरुष के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो किसी मलीन पशु पक्षी आदि जीव या मनुष्यही से काटिखाया जाय तिसकी अशुद्धि प्रायश्चित्त करने के बिना नहीं मितती है ॥

(खरवानरकाकादिदंष्टस्य प्रायश्चित्त)

पुंश्चलीवानरखरैर्दंष्ट्रचोप्रादिवायसे । प्राणायामंजलेकृत्वाधृतप्राशयविशुद्ध्यति २७७

अर्थ—पुंश्चली अति व्यभिचारिणी नारी या वदर या गदहा या ऊँट आदि

मलीन पशु या कौआ आदि मलीन पक्षी यदि मारने आदि किसी दशा में जिसको काटिखायें सो इनसे दूध काटा हुआ जलमें खड़ा होकर प्राणायाम करिके और पीछेसे घी चाटिके शुद्ध होजाता है ॥ २७७ ॥

२७७ अधिकोक्तिः—मूल में जो आदि शब्द आया तिससे और भी कृत्ता जंबूक आदि कटखन्ने मलीन जीवोंको समझिलेना जो इस भाँतिके होतेहैं—यथाहमनुः=च्युगालखरैदंष्ट्राग्रान्यैःकन्ध्याद्भरेवच नराच्योष्टवराहैश्चप्राणायामेनशुद्धयति=अर्थात्—कृत्ता• गोदह• खर• इनसे काटा हुआ या जो ग्राम के रहैया बिल्ली आदि नांस खानेवालों से काटाजाय या आदिमो काटि खाय या घोडा ऊँट सूअर इनसे काटा हुआ द्विजाती पुरुष प्राणायाम करिके शुद्ध होजाताहै=यह धोका चाटना जो कहि चुके सो केवल भोजन के अभिप्राय पर समझना कि शिर्ष धी चाटिके व्रत करै क्यों कि प्रायश्चित्त तपका रूप होतेहे और तप उसीका नामहै जिससे देह को कुछ तप संताप पहुँचै=और यह एकही प्राणायाम जो कहिचुके सो वीभार आदि असमर्थ के निमित्त में समझना क्योंकि सुमन्तुने ज्ञान विधि और तीन प्राणायाम कहे हैं=यदाह सुमन्तुः=च्युगालमृगमहिषाज्जाविक खरकरभनकुलमाजरी मूयिकाऽप वककाकपुरुषदयानामापोद्दिष्यायाद्विज्ञानं प्राणायामत्रयंचर्चति=अर्थात्—कृत्ता•गोदह• वनमृग• भैंसा• वकरा• मेढा• गदहा• हाथी• नेउरा• बिल्ली• मूसाघूमि• अपकक जो बशुलाकी मूरतिके अनेक छोटी बक से होतेहैं• कौआ• मनुष्य• इनसे काटे हुमे पुरुषोंको आपोद्दिष्या आदि ऋचाओंमें अभियेक ज्ञान और तीन प्राणायाम करने चाहिये=यहां तक जो प्रायश्चित्त कहा सो केवल तांदीसे नीचे किसी अगमें थोडा सा काटा जाय• अन्यथा किसी ऊपरले अंगमें काटे या तांदीसे नीचे भी कुछ अच्छी तरह काटे तिनके प्रायश्चित्त कुछ बड़े हैं सो आगे अगिरा के वचन से देखी ॥ ० ॥ यदाहंगिराः=ब्रह्मचारीशुनादष्टस्यहसायंपिबेत्पयः गृहस्थप्रचेत्तद्विराचतुस्रकाहंयोऽनिहोत्रवात् नाभेऽस्वर्तुदयस्यतदेवाद्दिगुराभवेत् स्यादेतन्निसुरां ब्रह्मेस्तके चचतुर्गाम=अर्थात्—यदि ब्रह्मचारी कृत्ता आदि किसीसे काटा जाय सो तीन दिन ज्ञान प्राणायाम सहित ऐसा व्रत करै कि सांभको दूध पीकरहै और जो गृहस्थ काटा जाय तो वह दोही दिन का व्रत करै और जो गृहस्थों में अग्नि होवी पुरुष काटा जाय सो एकही दिन दूध पीने का व्रत करै• परन्तु यह तीनों का नियम केवल उसी दशा में समझना जो नाभि से नीचे काटि खाया हो—किन्तु—नाभि से ऊपर काटि खाने में येही सब तीनों को अपने अपने व्रत दुगुने करने चाहिये और

जो मुखमें कास्मिखायाहो तो बेही व्रत तिथिने करने चाहिये और जो माथेपर काटा गया हो तो बेही व्रत चौथिने करै तब शुद्धहोय ॥ ये प्रायश्चित्त ब्राह्मण के निमित्त परंपरकहेगयेहैं इनमें से सत्रीको पीत और वैश्यको आधाप्रायश्चित्त देनाचाहिये और शूद्र को यदि कृत्ते आदि कोई जीव काटे तब उसके लिये टुहड़ अंगिरा मुनि का कहा विधान बतलाया जाय=यदाह टुहड़गिराः=शूद्राणां चोपवासिनश्शुद्धिदाने नवापुनः गांवाद्याह्वयचैकंब्राह्मणायविशुद्धये=अर्थात्-शूद्रों की शुद्धि केवल उपवास या दान करने मात्र से होती है परन्तु जो उत्तम अर्जों में काटा हो तो एक गाय या बैल का दान करै ॥ ० ॥ इनसे उपरालू जो एक सौ प्राणायाम का प्रायश्चित्त है सो उस दशा पर समझना कि मुख नस्तक आदि उत्तम अंग पर काटने से लार आदि मल ओठों से छुड़ गया हो=यदाह वाशयः= ब्राह्मणास्तुशुनादद्यो नदीगतवासुद्रगान् प्राणायामशतकृत्वाघृतंप्राशयविशुद्धयति=अर्थात्-ब्राह्मण यदि उत्तम अंग में कृत्ता आदि से काटा जाय सो समुद्र में मिली हुई किसी दीर्घ नदी में जाकर स्नान करै तहां जलमें प्राणायामों का सेकरा पूरा करिके पुनि घी चास्कि विशुद्ध होता है ॥ ० ॥ अथस्त्रीणांविशेषः-स्त्रियां यदि कृत्ता आदि से काटी जाय तिनके लिये जुदे प्रायश्चित्त है=तदाह पराशरः=ब्राह्मणानुशुनादद्याजम्बूकेनटुकेरावा उदितग्रह नक्षत्रदृष्ट्वास्यःशार्चिर्भवेत्=अर्थात्-ब्राह्मणी जो कृत्ता या अंगाल भेड़हाआदि किसी से काटी जाय सो काटने के बादि आनेवाली रात्रिमें ग्रह नक्षत्रों को उदय हुये देखि के तत्काल शुद्ध होजाती है किन्तु उदयहोनेतक उपवास राखै=और=जो किसी प्रकार के व्रतआदि नियमों की साधनामें लगिरही हो तिसकेलिये औरभी विशेषता उन्हीं नेकही है=तदप्याह पराशरः=चिरात्रमेवोपवसेच्छुनादयत्तुसत्रतासघृतंयावत्कंभंक्त्या व्रत शयंसमापयेत्=अर्थात् जो व्रतों में लगीहुई कोई नारी कृत्ता आदिसे काटीजाय सो बीचमें उसव्रतादिक नियमकी यांभिकर तीर्निदिनधीके साथअलोना जौका बलिया खायके उपवासकरै तिसपीछे अपनेबाकी नियमको समाप्त करै=सवं=रजस्वलास्त्रियों के निमित्तमें पुलस्त्यमुनिने विशेषनियम कहाहै=यथाहपुलस्त्यः=रजस्वलायदादद्या शुनाजम्बूकरासभैः पचरात्रनिराहारापचगव्येनशुद्धयति ऊर्ध्वन्तुद्विग्रहानामेर्धक्रेतु त्रिग्रहानंतया चतुर्गुणांस्तृप्तंमूर्ध्नि दष्टेऽन्यथाप्लुतंभवेत्=अर्थात्-रजस्वला यदि कृत्ता गौदड़ गवहा आदिसे काटीजाय तो बड़ काटनेके दिनसे लेकर पांच रात्रि तक निराहार व्रत करती और पचगव्यको लेतीहुई रहिकर शुद्ध होती है-परन्तु जो नाभि से ऊपरले अंग में काटीजाय सो इससे दूना दश दिनका व्रतकरै और मुहमें जो

काटी जाय सो तिगुना किन्तु पखवारा भर व्रत करै और मूड़ पर काटी जाय सो चौगुना बीस दिन का व्रत करै तब शुद्ध होय• रजस्रलासे अन्यथा कोई साधारण स्त्री जो काटीजाय सो केवल स्नानसे भी शुद्ध होसक्ती है (रजस्रला स्त्रियों के नियम बहुतवड़े हैं तिनको वैद्यक शास्त्र भावप्रकाश आदि बड़े ग्रन्थोंमें देखो उन्हीं नियमों के हेतुसे यहाँ भी उसके लिये बड़े प्रायश्चित्त कहे गये हैं कि ऐसे प्रायश्चित्तों से शरीरको शुद्धि उसकी न करी जाय तो फिर कृत्ते और चराडाल आदि के स्वभाव लक्षणा वाली सन्तान पैदा होगी ॥

पुरुषेष्वपि विशेषः—जहाँ कृत्ता आदि ने निपट काटा तो न होय पर केवल शरीरको मुंघा या चाटिलियःहो तिसकेमध्ये शातातपने छोटा प्रायश्चित्त कहाहै =यथाहशातातपः=शुनाघातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्यच अग्निःप्रक्षालनंशौचमग्निनाचोपचलनम्=अर्थात्—कृत्ताबिल्लीआदिने देहकोमुंघा या चाटाहो या नख पंजों से खरोचिदिया हो तिसकोलिये जलसे धोयडारना और पीछेसे आंचमें सेकडारना यही शौच रूपी प्रायश्चित्तहै ॥ ० ॥ जहाँ कहीं कृत्ता आदि को काटने नघोत्ने से ब्रण घाव होजाय अथवा दधियार आदि और ही किसी चोटसे घाव होके पकि जायःतिसमें राध पड़जानेसे कीड़े भी परै तिसके वावत मनु ने प्रायश्चित्त विशेष कहाहै=यथाहमनुः=ब्राह्मणस्यब्रणद्वारे पूयशोषातसम्भवे क्कमिरुत्पद्यतेयस्य प्रायश्चित्तकथम्भवेत्त गवांसूत्रपुरीयेणात्रिमन्थ्यस्नानमाचरेत् चिरात्पंचगव्याशीत्वधोना भ्याद्विशुद्धति नाभिकटांतरोद्भूते ब्रणोचोत्पद्यतेक्कमिः यद्दुरात्रंतुव्यहंपंचगव्याग्रान मितिस्मृतम्=अर्थात्—जिस ब्राह्मणको घावके द्वारा रक्त राव पीव होजाने में कौरी पैदा हैं(य तिसका प्रायश्चित्त कैसे होय (घावपूरि जाने के बाद) गोखों के मूत्र और गोबर से तीन दिन तक त्रिकाल स्नान किया करै और पंचगव्य मिलाइ के पिया करै तो उस दशा में शुद्धि होजायगी कि जिसके नाभि से निचले अंगों में राध कीड़े परेहैं• अन्यथा जिसके तोंदी से गले तक बीचके बड में कहीं परेहैं तो क्कमिके परने वावत छः दिन और बिना क्कमि के राध हो जाने वावत तीनही दिन पंचगव्यका पीना आदि सब करै=इस व्यवस्थामे इतना भेद विशेष है कि जिसके कृत्ता आदि किसीके काटनेसे घाव होकर क्कमिपडेहैं सोतो काटने भावके निमित्त का प्रायश्चित्तपड़िले करिके तिसपीछेराध और क्कमिके मध्येअथवाक्तप्रायश्चित्त को भी करै•परजिसके केवल चोटआदिकुछहदियारसे घावहोकरपीव याक्कमिपरै हों सो केवल अथवाक्त प्रायश्चित्त करै जो तीन दिन पंचगव्य पीना आदि कहा॥०॥

ये प्रायश्चित्त भी ब्राह्मणोंके चिन्तितपर कहेगये तिससे ब्राह्मणोंको पूरंपूर और सजी की पीना और वैश्यको आधा और शूद्रको चौथाई भागदेना चाहिये यही इसमें न्याय का स्वरूप है—इतिश्चादिदस्यस्यप्रायश्चित्तानि ॥ इस परिच्छेद में कृत्ता कौआ वानर गदहा आदिसे केवल काटि खाने या चोंच पजामे न घोंटिजाने का प्रसंग है—अन्यथा ब्राह्मण आदि तीन वर्गोंकी नैतिक शरीर शुद्धिके प्रायश्चित्त चौथे परिच्छेद में सर्वसामान्य वर्गान होचुके तही तीसरे मूलप्रलोक और उसीकी अधिकोक्तिमें अच्छी तरह देखो कि सब तरहकी अशुद्ध वा मलीन चीजों के छुड़जाने तथा रजस्वला नारी और चंडाल आदि अधम मनुष्योंको छुड़जाने तथा कौआ चीरह शीघ्र चिमगादर आदि और कृत्ता बिल्ली गर्दभ ऊँट सुअर आदि अशुचि जीवों के छुड़जाने मात्र के छोटे छोटे प्रायश्चित्त हैं जिनसे नित्यप्रति शरीर शुद्धि बनी रहि सक्ती है ॥ २७७ ॥

इतिश्रवादिदस्यस्य प्रायश्चित्तानि ॥

इतिस्थायवरहिसादि प्रकरणा ॥

(इस प्रकरणा में पचपन ५५ और ऋष्यन ५६ के दोही परिच्छेद हैं)

ऊपरले परिच्छेदमें काटिखानेका चर्चाया जिससे शरीर की एक धातु अर्थात् (त्वचा) खाल कटिजाती है और उसीसे दूसरी धातु रक्त और तीसरी धातु मांस और चौथी धातु मेदा और पाँचवीं धातु हाड और छठी धातु मज्जातक विरलेधाव से कटिजाती या गलिके राधि होजाती है तभी कीड परते हैं यह सब उसीके ध्वन्यर्थ में वर्णन होगया अर्थात् जो राधि और कीरा परनेके प्रायश्चित्त कहेगये सो सब इनहीं धातोंकी हानिपर समझने—तहां एक सबसे अन्त का मातवां धातु शुक्ल वीर्य है तिसकी हानिका प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेद में जाकर मात्र से जुदा कहा जायगा क्योंकि उसकी हानि भीजुदे प्रकारोंसे होती है कृत्ता काटने आदिके द्वारा नहीं होती ॥

जपिडासैःशुचि देखने में सावित्रीजपै और चपलतासे झूठ बोलि के भी=अर्थात्-
किसी अपवित्र चीज वा ठिकानेका दर्शन अचानक होजाय तो अपने स्थानपर आ-
कर आसन विद्याने आदि विधिके साथ बैठकर सविता देवता सूर्यनारायण की
स्मृत्ता (तत्सवितुःइत्यादि) एकमालाजपै तथा इसी गायत्रीकी वह पुरुष जपै जिसने
हासी वट्टा आदि की चपलता में झूठ बहुत बोला हो (इसका यह तात्पर्य है कि
हासी आदिके बिना अक्रस्मात् झूठ जिसने बोलाहो तिसको इससे बड़ा प्रायश्चित्त
चाहिये और जिसने किसी मामिलेपर असत्य बोलाहो तिसके बहुत बड़े प्रायश्चित्त
हैं धरापानवाले प्रकारका में कहिचुके और बढ़ापनका रूपदेखीं २६के प्रतीक वा
उसीकी अधिकोक्ति में ॥ २७६ ॥ .

२७६ अधिकोक्तिः—यद्दृश्यवस्था जो कहीमई सो ऐसी दशापर समझनी कि
जहाँ जलमें छाया और अशुचिस्थान वा वस्तु देखने या हासी आदिमें झूठ बोलने
का बचाव होसके हुये न किया हो अन्य या अपने प्रयत्न से बचाव करते हुये भी
बचाव न होसका हो तिसकेलिये अयोक्त सनुवचनके अनुसार केवल आचमन क-
रना सूचित होताहै=यदाहमनुः=सप्तवाभुक्त्वाचसुत्वाचनिशीव्याप्यनृतानिचपीत्वा
११पी११येयमानस्यआचामेत्प्रयतो११पिसन्=अर्थात्=सोइके•कुकु मूली गांडा आदि
खाइके•छींक आजानेसे• खंखार थूकनेसे• बिनाचाही लाचारी की असत्य बोलने
से•कोई पतरीचीज रस दूध आदिजल पर्यंत पीनेसे•पड़ना आदि पाद करनेसे• इन
सबसे जब निपटै तभी आचमन अर्थात् अच्छीतरह कुला करै यही प्रायश्चित्त है=
इसके सिवाय जो संवर्तका वचन है कि=सुतेनिशीवनेचैवदंतप्रिलयेतथा११नृते पति
तानांचसंवादेदक्षिणांशवशांस्पृशेत्=अर्थात्=छींकनेपर•थूकनेपर•दांतमें कुकूलगाहीने
पर•नया असत्य के सुननेपर•पतितों के साथ बात कहिनेपर• दाहिनाकान अपना
स्पर्श करडारै=सो यह कानका छुनामात्र किसी अतिशय थोड़े प्रयोजनोंपर अथवा
जहाँ निपट जलकी प्राप्ति न होसके तहाँपर समझना कि अबलाचारी में और क्या
होसता ॥ २७६ ॥

योगोचरने२३६ दोलीछत्तीस मूलप्रलोक में क्षत्री वैश्य शूद्र और स्त्रियोंका वध
गिनतो कियेके बाद (निंदितायैापजीवन और नास्तिक्य) येदोनो उपघातक दशाये
थे तिनका भी प्रायश्चित्त इसीस्थलपर क्रमसे कहिना चाहिये सो लिखते हैं ॥

निदितार्थोप जीवनके अर्थमें स्त्री वा पुरुष आदिका बेंचना भी समझना ॥

(निदितार्थोपजीवनस्यनास्तिक्यस्यचप्रायश्चित्त)

इन दोनोका मुख्यस्वरूप २३ ई मूलप्रतीक में देखो परन्तु यहाँपर नास्तिक शब्द से भी वेदकी निन्दा करनेके द्वारा उपजीवन ठाहरायागया है—इनके प्रायश्चित्तयद्यपि योगीश्वरने जूदेनहीं कहे तथापि २६५ दोसोंपैसटि मूलप्रतीक और उसी की अधिकोक्ति में योगीश्वर और मनुके कहे सामान्य उपपातकाँवाले प्रायश्चित्त जो ४४के परिच्छेद में बर्णन होचुके हैं वेही सब इनकेमध्ये दोगीकी जाति और शक्ति गुणा दोगीकी तौलके अनुरूप यथायोग्य समझिलेना—परन्तु—वशियने इन दोनोकी अपेक्षापरजुदे प्रायश्चित्तभीदशयिहैं—यथाहवशियः=नास्तिक कृच्छ्रकृच्छ्रादशरावंचरि ह्वाविरनेनास्तिक्यात् नास्तिकवृत्तित्त्व्यतिहृच्छ्रमिति=अर्थात्—नास्तिकताकीवात् चीतकरनेवाला बारहदिन कृच्छ्रव्रत करिके नास्तिकताकी बातोंसे हाथखींचें और जिसने उसी नास्तिकता से जीवनकी वृत्ति खड़ी करी होय सो प्राति कृच्छ्र करिके उस वृत्तिसे हाथ खींचें—सो यह प्रायश्चित्त भी सकहीचार नास्तिकता करनेवालेपर आछदहेअर्थात् ४४परिच्छेदवाले बड़े प्रायश्चित्त उसकीलिये समझना जिसनेनास्तिकता का बहुत दिन अभ्यास किया हो=इसके सिवाय जिसने बड़ी दृढता के साथ बहुतकालतक नास्तिकता सेवनकरीहोय तिसकीलिये आगेशखऔर हारीतकेवचन देखी ॥ ० ॥ यदाह शखः=नास्तिकोनास्तिकवृत्ति कृतघ्नःकटव्यवहारीमित्याभिर्यु सो इत्येतेपक्षवत्क्षत्राह्मणागृहेभैक्ष्यचरेयुः=हारीतेनतु=नास्तिकोनास्तिकवृत्तिरितिप्रक्रम्य प्रंचतापोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुत्तिद्युरिति श्रोत्रमव्याद्धिमंतेष्विति=अर्थात्—शखने यह कहा है कि नास्तिक नास्तिकवृत्तिवान् कृतघ्न जो किनीके किये उपकार को भेटे कूट न्यवहारी जो खानी पीनी चीजों में निजावटकरे मित्याभिशंती जो सच्चे पर भूटा पाप लगावें ये पाँचों एकवर्ष भर ब्राह्मण के घरमें भीख माँगि खाया करें और सच्चे नियम साथे तब शुद्ध होयें=हारीत नेभी नास्तिक और नास्तिक वृत्ति आदिके नाम धरिके उन सबकेलिये तीन भाँति से तपस्यारूपी प्रायश्चित्त कहे हैं कि—श्रीषकाल में पचारिन तपें और वर्षाकाल में वरसते हुये मेघों को श्रुने आकाश के नीचे बैठिके मूडपर भुलें और हेमंत शीत ऋतु में जलाशय की प्रवाह धारा में बैठिके ध्यान करें=शख और हारीत दोनों का कथन मिलाइ के यह तात्पर्य ठाहरा कि एक सालभर ऐसा तप करने हुये ब्राह्मणों के

अथवीर्यखंडनाद्युपपातक प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं

पारच्छेदः सप्तपचाशतमः (५७)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप कहा जायगा जो देहका सातवां धातु शुक्र वीर्य किसी तरह से बिगाड़ि देनेमें होते हैं या जलमें मुड़ छाया देखि लेनेपर या कोई अशुचि वस्तु देखि लेनेपर या निर्दित उपजीवन या नास्तिकता खड़ीकरने पर प्रायश्चित्त कराये जातेहैं ॥

(वीर्यपातप्रायश्चित्तं)

यन्मद्यरेतइत्वाभ्यास्करैरेतोऽभिमन्वयेत् स्तनान्तरंभ्रुवोर्मध्येतेनानामिकयास्पृशेत् २७८ ॥

अर्थः—(यन्मद्यरेतः) इत्यादि इन दो संज्ञों से गिरे हुये रेतसको अभिमन्वित करै उस अभिमन्वित कियेसे अनामिका से लेकर स्तनों के बीच और दोनों भोंहके बीच स्पर्श करै—अर्थात्—सनुष्यको ब्रह्मचर्यसे रहना उचितहै कि देहके वीर्यकी हानि न होने देवे यथा गृहस्थी होय सो भार्याके सम्भोग विना वीर्यको निरर्थक न गिरावे—इसपर भी कदाचित् कामदेवकी प्रवलता अपने इतसे या स्त्र आदि और ही किसी दशामें वीर्यपात होजाय तब यह एक प्रकारका उपपातक आरूढ होताहै तिसकी शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्तहै कि—(तन्मद्यरेतःपृथिवीं० अस्कांपुनर्नामैरिविन्द्रिय) इन दो श्वाश्रों का स्वरूप जैसा देवोक्त संज्ञोंमें उपस्थितहै तैसा दोनों की पाँडकर अपने गिरेहुये रेतस्वीर्यको तत्कालही अभिमन्वित करै फिर सबसे छोटीछयनियों के पासवाली अनामिका उँगुरी से किंचिन्नात्र स्पर्श करै संज्ञोंको पढ़तेहुये हृदयमें विभूतिकी तरह लगावै और, माथेके नीचे दोनों भूङ्गीके बीचमें छुआवै तिस पीछे स्नानआदि शौचक्रिया जो उचितहोय सो करै तब इसउपपातकसे शुद्धहोताहै २७८॥

२७८ अधिकोक्तिः—यीनन्मितासराकार विज्ञानेश्वर कहतेहैं कि मूल श्लोक में टीक टीक अर्थ यहीहै जो लिखा गया परन्तु विरले टीकाकारोंने यह तात्पर्य मानिकर कि गिरा हुआ वीर्य फिर छुना न चाहिये क्योंकि अशुचि होजाता है तिससे इत असली अर्थको छोड़िके और ही अर्थ लगायाहै कि—जलमें तेन गव्दसे खूटा मान कोकि बहुधा अनामिका के साथ धंगूदा भी कुछ उठाने चुकते भरने

आदि में चलता है तिससे अंगूठा और अनामिका दोनों की चुटकी बुद्धिस्य बनाकर हृदय आदि में छुआनी किंतु वीर्य को न छूना चाहिये (किन्तु मूल में त्र्यष्टय शब्द जोड़ने से एक अक्षर बढ़कर छन्दोभंग होजाता तिससे त्र्यष्टयको तीन शब्दही से निर्देशकिया होगा यह तर्कना खड़ी करो है) सो यह अर्थ असत् है क्योंकि बुद्धि को भीतर कोई छिपाहुआ अंगूठा कहीं नहींदेखा सुनाहै बल्कि यह प्रत्यक्ष दूखराहै कि जो शब्द उसके पास है तिसको छोड़िके अर्थ से बुद्धिस्य अंगूठे को लाकर उसमें जो है—इसकोऊपर तर्कशास्त्रमें यहमसल प्रसिद्धहै कि (गभ्यमानस्यचार्थस्यनैवदृष्टविशेषयाम् शब्दांतरैर्विभक्त्यावाधुमोऽयञ्ज्वलतीतिवद) जिसअर्थकी प्राप्तिहोय तिसके विशेषयाको नहींदेखा शब्दोके अंतरसे यद्वा विभक्तिसेही कहिदिया सो उस न्याय केतुल्य ठहिरताहै कि बिना प्रमाणाँके धुआँ जलताहै कहिदियाजाय—विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि अशुचि होने के हेतु से रेतस् को छूने की अयोग्यता नहीं सिद्धहोती है क्योंकि जो रेतस् को अशुद्ध माना तो शरीर भी उसकाल में अशुद्ध ही होता है तो फिर छूने से क्या परहेज तिसपर यह कि प्रायश्चित्त रूपी विधान किया गया और मत्रो के पढ़ने की आज्ञा ठहिराई तौफिर छूनेमें अयोग्यता कहाँ रही बल्कि योग्यता ठहरी० इसका भी दृष्टांत है कि जैसे सुरा पीने वाला उसके पीने से पतित होता है फिर भी प्रायश्चित्त के निमित्त पर गरम करिके वही सुरा पिलानी कहिचुके हैं सुरापान के प्रायश्चित्तो वाले प्रकरणमें देखी० तिससे वही अर्थ ठीक है ॥ ० ॥ यह प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो केवल गृहस्थ को उस दशा में समझना कि जहां इच्छा किये बिना निरर्थक वीर्यका पात होय० ब्रह्मचारीके लिये जागते सोते दोनों दशा मध्ये बड़े प्रायश्चित्त आगे आवेंगे—और—मनु का यह वचन है कि=गृहस्थःकासत कुर्याद्रेतसः स्कंदनभुविसहस्रतुजपेह व्या.प्राणायामैस्त्रिभिःसहेति० तत्कामकारवियथ=अर्थात्—गृहस्थो पुरुष यदि इच्छा से वीर्य का पात धरतो पर करै सो तीन प्राणायामो सहित गायत्री के हजार मंत्र जपै—यह वचन खुलासा है किजिसने इच्छासे चाहिकर वीर्यपात कियाहो सोयह प्रायश्चित्त करै॥२७८॥

(जलांतःप्रतिविम्बदर्शनादिप्रायश्चित्त)

मयितेजइतिच्छायांसांष्ट्रमुगतांजपेत् † सावितीमशुचौदृष्टेपापत्वेनानृतोपिच २७९॥

अर्थः—जलमें पहुँची अपनी छाया (मुखकाप्रतिविम्बआदि) देखिके० नयितेज इन्द्रिय० इस वेदोक्तपूरे बन्को (यथाशक्ति सकसे आपिलेकार शय कृच्छ) उसीसमय

प्रधान व्रतधीर्य धातु का रोकना है उस धातु का निकासि डारना अवकीर्णा (वि-
धोरि देना खिंडाड देना फौलाड देना यही अवकीर्णा) कहाता है जिसने धातु का
अवकीर्णा क्रिया सो अवकीर्णा ठहिरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा
है कि—ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योयिता नारी में गमनकरै, सो अवकीर्णा
होता है वह निश्चित देवता के निमित्त गदहा पशु का वलिदान करिके उसका
नैऋत नाम याग करै तत्र शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८०अधिकोक्तिः—गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में
पशुदयो कहागया•इसका यह तात्पर्यहै कि(अथपशुकल्पइत्याचलायनादिगृह्योक्त
पशुधर्मप्राप्त्यर्थं) आचलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि
अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गर्दभयाग करनाचा-
हिये सो उस प्रकार के पशुधर्म की पहुंच समझी जानेके लिये दुबारा पशु शब्द
दिया गयाहै ॥ ० ॥ गर्दभयाग जो करना बताया सी वनके समीप चौराहेपर लौकिक
अग्नि से करना चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी
स्त्रियमुपेयादरराये चतुष्पये लौकिकेऽनौरसो देवतगर्दभंपशुमालभेतेति वशिष्ठः=
अर्थात्ब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तो वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें राक्षस
देवके निमित्त गदहा पशु को होम करै (क्योंकि गदहा पशु का देवता राक्षसही
होते है वे उसी अपने पशु के मांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राक्षसों का प्रसन्न करना
आवश्यक ठहिरा कि जिससे फिर आगे को अपनी राक्षसी प्रकृतिका असर ब्रह्म-
चारी पर कभी न उतारै जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न होसकी हो•आलं-
भन वेदोक्त वध कहाता है उसी से फिर होम याग किया जाता है यह तात्पर्य
समझलेना) इसी याग में यह और विधान है कि राति में करना चाहिये और गदहा
रक्त आंखि वाला काना लेआना चाहिये=तदाइ मनुः=अवकीर्णातिकारानरासभेन
चतुष्पये पाकयज्ञविधानेनयजेतनिश्चितिनिशः=अर्थात्-मनुका यह वचन है कि
अवकीर्णा ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां राधिमें निश्चित जो राक्षसों
का प्रधान अविपति देवताहै तिसका यज्ञकरै पर कबे मांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ
के विधान से करै जिससे निश्चित अच्छेप्रसन्न होय ॥ ० ॥ पशुयज्ञका वानक न बनि
परै तो खीरहीसे होम करै यह उसका अनुकल्प है क्योंकि अग्निके वशिष्ठ के वचन
से यहवात सिद्धहै=यदाहवशिष्ठः=निश्चितिवाचरुनिवर्षेततस्त्वजुहुयात कामायत्वाहा
कामकामायत्वाहा निश्चत्यैत्वाहारसोदेवताभ्यःत्वाहेति=अर्थात्-निश्चितिपशुनहो

घर से भिक्षा लेकर भोजन किया करें तब शुद्ध होयें सो यह इतना बड़ा कठिन प्रायश्चित्त केवल उनके लिये है कि जिन्होंने नास्तिकता आदि बड़ी बृहताकेसाय बहुत कालतक अन्यास किया है ॥२७६॥ इसी दोषो उनासीवाली ऊपरली अधि-
कौक्तिका श्रेय पाठ यहभी है केवल विषय जुदा होनेसे स्थापना भेदकियागया है ॥

योगीश्वर ने २३६ मूल श्लोक में नास्तिक्य से अनंतर (व्रतलोप) इस कर्म के नामसे अवकीर्णी ब्रह्मचारी का उपपातक दर्शाया था उसका प्रायश्चित्त भी योगीश्वर आपही अगिले श्लोक से प्रकाश करते हैं ॥

अथ अवकीर्णं ब्रह्मचार्यादीनां शुक्रहानौ प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयं परिच्छेदः अष्टपंचाशत्तमः (५८)



इस परिच्छेद में उनके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे जो ब्रह्मचारी आदि अवकीर्णी होगये हों अर्थात् मुख्य तो अवकीर्णी ब्रह्मचारी कहा गया है परन्तु उसके उप-
लक्षणासे वानप्रस्थ और सन्यासी आदि यतीपुरुषोंके प्रायश्चित्त भी वर्णन हेगै क्योंकि वीर्य का यौभनारूपी ब्रह्मचर्य इन सबही के होता है—अथवा इनमेंसे कोई अपना आयुष्य छोड़ि भागै या घर बसावै—यद्वा शास्त्रीय मरणाकेधर्मोसि भागै तिसके प्रायश्चित्त है—अथवा मरने के प्रसंगमें अशास्त्रीय मरणा पर गृहस्थी आदि कोईभी उपस्थित होय या निपट मरजाय तिसके भी ॥

(ब्रह्मचारिणोऽवकीर्णित्वस्य प्रायश्चित्तं)

अवकीर्णीभवेत्स्वब्रह्मचारीतुषोपितम् । गर्भंपशुमालभ्यनेकतंसविशुद्धयति २८०

अर्थ—ब्रह्मचारी योगिता पाम जाय के अवकीर्णी होय सो नैव्रत गदहा पशु को आलम्भन करिके शुद्ध होता है—अर्थात्—ब्रह्मचारी दो तरह का होता है सब उपकुंवारा विद्यार्थी दूसरा नैसिक जो सदा के लिये ब्रह्मचर्य बना राखै यह आचार मर्यादा परिपाली में उसके नियमों सहित वर्णन होचुका तहां देखो—यहां जो कोईसा ब्रह्मचारी उन्हीं नियमोंका भंग करै तिसने व्रत का लोप किया कहा-
ता है उसका सक निन्दा के साथ जुदा नाम अवकीर्णी घरा गया है क्योंकि सबसे

प्रधान व्रत वीर्य धातु का रोकना है उस धातु का निकासि डारना अवकीर्णा (वि-
योरि देना खिंडाड देना फँलाड देना यही अवकीर्णा) कहाता है जिसने धातु का
अवकीर्णा किया सो अवकीर्णा ठहरा इसीलिये योगीश्वर ने मूल श्लोक में कहा
है कि—ब्रह्मचारी होके यदि किसी भी योयिता नारी में गमनकरै सो अवकीर्णा
होता है वह निश्चित देवता के निमित्त गदहा पशु का बलिदान करिके उसका
नैश्चत नाम याग करै तब शुद्ध होय ॥ २८० ॥

२८० अधिकोक्तिः—गदहा नामसेही पशु समझा जाता फिर उसके साथ मूल में
पशु क्यो कहागया इसका यह तात्पर्य है कि (अथपशुकल्पइत्याचलायनादिगृह्योक्त
पशुवर्मप्राप्त्यर्थं) आचलायन आदि के गृह्यसूत्र में इसी रीति से कहागया है कि
अथपशुकल्पः जहां इतना लिखा देखा और समझागया कि गदभयाग करनाचा-
हिये सो उस प्रकार के पशुवर्म की पहुंच समझी जानेके लिये दुवारा पशु शब्द
दिया गया है ॥ ० ॥ गदभयाग जो करना बताया सो वनके समीप चौराहेपर लौकिक
अग्नि से करना चाहिये क्योंकि वशिष्ठ ने साफ साफ यही कहा है कि=ब्रह्मचारी
स्त्रियमुपेयादराग्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नोरसो देवतंगदभंपशुमालभेतेति वशिष्ठः=
अर्थात्ब्रह्मचारी यदि स्त्रीके पासजाय तो वनमें चौराहेपर लौकिक अग्निमें राक्षस
देवके निमित्त गदहा पशु को होम करै (क्योकि गदहा पशु का देवता राक्षसही
होते हैं वे उसी अपने पशु के मांससे प्रसन्न होते हैं उन्हीं राक्षसों का प्रसन्न करना
आवश्यक ठहरा कि जिससे फिर आगे की अपनी राक्षसी प्रकृतिका असर ब्रह्म-
चारी पर कभी न उतारै जिससे उसे स्त्री संगम की इच्छा उत्पन्न होसती हो आलं-
भन वेदोक्त वध कहाता है उसी से फिर होम याग किया जाता है यह तात्पर्य
समझलोना) इसी याग में यह और विधान है कि राति में करना चाहिये और गदहा
एक आंख वाला काना लेआना चाहिये=तदाइ मनुः=अवकीर्णातिकारणोतरासभेन
चतुष्पथे पाकयज्ञविधानेनयजेतनिश्चितिनिशि=अर्थात्=मनुका यह वचन है कि
अवकीर्णा ब्रह्मचारी काने गदहासे चौराहेमें जाकर वहां रात्रिमें निश्चिति जो राक्षसों
का प्रधान अधिपति देवता है तिसका यज्ञकरै पर कबे मांससे न करै किन्तु पाकयज्ञ
के विधान से करै जिससे निश्चिति अच्छेप्रसन्न होय ॥ ० ॥ पशुयज्ञका वानका न वनि
परै तो खीरहीसे होम करै यह उसका अनुकल्प है क्योंकि अगिके वशिष्ठ के वचन
से यहवात सिद्ध है=यदाइवशिष्ठः=निश्चितिवाचरुनिर्वपेततस्यजुहुयात् कामायास्वाहा
कामकामायास्वाहा निश्चित्यैस्वाहारसो देवताभ्यःस्वाहेति=अर्थात्=निश्चितिपशुनहो

तो विकल्प से निवृत्ति के नामसे चरु खीरही बोवै किन्तु निवृत्ति के नामसे होमों कि जैसे स्वाहांतचारुक्त मंत्र में लिखि दिये हैं तिनसे होमों ॥ ० ॥ श्रीमन्मितासराकार कहिते हैं कि यह तपके विना केवल यागमात्र कहा सो उसके लिये समझना जो पर वश कहीं धिरा फँसा असमर्थ होते अबकीर्णा हुआ हो। अन्यथा जो समर्थ ब्रह्मचारी अबकीर्णा हुआ होय तिसके लिये गौतम का कहा पशुयाग या चरुहोम तपस्या सहित उचित होगा—यदाह गौतमः—गर्दभेनावकीर्णा निवृत्तिवत्तुष्पथेयजेत् तस्या जिन मूर्ध्वालां परिवाय लोहितपावे सप्तगृहान् भैक्ष्यंचरेत्कर्माचक्षारः संवत्सरेण शुद्धतीति—अर्थात्—अबकीर्णा होजाय सो गर्दभा से निवृत्ति देवको चौराहे परपूजे किन्तु पूर्वोक्त रीति से होम करै फिर उस गर्दभ के बचेहुये पूरे चमड़ेको बालऊपर ही रखिकर पहिर ओढिके ताँवे के पात्र में सात घरों से अपना कर्म सुनातेहुये भिक्षा मांगाकरै तब एक पूरे वर्य भरमें शुद्ध होता है—और उसके साथ विकाल स्नान और एकही घार सायंकाल भोजन करने का नियम भी अग्रोक्त मनुके वचन से जोहना—यदाह मनुः—एतस्मिन्नेनसिप्राप्ते वस्त्रिवागर्दभाजिनम् सन्नाराारवचरन्भैक्ष्यं स्वकर्मपरिकीर्तयन् तेभ्योत्सवेनभैक्ष्येणावर्तयन्नेककालिकम् उपस्पृशन्त्रियवरासद्धे नर्तविशुद्यति—अर्थात्—इस अबकीर्णा पापके प्राप्ति होने में वह अबकीर्णा गर्दभाका मृगाला ओढिके अपना कर्म सुनाते हुये सात घरों से भिक्षा मांगते उनसे जो कुछ मिले उसी भिक्षा से एक समय भोजन का वर्तावा करतेहुये और इररोज विकाल स्नान करते हुये एक वर्यसे विशुद्ध होता है (यह एक वर्य की तपस्या वाला प्रायश्चित्त भी सिर्फ उसके लिये आवश्यक है जिनने किसी ऐसे अयोविय ब्राह्मणाकी भार्या में संगम क्रिया हो जो विद्या आदि किसी प्रतिष्ठा से विख्यात नहीं था या ऐसे किसी अयोविय बनियाँ की भार्या में संगम क्रिया हो जो पढा गुना भगत वा औरही किसी प्रतिष्ठासे विख्यात बनियाँ हो) इसका तात्पर्य भी आगे देखा ॥०॥ जिस ब्रह्मचारी ने ऐसी कोई ब्राह्मणी या सवारी संगम करी हो कि जो स्त्रियाँ निज अपनेही उत्तम गुरासे विख्यातहीं अथवा यद्यपि स्त्रियाँ अपने गुरासे विख्यात नहीं परन्तु अयोविय ब्राह्मणाकी और अयोविय क्षत्री की भार्याहीं तिनहींमें अबकीर्णा हुआ हो। तो इस ब्रह्मचारी अबकीर्णा के लिये क्रमसे तीन वर्य और दो वर्यका तप चाहिये अर्थात् तीनवर्ष उस ब्राह्मणी के मध्ये जो केवल अपने गुरासे विख्यात वा विख्यात पतिकी भार्या हो और दो वर्य उस सवारीके मध्ये जो केवल अपने गुरा से विख्यात वा विख्यात पति की भार्या हो। व्यवस्था दीक यही है और इसके

सबतात्पर्य अगिले शख और लिखितके एकहीवचनसे उत्पन्नहोतेहैसमुक्तो=यथाहृतः शखलिखितो=गुहायांवेश्यायामवकीर्णाः संवत्सरत्रियवरात्सनुतिथेत् सत्रियायां द्विवर्षे ब्राह्मणयांत्रिणावर्षाणीति=अर्थात्-पर्येदार बनेनी मे अवकीर्णा होय सो एक संवत् पर्यन्त त्रिकाल स्नान पर आरुह्य होय सब पदां मे रहिनेवाली सवारागो में अवकीर्णा हुआ होय सो दो वर्षभर त्रिकाल स्नान और घर्दीवाली ब्राह्मणोंमें अवकीर्णा हुआ हो सो तीन वर्ष भर त्रिकाल स्नानसार्धे (त्रिकाल स्नानके साथ जो पशुयाग और भिक्षा आदि ऊपर कहिचुके सो सब इसमें भी समझि लेनी ॥ ० ॥ अंगिरा का यह वचन सबसे जुदा है कि-अवकीर्णानिनिमित्तन्तुब्रह्महत्याव्रतचरेत् चीरवासास्तुयडमा मांस्तथामुच्येतकित्वियात्=अर्थात्-अवकीर्णा होजाने के निमित्त में भी ब्रह्महत्या के समान व्रत एक छमाही भर चीरवासा होकर (भोजपत्र आदि वृक्षोंके बकल प-हिन कर) आचरै तब उस पापसे छूटे ॥ सो यह छमाही भी उसी प्रकार उसी विषय पर समझनी कि जिस विधिके साथ जिस विषय पर ऊपरले सनु गौतम आदि व-चनों में एकवर्ष भर तप करना कहिचुके किन्तु भेद इतना है कि यह छमाहीवाला वर्षसे आधा व्रत उस दशामें करवाना कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी इच्छाके विना कुचाल स्त्री का मोहित किया हुआ लोभने आकर अवकीर्णा हुआहो और ऊपरले परे वर्षभर के प्रायश्चित्त उसके हैं कि जिसने संगम करनेका उद्योग आपही किया हो और उनसे पहिले जो मलश्लोकसे आदि लेकर सिर्फ तप के विना पशुयागही करना कहिचुके सो उसके हैं कि जब कोई ब्रह्मचारी अपनी स्वाधीनता के विना कहीं घिरा फंसा परवश होकर अवकीर्णा होय ॥ ० ॥ जब कोई ब्रह्मचारी किसी वर्राकी अत्यन्त स्वैरिणी में अवकीर्णा होजाय तब ये प्रायश्चित्त नहीं किन्तु छोटें प्रायश्चित्त है वे भी शख लिखित दोनों भाइयोंने जुदे करिके कहे हैं-यथाहृतःशख लिखितो=स्वैरिणयां वृथत्यासवकीर्णाः सचैलस्नानमुद्वेकं बद्धाद्ब्राह्मणाय • वेश्या यांचतुर्थकालाहारो ब्राह्मणानभोजयेत् यवसभारं चगोस्थोदद्यात् • सत्रियायां त्रिरात्रमु पोयितो घृतपात्रं दद्यात् • ब्राह्मणयां यद्वात्रमुपोयितो गांच दद्यात् • गोप्ववकीर्णाः प्राजा पत्यचरेत् • यथायामवकीर्णाः पलालभारसीसमायकंच दद्यादिति=अर्थात्-वृथली शू-द्रिणी जो स्वैरिणी होगइ ही तिसमें ब्रह्मचारी जाकर अवकीर्णा हुआ होय सो स-चैलस्नान करिके जलका भरा घट ब्राह्मणको दानकरै इसीसे शुद्ध होजाताहै • सब स्वैरिणी बनेनीमें अवकीर्णा होजाय सो दिनभर उपवास करिके चौथे कालमें भोजन करै दूसरे दिन ब्राह्मणोंको जिमावै और घासका एक भार (पलानां द्वेसङ्घे तु भारसे

कंप्रकीर्तितं) अर्थात् वाजासु खोड आदिकी तौल में पत्ता जो तीन साडे तीन मन तक देशभेदसे प्रसिद्ध होता है तिसके अनुमान भर घास भी गौओंको देवै• एवं स्वैरिणी सवित्र्या दक्षुरानी में अवकीर्णा होजाय सो तीन दिन रातिका उपास करिके घोका भरा पूरापात्र दानकरै• एवं स्वैरिणी ब्राह्मणी में अवकीर्णा होजाय सो छे दिनका उपास करिके गोदान भी करै किन्तु चकारके ध्वन्यर्थसे पहिले ब्राह्मणों को भोजन करावै तिस पीछे गोदान करै• एवं यदि कोई ब्रह्मचारी विद्यार्थी आदि जाकर गौओंकी योनिसमें अवकीर्णा हुआ होय सो बारह दिनका प्राजापत्य व्रत आचरै तब शुद्धहोय• एवं यंदा नर्पुंसकी नारी कि जिसके योनिका आकार पूरा पूरा नहीं होता है कि जिसमें गर्भकी धारणा न होसके इसीसे वह नारी भी यदा अर्थात् हिजरी कहाती है तिसमें यदि कोई ब्रह्मचारी जाकर बिगड़ै सो एकभार सात्र दान या कीदोंका पयार और एक मासाभर सीसा या रांगा दानकरै ॥ ० ॥ अवकीर्णी के प्रायश्चित्त जो कुछ मूलश्लोकसे लेकर यहाँ तक वर्णन हुये सो सब तीनों वर्णों के ब्रह्मचारीको समान है अर्थात् एकसां समभिलेना चाहै ब्रह्मचारी ब्राह्मण या क्षत्री या वैश्यही क्यों न हो प्रायश्चित्त में न्यूनधिक भेद न होगा—इसका प्रमाणा भी शांडिल्यमुनिका वचन है—यदाह शांडिल्यः=अवकीर्णीहिजरीराजा वैश्यश्चापि खरेणात् इन्द्राभैक्ष्याशिनो नित्यं शुद्धात्यन्दात्समाहिताः=अर्थात्—अवकीर्णी ब्रह्मचारी चाहै विप्र या क्षत्री या वैश्य भी कोई हो सब खर पशु से यज्ञ करिके नित्यं प्रति भिक्षा मांगि खायाकरै तो समाहित रहिते एक वर्षभर में शुद्ध होतेहैं अर्थात् समाहित सावधानीसे न रहिकर वर्षके भीतर प्रायश्चित्तके बीचमें भी फिर किसी दिन अवकीर्णा होनेलगे तो उस प्रायश्चित्त से भी शुद्ध न होगा (यहाँ तक तो स्त्रीके संभोग से अवकीर्णा होने का चर्चा है अब आगे स्त्री के विना भी विराडने का चर्चा होगा ॥ ० ॥ अथस्त्रीसंभोगविनापित्रीर्यस्कंदनप्रायश्चित्तं—जब कोई ब्रह्मचारी स्त्री संगम के विना भी कामदेव की प्रबलता से राति या दिन में और सोते या जागते हुये वीर्य धातु को छोड़ै तिसके लिये वशिष्ठ ने केवल पूर्वाक्ष यज्ञही करना कहा है—यदाह वशिष्ठः=एतदेवरेतसप्रयत्नोत्सर्गविवास्वप्नेचव्रतातरेयुचैवमिति=अर्थात्—यही नैकृत याग जो पहिले प्रायश्चित्त में काइचुके सो अंगों के उपाय से भी वीर्य की हानि करदेने में और दिन में और स्त्रप में भी वीर्य निकासिजाने पर करना• और व्रतान्तरों में भी इसी प्रकार अर्थात् कुछ चांद्रायणाआदि व्रत प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ ब्रह्मचर्य साधन करने को अतिदेश किये गये हैं उनके बीच

में भी यदि सोते वा जागते किसी दशा में वीर्य का अवकीर्ण होय तोभी पूर्वोक्त रीति से नैऋत यागही करै=परंतु=सोते समय अपनी इच्छाविना देवयोगहीसे वीर्य गिर जाय तौ फिर उक्त नैऋत याग नहीं किंतु मनुका कहा प्रायश्चित्त करै=तदाह मनुः=स्वप्नेमिस्काब्रह्मचारीद्विज शुक्रमकामतः स्नात्त्वा कर्मचर्यायत्वाच्चि पुनर्मांमित्यु चजपेत्=अर्थात्-द्विजाती मात्र किसी वर्णाका ब्रह्मचारी स्वप्नेमें निज इच्छाके विना वीर्यकी सींचिके प्रातःकाल स्नान करिके और सूर्यकी यथोक्त अर्चा करिके तीन वार (पुनर्मां) इत्यादि ऋचा जपे० इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ यहां तक ब्रह्मचारी का प्रसंग था अब नीचे वानप्रस्थ आदि जो ब्रह्मचर्य से रहित हैं तिनका वर्णान किया जायगा=परन्तु ब्रह्मचारी अवकीर्णी होजाने के प्रायश्चित्त जो कुछ ऊपर लिखेगये सो सब उन स्त्रियों के संभोग में समझना जो गुरु की दाराओं से उपरालू अगम्याहों और उनसे भी उपरालू अगम्याहों जिनका चर्चा गुरुदाराके समान कहि कर २३१ दोसो इकतीस मूलप्रलोकसे लेकर दोतीन अधिकोक्तों में वर्णान होचुका है-क्योकि उन स्त्रियोंके भोग मध्ये बहुत बड़े प्रायश्चित्त हैं जो वारह वर्ष को आदि लेकर कई भाँति से दर्शाये गयेये ब्रह्मचारीको भी उन स्त्रियोंके संगमसे वेही बहुत बड़े प्रायश्चित्त बलिक उनसे भी दुगुने करने होंगे-क्योकि बहुत बड़ा पाप जो वारह वर्ष आदिके बर्तोंसे शोधन होने योग्यहो सो इस छोटेसे अवकीर्णी वाले प्रायश्चित्त से मिटिजाना संभव नहींहै और यह भी नहीं कहिसके हैं कि खास कर ब्रह्मचारी के लिये यही छोटासा प्रायश्चित्त कहागया है इससे बड़ा उसको कहीं भी न चाहिये-क्योकि गृहस्थीसे उपरालू आश्रमोंकी दुगुने आदि प्रायश्चित्तोंका अधिकार ब्रह्महत्याके प्रकरणमें दर्शित होचुका है-और यहभी नहीं कि ब्रह्मचारीको अगम्यागमनका प्रायश्चित्त जुदा करना चाहिये क्योकि ब्रह्मचारी की स्त्रीमें अवकीर्ण होनेका प्रायश्चित्त अगम्यागमनके भीतरही समझा गया है इससे कि उसका सदा ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये ॥ २८० ॥ इसी अधिकोक्तिका वचा हुआ फालतू पाठ नीचे जुदा भी स्थापन किया जायगा ॥ २८० ॥

(अथवानप्रस्थादीनां ब्रह्मचर्यखंडने संन्यासादि व्रतभगेच

ब्रह्मचारि प्रायश्चित्तातिदेशः)

वानप्रस्थके सब वर्म सातवें परिच्छेद में पैतालिस मूलप्रलोकसे वर्णान होचुके हैं उसी वानप्रस्थ या संन्यासी यती आदि किसी और पूरे तपस्वीका ब्रह्मचर्य खंडित

क्योंकि इसका भी यह नया जन्म है तिससे सब संस्कारों से शुद्ध होकर गृहस्थ में शामिल रहने योग्य होजायगा—यह लाचारी वर्ज का निर्वाह कहा गया है कि जिससे संसारी व्यवहार मात्र चल सके—अन्यथा—पारलौकिक फल भोग में यह पाप नहीं मितता है इस बातका प्रमारा भी वशिष्ठ का अप्रीकृत वचन है— यदाह वशिष्ठः (यस्तुप्रव्रजितोभूत्वापुनः सेवेतमैथुनं यदियवयसहस्राणिविष्टायान्जायतेऽहमिः) अर्थात्—जो कोई संन्यासी आदि होकर पीछे फिर मैथुन का जोड़ा सेवे वह परलोकों में साठ हजार वर्ष तक विष्टा में कृमि का जन्म धरता है (इसके मध्ये २२६ दोषो षड्वीस का मूल श्लोक भी देखो)—यहां जो पराशर के वचन में केवल विप्र शब्द है सोभी अपजो प्रधानता से तीनो वर्गों का उपलक्षण है क्योंकि इस व्यवस्था में ब्रह्मचारी के समान तीनों वर्गों के संन्यासी को प्रायश्चित्त एकसाँ हैं कुछ वर्गों के भेदसे न्यूनानधिक नहीं किये जायेंगे यह समाप्त लेना ॥ इनकीसिवाय कुछ ऐसे भी संन्यासी आदि भग्न व्रत होते हैं जो प्रायश्चित्त करिके भी गृहस्थों में शामिल करलेने योग्य नहीं होते तिनका उत्तान्त आगे देखो ॥ ० ॥ अप्यामररा संन्यासिव्रतमगस्यप्रायश्चित्तं—तदाहयमः= जलाग्न्युद्धंधनश्रयाःप्रव्रज्याऽनाशक-च्युताः वियप्रपतनप्रायाःशस्त्रयातच्युताप्रचये नैवेतेप्रत्यवसिताःसर्वलोकवद्विष्णुताः चद्रायरोलशुद्धान्तितस्रकृच्छ्रयेनच=अर्थात्—जो कोई संन्यासी वानप्रस्थ आदि तपस्या कियेपीछे अति बूढा होजाने पर अथवा बीचहीमें किसी भयानकरोगाशयितलता आदि हेतुसे अपना देहत्यागिदेनेका उपाय सोचिकेजलमें डूबेयाअग्निमेंकूदे या फाँसी फंदे में लटकै तहां भयभीत होकर प्राणों को न देसके तिससे उसका व्रतही भ्रष्ट हो जाता है• एवं प्रव्रज्या नाम संन्यासका भय लेकर निपट अनाशक व्रतरोपा होवै कि अन्नादि कुछ न खाकर तप करेंगे यदा केवल एकदो फलही खाकरसदा तप करेंगे ऐसे सदा के नियम छोडि भागने से भी व्रत का भंग होता है• अथवा अनाशक वह कि जिसने देह त्यागि देनेके निमित्त पर नियम लेकर आहार छोडि दिया हो फिर मरनेसे पहिले अन्न खाने लगा तो यह भी अनाशकच्युत कहाताहै• एवं जिन्होंने देह त्यागने की सत्य प्रतिज्ञा से विय खाया हो या ऊँचे पर्वत पर चढिके नीचे गिरने गये हों या बोरों की तीरन्दाजी आदि निशानों के बीचमें जा पहुँचे हों और प्राणों के भयसे भागि परें या विय खाने बादि उपायों से उलटीकर डारें या पर्वत से गिरे बिना उतरि आवें तो ये सब के सब ऐसे हैं कि प्रायश्चित्त करने परभी (प्रत्यवसितानकार्याः) फिर गृहस्थ में शामिल करने योग्य नहीं किन्तु

सब लोगों से बाहर किये जाते हैं• तथापि व्रत भंग होजाने के दोषमें यह प्रायश्चित्त उनको आवश्यक है कि एक चांद्रायणा और दो तप्तकच्छ करिके शुद्ध होते हैं जिससे अपने पूर्वोक्त तपही में यथासंभव लगे रहिसकें—इति शास्त्रीय सरगाच्युति प्रसंगः ॥ ० ॥ अथाशास्त्रीयमरणस्यैवसाक्षात्कारस्यप्रायश्चित्तं—अनन्तर जो प्रायश्चित्त कहागया तिसमें शास्त्रीय सरगा का प्रसंग था जिसकी समस्या सातवें परिच्छेदमें ५५ पचपन मूल श्लोक और उसकी अविकीर्ति से प्रकाशित हुईथी उस रीति से मरने वाला सन्यासी आदि आत्मघाती नहीं कहाता बल्कि मरजाने पर निश्चय सहित समुद्यत होकर जो मरने से भागि परै तो वह सब लोगों में निन्दित और प्रायश्चित्त भी इस हेतु से हीजाता है कि उसकी आवे मुर्दा के समान अपवित्र जाना करतेहैं इसीका प्रायश्चित्त ऊपर कहागया—अब—उनकेप्रायश्चित्त कहा चाहतेहैं जो गृहस्थी आदि कोई अच्छे भले में किसी पर क्रोध करने आदि कारणां से अपने प्राण खोवै तो यह अशास्त्रीय मरना कहिलाता है क्योंकि वृथा मरजानेकी आज्ञा शास्त्र में नहीं है इसीसे वह आत्मघाती भी ठहिरताहै—यथाह वशिष्ठः—जीवन्नात्मत्यागीकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरेत्त्रिरात्रंचोपवासोदिति—अथत्रि—जीवन् सत्र—जोकोई मनुष्य जीवते रहने की शक्ति जीव होतेहुये अपने देहका त्यागीबने अथवा किसी उपाय से मरजाय या मरने लगे तो बारह दिन का कृच्छ्र व्रतआचरे वा तीन दिन उपवास करे (इसमें मरजाय लिखने से निपट मरिगया न समझि लेना किन्तु छुरी आदि शस्त्र अपने देह में घुसेरके मरने से बचिगया समझना जिस पर बारह दिनका कृच्छ्र कराया जायगा• इसी लिये वशिष्ठ के वचन में (आत्मत्यागी—जीवन्सत्र) ऐसा अन्वय भी लगता है कि देह का त्यागी बनिके जीवता बचिजाते हुये बारह दिन का कृच्छ्र वा तीन दिनका उपवास कराया जाय) इसमें वा शब्द के विकल्प से तीन दिनका उपवास मात्र उसके लिये समझना कि जिसने शस्त्र घुसेरिलेना आदि मरनेका काम अवतक नहींकिया सिर्फ मरजाने योग्य निश्चय मुह से कहिकर कियाहो या शस्त्र लेकर दिखलाया वा जल के पासखड़े होकर डूबने का लसारा प्रकट किया हो इत्यादि बहुत भाँति से सम्भिलेना • इसी प्रकार मरते हुये बचि जानेकी भी बहुत भाँति सम्भिलेनी जिससे योद्धी बहुतपोडा या चीट भी आघुकी ही दृष्टान्त जैसे जल में खूब गोते खाकर बचिगया वा छुरी घुसेरि के जीवता बचिगया या विष खाकर उसके बेरा में बचि जाने व्रादि जीवता बचिजाय वा अग्नि में कूदि कर खाल आदि जलि जाने पर जीवता बचिगया हो

इत्यादि=तथाच मिताक्षरा (अत्राध्यवसायमात्रे विरात्र शस्त्रादिसतस्यद्वादशरात्रं क-
च्छूमिति व्यवस्था)—इस व्यवस्था में यह प्रश्न बाकी रहा कि जो कोई उक्त प्रका-
रो से निपट मरिही गये हों तिनके इस आत्मघात स्वरूपी पापका प्रायश्चित्त कौन कर
होसक्ता है कौन करै किन्तु वे करने वाले आपत्ती मरिगये इसका क्या उत्तर है—
इसका यह उत्तर है कि उनके पुत्रादि सपिण्डा जो धनके अधिकारी आदि समीपी
हितकर्ता समझेजाते हैं वेही उसकी शुद्धि चाहिकर प्रायश्चित्तभीकरैये यह प्राय-
श्चित्तभी यमके उसी वचनसे उत्पन्न होता है कि जो इस व्यवस्थासे अनंतर पहिले
संन्यासीके व्रतभंगपर लिखिचुके यहां फिर भी लिखाजाता है कि यहां पर अर्थही
उसका अन्य प्रकार से लगावैये—यदाह यमः=जलाग्न्यद्रुधनधसः प्रव्रज्याऽनाशक
च्युताः वियप्रपतनप्रायाःशस्त्रघातहताश्चयेनैवैतेप्रत्यवसिताःसर्वलोकवह्निष्कृताःचां-
द्रायगोनशुद्धान्ततप्तकच्छुद्ध्यनेनच=अर्थात्—जो कोई। इच्छा सहित जलमें डुबिके वा
अग्निमेंकूँदिके वा फंदा लगाइ के अपने देहसे भय होके गिरिजायँ अर्थात् निपट
मरिहीं जायँ अथवा विदेश में पते ठिकाने बिना प्रव्रज्या अटन करते घूमते फिरते
मरजायँ या किसीपर अनाशक घना देकर बिना खायँ मरजायँ या विय खायके
मरजायँ या ऊँचे वृक्षादि पर चढ़िजाकर गिरके मरजायँ (या प्रायशब्दके ध्वन्यर्थ
से इसी भाँति का कोई और उपाय करिके मरजायँ) या कोई शस्त्र अपने मरि
के मर गये हों यह इतने आत्मघाती पुरुष प्रत्यवसित नहीं होते किन्तु मुक्ति नहीं
पाते और सब लोकों से बाहर किये हुये भूत प्रेतोंकी देह धरे फिरा करते हैं परतु
यक चांद्रायणा और दो तप्तकच्छु वृत्तों का फलपान से शुद्ध होकर मुक्त होजाते हैं
तिससे उनका पुत्रादिक अधिकारी यथोचित नारायणवलि पुत्तलविधान आदि
शास्त्रोक्त क्रिया करने पीछे इन प्रायश्चित्तों को आचरै जिससे आत्मघातियोंकी
प्रेतयोनि छुटिकर मुक्ति प्राप्त होसके=अत्रोक्त आत्मघातियोंके स्वरूप जो अच्छी-
तरह देखना चाहे सो इस प्रायश्चित्त काराड के प्रारम्भ से आशौच के प्रकरण में
५-६-०१ पाँचवाँ और छठा और इसीसवाँ मूल प्रलोक तथा उन्हीं तीनों अधि-
कोक्तों को विचारै ॥ २८० ॥ इसी दोसौ अस्ती वाली ऊपरलो अधिकोक्ति का
फालत पाठ यह भीहै सो वियय जुवा होनेसे स्थापना भेद किया गयाहै ॥ २८० ॥

अधकीर्णों ब्रह्मचारी के प्रसंगसे विरले और भी अनुपातस्वरूपी पापोंके प्राय
श्चित्त बीचमें दर्शायेगये—अब नीचे फिर अपने क्रम से प्रायश्चित्त कहेजायँगे अ-
र्थात् दोसौछत्तीस के मूलश्लोक में योगोच्चर ने (व्रतनोपप्रच) यह पद कहाया ति

सका अर्थ अनेक तरहके व्रतों का खण्डन प्रकट करता है तिसमें से कुछेक व्रत भंग ऊपर अवकीर्णत्व को आदि लेकर वर्णन हो चुके और बाकीरहे व्रतभंगों के प्रायश्चित्त आगे दोसौइक्यासी मूलश्लोक से आदि लेकर कहे जायेंगे इसीलिये योगीश्वर ने व्रतलोप नाम रक्खाया कि इसमें बहुतसे अर्थों की गुंजायश पाई जाय—इसी से—यह तर्कना करनी ठ्या है कि योगीश्वर ने उपपातकोंके जैसे नाम धरये उनमें से कितनेही नामों के जुदे प्रायश्चित्त क्यों नहीं कहे जो ४४ चवालिस परिच्छेद के द्वारा गुजारा करना परता है—क्योंकि योगीश्वरने ऐसे अनेकार्थ नामधरे हैं जिन के कई भेद होकर जुदेजुदे नामोंके कईभौतिके प्रायश्चित्त मिलते हैं फिर क्योंकर उसी मुख्य नाम से प्रायश्चित्त मिलसके—इसका यह दृष्टांत है कि जैसा उसो दोसौ छत्तीस मूलश्लोकमें (निदितार्थोपजीवनं) यह एकनाम धरागया है इसका अर्थ मितासरा में यह कियागया है कि (अराजस्थापितार्थोपजीवनं) इन दोनों का तात्पर्य यहदर्शिरा कि उपजीवन राजगार का घधा उसभौतिके कि जिसको राजाने धर्म के अनुसार निन्दितकियाहो—सो इसभौतिके निन्दित कियेहुये भी अनेक घन्धेइते हैं जैसा स्त्रियों को खरीदकर बेचना लड़का लड़कियोंको कहींसे लेआकर बेचना अथवा वेद शास्त्रोंकी निन्दा के द्वारा जीविका करना आदि अनेक भेद हैं तिनभेदों के जुदेजुदे प्रायश्चित्त जहाँकहीं लिखेहैं सो सब निन्दितार्थके उपजीवन से गिनती होगी जैसा आगे सुतविक्रय प्रायश्चित्तके प्रसगमें स्त्रीपुरुषोंका बेचना (बर्दफरोशी) भी आवैगी इत्यादि अपनी बुद्धि से समझना—यह वार्ता यहां विस्तार देकर इसी लिये कहीगई कि थोड़ी समझवाले को भी सदेह न रहे ॥ अबकीर्ण होनेबिना भी ब्रह्मचारी के कुछ और प्रायश्चित्त हैं सो नीचे देखो ॥

अथब्रह्मचारिणोन्नतनियमानांभंगोपप्रायश्चित्तप्रकाश कोऽयंपारिक्केदः एकोनषष्टितम (५६) ॥



इस परिच्छेद में ब्रह्मचारी के उन प्रायश्चित्तों का वर्णन होगा जो ब्रह्मचारीके व्रत भंगा होजाने पर उसको करने चाहिये—अर्थात्—आचार मर्यादा परि-
पाटी में ब्रह्मचर्य का व्रत साधन करने के अनेक नियम कहेगये थे उन्हीं
मेंसे यदि कोईनियम खगिडतहोजाय जैसे मधुमांस आदि खाइलेना
या जनेऊ अशुद्ध होजाना आदि के प्रायश्चित्त बताया जायेंगे ॥

(ब्रह्मचर्यव्रतभंगानांप्रायश्चित्तानि)

भैक्ष्याग्निकार्यैत्यन्वातुत्तरात्रमनातुरः । कामावकीर्णैइत्याभ्याजुहुयादाहुतिद्वयम् २८१
उपस्थानंततः कुर्यात्समाप्तिं च त्वनेन तु † मधुमांसाग्नेकार्यैः कच्छू शेषव्रतानि च २८२
प्रतिकूलंगुरोः कृत्वा प्रस्ताद्येवपिशुदधति † कच्छूत्रयंगुरुः कार्योन्मिष्यतेप्रदितोपदि २८३

अर्थः—अनातुर होते सातदिन भैक्ष्य अग्निकार्य दोनों त्यागिके (कामावकीर्ण
इत्यादि दोनों मंत्रों से) दो आहुतिहोमै—अर्थात्—यदि कोई ब्रह्मचारी किसी रोगसे
पीडित न होते हुये अपने भिक्षा धर्मकी और अग्निके नैतिक होमकी भी निरन्तर
सात दिन तक न करे सो इस छोटे अनुपातक पर यह प्रायश्चित्त करे कि (कामाव
कीर्णोऽस्त्ववकीर्णोऽस्मि कामकाममायस्वाहा १ कामावपन्नोऽस्मि कामकाममा
यस्वाहा २) इन्हींवेदोक्त दो मंत्रोंसे आहुति होमै (यद्यपि मूलश्लोकमें सिर्फ दो आहुति
का भी अर्थ पायाजाताहै कि एकएक सबसे एकही आहुतिकरै तथापि ऐसा नहीं
किन्तु सख्याका नियम न मिलनेपर एकएक मन्त्रसे एक एक अद्योत्तरी सालाभरि
आहुतें छोड़े तिससे भी आहुति द्वयका अर्थ सिद्ध होजाताहै ॥ २८१ ॥

तिस पीछे (समाप्तिचतु—इत्यादि) इस मंत्रसे उपस्थानभी करै—अर्थात्—जडर्षो-
क्त आहुतें देचुकने वादि (समाप्तिचतु मस्ततः सन्निद्रः सदृहस्पतिः समायसरिनः सि-
चन्तां यशसा ब्रह्मवर्चसेन—इत्यनेनमंत्रेणाग्निमुपतिथेत्) इस पूरे मंत्रसे अग्नि के स-
न्मुख खड़े होके उपस्थान पढ़े मद्य मांस खालेने में कूचकू करना फिर श्रेय व्रत भी
करने चाहिये—अर्थात्—जिस ब्रह्मचारीने दगा धोखेसे मदिरा या मांस खाइ लिया

हो सो वारह दिनका कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने श्रेय रहे मानूती व्रतों को भी साथै ॥ २८२ ॥

शुरूका प्रतिकूल करिके उसे प्रसन्न ही करिके शुद्ध होताहै—अर्थात्—जिस ब्रह्म-चारी वा विद्यार्थीने शुरूकी उचितआज्ञा न मानने आदि प्रकारसे कोई काम शुरू से प्रतिकूल (उसकी अपेक्षासे विपरीत) कियाहो तिसका दोष केवल शुरू के चरणोंमें शिर धरने आदि प्रकारसे प्रसन्न कर देनेसेही मिटिजाताहै उसका यही प्रायश्चित्तहै। कार्यसे भेजा हुआ सरे तो कृच्छ्रव्रत शुरू करै—अर्थात्—यहां ब्रह्मचारीका प्रसंगथा तिससे उसका शुरूसे सम्बन्ध पाइ कर शुरूका भी प्रायश्चित्त कहिना परा कि—यदि कोई शुरू ब्रह्मचारी आदि किसी शिष्यको किसी जल्दरी काम के लिये कहीं ऐसी भयाङ्कल अंधेरी रातिमें भेजे कि जहां चोर डाकू सर्प बाघ आदि प्राणहारी चिन्ह मौजूदहों और भेजा हुआ शिष्य उन्हीं प्रकारसे सरजाय तो उस भेजने वाले शुरूको तीन कृच्छ्रव्रत करने चाहिये—इसका चर्चा अधिकोक्तिमें अच्छीतरह देखि लेना ॥ २८३ ॥

२८१ अधिकोक्तिः—तीनों मूल श्लोक में प्रायश्चित्तोंके चार भेदहैं इस तीरसे कि डेढ़ श्लोकमें एकही भेदहै फिर बाकी तीन भेदोंका सिर्फ आधा आधा श्लोक है तिनके बीच बीच। ऐसा चिन्ह लगायागयाहै उसी क्रमसे उनकी अधिकोक्तिको अब देखीं २८१ श्लोकमें ब्रह्मचारीकी बीमारीके न होतेहुये सात दिन तक भिक्षा टूति और अग्निकी सेवा छोड़ि देने पर प्रायश्चित्त कहागया—तिसका यह ध्वन्यर्थ यहै कि यद्यपि रोगी नहीं था परन्तु शुरूकी सेवा आदि कामोंकी बहुताइत में गाफलहोके भिक्षा और अग्निकार्यकी छोड़ाहो तिसको वह प्रायश्चित्त जो लिख चुके सो करनाचाहिये—और जिसने शुरू सेवा आदि कार्य के भी न होतेहुये निरोगी होकर सात दिन तक व्रताही निज धर्मको छोड़ि दिया हो तिसको यह छोटा प्रायश्चित्त नहीं है अर्थात् वह मनुके वचनानुसार करै—यदाहमनु—अहत्त्वभेदस्य चरणामसमिध्यचपावकस्य अनातुर सप्तरात्रसवकीरिात्रतचरेत्—अर्थात्—निरोगी ब्रह्मचारी सात दिन तक भिक्षाटूतिको न करिके या अग्निकी समिन्वन हीन करिके अवकीर्णा ब्रह्मचारीवाला व्रत आचरै जो २८० मूल श्लोकसे वर्णन होचुका—यहां पर—व्रत भंग होजानेका प्रसंगहै तिससे जनेऊ टूटजाने वा अशुद्ध होजाने आदि अनेक बातोंके प्रायश्चित्त भी दर्शाते हैं ॥

यद्योपवीतादि नाशेतु=हारीत=मनोव्रतपतीभिश्च तिस्रआज्याहुतीहुंत्वापुन

यथार्थप्रतीयादसकृत् असन्नैश्चभोजनेऽभ्युदितेऽभिनिर्मुक्तवान्ते दिवास्वप्नेनरत्नी
 दर्शनेनरत्नस्वापेऽप्रशानमाक्रम्य इत्यादीनां सद्यपूज्यातिक्रमेचेताभिरेवजुह्यात् अग्नि
 समिन्धने स्थावर सरीसृपदीनां वधे यदेवादेवहेडनमित्त कूप्पागडोभिर्छिरावसाज्यं
 जुहुयात् मरिगावासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यसहस्रं जपेदित्त=अर्थीत=हारीत ने
 इतनी बातों के प्रायश्चित्त इकट्ठे कहे हैं कि-यज्ञोपवीत किसी प्रकारसे खण्डित
 होजाय तब (मनोव्रतपतीभिः इत्यादि ऋचाओं से) तीन तीन आहुतें असकृत्
 अनेकवार होमिके फिर यथार्थ रीतिसे मंत्र पढ़िके जनेऊ बदलिडारें, अर्थात् यज्ञो-
 पवीत धारणा करनेका जो मंत्र प्रसिद्ध है उसीको पढ़िकर पहिरें और इन्ही उक्त
 ऋचाओं से आहुतें उन पापोंमें भी होमै कि जब किसी असव नीच आदिकी भिसा
 भोजन करी हो जिनका अन्न खाना ब्रह्मचारी को मने है यद्वा ब्रह्मचारी होके
 अभ्युदित किन्तु सूर्यके उदय होते समय सोता रहिकर उसकालके यथोचित कर्म
 की हानि करीहो यद्वा अभिनिर्मुक्त किन्तु सूर्यके अस्तकालमें निद्राके वशीभूत
 होके सायंकालके यथोचित कर्मोंकी हानि करीहो या वसन कियाहो या दिनमें
 सोगयाहो या नंगी स्त्रीको देखलियाहो या आपही नंगा सोया किन्तु सोते समय
 धोती खुलि गईहो यद्वा श्मशान सुदंघट की धरती पर चला फिरी करि आयाहो
 या घोडा आदि किसी पशु यान पर सवारी करीहो यद्वा किसी पूज्य गुरु आदि
 का अतिक्रम (बेअदबी) करि बैठाहो तो भी उन्हीं मनो व्रत आदि ऋचाओं से
 आहुतें होमै तब शुद्ध हुआ पहिरें और होम आदिमें अग्नि समिन्धन कर्म अर्थात्
 लकड़ी आदिका जलाना तिसके साथ किसी प्रकारके जीव स्थावर जो लकड़ी के
 भीतर या धरती के भीतर हो एक टिकाने टिके रहिते हों या सरीसृप सांप आदि
 रेंगेले फिरनेवालेही जलिकर मरजायँ तो इस गफलतसे उत्पन्नहुये पापका प्राय-
 चित्त यह चाहिये कि तीन रातोंमें घी की आहुतें होमै सो इन मंत्रोंके कि (यदे-
 वादेवहेडनं इत्यादि) वेदीके ऋचायें जो ऋग्वेदमें कूप्पागडोके नामसे अनेक ऋचा
 प्रसिद्धहैं तिनसे होमै तब शुद्ध होय और जिस किसी ब्रह्मचारी ने मरिगा या कपडे
 या गाय आदि पदार्थोंका प्रतिग्रह ललिया होय वह सावित्री के आठ हजार मंत्र
 जपे यह सब हारीतके दर्शाया-इसका पहिला प्रायश्चित्त (मनोव्रतपती इत्यादि)
 समस्यावाली ऋचाओंसे बताया तहां यह व्योराहै कि (मनोज्योतिरित्यादि मनो
 लिंगाभिस्त्वन्नने व्रतपाअसीत्यादि व्रतलिंगाभिरित्यर्थः) और भी (पुनर्थयार्थ्य-
 तीयात्) यह कहाया तिसका भी यहतारपर्यं है कि यदि ब्रह्मचारीका जनेऊ ऊड़

विशेष खण्डित होजाय किन्तु निपट टूटिके गिरजाय या और ही कोई प्रकार ऐसा होजाय जिससे निपट विनाशहीके तुल्य समझा जाय तहां पुनर्थथार्थका यह अर्थहे कि जैसा पहिले जनेऊ हुआया उसीप्रकारकी विधिसे पुनः स्स्कार कराइके यज्ञोपवीत ग्रहणा करै• अन्यथा जब केवल अशुद्धमात्र होजाय किन्तु परस्पर खण्डित न हुआहो तत्र उक्त आहृतियोंकी होमिके जनेऊका प्रसिद्ध मंत्र पांडिके बदलि डारै ॥

यज्ञोपवीतं विना भोजनादि करणोत्तु=मरीचिः=ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विरामं कुरुतेऽथवा गायत्र्यष्टमहस्रैणाप्राणायामेन शुद्धति=अर्थात्—काँधे पर जनेऊके न होने या खण्डित होनेकी दशासे जिसने भोजन कियाहो या शंका लघुशंकासे विद्या सूत्र का त्याग कियाहो सो यथोक्त रीति से प्राणायाम करिके गायत्री मंत्र आठ हजार जप कर शुद्ध होताहै (इसमें भी जनेऊ का बदलना समुक्ति लेना) यह मरीचिमुनिने कहा—यहां तक एक साथही डेढ़ श्लोक की अधिकोक्ति पूरी होचुकी ॥ २८१ ॥

अथ दो सौ ब्यासी का उत्तरार्द्ध मूलश्लोकवाला अर्थ देखौ कि मद्य मांस खाइ लेने पर कृच्छ्रकरना लिखचुके सो केवल उन्हीं मांसोंके खालेनेमें समुभ्ना जो खरगोश आदि खाने के योग्य उत्तम जीव कहातेहैं=तदाह वशिष्ठः=ब्रह्मचारोच्चेन मांसमन्त्री योऽच्छिद्य भोजनीयं कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा व्रतशेषं समापयेदिति=अर्थात्—उत्तम पुरुषों के खाने योग्य मांस को यदि ब्रह्मचारी खालेवै तो बारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके तिस पीछे अपने श्रेय व्रत का साधन करै (इसमें बारह दिन की अवधि कही जाने से यह तात्पर्य सिद्ध होता है कि ये बारह दिन अज्ञानता से मांस खालेने पर नियत हैं• कदाचित्त कोई जानि बुझिके मांस भक्षणा करै या विना जाने ही बारम्बार भक्षणा करै सो इससेभी कठिन अतिकृच्छ्र वा पराकआदि प्रायश्चित्त साधै तब शुद्ध होय) और इसी तरह अभक्ष्य जीवों का मांस खाइ लेने में अतिशय कठिन प्रायश्चित्त देखे जायँ यह वशिष्ठ ने दर्शाया है=फिर=उन्हीं वशिष्ठ ने रोगी होनेकी दशापर मांस खाने का विधान भी दर्शायाहै=यथा=सचेद्व्याधीयत कामगुरोरुच्छिद्यं भेषजार्थं सर्वप्रायश्चित्तं अर्थात्—यह ब्रह्मचारी यदि ऐसे रोग से व्याधित होजाय जिसकी औषधी मांस के सिवाय और कुछ न ठहिरै (दृष्टांत जैसे पक्षाघात वातव्याधि में कबूतर का मांस वैद्य वतावै इत्यादि) तो उस मांसको शरुका जुटाकरिके खाय यदा ऐसा असंभव हो तो शरुकी आज्ञा लेकर चिकित्सा के निमित्त में सब कुछ खाय—इसमें—सब खायका यह तात्पर्यहै कि मांस लहशुन आदि जो जो चीज अभक्ष्य हों और उन्हीं से रोग शान्ति हो सक्ती हो तो शरु की

आज्ञा-लेकर निःसंदेह भक्षणा करै और उसके भक्षणा से रोग नाश होजाने वादि
सूर्यनारायणा को उपस्थान करै=यदाह वीवायनः=येनेच्छेच्चिकित्सितुंस्यद्यथादोभ-
वति तदोत्थायादित्यमुपतियेत्तदंसःशुचियदिति=अर्थात्-सुरोगीवृक्षचारी जिसवस्तु
से चिकित्सा करनेकी इच्छा करै तिससे जब कभी वह निरोगी होजाय तबउदिके
उस दोय के मिटाने को (इंसःशुचियत्) इत्यादि वेदमंत्रसे सूर्यके सन्मुख उपस्थान
पढ़ै=इन वचनों की सामान्य आज्ञा से यह भी समझि परता है कि यदि वैद्य ने
रोगी सेकहे बिना किसी औषधी-सें मधु मद्य भी रोगी को खंवाया हो तो इसका
दोय रोगी पर कुछ नहीं है अर्थात् रोगी ने जानि बुझिके निग्रह औषध जोखाई
हो तिसका प्रायश्चित्त रोग मिटिजाने वादिकरै=इसके दृष्टान्तपर मिताक्षराकार
ने वशिष्ठ का यह वचन भी दर्शाया है कि (अकामोपतंतमधुवाजसनेयकेनदुष्यती
ति वशिष्ठस्मरणात्) जैसा वाजसनेय नामक यज्ञ में उपस्थित लोगों के आगेयदि
बिना सांगे चाहे मधु मद्य बँटता हुआ आकर स्वतः मिलिजाय तो उस जगह पर
लेनेने का दोय नहीं है यह वशिष्ठ ने कहा) तैसा रोग की दशा में भी यदि चाहे
बिना वैद्य के देने से खालेना पराहे तिसका दोय नहीं=यह बृहस्पति के वृत् भंग
होने का प्रसंग पाइकर थोड़े से प्रायश्चित्त यज्ञपर लिखे गये-किन्तु रोग होने के
बिना यदि कोई कुछ अभक्ष्य भक्षणा करै वा सूतक आदि अशुद्धिमें किसीका अन्न
खाय तिनके प्रायश्चित्त आगे अभक्ष्य भक्षणा के प्रकरणा में सर्व सामान्य कहेजायँ
तहां देख लेना= और=जो कदाचित्त किसी बृहस्पति को कुसा आदि काटै वा
कोआ आदि छुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त २७ की अधिकोक्ति में देखौ तहां
विशेष कर अंगिरा का वचन हूँहो ॥ यह दोसो बयामी का उत्तरार्ध पूरा होगया
॥ २८२ ॥ अब दोसो तिरामी मूलश्लोक देखौ कि उसके पर्वार्धमें शुरुके प्रतिकूल
करने का प्रायश्चित्त शुरु का प्रसन्न करना कहिकर उसी बृहस्पति के प्रसंग से
शुरु की भी प्रायश्चित्त करना उत्तरार्धमें कहा गया-तहां कुछ संदेह यद्यपि नहीं
है क्योंकि (कच्छं वयं शुरुः) इतने पद का अर्थ यही है कि तीन कच्छ शुरुकरै
तथापि मिताक्षरा में (कच्छवयं) पद के ऊपर उलटी अंति खड़ी करी है तिसकी
भी चार पंक्तों धरे बनेहैं देखौ=यथा=तदाशुरुः कच्छादीनां प्राजापत्यादीनां त्रयकु-
र्यात् नपुनस्त्रयःप्राजापत्याः तथासतिपृथङ्निवेशिनीसंख्याशुपपन्नास्यात् तच्चैकाद-
शप्रयाजानुयजतीतिवदारुत्यपेक्षासंख्येति चतुरस्रं स्वहृत्पृथक्त्रैसंभवत्याट्यपेक्षाया
अन्याट्यस्त्वाद्यदीयमुत्पन्नातासंख्यास्यात् तदास्यादपिकर्वाचिदारुत्यपेक्षा किन्तु

त्पतिगतेयमत्रतस्तिस्त्राहुतिर्जुहोतीति वत्स्वरूपपृथक्तापेक्षयैवित्त्वसंख्याघटना
 युक्ता—ये पंक्तियाँ—केवल विद्वानोंका वाग्बिनोद है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे
 क्या क्या सार निकसा—किन्तु सर्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर
 २८३ के अर्थ लिखि चुके और वही प्रधान अर्थ है—अथवा—यहाँ की भान्ति
 जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ता है कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल
 प्रलोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षणा कहेगये थे कि) एक
 वर्ष छमाही से लेकर घटते घटते छः दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत
 होता है इनमें से जहाँ जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहाँ तैसाही
 किया जाय—सो इस व्यवस्था के अनुसार गुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े
 कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायँ तो भी तीन कृच्छ्रों के स्वरूप मिलि कर कोई
 सो बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्याया सीधा अर्थ जैसा
 योगीश्वरने निष्कपट प्रयोग दर्शाया तिससे तीन कृच्छ्रों के (बारहतिथ्या) कृत्तीस
 दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है • क्योंकि गुरु के लियेयह
 एक बड़ी ताकीद रक्खी गई है कि ऐसे प्राणाहानि वाले स्थान पर शिष्य को न
 भेजे • फिर भी जहाँ गुरुने ताकीद को न सोचि कर अतिक्रम किया होय जिससे
 शिष्य के प्राणाही नाश होजायँ—तहाँ ऐसे गुरुपर कृत्तीसदिनका प्रायश्चित्त बहुत
 बड़ा नहीं है जिसके लिये अवोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें कृत्तीस
 दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है ॥ २८३ ॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवाँ परिच्छेद की आदि लेकर
 यहाँ तक बहुधा परिच्छेदों में हिंसा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात् कहीं
 ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं नारी वध कहीं गर्भही का वध कहीं
 अन्य भांति कें पशु आदि जीवों की हिंसा बल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य
 की हिंसा उसको भजिदने के वहाने से दर्शाई गई—सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का
 अपवाद आगे दोसौ चौरासी मूल श्लोक से दर्शावेंगे—यद्यपि जहाँ जहाँ ब्रह्महत्या
 गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहाँ भी अथांतर के बचनों से अपवाद कूटका
 स्वरूप बतैरहेहैं—परन्तु यहाँपर मूल श्लोक से योगीश्वर आपही कूट दर्शावेंगे कि
 दोसौ अनुकामुक दशाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहाती है ॥

(पूर्वोक्तसकलहिंसाऽपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८३(इत्यथमेव)

अर्थः—उपकार करते हुये विप्रके मरने में पातक नहीं है—अर्थात्—जहां गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा या उसका रोग मिटाने की वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी सरजाय तौभी कुछ प्रायश्चित्तकी जल्दतरत नहीं है ॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः—यह चौरासी का अद्वा ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु के प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नामद्वार सुचित्त करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहां जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण सरजाय तौ इस दशा में उस गुरुपर न दोय है न प्रायश्चित्त की जल्दतरत है—यहीचौरासी का वचन उस गुरुके सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी सवन्धित है तिससे उनके भी उपकारों में सरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बतयाहो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण भी सरजाय तौभी वैद्य दोयी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षाहे (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का सरजाना कहा सोभी सवजीवोंका उपलक्षणा मानागया कि क्षत्री आदि कोई आदमी या पशु भाय वैंल घोड़ा आदि में भी जिस किसीकी भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म कियाजाय या उसीसे करवाया जाय तिसके सरजाने में भी दोय नहीं है—इसी लिये गोवध प्रायश्चित्तों के प्रकरण में (यंत्रणो गोश्चिकित्सार्थं गूढगर्भविमोचने यत्नेकतेविपत्तिःस्यान्नसपापे नलिष्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखिचुके तहां देखौ ॥ २८४ ॥

अमुक दशा में हिंसा का दोय नहीं लगताहे यह कहा गया इसीके प्रसंगसे यह बात भी उत्पन्न भई कि जब कोई किसीपर भूँटा पाप लगावै कि इसने मेराअमुक मनुष्य या गऊ आदि को मार डारा या अगभ्यागमन किया या मदिरा पान करी इत्यादि भूँटा दोय लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखौ ॥

एतन्निगतेयमभ्रतस्तिभ्रआहुतिर्जुहोतीति वत्स्वरूपपृथक्तापेक्षयैवधित्वसंख्याघटना
 युक्ता—ये पंक्तियाँ—केवल विद्वानोंका वाग्बिन्दो है वेही सोचिके देखेंगे कि इनसे
 क्या का सार निकसा—किन्तु सर्वजनों के समझने योग्य वही पाठ है जो ऊपर
 २८३ के अर्थ लिखि चुके और वही प्रधान अर्थ है—अथवा—यहां की भान्ति
 जनक पंक्तियों से इतना सार लिया जासक्ता है कि जैसा (२७४ के उत्तरार्द्ध मूल
 श्लोकवाली अधिकोक्ति में कृच्छ्र शब्द के सामान्य लक्षसा कहेगये थे कि) एक
 वर्ष छमाही से लेकर घटते घटते छः दिन तीन दिन एक दिन का भी कृच्छ्र व्रत
 होता है इनमें से जहां जैसे बड़े या छोटे की योग्यता समझी जाय तहां तैसाही
 किया जाय—सो इस व्यवस्था के अनुसार गुरु के प्रायश्चित्त में भी छोटे या बड़े
 कृच्छ्रों के स्वरूप यदि माने जायँ तो भी तीन कृच्छ्रों के स्वरूप मिल कर कोई
 सो बड़ी या छोटी संख्या दिनों की हो जायगी अन्यथा सीधा अर्थ, जैसा
 योगीश्वरने तिष्कपट प्रयोग दर्शाया तिससे तीन कृच्छ्रों के (बारहतिथ्या) छत्तीस
 दिन होते हैं तिनसे कोईसा अन्याय नहीं प्रतीत होता है• क्योंकि गुरु के लियेयह
 एक बड़ी ताकीद रक्खी गई है कि सेसे प्राणहानि वाले स्थान पर शिष्य को न
 भेजे• फिर भी जहां गुरुने ताकीद की न सोचि कर अतिक्रम किया होय जिससे
 शिष्य के प्राणाही नाश होजाय•तहां सेसे गुरुपर छत्तीसदिनका प्रायश्चित्त बहुत
 बड़ा नहीं है जिसके लिये अत्रोक्त पंक्तियों का सहारा लिया जाय जिसमें छत्तीस
 दिन से कुछ न्यून अवधि पाई जाय इसमें कोई सार नहीं है ॥ २८३ ॥

यह आशय भी विदित होना चाहिये कि चौबीसवाँ परिच्छेद को आदि लेकर
 यहां तक बहुधा परिच्छेदों में हिंसा के प्रायश्चित्त वर्णन होते रहे अर्थात् कहीं
 ब्रह्महत्या कहीं नरहत्या कहीं गोहत्या कहीं नारी वध कहीं गर्भहो का वध कहीं
 अन्य भांति के पशु आदि जीवों की हिंसा वल्कि इस दोसौ तिरासी में भी शिष्य
 की हिंसा उसको भँजि देने के बहाने से दर्शाई गई—सो इन पूर्वोक्त सर्वहिंसाओं का
 अपवाद भागे दोसौ चौरासी मूल श्लोक से दर्शावेंगे—यद्यपि जहां जहां ब्रह्महत्या
 गोहत्या आदिका वर्णन किया गया तहां भी ग्रंथांतर के धर्चनों से अपवाद कृत्का
 स्वरूप देतेरहेहैं—परन्तु यहांपर मूल श्लोक से योगीश्वर आपही कृत् दर्शावेंगे कि
 सेसी अनुकामुक दयाओं में हिंसा होजाने परभी हिंसा नहीं कहाती है ॥

(पूर्वोक्तसकलहिंसाऽपवादः)

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् २८४(इत्यधमेव)

अर्थः—उपकार करते हुये विप्रको मरने में पातक नहीं है—अर्थात्—जहां गुरु या वैद्य आदि किसीने उसीके उपकार हेतु कहीं भेजा या उसका रोग मिटाने को वैद्य ने चिकित्सा करी हो जिससे कोई ब्राह्मण भी मरजाय तोभी कुछ प्रायश्चित्तकी जरूरत नहीं है ॥ २८४ ॥

२८४ अधिकोक्तिः—यह चौरासी का अद्वा ऊपरले दोसौ तिरासी से संबन्ध राखता है अर्थात् इसके द्वारा गुरु के प्रायश्चित्त पर (अपवाद) नासकूट सूचित करी है कि जब गुरु ने अपने कामको न भेजा हो किन्तु उसी शिष्य का उपकार सोचि कहीं भेजा हो जहां जाकर ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी आदि कोई ब्राह्मण मरजाय तो इस दशा में उस गुरुपर न दोष है न प्रायश्चित्त की जरूरत है—यही चौरासी का वचन उस गुरु को सिवाय वैद्य आदि उपकारियों से भी संबन्धित है तिससे उनके भी उपकारों में मरजाने का अपवाद रूप यही अर्थ लगाया जाता है कि वैद्यक अनुसार जिस वैद्य ने किसी को कुछ औषध वा पथ्य या कोईसा अन्न आदि अपने हाथसे खिलाया वा बताया हो रोगीका उपकार चाहिकर ऐसी दशामें यदि कोई ब्राह्मण भी मरजाय तोभी वैद्य दोषी नहीं है न उसपर प्रायश्चित्तकी अपेक्षा है (इस व्यवस्थामें विप्र या ब्राह्मण का मरजाना कहा सोभी सबजीवोंका उपलक्षण मानागया कि सत्री आदि कोई आदमी या पशु गाय बैल घोड़ा आदि में भी जिस किसीको भलाई चाहिकर चिकित्सा आदि कोई कर्म कियाजाय या उसीसे करवाया जाय तिसके मरजाने में भी दोष नहीं है—इसी लिये गोवध प्रायश्चित्तों के प्रकरणा में (यंत्रो गोश्चिकित्सार्थं गूढगर्भविमोचने यत्नेकतेविपत्तिःस्यान्नसपाये नलिप्यते) इत्यादि अनेक वचन लिखिचुके तहाँ देखो ॥ २८४ ॥

अमुक दशा में हिंसा का दोष नहीं लगताहै यह कहा गया इसीके प्रसंगसे यह बात भी उत्पन्न भई कि जब कोई किसीपर भ्रूंडा पाप लगावै कि इसने मेराअमुक मनुष्य या शऊ आदि को मार डारा या अगभ्यागमन किया या मदिरा पान करी इत्यादि भ्रूंडा दोष लगाने का प्रायश्चित्त आगे देखो ॥

अथमिथ्या भिशंसनादिदोषस्यप्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽयंपरिच्छेदः षष्टितमः (६०) ॥



इस परिच्छेद में मिथ्याभिशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसकोलिये दर्शाविये कि जिसने किसी पर भूँटा पाप लगाया हो—और उसको भी कि जिसपर भूँटा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपराधियों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायेंगे ॥

(मिथ्याभिशंसनोपपापप्रायश्चित्तं)

मिथ्याभिशंसतिनेद्वेषात्तुदिःसमाभूतवादिनः मिथ्याभिशस्तद्वेषज्वत्समादत्तेऽसृपावदन् २८५ ॥
महापापोपपापान्वायोऽभिशंसेन्मृपापरम् अन्भक्षोमासमासीतज्ञापीनियतेन्द्रियः २८६ ॥

अर्थः—द्रोहसे भूँट अभिशंसनकर्ता समाभूतवादी को दूना दोष और असृया कहिये हुये मिथ्याभिशस्तका दोष भी अच्छीतरह होताहै—अर्थात्—जब किसी का भाग्योद्देश्य प्रतिष्ठा की रुद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्ष्या द्रोह से न सहिकर कोई द्रोही उसको भूँटा ही अभिशाप लगावै अर्थात् मनुष्यों के समाज में कोई सा बड़ा या छोटा पाप सुनावै कि उसने ब्रह्महत्या करी या मद्यपान वा अग्न्यागमन वा गोवध आदि अमुक्त पाप किया तो उस भूँट लगाने वाले को बड़ी पाप उससे दूना लगा रहिरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका सच्चा ही पाप प्रथम अंगुत्रा बनिकर सब लोगोंके सम्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको स्वलोका नहीं जानतेथे तो भी उसपापी के और जो पहिले संचित्त किये पाप हैं सो इस दोषवक्ता के ऊपर चढ़िआते हैं ॥ २८५ ॥ महापाप या उपघापों से जो कोई पराये को मृयाही अभिशंसै तो एक महीना भर जितेन्द्र होके जलही का आहार करते हुये जपमें बैठै—यह उन्हींका प्रायश्चित्त है ॥ २८६ ॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढ़ि आते हैं इसीलिये आपस्तम्ब ने यह कहा है (दोषबुध्वानपूर्वःपरिभ्यः पतितस्यसमाख्यातास्याद्य परिहरेचैतन्धर्मसु) अर्थात्—किसी पतित का दोष देखि जानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सम्मुख व्योरा न कहै और व्यवहार के धर्मोंमें भी इसको रोसी रीतिसे छोड़ै कि

जिससे सबके सामने द्यौरा न कड़िनापरै किन्तु अपने आपही युक्तिकेसाथ पतित से बचा रहे कि जब तक दीयीका दोष औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इन के प्रायश्चित्तमें महीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहिचुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणाममृततेनाभिर्यं स्य पतनीयेनोपपातकेनवामाससप्तमस्यः शुद्धवतीभिरावर्त्तयेद्यमेधावभृथं वाराच्छेद्व= अर्थात्-वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूयितकारिके यह प्रायश्चित्त करै कि शुद्धवती इसनामसे प्रतिष्ठ जो ऋचा है तिनसे जप करै एक महीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखै तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तो जहां कहीं अन्नमेव होता मुने तहां जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिमस्नानमें शामिल होजाय तो भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भांति के पाप जो कुछ होते हैं सो भी सब समुक्ति लेना) यह भूँटा दोष लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहै कि जहां ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोष लगायाहो=अर्थात् जहां कोई सत्री आदि इतरवर्गका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर भूँटा पाप लगावे तहां उस सत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका दूना तिगुना आदि भार चढायाजाय सो उस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादेयद्विगुरास्त्रिगुरादिमः) यह व्यवहार मर्यादा में दराइ दूना तिगुना कहागया था=और जहां सत्रीआदि किसी नीचे वर्गको ब्राह्मण आदि ऊचे वर्गोंके मनुष्यने भूँटा पाप लगायाहो तहां (वर्गानामानुलोम्येन तस्मादहर्द्धानितः) यह दराइका प्रकार जैसा व्यवहार मर्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहां प्रायश्चित्त भी कम क्रिया चाहिये=और जिसने सच्चा दोष प्रकाश कियाहो तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय• सो यह उससे आधा समुक्त्तना कि जितना भूँटा पर साबित किया जाय (यह तो महापापोंका दोष लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोष लगायाहो• और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षणा के पापोंसे दोष लगायाहो• और जिन्होंने उपपातक लक्षणाके पापों से दोष लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भाग देना चाहिये क्योंकि उपपातक रूपी सत्री आदि के बच

अथमिथ्या भिंशंसनादिदोषस्यप्रायश्चित्तप्रकाश

कौऽयंपारिच्छेदः पष्टितमः (६०) ॥

—*—

इस परिच्छेद में मिथ्याभिंशंसन दोषका प्रायश्चित्त उसकोलिये दर्शावैगे कि जिसने किसी पर भूँटा पाप लगाया ही—और उसको भी कि जिसपर भूँटा पाप लगाया जाय—इन दोनों के प्रसंग से अपरां क्त्यों के प्रायश्चित्त भी सामान्य कहे जायेंगे ॥

(मिथ्याऽऽरोपितदोषप्रायश्चित्तं)

मिथ्याऽभिंशंसिनोद्वेषात्तुद्धिःसमाभूतवादिनः मिथ्याऽभिंशस्तद्वोपञ्चसमावृत्तेऽमुपावदन् २८५ ॥
महापापोपपाभ्यांयोऽभिंशंसेन्मृपापरम् अन्भक्षोमात्समासीतजपापीनियतेन्द्रियः २८६ ॥

अर्थः—द्रोहसे भूँट अभिंशंसन कर्ता समाभूतवादी को दूना दीय और असृया कहिते हुये मिथ्याभिंशस्तका दोष भी अच्छीतरह लेताहै—अर्थात्—जब किसी का भाग्योदय प्रतिष्ठा की रुद्धि आदि उत्कर्ष को ईर्ष्या द्रोह से न सहिकर कोई द्रोही उसको भूँटा ही अभिशाप लगावै अर्थात् सगुणों के समाज में कोई सा बड़ा या छोटा पाप सुनावै कि उसने ब्रह्महत्या करो या मद्यपान वा आगस्थायगमन वा गोवध आदि अमुक पाप किया तो उस भूँट लगाने वाले को वही पाप उससे दूना लगा ठहिरता है जो पाप उसने मिथ्याही किसीपर लगाया—और जिसने किसीका सचा ही पाप प्रथम अंगुआ वनिकर सब लोगोंके सन्मुख प्रकाश किया हो जिसपापको रुक्लोम नहीं जानतेये तो भी उसपापी के और जो पहिले संचित किये पाप हैं सो इस दोषवक्ता के ऊपर चढ़िआते हैं ॥ २८५ ॥ महापाप या उपपापों से जो कोई पराये को मृयाही अभिंशंसे सो एक महीना भर जितेन्द्र हीकी जलही का आहार करते हुये जपमें बैठै—यह उन्हींका प्रायश्चित्त है ॥ २८६ ॥

२८५ अधिकोक्तिः—वक्ता के ऊपर पाप चढ़ि आते हैं इसीलिये आपस्तंब ने यह कहा है (दोषबुद्धवानुपूर्वःपरिभ्यः पतितस्यसमाख्यातास्यात् परिहरेचेनंत्वर्मयु) अर्थात्—किसी पतित का दोष देख जानि के प्रथम देखने वाला और लोगों के सन्मुख च्यौरा न कहै और व्यवहार के वर्णोंमें भी इसको सेमी रीतिसे छोडै कि

जिससे सबके सामने व्यौरा न कहिनापरै किन्तु अपने आपही युक्तिकेसाथ पतित से बचा रहे कि जब तक दोगीका दोग औरोंके द्वारा प्रकाश होय ॥ २८५ ॥ इनके प्रायश्चित्तमें महीनाभर जल पीके जप करना जो ऊपर कहिचुके वह जप भी शुद्धवतीनाम की ऋचाओं से करना चाहिये=यथाह वशिष्ठः=ब्राह्मणामवृतेनाभिर्गंस्थ पतनीयेनोपपातकेनवाससम्बन्धः शुद्धवतीभिरावर्त्तयेदद्यनेवावभृथंवागच्छेत्=अर्थात्-वशिष्ठने भी ऐसा कहाहै कि ब्राह्मणको असत्य पाप जो जाती धर्मसे गिर जाने योग्य महापातक या उपपातकमें गिनती होय तिससे दूयितकरिके यह प्रायश्चित्त करै कि शुद्धवती इसनामसे प्रसिद्ध जो ऋचा है तिनसे जप करै एक महीना तक जलहीके आहारसे उपवास राखै तब शुद्ध होय अथवा यह न होसके तो जहां कहीं अन्नमेध होता मुनै तहां जाकर उसके अवभृथनाम के अन्तिमस्नानमें शामिल होजाय तो भी शुद्ध होजावे (इसमें जो महापाप और उपपाप कहा तिसके बीचमें अति पातक आदि और भांति के पाप जो कुछ होते हैं सो भी सब समुक्ति लेना) यह भूँटा दोग लगानेकी व्यवस्था जो लिखी गई सो सब उसके प्रायश्चित्तहै कि जहां ब्राह्मण को किसी ब्राह्मण ने महापातक दोग लगायाहो=अर्थात् जहां कोई सत्री आदि इतरवर्गका मनुष्य होकर ब्राह्मणपर भूँटा पाप लगावे तहां उस सत्री आदि के लिये इन्हीं प्रायश्चित्तोंका हुना तिथुना आदि भार चढायाजाय सो उस न्यायसे कि जैसा (प्रतिलोमापवादेयद्विगुणास्त्रिगुणोदमः) यह व्यवहार मर्यादा में दराइ हुना तिथुना कहागाया था=और जहां सत्रीआदि किसी नीचे वर्गको ब्राह्मण आदि ऊँचे वर्गोंके मनुष्यने भूँटा पाप लगायाहो तहां (वर्णानामानुलोभ्येन तस्मादहर्द्धान्तिः) यह दराइका प्रकार जैसा व्यवहार मर्यादामें लिखि चुके तिसके अनुसार यहां प्रायश्चित्त भी कम क्रिया चाहिये=और जिसने सच्चा दोग प्रकाश कियाहो तिसकेलिये २८५वाली व्यवस्थाके अनुरूप केवल आधाही प्रायश्चित्त विचारा जाय० सो यह उससे आधा समुभन्ना कि जितना भूँटा पर सावित किया जाय (यह तो महापापोंका दोग लगाने मध्ये नियम कहे गये) इन्हीं सब लिखे हुये नियमोंसे पौना पौना प्रायश्चित्त उनकेलिये विचारा जाय कि जिन्होंने अति पातक नामके पापों से दोग लगायाहो और उनकेलिये आधा आधा प्रायश्चित्त विचारना चाहिये कि जिन्होंने पातक लक्षणा के पापोंसे दोग लगायाहो और जिन्होंने उपपातक लक्षणाके पापों से दोग लगाया हो तिनकेलिये इन प्रायश्चित्तोंका चौथाई भाग देना चाहिये क्योंकि उपपातक रूपी सत्री आदि के वध

का जो प्रकरणा लिखा गया था उसमें (तुरीयोत्रहृत्यायाः सत्रियस्यवधेस्मृतः) यही वचन कहा गया था कि ब्रह्महृत्यारूपी महापातक का प्रायश्चित्त जो बारह वर्ष का होता है तिसका चौथाई भाग सत्री के वधमें समुभना० तिससे यहां भी वही तात्पर्य है० और इस चौथाई से भी कुछ न्यून व्रत उनको लिये लगाना कि जिन्होंने प्रकीर्ण लक्षणा के पापोंसे किसीको दोष लगाया हो—इती नियम का प्रसार भी यह वचन है कि (शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्) शक्ति और पाप की बड़ाई छोटाई देखिके प्रायश्चित्त लगावे ॥ ० ॥ इसके सिवाय जिसने भूँटा पाप लगाने का बारम्बार अभ्यास किया हो यहा अन्य लोगों को भूँटे साक्षी आदि बनाकर बड़ी दृढ़तासे महापापरूपी दोष किसी ब्राह्मणपर लगाया हो तिसको लिये शंख और लिखितका बताया प्रायश्चित्त है—यदाहतुः शंखलिखितौ—नास्तिकः कृतघ्नः क्रूरव्यवहारी ब्राह्मणो वृत्तित्थो मिथ्याभिशांसी चेत्येते यद्द्वयं गिरा ब्राह्मणो गृहेभ्यश्चरेयुः संवत्सरं धीतभैर्यं शश्रीयुः यद्भासान्वावागान्नुगच्छेयुरिति—अथ द्वि—दोनों धाता मुनीश्वरोंने कहा है कि सक्तनास्तिकः कृतघ्नः क्रूर व्यवहारी जो मिलावकी चीजें बेचें—ब्राह्मण की वृत्ति जीविका बिगाड़ने वाला० और मिथ्याभिशांसी जो किसीको भूँटा पाप लगावें० ये सभी इतने पापी लोग छे वर्य भर ब्राह्मणों के घर भिक्षासार्गों या एक बर्य टुकड़े मांगे हुये धोकर खार्थ या एक रुसाही भर गौओंके पीछे फिरिके सेवा करें तब शुद्ध होय—ये बड़े छोटे तीन प्रायश्चित्त भी अपरावकी बड़ाई छोटाई देखिके अपराधी पर आरूढ़ किये जायेंगे ॥ २८६ ॥ दोष लगानेवाले के प्रसंगसे उसके लिये भी प्रायश्चित्त आगे दर्शावेंगे कि जिसपर भूँटा पाप लगाया गया हो उसका नाम अभिशस्त कहा जाता है ॥

(अभिशस्त प्रायश्चित्त)

अभिशास्तो मृषारुच्छूचरेदाग्नेयमेव च । निर्वपेतु पुरोडाशं वायव्यं पशुमेव वा २८७

अर्थः—मृषा अभिशस्त भी रुच्छू करे वा आग्नेय पुरोडाश वायव्य पशुही को—अथ द्वि—भूँटा पाप शाप जिसपर लगाया गया सो मृषा अभिशस्त कहाता है उसको भी यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि प्राजापत्य नामका रुच्छू व्रतसाधे अथवा अग्निदेवता की प्रधानतासे उसीके नामपर साकत्य होमै अथवा वायुदेवता के नामसे वायव्य पशुयाग करें तब शुद्ध होय ॥ २८७ ॥

२८७ अथिकोक्तिः—(वायव्यं प्रवेत्तं छागसालभेतेति युतिदर्शनाच्छागसवप्रवेत्तव

सौंपशुरघापिज्ञायते) अर्थात् मूलश्लोक में यद्यपि वायव्य पशुका कोई नाम नहीं कहा तोभी यह युक्ति जो प्रसिद्ध है कि वायव्य पशुके नामसे सुपेद बकरा बलिदान करे) तिससे यहां भी सुपेद बकरा समझा गया है—मूलश्लोक में प्रायश्चित्तों के दो तीन भेद जो दर्शाये तिनमें कर्ताकी शक्ति और देश काल आदि का अवरोधो सम्भव जानिके विकल्प किया जासक्ता है कि इनमें से जिस भेदका अवसर ठीकसिले वही किया जाय ॥ ० ॥ इससे पहिली अधिकीक्ति के प्रारंभ मे २८५ के वादि जो वशिष्ठ का वचन लिखा गयाथा तिसके अन्तमें वशिष्ठजीने (स्तेनैवाभिगस्तोव्याख्यातः) यह इतना पद और भी लिखिकर यह अर्थ प्रकट कियाहै कि एकमहीना जल पीकर जप करना जो झूठे पाप लगानेवाले को कहा वही उसको भी चाहिये जिसपर झूठा पाप लगाया जाय—सो यह एक सहीनेका बड़ा प्रायश्चित्त अभिगस्त की अपेक्षा में उस दशापर आरूढ होसक्ता है कि जब उसने बहुत कालतक प्रायश्चित्त न कियाहो तब यह बड़ा करना चाहिये क्योंकि दण्डके प्रकरारमें भी ऐसा नियम है कि (संवत्सराभिगस्तस्यदुष्टस्यद्विगुणोदमः) अर्थात् जब कोई दुर्जन एक साल भरसे कलंकित सजाव किया गयाहो और वह कोईसा अपराध करे तब उस अपराध का जो दंड होताहो सो उसको दूना किया जाय ॥ ० ॥

पैठेनसि ने यह कहा है—अनुतेनाभिगस्तमानः कृच्छ्रञ्चरेतमासपातकेयु महापात केयुहिमासम्—अर्थात्—असत्यपापसेशापित दूयित कियाहुआ पुरुषकृच्छ्रत आचरे जो बारहदिनमें होताहै (परन्तु ये बारह दिन छोटे उपपापोंके अभिशाप में समझने क्योंकि)परेपातकोंके अभिशापमेंएक सहीनाभर व्रतचाहिये औरमहापातकोंकेअभिशापमें दो सहीने(इसमें भी ऊपरले वशिष्ठके वचन समान और कर्ताकी शक्ति आदि के अनुसार व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये)—इसी प्रकार—और भी जे कोई वचन अभिगस्तकी अपेक्षा पर पायेजाय तिनके बडे छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था भी तात्कालिक देशकाल और शक्ति आदि के अनुसार शौचिके समुक्ति लेना—इसके सिवाय=मनुने एक सामान्य रीतिके प्रायश्चित्त भी दर्शाये हैं जो अभिगस्त आदि औरों पर भी आरूढ होसक्ते हैं—यथाह मनुः—यथात्रकालतामासंसेहिताजपवदा हीमाश्चक्रकलानित्य संपत्तयानांविशोवनम्—अर्थात्—अपत्य वे पुरुष जिनका किसी कलंकसे पातिसमें बैठना भोजन करना आदि वद होय ऐसे पुत्र्य अनेक तरह के कलकी होते हैं उनमें एक अभिगस्त भी कृथ शौचिके गितता कियागया है—तिन सबका विशोवन प्रायश्चित्त एक सहीना भर (यथात्रकालता) अर्थात् छोटे

छठे दिन भोजन एक महीना भर करना अथवा यह न होसकै तो संहिता का जप पाठही एक महीना भर करै अथवा साकल्य सामग्रीके होमही रोज करता रहै ती शुद्धि उनकी होजाती है ॥ ० ॥ इत ऊपर की व्यवस्था में मृया अभिशस्त के प्रायश्चित्त जो कुछ कहे गये तिनपर बहुत कुछ सन्देह कियागया है कि जब भूटाही अपवाद लगाया गया तो फिर उसका क्या दोषहै कि जिसके लिये प्रायश्चित्त करना कहा-इसका यही उत्तर है कि यद्यपि उसका दोष कुछ इस देह से नहीं पाया गया तोभी पहिले जन्मका पाप उसके ऊपर आनिके आकृष्ट हुआ कि जिसने महा पाप हृषी भूटा कलंक उसपर आरोपित करवाया तिसकी शांतिके निमित्तमें प्रायश्चित्त उसपर ठहरा-तिससे विरोध कोई सा नहीं है न शंका करने की अवकाश है-क्योंकि-जैसे घाव वा फोड़ा फुंसी आदिमें कोड़े पर जानेका प्रायश्चित्त पूर्वजन्म कृत पापोंका उदय देखि उनको शांतिके निमित्त कहागया था ७७की अधिकोक्ति में देखी तैसा यह भी है ॥ २८७ ॥ दोसौ अस्सी मूलप्रलोक से लेकर अपने नियम तोडि देनेका चर्चा चला आताहै तिससे निचले परिच्छेदमें भी नियम टूटिजाने के प्रायश्चित्त धर्मान होंगे कि जब किसी रजस्वला के नियम या पति का नियम या देवर जेवोंका उचित नियम टूटिजाय ॥ २८७ ॥

अथ रजस्वलाद्यगम्यागमनस्य रजस्वलायाश्च नियम भङ्गस्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयम्यरिच्छेदः एकषष्टिः (६१)



इस परिच्छेदमें उन प्रायश्चित्तों का प्रकाश किया जावेगा जो पत्न्य को रजस्वला संगम करने में या भाईकी भार्या गमन करनेमें आवश्यकहैं-और स्त्री जो रजस्वला होते परस्पर दो भिडि के नियम खोवै या कुत्ता वा चंडाल आदि मलीन जीवों को छुदके नियम तोडि तिसकी आवश्यक हैं ॥

(अगम्यागमन प्रायश्चित्तं)

अनियुक्तोभ्रातृजायांगच्छेदवान्द्रायणश्चरेत् । त्रिरात्रान्तेघृत्प्रदायगत्सोदक्यांविशुद्धपति २८८ ॥

अर्थः-भ्राताकी भार्यामें नियुक्त किये विना गमन करते हुये चांद्रायण आचरै-
अर्थात्-नियोग कर्मकी आज्ञा शुरु जनों से मिले विनाही यदि कोई अपनेछोटे या

बड़े किसी भाई की विधवा आदि भार्यामें गर्भदान के मनोरथ से संगम करै सो भी एक महीना भर चांद्रायणा व्रत साथै तब शुद्ध होय ॥ १ ॥ उदक्यामें जाइके तीनरात्रि के पीछे घृत चाटिके शुद्ध होता है—अर्थात्—उदक्या रजस्वला यद्यपि अपनी भार्या होय तिसमें संगम करिके तीन दिन राति भर निराहार-उपवास किये पीछे चौथे दिन घी खानेसे विशुद्ध होता है ॥ २८८ ॥

२८८ अधिकोक्तिः—भावजमें संगमका प्रायश्चित्त जो ऊपर लिखा सो केवल एकवारके संगम और इच्छाके विना संगम होनेपर समुभक्ता=किन्तु=इच्छासे चाड़ि कर संगम या कईवार संगम कियाहो तिमके लिये श्रावणमुनिका कहा प्रायश्चित्त है=यदाह शंखः=परिवृत्तिःपरिवेत्ताच्च संवत्सरं ब्राह्मणगृहेयुः भैक्ष्यं चरेयातां ज्येष्ठभार्यामनियुक्तो गच्छंस्तदेवकनिय भार्याचेति=अर्थात्—परिवृत्त और परिवेत्ता भी एकवर्षभर ब्राह्मणा के घरों में भिक्षासोंगें तथैव अपने जेठे वा छोटेभाईकी भार्या में नियुक्त नहीं किया हुआ संगम करै सोभी इसी प्रायश्चित्तको आचरै ॥ १ ॥ रजस्वला के संगमका जो प्रायश्चित्त ऊपर कहागया सो भी एकवार और चाहे विना संगम होजाने में समभक्ता=किन्तु=कईवारके अभ्यासमें शातातपका कहा प्रायश्चित्त है=यदाह शातातपः=रजस्वलागमने सप्तरात्रं=अर्थात्—रजस्वला का संगम करने में सात रात्रिका व्रतकरै और इच्छासे चाड़ि कर एकवार भी संगम करने में यही प्रायश्चित्त है=परन्तु=जिसने कामनासे चाड़ि कर कईवारका अभ्यास किया हो तिमके लिये अग्रेक प्रायश्चित्त है=यदाह वृद्धसंवर्तः=रजस्वलांतु योगच्छेदार्भितोपतितांतया तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनम्=अर्थात्—जो रजस्वलामें संगम करै या गर्भ वतीमें करै या पतिता जो महापातकोंसे संयुक्त हुईहो तिसमें संगम करै तो इसपापी के पाप शोधनेकी अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त है=इनके सिवाय=जो शंख ने तीन वर्ष का प्रायश्चित्त कहा है कि=पावस्तुशुद्धहत्यायामुदक्यागमनेतया=अर्थात्—वारइवर्षे वाले व्रतोंकी चौथाई तीनवर्ष भर शुद्ध की हत्या पर करवा चाहिये तथा उदक्या रजस्वलाके संगम पर भी (सो यह तीन वर्षे चंडाली आदि अवम जाती रजस्वला के संगमपर और चंडाली आदि से उपरालू अन्य स्त्रियां जो रजस्वलाहों तिनमें अत्यन्त कामनासे अतिकाल तक अभ्यास राखने मध्ये भी समझि लेना ॥ ० ॥ भाई की भार्या का संगम यहांपर छोटे उपपातकों में आकर जुदा वर्णन किया गया किन्तु भ्रातृपत्नीसे ऊपर जो रिशतेमें अधिक पुज्य होतीहै उन स्त्रियों के संगम का बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है षड् ऋत्तिसर्वे परिच्छेद में वर्णन होचुका तिससे यहां पर

श्चित्त है-परन्तु जो अपने बर्रा की या अपना से ऊँचे बर्रा की रजस्वला को वैश्व योग से भिड़ जाय सो तत्काल ही स्नान करि शुद्ध होजाय किन्तु उस को अन्तिम स्नान तक भोजन छोड़ने की जरूरत नहीं रही ॥ यहाँ तक रजस्वला ही रजस्वला से भिड़ तिसका चर्चा या ॥ ० ॥ अब आगे चण्डाल आदि किसी अत्यन्त मलीन प्राणी से यदि कोई रजस्वला भिड़ जाय तिसके प्रायश्चित्त भी बड़े बशिश्व कहिते हैं-यथाह वृहद्विश्वः-पतितान्त्यजपाकेन संस्पृष्टाचेद्वजस्वला तान्यहानित्व-तिक्रम्यप्रायश्चित्तं समाचरेत्-प्रथमेऽह्निराशंस्यात् द्वितीयेद्वहमेवतु अहोरात्रं ततो वेगद्विपरतो नक्तमाचरेत् शुद्धयोच्छ्रित्यास्पृष्टाशानाचेद्वहमाचरेत्-अथति-पतित जो महा पातका से दूषित हो-अन्त्यज अनेक तरह के-चपाक चंडाल-इनसे यदि कोई रजस्वला छुड़ जाय सो अपने रजोधर्म के बाकी दिवसों को भोजन बिनाबता-इके पीछे से प्रायश्चित्त करै-किन्तु रजोरक्त जारी होने के पहिले दिन छुड़जाय सो तीन दिन का प्रायश्चित्त करै जो दूसरे दिन छुड़जाय सो दो दिन प्रायश्चित्त करै तीसरे दिन छुड़जाय सो एक दिन राति का व्रत करै इसके आगे जो चौथे दिन को आदि लेकर किसी दिन छुड़े होय सो एक राति ही भर का व्रत करै-और हाथ मुंह से जूठी शुद्धिनी ने यदि किसी रजस्वला को छुड़लिया हो यद्वा कृत्ता ने छुड़ लिया हो तो यह रजस्वला दोदिन का प्रायश्चित्त करै-इन प्रायश्चित्तके दिवसोंमें यचगव्य का आहार करना मूचित है कि जैसा ऊपरले किसी प्रायश्चित्तमें कहि चुके हैं-परन्तु ये बशिश्व के कहे प्रायश्चित्त उस दशापर आरूढ हैं कि जब रज-स्वला ने जानि बूझि कर स्पर्शकिया हो-अन्यथा-विना जाने वैश्व योग से छुड़जाने मध्ये अशोक्त प्रायश्चित्त है-यथाह वीवायनः-रजस्वलातुसस्पृष्टा चांडालान्त्यजवा-यसोः तावत्तियेन्द्राहारायावत्कालेनशुद्धति-अथति-जो कोई रजस्वला किसी प्र-कार की चंडाल वा अन्त्यज वा कृत्ता वा कौआ इनसे छुड़जाय सो तबतक आहार कुछ न करै कि जब तक रजोधर्म के बाकी दिन बिताइकर शुद्ध होजाय-परन्तु-यदि कोई रजस्वला किसी रोग आदि के हेतु से अमनर्थ होय जो कई दिन आहार को विना न रहि सकतीहो तिसके लिये उसी वीवायन ऋषिये दूसरा कहा है-यथा-रजस्वलातुसस्पृष्टाशानकृत्सूकरैः शुभिःस्नात्वाक्षिपेत्तावद्यावच्चद्रस्यदर्शनस-अर्था-त-ग्राम के निवासी हुए सअर कृत्ते आदि मलीन जीवों से छुड़े रजस्वला तत्काल स्नान करिके तब तक भोजन न करै कि जब तक चद्रमा का उदय हुआ न देखे ॥ ० ॥ जब किसी रजस्वला को भोजन करते समय कृत्ता आदि कोई मलीन प्राणी

हुइ जाय तिसका प्रायश्चित्त विशेष और स्मृतियों में कहा है=यथा=रजस्वलात्
 भुजानाद्यांत्यजादीन्स्पृशेद्यदि गोमूत्रयावकाहारायडावैरौवशुद्धति अशक्तौकांचनं
 दद्याद्विप्रेभ्योवापिभोजनम्=अर्थात्-भोजन करतीहुइ रजस्वला यदि कृत्ता आदिवा
 चण्डाल आदि किसीको हुइजाय सो गोमूत्र में पकाये जौ का दलिया खायकेछः
 दिन में शुद्ध होती है जो ऐसा न करसके किसी रोग आदि के हेतु से सो कांचन
 का दानकरै या ब्राह्मणों को भोजन करावै (इसमें जो छःदिन दलिया खाना कहा
 सो भी उन दिनों से उपराल प्रायश्चित्त है कि जब तक रजोवर्म जारी बना रहे
 अर्थात् खातीहुइ भिड़ जाने पर तत्काल स्नान करै और तब तक निराहार उपवास
 करै कि जबतक रजोवर्म का अन्तिम स्नान होय तिस पीछे यह छः दिन का प्राय
 श्चित्त है) क्योंकि ऊपर जो वृहत् वशिष्ठ ने प्रायश्चित्त कहे तिनमें बिनाखातेही
 हुइ जाने पर उतने दिन भोजन का नियेध होचुका है उसकी अपेक्षा यह अशोक्त
 दोय कुछ बड़ा है कि इस में खाते हुये चण्डाल आदि से हुइ गई ॥ ० ॥ जहां
 कहीं दो रजस्वला ही भोजन करते परस्पर जूटी भिड़जाय तिनके मध्ये अशोक्त नि
 यम है=यदाह अग्निः=उच्छ्रयोच्छ्रय्यास्पृश्याकदाचित्स्त्रीरजस्वला कच्छे राशुद्धते
 पूर्वाशुद्धादानैरुपोयिता=अर्थात्-इस वचन में पूर्वा शब्द से हर एक ऊँच वर्रा की
 समझना और शूद्रा शब्द के उपलक्षणा से हरसक नीचे वर्रा की समझना जो पर-
 स्पर दो भिड़ी हों उन्हीं में यह ऊँच नीच का विचार है कि-जब कोई रजस्वला
 स्त्री जूटीहोते किसी जूटी रजस्वलासे भिड़ जाय तब ऊँचे वर्रा वाली उपवास करी
 हुइ कच्छ व्रत करिके शुद्ध होती है और नीचे वर्रा वाली उपवास करी हुइ अन्न
 वखादि वानों के करने से (उपवास करीहुइ का यह अर्थहै कि रजोवर्म के जोकुछ
 दिन बाकी रहि गयेहों तिनमें कोरा उपवास करै फिर अन्तिम स्नान होजानेवादि
 प्रायश्चित्त करै ॥ ० ॥ जब कोई रजस्वला जूटे ब्राह्मणोंकी स्पर्श करै तिसके लिये
 अशोक्त नियम है=यदाह मार्कंडेयः= द्विजान्कथंचिदुच्छ्रयावरजः स्त्रीयदिसस्पृशेत्
 अशोच्छ्रयेत्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छ्रयेत्तद्विहितम्=अर्थात्-कथंचित्त किसीप्रकारसे हाथ
 शुद्ध जूटे ब्राह्मणों की रजस्वला स्त्री हुइ लोवै तो यह रजस्वला यदि नीचे के अंगों
 में हुइ गईहो तो एक दिन राति निराहारी रहे और ऊपर के अंगों में स्पर्श हुइ हो
 तो तीन दिन उपवास करै ॥ ० ॥ इसके सिवाय यदि कदाचिद किसी रजस्वला
 को कृत्ता गर्दभ आदि कोई अप्रभ जीव काटि खाय या नाक से संघि जाय अथवा
 काक चिमगादर आदि कोई नीच पक्षी हुइजाय तिसका प्रायश्चित्त २७७ दोस्रो

भावज के सिवाय किसी और स्त्री का प्रसंग मत समझना केवल छोटी बड़ी दोनों भावजोंका प्रसंग है-तिसका यह कारण है कि आचारकांड में अरसति उनदत्तरि के दो श्लोक मूलके देखी (अपूर्वागुर्वनुजातोदेवरःपुत्रकाश्रया भयिंडोवासगोत्रोवा घृताभ्यक्तऋता वियात्र ई० आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथाभवेत् अनेनविधिना जातःक्षेत्रजोऽस्यसुतोभवेत् ई०) अर्थ व्योरेवार इनके आचार मर्यादा में देखी कि क्षेत्रज पुत्रकी उत्पत्ति चादिके गुरुजनोंकी आज्ञा से गर्भ रहिजाने की अवधि तक प्रत्येक ऋतुकाल में इसी विधिसे संगम करना कहा परन्तु गुरुजनोंकी आज्ञा बिना यदि कोई देवर या जेठभाईकी भाय्यामें चाहें सन्तानकी अपेक्षासेही संगम करैतौभी पतित होताहै यह इन्हीं श्लोकोंके अन्तमेंकाहिकेये-तिसका प्रायश्चित्तइस कांड में आकर इसी दोसौ अष्टासी मूलश्लोक से योगीश्वर ने प्रकट किया ॥ २०८ ॥ गुरुओंकी आज्ञा बिना जैसी भाईकी भाय्या आश्रया रहिरो तैसी निज अपनी पत्नी भी रजस्वला होनेकी हालतमें आश्रया होतीहै तिससे इसी दोसौ अष्टासीके उत्तरार्ध से उसकाभी प्रायश्चित्तकहा-रजस्वलाका छूनाजैसा पतिकी नियमहै तैसा औरभी सब लोगोंकी नियमहै तिन सबके प्रायश्चित्त पहिलेही तोसर्वे मूल श्लोकसे वर्णन होचुके तहां देखी-जैसा सब लोगोंकी रजस्वला छूनेका नियमहै तैसा रजस्वलाकी भी और किसीका छूना प्रतियम है तिससे यहांपर उसके भी प्रायश्चित्त अब द-शाते हैं ॥ रजस्वलायांतुरजस्वलादिस्पृशेप्रायश्चित्त ॥ -तदाहृष्टवृत्तवशियः=स्पृशेरजस्वलेऽन्योऽन्यसगोत्रेत्वेकमर्हके ॥ कामादकामतोबापिसद्यःस्नानेनशुद्ध्यती (असपत्न्योस्तुसवर्गायोरकामतःस्नानमावमितिमिताक्षरा) यतः-उदकानुसवर्गाया स्पृश्याचेत्स्यादुदकया तस्मिन्नेवाहनिस्नात्वाशुद्धिमाप्नोत्यसंशयमिति मार्कण्डेयस्म-रणात्-अर्थात्-दौरजस्वला जो मगोवाहों और सकही पतिकी भाय्या होकरपरस्पर वह इसकी यह उसकी स्पर्श करै चाहें इच्छासे चादिकरया बिना इच्छाके छुवा छाई करी होय तो भी तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजायेंगी यह वशिष्ठजीनेकहा (और जो आपसमें सौतिसीत न हों पर सकही वर्गकी दोनों स्त्रियां रजोवतीहोयें तिनके परस्पर बिना चाहे यदि छुवाछाई होजाय तो ये भी स्नानमाव करिके शुद्ध होजायेंगी यह मिताक्षरानेकहा) क्योंकि-मार्कण्डेयका यह कथनहै कि जो उदका किसी सवर्गा उदक्यासे छुइराईहो तो उसी दिन स्नानकरिके शुद्धको प्राप्तहोजायगी इसमें सन्देहनहीं-और-जो सवर्गा दोनों होतेहुये इच्छासहित छुवाछाई करै तिनके लिये अशौक्त प्रायश्चित्त है-यदाह कश्यपः-रजस्वलाहसस्पृश्या ब्राह्मणयान्ब्राह्मणी

यदि एकरात्रिनिराहारा.पंचगव्येनशुद्धति=अर्थात्-यदि ब्राह्मणी रजस्वला होते किसी ब्राह्मणी रजस्वलासे इच्छा सहित भिद्दजाय तो एक दिन रातिका निराहार व्रत करिके पंचगव्य.पीनेसे शुद्ध होती है ॥ ० ॥ जहां जुदे वर्णोंकी दो उदक्या इच्छा सहित भिद्दजाय तिनके प्रायश्चित्तोंकी विशेषता बड़े वशिष्ठने कही है-यथाइष्ट-इहविशयः=स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीशूद्रजाअपि कृच्छ्रांशुद्धतेपूर्वा शूद्री दानेनशुद्धति-स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीवैश्यजाअपि पादहीनचरेन्पूर्वापाद कृच्छ्रनयोत्तरा-स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंब्राह्मणीसत्रियास्तथा कृच्छ्राद्वाचिच्छुध्यते पूर्वतित्तराचतदर्हतः-स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंसत्रियाशूद्रजाअपिउपवासोस्त्रिभिःपूर्वा त्वहोरात्रेणाचोत्तरा-स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यंसत्रियावैश्यजापिच विरावाच्छुध्यतेपूर्वा त्वहोरात्रेणाचोत्तरा-स्पृष्ट्वारजस्वलाऽन्योऽन्यवैश्याशूद्रीतथैवच विरावाच्छुध्यते पूर्वतित्तराचदिनद्वयात्•वर्णानां कामतःस्पृष्ट्वारिच्छुद्धिरेयांपुरातनी=अर्थात्- ब्राह्मणी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिद्द कर ब्राह्मणी कृच्छ्रव्रत करने से और शूद्री दान करनेसे शुद्ध होती है-यदि ब्राह्मणी और बनेनी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिद्दजाय तो ब्राह्मणी एक पाद हीन कृच्छ्र करे और बनेनी एक पाद कृच्छ्र करे- जहां ब्राह्मणी और सत्राणी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिद्द जाय तहां आधा कृच्छ्र करिके ब्राह्मणी शुद्ध होती है सत्रिया उस आधे का आधा करिके- जहां सत्राणी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर भिद्द तहां तीन उपवासों से सत्रिया और एक दिन रातिका उपवास करिके शूद्रा शुद्ध होती है-जहां सत्राणी और बनेनी दोनों रजस्वला होते परस्पर भिद्द तहां सत्राणी तीन दिन रात के उपवासों से और बनेनी एक दिन रात का उपवास करिके शुद्ध होती है-जहां बनेनी और शूद्रा दोनों रजस्वला होते परस्पर कृच्छ्राकारे करे तहां तीन दिन रातके व्रतोंसे बनेनी और दो दिनके व्रतों से शूद्रिनी शुद्ध होती है-यह पुरातन कालकी मर्यादा से वर्णों के परस्पर कामना सहित भिद्द जानेकी शुद्धि बड़े वशिष्ठ ने दर्शाई ॥ ० ॥ जहां कहीं कामना के बिना देव योग से ऊंचे नीचे वर्णोंकी रजस्वला परस्पर भिद्द जाय तिनके प्रायश्चित्तों को विशेषता आगे अब कहिते हैं-यथाइष्टुर्हृदि प्याः=रजस्वलातुहीनवर्णारजस्वलांस्पृष्ट्वा नतावदश्रीयाद्यावन्नशुद्धास्तथा सवर्णा नाधिकवर्णावास्पृष्ट्वा सद्यःस्नात्वाशुद्धतीति=अर्थात्-यदि कोई रजस्वला अपना से हीन वर्णा रजस्वला को देव योग से भिद्द जाय तो भिद्दने के बाद तब तक न भोजनकरे कि जबतक रजोरक्त रथंभिजाने कान्तान करके शुद्ध न होजाययही प्राय

सतहत्तरि की अधिकोक्ति में देखीं तहां स्त्रियों का विशेष नामक पाठ ढूंढिके उसके बीच पुलस्त्य मुनि का वचन (रजस्वलायदादद्याशुनाञ्जूकरासभैः) इत्यादि दो श्लोक हैं सो अर्थों सहित ढूंढिलेना ॥ २८८ ॥

(इति व्रतलोप प्रकरणं)

इस प्रकरणा में समस्त पांच परिच्छेद माने गयेहैं अर्थात् सत्तावन ५७ परिच्छेद को आदि लेकर ६१ इकसठि परिच्छेद की अन्तपर्यंत यहाँतक सबका नाम व्रतलोप का प्रकरणा कहा गया क्योंकि यद्यपि हरएक परिच्छेद में जुड़ेजुड़े वियर्थों को भेद बरान हुये तथापि सबमें व्रत लोप होजाना ही तात्पर्य पाया गया ॥

**अथसुतविक्रयाद्यनिष्ठविक्रयोपजीवनाख्यस्य उपपातक
स्य प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः द्विषष्टितमः (६२) :**

—*—

इस विक्रय आदि खोटे विक्रयों से उपजीवन करने के पाप मिटाने योग्य प्रायश्चित्त कहे जायँगे—आदि शब्दसे स्त्री और कन्या तथा गायपुंस्य आदि का विक्रय तथा देवालय पुंस्य बागीचा तीर्थ तालाब आदि का विक्रय भी समझि लेना कि जिनका बेचना प्रतिबिद्ध है ॥

(सुतविक्रयादि प्रायश्चित्तं)

२३६ दोसौ छत्तीसवें मूल श्लोकमें व्रत लोप कहा गया था तिसका प्रायश्चित्त अबकीर्णों के नाम से कहिचुके उसके प्रसंग से कुछ और भी अनुपातक रूपों पापों के प्रायश्चित्त यहाँ तक दर्शाये गये—अब उस बात पर ध्यान करो कि उसी दोसौ छत्तीस के मूल श्लोक में (सुतानांचैव विक्रयः) यह संतान का बेचना एक उपपातक बताया था तिसके लिये योगीश्वर ने कोई प्रायश्चित्त नहीं दर्शाया तिससे ४४ चत्वारिंशत् के परिच्छेदमें २६५ दोसौषष्टित मूल श्लोक और उसकी अधिकोक्ति में सामान्य उपपातकों के प्रायश्चित्त जो बरान कियेगयेहैं उनमें मनु और योगीश्वर की कहे प्रायश्चित्त तीन महीनेआदि की अवधिवाली कईभेदहैं उन्हीं को

सुत विक्रय के पापमें यथायोग्य जोड़िलेना अर्थात् कर्ता को जातिशक्ति देशकाल आदि के विचारसे और इसकेभी विचारसे कि इच्छा सहित बेचा या बिना इच्छा ही बेचना परा इत्यादि भेदों की ऊँच नीच पर उनमें से बड़े छोटे प्रायश्चित्तों की व्यवस्था कल्पित करलेनी चाहिये ॥ ० ॥ परन्तु जहाँ कहीं अकाल की विपत्ति में या और किसी भारी विपत्ति में इच्छा के बिनाही लाचारी से सन्तान का विक्रय किया गया हो तहाँ उनसे छोटा प्रायश्चित्त है—तदाह शब्दः=देवग्रहप्रतिययोद्याना रामसभाप्रपातडागपुण्यसेतुसुतविक्रयंकृत्वातप्तकृच्छ्रं चरेत्=अर्थात्—देवग्रह यथा देव ग्रह-प्रतियय- उद्यान- आराम- सभा-प्रपा- तडाग- पुण्य- सेतु-सुत- इनका विक्रय करिके तप्त कृच्छ्रं व्रत आचरै= अर्थात्—इस वचन में (देवग्रह) ऐसा पाठ होने से देवता का मंदिर आदि अर्थ है और (देवग्रह) ऐसा पाठ होने से देवता के पाद पायंद आदि और यज्ञों के पाद अर्थ होता है तिससे द्विपादभी सार्थक है-प्रतियय यज्ञस्थान का नाम है कि जिस जगह या जिस मकान में यज्ञ आदि किसी तरहका पूजा पाठ सत्कर्म सदा निरन्तर वा अन्तरसे होता रहिता हो किन्तु इन्हीं निमित्तों का स्थान जुदा होय सो प्रतिग्रय कइया जाता और पञ्चायती चौपार आदिभी प्रतिग्रय कहिलाता है • उद्यान बागीचा आदि • आराम किसी ऐसे उपवन का नाम है कि जिसमें राजाआदि बड़े मनुष्यों का मुसाफिरी पड़ाउ भी ठहादि की छाया से होता हो • सभा मर्दानी बैठक आदि कचहरी मकानों का नाम है • प्रपा पिआऊ जो निरन्तर मनुष्यों तथा पशुओं को पानी देती रहती हो • तडाग तालाव आदि • पुण्य कर्म जो अपना या अपनेबड़े पुरुषोंका पहिला किया प्रसिद्ध होय • सेतु जल के बंधान जो बड़े छोटे अनेक भाँतिके होतेहैं • सुत शब्दसे सन्तान भावका तात्पर्यहै कि चाहें अपना वेदा होय या पोता परपोता धेवता भतीजा आदि कोई हो इसी लिये श्रीगीश्वरने दोसौ छत्तीस मूलप्रलोक में (सुतानां चैव विक्रयः) सुतों का बहुत्व करिके कहा था कि सब तरहके सुत समझे जायँ=इसी प्रकार=गाय और कन्या बेचनेका छोटा प्रायश्चित्त है=यदाह पराशरः=विक्रीयकन्यकांगांच कृच्छ्रं सांतप नंचरेत्=अर्थात्—कन्या वा गाय की (उसी प्रकार की विपत्ति जैसे ऊपर लिख चुके तिसमें) बेचिके कृच्छ्रंसांतपन व्रत आचरै ॥ ० ॥ परन्तु जिसने इच्छासे चाहि कर सुतका वा कन्याका विक्रय कियाहो तिसके लिये चतुर्विंशतिमत ग्रंथ का अशोक प्रायश्चित्त है=यथा=नारीणां विक्रयंकृत्वा चरेत्चांद्रायणव्रतम दिव्यरापुरुषस्यै व्रतमाहुर्मनीषिणाः=अर्थात्—स्त्रियां चाहें अपनी वा कही से हरिलादे हुइ आदि

किसी प्रकारकी हों तिनको बेचनेवाला सासिक चांद्रायणा व्रत करै तब शुद्ध होय और इसी प्रकार जिसने अपने वा पराये पुस्त्य का विक्रय किया हो तिस पर हुना प्रायश्चित्त चाहिये यह प्राचीन मनीषी लोगोंने कहा इस दशापर ४४ चर्वालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त भी यथायोग्य आखड होसक्ते हैं ॥ ० ॥ इन सब से उपरालू जो पैटीनसिने सालभरका प्रायश्चित्त कइ तिसका आशय कुछ औरहै सोभी देखो=यदाह पैटीनसिः=आरामतडागोदपानपुष्करिणी स्रुतविक्रयेत्रियवरास्राय्य षःप्रायी चतुर्यकालाहारःसंवत्सरेरापतोभवति=अर्थात्-आराम • तडाग • उदपान • पुष्करिणी • स्रुत • इनमें से किसी को बेचने में विक्रेता पर यह प्रायश्चित्त है कि साल भर तक त्रिकाल स्नान करते हुये धरती पर शयन और दिनके चौथे काल में एक बार भोजन किया करै तब शुद्धहोय-यह इतना बड़ा प्रायश्चित्त सेसी दशाओं पर आखड है कि जिसपर कोई आपत्ति नहो किन्तु विपत्तिके न होतेहुये चाहना करिके पुत्र आदि कोई वस्तु इनमेंसे बेचीहो यदा एकही पुत्र जिसके हाय तिसने बेचि डाराहो या जेदा पुत्र बेचिदियाहो यदा कई पुत्र होनेपर भी उस पुत्र को बेचा हो जो अपने बेचि देनेका इन्कार भी आपही करता रहा अर्थात् उसी पुत्रकी इच्छा विना उसका विक्रय करडाराहो • इसी प्रकार कन्या और स्त्री आदिकी अपेक्षा में भी समभिलेना और गायकी अपेक्षा में यह समभिलेना कि जिसने ऐसे किसी दुष्ट के हाय गाय बेचीहो जहां जाकर खाने पीने आदिका दुख पावैगी ॥ २६८ ॥ यह भी इसी दोसौ अट्ठासी वाले मूलश्लोककी टीका वा अतिकोक्ति का श्रेय पादहै तिससे इसपर भी वही छंका लगाया गया कोई मूलश्लोक इसमें नहीं है ॥ २६८ ॥

सुत विक्रयसे उपरांत योगीश्वरने दोसौ सैंतीस २३७ मूलश्लोक में (धान्यकृष्ण पशुस्तेय) अन्न और सीसा रांगा आदि धातुओंकी चोरी छपी उपपातक नामबरा था-तिसके प्रायश्चित्तभी ४६ छैयालिसवें परिच्छेद में बरान होचुके क्योकि वह परिच्छेद सब छोटी मोटी चोरियों के नामसेही नियत हुआ था कि जिसमें अन्न और धातुओं तथा पशुओंकी चोरी किन्तु मनुष्योंका हरण पर्यन्त बरान होगया= उसी दोसौ सैंतीस में (अयाज्यानां थाजनं) यह भी एक उपपातक बताया था तिसके प्रायश्चित्त यहां तिरसठि परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावैगे बल्कि इसके साथ और भी दो तीन उपपातकों के प्रायश्चित्त ॥

अथयाज्ययाजनादिचतुर्विधोपपातकविशेषानां प्रायश्चित्तप्रदर्शकोऽयंपरिच्छेदः त्रिषष्टितमः (६३)



इस परिच्छेद में ब्राह्म्य आदि अयाज्यों को यजन कराने वाले परिगडत कर्मकांडी का प्रायश्चित्त कहा जायगा और वेद का विप्लावन (वृथाबखेर) करने वाले वेद पाठी का प्रायश्चित्त कहा जायगा और अभिचार (मारणा उच्चारण आदि प्रयोग विधि) करनेवाले मंत्र शास्त्री का प्रायश्चित्त और शरणागत की रक्षा न करनेवाले धनवान् और जनवान् और शूरमा का प्रायश्चित्त कहा जायगा ॥

(ब्राह्म्ययाजनादि प्रायश्चित्त)

तीर्णच्छानाचरेद्ब्राह्म्ययाजकोऽभिचरन्नपि । वेदज्ञात्वाप्यन्यद्बन्धत्यक्त्वाचशरणागतम् २८९, "

अर्थः—ब्राह्म्ययाजक तीन ऋच्छ आचरै अभिचरणा करतेहुये भी यही वेदप्लावी अक्षर जो खाय शरणागतको त्यागिके भी यही=अर्थात्—ब्राह्म्य वेदें कि जिन को गायत्री का उपदेश न होनेसे ४५ पैतालिसेके परिच्छेद में प्रायश्चित्त कहे गये थे उन प्रायश्चित्तों को न करनेवाले ब्राह्म्यही रहे आते हैं तिनको यदि कोई पावा परिगडत आदि किसी तरह का यजन पूजन करावै सो इस कर्मसे उपपातकी होता है वह तीन ऋच्छोंको साथै तब शुद्ध हुआ ठहिरै तथा अभिचार कर्म छपे प्रयोग करने वाला परिगडत यही तीन ऋच्छोंका प्रायश्चित्त करै । जो कोई वेदपाठी आदि वेदका विप्लावन करै सो एक सालभर जीका भात खाकर तप करै तब शुद्ध होय तथा जिस किसी समर्थ ने अपनी शरणा में आये हुये की रक्षा न करिके निकामि दियाहो या उसके शत्रुओंकी सोंपि दियाहो सोभी एक वर्षभर जीका भात खाकर तप करै ॥ २८९ ॥

२८९ अधिकोक्ति=अवमिताक्षरायथा (यस्तुसावित्रीपतितानांयाजनं करोति साप्राजापत्यप्रभृतीन्वींश्छानाचरेत् तेषांचगुरुलघुभूतानांऋच्छानाचरेत् तेषांच गुरुलघुभूतानांऋच्छाणां त्रित्वनिमित्तं गुरुलघुभावेनकल्पनीय) अर्थात्—सावित्री से पतितोंको यजन यज्ञादि जो कोई परिगडत करावै सो प्राजापत्य आदि नामोंके तीन

कृच्छ्र आचरै तिनमें भी बड़े छोटे रूपवाले कृच्छ्रोंका तीया ३ पाप रूपी निमित्तों
 की बड़ाई छोटाई देखिके कल्पना किया जाय=और=सूल के पूर्वार्ध में अभिचार
 कर्म कहा तिसका अर्थ अयवंगवेद या तत्रके मार्ग से मारया उच्चादन आदि प्रयोग
 समभिलेना कि जिनमें हिंसा रूपी फल उत्पन्न होताहो (परन्तु हिंसाके प्रसंगसे उस
 भौतिकी हिंसा सब समभिलेना जो धर्मशास्त्र में छे भौतिकी के आततायियों के कर्म
 वियदेना आगि लगाना आदि प्रसिद्ध हैं क्योंकि उस हिंसाके प्रायश्चित्त महापातकों
 में गिनती बहुत बड़े होतेहैं) इस बातका प्रमारा भी बशिष्ठका यह बचनहै कि (य
 दस्वभिचरन्नुपततोति बशिष्ठः) आततायियों के छे कर्मोंमें से कोईसा अभिचार करै
 सो पतित होजाता है ॥ ग्रहां केवल छोटे उपपातकों के प्रायश्चित्त हैं और सूल के
 पूर्वार्धमें अपि शब्दका योगहै तिसके ध्वन्यर्थसे अहीनको यजन करानेवाला पंडित
 और प्रेत कर्म करानेवाला परिडत भी उसी तीन कृच्छ्र वाले प्रायश्चित्त के योग्य
 माने गयेहैं-तथाच मिताक्षराकाराः (अपिशब्दोऽहीनयोजकांत्येष्टियाजकयो-सग्रहा
 र्थः) और इसी लिये मनुका बचन भी प्रसारामें दियाहै=यदाह मनुः=ब्राह्मणानांया
 जनकृत्वा परेयामंत्यकर्मच अभिचारमहीनचत्रिभिःकृच्छ्रैर्व्यपोहति (परेयामत्यर्मेत्य
 त्यंताभ्यासविययं शुद्रांत्यकर्मविययंवाप्रायश्चित्तस्यश्रुत्वात्) अहीनोद्विरात्रादि
 द्वादशाहपर्यन्तोऽहंगारागाराः=अर्थात्-मनुने यह कहाहै कि ब्राह्मणोंको यजन करावै
 या मृतकोंका प्रेतकर्म ब्राह्मणोंके सिवाय अत्राह्योंको भी करावै या अभिचार प्रयोग
 करै करावै या अहीनको यजन करावै ये सब तीन तीन कृच्छ्रोंसे पाप बोध सकते हे
 (औरोंका प्रेतकर्म जो इस बचन में कहा सो अत्यन्त और निरन्तर उसी में तत्पर
 होजाने पर यह तीन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त समझना किन्तु आपस की जखिरियात
 निर्वाह कराने मध्ये कभी कभी जो प्रेतकर्म कराना परै तिसपर इतना बड़ा प्राय-
 श्चित्त सूचित नहीं अर्थात् उसमें यथा सम्भव शरीरकी शुद्धि और गायत्री का जप
 ही किया जाय-अथवा यह तीन कृच्छ्रोंका बड़ा प्रायश्चित्त शुद्र आदि नीचजातों
 का प्रेतकर्म सकही दो बार करानेपर समभिलेना) और अहीनको यजन करानाजो
 एक उपपातक इसीमनुकेबचनमें दर्शाया गया सो दो रात्रकों आदि लेकर द्वादशाह
 तक अहंगारा नामका एकयाग विशेष कहाताहै तिसकाकराने वाला परिडत दोयी
 द्द्विरात्राहै यहतात्पर्य समझना ॥०॥ उदालकनामका एकव्रतविशेष जो कदिनप्राय-
 श्चित्तहै सोपहिले वर्तानहो चुकाहै उसीकोयातातपनेइस विययपरभी दर्शायाहै=
 यदाहशातातपः= पतितसावित्रीकान्नोपनयेत्त नाध्यापयेत्त यस्तानुपनयेदध्यापयेद्याज

येहा सउहालकव्रतंचरेत्=अर्थात्-गायत्री से पतित जो ब्राह्मण होय तिनको प्रायश्चित्त करानेविनाकोई पंडितयज्ञोपवीतन करावै नपढ़ावै औरजोकोई इनकोउपनय करावै या पढ़ावै या कोईसा यजन करावै सो उहालकनामी व्रत करै-यह कठिनव्रत उसके लिये समझना जो नियम के प्रसिद्ध होने पर भी अपने हठ से ऐसा करै ॥ ० ॥ यह तीन छच्छों का प्रायश्चित्त जो कहिचुके सो उन प्रायश्चित्तों का अपवाद निरा-
 दर हूट दर्शाता है जो ४४ चवालिस परिच्छेद में साधारण उपपातकों पर वरान किये गये थे तिनकी पहुँच यहाँ पर नहींरही परन्तु इन्हीं निमित्तों पर कि जोजो पाप यहाँ वरान हो चुके=अर्थात् वे चवालिस परिच्छेद वाले प्रायश्चित्त कुछकुछ बड़े हैं तिनकी पहुँच यहाँ उस दशापर आखंड है कि जिस किसी पंडित ने शूद्र आदि निपट अत्याज्यों की यजन वा अयापन कर्त्त कराया हो• इसमें भी जिसनेहठ से ऐसा किया हो तिसपर उस ४४ परिच्छेद वाले तीन महीना की प्रायश्चित्त चाहिये जिनने घोखा या लाचारी आदि किसी हेतुसे शूद्र आदिको यजन कराया हो तिसपर योगीश्वर के बताये २६५ प्रलोक वाले प्रायश्चित्त चाहिये जिनमें एक महीना दूध पीना आदि कहाया ॥ ० ॥ और जो प्रचेताने शूद्र यानकआदि दियो के नाम धरने के साथ ऐसा कहा है कि=एते पंचतपोऽध्याऽवकाश जलशयनान्यनु तिष्ठेयुः क्रमेणप्रीण्मवयहिमंतेयमांसंशोम्भयावक मशीयुरितितत्कामतोऽभ्यासविषयं=अर्थात्-ये शूद्रयाजक आदि सब दियो• पञ्चाग्नि तापना १ विनाश्ये अवकाश में बैठना २ जल में लेटना ३ तीनों वातक्रम से शीघ्रचतु में १ वर्या चतुर्में २ शीत चतुर्में ३ एक एक महीना भर आरोपित करै तब उस महीना भर गोमूत्रमें रँवेजो का दलिया खाइके रहै-सो यह प्रायश्चित्त उसके ऊपर आखंड है जिसने हठ के साथ बार बार का अभ्यास किया होय ॥ ० ॥ और एक यम का वचन है कि=
 परोवाःशूद्रवरांस्यब्राह्मणोयःप्रवर्तते स्नेहादर्थप्रसंगाद्वातस्यकच्छोविशोधनम्=अ-
 र्थात्-यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र वरानका पुरोहित वने अथवा स्नेह प्रीति से या धन के लालच से ही पुरोहितों वाले कर्म का वर्तावा करै तिसकी शुद्धि एकही कच्छ करने से होगी-सो यह एकही कच्छ अशक्त के लिये समझना जो जीबिका से असमर्थ होके ऐसाकरै ॥ ० ॥ और एक पैठीनसिका वचनहै कि=शूद्रयाजक.सर्व द्रव्यपरित्यागात्पतोभवति प्राणायामसहस्रेयुदशकत्वोभ्यासेवेदितव्य (तदप्यकाम तोऽभ्यासविषयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-शूद्रकी एकहीवार यजनकरानेवाला उससे मिला हुआ सब द्रव्य परित्याग करनेसे पवित्र होताहै पर जिसने दशावार कर्मकराने

का अभ्यास किया हो सो तीन सहस्र प्राणायामोंके भी करने में पवित्र होगा यह जानना चाहिये—यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने इच्छा के बिनाही बारबार का अभ्यास किया हो ॥ ० ॥ और एक जो गौतमका वचन है कि=नियिद्ध संवप्रयोगेसहस्रवाकप्रचेदिति नियिद्धानांपतिततादीनांयाजनाध्यापनात्मकेसंवप्रयोगे बहुश्रोऽभ्यस्तेप्राकृतं ब्रह्मचर्यमुपदिष्ट (तत्कामतोऽभ्यासविययमितिमिताक्षरा=अर्थात्—नियिद्ध मनुष्य जो पतित आदि अनेक होते हैं तिनके लिये यजन अध्यापन रूपी मन्त्र का प्रयोग जो कोई सहस्रों वारागी से अर्थात् बहुत बारका अभ्यास करे तिसको प्राकृत ब्रह्मचर्यका उपदेश गौतमने किया है (सो कामनारूपी हठसे अनेक बारके अभ्यास पर समझना यह मिताक्षराने कहा—यहाँतक पूर्वार्द्ध की अधिकोक्ति पूरी हुई ॥ † ॥ अब उत्तरार्द्धका चर्चा है कि जो कोई वेदका विप्लवावन करे या जोकोई रक्षा करने में समर्थ होते चौर आदि से उपरालू किसी सज्जन को अपनी शररामे आया देख रक्षा न करे सोभी एक सालभर जोका दलिया खाइके तपकरे तब शुद्धहोय—यहाँ—वेदका विप्लवावन यह कहाता है कि अनेक भांतिके खोटे अनध्याय जो होते हैं कि जिनमें वेद न पढना चाहिये दुष्टांत जैसे पर्वत या चंडाल के कान जहाँ पहुँचसकें इत्यादि स्थान भेदसे वेदका पाठ करना नियेव फिर और भी निमित्तों के उत्पन्न होने मे काल भेद से भी पढनेका नियेव है फिर पर्यनुयोगरूपी मजूरीका दान देकर पढनेका नियेव है—किन्तु जहाँ जहाँ पढने का नियेव है तहाँ तहाँ पढने से वेदका विप्लवावन कहाता है—पर्यनुयोगरूपी दानदेना मनुके इसवचन से भी नियिद्ध है कि (दत्तानुयोगानधयेत्पतितान्मनुरत्रवीत्) अनुयोगों को देकर पढनेवालोंको पतित मनुने कहाहै ॥ ० ॥ और एक वाशय का यह वचन है कि=पतितचंडालशावयवरोविश्रावन्नारयताअनघ्नतआसीरचसहस्रपरमघातदभ्यस्यतः पूतोभवतीतिविज्ञायते इतिस्तेनैवगार्हिताध्यापकयाजकावप्राख्याता दक्षिणात्यागाद्यपूतोभवतीतिविज्ञायते इति (तद्विद्विपूर्वविययं=अर्थात्—पतित-चंडाल-मुदकिंसाधी-इनके कानमें आवाजपहुँचे ऐसे स्वरसे वेद पढनेवाले तीनदिन रातिभर मोन साधेहुये अन्न कुछ न खाके रहे और सहस्र (ओंकार) या (तस्मत्) यह सब अभ्यास करते हुये पवित्र होताहै यह जानागया सो इसी प्रायश्चित्त से नियिद्ध की वढाने वाले और नियिद्ध की यजन करानेवालेभी व्याख्या कियेगये कि इनको भी वहीप्रायश्चित्त करना चाहिये और इनके लिये यह विशेषता है कि मिलीहुईदक्षिणात्यागि देनेसेभी शुद्ध होते हैं यह जानागया (सो यह प्रायश्चित्त जानिवृत्ति सेसाकरने पर

आरूढ है ॥ ० ॥ एक यह यद्विशन्मतका वचन है कि=चांडालयोवावकाशोयुतिस्मृ
तिपाठे एकरात्रमभोजनमिति (तद वृद्धिपूर्वविषय=अर्थात्-चराडालको कानोमें शब्द
पहुँचने की जगह पर युति वा स्मृतिका पाठ करने वाला एक दिन राति भर निरा-
हार उपवास करे—सी यह विनाजाने धोखासे ऐसीजगह पाठकरनेपर आरूढ है ॥०॥
जहाँ कहीं पढतेपढाते समय गुरु और शिष्य दोनों के बीचमें सांप मूसाआदि कोई
जीव निकसाचलाजाय तहाँ उसी समय पढाना बन्द होकर अनध्याय होजाता है।
तिसपरभीप्रायश्चित्त यमने कहाहै=यथाह यम=संपस्थनकुलस्याथ अजमाजिरयो
स्तथा मयकस्यतथोयस्यमडुकस्यचथोयितः पुरुयस्यैवकस्यापिशुनोऽश्वस्यखरस्यच
अन्तरागमनेसद्यःप्रायश्चित्तमिदृशु विरात्रमुपवासप्रचविरहश्चाभियेचनम ग्रामा-
न्तरवागतव्यजानुभ्यांतात्रसशयः=अर्थात्-सांप. नेउरा. वकरा. विलार. मूसा. ऊट.
मेढुका. या किसी प्रकारकी स्त्री. वा पुरुय. या कुत्ता. या घोडा. या गदहा. ये
गुरुशिष्यके बीचमें आजायँ तो तत्कालही यह प्रायश्चित्त चाहिये सो सुनो तीन
रात्रि उपवास भी और तीन दिन अभियेक स्नान भी करे अथवा यह न हो तो घु-
दनेसे चलते हुयेदूसरे ग्रामकी यात्रा करनी चाहिये एक योजन मात्र इसमें सन्देह
न करना चाहिये ॥ २८६ ॥

इत्ययाज्ययाजनवेदप्लावनादिप्रायश्चित्तचतुष्क ॥

अथपितृमातृसुतत्यागकन्यादूषणादिदशोपपातकप्राय
श्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः चतुष्पाष्ठितमः (६४)

— ३ —

इस परिच्छेद में दश ग्यारह उपपातकों के प्रायश्चित्त प्रकार कियेजायँगे
तिनमें प्रथम पिता माताका त्याग सुतका त्याग गुरुका त्याग फिर क-
न्या सन्दूषणाका प्रायश्चित्त. फिर. परिविन्दक याजन. उसको
कन्यादान देना. कुदिलता करना. निज व्रतोंके नियम तोड़िदेना.
आत्मार्थ पाक बनाना. मद्यप स्त्री घरमें होना. ये भी छे प्र-
कार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायँगे ॥

यहाँसे आगे जबतक २६० का मूल श्लोक न मिले तबतक यह समुभिलेना कि

ये चारों परिच्छेदोंकी व्यवस्था २८६ दोसौनवासीकी अधिकोक्ति के श्रेय पाठमें से चली आती है क्योंकि दोसौनवासी मूल श्लोकवाली टीका बहुत लम्बी चौड़ी है तिसमेंसे जितनापाठ मूल श्लोकहीसे सम्बन्ध रखताथा उतनेकी अधिकोक्ति उसके रही सो ऊपरके परिच्छेद में गई वाकी रहे पाठके चार परिच्छेद होंगे • तिस षोछे ६८ अरसठिके परिच्छेदमेंजाके २६० दोसौनव्वेका मूलश्लोक आयेगा यह व्यौरा केवल जिज्ञासु विवेक्षियों के समुद्धाने की लिखा गया ॥

(पितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्त)

अथाइय याजनके बाद योगीश्वरने(पितृमातृसुतत्याग तडागारामचक्रयः २३७) ये दोसौसैतीस मूल श्लोकमें दो उपपातकोंके नाम गिनती कियेथे पर इनके इन्हीं नामोंसे कोई प्रायश्चित्त जुदे नहीं दर्शाये—तिससे ४४ चवातिस परिच्छेदवाले मनु और योगीश्वरके बताये साधारण प्रायश्चित्तोंको इनपर भी यथायोग्य जाति शक्ति पुरा निमित्तके स्वरूपों अनुसार कल्पित करलेना चाहिये—और=पिता माता सुतोंके निकामिदने मध्य और भी अपांक्तोय पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त जोडिलेने चाहिये वैसा यह वचनहै कि=अकारणोपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा इत्यपांक्तोय मध्यपादात्तन्निमित्तमपिप्रायश्चित्तभवति=तदाहमनुः=यद्यन्नकालतामास सहिताजप सववा होमाप्रचसाकलानित्यमपांक्तानांविशोधनत्=अर्थात्—प्रबल कारणाकेउत्पन्न होने बिना माता पिताका त्यागनेवाला या गुरुकोत्यागि भागनेवाला भी अपांक्तोय पुरुषोंमें गिनती है तिससे जो अपांक्तोयो के प्रायश्चित्तदें सो इस त्यागनेवाले पर भी आछद कियेजायँ=अपांक्तोके प्रायश्चित्त मनु ने कहे हैं कि=यद्यन्न कालताके दो अर्थ होते हैं एक तो छठे दिन भोजनका नियम दूसर छठे समयका अर्थात् एक दिन में दो समय भोजन करना प्रसिद्ध है तिस हिसाब से अठारह दिनके पांच काल भोजन तक भोजन का त्याग राखनेवादि उस तीसरे दिनकी रात्रि में भोजन करें सो छटा अन्नकाल होताहै बल्कि यही नियम सम्भव देखि परताहै क्योंकि पांच दिन कोरा व्रत करिके छठे दिन अन्नखाना बहुत दुर्घट देखिपरताहै • तथापि दोनों नियम ठीक समुद्धान किन्तु मनु कहिते ह कि एकमहीनाभर छठे दिनका या छठे समयका नियम साधैँ अथवा वेद सहिताका जपहीकरैँ परन्तु उस महीना भर नित्य प्रति साकल्यो से होम करते रहें तब सब तरहके अपांक्तोयजन शुद्ध होते हैं (सब अपांक्तोके नाम चिन्ह देखनेहो तो आचार मध्यादिवाले काराडमें याइ प्रकारके

बीच १२१ एकसौइक्कीस मूलश्लोकसे १२२-१२३ तक तीन श्लोकोंकी व्यवस्था देखी तहांसत्रकेस्वरूपकथनहोचुकेहैं ॥ इतिपितृमातृसुतगुरुत्यागप्रायश्चित्तं ॥ सुत त्याग का प्रायश्चित्त आगे पैसदि६५ के परिच्छेद में दूसरी भांतिसेभी आवेगा क्योंकि योगीश्वरने २३६ मूल श्लोकमें (सुतत्यागोवाग्धवत्यागसवच) इस वाक्यसे दुबारा उसका जुदा रूप कहाया ॥

तडागा राम विक्रयके प्रायश्चित्त कुछ विशेषता सहित ऊपरले ६२ वासदिके परिच्छेद में सुत विक्रयके साथ वर्णन होचुके तहां देखीं-इसके अनन्तर योगीश्वर ने (कन्या संभूययां) इस नामका उपपातक २३८ दोती अड़तीस मूल श्लोक में दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त जुदा यद्यपि योगीश्वर ने आप नहीं कहा तथापि यहां देखीं ॥

(अथकन्याद्रूपप्रायश्चित्तं)

कन्या संभूययाके लक्षणा २३८ की अधिकोक्तिमें ठीक ठीक लिखिचुके हैं-मिताक्षराकार कहिते हैं कि सर्व सामान्य उपपातकोंकी प्रायश्चित्त मर्यादा जो ४५ चवालिस परिच्छेद में प्रकाश होचुकी है उसीमें से वैसासिक द्वैसासिक चांद्रायणा आदि प्रायश्चित्त यहां पर उसके लिये लगाना जो कन्या का सवर्षी पुरुष होते कन्या दूयया पापका भागी बनाहो-परन्तु-जहां अतुल्योम मार्गसे कन्यादूयया पाप हुआहो कि नीचे वर्गाकी कन्या और ऊंचे वर्गोंका दीया पुरुष होय तहां भी उसी परिच्छेद वाले प्रायश्चित्तों में योगीश्वर का बताया सक महीना भर दूधपो के व्रत कराना यद्वा प्राजापत्य कराना चाहिये क्योंकि (सक्रामास्तनुजोमासुनदीयस्त्वन्यथात्मः) व्यवहार मर्यादाके दंडवाले प्रकारगामें ऐसी दशापर निपट दंडका न होना या थोडा दंड होना कहा गयाथा कि जहां ऊंचे वर्गोंका पुरुष और नीचे वर्गोंकी सक्राम कन्यासे साक्षात् संगम हुआ होय-और यहांपर कुछ कन्यासे संगम करने का प्रसंग नहीं केवल अंगुरी आदिसे या हाथोंसे अंगही दूयित करने का यह प्रायश्चित्त है तिससे जैसा कुछ बहुत या थोडाही दोष पायाजाय तैसा प्रायश्चित्तभी महीना भर दूधपोके व्रत कराना या बारह दिन का प्राजापत्यही करवाना समर्थ लियाजाय ॥ ० ॥ इसके सिवाय शंख और हारीत के दो वचन हैं तिनके ऊपर हेतु गर्भित व्यवस्था मिताक्षराकारने दर्शाई है सोभी देखीं-यत्तुशंखेनोक्तं-कन्यादीया सोमविक्रयोच हच्छ्रमन्वचरेयाताम-यचहारीत वचनं-कन्याविक्रयो सोमविक्रयो

व्यलीपतिः कौमारदारत्यागीश्वरास्यपः शूद्रयाजकीश्वरोः प्रतिहन्ता नास्तिकवृत्तिः
 कृतघ्नः कूटव्यवहारी मित्रघ्नक शरणावघाती प्रतिरूपकवृत्तिरित्येते पंचतपोऽभावकाश्च
 जलशयनान्यनुतिष्ठेयुर्भीक्ष्णवर्षाहिमन्नेषु मासंगोमूत्रयावक मशीयुरिति तदुभयमपि
 सत्रियवैश्वयोः प्रातिलोभ्येनद्वयसोयोज्य—शूद्रस्य तु वध एव (द्वयसोत्करच्छेदउत्तमायां
 वधस्तथेति वधदर्शनादिति मितासरा = अर्थात्—शाखने जो कहा है कि कन्याका दैवी
 और सोम बेचनेवाला ये दोनों एक साल भर कंचुक व्रत आचरें = और हारीतका जो
 बचन है कि = कन्याका बेचनेवाला तथा सोमका बेचनेवाला और व्यली जो पाँच
 प्रकारकी कंहिचुकें तिनका पति और कुमार वा यौवन अवस्थामें पत्नीको त्यागि
 देनेवाला और सुरामथ का पीनेवाला और शूद्रकी पुरोहिताई करनेवाला और गुरु
 का आदेश टालनेवाला और नास्तिकवृत्ति राखनेवाला और कृतघ्न जो किसी गैर
 का किया उपकार भेटे या अपना वा अपने बड़ोंका संचित पुण्य भेटिदेवे और छल
 का व्यवहार करनेवाला और मित्रसे दगा करनेवाला और अपनी शरणा आयेहुये
 से विद्यास घात करनेवाला और प्रतिरूपकवृत्ति जो ब्राह्मण आदि किसी उत्तमका
 रूप धरिंके उसकी वृत्ति जीविका आदि की तकल उतारें ये सभी इतने अन्यायी
 पुरुष एक महीना भर ग्रीष्मऋतुमें पचाग्नि तपें और वर्षा ऋतु में वरसते समय शने
 आकाशमें बैठाकरें औ शीतऋतु एक महीना भर जलमें लोटि रहकरें तब तक तीनों
 मास भर गोमूत्रमें रंधे जीका दलिया खायाकरें तब शुद्ध होयें (यहाँपर दगा करना
 केवल उपराद्ध बातों में समझना मारडारना नहीं किन्तु मित्रको मारडारना बहुत
 बड़ा पाप है २२८ मूलश्लोकमें देखो कि ब्रह्महत्याके समान महापातकोंवाले प्राय-
 श्चित्त उसपर लगते हैं) मितासराकार कहिते हैं कि ये शाख और हारीतके दोनों
 वचन कन्याद्वयराके प्रयोजन से यहाँ पर लिखे गये इनमें कन्याके द्वयरा पर यह
 तीनों महीनेका कठिन प्रायश्चित्त सभी और वैश्वके निमित्त में समझना कि जब
 इन्होंने अपनेसे ऊँचे वर्गाकी कन्यासे द्वयरा कमाया हो—परन्तु जो शूद्रने ऊँचेवर्गों
 की कन्या दूयित करीही तिसको शारीरिक दंडही देना उचित है क्योंकि व्यवहार
 मर्यादासे दंडके स्थलपर कंहिचुकें हैं कि (उत्तम कन्याको दूयित करनेमात्रसे हाथ
 काटेजाय और इससे अदिक सगम आदिहोनेसे प्राणावध कियाजाय) तिससे उसका
 यही प्रायश्चित्त है) पर हाथ काटना भी यह पूरे द्वयराकी दशापर आरूढ है अर्थात्
 थोड़े दैवीकी दशामें शारीरिक दंड, ताड़न पीटन आदि समझना ॥ इतिकन्याद्वयरा
 प्रायश्चित्त ॥

(अथोपपातकपट्टकस्यप्रायश्चित्तविचारः)

कन्याद्वयरासे लगना उसी २३८ मूलश्लोकमें योगीश्वरने (परिविन्दकयाजनं) इस नामका उपपातक प्रकाश किया था अर्थ इसका उसी जघे देखो-ब्रह्मिक उसी २३८ मूलश्लोक से लेकर (परिविन्दक को कन्यादान करना) (कौटिल्य पाप) (व्रतोंके नियम तोड़ि देना) (आत्मार्थ पाक बनाना) (नद्यप स्त्रीका सेवन) ये सब लगना लगना इसी क्रमसे नाम कहिये-इन सबके प्रायश्चित्त ४४ चर्वालिस परिच्छेद के द्वारा यथा योग्य दोषोंकी बड़ाई छोटाई आदि शोचिके उनमें से बड़ेया छूटेहो प्रायश्चित्त मुद्दिचारके साथ वर्तवा करने चाहिये • क्योंकि योगीश्वर ने इनके जुड़े जुड़े नामों से प्रायश्चित्तों की विशेषता नहीं कही तिससे उसी सामान्य सर्वांश से व्यवस्था कल्पित होसकी है-और-इनमें से परिविन्दकयाजी के प्रायश्चित्त ४८ अइतालिसके परिच्छेदमें भी विशेष वर्णन होचुके हैं तिनको भी देखना और जखरत पर लेना चाहिये और परिवर्तिके परिवेदन कर्मका प्रायश्चित्त उसी अइतालिस परिच्छेदमें फिर ५१ इक्ष्वावन परिच्छेदमें भी विशेषतासे वर्णन होचुके तहां दोनों जगह देखना-और-यहां के सात नामों में दूसरा उपपातक (परिविन्दक को कन्या ब्याह देना) इसके प्रायश्चित्त अर्थापि चर्वालिस परिच्छेदमें से लेना कहा गया सो भी लिये जायेंगे और ४८ अइतालिसके परिच्छेदमें विशेष प्रायश्चित्त ह सोभी शोचिके लेने होंगे यही इन दोनोंकी व्यवस्थामें भेदहै • बाकी पांच नामों के पापोपर केवल ४४ चर्वालिस परिच्छेदसे व्यवस्थालेनी होगी। इति प्रायश्चित्तपट्टकं॥

अथस्वाध्याय त्यागाग्नित्यागाहुपपातकाष्टकस्य प्रा

यश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पंचपष्ठिः (६५)



इस परिच्छेदमें आठ उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे-तिनमें पहिले अपने वेदांगभूत स्वाध्यायका परित्याग • फिर स्थापित अग्नियों में अग्निहोत्र का त्याग • फिर मुतादि सन्तानके संस्कार उचित समय पर न कराना और बधुओं का रक्षणा पालन आदि न कराना • तिन पीछे चार और हैं कि • स्त्रीसे जीविका करनी या हिंसा वाले कर्मसे जीविका करनी या औषधियोंसे बशीकरता आदि हिंसावाले कर्मकरने

और उनके द्वारा जीविका रखनी या हिंसकयंत्र कोल्ह आदि जारी कराना ये आठ उपपातक इस परिच्छेद में आवेंगे ॥

(स्वाध्यायत्याग प्रायश्चित्तं)

योगीश्वरने २३६ दोसौ उन्तालिस मूलश्लोकमें (स्वाध्यायका त्याग) यह एक उपपातक बताया था कि जो कोई अपने पह वेद शास्त्रको या रोजके नवे पचापाठ को किसी दूसरे शास्त्रके सुनने आदि लालच में फँसिकर भुलाइ देवे या छीड़ि देवे सो उपपातकी होता है—और उसीका दूसरा अर्थ यह भी लियागया है कि जो कोई दुर्घसनमें फँसिकर निपट भुलाइडारै या निरादर करिके निपट त्यागि देवे सो महापातकी होता है कि जैसा २२८ मूलश्लोक में देखो (अधीतस्यच नाशनं) यह लिखचुके तहां ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त उसी प्रकारके अनुसार करनाहोगा परन्तु—जैसी सुरतिसे यज्ञापर उपपातकी ठहराया गया तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेदमें साधारण प्रायश्चित्तहैं तिनमें से तीन महीने या दोमहीने या एकमहीने आदि के प्रायश्चित्त कर्ताकी शक्ति आदि शौचिके यथायोग्य जोड़ि लेनाचाहिये क्योंकि इसके मध्ये योगीश्वर ने कोई जुदा प्रायश्चित्त नहीं कहा—और—वशिष्ट ने यहकहा है कि—ब्रह्मोभूताकृच्छ्रंद्वादशरात्रंचरित्वा पुनरुपपञ्जीतवेदमाचार्यात् (इत्ये तदत्यंतापह्वयमितिमिताक्षरा—अर्थात्—जो वेदकी भुलाके त्यागि देवे सो वारहदिन कृच्छ्रव्रत करिके फिर आचार्यसे जाकर वेदपढ़ै (सोयह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने अत्यन्त आपत्तिमें भुलायाहो ॥ इतिस्वाध्यायत्यागप्रायश्चित्तं ॥

(अग्निहोत्रत्यागादिप्रायश्चित्तं)

ब्रह्मचारी या गृहस्थी जो कोई अग्निहोत्री होकर अग्निकर्मकी त्यागिदेवे तिसका भी नाम उपपातकोंकी गिनती साथ योगीश्वर याज्ञवल्क्य ने स्वाध्याय त्याग से लगमा २३६ दोसौ उन्तालिस मूलश्लोकमें दर्शायाथा परन्तु कहीं जुदा प्रायश्चित्त उसका नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदवाले प्रायश्चित्तोंका सहारालेना होगा—परन्तु वशिष्टजीने विशेषता भी दर्शाई है—यथाह—योऽग्नीनपविष्येऽसकृच्छ्रं द्वादशरात्रंचरित्वापुनराभ्यंकारयेत् (अबद्वादशरात्रव्रतकरा मुत्तमकालापेक्ष या प्राजापत्यादि शुरु लघु कृच्छ्राणां प्राप्यर्यमिति मिताक्षरा) तत्र—नासहयेप्राजापत्यं नासचतुथयेऽतिकृच्छ्रः यद्मासोच्छ्रनेपराक्तः यद्मासादूर्ध्वयोगीश्वरीक्तः न्युपपातक

सामान्य प्रायश्चित्तानि कालात्यपेक्षया योज्यानि संवत्सराद्ब्रह्मन्तु ज्ञानवर्धनसात्मिक
 मिति व्यवस्था • इति च मिताक्षरा = अर्थात् - वशिष्ठ ने यह कहा है कि जो कोई स्था-
 पित अग्निर्षो की निरादर करिके त्यागि देवे किन्तु उदाह डारै या पूजन करना
 छोड़ि देवे सो बारहदिनका कृच्छ्र साधन करिके फिर स्थापन कर्म करावे (इसपर
 मिताक्षराकार कहते हैं कि इसमें बारह दिनकी अवधिवाँचना भी सिर्फ उत्तमदालों
 की अपेक्षा दशानि के हेतु पर आच्छ्र है कि प्राजापत्य आदि बड़े छोटे कृच्छ्रोंकी
 पहुंच पाईजाय अर्थात् केवल बारहदिनके नियमसे प्रयोजन यहां नहीं है) तिसके
 यहां यह युक्ति है कि - जिसने दो महीना अग्निका कर्म त्यागिदियाहो सो प्राजा-
 पत्यसाधै जिसने चार महीने त्यागिदियाहो सो अति कृच्छ्र करै जिसने छे महीने
 त्याग कियाहो सो पराक्रनामका प्रायश्चित्त करै • फिर जिसने छमाही से भी अ-
 धिक त्याग कियाहो तिसके सातवां महीना आदि लेकर बारह महीना के भीतर
 जैसा बहुत या थोड़ा काल ठहिरै तिसके अनुसार बड़े छोटे प्रायश्चित्त भी ५४ च-
 वालिस परिच्छेदमें २६५ मूलश्लोकसे योगीश्वरके वताये लेकर जोड़ि लेने चाहिये
 फिर जिसने एकसालसे भी अधिक दिनोंतक अग्निका कर्म त्यागिदियाहो तिसके
 लिये उसी २६५ की अधिकोक्ति में मनुका कहा तीन महीनावाला प्रायश्चित्त
 दंडना चाहिये • यह व्यवस्था भी मिताक्षराकार ही ने कही - फिर कहते हैं कि
 यह व्यवस्था केवल उनको लिये कही गई कि जिन्होंने नास्तिकताका सहारा लेकर
 अग्निको त्यागा होय कि इसके पूजने से क्या होता है इत्यादि • इसका प्रमाण भी
 अर्थात् वचन है = यथाह व्याघ्रः = योऽग्निन्त्यजतिनास्तिक्यात्प्राजापत्यं चरेत्तद्विजः =
 अर्थात् जो कोई द्विज होकर नास्तिक्यसे अग्निको त्यागै सो प्राजापत्य करै ॥ ० ॥
 ऊपरके प्रमाणसे यह तात्पर्य ठहिरा कि जिसने नास्तिकताके विनाभूल गफलति
 प्रमादसे अग्नि त्यागीहो तिसके लिये भरद्वाज के गृह्यशास्त्र में विशेषता कही गई
 है = यदाह भारद्वाजः = प्राणायामशतमात्रावाद्वापुषोऽपवासं स्याद्विंशतिशतवत् अत ऊर्ध्वं
 साधयिरात्रात्सिरोरात्रीरुपवनेदत ऊर्ध्वनासंघत्सरात्प्राजापत्यं चरेत् (अत ऊर्ध्वं काल
 बहुत्वेदोयशुक्लं) = अर्थात् - भारद्वाज ने कहा है कि तीजिही राशि के भीतर तक
 जिसने अग्नि कर्म छोड़ा होय सो एक १०० सौ प्राणायाम करिके फिर अपना
 वही कर्म करै पर जिसने बीस दिनके भीतर तक त्यागाहो सो एकदिन उपवास
 करिके फिर कर्म करै इसके ऊपर साठि दिनके भीतर तक जिसने त्यागा हो सो
 तीन दिन राति का उपवास करै साठिके ऊपर जिसने साल भरके भीतर कि

सो अर्वाध तक त्यागाहो सो प्राजापत्यकरै (इसके ऊपर यह कालका बहुत्व केवज दोयका बद्धापन प्रकट करताहे ॥ ० ॥ जिउने आतस आदिके हेसुसे याद रहिते भी अग्निक्ता कर्म त्याग किया हो तिसके लिये भी उन्हीं भारद्वाजने विशेषता जुदीकरो है=यथा=द्वादशाहातिक्रमेऽग्रहमुपवासोमागतिक्रमेद्वादशाहमुपवासः संवत्सरातिक्रमेमासोपवासःप्रथोभक्त्यांचेति=अर्थात्-वारहदिन कर्मकात्याग होनेमें तीनदिनका उपवास और महीनाभर अतिक्रम होजानेमें वारहदिनका उपवास और एकसालभर का अंतर होजाने में महीने भरका उपवास तथा दूधका आहार चाहिये ॥०॥ जिउने एकसाल से भी अधिक अर्वाधतक कर्म छोड़ दियाहो तिसके लिये हारीतने विशेष नियम कहे=यथा हारीतः=संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रेचांद्रायणांस्तत्त्वापुनरावध्यात् द्विवर्योच्छन्नेचांद्रायणांसोमायनंचक्षुर्यात् त्रिवर्योच्छन्नेसंवत्सरंक्षन्मभ्यस्यपुनरावध्यादिति (सोमायनंचक्षुकांडेवक्ष्यते)=अर्थात्-सक वर्षभर अग्निहोत्र छूटिजाने में चांद्रायणा व्रतकरिके फिर दुबारा आधान उसकाकरै दोवर्षभर छूटिजानेमें चांद्रायणा और सोमायन भी करै तिस पीछे स्थापन उसकाकरै तीनवर्षभर छूटिजानेमें एकवर्ष भर छच्छकी वारंवार आहुति किये पीछे फिर अग्नि का स्थापन करै (सोमायन का लक्षणा आगे सब छच्छों के प्रकरणा में कहा जायगा तब समझि लेना)-इसी विषयपर शंखने भी विशेषता जाहर करी है=यथा=अग्न्युत्सादीसंवत्सरंप्राजापत्यं चरेद्गांचदद्यात्=अर्थात्-अग्निको उठाव डारनेवाला उपपातकी एक सालभर प्राजापत्यों का आचरता करै और गोदान भी करै ॥

इत्यग्निहोत्रपरित्यागप्रायश्चित्तं

(सतादिसंस्कारबंधुरचणत्यागप्रायश्चित्तं)

अग्नित्याग नामके लगमा उसी २३६ मूलप्रश्नोक्त में योगीश्वरने (सुतकात्याग) दुबारा कहिकर (बाँधवोंकापरित्याग) भी दर्शाया था=इत दोनोंके पापों के प्रायश्चित्त कहीं जुदे स्वरूपसे नहीं कहे तिससे उसी४५ चर्वालिख के साधारण परिच्छेद में से प्रायश्चित्त लेने होंगे तहां इतना भेदहै कि जिसने कामनासेइहके साथ सुतका या बंधुजनोंका परित्याग किया हो तिसकेलिये उस परिच्छेद में २६५ दोनोंपैसदि की अतिक्रान्ति से तीनमहीनेवाले रोहत्याके प्रायश्चित्त बंधने चाहिये=और जिउने इहके बिना देवराति से सुत बंधुका त्याग कियाहो तिसके लिये उसी परिच्छेदमें

२६५के मूलश्लोक से योगीश्वरके बताये चार प्रायश्चित्तों में कोई एक शक्ति या दोगके अनुसार चुनि के लेलेना चाहिये इनकी यही व्यवस्था है कुछ और नहीं= सुतका त्याग दुबारा कहा जानेसे यह तात्पर्य है कि ६४ परिच्छेद में सुत पुत्र पोता पर पोता आदिको घरसे बाहर निकालिस देनेका प्रसंगथा और यहाँपर घरमें रहिते भी बालक पुत्रोंके उचित सस्कार आदि करने से उद्देश्य रखनी यही उनका परित्यागहै • तद्वत् बंधूजन असमर्थ वृद्ध चचा मामा आदि जिनका पालनकर्ता कोई और नहो तिनके रक्षणा पालन करनेकी सामर्थ्य होते हुये भी जो कोई उनकी नहीं राखै किन्तु ऐसे बंधुओंकी दुर्गति होते आँखोंसे देखे या कानोंसे सुनिकर भी रक्षा करने का उपाय नहीं सोचै तिसके पापका प्रायश्चित्त यहाँ पर कहा गया ॥ इतिसुत संस्कारादित्यागेबंधुरचणादित्यागेचप्रायश्चित्तं ॥

(स्त्रोहिंसादिभिर्जोवनप्रायश्चित्तं)

बंधु त्यागसे अनन्तर २४० दोसौचालीस मूलश्लोकमें योगीश्वर ने (इन्वनाथं दुमच्छेदः (वृक्षका निरर्थ काटिहारना जो दर्शाया था तिसके प्रायश्चित्त ५५ पंचयन के परिच्छेद में वर्णन होचुके तद्वा २७६ मूलश्लोकसे योगीश्वरने आपही प्रायश्चित्त भी दर्शाया ॥ फिर दुमच्छेद से लगमा २४० दोसौचालीस मूल श्लोकमें योगीश्वरने (स्त्रीकोद्वाराजीविकाकरना) और (प्राणियोंके बधसे जीविका करना) और (बशी करणाकी औषधियांसे जीविका) और (कोल्हूआदि यंत्रका जारीकरना)ये चार उपपातक इसीक्रमसे प्रकट कियेथे—परन्तु इनके जुदे प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहे तिससे इन सबकेलिये ४४ चवालिंसके परिच्छेदमें योगीश्वर औरमनुके कहेकोटेवइ प्रायश्चित्त इनके कर्म दोगोंके अनुसारचुनिके समझलेता ॥ इतिप्रायश्चित्तचतुष्क ॥

॥ इत्यौचित्यानांपरित्यागप्रकरणां ॥

इस प्रकारका में सब चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ६२ वासति परिच्छेद के प्रारम्भ से लेकर यहाँ पैसति के अंत लग चारों परिच्छेद इसी एक प्रकारका में गिनती हैं कि जिनमें सब तेईस चौबीस उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे गये सो केवल कन्या सद्गुरासे उपरालू सभी ऐसेहैं कि जिनमें निज निज औचित्य छोडि देनेका निमित्त है तिससे सबका एकही प्रकारका है=कन्या सद्गुरा का निमित्त यद्यपि सबसे जुदे प्रकारका प्रत्यक्ष है तथापि बीचमें आजानेसे प्रकरणा के बाहर नहीं जासक्ता ॥

अथव्यसनासक्तिनामोपपातकप्रायश्चित्तप्रकाश

कोऽथपरिच्छेदःषट्षष्टितमः (६६) ॥



इस परिच्छेदमें दुर्ग्रसनोकी घत पैदा होजानेके उपपातकपर प्रायश्चित्त कहे जायेंगे ॥ और उसीके प्रसंगसे सद्ग्रसनोका भी निराय क्रिया जायगा ॥

(व्यसनासक्तौप्रायश्चित्तं)

दोसीचालीस २४० मूलश्लोक में (हिंस्रयंत्र के लगना (व्यसनानि) व्यसनोंका उत्पन्न होना भी एक उपपातक बताया था उन व्यसनों के स्वरूप लक्षणा आचार कांडके अंतमें राजधर्म के प्रकरणा में वर्णन होचुके हैं नाम उनके द्यूत जुआरीपन की घत लीजाना० मृगया शिकार आखेब की निरन्तर घत लगी रहना इत्यादि अदारहं तो प्रधानता से प्रसिद्ध हैं फिर उनसे उपरालु भी अनेक व्यसन होतेहैं—व्यसन भी अच्छे बुरे दोभेदसे होतेहैं—व्यसन चाहें दुर्ग्रसन होय या सद्ग्रसनहोय दोनों खोहे—दीहरेतेहैं क्योंकि यद्यपि सद्ग्रसनमें कोई पाप नहीं होताहै तथापि उसके हेट से अनेक पाप स्वतः भी उत्पन्न होसक्ते हैं इसका दृष्टान्त जैसा किसी को अतिदान करनेका व्यसन लीजजाय तिसके पास मांगनेवाले दानपाप भी अत्यन्त आने लगते हैं यद्यपि पुण्य के लक्षणा साथ यह व्यसन सबसे उत्तमसद्ग्रसनहै कि जिसकेप्रभावसे स्वर्गफल प्राप्त होताहै तथापि व्यसन शब्द के अर्थसे ही व्यसन उसका नाम है कि जिस एकही कामकी घत्तसे सब उचित कामोंको भूलिजाय जैसा अतिदान करनेकी घत्तसे उचित कुटुम्बी जनोका पालनपोयरा भी छोडिदिया अथवा इतनाधम तक पास नहीं रक्खा कि जिससे पंचयज्ञ वा क्षेत्रल पाकयज्ञ आदि नित्य कर्मों की साधना होसके तभी इनकामों की हानिसे भी अनेक पापस्वतः जन्मते जाते हैं—इसो लिये—ग्रह ध्वन्यर्थ भी समझना योग्यहै कि हर कोई काम ऐसे पुण्यका क्रिया हुआ व्यसनकी गिनतीमें नहीं आसक्ताहै जो अपने उचित धर्मोकी न भूलेंकिन्तु जो आवश्यक धर्मोकी पालना करने से उपरालु किसी सद्ग्रसन को आवश्यकता के समान पालें सो व्यसनों की गिनती में नहींहै—इसका यह दृष्टान्त है कि जैसे राजा अपने मुल्की माली खबकामोंकी अत्यन्त हीशियारोंमें तत्पर बनारहिते भी प्रजाका

प्राणाहानि बचाने की आवश्यकता मात्रघालुक जीवोंकी आखेट भी करता रहे तो यह मृगयाकर्म व्यसनासक्ति में गिनती नहीं केवल जीवहिंसा में गिनती है तिसके लिये वन्य पशुहिंसाके प्रायश्चित्त प्रतीत होतेहैं परन्तु राजाका अहकर्म राजकर्मों की जखरत में गिनती होजानेसे उसपर उसरीति के प्रायश्चित्त नहीं आखड होते हैं कि जैसे कच्छ आदि व्रत लिखिचूके किन्तु राजापर दानरूपी प्रायश्चित्त आखड होतेहैं इसीलिये राजघरों में नित्यप्रति निरन्तर अनेक महादान होतेरहितेहैं और भी पुरप्रचरणा होमयज्ञ आदि करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणा सत्कर्म करते रहिते हैं—परन्तु यदि कोई राजा मृगया शिकार में आवश्यकसे उपराज भी सेवा तत्पर हो जाय जो केवल इसी व्यसन में लयलीन रहिकर माली मुलकी आदि सब कामोंकी सुविबुधि भुलाइहारे तो यह मृगयाकर्म उसका दुर्व्यसनमें गिनतीहै तब इस दुर्व्यसन का उपपातक मेदिनेके निमित्त प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ अथदुर्व्यसनप्रायश्चित्तं—यद्यपि योगीश्वरने कोई जुदा प्रायश्चित्त इसका नहींकहा तिससे४४ चवालिसके परिच्छेद में छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोयकी छोटाई बड़ाई अनुसार चुनिके लेलेने होंगे (यहाँ सब तरह के व्यसनमात्र समकिलेने जो अपने जन्मोक्त अर्थोंकी इहतक पहुँचेहों)परन्तु जो कोई अतिशय इतके साथ बारंबार दुर्व्यसनका अभ्यास करे तिसके लिये अग्रीक प्रायश्चित्त है—यदाहबोधायनः=अथाशुचिकारीसाद्युत्समिचारोऽनाहितारनेरुच्छृतिः समावृत्तस्यभेद्यचर्यंतिरस्यच गुरुकुलवासकृत्त्वं च तुभ्योमासेभ्योयश्चतमव्यापयतिनक्षत्रानिर्देशनंचेति द्वादशमासान्द्वादशाधमासान्द्वादशद्वादशाहान्द्वादशयद्वाहान्द्वादशज्येष्ठांश्चत्रयहमेकाहमित्यशुचिकरनिर्देशः(इति धृतेवार्थिकव्रतमुक्ततदभ्यासविययमितिमिताक्षरा=अर्थात्—बोधायनके वचनसे ये सातकर्मअशुचिकर नामके उपपाय कहातेहैंकि—१युत २अभिचारप्रयोग ३ अग्नि होषी न होतेरुच्छृति फेलेहुये बानेराहघाटसेचुगना ४समावृत्त जीवेदपडिकेगुरुकुल से लौटिचुकातिसका भीखमांगना ५समावृत्त नामका उत्सवकर्म लौटि आने सधये होचुकाजिसका ऐसेविद्यार्थीकाफिरगुरुकुलमें रहिना ६समावृत्तविद्यार्थी जोअधकचालौटिआवे जोचारसहीने वीतिजानेवादि फिर गुरुकुलमें धुसे तिसका पढानेवाला गुरु भी इन पापोंमें गिनतीहै ७ सातवां धहभी जो बिना बुलाये बिनाबूके घर घर नक्षत्र आदि पंचांग सुनाता फिरै—इन सातोंके यथाक्रमसे जुदे जुदेसात प्रायश्चित्तों की अवधों भी बोधायन अब कहिते हैं कि—वारइ सहोनेका ब्रह्मचर्य१—उससे आधा छमाही ब्रह्मचर्य२—सकसौ चवालिस दिनमें वारइ प्राजापत्य३—बृहत्तरि दिनमें

छेदके दिनके वारह छच्छार्ध—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनके वारह प्रयोग्यष्टान् कालतावाले—केवल तीन दिनका उपवास—केवल एकदिन रातिका उपवास—= विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन सातोंका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरीपनकी वृत्त में एकचर्यका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्षदिनका प्रायश्चित्त उहिरा सो यह वारंवार हठकेसाय अभ्यास करनेपर समझना (और यद्भी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी सभी वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना ॥ ० ॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै—यदाहप्रचेताः=अनृतवाकृतस्कारो राजभृत्यो वृक्षारोपकटृत्तिर्ग रदोऽग्निदोऽश्वरथाज्जरोह्राटृत्तिः रंगोपजीवोश्चगणिकः शुद्धोपाध्यायो वृथलीपतिर्भांडिको नक्षत्रोपजीवोश्चटृत्तिर्ब्रह्मजीवो चिकित्सको देवलकः पुरोहितः कितवो मद्यपः कृत्कारकोऽपत्यविक्रयो मनुष्यपशुविक्रीताचेति नानुदरेत्समेत्यन्यायतो ब्राह्मणव्यव स्ययासर्वद्रव्यत्यागे चतुर्थकालाहारसंवत्सरत्रियवराहपस्पृशोयुः तस्यतिदेवपितृतर्पणां वाह्निकं चेत्येवंव्यवहार्या इति (तदपिबोधायनेन समानविययमिति मित्तासरा= अर्थात्—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें छत्तीस उपपातकी गिनायेहैं कि—असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला • चोरी करनेवाला • राजकादासत्व करनेवाला • वृक्ष शाना आदि सालीकी टृत्ति जीविकाकरै • किसीको वियदेवै—आगि लगावै • कोचसानी या • रथमानी या • हाथीमानीसे जीविका • रंगरेजी वा छीपी आदि रंगसाजी से जीविका • कुत्ते बहुतपालें बेचै या उनकी गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय • शुद्धोंकी पाधाई पुरोहिताई करै • वृथलीभार्या जिसके घरमें होय • भांडिक जो राजद्वारों में तुरुही आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखै • नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करै • शृत्ति वह कि जो कुत्तोंकी तरह घर घर फिरते किसी तरहकी जीविकाराखै या ओछी सेवकाई नौकरी आदि करताहो • ब्राह्मजीवो जो ब्राह्मणोंके कामोंमें मजदूरीलेकर परिचारकवने यद्वा ब्रह्म जो वेदहै तिसके विक्रय आदिसे जीविका करै • चिकित्सक जो फोड़ा फुंसी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरै • देवल जो किसी देवालयाका चढावा खानेकी जीविका राखै • पुरोहित चाहें किसी बर्णकाहो जो छदी दसदिन आदि सूतकों का प्रतिग्रह लेनेकी टृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहै (अदालतोंसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव की दोअर्थ हैं एक छलिया जो छलसे दगाईवाले कागकरै दूसरा जुआरी

दितव कदाता है नद्यप नशेवाज कूट कारक जो अदालती आदि व्यवहारों में भुंटी गवाही आदि जातसाजी करता करता हो अपत्य विक्रयो जो अपनी संतान बेचता हो मनुष्यविक्रेता (वर्देफरो ए) जो परायेश्वी पुरुष कहींसे छलिकर वा खरीदि कर बेचता हो पशुविक्रेता जो पशुओंके क्रय विक्रयसे जीविका रखता हो चकार के ध्वन्यर्थसे पक्षी आदिका बेचना भी समझिलेना—ये कृत्रोसनाम गिनातेवादि प्रचेता कहितेहैं कि इतने उपपातकी ब्राह्मणा इनकामों में अच्छीतरह लीन हुये पीछे प्रायश्चित्तसे भी उद्धार होने योग्य नहीं किन्तु मुक्तिरूपो फलके भागी नहीं होवत्ते हैं तथापि ब्राह्मणात्व की व्यवस्थावाले न्यायसे इतना होमक्ताहै कि—इन कामोंसे जो कुछ द्रव्यलेचुके हों सो सब त्यागिके दिनके चौथेकात में भोजनका नियम लेकर एकसालभर त्रिकाल स्नान क्रियाकरें और स्नानके अन्तमें देवतर्पणा पितृतर्पणा क्रियाकरें फिर गोप्रासदेना आदि आन्हिक नित्य कर्म भी क्रिया करें तो इस करने से संसारी लोगोंसाथ व्यवहार शादी समीके हेतुमेल योग्य होजाते हैं (मितासरा कार कहितेहैं कि यह प्रचेताकी दशादि व्यवस्था भी बोधायनके समान विययपर समझिलेनी=और=मनुके कहे अपांक्त य पुरुषोंवाले प्रायश्चित्त (जो माता पिता पुत्रोंके त्यागपर लिखिचुके हैं सो) भी यहाँ व्यसनकी व्यवस्था में लेलेने चाहिये= यदाह मनुः=यद्यान्नकालतामासंसंहिताजपरववा होनाश्चशाकजानित्यमपांक्तानां विशोवनम्=अथत्वि—यद्यान्नकालतानाम छठेदिन अन्न भोजन या तीसरे दिन संध्याकालसे पीछे भोजनका नियम रुक महीनाभर साथै अथवा वेद संहिताका पाठ या गायत्रीका जपही एक महीनाभर करै तहाँ नित्यप्रति होम करतारहै यह अपांक्तों का विशोवन प्रायश्चित्त है—इसका विशेष द्यौरा (पितृ मातृ सुत गुरु त्याग) की स्थलपर देखी=इतमें बड़ेछोटे प्रायश्चित्तों के स्वरूप द्यौरा का दीय जैसा बड़ा या छोटा हो तिसके अनुरूप युक्तिसे सोचिलेना ॥ इति सर्वव्यसनानांप्रायश्चित्तं ॥

छेके दिनके बारह छच्छार्ध—छत्तीस दिनमें तीन तीन दिनके बारह प्रयोगयष्टान्न कालताबाले—केवल तीन दिनका उपवास—केवल एकदिन रातिका उपवास—= विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन सातोंका क्रम देखने से निश्चित होगया कि द्यूतकर्म जुआरीपनकी धत्त में एकवर्षका व्रत कहागया और द्यूतकर्म ऊर्ध्वोक्त दुर्व्यसनों में गिनती होचुका तिससे सभी दुर्व्यसनोंपर यह वर्षदिनका प्रायश्चित्त दहिरा सो यह बारंबार हठकेसाथ अभ्यास करनेपर समझना (और यद्भी समझे रहिना कि यद्यपि विद्यार्थी सभी वैश्य भी होतेहैं तथापि अत्रोक्त सर्व कर्म विशेषकर ब्राह्मणसे अपेक्षा रखतेहैं तथैव जो आगे वचन कहेंगे तिसमें समझिलेना ॥ ० ॥ इसीके समान एक दूसरी व्यवस्थाहै—यदाहप्रचेताः=अनृतवाकतस्करोराजभृत्योवृसारोपकटृत्तिर्ग रदोऽग्निदोऽश्वरथगजारोहसावृत्तिः रंगोपजीवीश्वगशिकः शूद्रोपाध्यायोवृथलीपतिर्भौंडिको नक्षत्रोपजीवीश्वत्तिर्ब्रह्मजीवी चिकित्सको देवलकःपुरोहितः कितवो मद्यपः कृत्कारकोऽपत्यविक्रयी मनुष्यपशुविक्रीताचेति नानुद्धरेत्सनेत्यन्यायतो ब्राह्मणव्यवस्थया सर्वद्रव्यत्यागे चतुर्थकाजाहार-संवत्सरत्रियवराहपस्पृशोयुः तस्यतिदेवपितृतरपंगानां चाह्निकं चेत्येवंच्यवहार्या इति (तदपिबोधायनेन समानविद्ययमिति मिताक्षरा= अयत्ति—प्रचेताने विशेषकर ब्राह्मणोंमें छत्तीस उपपातकी गिनायेहै कि-असत्यबोली का अभ्यास राखनेवाला • चोरी करनेवाला • राजकादासत्व करनेवाला • वृक्ष शगाना आदि सालीकी वृत्ति जीविकाकरै • किसीको विद्यदेवै-आगि लगावै • कोच-सानी या • रथमानी या • हाथीमानीसे जीविका • रंगरेजी वा छीपी आदि रंगसाजी से जीविका • कुत्ते बहुतपाले बैचै या उनकी गिनती रखवारी आदिपर नौकरहोय • शूद्रोंकी पाधाई पुरोहिताई करै • वृथलीभार्या जिसके घरमें होय • भांडिक जो राज-हारों में लुहरी आदि शब्दोंसे कालसूचन करनेकी जीविकाराखै • नक्षत्रोपजीवी जो पंचांग नक्षत्र आदि सुनाते फिरते जीविका करै • श्वत्ति वह कि जो कुत्तोंकी तरह घर घर फिरते किसी तरहकी जीविकाराखै या ओछी सेवकाई नौकरी आदि करताहो • ब्राह्मणजीवी जो ब्राह्मणोंके कामोंमें सजुरीलेकर परिचारकबने यदा ब्रह्म जो वेदहै तिसके विक्रय आदिसे जीविका करै • चिकित्सक जो फोड़ा फुंसी चीर फार आदि मैली चिकित्साकरै • देवल जो किसी देवालयका चढावा खानेकी जीविका राखै • पुरोहित चाहें किसी वर्णकाहो जो छठी बसुर्दान आदि सूतकों का प्रतिग्रह लेनेकी वृत्ति राखता हो तिसका चर्चाहै (अदालतोंसभा पुरोहितों का चर्चा इसमें नहीं कितव की दोअर्थ हैं एक छलिया जो छलसे दसईवाले कामकरै दूसरा जुआरी

आरूढ़ होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करीहो अन्यथा थोड़े काल की सेवा मध्ये४४ चवालिसपरिच्छेद वाले प्रायश्चित्त यथायोग्य चूनि कर लेने होगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ बेचकर दास होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप देवने का वचन मात्र पका कियाहो तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे न परिग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटाने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अर्थात् तक दूसरेके कब्जमें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बड़ा या जो कोई अति काल रहिके छूटे तिसपर अत्रोक्त तीनि वर्गोंका प्रायश्चित्त भी आरूढ़ होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्त ॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगमा २४१ दोसो इकतालिस मूलप्रतीकमें हीनजातिसे मित्रता करना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने जूदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दोयके अनुसार चुनिके जोड़िलेना—मितासरा कार कहिते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहै कि—मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्च हुरुवापयःपिबेदित(तदहीनसख्यभेदविययं=अथति—मित्रोंमें भेद करानेके दोयसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि में होम करिके दूधपीवै (सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना (यद्यपि इस प्रकाराने यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो महात्मा लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया ॥ इतिहीनजातिभिमैत्रीकरण प्रायश्चित्त ॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्तं)

हीनसख्यसे लगमा २४१ दोसो इकतालिस मूलप्रतीकमें (हीनयोनिसेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त जूदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चवालिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहाँ दोयकी छोटाई बड़ाई सोचिके जोड़िलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कईभाँति का होताहै कि एक तौ वेश्या आदि साधारण स्त्रियोंका भोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनसे नीचे वर्गोंकी स्त्रियोंसे विवाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

अथ आत्मविक्रयशब्दसेवाद्युपपातकचतुष्टयस्य प्राय- श्चित्तप्रकाशकोशपरिच्छेदः सप्रषष्टिः (६७) ॥

—*—

इस परिच्छेद में चार उपपातकों के प्रायश्चित्त कहे जायेंगे तिनमें प्रथम आत्मविक्रय और शूद्रकी सेवाका फिर हीन जातिकी सेवी का फिर हीनयोनि सेवन करने का ॥

(आत्मविक्रयशूद्रसेवनयोःप्रायश्चित्तं)

व्यसनों से लगना दोमो चालीस २४०, सूत प्रतीक के अत में (आत्म विक्रय) भी उपपातक फिर २४१ में (शूद्रप्रेष्य) भी उपपातक बतायाया—इत दोनों के प्राय-श्चित्त योगीश्वर ने जुड़े करिके नहीं कहे—तिसमें ४४ चवात्तिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्त चुनिकर इनके योगकी कोटाई बड़ाईपर जोड़िलेना=इसमें शूद्र सेवा के मध्ये एक बोधायनका वचन भी देखा गयाहै=यथा=समुद्र शान्त्राहाराख्यन्यासा पररांसर्वापरार्थैर्व्यवहरासंभूयपनुवृत्तं शूद्रसेवायश्चशूद्रायासंभज्जायते तदपत्यंच भवतितेयांतुनिर्देशः चतुर्थकालीमतभोजनाःस्युरपोऽभ्युष्युःसवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यांविहरतस्तौस्त्रिभिवर्षैस्तदपन्नतिपापम् (इतितहहुकालसेवावियथमितिसिताक्ष-रा=अर्थात्—समुद्रकीयात्राजोजदानपरहोतीहै•ब्राह्मराक्षीबरोहरिहर लेना•जोचीजें बेचनानियिहहैं तिनसे व्यवहारकरना•भूयपनुवृत्तंकरं अर्थात् धरतीकारखोदनाभीतर घुसनाआदि अथवा(भूयपनुवृत्त पाद होनेसे) परानुखद्दोजाना धरतीदयागि देनावेचि देना आदि अर्थनिकसते हैं जो कुछहो सोसही• शूद्र जातिकीनोकरे करना•औरजो कोई शूद्रमें बीजदान करिके जन्म धरे•औरउसकेजोशूद्रकीसन्तानहोय•तिनसबके लिये यहआज्ञाहै कि दिनकेचौथे कालमें सकही बार थोडासाभोजनकरनेकानियम सावेहुये नित्यम्प्रति सवनकेतुल्य स्नानकियाकरे अर्थात्जैसे यज्ञोंकाअंगभक्तान वेद के मंत्रोंसे अभियेवन हुआ करता है वही सवन कहाताहै तैसा रोजकरे और स्थान तथा आसनकी दृढतासे विचरते हुये इने कर्मोंसे तीन वर्षमें उन पापोंको धोसहते हैं विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहिते हैं कि इनमें से इस प्रकारके प्रयोजन पर शूद्र की सेवा लेना आवश्यक है तिसके लिये यह तीन वर्षोंका प्रायश्चित्त उस दयानें

आखूँ होगा कि जिसने बहुत काल शूद्र की सेवा करीही अन्यथा थोड़े काल की सेवा मध्ये४४ चर्वालिसपरिच्छेद वाले प्रायश्चित्त यथायोग्य चुनि कर लेने होंगे यह ऊपर भी लिखिचुके हैं—इसी प्रकार—आत्मविक्रय अपना देह किसी के हाथ बेचकर दाम होजाना आदि भी समझिलेना कि जिसने आप देने का वचन मात्र पका कियाही तिसपर सबसे छोटा प्रायश्चित्त फिर जिसने अपना देह दूसरे न परिग्रहमें फँसाही दिया तिसके छूटिआने पर कुछ बड़ा प्रायश्चित्त फिर जो कोई कुछ अवधि तक दूसरेके कब्जामें रहिकर छूटा तिसपर कुछ और बड़ा या जो कोई अति काल रहिके छूटै तिसपर अत्रोक्त तीनि वर्णोंका प्रायश्चित्त भी आखूँ होसक्ता है इत्यात्मविक्रयशूद्रसेवनयोः प्रायश्चित्त ॥

(हीनमैत्री प्रायश्चित्तं)

शूद्रसेवाके लगमा २४१ दोसो इकतालिस मूलश्लोकमें हीनजातिसे मित्रता करना (हीनसख्य) इस नामसे उपपातक दर्शाया था तिसका प्रायश्चित्त योगीश्वरने जुदा कुछ नहीं कहा तिससे ४४ चर्वालिस परिच्छेदमें से छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको दायके अनुसार चुनिके जोडिलेना=मिताक्षरा कार कहते हैं कि प्रचेताने जो ऐसा कहाहे कि=मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्नव हुत्वापयःपिवेदिता(तदहीनसख्यभेदविययं=अर्थात्—मित्रोंमें भेद करानेके दोषसे एक दिन राति भर निराहार होकर अग्नि में होम करिके दूधपीवै (सो यह प्रायश्चित्त अहीन जाति के मित्रोंमें भेद कराने पर समझना (यद्यपि इस प्रकरणमें यह वचन लिखाजाने का प्रयोजन कुछ नहीं था तौभी जो नहात्मा लोग लिखिचुके सो हमने भी लिखि दिया ॥ इतिहीनजातिभिर्मैत्रीकरण प्रायश्चित्त ॥

(हीनयोनिसेवन प्रायश्चित्तं)

हीनसख्यसे लगमा २४१ दोसो इकतालिस मूलश्लोकमें (हीनयोनि सेवन) इस नामका उपपातक दर्शाया था परन्तु योगीश्वर ने उसका प्रायश्चित्त जुदा करिके नहीं कहा तिससे ४४ चर्वालिस परिच्छेदमें छोटे बड़े प्रायश्चित्तोंको चुनिकर यहाँ दायकी छोटाई बड़ाई सोचिके जोडिलेना—परन्तु—हीनयोनिका सेवन भी कइभाँति का होताहे कि एक तौ वेष्या आदि साधारण स्त्रियोंका भोगभी हीनयोनिका सेवन है अथवा अपनेसे नीचे वर्णोंकी स्त्रियोंसे निवाह जिसने किया हो इत्यादि भेदों के

जुड़े प्रायश्चित्त आगे दर्शाते हैं—यथाह शातातपः=ब्राह्मणो राजन्यापूर्वः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तांचोपयच्छेत् वैश्यापूर्वतत्तत्कृच्छ्रं शूद्रापूर्वतत्तत्कृच्छ्रं तत्कृच्छ्रं राजन्यश्चेद्वैश्यापूर्वः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तांचोपयच्छेदिति शूद्रापूर्वतत्तत्कृच्छ्रं वैश्यश्चेच्छूद्रापूर्वः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा तांचोपयच्छेदिति—तत्र (निविशेत्तांचोपयच्छेदिति कृच्छ्रानुष्ठानोत्तरकालं स्वर्गापरिणयनादूर्ध्वं तांचराजन्यादिक्रानुपयच्छेदित्यर्थः) इदंचानामविषयं—जानतस्तुपपातकानामान्यप्रायश्चित्तं व्यवस्थितमेवद्वयमितिमिताक्षरा=अर्थात्—शातातपने कहा है कि जिस ब्राह्मण के धर्म में पहिले सत्राणी विवाहित हो चुकी हो वही जत्र अपने वर्गमें विवाह करना चाहे तो यह उसके ऊपर दोगुना है कि पहले नीचे वर्गमें विवाह किया इसी लिये स्वर्गाको विवाहनेसे पहिले वारह दिन कृच्छ्र व्रत करिके पीछे विवाह करे फिर उस सत्राणीको भी पासही रखे। इसी रीतिसे जो ब्राह्मण पहिले शूद्रासे विवाहकर चुका हो सो कृच्छ्रा-तित्कृच्छ्र व्रत करिके तब स्वर्गासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रखे—सवो जो पहिले वनेनीसे विवाह कर चुका हो सो वारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके अपनी स-वर्गासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रखे। जो सवो पहिले शूद्रासाथ विवाह कर चुका हो सो अतिकृच्छ्र करिके पीछे स्वर्गासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रखे—वैश्य जो शूद्राके साथ विवाह कर चुका हो सो वारह दिन कृच्छ्रव्रत करिके तब स्वर्गासे विवाह करे फिर उस पहिलीको भी पास रखे—परन्तु मिताक्षराकार कहिते हैं ये छोटे प्रायश्चित्त केवल उनके लिये समझना जिन्होंने नोचे वर्गकी कन्या विनाजाने बोखा आरिसे विवाहिती होय—किन्तु जानतेहूये इच्छा सहित जिसने नीचे वर्गकी कन्या प्रदण करीहोय तिसके लिये जैसा ऊपर लिखिचुके तैसा ४४ चवालितके परिच्छेदसे सामान्य उपपातकों वाले प्रायश्चित्त चुनिकर लेने चाहिये ॥ वैश्यादि भोगविषये तु विशेषः—वैश्या आदि साधारण स्त्रियां जो सर्वजनोंके भोग निमित्तमें प्रसिद्ध होतीहैं तिनका भोग भी हीनयोनिका सेवन कदाता है—तिनका संगन यदि एकवार इच्छा विना किसी बोखा से होगया हो तहां संयत आदि के कहे प्रायश्चित्त ज्ञाने=यथा=पशुवैश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते—तथा—वैश्यागनत्तं पापं च्यपोहति हिजातयः पोच्यसङ्कसङ्कत्तं सत्ररात्रं कु गोदकच=अर्थात्—पशुकी योनिये या वैश्याकी योनिये संगन करने पर प्राजापत्य

करना चाहिये—तथा—वेश्याके संगम से उत्पन्न पाप को द्विजाती लोग इस तरह से धोसकते हैं कि सात दिन तक एकही एकबार कुशाओंका औंढाया पानी खूब गरम पीके रहें० यह अज्ञानताका प्रायश्चित्त कहा=परन्तु जिसने जानि ब्रह्मि के वेश्या में संगम कियाहो तिसके लिये ४४ चवालिस परिच्छेद वाले छोटे बड़े प्रायश्चित्त थोड़े या बहुत दिनके अभ्यास रूपी छोटे बड़े पापके अनुसार चुनिके समझिलेने—परन्तु—इसमें कुछ भेद अभी और है कि जिसने इच्छा सहित बारम्बार वेश्यागमन का अभ्यास कियाहो तहां (प्रतिनिमित्तनैमित्तिकभावतंते इतिन्यायात्) हरएक पापके ऊपर प्रायश्चित्तकी आरुति बढ़ती है इस न्यायसे) प्रत्येक पाप के ऊपर प्रायश्चित्तोंकी सख्या बहुत होती देखिके लोकार्क्षि आचार्यने एक जुदाही नियम दर्शाया है—यथाह लौकार्क्षि=अभ्यासेहर्षुणात्तृदिसाद्वार्षिकीयते ततोमास्युणात्तृदियावन्संवत्सरंभवेत् तत्संवत्सरयुगायावत्पापसमाचरेदिति (इदमतिपूर्वविषयं=अर्थात्—जो कुछ प्रायश्चित्त एकबार के पाप करने पर कहा गयाहो तिसकी तृदि महीनाके भीतर कई बार पाप करने में उन्हीं दिवसों को संख्या साथ करी जायगी कि जितने दिनों पाप कियाहो फिर महीनासे उपरान्त एकसाल के भीतर में जितने महीने पाप कियाहो उन्हींकी सख्यासे गुणाकर प्रायश्चित्तोंकी आरुति बढ़ाई जायगी अर्थात् जितने महीने रहें उतनेही प्रायश्चित्त करने परें फिर एक बर्यसे उपरान्तमें जितने बर्य तक पाप करता रहा हो उतनेही प्रायश्चित्त करने परें—सो यह नियम केवल उसके लिये समझना कि जिसने जानते हुये पाप किया हो=किन्तु—जिसने विना जाने बारम्बार पाप करनेका अभ्यास कियाहो तिसके लिये घटुर्विंशतिसप्त नामके श्रय में विशेषता कही गईहै=यथा=सकृत्कृतेतुयप्रोक्तं विद्युत्तंतिविभिर्द्विभैः मासात्पंचगुणाप्रोक्तंपरमासाद्गणभाभवेत् संवत्सरत्पचदशंयत्कृत्वा द्विंशगुणाभवेत्ततोप्येवंप्रकल्प्यंस्यात्पशातातपवचोयथा=अर्थात्—एकबार पाप करने में जो कुछ प्रायश्चित्त कहा गयाहो सो तीन दिनके भीतरमें तद्रूप कियाजाय किन्तु तीन दिनोंसे उपरालू महीनाके भीतर चाहे कितनेही दिवसों विनाजाने पाप किया हो तिसपर त्रिगुना प्रायश्चित्त चाहिये और महीनासे ऊपर क्माहोके भीतर विना जाने चाहे कितनेही बार पाप कियाहो तिसपर पांचगुना प्रायश्चित्त चाहिये और क्माहीसे ऊपर पूरे सालके भीतर विना जाने चाहे कितनेही बार पाप किया हो तिसपर दशगुना प्रायश्चित्त चाहिये और एकबर्यसे ऊपर तीनबर्यके भीतर विना जाने चाहे कितनेही बार पाप किया हो तिस पर पन्द्रह गुणा प्रायश्चित्त चाहिये

तिसको जब संसारी व्यवहारोंमें शामिल होनेकी जख्हरत समझी जाय और वेप्रया के साथ भोजन करलेने आदि प्रकारोंसे बचा भी रहिसकाही=और जो गुरुतरूप से छोटे प्रायश्चित्त इसी यमके बचनमें दर्शायेगये सो सब यथायोग्य छोटे मोटे दोषों की दशाके अनुसार वेप्रयागामोपर आरूढ किये जासके हैं ॥ इतिवेप्रयादिहीन योनिसेवनप्रायश्चित्तं ॥

**अथ अनाश्रमवासादि सदसत्प्रतिग्रहांतोपपातक षट्क
स्यप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदःअष्टषष्टितमः(६८)**

इस परिच्छेद में छः प्रकारके उपपातकोंका प्रायश्चित्त दर्शाया जायगा—तिन में प्रथम अनाश्रमीका प्रायश्चित्त फिर परात्तलोलुपका और असत्शास्त्रके अभ्यासीका और खानिके अधिकारीका और भार्या बेचनेवालेका फिर असत्प्रतिग्रह और सत्प्रतिग्रहलेनेका प्रायश्चित्त कहाजायगा ॥

(अनाश्रमवासप्रायश्चित्तं)

दोसौ इकतालिस भूल प्रलोकमें हीन योनि सेवनसे लगामा योगीश्वरने (तथैवा-नाश्रमेवासः) इस पदसे अनाश्रम वास रूपी उपपातक ढहिरायाया विशेष ह्यौरा इसका उसी २४१ की अधिकोक्तिमें देखी परं जुवा प्रायश्चित्त कहीं नहीं कहा तिससे४४ चवालिस परिच्छेदका सहारालेनाहोगा—परन्तु—हारीतने जुवाप्रायश्चित्त भी कहा है=यथा=अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यकृच्छ्रं चरित्वा२४अममुपेयात् द्वि-तोयेऽति कृच्छ्रं तृतीये कृच्छ्राति कृच्छ्रं मत् कृत्वं चान्द्रायणमिति—एतदसम्भववि-ययं सम्भवेतु सामान्योपपातक प्रायश्चित्तानि कामाक्रामतोद्वयवस्यापनीयानीति सिताक्षरा=अर्थात्—अनाश्रमी उसका नामहै जो चार आयमों में किसी भी आयम का साथी न होय किन्तु भार्या सरजाने या प्रथमसेही त्रिवाह न करनेसे निहंगरहि कर शुद्धस्वीके आयमको न थांभै न ब्रह्मचारी संन्यासी वानप्रस्थहोजाय सेसापुरुष टिकाना बांधेविना चाहें तहां बौंदके या चाहें तिसकेपास पेट भरिके दिन काहें सो अनाश्रमी ठीक ठीकहै तिसकेलिये हारीतमुनि कहतेहैं कि—एकसाल भर अनाश्रमी

होके जहां तहां दिन कारें सो इस दोष के ऊपर प्राजापत्य कच्छ व्रत आचरना करिके किसी आयसमें दाखिल होजाय दूसरेसालतक अनाग्रणी हींके रहा फिरा होय सो अति कच्छ करिके आयस का स्वीकार करे० तीसरे साल तक अनाग्रणी फिराहोय सो कच्छातिहच्छ करिके आयसयाभै०तीनवयसे भी अधिक जो अनाग्रणी रहाहो सो महीना भर चान्द्रायणा करिके आयसका सहारालेवे— मिताक्षरा कार कहितेहैं कि यह नियम हारीतवाला उसकेलिये समझना जिसका विवाहादि न होसकनेसे गृहस्थ आदि आदिआयसका विक्षेप लाचारीसे रहा हो० किन्तु जिसने विवाहआदि आयसों के डौल होसकतेहुये उपेक्षा करीहो तिसकेलिये ४४ चवालिष परिच्छेद में सामान्य उपपातकों वाले बड़े छोटे प्रायश्चित्त दोष दशा के अनुसार चुनिके जोड़ि लेने चाहिये=इस वार्त्ताका संसेप द्यौरा २४१ दोसौइकतालिष मूल श्लोकवाली अथिकोक्तिमें लिखिचुके तहांदेखी॥ इत्यनाश्रमवासप्रायश्चित्तं॥

(परपाकरुचित्वादीनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं)

अनाश्रमवास के लगना २४१में (पराक्षपरिपुयता) इस पदसे परपाक रुचित्य कहिके २४२ दोसौवयालिष मूलश्लोकमें तीन उपपातकों के नाम और भी योगीचरणे इसक्रमसे कहेथे (असद्र शास्त्रों का अविगमन) (आकरेयु अतिकारता) (भायाविक्रय) अर्थ इनचारोंके उसी मूल श्लोकमें देखी—इन चारोंके प्रायश्चित्त कहीं जुदे करिके नहीं कहे गये हैं—तिससे ४४ चवालिष परिच्छेद में साधारण प्रायश्चित्त योगीचर तथा मनुके कहे छोटे बड़े चुनिकर इनके दोषोंकी छोटाईबड़ाई परजाति और शक्ति और गुणादिकों की अपेक्षासे व्यवस्थापन करलेने चाहिये ॥ इतिपरपाकरुचित्वादिभार्याविक्रयांतानांप्रायश्चित्तं ॥

यहांतक सर्वदोसौनवानी मूलश्लोकवाली टीकाकाशेषपाठ चलाआता था कि जिसकाचर्चा ६४ चौसठि परिच्छेदके प्रारम्भसमय लिखागया सो अबनिपटिगया ॥

(असत्प्रतिग्रहप्रायश्चित्तं)

दोसौवयालिष २४२ मूलश्लोक में (भार्याविक्रयश्च) इस चकारके ध्वन्यर्थ से बिना कहे भी उपपातक मन्वादिस्मृतियोंके लिखे समझने कहिचुके हैं उसीकी अथिकोक्तिमेंदेखी कि मन्वादिक ऋषीचरोंके दशयिनाम अनसत्प्रतिग्रहआदि अनेक जो वहांपर कहिचुकेथे उनके भी प्रायश्चित्त आगे दया क्रमसे दशयिगे तिनमें

और तीन वर्षसे उपरान्तमें बीसगुणा प्रायश्चित्त चाहिये—तिसपर भी सेसी कल्पना करनी चाहिये कि जैसा शातातपके वचनमें इसी वार्ताका चर्चा कहीं आचुका हो विरोधशांतिः ध्यानकरो इस पिछले अङ्गमें कल्पना करनेकी आज्ञा कही तिसका यह तात्पर्य नहीं है कि इसी तरह बीसगुनेसे भी अधिक बढ़ाते चले जायँ जैसी वर्षों अधिक देखें—क्योंकि ऐसा समझिलेनेसे बहुत बड़ा अन्याय खड़ा होता है—तिससे इसका यह तात्पर्य है कि यद्यपि इन वचनोंमें गुणा करनेके नियम निश्चित किये गये तथापि कहीं विरोधको देखिभाल इसमें भी न्यायात्मक कल्पना अपनीपुक्ति से करनी चाहिये जैसी शातातपके वचनसे कहीं शिक्षा भी हो चुकी है—और सिद्धांत इसका यही है कि विरोध का दूर करना आवश्यक है—इसका दृष्टान्त जैसा इसी अङ्ग पर विरोध मजबूत है कि तीनवर्षसे ऊपर चौथेवर्षमें भी बीस गुणा प्रायश्चित्त अज्ञानतासे पाप करेयापर ठहरा कि जिसपर कोमलताकी अपेक्षा थी और उन्हीं चार वर्षोंमें केवल चौगुना प्रायश्चित्त जानिबूझि पापकरे या पर साबितहुआ कि जिसपर कठोरताकी जखुरत पाई जाती थी, यह बात ऊपर लीगासिवाली व्यवस्था में देखीं इन दोनों के बीच अभी और भी अनेकवा विरोध पायेजासक्ते हैं तिन विरोधोंका निवारण करनेकी आज्ञापिछले अङ्गसे दरशाइंगे कि जिससे अन्याय न होनेपावे—तिसके लिये—ऊपर ले अर्थों में यह युक्ति सोचनी चाहिये कि जहां तीन दिनसे ऊपर महीनाके भीतर तिगुना करना कहा तहां भी सिर्फ चौथे दिन में तिगुना न कर देना किन्तु जैसे दिन थोड़े वा अधिक पाये जायँ तैसे सवाया डेउडा डूना तक पन्द्रह दिनके भीतर फिर इसीतरह थोड़ा थोड़ा बढ़ाते जाकर पूरे महीना तक तिगुना प्रायश्चित्त जोड़ना फिर पूरे कई महीने होजाने पर उन्हींकी संख्यासे गुणा करना कहिचुके हैं तहां भी यह सोचना कि दो महीने तकयही तिगुना राखनेसे, न्याय ठीक होगा (अन्याय दो महीनेमें दुगुना करानेसे दोही आहृति रही जाती है) तिससे तीन महीने पूरे होजाने पर पांच गुणोका प्रारम्भ करना अर्थात् तिगुनेसे अधिक चौगुना चौथे पांचवें महीनाके भीतर और छठे महीनाके पूरे होने तक पांचगुनेका बर्तावा करना—फिर सातवें मासकेपूरे न होनेतक यही पांचगुना राखना तिस पीछे एक एक महीनाकी अधिकता होताजानेमें एक एक गुणा बढ़ाते जाना अर्थात् आठवें मासमें छे गुना नववेंमें सात गुना दशवेंमें आठ गुना ब्यारहवेंमें नौ गुना बारहवेंमें दश गुना—इसीतरह पूरे वर्ष से उपरान्त जहां पन्द्रह गुणा प्रायश्चित्त तीन वर्षके भीतरमें कहिचुके तहां भी दूसरी तीसरी दोबर्षोंके २४ महीनों

पर फौलावा अपनी बुद्धिसेकरना—फिर तीनवर्षसे उपरान्तमें जो बीसगुना कहिचुके सो भी केवल चौथी वर्षमें न समझि लेना किन्तु पांच वर्ष आदि लेकर बहुत वर्षों देखिपरने में बीस गुनेका वर्त्तावा करना चाहिये इसके भीतर उसी पन्द्रह गुने का वर्त्तावा चला आवेगा क्योंकि (ये चतुर्विंशति मत के श्लोकों वाली व्यवस्था कुछ वाचनिक प्रभावसे संयुक्त नहीं है कि जो कुछ वचनमें उचाराया कियागया उसीपर आरूढ होना) इसीलिये इन श्लोकों ने आपही पिछले अर्थ से कहिदिया है कि इसमें न्यायकी दृष्टिसे कल्पना भी करनी चाहिये जिससे अन्याय न होसके—वरन इस अन्यायके बचानेके निमित्तसे दीयकी छोटाई बड़ाईपर भी ध्यान देकर यहकल्पना करनी चाहिये जो अभी लिखिचुके (आधुनिक अनुवादक इसबात से लाचार हैं कि प्राचीन संग्रहकारने निजान्याय दृष्टिसे चतुर्विंशति मतकी व्यवस्था अज्ञानता के पापमध्ये स्थापन करी और लैगासिवाली व्यवस्था को इच्छा सहितके पापोंपर स्थापन किया) इसके बादि,मिताक्षरा कार फिर कहते हैं कि (यत्पुनःविधेःप्राथमिकादस्मात् द्वितीयेद्विगुणाचरेदिति प्रतिनिमित्तमाट्टित्तिविधायकं तन्महापातक विययमित्युक्तंप्राक) अर्थात्—यह वचन जो प्रसिद्ध है कि इस पहिलेकिये अपराध पर जो कुछ प्रायश्चित्त की विधि कही गई, तिसके करचुकने के बादि जब उसी अपराध को फिर करे तब दूना प्रायश्चित्त कराया जाय इसी प्रकार तीसरी बार तियुना करवायाजाय इत्यादि सो यह महा पातकोपर आरूढ है इसका निर्णय पहिले ब्रह्महत्या आदि प्रकरणोंमें होचुका तिससे यहाँ इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥०॥ पुनराहविज्ञानेश्वरः—यस्ययमेनसाधारणास्त्रीगमनमधिकृत्यगुरुतल्पव्रतमतिदियं—गुरुतल्पव्रतकोचिह्नकोचिचान्द्रायणाव्रतस्य गौहनस्येच्छन्तिकेचिचकेचिदेवावकीरिान्— (इत्येतच्चजन्मप्रभृतिमानुवन्धानवच्छिन्नाभ्यासविययमितिमिताक्षरा—अर्थात्—विज्ञानेश्वर आचार्य फिर कहते हैं कि यमने जो वेश्या आदि साधारण स्त्रियां गमन करनेके पाप पर गुरुतल्प महापापवाले प्रायश्चित्तका अति देश अगिले वचन से उताराहै कि—विरले आचार्य गुरुतल्पवाला व्रत बताते और विरले चान्द्रायणा व्रत बताते और विरले गौहत्या वाले प्रायश्चित्त चाइना करते और विरले अबकीपारि ब्रह्मचारी वाले प्रायश्चित्त उद्विराते हैं कि जैसा काने गदइ से नैश्चत याग करना आदि कहागयाथा० इनमेंसे गुरुतल्पीवाला व्रत केवल उसकेलिये समझना कि जो मनुष्य अपने जन्मसे सुधि सम्हारनेकी साथही खुलाखुली वेश्यावाजीमें तत्परहोके इतके साथ निरन्तर अभ्यास करता रहिकर अपनी बहुत अवस्थाको बिताइचाक

से असत्प्रतिग्रह लेनेका प्रायश्चित्त यहाँ पर मूलश्लोक से योगीश्वर दर्शाते हैं ॥

गोष्ठेवसन्ब्रह्मचारीमासमेकंपयोन्नतः । गायत्रीजाप्यनिरतःशुद्धयतेऽसत्प्रतिग्रहात् २९०

अर्थः—ब्रह्मचारी होके एक सहीना गीष्टमें वसते पयोन्नत करते गायत्री के जप में निरत होवै सो असत्प्रतिग्रह से शुद्ध होताहै—अर्थात्—जिस पंडित ने असत्प्रतिग्रह खोंटादान लोखिया होय सो इस पापसे इस तरह शुद्ध होताहै कि बहुतमी गौओं के समूहवाले गौं हरें में सहीना भर ब्रह्मचर्य की साधना सहित वसिकर केवल एकवार थोडा दूधपीनेका व्रतलेकर नित्यंप्रति संतत गायत्रीके जपमें लगा रहाकरै ॥२९०॥

२९०अधिकोक्तिः—खोंटादान उसको समझना जो दाताकी जाति नीच होने या जाति उंच होने पर कर्म नीच होनेसे भी दान असत् कहता है—दृष्टान्त जैसे चंडाल आदि महानीचसे प्रतिग्रह लेना या कर्मोंसे महापातकी आदि पतित होय तिसका दिया प्रतिग्रह लेना—तथैवदेश और कालके योगसे भी खोंटादान कहाताहै—दृष्टांत जैसे कुरुक्षेत्र के तीर्थमें यह देश ठहिरा और ग्रहणा आदि पर्वोंमें प्रतिग्रह लेना यही अनिष्ट कालके योगसे खोंटापन ठहिरा—तथैव निंदित द्रव्योंके स्वरूपसे भी प्रतिग्रह का खोंटापन होताहै—दृष्टान्त जैसे मदिरा या भेड़ या मरे मनुष्यका शय्यादान या उभय तोमुखी गायकादान आदि अनेक दान अपनी वस्तु के स्वरूपही से असत् कहाते हैं (उभयमुखी गाय वह कहातीहै जिसके दोनोंओर मुख होयें अर्थात् विआते समय निकसते हुये बच्चे का मुह पीछे और आगे अपना मुह तिसका उठी समय दानकरने से उभय तोमुखीका प्रतिग्रहलेना परताहै) ॥ ० ॥ मिताक्षराकार कहितेहैं कि जो प्रायश्चित्त मूल श्लोक में कहा गया सो कुछ बड़ा देखि परता है तिससे यह ऐसे पुरुष पर आसूझ करना चाहिये जिसने खोंटे दान के दो दोष पायेजाय (अर्थात् खोंटे दान के चिह्न सब लिखिचुके तिनमें देखौ) कि जिसने पतित या चराडाल या रजस्वला आदि किसी खोंटेके हाथसे खोंटाही द्रव्य भेड़ वकरी आदि प्रतिग्रह लियाहो इसीदृष्टान्त से और भी दो दो बात निज्ञाकर सर्वाभिलेना कि दो बातोंके निज्ञापसे दोष संब्रजापन आजाताहै जैसे एकडाके पासएकडा घरनेसे ग्यारह वनिजाते हैं तिससे ऐसीदशानें यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये—तहां—यद्यपि गायत्री के जपकी तादाद योगीश्वर ने कुछ नहीं कही परन्तु मनुने उसकी संख्या भी कहि दर्श है—यथा=जपित्वात्रोषासावित्र्यासहस्रारिससाहितः मासगोष्ठेपयःपीत्वामुच्यते ऽसत्प्रतिग्रहात्=अर्थात्—एक सहीना भर नित्यंप्रति गायत्रीमंत्र के तीनि सहस्रजपि कर गौओं के गोहरे में ग्राम से बाहर निवास करते दूध पीकर व्रत करै सो इसअ-

सत्प्रतिग्रह के पाप से छुटि जाता है—अब दूसरी व्यवस्था देखौ ॥ ० ॥ जिसने किसी न्यायवंती धर्मात्मा ब्राह्मणा आदि श्रेष्ठ पुरुषसे खोटा प्रतिग्रह देटा वकरा आदि कुछ लिया हो तिसपर एक वस्तु के खोटे स्वरूप ही का दोष पाया जाता है यद्वा धरती मकान आदि श्रेष्ठ चीजों का प्रतिग्रह पतित आदि महा पापी से या चण्डाल आदि अशुचि मनुष्यां से लिया हो तिस परभी एकही दोष पाया जाता है • तिसके लिये यद्विग्रहन्मत के कहे प्रायश्चित्त चाहिये=यथा=पवित्रेष्टया विशुद्ध्यति सर्वेष्टो राः प्रतिग्रहाः सेद्वेनमृगारेष्टया कदाचिन्मन्त्रनिदया देव्यालसजपेनैवशुद्धान्तेदुपप्रतिग्रहात्=अथवि—सब तरह के खोटे प्रतिग्रह जिनके लेने से महा घोर पाप होते हो तिनके भी लियेया शुद्ध होते हैं पवित्रेष्टि के करनेसे अर्थात् पवित्र नाम यज्ञोपवीत है तिसकी इष्टि करना पुनर्यज्ञोपवीत का सर्वथा सस्कार कराना यह तात्पर्य है • परन्तु जो प्रतिग्रह अत्यंत घोर न समझा जाय तौ फिर इसी पवित्रेष्टि का अर्थ पवित्रारोपणा या पवित्रारोहणा इस नाम का यज्ञमाना जाय जिसका यह लक्षण है कि यावरा महीना की शुक्ला द्वादशी के दिवस विष्णु देव के नाम से यज्ञोपवीत कर्म किया जाता है—जहाँ इससे भी इलुका प्रतिग्रह समझा जाय तिसके निवही निन्दा करें तौ इस दोष मे सेदव चांद्रायणा वृत्त करना चाहिये यद्वा मृगारेष्टि कर्म अर्थात् याचना किये द्रव्यों से अभावस्या पूर्णामासी के वेदोक्त यजन कियाकरे तौ भी शुद्ध होता है • अथवा यह न होसके तौ गायत्री देवी का एक लक्ष सख्या जप ही करिके शुद्ध होता है जिसने असत्प्रतिग्रह लेलिया हो ॥ ० ॥ जोकि रुद्धहारीत का यह वचन है=राज्-प्रतिग्रहकृत्स्वामासमप्नुतदावसेत् यद्येकालेपयोभक्ष पूर्णामासे विशुद्ध्यति तर्पयित्वादिज्ञान्कामैःसततनियतव्रतः (सत्सपूर्वाक्तवियथाभ्यासेद्वष्टय अथवापतितादेःकुरुक्षेत्रोपरागादौ कृष्णाजिनादिप्रतिग्रह वियग्रभिर्निमित्ताक्षरा= अर्थात्— राजा से खोटा प्रतिग्रह लेकर ब्राह्मणा को चाहिये कि एक नहीवा भर नित्यप्रति जल में बैठा रहा करे और एक पहर भर राति बीति जाने बाद योद्वाद्बुध पित्रा करे फिर महीना पूरा होजाने पर ब्राह्मणां को इच्छा भोजन से खत करिके शुद्ध होता है (मिताक्षरा कार कहिते हैं कि हारीत का यह वचन उस प्रतिग्रह के वियय पर मानना कि जैसा पहिले अतिकोक्ति के प्रारम्भ मे दो वीर्यो का इकट्ठा होना लिखि चुके अथवा इस रीति से कि जिसने कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों पर प्रदशा आदि कठिन काल से महा पापी आदि पतितों से प्रतिग्रह लिया होय) इस व्यवस्था का यह तात्पर्य ठहिरा कि हारीत के वचन मे जैसा कहा गया कि राजाका

प्रतिग्रह लेकर ऐसा प्रायश्चित्त करे सो यह कथन सब राजानों के सब अच्छे भी प्रतिग्रहों पर न समझ लेना ॥ ० ॥ इसी प्रकार प्रतिग्रह का द्रव्य थोड़ा होने की दशा पर भी प्रायश्चित्त छोटा होना चाहिये सो भी हारीत की मध्यमस्मृति का वचन देखो—तथाच हारीत—मरिवावालो गवादीनां प्रतिग्रहसो साविन्ध्यसु बहुजपेत्—मरिवायां वा बखों वा गाय आदि उत्तम चीजों के दान इन्हीं कीमतों के अनुमान प्रतिग्रह लेनेमें आठ सहस्र गायत्री जपि डारै इसीसे शुद्ध होजाता है ॥ ० ॥ सत्प्रतिग्रहेऽपि योचित प्रायश्चित्त—यद्विग्रहन्मत के ग्रन्थ में यह भी नियम किया है कि जिसने येस प्रतिग्रह लिया हो सो भी कुछ प्रायश्चित्त करे—यथा—भिक्षामावेश्च हीतेऽतिपुरायमंत्रमुदीरयेत् प्रतिग्रहेयुसर्वेषु यद्यमंशप्रकल्पयेत्—अर्थात्—जिस ब्राह्मण ने याचना करने से भिक्षामात्र का दान ग्रहण किया होय सो अति पुराय मंत्र का उच्चारण करे अर्थात् अपने इष्टदेव का जो मुख्य मन्त्र है सो अति पुरायमंत्र समझना अथवा जिसके कोई इष्टदेव न होय सो गायत्री का उच्चारण करे उच्चारण करना भी जैसी थोड़ी या बहुत भिक्षा ग्रहण करी होय तैसीही थोड़ी या बहुत मंत्रों की संख्या भी नियत करे परन्तु जिसने दानही की रीतिसे कुछ येस प्रतिग्रह लिया होय सो उस प्रतिग्रह के द्रव्य में से छटा भाग पुराय करे ॥ ० ॥ जबकि येस प्रतिग्रह में से भी छटा भाग देवैना ठाहरा तोफिर खोटे प्रतिग्रह का सर्व धन त्यागिदेना सिद्ध होगया और इसी का पक्काहट अगिले वचनसे भी स्पष्ट है—यदाह मनुः—यद्गण हितेनार्जयति कर्मणा ब्राह्मणाधनं तस्योत्सर्गं शुद्धान्तिजपेन तपसैव चेति—अर्थात्—ब्राह्मण लोग जो निन्दित प्रतिग्रह आदि कर्म से धन सग्रह करते हैं तिसको पुराय करदेने से ही शुद्ध होते हैं और इसको ऊपर जप तप करनेसेभी—इसी प्रकार—र— और भी स्मृतियों के वचन जो कुछ मिलें सो सब प्रतिग्रह छपी द्रव्य का सार और अल्पत्व सहस्र से भी पूर्वोक्त सर्व विषयों पर युक्ति से व्यवस्थापन करलेने चाहिये इति सदसत्प्रतिग्रह प्रायश्चित्त ॥

इत्यनिष्ट सग सेवनादि प्रायश्चित्तप्रकरणा ॥

इस प्रकारका मैं आसदि सरसदि अइसदि ये तीन परिच्छेद हैं जिनमें सभीवार्ता ऐसी हैं जो खोटा सग से उन्हे आदि से सवन्व राखती है ॥

अथ प्रासगिकीवार्ता ॥

विज्ञानेश्वर आचार्य सक्त श्लोक देकर कुछ और प्रायश्चित्तों का दर्शनाधारभ

करते हैं—यथा (जात्याग्रयादिव्येण निद्यानादेयशब्दतः योगीन्द्राक्तव्रतव्रातंसांप्रत
 तुप्रतन्त्यते) अर्थात् अब योगीश्वर को कहे उन पापों के व्रतों का समूह, विस्तार
 करके दिखलावैंगे कि जिनको मुख से खुल्लम कहे विना २४२ दोसौ ब्यालिस
 मूल श्लोक में चकार के ध्वन्यर्थ से समस्या किये थे कि जो जो उनके हृदय के
 भीतर उद्गात (उभरे हुये) हो रहे थे उनसे बहुधा पाप ऐसे हैं जो जाति वा आग्रय
 आदि दायों से उत्पन्न होयें अथवा नाम के शब्द ही से निंद्य और अनादेय अभ-
 स्यपन समझा जाय • वल्कि बहुधा पाप और प्रायश्चित्तों की समस्या आचार
 मर्यादा परिपाटी में भी कई स्थलों पर योगीश्वर आपही प्रकाशकरचुके और म-
 न्वादि मुनीश्वरों केभी अभिप्रायसे जो जो पापोंके लक्षणा या प्रायश्चित्त शीलमोल
 कहिने वाकी रहि गये हैं तिन सबका व्रात समूह एकत्र संग्रह करिके आगे यथा
 क्रम से व्योरे वार दर्शावैंगे तब इस बातों का प्रयोजन खूब समझि लेना ॥ यहाँ
 सर्व अभस्यों का प्रकरणा कहा जायगा ॥ और यह भी याद रखवो कि यद्यपि इस
 भस्याभस्य के प्रकरणा में जुदे जुदे कई परिच्छेद होंगे परन्तु योगीश्वर का
 मूल श्लोक विल्कुल इसमें नहींहैक्योकि यह व्यवस्था उपराल स्मृतियों के बचन
 लेकर संग्रह करी जायगी और यह भी ध्यान रहे कि इसमें कौ अनेक व्यग्रस्थाये
 जहाँ तहाँ पहिले भी वर्णन होचुकी है यह व्रात इस परिग्रम से जानी जासक्ती है
 कि ५९ उनसति के परिच्छेद से लेकर ग्रहांतक सभी परिच्छेदों को सोचि सोचि
 देखते चले आओ फिर इस भस्याभस्य प्रकरणा वाले परिच्छेदों को सोचि के
 समझो कि योगीश्वर इन बातों को बहुधा उन्हीं परिच्छेदों में कहिचुके हैं • परंतु
 यहाँ केवल खाने पीने के वीय पर यह संग्रह सकत्र किया जायगा ॥ यह व्योरा के-
 वल पाठको के धम दूर करने के हेतु लिखा गया ॥

अथ जातिदुष्टाद्यन्न पानादीनां भक्षणदोषस्य प्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः एकोनसप्ततितमः ६९



इस परिच्छेद में उन अभस्यों के खाने पीने का प्रायश्चित्तकहा जायगा जो अ-
 पनी जाति ही से खोटे जैसे पिआज लइसन आदि अनेक चीजें और सन्निवनी गऊ

सतः भुक्त्वास्वभावदुष्टचतस्रकृच्छ्रं समाचरेत्=अर्थात्-खाने पीनेका तैयार अन्न जो समर्ग किसी ऊर्ध्वोक्त वस्तुसे छुई जाकर दूयितहोजाय या वनाते समय क्रिया भ्रष्ट होकर दूयित हुआ होयतिमको इच्छाविना खाकर तप्तकृच्छ्र व्रत आचरे अथवा जो कोई अन्न आदि वस्तु अपने स्वभावही से दुष्ट कही जाती हो जैसी लहसुन पिआज आदि बहुतेरे नाम ऊपर लिखिचुकेहैं तिनकोही बिना चाहे बोखा आदिसे अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो तोभी तप्त कृच्छ्र व्रत आचरे• अन्यथा छोटे छोटे प्रायश्चित्त जो ऊपर लिखिचुके तिनको एकहीवार खाइलेने आदि पर विचार करना ॥ ० ॥ परन्तु नील सकहीवार बिना जाने भी खालेने में बड़ा प्रायश्चित्तहै=तदाहापस्तम्बः=भक्षयेद्यदिनीलीतुंगप्रमादाद्ब्राह्मणाः क्वचित्चांद्रायरोनशुद्धिःभ्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः=अर्थात्-नीली नील के टुकका साग आदि किसी प्रकार से यदि कहीं कोई ब्राह्मणा बोखा आदिसेभी खाजाय सो महीनाभरका चांद्रायराकरणसे पवित्र होताहै यह आपस्तम्बने कहा-परन्तु जिसने दोवारखाया तिसको दोचांद्रायरा और तीनिवार वालेको तीन इत्यादि कल्पना समझि लेनी और एकहीवार जिसने इच्छा से जानि वृत्ति खाया होय तिसको भी दूना प्रायश्चित्त समझना ॥ ० ॥ चौका लीपना इत्यादि शुद्धि किये बिना जो पाक बनायाजाय तिसको खा लेने परभी प्रायश्चित्तहै=तथा चयद्विंशन्मत्तवचनस=शरापुष्पंशालमलचकारनिर्मयित्तंदवि वहिर्वदि पुरोडाशंजरध्वानाद्यादहर्निशस=अर्थात्-सुनके फल फूल या सेमर के फल फूल या मयानिया बिना हाथही से मथाहुना दही या वेदीसे बाहरका पुरोडाश खालेबै सो दूसरेदिन आठपहरका निराहार व्रतसाधे और उस दिन भी न खाय तब शुद्धहोय=वेदी से बाहरका पुरोडाश अर्थात् यहां वेदी चौकेका नाम है तिसके बाहर बिना चौके बैठिके खाने और बनाने का नियेव है• पुरोडाश यज्ञ सम्बन्धी अन्न आदिका नामहै कि जिस रसोइके अन्नसे परमेस्वरको भोगदेना अग्नि आदि देवता और अभ्यागतोंको जिमाना आदि रोजका कर्म जोहै सोइे प्राकयज्ञ कहाताहै(बिज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह एक दिनराति के उपवास वाला छोटा प्रायश्चित्त भी ऐसे पुरुष पर समझना जिसने इच्छाके बिना ऐसे कामोंको किया होय किन्तु जानि वृत्ति ऐसा करनेवाले पर प्रायश्चित्त भी दूना आदि बढाया जाय ॥ ० ॥ जहाँ किसीको घर्काइ के जवदस्ती से सैसी चीजे खवाई हों या वैद्यने रोगीसे कहिकर खवाई हो कि इसके खाने बिना यहरोग नहीं मिटिस्क्ताहै=तदाह सुमन्तुः=जशुनपलांडुगुंजन कवकभक्षारो सावित्र्यष्टसहस्रेणा मूर्ध्निं संपातान्नयेदिति (तद्वलात्कारेणानिच्छतो

भस्मरावियय तदेकसाध्यव्याध्नुपशमार्थेवाभस्मरोद्रष्टव्य मितिमिताक्षरा)=अर्थात्—
 सुमन्तुने कहा है कि लहसुन पिआज गाजर कबक इनको खाने वाला गायत्री के
 आठ हजार २ जोसे एक एक मंत्र पढ़िके जल के बंद अपने मूत्र पर टपकने दें तब
 शुद्ध होय (सो यह प्रायश्चित्त जर्दस्ती खवाइ देनेमध्ये या उसके मध्ये सनभना
 कि जिसकी बीमारी केव न वही चीज खानेसे जासके तिसने खाया हो यह मिता-
 क्षराकारों ने कहा) क्योंकि इसी हेतु से इस वचन के लगामा उन्होंने सुमन्तु ने यह
 कहा है (सतान्येवव्याधितस्यभियकक्रियायामप्रतियिद्वानिभवति यानिचै प्रकारा
 ग्नातेष्वपिनदोषः) अर्थात् ये लहसुन आदि सब चीजें वैद्य की चिकित्सा वाली
 क्रिया मे नियिद्ध नहीं है और भी जे कोई इस प्रकार की चीजें या इन प्रकार की
 क्रिया विप्रोय होतीहो तिनमें भो दोय नहीं ॥ अब नीचे उन प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था
 कही जायगी जो सधिनी आदि गायोंके नियिद्ध दूध आदि जातिहीसे दूयित कहाते
 तिनके खाने पीनेमें करने होते हैं ॥ जातिहीसे दुष्ट वे कहाते हैं जो अपने जन्मही
 से खोटे दाहरे जैसे लहसुन प्याज या नीचे सधिनी आदिके दूधोंको समझिलेना ॥

(अथ जातिदुष्ट सधिन्यादि क्षीरपाने प्रायश्चित्त)

इसके मध्ये मिताक्षराकारने यह व्यवस्था निर्मित करी है कि जिसने सधिनी
 आदि गायोंका दूध जानि बूझिके इच्छा सहित एक बार पिआ हो तिसके लिये
 वही तीन दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै जो आचार मर्यादा वाले कांडमें योगीश्वर
 आपही १६६ एकसौ उनहत्तरि मूल श्लोक से सधिनीका दूध आदि नियिद्ध कहि
 कर १७४ एकसौ चौहत्तरि श्लोकमें कहिचुके और जिसने इच्छाके विना दैवयोग
 से एकही बार पिआ हो तिसके लिये एकहीदिन रातिका उपवास मनु की आज्ञा
 से विचारना अगिले वचनसे=यथा=अनिर्दशयागोःक्षीरसौष्ट्यैकशफतया आवि
 क्रंसधिनीक्षीर विवत्समायाश्चगो पयः आरगयानांचसर्वेषां मृगाणांमहिर्योविना स्त्री
 क्षीरचैववज्र्यानिस्वशुक्तानिचैवहि दधिभक्ष्यचशुक्रैयुतर्वचदधिसभव मित्युक्ताशेषे
 मूषवसेदहः इतिमनूक्तउपवासोद्रष्टव्य इतिमिताक्षरा=अर्थात्—विआनी गाय जिष
 का वचा दश दिनका न होजाय तिसका सुतकी दूध तथा ऊँस्तीका दूध तथा एक
 ही खुर वाले पशू घोड़ी गदही आदिका दूध तथा भेड़ोंका दूध तथा सन्विनी अर्थात्
 हाल गाभिन हुई गाय भैंसका दूध तथा विना वचेवाली गाय का दुध तथा वन के
 सबही मृग जीवोंका दूध (केवल वन भैंसकी छोड़िके) और स्त्री नारीमात्र का दूध

आदिके अनेक दूध जो अपनी जातिही से खोटे होतेहैं और स्वभाव दुष्ट मांस अनेक जो अपनी खासियत और जातिसे भी अनेक मांस दुष्ट होते हैं कि जिनका भक्षणा मांसाहारियोंकी भी निषिद्ध होता है। फिर इन सबके प्रसंग से औरभी बहुधा चीजों का चर्चा इसमें आवेगा ॥

(जातिदुष्टपलांदादिभक्षणप्रायश्चित्त)

ऊपर चर्चा किये प्रसंग से यहां पहिले उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त दर्शाते हैं जो पिआज आदि बहुधा चीजें अपनी जातिहीसे खोटी और स्लेच्छ जातीयों से वास्ता रखतीहैं—तहां—जिसने इच्छासहित एकहीवार उन चीजोंका भक्षणा किया होय तिसका प्रायश्चित्त चांद्रायणाहै योगीश्वर आपही आचार मर्यादाकांड में कहिचुके तहां (१७५ एकसौपचइतरिमूलश्लोक) देखीं=और=जिसने इच्छा सहित खानेका अभ्यास कईवार कियाहो तिसके लिये भी योगीश्वर आपही यहां प्रायश्चित्त मर्यादा में (२२६ दोसौं उन्तीस मूलश्लोकसे) इन चीजों को सुरापाने के समान कहिचुके तिनका प्रायश्चित्त ३१ इकतिस परिच्छेदमें सुरापानवाले प्रायश्चित्तों के समान ढुंढिकर देखीं=परन्तु=जिसने इन्हीं पिआज आदि चीजों को इच्छाके बिना धोखा आदिसे एकहीवार खायाहो तिसको सांतपन प्रायश्चित्त है सो भी अगिले वचनोंमें आवेगा=और=जिसने इच्छा बिना कईवार खाया हो तिसके लिये (यतिचांद्रायणा) इसनामका प्रायश्चित्त चाहिये जैसा अगिले वचन में कहाहै देखीं=यदाहमनुः (अमृत्यैतानियङ्जग्ध्वाकृच्छ्रं सांतपनंचरेत् यतिचांद्रायणा वापिशेष्यूपवसेदहः) अर्थात्—ये पूर्वोक्त नामोंकी क्वेचीजें बिना जाने खाइके कृच्छ्र सांतपन करै या यदि कईवार खाया हो तो यति चांद्रायणा करै वाको जिन चीजों के नाम सहित कोई प्रायश्चित्त न कहा गया हो तिनको खाइलेने से एकही दिन उपवास करै ॥०॥ इन चीजोंके सिवाय विरले फल शाक आदि भी निषिद्ध हैं तिन का प्रायश्चित्त वृहद्वयमने और सट्टयम यमनेभी कहाहै=यथाह वृहद्वयमः=खड्वावार्ता ककुम्भीकत्रश्चनप्रभवाशिाच भूतृणाशिगुक्चैवसुकंदं कवकानि च सतेयांभक्षणां कृत्वा प्राजापत्यंचरेत्तद्विजः (इतितत्कामतःपूर्वाभ्यासविययं—(मत्स्यांश्चकानतो जग्ध्वा सोपवासस्यहस्तिपेदितियोगीश्वरैराकामतः सकृद्वसरोत्र्यहस्योक्तत्वाद्) सर्वयमो पथाह=तंडुलीयककुम्भीकत्रश्चनप्रभवांस्तथा नालिकां नालिकेरीं चश्लेष्नातकफला निच भूतृणाशिगुक्चैवखड्वाख्यंकवचंतथा सतेयांभक्षणां कृत्वा प्राजापत्यं व्रतंचरेत्

(इति तदपि सति पूर्वभ्यासविषयं=अर्थात्-खट्वा नाम कोलशिखी नामसे एक फली होती है जिसका आकार सुअरके पंजातुल्य होता है-वार्ताक वैराग-कुम्भी साग इसी नामसे विख्यात है जलके ऊपर पत्ते उसके फैलेते हैं इसीसे वारिपर्यायी जतपाना भी कहाती है-ब्रश्चन प्रभव फलादिक वे कहाते हैं जो पेंवरी पेंवन्दी वृक्षांसे उत्पन्न होयें जिनकी कलम तरासिके दूसरे वृक्षमे जमाई जाती है-भूदरा नामसे वे शाक समझने जो प्रायः धरतीपर फैलेहुये लोनियां आदि होते हैं (किन्तु रोहिय दूगाकी यहाँ मत समझना जो सुगन्धवाली घास होती है)-शिग्रु लालसहिंजना-मुकंदनाम पित्राज-कवक नाम धीरती के फलछयाक-इतनों में किसीको खाइके द्विजाती पुत्र्यप्राजापत्य करै-सो यह प्रायश्चित्त उसके लिये है कि जिसने इन चीजों के नित्येव जानते हुये इच्छा सहित बहुत काल पहिले खानेका अभ्यास रक्खाहो क्योंकि (योगीश्वर ने आचार कांड में १७० एकसौ सत्तरि मूल श्लोकसे इच्छा सहित एकवार ऐसी चीजें खानेपर तीनदिनका उपवास कहा है) तिससे यहाँ वृहत् यमका कहा प्राजापत्य बारह दिनवाला बहुत कालसे खाते रहिनेके अभ्यासहीपर ठीक है-इसी प्रकार मध्यम यमने जो यह कहा है कि-चौराई और कुम्भीसाग और ब्रश्चन प्रभव पेंउदी बेर आदि अनेक और नारी तथा नालिकेरी दोनो साग और लहसोरे और भूदरा जैसा रूपले वचन में कहिचुके और लालसहिंजना और खट्वाख्य नाम कोलशिखी की फली और कवक छयाक धरती के फल इतनों में किसी एकहीका भक्षणा करै सो प्राजापत्य व्रत आचरै-सो इस वचनकी व्यवस्था भी उसके लिये समझना जिसने जानि बूझिके इच्छा सहित बहुत कालसे खानेका अभ्यास किया हो-मिताक्षराकार कहते हैं कि इन्हीं दोनो वचन मे लिखी चीजों की इच्छा बिना एकही बार धोखासे जिसने खाया हो तिसके लिये सर्वादिन का व्रत करना प्रायश्चित्त है (शोभेयूपवसेदहः) यह मनुका वचन कई स्थतपर आच्युका है तिसके अनुसार यही चाहिये अधिक नहीं परन्तु जो कोई बिना जाने धोखा से दोतीनवार खाचुका हो तिसको उसी संख्यासे व्रत करने चाहिये और जिसने बिना जानेही अत्यन्त अभ्यास इनके खानेका किया हो तिसके लिये अगिले प्रचेता के वचनसे तप्त कच्छव्रत करवाना चाहिये क्योंकि उस वचन में स्वभावदुष्ट चीजों के खालेनेका चर्चा आवैगा वे स्वभावदुष्ट ऐसी चीज हैं जो ऊपर के दो वचनमें जुदे जुदे नासों से कहिचुके ॥०॥ अन्नादि भोजनकी वस्तु जो किसी अशुद्धकी छुआछाईआदि कारणांसे विराह जाय तिसके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त=यथाह प्रचेताः=स्वर्गदुष्ट्येव चान्क्रियादुष्टमक्ता-

ये सब दूध पीने वर्जित हैं और सब तरहके शुक्त कांजी सिरका आदि भी वर्जित हैं जो पानी सहित चीजें सूर्यके आतापमें धरने आदि प्रकारों से खड़ा जड़ होता है। परन्तु दही और दहीका तोड़ आदि भी शुक्तों में गिनती है सो वर्जित नहीं है इसी लिये कहतेहैं सर्व शुक्तोंमें केवल दही खानेके योग्यहै और दहीसे जो कुछ बनावा उत्पन्न हुआहो सोभी खानेके योग्य है यह सब कहिकर मनुने पीछे से यह कहा है कि ऐसी और भी चीजें जिनके नाम लिखने बाकी रहिगये तिनके और इनके भी खाइ लेने में एक दिन रातिका उपवास करै ॥ ० ॥ इनके सिवाय पैटीनसिका जो वचन है और शखका जो वचनहै उनदोनोंकी व्यवस्था ऐसे पुरुषपर आहूत करना कि जिसने जानि ब्रह्मि कर इच्छा सहित बहुत काल तक पीने का अभ्यास किया हो—यदाह पैटीनसिः—अविश्वरोष्टमानुपीक्षीर प्राशनेत्तत्तच्छुः पुनरुपनयनंच अनि र्देशाहगोमहिषी, क्षीरप्राशनेयद्वायमभोजनं सर्वांसांदिस्तनीनां क्षीरपानेप्यजावर्जमेत देव—शखोपि—क्षीरागिआन्यभक्ष्यागिआतद्विकाराप्राशनेवुधः सप्तारात्रंतंकृयात्प्रयत्नेन समाहितः (इतिथावक व्रतमुक्तं तदुभयभपिकारमतीक्ष्ण्यासुविययमित मिताक्षरा= अर्थात्—भेड गदही ऊँटिनी नारी इनके दूध पीलेनेमें तत्तच्छुव्रत करिके फिर य- जोपवीत कर्मसे उपनयन भी कराना चाहिये और दश दिन के भीतर की बिआनी गाय भैंसोंका दूध खाइलेनेमें, छे दिन तक निराहार व्रत करै और बकरी को छोड़ कर बाकी सब दो, यज्ञ, वालोंका दूध पीलेनेमें भी यही छे दिन का उपवास करै यह पैटीनसिने कहा—शखने भी ऐसा कहाहै कि—जे कोई दूध अभक्ष्य कहाते हैं तिनके पीलेने या उनकी बनी कोई चीज खाइ लेनेमें सातदिन व्रतकरै (यह यावक भोजन करिके सात दिनका व्रत शखने कहा) सो यह दोनों अथीश्वरों की व्यवस्था उनके लिये समझना जिन्होंने इच्छा सहित ऐसे दूधके पीनेका अभ्यास अनेकवार किया हो; यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ विद्याखानी और दो बच्चा देनेवाली आदि कई प्रकारकी गायोंके और भी कुछ दूध पीने नियिद हैं—तदप्याह शखः—सधिन्यमेध्या भसायाभुत्कापस्रव्रतचरेदित तदभ्यासवियय—सहृत्पानेतुविष्णुराह—गोयज्ञमहिषी वर्जसर्वांरिापयामिप्राश्य उपवसेत् अनिर्देशाहेतान्यपि सधिनियमसुस्यदिनीविवत्वा क्षीरचामेध्याभुजश्च—अर्थात्—सधिनो जो गाभिन होजाय—अमेध्याभसा जो विद्याआदि चाटतीहो इनके दूध खाइके परवधारेका व्रतकरै। यह पन्द्रह दिन का व्रत उसी की समझना जिसने बारम्बार ऐसा, दूध पीनेका अभ्यास कियाहो—क्योकि एकवार पी लेने मध्ये विष्णुने, एकही दिन उपवास बतायाहै कि—गाय बकरी भैंस इनको छोड़ि

इन्से उपरालू सब जीवोंके दूध खाय पीकर एक उपवास करै और गाय बकरो भैंस इनके भी दशदिनका वच्चा न होनेके भीतर दूध पीकर यही उपवास करै और गाम्भिन तथा दो वच्चा विजाने वाली तथा बिन वच्चेवाली तथा वच्चा होतेहुये भी जो गर्भ लेनेकी इच्छामे स्पन्द रूपी चिह्न प्रकट करती हो तथा जो विद्या आदि अपवित्र चीजें खातीहो इनके भी दूध पीकर यही उपवास करै ॥ ० ॥ कपिला गाय जो सुवर्णा के समान वर्णा वाली खुर सींगों सहित कहातीहै उसका दूध ब्राह्मणके सिवाय अन्य वर्णोंको पीने में नियेष है जैसा यह अप्रोक्त वचन है कि (सवियश्रवापितृत्तस्योवै प्रथःशूद्रोऽथवापुनः यःपिवेत्कपिलाकीरं नततोऽन्योस्त्युरायकव) अर्थात्—सत्कर्म करने वाला शूद्र और वैश्य अथवा ब्राह्मण जो कपिला गायका दूध पीवै तो उससे अधिक अपरायकता कोत्रे नहींहै—यद्यपि इसने प्रायश्चित्त कुछ नहीं दर्शाया गया तथापि अपराय कहिकर दोय दर्शाया गया तिससे प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि ब्राह्मणके सिवाय जिसने एकवार कपिलाका दूध पिआहो सो मनुके वचनसे एक दिन का उपवास करै—इसी प्रकार—और भी जो जो बातें ऐसी देख परै कि जिनके नामसे कुछ प्रायश्चित्त नहीं कहा परन्तु उनके खाने पीनेका दोय प्रकट कियाहो तिनके खाने पीनेपर यही एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त समझना (शोथेयूपवसे दहः) यही मनुका वचन है ॥ अब नीचे उन चीजों के खालेने का प्रायश्चित्त कहा जायगा जो अपने स्वभावसे दुष्ट कहाती हों ॥ इतिजातिदुष्टभक्षणापानप्रायश्चित्तानि

(अण्डवभावद्रुष्टमांसादिप्रायश्चित्तं)

जो जो मांस आदि अपने स्वभावसे दुष्ट कहाते हों तिनको इच्छा विना छोखा आदिसे एकही वार जिसने खाइ लिया हो तिसको भी ऊपर चर्चा किया एकही दिनका उपवास रूपी साधारण प्रायश्चित्त मनुके वचन से कर्तव्य है—परन्तु—जिस ने जानि बूझि इच्छा सहित एकवार भक्षणा कियाहो तिसके लिये आचार मर्यादा कांड में १७१ एकसौ इकहत्तरि मूलश्लोक से लेकर १७४ एकसौ चौहत्तरि में योगीश्वर आपही जो लिखिचुके है (सोपवासस्त्र्यर्हसिषेव) कि तीन दिन निराहार उपवास करिके काटे तहां देखो—और—जिसने इच्छा सहित अनेक वार खाया हो तिसके लिये (जश्धवाभांसमभक्ष्यंतुसप्तरात्रपयःपिवेदितिमनूक्तद्रव्यं) यह मनुका कहा प्रायश्चित्त विचारना कि अभक्ष्यमांस को खाइके सातरात्रिभर दूध पीके व्रत करै—परन्तु यह प्रायश्चित्त उसके लिये नहीं है जिसने ग्राम सुअर

आदिका अतिमलिनमांस खायाहो किन्तु उसकेलिये मनुने दूसरे वचनसे तप्तकृच्छ्र करना कहाहै=यथा=क्रव्याद्विसृज्य कुरो घ्राणां कृकुटानां च भक्षणां नरकाकखराद्यानां तप्तकृच्छ्रस्विशोधनं (इति मनुना जाति विशेषेण प्रायश्चित्त विशेषस्थीकृतत्वात्=अर्थात्-मनुने अतिमलिन मांसों के नामसे यह जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि-मांस भक्षी कव्याद प्रकृतिवाले अनेक पक्षी गिद्ध आदि होते हैं तिनका मांस यदि कोई मांसहारी पुरुष भी खालेवै या विष्टाखानेवाले वसती में रहनेवाले सुअरका मांस या ऊँटका मांस या मुर्गा आदि मतीन पक्षियोंके मांस खालेवै या मनुष्यका मांस या कौआकी जातिवाले पक्षियोंका मांस खाइलेवै या गवहा आदि मतीन पशुओंका मांस खाइलेवै तिसके लिये तप्त कृच्छ्रव्रत कराना प्रायश्चित्त है=इन्हीं उक्तगी-बोंके गृह मत् भक्षणा करजाने में भी यही प्रायश्चित्त चाहिये जो इनके मांस पर कहिचुके यहवात् अगिले वचन से देखी=यदाहृद्य हृद्य नः=दंराहैकशफानां तु काककृ-कटयोस्तथा क्रव्यादानां च सर्वेषामभक्ष्यापेक्षकीर्त्तिताः मांसमूत्रपुरीयाणां प्राशयगो मांसमेव च च मेषयुक्पीनां च तप्तकृच्छ्रस्विधीयते । उपोष्यवाहादायाहकूप्मांडैर्जुहु यात्तघृतम्=अर्थात्-सुअर और (सकशत) एकही खुरवाले घोडा गर्दभ आदि और काक तथा मुर्गा और क्रव्याद जो मांस के खवैया बहुधा पक्षी तथा चीपाये भी होतेहैं और भी जेकोई जीव अभक्ष्य लिखे गयेथे आचार मर्यादामे भी नाम उनके देखी तिन सबके मांस या गृह मत् खाइके या गोमांसको खाइके या कुत्ता गीदड बन्दर इनके भी मांस या गृह मत् खाइके तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त किया जाताहै अथवा चारदिन उपवास करिके कूप्मांड मंत्रों से घीका होम करै (इसमें छोटे बड दो प्रायश्चित्त विकल्प से कहे गये तिनके परस्पर यह व्यवस्था समझि लेनी कि जिसने इच्छा सहित सकहीवार भक्षणा किया तिसको तप्तकृच्छ्र कराना और जि-सने कइवारका अभ्यास किया तिसको चारह दिनका पराकव्रत कराइके कूप्मांड मंत्रोंसे घीका होम कराना चाहिये ॥ ० ॥ इसी व्यवस्था के समान प्रचेताने प्राय-श्चित्त कहाहै=यथा=अथ गालकाककृकुटपार्थतवारनविषकचायकव्यादखरोरुयास वाजिविड्वराहगोमानुषमांसभक्षणात्तप्तकृच्छ्रमादिशेत् सयामूत्रपुरीयभक्षणात्स्वित्तकृच्छ्र (इच्छकामकारवियय=अर्थात्-कुत्ता•सियार• कौआ•मुर्गा•पार्थत वनकासकपशु• बन्दर• चीता•चाय पक्षी जो लीलकट कहाता है•कव्याद जो मांसके खवैया पक्षी आदि होतेहैं•गवहा•ऊँट•हाथी•घोडा• ग्रामवासी सुअर• गाय•आदिमो•इनके मांस खाने में तप्तकृच्छ्र करायजाय• इनके मूत गूह खाइ लेनेमें अतिकृच्छ्र करायजाय

(यह प्रायश्चित्त कामनासे भक्षणा करने पर समभक्षना=और अगिलावचन कामना बिना धोखाआदि से भक्षणा करजाने मध्ये समभक्षना=यदाहोशनाः= नरमांसचमांसं चगोमांसंचास्त्रमेवच भुक्त्वापचनखानांमहासांतपनंचरेत्=अर्थात्-मनुष्य का मांस और कुत्ता और गाय और घोड़े और पांच नखवालोंके मांस भक्षणाकरिके महासा न्तपन व्रत आचरै ॥०॥ अंगिरा मुनिकी कही व्यवस्था में कुछ थोड़ासा भेदहै=यथा हांगिराः=बलाकाभासगृध्राखुरवानरसूकराःदृष्ट्वा चैयाममेध्यानिस्पृष्ट्वाचापोविशो धनम् इच्छयैयाममेध्यानिभक्षयित्वाद्विजातयः कुर्युःसांतपनंरुच्छं प्राजापत्यमनिच्छ या (एतद्विस्तोद्गारितविययः सांतपनशब्देनचाप्रमहासांतपनमुच्यते अकामतःप्रा जापत्यविधानादितिमिताक्षरा=अर्थात्-बलाका•भास•गोव•मसा•गदहा•वांदर•सुअर•इनके गूढ़ मृत मांस वसा चरवी आदि अपवित्र चीजें ओखेंसे देखिअथवा अंग से छुड़कर जलसे स्नानआदि करडारना प्रायश्चित्त है परन्तु इन्हीं चीजोंको इच्छा सहित खाइके द्विजाती लोग सांतपनरुच्छंप्रायश्चित्त करें और इच्छाबिना खाइके प्राजापत्य करें।मिताक्षराकार कहितेहैं कि इसमें जो इच्छाबिना पर प्राजापत्य कहा तिससे सांतपन शब्दका अर्थ महा सांतपन समभक्षना और यह प्रायश्चित्त भी उसके लिये समभक्षना जिसने खाइके उड़गार डकारभी करीही इसके कर्मअर्थ होतेहैं डकारिके पचाइजानाया बहुत खाइलेनेसे डकारका आना या डकारिके मुहसे उजली के द्वारा उसीवस्तुका निकसनाआदि बुद्धिमान आपही समझलें ॥०॥ उन्हीं अंगिराका दूसरावचन यहभीहै कि=नरकाकखराचानांजग्ध्वामासंगजस्यच स्यांमूत्रंपुरीयारिा द्विजचंद्रायगांचरेत्=अर्थात्-मनुष्य कोआ गदहा घोड़ा हाथी इनके मांस मृत गूढ़ द्विजाती खाइके चांद्रायगा करें=सेसाही रहव यमका वचन है कि=शुष्कमांसायने विप्रोव्रतंचंद्रायगांचरेत्=ब्राह्मण सूखामांस खाइलेनेमें चांद्रायगाकरें। ये दोनोंवचन काकहा चांद्रायगाभी उसकेलिये समभक्षना कि जिसने कामनासे कईवार खाया हो=एक और इन सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है सो देखो=यदाहशंखः=भुक्त्वाचोभयतोदतां स्तथाचैकशफानपि औष्ठं गन्धंतथाजग्ध्वायड्मासान्त्रतमाचरेदिति (तत्कामतोऽत्यं ताभ्यामविययमितिमिताक्षरा=अर्थात्-उभय तो दन्त जिन पशुओं के नीचे ऊपर दोहरे दाँत होतेहैं तिनका मांस या जिनके एकही खुर गोलहोता होय तिनकेमांस और ऊँट वा गाय बैल का मांस खाइ के छमाही भर व्रत आचरै (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह बड़ा प्रायश्चित्त उसपर आस्रड किया जा सकता है जिसने बहुत काल तक अत्यन्त अभ्यास किया हो=इससे भी बड़ा एक प्रायश्चित्तहै-तदुक्तस्त्र-

त्यन्तरे=जग्ध्वासांसंनराणां च विड्वराहं खरन्तथा रावाद्यकुंजरोद्याणां तस्यै पांचनखं-
 तथा कण्ठ्यादं कुक्कुटं यास्रं कुंज्यात्संवत्सरं व्रतः (रितितदप्युक्तानर्वाच्छन्नाभ्यासविययं
 मिति मित्ताक्षरा=अर्थात्-मनुष्यांकां, सांसखाय विष्टा खानेवाले सुभ्रका या गंधं
 का या शायका या घोडे का हाथीका ऊँटका या सभी उन जीवोंका जो पांच नख-
 वाले पंजेदार होतेहैं या कण्ठ्यादीका मांस खाय जो आपही मांस भक्षी जीव होतेहैं
 या मुर्गे और वस्तीके रहैया भी अनेक भाँति के होतेहैं तिनका मांस खाय सो एक
 पूरे वर्षभर व्रत साधै (यह सालभरेका प्रायश्चित्त उसके लिये व्रताना जिसने बहुत
 कालसे निरन्तर अत्यन्त अभ्यास करिके खाया हो) इस प्रकरणा से जहाँ जहाँ मत
 गृह कहा गया हो सो उन जीवोंकी वसा चरवी वीर्यरक्त मज्जा आदि सब चीजोंका
 नियेव प्रकट करनेवाला उपलक्षशा है इन चीजोंको खाजाने पर भी यही प्रायश्चित्त
 चाहिये=परन्तु=कानका मेल आदि छे भाँति के मेल होतेहैं तिनको भक्षणा करने में
 आधा प्रायश्चित्त कल्पित करिलेना चाहिये ॥०॥ बाल आदि खाइलेने मध्ये यद्
 विप्रान्मत ग्रन्थमें जुदा प्रायश्चित्त कहागयाहै=यथा=अनाविमहियमृगाणां आसनां-
 संभक्षणाकेशनखसुखिरप्राशनेबुद्धिपूर्वेधिराश्मज्जानादुपवासः=अर्थात्=वकरी भेड़ भेंस
 और वनके मृगजीव इनका कचा, मांस खाइलेने या वार, नख रक्त खाइलेने में जा-
 गते हुये तीनदिनका प्रायश्चित्त है बिना ज्ञाने खाइजानेपर एकही दिनका उपवास
 करै=इसी बात पर प्रचेता का यह वचन है कि=नखकेशमृत्तजीवभक्षणाऽहोरात्रम
 भोजनाच्छुद्धिः (रितितदप्युक्तान्तःसहस्रप्राशनविययंमिति मित्ताक्षरा=अर्थात्=नख
 वार महीका डेल इनको भक्षणा करिजाने में एकदिन रातिभर व्रत करने से शुद्धि
 मानी जातीहै (सो यह एकदिनका व्रत एकहीवार बिना ज्ञाने भक्षणा करजाने मध्ये
 समभक्षना=इनके सिवाय=जो स्मृत्यंतर यह वचन है कि=केशकीटनखप्राशयसत्स्य
 कंटकमेवच हेमतप्तघृतंपोच्चातक्षणादेवशुद्धतीति (तन्मुखमात्रप्रवेशविययंमिति
 मित्ताक्षरा=अर्थात्=किसी के बाल या वारीक कोरे मक्खी आदि या नख आदि
 कोई मेल या मछरी का काँटाही भक्षणा करिजाय सो तत्कालही सोने सहित घी
 को ऐसा गरमकरै जो सोनेके रंग सरीया तपिजाय तिसको पीकर शुद्ध होजाता है
 व्रतकी जह्दरत नहीं रही (यह प्रायश्चित्त उसकेलिये समभक्षना जिसने मुखमें प्रवेश
 होतेसार बाल या मक्खी आदिको उगल दिया हो किन्तु भीतर नहीं जाने दिया=
 कदाचित्त=भोजन करते समय परोसीहुई थालीपर मक्खी वैठिके जीवती उडिजाय
 अदा बाल घास फूस आदि सेसाथोडासा गिरपरै जोदेखके निकामिडारा जासकेऐसे

अन्नके दूयित हो जानेमध्ये प्रचेताक्तावचन है=यथा=अन्नभोजनकालेतुमच्छिकाकर्य दूयितस्य अन्तरस्पृशोदापस्तश्चान्नभस्मनास्पृशोदितिप्रासगिकोऽयश्लोक =अर्थात्- भोजन के समयपर जो अन्न मक्की या बालआदिसे दूयित होजाय तिसको अन्तर तत्कालही(अमृतभव)इत्यादिपवित्रमघोसे पदेहुप जलसेछीटे देकरचूल्हेकोशुद्धराखले करउसके चारोतर्फ छिस्कावै तिससे शुद्धहो जाताहै यह प्रसंग से प्रलोक यहां लिखा गया किन्तु इसकी चर्चाका ठिकाना यहां नहींया आगे कहीं आवैगा=कर्म कीट आदि जो अति सूक्ष्मतर करी भस्मकारे तिसके मध्ये हारोतने जुदी व्यवस्था कही है=यथा=कर्मिकोटपिपोलिकाजलौकपतगास्यप्राशने गोमूत्रगोमयाहारखिरावेरा विशुद्धतीति=अर्थात्-कर्म कीट या चेंरी या जनमें जो कीरेहोयै या किसी उडने पतगा टीडी चिडिया आदिके पांख हाड़ खाइ लेवै सो तीनदिन राति में गोमूत्र और गोवर के आहार से व्रतकरिके शुद्ध होताहै ॥ इस लिखे हुये कुल्ल डोलमें सक्षेपही से थोड़े पशुओके नाम थोड़े उडने वालोके नाम थोड़े जल जीवों के नाम लेकर बुरे मांस आदि पर प्रायश्चित्त कहे गये.ससारमें जीवोंके अनन्त भेदहै उन सभीके जुदे स्वरूप कहिकर नहीं लिखेजाते ग्रन्थ बहुतबड़ाहोकर पदना भी दुर्घट होजाय. ति- ससे इसथोडेही नमूनासे सबजीवोंकी व्यवस्था अपनी बुद्धियोंसे विचारतेरहिना ॥

अथोच्छिष्टाद्यशुचिप्राणिसस्पृश्याशुचिद्वयसंस्पृष्ट

स्यान्नपानदिर्भक्षणेच प्रायश्चित्तप्रकाशकोऽथ

परिच्छेदःसप्रतितम. ७०



इस परिच्छेद मे अशुद्ध प्राणी और अशुद्ध चीजों से छुये भिडे विगड़े अन्न पान खानेपीनेके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे-तहां प्रथम किसीका जुदाखाना या जुदा पानी पीना आदिके प्रायश्चित्त हैं-तिसके अनन्तर अशुचिद्रव्यों से छुये विगड़े का चर्चा है तहां पहिले मक्की बाल आदि अन्नमें गिर परने या विद्या मांस आदिसे छुइजाने वा चडाल रजस्रला आदि कृत्ता काग आदिसे छुइजाने के प्रायश्चित्त या जुदी पक्ति में खाने आदि के फिर मुर्दा गिरि के सड़े गले कूप तलैया आदि का पानी नहाने पीने के प्रायश्चित्त है ॥

(परोच्छिष्टान्न भोजन प्रायश्चित्तं)

अरोच्छिष्टभक्षणमनुराह=विडालकाकाखुच्छिद्यंजग्ध्वाञ्चनकुलस्यच केशकीटा
वपचचपिवेदत्राह्नीसुवर्चलास (अत्रकालविशेषानुपादानादेकरात्रं इदमकामतोद्गृह्य
व्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्-विल्ली• कौआ• मसा• कृत्ता• नेउरा• इनकी जूदी कोई
वस्तु और वह वस्तु कि जिसमें वार या कीरे आदि परेहों खाइ के ब्राह्मी सुवर्चला
नाम औयधीका कादा पीवै तब शुद्ध होय (इसमें यह नियम नहीं कहा कितने दिन
पीवै तिससे सकही दिनका पीना समझा गया• यह प्रायश्चित्त उसीपर आरू उहोगा
जिसने बिना जाने भक्षणा क्रियाहो=और=जिसने जानि वृत्तिकामनासे भक्षणा क्रिया
तिसके लिये अयोक्तप्रायश्चित्त है=यदाह विप्याः=पसिञ्चापदजग्ध्वाञ्चनस्य
भूयसः संस्काररहितस्यापिभोजनेकच्छपादकष (इतितत्कामकारविययमिति मि-
ताक्षरा=अर्थात्-पक्षी वा कृत्ते आदिके वार वार जुदारे रस या अन्नको शुद्धि रूपी
संस्कार करने बिना खाइलेनेमें कच्छका चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहि प्रै जो तीन
दिनमें होगा (इसमें जो अन्नकी शुद्धिरूप संस्कार न होना द्योय कहा गया तिसके
होनेका प्रकार देखो आचार सड्यादा बाले काण्डमें १६८ एकसौ अट्टासो मल
श्लोकसे)किन्तु(संस्कारप्रचदेवद्वीरायामित्यादिनां द्रव्यशुद्धिप्रकरणोक्तोद्गृह्यइति
मिताक्षरा)=जिसने बिना इच्छाके धोखा आदिसे वारम्बार ऐसा दूखित अन्नखाने
का अभ्यास किया हो तिसके लिये अयोक्त प्रायश्चित्त देखना=यदाह शातापतः=
शकाकाद्यवलीहशूद्रोच्छेयसामोजनेत्वत्कच्छ (मितितदकामतोऽभ्यासविययमिति
मिताक्षरा=अर्थात्-कृत्ता कौआ आदि जीवोंकी चाटी जुदारी वस्तु या शूद्रकी जूदी
होय तिसकी भोजन करनेवाला अतिकच्छ करै=इच्छा सहित वारम्बारक अभ्यास
पर इससे भी बड़ा प्रायश्चित्त आगे देखो=यदाह शखः=शुनासुच्छिद्यकभुक्तासासमे
कंत्रतीभवेद काकीच्छिद्यं गवाऽऽघातंभुक्तापसत्रतीभवेद (इतियावकंत्रतमुक्ततत्काम
तोऽभ्यासविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्-कृत्ता का जूदा खाइ के एक महीना भर
गोमूत्रका रँवा जौका भात खातेहुये व्रतकरै और कौवैका जूदा तथा गायका मूधा
चाटा अन्न खाइके एकपाख भर जीका यावक भोजन करत हुये व्रत करै तब शुद्ध
होय ॥ ० ॥ ब्राह्मणका जूदा ब्राह्मण खाय तिसका भी प्रायश्चित्त वृद्ध विप्या ने
कहाहै=थया=ब्राह्मणःशूद्रोच्छिद्यग्न सत्ररात्रपचगव्यपिवेत् वैश्वोच्छिद्यग्ननेपच
रात्रं राजन्योच्छिद्यग्ननेत्रिरात्रं ब्राह्मणोच्छिद्यग्ननेत्वेकाह मिति (तत्कामकार

विययमिति मिताक्षरा=अर्थात्-ब्राह्मण जो शूद्र का जूटा कुछ खाय तो वह सात दिन पंचगव्य पीकर व्रतकर्त्ता जो वैश्यका जूटा कुछ खाय तो पांचदिन पंचगव्य पी के रहे जो क्षत्रीका जूटा कुछ खाय तो तीनदिन पंचगव्य पीवे जो ब्राह्मण का जूटा कुछ खाय तो एकदिन पंचगव्य पीवे (ये प्रायश्चित्त उसके लिये विचारना जिसने इच्छा सहित इनका जूटा खायाहो=और=जिसने इच्छा सहित अनेकवार का अभ्यास कियाहो तिसके लिये अग्रेक प्रायश्चित्त विचारना=यदाह मनुः=भुत्कास इवाहारात्प्राजापत्येच्छति भूमजासहभुत्कान्ततृणच्छे राशुच्छति वैश्येनसहभुत्कान्तमतिकच्छे राशुच्छति शूद्रेणसहभुत्कान्तं चान्द्रायणानयाचरेत्=अर्थात्-ब्राह्मण किसी ब्राह्मणकेसाथ एक थालीमें भोजन करिके प्राजापत्यसे विशुद्ध होताहै क्षत्री के साथमें कुछ खाइके तृणकच्छसे पवित्र होताहै वैश्यके साथमें कुछ खाकर अति कच्छसे पवित्र होताहै शूद्रके साथमें कुछ खाइके चान्द्रायण एक मास भर आचरे तब शुद्धहोय (यैसवइच्छासे चाहिकर वारम्बार खाइलेनेमध्ये प्रायश्चित्तहै=परंतु= जिसने इच्छा के बिना एक बारही खायाहो तिसके लिये अग्रेक प्रायश्चित्त है= यदाहशंखः=ब्राह्मणोच्छ्रियशनेसहाव्याहृतिभिरभिसंन्यापः पिवेत्सवियोच्छ्रियशने ब्राह्मणसविकीनयइहसोरेगावर्त्तयेत् विशोच्छ्रियशनेविराशोपोयितोब्राह्मणोसुवर्च लापिषेत् शूद्रोच्छ्रियभोजनेयडावमभोजनं(इतितदकामविययं=अर्थात्-ब्राह्मण ब्राह्मणका जूटा खाइकर सहाव्याहृतियों से जलकी पीदकर पीलेनेसेही शुद्धहोजाता है क्षत्रीका जूटा खाइलेनेमें ब्राह्मी औषधीका रस मिलाइकर पकाये दूधको पीकर तीन दिन व्रत करे वैश्यका जूटा खाइलेने में तीन रात्रि व्रत करिके ब्राह्मी सुवर्चला औषधीका काढा पीवे शूद्रका जूटा खाइलेनेमें छे दिनतक निराहार व्रतकरे=और जिसने इच्छाकेबिनाकईबारजूटाखायाहो तिसकेलियेइहीप्रायश्चित्तकोदूरातिष्ठना आदि बडाकर करवाना॥०॥अपवादविशेषः-जूटाखाना जो नियेवकियागया सोभी पिता आदिसे उपराल में समझना क्योंकि (पितृर्ज्यैर्यस्यचधातुरुच्छ्रियभोज्यमित्यापस्तम्बः) आपस्तम्बकी वचन है कि पिता और जेठे भाइके जूटा खानेमें दोय नहीं=और जो=उहकव्यासका यह वचन है कि=मातावाभगिनोवापिभायावाऽन्याश्चयोयितः नताभिःसहभोक्तव्यंभुत्काचान्द्रायणाचरेत् (तत्सहभोजनविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्-माता बहिजन भार्या या और कोई स्त्रियां जो रिश्तेमें होती हों तिन में किसीके भी साथ मिलिके न भोजन करे कदाचित् करि बैठा हो तिसको चान्द्रायण करना चाहिये (इसके ऊपर मिताक्षरा की यह पांक्ति जो धरी गई कि यह

नियेव एकसाथ किन्तु एक वासनमें मिलिके खानेका क्रिया सो यह कथन यद्यपि ठीक है) परन्तु इसका ध्वन्यर्थ ऐसा मत समझ लेना कि स्त्रियोंका जुटा लेकर जुटा बैठिके खानेसे कुछ दोष न होगा इसपर बहुत बड़ा शास्त्रार्थ खड़ा होता है जिसका लिखना यहां जरूरी और स्त्रीकार नहीं है • यद्यपि एक माता केवल स्वकीय जननी का जुटा खानेमें कुछ दोष नहीं प्रतीत होता है तथापि उसमें यह निबंध है कि जब तक यज्ञोपवीत लप्री संस्कार नहुआ ही तभी तक दोष नहीं तिससे आगे उसमें भी दोष है—वयोकि=सर्व सामान्य स्त्रीमात्रका जुटा या साथ मिलि खाने मध्ये आपस्तम्ब ने प्रायश्चित्त भी दर्शाया है—यथा=शूद्रोच्छिष्टभोजनेसपरावस भोजनस्त्रीणांचेति=अर्थात्—शूद्र और स्त्रीमात्र का जुटा खाइ लेनेमें सातदिन का उपवास करै=इसके उपरालू=एक आंगिराका यह वचन है कि=ब्राह्मणयामहयोऽश्रीयादुच्छिष्टंवाकदावन तत्रदोयंतमन्यन्ते सर्वसवमनीयिषाः इति (तद्विवाहविययमापद्वियथर्वेतिमिताक्षरा=अर्थात्—जो कोई ब्राह्मण अपनी विवाहिता ब्राह्मणीके साथ बैठि कभी कुछखाय तो इसमें दोष नहीं है सबही मनीयी पुरुष ऐसा मानतेहैं (सो यह केवल विवाहकाल का चर्चा है कि उसमें लहकौरि आदि खवाई जाती प्रसिद्ध है अथवा कभी आपत्कालमें साथ खाना परै तिसका भी यह चर्चा जानो ऐसा मिताक्षराकार ने कहा) ब्राह्मणी कहिनेसे यह तात्पर्य ठहिरा कि जिसने अपनेसे नीचे वर्गाकी कन्या साथ विवाह किया हो तिसकी विवाहके समयभी भार्याके साथ न खाना चाहिये किंतु खाइ लेनेसे प्रायश्चित्त करना होगा ॥ ० ॥ अन्त्यजात्पुच्छिष्टभोजनेतु—अन्त्य जाती लोगों का जुटा खाइ लेनेमध्ये बड़े प्रायश्चित्त हैं—यथाह आपस्तम्बः=अत्यानां भुक्तयेयन्तु भक्षयित्वाह्विजातयः चांद्रकृच्छ्रन्तदर्थंचत्रहसशविशांविधिः (अत्रचान्द्रं चांद्रायणां=अर्थात्—अन्त्य जाते जो चण्डाल और शूद्रों के बीचवाले नीचे होते हैं तिनका जुटा खाइ के द्विजाती लोग इस क्रम से प्रायश्चित्त करै कि ब्राह्मण को चांद्रायणां और सबी को कृच्छ्र और वैश्यकी आवा कृच्छ्र करना चाहिये ॥ ० ॥ अन्त्यजातियों से भी अधिक मलीन जो साक्षात् चण्डाल होते और अन्त्यावसायी नाम से कहाते हैं तिनका जुटा खाइलेने में ऊपरलों से भी अधिक बड़े प्रायश्चित्त हैं=तदाहंगिराः=चाण्डालपतितदीनादुच्छिष्टान्नस्यभोजने चान्द्रायणांचरेद्विप्रःक्षत्रःसांतपनंचरेत् यथावंचिरावंचवर्षायोरनुपूर्वशः (सान्तपनसत्रसदासांतपनसिति मिताक्षरा=अर्थात्—चाण्डाल और पतित ब्रह्महत्यारे आदि का जुटा अन्न खाइ लेनेमें ब्राह्मणही सो चान्द्रायणां करै सबी महाशान्तपन करै वैश्य द्विदिनका कृच्छ्र

करै शूद्र तीन दिन उपवास करै=आपदित्तविशेषः=आपत्काल में केवल ब्राह्मणाका जुदा खानेके निमित्त पर जुदा सक नियम है=तदाहपराशरः=आपत्कालेतुविप्रस्य भुक्तशूद्रगृहेयदि मनस्तापेनशुद्धे तत्रिपदांचशतंजपेत=अर्थात्-अन्नका अकाल आदि किसी कठिन कालमें निज प्राणोंकी रक्षा हेतुसे केवल ब्राह्मणा का जुदा खाना परा हो या शूद्र के घरमें वैदिकके अपने हाथका बनाया अन्न खाने का नियम है सो खाना पराहो तिसका दोय केवल मनमें बहुत पछितावा करने से ही सिद्धिजाता है परन्तु जो साक्षरहोय सो गायत्रीका सैकरा जपिकर शुद्ध होताहै (यह सक सैकरा सक दिनकेही दोय पर समझना किन्तु अनेक दिनके मध्ये इसी हिसाव से=परन्तु आपत्कालके बिना इससे जुदे नियमहैं सो आगे देखी॥ ० ॥ पीतशोपजलपानेतु-
 वृहत् शाता तपः=पीतशयंचयत्किंचिद्वाजनेमुखानिःसृतस्य अमोक्षयंतद्विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणाचरेत्तदिति(तदभ्यासविययंज्ञं यंनिमित्तस्यलघूत्वादितिमिताक्षरा=अर्थात्- पीकर बचाहुआ जल पाथमें जो ऊँकरहा या मुख से निकसाहुआ सो सब अमोक्ष्य में गिनतीहै तिसको खाकर चान्द्रायणा करै यह बड़ै शातातपने कहा (इसपरमिताक्षराकार कहितेहैं कि यह दोय छोटाहै तिससे अनेक बार ऐसा जल पीनेसे दोय की बड़ाई समझीजानेमें यह बड़ा प्रायश्चित्त चाहिये नहीं तो सकहीवार पीने पर छोटा प्रायश्चित्त ढंडना सो आगे देखी=यथा=पीतोच्छिद्यन्तुपानीयं पीत्वातुब्राह्मणाःकिंचिद् विरातंतुव्रतंक्रुयाद्वासहस्तेनवापुनः(एतच्चबुद्धिपूर्वविययंअकामतस्त्वर्द्धं कल्प्यमितिमिताक्षरा=अर्थात्-पीकर जुदे हुये पानीको कहीं कोई ब्राह्मणा पीलेवे सो तीन दिन व्रत करै और वामे हाथसे भी पीकर यही तीन दिनका व्रत करै (इस पर भी मिताक्षराकार कहितेहैं कि यहतीनदिनका प्रायश्चित्त भी उसको चाहिये जिसने जानते हुये पिआहो किन्तु बिना जाने पीलेने पर इससे भी आधा सिर्फ डेड दिनका व्रत चाहिये=ध्यान करै=यद्यपि मिताक्षराकार किहू चुके सो सब ठीकहै परन्तु न्यायका स्वरूप इसमें यहीहै कि पहिले वचन में शातातप ने महीने भरका चान्द्रायणा कहा सो भी अनेक बार पीने पर नहीं किन्तु एकही बार पीलेने मध्ये कहा लेकिन अन्य वर्गोंका जुदा पीलेनेमध्ये कहा क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे यही उसका तात्पर्य है और इस दूसरे वचन में तीन दिन का प्रायश्चित्त केवल अपना जुदा जो वचा पहिला धराहो तिसके पीलेने मध्ये कहाहै कि जैसा उसके साथही अपने वामे हाथसे पीलेने पर वही तीन दिनका प्रायश्चित्त कहा- इसमें कोई तर्क उठावै कि अपना जुदा पीने में क्या दोय है जो तीन दिन प्रायश्चित्त

करै तिसका उत्तर भी यहीहै कि अपने वामे हाथमें क्या दीयहै जिसके द्वारा शुद्ध जल पीकर भी प्रायश्चित्त चाहिये • किन्तु धर्मशास्त्रका स्वल्प यहाँ यही है कि वचनसे प्रवृत्ति और वचनहीसे निवृत्ति मानीजाय ॥ ० ॥ दीपोच्छ्रयादितैलेतु-दीवेका जला जुदा तैलखाइलेने मध्ये यद्विंशन्मत्प्रन्यमें जुदाप्रायश्चित्तहै=यथा=दीपोच्छ्रयन्त्यतैलंरात्रोरथ्याद्गतं यत्रअभ्यंगाच्चैव्याच्छ्रयंभूक्तानक्तेनशुद्यतीति=अर्थात्-तेल जो दीपक जलाकर जुदा बचा या अंधेरी राति रास्ते गली आदि की धरती पर गिराहुआ सुतिके खालियाहो ऐसा बिना जला भी या देहमें लगाते जो बचियाहो तिसको भी खालेनेमें रात्रि व्रत करनेसे विशुद्ध होताहै ॥ यहाँ रात्रि व्रत (नक्तव्रत) नामसे समझना कि जिसकी जुदा एक विधि होतीहै • यथा (हविष्यभोजनंस्नानंस्तयमाहारलाघवमअग्निकार्यमधःशय्यांनक्तभोजीयडा धरेत्)अर्थात्-दिनमें कुछ न खाइके चार घटी रातिगये पर थोडा भोजन करै सो नक्तव्रतकहाता है तिसके साथ छे बातों की साधना है कि दिनके सिवाय सायंकाल भी स्नान करै उस दिन असत्य कुछ न बोलै पेटभर न खाय अग्निमें खीरि पूरीका होमकरै वही आप खांय धरती पर सोवै तब यह नक्तव्रत कहाताहै (निशानक्तनुविज्ञेयंयामाहं प्रथमेसदा) इस वचनसे चार घंटी राति गये की भीतर अग्निका होम और भोजन करना संसिद्ध है ॥ ० ॥ यहाँ तक अशुचि प्रारागी करके छुई विगाड़ी वस्तु खाने के प्रायश्चित्त कहे गये-अब नीचे अशुचि वस्तुमें भिड़ी छुई अन्नादिक वस्तु खाने के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे ॥ इत्यशुचिप्रार्णिसंस्पृष्टभक्षणाप्रायश्चित्तानि ॥

(अथाशुचिद्रव्यसंस्पृष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

५६६

अनाहसंवर्त्तः=केशकीटोपपन्नन्नुनीलीलाक्षीयघातनमस्नाद्यवस्थियचर्मसंस्पृष्टभूक्त्वा तूपवसेदहः=तथाशातातपोपि=केशकीटावपन्न रुदिरसांसास्पृश्यस्पृष्टभूताहार्वांसित पतत्रधवलीढश्मूकरगवाघ्रातशुष्कपर्युयितहृथापक्वैवान्नहविषांभोजनेतूपवासः पंच गव्याश्वनंचेति (सतचौभयभोपअकासविययसितिमिताक्षरा=अर्थात्-वाल या कीड़े जिसमें परेहुये ऐसा अन्न या नील वा लाखसे दूयित अन्न या नस नाडो डाड चमड़ा इनसे भिड़ा विगाड़ा छुआ अन्न खाइके एक दिन उपवास करै=तैसा शातातप ने भी कहाहै कि=वाल कीड़ों से मिला अन्न वा लोह सांस आदि न छूने शीश्र चीजों से छुआ विगाड़ा अन्न वा गर्भकी इत्या करनेवाला शू राडा कहाता है तिसकी आंखों से देखाहुआ अन्न वा पतंगी पक्षीओंका जुदारा हुआ अन्न वा कृता स्रगर गायोंका

संघाहुआ अन्न वा अनेक दिनका बना धरा सखा या कई दिनका बासी सडा हुआ अन्न या वृथापक जो देव पितर अभ्यागतको निवेदन किये बिना बनाकर धराही या देवताके निमित्त भेट देनेकी संकल्प किया अन्न धराही या देवताका चढा या हविय किसी पूजाके निमित्तकी सामग्री धरोही इनमें किसी एकही के खालेने में एक दिनका उपवास प्रायश्चित्तहै दूसरे दिन पचगव्य का आहार करना चाहिये (ये दोनों संवर्त्त शातातपकी व्यवस्था केवल उसके ऊपर आखडहैं कि जिसने इच्छाके बिना ऐसा अन्न खाया हो=और=जिसने जानि वृत्ति इच्छा के साथ ऐसा खायाहो तिसकोलिये अग्रीक्त प्रायश्चित्तहै=यदाहविष्णुः=मृष्टारिकुसुमादीश्चफल कन्देक्षुसलकान् विरामुवदूयितात्प्राण्यकृच्छ्रपादंसमाचरेत् सच्चक्रयेऽर्धमेवस्यात्कृच्छ्रस्तवशुचिभोजने (अल्पसंसर्गपादोमहासंसर्गोऽर्धसाक्षात्शुचिलिप्तवस्तुभक्षोपूरा कृच्छ्रकुर्यादितिव्यवस्थायांविधात्वविज्ञेयं धर्मशास्त्रीकृतत्रतेयुपलिंगोपकृच्छ्रशब्द=अर्थात्=कोई थोड़े मासे या जल या खाने के फल आदि या फल कन्द गांढा मूली आदि कोई चीज बिया या मूत्रसे थोड़ी दूयितहुईहो तिसको खाइकर चौथाई कृच्छ्रसाधै तब शुद्धहोय एवं जो अर्त्त समीपसे दूयित हुईहो तिसको खाकर आधा कृच्छ्र साधै एवं जो चीज गूह मूत्रसे साक्षात्कार लिपिगईहो तिसको खाकर पूरंपूर कृच्छ्र करै तब शुद्ध होय (इन तीनोंका दृष्टान्त ऐसे समझो कि बेरी के टुक तले हगो मती धरतीके पास गिरे बेर कोई ले आवै तो यह थोड़े दूयित कहावेंगे परन्तु जो हगो मती धरती पर गिरे बेरले आवै तो यह अर्त्त समीप से दूयितहुये कहावेंगे इसके सिवाय यदि कोई ऐसे बेरों को चुनि कर खाइ जाय जो साक्षात् हगे हुये बियामें भरिपरैहों तो यह अशुचि भोजन कहा जाकर पूरा कृच्छ्र करनेसे विशुद्धहोगा इसीतरह सब चीजोंपर तीन भेद समझि लेना ॥ ० ॥ अगिले व्यासजी के वचन में जो संसर्ग धरान करेगे तिसमें केवल अशुचि प्राणीके छुड़जाने मात्र का चर्चा या अशुचिद्रव्यसे छुड़जाने मात्रका चर्चाहै लिपिजानेका नहीं=यथाहव्यासः= संसर्गदुष्टंयच्चान्नक्रियादुष्टंचकामतः भुक्त्वास्वभावदुष्टञ्चतप्तकृच्छ्रं समाचरेत्(सतचासं स्पृष्टामेध्यादि रसोपलब्धोवेदितव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्=जो अन्न संसर्ग (किसी मलीन सूखी वस्तुकी छुआछाई मात्र) से दूयित हुआ यहा खोटी क्रिया से अर्थात् वामे हाथसे परोसने आदि नियिद्ध प्रकारसे अथवा अपने स्वभावही से दूयित हुआ हो जैसे बासी होकर बुसिजाना आदि ऐसे अन्नको खानेवाला तप्तकृच्छ्रसाधै (इस में संसर्गका चर्चा किया सो उस भाँति का कीरा संसर्ग समझना कि जिसमें किसी

चीजका रस न लगाने पावै उसीके भक्षणा का यह प्रायश्चित्त है ॥ ० ॥ रजस्वला चांडालादिस्पृशेतु—रजस्वला आदि का छुआ अन्न खाने का प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शंखः=अग्नेय पतित चांडाल पुल्कस रजस्वला अवधुत कुर्या कृष्टि कुनखि संस्पृष्टानिभुक्त्वाहच्छ्रं चरेत् (एतत्कामकारविययं अकामतोऽर्धं कुर्यादिति मिताक्षरा=अर्थात्—अग्नेय विपदा रक्त मांस आदि पतित चांडाल पुल्कस रजस्वला अवधुत संन्यासी आदि कुर्या जिसका हाथ विकृत विगाडा हो कोडो कुनखी जिसके नख विगाडे हों इनके छुये अन्न खाइके छच्छ्रत आचरे (यह भी इच्छाके साथ खाइजाने पर समभन्ना किन्तु इच्छा विना खाने में आवा छच्छ्र कराना यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ० ॥ अयोक्त विपदाके वचन वाला प्रायश्चित्त अशक्तके निमित्त पर मिताक्षराकार ब्रताते हैं=यदाहविपदाः=भुक्त्वाऽस्पृश्यैस्तथाऽर्शोचि के शर्कीदेश्चदृश्यित्तत् कुशोद्वरविल्वार्चैःपनसंयजपयकैः शंखपुष्पीसुवर्चादिक्वाश्रयीत्वा विशुद्ध्यतीति (तदशक्तविययंरजकादि स्पर्शविययंवा इति मिताक्षरा=अर्थात्—नछूने योग्य जीवों या मनुष्योंका छुआ अन्न तथा सूतकी लौगांका छुआ अन्न खालेवै या नार कीडोंसे दूयित अन्न खाय या कुर्या गूलर बेत आदिके पत्तोंपर धरा हुआ या कटहर कमल इनके पत्तोंपर धराहुया खाय सो शंखपुष्पी सुवर्चा आदि अश्रयियों का हाथ पीकर शुद्ध होजाता है (यह छोटा प्रायश्चित्त अशक्त पुरुषके निमित्तपर या रजक आदिका स्पर्श होजाने मध्ये समभन्ना किन्तु अति मलान के स्पर्श मध्ये नहीं यह मिताक्षराकारोंने कहा ॥ ० ॥ शूद्रादिस्पृशेतु—शूद्रआदिसे छुआ विगाडा अन्न खानेके प्रायश्चित्त जुदेहै=तदाहहारीतः=शूद्रेषूपहंतभोज्यंकीटैर्वाऽग्नेयसेविभिःभुंजानेयुतुवायवदद्याच्छूद्रउपस्पृशेत अनर्हत्वात्संपंक्तीभुंजानेयुवायवोत्थायोच्छ्रयं प्रयच्छेदाचामेद्वाकृत्सिस्त्वावायव्राचंदयुस्तव प्रायश्चित्तमहोरात्रम्=अर्थात्—भोजन करते हुये खाने योग्य अन्न जो शूद्रके छूनेसे यद्वा विसा आदि मलीन स्थानमें रहने वाले कीडोंसे अशुद्ध होजाय अथवा भोजन करते पुरुष को शूद्र अपने हाथ से जत अन्न आदि कुछ देवै किन्तु परोसिदेवै या भोजन करनेवाले कीडी छुइ लेवै यद्वा उजदपनकी अयोग्यतासे चोकेकी पंक्तिहीमें घुसिजाय अथवा एकपांतिमें बैठे भोजन करते अनेक ब्राह्मणोंमें कोई एक उठिकर अपनी पत्तल आदि जूठन पांतिके बाहर लेजाय या उसी जघे बैठा रहिकर पांतिसे बाहर वाले किसी जूठन के खवैया को समर्पण करदेवै अथवा ऐसा न करनेपरभी केवल आचमन करनेलगे तो उस पुरुष को पांतिजूटी करदेनेके शोयमें सकादिन रातिभर उयवाम प्रायश्चित्त करना चाहिये

और उस जूठी पंक्तिके मनुष्य जो ऐसा होजाने बादि खातेरहें तिनको भी व्रतकरना चाहिये और उसकोभी कि जिसको गूदने छुड़लिया या कुछ परोसि दियाया इनके सिवाय जहां जिस पांति में परोसने वाले किसी को निन्दा करते हुये परोसैं तो उस पांतिका अन्नखानेवाले और परोसनेवाले सभीको एक उपवास प्रायश्चित्त करना चाहिये=उच्छिष्टायांपंक्तौतु-जूठी पंक्तिमें भोजन करने मध्ये क्रतुस्मृतिमें विशेष्यता कहीगई है=यथा=यस्तुभुक्तं द्विजःपंत्यामुच्छिष्टायांकदाचन अहोराशेषितोभूत्वापंचगव्येनशुद्धतीतिकतुस्मरत्ताम=अर्थात्-जो कोई द्विज होकर कदाचित् जूठी पंक्तिमें (कि जिसके लक्षणा सब तरह ऊपर कहिचुके) भोजन करै सो एकदिनराति भर उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्धहोताहै=जूठीपंक्तिमें भोजनकरने पर पराशर ने भी विशेष्यता कही है=यथा=सकपत्युपविष्टानां विप्राणांसहभोजने यद्येकोपित्यजेत्पावशेषमन्तंनभोजयेत् सोहाङ्गं जीतयस्तत्रपंत्यामुच्छिष्टभोजनः प्रायश्चित्तंचरेद्विप्रःकच्छं सांतपनंतदा=अर्थात्-एक पांतिमें अनेकब्राह्मणांके सहभोजन में बैठे हुयोंमें से यदि कोई एक भी अपने आगेका पाव त्यागि देवै किन्तु बचे अन्न को न भोजै तिससे पांति जूठी होजातीहै तहां यदि कोई अपनी सुखतासे जूठाभोजन करै सो ब्राह्मण कच्छसान्तपनका प्रायश्चित्त आचरे तत्र शुद्धहोय=और=मंत्रविधि रहितायन्नभोजनेतु-परोसी हुई धाली पर जलके साथ मन्त्र विधि किये विना अन्न खालेने या वाम हाथसे परोसि अन्नखाइलेने आदि कुछ बातों का प्रायश्चित्त यद्विश्रमत्के ग्रन्थकर्ताने कहाहै=यथा=समुत्थितस्तुयोभुंक्ते भुक्तभाजने वामनिर्मुक्तं कंभुक्ते योभुंक्ते २ संवभोजनस एववैवस्वतःप्राहभुक्त्वासांतपनचरेत्=अर्थात्-खडा होके यदि भोजन करै या जो कोई भोजन किये जुटे पायमें भोजनकरै या वामेहाथसे दिये हुये अन्नको भोजन करै या संवविधि किये विना भोजन करै तिनके लिये वैवस्वत मनु ऐसा कहिते हैं कि सांतपन व्रत आचरै ॥ ० ॥ मुर्दा आदि बूड़े कूप आदि का जल पीने मध्ये जुदे प्रायश्चित्त हैं=तदाह विष्णाः=मृतपंचनखात्कूपदत्तयोपहृतादौ दकंपीत्वात्राह्मणस्यैहमुपवसेत् इयंहराजन्थः सकाह्यैशयःगुट्टोनेक्तं सर्वेषांतपवगव्यंपवैरिति (अत्यंतोपहृताद्वैतिसुत्रपुरीयादिभिर्वैत्यभिप्रेतं=अर्थात्-पांच नखवाले प्राणियोंमें कोई सरा जीव जिस कूआमें गिरपराहो या जिस कूआमें गूड़ मूत्र आदि अति मलीन कोई चीज गिरीहो तिसका जलपीकर ब्राह्मण तीनदिन क्षया से दिन वैश्य एक दिन उपवास करै और गूदको नक्तव्रत चाहिये जिसमें दिनभर उपवासकरिके रातिमें आवा पेट भोजन किया जाताहै० सभी लोग अपना अपना व्रत करने के

वादि पंचगव्य पीवै तव शुद्धहोयै=जहां=किसी कूपमें गिराहुआ मुर्दा सुख पसारने
 आदि हेतुसे पानीपीकर गलघुलितजाय तिसका जलपीने मध्ये अयोक्त प्रायश्चित्तहै=
 यथा हारीतः=क्लिन्नभिन्नंश्वन्तीयेतत्रस्थंयदितत्पिवेत शुद्धयैचान्द्रायरांकुर्यात्तत्रक-
 च्छूमयापिवायदिकंप्रचत्तःस्नायात्प्रसादेनद्विजोत्तमः जपस्त्रियवरासनायाश्चहोरात्रे
 राशुद्धयतीति (इदंचान्द्रायरांकांमत्तोमानुयश्वोपहतकूपजलपानविययमितिमिता-
 क्षरा=अथात्र-जिस जलमें मुर्दा परा रहिनेसे फूलिकर गलै या फूटिजाय तिस जल
 को यदि पीवै तो इस दौघकी शुद्धिकेलिये चान्द्रायरा करै अथवा तत्र कच्छ करै
 और जो कोई ब्राह्मण जलकी पीये बिना देवल स्नान मात्र अपनी सुखता से करै
 सो अच्छे जलमें जाकर बिकाल स्नान करिके गायत्री जप करतेहुये एक दिनरात्रि
 भर व्रत करके शुद्ध होताहै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह महीनेभरका चांद्रा-
 यरा उस जलके पीने पर समझना जिसमें मनुष्यका मुर्दा गिरके सड़ाहो और पीने
 वाले ने जानि ब्रह्मि इच्छा सहित पिआ हो. तिससे तप्त कच्छ वाला प्रायश्चित्त
 मनुष्यसे उपरालू किसी अन्य जीवके सुदेवाला जल पीने पर आरूढ हुआ=मिता-
 क्षराकार फिर कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त इच्छासहित जल पीनेपर ठहिरदुका.
 तिससे इच्छा बिना पीने वाले पर छे दिनका प्रायश्चित्त चाहिये क्योंकि अगिले
 वचन के अनुसार व्यवस्था मानीजासक्ती है=तदाह देवलः=क्लिन्नभिन्नंश्वन्तीयेतत्रकूप-
 पस्थंयदिजायते पयःपिवेतत्रिरात्रेणामानुयेद्विश्रांसृत्तम=अथात्र-कूपमें परा हुआ
 मरा जीव यदि भोगि फूलिके फूटि जाय तो उस जलको बिना जाने पी लेनेवाला
 तीन दिन दूध पीकर व्रत करै परन्तु जो मनुष्य का मुर्दा गिराहो तो इससे दूना छे
 दिनका व्रत चाहिये ॥ ० ॥ चाण्डालादिकृतकूपजलपानेतु-चंडाल आदि अति
 मलीनों के कूप या पायका जल पीने मध्ये आपस्तंबका कहा प्रायश्चित्तहै=यथा=
 चांडालकूपभांडस्थंनरःकामाञ्जलंपिवेत प्रायश्चित्तकथंयत्रवर्षावर्षाविनिर्दिशेत च
 रेत्सान्तर्पर्वप्रःप्राजापत्यधूमिपः तदहंचचरेद्वैश्यःशूद्रेपादन्विनिर्दिशेत=अथात्र-
 चाराडालके कूपका पानी या उसके वासनमें धरा पानी कोई मनुष्य इच्छा सहित
 पीलेवै तहां प्रत्येक वर्षाके प्रायश्चित्त कैसे आज्ञा दिये जायै सो कहितेहैं कि ब्रा-
 ह्मण शान्तपन आचरै सभी प्राजापत्य करै वैश्य आधा प्राजापत्य करै शूद्र चौथाई
 करै (ये प्रायश्चित्त सब कामनासे पीये जल पर आरूढहैं=किन्तु=इच्छा के बिना
 पीलेने मध्ये अयोक्त प्रायश्चित्त है=तदाह देवलः=चाराडालकूपभांडस्थमज्ञानादुद-
 कम्पिवेत सतृच्यहेराशुद्धयेतशूद्रस्त्वेकेनशुद्धयति=अथात्र-चाराडाल के कूपका या

वासन का धरा उदक जो कोई बिना जाने पीलेवै सो द्विजाती मात्र तीन दिन व्रत करनेसे पवित्र होता है शूद्र एकही व्रत करिके शुद्ध होता है (अन्त्यजों के कूप या वासन का पानी अनेक बार पीनेका अभ्यास करै तिसको प्राजापत्य चाहिये नीचे दूर जाकर आपस्तम्बका वचन देखना) = और = चण्डाल आदि सभी नीचोंके बनाये बाँधे छीटे छोटे जलाशयोंका पानी पीलेनेपरभो कूपहीके समान व्यवस्था होगी = यथाह विष्णुः = जलाशयेष्वथाल्पेषु स्यावरेयुमहीतले दूषवत्कथितशुद्धिमहत्सुत नदूययाम् = अर्थात् = कुआँसे उपरालू छोटे जलाशय जो धरती पर स्यावर हों तिनके जल पीनेमें भी कुआँके समान प्रायश्चित्त आदि शुद्धि कही है पर बहुत बड़े तडाग भील आदि जलाशय जिनमें धारा प्रवाह जल होता हो चाहें किसी के वनशयेहाँ या चाहें कोई जीव उनमें मरा हो तो भी जल पीने आदि का कुछ दोष नहीं है न प्रायश्चित्तको जलरत होगी ॥ ० ॥ पुष्करिणी तलेया बड़े गर्डाहले आदिके पानी पर जुबी व्यवस्था है = तदाहपस्तम्बः = स्लेच्छादीनां जलं पीत्वा पुष्करिण्यां ह देपिवा जा नुदन्नशुचिन्नै यमवस्तादशुचिस्मृतम ततोययः पिबेद्विप्रः कामतोऽकामतोऽपिवा अका मान्नक्तं भुंजीस्यादहोरात्रं त्रकामतः = अर्थात् = स्लेच्छ आदि मलीन मनुष्योंके कच्चा में रहितो पुष्करिणी या हृद (गर्डाहलेहोज) का जलपीकर यह व्यवस्था है कि गोडों के घूटे जिसमें हूवि जायँ सो तो जल पवित्र है घूटेसे नीचे होय सो अशुद्ध है ऐसे अशुद्ध जलको जो कोई ब्राह्मण पीवै सो इच्छा बिना पीनेवाला दिन भर व्रत किये पीछे रात्रि में भोजन करै पर इच्छा सहित पीकर एक दिन रात्रि का पूरा उपवास करै ॥ ० ॥ भागडस्थदध्यादिमन्त्रे जु = रजक क्षीपा रंगरेज घोवी आदि अन्त्यजों के पात्रका जल पीने मध्ये जुदा प्रायश्चित्त है = तदाहपराशरः = भागडस्थमन्त्यजा नान्तु जलन्दक्षिपयः पिबेत् ब्राह्मणः क्षत्रियो वैशयः शूद्रश्चैव प्रमादतः ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजाती नान्तु निष्कृतिः शूद्रस्य चोपवासेन तथादानैर्न शक्नोतः = अर्थात् = अन्त्यजों के वासनमे धरा पानी या दही या दूध जो कोई अपनी भूलसे पीलेवै सो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनोंको शुद्धि ब्रह्म कूर्च उपवास करनेसे होती है और शूद्रने पीलियाहो तिसको शुद्धि केवल उपवास और यथाशक्ति दान करनेसे भी होती है = परन्तु इनमें से जिन किसी ने इच्छा सहित पिआहो तिसको यही प्रायश्चित्त दूना करना चाहिये = इसको सिवा = जिसने अनेक बार ऐसा पानी दही दूध पीनेका अभ्यास क्रिया हो तिसके त्रिये अगले वचनसे प्राजापत्य विचारना होगा = यदाहज्जाप्रस्तम्बः = अन्तर्जैः स्वान्तिताः कूपास्तद्ब्रानावाप्यएववा एयुस्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्येन शूद्र

ति=अर्वात्-अन्त्यर्त्तों के खोदवाये कूप या तड़ाग या बावड़ी इनमें स्नान करिके या पानीपीके प्राजापत्य करे तब शुद्ध होय (यह बारम्बारके अभ्यासकी व्यवस्था सामान्य उनके वामन और कूप आदि सभी पर आरुद्धहैं क्योंकि प्रायश्चित्त बड़ा होनेसे इसका चर्चा ऊपर लिख चुकेहैं कि आपस्तम्ब का बचन नीचे दूर जाकर देखना)=और=जो इन्होंने आपस्तम्बने दूसरे अंगले बचनमें केवल पंचगव्यहीपीना कहा सो वह रोगी आदि अग्रहण पूर्य पर समुभूना होगा=यदाज्ञापस्तम्बः=प्रपास्त्रगपेघटक्रोचगैलेद्रोगायांजलंकीगविनिर्गतंच चपाकचागडालपरिग्रहेयुपीत्वाजलं पंचगव्यनशुद्धयेत=अर्थात्-कृते आदि जीवोंको खानेवाले चपाक कंत्रर आदि और अमली चागडाल आदि अति मलीन मनुष्योंको कवजासे रहितहुइ पिआउओं का पानी या उनके बड़ोंका भरा धरा पानी या पर्वतमें द्रोणी द्रोणी जो प्रसिद्धहोतीहै कदाचिच्च किसी द्रोणीमें चराडालों का निवासहोय उसी द्रोणीके बीच कोई पानीका भरना ऐसा छोदाना भरता होय जिसपर उन्हीं चराडालोंका दार मदार मदा रहताहो तो उस भरनासुपी कौशकी निक्षमे हुये पानीकोभी न पीनाचाहिये यह तात्पर्यहै (गैलेपर्वतमध्यस्थलेद्रोगायावारेकीगाद्विनिर्गतंजलंचेत्यन्ययः) इन जलोंको यदि कोई द्विजाती पीलेये सो पंचगव्य पीकर शुद्धहोसक्ताहै यदि रोगी आदि अग्रहण होय जेसा ऊपर लिखि चुके अन्यथा पूर्वोक्त ही व्रत देखने होंगे ॥ ० ॥ एक यह भी बचनहै कि=प्रमांगतौचिनातोयंगरीरंथीनिधिंचति सकादक्षपगंक्षत्वा मच्चलंस्नानमाचरेत्० मुराघटप्रपातोयेपीत्वानाव्यजलन्तया अहोराधोयितोभुत्वापंचगव्यंजलपिबेत्=अर्थात्-जहाँ कहीं नदी कूप आदि जलकीप्राप्ति न होनेसे पिआऊ पर जाकर कोई देह धोये सो एक दिन सब घन्घे छोड़िके समय वितानेके आदि वर्यों मीहत्त किसी नदी आदि तीर्थ पर स्नान जाकरकरे तब होय दूर होताहै० एवं यह दूसरा नियमहै कि मदिरा के मटकों में धरा पानी या सर्व जातोंकी सामान्य पिआऊका पानी जिस ब्राह्मण विज्ञानीने पीलियाहो या नाच्यजल अर्थात् जहाँ नदी आदि के किनारे पर अतिग्रय शोड्रे जलमें अनेक गाठ टिकी बंधी रहितो हों तिनके नीचेकापानी जो मलीन कीचड़केसमान होजाताहै वही नाच्यजल पीलिया हो अथवा नाचके भीतर भरा या मटक आदि में धरा हो सो भी नाच्य जल समुभूना इन जलोंको पीकर यह प्रायश्चित्त चाहिये कि एक दिन रातिका उपशान करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीलि जागिके उसका पतना व्रत पीये तब शुद्ध होय ॥ ० ॥ एक यादयत्तके तीरसे यह बात यहाँ प्रसंगसे लिखि रतेहैं कि प्रायश्चित्तों

के वर्तानमें जहांजहां प्राजापत्य या सान्तपन आदि नामलिखेहों तहां ती उन्हींका विधान जो कुछ होता हो सोई कियाजायगा अन्यथा जहां साधारण रोसा लिखा हो कि एक या सात दिन उपवास करै तहां एक दो तीन आदि व्रत निराहार भी होसके हैं इससे अधिक संख्या सात बारह पन्द्रह आदि जहां लिखीहो तहां सर्व्वव यह समुभिलेना कि यावक पीकर व्रत करनेहोगे अर्थात् गो सूधमें जौ का दलिया वा साबूत जौ रांधि के पतला दलिया वा गाढा साइसा बनाया जाय सो यावक होताहै यहां तक अशुचि प्राणीसे छुई और अशुचि वस्तुअंसि छुई भिडी खानी पीनी चीजोंके प्रायश्चित्त कहे गये—अब नीचे भाव दुष्ट चीजें खालेनेके प्रायश्चित्त कहे जायगे भाव दुष्ट भी अनेक तरहसे होती हैं ॥

अथभावदूषितकालदूषिताद्यन्नभोजनप्रायश्चित्तानां

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः एकोसप्ततिसः (७१)



इस परिच्छेदमें भावदुष्ट और काल दुष्ट आदि अनेक दूषित अन्न भोजन करने के प्रायश्चित्त कहेजायेंगे—तिनमें प्रथम भाव दूषित के फिर उसीके अन्तर्गत जिस अन्नपर भूँटी भ्रान्तिसे भी कुछ शंका खड़ी होजाय तिसकेखाइलेनेका प्रायश्चित्त• फिर काल दूषित भोजनका प्रायश्चित्त• फिर ग्रहणा होते आदि समयों पर खाने के प्रायश्चित्त• फिर अनुक्त प्रायश्चित्तवाले दोगोंके प्रायश्चित्त• फिर गुरादूषित कांजी आदि चीजों के प्रायश्चित्त और उसीके भीतर पीना फोक आदि खाने के प्रायश्चित्त और बिना होमे या दिये बिना खाइलेने का प्रायश्चित्त फिर फूटे टूटे वासनमें या विरले साजे पत्तों पर खानेका• फिर हाथ घँघोलि दई हुई चीज खाने का• फिर शूद्रके हाथसे परोसा अन्न खाने वा जल पीनेका प्रायश्चित्त ॥

(भावदुष्टाद्यादिभचंगाप्रायश्चित्तं)

भाव दुष्टका यह अर्थ है कि जिस वस्तुका आशय अध्यन्तव किसी प्रकार से खोंटा समुक्तागया हो चाहें उसवस्तुके वरा रगतिसे या उसके आकार डोल वनावट से या उसमे कोई रस रोसा अतिशय होता हो जिसके खानेसे शरीरमें तरह तरहके

दुर्गन्ध आदि खोटे मल बहुत पैदा होयँ सो संसारमें निन्द्या योग्यहोते हैं जैसा बसंत काल थक डकार नाक की चड मल मूत्र अपानवायु या चित्तमें उद्वेग पैदाकरै या चोयँ को कौशाताकरै या कानदेवकी आतुरता उत्पन्नकरै या क्रोध आदि महारोगोंको उत्पन्न करसकै इत्यादि नाना भाँतिसे भाव दुष्ट चीजोंके लक्षणा वैद्यक शास्त्र से भी जाने जाते हैं— इनसे उपराल भी अनेक लक्षणा भाव दुष्ट के होते हैं दृष्टान्त जैसे यद्यपि अन्न सर्वथा उत्तम निर्विकार है परन्तु जो मन में भ्रांति खड़ी होजाय कि इसमें भेरे अमुक शत्रु ने विय मिलाकर भेजा या और किसी से मिलावाया होगा या अमुक पतितने छुईलियाहोगा इत्यादि-यद्यपि उसमेंविय न हो तोभी ऐसीशंका खड़ी होजानेसे वह अन्नभी भाव दुष्ट कहाताहै इत्यादि और भी संनभने—इन चीजों का भक्षणा करना प्रायः तपोमार्ग से नियिद्ध है जैसा साँचे तपस्वी जोग मगही की दाल खासकते हैं उरद की न खायेंगे इत्यादि इसी दृष्टान्त में सब समभिलेता=भाव दुष्ट आदि भक्षणा का प्रायश्चित्त पराशर ने कहा है=यथा=वाग्दुष्टंभावदुष्टं चभाजने भावदूषितम् भुक्तान्नब्राह्मणः पश्चात् विरात्रेण विशुद्धति (एतत्कामकारवि-ययमितिमिताक्षरा=अर्थात्—जो कोई सा अन्न बारागी के नामही मात्रसे भाव दुष्ट होय या अपने आशय से भाव दुष्ट होय या वासन में धरने के दोषसे भाव दुष्ट हो जाय जैसा कौसे पात्रमें बकरी खड़ी चीज बिगड़ जातीहै या ताँबेमें दही दूध आदि या हाड़ के वासन में हरकोई चीज अशुद्ध कहाती है इत्यादि कीईसा भाव दूषित अन्न यदि कोई ब्राह्मण खाय सो उस दिनसे दूसरा दिन लेकर तीन दिन व्रतकरने पर शुद्ध होता है (इच्छा सहितखाने वाले को यह प्रायश्चित्त चाहिये-यहमिताक्षरा कार ने कहा ॥ ० ॥ भ्रांति जनक शंकायांतु—भ्रान्ति रूप शंका के उत्पन्न होने में वाशय के वचनानुसार प्रायश्चित्त है=यदाइ वाशयः=शंकास्थाने समुत्पन्ने अभोजयामदयसंज्ञिते आहारशुद्धिं वदयामित्त्वेनयोगदत्तः यस्यान्नकारलवणांस्त्वसांपिबे ह्यह्नीसुवर्चलात् विरात्रंशंखपुष्पींवाब्राह्मणःपयसासह पलाशवित्त्वपवाशिक्तशाप पश्चमुद्रमरस अपःपिबेत्कार्यायित्वाधिरात्रेणविशुद्धति=अर्थात्—वाशय जी कहतेहैं कि जहाँ भ्रांतिरूपी शंका खड़ी होजाय कि मैं बिना जाने अमुक तरहका दूषित अन्न खाया यदा नहीं खवाने और न खाने योग्य अन्नही साक्षात् होय जिसमें शंका खड़ी हुई ऐसे आहार की शुद्धि करना में कहिताहूँ सो भेरे कहिने को सुनी ब्राह्मी नाम की सुवर्चला श्रीयर्वा जो जंगल से आती है तिसको तीन दिन ऐसेपीवै कि न उसमें कोई खारी नमकीन रस मिलायै न घी दूध आदि चिकनाई का रस

मिलावै किन्तु रूखी पीडारै तिससे शुद्धि होजायगी अथवा बड़ी शंकामात्र ब्राह्म-
रा तीन दिन शंखपुष्पी शंखाहली को दूध के साथ औटिके पीवै अथवा ढाखाबेल
कुशा पत्र-गूलर इन पाँचों के पत्ते पानी में काढा बनाकर पीवै तौभी तीन राति से
विशुद्ध होता है किन्तु जैसी शंका होय तैसाही प्रायश्चित्त इन में से चुनि लिया
जाय=मनुने कुछ और विशेषता इसपर कही है=यथा=सवत्सरस्त्रैकमपिचरेत्कच्छं
द्विजोत्तमः अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्यचविशेषतः=अर्थात्-कोई द्विजोत्तम जिसने स-
वत्सर के भीतर बहुत कालतक भी बिना जाने कुछ अशुद्ध भोजन किया हो तो उस
बिना जाने खाते रहने की दोष शुद्धि के लिये एक पूरा कच्छ भी आचरै जो बारह
दिन में होता है और जिसने जानि बन्ध खाया हो तिसको इससे दूना आदिविशे-
यता से करना चाहिये=इस पाठ में ये प्रायश्चित्त द्विविधा रूपी भ्रांति की शंका
पर सामान्य संन्यासे से दर्शाये गये तिससे इसमें किसी वस्तु का नाम विशेष नहीं
कहा ॥ इत्यभोज्यभोजनशंकायाःप्रायश्चित्तं ॥

(अथ कालदूषितभोजन प्रायश्चित्तं)

काल दूषित उसको जानना जो वस्तु केवल कालही के प्रभाव से बिगड़ी टाहिरै
दृष्टांत जैसे वासी घरा अन्न यद्यपि अष्ट या परन्तु काल के विलम्ब से बुरिसगया दूस-
रा दृष्टान्त जैसे गाय का दूध एक उत्तम चीज है तथापि बिआली गाय को दस दिन
जवतक न वीतेहों तब तक उतने काल के प्रभाव से अशुद्ध है इत्यादि अनेकधाअन्य
चीजें भी-होती हैं=तिनको जिसने इच्छा बिना खोखासे खाया हो तिसके लिये एक
ही दिन का उपवास है (शोषेयपवसेदहः) इसी मनु के वचन से पहिले भी प्रायः
कहिचुके हैं=परन्तु=जिसने इच्छा सहित खायाहो तिसकेलिये अगिलाप्रायश्चित्त
है=यथाह शंखः=केवलानिचशुक्तानि तथापर्युषितंचयव रुचीशपक्वभुक्त्वातुचिरा
अंशव्रतीभवेत् (केवलानिअस्त्रेहाक्तानीतिमिताक्षरा=अर्थात्-केवलअन्न, जिनमेंधीका
मेल न होय और शुक्त जो कांजी सिका आदि कालहीके विलम्ब से परिणामपाते
हैं तथा पर्युषित वासी तिवासी आदि दुसे अन्न तथा हालही का पकाया अन्न जो
अति क्षुधातुर ने क्रिया रहित पकाया हो तिसकी खाइके तीन दिन व्रती होना
चाहिये ॥ ० ॥ नवीन दर्या का जल भी अति लघुकाल से दूषित होता है तिसकी
पीने का प्रायश्चित्त आगेदेखी=तदाहृद्वयान्नवत्कः=दृग्गास्थितजैःपावैःशंखशुक्ति
कर्षादिकैः पीत्स्वानवोदकंचैव पंचगव्येनशुद्ध्यति (कामतस्तूपवासः कर्तव्यइतिमिता-

क्षरा=अर्थात्-सींग हाड बांत इनकेबने पात्रोंसे जलपीवै या शंख सीप कौडा घोंघा से पीवै या नवोदक नवीन बर्यासे जो नदी आदि में भरि आया हो तिसको पीलेवै सो पचगव्य पीकर शुद्ध होता है-परन्तु जिसने इच्छानहित पिआ हो तिसकोएक उपवास भी करना चाहिये-क्योंकि अगिले वचन से यह तात्पर्य मिलता है=यथा स्मृत्यंतर=कालेनबोदकशुद्धनपिवेच्चयहहितव अकालेदुदगाहंस्यात्पोत्वानाद्यादहर्नि शम्=अर्थात्-बर्षा ऋतुके काल में जो बर्षा प्रथम हुईहो तिसका नया जल यद्यपि शुद्ध धरती पर संचय हुआहो तौभी तीन दिन तक बह न पीना चाहिये और जो बरसात के विना किसी ऋतु में अकाल बर्षा हुईहो तो दस दिन तक न पीना चाहिये कदाचित्त कोई पीलेवै सो एक दिन राति भर भोजन विना उपवास करै ॥०॥ ग्रहणकालादि दूषितान्नं तु-ग्रहणा परते काल में भी काल दूषित भोजन कहाता है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखो=तदाह शातातपः=नवग्राह प्रासयाजकान्नं मग्रह भोजनस नारीणांप्रथमेगर्भेभुक्त्वा चांद्रायरांशरेत्=अर्थात्-प्रेतके नवग्राह का अन्न खाय या प्रास याजक का अन्न खाय या सूर्य चन्द्र का ग्रहणा परते समय भोजनकरै या स्त्रियोंके पहिलीवी गर्भ रहनेके निमित्त पर भोजन करै अर्थात् उसी उत्सवके नामसे जो कुछ अन्न बांटा बर्तायागया तिसको खाय तौ यह खानेवाला पुरुषचांद्रायरां करै तब शुद्ध होय-और ग्रहणा के द्विसर्वादि उषके देवेहुये मृतकोसमयपरभी खाने का निषेधक प्रायश्चित्त आगे देखो इसी के प्रसंग पर नीचेकीव्यवस्था है ॥

(अणुक्तप्रायश्चित्तनिषेधेषुचभोजनशुद्धिः)

ऊपरली व्यवस्था के प्रसंग में एक निराली व्यवस्थाअब लिखतेहैं जिसमें फुट कर ग्रंथोंके अनेक वचन एकत्र लिखे जायेंगे और तात्पर्य उनका यही है कि जिन अवसरों पर भोजन करना निषेध है परन्तु प्रायश्चित्त नहीं कहा गया तिनका भी प्रायश्चित्तसमभक्त में आवै=तदाह मार्कंडेयः=चंद्रस्यथदिवाभानो रस्मिन्नहनिभाश्विग्रहांतुभवेत्स्मिन्नापूर्वभोजनक्रियाव नाचरेत्सग्रहेचैवतथैवास्तमुपागते यावत्स्यान्नो दस्तस्यानाश्रीयात्तावदेवतु=तथा ग्रन्यांतरं=ग्रहांतुभवेदिदोःप्रथमादधियाततः भंजी तावर्तनात्पूर्वप्रथमेप्रथमादधः=तथा१२ग्रदपि=अपराहनेमध्याह्नेमायाह्नेनहसंगवेभुंजी तसगवेचेरेत्यान्नपूर्वभोजनक्रिया=एवंमनुस्तु=नाश्रीयात्संविबेलायां • नातिप्रयो • नातिमायं इत्येवमादि=दृष्टव शातातपस्तु=धानादधिवचसक्तुश्चशीक्षासोवर्जयेन्नगि भोजनतिलसंबहंस्नानं चैव विचक्षणाः (इत्येवमादिप्वनादिप्रायश्चित्तैषु प्राणायाम

शतंकार्यं सर्वपापापनुत्तये उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हीति ३०६ योगीश्वरोक्तं
 द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा=अकामस्तु शोषेयपवसेदहरितमनुक्तोपवासो द्रष्टव्यइति च
 मिताक्षरा=अर्थात्-मार्कंडेय ने यह कहा है कि चन्द्रमा या सूर्य का ग्रहण जिस
 दिन होनेकोहोय तिस दिन उसके होनेसे पहिले भोजन रसोई आदि क्रिया कुछ न
 करनी चाहिये • और सग्रह दिनमें भी नहीं अर्थात् जिस दिन ग्रसा ग्रसाया विम्ब
 उदय हुआहो तिसदिन ग्रहराहोजानेके बादिभी रसोईआदि न करनी चाहिये•तथा
 अस्त उपागतेपिकाले अर्थात् जब ग्रसा हुआ विम्ब अस्त होगया हो तो जब तक
 फिर उदय न होय तब तक उतने काल में न भोजन करै=तैसा अन्य ग्रन्थ का यह
 वचनहै कि=चन्द्रमाका ग्रहण यदि रात्रिके प्रथम प्रहरसे उपरान्त होनेवाला ठहरे
 तो उस दिनके ठीक दुपहरसे भीतरले कालमें भोजन करै किन्तु मध्याह्न के उपरांत
 न करै• परन्तु जो रात्रि के पहिले पहर के भीतर ग्रहरा ठहरे तो दिन के प्रथमही
 पहरके भीतर भोजन करै उपरान्तमें नहीं=तैसा और भी ग्रन्थान्तर वचन है जिसमें
 ग्रहराके बिना भी सब दिनोंका यह नियमहै कि=न तो अपराह्न कालमें भोजनकरै
 न मध्याह्नकालमें, न सायाह्न काल में न सगव काल में भोजन करै• भला कदाचिद्
 संगव काल में करना भी परै तो प्रातःकाली सगवसे पहिले सूर्योदय होने के बिना
 तो अवश्यही न करना चाहिये (इसमें अपराह्न शब्द से दिनमान का सबसे पिछला
 तिहाई भाग समझना • मध्याह्न शब्दसे ठीक दुपहर की विचली छे घड़ी तीन पहली
 तीन पिछली समझनी अथवा केवल दो घटि का एक पहली एक पिछली तो अव-
 श्यही माननी क्योंकि यही मध्याह्न मध्योपासना का समय होता है • सायाह्न काल
 भी सूर्यास्तके ठीक समयसे तीन घड़ी पहले तीन पीछे तक होताहै • ऐसेही प्रातःकाल
 सूर्योदयसे पहले पीछे तीन तीन घड़ी मिलिके छे घटिका तक होताहै उन्हीं घड़ियों
 के बीतने पर अनन्तरकी छे घड़ी सगव काल के नाम से होती है=ऐसाही मनुने भी
 कई वचनों में जुदा जुदा कहाहै कि=सधियोंकी बेलापर न भोजनकरै • अति प्रातः-
 कालमें भी न करै यहाँ अतिप्रात काल उसीको समझना जो सगव के नाम की छे
 घड़ी कहिचुके • अति सायकाल में भी न खाय • ऐसे और नियेव भी मनुस्मृति में हैं
 कि जिनके प्रायश्चित्त नहीं लिखे=छहवशातातप ने भी कहा है कि=घाना ददरी
 होलाबहुरी आदि चबने और दही सत्त इनको रात्रिमें अपना कल्याण चाहनेवाला
 वर्जित करै और तिल का बना भोजन तथा स्नान भी विवेकी पुरुष रात्रि में न करै
 (मिताक्षराकार कहिते हैं कि जैसे ये बातें कहीं तैसे और भी जे कोरे वचन कहीं

देखें परें कि जिनमें नियेधके द्वारा अद्यापि दोष दर्शाया गया परन्तु उस दोष का प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा तिन सभी में वह प्रायश्चित्त विचारना जो आगे ३०६ तीनसौ छठे मूलप्रलोकसे योगीश्वर आप कहेंगे कि एकसौ १०० प्रारायायाम करने चाहिये • इसका विशेष व्यौरा उसी स्थलपर समझि लेना=और=जिसने इन्हीं नियिद्ध कालोंमें इच्छा बिना धोखा आदि लाचारी से खाया हो तिसके लिये एक दिनका उपवास है (शयेयूपवसेदहः) इसी मनुके वचनसे विचारना चाहिये यह भी सिताक्षराकारने कहा ॥ इतिकालदूषितान्नभोजनप्रायश्चित्तं ॥

(अथ गुणदुष्टशुक्तादि भक्षणप्रायश्चित्तं)

अन्नमनुः=शुक्तादिचक्रयार्थाश्च पीत्वाऽमेधानिषद्विजः तावन्नवत्यप्रयतो यावत्तन्मन्नजत्यधः=अर्थात्—कांजी सिर्के और अपवित्र काड़े अरक भी वाह्यपा पीकर तब तक अशुद्ध रहिता है जब तक वह पचिकर गुदा से न निकसि जाय (इसमें भी प्रायश्चित्त कुछ नहीं कहा पर सिताक्षरा कार कहिते हैं कि इच्छा के बिना पीने वालेपर वही एक दिन का उपवास चाहिये जो मनुने (शयेयूपवसेदहः) इस वचन से कहा था=और जिसने इच्छा सहित पिआ हो तिसको तीन का व्रत अगिले वचन के अनुसार चाहिये जैसा शंखने यह कहा है (केवलानिचशुक्तानि तथाप्युचितंचयत् ऋचीयपक्वभुक्त्वाचविराचंतुव्रतीभवेत्) अर्थात् केवल औरशुक्त और बासी तितासी और कराही का पकाया कदी आदि भोर भी खायके तीन दिन व्रत राखें—फिरभी—सिताक्षराकार इसका प्रतिप्रसव दर्शाते हैं कि यह कांजी आदि जो नियेध किये गये सो केवल जो गुरा से दुष्ट होयें तिनहीं का प्रायश्चित्त समझना किन्तु आमले आदि उत्तम गुरा वाले फलों के अचार में जो कांजी सा पानी खडा होता है तिसका नियेध नहीं है—इस बात का प्रमाण भी अधिला वचन देख्यो (कांजिकास्रफलायैमुद्गैर्युस्यापिताभवेत् तदथास्तुकांजिकाःप्राद्यानेतरस्याः कदाचनेतिस्मरणात्) अर्थात्—जिन घरोंमें येय गुराके फलों सहित (अचार) कांजी घरी गईहो तिसको कांजी ग्रहणा करने योग्यहै और किसी को नहीं ॥ पिण्याका दौतु—तिल आदिका पीना या ओंटे धीका मेल या वादास आदि कोई मीग मयि कर चिकनाई निचोड़नेसे बची हुई लोभी इत्यादि बहुधा अन्य चीजें भी होतीहैं तिनको खाइलेने पर गौतमने बमल कराइके धी चारना प्रायश्चित्त कहा है ॥ ० ॥ अहुतादत्तान्नादिभक्षण प्रायश्चित्तं—कची पक्की आदि भोजन को वस्तु आहार

के निमित्तसे बनाई जाय या थालीमें परोसि आगे धरीजाय सो अग्नि को जिमाने आदि संस्कारोंके विना अभक्ष्य होता है तिसका प्रायश्चित्त है—यथाह लिखितः—
यस्य चान्नौत्क्षिपते यस्य चान्नं न दीयते न तद्द्वौर्ज्यं द्विजातीनां भुङ्क्ता चोपवसेदहः ।
वृथा कृसरसयावपायसापूपशक्वलीः आहिताग्निर्द्विजो भुङ्क्ता प्राजापत्यसनाचरेत्=अर्थात्—द्विजातियों में जिसके घर अग्नि में अन्न नहीं छोड़ा जाता और अभ्यागत गऊ आदि को नहीं दिया जाता हो तिसका ऐसा अन्न खानेके योग्य नहीं है कदाचित्त कोई विप्र खालेवै सो एक दिन उपवास करै—सर्वं वृथाकृसर • वृथासयाव • वृथापायस • वृथापूव • वृथाशक्वली • इनको आहिताग्नि होकर जो द्विज खाइ सो प्राजापत्य आचरै तब शुद्ध होय—परन्तु जो अनाहिताग्नि ब्राह्मण इनको खाय तो वह एकही दिनका उपवास (श्रेयैयुपवसेदहः) इसी वचनके अनुसार करै—कृसर उस भोजनका नाम है जो रसोईमें दो चीजें मिलाकर पकाई जायँ जिन दोनोंका रूप पकित जाने पर भी जुदा जुदा देखिपरै दृष्टान्त जैसे खिचरी आदि • सयाव का दृष्टान्त है शुभ्रिआ पिराँक आदि • पायस का दृष्टान्त है खीरि आदि • पूप का दृष्टान्त पुआ गना आदि अथवा अपूप शब्द लेनेका दृष्टान्त है कसार आदि • शक्वलीका दृष्टान्त है पूरी आदि • इतने नाम कहिनेसे सब तरहके भोजनका स्वरूप जाहूर क्रियागया तिनके साथ वृथा शब्दकी योजनासे यह भाव दर्शाया है कि दाकुर नारायण को भोग वा अग्नि जिमाउना आदि देवता का निमित्त (बहाना) धरै विना जो भोजन कीवस्तु बनाई गई सो वृथा कहाती है तिसको खाने के दो प्रायश्चित्तव्यवस्थित किये गये ॥

(भिन्नभग्नप्राजादिषु भोजने च प्रायश्चित्तं)

फूटे सूटे फटे आदि बहुतेरे साजे भी पाषाणमें भोजन करनेका नियेव है कदाचित्त कोई ब्राह्मण आदि विवेकी सेसे खाय तिसके प्रायश्चित्त हैं—यथाह सर्वतः=शूद्राणां भोजने भुङ्क्ता भुङ्क्ता वा भिन्नभाजने अहोरात्रोद्यितो भुक्त्वा पचगन्धेन शुद्धयति=तथा स्मृत्यन्तरे पि=वटाकाद्यत्थपत्रैः कुभीतिन्दुकपवथोः कोविदारकद्वेष्य भुङ्क्ता चांद्रायसां चरेत्=तथान्प्रच=पलाशपत्रपत्रैर्युगृहीभुङ्क्तेन्दवंचरेत् वानप्रस्थो र्थातिप्रचैव लभते चांद्रिकफत्तव=अर्थात्—सर्वतःने कहा है कि शूद्रोंके वासनमें भोजन करै या अपने भी फूटे वासनों में खाय सो एक दिनराति का उपवास करिके दूसरे दिन पचान्य पीकर शुद्ध होता है—तैसा किसी और स्मृतिका यह वचन है कि=वरगदा • सकोआ • पीपर • कुन्भी • तिन्दुक • कचनार • कदम • इनके पत्तोंपर धारिके भोजन करै तिसकी चांद्रा-

यथा करना चाहिये—तैसा और भी यह बचन है कि—ढाखा पदम इनके पत्तों पर गृहस्थी पुरुष भोजन करै तिसको चांद्रायणा करना चाहिये परन्तु वानप्रस्थ और यती संन्यासी आदि जो इनपर भोजन करै तिनको चांद्रायणा करनेकी बराबर फल मिलना है अर्थात् उनको विशेषकर इन्हीं पत्तोंपर भोजन करना चाहिये ॥ विरली चीज ऐसीहै जिनमें हाथ धँधोकर न देनी परीसनी चाहिये किन्तु चमचा आदि किसी पात्रसे उठाकर देनी चाहिये तिनके खाइ लेनेका प्रायश्चित्त नीचे देखौ ॥

(हस्तदानादिक्रियादुष्टभोजनप्रायश्चित्तं)

अथ पराशरः—साक्षिकंफारिातंशाकंगोरखंलवरांघृतम हस्तदत्तानिभुक्त्वातुदिनमेकमभोजनम् (कामतस्तु हारीतोक्तद्रव्यं)=अर्थात्—सहृत् • राव • रँवसाग • दही • दूध • सटा • नमक • घी • ये चीजें हाथ डवोकर दीहुई खाइके एकदिन निराहार व्रत राखना (परन्तु जिसने जानि ठुकि इच्छा सहित ऐसी चीज खाइहो तिसके लिये अग्रीक्त प्रायश्चित्त देखना=यथाह हारीतः=हस्त दत्तभोजने ब्राह्मणानामभोजने दुष्टपान्तिभोजने पक्ष्यग्रतोभोजने अभ्यक्तमूत्रपुरीयकरारो मृतसूतकशूद्रान्नभोजने शूद्रैःसहस्रप्तेविरात्रमभोजनम्=अर्थात्—हाथ धँधोलिके दीहुई खानेमें • ब्राह्मणा जिसमें ब्राह्मणाके लक्षणा नहीं तिसके पास बैठि खाने में • पाँतिसे पहिले खाइ लेने में (अर्थात् पाँति जब तक नहीं बैठे कोई एक पहिले भोजन करिलेवै या ज्याँनारकी पाँति बैठिजाने पर भी पारस होते समय भोजनकी आज्ञा प्रकटहोनेसे पहिले कोई खाने लगे तिस दोय) में • और दूयित पाँति जो इषी उक्त प्रकारसे दूयित होचुकी या जिस पाँतिमें कोई अपांक्त पुरुष घुसि बैठा या किसीने पत्तल उठाइ डारी इत्यादि बोधवाली पंक्तिमें खाने पर • खाते समय हाथ पैर आदि धोने लगे या तेल मलिकर खाने बैठे या खाते समय सूत सूइ टपकिपरै ऐसा भोजन करनेमें • मरेका सूतकी अन्न या शूद्रका अन्न खाइले में शूद्र के साथ सोले में • इन सब दियोँ पर तीन तीन दिनका निराहार उपवास प्रायश्चित्त है ॥ • ॥ अदल बदलसे पर्याय लक्षणाके साथ दिया अन्न भी दूयित कहाता है तिसका प्रायश्चित्त आगे देखौ=तथाह दृढयाज्ञवल्क्यः=ब्राह्मणान्गंददच्छूद्रः शूद्रान्गंवाहाराणोदत्त इयमेतदभोज्यंश्याहुक्त्वातूपत्रसेदहः=अर्थात्—ब्राह्मणाका अन्न यदि शूद्रके हाथ से दिया जाय या शूद्रका अन्न यदि ब्राह्मणाके हाथ से दियाजाय तौ यह दोनोंअन्नअभोज्यहोतेहै तिनको यदि खाय सो एक दिन उपवास करै ॥ • ॥ स्वकीयान्नमपिशूद्रहस्तेनाग्राह्यं-

शुद्धके हाथसे अपना भी अन्न खाने पीने पर प्रायश्चित्त है—तदाह मनुः—शुद्धहस्ते नयोभुंक्तोपानीयंवापिबेत्कचित् अहोरात्रोयितोभुत्वा पंचगव्येनशुद्ध्यति—अर्थात्—शुद्धके हाथसे जो कोई द्विजाती खाता है या कहीं कोई जलपीवै सो एकदिन राति का उपवास करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है—और भी—अन्नको मुह से फूंकना आदि कई बातोंका नियम है—तदप्याह मनुः—आसनास्रुदपादीवावधार्धं प्राच्यतोपिवा मुखेनधमितंभुक्त्वाकृच्छ्रं सांतपनं चरेत्—अर्थात्—ऊँचे आसन पर धैरधरे या फर्श पर बैठाहुआ अथवा आधी धोती ओढ़े हुये खाय यद्वा गरम अन्न को मुह से फूँक फूँक भोजन करै तिसको कृच्छ्रसांतपन करना चाहिये ॥

अथाचनवपुराणादिश्राद्धान्भुग्व्राह्मणानांप्रायश्चित्त

प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदाद्विसंप्रतितमः (७२)



इस परिच्छेदमें सब तरहके नवे पुराने बीचके आदोंका नीता आदि कृच्छ्र अन्न खानेवाले ब्राह्मणोंके प्रायश्चित्त भेद कहे जायँगे—तिनके प्रसंगसे वृद्धियाह आदि उत्सवोंके याह और कुसोत वालों के याह और अपांक्तोंके याह और संस्कारों के अंगभूत याह और कचे अन्नके आस याह खाने वालोंके जूरे जूरे प्रायश्चित्त कहे जायँगे—और जो ब्रह्मचारी होके याहखाय या परस्पर बस्ते क द्यौहार में अनिष्ट भोजन कोई भी द्विजाती करै तिनके भी प्रायश्चित्त है ॥

(त्रिरात्रादिश्राद्धान्भोजनेप्रायश्चित्तं)

अवाह भारद्वाजः—भुंक्तो चेत्पार्वरायाश्चेत्प्राणायामान्यद्वाचरेत् उपवासस्त्रिमासा दिवत्सरांतंप्रकीर्तितः प्राणायामव्यंशवृद्धावहोरात्रसंपिंडने असन्नपेरमृतंनक्तं व्रतपारसा क्ततथा द्विगुरांसाविश्रयैत्तत्र विष्णुणवैश्यभोजने साक्षाच्चतुर्गुराह्येतस्मृतंशुद्रस्यभोजने (अतिथौद्धारितित्यतिनभोक्तव्यं) अतिथौतित्यतिद्धारिह्यपःप्राश्रंतिवेद्विजाः स्मिंरंत झवेद्धारिभुक्त्वा चान्द्रायणाचरेत्—हारीतो प्याह—सकादशाहेतुअहंभुक्त्वासंचयनेतथा उपोष्यविंशवर्षात्त्राकूप्सांडे जुहुयाद्वयृतस=विष्णुारग्याह=प्राजापत्यंनवयाद् या दोनंचाद्यनासिके वैपसिकेतदर्धंशुपचगव्यद्विसामिकं (इतिचापदिद्ययनिति मितासरा)=अनापदितुहारीतआह=चान्द्रायणानवयाद्प्राजापत्यंमिश्रको एकाहस्तुपु

राशोयुप्राजापत्यंविधीयते (प्राजापत्यन्तुमिग्रके इत्येतदाद्यमासिकविययद्रव्यं इ
 तितु मिताक्षरा—द्वितीयादियुत यद्विंशन्मतोक्तं यथा—प्राजापत्यंनवयाद्वेपादोनञ्चा
 द्यमासिके वैपक्षिकेतदर्धनुपादोद्द्वैमासिकेतया पादोनकच्छु निर्दिष्टंयद्दमासेचतया
 व्दिके धिरात्रंचान्यमासैद्यप्रत्यहंचेदङ्गःस्मृतम्—अर्थात्—यदि कोई ब्राह्मण किसी ब्रा-
 ह्मणके पार्वरायाद्वमें कि जो कनागत आदि पर्वमें होताहै भोजन करै सो छे वार
 प्राणायामही करिके शुद्ध होजाता क्योंकि पार्वरायाद्व बहुत अनिय नहींहै। परन्तु
 जिस मीतकी दो मास बोतिजाने वादि तीसरे महीनेका श्राद्ध आदि लेकर बर्षी प-
 र्यन्त चाहें तिस महीनेका मासिक याद्व होय तिसका अन्न खानेवाले को एक उ-
 पवास करना चाहिये। जिसने पुत्रका जन्म आदि किसी वृद्धियाद्वमें जो नान्दीमुख
 प्रसिद्ध है खायाहो तिसको तीनि प्राणायाम करने चाहिये क्योंकि यह पार्वरासे
 भी कुछ येयहै। जिसने सपिण्डीयाद्वमें खायाहो तिसको एकदिन रातिभर उपवास
 करना चाहिये। जिसने असुरूप याद्वमें खाया हो जिसका कोई प्रसिद्ध नामरूप न हो
 तिसको नक्त भोजन व्रत करना चाहिये और जिसने महाव्रतोंकेपारणा संबन्धी याद्वमें
 खाया हो तिसकोभी यही नक्तव्रत अर्थात् रात्रि में भोजन करना चाहिये (यह सब
 केवलब्राह्मण का अन्न खानेपर कहागया किन्तु सबीका याद्वान्न खाकर इनसे दूने
 प्रायश्चित्त और वैश्य का श्राद्धान्न खाने में तिगुना और सासाद शूद्र का श्राद्धान्न
 खाने में चौणुना करवाया जाय (अतिथीतिथितिनभोक्तव्यं) अतिथि अभ्यागत
 जिनके द्वार पर उपस्थित होय तिसको दिये विना पानी तक पीलेने वाले द्विजा-
 ती लोग जैसा रुबिर पीते हैं तैसा दीय लगताहै तिससे अतिथि को दिये विनाकुछ
 अन्न खाइ लेवै सो चांद्रायणा व्रत करै यह भारद्वाज ने कहा— हारीत भी कहिते हैं
 कि—एकादशा का याद्वान्न खाइके तीन दिन उपवास करै तथा अस्थिसंचयन (मु-
 र्दाके हाड़ चुगाने) के दिनका याद्वान्न खाइ सोभो तीन दिन उपवास करनेके पीछे
 विवि से ज्ञान करिके कूर्मांड नाम जाति के वेदोक्त मंत्रों से घी का होम करै—
 विष्णु भी कहिते हैं कि—नवयाद्व नवीन जो एकादशा तक होते हैं तिनमें यदि
 कोई विप्र भोजन करै सो प्राजापत्य करै। परन्तु जो महीना पूरा होने पर पहिले
 महीने का याद्वान्न खाय सो चौथाई कम करिके तीनि पाद प्राजापत्य करै। जो
 तीनि पाख पूरे होने पर तिपखी याद्व का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करै।
 जो द्विगाही याद्व का अन्न खाय सो पंचगव्य ही पीकर एक दिन में शुद्ध होता है
 (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह सब छोटे प्रायश्चित्त उसके लिये समझना

जिसने आप्तकाल को प्रभाव से ऐसे अन्नखाये हों=किन्तु अच्छे भले दिनोंमें जिसने खाया हो तिसके लिये हारीतने जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि=नव आद्योंमें खाकर चान्द्रायण करै और मियक याद में खाकर बारह दिन का प्राजापत्य करै और पुराने याद जिनको सरे बहुत वर्षों बीति गई तिनमें खाकरसकही दिन का प्राजापत्यहोता है (मियक याद उसको जानना जो पहिले मास का याद किया जाय (क्योंकि अति नयाभी नहींरहा अतिपुराना भी नहीं ठहिरा इसीसे दोनों लक्षणा उसी में समिले हुये ठहरे) यह मिताक्षराकार ने कहा और यह भी कहा कि=दूसरे महीनाको आदि लेकर जो मासिक याद किये जायें तिनका अन्नखाने मध्ये यद्विंशन्मत का कहा प्रायश्चित्त आगे देखीं कि=नवीन याद जो एकदशा तक होते हैं तिसका अन्न खाइ सो प्राजापत्य करै और पहिला महीना पूरा होनेका या दान्न खाय सो पौन प्राजापत्य करै और त्रिपत्नी याद का अन्न खाय सो आधा प्राजापत्य करै और हैमासिक याद का अन्न खाइ सो चौथाई प्राजापत्य करै और छमाही याद या वर्षीयाद का अन्न खाइ लेने में चौथाई कम तीन पाद कछ्छू करना कहा है और इनसे उपरालू जो महीने वर्षकी भीतर बचे तिनका याद किया जाय तिसका अन्न खाने वाले को सामान्य तीन दिनका प्रायश्चित्त चाहिये और जहाँ कहीं साल भरतक रोज रोज याद किया जाय या नित्य याद की विधि से रोज याद किया जाय तिसका अन्न खाने वाला एक दिन उपवास करिके शुद्ध होता है (यह प्रायश्चित्त सब उसके लिये कहेगये जिसने ब्राह्मण का याद्वान्न खायाहो ॥०॥ सभी आदि वर्णों का याद्वान्न खालेने मध्ये उसी यद्विंशन्मत ग्रन्थ में जुदे प्रायश्चित्त हैं सोभी यहाँ देखीं=यथाह=चान्द्रायणान्नयाद पराकीमासिके स्मृतः वैषिकेकोशांतपनकृच्छ्रोमासद्वयेस्मृतः सविश्वस्यनवयाद व्रतमेतदुदाहृतम् वैश्व-स्थार्धाधिकंप्रोक्तसविधात्सुमनीयिभिः शुद्धस्यतुनवयाद चरेचांद्रायणान्नयाद सार्धचांद्रायणान्मासेत्रिपत्नीत्वेद्वंत्रतम् मासद्वयेपराकःस्था दूर्ध्वसांतपनस्मृतम्=अर्थात्=नवे आद्यों का अन्न खाकर चांद्रायण करै• प्रथम मासका यादखाकर पराक व्रतकरै• त्रिपत्नी याद खाकर सांतपन करै• दुमाही याद खाकर कछ्छू करै• यह त्रयी के नव याद खानेमें व्रतका नियम कहा गया• जिसने वैश्व का नया याद खाया हो तिसको सभी से डोंडा चाहिये यह सनीयी लोगों का कथन है• और शुद्ध का नया याद जिसने खाया हो सो पूरे दो चांद्रायण करै• जिसने वैश्व का मासिक याद खाया हो सो डेढ़ चांद्रायण करै• जिसने वैश्व की तिपत्नी खाइ हो सो एकचां-

द्रायरा करै० जिसने वैश्य का दुसाही याह खाया हो सो पराक व्रत करै इसके
 उपरान्त के यादों में सांतपन करना कहा है ॥०॥ अप्रमृत्पुवच्छादे तु-शंखज
 जी का बचन यद्यपि अविश्रित है कि-चांद्रायरांतवयाह्ये पराकोमासिके स्मृतः पक्ष
 इयेऽतिरुच्छः स्यात्पयड्मासे कच्छसवतु । आदिके पादकच्छ स्यादेकाहः पुनरादिके
 अत ऊर्ध्वन दोषः स्याच्छंखस्य वचने यथेति (तदपिसर्पादिहृत यादस्य विद्यया मतिमिता
 सरा० ये स्तेनपतितस्त्रीवाद्रत्याद्यपांक्ते यविययंवेति च मितासरा=अर्थात्- नव याद
 का अन्न खाइलेने में चांद्रायरा और मासिक याह खाने में पराक और तिपखी
 याह खाने में अतिरुच्छ और छसाही याद खाने में कच्छही करना कहा है और
 वर्षी याद का अन्न खाने में चौथाई कच्छ किया जाय और पुनरादिक अर्थात्
 दूसरे वर्षके भीतर जो याद होय तिसका अन्न खाने में एकही दिन उपवास किया
 जाय इसके उपरांत तीसरी वर्ष आदिके यादों में कुछ दोष नहीं जैसा शंखजी का
 यही बचन पकारिके कहिता है (मितासराकार कहिते हैं कि यह शंख जी का
 कहा प्रायश्चित्त उन यादों पर समझना जो सांप काटे आदि कुमोत मरेहुयों के
 याद किये जाय अथवा चोर पतित नपुंसक आदि अपांक्तोंके याद पर समझना०
 क्योंकि यह प्रायश्चित्त बड़ा है) औरभी अगिले बचनों में देखना इन्हीं अपांक्तोंके
 का याह खाने मध्ये बड़े प्रायश्चित्त कहेगये हैं-यथा=चांडालादुबकात्सर्पाद्वाह्न-
 राद्वैद्युतादीषु दीयुभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणापापकर्मणाश्च पतनानाशकेश्चैव विद्योद्वं
 नकैस्तथा मुक्त्वैद्योदशयाह कुर्वादिन्दुव्रतं द्विजः॥ अपांक्ते यथादभोजने-भर-
 हाजोर्याह-अपांक्ते यान्नुद्विप्रययाहमेकादशेऽहनि ब्राह्मणास्तत्रमुक्त्वान् शिशु
 चांद्रायरांचरेदिति आमयाद्वेत्यामुक्त्वात्तच्छंखे राशुध्यति संकल्पितेन्यामुक्त्वावि
 राक्षसपरांभवेदिति भरद्वाजेनयुरुप्रायश्चित्ताभिधानात्-अर्थात्-इतनी कुमोत कहा-
 ती हैं कि जो चांडाल के हाथ से मरै या जलमें डूबै या सांप काटानरै या ब्राह्मण
 के पाप से मरै या दिजली गिरिके मरै या दाहवालों से फाड़ा जाय या पशुओंसे
 मरै या ऊँचे से गिरिके मरै या भुंखे घन्ना देकरमरै या जहर खाके मरै याफाँसी
 से मरै इतनी सोते पापियों की अपने पाप कर्मों से होती हैं इनके योडशी भ्रातृ में
 जो कोई ब्राह्मणभोजन करै सो चांद्रायरा व्रतकरै तत्र शुद्ध होय=भरद्वाज मुनि भी
 कहिते हैं कि-अपांक्ते य जो मराहो जिसके नास का उद्देश करिके जो कुछ अन्न
 ग्यारहवें दिवस दिया जाय वही उसका याह कहा जाता है उस अन्न को यदि
 कोई ब्राह्मण खाय तिसको शिशु चांद्रायरा करना चाहिये० इगकी विवि नीचे

लिखी देखीं। तथा आमयाह जो कच्चा अन्न देकर निर्वाह किया जाता है तिसका अन्न खाइ सो तप्तकच्छू करि शुद्ध होता है। तथा सकल्प किये अन्न में भोजन करै सो तीन दिन सापणाक व्रत करै जिसमें सब काम बन्ध छोडि के एकान्त में बैठिके उपवास करना होता है। इस तरह से भरद्वाज ने भी अपांक्तियों का याद्वान्न खाने पर बड़े प्रायश्चित्त कहे= शिशु चांद्रायरा का लक्षणा (चतुरःप्रातरश्रीयात् पिराडा नःविप्रसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्ये शिशुचांद्रायरांस्मृतं) अर्थात् इस रीति से व्रत करै कि चारघास प्रातःकालसूर्योदय की बेरापर खाय और चार कौर अस्त होते समय खाके राति वितारै तौ यही शिशु चांद्रायरा कहाता है पर और बातों से सावधानरहै ॥ आमश्राद्धादेशस्तु ॥ आमश्राद्धके लक्षणा (आपद्यत्तरीतीर्थे च चंद्रसूर्यग्रहेतया आमयाह द्विजैः कार्यं शूद्रेणातुसदैवहि अपत्नीकः प्रधासी च भायार्थस्य रजस्वला आमयाह द्विजैः कार्यं शूद्रेणातुसदैवहि=अर्थात्-द्विजातियोंको कचे अन्न का याह यातो आपत्काल में करना चाहिये कि जब रसोई बनाना आदि अग्नि का प्रबंध न होसके यातीर्थपर या चंद्रसूर्यके ग्रहरामें या जिसकेपत्नीके न होनेसे प्रबन्ध न होसके या जो कोई विदेशमें टौर ठिकाने विगावैठाहो या जिसकोभायरिजस्वला होगई हो तौभी आमयाह करै परन्तु शूद्रको सदा सर्वदाकचे अन्नका याहबेने की आज्ञाहै वह पाक विधि न करै=येनातें यहाँकेवल प्रसंगसे दर्शाई गई=अब ऊपरकी प्रकृत व्यवस्थाका श्रेय फिर लिखतेहैं कि ब्रह्मचारी होकर जो याद्वोंमें भोजन करै तिसके जुदे प्रायश्चित्त आगे देखीं ॥ श्राद्धभुग्ब्रह्मचारिप्रायश्चित्तं-वृहद्यम आह=सासिकादियुयोऽश्रीयादासमाप्त वतोद्विजः विरात्रमुपचासीद्वैप्रायश्चित्तविद्योयतेप्राणायामवयंक्रत्वाघृत प्राप्रयविशुध्यति (इदमज्ञानवियय सितिनिताक्षरा•कामतस्तु सखाहाश्रे=सधुमांसंचयोऽश्रीयात् श्राद्धं सूतकमेवया प्राजापत्यं चरेत्कच्छूवंतश्रेयसमापयेत्=अर्थात्-ब्रह्मचारियोंके लिये बड़े यमने कहाहै किजिस द्विजातीने अपना ब्रह्म चर्य आदि व्रत नहीं पूरा किया उसके भीतर यदि सासिक याह आदि का नौताखाय सो तीन दिन उपवास किये पीछे तीन प्राणायाम करिके घी चाहे तब शुद्ध होय (मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसको चाहिये जिसने अज्ञानतासे खायाहो क्योंकि • इच्छा सहित खानेवाले का प्रायश्चित्त आगे वेही वृहद्यम कहितेहैं कि=जोकोईब्रह्मचारी सधुमांसखाय या श्राद्धनेखाय या सूतक में खाय सो प्राजापत्य रूपी कच्छूव्रत करै तिस पीछे अपना व्रत पूरा करै ॥ आमश्राद्धभोजनेतु सर्वशार्द्धस-कच्चा सिद्धान्न देनेकी याहवाला अन्न चाहे गृहस्थी ना-

हारा या ब्रह्मचारी होके खाय तिन सबहीको अपने पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंका आवा प्रायश्चित्त करना चाहिये-इसका प्रमाण यहविंशन्मत्तका वचन आगे देखो (आम याद्वैतद्वन्तु प्राजापत्यंचर्षदा) कच्चे अन्नके याद्व में पक्के अन्न वाले प्रायश्चित्त चाहें प्राजापत्य वा औरही जो कुछहों सो आवेआवे कर्तव्यहैं यहनर्वच सर्वदा नियम समझो रहिना ॥ ० ॥ इन सबसे उपरालू जो उगना का वचन है कि=दशकृत्वापवे चापोगायत्र्यायाद्भुविजः ततःसन्ध्यामुपासीतशुद्धेत्तदनन्तरम् (तदनुक्तप्रायश्चित्त विययमिति मिताक्षरा=अर्थात्-याद्व भोगने वाला ब्राह्मण दश बार गायत्री पढि कर जल पीवें फिर उससे आंगली सन्ध्याकी उपासना नित्यविविके अनुसार करै तिससे शुद्ध होजायगा (सो यह छोटा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने उन याद्वोंका भोजन कियाहो जिनके नाम से कुछ प्रायश्चित्त कहीं नहीं लिखा यह मिताक्षराने कहा ॥०॥ संस्कारांगभूतश्राद्धान्नभोजनेतुव्यासः=अर्थात् संस्कारों के संगभूत जो बहुधा जन्मसे लेकर जातकर्म आदि संस्कारोंके साथ भी याद्वकिये जाते हैं तिनका अन्न खाने मध्ये व्यासजीने प्रायश्चित्त जुदा कहा है=यथा=निष्टते चूडाहोमेत्प्राडःनामकरणात्तथाचरेत्सांतपनंभुक्त्वाजातकर्मिणाचैवहि अन्योऽन्येषु त्भुक्त्वान्नंसंस्कारेषुद्विजोत्तमः नियोगादुपवासेनशुद्धतेनिन्द्यभोजने=अर्थात्-चूडा कर्म(चोटीरखाना) होचुक्केके समयपर जो याद्व पितरोंकी तृप्तिके अर्थ कियाजाय या कोई बड़ा होम पूरा होने के समय पर किया जाय या नामकरणा (दसूतनि) से पहिले किया जाय या जातकर्म जन्म होनेके समयका जो कर्म होताहै तिसमें याद्व कियाजाय इनमें जो कोई ब्राह्मण भोजनकरै वह सांतपन प्रायश्चित्त आचरै (परस्परभोजनव्यवहारस्थलेतु) दूसरी यह व्यवस्था है कि जिसने ऐसे किसी रिश्तेदार के घर निंध भोजन छठी दसूतनि या शृतसूतक आदि में किया हो जहाँ बदले में खाने खवाने का व्यवहार होय तो यह ब्राह्मण किसी और को नियोगी (मुखतार) बनाकर उसके द्वारा एक व्रत कराने से भी शुद्धहोताहै चाहें अपने आप करै तो भी कुछ नियेव नहींहै=मुखतार बनाने मध्ये-शास्त्रांतर में यह नियम है= भार्याभर्तृ व्रतंइयात्तभार्यायाश्चपतिस्तथा असामर्थ्येहयोस्ताभ्यांव्रतभंगो न जायते- तथा-पुंश्वाविनयोपेतंभगिनींभातरंतथा स्यामभावसवान्यंत्राह्यशाविनियोजयेव= भर्ताके व्रतको उसकी भार्याकरै या भार्याके व्रतको उसका भर्ताकरै तो इस तरहसे दोनों को किसी समय सामर्थ्य न होनेमें व्रतका भंग नहीं होताहै-भार्या के न होने में-अच्छे चाल चलन संयुक्त किसी पुत्रको अपने व्रतपर मुखतार करै या वहिनको

या भाई को इनके न होनेमें औरही किसी ब्राह्मण को नियुक्त करै ॥ सीमंतक-
र्मादिसंस्कारेषुच ॥०॥ सीमतोन्नयन कर्म जो गर्भाधानसे छूटे आठवे महीना एक
पूजा विधि प्रांसुद्ध है तथा ऐसे और जो कुछ संस्कार होते हैं तिनका अन्न खाने
मेंधुये जुदा प्रायश्चित्त है—तदाह धौम्यः—ब्रह्मोदनेचसीमंत सीमन्तोन्नयनेतथा जात
याद्वेनवयाद्वेद्विजप्रचांद्रायणचरेत् (अन्नब्रह्मोदनाख्यकर्मयज्ञांगभूतंसोमसाहचर्या
दितिमित्तासरा=अर्थात्—ब्रह्मोदन इस नामका एक कर्म विशेष यज्ञोंका कोई एक
अंग होताहै तिसमें यदि कोई ब्राह्मण खाय तथा सोमनामसे भी यज्ञ विशेष कोई
वेदोक्त कर्म होताहै तिसमें खाय या सीमन्तोन्नयन में खाय• जातयाद्व जो पुत्रजन्म
होने वादि किये जायें तिनमें खाय या नवयाद्व जो मरने पर एकादशात्क किये
जायें तिनमें खाय तो यह ब्राह्मण चान्द्रायण करै तब शुद्ध होय ॥ अब नीचे उन
अभक्ष्योंका वर्णन होगा जो अन्न सर्वथा निर्विकार है कोई तरह दोग्य यद्यपि नहीं
है परन्तु केवल परिग्रहका दोग्य मानाजाता है अर्थात् विरले मनुष्यों का स्वामित्य
कच्चा उनपर होनेसेही दोग्य लगता है तिससे अभक्ष्य (न खानेयोग्य) कहेजातेह ॥

अथपरिग्रहदोषमयान्नस्याभक्ष्यस्यभक्षणेषुप्रायश्चित्त प्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः त्रिसप्ततितमः (७३)



इस परिच्छेदमें केवल उन्हींके प्रायश्चित्त कहे जायेंगे कि जिन मनुष्योंनेपरि-
ग्रह दोग्यमय भोजन किया हो (इसका द्यौरा इसी चक्रके ऊपर लिख चुके तहां
देखो) परन्तु उसके भेद अनेक हैं सो नीचे पाठ वांचने से प्रतीत होगे कि इतने म-
नुष्योंका दिया किया अन्न अभोज्य होता है• तिससे अनन्तर जबदस्ती कोई म्लेच्छ
आदि कुछ खवावै या हिंसाकर्म करावै तिसके भी प्रायश्चित्त (परिग्रहा भोज्य में
गिनती) हैं• फिर क्षुत्कोके परिग्रहका अन्न खानेवालोके• फिर निपट निपटेआदि
का अन्नखानेवालोके प्रायश्चित्तहै• ये सबजुदेभेद भी उसीपरिग्रहमयदोग्यमेंगिनतीहै ॥

(परिग्रहाभोज्यभोजनप्रायश्चित्तं)

अर्थात् जो भोजन अपने स्वरूपसे नियुद्ध नहींहै पर किसी विरले पुरुषका स्वा-

मित्त्व उसपर होनेसेही खानेका नियेध होय सो (परिग्रहा शुचि) कहाता है=जिन पुरुषोंके स्वामित्व वाला अन्न खानेका नियेध है तिनके नाम लक्षणा योगीश्वर भी आचार मर्यादामें बर्णन करचुके हैं तहां १५९ एकसौ उनसठि मूलश्लोक उत्तरार्ध से लेकर १६४ एकसौ चौंसठिके अन्ततक साठे पांच प्रलोकों की व्यवस्था देखी= और=मनुने उनसे कुछ अधिक नाम लक्षणा दर्शायेहैं कि जिनका अन्नखाना मनेहै= यथाह मनुः=नायोचियततेयज्ञे ग्रामयाजिहुतेतथा स्त्रियाक्तावेनचहुतेभुंजीतप्राह्मणः क्वचित् सत्क्रुदातरारातुनभुंजीतकश्चन गणान्नागराकान्नांच विदुयाचजुगुप्सितस स्तेनगायनयोश्चाक्षन्तस्पोवाधुं यिकस्यच नादीक्षितकदर्यस्यवद्वत्यनिगाडस्यच अभिशस्तस्ययंडस्यपुंश्चल्यादांभिकस्यच विक्रितकस्यमृगयोः क्रूरस्योच्चिह्यभोजिनः उप्रान्तंसूतिकान्नांच पर्यायाक्षमनिर्देशम् अनर्चितंतृयासांसमवीरायाश्चयोजितः द्विय दन्तकदर्यान्नांपतितान्नमवक्षतम् पिशुनानृत्तित्तौश्चैवक्रतुविक्रयकस्यच शैल्यतन्तुवा यान्नांकतस्रस्यान्नमेवच कर्मारस्यनियादस्यर्गावतरणस्यच सुवर्साकतुर्वेनस्य शस्त्र विक्रियास्तास्था श्वतांशौडिकानांचचैलनिर्णयकस्यच रजकस्यनृशंसस्ययस्यचो पपतिशुंहे मृष्यन्तिपेचोपपतिस्त्रीजितानांचसर्वशः अनिर्देशंचश्रेतान्नमनुष्टिकरमेव चेति (अत्रचपदार्थाभ्रक्ष्यकांडे आक्षकांडेचक्ष्याख्याता इतिमिताक्षरा=अर्थात्- यहां अथोचिय उसकी समझना जो पुरुष विख्यात न होय तिसकी करी उद्योगार आदि यज्ञका अन्न भोजन करना चिवेकी ब्राह्मणों को नियेध है. ग्राम के पुरोहित पाधाका किया होम यज्ञ तिसका अन्न खानेका नियेधहै. स्त्री ने या निपट नपुंसक ने होम यज्ञ किया हो तिसमें भी खानेका नियेध है. सब सतवारे नशेवाज कोची रोगी इनका भी कभी न खाय. गणान्न जो सठवारी आदि भण्डारा करतेहैं तिसका अन्न भी. गर्राका वेप्रया खानगी आदि स्त्रियों का अन्न. और भी जो कोई अन्न जानी पुरुषोंका निन्दा किया ठहिरै सोभी. चोर गायन की वृत्ति करने वालों का अन्न. लकाड़ी काटने आदिकी जीविका करनेवाले बड़ेयों का अन्न. अनुचित रीति से विआज खाताहो तिसका अन्न. अदीक्षित जिसकी यज्ञोपवीत आदि गुरु दीक्षा न मिलीहो तिसका अन्न. कदर्य जिसने खोटाधन संग्रह किया तिसका अन्न. कैदी और हवालातीका अन्न. अभिशस्त जिसको शाप या कोई पाप लगा हो तिसका अन्न. यंड नपुंसक जो अतिकामी होकर नपुंसकहोगयाहो तिसका अन्न. पुंश्चली स्त्री और दम्भी पुरुषका अन्न. चिकित्सक जो चीरफारकी चिकित्सा और औषधी बनानेमें जीवहिंसा करताहो तिसका अन्न. चिडीमार आदि शिकारी लोगोंका

अन्न० क्रूरप्रकृति वालेका अन्न० जूठ खानेवालों का अन्न० उग्र एक जाति होती है जो क्षयके बीजसे पुद्रकी कन्यामें उत्पन्न हुई थी दोनोंके लक्षणा मिलि के क्रूरही आचरणा उसके होते है तिसका अन्न० मूतिका सौरिका अन्न जो दशादिन के भीतर हो० पर्याय अन्न वही जो शुद्रका अन्न ब्राह्मणाके हाथसे या ब्राह्मणाका अन्नशुद्र के हाथसे परोसा जाय सोभी० अर्नार्चित अन्न जो इन्द्रअग्नि आदि देवताओं के निमित्त नहीं अर्पणा कियागया० वृथा मांस जो यज्ञविधिसे उपरालु हुआहोय० अवीरा नारीका अन्न भी न खाना (अवीरा वही कहातीहे जिसके पुत्र पति इन दोमें कोई एक भी नहो० शत्रु का अन्न० कदर्य अतिछपरा जो धनके होते हुये भी कृतुम्ब को आराम न देताहो तिसका अन्न० पतित जो जातीधर्मसे गिराये गये तिनका अन्न० अवक्षुत जिस अन्नके ऊपर किसीने छींकमारीहो० पिशुन जो विराने अवशुरा हुंछि हुंछि गौरों से कहिता फिरै तिसका अन्न० अमृती जो असत्यही अभ्यास रखता हो तिसका अन्न० क्रतुविक्रयक वह पुरुष जो यज्ञादि कामोसे बची हुई खानी पीनी सामग्री की चीजें बेचे तिसका अन्न भी न खाना अथवा दूसरा अर्थ यह भी है कि क्रतु नामसे अपनी कोईसी प्रतिज्ञा स्वरूपी संकल्पको बेचिडारै तिसका अन्नभी अभस्य होताहै (इसका दृष्टान्त जैसे इस सत्यही बोलते है किसी मामिले पर असत्य नहीं कहिसक्ते हैं सेसे संकल्पकी सची प्रतिज्ञा जिसने बहुत कालतक पालन करी हो और कदाचित्त किसी मुआमिलेपर कुछ लेनेके लोभमें आकर असत्य कहि आवै तो यह पुरुष क्रतुविक्रयकर्ता ठहिरै क्योंकि उसके पास सत्य की प्रतिज्ञा स्वरूपी बड़ा उत्तम यज्ञफल मौजूद और सबको मालूमथा तिसको उसने दाम लेकर बेचि दिया इसी दृष्टान्तसे और तरहकी भी अटल प्रतिज्ञा समझि लेना कि इस शरणागत की रक्षा अवश्य भावसे करते है और कभी लोभ में आकर ऐसा न करै इत्यादि० शैल्य गट कहते हैं तिनका पेशा जो कोई वैवर्णिक जाति करने लगे तिसका अन्न० इसी तरह तन्तुवाय कपडा बननेका पेशा करनेवालोंका अन्न० कृत्त जो किसीका किया हुआ उपकार भेटिडारै तिसका अन्न० कर्मर लुहारका पेशा करनेवालोका अन्न० नियामद मल्लाह आदिका पेशा करनेवालोंका अन्न० रगावतरण जो रंगासाजी या तसवीरोंका उतारना यद्वा स्वंगतमाशोमि आपही वेण बदलिके तरह तरहके अवतार धरै इत्यादि पेशा करने वालोंका अन्न० मुनार और बंसफोर और शस्त्र बेचनेवालों का अन्न० कृत्त पालनेवालोंका अन्न० कलालोंका अन्न० चैलनिर्वाजक धोबी आदि जो कपड़े धोनेका कामकरै तिनका अन्न० रजक छीपा रंगरेज आदि जो रंगाई का

कासकरै तिनका अन्न० नृशंस हिंसक जो जीवहिंसा वाला कासकरै तिनका अन्न० जिसके घरमें उपपत्ति लुगाईका जारयार भी रहिताहो तिसका अन्न० जे कोइ पु-स्य अपने घर जारको आतेजाते देखि सहिलेतेहों तिनका अन्न० जो स्त्रियोंके जीते हुये उन्हींके वशमें रहितेहों अर्थात् जिस घरमें पुरुषकी वात न चलतीहो तिसका अन्न० प्रेतका अन्न जो मौतसे दशदिन भीतर काहो० अतुष्टिकर अन्न जिसको देखने से मनमें स्तानि खड़ी होती हो० ये सब अन्न खाकर प्रायश्चित्त करना चाहिये सो आगे दशविंशे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि इस व्यवस्था में जो कुछ पदार्थ कहे गये तिनकी व्याख्या पहिले भी जहां तहां अभिष्यकांडके पाठमें और आहकांडके पाठमें लिख चुकेहैं=मनुने इन सबके नाम दशानि पीछे सबका एकही प्रायश्चित्त कहिदिया सो देखी=यथा=भुक्ताऽतोऽन्यतमस्यान्नमन्त्यासपरांयइस नत्याभुक्त्वा चरेत्कच्छूरेतोचिरामुत्रमेवचेत्ति=अर्थात्=इन सबमेंसे किसी एकही का अन्न बिना जाने खाकर तीन दिन क्षपसाक रूपीव्रतकरै जिसमें सबकान धंवे छोड़िके निराहार पैठना होताहै और जिसने जानिवृष्णि खायाहो सो पूरा कच्छत्रत आचरे या जिस ने राह मत्त वीर्य धोखासे खायाहो सो भी कच्छ प्रायश्चित्त करै तब शुद्धहोय ॥०॥ धोखासे उक्तान्न खाइ लेने पर पैठेनसिने भी तीनही दिनका व्रतकहा और अन्न भी कुछ औरभांतिके नियेव कियेहैं=तथाह पैठेनसिः=कूनखीश्यावदन्तःपित्वाबिब दमानः स्त्रीजितःकृष्टोपिशुनः सोमविक्रयीवारिणजकोग्रामयाजकोऽभिशास्तोऽवृत्त्या मभिजातः परिवृत्तिः परिविन्दानोदिवियुपतिः पुनर्भुपुत्रचौरः कांडपृष्टसेवकश्चेत्य भोऽयान्नाअपांक्त्या अथाद्वाहर्षिःसर्वाभुक्त्वा दत्त्वावाऽविज्ञानात्स्वरावृत्तिः=अर्थात्=इसमें जो नाम कहे तिनके भी अर्थ पहिले प्रकरणांमें जहां तहां द्यौरैवार कहि चुके हैं तिससे यहां केवल उन्हींका अर्थ लिखे देतेहैं जो कोइसा विशेष नामहोय० विशाडं नखवाला० श्यावदांत बाला० पितासे विरोध राखने वाला० स्त्रियों से हारा हुआ० कोडी० पिशुन चुगल खोर० सोमविक्रयी० वारिणजक ब्राह्मण० ग्रामयाजक ब्राह्मण० अभिशास्त जिनको शाप या पाप लगाहो० वृत्तली में सन्तान जिसने पैदा करी० परिवृत्ति० परिविन्दान० दिवियु का पति० पुनर्भुका पुत्र० चौर० जिसब्राह्मण के घर बनेनी उसकी भार्या बनिके वैदी हो वह कांड पृष्टसेवी समझना इस वचन के प्रसारासे कि (स्वहृलंपृष्टतः कृत्वायोवैपरकृलंप्रजेत तेनदुप्रचरितेनासौकांडपृष्टइतिस्मृतः) इतने सभी पुरुषोंका अन्न खाने योग्य नहीं और ये पातितमें पैठारने योग्य नहीं और आह के योग्य नहीं इनका अन्न बिना जाने धोखासे खाकर

तीन दिन उपवास करै तत्र शुद्ध होय ॥ ० ॥ इन्हीं सबके नाम कृष्ण इनसे भी अधिक दर्शाय कर शंखजी ने इनका अन्न खाने वाले ब्राह्मणों को चांद्रायण प्रायश्चित्त करना कहा है जो एक महीना भरमें होताहै सो अभ्यास पर समझना कि जिंमने अनेकवार इनका अन्न खाया हो वह चांद्रायण मंडो शुद्ध होगा=इसी प्रकार=गीतम ने जूढनि खवैया पंचली अभिगस्त आदि अभोज्यार्चों के नाम सब गिनाइकर उनका अन्न खानेवाले को पहिले वसन करिके घी चाटना प्रायश्चित्त कहा है सो अति छोटा होने के हेतु से आपत्कालिक विषय समझना कि जिमने अन्नाकाल आदि आपत्तिमें उनका अन्न खायाहो सो इस छोटे प्रायश्चित्त से पवित्र हो सक्ता है ॥ जिसको जवदंस्ती से अभोज्य भक्षणा करवायागया हो तिसका प्रायश्चित्त नीचे ॥

(बलात्कारेणभोजितस्यप्रायश्चित्तं)

यस्तुबलात्कारेणभुज्यतेतस्यापस्तवेनविशेषउक्तः=यथा=बलाघानीकृतायेतु स्लेच्छचांडालस्युभिःअशुभकारिताः कर्मगवादिप्रारिणादिमनस उच्छिद्यसामार्जनचैवतयोच्छिद्यस्यभोजनम् खरोष्टविडवराहारा सामियस्यचभक्षणम् तस्त्रीणांचतयामंगस्ताभिप्रचसहभोजनम् मासोयितेद्विजातीनुप्राजापत्यंविशोवनम् चांद्रायणत्यादिताग्नेःपराकस्त्वयवाभवेत् चांद्रायणंपराकश्चरेत्संवत्सरोयितः संवत्सरोयितोगुत्रो मासाईयावकंपिबेत् सामसायितःशुद्धःकच्छपादेनशुद्धति ऊर्ध्वंसेवत्सरात्कल्पेप्रायश्चित्तंदिजोत्तमैः संवत्सरोच्छिभिश्चैवतद्रावंसंनियच्छति-अर्थात्=जिस किसी को जवदंस्ती से न खाने की वस्तु कुछ खवाई जाय तिसके जुदे प्रायश्चित्त आपस्तंबने कहे हैं कि=जे कोइ कहेों पकड़ि के जवदंस्ती से म्लेच्छ चण्डाल आदि शकृषों ने दास बनाये और मज्जान वा अशुभ काम इनमें करवाये या गाय बैल आदि जीवों का बध उनके हाथ से कराया हो और गदग ऊँट घिया खाने वाला सुअर इनके मांस खयाये हो और उन चण्डाल म्लेच्छों की स्त्रियों से मद्रम इनका हुआहो या उनके माथ मिलिके भोजन करना पराहो-येसा द्विजाती तीनोंवर्णों में कोइ हो जो एक महीना भर तक उनमें नाथ बना फँसा रहाहो तिसको शुद्धि चारद दिन प्राजापत्य की विधि करने से होजाती है परन्तु वह पुरुष जो आदितान्नि यग्नि की पूजा करने वालाहो तो चांद्रायण करिके शुद्ध होगा अथवा महीना के भीतर कुछ थोड़े दिन चण्डालोंके माथ रहिना पराहो तो इन अग्निमान् की शुद्धि चारद

गृहस्थधर्मवृत्तोद्दातिपरिवर्जितः ऋयिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचःसंप्रकीर्तितः=अर्थात्-
 लिखित नामा मुनि कहितेहैं कि=वाधुं यिक जो अनृचित किश्तिलगानेकी उगाही
 आदिप्रकारोंसे व्याजखाता हो और अत्रत वह कि जिसके किसी बातका नियम
 सचा नहोय और असुत वह कि जिसके वेदा पोता पर पोता आदि नहोने में बारह
 प्रकारके शास्त्रोक्त पुर्षों में भी कोई नहो और गूद्रवर्षा में कीइसी जाति हो। इनके
 अन्न खाइके तीनदिन निराहार वृत्करै=तया उन्हींमें यहदूसरा वचन कहाहै कि=
 परपाक निवृत्त=परपाकरत=अपच=इन तीनोंका अन्नखाकर ब्राह्मणाको चांद्रायणा
 करना चाहिये(मिताक्षरा कार कहितेहैं कि यहइतना बडा प्रायश्चित्तकृष्णकवार
 के भोजन पर नहीं किन्तु अनेकवार खाने का अभ्यास करनेवाले पर ससक्तता=
 अपने धरे तीनों नामके लक्षणा भी लिखित मुनि आपही कहिते हैं कि=जो गृहस्थी
 अग्नि कर्मकी आरोपित करिके भी पंचयज्ञोंको न करै उसीको (परपाकनिवृत्त)
 इसनामसे मुनीश्वरोंने कहाहै और जो पांचयज्ञोंको करिके भी नित्य निरन्तर प्रातः-
 काल उदिके पराये अन्नसे नैतारवैँता खाकर जिन्दगी काटताहै वही(परपाकरत)
 इस नामसे कहाता है और जो गृहस्थ को सब धर्मोंमें लगा हुआ तत्पर होते भी एक
 दवाति कर्मसे खालीहै कि वह भिक्षा आदि किसीप्रकारसे भी दानमाद्य कृष्ण न क-
 रताही उसीको धर्मतत्त्वके जाननेवाले ऋयोश्वरोंने(अपच)इसनामसे जताया है ॥०॥
 जोकि ब्रह्मचारी आदिका अन्नखाने पर यह प्रायश्चित्त है कि=यर्थात्पञ्चब्रह्मचारी
 चपक्काचस्वामिनावुभौतयोरन्ननभोक्तव्यं भुक्त्वाचांद्रायणांचरेदिति=अर्थात्-संन्यासी
 और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्काच के परिभोक्ता हैं परन्तु इनदोनोंका अन्न गृहस्थीको
 न खानाचाहिये कदाचित्त कोई खाय सो चांद्रायणा करै=और जो=पार्ष्णा याद
 आदि न करनेवालोंका अन्नखानेपर भरहाजने प्रायश्चित्त कहाहै कि=पक्षेवायसि
 वासासेयस्यनाप्रन्तिदेवताः भुक्त्वादुरात्मनस्तस्यद्विजप्रचांद्रायणांचरेदिति (तदुभय
 मप्यभ्यासविययनितिमिताक्षरा=अर्थात्-हर पखबारे या हरमहीने जिसके घर दे-
 वता नहीं जिमाये जातेहों ऐसे दुरात्माका अन्नखाकर ब्राह्मणाको चांद्रायणा करना
 चाहिये (सो यह दोनो वचन को प्रायश्चित्त भी एकवार के भोजन पर नहीं किन्तु
 अनेकवारके अभ्यासपर सबक्तना यह मिताक्षराकारने कहा ॥ ० ॥ पहिले सबकहे
 गये नित्यिकों से उपराल जो नित्यिहाचरणावाले कृष्ण और हों तिनका अन्नखाने पर
 यद्विंशन्मत के ग्रन्थमें प्रायश्चित्तहै सो देखी=यथा=निराचारस्यविप्रस्थानियिडा,
 चरणास्यच अन्नभुक्त्वाद्विजःकुर्यादिनमेकमभोजनम्=अथात्रैवसंवत्सराभ्यासेयद्विं

शस्मतेरवोक्तं=यथा=उपपातकयुक्तस्य अदमेकं निरन्तरम् अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्यात्परा
 क्तं त्विगो धनमिति=अर्थात्-जिस ब्राह्मणमें ब्राह्मणत्वात् आचार न होय तिसका
 अन्न और जो खोटे आचरणसे संयुक्त होय तिसका अन्न जो कोई ब्राह्मण खाय सो
 एकदिन निराहार उपवास करै=इन्हींका अन्न जो एकसालभर निरन्तर खातार है
 तिसका प्रायश्चित्तभी यद्वांशस्मत्तद्गीमें कहा है कि=उपपातकसे संयुक्तका अन्न जो
 कोई ब्राह्मण एक वर्षभर निरन्तर खाय तिसको पराक नामका प्रायश्चित्त करना
 चाहिये (उपपातक अनेकधा होतेहैं परन्तु यहाँपर निराचार और नियिद्धाचरण
 इन दोहीका चर्चा है ॥ ० ॥ इत्थं भक्ष्याभक्ष्यप्रायश्चित्तकांडगत विशेषोदितव्रतक
 दंबकं द्विजारयश्चैव सत्रियादीनां तु पादपादहान्याभवतीति मिताक्षरा=विप्रतुसकल
 देयं पादोत्संक्षिप्ये स्मृतम् वैश्वदेवैः पादसकस्तु शूद्रजातियुगस्यते इति विष्णुस्मरणात्=
 अर्थात्-मिताक्षराकार कहिते है कि यह भक्ष्याभक्ष्य वाले प्रायश्चित्तों के कांड में
 आकर जुदा एक व्रतोंका समूह दर्शाया गया सो ब्राह्मणकोही प्रयोजनपर आरूढ़
 है तथापि जो कदाचित्त इन्हीं बातोंसे सजीका प्रयोजन आनिपरै तो उसको चौथाई
 कमकरिके यही प्रायश्चित्त पीने पीने बतायेजायँ एवं वैश्यको आधे आधे शूद्रको
 एक एक पाद बतायेजायँ इसका प्रमाणा अगोक्त विष्णुका वचन है कि=ब्राह्मण
 में पूरा प्रायश्चित्त लगावै और क्षत्रीमें पीन और वैश्यमें आधा और शूद्रजातियोंमें
 एक पाद दीक है परन्तु प्रकरणा के बीचमें जहाँ कहीं बिरली व्यवस्था तीनों वा
 चारोवर्गोंकी भिन्न भिन्न कहिचुकेहों तिसमें यहकम करनेका नियम नहीं लगाया
 जासक्ता है यह याद राखना ॥

(इत्यभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तप्रकरणं)

इस प्रकरणमें ६६ अनहृत्तरि परिच्छेदके प्रारम्भ से लेकर ७३ तिहृत्तरि के अंत
 तक पांच परिच्छेद हैं पांचों में सब तरहके अभक्ष्योंकी व्यवस्था कही गई है तिससे
 अभक्ष्योंका प्रकरण इसका नाम दर्हरा ॥

अब नीचे ७४के परिच्छेदमें दो किस्मके पापोंका जुदा जुदा प्रायश्चित्त लिखा
 जायगा-तहाँ यद्यपि जातिभ्रंशकर आदि नामोंकी किस्म एक जुदा है उसका परि-
 च्छेद भी जुदा होना चाहिये था परच उसका पाद अतिशय धोड़ा है उनके लिये
 जुदा घर नहीं बनाया जासक्ता-तिससे प्रकीर्ण किस्मके परिच्छेद में उनको भी वि-
 राने घरमे जगह देनी परैगी ॥

दिन पराक व्रत की विधि करने से होजायगी० परन्तु जो महीनासे अधिक एकवर्ष तक चण्डालोंकेवशमें रहाहो चाहें अग्निमास या अन्नग्निमासकोइहो चांद्रायणऔर पराकभी दोनों प्रायश्चित्त करें तब शुद्धहोय यहसब द्विजातियोंकी व्यवस्था कही० कदाचित्त कोई शूद्रही एक वर्ष तक ऐसा फँसा रहा हो तिसको एक पखवाराभर यावक पीके व्रत करने चाहिये (गोमूत्र में रखे जी का दलिया यावक होता है० परन्तु जो शूद्र भी एकही महीना तक उनमें फँसा रहाहो सो ऋच्छ व्रत की चौथाई केवल तीन दिन यावक पीकर या ऋच्छ ही की रीति से व्रत करिके शुद्ध होजाय गा० परन्तु जहां कोई द्विजातीयाशूद्र एकवर्षसे जितना अधिक दिनोंतक चण्डालों में घिरा फँसा रहाहो उतनाही प्रायश्चित्त भी अधिक बढ़ाकर हिमाव से करवाना चाहिये सोभी यह कल्पना सिर्फ तीन वर्ष की भीतर में प्रायश्चित्त बढ़ाने की हो-सकती है किन्तु पूरे तीन वर्ष चण्डालों के साथ रहिते वीति जाने में यह पुरुषभी उन्हीं के समान होजाताहै फिर प्रायश्चित्त नहीं लगता ॥ अब नीचे यह व्यवस्था लिखी जायगी कि जबकोई किसी सुतकमेंखाय तिसपर क्याप्रायश्चित्त चाहिये ॥

(आशौचपरिग्रहान्भोजनप्रायश्चित्तं)

अवकाशालः= अज्ञानाज्ञोजनेविप्राः सुतकसुतकेषुवा प्राणायामशतं कृत्वाशुद्धते शूद्रसुतके वैश्वेयसिध्वेद्विज्जिचिंशतित्रिंशद्विगोदश सकाहंचयहंपंचसप्तत्रयभोजनस तथाशुद्धिर्भवत्येषांपञ्चगव्यंपिवेततः (इतिब्राह्मणादिक्रमैरौकाहव्यहारादयोऽप्यु- इदमकामविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्-सूतकों वाले काम के कच्चे में रहित हुआ अन्नभी अभोज्य होता है तिसके खदेया पर जो प्रायश्चित्त चाहिये सो का- गलमुनि कहिते हैं कि=जो ब्राह्मण किसी शूद्र के वृद्धिसुतक में या मीत सुतक में बिनाजाने भोजन करें सो एक सो १०० प्राणायाम करिके शुद्ध होते हैं और वैश्य के सूतकों में भोजन करें सो साठ ६० प्राणायाम करिके शुद्ध होते हैं और क्षत्री के सूतकों में खाकर २० प्राणायामों से और ब्राह्मण के सूतकों में खाकर दश १० प्राणायामों से पवित्र होते हैं० परन्तु केवल प्राणायामों से नहीं किन्तु ब्राह्मण के सुतक में एकदिन क्षत्री के सुतकमें तीनदिन वैश्य के सुतक में पांचदिन शूद्रके सुतकमें खाइकर सातदिन निराहार व्रतभीकरे फिर व्रतोंके समाप्त होने बादि एकदिन पंचगव्य पीवे तब शुद्धहोय (यहप्रायश्चित्त इच्छाके बिना भूतभालमें खाने मध्ये कहागया=किन्तु=जानि बूझि इच्छा सहित खानेके विषय पर अगिला प्राय- श्चित्त देखी=अदाह मार्कंडेयः=भुक्त्वातुब्राह्मणाशौचे चरेत्सातपनद्विजः भुक्त्वातु

सत्रियाशौचेतथाकृच्छ्रोविवीयते वैश्याशौचेतथाभुक्त्वा महासांतपनंचरेत् शूद्रपयैव
 तथाभुक्त्वा द्विजश्चांद्रायणांचरेदिति—अर्थात्—ब्राह्मण किसी ब्राह्मण को सूतकों में
 भोजन करे तिसको सांतपन करना चाहिये • सभीके सूतकोंमें भोजन करे सो कृच्छ्रव्रत
 आचरे • वैश्य के सूतकों में भोजन करे सो महा सांतपन करे • शूद्र के सूतकों में कोई
 द्विज भोजन करे सो चांद्रायणा करे तब शुद्धहोय ॥०॥ इनके सिवाय जिसने इच्छा
 सहित वारम्बार सूतकोंमें खानेका अभ्यास किया हो तिसके लिये वड प्रायश्चित्त
 है सो आगे देखो—तदाह शंखः—शूद्रस्यसूतकोभुक्त्वा यद्मासव्रतमाचरेत् वैश्यस्य
 तुतथाभुक्त्वात्रिमासान्व्रतमाचरेत् क्षत्रियस्यतथाभुक्त्वाद्द्वीमासोव्रतमाचरेत् ब्राह्मणा
 स्यतथा१०शौचेभुक्त्वाभासव्रतंचरेत् (इदमभ्यासविययमितिमितासरा—अर्थात्—
 शंख मुनि कहते हैं कि शूद्र के सूतकों में खाइके छमाही भर व्रत आचरे • वैश्य के
 सूतकोंमें खाइके तीन महीने व्रतकरे • क्षत्रीके सूतकोंमें खाइके दो मासभर व्रत करे •
 ब्राह्मण को सूतकोंमें खाइके एकमहीना भर व्रतकरे ॥ ० ॥ ऊपर चागल के वचनसे
 आदि लेकर इसीपाठमें सूतकी अन्न खानेपर जोकृच्छ्र प्रायश्चित्त लिखेगये तिसका
 प्रारंभ सूतक वीतिज्ञानके दूसरेदिनसे करनाहोताहै क्योंकि जितनेसूतकी दिन बाकी
 हैं उतने दिन खानेवालाभी सूतकी रहिता है उसकोभीज्ञानभावकी आशौच विधि
 करनी होती है • यह नियम देखो सब से पहिले परिच्छेदमें चौदहवीं अधिकोक्तिके
 अन्त में गौतम का वचन है • फिर सत्रहवें १७ सूत श्लोक वाली अधिकोक्ति के
 अन्त में देखो जहां सूतकान्न भोजन के नियम आदि नियम जो उसी अधिकोक्ति
 के पूरे होने तक व्यवस्थित हो रहे हैं कि जिस वर्रा के सूतकमें शामिल होय यदा
 अन्न खाय उसी वर्रा के समान सूतक माने—और यहाँभी अशौच विष्णु का वाक्य
 देखो कि (आशौच व्यवगमे प्रायश्चित्तकुर्यात्) सूतकी दिन वीति जानेपर प्राय-
 श्चित्तकरे ॥ अग्नीचे निषट् निषूते आदिका अन्न खानेपर प्रायश्चित्त कहेजायगे ॥

(अपुषादीनां भोजन प्रायश्चित्तं)

अथाह लिखितः—भुक्त्वावाहुंयिकस्यान्नमव्रतस्यासुतस्यच शूद्रस्यचतथाभुक्त्वा
 विरात्रस्यादभोजनस—तथा—परपाकनिवृत्तस्यपरपाकरतस्यच अपचस्यतुभुक्त्वाचं
 द्विजश्चांद्रायणांचरेत् (सूतकाभ्यासविययमिति मितासरा—परपाकनिवृत्तादेर्लेस
 सांचतेनेवाक्तं—गृहीत्वग्निंसमारोप्यपचयजान्निवेषेत परपाकनिवृत्तो१०सोमुनिभिः
 परिकीर्तितः पचयज्ञांस्त्रयंकत्वापरान्नादुपजीवति मततंप्रातर्कृत्यायपरपाकरतस्तुसः

अथजातिभ्रंशकरसंज्ञकाद्युपपापानां प्रकीर्णसंज्ञरूपापानां
चवहुविधानाप्रायश्चित्तप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः
चतुःसप्ततितमः (७४) ॥

—*—

यह परिच्छेद अपनी प्रधानता से प्रकीर्ण पापों के प्रायश्चित्त पर आरूढ है तथापि इसके प्रारम्भ में पहिले जातिभ्रंशकर १ सकरीकरणा २ अपाधीकरणा ३ मलिनो करणा ४ इस नामसे चारप्रकार के उपपातकों के प्रायश्चित्त संक्षेप रीति से कहिदिये जायेंगे—तिस पीछे प्रकीर्णक पापोंको विस्तार दियाजायगा (क्योंकि प्रकीर्ण यह नाम यद्यपि सक है पर भेद इसके अनेक हैं) किन्तु (ददुक्त तत्प्रकीर्णक)जो जो उपपातक किसीप्रकरणा या परिच्छेदमें गिनती न कियेगयेहों सो सब यहां हुंढने से मिलेंगे क्योंकि प्रकीर्णक उन्हींका नाम है जो पहिले कहेंनहींकहे ॥

(अथ जातिभ्रंशकरादिपातक प्रायश्चित्त)

यद्यपि सभी पातक उपपातकों के प्रायश्चित्त यथा क्रम से वर्णन होचुके हैं तथापि एक यह भेद समझना चाहिये कि जितने उपपातक दशयि गये उन्हीं में से बिरलों वा अनेकों के जुदे नाम जातिभ्रंशकर पाप सकरी करणा पाप अपाधी करणा पाप मलिनो करणा पाप इत्यादि मनु आदि मुनीश्वरों ने जुदे नाम भेद किये हैं यह वृत्तांत २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्ति में देखौ—जिन मुनीश्वरों ने ऐसे जुदे नाम धरे तिनको जुदे नामों के प्रायश्चित्त भी उसी तरह कहिने परे—तिनको भी इस स्थल पर लिखते हैं कि पढने वालों को सन्देह न रहै तिनमें प्रथम मनु का वचन देखौ= यथाह मनुः= जातिभ्रंशकरकर्मकृत्वाऽन्यतमनिच्छया चरेत्सांतपनकच्छ प्राजापत्यमनिच्छया सकरापात्रकृत्येयुमासःशोचनमेदवः मलिनो करणाप्येयुतप्तःस्याद्यावकस्यहमिति (अन्यतमनितिसर्वत्रसवध्यते= अर्थात्—मनु कहिते हैं कि जिन अनेक पापोंका नाम जाति भ्रंशकर सैने धरा तिनमें से कोई एक कर्म इच्छा सहित जो कोई करे तिसको सांतपन कच्छ करना चाहिये जिसने इच्छा को बिना कर्म किया हो तिसको प्राजापत्य चाहिये इसी तरह सकरी

करणा में से या अपात्रीकरणा में से कोई एक पाप कर्म करे तिसको एक महीना चांद्रायणा करना चाहिये इसी तरह मलिनी करणीय नामके कर्मों में से कोई एक पाप करे तिसको तीन दिन गरम यावक पीकर व्रत करना चाहिये ॥०॥ इन्हीं पापों पर यमने भी जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथाह यम=संकरीकरणां कृत्वा मासमश्रीतया वकस कृच्छ्रात्तत्कृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तं समाचरेत् अपात्रीकरणां कृत्वा तत्कृच्छ्रं शाशुद्यति सांतकृच्छ्रे सायाशुद्धिर्द्वासांतपनेन वा मलिनीकरणीयेभ्युत्पन्नकृच्छ्रं विशी-
घनम्=वृहस्पतिनापि जातिभूशकरेविशेष उक्तः=ब्राह्मणस्य रुज कृत्वा रासभादि प्रभापणस्य निन्दितेभ्यो घनादानं कृच्छ्रार्धव्रतमाचरेदिति (स्याज्जातिभूशकरादिप्रा-
यश्चित्तानां मन्वाद्युक्तानां जातिशक्त्याद्यपेक्षया विद्योविभजनीयः इति मिताक्षरा= अर्थात्-यम ने सेसे कहा है कि संकरीकरणा पाप करिके एक महीना भर यावक भोजन करे अथवा कृच्छ्रात्कृच्छ्र प्रायश्चित्त आचरे तथा अपात्रीकरणा पाप क-
रिके तत्कृच्छ्र प्रायश्चित्त से पवित्र होता है या सांतकृच्छ्र से या महा सांतपन से शुद्धि उसकी होती है तथा मलिनी करणीय पापों में कोई कर्म जिसने किया हो तिसके लिये तत्कृच्छ्र नामक प्रायश्चित्त है=वृहस्पति ने भी जातिभूशकर पापों के समूह पर जुदा प्रायश्चित्त कहा है कि= ब्राह्मण के शरीरमें चोट लगाइके या गदहा आदि पशुओं का प्राण बध करिके या निन्दित कर्म करने वालों से धन का लेन करिके आधा कृच्छ्र व्रत साधे (मिताक्षराकार कहिते हैं कि ये मनु आदि ऋषियों के कहे जातिभूशकर आदि पापों के प्रायश्चित्त दोषी लोगों की जातिशक्ति आदि की अपेक्षा पर यथायोग्य बांटे देने चाहिये= फिर कहिते हैं कि=इस प्र-
कार से योगीन्द्र याज्ञवल्क्य जी के हृदय में उत्पन्नहुये अभय आदिके प्रायश्चित्त संक्षेप से प्रदर्शित किये- किन्तु जो सर्वथा लिखते तो बहुत बड़ा बिस्तार होता ॥ ० ॥ इसवात् पर ध्यान करी कि २६० दोसौ नव्वे मूल श्लोक वाली अथिकोक्ति छूटे कितना अन्तर बीति गया तबसे कोई योगीचर का मूल श्लोक नहीं आया यद्यपि बीच के अनेक पाठ उसी अथिकोक्ति के रोय पाठ में से लिखे गये क्योंकि यहां तक सभी पाठ उसी मूल श्लोक की रीका में गिनती किये गये हैं तथापि इस मूल श्लोक से या उसकी अथिकोक्ति से कुछ भी संबन्ध इन पाठों का नहीं है जो भक्ष्याभक्ष्य के प्रकारण में अनेक भेदों से लिखे गये क्योंकि यह अनेक ग्रंथांतर की व्यवस्था संग्रह करी गई है ॥ अब आगे योगीचर आपही अपनी व्यवस्था २६१ दोसौ शक्यासी मूल श्लोक से छेड़ेंगे ॥ जातिभूशकर आदि चारों नाम के विशेष

लसरा भेद जो देखने हों तो २४२ दोसौ ब्यालिस की अधिकोक्तिमें ढूंढना ॥ इति
जातिभ्रंशकराट्युपपाट्युनांप्रायश्चित्तचतुष्टयं ॥

यहां तक सर्वथा• महापातक• पातक• अनुपातक• उपपातक• इनसबके प्राय-
श्चित्त भेद वर्णन हो चुके— अब सबसे छोटे पाँचवीं छठी भाँति प्रकीर्णक नाम के
पापों पर प्रायश्चित्त योगीश्वर आपही आगे बड़ेगें तिसको ग्रन्थान्तर स्मृतियों
की व्यवस्था से विस्तार देकर पूराकिया जायगा=प्रकीर्ण पापों का प्रकरणा इन
सबही पापों से निराला माना गया है कि जो कुछ यहाँ तक ऊपरवर्णन हो चुका•
निराला माना जाने का हेतु केवल यही है कि दिन रातिके आठौं पहर में संसारी
कामों की वर्तवासे छोटे छोटे पाप जो प्रत्येक समयपर अचानक उत्पन्न होजाते हैं
तिनके छोटे छोटे प्रायश्चित्त भी सब इसी परिच्छेद में ढूंढे मिल सकेंगे ॥

(अथप्रकीर्णक प्रायश्चित्तानि)

प्राणायामांजलेस्नात्वास्त्रयानोपूयानयः । नग्नःस्नात्वाचभुक्त्वाचगत्वाचैवदेवास्त्रियम् २९१
गुरुं हुरुत्पत्वं कृत्य विप्रनिर्जित्य वा दत्तः । वध्वावावातसाक्षिप्रसत्ताद्योपवते दिनम् २९२
विप्रदंडोद्यमेरुः कृत्स्वतिरुच्छ्रोनिपातने । रुच्छ्रातिरुच्छ्रोमुक्पातेरुच्छ्रोभ्यन्तरशोषिते २९३

अर्थः—गदहा वा ऊँस के योगसे चलती गाड़ी आदि सवारी में जो बैठा हो या
नंगा जल में नहाया हो या नंगा बैठि भोजन किया हो या अपनी ही भार्या साथ
दिन में मैथुन किया हो सो नदी आदि में खूब स्नान और प्राणायाम करिके शुद्ध
होता है ॥ २९१ ॥ गुरु को हूँ करिके तू करिके या किसी ब्राह्मण को वाद से
जीति के या कपड़ा से वांधि के शीघ्रही प्रसन्न करिके दिन भर उपवास करे—
अर्थात्—पिता माता जेठा भाई आदि किसी गुरुजन को कदाचित्त इस तरह बोले
कि हूँ या तू ऐसा है इत्यादि किसी तरह एक वचन के साथ घुड़की या कुछ बात
कहे तो यह दोषी होता है सर्व किसी अपने से बड़े या छोटे या बराबरके ब्राह्मण
की क्रोध के साथ ऐसा कहे कि हूँ चुप होजा बके मत सेसे घुड़की के साथ बितंडा
रूपी बातों से जीते सो बोयी कहाता है या उसके गले में हाथ ही कोमल रीति से
लगाकर वा रूमाल आदि कपड़ा से गला ढीली रीति से ही वांधि कर भी दोषी
होता है• इन सबका यही प्रायश्चित्त है कि जिनका अपमान किया तिनके पैरों
पर सूह धरने आदि उपायों से उनको प्रसन्न करिके एक दिन भोजन न करे—गला
थोभने या कपड़े से ढीलाही लपेटने से उपरालू अपराधों को बड़े प्रायश्चित्त हैं सो

अगले श्लोक में देखो ॥ २६२ ॥ ब्राह्मणको मारना सोचि डंडा लकड़ी उगानेमात्र पर कृच्छ्र प्रायश्चित्त है। डंडा उसकी देह पर लगाने मध्ये अतिकृच्छ्र है। लोह चलि परने पर कृच्छ्राति कृच्छ्र प्रायश्चित्त है। अभ्यंतर शोणित में कि जहां लोह टपकने नहीं पाया किन्तु खाल के भीतर उभरि के रहिगया हो तिसमें भी केवल कृच्छ्र प्रायश्चित्त है ॥ तीनों श्लोकों की अतिकोक्तिभी जुदी जुदी देखो ॥ २६३ ॥

२६१ अधिकोक्तिः=दोसौ इक्ष्वाणवे के श्लोकमें जो प्राणायाम सहित स्नान कहा तिसकी मितासरा कार इच्छा से किये कर्मों पर ठहराते हैं=क्योंकि मनु के अग्रोक्त वचन में खुलासा यही तात्पर्य है=यथा=उत्प्यानंसमासुह्यखरयान्तुकामतः सवासाजलमाप्तुत्य प्राणायामेनशुद्धति=अर्थात्=ऊँट या गदहा की जुड़ी सवारी पर कामनासे बैठने वाला बच्चों सहित गोता लगाइके प्राणायाम करिके शुद्ध होता है=तिससे कामना बिना वैच योग से बैठना परे तिसको प्राणायाम छोड़ि केवल स्नान मात्र समझि लेना=और जो साक्षात् गदहा ऊँटकी पीदिपर बैठा हो तिसके लिये पूर्वाक्त प्राणायाम सहित स्नान दो बार करना चाहिये क्योंकि यह दोय उससे बड़ा है इति मितासराकारः ॥ २६१ ॥ दोसौ वानवे में जो ब्राह्मण को कितंडा बाद से जीतने पर प्रायश्चित्त कहा तिसके ऊपर यम का यह वचन है कि=वादेनब्राह्मणांजित्वाप्रायश्चित्त विधित्सया विरावोपोयितःस्नात्वाप्रिणापत्यप्रसादयेत् (इत्यभ्यासविययमिति मितासरा=अर्थात्=वितंडावादसे ब्राह्मण को जीति के प्रायश्चित्त की इच्छा करे तिसको यह चाहिये कि पहले तीन दिन उपवास करे तिस पीछे स्नान करिके उस ब्राह्मण के संमुख सायांग प्रिणापात से गिरिके उसे प्रसन्न करे (मितासराकार कहितेहैं कि यहबड़ा प्रायश्चित्त कई बारके अभ्यास पर समझना या कई बार की बराबर एकही बार जिसने अपमान कियाहो तिसके लिये ॥ २६२ ॥ तिरानवे श्लोक में डंडे आदि से मारने पर लृहस्पति ने जुदे प्रायश्चित्त कहे हैं=यथा=कायादिनाताड्यित्वात्त्वभेदेकृच्छ्रमाचरेत्अस्थिभेदेऽतिकृच्छ्रःस्यात्पराकस्त्वांगकतने=पादप्रहारे यमः=पादेनब्राह्मणास्पृष्ट्वाप्रायश्चित्तविधित्सया दिवसोपोयितःस्नात्वाप्रिणापत्यप्रसादयेत्=अर्थात्=लकड़ी आदि से मारिके यदि खाल तोड़िदी हो तो कृच्छ्र व्रत आचरे जो हाड तोड़ि दिया हो तो अति कृच्छ्र करे यदि कोई अंग भी कटि गया हो तो पराक व्रत करना चाहिये=ज्ञात मारने मध्ये यमने कहाहै कि=पैर से ब्राह्मण को छुइकर प्रायश्चित्तकी अपेक्षामें एक दिन उपवास किया हुआ स्नान करि उस ब्राह्मण के संमुख सायांग प्रणाम

से गिरिके उसे प्रसन्न करें ॥ अतिक्रान्ति इतनी यही थी सो लिख चुकी-परन्तु-इसी दोस्रो तिरानवे की टीका में कुछ लम्बा पाठ है जिसका संवन्ध मूल प्रलोकसे कुछ नहीं है • तिससे उसकी जुदीस्थापना करी जायगी उनमें औरभी प्रकीर्ण संज्ञा वाले दोस्रो के प्रायश्चित्त विशेष कहे जायेंगे जिनको योगीश्वर ने इस हेतु से नहीं वर्णया कि बहुधा अन्य स्मृतियों में उनके स्वस्व और प्रायश्चित्त भी वर्णन हुये हैं सो सब आगे देखना ॥ २६३ ॥

(अन्यानिच प्रकीर्णक पापानां प्रायश्चित्तानि)

अत्रमनुः=विनाऽद्विरप्सुवाऽप्याऽऽर्तःशारीरसंनियेच्यत सचैलौवहिराप्सुत्यगामा लभ्यविशुद्धतीति (विनाऽद्विरित्यसंनिहितास्त्रप्सुइत्यर्थः शारीरंमूत्रपुरीयादि • इदम कामवियर्यसितिमिताक्षरा=अर्थात्-कहीं जलके मिलने विना या जलके होतेहुये भी कोई रोगी गुदा आदि ध्यां धोये विना शरीर में लगे मल मूत्र की किसी दिन सेवन करे सो तब शुद्ध होय जब सभी वस्त्रों सहित जलाशय के बाहर खूब स्नान करिके अपने शरीर को गाय के देह से कौली भरिके लगावे (मिताक्षराकार कहते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना के विना मल मूत्र भरी देह राखी हो • किन्तु जिसने इच्छा सहित ऐसी मजीनता लायी होय तिसके लिये अश्रोक्त प्रायश्चित्त है=यदाह यमः=आपद्गतोविनातोयं शारीरंयोनियेवते सकाहंसपराहत्वा सचैलौजलमाविशेत=अर्थात्-किसी आपत्ति में फँसाहुआ जलके विना शरीर के मल का सेवन जो कोई करे वह एक दिन निराहार रहिके सचैलस्नान करे ॥

जोकि मुमत का यह वचनहे कि (अस्वग्नीवामेहतस्तप्तकच्छू मिति (तदनार्तं विषय मन्थासाविद्ययवेति मिताक्षरा=अर्थात्-जलों में वा अग्नि में मूतने पर तप्त-कच्छू चाहिये (सो यह निरोगी का चर्चा या वारम्बार के अभ्यास का चर्चा है यह मिताक्षरा ने कहा ॥

नित्यश्रौतादिकर्मलोपेतु मनुः=वेदोदितानानित्यानां कर्मणांसमतिक्रमे स्नातक व्रतलोपेत्प्रायश्चित्तमभोजनम् (श्रौतेयुदर्शं पूर्यामासादियु कर्मसु • स्मार्तेयुनित्यहोमादियु प्रतिपदोक्तेयुर्थादिप्रायश्चित्तैरुपवासस्यसमुच्चयः=स्नातकव्रतानिनजीर्णा मज्जव-द्वासाभवेच्चविभवेसतीत्येवमादीनिप्रायुक्तानि=अर्थात् - मनु ने कहा है कि वेदोक्त नित्य कर्मों का अतिक्रम होजाने में या स्नातक पुरुष के व्रत (नित्यन जो आचार

मर्यादा काण्ड में एक जुड़े प्रकारका के द्वारा वर्णन होचुके तिनमें किसी व्रत) का लोप होजाने पर भी एक दिन भोजन का न करना प्रायश्चित्त है (मिताक्षराकार कहते हैं कि अमावस पूर्णमासी आदि में वेदोक्त जो कर्मकरने कहेहैं तिनको नित्य कर्म जानना और स्मार्त जो स्मृतियों के अनुसार नित्यहोन किये जातेहैं तिनका लोप होने से अत्रोक्त एक दिन का उपवास ऐसी युक्ति से समझना कि उनके मध्ये जहां कहीं पहिले प्रकरणां में उनके नाम से प्रायश्चित्त रूपी इष्टि आदि करना कहिचुके हों तिसके साथ यह एक उपवास भी जोडि लेना—और स्नातक व्रत वेहैं कि जैसा पहिले आचार में वर्णन होचुके हैं कि धन के होते हुये फटे मैले वस्त्रों को न पहिरै इत्यादि बहुत नियम हैं ॥ ० ॥ ऋतु नाम के चर्याचर ने भी स्नातक व्रतों का स्वरूप दर्शाइ कर पीछे से यह कहा है= सतेयासाचाराणामेकेकस्यव्यति क्रमसो गायत्र्यशतजपकृत्वापूतोभवतीति=अर्थात्—ये स्नातक पुरुष के आचार जो कुछ कहे तिनमें किसी एकही का व्यतिक्रम होजाने पर आठ सौ गायत्री मंत्र का जप करिके पवित्र होता है ॥ ० ॥ नित्य कर्मों में पच महा यज्ञ भी गिनती और सबसे प्रधान हैं तिनका लोप होजाने मध्ये अत्रोक्त प्रायश्चित्तहै=यदाह दृढस्पर्शितः= अनिर्वर्त्यमहायज्ञान्वयोभुंक्तेऽस्त्यहंगृही अनातुरःसतिवनेकृच्छ्रर्षेनसशुश्रूति आहिता ग्निरूपस्थानंनक्वुर्याद्यस्तुपूर्वाणि ऋतौनगच्छेद्भार्यावासोपिहृच्छार्धमाचरेत्=जोकोई गृहस्थो रोगी न होते हुये या धनवान् होके रोग होने पर भी नित्यप्रति पाँच यज्ञों से निपटे बिना भोजन करै सोभी एक दिनकी वावत आधा कृच्छ्र करै यहा पाँचमें किसी एकही दो यज्ञ को करै दिन तक न करै सो आधा कृच्छ्र करिके शुद्ध होता है• एवं आहिताग्नि होके जो पर्वों के रोज अपने उपस्थान कर्म को न करै या जो कोई द्विजाती ऋतु काल पर भार्या के साथ संगम न करै तिसको भी आधा कृच्छ्र करना चाहिये (आधा कृच्छ्र छः दिन में होता है ॥

जिसकी पहिली भार्याकेजीतेहुये दूसरीया तीसरीभार्या सरे और वह पुरुषअग्नि मान्देहाय तो उसअग्नि से छोटी स्त्रियोंको दाहदेनानियिदहै तिसके प्रायश्चित्तआगे कहितेहैं=द्वितीयादि भार्यापरनेदेवलः=मृताद्वितीयांयोभार्यादहेद्वैतानिकारिनाभिः जी वंस्यांप्रथमायांतु सुरापानसमहितत्वं=अर्थात्—पहिली जेठो भार्या जीवतेदूसरी लहुरी मरीकी वैतानिक अग्नियोसे जो कोई दाह कर्मकरै तो यह जेठोका भाग उसको दे दिया तिसके पाप में सुरापान के समान प्रायश्चित्त चाहिये यह देवलने कहा ॥
स्वभार्याभिश्चसनेत्यसः=स्वभार्यांतुयदाक्रोधा दग्ध्यैतितरोवदेत प्राजापत्यचरे

द्विप्रः सवियोदिवसान्नव यद्वायंतुचरेद्वैश्य च्छिरांत्रंशूद्र आचरेत्=अर्थात्—कोई अपनी शुद्ध भार्याको क्रीडमें आकर ऐसा दोष लगावै कि यह अगभ्याहै संगम के योग्य नहीं रही वह पुरुष जोत्राह्यराहो तो वारह दिन प्राजापत्यकरै सजीहो सो नौ दिन करै वैश्य हो सो छे दिन और शूद्रहो सो तीनदिन प्राजापत्य करै यह यमनेकहा ॥

अस्नानभोजनादीतुहारीतः=बहन्कसंहतुंरिक्त सस्नातोऽशुशुचभोजनम् अहोरात्रे शुद्धिः स्याद्विनजाप्येनचैवहि=अर्थात्—स्नातक होकर जल से खाली लोटा साथ राखै या कोई हिजाती होकर स्नान किये बिना भोजन करै तिसकी शुद्धि एकदिन रातिका निराहार उपवास और दिनभर जप करने से होतीहै यह हारीत ने कहा ॥

ज्योनारकी एकही पाँतिमें अनेकोंके बैठेहुये वियमरीतिसे परोसै कि एकोंको प्रीतिसे कुछ अधिक या अच्छी चीज औरोंको और तरह परोसै या कोई कहिकर ऐसा करावै या कोई खानेवाला इसी रीति माँगै तिनको भी उसका कहा प्रायश्चित्त है=यथाह यमः=नपंत्यां वियमंदद्यान्नयाचेतनवापयेत् प्राजापत्येनकच्छेरा मुच्यन्तेकर्मरास्ततः=अर्थात्—पाँतिमें वियम किन्तु ऊँच नीच रीतिसे न देवै न माँगै न कहिकर दिलावै क्योंकि ऐसे कर्मके पापसे प्राजापत्य कृच्छ्रत करिके शुद्धहोते हैं अन्यथा नहीं ॥

किसी जलका बांध या नदी नालेका पुल तोड़ै या कन्याके विवाहवाले कामों में भांजी सारै या समतामें वियमताकरै तिनके भी लाचारी प्रायश्चित्तहै=तदभ्याह यमः=नदीसंक्रमहंतुश्चकन्याविघ्नकरस्यच सभेवियमकर्तुंश्चानिष्कृतिर्नविधीयते इ यागामपिचैतेयांप्राजापत्यंतुमार्गाणाम् भैक्ष्यलब्धेनचान्नेनद्विजशचांद्रायणांचरेत् (संक्र मरुत्कावतरणमार्गः सभेवियमकर्तुंप्रजादावितिमिताक्षरा=अर्थात्—यमराजका वचन है कि जो हिजाती होकर नदीको बांध तोड़ै या कन्याके विवाह आदि कामों में विघ्न डारै या समतामें वियमताकरै तिसकी निष्कृति अर्थात् छुटकारा तो अगिले जन्मों तक भी नहीं है किन्तु पापका फल भोगना तो अवश्य होगा तथापि लोकाचार के बर्तावा हेतुसे इन तीनोंको भी प्राजापत्यही करवाया जाय परन्तु जो दोषी पुरुष ब्राह्मण होय तो उसके लिये विशेषताहै कि भिक्षासे मांगे मिले अन्नसे चान्द्रायण आचरै (समता में वियमता करना यह कि जहां बराबर की तिलक पूजा दक्षिणा आदिका प्रयोजनहो तहां न्यूनताधिकभेदकरै और इसीका दूसरा अर्थ यह भी है कि एकसार मार्ग आदि धरती पर गडहिलाकरै अर्थात् अपना सकान बनाने आदि कारणासे इतनी माटी खोदै जिससे सर्व साधारणों का रास्ता बिगड़जाय

जिसमें किसी ग्राही बेल मनुष्य आदिकी टाँग टूटना सम्भव हो या वसीती पानीभरि कार बालक बच्चे आदिका डूबना सम्भव होय तिसके पापका यह चर्चा है क्योंकि जैसा जलके उतारेआदिका संक्रम बांध काटनेका पापहै तैसाही यह पापहै जिसका व्योरा लिखा • तैसाही तीसरा कन्याके विवाह आदिमें विघ्न करवाना बड़ा पाप है इसीसे इन तीनोंकी एक साथही दर्शाकर ऐसा कहाहै कि इनकी मुक्ति नहीं होती है नरकोंमें अवश्य जाना होताहै परन्तु लोक व्यवहारके निमित्त से प्रायश्चित्त कराना चाहिये) इस व्यवस्थाके प्रयोजनसे २२६ दोतीछव्यीस मूलप्रलोकभीदेखी ॥

इन्द्रधनुर्दर्शनादौच्छ्रयग्रंथः=इन्द्रचापपलालागिन्यद्यन्यस्यप्रदर्शयेत्प्रायश्चित्तम होराबंधनुर्दण्डप्रचक्षिणा=अर्थात्-इन्द्रधनुय जो सूर्य या चन्द्रमा के चिम्बकी घेरा देकर कभी उदय हुआ देखि परताहै तिसकी जो पुस्य देखिलेय तिसको यह चाहिये कि वह और किसीकी न दिखलावै न चर्चाकरै • इती प्रकार पलाल धान कोदो आदिका फूस पयार तिसकी अग्नि दूर जलती देखि दूसरेको नहीं दिखावै • कदाचित्त आप देखि दूसरेको दिखावै तिसपर यह प्रायश्चित्त है कि सक दिनराति उपवास करिके जो धनुय दिखायाहो तो सक धनुयदान करै जो अग्नि दिखाई होतो एक लाठी दानकरै यह शृंगीच्छयिने कहा (इसका हेतु कृक होने पर भी नहीं कहा जासक्ता है तिससे वाचनिक व्यवस्था जाननी कि जो वचन सुनीचरोंके मुखसे निकसा वही प्रमाणा है क्योंकि तेजस्वी महात्माके मुखसे कोइ वचन कृया कभीनहीं निकसता है ॥

पतितदिभिःसंभायपोतु गौतमः=नस्लेच्छाशुद्धैर्वात्मिकैःसहसंभायेत संभाष्यपुण्य कृतोमनसाध्यायेत् ब्राह्मणोसहवासम्भायेत् • भार्यान्धनलाभवधंपृथग्भार्यागीति=अर्थात् जो मनुष्य धार्मिक धर्मवान् क्रायदेवान् है तिसको चाहिये कि वह स्लेच्छ सलीन अशुद्धोंके साथ प्रयोजनके बिना और प्रयोजन से अधिक बात चीत न करै और प्रयोजनसे भी जितनी बात करनीपरै तिसको करनेके अनन्तर अच्छे पुण्यत्मा राजर्या ब्रह्मर्या आदि पुराने और नवीन वर्तमान तपस्वी लोगोका ध्यान मनमें करै और मुखसे भी नाम उचारणा करै अथवा गुण संयुक्त किसी ब्राह्मणसे बातचीत करै तब शुद्ध होय यह गौतम ने कहा ॥

स्वस्यैवधनलाभादेर्विघ्नकरणोपिगौतमः=भार्यान्धनलाभवधंपृथग्भार्यागीति (भार्यान्धनानांलाभस्यवधे विघ्नकरणोप्रत्येकंसंघत्संश्रंश्राकृतं ब्रह्मचर्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्-अपने घर से तिन भार्या के साथ कोइसा उपद्रव सार पीट आदि अनुचित

रोहितसे उत्पन्न करें या घरके धनकी हानि घटा करे या होते हुये लाभ की हानि करडारें कि जिनसे वह लाभ नाराजाकर फिर न होसके तो इन तीनों पापकी ऊपर भी जुदा जुदा एक एक वर्यका प्राकृत ब्रह्मचर्य करें तब शुद्धहोय यह गौतमनेकहा (यह तर्क न करना कि अपने लाभकी हानि कौन करताहै क्योंकि सेसे बहुतहोते हैं जिनसे अपने लाभकी हानि सुखता से होजाती है और सेसे भी होती है कि जहां भाई भतीजे वेढा वाप आदि में विरुद्ध होय तहां एक के द्वारा होते लाभ में दूसरा वैरभावसे जाकर उसमें विघ्नकरि आताहै इत्यादि और सूरतोसे भी होताहै तिनके प्रायश्चित्त कहे ॥

ब्रह्मसूत्र यज्ञोपवीत कंधेपर होने विना जो जल पान या भोजन या शक्ता लघु शंकासे मूलसूत्र करें तिसके प्रायश्चित्त स्मृत्यन्तरमे कहेहैं=यथा=विनायज्ञोपवीतेन यद्युच्छिष्टोभवेत्तद्विज्ञः प्रायश्चित्तमहोरात्रं गायत्र्यष्टशतंतुवा (अत्रऊर्ध्वाच्छिष्टेउपवासः अत्रोच्छिष्टस्योदकपानादियु गायत्रीजप इतिमितासरा=अक्रामतस्तु=पिबतो मेहतप्रचेवभुंजतोऽनुपवीतितः प्राणायामविक्रयस्क्रान्तं चोत्तयंक्रमात् इतिस्मृत्यंतरौ क्तंचद्वयव्य=अर्थात्-जनेऊ कन्धे पर होने विना कोई द्विजाती पुरुष यदि किसी तरह जुदा होजाय तहां एक दिन राति का उपवास या आठ सौ गायत्री का जप प्रायश्चित्त है (इसमें यह व्यवस्था है कि जो ऊपर के छंगमें हाथ मुहसे जुदा हुआ सो उपवास करे जो नीचेके छंगमें गुदा लिंगसे जुदा हुआहो सो गायत्री जपे-यह व्यवस्था भी उसके लिये समझना जो अपनी बेपरवाहीसे जानिबूझि ऐसा भ्रष्टहुआ हो किन्तु=होगियारी साथ रहिते भी देवयोगसे ऐसा जिसपर होगया हो तिसको अन्य ग्रन्थका बचन आगे देखी कि=विना जनेऊ पानो पीना या मूतना या खाइ लेना जिसपर होजाय सो इन तीनों बात के अथा क्रम से तीन प्राणायाम और छे प्राणायाम और नक्तत्रत जुदे जुदे करें (नक्तत्रत उसका नामहै जो निर्जल व्रतकरिके चार घटी राति गयेके भीतर भोजन करे यह भी अभोजन की वरावर कहाता है ॥

भुंक्त्याशौचाचमनमज्ञात्सोऽत्यानेतु स्मृत्यन्तरे=यद्युच्छिष्टयानाचांतोभुंक्तोवाऽनाशनात्ततः सद्यःस्नानं प्रकूर्वातिसोऽन्यथापतितोभवेत्=अर्थात्-भोजन करनेमे यदि खाइ चुकने पर न खानेके आदि जल पीने विना आचमन लिये विना चौकेसे बाहर उठि जाय सो तत्कालही स्नानकरे अन्यथा जो न करे सो पतितरहिरे अर्थात् जातिपाति से बाहर करदिया जाय स्मृत्यन्तर की यह व्यवस्था है ॥

चौराद्युत्सर्गादीतु वशिष्ठः=दंड्योत्सर्गोराजैकाराचमुपवसेत् विराट्पुरोहितःऊच्छ

मदंड्यदराडने पुरोहितस्त्रिराक्षराजा=अर्थात्-दराड देने के योग्य चोर आदि अपराधी यदि छोड़ दिया जाय तो राजा एक दिन उपवास करे पुरोहित तीन दिन करे और जो अदंड्य किसी पुरुष को दराड दिया गया हो कि जिसका कुछ अपराध यथार्थ में नहीं था या वह पुरुष अपराध की दशा में भी दराड पाने से मुआफ़ था तिसको दराड दिया गया तहां पुरोहित को पूरा वारंह दिन कृच्छ्र करना चाहिये और तीन दिन राजा को (यहां पर अदालती पुरोहित का चर्चा है जो धर्म शास्त्र देखने का अधिकारी होय किन्तु कर्मकांडी पुरोहित का चर्चा यहां नहीं है-राजद्वारों में दोहरे पुरोहित होते हैं ॥

जिस पाँति में कोई चोर या पतित आदि वैदा हो तिसमें भोजन करने मध्ये प्रायश्चित्त है=तदाह मार्कंडेयः=अपांक्त्यस्यय-कषिचत्पत्तोभुंक्ते द्विजोत्तमःअहोरात्रोयि तोभूत्वापंचगव्येनशुद्ध्यति=अर्थात्-कोई द्विजोत्तम ब्राह्मण जो अपांक्त्य की पाँति में भोजन करे अथवा उस की करी ज्यौनार आदि पाँति में अर्थात् रसोई में भोजन करे सो एक दिन राति निराहार व्रत करिके दूसरे दिन पंचगव्य पीकर शुद्ध होता है यह मार्कंडेय जी ने कहा ॥

नीली वस्त्रादि विययेत् आपस्तंबः-नीलीरक्तयदावस्त्रब्राह्मणो गेयुवारयेत् अहोरात्रोयितोभूत्वापंचगव्येनशुद्ध्यति- रोमकूपैर्यदागच्छेद्रसोनील्यास्तु कस्यचित्त्र वियुवसोयुसामान्यंतत्कृच्छ्रं विप्रो धनम- पालनविक्रयश्चैवतदुत्पत्तात्पजीवनम पातनत्तु भवोद्विप्रैश्चिभिःकृच्छ्रं व्यपोहति-नीलीदारुयथाभिंद्याह्राह्मणस्यशरीरत-शोषात्तदृश्य तेयवद्विजश्चांद्रायणाचरेत्- स्त्रीणांक्रोडाथसंभोगेशयनीयेतदुप्यतीति=अर्थात्-आपस्तंबने कहा है कि ब्राह्मण जो अपने शरीर में नीला रंग कपड़ा ओढ़े या पहिरे तो एकही बार ऐसा करने पर एक दिन रातिभर निराहार व्रत करके पंचगव्यपीवे तब शुद्ध होय- परन्तु जिस द्विजाती ने इतनी देर तक नीला वस्त्र पहिरा हो कि उसके पसीना निकसने से रोम छिद्रों में कपड़े का पसेव जाकर लगे तो फिर तीनों वर्गों के लोगों को एक ही यह सामान्य प्रायश्चित्त है कि तत्त कृच्छ्र करे और जो कोई द्विजाती नील का खेत बोवे या घर में धरे या बेचे या किसी तरह नील के काम से जीविका राखे तिसको जाती वर्म कर्मों से (पातन) गिराइ देना यही दंड किया जाय परन्तु यह ऐसा पुरुष जो ब्राह्मण हो तो तीन कृच्छ्र साधन कराइ के फिर जाति में मिलाया जाय एवं सत्री दो कृच्छ्र करिके और वैश्य एकही कृच्छ्र करिके जाति में मिलाया जासक्ता है (परन्तु शूद्रको इस काम का नियेव नहीं है-

और नील को लकड़ी यदि ब्राह्मण के शरीर में आपही किसी तरह से खुसिजाय या कोई अन्य पुरुष मार देवे कि जिससे कुछ लोह का चिह्न उभरि आवैतौयह ब्राह्मण चान्द्रायण करै तब शुद्ध होय—परन्तु स्त्रियों के लिये इतना प्रतिप्रसव है कि उनके क्रीडा संभोग वाले निमित्तों में शयन काल के वस्त्र नीले होय तिसमें दोय नहीं लगाया जासक्ता है कि स्त्री के प्रसव समय उसके पतिको भी उनवस्त्रों से ससर्ग रहा तथापि जो विवेकी और क्रियामान पुरुष होते हैं वे अपनी स्त्रियोंसे भी नील बचाते हैं (और वचन में जो शयनीय भोग समय का विशेषण दियागया तिसकी खुसुमियत से यह तात्पर्यहै कि हर वक्त के ओढने पहिरनेवाले कपडे स्त्रियोंके भी नीलेन होने चाहिये कि जिससे रसोई आदि कामांतक अशुद्धि पहुँचै इसीलिये वचनमें क्रीडार्थका निमित्त दियागया है किजिन स्त्रियोंको रसोई आदि से जिसवक्तपर संघं व कुछ न हो तिनको मगल कार्यके उत्सवोंमें भी उतने समयतक क्रीडाके अर्थसे नीले वस्त्र धारण करना दोय नहींहै ॥ ० ॥ स्त्रियोंके सिवाय विरले पुरुष और विरले काम और विरले वस्त्रों के नाम से भी कुछ कुछ प्रतिप्रसव दिया गयाहै (प्रति प्रसव धर्मशास्त्रमें एक भयादाका नाम है कि जिस कामका नियेव किया गया हो उसी कामको थोडासा किसी जघेपर करनेकी फिर धोडेसे आज्ञा देदीजाय) तदाह भृगुः=स्त्रीधृताशयनेनीलीब्राह्मणारुच्यनदुष्यति नृपस्यदृष्टोवैश्यस्यपर्वर्जविधारणम्=तथावस्त्रविशेषकृतप्रतिप्रसवः=कवलपद्मसूत्रेच नीलीरागोन दुष्यतीतिस्मरणात्=अर्थात्-भृगुजी का वचनहै कि स्त्रियोंके अंगमें वारणाकिया नीला कपडा ब्राह्मण को सोते समय दूयित नहीं करता है और राजा क्षत्री को वृद्धि में अर्थात् सेनाआदि समूह में रण विरोध वस्त्रोंके कार्य में कुछ दोय नहीं है और वैश्य को शीत काल में काले कवल वनात आदि पर्वोंको छोडिकर ओढने में कुछ दोय नहीं है=इसीलिये विरले वस्त्र में नीला रंग होनेका यह प्रतिप्रसव दिया है कि=वानात आदि ऊनी कवल में तथा रेगमी कपडे में नील रंग दूयित नहीं है (परन्तु ब्राह्मण को इन वस्त्रों का भी नियेध है यहप्रति प्रसव केवल वैश्य को शीत काल मध्ये कहा गया है सोी, पर्वों को छोडिके और ब्राह्मण सदा आपही पर्वह्य और तीर्थह्य होता है उसके लिये शीतकाल में भी नहीं—और नीला कढिने से तद्रूप नीले वरां को समुक्तता किन्तु हरारण जो नीलके सशोभसे वनता है तैसे हरेरग की वानात या रेगमी का नियेव ब्राह्मण के निमित्तमें भी नहीं है तथापि भोजन और भजन के रुबधो हरे होने का नियेव तात्पर्यसे भी सिद्ध है ॥

शांख ने विशेष कर ब्राह्मणों के लिये दाखे की खाट आदि पर बैठना या राजा के रथ से भागना या पूजा आदि उत्तमकार्यों के बीच में निकसि जाना आदि और भी अनेक बातें एक साथ इकट्ठी मने करीं तिनके प्रायश्चित्त भी कहि दिये हैं—यथाह शांखः—अथस्यशयनयानमासनेपादुकेतथा द्विजःपालाशवृक्षस्यविराचंतुवती भवेत्• सत्रियस्यरसोष्टुंक्त्वाप्राणापरायणः सवत्सरं व्रतकुर्याच्छ्रद्धावृक्षफलप्रदम्• द्वौविप्रौब्राह्मणाग्नीवापतीगोद्विजोत्तमौ अन्तरेरायदागच्छेत्कच्छुंसांतपनंचरेत्• होमकालेतथादेहेस्त्राध्यायेदारसंग्रहे अन्तरेरायदागच्छेत् द्विजश्चांद्रायणंचरेदिति (देहे साक्षाद्यांगभूते•सतृषाम्यासत्रियश्च सितिमिताक्षरा=अर्थात्=शांखजी कहिते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण दाखे की लकड़ी से बनी खाट या सवारी का भाचा या तखत पीठी आदि आसन या खट्वाके पर चढ़के बैठे खड़ा होय सो तीन दिव व्रत करे=और कोई ब्राह्मण जो शस्त्रवाँध कर सशोषण की नौकरी किये हो सो उस राजा के रथमें अपने प्राणोंके भयसे पीठि दिखाकर उलटा भागै वह एक वर्ष भर ब्रह्मचर्य का व्रत करे और फलोंका देनेवाला कोई पेड़ जिसने काटाहो वहभी एक वर्ष भर व्रत करे=और दो ब्राह्मण कहीं बैठे हों या घात करते हुये मिले चले जाते हों या परस्पर पड़ते और पड़ाते हों तिनके बीच होकर जो कोई निकसि जाय सो बीच में विसोप करने के घ्राप में कृच्छ्र सांतपन प्रायश्चित्त करे• इसी प्रकार जो ब्राह्मण और अग्नि के बीच में जो चला जाय सोभी कृच्छ्र सांतपन करे (यहाँपर बड़ी अग्नि माननी जो उसी ब्राह्मण से किसी तरह का वास्ता रखती है अन्यथा जहाँ निरपेक्ष कोई अग्नि कहीं जलती या धरी हो तिसके निकट कोई निरपेक्ष ब्राह्मण चला जाता या बैठा हो तिनके बीच होकर निकसि जाने का यह दोष नहीं है) इसी प्रकार दंपती पति पत्नी कहीं बैठे या चले जाते हों तिनके बीच हो कर निकसि जाय सो भी कृच्छ्र सांतपन करे• इसी प्रकार गाय और ब्राह्मण इन दो के बीच निकसि जाने वाला कृच्छ्र सांतपन करे तब निर्दोषी होय=इसी प्रकार जहाँ कोई होस कर्म करता करवाता हो या गाय की दुहता दुहवाता हो और स्वाध्याय नामक वेद पाठ आदि कोई सा पाठ करता करवाता हो या दार सग्रह विवाहकर्म करता करवाता हो और इनके उपलक्षणा से यज्ञोपवीत मंत्र वीक्षा याद कर्मआदि भी सम्भलि लेना इन कामों के बीचमें जो कोई निकसि जाय सो द्विजाती चांद्रायण व्रत आचरे तब निर्दोषी ठहरे ॥

कचिदेशविशेषगमनेपि देवलः=सिधुसौचीरसौराष्ट्रांस्तथाप्रत्यंतवासिनः अंगवंग

कलिंगांधाचरास्वासेस्कारमर्हति (सतचतीर्थयात्राव्यतिरेकेणद्रष्टव्यमितिमिताक्षरा= अर्थात्—देवल कहिते हैं कि सिन्धुदेश सौवीर देश सौराष्ट्रदेश तथा (प्रत्यन्त देशों अर्थात्) स्तेच्छ देशों को जाइके और अंगदेश वंगदेश कलिंग देश अन्ध देशों को जाइके दुवारा जनेऊ करवाने योग्य होता है (परन्तु यह तीर्थ यात्रासे उपरालूजने का चर्चा है अर्थात् जगन्नाथ आदि बड़े तीर्थोंको जातेहुये जो नित्यद्व देश सम्माने परें तिनके लिये पुनः संस्कार की जरूरत नहीं है ॥

सूर्य में छिद्र देख परना आदि अरिष्ट किन्तु खोंटे अपशकून जो अनेक भांति होते हैं तिनके भी प्रायश्चित्त हैं—तदाह शंखः=दु स्वप्नारिष्टदर्शनादौ घृतंसुवर्गाच्च दद्यादिति=यमोप्याह=प्रत्यादित्यंनमेहेत नपश्येदात्मनःशक्त दृष्ट्वासूर्यंनिरीक्षेत ब्राह्मरांगासथापिवेति=शखस्तु=पादप्रतापनंक्रत्वाक्रत्वावह्निमवस्तया कुशोःप्रसृज्य पादोर्तुदिनमेकंत्रतीभवेदिति=अर्थात्—खोंटास्वप्ना और खोंटेअरिष्ट देखपरने आदि में घी और सुवर्गा का दान करै तिससे फिर कल्याणाही होताहै यह शखने कहा= यम ने भी यह कहा है कि=सूर्य के सम्मुख न मूँते और अपना विद्या न देखैकदा- चित्त विद्या देख लिया हो तो सूर्य को दर्शन करै और सूर्य बादलमें छिपेहों तो ब्राह्मरा के दर्शन करै ब्राह्मराभी न मिलै तो गाय के दर्शन करै=शंख ने भी कहा है कि=अग्नि में पैर तपावै या खाट के नीचे आगि चरिंके सोवै या कुशाओं से पैर माजै सो एक दिन व्रत करै तब निर्दोषी ठहिरै ॥

अथाभिवादननियमातिक्रमः= तत्रसच्चिदाद्युपसंग्रहो हारीतः=सच्चिदाभिवादाने ऽहोरात्रमुपवसेद वैश्याभिवादानेद्विरात्रम शूद्रस्याभिवादाने त्रिरात्रमुपवासः= तथाश- य्यास्त्रपादुकीपानहा रोपित पादोच्छिद्योवकारस्य श्राद्धज्ञपदेव्रजानिरताभि वादाने त्रिरात्रमुपवासःस्यात् अन्यत्रनिमचितेनाभ्यवभोजनेष्विरात्रमित्यपिहारीतः (समित्युष्पादिहस्तस्याभिवादाने ऽथेतदेवेतिमिताक्षरायतः) (समित्युष्पक्याज्या म्बुसुदुनाऽक्षतपागिकाकच जपहोमचकुर्वाणानाभिवाद्येतवैद्विजस इत्यापस्तंबीयेजया दीभिः समभिव्याहारात्=अर्थात्—अभिवादनके नियम छोडिकर जोकोडे अतिक्रम से अभिवादन करै तिसके प्रायश्चित्त कहा चाहते है (अभिवादन काअर्थ है प्रणाम नमस्कार पैर छूना आदि प्रवान है और दूसरा अर्थ यहाँ पर यह भी है कि किसी की पहिले चिताइ के कुछ बात कहिना कि जिससे दूसरे की अवश्य ही बोलना परै• इस प्रकरणा में दोनो तरह के अर्थों से प्रयोजन लिया जायगा• इस तरह से कि बिरली बात में केवल प्रणामही का अर्थ और बहुधा बातमें दोनों

अर्थ माने जायेंगे केवल अभिवादन के शब्द से) सो सब आगे अपनी बुद्धि से यथा योग्य समझि लेना किन्तु अनेक बातें कही जायेंगी—तिसमें प्रथम सर्वा आदि को ब्राह्मण होकर अभिवादन करै अर्थात् भूल से नमस्कार आदि शब्द कहिये तिस के मध्ये हारीत जी कहिते हैं कि—सर्वाको अभिवादन करै तिसको एक दिनराति भर उपवास करना चाहिये जो वैश्यको अभिवादन करै सो दो दिन उपवास करै जो शूद्रको अभिवादन करिये सो तीनदिन उपवास करै—तथा हारीतही यह दूसरी व्यवस्था कहिते हैं कि जोकोई अपनी सुखतासे अप्रोक्त पुरुषों को प्रणामरूपी अभिवादन या किसी और तरहका संबोधन करै कि एक जो खाटपर लेटा या चढ़ताहो दूसरा जो खड़ाऊँ या जूताको पहिरनेलगा हो ज्वतक न पहिन पावै तवतक उससे न बोलै—तीसरा जो जूटा हीरहा हो—चौथा जो अँधेरेमें बैठा हो—जो याद करताहो—जप करता हो—देवताको पूजामें लगा हो—इनको भूल से अभिवादन करिये सो तीनदिन उपवास करै—और का नीता स्वीकार करिके और का भोजन करि आवै सोभी तीन दिन प्रायश्चित्त करै (यही तीनदिनका व्रत उसको भी चाहिये जो पत्र फूल आदिके अटके हाथवालेको अभिवादन करै इससे हाथकी चीज बिरली गिरिजानेका खटका होताहै बिरली देवताके निमित्तवाली जूती होजातीहै क्योंकि यागले थापस्तम्बके वचन में यही तात्पर्य है सो देखी कि) समिव या फूल या कृपा या घृत या जल या अक्षत जिसके हाथ में मृदुरीत से ढीले थँभे हों या जपमें लगाहो या होमआदि कर्म करता हो ऐसे ब्राह्मणों में किसी को भी प्रणाम संबोधन कुछ न करै ॥ ० ॥ इसी प्रकार यही तीन दिन का व्रत उसको भी चाहिये कि जो पुस्त्य उक्त चीजों को लिये हुये किसी दूसरे को नमस्कार करै या दूसरेका नमस्कार सुनिके प्रत्यभिवादन के द्वारा स्वीकार करै—यथाह शंखः—नोदकुंभहस्तोऽभिवादयेत् नमस्कृत्यं चरन् पुष्पाज्यादि हस्तेनाशुचिर्नजपद नदेवपिबकार्यं कुर्वन्नशयानः (इतिशंखेन तस्यापि प्रतिषेधादितिमितासरा—अर्थात्—पानी का घट्टा हाथ लियेहुये किसीको नमस्कार न करै न भिक्षा लेते हुये समय पर न अपने हाथ फूल घृत आदि कुछ थांभे हुये न अशुद्ध होत (अर्थात् भोजन से उठिके वा इजामत कराते वा शंका लघु शंका से उठि कर हाथ पर मुह धोने बिना एवं प्रातःकाल के शौच से निपटे बिना) न जप करते हुये न देव पितरों का कुछ काम करते हुये न लेटे हुये अभिवादन करै यह शंख जो ने दूसरे को भी उन्हीं बातों का नियेव कियाहै तिससे इसको भी वही प्रायश्चित्त चाहिये—तात्पर्य सबका यही है जो जो बातें नियेव करी गई सो

परस्पर सब दोनों को समझनी कि अभिवादन रोसे समय पर करना चाहिये जब सर्वथा सावधान देखै जिससे दूसरे को क्रुद्ध हानि या उसके मन में कोड़सा सोभ न उत्पन्न होने पावे क्योंकि संसार में अभिवादन केवल मुलाकाती प्रीति का हेतु कायम किया गया है तिसमें भी यदि रंज या हानि पैदा हुई तो फिर यही पाप का चिह्न है ॥ • ॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षरा द्वार कहिते हैं कि इसी तरह और भी स्मृतिथों के वचन जहां देख परें तिनको भी स्वीकार करना क्योंकि ग्रन्थ बड़ा हो जाने के डर से यहां सब नहीं लिखे गये हैं ॥ २६३ ॥ इसी दोही तिराचवे मूल श्लोक से लेकर यहां तक संबन्ध मात्र से प्रकीर्ण प्रायश्चित्तों के अनेक पाठ भेद लिखे गये बल्कि प्रकीर्ण प्रायश्चित्तों का प्रारम्भ २६१ दो सौ इक्क्यानवे मूल श्लोक से हो चुका था ॥

(इतिप्रकीर्णकप्रायश्चित्तप्रकरणसमाप्त)

इस प्रकरणा में सकही ७४ चौहत्तर का परिच्छेद है जिसमें जाति भंशकरादि पापों की व्यवस्था की छौहिके प्रकीर्णक पापों की २१ इक्कीस व्यवस्था है जिनके सब जुदे जुदे पाठ यहां तक पूरेहुये ॥ इस प्रकरणा में और इससे पहिले बहुत बड़े भस्या भस्य के प्रकरणा में भी बड़े बार्ते रक्तवीर्य हैं जो रोज रोजके वर्तवि में हर वक्त कान आती हैं—इनहीं का तीसरा भेद और है कि वह भी रोज रोज के वर्तवि में आता है वह चौथे परिच्छेद में तीसर्वे ३० मूल श्लोक से वर्णन होचुका तहां उसीकी अवि कोक्ति भर में देखी उसके प्रायश्चित्त इनसे भी अति छोटे हैं

यद्यपि इस ग्रंथ में प्रायश्चित्त क्रुद्ध और भी कहिने श्रेय रहे हैं परंतु यहां तक सभी पापों का निपटारा होचुका है प्रसिद्ध पातकों में कोई ऐसा नहीं रहा जिसका प्रायश्चित्त न कहिचुके हों•तथापि यह संसार अनंत है इसमें पापस्वपी निमित्तों के स्वरूप भी अनन्त हैं जो सब संकसाय गिने नहीं जासक्ते हैं कि जिसके प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त कहे जासकें •न जानिये किसकाल में किसी मनुष्य के द्वारा किसप्रकार का अपूर्व पाप उत्पन्न होय तिसका भी प्रायश्चित्त इन्ही के अनुकूल सोचिकर देना होता है जो यहाँतक वर्णन होचुके • परंतु उसमें सोच विचार से अन्याय होजाने की शंका भी सर्व्वष लगी रहिती है• और जो प्रत्येक जुदे नामों से प्रायश्चित्त वर्णन होचुके लिखेसबजूद हैं तिनमें भी विचार किये विना आदेशकर देने से प्रायश्चित्ती पुस्त्य की दृथा प्राण हानि होजाना आदि अनेक शंका लगी

रहिती हैं• तिसके विचार की सुघडाई वनी रहिने के प्रयोजनसे एक सामान्य मर्यादा आगे पचहत्तरि ७५ परिच्छेद में योगीश्वर आपही दर्शावैगे कि जिसका मर्घव सहारा लिये रहिने से अन्याय न होनेपावै ॥

अथ अनुक्तप्रायश्चित्तपापिष्वपि निष्कृतिकल्पनायुक्तिवि

चारोनामपरिच्छेदः पंचसप्रतिमः (७५)



इस परिच्छेद में विशेषकर ऐसे पापोंके प्रायश्चित्त विचारे जायँगे कि जिनके नामसे कोई प्रायश्चित्त• इसग्रन्थ भरमें कहीं भी न लिखा हो—इसके सिवाय जितने प्रायश्चित्त यहांसे आगे आगे लिखेजायँगे और जितने यहांतक पहिले से वर्णन होते रहे तिन सबहीका साधारण एक विचार हे सोभी इसी परिच्छेदमें निर्णाय किया जायगा ॥

(प्रायश्चित्तच देशकालादिविचारेणैव)

देशकालवयःशक्तिपापंचवेक्ष्यपन्नतः । प्रायश्चिन्प्रकल्पंस्थायत्रचोकाननिष्कृतिः २९४

अर्थः—देश काल वयस् शक्ति पापकीभी देखिके यत्न से प्रायश्चित्त कल्पना किया जाय जहां निष्कृति न कही गई तहां भी=अर्थात्—जो कुछ प्रायश्चित्त यहां तक सब तरहसे वर्णन होचुके अथवा आगे जो कुछ कहेजायँ तिनका वर्तावा जहां करना परै अथवा किसी ऐसे पाप का प्रायश्चित्त देना परै जिसके नामसे शास्त्र में न लिखागया हो तहां तहां सर्वव्रतनी बातों के विचारसे प्रायश्चित्त देना चाहिये कि—प्रथम देशका विचार फिर काल का विचार फिर अवस्था का विचार फिर उस प्रायश्चित्त की शक्ति सामर्थ्यका विचार और उस पापके स्वरूप काविचार करै कि जिसके ऊपर प्रायश्चित्त देना चाहागया ऐसे पूरे यत्नों से प्रायश्चित्तकी कल्पना करनीयोग्य हे कि जिससे कर्ता पुरुषके प्राणां की हानि टया न होजाय यही इसका तात्पर्य है और यहभी तात्पर्य है कि अतिशय छोटे पाप में बहुत बड़ा प्रायश्चित्त न होजाय ॥ २९४ ॥

२९४ अधिकोक्तिः—उक्त बातों का व्योरा यहां समझाते हैं कि जहां कर्ता पुरुष की प्राणांतिक प्रायश्चित्त की आज्ञा न होने परभी केवल व्रतमात्र के आ-

चरणां में किसी कठिनार्द्र से प्राणा जातेरहें तहां उसके प्राणा वृथा जानेके सिवाय एक यह भी दोष खडा होता है कि प्रायश्चित्त ही पूरा न होसका क्योंकि बीचही में उसकी कठिनता से प्राणा चले गये—तिससे इन दृष्टान्तों को समझना चाहिये कि जैसा आगे ३१२ तीन सौ बारहवें मूल श्लोक से योगीश्वर कहेंगे कि (दिन में वायु को पीता हुआ खडा रहि कर रात्रि की जल में बैठके बितावै फिर दूसरे दिन सूर्य निकसि आने पर एक हजार गायत्री जपिकर शुद्ध हो जाता है परन्तु जिसने ब्रह्महत्या करीहो वह इस प्रायश्चित्तसे नहीं शुद्ध होगा किन्तु यह अन्य पापोंका चर्चा है) ध्यान करी कि यही प्रायश्चित्त किसी से करवाया जाय तहां देश का विचार ऐसे होसकताहै कि हिमालयके निकट वर्ती देशों में जलका निवास न करवाना चाहिये ऐसेही कालका विचार है कि अति शीत के ऋतु काल में जल का निवास वर्जित करै अर्थात् हिम देश और हिम काल को बचाइ कर जल का निवास कल्पित करै इत्यादि और बातें भी देश काल की अपेक्षा में समझनी— एवं वयस् अवस्था का विचार है कि जहां नबरे वय का बूढा या बारह वय के भीतर का बालक प्रायश्चित्त ठहिरै तहां यदि बारह वय वाले प्रायश्चित्त उन पर आदेश किये जायें तौ प्राणां को विपत्ति आनि परैगी तिससे बीच की अवस्था वाले पर बारह वय का व्रत आरूढ किया जासकता है कि जिसका देह सर्वथा बल वाव होय • इसी लिये किसी स्मृति का यह वचन है (क्वचिद्वैक्वचित्पादः) कहीं आवा कहीं चौथाई प्रायश्चित्त बतावै इस वचनसे बूढे बालक आदिका हास्रूपी निर्वाह दर्शाया है कि इनको पूरा व्रत न देना चाहिये सो यह न्याय पहिले भी जहां तहां बड़े प्रकारां में बरान होसुका—एवं शक्ति का यह विचार है कि जिस प्रायश्चित्त में धन का दान या तप करना आदि कोई बात नियत होय सो भी उसकी शक्ति के अनुरूप कराना उचित है क्योंकि (पावेधनंवापर्याप्तं) यह वचन कहीं लिख चुका है कि अच्छे पावों को खूब धन समर्पण करै यह नियम निर्धन के साथ नहीं चल सकता है—तथा उद्विक्त अति श्रेष्ठ पाव पुरुषोंके निमित्त में पराक आदि व्रतों का विचार है कि जैसे बारह दिन कोरा लंघन करना यह पराक होता है जो किसी निमित्त पर करना लिखाहो और वही निमित्त किसी ऐसे पावपुस्त्य पर आरूढ होय जो जप तप करने में समर्थ हो तौ फिर पराक आदि व्रत करवाना कुछ न्यायात्मक नहीं बल्कि वेद की संहिता आदि के पाठ या गायत्रा आदि जप करवाने योग्य ठहिरैगे • एवं राजा आदि कोई जो ब्रूत या धन दान कर सकने में

समर्थ हो तिसपर भी पराक आदि व्रत का उपदेश देना अनुचित है। एवं जहां कोई स्त्री या शूद्र जाती पुरुष प्रायश्चित्त होय तहां उसके पाप का प्रायश्चित्त यद्यपि जप पाठ आदि शास्त्र में नियत होय जो विद्या से संबंधित है तथापि स्त्री और शूद्र को इन कामों की आज्ञा देना न्याय नहीं है अर्थात् उनसे व्रतही करवाने चाहिये। इन्हीं कारणों से ५४ चौवन परिच्छेद में सब जीवों की हिंसा पर जुदे जुदे दानोंके स्वरूप दर्शाने पीछे दोसौ चौहत्तर मूल श्लोकसे योगीश्वर ने यह कहा था कि (हाथी आदि की हिंसा पर लिखे दान देने में असमर्थ होय सो प्रत्येक दान के पलटेमें कच्छू व्रत साथै) इसी प्रकार किसी और स्मृतिमें निरोगिनि स्त्री तथा रोगी पुरुषको भी तप करने में असमर्थ जानिके प्रायश्चित्तमें कमी करने की यह आज्ञा है कि (छियां तथा रोगी पुरुष भी नियत प्रायश्चित्त का आधा करवाने को योग्य है) इसी २६५ मूल श्लोक में पाप को भी सोचिके प्रायश्चित्त विचारना कहा गया तिसमें यह सोचना है कि प्रथम उस रीति से पापों के दर्जे कायम करें कि जैसा २४२ दोसौ बयालिस की अधिकोक्ति में डील कहा गया था फिर उस प्राप्त किये दर्जा के भीतर यह सोचौ कि यह पाप प्रत्यय सहित या विना प्रत्यय के ठहिरा फिर यह सोचौ कि सबसे प्रथम एकही वार का यह पाप है या इसीको वारवार करते बहुत काल बीति चुका है तिस पीछे ग्रंथ यत्नों से धर्म शास्त्र को समस्त आद्योपान्त देखि भाँलिके प्रायश्चित्त निकासै कि जिससे कोईसा दूयण उसमें न रहिजाय— तिसमें एक यह भी डील विचारना कि इच्छा विना धोखा से उत्पन्न हुये पापों पर जितना प्रायश्चित्त लिखा हो तिसको इच्छा से पाप करने घाले पर हुना ठहिराना चाहिये और उसी का चौगुना उसपर कि जिसने इच्छा सहित वार वार का अभ्यास किया हो यह अन्य स्मृतियों का सिद्धांत है ॥ ० ॥ तथैव ६० साठि परिच्छेद में २८६ दोसौ छियासी मूलश्लोक देखौ उसमें कहाथा कि (भूँटा कोई किसी को महा पापों से या गौहत्या आदि उपपापों से दोय लगावै सो एक सहीना भर जलके आहार से रहिकर जप करै तब शुक होय) यह प्रायश्चित्त उस स्थल पर यद्यपि सामान्य रूप से एकही कहा गया था तौभी अज्ञोक्त सर्वादा के विचार से उसमें यह सोचना चाहिये कि महा पाप और उपपाप का एकही प्रायश्चित्त होना अयुक्तहै तिससे उसमेंभी हर एक दर्जाके पापोंपर व्यवस्था कल्पित करनी चाहिये अर्थात् जिसने बड़े बड़े पापोंका भूँटा दोय लगाया हो तिसको वही एक सहीनेका पूरा प्रायश्चित्त कराना किन्तु जिसने उपपापों का

भंडा दोय लगायाहो तिसके लिये महीना में कुछ कमी अपने न्याय रूपो विचार से करदेनी चाहिये तो यह भी एक पापही का विचार है ॥ ० ॥ इसके उपरालु विरले ऐसे भी वचन हैं कि (हसितजू भितास्कोटनानिनाकस्मात्कुर्यात्-तथा-नोदन्वतोऽभिसिन्नायान्नचशमप्रत्रादिकर्तयेत् अन्तर्वत्याःपतिःकुर्वन्नप्रजाभवतिधुःम्) इत्यादी प्रायश्चित्तनोपदिष्टं तत्रापिदेशाद्यपेक्षया प्रायश्चित्तकल्प्यं=अर्थात्-अकस्मात्ही निरर्थक इमना या जंभाना ऐंझाना ताल टोकना आदि आकारों को न करे यर्हनयेव कियागया है-तथा-गर्भवती नारी का पति समुद्रको जलमें न स्नान करे न दाढ़ी मूछ आदि करावे क्योंकि ऐसा करने वाले को मृतान पैदा नहीं होती है यह निश्चय जानां) इत्यादि और भी अनेक ऐसे वचन हैं कि जिनमें विरले आचरणों का नियेव या उनका दोय भी दर्शाया गया है परन्तु प्रायश्चित्त कुछभी नहीं कहा है कदाचित् इन्हीं दोयों का प्रायश्चित्त कल्पित करना परै तहांभी देश काल आदि का विचार जैसा मूल श्लोक में कहिचुके सो सब करना चाहिये ॥ ० ॥ इस पर वादी प्रुहय तर्कना खड़ी करता है कि पाप रूपी निमित्त मात्र कहीं भी कोई ऐसा नहीं दिखाइ देता है जिसका प्रायश्चित्त न कहा गया हो क्योंकि यदि कदाचित् किसी पापका प्रायश्चित्त लिखने से रहिभी गयाहो तिसका भी प्रायश्चित्त आगे ३० ६ तीन खी छेदे मूल श्लोक से योगीश्वर आपही कहा चाहते हैं और गौतम ने भी (गतान्येवानादेशैविकल्पेनक्रियेरन्नित्ये कादादयःप्रतिपादिताः) एक दिवस आदिके व्रतरूपी प्रायश्चित्त दर्शाय कर पीछेसे कहि दिया है कि इन्हीं प्रायश्चित्तों को विकल्प से उन पापों परभी करै कि जिनपर कोई प्रायश्चित्त न कहागया हो -इसका समाधान क्रियाजाता है कि यह तर्कना तुम्हारी सची है और ३० ६ मूल श्लोक आदि में उपदेशभी सानान्य भाव किया जावैगा सोभी होउ उसमें कुछ विरोध यहां नहीं है क्योंकि यहाँ मूल श्लोक में सर्व देशकाल आदि को अपेक्षा पर इसवात को कल्पना का अवसर टोक दीक है और तुम्हारी तर्कना पर तर्कना सही यह उत्तर है कि अभी ऊपर जो हमने जंभाने आदि वातोंपर कल्पना करना कहिचुके जो वह नहीं कही जाती तो क्या ३० ६ मूलश्लोक वाली आज्ञा से काम यहां चल सक्ता क्योंकि वहांपर ३१०० प्राणायाम करने कहेगे सो हसित आदि छोटे छोटे दोयों पर सर्वव इतना बड़ा प्रायश्चित्त अयुक्त है तिससे यहां को कल्पना से यह तारपर्य है कि उन प्राणायामों को उपपाय आवि छोटे दर्जा के पापों से दोय लगाने वाले पर पूरा सेक्ता न आखड करै अर्थात् जैसा पाप हो तैसीही

प्राणायामों की संख्या थोड़ी या बहुत मीके भीतरही कल्पित करें अथवा जिस दोषी को निर्गुणी होने आदि से प्राणायाम करने की योग्यता या सामर्थ्य न हो तिसके लिये अपने बुद्धिके विचारसे कोई और प्रायश्चित्त सोचें कि जिसकी वह करसके ॥ ० ॥ वादी पुरुष फिरभी एक प्रश्न खड़ी करताहै • क्याजो पापका छोटापन कैसे जानाजाय जिसके द्वारा प्रायश्चित्तमें कमीकरें या कुछ और कल्पनाकरें • इसमें यह उत्तर न देना चाहिये कि प्रायश्चित्त के छोटापन से पाप का छोटापन जानाजाता है क्योंकि मेरा केवल उन्हीं पापों का यह प्रश्न है जिनके लिये कुछ प्रायश्चित्त न कहागया हो — उत्तर • यह प्रश्न तुम्हारा सत्य है परन्तु ऐसे तुच्छ पापों का छोटापन या बड़ापन जानना स्वतः सुगमहोता है क्योंकि कुछ तो उनकेअर्थवाद की चर्चा कहिने सुनने मात्र सेही बोध होजाता है फिर यह भेद देखाजाता है कि उसने जानि वभिक्त के यह दोष किया यथा • विनाजानेकिमी धोखा आदि से हीगया — इसके सिवाय दंड के छोटापन बड़ापन सेभी दोष का छोटापन बड़ापन समुभ्ता जासक्ता है, उसीके अनुसार प्रायश्चित्त का छोटापन बड़ापन कल्पित होसक्ताहै — इसका दृष्टांत देखो ७४ चौहत्तर परिच्छेद में २६१२६२।२६३। इन्हीं तीनश्लोकों को अधिकोक्तों सहित विचारों कि उनमें ब्राह्मण की ब्राह्मण मात्र कोई डगडा उगावै या लगावै या अधिकचोट लगावै इत्यादि भेदों की अनुसार प्राजापत्यआदि छोटे बड़े प्रायश्चित्त कायम किये गये केवल सजाती सवर्णा की दोषपर दर्शायेगये सो वह एक नमूना है • कदाचित्त वेही दोष सेसे दणसे उत्पन्न होयें कि ऊचे वर्णों वाला नीचे वर्णको डगडाआदि उगावै तब उसके दण्डकीन्यूनताके अनुसार उन्हीं प्रायश्चित्तों में न्यूनता कल्पित करनी होगी अथवा नीचे वर्णों वाला ऊचे वर्णों की दंडाआदि उगावै तहां उसके दण्डकी बढवारी अनुसार उन्ही प्रायश्चित्तों में वृद्धि कल्पित करनी होगी • दण्डके अनुसार जो विचार करना कहा गया सो व्यवहार सत्यादा परिपारी मे दंडविधान के स्थल पर जहां (प्रतिश्लोक्यापवायेषु द्विगुरास्त्रि शुरादसः) यही मूल श्लोक मिलै तहां इसकी अधिकोक्ति पर्यन्त व्याख्या देखो तब यह बात समझमें आवैगी क्योंकि आचार सत्यादा १ व्यवहार सत्यादा २ प्रायश्चित्त सत्यादा ३ ये तीनों कांड एकही धर्म शास्त्र के तीन आहें सो तीनों यद्यपि जुदे जुदे रक्त्वे गये हैं परन्तु तीनों का सबव परस्पर सबका मय से मिला हुआ एकही तात्पर्य है ॥ २६४ ॥

यहां तक सर्वथा पापी पुस्त्यों के प्रायश्चित्त वर्णान किये गये परन्तु इसमे यह

शंकाहै कि जो पापी अपने उद्धरणसे नकरना चाहे तब क्या करना चाहिये तिसका उपाय अगिले परिच्छेदमे दर्शावेंगे और उसकाभी कि जिसने प्रायश्चित्त पूरा किया ॥

अथास्वीकृतप्रायश्चित्तपतितस्यपरित्यागकरणेस्वीकृत प्रायश्चित्तस्यसत्कारकरणेचायंपरिच्छेदःषट्

सप्ततमः (७६)

इस परिच्छेद में दो विधी जानी जायगी कि जे कोइ पतित पापी लोभ प्रायश्चित्त करना नहीं चाहै तिनके भाई बन्धु इकट्ठे होकर इस रीतिसे जाति बाहर करें—दूसरे जो प्रायश्चित्त को स्वीकार करिके पूरा करिआवें तिनको इस रीतिसे फिर जाति में मिलावें० तिसमेंभी स्त्रियोंके निमित्त कोइ जुदा प्रकार कहाजायगा० और विरलों की दृष्टी दर्शावै जायगी कि अनुकामुकों से प्रायश्चित्त करि आने पर भी भेल मिलाप सत्कार आदि व्यवहार न करना चाहिये ॥

(दासीघटविधिः)

दासीकुंभे वह्नियामाग्निनयेरन्ववांशवाः । पतितस्य वहिः कुर्युः सर्वकायं पुच्छवत् २१५

अर्थ—दासी कुम्भको ग्रामसे बाहर पतितके लकीय वांशव लैजावै तहां उसको सब कामासे बाहिरा करें—अर्थात्—पतितके जे कोइ भाई बंधुआदि जाति संबंधी हूं सो सब इकट्ठे होकरसक दासी को दूत बनाकर प्रथम दक्षीपतितके पास खबर भेजें कि प्रायश्चित्त न करनेके हेतुसे आज येना प्रबन्ध होता है (यदि वह दासीसे इस बातके समाचार सुनिकरभी अधीनीसे प्रायश्चित्तका स्वीकार न करें तो) फिरउसी दासी के हाथ से भरवाये जलका भरा कुम्भ माटी का घडा उसी दासी के नूडपर धराकर उसे आगे लेकर सर्व भाई बंधु उसके पीछे पीछे साथ जाकर वस्तीसे बाहर किसी विख्यात तीर्थ आदि के स्थलपर धरि के लुटकवायें अर्थात् त्यागरूपसे फेंकवावें (यही दासी कुम्भ कहाता है ॥ २६५ ॥

२६५ अधिकोक्तिः—दासी घटको त्यागनेके समय उसी जीवतेहुये पतितके नामसे मरेहुये प्रेतोंकोतरह जलदान कियाजाताहै और चतुर्थी नवमीआदि रिक्ता तिथियों

मे यह काम करना कहा है=तदाह मनुः=पतितस्योदककार्यसंपिंडैर्वांधवैःसह निन्दितेऽहनि सायाह्नेजात्यृत्विग्युरुसन्निधौ=अर्थात्-निन्दित खोंदेवार खोंटीतिथिके रोज संध्या के समीपी कालमें दिनका पाँचवाँ भाग वर्तमान होनेपर समस्त जाती लोग जिनसे भाजी घाड़न का व्यौहार हो तिनको इकट्ठे करिके उनके सन्मुख और गुरु पुरोहित ऋत्विजआदिके सन्मुख पतितके सपिंडलोग उसके बांधवोंको साथलेकर पतितके नामका जलदान करें यह मनुने कहा=और यहभी मनुने कहाहै कि=दासी घंटसपांपूर्णापर्यस्येत्प्रेतवत्पदा अहोरात्र सुपासीरन्न शौचवांधवैःसह=अर्थात्-जल के भरे घट को दासीअपने पैर से उलटा करें जैसे मरेप्रेतकेलिये कियाजाताहै उभीतरह लुटकावैऔर सब संबंधीजन बांधवोंसहित एकदिन रातिभर इकट्ठेरहिकरव्रतराखें और सूतक मानें=सिताक्षराकार कहिते है कि घट का फेंकवाना जलदान पिंडदान आदि प्रेत कर्म कराने के बाद चाहिये क्योंकि आगे गौतम के कहे विधान में यही देखि परता है ॥ ० ॥ यथा गौतमः= तस्यविद्यायोनियुरुसवन्धाश्चसन्निपात्य सर्वा ग्युदकादीनि प्रेतकर्माशिक्त्युःपात्रं चास्यद्विपर्यस्येद्युः दासःकर्मकरोवापात्रमानीय दासीघटानुपूरयित्वादाक्षिणाभिमुखोयदाविपर्यस्येत इदंअमुकसनुदकं करोमीति नाम ग्रहंतं सर्वेन्वालभेरदप्राचीनावीतिनोमुक्तशिखाविद्यागुरवोयोनिसंबंधाप्रचवीश्येरन्न तोऽपःउपस्पृश्यश्यासंप्रविशेयुरितिगौतमः=अर्थात्-उस पतित के विद्या संबन्धी लोग सहपाठी या पढने पढानेवाले और योनिसंबन्धीलोग जिनकी लडकियां व्याहिके उसकेघर आई हैं और गुरु पुरोहित आदि जो उनके दाहालेहैं तिनहै इकट्ठेकरिके उसके सपिंड लोग उदक दान आदि प्रेतकर्म जो कुछ दाह के दिन सकही रोजहोते हैं सो सब करें और इतके नामका पात्र अर्थात् दासी घटभी उलटवावै तिसकाजुदा यह विधान है कि उन्हीं सपिण्डों का दास रहलुआ या उसके न होने पर कोई और ही कर्म कर मजदूर मझी का घडा लाइकर उसमे दासी घट नामसे जल भरिके वही दास या दासी दक्षिण दिशा की मुह क्रिये उसी दासी घट को जब उलटा करें तभी सपिंड और बांधव लोग पापी का नाम लेकर सेसा मन्त्र बोलें कि (अमुकमनुदकं करोमि) फलाने की आज से अनुदक भारी में कारता हूँ अर्थात् किसी से जल दान पाने का भारी वह नहीं रहा न किसी अपने कुटुम्बी को जल दान करनेमें शामिल होसकैगा• इस मंत्र को बोलते समय ये सब लोग जनेऊ की दाहिने कांधे पर बदलि के और चौदी की शिखा की खोलि के अपसव्य होकर सब बोलें फिर पीछे से सब लोग आपस में परस्पर यथा क्रम से मिलें भेटें और इसी मंत्र का बोध

सबको कराते जावें यह सब काम होते हुये पापी के विद्या गुरु और योनि संबंधी आदि सब नाते दार लोग देखें तिसके वादि जलमें स्नान करिके अपने ग्राम बसती को चले जावें यह शौतम ने कहा ॥ ० ॥ परन्तु यह त्याग रूपी कर्म कराना उमी दशा में आवश्यक है कि जब बंधुओं से प्रेरणा किया हुआ भी प्रायश्चित्त न करे अर्थात् बन्धु जनों को यह उचित है कि पहिले बारम्बार प्रायश्चित्त कराने की प्रेरणा ताकोद उसपर करे—यदाह शंखः—तस्यगुरुवांधवानराजसमक्षदीयानभिव्या प्यानुभाष्य पुनःपुनराचारंलभस्वेतिसयदेवमग्न्यनवस्थितमतिःस्यात् ततोऽस्यपात्रंवि पर्यस्वेदितं—अर्थात्—उस पापी के गुरुजन और बन्धुओं को राज अदालत के सन्मुख पापीके दोषों को अच्छीतरह कहि समुभाइके कि अबहूँ प्रायश्चित्त करिके फिर अच्छे आचार को पकड़ौ—सेमा कहिने पर भी यदि वह अपनी समुभ को ठिकाने पर न लावें तब जाकर उसके नाम का दासीघट उलटा करवावें (यह शंख जीने कहा—दासी घट उलटा होचुकने के वादि ये सभी बांधव आदि उक्त पापी को सब कामों में बोलना चालना पास बैठारना आदि सस्कारों से बाहर करे—तदाह मनुः—निवर्तेरस्ततस्तस्मात्संभायया सहासने दाय्याद्यस्यप्रदानंच यावाचैवहिलौकि कां—अर्थात्— दासी घट को विधि पूरी होजाने से अनन्तर उस पापीमें बोल चाल और पास बैठारना और पैदक घनका भागदेना या भाजी वाइने का व्योहार देना आदि बातें निवर्तित होजावें और भी जो कुछ संसारी व्यवहार देन लेन आदिहोते हैं सो भी बन्द किये जायें—इसपर भी यदि कोई उसके साथ झेह आदि कारणाों से बोलै तिसको प्रायश्चित्त कराया जाय—यथा (अत ऊर्ध्वं तेनसंभाष्य तिस्येदेक राधंजपन्साविधीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वचेत्त्वर।वसिति) अर्थात्—त्याग होजानेके उपरांत उसके साथ कोई बिना जाने बात करे सो सक दिन राति भर गायत्री जप करते हुये वितारें यह उसका प्रायश्चित्त है पर जिसने उसका त्याग होना जानते हुये बात चीत करी हो सो तीन दिन राति भर गायत्री जप करते हुये एक ठिकाने पर बैठा रहे ॥ २६५ ॥

(अथकृतप्रायश्चित्तस्यप्रत्यावर्तनविधिः)

यह बात कहा चाहते हैं कि बंधुओंके त्याग देनेसे जिसको पछतावेसे वैराग्य आया तिससे त्याग होजानेके वादि जिम्मे प्रायश्चित्त किया अथवा दासीघट उलटा होनेके बिनाही बंधुओंके समझानेसे प्रायश्चित्त किया अथवा किसीकी प्रेरणा

बिना आपही जिसने प्रायश्चित्त किया तिनकी साधना पूरी होने वादि क्याकरना चाहिये तिसकी आगे पांचप्रलोकों में आपही योगीश्वर वर्गान करेंगे ॥

(नूतनघटविधिःनिवर्तितप्रायश्चित्तस्यसत्कारः)

चरितव्रतआयातेनिनयेरन्नवंपटम् । जुगुप्तेरन्नवाऽऽपेनसंविभेपुत्रचतर्वशः २१६

अर्थः—प्रायश्चित्त रूपी व्रतसाधन करिके लौटिआने पर सपिंड आदि बंधुलोग नवीन घटभरिके लेजावें और इसपुरुषकी किसीतरहसे कुछ निन्दा न करें औरसब तरहसे उसमे अपनाहेलमेलभीकरें ॥ ध्यानकरो यहाँपरनवीन घटवतानेसे यहतात्पर्य दर्शाया है कि पूर्वोक्त दासीघट के विधानमें नवीनकी खसूसियत नदूँदनी ॥२६६॥

२६६ अधिकोक्तिः=घटके साथ सत्कारसे घर ले आना कहा० इसमें दो भेद हैं कि आगे योगीश्वरके ३०० तीनसौ मूलप्रलोकमें (घटेऽपवर्जिते) इसपदसे घटका त्यागना भी प्रतीत होताहै और मनुके ग्यारहवें अध्याय मे १८६ । १८७ इनदोनों श्लोकसे भी त्यागना प्रतीत होता है फिर इन्हीं में अस घातके अर्थ भेद से घट का साथ लेआनाभी सिद्ध होताहै तथैव आगे गौतमके विधानमें भी साथ लेआना सिद्ध होताहै-इसी प्रकार कहीं लोकमें समक्ष भी यह देखा गया है कि बंधुलोग,जलाशयसे घट भरिके उसके आगे आगे साथ लेकर घरको जातेहैं० तिससे निश्चितहुआ कि दोनों भेद ठीक ठीकहैं जहाँ जैसा सम्भव होय तहाँ तैसाही वर्तय कियाजाय० और भी आचार सूर्यावा परिपाटीमें सातवां मूलप्रलोक तथा उसीका अभिप्रायार्थ देखो कि दो रीतों मे विकल्प से कोत्रे एक रीति अपनी इच्छा से अंगीकार करै ये सभी लक्षणा भेद आगे समभिलेना ॥ ० ॥ पवित्र जलाशयमें स्नान कराइके घट के साथ घर को ले आना चाहिये=यथाह मनुः=प्रायश्चित्तैतद्विचरितेपूराकुंभनपांनवष तेनैवसार्धंप्रास्येयुःस्नात्वापुरायेजलाशये १८६ ॥ सत्यधृतघटप्रास्यप्रविश्यभवनस्तकम सर्वांगान्जातिकायांगान्यथापूर्वसमाचरेत् १८७=अर्थात्—प्रायश्चित्त करिके आने पर उसके सपिंड सन्नानोदक आदि बंधुलोग उसी के साथ जाकर पूनीत जलाशय में सभी स्नान करिके जलके भरे नवीन घट को (प्रास्येयुः) जल में फेंकें या ग्रहणा करिके साथ लेजावें ये दोनों अर्थ ठीकहैं १८६ ॥ वह प्रायश्चित्ती पुरुष उसी घट को जलाशयमें (प्रास्य) फेंकिके या जल ग्रहणा करिके अपने घर को जाइ प्रवेश करिके जातिसबधीसब कार्य करनेलगै जैसे पहिले किया करता हो १८७ ॥ यद्यपि अर्थ दोनों ठीकहैं तथापि जल भरिके साथ लेजाना अर्थ उत्तम है क्योंकि गौतम ने

इस बातपर एक जुदा विधान कल्पित किया है तिसमें भी यही अर्थ देखि परता है सो सब आगे देखौ फिर इतकेमध्ये तीनसौ की अधिकोक्तिभी देखना ॥ ० ॥ अत्राह गौतमः=यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्धो तस्मिन्कर्मेशातकंभ मयपात्रंपरायतमातृहृदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्योवा ततश्चनमप उपस्पृशेद्युर्यास्मैतत्पात्रंदद्युस्तत्संप्रतिगृह्यते (शांताद्योःशान्तापृथिवीशान्तंशिवसन्तरिसंयोरौचनस्तमिह गृह्णामीत्येतैर्यजुभिःपापमानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूप्मांडैश्चाज्यंजुहुयात् हिरण्यदद्यात् गांचाचार्याथ) यस्य प्राणान्तिकप्रायश्चित्तं समृतं शुद्धो त • एतदेव शान्त्युदकसर्वेषूपपातकेष्वपि • ततश्चनकृतप्रायश्चित्तं तेनैव कृतस्येयुः सर्वकार्येषु क्रयविक्रयादियु त्तनसहस्रव्यवहारेयुः=अर्थात्—यह सब गौतमने आपही कहा है कि—जो कोई प्रायश्चित्तसे शुद्धहोजाय तिसपर कृम्विधि करनेमें सुवर्ण का बना घट होय अथवा चाँदी आदि साठी पर्यन्त किसी औरही धातुका पात्रहोय तौभी उसमें कुछ सोना डार देना चाहिये तिसको पवित्र तालाव कुराड या नदियों से भरिके उस प्रायश्चित्त की आगे कारिके साथ साथ लोजावै किसी जलाशय पर अर्थात् अभी पहिले घरके भीतर वह न घुसै उसी जलाशयमें इसको स्नान करवावै इसके अनन्तर वही जलका भरापात्र उसके हाथों में समर्पना करै तिसको दोनों हाथसे अच्छे थाँभिकर जपकरै अर्थात् यदि आपही वेदमन्त्रों के जपनेमें समर्थहो तो आपही जपै अन्यथा किसी वेदपाठीको अपनेसाथ प्रतिनिधि बनाकर उसके मुखसे जपकरावै और घोका होमकरै तिसको लिये (शान्ताद्योःशान्तापृथिवी आदि ऋचाओंकी नाम चिह्न भी दीयेहैं कि इत्यादि यजुर्वेदकी पावमानी और तरत्समन्दी ऋचाओंसे जपकरै तथा कूप्मांड नामके वेदमन्त्रोंसे घृतका होम करै और सोना चाँदी तथा गाय भी आचार्य की दान करै कि जिसने यही जप होम करवायाहो) किन्तु जिसका प्राणान्तिक प्रायश्चित्त ठहिराहो जैसा ब्रह्महत्या आदिके प्रकारगोमे कहाया कि अग्निमें जलिजाना आदि प्रायश्चित्तहो सो भरणानेहेही शुद्धहोता यह घटकी विधि उसके लिये नहीं है • यही शान्ति का उदक रूपी घट विधान सब तरह के उपपातकों में भी जानना • तिसके अनन्तर इस प्रायश्चित्त की पुरुषको वे वन्दूजन किसी प्रकारसे भी नकोसै अर्थात् पहिलेदोय घावत कोइसी निन्दा उसकी नकरै और सब कार्यों तथा क्रय विक्रय आदि सौदागरी के व्यवहारोंमें भी उसके साथ अच्छी रीतिसे बर्तावा करै कि जो कुछ पहिले कृत्वायेये यह गौतम ने कहा (इसका विधान थोडासा और बाकी रहा सो आगे ३०० के मूलपरलोकमें देखौ ॥ २६६ ॥

इस परिच्छेद में यहाँ तक २६५ । २६६ दोसौ पंचानवे छानवे को दोनों मूल श्लोकसे जो कुछ व्यवस्था पतित पुरुषको निमित्तपर कहीगई सोसब नीचेके श्लोक से पतिता स्त्रियोंके निमित्त पर भी अतिदेश उतारा जायगा ॥

(स्त्रीष्वप्यतिदेशः)

पतितानामेपएवविधिःस्त्रीणांप्रकीर्तितः + वासोऽग्रहंति कंदेयमन्त्रेवासःसरक्षणम् २९७

अर्थः—पतिता स्त्रियोंकी भी यही विधि कहीगई=अर्थात्—जैसा दोसौ पंचानवे २६५ श्लोकसे पतित पुरुषोंका दासीघट उलटा करना या जलदान पिण्डदान करना आदि कहा गया वही सब स्त्रियोंकाभी समझलेना और जैसा दोसौ छानवे २६६ श्लोकसे प्रायश्चित्तकिये पुरुषका सत्कार करना कहागया वही सब स्त्रियोंकाभी जानना (यह अतिदेश धर्मका स्वल्पहै) तथापि पुरुषोंकी अपेक्षा यहाँ स्त्रियोंके निमित्तपर थोड़ीसी विशेषसर्वादा एक जुदाहै सो उत्तरार्धमें देखो ; घरके समीपवासदेना तथा अन्नवस्त्रभी रक्षासहित = अर्थात्—यही इतना नियम विशेषहै कि जो कीर्ति स्त्रियाँ अत्यंत पतित ढंहरें और प्रायश्चित्त को न करें तिनका दासीघट विधानआदि कर्म होजाने के बादभी कहीं बाहर न जाने दें परन्तु घर में भी घुसना उनका निषिद्ध है तिससे घरके समीप ही किसी फूस पत्ते आदि की बनाई झोपड़ीमें निवास करावें और प्राणावने रहने योग्य मोटा अन्न और मैले पुराने वस्त्रदेते रहिकर त्रेसी चौकसाई से राखें जो किसी पुरुषका समागम उसमें न होसके (इसअर्थोक्त नियम से यह बात भी आपही सिद्ध होती है कि जिन प्रायश्चित्तों की साधनापुरुषों की जंगल या वन विदेश में जाकर करनी कही थी • कदाचित्त वेही प्रायश्चित्त कहीं पर्देदार स्त्रियों पर आरूढ होयें तभी उनका बाहर जाना उचित न होगा किन्तु इसी रीति से घर के समीप जुदे स्थान में रहिकर व्रतादिक साधन करैगी या घन पुरुषों की रक्षा साथ तीर्थ आदि के स्थान पर कि जैसा कुछ विवेकी विद्वानों के विचार से ढंहरें • बल्कि ऐसे ही अटपटे विचारों के अर्थ में पछत्तर ७५ का परिच्छेद सबसे जुदा रक्त्वा गया है कि सब तरहकी टेढ़ टपेड़ वाली बातोंकी गुंजायश उसमें सीची जासक्ती है ॥ २६७ ॥

यहाँ यह सन्देह खडा होता है कि वे अत्यन्त पतिता स्त्रियाँ कौन हैं जिनके लिये यह जुदी विधि परित्याग मध्ये कही गई क्योंकि पतित अनेक भाँति की होती हैं तिनमें इनकी क्या पहिचान होगी सो अगिले मूल श्लोक से दृष्टाते हैं ॥

(स्त्रीणांअतिपातित्यचिह्नानि)

नीचाभिगमनंगभेपातनभर्तृहिंसनम् । विशेषपतनीयानिस्त्रीषामेतान्यपिपुत्रम् २१८

अर्थः—नीच से संगम० गर्भ का गिराना० भर्ता का वध करना० स्त्रियोंको ये भी तोन कर्म निश्चय पूर्वक विशेष पातित्य का हेतु है=अर्थात्— जो जो महा पातक आदि पुरुषों के पातित्य का हेतु कहे गयेये तिन कर्मों से स्त्रियां भी पतित होती हैं परन्तु स्त्रियों के अघोक्त तीन कर्म अविक हैं जिनसे अत्यन्त पतित होजातीहैं० तिनका यह व्यौरा है कि एक जो हीन वर्गा आदि नीचो जाति के पुरुष में गमन करै० दूसरा कर्म जो अपना या विराना किसी स्त्रीका गर्भ उसके कहिने या न कहिने आदि किसी तरह से गिराती फिरै और यह गर्भ चाहै ब्राह्मणो का यद्रा और ही किसी वर्गा की स्त्री का या अपनेही पेट का गिराया हो तो हर मूरत में पतित होगी० तीसरा कर्म भर्ता का वध करना चाहै विय देकर या औरही किसी प्रकारसे मारना और यहां पर भर्ता शब्द से वह पुरुष जानना जो स्त्रीका भरण पालनकर्ता हो किन्तु चाहै उसका सजाती विवाहित या विजाती विवाहित या धरूक आदि किसी प्रकार का पति हो तिसका प्राणघात करना या करवाना भी भर्ताहिंसन कर्म कहाता है तिस कर्म के करने वाली पतिव्री कहाती है ॥ २६८ ॥

२६८ अघिकोक्तिः—पुरुषों के पतित हो जाने मध्ये इतने कारणा प्रसिद्ध हैं १ महापातक २ अतिपातक ३ पातक ४ अनुपातक ये चार तौ एक ही एक वार होने से पतित बनाइ देते हैं पांचवें ५ उपपातक कई वार होजाने पर पतित बनातेहैं ऐसे ही इनसे छोटे छठे दर्जे वाले पाप इच्छा सहित अनेक वार होने सेवेभी कर्ता पुरुष को पतित बनाते हैं येही सब स्त्रियों को भी पतित करते हैं (यह मूल प्रलोक में अपि शब्द से ध्वन्यर्थ लिया गया) परन्तु स्त्रियोंको तीन पातक इन सबसे उपरालू भी होतेहैं=एवंशोनकोप्याह=पुरुषस्ययानिपतन निमित्तानिस्त्रीणामपिताम्येव ब्राह्मणोहीनवरासेवायामधिकपततीति=अर्थात्—ऊपर को वार्ताको शोनकने भी दृढ कियाहै कि पतित होजानेके जितने कारणा पुरुषोंके लिये कहेगये वेही सर्वास्त्रियों को भी होतेहैं परंच ब्राह्मणो स्त्री यदि अपनेसे हीन वर्गोंकी सेवा सर्गात में पहुँचै सो अत्यन्तही पतित होतीहै=वशिष्यस्तु=वीरिास्त्रियापातकानिलोकैवर्भविदोविदुः भर्तृवधोभू शाहृत्यास्वस्यगर्भस्यपातनम्=अर्थात्—भर्ता का वध० भूषा इत्या जो गौर स्त्रियोंका गर्भ गिरावै या किसी का छोटा बचा मार डारै० अपना गर्भ गिराना० ये

तीनमहापातक धर्मज्ञलोग स्त्रियोंके बतातेहैं (इसवचनका यहतात्पर्यनहींहै किइन तीनसेउपरालुपातकस्त्रियोंकनहींहैंक्योंकिउनहींवशिष्टकाऔरभी वचनआगेदेखीं) पुनरेववशिष्टः=चतस्रस्तुपरित्याज्याःशिष्यगायुरुताचयापतिश्रीचविशेषेताजुंगितोपगताचया—इतिचतसृगामेवपरित्यागइत्युक्तवतामांप्रायांप्रचत्तमचिकीर्यतीनांसध्ये चतसृगामेवशिष्यगादीनां चैलाचगृहवासादिजीवनहेतुत्वाद्युच्छेदेनत्यागंकुर्यात् नान्यासानित्यभिप्रायःअतश्चान्यासांपतितानां प्रायश्चित्तमकुर्वतीनामपिवासोगृहांति केदेयनित्यादिकर्तव्यमित्यवगम्यतेइतिमिताक्षरा—अर्थात्—वशिष्टने यह भी कहा है कि•ये चार स्त्रियां तो अवश्यही त्यागिदने योग्य हैं—एक जो अपने भर्ताके शांगिर्द विद्यार्थी सेवक नौकर आदिसे संगमकरे•दूसरी जो गुरुओंसे अर्थात् अपने यापतिके वाप चचा मामा फूफा आदि रिश्ते से बड़े•बूढ़े गिनेजाते हों तिनमें किसी गुरुजनके साथ संगमकरे•तीसरी पतिनी जो भर्ताके प्राणा विनाश•चौथी जुंगितोपगता जो अपनी जातिसे•नीचीजातोंके पुत्र्यमें संगम करे•ये चार स्त्रियां विशेषकर जुदो काहीगईहै कि इनका त्यागही उचित होताहै—इस पर मिताक्षराकार कहतेहैं कि इन चारिहीका त्यागना कहा तिसका यह तात्पर्य है कि जहांतक सवतरहकी महापतिता होती है तिनमें जो कोईसी स्त्रियां प्रायश्चित्त करने पर उताऊ न हैय तिनमेंसे केवल इन्ही चारोंका परित्याग इसप्रकारसे करना चाहिये कि रहिनेको जगहभी न देवें और अन्नवस्त्रभी न देवें किन्तु ग्रामसे बाहर छोड़िआवें परन्तु इनसे उपरालु जो और सेसी बाकी रहें जिन्होंने प्रायश्चित्त करना नहीं कुवूल किया तिनको इसदंगसे न छोड़ना चाहिये अर्थात् उनको उसरीतिसे रखना चाहिये जैसा ऊपर २६७ मूलश्लोक उत्तरार्ध के अर्थमें कहिचुके हैं कि दासीघट विधान क्रिया जानेके अनंतर उनको घरहीके समीप जुदी भोषडी में बसावें और सोटा भोंटा अन्न वस्त्र भी देतारहे इत्यादि•यहतात्पर्य समझागया मिताक्षराकारने यहकहा॥ २६८॥

अब आगिले मूलश्लोक में उभययादाका कुछ अपवाद भी योगीश्वर दर्शावेंगे जो २६६ श्लोकसे वर्णान हुइ थी अर्थात् सत्कार की सयादा जो कुछ उसमें कही थी वह सभी प्रायश्चित्ती पुस्त्योंपर नहीं समझनी किन्तु विरलोंको छोड़िकर समझनी होगी यही उसमें अपवाद (छूट) का स्वरूप जानना ॥

(संविशेष्युरित्यस्यापवादश्च)

अर्थः—शरणागत० बालक० स्त्री० के हिंसकों कृतज्ञ सहितों के प्रति व्रताचरणा कियेहुयेकिंभी इनकेप्रति ज संवेशकरै=अर्थात्—शरणा आयेको मारनेमरवानेवाले० बालक बच्चेका वध करनेवाले० स्त्री मापका वधकरनेवाले० और कृतज्ञ परायणकिया उपकार मरनेवाले सहित० ये सब पातकी यद्यपि प्रायश्चित्त भी करि आये जिससे निर्दोष दहर सक्तैहैं तथापि इनकेसाथ पास न संवेश करै (अर्थात् इनकेपास जाना आना बैठना उठना आदि या कोईसा व्यवहार इनके साथ रोपना आदि न करना चाहिये और यद्यर्थ यह तात्पर्य है कि यद्यपि प्रायश्चित्त करिआनेसे शुद्धिमानि गई और इसी से खाने खवाने मिलने मिलाने आदि व्यवहार भी जहरीमात्र करने परैगे तथापि इनका पुराविश्वास न करना चाहिये ॥ इसीलिये मूलश्लोक में (नत संविशोत) यह कहागया कि सम्यक् अच्छेप्रकार से प्रवेश उनमें न करै ॥ २९९ ॥

२९९अधिकोक्तिः—मिताक्षराकार इसअपवादद्वयीवार्ता कोवाचनिकप्रतियेवभी नामधरते हैं=यथा=नसंव्यवहारेदितवाचनिकोऽयंप्रतियेवः किमिदं वचनं कुर्यान्नहि वचनस्यातिभारोस्ति अतप्रचयद्यपिष्यभिचारिणीस्त्रीववेऽपिइदमेवप्रायश्चित्तंतथापि वाचनिकोऽयंच्यवहारप्रतियेवः=अर्थात्—उनकेसाथअच्छेव्यवहार न करै यहकहिना एक(वाचनिकनियेवहै) वाचनिकउसे कहितेहैं जो किसीमर्यादाके अनुसार तो नहीं सिद्धहोता हो केवल मुखहीके वचनसे नियेवकियाजाय जैसा दोसीछान्दो२९६मूल श्लोकवाली मर्यादा से व्यवहार करना सिद्ध होही चुका तो भी यहां वचन मापसे प्रतियेव कियाराया तिससे (संव्यवहारकीमर्यादाहोते) वाचनिक प्रतियेव इसका नाम उहिरा • तिसपर यहतक खड़ी होतीहै कि यह वचन क्या चोज है जिसे कोई मारने कुछ इस वचनका बोझ किसीपर नहींहै जिससे मानाजाय• इसीलिये समझा कर समाधान देतेहैं कि ऐसे समझो एक दृष्टान्तहै कि जैसा इसी मूलश्लोक में स्त्री याती पुस्त्यका विश्वास मने कियाराया स्त्री वध भी दोभांतिकाहै कि एकने अपना भार्या व्यभिचारिणी को लोकलज्जा से मारडारा और एकने निरपराध स्त्री को मारडारा जो व्यभिचारिणी नहीं थी केवल उसका भुयगा इरने आदि कारणों से घातकिया इस दशामें दोनों घाती पुरुष यदि प्रायश्चित्त करिके आवें तब जिमने लोकलज्जासे वध कियथा तिसके साथ संव्यवहार करना और उसको विश्वासपात्र जानना प्रत्यक्ष मूचित होताहै • दूसरेका विश्वास करना या उसके साथ संव्यवहार जोड़ना यह प्रत्यक्ष अनिष्ट है यद्यर्थ से सेमेही अपघातियोंके साथ संव्यवहार बंधा उद्यो आदिका वाचनिक नियेव है कुछ उनके लिये नहींहै जिन्होंने लोकलज्जा से

लाचार होकर स्त्रीका वध किया यद्वा किसी धोखे आदि दैवयोगसे अपनी इच्छा बिना वध होगया जैसे किसी वाहन सवारीको लेजातेहुये मार्गमें कोई स्त्री दबिकर मरगई और आपही पापके भयसे प्रायश्चित्त करनेपर उतारू शीघ्रहुआ हो तो यह उसके हृदयसे घर्मियलक्षणा पाया गया तिससे इसी एक दृष्टान्त के अनुसार बहुधा और भी दशाओंपर ध्यान सर्वदा देदेकर वाचनिक नियेवका वर्तवा करना होगा। इसी दृष्टान्त से योगीश्वर के मूल श्लोकमें यह बातभी समिद्ध होतीहै कि दोषकार के स्त्री घातियों में जो कोई एक विद्यास के लायक समझा गया है तिसके लिये २६६ दोसौछान्दवे मूलश्लोक पूर्वार्ध की मर्यादा से शांतिघट का विधान करवाना आदि कुछ भी मने नहींहै करवाना चाहिये परन्तु दूसरी भाँति का स्त्री घाती बालघाती शरणागत घाती और कृतघ्न भी यदि प्रायश्चित्त करिआवें तब उनकेलिये शांति घटलेजाना आदि कुछ भी योग्य नहींहै। तिससे यह २६६ श्लोकवाला अपवाद भी वाचनिक प्रतियेव ठहिरायागया ॥ २६६ ॥

दोसौछान्दवे श्लोकवाले विधानका जो कर्म शेषरहा था सो नीचे अब लिखतेहैं।

(पूर्वोक्तविधावपिविशेषः)

षटेऽपवर्जितेज्ञातिमध्यस्थोपवसंगवाम् । प्रदयात्प्रथमंगोभिःसकृतस्यहिसत्क्रिया, ३००

अर्थः—घटके अपवर्जित होनेपर जातिके बीच बैठा हुआ प्रथम गौओंको यवस प्रकर्ष से देवैः गौओंसे सत्कार किये कीही सत्क्रिया होय=अर्थात्—जिसका शांति कुम्भरूपी कर्म समाप्त होगया किन्तु उनी कृतघ्न के साथ प्रायश्चित्तो पुरुष घरमें आगया वह अपने जाति बन्धुके समाज में बैठाहुआ सबसे पहिले यह कामकरै कि गौओंके लिये घास अपने हाथसे छोड़ै कोकि प्रथम गौआ से सत्कार पाचुकने पही जाति बधु आदि करके सत्कार होना चाहिये ॥ ३०० ॥

३००अधिकोक्तिः—यहां बन्धु विरादरी से सत्कारहोना केवल यही अभिप्रेत है कि उसके साथ भोजन आदिका वर्तवा किन्तु उसकी चीहुई ज्योनारको स्वीकार करै परन्तु पहिले जत्र गौर्ये उसकीदई घास आदिको स्वीकार करै अर्थात् बेंतेसार प्रीतिसे खानेलमें यही उसका गौओंसे सत्कार होना सूचित कियाहै ॥ तात्पर्य इस का यह कि यदि गौर्ये उसका दियाहुआ अन्न घास न भक्षराकरै तो फिर विरादरी भी ज्योनारका स्वीकार न करै और दुवारा प्रायश्चित्त करनेपर आरूढ करै=हारीतोप्याह=स्वशिरसायवसमादायगोभ्योदद्यात्प्रदितः प्रतिगृह्णीतुर्येनप्रवर्तयेयु

रिति • इतरयानेत्यभिप्रेतम् = अर्थात्—हारीतने भी यह कहा है कि अपने सड़पर ला-
 दिकर घास गौओं के आगे छोड़ें जो गौयें खाने लगें तो इस प्रायश्चित्तों को खाने
 पीने आदि व्यवहारों में बन्धुजन प्रवर्त करें • अन्यथा नहीं यह अभिप्राय सूचित
 किया है ॥ ० ॥ दोस्रो छात्रवे २६६ अधिकोक्ति के प्रारम्भ में जो बात लिखी गई थी
 उसपर भी ध्यान देना चाहिये कि अङ्गों के मूलश्लोक में (घटेऽपवर्जिते) यह पाठ है
 तिसका अर्थ यद्यपि त्यागहीका प्रत्यक्ष है कि घटके त्याग होजाने में अगिला कर्म
 कियाजाय तथापि सिताक्षराकारने जलाशयमें छोड़ि आना फेंकिआना अर्थ नहीं
 स्वीकार किया बल्कि यह स्वीकार लिखा है कि (घटेऽपवर्जितेहृदादुद्धृत्यपूर्णां कुच
 निनीते— असौ चरितव्रतः सपिंडादिमध्यस्योगोभ्यो यवसंदद्यादिति सिताक्षरा) अर्थात्
 घटका अपवर्जित होना यह कि तालाब झराड आदिसे भरिके पूरा कुम्भ माय ले-
 जाने वादि—यह प्रायश्चित्त किया हुआ पुरुष अपने सपिंड आदि बंधुओंके बीच में
 वैदिके प्रथम गौओं को घास छोड़ें—सो यही अर्थ सुन्दर जानो क्योंकि मूलश्लोकमें
 भी घटका अपवर्जन कहने से यह तात्पर्य नहीं है कि जलमें फेंका जावे बल्कि यह
 ध्वन्यर्थ है कि घटका समस्त पूजा कर्म आदि निपटि जानेपर घासदेना आदि कर्म
 करै—और मनु का यह बचन जो पहिले भी लिखि चुके हैं कि (उतु अप्सुतंघटं
 प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकं) सो इसका भी अर्थ व्यत्यस्त योजना से ऐसा होता है
 कि वह प्रायश्चित्तों अपने घर में प्रवेश करिके फिर उस घटको जलमें छोड़वाइ
 के अगिले कामों का प्रारम्भ करै अर्थात् वहां जलाशय से भरिके जो घट उसके
 साथ घरको आया हो तिस जो उसी दिन या और क्तिथीदिन उचितजानिके जला-
 शय पर सिराइ आवें फिर और कामों का प्रारम्भ करै तो यह सिराइ आना सब
 तरह की यज्ञों में प्रसिद्ध है कि जिस घट का पूजा कर्म आदि सर्वथा निपटि जाता
 है वह अन्त को जलही में सिरायाजाता है कुछ इनवातों में विरोध नहीं है इसी से
 मनु मुक्तावली टीकाकार कुल्लुक भण्णे जलमेफेंकना अर्थलिखा सोभी कुछविरोधी
 नहीं है ॥ ३०० ॥ अब अगिले परिच्छेदमें सभी प्रायश्चित्तोंका मिला भुला सद्धी
 सारा स्वीकार करना कहा जायगा ॥ ३०० ॥

अथ सकलप्रकाशप्रायश्चित्तानां साधारणधर्मविषय पर्यदाऽनुमतप्रायश्चित्तस्वीकरणविवेकोऽयं

परिच्छेदः सप्तसप्ततितमः (७७)

—*—

इस परिच्छेद में पर्यंत सभा समाज के द्वारा ऐसे सभी पापों के प्रायश्चित्त विचार होने का प्रकार जाना जायगा कि जो जो पाप करने के समय पर ही या कुछ काल पीछे भी प्रकाश हो जायँ—क्योंकि—उनमें यद्यपि कर्ता पुरुष आपही जानी ध्यानी धर्मशास्त्र का विवेक्ता होय तौभी वह अपने मध्ये निर्णय करने का अधिकारी नहीं है—इसी लिये तरह तरह की सभाओं के स्वरूप और आगे दशविंसे और जिस रीति से सभा में जाना प्रयत्न करना चाहिये सो भी ॥

(विख्यातदोषस्यायं विधिः)

विख्यातदोष कुर्यात्पर्यवोऽनुमतं व्रतम् ३०१ (पूर्वार्धे एव)

अर्थः—विख्यात दोषो पुरुष पर्यंत का अनुमत व्रत करै=अर्थात्—जिस दोषीका पाप विख्यात हो गया हो उसको धर्मसभाके विचारसेही प्रायश्चित्त करना चाहिये चाहें वह धर्मशास्त्र आदि सर्वशास्त्रों के विचार करने में आपही अति चतुर हो तौभी अपनेलिये आप न विचारै किन्तु सभाकेद्वारा बुझिके करै वरज जिसअवसरमें सभासदों की अपेक्षा इस दोषी में शास्त्रज्ञता आदि कुछ विशेषता विद्यमान हो तहां उसी सभा के साथ मिलकर विचार करनेका अधिकार इसको सूचित है सो करै। तथापि प्रायश्चित्त के नियम उसी पर्यंत सभा के अनुमत के द्वारा कल्पित होंगे—और—दोष का विख्यात हो जाना यह कहता है कि जिस पापको उत्पन्न करनेवाला केवल वही पुरुष सकाकी हो तिसको अन्य पुरुषभी मालूम होजानेसे कहिने लगेँ था जिस पापको उत्पन्न करनेवाले कोई और भी दो चार सहायक हों वे अवश्यही जाना करतेहैं परन्तु उनका जानना मुख्यकर्ता के निकट कुछ विख्याति में गिनती नहीं है अर्थात् सहायको से उपरालू मनुष्य ज्ञान कर चर्चा करनेलगेँ सो विख्यात दोष कहता है ॥ ३०१ ॥ यह पूर्वार्ध श्लोक है ॥

३०१ अधिकोक्तिः—धर्म सभा के पास जाने का जुदा प्रकार होता है=यथाहं

गिराः—कृतेनिःसंशयंपापे नभुंजीतानुपस्थितः भुंजानोवर्द्धयेत्पापंयावन्नाख्यातिपर्यंदि
 सचैलंबारयतःस्नात्वाक्लिन्नवासाःसमाहितः पर्यदानुमतस्तत्त्वंसर्वैर्विख्यापयेत्तरः व्रत
 मादायभूयोपितथास्नात्वाव्रतंचरेदिति—अर्थात्—पाप करना निश्चय होजाने पर
 सभा में उपस्थित हुये बिना न भोजन करे क्योंकि जब तक सभामें जाकर प्रायश्चित्त
 नहीं मांगता है तब तक बीच में भोजन करते हुये किया हुआ पाप वृद्धि को प-
 हुंचता रहता है तिससे शीघ्रही कपड़ पहिने हुये सचैल स्नान करिके भीजे वस्त्र
 सहित अपने चित्त को ठिकाने रक्खे हुये जाकर सभा से अनुमत पाइकर दीयोमनु-
 प्य अपना सब यथार्थ व्योरा सुनावे और व्रत का उपदेश वहां से लेकर फिर उसी
 तरह दुबारा गोता लगा कर चला जाय अपने प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करे ॥ ० ॥
 पराशर ने यह भी नियम दर्शाया है कि पहिले कुछ पुण्य दान करिके तब सभा में
 ब्रह्मते जाय=यथा=पापविख्यापयेत्पापीदस्वाधेनुत्थाद्यस (सतस्रोपपातकविययं
 महापातकादिष्वधिकं कल्प्यमिति मिताक्षरा)=अर्थात्— पराशर ने कहा है कि
 गाय और वृषभ दान करिके पापी अपने पाप को सभा में सुनावे (मिताक्षराकार
 कहिते हैं कि यह सिर्फ उपपातकोंपर समझना किन्तु महापातक आदि बड़े पापों
 पर इससे अधिक दान पापकी बड़ाई के अनुसार सोचना चाहिये) और यह अ-
 गिला जो वचन है कि=तस्माद्विज्ञःप्राप्त पापःसकृदाप्लुत्यवारिणा विख्यायपापं
 पर्यङ्म्यकिंचिद्वत्वाव्रतंचरेदिति (तत्प्रकीर्णाक विययमितिमिताक्षरा) अ-
 र्थात्—पूर्वाक्त कारणा से दिजाती जब किसी पाप से संयुक्त होय सो जलमें एक ही
 बार गोता लगाकर सभा के परिडतो को कुछ देकर अपना पाप कहि सुनाय कर
 प्रायश्चित्त आचरे (इसपर मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह कुछेक देना जो कहा
 सो सबसे छोटे पाप प्रकीर्णाक नामसे ७४ के परिच्छेद में जो कहे गये तिनपर सम-
 भना) यहांपर सोचने का स्थल है कि पराशर के वचन को और इस वचन को
 मिलाकर एकही व्यवस्था मिताक्षरा ने कही तिसके उत्तम मध्यम आदि कई
 भेद किये सो यह कल्पना सुन्दर नहीं क्योंकि पतित के हाथ से पतित का दिया
 हुआ गाय वृषभ रूपो महा दान लेना धर्म शास्त्री परिडतों का यह काम नहीं वे
 आपही प्रायश्चित्ती हो जायेंगे अर्थात् असत्प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त देखो ६८ अ-
 रसदि परिच्छेद में २६० दोसौतब्बे मूल श्लोक से कहिचुके हैं— तिससे पराशर
 ने जो गाय वृषभ का दान किये पीछे धर्मसभा में जाना कहा सो औरही किसी
 दान पात्र के निमित्त देना अर्थ ठीक है बल्कि पराशर के सोरह असर वाले अर्थ

श्लोक में कोई प्रयोगही ऐसा नहीं है जिससे धर्म सभा के परिणत भी दान के संप्रदान भूत समझे जायें—और जो (तस्मात् द्विजः प्राप्तपाप इत्यादि) पिछले वचनमें साफ साफ कहा है कि (पर्यद्भ्यः किञ्चिद्दत्त्वा) सभा के परिणतों को कुछ देकर सो यह मिहनताने की रीति से दक्षिणा देनी सूचित करी है क्योंकि परिग्रह का वेतन मिले बिना किसी का तन मन किसी कार्य में अच्छे नहीं तत्पर होता और व्यवस्था का कोई सुगम काम ऐसा नहीं है जिसको हर कोई परिणत सुघड़ भलाई में काँड़ सकेगा बड़ परिग्रह का काम है और परिग्रह का इक लेना किसी दान प्रतिग्रह में गिनती नहीं है न उसको लेकर कोई दाय लगिसक्ता है क्योंकि यहाँपर देने लेने की वाचनिक आज्ञा पाई गई—और जो पापों की बड़ाई छोटाई के ऊपर बहुत या मध्यम या थोड़ा देना मिताक्षराने ठहिराया सो भी ठहिराना कुछ आवश्यक नहीं किन्तु दान वित्त समान यह नियम घराघोष्य है कि जैसा कोई अधिक धनी या दरिद्री होगा उसी के अनुरूप दान बताया जासक्ता है—और दूसरे वचन में जहाँ ठेठ परिणतों का परिग्रह देना कहा गया तिसमें भी किञ्चिद् शब्द का प्रयोग सिर्फ इसी आशय पर आरूढ है कि जैसा बड़ा छोटा परिग्रह उनकासमभि परै तैसाथोड़ा याबहुत कुछ देकर व्यवस्था बूझें ॥ यहाँतक तीनसौ एक मूलश्लोक पूर्वार्धकी अविर्कोक्त पूरीहुई इती लोकाकी शेषव्यवस्था नीचे लिखतेहैं ॥३०५ ॥

(अथपर्यत्स्वरूपं)

पर्यत् सभा जिसमें प्रायश्चित्त बूझना कहा सो कौनी हो तिसके भी अनेक लक्षणा हे सो देखो उनमें प्रथम मनुका कहा स्वरूप दशति है—यदाहमनुः=वैविध्यहेतुक स्तकीनैरुक्तो धर्मपाठकः प्रथमचार्यामिता पूर्वपथदेयादशावरः=अर्थात्—सभामें अच्छे पुरुष चाहें तितने जुड़ें परन्तु दश महात्मा इस प्रकारके होने चाहिये जिनमें कोई वैविध्य कोई हेतुक कोई तर्की कोई नैरुक्त कोई धर्म पाठक हों और ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ इन तीनों आयम के सत्पुरुष होय संन्यासी नहीं (वैविध्य वे कहाते हैं जो तीनों वेद की कुछ कुछ शाखायें अर्थात् संहित पठिकर समझे हों केवल स्वर के साथ ऋचाओं का गाना मात्र नहीं) हेतुक बहुजानना जो हेतुखपो बाद मे रत हो अर्थात् हेतु जो कारणा होय तिसको पकड़ि के अतिपुक्त के साथ बात कहिने का अभ्यास रखता हो सोहेतुक पुरुष कहाताहें पर यह भी शास्त्रसंपन्न होकर ऐसा होय इसीलिये मिताक्षराकार ने दोनों सीमांश का अर्थ तत्व जानने

वाला इसको कहा है क्योंकि विचार पूर्वक तत्व निर्णय करसकने का नाम है सीमांभा और इसीसे सीमांभा उम ग्रन्थ का भी नाम है जिसमें ऐसा तत्व निर्णय हो सक्ता है। वह सीमांभा रूपी निर्णय भी दो भांति का होता है इसीसे उसके ग्रन्थ भी दो भांति के प्रसिद्ध हैं पर्वसीमांभा और उत्तरसीमांभा अर्थात् पहिली सीमांभा कर्म कांड है पिछली सीमांभा ब्रह्मज्ञान का विचार है। तहां जैमिनि के बनावेहुये ग्रन्थसंकर्मकांडके सदेह निरायहोते हैं उसीका नाम पूर्वसीमांभा भी कहाता है और ब्रह्म जो परमात्मा परमेश्वर है तिनके जो मन्देह खडेहोयें सो सब वेदान्त से निर्णय होसक्ते है जैसा इसी ग्रन्थ में सन्यास आश्रम के प्रसंग से अध्यात्म नामका प्रकरणा बहुत बड़ा वर्णन होचुका है इसी तरह वेदान्त के और बहुत ग्रन्थ ह सो सब उत्तर सीमांभा, किन्तु पिछली सीमांभाके नामसे कहातेहैं • यह तात्पर्य दर्शना हेतुक पुरुष का पर सामान्य अर्थ वही है कि जो वातिके तत्व को युक्तिसे निर्णय करसके सो हेतुक जानो (तर्क उसका नाम है जो तर्कशास्त्रमे कुशलहोय परन्तु न्यायशास्त्रपदा होने परभी उसकी तर्क ऐसी न हो कि श्रुति या स्मृतियोंसे विरुद्धहोय अर्थात् दीनो सीमांभा के अनुकूल उसका तर्क होना चाहिये) नैरुक्त उसका नाम है जो व्याकरणा विद्या से प्रयोजनवाले शब्दो की निरुक्ति दर्शावे और वह भी नैरुक्त पुरुष होता है जो वेदका एक अगही निरुक्त कहाता है तिसको पढाहो (धर्मपाठक जो धर्मशास्त्र की स्मृतियाँ आप ऐसी पढा हो जिन्हें और को समुभाइकर पढासके) ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ इनतीन आश्रमो के सत्पुरुष उनको जानना जो अपने अपने आश्रम के नियम धर्मोका, वर्तवा ठीक ठीक आचरण करते हैं ॥ ० ॥ ऐसो सभा न मिलनेपर मनुने पर्यंतका दूसरा डोत दर्शाया है = यथा = ऋग्वेदविद्युजुर्विचसामवेदविद्युच्च त्र्यवरापरिखड्गेयाधर्मसंशयानिर्णये = अर्थात् = ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद इनकी शाखाओंके जुदे जुदे भी अर्थोसहित जाननेवाले अर्थात् एक एक पुरुष एकहीसक वेदकी कोई शाखा विधि पूर्वक पढाहो, ऐसे तीनिही पुरुष जिस पौरयत्नमें शांभल होय सोभी धर्मका संदेह निर्णय करनेवाली सभा होती है ॥०॥ इसके भी न मिलने पर मनुने कार्यके निर्वाह का और डोत दर्शाया है = यथा = सकोपिधर्मविद्वर्मयश्रव स्पेत्समाहितः श्रेष्ठे परमो धर्मो ज्ञानाज्ञानासुदितोऽयुते = अर्थात् = धर्मशास्त्र का विज्ञाता यद्विसमाहित चित्तहोके जिस धर्मको एकही पुरुष विचार करे सोई परमधर्म जानी क्योंकि धर्मशास्त्र सबशास्त्रोके ऊपर अधिष्ठाता है धर्मकोसर्वादा इसीकेद्वारा जानी जाती है परच धर्मके न जाननेवाले दशहजारसिलिकेभी कहे सो धर्मकी गिनतीमें नही है

(विज्ञानेश्वर कहते हैं कि इन बड़ी छोटी सभाओंका वर्तवा जैसा जहां सभवा हो
 तैसा तहां समझना अथवा महापातक आदि बड़े छोटे पापों के भेद से भी जानना
 अर्थात् बहुत बड़े पापका प्रायश्चित्त ब्रह्मने को बड़ी पर्यंत के भित्ते हुये छोटे में
 न जाना चाहिये ॥ ० ॥ एक यह स्मृत्यन्तर वचन है कि—पातकेयुशतपर्यंतसहस्रसह
 दादियु उपपापेषुपचाशत्स्रत्पत्स्रत्पेतथाभवेत् (तदपिमहापातकादिदोयानुसारेण
 पर्यवोगुरुलघुभावप्रतिपादनपरत्पुनः सख्यानियमार्थसन्वादिमहास्मृतिविरोधप्रसगा
 दितिमिताक्षरा)=अर्थात्—पातक नामके बड़े पापोंके तिये एकसौ सभासद को प-
 र्यंत में ब्रह्मना चाहिये और उनसेबड़े महापातक आदि पापोंकेलिये सहस्र सभासदों
 की पर्यंत होय और छोटे दर्जावाले उपपातक नामकेपापोंका प्रायश्चित्त ब्रह्मनेको
 ५०पचास मनुष्योंकी सभा चाहिये फिर इनसे भी छोटेपापोंके मध्ये इससे भी थोड़े
 पचीस आदि सभासद होय यह समझना (विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार कहते हैं कि
 यह वचन केवल इसलिये है कि दोयकी बड़ाई छोटाई के अनुसार सभाका बड़ापन
 या छोटापन होना चाहिये पर यह तात्पर्य इसका नहींहै कि जिसमे एकसौ बताये
 या हजार बताये तिसमे उतनेही परन्पर मनुष्यचाहिये क्योंकि जो सेसातात्पर्यमाना
 जाय तो फिर मनुआदि बड़ीवही स्मृतियोंके नियमसे विरोधखडा होनेलगा जैसाऊपर
 दश या तीन वा एकही विद्वान्सभास्वरूप कहागयाहै)इसपर मर्यादा परिपाटी सपादक
 व्याख्याकार का यह विचार है कि यह बहुत बड़ी संख्या के लगभग अधिकता जो
 द्दिराईगड़े सोभी सर्वसाधारण मनुष्योंकी समझनी किन्तु इसकेसाथ उतने विद्वानों
 काहोना आवश्यक है कि जैसा पहिले दश वा तीन वा एकही विद्वान् होनाकहाया
 तो फिर कुछ भी विरोध इसमे नहीं है अन्यथा उतनी संख्याओं के लगभग केवल
 विद्वानोंका संग्रह करना वा होसकना न आवश्यकहै न संभवहै वलिक्र उक्त संख्याओं
 के नियम छोड़िकर लगभग वाला डील सर्वसासान्य सभासदों का द्दिराया गया
 तिसमे भी पूर्वोक्त यथा सभव की युक्ति लगानी होगी कि जहां दोयो पुरुय बडा
 आदिमी होय जिसके दबावसे इतने अतिक सभासद इकट्ठे होसके सिर्फ तहांकी यह
 व्यवस्था है सर्वत्र नहीं ॥ ० ॥ देवलने सभाके स्वरूप में एक जुदा डील दर्शाया है=
 यथा=स्वयत्तुब्राह्मणान्पूरुरल्पदोयेयुनिष्कृतिस् राजाचब्राह्मणाप्रचैव महत्सुतुपरीक्षि
 ताम्=अर्थात्—जो उपपातक आदि छोटे पापहो तिनमें परिणित ब्राह्मण आपही प्राय-
 श्चित्त बतावें परच महापातक आदि बड़े पापोंमे राजा और ब्राह्मण भी मिलिकर
 सभा करें तिसमे दोयकी परीक्षा से प्रायश्चित्त करावें (इस वचन में यह तात्पर्य है

कि जिन अपराधों में राजवादी (राजमुदई) झुसक्ता ही तिनको ब्राह्मण लोग केवल आपही प्रायश्चित्त कराइ के राजसे छिपावें नहीं कों वैसे महादोषों में राजहार से झुसना आदि राजदंड होनेके अनन्तर प्रायश्चित्त कराना धर्म शास्त्र का सिद्धान्त है—तिससे यद्यपि किसी बिरले महादोषीके ऊपर कोई वादी बनिके राज में निन्दाकरने को न गया हो तौभी प्रायश्चित्तका बोझ उसपर धरनेवालों को यह सूचित कियाहै कि प्रथम प्रायश्चित्तही के बहाने से राजहारमें उस दोषका प्रकाश करें जिससे राजा उसी दोषका निराय ब्राह्मणोंकी पर्यत में शामिल होकर निराय किये पीछे यथायोग्य राजदंड लेकर प्रायश्चित्त विचारने की आज्ञा विद्वानों पर आरूढ करेगा यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ परन्तु यह भी एक धर्महै कि यदि कोई दोषी मनुष्य अपने पापसे दुखमानि के आपही किसी पर्यत के पास जाकर प्रायश्चित्त बभूँ तौ उस परियतको अवश्यही विचार करना और बताना योग्यहोताहै क्योंकि ऐसा न करने से परियतको भी दोष लगताहै—यथाहंगिराः=आर्तानामार्गानामानां प्रायश्चित्तानियेद्विजाः जानंतोनप्रयच्छंतितेत्यांतिसमतंतुतैः=अर्थात्—पीडितहुये बभूँने आये हुयोंको जे कोई विद्वान् ब्राह्मण धर्मशास्त्र जानते हुये प्रायश्चित्त नहीं बततेहैं वेभी उन्हीं पापियोंके समान दहिरतेहैं ॥ ० ॥ परन्तु किसीसभाका सभासद कोई धर्मके जानेबिना यदि प्रायश्चित्त बतारवै सो बतानेसे भी पापी और प्रायश्चित्ती भी होताहै=तदाहर्वाशयः=अज्ञान्वाधर्मशास्त्राणिप्रायश्चित्तं ददाति यः प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्वपंपर्यदं द्रजेत=अर्थात्—धर्मशास्त्रों को आद्योपांत पढ़े समझे बिना जो कोई पंडित प्रायश्चित्त बतताहै तिसके करनेसे प्रायश्चित्ती शुद्ध होजाताहै परंच उस प्रायश्चित्ती का पाप उसी सभासद पर आरूढ होताहै ॥ ० ॥ यहाँ तक प्रायश्चित्त बताने की रीति जो कहिचुके सो ब्राह्मण आदि सभी वर्गोंको बतानेपर कहीगई कुछ भेदभाव नहींहै तथापि सत्री आदिको बताने मध्ये अंगिराने एकजुदी रीति भी कही है—यथा=न्यायतो ब्राह्मणः सिसंप्रंसत्रियादेः कौतैनसः अंतराणां ब्राह्मणं त्वाव्रतंसर्वसमादिशेत् तथाशूद्रंसमासाद्यसदावसंपुरःसरस प्रायश्चित्तंप्रदात्तव्यंसंव हीमविर्वाजंतमिति (तत्रयागाद्यनुद्यानशीलानां जपादिकं वाच्यं इतरैर्यांतुतयः) कर्म निर्यास्तयोनिद्याः कदाचित्पापमागताः जपहोमादिकं तेभ्यो विशेषेण प्रदीयते ये नाम धारकाविप्रामुखाधनविवर्जिताः कृच्छ्रं चांद्रायणादीनि तेभ्यो दद्याद्विशेषत इति=अर्थात्—सत्री और वैश्य जहाँ पाप किये दहिरें तहाँ धर्मज्ञ ब्राह्मण उनको न्याय के अनुसार शीघ्रही संपूर्ण व्रत भले प्रकार से बतारवै परन्तु बीचमें उनके शक्त पुरोहित

आदि किसी प्रतियामान् ब्राह्मणाको साक्षीभूत मध्यस्थ बनाकर व्रतका आदेश करे अर्थात् केवलसकपरसकबैठके प्रायश्चित्त न बतावै कि जहाँ सिर्फदीयी पुरुष और धर्मशास्त्री इन दोकोसिवाय तीसरा न हो (सो यह नियम उस दशापर आवश्यकहै कि जहाँ अनेक विद्वानों की सभा इकट्ठी न होसके केवल सक धर्मशास्त्रीही प्रायश्चित्तका आदेश करनेवाला होय जैसे (सकीपिधर्मविवर्धनइत्यादि) मनुके वचन से ऊपर कहिचुके-तथैव किसी शूद्रको पापकिया पाइकर भी इसीरीतिसे पुरोहित आदि को बीच में मध्यस्थ बनाकर धर्म के अनुसार प्रायश्चित्त देना चाहिये परच शूद्रके निमित्त में सदा यही धर्म है कि उसको जप होम से रहित प्रायश्चित्त बतावै अर्थात् जिन दोषों पर जप होम करना कहीं लिखा हो तिनमें भी शूद्रको जप होम करनेकी आज्ञा न देनी चाहिये-शूद्रके सिवाय अन्य वर्गोंके मनुष्य ब्राह्मण आदि भी जे कोई निपट निरक्षर होय तिनको भी जप होम आदि न बताना चाहिये तहाँ ऐसा करना चाहिये कि (जे कोई द्विजातीलोग यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान में सदा निरन्तर या जब तब लगे रहते हों तिनको जप होम आदिवाले प्रायश्चित्त बतावै औरोंको तप करना किन्तु व्रतादिक प्रायश्चित्तबतावै) क्योंकि यही नियम अगिले वचन में साफ कहे देते हैं कि-जे कोई द्विजाती कर्म करने में अभ्यास रखते हों या तप करने में अभ्यास रखते हो वेही कभी पाप में फँसें तब उनके लिये विशेष कर जप होमादिरूपी प्रायश्चित्त दिया जाता और जे नामहीं माव के ब्राह्मण निरक्षर सुख्य धनसेहीन दरिद्री तिनको जुदे जुदे उनकी दशाकेअनुसार कृच्छ्र और चांद्रायण आदिबतावै ॥ यहप्रायश्चित्त बतानेकाडौल केवल विख्यातपापोंकेऊपर कहागया किन्तु छिपेहुये पापोंके प्रायश्चित्त अगिले परिच्छेदमेंवर्णन होगो॥इतिपरिच्छेद ॥

(इतिप्रकाशप्रायश्चित्तानां सर्वसामान्यविधिनिर्णायकप्रकरण)

(त्रिपरिच्छेदमय)

इस प्रकरणा में ७५ । ७६ । ७७ पचहत्तर परिच्छेद के प्रारम्भ से सतहत्तरके अतक तीन परिच्छेद हे तीनो में यद्यपि जुदे जुदे विययो का वर्णन है परन्तु ये तीनो जुदे वियय सब तरह के पापों में आदि मध्य अत के अबसर भेद से विचारने परतेहैं तिससे इन तीनो परिच्छेदका एकही प्रकरणा मानागया कि जब कभी किसी पापकी विख्याति होकर प्रायश्चित्त सोचना परे तब उस पापके विचारवाला जुदा प्रकरणा या परिच्छेद पहिले ठुँडिकर उसके साथही इसप्रकरणाको देखा चाहिये॥

परन्तु जिनसे कभी दैवयोग से कोई पाप होगया और यज्ञ होनेके हेतुसे खुल्लम न होने प्राया ऐसे पापी पुंस्य जो अपने प्रापका छिपा हुआ प्रायश्चित्त करना चाहें तिनकी व्यवस्था आगे ७८ अठहत्तरि परिच्छेद से लेकर जानी जायगी ॥

**अथरहस्यप्रायश्चित्तानां सर्वेषां साधारणधर्म विवे
कसहितः-ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं**

परिच्छेदः अष्टसप्ततितमः (७८)

—*—

इसपरिच्छेदमें विशेषतासे दो बात जानीजायगी कि प्रथम तो छिपेहुये पापोंकासाधारण एक धर्म जो सर्वत्र काम आवेगा—दूसरे महापातकोमे से केवल एकत्रह्महत्या जो किसीने छिपीहुई करीहो जाहर न होनेपाई तिसकारहस्यप्रायश्चित्त कहाजायगा (रहसि) एकान्त मे छिपिकर जो काम कियागया वही रहस्य कहिलाता है चाहे पापहो या उस पाप का छिपा हुआ प्रायश्चित्तहो ॥

योगीश्वर याज्ञवल्क्य मुनि यहां से आगे आगे छिपे पापों के प्रायश्चित्तों का विस्तार किया चाहते हैं कि जिससे शरीरमे घुसे हुये पापों को दुहिकर उस भांति से निकासि फेंके जैसे धनोंमे छिपाहुआ दूब बकरा के योग से निकासि जाता है (यहां पर प्रायश्चित्तों की बकरा के दृष्टांत में समझना प्रायश्चित्तों पुंस्य की दोहने वाला समझना) इसी लिये योगीश्वर पहिले उन सभी प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाते हैं जो आगेआगे सभी व्रतों की आदि में सोचना होगा सो देखो निचले तीन सौ एक वाले उत्तरार्ध से ॥

(रहस्यप्रायश्चित्तविचारः)

अनभिरुत्यातदोषस्तुरहस्यं व्रतमाचरेत् ३०१

अर्थः—अनभिरुत्यातदोषी रहस्य व्रत को आचरे—अर्थात्—जिस दोषी का पाप उसके सहायको से उपरालू मनुष्यों की जीभ तक न पहुँचे सो रहसि एकान्त में यज्ञ ही प्रायश्चित्त करे ॥ ३०१ ॥ उत्तरार्धोऽयं ॥

३०१ अधिकोक्तिः—यहां यह शकाहै कि मनुष्यको सहायक मिलापी समीप

आदि अनेक भांति के होते और वेही किसी पाप को करते जानि सक्ते हैं तिनका जानना छोड़कर उपरालू मनुष्य कहे इसमें नाना प्रकार के विरोध खड़े होते हैं क्योंकि जिस पाप को सहायकों ने देखा जाना तिसको सभी मनुष्य जानि सक्ते हैं फिर क्योंकर कोई पाप अनभिख्यात कहावे इत्यादि—इसका यह समाधान है कि पापी के सहायक सिर्फ वेही अभिप्रेत हैं जो उसको पाप कर्म करवाने में साथी हुये हों जैसा किसी स्त्री से उसका संदेश कही आना ले आना बुलाइ लाना आदि सैसाही सर्वत्र सभी पापों में समझि लेना कि जितने पुरुष वा स्त्रियाँ पाप कार्यके सहायक वा साक्षी बने हों वे सब यद्यपि पापी के पाप को जानते और परस्पर चर्चा करते हैं तथापि उनका जानना विख्याति में गिनती नहीं माना गया है अर्थात् उनसे उपरालू चाहे पापी के सहायक हों वा असहायक हों तिनमें पाप को चर्चा नहीं फैली हो तो यह पाप अनभिख्यात कहा जाता है। ऐसे पाप को करने के बाद भी दोगी पुन्य पद्धति कर अपनी शुद्धि के लिये यदि प्रायश्चित्त करना चाहे सो छिपीआ व्रत साथै—तहाँ—जो ऐसापुरुष आपही धर्मशास्त्रमें प्रवीण होय सो औरसे न कहिकर आपही अपने निमित्त पर यथा योग्य प्रायश्चित्त विचारै जो धर्मशास्त्र को न जानता हो सो अन्य धर्मज्ञों के पास जाकर अपना पाप सुनाये बिना किसी और के बहाना से प्रसंग छेडिकर इस तरह बूझै कि जिसकिसी ने गुप्त पाप किया हो अर्थात् ब्रह्महत्या•वाल हत्या• मात भगिनी गमन• परदार, गमन• सुरापान आदि जो कुछ पाप किया हो तिसका नाम धरि के बूझै कि इसमें उसको रहस्य प्रायश्चित्त क्या करना चाहिये• या जिज्ञासुता की रीति से ही बूझै कि असुकासुक पाप छिपीयाँ जिसपर होजाय तिनका गुप्त भावही से क्या क्या प्रायश्चित्त होता है ॥ ० ॥ इसी प्रकार से स्त्री और शूद्र भी औरों से बूझिके रहस्य प्रायश्चित्त का स्वरूप जान कर सके हैं इसीसे उनकी भी करने का अधिकार सिद्ध होगया। इसपर यह न कहिना चाहिये कि रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप प्रायस् जपादिकों की प्रधानता से निर्वाता हुये हे तिससे स्त्री और शूद्रों को विद्या पढ़ने का अधिकार न होने से इन प्रायश्चित्तों का अधिकारही नहीं। क्योंकि इन प्रायश्चित्तों में जपादिकों की निर्विकल्प ही कुछ प्रधानता नहीं बल्कि उनमें दान करना आदि भी उपदेश किया जायता और गौतम के कहे प्रारणायाम आदि का भी करना सम्व है तिससे भी• बल्कि स्त्री शूद्रों से उपरालू औरों को भी जपादिक से पूरा अधिकार नहीं पाया जाता है क्योंकि मन्त्र और मन्त्रका देवता उसकाऋषि,

रुन्द इनका अच्छा बोध होना भी अधिकार का उपयोगी है इनके बिना औरों का भी निर्विकल्प वियय नहीं है और भी यह सतर्क उत्तर है कि तडागवनवानेश्रादि में ज्योतिषोम आदि के वियय वाला विरोध नहीं जोड़ा जाता है तैसे यहाँ भी समझना कि स्त्री शूद्रों को पढ़ने का अधिकार न होने से प्रायश्चित्त करने का अधिकार नहीं मेरा जासक्ता है ॥ ० ॥ परन्तु वैवाशिक पुरुषों को देवता आदिका ज्ञान होना अवश्यही अपेक्षित है—यथाह व्यासः—अविदित्वाऋतियच्छंदोदैवतंयोग मेवच योऽध्यापयेन्नपेद्वापिपापीयान्जायतेतुसः—अर्थात्—ऋतिय और रुन्द और देवता और मन्त्र का विनियोग नहीं जानि के जो कोई पाठ या जप करे सो पापी होता है ॥ ० ॥ व्रताहारादिनियमाः—रहस्य प्रायश्चित्त जो आगे सबदशायें जायेंगे उन्ही का यह धर्म सामान्य वर्णान होरहा है तिनमें इतना और भी यह जुदा नियम समझे रहिना कि यद्यपि जिन व्रतों में कुछ आहार करना न लिखा जाय तथापि उन में दूध पीना या पंचगव्य या थावक आदि जैसा प्रकाश प्रायश्चित्तों में कहिचुके तैसा यहाँ भी समझि लेना • जहाँ कोई काल विशेष न कहा जाय तहाँ संवत्सर आदि समझना • प्रायश्चित्त करने का ठिकाना जिनमें न कहा जाय तिनमें पर्वत के निकट शिला आदि का स्थल समझना जैसे प्रकाश प्रायश्चित्तों में गीतम आदि के कहे नियम हों तिनमें डूडना चाहिये यह मिताक्षराकारों की दर्शाई हुई व्यवस्था है ॥ ३०१ ॥

यह सब इतना रहस्य प्रायश्चित्तों का साधारण धर्म दर्शाया जो सबही की आदि में विचारना होगा अब अगिले मूल श्लोक से लेकर रहस्य प्रायश्चित्तों के स्वरूप सब जुदे जुदे ब्रह्महत्या आदि यज्ञ पापों पर उसी क्रम से दर्शावैगे कि जैसा पहिले खुल्लम पापों के प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या आदि के क्रम से वर्णान ही चुके ॥

(ब्रह्मवध प्रायश्चित्त)

त्रिरात्रोपोपितोजप्लाब्रह्महात्वधमपेणम् । अन्तर्जलेविशुद्धयेतदत्वागाञ्चपयस्त्रिनाम् ॥ ३०२ ॥

अर्थः—ब्रह्महा तीनरात्र उपास किया जलके भीतर अधमर्यगा को जपिके पयस्त्रिना गाय देकर विशुद्ध होय—अर्थात्—द्विपी हुई ब्रह्महत्या जिसपर होगई सो ब्रह्महा पुरुष किसीसे जाहर किये बिनाही तीन दिन उपास करे और उन्हीं तीनों दिवस तीर्थ के जलाशय पर जलकेभीतर निसरन वेढाहुया उस अधमर्यगामन्ध की जपे जो इसी नामके महर्षि ने अधमर्यगा सूक्त (ऋतंच सत्यंचेति) इत्यादि ऋचाओं

का अनुष्टुप् भाव और वृत्त और देवता के परिज्ञान सहित निश्चयकरिके प्रकाश किया है उसी मन्त्रको जलमें छिपिकर तीन बार जपे जितनी देरमें तीन आद्युत्ति पूरी होसक्तीहैं उतने काल तक तीनों दिन जप किये पीछे चौथेदिन दूध देती हुई विआनी अधिक दुधार गाय दान करिके शुद्ध होजाताहै ॥ ३०२ ॥

३०२ अधिकोक्तिः=ऊपर लिखे नियमोंका प्रमाणाभी अग्रोक्तवचनहै=यथाह
 सुमंतुः=देवद्विजगुरुहताम्बुनिसग्नोऽघमर्यगांसुक्तविरावर्तयेत् सातरंभगिनीं गत्वा माह
 प्वसारस्रयां सखीं चान्यद्वाऽगम्यागमनं कृत्वाऽघमर्यगामेवान्तर्जले त्रिरावर्त्य तदेतस्मा
 त्पूतो भवतीति=अर्थात्-सुमन्तुने खुलासाही कहिदियाहैकि-देव-द्विज-गुरु-इनका
 हता पुरुष जलमें निसग्नहोके अघमर्यगासुक्तको तीनवार जपै किन्तु-माता-भगिनी
 को गमनकरिके यासाताकी वहिन मावसीकी या पिताकी वहिन फूआकी या बेटा
 की वधुकी या सखी कोभी गमनकरिके यद्वा और प्रकारका अगम्या गमनकरिके
 अघमर्यगा सुक्तहीको जलके भीतर तीनिवार जपके वद्वा पापी इनपापोंसे छुटिकर
 शुद्ध होजाता है (अर्थात् अघमर्यगासुक्तही एक ऐसा परमतीव्र शस्त्रहै जिससे सब
 तरहके पाप काटिजातेहैं) सुमंतुके इसवचनमें देवहता जो कहा सो दो तरहका सम-
 भक्ता किन्तु जिसने गुप्तभावसे कोई देवमूर्ति तोड़ीहो या छिपिकरकहीं किसीराजा
 का वध किया हो तहां राजा का वध भी दो तरह का समभक्ता किन्तु जिसने
 किसी शस्त्र आदिसे वधकिया हो या तांत्रिक प्रयोगोंवाली कृत्यासे वध किया हो
 ये सभी देवहंता समभिलेने और द्विजहंता यद्यपि यहां पर ब्रह्महत्या की प्रधानता
 से ब्राह्मण को मारनेवाला अभिप्रेतहै तथापि शब्द अर्थसे द्विजाती मावका मारने-
 वाला समभक्ता किसी दोष और विरोध में गिनती नहींहै क्योंकि अघमर्यगासुक्त जो
 ब्रह्महत्यापर्यन्त महापाप को मेटिसक्ता है उसको सखी वैश्यके वधका पाप मेटने में
 न कुछ उज्जर है न कठिनहै है(इस व्याख्या से ऊपर जो खुलासा शब्द लिखागया
 तिसको यावनी भाया के अनुसार सारार्थका बोधक न समभक्ता किन्तु देशी भाया
 में खुल्लमको खुलासा कहिते हैं इष्टान्त जैसे ढंकासा या खुलासा-स्पष्टमिवेत्यर्थ-
 स्पष्टमेवेत्यभिप्रायः ॥ एतच्च कामकारविययमितिमिताक्षरा=यत्तुमनुनीक्तं=सव्याह
 तिप्रगावकाः प्राणायाजास्तुयोडश अपिभूराइनमासात्पुनंत्यहरह कृता-तदप्यस्मि
 न्नैवविययेगोदानाशक्तस्यवेदित्वयमितिमिताक्षरा=अर्थात्-मिताक्षराकार कहिते
 हैं कि यह प्रायश्चित्त जो लिखि चुके सो सब उसके लिये समभक्ता जिसने इच्छा
 सहित अवीक्त पाप किये हों=बलिके जो मनुने यह कहाहै कि=घोरह प्राणायास

ओंकार प्रणव और ऋग्वेदितियों सहित रोज रोज एक महीनातक साथै तो ये इतने प्राणायामभूराहृत्यारे को भी पवित्र करतेहैं अर्थात् किसीका गर्भ या बालक बच्चा तक विनाश जिसने किया हो(इसके भीतर ऊपर कहे पापोंको भी समझना क्योंकि ब्रूराहृत्या सबसे बड़ी होतीहै) सो भी इतने प्राणायामों से शुद्ध होजाताहै—मिताक्षराकार कहिते हैं कि यह मनुका कहा एक महीने का प्रायश्चित्त इसी पूर्वोक्त विषयपर समझना कि जिसने इच्छा सहित पाप किया हो और योगीश्वर वाला अधमर्थगामूक तीनदिन जपने के पीछे यदि गोदान करने में असमर्थहो तो गोदानके पलटे यह एक महीनेका प्राणायाम अधिक साथै (ऐसेही महीने आदि के व्रतों में कि जहां जहां खाने पीनेका कुछ चर्वा नहीं किया जाय तहां तहां सर्वत्र वही नियम देखिलेना जो इससे पहिली अधिकोक्तिमें व्रताहार आदि नियम लिखचुकेहैं) इतिसकामकृतहृत्यादिप्रायश्चित्तं ॥ अथाकामकृतहृत्यादि विषयेसकामा कामभेदाः—यत्तुगौतमेन—यद्विंशदहोरात्रव्रतमुक्तोक्तं—तद्व्रतसेव ब्रह्महृत्यासुरापान सुवर्गास्तेय गुरुतरुपेयु प्राणायामैः स्नातोऽधमर्थरांजपेदिति— तदकामतोऽसह्यद्वियय मिति मिताक्षरा—अर्थात्—गौतमने—छत्तीस दिनरातिका व्रत बधान करिके साथही उसके यह कहाहै कि— ब्रह्महृत्या • सुरापान • सुवर्गास्तेय • गुरुतरुपगमन • इन चारों प्रकारके महापातकोंपर वही ३६ दिनका व्रत करनेमें यह चाहिये कि नित्यप्रति स्नान करिके अधमर्थगामूकको जपै (स्थलहीमें जपना कहा जलके भीतर बैठना यहां पहिले कहेकी तरह सत समुभिलेना) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह गौतम का कहा प्रायश्चित्त उसकोलिये समझना जिसने इच्छासे चाहेविना कई बार पाप कियाहो—और—जिसने निषट कामनासे चाहिकर पूर्वोक्त हृत्या आदि पाप कई बार छिपसा कियेहों अथवा इच्छाके विनाही पहिलोंसे बद्धिया पाप अर्थात् यो-त्रियंका द्वयकियाहो या आचार्यका बव कियाहो या यज्ञ करते वाह्यण आदिका वधकियाहो तिन सबकेलिये आगे व्रीवायन का वचन देखो—यदाहव्रीवायनः—था मात्प्राचीं चोदीचीं दिशमुपनिष्कन्य स्नात शुचिवासाः उदकं तैस्परिडलतमुपलिष्यस क्वक्षिचवासाः सक्तप्रतेनपाणिना आदित्याभिमुखोऽधमर्थरांस्वाव्यायसभोयीत प्रातःशतं सभ्याह्ने शतं नपराह्ने शतं सपरिमितं चोदितेयु नक्षत्रेषु प्रसृतिथाधकंप्राणीयात् ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तत्रात्रात्प्रगुच्यते द्वादशरात्रान्महापातके भ्योवह्नहृत्यासुरापान सुवर्गास्तेयानिबर्जयित्वा सक्ताविंशतिरात्रेणा तान्थपतरतीति— तत्कामकारविषयं • अकामतः शोचिवाचार्य सवनस्यवधविषयंवेति मिताक्षरा=

अर्थात्—बौधायन ने जो इस प्रकार से प्रायश्चित्त दर्शाया है कि—ग्राम से पूर्व और उत्तर की दिशा में घूमिके उसी जगह ज्ञान किया हुआ शुद्ध वस्त्र पहिने जलाशय के समीप ही (स्थण्डिल) चबूतरी तुल्य वेदी बना कर एकही बार गोता लगाइ भीगा वस्त्र एक ही पहिरे हुये एकही बार पवित्र हाथ से स्थण्डिल को लीपि के उस पर सूर्य के सम्मुख बैठा हुआ अपना पाठ अधमर्यगा वेद मंत्र से पढ़े (इसकी कितनी आवृत्ति करनी चाहिये सो कहिते हैं कि) प्रातः कालिक संध्या के साथ एक सौ अधमर्यगा पढ़े संध्याह्न की सन्ध्या साथ एक सौ अधमर्यगा जपे सायंकाल की सन्ध्या से पहिले एक सौ अधमर्यगा के मन्त्र जपि चुके फिर सन्ध्या के साथ भी यथा शक्ति अधमर्यगा मन्त्रों का पाठ करे जिनका परिमान कुछ नहीं है किन्तु जितने होसके वही अपरिमित परिमान है तिस पीछे राति में नक्षत्रों का उदयहोने पर एक पसर अर्थात् आधी खँजुरी जो लेकर उन्हें गोमूत्र में रौंदि के यावक बनाने तिसका भोजन करे ऐसा नियम सात दिन करने से उन पापों से छुटि जाता है कि जो कुछ गुप्त भाव से उपपातक भाव अपने ज्ञान लीङ्गित किया हो वा अज्ञानता से किया हो और बारह दिन ऐसा नियम साधने से महापातकों से भी छुटि जाता है पर (ब्रह्महत्या • सुरापान • चवरांस्तेय) इन तीनों को छोडिके शेष महापातकोंका यह नियम कहा गया और इक्कीस दिन उसी तरह अधमर्यगा का जप करने से उन तीनों से भी छुटि जाता है—सितासराकार कहिते हैं कि यह बौधायनका कहा प्रायश्चित्त कामना सहित किये पापों पर करना चाहिये अथवा बिना कामना केभी जिस किसीने शोचिय विहाव का वध किया यद्वा आचार्य का वध किया हो या किसी की यज्ञ करते मारडारा हो तिसको भी यह २१ इक्कीस दिन का प्रायश्चित्त चाहिये ॥ अथवा कामना सहित शोचिय आचार्य और यज्ञस्य का वध किया हो तिसके लिये अगोक्त मनुका वचन देखी—यथा= अररायेवाग्निरभ्यस्य प्रयतोवेदसंहिताव मुच्यतेपातकैः सर्वैः पराकैः शोचिर्तैस्त्रिभिरिति—तत्कामतः शोचिष्यादिवधविययं इतरधकामतोऽभ्यासविययवेति सितासरा=अर्थात्—वन जंगल में तीन बार वेद की संहिता पाठ करिके जितेन्द्र होके रहिते हुये तीन पराकों से शोचे हुये सभी पातकों से छुटि जाता है अर्थात् चाहें कोईता पाप गुप्त किया हो पहिले तीन पराक व्रत करिके पीछे वेदकी संहिता तीन बार पढ़े—सौयद् बड़ा प्रायश्चित्त उसके लिये समझना जिसने कामना सहित शोचिय आदि का वध किया हो अथवा शोचिय आदि से उपरालुओं का वध इच्छा सहित अनेक बार किया हो तिसके लिये भी

समभक्ता यह मिताक्षराकारनेकहा ॥ यत्तुवृहद्विद्यानोक्तं=ब्रह्महत्यां कृत्वा प्रासात्प्रा
 चोमुदीचींवा दिशमुपनिष्क्रम्यप्रभतेन्वनेनाग्निं प्रवृत्वात्याघमर्यगोनायसहस्रमाहुतीर्जु
 हुयाव्रततस्यस्मात्पूतोभवतीति-तान्निर्गुणावधविययमनुग्राहक विधयंवेतिमिताक्षरा=
 अर्थात्- बड़े बिप्ला का जो कथन है कि-छिपी ब्रह्महत्या करिके ग्रान से बाहर
 पूर्वदिशा या उत्तर दिशामें निकसिके बहुत ढेर ईंधनकी अग्नि जलायके अघमर्यगा
 मन्त्र से आठ हजारआहुतें होमें तिससे इस पाप से छुटि जाता है-मिताक्षराकार
 कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त मुगम है तिससे उसके लिये समभक्ता जिसने निर्गुणा
 ब्राह्मणा को मारा हो अथवा शूरावाच को मारने वाले का अनुग्राहक जो कोईव-
 ना हो तिसके लिये भी ॥ यत्तुयमेनोक्तं=यदंतुपवसेद्युक्तधिरहोऽभ्युपयन्मयः सुच्यते
 पातकैः सर्वैस्त्रिजपित्वाऽघमर्यगास-तदशूरावतोहंतुर्निर्गुणावधविययं प्रयोजकानुमंद
 विधयंवेति मिताक्षरा=अर्थात्-यम ने जो कहा है कि-तीन दिन उपवास करै जि-
 तेंद्री होके फिर तीन दिन जल को आहारसे रहै तहां तीन बार अघमर्यगा को नित्य
 जपता रहै तो सभीपातकों से छुटि जाता है-मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रा-
 यश्चित्त उससे भी मुगम है तिससे उसके लिये समभक्ता जो मारने वाला शूरावाच
 होकर उसने निर्गुणा ब्राह्मणा को मारा हो अथवा शूरावाच को मारने वाले के
 साथी सहायक प्रयोजक अनुमन्ता बने हो तिनके लिये भी ॥ यत्तुहारीतेनोक्तं=म
 हापातकातिपातकानुपपातकानामेकतः संपातेवाऽघमर्यगामेवत्रिजपेदिति-तन्निमित्त
 कर्तव्यविययमिति मिताक्षरा=अर्थात्- हारीत ने जो कहा है कि जब किसी पर एक
 साथ ही सब तरह के पाप आपरै किन्तु महापातक अतिपातक अनुपपातक आदि
 एक साथ ही बनि परै या इन में से कोड़े एक तरह का पाप आपरै तब अघमर्यगा
 को ही तीन तीन बार कुछ दिन जपै-मिताक्षरा कार कहिते हैं कि- यहप्रायश्चित्त
 केवल निमित्त कर्ता पर आहूद होना चाहिये (निमित्तकर्ता वही कहाया है
 जिसने हाथ से नहीं मारा परन्तु किसी तरह से हृदय को दुखाया जिससे वह आप
 ही बड़ मरा या विष भक्षणा किया इत्यादि अनेक भेदहैं ॥ मिताक्षरा कार कहिते
 हैं कि जैसे दस पांच मुनीश्वरों के वचन यहां पर मैंने लिखे और उनके न्यूनार्थिक
 भाव से विषय भेदपर विभागकरि दिखलाया तैसे और भी स्मृतियों के वचन हंडि
 कर विभाग कर लेना चाहिये क्योंकि ग्रन्थ बलि जानेके डरसे यहां सब नहीं लिखे
 जाते हैं. फिर कहिते हैं-कि- यही प्रायश्चित्त रूपी द्रतों का समूह जिस जिस
 परिमाण से लिखा गया तिसमें से एक चौथाई कम करिके तीन पाद उसके लिये

समभूता कि जिसने यज्ञ कार्य में लगी हुई स्त्री का वध किया हो या यागस्थसत्री पुरुष का या यागस्थ वैश्य पुरुष का या आश्वेयी का वध किया हो (आश्वेयी को लक्षणा तीसरे परिच्छेद में देखो ॥ ३०२ ॥

योगीश्वर ने इसी ३०२ मूल श्लोक में ब्रह्महत्या पर तीन दिन का व्रत कहा था अगिले मूल श्लोक में विकल्प के लिये उसी ब्रह्महत्या पर एक ही दिन का व्रत कहेंगे परन्तु इन दोनों विधान को छोड़ा सब समभूता क्योंकि दोनों में जल का निवास भी दर्शाया है जो सबसे बड़ा तप होता है ॥

(प्रायश्चित्तान्तरब्रह्मघस्यैव)

लोमभ्यःस्वाहेत्युपवादेवसंमारुताज्ञानः । जलेस्थित्वाग्निं जुहुयाद्भृत्वारिंशत्पृथानुती ३०३ ॥

अर्थः—अथवा दिन भर वायु भक्षणा किये जलमें स्थिति करिके लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे घृतकी चालीस आहुतें अग्निमें होनी—अर्थात्—अथवा जो पहिले कहे प्रायश्चित्तकी न करना चाहै तो यह करै कि एक दिन रात भर उपवासरूपी व्रत किये हुये दिवस बीतजाने पर संध्या समयसे लेकर तमाम रात्रिभर जलमें बैठे फिर प्रातःकाल जलमेंसे निकसिके अग्निको वेदीपर प्रज्वलित करै तिसमें चालीस आहुतियां घीसे होनी उन्हीं मंत्रोंसे कि जो पहिले (ब्रह्महत्यावाले प्रकरणाके बीच उनतीसवें २६ परिच्छेदके प्रारम्भसे २४७ दोसौसैतालिस के मूलश्लोक और उसी की अधिकोक्ति में) लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्र लिखे गयेथे उन प्रत्येक से पांच२ आहुतें छोड़ें सो आठ पंजे चालीस होतीहैं—यद्यपि एकही दिन कहा तथापि इसकी पूर्वाक्तके बराबर समभूता जलमें निवास एक राति भर करने के बद्दृष्यन से यह प्रायश्चित्त छोटा नहीं ॥ ३०३ ॥ इतिब्रह्मघमहापातकस्यप्रायश्चित्तं ॥

अथ ब्रह्महत्याव्यतिरिक्तमहापातकत्रयरहस्यानां
तत्संसर्गिणोपिरहस्यप्रायश्चित्तविवेकोऽयंपरि
च्छेदः ऊनाशीतितमः (७९)

—*—

इस परिच्छेद में ब्रह्महत्या से उपरालू महापातक तीनों भंति के जो
द्विपिकर हुयेहों तिनके जुदेजुदे प्रायश्चित्त रहस्य और संसर्ग
के प्रायश्चित्त भी सब जाने जायेंगे ॥

(सुरापानप्रायश्चित्तं)

त्रिरात्रोपेतो ह्रस्वाकूप्माण्डाभिर्घृतंशुचिः । ३०४ (पूर्वापेक्षं) ॥

अर्थः—तीन रात्रि उपवासकिये कूप्माण्डो ऋचाओसे घृत होमिके शुचिहोय=
अर्थात्—सुरा पीकर जो अशुचि हुआहो वह भी चालीस आहुतें ऊपर के प्रलोक
में दर्शाई हुई होमिके प्रविष्ट होताहै परन्तु इसके संघ जुदेहैं कि जैसा अधिकोक्ति
में देखी ॥ ३०४ ॥

३०४ अधिकोक्तिः—(कूप्माण्डोभिः यद्देवादेवहेडनमित्याद्याभिः कूप्माण्डद्वया
भिरनुष्टुभमंत्रलिङ्गदेवताभिश्चग्निप्रचत्वारिंशत्तृताहुतीर्हुत्वाशुचिर्भवेदिति मिताक्षरा)
अर्थात्—मूल प्रलोकमें अर्थात् आहुतियोंकी संख्या कुछ नहीं कही परच कूप्मांडी
ऋचाओ से घृत होमना कहा तिसका निर्णाय मिताक्षराकार ने यह लिखा है कि
(यद्देवादेवहेडनं) इत्यादि ऋग्वेद की ऋचार्ये जो कूप्माण्डनाम ऋषिकी कही
कूप्मांडी कहाती हैं जिनका अनुष्टुभ मन्त्ररूप देवताकहाताहै तिनसे चालीस आहुतें
घीकी होमिके वह पुरुष शुद्ध होजावै जिसने छिपमा सुरापान किया हो ॥ बौद्धा-
यनेनाप्युक्तं—अथकूप्मांडद्वयाभिरनुष्टुभिर्जुहुयात् योऽपूतसवात्मानं सन्धेत् यदूर्वा
चीनमेनोश्चग्राहत्यायास्तस्मान्मुच्यते अथोनीवारेतःसिक्काऽन्यत्स्वप्नात्—अर्थात्—
बौधायनजी प्रथम अथश्रवसे अन्वादेश प्रकट करतेहैं कि यह प्रायश्चित्त चाहिये
किन्तु कूप्मांड की देखी विचारी अनुष्टुभ मंत्ररूपो ऋचाओसे वह पुरुष होम करे
जो अपने शरीर को अपविष्ट मानता हो अर्थात् जिसने सुरा आदि कोई अशुद्ध वस्तु

खाई पीहो और जो इसी जन्मका क्रिया पाप कोई गर्भ इत्या ब्रालहत्या सम्बन्धी होय तिससे छुटिजाताहै अथवा स्वप्नमें वीर्यपात होनेसे उपरालू जो बढिया पापहै कि जिसने अयोनिसे वीर्यपात कियाहो तिस पापसे भी छुटिजाताहै (यहांपर अयोनि कहिनेसे यह तात्पर्यहै कि योनिके बिनाही धरती आदि पर वीर्यपातकिया हो यद्वा पुंस्यके साथ मैथुन करिके वीर्य गुदासे सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना कहाजासक्ताहै यद्वा चाराडाली वा शरानी आदि अग्न्या स्त्रियोंकी योनिहीमें सींचाहो सो भी अयोनिमें सींचना तात्पर्यहै काकि वहयोनि उसकेवीर्य सींचनेयोग्य नहींहै तिससे अयोनि इसी शब्दसे उपलक्षित करी (परन्तु सोतेसमय स्वप्नमें किसी स्त्री के ध्यानसे अथवा बिना ध्यानके आपही वीर्य गिरजाय तिसकोलिये यहप्रायश्चित्त नहींहै—अन्यत्र स्वप्नात्—इसअपवाद रूपी छूटका यही तात्पर्यहै) और यह भी तात्पर्यहै कि जिसने सोते समय अपनी कामनासे किसी स्त्री का स्वरूप ध्यान करिके उसकी योनि में वीर्य सींचा होय तो यह अयोनि ही में सींचना कहावेगा काकि यथार्थसे कोई योनि वहांपर साक्षात्कार नहींमौजूदहै तिससे अयोनिकही गइ अर्थात् उसके मध्ये यही प्रायश्चित्त करने का चाहिये जो वीर्यायन मुनिनेकहा— वीर्यायनके इस वचनमें (अयोगोच्चारेत.सिक्का) इसी पदसे अनेक अर्थ जो उत्पन्न हुये तिसका यहीकारणहै कि उन्होने वा शब्द इसी निमित्तपर दर्शायाहै कि सच तरहके अर्थ भेद समुभ्जेजाय ॥ ० ॥ यत्तुमनुना=कौत्सजपत्वाऽपइत्येतद्वाशिष्यं च प्रतीत्युचम साहित्यशुद्धवत्यप्रचसुरापोऽपि विशुद्धधृति—इतिमासप्रत्यहं योऽपइत्येवोऽपनः शोशु चदद्यमित्यादीनामन्यतमस्यजपउक्तः सत्रिरात्रोपवासकूपमांडोमाशक्तस्यवेदितव्य इतिमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार ऊपरकी व्यवस्था कहिकर फिर कहिनेलगे कि—मनुने जो कौत्स आदि प्रलोकमें (अपन.शोशु चदद्य) इत्यादि अनेक ऋचायें दर्शाइकर उनसेसे किसी एकही सत्रका जप एक नहीनाभर प्रत्येक दिवस सोरह सोरह बार जपना कहा सो उसके लिये समुभ्कना कि जिसपर योगीचर का वताया तीन दिन उपवास और एक दिन कूपमांडो सत्रो से चालीस आहुतें धो की न होसकें (यहांपर शोचना चाहिये कि तीन चार दिनकी अवधि के समुख यद्यपि एक महीना की अवधि बहुत बड़ी होती है तथापि आचार्यने उसको इतहेतु से छोटी ठहिराया है कि उसमें केवल सोरहनत्रो का जपही करना होगा किन्तु उसके समुख तीन दिनका उपवास और चौथे दिन चालीस आहुतें देना बहुत कठिन प्रतीत होता है) इसीलिये जो कोई इस कठिनाई को न साधि सकें सो

उसको करै यह कहा—परन्तु मनुके उस वचन का यह तात्पर्य नहीं है कि सोरह मन्त्रोंसे अधिक न जपै वल्कि यह तात्पर्य है कि जितना अधिक जप होसके उतना करै पर कम से कम सोरह बार अवश्यही किसी एक मन्त्र का उच्चारण कियाकरै कि जिस मन्त्र का नियम प्रथम दिन से स्वीकार किया गया हो—अथ=उस कौत्स आदि श्लोक वाली टीका यहां लिखकर भाया अर्थ भी दर्शाते हैं—यथा=कौत्स मिति=कौत्सेन ऋषियणा दृष्टं अपनःशोशुचदद्यं इत्येतत्सूक्तं—वाशियं न ऋषियणादृष्टं च प्रतिस्तोमेभिरुयसंवाशिया इत्येवं ऋचं—महिर्वं=महिषीणा मर्वीस्त्वित्येतत्सूक्तं—शुद्धवत्य एतानिंद्रंस्तवाम इत्येतास्तिस्त्रयः। प्रकृतंमासमहरहः योऽशुद्धत्वेऽपि त्वासुरापोऽपि शुद्धति। अपिशुद्धत्वात् आतिदेशिक सुरापान प्रायश्चित्ताधिकृतोपि २४६ प्रलोक अध्यायः ११ मनुसूक्तावल्या मितिपाठः=अर्थात्—(अपनः शोशुचदद्यं) यही सूक्त जो कौत्स ऋषि ने वेद में निश्चय किया था तिसको जपै—या—(प्रतिस्तोमेभिरुय संवाशिया) यह ऋचं मन्त्र जो वेद में वाशिय ऋषि ने प्रकाश किया था तिससे यह वाशिय नाम कहाता है तिसको जपै—या—(महिषीणामर्वी स्तु) यह इतना सूक्त जो महिष ने प्रकाश किया था तिसको जपै—या—(शुद्धवत्य एता निंद्रं स्तवाम) ये इतनी तीन ऋचार्ये जो शुद्धवतो नाम से कहाती हैं तिनको जपै=कितना जपै या कबतक जपै यह सन्देह खड़ा रहा—तिसके लिये जैसा इससे पहिले प्रलोक में मनु कहि चुके हैं वही एक महीना की अवधि तक सोरह सोरह मन्त्रों का जप रोज करना सूचित हुआ क्योंकि उसमें सोरह प्राणायाम करने कहे थे उतना जप करने से भी सुरापान का पातक नाश जाता है ॥ अथ मिताक्षरा—सतत्त्वा कामतः पैद्यःसकृत्पाने=गौडीमाध्व्योस्तु पानादृष्टौ वेदित्चयं=अर्थात्=इत पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त उसकोलिपे समभूता जिसने पैद्यी सुरा जो अन्नके संयोगसे बनतीहै विना इच्छाके एकहीबार पीलइहो और गौडी जो शुद्धसेवनतीहै माध्वी जो महुआसेवनतीहै इनको इच्छासहित अनेकवार पीलियाही तिसकेलिपेभी ॥०॥ फिरकहिते हैं कि जिसनेकामनाकेसाथ सुरापानकिया तिसको अग्रोक्त मनुका कहा प्रायश्चित्त है=यथा=सर्वैःशाकलहोनीथैरबन्हुच्चाघृत्तद्विजः क्षुण् र्बप्यपहंत्येनोजपत्वावानमश्त्युचस=अर्थात्—द्विजाती पुरुष शाकलहोनी नामको वेद संवां से एक साल भर धी का होम करिके वड़े से वड़े भी पाप को विनाश करता है अथवा (नच इन्द्रश्च) इस ऋचा को एक साल भर जपि के पाप को धो देता है=अर्थात् (देव हतस्यैनस) इत्यादि आठ मन्त्र वेद में शाकल होनी कहिते हैं तिनसे

रोज रोज घी होमि के एक वर्ष पूरा करै अथवा (नम इदुयं नम आवि वास) इस ऋचा से जप करते हुये एक साल पूरा करै दोनों तरह से महापातक नाश होजाते हैं (यहां पर नम इत्यादि ऋचाका दो जगह बौहरा रूप मनु मुक्तावली और मिताक्षरा के पाठ भेदसे होगया है तिसका ठीक शोधन वेदहीसे होसक्ता है ॥ ० ॥ मिताक्षराकार फिर कहिते है कि मनु का अश्रोक्त एक दूसरा जो वचन है कि (महापातक संयुक्तोऽनुगच्छेद्दगा समाहितः अभ्यस्याच्चंदावमानीर्भेद्याद्धारोविशुद्ध्यति) सो इस वचन का प्रायश्चित्त उसके लिये समझना कि जिसने बारम्बार उसी महापापका अभ्यास किया हो यहा अनेक महापापों का समुच्चय एक साथ किया होय=और अर्थ इसका यही है कि यदि कोई द्विजाती महापातकों से संयुक्त होजाय सो एक साल भर अपने चित्त को लगाकर गौओं के पीछे पीछे फिर और (पावमानीः) इस ऋचाका जप बारम्बार अभ्यास करतार है और भिसा सांगि भोजन किया करै तो यह शुद्ध होजाताहै (सुरापानका प्रायश्चित्तकिये पीछे एकदुधारगाय देनीचाहिये सो ३०५ मूलश्लोक से देखना ॥ यहपूर्वार्ध मूलश्लोककी अधिकोक्ति पूरीहुई ३०४ ॥ उत्तरार्ध से सुवर्ण हरने का प्रायश्चित्त नीचे कहिये ॥

इतिसुरापान महापातकस्य प्रायश्चित्त ॥

(अथसुवर्णस्तेय प्रायश्चित्त)

ब्राह्मणस्वर्णहारीतु रुद्रजापीजलेत्पित-३०४

अर्थः—सु—अथय के योग सेतीन रात्रि का उपवास जो पहले कहिचुके वह इसमें भी लगता है तिससे—ब्राह्मण का सुवर्ण हरने वाला महापातकी पूर्वोक्त तीन दिन का उपवास किये जल में वैदा हुआ रुद्र जप करने से विशुद्ध होता है अर्थात् (नमस्तेरुद्रमन्यव) इत्यादि शत रुद्रोंका जप तीनदिन जलमें वैदिके करै ॥ ३०४ ॥

३०४ अधिकोक्तिः—शातातपने एक जुदी विशेषताके साथ यहीकहा है=यथा =मद्यम्पीत्वागुरुदारंश्चगात्वास्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यांचकृत्वा भस्माच्छन्नोभस्मशय्यां शमानोसद्ब्राध्यायीमुच्यतेसर्वपापैः=अर्थात्—मद्य पीके या गुरुचारा समन करिके या चोरी करिके या ब्रह्महत्या करिके रुद्री पाठ करतेहुये सभी पापोंसे छुटिजाता है जो देहमे भस्म रमाये और भस्मही पर लोटिपेटि रहिकर पाठकिया करै=यहां भी तीनही दिन समझने जो ऊपर कहिचुके और कितना जाप करै इस अपेक्षा

में ग्यारह आठति करनी चाहिये क्योंकि (सकादश शरान्वापिरुद्रानावर्त्य धर्मवित्त महापापैरपिस्पृष्टो मुच्यतेनात्रसंशयः) यह अत्रि मुनि का वचन प्रसारा है कि धर्म का जाननेवाला यदि महापापों से भी संयुक्त होजाय और उस से कोई और प्रकारका प्रायश्चित्त न होसके तो वह ग्यारहशरारुद्रोंका पाठकारिके भी मुचि जाताहै इसमें संशय नहीं ॥ ० ॥ यत्तुमनुना=सकृञ्जप्त्वाऽस्यवासीयं शिव सकल्पमेवच सुवर्णामपहृत्यापिसराराद्भवतिनिर्मलः (इतिद्विपचादृक्सख्याकस्य-अस्यवासस्यपलितस्यहोतुरिति सूक्तस्य-तथा-यज्ञाप्रतोदूरमुद्वैतैवमिति शिवसकल्पस्यवा-सकृञ्जपउक्तः सोऽत्यन्त निर्गुणा त्वात्मिक स्वर्णं हरणो शरान्वतोऽपहृष्टर्द्रं दृव्यसुवर्णान्पून परिसारा विययोऽनुग्राहक प्रयोजक विययोवा-आवृत्तौ महा पातक सयुक्तोऽनुगच्छेदित्यादिनोक्तन्द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा=अर्थात्-मिताक्षराकार ऊपरकी व्यवस्थासे निपटिके फिर कहितेहै कि० जो मनुने सकृञ्जप्त्वा आदि वचनमे दर्शाये मन्त्रके एकही वार जप करनेसे सरामात्रमे शुद्धहोजाना कहा सो उसके लिये समझना जो अत्यन्त निर्गुणा अर्थात् नित्य नैमित्तिक यज्ञों को निपटही न करने वाले ब्राह्मण का सुवर्ण जिस किसी गुणवाच अर्थात् यज्ञादि कर्म करने वाले ने शुपतीअर हराही अथवा इन लक्षणां की बिना भी सुवर्णके मुख्य परिमाण से न्यून सोना हर लिया हो अथवा मुख्य चौर से उपराल जो कोई उस चौर का अनुग्राहक प्रयोजक आदि कोई सहायक हो तिसकेलिये भी समझना क्योंकि प्रायश्चित्त अति छोटा है-और जिसने कई वार सोना हरा हो तिसके लिये ऊपरली अधिकोक्ति के अन्त में महापातक सयुक्तो आदि मनु के वचन वाली व्यवस्था देखना-मिताक्षराकार ने प्रायश्चित्त को इस हेतु से अति छोटा कहा कि मनुने एकही वार मन्त्रका जपना और सरामात्र में पापीका निर्मल होजाना दर्शाया है-परन्तु-मनु सूक्तावली टीका में एक महीना भर हररोज एकवार मंत्र जपना कुल्लुका भङ्गे दर्शायाहै-तिससे अब दोनों टीकाके भाया अर्थलिखने आवश्यक ठहरे-तहां पहिले मिताक्षरा की पंक्तों जो ऊपर लिखि चुके तिनका यह अर्थ है कि मनु ने-सकृञ्जप्त्वा आदि इस वचन में ५२ वाचन ऋचा की संख्या वाले-अस्यवासस्य पलितस्य इत्यादि सूक्त का जप एकही वार तद्वत् शब्द से दर्शाया-तथा-यज्ञाप्रतोदूरमुद्वैत इत्यादि शिवसकल्प नामक मंत्रका जप एकही वार सकृदशब्द से दर्शाया और एक ही वार एक मंत्र जपने से उसी सरा मात्र में पापी का निर्मल होजाना कहा-तथापि=इस व्याख्या की हरतरह अनुचित जानि के कुल्लुक भङ्ग

ने यह व्याख्या लिखी है कि (प्रकृतत्वात् मासमेकं प्रत्यहमेकवारं (अस्यवाम-
स्येत्यादिक मस्यवामीयसूक्तं जपित्वा) शिव सकल्पं च (यज्ञाप्रतोदूर मित्येतत्)
वाजसनेय की यत्पठितं तज्जपित्वा सुवर्णा सपहत्य क्षिप्रमेव निष्पापी भवति २५०)
अर्थात्—कुल्लुक भट्ट कहते हैं कि मनुके ग्यारहवें अध्याय का दो सौ पचासवां
यह श्लोक है और २५८ दोसौ अस्तालिसके श्लोकमें एक महीना भर प्रायश्चित्त
करनेका प्रसंग आ चुका है उसी प्रकृत प्रसंगसे यहां भी एक महीना भर हररोज एक
वार अस्यवामीय नामक सूक्त जपना और शिव सकल्प नामक संव भी जपना जो
यजुर्वेदकी शाखा वाजसनेयनामके बीच कहीं आया है । तो इस प्रायश्चित्तसे सुवर्णा
का अपहर्ता भी क्षमात् निर्मल होता है अर्थात् पूरे महीना भर प्रायश्चित्त पूरा कर
चूकनेके समयसे लेकर शुद्ध होजाता है यह तात्पर्य क्षरा शब्दका ठीक है—वह नहीं
कि एक मासत भर में शुद्ध होजाय जिससे प्रायश्चित्त अति छोटा समुक्ता गायथा
(सुवर्णास्तेय का प्रायश्चित्त किये पीछे एक दुवार गाय देने चाहिये सो ३०५
मूल श्लोकमें देखना ॥ ३०४ ॥

इति सुवर्णस्तेयमहापातकस्य प्रायश्चित्तं ॥

(अथ गुरुत्तल्पप्रायश्चित्तं)

सहस्रशीर्षाजापीतुमुच्यते गुरुत्तल्पगः गौर्देयाकर्मणोऽस्त्यान्तेष्टयनेभिः पयस्विनी ३०५ ॥

अर्थः—सहस्रशीर्षा जपनेवाला गुरुत्तल्पगामी भी मुक्त होता है इन सबको इस
कर्मके अन्तमें पयस्विनी गाय भी जुदी देनी चाहिये—अर्थात्—जिसने छिपसा गुरु
दारा गमन किया हो जिसका भेद नहीं खुलनेपाया तो यह पापी सहस्रशीर्षा आदि
सौरह ऋचाओंवाला सूक्त जो नारायणाका प्रकाश किया कहाता है जिसका पुरुष
देवता है अनुष्टुभ छन्द है त्रिष्टुप् छन्द जिसका अन्त है तिसको जपतेहुये उस गुरु पाप
से छुटिजाता है—और (पृथक्शभिः) गुरुत्तल्पगामी तथा पूर्वोक्त सुरापानकारी और
सुवर्णास्तेयी इन तीनोंको पृथक् जुदे अपने प्रायश्चित्त रूपो कर्मके समाप्त होनेपर
बहुत दुवार गाय दूध देती हुइ बच्छा सहित दान करनी चाहिये ॥ ३०५ ॥

३०५ अधिकोक्तिः—सहस्रशीर्षाजापी इसपदमे ताच्छीत्य प्रत्ययहोनेसे आठति
पाठ समुक्ता गया है कि चारवार जपता रहे किन्तु एकही वार जपिके न चुपका
होजाय—इसका प्रमाण भी इसका यह वचन है कि (पौत्थसूक्तमावर्त्यमुच्यते सर्वं

किल्बिषात्) अर्थात्—पुरुष देवतावाला मूक्त जो सहस्रशीर्षा के नामसे कहिचुके तिसको बारम्बार जपिके सबतरह के पापोंसे मुचिजाता है ॥ आष्टौचसंख्याऽपेसा यामध्वस्तनश्लोकागताचत्वारिंशत्संख्याऽनुमीयते—अत्रापिप्राक्तनश्लोकागतं त्रिरात्रो पोयितइतिसम्बध्यते इतिचमिताक्षरा=अर्थात्—मिताक्षराकार यह भी कहितेहैं कि बारम्बार जपने मध्ये जो यह कहाजावै कि कितनी संख्यातक बारम्बार पाठ किया जाय और कितने दिन कियाजाय तौ फिर ३०३ तीनसौतीनके श्लोकमें ४० चालीसकी संख्या जो आहुतोंपर कही गई और ३०४ के श्लोकमें भी स्वीकार करी गई वही यहां भी पाठों पर अनुमान होतीहै और उसी ३०४ के श्लोकमें तीन रात्र उपवास करना कहाया सो भी यहां समुभिलेना कि तीन दिन तक उपवास किये हुये सहस्रशीर्षा आदि मूक्तके पाठकी आष्टौ करता रहे—इसबात का प्रमाण भी उहद्व विष्णाका यह वचनहै कि (त्रिरात्रोपोयितःपुरुषमूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुष्येत) अर्थात्—तीन दिन व्रत कियेहुये पुरुष मूक्तका जप और होम इन दोकार्यों के करनेसे गुरु भार्या गामी शुद्ध होवै (तीनों पापियोंको गौदान करना ऊपर कहि चुकेहैं) मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह प्रायश्चित्त जो कहाया सो इच्छाविना स्वतः वनिपरे पातक पर समुभूना और अगले वचनसे मनुका कहा प्रायश्चित्त भी इच्छाविनाके वनिपरे पातकपर समुभूना=यथाहमनुः=हविष्यन्तीयमभ्यस्यनतमंह इतीतिच जपित्वापौरुषसूक्तमुच्यतेगुरुतल्पगः (इत्येकादशाध्याये २५१ श्लोकः= अर्थात्—हविष्यन्तीयनाम के वेदोक्त मंत्रको बारम्बार अभ्यास करिके या नतमंह इत्यादि नामके मंत्रको या इतिमेमनः इसमंत्रको या पौरुषमूक्तको जपिके गुरुभार्या गामी मूक्त होताहै (अक्षरार्थ्य केवल यहीहै सो लिखागया) परन्तु मनुमुक्तावली टीका और मिताक्षरामें इस वचनकी संख्यातख्याख्या जैसी लिखीहै और उनमें कुछ थोड़ासा अन्तर भी प्रतीत होताहै तिससे उन दोनोंको तद्रूप यहां दर्शातेहैं—तवाहकृत्कभद्रः—हवीति—हविष्यन्तमजरंस्त्रिर्विदामेकोनविंशतिंश्चैवः नतमंहोदुरितमित्ययो हविष्यन्त इतिवा इतिमेमनः शिवसंकल्प इतिचमूक्तं सहस्रशीर्षा पुरुषइत्येतच्च योऽश्वसूक्तानामसेकंप्रत्यहमभ्यस्येतिथवशात्प्रकृतत्वात्तयोऽश्वशाम्भ्यासेनजपित्वा गुरुदार गःतस्मात्पापान्मुच्यते—इत्येकादशाध्याये २५१ श्लोकरीका=अथार्चमिताक्षरायथा—हविष्यन्तीयमजरंस्त्रिर्विदामे नतमंहोदुरितं इतिवा• इतिमेमनः—सहस्रशीर्षेत्येया मन्थतमस्य मासं प्रत्यहं योऽश्व योऽश्वश्चर्चां चत्वारिंशत्संख्याकजपइत्तो मनुनासो यकार्मविययस्रव=कामतस्तु=मंत्रैःशाकलहोमीयैरितिमनूक्तन्द्रयस्यं=अर्थात्—प्रथम

कुल्लुकभद्रकृत व्याख्यामें यह तात्पर्यहै कि—जिन जिन ऋचाओं वा मुक्तोंकी सम्-
 स्था मनुके वचनमें उपस्थितहै तिनकेसाथ अभ्यासकी आज्ञा लगीहोनेसे अनेकवार
 जप करना समुभागाया और (कबतक या कितने वार इस प्रश्नकी अपेक्षामें) पहिले
 २४० के प्रलोकमें रोज रोज सोरहवारका नियम और एक महीने तक प्रायश्चित्त
 करनेका नियम जो मनुजी कहिचुकेहैं उसी प्रकृतआज्ञासे यहाँ भी एक महीनाभर
 हररोज सोरहवार कोई सा एक मंत्र निरन्तर जपिलिया करै तौ गुरुद्वारागामी शुद्ध
 होजाताहै—इसी वचनकी व्याख्यामें मिताक्षराकारने इतना भेद अधिक याज्ञवल्क्य
 जीके वचनके अनुसार और भी दर्शायाहै कि—उक्त मंत्रोंमें कोईसा एक मंत्र महीना
 भर तक सोरह सोरह चालीसकी संख्यासे गुराकर जप किया करै क्योंकि योगी-
 श्वरके ३०३ तीनसौतीनवाले मूलप्रलोकमें चालीसका नियम आचुकाहै तिमसे सो-
 रहको चालीसगुणा करनेसे ६४० छःसौ चालीस मंत्र नित्यम्प्रति जपने ठहिराकर
 पीछेसे कहाहै कि यह प्रायश्चित्त भी उसीपर आरुद्ध होगा जिसपर विना इच्छा
 के पाप होगयाहो=किन्तु कामना से किये हुये पाप मध्ये=मनुका दूसरा वचन जो
 पहिले भी लिख चुके हैं सो देखौ=यथा=मन्त्रैःशाकलहोमीये रव्वंहुत्वावृत्तद्विजः
 सुगुर्वप्यपहंत्येनोज्ज्ववानमइत्युचम (इत्येकादशाध्याये २५६ मनुः=अर्थात्—देवकृत-
 स्य—इत्यादि वेदके मंत्र जो शाकल होमीय इस नामसे कहातेहैं तिनसे एक सालभर
 निरन्तर हररोज घी का होम करिके वह द्विजाती शुद्ध होजाताहै जिसने उपतोअर
 कड़ेसे बड़ा भी पाप इच्छा सहित कियाहो अथवा इस होमको न करसके सो (नम
 इन्द्रप्रच इत्यादि) इस ऋचाकी एक सालभर जपिके बड़ेपापको धो देवै ॥ ० ॥ मि-
 ताक्षराकार फिर कहितेहैं कि जिसने उक्त पापको इच्छा सहित करेवार कियाहो
 तिसकेलिये अथोक्त प्रायश्चित्त देखना कि जैसा यद्विंशन्मतनान के ग्रन्थका यह
 कथनहै=यथा=महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैःकार्यैःद्विजन्मना उपपातकशुद्धयर्थसहस्र
 परिसंख्यया । महापातकसंयुक्तो लक्षहोमेन शुद्ध्यतीति (तदाट्टित्तविययमितिमिता
 क्षरा=अर्थात्—जिसने सिर्फ उपपातक मात्र कियाहो ऐसे द्विजाती की उस पापकी
 शुद्धिकेलिये तिलोसे एकसहस्र आहुतियोंकाहोम महाव्याहृतियोंसे करना चाहिये
 जो गायत्रीके साथ होतीहै । परन्तु जिसने महापातक रूपी पाप कियाहो वह एक
 लक्ष आहुतियोंसे शुद्ध होताहै (सो यह एक लाख आहुतोंका होम उसीपर समुक्त-
 ना जिसने उसीपापको करेवार कियाहो यह मिताक्षराने निर्वायसे निपटारा किया
 ॥ ० ॥ फिर कहितेहैं=यत्तुयमेनोक्तं=जपेदायस्यवामोयंपावमानो रथापिवा कृन्ताप

७८ अतत्तरि के परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिली भली मर्यादा कहि-
कर केवल ब्रह्मइत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७९ के परिच्छेद में सर्व
सहापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे महापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका
परन्तु रहस्यों का प्रकरण अबतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों
की अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्र-
करणा की समाप्ति होगी ॥

अथ उपपातकादीनां प्रकीर्णकपर्यंतानां भेदविशेष- घानांच सर्वेषां रहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

इस परिच्छेद में सब तरह के उपपातक जो गोबध से आदि लेकर छप्पन
प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रा-
यश्चित्त यहां जाने जायेंगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे
पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकेंगे ॥

(सर्वोपपातकादीनां प्रायश्चित्तं)

प्राणायामशतकार्यत्तर्बपापापनुचये उपपातकजातानामनादिरस्यचेवहि ३०६ ॥

अर्थः—सब पापोंको अपनुत्तिकेलिये उपपातकोंसे उपजेहुयों के और अनादिर
केलिये भी प्राणायामोंका संकरा करना चाहिये—अर्थात्—गोबध आदि ५६ छ-
प्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ
बयालिस तक दर्शायेगयेथे उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपीअर कोड़े करे तिनसे
उपजे पापोंकी अपनुत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये एकसौ प्राणायाम करने चाहिये-
तथा अनादिर जिन पापोंके नामसे कोड़े रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरण में न कहा
गयाहो जैसे जातिधंशकर संकरी करण मलिनी करण आदि नामोंके पाप जो म-
न्वादिस्मृतियों में विदितहैं तिनहीको छिपीअर कोड़े करिबैठे तिसके पाप धीनेके
लिये भी प्राणायामोंका संकरा करना चाहिये- तथैव सभी पापोंको धोडारने के

लिये भी प्राणायाम कियेजामक्ते हैं अर्थात् सर्व पाप कहिनेसे कोई पाप छूटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप सृष्टिमें होते हैं तिनमेसे चाहें कोईसा बड़ा या छोटापाप जिसकिसी ने छिपीया कियाहो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहाहो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेसा अधिकनहींहे वहकेवल प्राणायाम साधनकारके शुद्ध होसक्ताहै तहां इतनाभेदहै कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायामकरनेहोगे तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्ति—महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपीया जिसनेकिया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये • जिसने अति पातकों में कोई पापकियाहो तिसको तीनसौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये • जिसने अनुपातकों में कोई पाप छिपीया कियाहो तिसको दोसौ २०० प्राणायाम करने चाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे—इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या में कल्पना करनी चाहिये—क्योंकि—प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाथा कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापकी यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरे कि उपपातकोंकी गिनतीमें आज्ञाय महापातकों की गिनतीमें न रहे तहां इस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसको मित्र चौथाई करना चाहिये सब नहीं—उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक एकही सैकरा प्राणायामोंका लिखाहै तथापि पापोंके बहापनपर अधिकता होनी उचितहै—इसीप्रकार प्रकीर्णक नामकेपाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौदशरिके परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै कदांचि उनमेंसे कोई पाप छिपीया कियाहो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कमतीकी कल्पनाकरनी चाहिये—इसीकल्पनाके अनुरूपआगे यमकीकही व्यवस्थादेखी—यथाहयमः—दशप्रणव संयुक्तः प्राणायामैश्चतुःशतैः मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किंपुनः शेषपातकैः—अर्थात्—दशसौ कारोंसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) सावन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छुटिजाताहै फिर और पापोंसे छुटिजाता क्या बही बातहै कूळ नहीं—इसी व्यवस्थापर बोधायनमुनिने कूळ विशेष एक जुदाप्रकार भी दर्शाया है—यथा—अपिवाकचक्षुःश्रोतस्वर्णधारामनोव्यतिक्रमेयुविभिः प्राणायामैः शुद्धयति १ शुद्धस्त्रीगमनाच्चभोजनेयुष्टकपृथक्सप्ताहंसप्तसप्तप्राणायामान्वारयेत् २ अभद्र्याभो-इयामेव्यप्राशनेयुतथावात्परायविक्रयेयु मधुनांसघृततैल लासालवगारसान्नवर्जयुय-

७८ अतत्तरि के परिच्छेद में रहस्यों की साधारण मिला भुली मर्यादा कहि-
कर केवल ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त कहे गये फिर उनासी ७९ के परिच्छेद में सर्व
महापातकों के प्रायश्चित्त कहे तिससे महापातकों का निपटारा यद्यपि होचुका
परन्तु रहस्यों का प्रकरणा अबतक नहीं पूरा हुआ किन्तु उपपातक आदि पापों
को अगिले परिच्छेदों में देखना तब इक्यासी परिच्छेद के अन्त में जाकर इसप्र-
करणा की समाप्ति होगी ॥

अथ उपपातकादीनां प्रकीर्णकपर्यंतानां भेदाविशेष- पानांच सर्वेषां रहस्य प्रायश्चित्तप्रबोधकोऽयं परिच्छेदः अशीतितमः (८०)

इस परिच्छेद में सब तरह के उपपातक जो गोवध से आदि लेकर छप्पन
प्रकार के प्रकाश प्रायश्चित्तों के स्थल में दर्शाये गये तिनके रहस्य प्रा-
यश्चित्त यहाँ जाने जायेंगे और भी प्रकीर्ण पापों पर्यंत अति छोटे
पापों के प्रायश्चित्त इसी में मिल सकेंगे ॥

(सर्वोपपातकादीनां प्रायश्चित्तं)

प्राणायामज्ञातकार्यसर्वपापानुत्तये उपपातकजातानामनाविदस्यचेवहि ३०६ ॥

अर्थः—सब पापोंकी अपनृत्तिकेलिये उपपातकोसे उपजेहुयों के और अनादिष्ट
केलिये भी प्राणायामोका संकरा करना चाहिये=अर्याव—गोवध आदि ५६ क-
प्पनप्रकारके उपपातक जो २३४ दोसौ चौतीस मूल श्लोक से लेकर २४२ दोसौ
बयालिस तक दर्शायेगये उनमेंसे जिस किसी कर्मको छिपीअर कोइ करे तिनसे
उपजे पापोंकी अपनृत्ति अर्थात् धोडारनेकेलिये सकसो प्राणायाम करने चाहिये-
तथा अनादिष्ट जिन पापोंके नामसे कोइ रहस्य प्रायश्चित्त इसप्रकरणा में न कहा
गयाहो जैसे जातिधंशकर सकरी करणा मलिनी करणा आदि नामोंके पाप जो म-
न्यादिस्मृतियों में चिदितहैं तिनहीको छिपीआ कोइ करिवैठे तिसके पाप धोनेके
लिये भी प्राणायामोका संकरा करना चाहिये- तथैव सभी पापोंकी धोडारने के

लिये भी प्राणायाम कियेजासकते हैं अर्थात् सर्व पाप कहिनेसे कोई पाप हटा हुआ नहीं रहा किन्तु पूर्वोक्त महापातकों को आदि लेकर सबसे छोटे प्रकीर्णक पापों तक जितने पाप सृष्टिमें होते हैं तिनमेंसे चाहें कोईसा बड़ा या छोटा पाप जिसकिसी ने छिपीया कियाहो और प्राणायाम करनेका अभ्यास जिसको अच्छीतरहसे हो रहाहो तिसको अन्य प्रायश्चित्त करनेकी अपेसा अधिकनहींहे वहकेवल प्राणायाम साधनकारके शुद्ध होसकताहै तहां इतनाभेदहै कि छोटेपापोंपर थोड़े और बड़े पापोंपर बहुत प्राणायामकरनेहोये तिसका ब्यौरा अधिकोक्ति में देखो ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्तिः—महापातकोंमें कोईसा एक पातक छिपीया जिसनेकिया हो तिसको चारसौ ४०० प्राणायाम करने चाहिये। जिसने अति पातकोंमें कोई पापकियाहो तिसको तीनसौ ३०० प्राणायाम करने चाहिये। जिसने अनुपातकोंमें कोई पाप छिपीया कियाहो तिसको दोसौ २०० प्राणायाम करनेचाहिये उपपातकोंपर एकसौ १०० मूलमें कहिचुके सोईकरे—इसरीतिसे प्राणायामकी संख्या से कल्पना करनी चाहिये—क्योंकि—प्रकाश प्रायश्चित्तों में यह एक नियम कहा गयाथा कि जिस महापातक पर जितना प्रायश्चित्त करना कहाहो उसी पापकी यदि कोई ऐसे ढंगसे उत्पन्नकरे कि उपपातकोंकी गिनतीमें आज्ञाय महापातकोंकी गिनतीमें न रहे तहां इस महापातकपर लिखा प्रायश्चित्त उसकी सिर्फ चौथाई करनाचाहिये सब नहीं—उसी नियमके न्यायसे यहां भी यद्यपि उपपातकोंपर ठीक ठीक एकही सैकरा प्राणायामोंका लिखाहै तथापि पापोंके बहापनपर अधिकता होनी उचितहै—इसीप्रकार प्रकीर्णक नामकेपाप जो सबसेछोटे गिनेजातेहैं जिनका स्वरूप ७४ चौदहत्तरिके परिच्छेद में वर्णन होचुकाहै कर्वाचिव उनमेंसे कोई पाप छिपीया कियाहो तिसको सौ १०० प्राणायामसेभी कमतीकी कल्पनाकरनी चाहिये—इसीकल्पनाके अनुसूपआये थमकीकही व्यवस्थादेखी—यथाइयंमः—दशप्रणव संयुक्तः प्राणायामैश्चतुःशतैः मुच्यतेब्रह्महत्यायाः किंपुनःशेषपातकैः—अर्थात्—दशसौ कारोंसे संयुक्त प्राणायाम चारसौ ४०० संख्या तक (जितने दिनोंमें होसकें) सावन करनेसे ब्रह्महत्या से भी छुटिजाताहै फिर और पापोंसे छुटिजाना क्या बड़ी बातहै कुछ नहीं—इसी व्यवस्थापर बोधायनमुनिने कुछ विशेष एक जुदाप्रकार भी दर्शाया है—यथा—अपिवाकचक्षुःश्रोत्रस्वर्गघ्राणमनोव्यतिक्रमेयुर्विभिः प्राणायामैः शुद्धयति १ शुद्धस्त्रीगमनाच्चभोजनेयुष्टयकपृथक्सप्ताहंसप्तसप्तप्राणायामान्वाारयेव २ अभद्रयाभो-इयामेव्यप्राशनेयुतथावाटपरायधिकयेयु मधुमांसघृततैल लासालवणारसान्नवर्जयुय-

चाप्यन्यदेवयुक्तं द्वादशाहं द्वादशप्राणायामान्धारयेत् ३ अथपातकोपपातकव
 र्जयच्चान्यदेवयुक्तं अर्द्धमासं द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत् ४ अथपातकपतनीयवर्जं
 यच्चान्यन्यदेवयुक्तं मासं द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत् ५ अथपातकवर्जं यच्चान्यन्यदेव
 युक्तं द्वादशाहं मासान् द्वादश २ प्राणायामान्धारयेत् ६ अथपातकेयुसंघत्सरं द्वादश २
 प्राणायामान्धारयेत् ७ इति वौधायनाः (अथ्यचमिताक्षरायां न्यवस्था यथा) तत्र
 वाक्चक्षुरित्यादिना प्राणायामत्रयं प्रकीर्णाकाभिप्रायं १ शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेत्यादि
 नोक्तासकोनपंचाशत्प्राणायामानुपपातकाविशेषाभिप्रायाः २ तथाअभक्ष्याभोज्ये-
 त्यादिनोक्ताश्चतुश्चत्वारिंशदधिकशतप्राणायामानुपपातकविशेषाभिप्रायाणव
 ३ अथपातकोपपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः साशीतिशत प्राणायामानुपपातकविशेषाभिप्रायाः ४
 अथपातकपतनीयवर्जमित्यादिनोक्ताः यद्यद्यधिकशतत्रयप्राणायामाः गोव
 चाद्युपपातकाभिप्रायाः ५ अथपातकवर्जमित्यादिनोक्ताः यद्यद्यधिकशतसहितद्विसहस्र
 संख्याकाः प्राणायामानुपपातकानुपातकाभिप्रायाः ६ अथपातकेष्वित्यादिनोक्ता
 विंशत्यधिकशतत्रययुक्ताश्चतुःसहस्रप्राणायामानुपातकविषयानुपपातकाभिप्रायाः ७
 इति मिताक्षराका
 राः ७ = अर्थात्—वौधायन का बहुत बड़ा वाक्य जिसके बीच बीच सात अक्षर देकर
 जुड़े सात भेद मर्यादा प्रिय लेखकने अर्थों की सुगमता चाहिके करबिये हैं प्राचीन
 ऋषि वाराणी और दूरदेशी देशान्तर बोलचाल की तरासपर संस्कार उसका होनेके
 हेतुसे आधुनिक वा अथत्य संस्कृत वाराणीकी अन्वय परिपाटीसे अर्थलगाता उसका
 ध्यासकहे क्योंकि अर्थ लगानेसे मुख्य प्रयोजनमें व्यतिक्रम आजाताहै—इसीहेतु से
 मिताक्षराकार ने एक निराली व्यवस्थाके साथ उसका गोल गोल फलादेश प्रकाश
 कियाहै उसीके भाषा अर्थ व्यौरवार दर्शातेहैं समझी कि—अपि वाक् चक्षु आदि
 प्रथम भेदके लेखमें सिर्फ तीन प्राणायाम करने जो वौधायनजीने कहे तिनको प्र-
 कीर्णाक नामके अति तुच्छ पापोंपर समुभन्ना जितका स्वरूप ७५ चौहत्तरके परि-
 च्छेद में दर्शाया गयाथा १ ॥ एवं शूद्रस्त्री गमनाच्च भोजन आदि द्वितीय भेदमें सात
 दिन सात सात ५६ उनचास प्राणायाम करने जो कहे तिनकी सबसे छोटी किस्मके
 उपपातकों पर समुभन्ना क्योंकि (उपपातक मुख्य छप्पनभातिके २३४ दोसौ चौ-
 तीसमूल श्लोक से लेकर कहे गये उन से उपरालू भी छोटे मोटे अनेक होते हैं)
 उनमें जो सब से छोटी किस्म समझी जाय तिसका यहाँ प्रयोजन देखि परता
 है २ ॥ एवं अभक्ष्या भोज्य आदि तृतीय भेद में बारह दिन बारह बारह १४४
 सकसौ चबालिस प्राणायाम जो कहे तिनकीभी जुदे उपपातकोंपर समुभन्ना अर्थात्

(छोटी किस्म को दूसरे भेदमें कड़िचूके उनसे कुछ बड़े उपपातक यहाँपर समझे जाते हैं) जो मध्यम किस्म के होते हैं ३ ॥ अथ पातकोपपातक आदि चतुर्थ भेद में पन्द्रह दिन बारह बारह १८० एक सौ अस्सी प्राणायाम जो करने कहे तिनको जाति भ्रशकर सकरी करण सलनी करण आदि नामोंके कुछ बड़े उपपातकोंपर समझना (क्योंकि जैसे क्रमसे प्राणायाम अधिक होते आते हैं तैसी पापोंमें वहापन पाया जाता है ४ ॥ अथ पातक पतनीय आदि पाँचवें भेद के पाठ में तीस दिन बारह बारह ३६० तीन सौ साठ प्राणायाम जो कहे तिनको गोवध आदि बहुत बड़े उपपातकों पर समझना (केवल उपपातकों की चार किस्में छोटी बड़ी इस प्रयोजन पर करी गई ५ ॥ अथ पातक वर्ज आदि छठे भेदके पाठ में छः महीने तक बारह बारह २१६० दो हजार एकसौ साठ प्राणायाम जो कहे तिनको अतिपातक और अनुपातक दोनों किस्म के पापोंपर समझना (ये दोनों किस्में यद्यपि सभी उपपातकों से बड़ी हैं तथापि महा पातकों से छोटी हैं) इन पातकों के सब जुड़े दर्जा के नाम भेद समझने चाहिकर २४२ दोसौ व्याखिस की अधिकोक्तिको देखौ ६ ॥ अथ पातकेयुसंबत्सर आदि सातवें पाठ में सालभर पूरे तीन सौ साठ दिनतक बारह बारह प्राणायाम कुल ४३२० चार हजार तीनसौ बीस करने जो कहे तिनको महापातकों पर समझना (क्योंकि यह सबसे बड़े पातक होते हैं इन्हीं पर इतनीबड़ी संख्या सूचित हुई • यह व्यवस्था मितासराकार ने उसी बौधायन के वाक्यपर स्थापन करी ७ ॥ इसमें प्राणायामों की तादाद जो कुछ लिखी गई सो सब बौधायन की कही ठीक ठीक है और पातको की छोटाई बड़ाई का जैसा अनुक्रम यहाँ मितासराकार ने व्यवस्थापित किया सो भी इसी प्रकार से न्यायात्मक देखि परता है क्योंकि इस क्रमके न होने से बौधायन के वचनों की मीजा नहीं मिल सकती थी—परन्तु—पाठक जनों को इतना सुदेह शयरहा कि यह गोलमगोल व्यवस्था जो कही गई तिसको बौधायन के मूल वचनों पर किस रीति से घटाये क्योंकि उनके अक्षरों पर इस गोल व्यवस्था की सुखला नहीं मिलती है जिसके मिलजाने बिना विश्वास नहीं आता—तिसमें—सर्वादा परिपाटी सपादक उन दोनोंकी सुखला मिला कर आगे जुदी व्याख्या दर्शाते हैं जिससे जिज्ञासुओं का मनोरजन होसके ॥ अथ द्रुयोःश्रु खलामेखन= बौधायन कहिते हैं कि (अपिवाक चक्षुः श्रोत्र त्वक् घ्राण मनो व्यक्तिकमेयु) अपि शब्द से यहाँ निन्दा की शक्ता रूपी सभावना अपने मनहीं में समुचित होने पर • उन कारणों से कि • वाक् वाणी का व्यक्तिकम रूपी पाप

जैसा किसी शिष्ट को एकान्त में गाली देना या क्रूर बचन कहि देना या शत्रु को सन्मुख आते देखि प्रणाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूति-
 राया तौ भी यह वारणी का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी वृत्ता आदि में निरर्थक
 असत्य बोला हो इत्यादि नाना भाँतिसे समझना और वारणी की सहचरी रचना
 जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें क्रुराति का भोजन करना आदिभी उसका व्य-
 तिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि
 मुह में चला गया या खुला धरा पानी पीलिया हो इत्यादि किन्तु जुटा भोजन कर
 लेना आदि बड़े पापका चर्चा यहां नहीं है प्रायश्चित्त छोटा होनेके हेतुसे • एवं चक्षुस्
 नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अमेध्य विष्टा आदि पर दृष्टि परगई या पुत्र वधु आदि को
 कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये बिना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर
 अपनी दृष्टि धोखे से पर गई हो तौभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठाँहरा इत्यादि नाना-
 भाँति से • एवं योत्र कानों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि मुनि परी
 या कोई अपशक्तलक्षणी शब्द किसी जीवका रोदन आदि मुनिपरा हो इत्यादि • एवं
 त्वचा खाललक्षणी इन्द्रीका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होती है उसमें कहींपर
 किसी मलीन वस्तुका छुड़जाना या पुत्र वधु आदिके हाथ पाओंसे अपना हाथ पावें
 आदि कोई अंग धोखासे भिड़जाना एकदोषहै सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता
 है इत्यादि • एवं घ्राणा इन्द्री जो नाकहै तिसका व्यतिक्रम जैसे विष्टा वा मय आदि
 की दुर्गंध नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि • एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही
 इन्द्रियों का अधियाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाले
 विचार करने मनका मुख्य धर्म है तिसको छोड़ि के दूसरों की बुराईवाला विचार
 करनेलागाहो • इत्यादि नानाभाँतिके छोटेपाप प्रकीर्णकहिलाते हैं • इन सात इन्द्रियों
 के व्यतिक्रम जो कहेगये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने
 कहे—इनसे उपरालू मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके पापभी
 इन्हीं सात इन्द्रियोंसे उत्पन्न होते हैं चौहत्तर २५ परिच्छेद में २६१ बोझी इक्ष्वाणवे
 मूलश्लोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझी किन्तु उनपरभी तीनही प्राणायाम
 सूचितहुये—तहां यह विचारभी करना चाहिये कि उनमेंभी जो कुछ बड़े बड़े पाप देखि
 परें तिनको जुदे खींचिके निचली दूसरे भेदवाले पापोंके साथमें जोड़ना अर्थात् उनके
 ऊपर सिर्फ तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त उक्तवास करने चाहिये • यहाँ
 तक पहिले भेदका मीलान हुआ ॥ १ ॥—बौधायन फिर कहिते हैं कि (शूद्रस्त्रीगमना

नभोजनेयुपृथक्पृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका हुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूयित और नियिद्ध होतेहैं तिसका भोजन करलेना• एवं स्त्रीके संगम समय भोजन करना या स्त्री के साथ भोजन करना• एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना• इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करै क्योंकि ये एकप्रकारके छोटे उपपातकहै निदर्शनके निमित्तकहेगये किन्तु इन्हींके उपलक्षणा से और भी छोटे उपपातक समुभोजातेहै—इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरालू इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४६ प्राणायाम समुभाएये उनका स्वरूप हुंहे मिलसक्ताहै ७० । ७२ । ७३ अक्षरि और बहक्षरि और तिहक्षरि परिच्छेदों में विस्तारसे वर्णन होचुका तहां देखौ ॥ २ ॥=बोधायन फिर कहतेहैं कि (अभक्ष्या भोज्या भेष्य प्राशनेयु) तथावा (अपरायविक्रयेयु) मधु मांस घृत तैल लासा लवण रसान्न वर्जयेयु (यच्चाप्यन्यदेवंयुक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निषेध खानेकेयोग्यही न हो जैसे पियाज आदि नियिद्ध चीजें) अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्यहैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुइजाने या मलीन वस्तु से भिन्न जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता उसमें नहीं रही•अभेष्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखने में भी अत्यन्त मलीन और अपविध हो जैसे विटा राखि पीव खंखार आदि•अवोक्त तीनों प्रकारमें कोईएक भी वस्तु मुहसंधरै या हलकमेंउतारै तिन पापोंमें) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहैं तिन में भी (अपराय विक्रयके पापोंमें भी कि जिन चीजांका बेचना हत्तीसमें मूलश्लोक से अरतीसमेतक नियेध कियागयाथा उन्हींको यदि छिपिन्कर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करै) परन्तु मधु मांस घी तैल लाख नमक रस गौरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाधमें नियेध किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपराय विक्रयका यहप्रायश्चित्त समुभूना क्योंकि चालीसमें मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्यहै (यच्चअपिअन्यतस्त्वयुक्तं) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक सगर में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुभूना जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिसमें भी यही प्रायश्चित्त समुभूना यह सब कथन बोधायनकाहै—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अवोक्त १४४ एकसौचर्वालिष प्राणायामासोकी औरभी सध्यम क्रिसके उपपातकोंपर व्यवस्थापितकियाहै(भलाकिपकी

जैसा किसी शिष्ट को एकान्त में गाली देना या क्रूर वचन कहि देना या गुरु को सन्दुख आते देखि प्रणाम शब्द कहिना योग्य था सो नहीं कहा गफलत से भूति-गया तौ भी यह चारणी का व्यतिक्रम हुआ अथवा हाँसी ठूठा आदि में निरर्थक अस्त्य बोला हो इत्यादि नाना भाँतिसे समझना और, चारणी की सहचरी रचना जिह्वा भी मुखही में होती है तिसमें कुरीति का भोजन करना आदिभी उसका व्यतिक्रम कहा जाता है सोभी तुच्छ पाप में समझना जैसे जलके साथ बाल आदि मुह में चला गया या खुला घरा पानी पीलिया हो इत्यादि किन्तु जुठा भोजन कर लेना आदि बड़े पापका चर्चा यहाँ नहीं है प्रायश्चित्त छोटा होनेके हेतुसे • एवं चक्षुस् नेत्रों का व्यतिक्रम जैसा अश्रेष्ठ विद्या आदि पर दृष्टि परगई या पुत्र वध आदि को कुदृष्टि से देखा अथवा कुदृष्टि किये बिना भी उनके किसी लज्जा वाले अंग पर अपनी दृष्टि धोखे से पर-गई हो तौभी यह नेत्रोंका व्यतिक्रम ठहरा इत्यादि नाना-भाँति से • एवं योत्र कानों का व्यतिक्रम जैसा महात्मा की निन्दा आदि सुनि परी या कोई अपशक्तरूपी शब्द किसी जीवका रोदन आदि सुनि परा हो इत्यादि • एवं त्वचा खालरूपी इन्द्रिका व्यतिक्रम जैसा खाल सब देहभरमें होती है उसमें कहींपर किसी मलीन वस्तुका छुड़जाना या पुत्र वध आदिके हाथ पाओंसे अपना हाथ पावें आदि कोई अंग धोखासे भिड़जाना एकदोय है सो यह त्वचाका व्यतिक्रम कहिलाता है इत्यादि • एवं घ्राणा इन्द्री जो नाक है तिसका व्यतिक्रम जैसे विद्या वा मद्य आदि की दुर्गंध-नासा के छिद्रों में घुसि गई हो इत्यादि • एवं मनोव्यतिक्रम जैसे मन सबही इन्द्रियों का अधिष्ठाता है उसके द्वारा ईश्वर का स्मरण और संसार की भलाईवाले विचार करने मनका मुख्य धर्म है तिसको छोड़ि के दूसरों की बुराईवाला विचार करनेलागो • इत्यादि नानाभाँतिके छोटेपाप प्रकीर्णकहिलाते हैं • इन सात इन्द्रियों को व्यतिक्रम जो कहेगये तिनमें किसी एकही के होने पर तीन प्राणायाम करने कहे—इससे उपरालू मिताक्षराकार के व्यवस्थापित किये प्रकीर्णक नामके पापभी इन्हीं सात इन्द्रियोंसे उत्पन्न होते हैं चौहत्तर ७४ परिच्छेद में २६ १ दोसोइकवचनके मूलश्लोकसे आदि लेकर खूब सोचिके समझौ किन्तु उनपरभी तीनही प्राणायाम सूचितहुये—तहाँ यह विचारभी करना चाहिये कि अंतमेंभी जो कुछ बड़े बड़े पाप देखि परें तिनको जुदे खींचिके निचले दूसरे भेदवाले पापोंके साथमें जोड़ना अर्थात् उनके ऊपर सिर्फ तीनही प्राणायाम नहीं बल्कि निम्नोक्त वनचास करने चाहिये • यहाँ तक पहिले भेदका मीलान हुआ ॥ १ ॥—बीधायन फिर कहिते हैं कि (शुद्धस्त्रीगरना

नभोजनेयुपृथक्पृथक्) शूद्र जातिका दिया हुआ अन्न या शूद्रका हुआ अन्न पानी या शूद्रका देखा हुआ तैयार अन्न ये सब दूयित और नियद्द होतेहैं तिसका भोजन करलेना० एवं स्त्रीके समान समय भोजन करना या स्त्री के साथ भोजन करना० एवं राह चला भोजन या राह चलते भोजन करना० इन तीनों तरहके भोजनरूपी दोषों में जुदा जुदा प्रत्येक निमित्तपर सात रोज तक सात सात प्राणायाम करै क्योंकि ये एकप्रकारके छोटे उपपातकहै निदर्शनके निमित्तकहेगये किन्तु इन्हींके उपलक्षणा से और भी छोटे उपपातक समुभोजातेहैं—इसीलिये विज्ञानेश्वरने इनतीनोंसे उपरालू इनके समान छोटे उपपातकों पर उनचास ४६ प्राणायाम समुभास्ये उनका स्वरूप हुंहे मिलसक्ताहै ७० । ७२ । ७३ सत्तर और बहत्तर और तिहत्तर परिच्छेदों में विस्तारसे वर्णन होचुका तहां देखी ॥ २ ॥=बोधायन फिर कहतेहैं कि (अभक्ष्य भोज्या मेध्य प्राशनेयु) तथावा (अपरायविक्रयेयु) मधु मांस घृत तैल लासा लवण रसान्न वर्ज्येयु (यच्चाप्यन्यदेवयुक्तं) अर्थात् (अभक्ष्य वह कि जो निषट् खानेकेयोग्यही न हो जैसे पियाज आदि नियद्द चीजें० अभोज्य वह कि यद्यपि अन्न आदि पदार्थ खानेके योग्यहैं पर किसी अशुद्ध प्राणीके छुड्जाने या सलीन वस्तु से भिड जाने आदि कारणोंसे भोजनकी योग्यता उसमें नहीं रही० अमेध्य वह कि जो अपने आप स्वरूप से देखनेमें भी अत्यन्त सलीन और अपवित्र हो जैसे विष्टा रावि घोव खंखार आदि० अत्रोक्त तीनों प्रकारमें कोईसक भी वस्तु मुहमेंधरै या हलकमेंउतारै तिन पापोंमें) तथा वा पक्षान्तरमें और भी जो जो पाप इन्हींके समान होतेहैं तिन में भी (अपराय विक्रयके पापोंमें भी कि जिन चीजोंका बेचना छत्तीसमें मूलश्लोक से अरतीसनेतक नियेध कियागयाथा उन्हींकी यदि छिपिपकर बेचा हो तहां बारह दिनतक हररोज बारह बारह प्राणायाम करै) परन्तु मधु मांस घी तैल लाख नमक रस गौरस अन्न इनका भी बेचना सबकेसाथमें नियेध किया गयाथा तिनको यहां छोड़िके अपराय विक्रयका यहप्रायश्चित्त समुभक्ता क्योंकि चालीसमें मूलश्लोक से ये जुदे इतने पतनीय कहे गयेथे तिससे इनके बेचनेवाले को यह छोटासा प्रायश्चित्त बड़े अनर्थमें गिनती यह तात्पर्यहै (यच्चअपिअन्यतसंब्युक्तं) और भी जो कुछ पाप इसीप्रकार ठीक ठीक समार में होताहो जो इन्हीं पापोंके समान समुभक्ता जाय जिसका नाम यहां नहीं लिखा तिसमें भी यही प्रायश्चित्त समुभक्ता यह सब कथन बोधायनकाहै—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अत्रोक्त १४४ एकसौचर्वात्तिस प्राणायामोंको औरभी मध्यम किस्मके उपपातकोंपर व्यवस्थापितकियाहै(भलाकिमको

मध्यम किस्मको समुभना इसअपेक्षामें) ५३ वैपन परिच्छेदकी आदि से ६८ अरसादि परिच्छेदके अन्त तक जितने उपपातकों के प्रकाश प्रायश्चित्त कहेगयेहों तिनकी मध्यमसमुभना परन्तु उनसवमेंसे जितका स्वरूपजातिभ्रशकरोंमें या संकरीकरसोंमें या अपात्रीकरसोंमें या मलिनीकरसोंमेंभी देखिपरै तिनकोछोट्टिके यहनियमसमुभना क्योंकि दोजधे गिनतीहोनेसे दोतरहका प्रायश्चित्त नहींकियाजायगा औरदो में जहां छोटा प्रायश्चित्त होय सोभीनहीं किन्तु बडाकियाजायगा तिसकोलिये यह छूट लिखी गई है सो समुभि लेना ॥ ३ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अयपात कोपपातकवर्ज्यचान्यदेवयुक्त) ऊपर कहे पापों से अनन्तर और जो कुछ बढिया पाप लगा हो तहां सेसे उचित है कि पन्द्रह रोजतक बारह बारह प्राणायाम करै परन्तु पातक नामके पापों और बहुत बड़े उपपातक नामके पापोंको बर्जितकरके उनसे निचले बढिया पापका यह नियमजानो—अर्थात्—बौधायन के इस कथन का यह तात्पर्य है कि मध्यम उपपातकों से कुछ बड़े हो पर उत्तमदक्षिण उपपातको से कुछ मध्यम हो तिनके लिये यह पखवारे का प्रायश्चित्त जानो—इसीलिये विज्ञानेश्वर ने अत्रोक्त १८० एकसौअस्सी प्राणायामों को जातिभ्रशकर आदि पापों पर समुभना या जिनके चारोंनाम अभी तीसरे पाठके अन्तमें लिखेगये देख लो—इनके प्रकाश प्रायश्चित्त ७४ चौहत्तर के परिच्छेद में कहिचुके हैं—इन्ही के अस्यन्त स्वरूप लक्षणा २४२ दोसौ बयालिस की अधिकोक्ति में जाकर समुभो ॥ ४ ॥=बौधायन फिर कहते हैं कि (अय पातक पतनीय वर्ज्यचान्यन्यदेवयुक्त) अयनाम ऊपरले पापों से अनन्तर जो और बडा पाप है उसमें पातक और पतनीयोंको छोडिके ऐसा उचितहै—अर्थात्—पूरे पातक और पतनीयजो पातकसे कुछ नीचे दर्जामें होतेहैं इन दोभोंतिसे उपरालू जो इन दोनोंसे नीचे दर्जामें अन्यभोंतिके सेसे पापहों जो ऊपरले चौथे पाठवालोंसे कुछ बड़े समुभेजायँ तिनहीमें सेताकरना उचितहै कि एक महीनाभर हररोज बारह प्राणायाम साधै यह बौधायनका कथन है—इसीलिये विज्ञानेश्वरने अत्रोक्त ३६० तीनसौसाठ प्राणायामोंको गोबध आदि बहुत बड़े उपपातकों के अभिप्राय पर समुभना कहा क्योंकि इस प्रकार के वेही प्रतीत होतेहैं उनको स्वरूपों को समुभना जिसको आवश्यक हो तो ४० चालीसवे परिच्छेद से लेकर ५२ वावन परिच्छेद की अत्य सीमातक देखो कि उन्ही तेरह परिच्छेदों में गोबधकी आदि लेकर जितने उपपातकोंके प्रकाश प्रायश्चित्त कहे गयेहों उन्हींकेरहस्य प्रायश्चित्त यहां तीनसौ साठ प्राणायामसे दर्शायेगयो॥५॥=

वौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकवर्जयचान्यदस्येवमुक्तं) अथानन्तरं यच्चपापंअन्यदपिपातकवर्जस्यातत्रसर्वउक्तं इतियोजना) ऊर्ध्वोक्त पापों से ऊँचे चटिकर अनन्तर उनसे लगसायदि औरही बढ़िया पापहोय जो पूरेपातकसे वर्जित होय तहाँ ऐसे कहाहै—अर्थात्—पाँचवें पातवाले पापों से कुछ ऊँचाहोय परच पूरे पातकोसे कुछ नीचा होय तिसमे ऐसा कहा है कि एक छमाही भर हररोज बारह प्राणायाम साथै(यहाँपर पातक या पूरे पातकसे महापातक समझा गयाहै क्योंकि पातके क्रमसे अर्थहीका क्रम बलवान् होताहै) (इसी न्याय से मिताक्षराकारने अश्लोक्त २१६० इक्कीसवें साठि प्राणायामों की अतिपातक और अनुपातकों के अभिप्रायपर टहिराया है कि जिससे आगे सातवे पातसे विरोध न आनेपावै ॥ ६ ॥= वौधायन फिर कहते हैं कि (अथपातकेयुसवत्सर)उर्ध्वोक्तोसे ऊँचे चटिकर उनसे अनन्तर जो सबसे बढ़ियापातक अर्थात् जिनसे ऊँचा कोई और पाप न होता हो तिनमें एक सालभर हररोज बारह प्राणायाम साथै—इसी लिये मिताक्षराकार ने अश्लोक्त ४३२० तैत्तलिससैंबीस प्राणायामोंकी महापातकोके विययपर टहिराया है क्योंकि उनसे बड़ा कोई और नहींहै ॥ ० ॥ महापातक० अतिपातक० पातक० अनुपातक० उपपातक० इन सबके मुख्य स्वरूप २४२ दोसौ वय्यालसकी अतिकोक्ति मे देखौ वहाँ इनके एक एकमें कईकईभेद हैं परच महापातकोंमे बड़ा कोई नहीं है० उपपातकोंमें परस्पर छोटाई बड़ाईके हेतुसे चारपाँचक भेदहोतेहै ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर अपना विचार कुछ और भी दर्शाते हैं कि(इदचाभस्याभोज्येत्यादिनोक्तप्रायश्चित्त पचकअत्यनाभ्यासविययसमुच्चित्तविययवा (अर्थात् वौधायन के पहिले दो पात भेद छोडिके शेष पाँच भेदोंके पातमें जो पाँचप्रकारके प्रायश्चित्त कहेगये तिनकी अत्यन्त अभ्यासकिये पापोंपर समझना कि जिसने बारम्बार वही एकपाप किया हो अथवा एकहीवार मिलेभुले कईपाप सकताथ होगयेहों तिनपर भी इन प्रायश्चित्तों की योग्यता होगी ॥ फिर कहते हैं कि मनुके अश्लोक्त वचनवाला प्रायश्चित्त भी अभ्यासही की वियय पर समझना=यदाहमनु=हमसांस्थूलसूक्ष्माणांचि कीर्थचपनोदनस अवेत्युच्चपेददयत्किचिदमितीतिच=अर्थात्—महापातक आदि स्थूल पापोंका तथा उपपातक आदि सूक्ष्म पापोंका अपनोदन करना चाहते हुये यह प्रायश्चित्तकरै कि (अवर्जितकृद्) अर्थात् अवतिहेलो वरुण इत्यादि ऋचाको एक सालभर या (यत्किचिद) अर्थात् यत्किचिद वरुणा देवोजल इत्यादि ऋचाकी एक सालभर और(इतिइतिचक्रच) अर्थात् इतिभेदनस इत्यादि ऋचावाले सूक्तको

सकवार नित्यंप्रतिज्ञपाकरै=अत्र मिताक्षराकाराः (अनुमनुनाश्रुत्वंयावत्प्रत्यहमर्यात राविसहैयकालेयु अवतेहेलेत्यादीनां ऋचांजपउक्तः सोप्यभ्यासविययः) अर्थात् मनुने जो एक वर्षभर अवते आदि तीन ऋचाओंका जप इस ढंग से करना बताया है कि हररोज अपने अन्यजस्त्री कामोंके हर्जवाले समयोंसे उपरालू फुर्सतके समयपर एक बार जपाकरै० सोभी यह बारवार के अभ्यासवाले पापोंका प्रयोजन देखिपरता है क्योंकि सालभरका प्रायश्चित्त बहुत बड़ाहै ॥ ० ॥ इन सब रहस्य प्रायश्चित्तों में यह एक शंका खड़ी रहीहै कि ऊपरकी व्यवस्था में सभीतरह के पाप दशादिगये जो जो प्रकार प्रायश्चित्तों में आचुके थे उनमें बहुधा पाप ऐसे हैं जो हरिंज घुप-तोंअर नहींकिये जासक्त हैं इसका दृष्टान्त जैसे ४८ अइतालिस् के परिच्छेदमें परि-वेदनके नामसे एक विवाहछपी पाप कहागया जिसमें विवाह ठहिरानेवाला कराने वाला औरनाइंपुरोहित आदि अनेक मनुष्योंकीसहायतासे कार्य सिद्धहोताहै वे सभी उसको जानते हैं तौ फिर क्योंकर शुपतोंअर पाप ठहिरै जिसका रहस्य प्रायश्चित्त कियाजाय जैसा यह एक दृष्टान्त कहा तैसे और भी अनेक पापहैं जो किसी तरहसे छिपिनहीं सक्त =इसके समाधान भी अनेक हैं=प्रथम तौ यहीउत्तर देनाचाहिये कि जोवात नहींछिपसक्तीहै उसमेंरहस्य प्रायश्चित्तका संबंध क्यों जोइतेहीउसमेंप्रकाश ही प्रायश्चित्त किया जायगा जो उसके लिये पहले से नियत होचुका० दूसरा यह उत्तर है कि बिरले स्थलमें बहीकर्म छिपाहुआ भी होजाता है (तहाँ रहस्यही प्राय-श्चित्त की जस्तरत होगी (क्योंकि भाट पुरोहित आदिका जानना गिनती में इस लिये नहीं आताहै कि वे खुद भी कुछपाप भागी होते हैं अर्थात् सहायकों को भी प्रायश्चित्तकी योग्यता पहिले लिखचुके हैं इसीलिये यह नियम है कि जिस पाप के जितने सहायआविकर्ताके साथीहों तिनसे उपरालूलोगजानपावें औरनिन्दासहित चर्चाकरै तभी प्रकाशकी पदवीतक पहुँचताहै अन्यथा सहायोंके जानने मात्रसेनहीं० कदाचित्त यह कहिने में आवै कि भाट पुरोहित आदिसे उपरालू कुछ बराती भी अवश्य होगी तौ भी यही उत्तर है कि वे बराती भी उसके सहायों में गिनती होसक्त हैं तिससे उनका भी जानना प्रकाशकी पदवी तक नहीं जासक्ताहै क्योंकि यदि उनको उसका अन्यायपाप स्वीकारठहिरा तभी उसकेसाथी या बराती बने अर्थात्प्रायश्चित्त भी तब होताहै कि यातौ पापी आपही धर्मके डरसे मन में रत्नानि पैदा करै या पंच बिरावरी आदि कोई निन्दा करनेपर उताखहोयै० तहाँ जो साथी बरातीबने वे आपही प्रायश्चित्त के संसर्ग भागी होनेके देहसे मुखिया की निन्दा नहीं करसके हैं और

उससे उपराल उसके विरादर आदि यद्यपि इस कर्मका होना मुनिकर जानैभी परन्तु धर्मके बोध बिना या और किसी हेतुसे निन्दा करने पर उताह न होयँ तौ यह पाप उसका अनेकों के जानने पर भी प्रकाश होनेकी गिनती में नहीं आया गुणतौअर में ठहिरा तिससे ऐसी दशामें यदि मुख्य पापी आपही पापके भयसे मनमें ग्लानि को उत्पन्न करै तिसकी शुद्धि रहस्य प्रायश्चित्त से होसकी हे इसीलिये प्रकाश और अप्रकाश दो भौतिके प्रायश्चित्त निर्मित हुये हैं तिससे कोई भी स्थल शंका करने योग्य नहीं हे ॥ ३०६ ॥ यद्यपि योगीश्वर ने भी सबही उपपातकों पर एकसौ प्राणायामकरने कहे तथापि आपही उसका थोडासा अपवाद नीचे दशाविंगे अर्थात् अगिले मूल श्लोक से उसी की अधिकोक्ति में भी जितने उपपातकों पर जुदा प्रायश्चित्त दशाविंगे तिनपर वही प्रायश्चित्त करना चाहिये किन्तु ऊर्ध्वार्क प्राणायाम नहीं ॥ ३०६ ॥

(क्वचित्प्राणायामशतस्यापवादः)

ओंकाराभिप्लुतःसोमसद्विलंपावनंपिबेत् । रुत्वातुरेतोविरामूतप्राशनंतुद्विजोत्तमः ३०७

अर्थः—रेतस् वीर्यघातु विद्या मूत्र द्विजोत्तम द्विजाती इनको मुह में चोखके यह प्रायश्चित्त करै कि सोमालता (एक वेल) का मलिल स्वरस निचोडि उसको ओंकार से अभिमन्त्रित करै वही पावन है अर्थात् शरीर का पवित्र करने वाला रस होता है तिसको पीलेवै ॥ ३०७ ॥

३०७ अधिकोक्तिः— विज्ञानेश्वर कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त केवल उसके लिये समझना जिसने वीर्य विद्या आदि इच्छा बिना चोखा से चखिलिया हो— किन्तु चाहिकर चखने वालेको मुमन्तु का बताया करना चाहिये—यदाह मुमन्तुः— रेतोविरामूत्र प्राशनंक्त्वा लशुनपलांडुगृञ्जन कुम्भकादीना मन्येयांचामभद्यादीनां भक्षणांक्त्वाहंसप्रासकुकुट शृगालादिनांसभक्षणाक्त्वा ततः करटमात्रमुदक मवतीर्य शुद्धिवतीभिः प्राणायामक्त्वा ब्रह्मव्याहृतिभि रुरोगमुदकपीत्वा तदेतस्मात्पुतोभवति—अर्थात्—वीर्य विद्या मूत्र चाखि के या लहसुन प्याज गाजर कुम्भीसाग आदि अन्य अभक्ष्यों का भक्षण करिके या इस घरेलू मुर्गा कुत्ता सिन्धार आदि के मांस खाइके तिस पाप के हेतु से यह प्रायश्चित्त है कि गले के समान गरिरे जलमें गोता लगाइ उसी जल मे खड़े होकर शुद्धवती नाम की ऋचाओं से प्राणायाम करिके फिर ब्रह्मव्याहृतियों से पढ़ि कर जल इतना पीवै जो हृदयतक पहुँचै अधि-

क नहीं तिस कर्म के करने से इस पाप से छुटि कर पवित्र हो जाता है ॥ ० ॥ मनु ने भी अभक्ष्य भक्षणा और असत्प्रतिग्रह के लिये एकजुदा प्रायश्चित्त देकर ऊर्ध्वोक्त प्राणायामोंका छुटकारा (अपवाद) दर्शाया है—अथवा—प्रतिगृह्याप्रतिप्राह्य भुक्तान् चान्नविगार्हितम् जपंस्तरत्समंदीयं पूयतेमानवस्त्र्यहातं—अर्थात्—जोकोई वस्तु मनातिक्रम दान के द्वारा ग्रहणा करने योग्य नहीं सो अप्रतिप्राह्य कहाती है जैसेविय शस्त्र मंदिरा हाड आदि या चण्डाल महापातकी आदि पतितों का कोईसा वनहा सोभी जिनका स्वरूप २६० दोसौ नक्षत्रकी अधिकोक्ति में कहिचुके उनमेंसे कोईवस्तु लेकर पाप भागी जो हुआ हो अथवा सात भौतिके अभक्ष्य जो ६६ उनहत्तरि से तिहत्तरितक पांच परिच्छेदोंमें वर्णनहूयेथे उनमेंसे कोई निन्दित अन्नआदि जिसने खाइ लिया हो वह दोयो पुरुष तीन दिन इन्हीं चार मन्त्रोंका जप करते हुये शुद्ध होता है अर्थात् (तरत समन्दी धावती) इत्यादि चिह्न वाली चारों ऋचाओं को यथाशक्ति के अनुसार या पाप की लघुता गुरुता के अनुसार थोड़ी या बहुत संख्या अपने तात्कालिक विचार से कल्पित करै कि इतना जप करना चाहिये—ध्यानकरौ—अथोक्त पापों पर यह दूसरा प्रायश्चित्त आखंड होजाने से पूर्वोक्तप्राणायामों का निरादर होयाया इसी को धर्म शास्त्र में अपवाद नाम कहिते हैं इसी को भूया में छुट या छुटकारा समझिलेना कि इतने पापों में प्राणायाम की जरूरत नहीं परन्तु यह विवेक इतना उपरालूहै कि विवेकी पुरुष यदि अपने पाप दोषकी कुछ गहिरा समझै कि सिर्फ सोमलताका रस पीने मात्रसे संतुष्टि मेरी न होगी तिसको दोनो विधि करनी चाहिये अर्थात् इससे पहिली अधिकोक्ति में लिखे वीधायनवाले ४६ उनचास प्राणायाम या २५४ एकसौ चव्वलिस प्राणायाम अथवा योगीश्वरकी बताये सौ १०० प्राणायाम या इनमें से इच्छाके अनुरूप कमीदेकर साधना किये पीछे सोमलता का रस पीवै अथवा जहाँ सोमलता न मिलसके तहाँ भी अवश्य प्राणायामही करनेहोगे तिससे यह तात्पर्य नहीहै कि निपट प्राणायामोंका करना किसी नियम में गिनती हो वल्कि उनकी साधना में कठिनता जानिके दूसरी सुगम रीति यहाँ कहीगई ॥ ० ॥ वीर्य ब्रिष्टा मूत्र आदि शरीरके सैल जलमें छोड़ना सक पापहै यह औरोंके देखते कम होता वल्कि एपत्तौअर अधिक होताहै तिससे इसके मध्ये एक जुदा प्रायश्चित्त मनुने कहाहै (अप्रशस्तंतुक्तत्वाप्सुमासनासीतभैक्ष्यभुक्) जलोंके भीतर विष्टा वीर्य करनाआदि बुराकर्म करिके एकसहीना भीखनाँसि भोजन कियाकरै तब उन पूर्वोक्त प्राणायामोंको करिके शुद्धहोय अन्यथा प्रायश्चित्त

न करने से छिपे पाप की वृद्धि होती रहेगी कि जैसे ऋरा के ऊपर व्याजकी वृद्धि होती रहती है ॥ ३०७ ॥

(अतितुच्छपापस्यप्रायश्चित्तं)

निशायांवादिवावापियदज्ञानकृतंभवेत् । त्रैकाल्यसंख्याकरणान्तसर्वविप्रणश्यति ३०८

अर्थः—रातिमें या दिनमें जो अज्ञानसे कियाहोय=अर्थात्—अति छोटी किस्मके प्रकीर्णक पाप जो किये गयेहों राति या दिनमें पुरुषकी भूलसे और छोटी या बड़ी किस्म के उपपातक-जो केवल मनके विचारही में उत्पन्न हुये हों या केवल मुहसे कहिडारने मात्रसे उत्पन्न हुयेहों सो सब तीनोंकाल की संख्या उपासन करने से विनाश होजातेहैं पर इनसे बड़े पाप संख्यासे नहीं मितते हैं ॥ ३०८ ॥

३०८ अधिकोक्तिः—इस वार्तामें यमका वचन प्रसारा है=यथा=यदह्नाकृस्तेपा पंक्तर्मर्यासनसागिरा आसीनःपश्चिमांसंध्यांप्राणायामैर्निर्हतितद=अर्थात्—कर्म या मनसे या वाणीसे जो कुछ पाप दिनमें पुरुष करता है सो सब सौंभ की संख्यापर बैठि प्राणायामोंसे विनाश करदेता है=संवंशातातपस्तु=अनृतंसद्यगन्धंचदिवाभैद्युन मेवचपनातिवृत्तान्चसंध्येवहिउपासिता=अर्थात्—असत्य बोलना या सविराआदि दुर्गंधें, सुघना या दिन में स्त्रीसे भैद्युन करना आदि छोटे छोटे पाप यहाँतक कि शूद्र का दियाहुआ अन्नभी खायाहो सबको संध्या ही उपासन करीहुई पवित्र करदेती है पर बटिया पापों में नहीं (संध्या बहिर्होपासिता)कहीं ऐसा भी पाठ देखागया है तिससे यह अर्थ सिद्धहोताहै कि बहिर्देश वस्तीसे बाहर किसी मैदानके पुरायस्थान पर कूप तड़ागआदिका सहारालेकर संख्याकरीजाय जहाँ सूर्यका पूरा बिम्ब आसन के समुख और समस्त किरणों की प्रभाक्षपी सूर्य की वृत्तियों, अपने सब अंग पर आसके और मनुष्योंका संघात जहाँ न होय ऐसे निर्दंड ठिकानेपर चित्त लगाकर अच्छी आराधनासे करीहुई संख्या अपने पूरे फलको देसक्ती है ॥३०८ ॥

अगिले परिच्छेद में वेदों की ऋचा आदि समस्त मन्त्रोंका संग्रहकरिके एकत्र दर्शावेंगे कि जिनमंत्रों का प्रयोजन सर्वत्र प्रायश्चित्तों में जहाँ तहाँ आनि परताहै ॥ और विरले प्रायश्चित्तभी कहेगे ॥

अथ सकलमहापातकादिपापहरसाधारणपवित्र
मन्त्रजपहोमानां नामचिह्नस्वरूपप्रकाशकोऽर्थं

परिच्छेदः एकाशीतितमः (५१)



इस परिच्छेद में उन सभी मन्त्रों के नाम चिह्न दर्शाये जायेंगे कि जिनका जप करना प्रायश्चित्तों में कहिचुके • वल्कि बहुधा मंत्र ऐसे इसमें मिलेंगे जिनका चर्चा कहीं नहीं आया तोभी उनके जपने से सर्व पापों का नाश होसकता है • इसी में वेदाभ्यासी प्रसूय का प्रायश्चित्त और पूरे ज्ञानी ध्यानी का प्रायश्चित्त सावारा सभी पापोंपर एकही रूप से दर्शावेंगे ॥

(सर्वपापहरा मंत्राः)

गुक्रियारण्यकजपोगायत्र्याश्राविशेषतः । सर्वपापहराहोतेरुद्रेकादाशनीतथा ३०९

अर्थः—शुक्रिय • आरण्यक • गायत्री • इनका जुदा जुदाही जप तथा • रुद्रेकादशिनो • ये सब जुदे जुदे सर्व पापों के हरने वाले होते हैं—अर्थात्—शुक्रिय इस नाम से भी वेदहोका एक अणु है जिसका पता मिताक्षराकारने यह दिया है (विद्यानिदेवसचित्तः—इत्यादि वाजसनेयकेपठ्यते) इस पदको आदि लेकर यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा में जिसका पाठ है, तथा आरण्यक भी वेदही का अंग है जिसका पता यह दिया है (आरण्यकच—ऋचंवाचं प्रपद्ये मनोयज्ञः प्रपद्ये इत्यादि तत्र च पठ्यते) कि आरण्यक भी ऋचं वाचं प्रपद्ये आदि कहताहै उसका भी पूरापाठ उसी वाजसनेयी शाखा में पढा जाता है—इन दोनोंका जप ऐसा उग्र है कि महापातक आदि सकल पापों का विनाश होता है तथा इनसे जुदा गायत्री का जप अत्यंत उग्र है तथा रुद्रेकादशिनोका अर्थात् ११एकादश रुद्रों के रुद्रानु वाक्छपी मन्त्र जो वेदही में प्रसिद्ध हैं उन सबका यही एक नाम है तिनका जप सबसे अधिक उग्र है कि जिससे महापातक आदि सभी पाप हरे जातेहैं और (मूल श्लोक में त्र्याश्रच इस चकार के ध्वन्यर्थ से अघमर्यया आदि और भी अनेक मंत्र सर्व पापों के हरने वाले होते हैं तिनको भी समझ लेना उनके मध्ये वशिष्ठ का वचन अविर्कोक्ति में देखना ॥ ३०६ ॥

३०६ अधिकोक्तिः—शुक्रिय आदि मन्त्रोंका जप कितनाकरै इस अपेक्षामें सर्वत्र यह समझिलेना कि जैसा बड़ा या छोटा पापहोय तैसा ब्रह्म या थोड़ा जप अपनी बूढ़ से विचार किया जासक्ता है जैसा गायत्री के मध्ये मिताक्षराकार ने व्यवस्था नियत करी है कि=गायत्र्याश्च महापातकेयुलक्ष मितिपातकानुपातकयोर्दशसहस्र उपपातकेयुसहस्रं प्रकीर्णकेयुशत मित्येवंविशेषतो जपः सर्वपापहरः=तथाच शखेनोक्तं=शतं जप्त्वा तुसावित्री तुच्छपापविनाशिनी सहस्रं जप्त्वा तुतथापातकेभ्यः प्रमाचिनी दशसाहस्रजाप्येन सर्वकिल्बिषनाशिनी लक्षं जप्त्वा तुसादेवी महापातकनाशिनी—सुवर्गा स्तेयक्रदिप्रोब्रह्महाशुरुतल्पगः सुरापश्चविशुद्धान्ति लक्षं जप्त्वा तसशयः=अर्थात्—मिताक्षराकार कहितेहैं कि गायत्री का जप महापातकों में एकलक्ष सख्याकरना कहा है इस हेतु से पातक तथा अनुपातकों पर दस हजार चाहिये और उपपातकों पर एक हजार और प्रकीर्णक पापों पर एकसौ संख्या रखनी चाहिये इस तरह जूदी जूदी विशेषता से सभी पाप हरेजाते हैं=यही क्रम शंखजी ने कहा है कि=सावित्री एक सौ सख्या मात्र जपी हुई तुच्छ पापों अर्थात् प्रकीर्णकों का विनाश करती है तथा एक हजार जपी हुई पातकों अर्थात् उपपातकों से छुटाइ देती है दश-हजार जाप करने से सर्वकिल्बिष अर्थात् पूरे पातक और अनुपातक नाशकरती है पुनि एक लक्ष जपी हुई वह गायत्री देवी महापातकोंका विनाश करती है—किन्तु—सुवर्गा का चुराने वाला ब्राह्मण और ब्रह्महत्या करने वाला और शरु भार्या संगम करने वाला और सुरापान करनेवालाभीये चारों महापातकीहोते हैं ये सब एकसक लाख जप करिके शुद्धहोजाते हैं सन्देह न करना ॥ ० ॥ यत्तु चतुर्विंशतिमतेनोक्तं=गायत्र्यास्तु जपेत्कीर्णं ब्रह्महत्यां न्यपोहति लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते पुनाति हेमहतरि गायत्र्या लक्षसप्ततिः गायत्र्या लक्षयद्यत्तु मुच्यते शुरुतल्पगः इति (तद्गुरुत्वात्प्रकाशविषय मितिमिताक्षरा=अर्थात्—चतुर्विंशति मत्त वाज्ञों ने जो कहा है कि—गायत्री का किरोड़ जप करै तिससे ब्रह्महत्या मिति जाती है और जो अससी लाख मंत्र जपै वह सुरापान के पातक से छुटि जाय और गायत्री का सत्तरि लाख जप किया हुआ सुवर्गा चुराने वाले को पवित्र कर देता है और गायत्री के साठि लाख जप से शुरुतल्पगामी शुद्ध होता है• यह कहा (मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यह प्रायश्चित्त अति बड़े होने के हेतु से प्रकाश पापों के विशेषतः पर सम-भना किन्तु यहाँ रहस्य पापोंपर नहीं ॥ ० ॥ रुद्रैकादशिनी के मध्ये यह वचन है=एकादशपर्यान्वापि सद्गनावर्त्यधर्मवित् महद्भयसतुपापेभ्यो मुच्यते नात्रशयः=

अथात्र—ग्यारह रुद्रमंत्रों को ग्यारह गुणा लौटि लौटि जपिके वह पुरुष महापापों से भी छुटि जाता है इसमें मन्वेह नहीं (जबकि इसमें महापातकों पर ग्यारह गुणी आर्तति कही गई तो फिर इनसे छोटे अति पातक आदि पर कम कल्पना करनी चाहिये अथात्र चौथाई चौथाई यथा क्रमसे कसकरते चले आना यह तात्पर्य है ॥ ० ॥ च शब्द को ध्वन्यर्थ से अधमर्यागा आदि अन्य मन्त्रोंका संग्रह समझिलेना जो कर्हिचुकके तिनके मध्ये वशिष्टका अग्रोक्त वचन है—यथा—सर्ववेदपवित्राग्निवद्व्याम्य इमतःपरस्य येषां जपैश्च होमैश्च पूर्यतेनात्र संशयः अधमर्यागादेवकृतेशुद्धवत्यस्तरत्समाः कूपमांड्यः पावमान्यश्च दुर्गासावित्र्यथैव च । अभियंगाः पदस्तोमाः सामानिव्याहृतीस्तथा भासुंडानि च सामानि गायत्रैर्वतंतथा पुरुषव्रतंच भासुंच तथा देवव्रतानि च अल्लिंगावाहंरुपत्यांवावाक्मक्तं मनुमत्तया शतरुधाथर्वशिखिमुपर्णमहाव्रतस्य गोसुक्तं चाप्रवसूक्तचन्द्रशुध्वेवसान्वी ॥ वीरायाज्यदोहानिरयंतरंच अग्नेत्रं तं वामदेव्यं च इक्ष्वातानिपूतानिपुनीतजंतुं जातिस्मरत्वंलाभतेयदिच्छेत्—अथात्र—यहां से वशिष्ट जी उन मंत्रोंके नाममात्र दर्शाते हैं जो वेद में सर्वथा पवित्र गिनेजातेहैं जिनका जप करिके या होम करिके पापी लोग पवित्र होतेहैं तिनके नाम—अधमर्यागा• देवकृत• शुद्धवन्ती• तरत्समादि• कूपमांडियों• पावमानियों• दुर्गा• सावित्र्यः• अथ• अभियंगाः• पदस्तोमाः• सामानि• व्याहृतियों• भासुंडानि• चसामानि• गायत्रं• रैवतं• पुरुषव्रतं• भासु• देवव्रतानिच• अवल्लिंगाः• वाहंरुपत्यं• अंवा• वाक्सुक्तं• मनुमत्तं• शतरुद्री• आथर्वशिखरु• त्रिसुपर्णा• महाव्रतं• गोसुक्तं• अद्भुक्तं• इन्द्रशुद्धिं• भामनी ॥ वीरायाज्य दोहानि• रयन्तरं• अग्नेत्रं तं• वामदेव्यं• चहृदं—ये इतनी सबकहायें ऐसीहै कि जपने से जीवोंको पवित्र करती हैं और जो जातिस्मरत्वंको इच्छा करिके निरन्तर सेवन करें तो वह भी पावें ॥ ३०६ ॥

(गायत्र्यातिलहोमः सर्वपापेष्वेव)

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मनामन्यते द्विजः । तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्यावाचनं द्विजेः ३१०

अर्थः—हिजाती पुरुष अपनेको जहां जहां संकीर्ण माने अथात्र ब्रह्मदत्त्या आदि कोहै महा पाप लगीजाने में उसके दोष से अपने को जदित समझें तहां तहां सर्वत्र गायत्री से तिलों का होम करे और ब्राह्मणों से तिलों से वाचन करावें ॥ ३१० ॥

३१० अधिकोक्तिः= महापातकों पर गायत्री से पूरा एक लक्ष होम करना चाहिये क्योंकि (गायत्र्यालक्षहोमेन मुच्यते सर्वपातके रितियस्मरणां) यमका यह,

वचनहे कि गायत्री से एक लक्ष होम करने मे सबतरङ्ग के पातकोंसे मुचि जाताहे—
 इससे नीचे अतिपातक आदिपर यथा क्रमसे एक एक चौथाई कमी देकर होमकर-
 ना चाहिये=तथा तिलोर्वाचनं कार्यं=तदाह रहस्यधिकारेवशिष्यः=वैशाख्यांपीर्या
 सास्यांच ब्राह्मणानपचमन्नच सौद्रयुक्तैस्त्रिलैःकृष्णो वाचयेदथवेतरोः (इतरैःशुक्लै
 रित्यर्थः) प्रीयतान्धर्मराजेतियद्वासनसिवर्तते यावज्जीवकृतं पापं तत्स पादेवनश्यात्=
 अर्थात्—योगीश्वर ने गायत्री से तिलों का होम या तिलोंसे वाचन कराना दो बात
 कहीं तिनमें वाचन का विधान वशिष्य ने रहस्य प्रायश्चित्तों के रहस्यधिकार में
 कहा है कि=वैशाखी पूर्णमासी के रोज पाँच या सात ब्राह्मणों से सहत लगे काले
 तिलों से अथवा मुपेद ही तिलों से वाचन करावै किस मन्त्र से सो कहिते हैं कि
 (प्रीयतां धर्मराज) इस मन्त्र से अथवा जो कुछ कामना मन में होय तिसकामन्त्र
 बनावै जैसा (अमुक पापं धिनश्यतु) इत्यादि मन्त्रों से वाचन कराने में जहाँ तक
 जिन्दगी भरमें पाप किया हो सो सब उसी समय नाश हो जाता है (यद्यपि यो-
 गीश्वर की विवसा अनुसार सहत लगे तिलों से होम करावै यही अर्थ ठीक प्रतीत
 होता है) परन्तु विज्ञानेश्वर की अगिली विवसा से वशिष्यके इसवचन में भी वाचन
 शब्द का अर्थ तिलदान करना समझा गया है तथा (ब्राह्मणान् पञ्चमन्नच) इस
 द्वितीया विभक्ति से भी यह तात्पर्य प्रकटहोता है कि सहत लगे तिल पाँच सात ब्रा-
 ह्मणों को दान देकर प्रीयतां धर्मराज यह वाचन करावै= इसीलिये विज्ञानेश्वर ने
 इसी वचन के अनन्तर ऐसा कहा है कि=अनियत कालं अपिदानते नैवोक्तं=अर्थात्-
 त्—जिस वशिष्य ने पूर्णमासी के नियत काल पर यह दान बताया उसीने अनियत
 कालों में भी चाहें तब दान करना कहा है=यथा=कृष्णाजिनेतिलावहृत्वा हिरण्यं
 मधुसर्पिणी । ददातियस्तुविप्राय सर्वतरति दुष्टकृतम्=अर्थात्—काले मृगशाला पर
 काले तिल धरिके और सोनाधरिके सहत घृतधरिके जो ब्राह्मणको देताहै वहसभी
 अपने बुरे पापों की मेटता है (दोनों वचन पर दृष्टि देकर यह विचारना चाहिये
 कि पहिले वचन में (सौद्रयुक्तैस्त्रिलैः) सहत लगे तिल कहिने से होम ही करना
 समझा जाताहै तथापि विज्ञानेश्वर की विवसा से यदि उसको दान करना समझि
 लियाजाय तो फिर युक्त शब्दसे भी सहत कालगाना तिलमें नहीं किन्तु साथ होना
 धर देना माना जायगा कि जैसा इस दूसरे वचन में कृष्णाजिन के ऊपर तिल सहत
 आदि अनेक चीजें धरनी कही गईं— तिससे जहाँ जैसा सम्भव हो तहाँ उसी प्रयो-
 जन वाले किसी एक अर्थ का स्वीकार करना योग्य होगा ॥ ० ॥ व्यासेनाप्युक्तं=

तिलधेनुचयोदद्यात्संयतात्माद्विजन्मने ब्रह्महत्यादिभिःपापैर्मच्यते नात्रसंशयः=अ-
 र्थात्=व्यासने भी कहा है कि जो कोई आप अपने इंद्रियादिक शरीर को तप के
 द्वारा शुद्ध करिके तिल धेनु रूपी दान ब्राह्मण को देता है सो ब्रह्महत्या आदि महा-
 पापों से छुट्टिजाता है (तिल धेनु वही कहाती है कि मृगछाला के ऊपर तिलधरिके
 सोना चाँदी सहित या शक्ति के अनुरूप सोने चाँदी के पात्र में या ताँबे के पात्र में
 या ढाक आदि पवित्र पत्तों परही यथाशक्ति काले तिल सोने चाँदी सहित धरिके
 उसी को धेनुरूप मानि के पाप मोचन के अर्थ से संकल्प करै) विज्ञानेश्वर कहिते
 हैं कि जैसे दोचार दान यदापर दर्शाये तैसे इनको आदि लेकर और भी अनेक दान
 हैं जो रहस्य काराड में और जहाँ तहाँ ग्रंथों में जाने जाते हैं सो सब उन्हीं हिजाती
 लोगों के लिये समझना जो पढ़े पण्डित न होने से जप होम करने में समर्थ न हों
 तथा स्त्री मात्र और शुद्ध जाती पुरुषोंके निमित्तमें समझना जो सदाही वेद मन्त्रोंके
 अधिकारी नहीं हैं=विज्ञानेश्वर फिर कहिते हैं कि=यत्तु यमेनोक्तं=तिलान्ददाति
 यथात्=स्तिलान्दृष्टशक्तिस्त्वादाति तिलस्नायीतिलान्जुह्वन्सर्वतरतिदुष्कृतम्-तथा=द्वे
 चायभ्योतुमासस्यचतुर्दश्यांतथैवच अमावास्यापूर्वामासी सप्तमीद्वादशीद्वयत्वंत्वर
 मभंजानः सततविजितेन्द्रियः मुच्यतेपातकैःसर्वैःस्वर्गांतोकंचगच्छति=यथाविशोक्तं =
 सीरान्धोशेयपर्यंके आयाह्यासंविशेद्वरिः निद्रान्त्यजितकार्तिक्यांतयोःसंपूजयेद्वरिम्
 ब्रह्महत्यादिकंपापं सिद्धमेवव्यपोहति-इत्यादि तत्सर्वं विद्या विरहिरायांकामाकाम
 सहदभ्यासविययतयाव्यवस्थापनीयमितिमिताक्षरा=अर्थात्=यसने जोकहाहै कि-
 जो कोई अपने पाप की बग़ाई अनुसार किसी नियत करी अवधि तक रोज निरंतर
 प्रातःकाल तिलों का स्पर्श (हाथों से छुड़लेंना) किया करता और तिलों की पानी
 में पीसिके ज्ञान और तिलों का होम साधारण मात्र विना मन्त्रके भी और तिलोंका
 दानकरिके तिलोंको खाइके व्रत करताहै और तबतक इंद्रियोंकी जीति अपने वश
 में राखताहै सो सब तरहके पातकों से मुक्ति जाता और स्वर्गलोकमेंभी जाताहै=और
 जो अग्नि यहकहाहै कि=सीरलागर में शेयनागरूपी शयनपर आयाही पूर्वामासी
 के रोज विप्राभागवास निद्रालेनेको प्रवेशकरते हैं फिर कार्तिकी पूर्वामासामंजाकर
 निद्रात्यागतेहैं इन दोनों पूर्वामासीके रोज हरिको यथा विधान से जो कोई अच्छी
 तरहपूजे सो ब्रह्महत्या आदि पाप को तत्काल विनाश करदेताहै=इत्यादि औरभी जो
 कुछ दान पूजन कहें लिखा देखी सो सब ऐसे लोगों के लिये जो विद्या से विहीन
 हों उनके पाप की मूरति एक बार या अनेक बार और कामना से चाहिके पाप

करने या विना इच्छा पाप होजाने के जुदे जुदे भेदों पर व्यवस्था कल्पितकरलेनी चाहिये अर्थात् जैसा छोटा बड़ा पाप देखो तैसा छोटा बड़ा दान पूजन आदि प्रायश्चित्त सोचो ॥ ३१० ॥ विद्यावान् पुस्त्य जोनित्य नैमित्तिक धर्म क्रियासे भी संपन्न होय उसपर यदि कोई पाप दगा धोखे से बनिजाय अर्थात् पाप से डरते बचते हुये भी देवगतिसे होजाय तिससे उसके चित्त की छिपी हुई अतिशय ग्लानि खड़ी होय तिसका जुदा नियम आगे कहिते हैं ॥ ३१० ॥

(सर्वधर्मनिष्ठस्याज्ञानकृत पापस्यविशेषः)

वेदाभ्यासरतंक्षांतंपंचवह्निक्रियापरम् । नस्पृशंतीहपापानिमहापातकजान्पि ३११

अर्थः—वेद के अभ्यास में निरत क्षमायुक्त पचयज्ञों की क्रिया में तत्पर को इहाँ कोई पाप नहीं स्पर्श करते हैं महापातक से उत्पन्न हुये भी—अर्थात्—इहाँ समार में जो कोई पुस्त्य वेदाभ्यास को रखते हुये क्षमा से भी सयुक्त होय जो पीड़ा देनेवालों की पडा सहिंकार प्रतिकार कुछ न करता होय और पचयज्ञों की क्रिया में शास्त्रोक्त विधि से सदा लगा रहिता हो तिसपर यदि कोई पाप कभी देवयोग से बनि जाय तो वह उसको नहीं लगता है चाहे महापातक ही क्यों नहो ॥ इसका विशेष तात्पर्य अगिले ३१२ के प्रलोक में देखना ॥ ३११ ॥

३११ अधिकोक्ति= वेदाभ्यासस्यलक्षणा (वेदस्त्रीकरांपूर्वं विचारोऽभ्यसनं तपः तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो द्विपचधा) अर्थात्— वेदाभ्यासी उसका नाम है जिसने प्रथम वेद आदि शास्त्र को पढा फिर मनन के प्रकार से विचार किया फिर उसके पाठ आदिका अभ्यास कई बार किया फिर उसमें लिखे तपको क्रिया फिर शिष्यों को उस वेद का पढाने द्वारा दान किया हो तो यह पांच भौतिक वेदाभ्यास कहा जाता है तिसके होने पर भी पुरुष में क्षमा होनी यह शर्त है—क्षमा का लक्षणा पूरा यही है कि जिसमें दुखदाई को प्रतिकार करने की समर्थ विद्यमान हो तो भी क्षमा करिके प्रतिकार कुछ न करने का स्वभाव जिसका होय और पचयज्ञ जो नित्य किये जाते हैं यह सबसे बड़ा धर्म गृहस्थों का प्रसिद्ध है तिससे पचमहायज्ञ उनका नाम है पाँचोंके जुदे नाम एक ब्रह्मयज्ञ जो ध्यान पाठआदि रूपोंसे होता है १ देवाग्नि यज्ञ जो देवपूजन ऋधितर्पणा अग्नि होय आदि रूपों से कहाता है २ पितृयज्ञ जो नित्य ग्राह पितृतर्पणा आदिरूपों से विख्यातहै ३ ऋषयज्ञ जो अतिथि अभ्यागतके पूजण भोजनसे लेकर इर्शानन स्वायित भृत्यवर्ग कुटुंबअनाय

दीन दुखी आदिकी सदनसे संबन्ध करने और स्वल्प भिक्षा देने पर्यंत अनेक रूपों से होता है ४ भयत्रय जी वलिवैद्यदेव ह्यपीकर्म से लेकर पशु पक्षी कृत्ता कागादि चींटी पर्यंत जीवोंकीभी यथाशक्ति दूगादिना आदि रूपों से होता है ५ ॥ ० ॥ मिताक्षराकार कहते हैं कि यद्यपि ऐसे पुरुषको महापातक भी होजाने पर नहीं लगते कहे परन्तु केवल उसीपापका यह चर्चाहि जो दगा धोखेसे होगया हो इसीलिये अगिले वशिष्ठके वचनोंकोदेखो=यथा=वशिष्ठो न=यदाऽकार्यगतंसाग्रंक्रतवेदश्चवार्थते। सर्वं तत्तस्यवेदाग्निर्वद्दत्त्वाग्निरिवेन्वनम (इति प्रकीर्णाकाद्यभिप्रायेणाभिधायामिहितं) नवेदवल्माश्रित्यपापकर्मरतिर्भवेत् अज्ञानाच्चप्रमादाच्च दह्यतेकर्मनेतरत्वं=अर्थात्-वशिष्ठजी ने=जब किसीने सौ सेभी अधिक न करने योग्य कामकियेहों पर वह वेद की धारणाभी रखताहो तो उसका वह पाप सर्वथा वेद रूपी अग्नि जैसे ईंधन को जलाइदेतीहै अर्थात् पाप उसे लगने नहींपाता (यह प्रकीर्णाक आदितुच्छ पापों के अभिप्राय से दशांडिके पार अगिले वचन में कहा है कि) वेद पढे होने केवल को पाइकर इस नियम के सहारे से जानि वृत्ति पाप कर्मों में रति न करनी चाहिये क्योंकि वेद की अग्निसे केवल वही पाप जलि सक्ते हैं जो अज्ञानता से होजायं या भूलमें होजायं किन्तु इनसे इतर जानिवृत्ति किये पापोंको नहींजलाइसक्ताहै ॥ ० ॥ योगीचर के मूल श्लोक में यह तात्पर्य नहींहै कि उसको पाप नहींलगताहै तिससे निपट प्रायश्चित्त ही न करना होगा किन्तु यह तात्पर्य है कि योडा प्रायश्चित्त करिके शुद्धिहोसकेगी सी अगिले मूलश्लोक में देखो ॥ ३११ ॥

(उधर्वोक्तपुरुषस्य प्रायश्चित्तं)

वायुभक्षोदिवानिघ्नरात्रिनीत्वाप्तुस्यष्टक । जप्त्वासहस्रंगायत्र्याःशुद्धेर्ब्रह्मवधादृते ३१२

अर्थः—दिनमें वायु भक्षी रहिके रात्रिको जलमें बिताकर सूर्य देखनेपर गायत्री का सहस्र जपकरिके शुद्धहीय ब्रह्मवध से रहित=अर्थात्-वेदाभ्यासी पुरुष जिसका चर्चा ऊपरले मूलश्लोक में आयाथा उसी का यह छोटा प्रायश्चित्त है कि यद्यपि महापातक भी नहीं लगते कहेगये तो भी महापातकों में यह इतना अपवाद है कि एक ब्रह्महत्या के बिना कोई और महापातक भी जिसपर वैद्ययोग से बनिगया हो तिसको यह प्रायश्चित्त करना चाहिये कि—एक दिनभर वायुभक्षी अर्थात् कुछ न खाकर उपवासकिये बेटा रहिकर संख्यासमयसे जलमें जावेंगे वहाँ वैदेहुये रात्रिको बिताकर सूर्यका उदय होअनेपर उनके दर्शन किये पीछे एकसहस्र गायत्रीका जप

करै उसी जल में बैठे रहिकर (या जिसको बैठे रहिने की शक्ति श्रेय न रही हो सो जलसे बाहर निकसि किनारे बैठि सूर्य क अन्मुख जपे) तो यह सब तरहके महा-पातकमे भी छुटिजाता है पर एक ब्रह्महत्या से नहीं= जब कि इतना करने से महा-पातक एकवार का मिटिजाया तो फिर उपपातक आदि छोटा पाप अनेकवारकिया मिटिजायगा और छोटेछोटे अनेक पाप जो एकहीवार इकट्ठे एकसाधहुयेहैं वेभी इतना करने से मिटि जायेंगे यह समझि लेना ॥ ३१२ ॥

३१२ अधिकोक्तिः=मिताक्षराकारस्तु= सावित्र्याःसहस्रंजपित्वा ब्रह्मवचय-तिरिक्त मकलमहापातकादिपापजातान्मुच्यते अतश्च उपपातकादिष्वभ्यासेऽनेक सोयसगुच्ये वा वेदितव्यंविद्यम विद्ययसमीकरसास्यान्याद्यत्वात्= अर्थइसकावही है जो अभी ऊपरलिखिचुके उसपर मिताक्षराकार कहितेहैं कि छोटे बड़े सभी पापों पर एक ही प्रायश्चित्त समझिलेने से सब छोटे बड़े बराबर दहरजाते सो अन्याय ठहिरता तिससे वही व्यवस्था ठीक है जो लिखीगई=इस प्रायश्चित्त से ब्रह्महत्या नहीं मुचती है इसका यह तात्पर्य है कि ब्रह्महत्या अज्ञानता से होजाने पर भी ऐसे वेद के अभ्यासीकोभी वही प्रायश्चित्त करनाचाहिये जो ३०२ तीनों दो के मूल श्लोक से सबके लिये कहिचुके=और=रातिभर जलमें जो बैठना कहा या दूसरोदिन गायत्री का जाप जलमें बैठिके तिसके मध्ये शीत देश या शीतकाल आदिकी व्यवस्था एक जुदीहै सो सब ७५ पचहत्तर के परिच्छेदमें २६४ दो सो चौरानवे मूल श्लोक से वर्णन हेचुकी तहां देखौ ॥

(अथवाप्रायश्चित्तोपप्रायश्चित्तं)

मिताक्षराकार ने यहां पर वशिष्ठ जी का कहा एक जुदा व्रत और भी प्रकाश किया है=यथा=यवानां प्रहृतिमजलि वायथ्यमासां घृतचाभिसन्धयेत् (यवाऽमि धान्यराजस्त्वंवारुसोमधुसंयुतः निर्रोदिःसर्वपापानां पवित्रमृदिभिःसृत्तः) इत्यनेन- घृतंयवामधुयवाःपवित्रममृतयवाः सर्वपुंस्तुमेपापंवाङ्मनः कायसभवं-इत्यनेनवा) अग्नि कार्थेनकुर्वीतितेनभूतत्रालंतया नाग्रंभिस्त्रांतिभ्यंनचोच्छ्रयंपरित्यजेत् (ये- देवामनोजाता मनोयज्ञसदसादसपितरः तेनःपांतुतेअवन्तुतेभ्योनजः तेभ्यः स्वाहा इत्यनेनात्मनिजुहुयात्) विरात्रंमेधाभिरुद्धयेपापक्षयायविराय सत्ररात्रब्रह्महत्यादियु द्वादशरात्रंपतितोत्पन्नश्च ॥ इत्येतद्दिगवलंबनेनान्यपिसृत्तवचनानि विवेचनीयानां ति मिताक्षरा= अर्थात्=एक पसर भर अथवा एक अंजुरी भर जी लेकर तपते हुये

घृत में छोड़के (यवोसिवान्य आदि) अग्निलेदोमन्त्रों से अभिमन्त्रित करै अर्थात् घी में जौ भुनते रहें तब तक इन मन्त्रों को बारम्बार पढ़ता जाय पवित्र लकड़ी की ससिध से चलाता जाय और घी के नीचे अग्नि भी हवनीय कायकी जलावै जैसा दाख आदि हवनीय प्रसिद्ध है और रायका घृतभी केवल इतने अनुमान से चढावै जो भुनते हुये जवों में खिपि जाय बचै नहीं) देव योग से कुछ बचि भी जाय तो भी उस घृत से या जवों से न होस आदि अग्नि का संबंधी कोई काम करै न भूतबाल कर्म करै न अग्र न भिक्षा न आतिथ्य करै न आप ठसमें से जूठनि छोड़ै (अर्थात् भिक्षा देनी एक ग्रास मात्र कहाती है तथा चारि ग्रास भर देना अग्रदान कहाताहै सो कुछ न करै और आतिथ्य यह कहाताहै कि नवीन किसी अभ्यागतको आया देखि वैदारि के पेट भरि भोजन कराया जाता है सो भी उस घी जवों से न करै) तो फिर क्याकरना चाहिये सो कहिते हैं कि (ये देवासनो जाता आदि स्वाहा पर्यंत मन्त्र पढ़ि पढ़ि के अपनेही आत्मा में होस करै) कबतक करै सो कहिते हैं कि बुद्धि बढ़ाने की कामना से पवित्र बुद्धि के लिये तीन राति और प्रकीर्णक आदि छोटे उपपातकों का विनाश चाहि कर तीन रात्र और इनसे बड़े उपपातकों का क्षय करने के लिये सात रात्र पर्यन्त करै और ब्रह्महत्या आदि महा पातक याच्यति पातक या अनुपातक लगे हों तिनका क्षय करने के निमित्त पर बारह रात्र पर्यन्त करै और जो कोई पतित के वीर्यसे उत्पन्न देवयोग से होगया कदाचित् बही वीर्य्य दोग्य को मिटा कर अपने शरीर का शुद्ध करना चाहे तो बारह दिन वह भी करै= अपने ही आत्मा में होस करै परन्तु जूठनि भी न छोड़ै = यह तत्त्व पहले कहि चुके हैं तहां यद्यपि विश्वजी ने कुछ विशेष व्यौरा नहीं खोला तथापि होस करने का डौल केवल यही देखिपरताहै कि एकएक जो एक एकमंत्रपढ़ि कर हलकमें छोड़ै तहां जितने जोएकदिनकेलिये भूनेगाये उनमेंसे एकभी जो न छोड़ै जो जूठनिमें गिनती होसके—इसके सिवाय (घृतयवा मधुयवा) इस मन्त्रके ध्वन्यर्थसे यहभीसिद्ध होता है कि जोको भुनने के बाद सहतमें लपटै तभी दूसरे मन्त्रको पढै तिसके बाद तीसरे मन्त्रको पढ़ि पढ़ि मुंहमें छोड़ै और एक पसर या अंजुरीभर जौका विकल्प केवल आदमीके डीलडौल या पेटके अनुसूप समुभ्रता कुछ पापोंकी छोटाई बढाईपर नहीं क्योकि जितने दिनों का प्रायश्चित्त होय उतने दिनों तक इसी आहार से रहिकर व्रत करनेहोंगे ॥०॥ विज्ञानेश्वर मिताक्षराकार ने ३१२ तीनसोबारह के मूलश्लोक वाली टीकामे इस प्रायश्चित्त की स्थापना करी तिससे यह भी प्रतीत होता है कि

मूलश्लोकवाले प्रायश्चित्तसे जिस पुंस्यकी ब्रह्महत्या नहीं मिसती कहीगई तिसके लिये ३०२ तीनसौ दो के मूलश्लोकवाला प्रायश्चित्त बताया गया उसी पुंस्यके निमित्त में अत्रोक्त बारह दिन का प्रायश्चित्त भी सूचित हुआ कि दोनोंमें जिस किसी के द्वारा अपनी शुद्धि होसकनी ठीकठीक समझै तिस एक ही को विकल्प से साथे किन्तु दोनों को नहीं ॥ ० ॥ विज्ञानेश्वर पीछे से कहिते हैं कि इसी मार्गके अवलम्बसे और भी स्मृतियोंके वचन विवेचन करने चाहिये जो नवीन देखने में आवें ॥

इतिसकलरहस्यपापहरमंत्रहोमादीनांपरिच्छेदः ३१२

(इतिसर्वरहस्य प्रायश्चित्तानां प्रकरणं)

इस प्रकरणा में समस्त ४ चारि परिच्छेद हैं अर्थात् ७८ अठत्तरि परिच्छेद को प्रारम्भ से लेकर यहां ८१ इक्यासी परिच्छेद के अन्त तक एकही प्रयोजनके चार भेद जुदे किये गये हैं उन सब का प्रकरणा एक है ॥

विनियुक्तव्रतव्रातस्वरूपभेदेबुभुत्सिते कीदृक्षमितिसंक्षेपाल्लक्षणावस्थितेषुना (तत्र तावत्सकल प्रकाशरहस्यव्रतांगभूतधर्मानाह) अर्थात्—मिताक्षराकार कहिते हैं कि जिन व्रतोंका समूह जिन पापोंपर जुदा जुदा विनियुक्त किया गया तिनके रूपभेदों की चाहना होनेके समय यदि ऐसा सन्देह खड़ा होय कि अशुभ नाम का व्रत कैसे होता है इसी लिये उन व्रतों के संक्षेप लक्षणा अब आगे कहे जाते हैं सो अगिले परिच्छेदों में यथा क्रमसे देखो (तहां पहिले रहस्य और प्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में सर्वत्र उन व्रतों के अंग भूत धर्मों का स्वरूप दर्शाइ कर सान्त्तपन आदि व्रतों के स्वरूप कहे जायेंगे ॥

अथ कृच्छ्रादिव्रतानामध्ये-सांतपनकृच्छ्रस्यानेकभेद

विधायकोऽयं परिच्छेदः दुशोतितमः (८२)



इस परिच्छेद में-कृच्छ्र आदि व्रतों का एक भेद जो-सांतपन या सान्तपन कृच्छ्र इस नामसे कहा जाता है-तिसके स्वरूप भेद जाने जायेंगे कि ऐसे ऐसे विधानों से जुदे नाम भेद भी होजातेहैं-तहाँ पहिले (३१३-३१४) इन्हीं दो प्रतीकोंसे समस्त आद्योपांत प्रायश्चित्तोंके साधारण धर्म दशावैगें जो प्रकाश तथा अप्रकाश दोनों तरहके प्रायश्चित्तों में कायआवें ॥

(सकलप्रायश्चित्तवृतांगधर्माः)

ब्रह्मचर्यदयाक्षांतिर्दानस्त्यमकल्पता । अहिंसाऽस्तेयमाधुर्यैदमश्रैतियमाःस्मृताः ३१३
 ज्ञानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्यनिग्रहाः । नियमागुरुशुभ्रपाशौचाक्रोधोऽप्रमादता ३१४
 अर्थः-ब्रह्मचर्य•दया•क्षांति•दान•स्त्य•अकल्पता•अहिंसा•अस्तेय•माधुर्य•
 दम•येथं नामसे संयमरूपी धर्मकहे-और स्नान•मौन•उपवास•इन्द्रया•स्वाध्याय•
 •उपस्यनिग्रह•शुक्कीशुयूया•शौच•अक्रोध•अप्रमाद•ये आवश्यक नियमरूपी
 धर्मकहे=अर्थात्-समस्त प्रायश्चित्त कांड में यहाँतक जितने कृच्छ्र प्रायश्चित्तों के
 स्वरूप भेद चाहें प्रकाश पापों केहों या रहस्य पापोंके नियत क्रियेगये और विशेष
 लक्षणा उनकोआगे कहेजायेंगे तिन सबही व्रतोंके साथ-इतने अज्ञेय धर्मोंका होना
 परम आवश्यककहे क्योंकि इनके होने बिना किसी भी क्रियेहुये व्रतकी संसिद्धि नहीं
 होतीहै-इनके बहुधा अर्थ तो सूक्ष्म स्पष्ट हैं तथापि-ब्रह्मचर्य सेशरीरकी सब इंद्रियों
 का संयम समुक्तना और उपस्य लिंगेन्द्री सबके साथ में आगई तोभी उसका निग्रह
 जोतनाजुदाकहागया सो यह शौचलीवर्द न्यायसे निर्देश कियाहै कि जैसे गोशब्दके
 उच्चारणमें गाय बँल सब समुभगेगये तोभी बँलके निमित्त में विशेष नियम कहिनके
 अर्थसे उसका जुदा नाम बलीवर्दही लियाजाता है•अकल्पता कृदिलताका छोड़िदेना
 कहाताहै-दम कहिनसे हाथ धैर्यादि वाहरली इन्द्रियोंको चंचलता रोकना सदुक्ता
 जाताहै-माधुर्य कोमलवाणी बोलना-अस्तेय चोरी न करना-अप्रमाद उचित कर्मको
 उसकी समय पर न भूलना-चाकी सब धुगम हैं ॥ ३१३॥३१४ ॥

३१३ अघिकोक्तिः—मितासराकारः(यत्पुनर्मनुनेकं—अहिंसासत्यमक्रोधमाजंघं
 त्रसमाचरेत्इति)तदप्येतेयामुपलसरांनपरिगणानाय(अत्रचदयासांत्यादीनांपरुषयार्थत
 याप्राप्तानामपिपुनर्विधानंप्रायश्चित्तान्त्वार्थं) क्वचिद्विशेषोप्यस्तियथा विवाहादि
 प्वभ्यनुज्ञातस्याप्यनृत वचनस्यनिरृत्यर्थसत्यत्वविधानम् पुत्रशिष्यादिकर्मापिताडनी
 यमपिनताडनीयमित्येवमर्थमहिंसाविधानमित्येवमादि=अर्थात्—मनुनेजोक्रुहाहेक्ति-
 अहिंसा० सत्य० अक्रोध० आर्जव सरलता० आचरै) मो यह योगीश्वर केही गिनाये
 धर्मों का उपलसराहे कुछ इसलिये नहीं कि इनकी जुदा गणना करीजाय या ऊ-
 परलों के साथ मिला कर गिने जायँ (और योगीश्वर के दर्शाये गणामें दया सांति
 आदि कितनोंपर यह तर्कहे कि प्रायश्चित्ती पुस्त्य को पुस्त्यार्थत्व सेही समझे जाते
 थे कि ये लसरा जो सभी मज्जनोंमें हेतेहैं उसमें होनेचाहिये तथापि यहां जुदे ला-
 कर लिखनेसे यहतात्पर्यहे किअवश्यही प्रायश्चित्तोंका अंगभूतसमभेजायँ) और
 उर्हींमें विरलोंका जुदाभी कुछ तात्पर्यहे कि जैसे विवाह आदि विरले स्यतों पर
 असत्य बोलनेकी अनुज्ञा यद्यपि शास्त्रोक्तहे तहांभी प्रायश्चित्तीको असत्यनवोज्ञना
 चाहिये इसलिये सत्य बोलने का नियम यहां दर्शाया गया तथापुत्र शिष्य आदि
 को ताडनाःयद्यपि शास्त्रोक्त हे तिनको भी प्रायश्चित्ती पुस्त्य न सारै इसीतात्पर्य
 के अर्थसे अहिंसा का नियम यहां जुदा भी दर्शाया गया० इत्यादि कुछ और भी
 विरलोंके जुदे तात्पर्य हैं तिससे इन दोनों श्लोकमें सब धर्मोंका इकट्ठा लिखना
 उचित ठहिरा ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

(सांतपनाख्यव्रतं)

गोमूत्रगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुडोदकम् । जग्ध्यापरैद्युरुपवसेत्कृत्वासांतपनंपरम् ३१५ ॥

अर्थः—गोमूत्र० गोबर गायका० दूध० दही० घृत येभी गायके० कृश भिजोकर उनका
 जल लेलेना० ये सब मिलेहुये खाकर दूसरेदिन कोरा उपवासकरै तो यह दोदिनका
 व्रत सांतपन वाचछ नाम से परसउग्र है (पहिले दिनभी कुछ न खाकर गोमूत्र आदि
 मिली चीजोंका आहार करनाकहा तिससे दोनोंदिन व्रतही में गिनती हैं ॥ ३१५ ॥

३१५ अघिकोक्तिः—कितना गोमूत्र आदि लिया जाय यह परिमान आगे क-
 हेंगे=जवकि इन्हीं गोमूत्र आदि सब चीजों को इस रीतिसे कि पहिलेद्विस कोरा
 उपवास करै दूसरे दिन सन्ध पढिकर इनकी मिलावै और मन्वही पढिकर पीवै
 तबयही ब्रह्मकूर्च नामका व्रत होता है जैसा आगे परागर का कथन देखो=यवाह

पराशरः—गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिर्ऋग्योदकम् निर्दिष्टं पंचगव्यंतु प्रत्येकं कायशोधनम् गोमूत्रं त्राश्रवणार्थाः श्वेतायाश्चापि गोमयस्य पयःकांचनवर्णाया नीलायाश्च तथा र्द्विघृतं वृत्तं वक्रथा वरणायाः सर्वकपिलमेव च कालाभिसर्ववर्णानां पंचगव्येष्वर्थविविधः गोमूत्रे मायकात्वस्यै गोमयस्य तु योद्दृश क्षीरस्य द्वादशप्रोक्ता दध्नस्तु दशजीर्तिताः गोमूत्रवत् घृतस्याद्योतित्वं तु कृषोदकात् पंचगव्यमृचापत्तं होमयेदग्निर्मानवी सप्तपत्राश्च ये र्दभाश्चिच्छन्नाश्राः शुचित्विधः सत्तैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथा विधि इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंभो वती सताभिश्चैव होतव्यं हुतशोयं पिबेत् द्विजः प्रसावेन समाहोदधप्रसावेनाभिमंथ्य च प्रसावेन सहुद्धृत्य पिबेत् प्रसावेन तु सध्यनेन पलाशस्य पत्रपत्रेणा वा पिबेत् स्वर्गापत्रेणातोश्रात्रह्यतीर्थेत्वापुनः यत्स्वर्गास्थिगतं पापं देहेति युक्तिमानवे ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु ददत्त्वरिगिरिवेचनच= अर्थात्—गाय का मूत्र गोवर दूध दही घृत कृशोदक मित्राकर पचगव्य कहा गया है जिसकी प्रत्येक वस्तु जुदीजुदी कायाको शोधने वाली होती है ॥ इन में गोमूत्र लाल गायका गोवर मुपेद का दूध मुनहरे वरणावालीका दही नीली गायका घृत काली गाय का और सब चीजें कपिल वर्णा वाली कपिला को भी होयें जो ऐसी न मिल सकें तो सब रंगों वालीकी ये सब चीजें लेनी चाहिये यह ती पंचगव्यों की विधि समझ करने मध्ये कही ॥ परिमान इस रीति से कि गोमूत्र आठ मासे भर गोवर बीस मासे दूध बारह मासे दही दशमासे घृत भी गोमूत्र की बराबर आठ मासे कृशोदक सत्रकी तेलसे आधाकेना यह ऐसा पच गव्य बनाके ऋचा पंडिके पवित्र किया हुआ अग्नि के समीप होयें (किन्तु अग्नि के बीचमें नहीं) किस प्रकार से कि सात पत्रोंवाले ऊग्र लेकर जिनकी नीक रीति न हो जड़का बकला लुहाके शुद्ध किये होयें तिनसे उठाकर पचगव्य अयोक्तजैसी विधिहो तैसे अग्नि के समीप होयें किन्तु (इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके श्वती) इतनी ऋचाओं के पूरे पूरे पाठ से एक एक बार होमना चाहिये इस होम से जो बचे सो द्विजाती प्रायश्चित्ती पुत्तय पीवै ॥ इस रीति से कि प्रसाव उंकारसे धोलि के उंकार सेही अभिमंथित करिके उंकार हीसे उठाकर उंकारही पंडिकर पीवै ॥ काहे से उठाकर पीवै सो कहते हैं कि दाख के तीन पत्तों में चिचले पत्रसे उठाकर पीवै या पत्र के पत्तसे या सोनेके पत्रसे या ताश्रके पात्र आचमनी आदि से अथवा कुछ न हो तो इयेली पर ब्रह्मतीर्थ के द्वारा पीवै ॥ तौ इस ब्रह्मकूर्च नामी उपवास के करने से वह सभी पाप जैसे अग्नि से ईधन की तरह भस्म होजाता है जो कुछ मनुष्य के देह में खाल झाड़ों तक पहुँच गयाहो ॥ ० ॥ इसी पचगव्य की जब तीन

दिन अभ्यास किया जाय तिसकी यति सांतपन सज्ञा होती है—तदाह शंखः (सतदेव
 त्र्यहाम्यस्तंयदि सांतपनं स्मृतम्) यही सन्न चीजोंसे मिला हुआ पंचगव्यतीनदिनपिया
 हुआ यति सांतपन कहा जाता है ॥ जावाल मुनिने एकसक चीज रोज पीके सातवें दिन
 कोराव्रतकरनेसे सप्ताह भरका सांतपन कहा है—यथा—गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोद
 कस्यैकेकं प्रत्यहं पीत्वा तत्र होरायमभोजनं कृच्छ्रं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्—अ
 र्थात्—पंचगव्य और छटाकुणोदक यथाक्रमसे हररोज एकसक चीज पीके सातवें दिन
 आठोपहरकोरा उपवासकरती यह सातदिनका कृच्छ्र सांतपन व्रतसभी पापोंका बिनाश
 करनेवाला होता है (प्रायः कृच्छ्र शब्दसे विशेष्यता बहुधा व्रतोंमें इसलिये जोड़िते हैं कि
 इसकी कतिनाई समुभोजाय कौंकि कृच्छ्र नाम है कसका ॥ योगीचरने पहिले दिन
 पंचगव्य दूसरे दिन कोराव्रत करना कड़िकर कृच्छ्र सांतपन उसका नाम धरा १ उसीको
 पराशर ने एकही दिन विधिके साथ पंचगव्य पीना कड़िकर ब्रह्मकुर्च उसका नाम
 धरा परंतु सिताक्षरा ने इसके साथ भी पहिले दिन कोरा व्रत करना समुभोजाय तिस-
 से इसमें भी दोही दिन दहिरे २ उसी पंचगव्य कीतीन दिनतक पीना कड़िकर शंखने
 यति सांतपन उसका नाम धरा ३ जावालने एकही एक चीज रोज पीना कड़िकर सात
 दिनका कृच्छ्र सांतपन व्रतनाम धरा ४ इन चारों कृच्छ्रव्रतोंका छोटापन बड़ापन प्राय-
 श्चित्तो पुरुषकी शक्ति और पापका गहिरापन आदि सौचिके व्यवस्थानियतकर-
 नी चाहिये जहाँपर कृच्छ्र व्रतकरना कहा गया हो—इसी प्रकार अग्निती अधिकोक्तों
 में एकही व्रतको अनेक भेद होनेके स्थलोंपर व्यवस्था नियत करनी चाहिये ॥ ३१५ ॥

(महासांतपन वृत्तलक्षण)

एष कसांतपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः । सप्ताहेन तृच्छ्रं यं महासांतपनं स्मृतः ३१६

अर्थः—एक उपवास सहित छ दिन जुदे गोमूत्र आदि चीजोंसे सांतपन जो किया
 जाय (अर्थात् गोदूध आदि एकही एक द्रव द्रव्य पीकर सातवें दिन कोराव्रतकरे)
 तो यह सात दिनका कृच्छ्रव्रत महा सांतपन कहा गया है (जैसा ऊपर ली अधिकोक्ति
 में जावाल ने कहा था ॥ ३१६ ॥

३१६ अधिकोक्तिः—महासांतपन कड़े भाँति के होते हैं उनमें एक पदह दिनका=
 तदाहयमः= इयह पिवेतु गोमूत्रं इयह वै गोमयं पिवेत इयहं विद्वं यक्षीरं इयहं सर्पिस्ततः
 शुचिः महासांतपनं ह्ये तत्सर्वपापप्रणाशनम्—अर्थात्—तीनदिन गोमूत्र पीवें तीन दिन
 गाबर पीवें तीन दिन दही तीन दिन दूध तीन दिन घी पीवें तिसमें शुद्ध हो जायगा

यह महा सान्तपन नाम का व्रत सर्व पापों का विनाश करने वाला है ॥ ० ॥ इक्षीस दिनका भी, महासान्तपन होता है—तदाह जाबालः—यथाग्रामेकैकमेतेयांचिरात्रमुपयो जयेत्, इयहं चोपवसेदंत्यमहासान्तपनविदुः—अर्थात्— इन गोमूत्र आदि छः चीजों में एकएक को तीन तीनदिन पीवें तिसके छैतिया अठारह और पीछेसे तीनदिन क्रोरा उपवास करें तो यह २१ दिन का महासान्तपन कहिते हैं ॥ ० ॥ गोमूत्र आदि सां- तपन की सब चीजों में एक एकको दो दो दिन पीनेसे बारह दिनका भी सान्तपन होता सो अति सांतपन कहाता है—तदप्याहयमः—एतान्येव तथापेयादेकैकान्तुद्वयद्वय द्वयद्वय अतिसांतपननाम प्रवपाकमपिशोधयेत् (प्रवपाकमपिशोधये दित्यर्थवादः—अर्थात्—इन्हीं कुशोदक पर्यंत छः चीजों की एक एक जूरीजूरी दोदो दिन पीवें तो यह अतिसान्तपन नाम कहावै चाराडाल को भी शुद्ध करें (सो यह अर्थवादरूपी एक प्रशंसा है कि चाराडाल से संसर्ग जिसका होजाय ऐसे द्विजाती को शुद्ध कर सकता है ॥ ३१६ ॥, यहां भी महासान्तपन के छोटे बड़े जितने भेद हुयेहोंतितनको वही व्यवस्था है जो ऊपर की अविकोक्ति में आचुकी ॥ ३१६ ॥

अथपर्याकृच्छ्रपादकृच्छ्रतप्तकृच्छ्राद्यानां कृच्छ्र

व्रतभेदानां विशेषतस्वरूपविधायकोऽयं

परिच्छेदः च्यशीतितमः (५३)

इस परिच्छेदमें अनेक कृच्छ्रोंके स्वरूप और नाम भेद जाने जायेंगे। तिनमें प्रथम पर्या कृच्छ्र आदि जो पत्ता या फलफूल आदि से होतेहैं, फिर पादकृच्छ्र आदि जो कर्शतरुके व्रत मिलिकर सकपाद माना जाता है उसीके प्रसंगमें दिवाभोजीव्रत नक्त भोजी व्रत अयाचित भोजी व्रतभी कहे जायेंगे, फिर कृच्छ्रार्च आवाकृच्छ्रभो, फिर पादोन्नयनकृच्छ्रभीदर्शावेंगे, फिरतप्तकृच्छ्र शीतकृच्छ्र आदिभीअनेकछपसेदर्शावेंगे ॥

(पर्याकृच्छ्रव्रतलक्षण)

पर्यादुंरराजोवचित्त्वपत्तकुशोदकैः । प्रत्येकंप्रत्यहंपीते-पर्याकृच्छ्रउदाहृतः ३१७

अर्थ—पर्या (टाक. गूलर. कमल. बेल. कुश. इन पांचों के पत्तों का जल निचोड़िके यथाक्रमसे एकएक दिन एकएक जलको हररोजपीवें तो यह पांच दिन का व्रत पर्याकृच्छ्र नाम कहा है ॥ ३१७ ॥

३१७ अधिकोक्तिः—पर्याकृच्छ्रके अनेकभेदहैं जहाँ इनपत्तोंको मिलाकर काय बनाया हुआ तीनरात्रि कोरात्रत करने के वादि पञ्चाजाय तहाँ पर्याकृच्छ्र नामहोता है—तदप्याहयमः—एतान्येवमस्ता निविरात्रोप्यथितःशुचिःकार्यश्चत्वापिबेदङ्घ्रिःपर्या कूर्चोऽभिधीयते—अर्थात्—येही सब चीजें जलसे काय करिके तीनरात्रि व्रत किये पीछे शरीरसे शुद्धहोकर पीवै तौ यह चारदिनका पर्याकृच्छ्र कहाता है ॥०॥ जहाँ बेल आदिके फलों मे प्रत्येक जुदे फलको या सबको मिलाकर काय बनाया हुआ पियाजाय तहाँ फल कृच्छ्र कहाता है इसी तरह फूल आदि पिये जायें तहाँ उन्हीं केनामसे कृच्छ्र कहातेहैं, यहसब आगे मार्कंडेय के वचनों में देखौ—यथाह मार्क- राडेयः—फलैर्मसिनकथितःफलकृच्छ्रोमनीयिभिः श्रीकृच्छ्रःश्रीफलैःप्रोक्तःपञ्चाक्षरपर स्तथा सासेनामलकेरेवंश्रीकृच्छ्रमपरस्मृतसु पवैर्मतःपत्रकृच्छ्रःपुष्पैस्तरकृच्छ्रउच्यतेमूल कृच्छ्रःस्मृतोमूलैस्तोयकृच्छ्रो जलनतु—अर्थात्—उक्त वृक्षोंके फलोंसे काय किया एक मास पीना बुद्धिमानों ने फल कृच्छ्रनाम व्रत कहाहै तथा केवल बेलके फलोसे श्री- कृच्छ्रनाम कहाहै तथा कमलाग्राओसे पत्रकृच्छ्र इत्यादि और इसी तरह एक मास आमलकों से भी दूसरा श्रीकृच्छ्र नाम होताहै जो पत्तों से कियाजाय सो पत्रकृच्छ्र नाम कहाता है पुष्पों से पुष्पकृच्छ्रनाम होता है मूलजड़ों से किया जाय सो मूल कृच्छ्र कहा जाता है जो केवल जल से किया जाय सो जलकृच्छ्र तोयकृच्छ्र कहा जाताहै ॥ ३१७ ॥

(तप्तकृच्छ्रव्रतखण्ड)

तप्तक्षीरघृतांबूनामेकेलंप्रत्यहंपिबेत् ॥ एकरात्रोपवासं चतत्तल्लघुशुद्धामृत ३१८ ॥

अर्थः—गरमदूध घृत जल इनमें एक एकको एक एकदिन तपाइके पीवै तिसपीछे एकदिन रातिका उपवासभी कोरा करै तौ यह चारदिन में तप्तकृच्छ्रव्रत होता कहा (इसको महातप्त कृच्छ्र भी कहते हैं ॥ ३१८ ॥

३१८ अधिकोक्तिः—तप्तकृच्छ्र भी अनेक भौतिसे होताहै यथा (एभिरेवमस्तैः सोपवासैर्द्विरावसंपाद्य सांतपनवत् तप्तकृच्छ्रःइतिमिताक्षरा) अर्थात्—इन्हीं गरम दूध आदि सब चीजोंको इकट्ठी एकदिन पीकर दूसरे दिन कोरात्रत करनेसे दोदिन में यह भी सांतपन की तरह तप्तकृच्छ्र कहलाता है यह मिताक्षराकारने कहा इसी लिये उन्हीं चारदिनके व्रतपर मूलके अर्थमें महातप्तकृच्छ्र नामकहा जो मूलश्लोक में नहीं है ॥ ० ॥ बारह दिन का भी तप्तकृच्छ्र होता है—तदाइमनुः—तप्तकृच्छ्रं चर न्विप्रो जलक्षीरघृतानिलाच प्रतिप्र्यहंपिबेदुष्मान्सकृत्साथीसमाहितः—अर्थात्—तप्त

हृच्छ्रुकोआचरतेहुये ब्राह्मणा जल दूध घृत पवन इनमें एकएकको तीनतीनदिनगरम गरम पीवै और चित्तको सावधान रखकर एकहीचार स्नान कियाकरै तो यह ब्राह्मिनका तप्तहृच्छ्रु होताहै ॥ ० ॥ पंचाग्य की चीजें जहां-जहां दूध आदि एकही दो पीवनी कही गईं तहां सर्ववक्तने परिमानतक पीवनीचाहिये सो सब अगिली व्यवस्था में देखीं—यथाहपराशरः—अपांपिबेतुत्रिपलंहिपलंतुपयःपिबेतपलमेकपिबे त्सांपिस्त्रिरात्रंचोषामारुतम (त्रिरात्रंचोषामारुतिमिति त्रिरात्रस्यपरां उषाोदकंवाल्पं पिबेदित्यर्थ इतिमिताक्षरा—अर्थात्—जलपोकेत्रतकरना लिखाहो तहां तीनपलपीवै और दूध लिखाहोतहां दोपलपीवै जहां घृत लिखाहो तहां एकपल पीवै और गरम दूध—तीनरात्रि (मिताक्षराकार कहते हैं कि तीनरात्रि गरम दूध कहिने का यह तात्पर्य है कि त्रिरात्र व्रतके परां होने पर थोड़ा सा गरम जलही विकल्प से पीवै) सो यह सेसे स्थल का चर्चा है जिस किसी व्रत में उषामारुत पीना कहा हो ॥०॥ जहां ठंडादूध आदि पियाजाय तहां शीतहृच्छ्रुनाम होताहै—यथा—अथश्रीतंपिबेतो यंअथश्रीतंपयःपिबेत् अथश्रीतंपृतंपीत्वावायुभक्षःपरंअथसः—अर्थात्—ठंडा जल तीन दिनपीवै फिर तीनदिन ठंडा दूध पीवै फिर तीनदिन ठंडा घृत पीके पीछेसे तीन दिन केवलवायुभक्षराकरै औरकृच्छ्रनहीं तौयह वारहदिनका शीतहृच्छ्रकहाताहै ॥ ३१६ ॥

(पादहृच्छ्रुलचर्चा)

एकभक्तेननक्तनतपेवायाचितेनच । उपवासेनचेवायंपादहृच्छ्रःप्रकीर्तितः ३१९

अर्थः—एकभक्तसे नक्तसे तथैव अर्थात्चित से भी उपवासकरनेसेभी यह पादहृच्छ्रु कहाहै—अर्थात्—ये चारों व्रत मिलिके चारदिनमें एक पाद हृच्छ्रु व्रत कहाता है—और एक भक्तकेनामसे दिवसमें थोड़ासा ख्वासूखा भोजन घी दूध आदिको छोड़िके समझना और नक्त के नाम से नक्तव्रत समझना जिसमें सिर्फ रातिही को स्वल्प भोजनकिया जाता है और अर्थात्चित व्रत इस ढंगसे होतहै कि न किसी से मांगें न किसीको समझा करै यदि स्वतः कोई चाहें कोईदिन बीतिजानेपर भोजनको बस्तु आगे लाधरै तभी थोड़ासा खाइके-बचा हुआ किसी जीवको देवे पस न रक्खे फिर इसी प्रकार जिस दिन कोई बिना मांगे लाकर आगे धरै उसी दिन थोड़ासा खाइ यदि कोई कुछ नलावै तो निपट करे व्रत करता रहे तितका नाम अर्थात्चित व्रत कहाताहै और चौथा रूप उपवास कहा सोभी कई प्रकारकी उपवास होतहै इन सब चारों के विशेष व्योरे अबिकीर्ति में देखी ॥ ३१६ ॥

३२६ अधिकोक्तिः—एकभक्तो न्यह मूल श्लोक में देखो तिसको लिये एकभक्त व्रत का लक्षण यहां देखो (दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् एकभक्तमित्येवोक्तं तत्रात्रोक्तकदाचन) अर्थात् दिन का आधा दोपहर बीति जाने पर जो नियम से थोड़ा भोजन किया जाय वही एक भक्त व्रत कहाता है परन्तु रात्रि में कदापि न करै न दूसरी बार दिनमें करै परञ्च नियत समयपर थोड़े से सूखे भोजनका निषेध त्याग भी न करै इसका नियम यही है ॥ (एतच्च कृच्छ्रादीनां ब्रतस्वरूपत्वात् पुरुषार्थ भोजनप्रसूदासेन कृच्छ्रांगमृतं भोजनविधीयते—तथा चापस्तंबः—अहमनक्ताश्चिद्विवा शीततस्त्वहमयाचितव्रतः इतिमिताक्षरा=अर्थात्—सूखा भोजन दर्शाने के निमित्त पर मिताक्षरा कार कहिते हैं कि यद्यपि भोजन करना एक बार कहा परन्तु घी दूध आदि पुष्टादिका भोजन करना यहां नियत है क्योंकि कृच्छ्र आदि व्रतोंका स्वरूप एक यह भी पाद कृच्छ्र है तिससे वही भोजन सूचित किया है जिससे शरीर दुर्बल बना रहे—तैसा आपस्तम्ब के इस वचन से भी तात्पर्य मिलता है कि—तीनदिन अनक्ताशी जो रात्रि में न खाय फिर तीन दिन अद्विवाशी जो दिनमें न खाय तिसपीछे तीन दिन अयाचित व्रत करै कि जो कृच्छ्र बिना मांगे सन्मुख आजाय तो थोड़ा सा खाय यदि नहीं आवै तो नहीं) यह वचन आपस्तम्ब का यहांपर केवल दृष्टान्तके लिये प्रासंगिक रीति से मिताक्षरा कारने लिखा है यह याव रचना • इसी प्रकार गौतम का वचन आगे प्रासंगिक दशति है—यथा (गौतमेनापीदमेवस्पृष्टोक्तं—इविष्यंप्रातराशी भुक्त्वा तिस्रो राधीर्नाश्यादिति • एवं नक्तभोजनविधावपि=अर्थात्—मिताक्षरा कार कहिते हैं कि गौतमने भी यही सूखा भोजन दर्शाया है यह कहिकर कि—प्रातराशी जो दिनमें भोजन करनेका व्रत रखता होय सो इविष्य नाम घी दूध आदि सकही बार देवयोगसे यदि खाइ तिसको खाकर तीन रात्रि तक निषेध कृच्छ्र न खाय यह इसका एक जुदा प्रायश्चित्त समभक्ता • इसी प्रकार रात्रि की भोजन विधि में भी समभि लेना तिससे सिर्फ सूखे भोजन की आज्ञा है चिकनाई आदि नहीं यह सब (एकभक्तो) इन्हीं पांच अक्षरोंकी व्यवस्था निबहु है ॥ • नक्तो न • यह मूलश्लोक में देखो नक्त व्रतका जुदा विधान है सो यहां देखो=यथा= इविष्य भोजनस्नानं सत्यमाहारत्वाध्वम आग्नेकार्यमवःशुश्रूषां नक्तभोजीयडाचरेव ॥ नक्तन्निशायार्जुर्वीत गृहस्थो विधिसयुतः यतिप्रचविधवाचैव कुर्यात्सद्विवाकरत् सद्विवाकरान्नाचे दत्तिमेधटिकादये निशानक्ततुविज्ञेय यामार्हप्रथमेसदा—तथा— विवस्यथाद्यमेभागे सन्दीभूतेद्विवाकरे नक्तं तच्च विजानीया न्ननक्तन्निशियभोजनम्

नक्षत्रदर्शनात्कं गृहस्थे तु विधीयते यत्तेर्दिनाद्ये भागे रात्रौ तस्य नियेधनात् = अथ च
 साहाय्यकारणायथा = देवैस्तु भुक्तं पूर्वाह्ने मध्याह्ने चर्यायि मस्तथा पराह्ने पितृभिर्भु
 क्तं संध्यायां शुद्ध्यादिभिः सर्ववेलासतिक्रम्य नक्तं भुक्तनभोजनम् = अर्थात् - नक्तभोजी
 जो केवल रातिसमें भोजन का नियम राखे सो इन छः बातों का आचरण करे कि
 ज्ञान १ सत्यबोलना २ इविष्य भोजन अर्थात् पश्चिम अन्न का भोजन जैसे जी वान
 मरा आदि देवान्न कहाते हैं किन्तु यहाँपर इविष्य कहिनेसे घीदूब खीरि पूरी भेवा
 आदि मत समझि लेना जो हवन में काम आते हैं ३ आहारलाघव छोड़े भोजन का
 स्वभाव ४ अरिण में भी उसी अन्न की आहुतें देना भोजन के समय पर पहिले और
 इसी लिये इस भोजन की अल्लनारखना चाहिये ५ चरतीपर श्रयनकरना ६॥ गृहस्थी
 पुरुष इन्हीं छः नियमों के साथ नक्त नाम के व्रत की रात्रि में साधे परन्तु यती
 संन्यासी और विधवा स्त्रियां भी उसी नक्तव्रतको सदिवाकर लक्षणाके साथसाथें यदि
 किसीको सदिवाकर नामसे करना होय तो वह दिनके अन्तमें दोघड़ी दिन शेररहे
 परकरे और जिन गृहस्थों लोगोंको निशानक्त करना चाहिये तिनकी दिनमें नहीं
 किन्तु सदाही रात्रि में पहिले पहरके अर्ध भीतर चारघड़ी राति राये तक जानेना -
 तैसाही दूसरा यह प्रसारा है कि - दिनके आठवें भागमें सूर्य मन्दहोनेपर जो भोजन
 कियाजाय उसको भी नक्तव्रत जानै किन्तु केवल उसीको न जानै जो रातिसमें भोजन
 करना कहा क्योंकि गृहस्थ धर्मके नक्तव्रत मध्ये तो नखेत उरिग आनेपर नक्षत्रोंको
 दर्शनकिये पीछे भोजन कहा है और यतीके नक्तव्रतपर दिनके आठवें भागमें भोजन
 करना सिद्ध किया गया क्योंकि यतीको उसके संन्यासधर्म से राति में भोजन का
 पूरा पूरा नियेवहै तिससे वह सदिवाकर नक्तव्रत साधे और यतीके समान विधवाकी
 भी समझना किन्तु उसको भी रातिसमें भोजनका नियेवहै = इस नक्त भोजनका महा-
 त्म जिनकारणां से अधिकहै सोभी समझो = दिनमानकी तीनतिहाई संध्याकालकी
 छोटिके समझना तहाँ पूर्वाह्ण की पहिलीतिहाई में देवता भोजन करते हैं उनके
 साधमें न खाना चाहिये दूसरी तिहाई मध्याह्न में ऋषीभोजन करते हैं उनका भी
 अन्न रखना चाहिये तीसरी पराह्णकी तिहाई में पितर भोजन करते हैं उनकेसाथ न
 खाना चौथे निपट संध्याकाल में शुद्धक आदि भोजन करते हैं उनके भी समयपर
 व्यतिक्रम न करना चाहिये तिससे सभी बेलाओंको उल्लांघके रातिसमें भोजन करना
 ठीकराया ॥ ० ॥ अयाचितेन - यह मूलपल्लोक में देखो बिना मांगे भोजनसे व्रतकरना
 कहा तिसकी व्यारेवार व्यवस्था यहाँ समझो कीत्रे साकाल उसके लिये नहीं

वताया कि अमुक समय भोजन करै तिससे दिनमें या रातिमें जिस किसी बेराविना सांगा भोजन आपही आजाय तभी केवल एकहीवार थोडासा प्राणधारणामात्रभोगै किन्तु बारम्बार नहीं और पेट भरके भी न खाय क्योंकि सभी कृच्छ्रव्रतों में तप करनेकी प्रधानता है तिससे दुबारा या पेटभर खाना सिद्ध नहीं होता—और—यह भी तात्पर्य नहीं है कि गौरही से न माँगै किन्तु अपने भी सेवक भार्या आदिसे माँगनेका नियेव है बल्कि इसीलिये अपने संबंधीसे इसकाभेद भी न कहिना चाहिये कि मैंने अयाचित व्रत धारण किया है क्योंकि ऐसा जानिके अपने संबंधी भार्या आदि थो-घ्रतासे अवश्यही लेकर बौड़ेंगे और बहुतसी बिनती भी करै तो कुछ अचम्भा नहीं है तिससे उसव्रतका स्वरूप भंगहीजाना सम्भव है और यहभी तात्पर्य नहीं है कि निपट अपनोंका दिया भोजन करनाही नहीं किन्तु यह तात्पर्य है कि दिनको बिताऊ समझि या व्रतका अभिप्राय स्वतः जानिपानेपर भार्या आदि आपही बिनामाँगे यदि भोजन पहुंचावै तो फिर थोडासा भोगना उचित है परन्तु यदि अपने या विराने भी नहीं कोईलावै तहों एकदोदिनका कोराव्रत करने में धैर्यराखै फिर अवश्यही कोड़े लावैगा संदेह इसमें नहीं है—बल्कि इसी अभिप्राय से गौतम ने यह कहा है कि (अथापर्ययहंनकंचनयाचेत) इसके अनन्तर तीनदिन किसी पर याचना न करै ॥०॥ ये सब तीनप्रकार के भोजन कोड़े दिनमें कोड़े रातिमें कोड़े बिनामाँगे चाहै तब आने पर खाने कहे यद्यपि यह कह चुके हैं कि थोडा भोजनकरै तथापि थोड़ेका परिमाण कुछ नहीं समुभागाया तिससे अगिली पराशरकी व्यवस्था देखी=यथाह पराशरः= सायंतुद्वादश्यासाः प्रातःपंचदशस्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याः परनिरशनस्मृतम्=अर्थात्—जिसको संध्यासे रात्रितक भोजन करनापरै सो बारहप्रास भोगै जिसको एकभक्त नामके व्रतमें प्रातःकाल से लेकर दिनमें किसी बेरा भोजनका नियम होय तिसको पन्द्रहप्रास भोगने चाहिये जिसको अयाचित भोजन चाहे किसीबेरा करनाहोय सो चौबीसकोर भोगै तो यह तीनों विधिका भोजन भी परम निराहार व्रत कहाता है= आपस्तंबने=इन्हीं प्रासोंका परिमाण और तरइसे कहा है • यथा=सायडाविंशतिप्रा साः प्रातःयद्विंशतिस्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याः परनिरशनाद्य-ऋकुटागडप्रमाणस्तु यथावा१२स्यविंशत्स्वम्=अर्थात्—सायकाल के भोजन वाला वात्रैमप्रास भोगै प्रातःकालिक भोजनवाला छद्बीसकोर भोगै अयाचित भोजनवाला चौबीस कवल भोगै तो ये तीनों व्रत परम निराहार में गिनती हैं और कवल या प्रास उसका नाम है कि मुर्गाके छडे बराबर अन्न अथवा जिस किसी के मुहमें जितना अन्न एकवार

अथ प्राजापत्य कृच्छ्रादीनां बहुभेदानां स्वरूपनामलक्षण

भेदविधायकोऽयं परिच्छेदः चतुरशीतितमः (८४)

—*—

इसपरिच्छेद में प्राजापत्य कृच्छ्र इस नाम की आदि लेकर अनेक भांतिके कृच्छ्रों का रूप नाम लक्षणा पहिँचानि जाने जायँगे— तिनमें सबसे प्रथम प्राजापत्यही के लक्षणा भेद (उनके बीच में शिशुकृच्छ्र भी) फिर अतिकृच्छ्रके लक्षणा भेद० फिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र के लक्षणा भेद० फिर पराक नामकृच्छ्र० फिर सौम्यकृच्छ्र० फिर तुलापुस्त्यनाम कृच्छ्र० सबइसी क्रमसे कहेजायँगे ॥

(प्राजापत्य कृच्छ्रस्य लक्षणां)

यथाकथंचित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते ३२० (पूर्वार्धे)

अर्थः—जैसे हो किसी अति प्रयत्नसे तिगुनां व्रत यही प्राजापत्य कहाजाता है— अर्थात्—यहीव्रत पादकृच्छ्र वाला जो पहिले कहिचुके (३१६ मूलप्रलोकसे देखीं) सो जैसेचाहो तैसे किसी प्रकारके प्रयत्नरूपी विधानसे तिगुनाकरीं वही प्राजापत्य कहावै (जैसे चाहो तैसे किसी प्रकारसेकरीं० इसकथनका यहतात्पर्य है कि तिगुना करे प्रकारों से होता है उनमें से कोईसा एक प्रकार जिसको तुम अपनी इच्छा से मनोज्ञ जानीं उसीके योग्य जतन जैसा होता हो तिसके द्वारा तिगुना करीं) सोइस गोल मोलवात का व्यौरा बहुत लम्बा है अधिकोक्ति में ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः= तीनसौ उन्नोस ३१६ मूल प्रलोक में जिस रीति से चार दिन का पाद कृच्छ्र व्रत समझाइ चुके उसी की तिगुना करि वारह दिनका पूरा प्राजापत्य कहा तिगुनां करने के भी कहे डंग है तिनका व्यौरा मिताक्षराकार यहाँ समझाते हैं कि (अथमेवपादकृच्छ्रः यथाकथंचित् दण्डकालितवदाहृत्यावस्थानविरुद्धावा तनाभ्यानुलोम्येन प्रतिलोम्येनवा तथावस्थानात्प्राजापत्योक्तं तद्वहितं वा विरभ्यस्तः प्राजापत्यविधीयते) अर्थात् यही पूर्वोक्त पादकृच्छ्र दण्ड कालित न्याय की तरह आहृतियां वडाकर अथवा अपने अपने स्थान ही की वृद्धि से तिनमें भी अनुलोम मूढे क्रम से या प्रतिलोम उलटे क्रम से वृद्धिकरै ये दो भेद औरहैं तयैव जी आगे कहा चाहते हैं सो जपादिक भी सायहों या उनके विनाभी तीनवार अभ्यास

कियाहु आ पूरा प्राजापत्य कहाता है) इतने भेदोंमें कोईसा एक भेद करनेवाले के विचार वाली इच्छा पर आच्छेद है सो इन भेदों के ठीकठीक लक्षणा भी यथा क्रम से आगे जुदे जुदे ग्रन्थों के प्रमाण से दशति हैं—तितनमें एक बृह कालित की तरह वाले पक्ष को वशिष्ठ ने प्रकाश किया है—यथा=अहंप्रातरह्नक्त महरकमयाचित स अहःपराकंतयैकमेवंचतुरहोपरौ अनुग्रहार्थविप्राणांमनुर्धर्मभृतांवरः वालवृद्धातुरे प्वेर्वाशिशुकुचक मुवाचह=अर्थात्—एक रोज दिन के भोजन वाला व्रत एक रोज राति में भोजन वाला एक रोज, बिना मांघे भोजन का चौथे रोज चिपट निराहार व्रत करिके फिर इसीप्रकार चार चार दिनों के दो फेर पिछले जानौ अर्थात् पौ-चर्वे दिन से वही एक एक रोज वाला क्रम साथै फिर नवमे रोज से उसी प्रकार साथै तो यह बारह दिन में शिशुकुचक नाम का प्राजापत्य पूरा होता है जो धर्मज्ञ मनुने ब्राह्मणों पर अनुग्रह के लिये और बालक बूढ़े आतुरों के निमित्त पर कहा था (यहाँ इतना भेद जुदा समुक्ते रहिना कि बालक बूढ़े रोगियों के लिये शिशुकुचक कहा सो केवल चार दिन में होगा उसी को तिथना करने से प्राजापत्य नाम सुवेकमे से स्वस्थान की टुटिवाला पक्ष भी मनुने आपड़ी प्रकाश किया है—यथा=त्र्यहंप्रातस्त्र्यहंसायं त्र्यहमद्यादयाचितस परत्र्यहंचनाश्रीयात्प्राजापत्यंचरेत् द्विजः=अर्थात्—निरन्तर तीन रोज तक दिन में भोजन फिर तीन दिन राति में भोजन वाला नक्त व्रत करिके तीन दिन अयाचित बिना मांघे भोजन का व्रत करे फिर सब से पीछे तीन दिन कीरा निराहार करे तो भी यह बारह दिन का प्राजापत्य होगा ॥ इसीको उलटे क्रमसे प्रातिलोन्याटुत्तिके नामसे वशिष्ठने प्रकाशकिया है—यथा=प्रातिलीन्यंचरेद्विप्रःकृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम=अर्थात्—ब्राह्मण इसीप्राजापत्यकृच्छ्रको उलटे क्रमसे आचरे चान्द्रायण करनेकेवाद अर्थात् पहिले चांद्रायण करे फिर इस प्राजापत्य को उलटे मार्गसे साथै किन्तु पिछले कीरे निराहार वाली तीनि व्रतोंको सबसे पहिले फिर अयाचित व्रतोंको फिर नक्तव्रतोंको फिर दिन के भोजनवालोंको यही उलटा कमटाहरा ॥ जपादिकोंकेबिना केवल कृच्छ्रही करना जो ऊपर चर्चा करचुकेहैं तिसका पक्ष अगिराने स्त्री और शूद्र आदि के निमित्त में प्रकाशकिया है—यथा=तस्माच्छूद्रसमासाद्यसदावर्नपथेस्थितस प्रायश्चित्तप्रदातन्यं जपहोमादिवर्जितस=अर्थात्—पूर्वोक्त कारणसेसदा निर्विकल्प यहीनियमहै कि प्रायश्चित्त करनेकी इच्छासे धर्मके पन्थ पर आच्छेद हुये शूद्रको पाइकर जप होम आदिमववालेविधानोंकोछोडिकेप्रायश्चित्तवतानाचाहिये—॥अत्रजपादिनियमाः-

मुखपूर्वकजासके (इनदोनो आपस्तंब तथा पराशरके कहे कल्पों में जो कुछ बोड़े बहुतका अन्तर है तिसको सनुष्य की देहशक्ति या पेटकी बड़ाई छोटाईपर भेद करिके जोड़िलेना तिससे विरोध बाकी न रहेगा ॥०॥ प्राजापत्य नामका व्रत भी ऋच्छू कहाताहै तिसमे यहाँऋच्छूपादके प्रसंगमें उसकाभी चर्चाकरना आवश्यक ठाहिरा • किन्तु आपस्तंबहीने प्राजापत्य प्रायश्चित्तकी चारतरहविभागकरिकेउन्हींकीचारि ४पाद ऋच्छू कहिकर चारोवर्षाके अनुरूपव्यवस्था करी है=तथाच आपस्तंबः=अहं निरग्रनपादःपादप्रचायाचित्तस्यहम सायंन्यहृतयापादःपादःप्रातस्तयात्रहम ॥ प्रातः पादंचरेच्छूःसायंवेश्यस्यापादयेत् अयाचितंतुराजन्पेचिरात्रनाह्नसोस्मृतम्=अर्थात्-प्राजापत्यऋच्छूका एकपाद वह समभना जो सिर्फ तीनदिन निराहार व्रत किया जाय • फिरएकपाद वह समभना जोतीनदिन अयाचित भोजनसे व्रत कियाजाय • फिर एकपादउसे समभना जोसायंकाल आदि नक्तभोजनतीनदिनकियाजाय फिरएकपाद वह समभना जो तीनदिन प्रातर्भोजन अर्थात् जिसको एक भक्त के नामसे कहिचुके तैसा व्रत तीनदिन किया जाय • ये सभी बारह दिनके व्रत निरन्तर एकसाथ किये जायें तहाँ पूरा प्राजापत्य या पूराऋच्छू कहाताहै ॥ इन चारों जुड़े पादोंको बर्षों पर इस तरह बाँट दियाहै कि शूद्र प्रातःपाद व्रतकी करै और सायंपाद व्रतकी वैश्य करै और अयाचित पाद ऋच्छू की क्षत्री करै और कोरे निराहार वाले तीन व्रतका ऋच्छूपाद ब्राह्मण को करना चाहिये ॥ जब इनमेंसे कोरे निराहार और अयाचित वाले दोनों पाद मिताकर छे दिनका व्रत एक साथ कि याजाय तब आधाऋच्छू होताहै जब संध्याके भोजन वाला पाद छोड़ि शेष तीनों पाद एकसाथ नौ दिनमें सोचन किये जायें तहाँ पौन ऋच्छू कहाता है क्योंकि (सायंप्रातर्विनाशस्यात्पादो नक्तवर्जितमितितेनैवोक्त) उन्हीं आपस्तंबने पीछे से कहिदिया है कि सांभ और सकारे वाले भोजनके दोपादोंको छोड़िके शेष दो पादों का अनुष्ठान किया जाय तिस को आवा ऋच्छू जानना • जहाँ नक्त भोजनवाले पादके बिना तीनों कियेजायें तहाँ पौन प्राजापत्य जानना=उन्हीं आपस्तंबने=आवे ऋच्छूका दूसराभी प्रकार दर्शायाहै=थया=सायंप्रातस्तयैकेक दिनद्वयमयाचितम् दितद्वयनचाप्रीयात् ऋच्छार्धः सोऽभिवायते=अर्थात्-एक दिन रात्रि भोजनका व्रत करै दूसरे रोज दिन के भोजन वाला व्रत करै तीसरे और चौथे रोज अयाचित व्रत करै फिर पांचवें छठे दो दिन कोरा व्रतकरै तो इसप्रकारसेभी आवा ऋच्छू होजाहै ॥ ० ॥ यह शंका खड़ी होती है कि आपस्तंब के वचन में तीन तीन दिनों का एक एक पाद कहा सो ती ठीक

प्रतीत हाताहै क्योंकि उसी हिसाबसे छे दिनका अर्द्ध कृच्छ्र कहा उसी लेखसे नौ दिनका पौन कृच्छ्र कहा उसी लेखसे बारह दिनका पूराभी होता है० परन्तु योगी-
 चरने तीनसौ उन्नीस ३१६ के प्रलोक मूलमें चार दिनका पादकृच्छ्र बताया उसकी
 बिबि क्योकर मिलानेजाय क्योकि उसलेखमें सोरह दिनका पूराकृच्छ्र होनाचाहिये
 अथवा उन्हीं चार दिनको पादकृच्छ्र नाम छोड़ि अथवाकृच्छ्र कहिना चाहिये था—
 इसका—यही समाधानहै कि उसमें लेखाजोखा लगानेकी अपेक्षा कुछनहींहै क्योकि
 उन चार दिवसोंका नामही पादकृच्छ्रत्रत जुदी, विद्येयतासे रक्खा गयाहै इसीलिये
 उसे तिगुना करिके बारह दिनका प्राजापत्य नामसे पूरा कृच्छ्रबतावेंगे (तीनसौबीस
 का मूल प्रलोक देखो) इसके सिवाय कृच्छ्रों के अनेक रूप है।तेहें सबही में बारह
 दिनका नियमनहींहै सो सबआगे तीनसौबीसकी अधिकोक्तिमें विस्तारसेआवेंगे तब
 समुझिलेना ॥ ० ॥ उपवास भी चौथे व्रतका स्वल्प मूलश्लोकमें कहागया तिसके
 लक्षणा भी अनेकहैं सो यहां देखो (उपावृत्तस्यपापेभ्योयत्तुवासोयुगौःसह उपवासः
 सविज्ञेयःसर्वभोगविवर्जितः) अर्थात् उप-वास ये दो शब्द मिलाके नाम धराहै इस
 हेतुसे कि पाप कर्मोंसे मनको उपावृत्त करना इटाइ लेना उप शब्दसे दर्शाया फिर
 उस पुरुषका ठहरिना वास कहाताहै परन्तु युगोंकेसाथ वासहोय तो उपवास ठीक
 समुभाजाय यहां युगभी वही समुझने जो ८२वयासीके परिच्छेदमें (३१३-३१४)
 उन्हीं श्लोकोंसे ब्रह्मचर्य आदि लिखिचुकेहैं उन्हीं सब युगोंकासेवन और सब तरह
 के भोग ह्यपी आरामको छोड़िके एक ठिकानेपर बैठने का उपवास नाम जानौ—सर्व
 भोगोंका छोड़ना यहांतक अभिप्रेतहै कि निपट कुछअन्नभी न खानापीना चाहिये
 (तपनोदयसारम्य यासाष्टकमभोजनम उपवासःसविज्ञेयः प्रायश्चित्ते विधीयते)
 अर्थात् सुर्वनारायणा के उदयसे लेकर पूरे आठ प्रहरोंभर न खाना सो उपवास जा-
 नना जो प्रायश्चित्तों में कियाजाताहै परंच ऊर्ध्वोक्तयुग भी सबहोनेचाहिये० तथा
 अयोक्त कान करनेका त्याग राखै (उपवासफलंनश्येत्तदिवास्वप्नाचमैथुनाद् स्त्रीणां
 संप्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिःसकथनादपि) क्योकि उपवास किये हुयेका भी फल नाश
 होजाता है दिनमें सोइ रहिने से या मैथुन करनेसे तथा स्त्रियांको पूरी निगाह भर
 देखनेसे या उनको छुइलेनेसे या बिना लुपे भी उनके निकट बैठे परस्पर बात चीत
 बहुत करनेसे भी उपवासोंका फल वृथा नाश होजाताहै ॥ ३१६ ॥

प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंके अनेक भेद अगिले परिच्छेद में देखना ॥

जपादिक सङ्घित कृच्छ्र करनेका पसकान्दिना श्रेय रद्दा तिसकी तीनों वराके निमित्त में समुभिलेना जो कुछ पडे लिखे भी हों कारिक विद्याके सम्बन्धसे उन्हीं पर योग्यता उसकी श्रेय रही—सो भी गौतमऋषि ने उन्हीं तीनों वराके निमित्त में स्पष्ट प्रकाशकरीहे—यथा=अथातःकृच्छ्रान्व्याख्यास्यामः हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रोरात्रीनांश्रीयात् अथापरं ज्येष्ठनक्षत्रंजीयापरं ज्येष्ठनक्षत्रं चनयाचेत्तथापरं ज्येष्ठ शुषवसञ्च तियेदहनिरावावासीत् क्षिप्रकामः सत्यवदेद्वार्यैःसहनभायेतरौरवयोवाञ्जये चित्तं प्रयुंजीतानुसवनं मुदकोस्पर्शनमापोहिस्येति तितृभिः पवित्रवतीभिर्माज्ज्यतीत—द्विराद्यवर्गाःशुचयःपावकाइत्यद्याभिरथोदकतर्पणां नमोहमायमोहमायमंहमायवन्व नेतापसायपुनर्वसेनमःमौज्याय औभ्याय वसुविन्द्याय सर्ववर्गाविन्द्याय नमः पारायसुपाराय महापारायपारदाय पारयिष्वावेनमः रुद्रायपशुपतपे महतेदेवायज्यम्बकायैकच रायाविपतये हरायशर्वीशानाय उग्रायवज्रिणो घृणाने कपर्दिनेनमः सुर्यादित्याय नमः नीलग्रीवाय शितिकंठाय नमः कृष्णार्यपिंसलाय नमः ज्येष्ठायश्रेष्ठायद्वार्यैद्विष्याय हरिकेशाय कूर्वरैतेनमः सत्यायपावकाय पावकवर्गायैकवर्गाय कामाय कामरूपिणो नमः क्षीमायदीपक्षपिणो नमः तीक्ष्णायतीक्ष्णाक्षपिणो नमः सौम्यायपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषाय उत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणो नमः चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे नमः—इति—एतदेवादित्योपस्थानमेतारखा २२ अध्याहुतयो । द्वादशरावस्यांते चरुं यपयि स्वास्तान्यो देवताभ्यो जुहुयात्—अग्नयेस्त्राहा सोमायस्त्राहा अग्नीयोसाभ्यामिन्द्राग्निभ्यामिन्द्राय चित्रवेभ्यो देवैभ्यो ब्रह्मणो प्रजापतये अग्नयेस्त्रिधकृते—इति—संते ब्राह्मण भोजनम्—तत्र (तियेदहनिरावावासीत् क्षिप्रकामः) इत्यस्यार्थः—यस्तु मनसोऽप्येनसः किं प्रमेकेनैव कृच्छ्रं ग्राह्यं प्रमुच्येयं इत्येवंकामयते असावहनिकर्माविरुद्धे युक्तालेयुतियेदं रावावासीत् (सर्वरौरवयोवाख्यसामजपः नमोहयेत्यादिभिस्तर्पणादित्योपस्थानादिकंचरुं यपरादि कंचयोगीश्वराद्यनुक्तं क्षिप्रकामः कूर्वात—अतश्चरुं योश्वराद्यनुक्तं प्राजापत्यद्वयस्यानेगौतमीयमनेकेतिकर्तव्यतासङ्घितद्रव्यं स्वमन्यान्त्यापिस्मृत्यन्तरोक्तानि विशेषगान्धर्वेयगौथानोतिमिताक्षराकाराः—अथात्—गौतम आदिके नामसे मिताक्षराकार इत्येव बहुतचडे विधानको ग्रन्थान्तरसे खींचकेदशांतेहें सोद्यत्कामसेदेखी—अब यहाँसे कृच्छ्रका व्याख्यान करैगे जैसा तीनदिन हविष्य जो धान आदि प्रातःकालिक भोजन करिके उन्हीं रात्रों में ह्दय न खाय अनन्तर इसके और भी तीन-रोज नक्तभोजी होकरहे अर्थात् दिनमें न खाय रातिही में खायाकरै फिर तीनदिन अथाची होके किसीपर न मांगी तथा और भी तीनदिन कोरा उपवास करते दिनमें

रहै तथा रातिमें भी जो शीघ्र अपने पाप मोचनकी कामना रखताहो तौ ये नियम सावै मृत्युबोली दुर्जनों से वातचीत न करै और सामवेदोक्त रौरवयोध नामका साम ऋष होताहै तिसको नित्य दिनमें उचित समय पर वैदिके जपै और सर्वदा नित्यही विक्वालस्नानकरै और आपोहिष्टा इत्यादि पवित्रवती तीनि ऋचाओंसे मार्जन करै फिर इसके अनन्तर (हिरण्यवर्णा शुचयःपात्रकाः) इत्यादि आठ ऋचाओंसे जलका तर्पणा करै इसके अनन्तर ऐसे चिह्न से आगे नमोहमाय आदि लेकर कृत्तिवास से नमः पर्यन्त जितवे संव ऊपर लिखे मौजूद हैं उन सबको पढिकर आदित्यका उपस्थान करै अर्थात् सूर्यके सन्मुख खड़े होकर दृष्टिमिलाकर इतने मंत्रोंसे स्तुति करै और जलमें तर्पणा इन मंत्रोंसे भी करै अर्थात् जैसा हिरण्यवर्णा आदि आठऋचाओं से करना कहिचुके तैसा उपस्थानकी मंत्रोंसे जुदा तर्पणाभी करना चाहिये और इन्हीं उपस्थानवाले जुदे जुदे मंत्रोंसे घृतकी आहुति भी एकएक देनी चाहिये यह रोजरोज की साधना विधि कही गई ऐसे वारहदिन किये पीछे होमकेलिये चरु पकाइके इतने देवताओं के अर्थहोम करै किन्तु जो (अनयेस्त्राहा आदि मंत्रहैं तिनसे आहुतेंदेकर पूर्वोक्त उपस्थान और तर्पणाके मंत्रोंसेभी होमकरना फिर पीछेसे ब्रह्मभोजकराना ॥०॥ यद्यपि यथाक्रमसे समस्त विधानके अर्थ लिखेगये परन्तु बीचमें (तिष्ठेदहनिरात्रावासी तसिप्रकामः) ये चौदह अक्षर जो प्रारंभके समीपही आचुकेहैं तिनका विशेष व्यौरे वारअर्थ सबसे नीचे आकर मिताक्षराकार जुदाभी दर्शातेहैं कि-सिप्रकाम उमपुरुष का नामहै जो मनसे अपने हृदयसे कामना रखताहो कि मैं शीघ्र अपने पापसे छुटों अर्थात् एकही कृच्छ्र करिके शुद्ध होसकौं इसको चाहिये कि दिनमें पूजा कर्म के अवरोधी उचित कालोंमें बैठे वा उपस्थान आदि मध्ये सूर्यके मध्य समयपर खड़ा होय एवं रात्रिमें जहां जैसा उचित हो उसीपर स्थितहोय (तिससे यह सिद्धांत ठहिरा कि रौरवयोध नामका ऋष और नमोहाय आदि मंत्रोंसे तर्पणा तथा उन्हींसेसूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ लिखिचुके था खीर पकाना आदि और जो कुछ कहागया कि जिनबातोंको योगीश्वर आदिने प्राजापत्यके साथमें नहीं दर्शाया सो सब उसको करना चाहिये जो शीघ्र अपने काम की सिद्धि चाहै-इसी से यहभी तात्पर्य ठहिरा कि योगीश्वर आदिकेवताये दोप्राजापत्योंके स्थानपर इसगौतमकीकर्त्तव्यता सहित विचारकरै क्योकि गौतम औरभी अनेकोने सेसाही कहाहै ॥ ३२०॥ यह तीनसौबीस के पर्वार्द्ध प्रलोकवाली अधिकांश पुरी हुई इसमें केवल प्राजापत्यही के लक्षणा भेद कहेगए ये सबकृच्छ्रही कहातेहैं इससे आगे अतिकृच्छ्र के लक्षणा कहेजायेंगे ॥

(अतिकृच्छ्रस्वरूपं)

अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ३२०

अर्थः—यही अति कृच्छ्र होय यदि पाणिपूर अन्न भोजन होय—अर्थात्—यही प्राजापत्य जो ऊपर कहि चुके सो अतिकृच्छ्र नाम कहाने लगे जो एक मुट्ठी भर अन्न खाकर क्रियाजाय—इसका भी यह तात्पर्य है कि प्राजापत्य सर्व्वथा उसी रीति से क्रियाजाय जैसा लक्षणा उसका कहि चुके हैं परन्तु इतनी विशेषता हेनो चाहिये कि उसमें जहांजहां दिनके या रातिके भोजनोंमें वारिस या चौबीस या छब्बीसको भोजन करना लिखा हो तिसको छोड़ि केवल एक मुट्ठी भर अन्न भोजन क्रियाजाय इतनी विधि बदलनेसे अतिकृच्छ्र कहाता है और अन्तके दिवसोंमें जहां कोरा उपवास कहि चुके सो यहां भी उसी तरह क्रियाजायगा उसमें मुट्ठी भर अन्न की अपेक्षा नहीं है और वहांपर प्राजापत्यके चारजुदेपाद या तीनही पाद जैसे कहि चुके तिनकी उलटा पलटा अर्थात् अनुलोम या प्रतिलोम क्रम जैसा कुछ कहा गयाथा सो सब यहां भी उसी प्रकार समझे रहिना ॥ ३२० ॥

३२० अधिकोक्तिः—यत्सन्नुनेक्तं=सकैक्रं प्राससभ्रियात्तयहरिणात्रिणापुर्ब्ववह
 इयं चोपवसेदन्यमतिकृच्छ्रं चरन्दिजः—अर्थात्—सन्नुने यह कहा है कि तीन तीन दिनोंके तीन फेर कुल्ल नौ दिनतक सकही एक प्रास भोजन करे सो उसी पहिली रीतिसे (कि जैसा कृच्छ्रव्रत में तीन दिन सबेरे तीन दिन सांभको तीन दिन बिना मांगे जब कोई लेआवे तभी खाय यही प्राजापत्य में कहि चुके हैं उसीके अनुसार यहां नौ दिन भर एक एक प्रास रोज खाकर) पीछेसे तीन दिन कोरे उपवास करे तो यह द्विजातीका अतिकृच्छ्रव्रत कहावे—अर्थात्—पहिला प्राजापत्य जो कहि चुके सो कृच्छ्रही कहाजाता यह अतिकृच्छ्रकहावे और कृच्छ्रातिकृच्छ्र इससे आगे कहा जायगा वह ३२१ तीनसौइक्कीस मूलप्रलोकमें देखना इन तीनोंमें यह भेद है कि पहिला छोटा दूसरा उससे बड़ा और तीसरा इन दोनोंसे बड़ा होगा (मितासराकार कहितेहै कि अति कृच्छ्र में योगीचरने मुट्ठी भर अन्नखाना कहा और सन्नुने एक प्रासभर अन्न खाना कहा तिससे यह कठिन प्रतीत होता समर्थ पुस्त्य को बताना चाहिये) यवार्थ में ये दोनों बात बराबर हैं कुछ भेद नहीं क्योंकि एक प्रास भी मोरके अडे बराबर कहि चुके हैं वह अण्डा एक मुट्ठी भर होताहै तिससे यह भी न कहिना चाहिये कि यह समर्थको बताना वह असमर्थ को ॥ ३२० ॥

(कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यपराकस्यचरूप)

कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसादिवसानेकविंशतिम् † द्वादशाहोपवासेनपराक परिकीर्तित ३२१

अर्थ—एकविंश २१दिनपर्यन्त दूधपीकर व्रतकियाजाय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्रनाम कहाताहै—कितना दूधपीकर इसअपेक्षासे ३१ ठ तीनसौ अटारहकी अविंकांक्तिसेपराशरका वचन देखो=गौतम ने केवल जल पीकर बारह दिनका कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत बताया है (अद्विंशत्युत्तरायणसकृच्छ्रातिकृच्छ्रः) अर्थात् पहिले दो भोजन के रूप कहिकर पीछेसे कहाहै कि तीसरा वह जो सिर्फ जलखाके होय सो कृच्छ्रातिकृच्छ्र नाम जानो ॥ † ॥ बारहदिनकोरा उपवास करनेसे पराक व्रत कहाता है ॥ ३२१ ॥

(सौम्यकृच्छ्रस्यरूप)

पिण्याकाचामतक्रांत्तुसप्ततूनाप्रतिवासरम् † एकरातोपवासश्चकृच्छ्र तौम्योऽयमुच्यते ३२२

अर्थ—पिरायाक० आचाम० तक्र० अनु० सक्त० इनका प्रतिवासर एक एकसावन करिके पीछेसे एक दिन कोरा उपवास भी करै=अर्थात्—प्रथम दिन तिलोका पीना खली • दूसरे दिन आचाम अर्थात् भात का साइ • तीसरे दिन मट्टा • चौथे दिनजल • पांचवे दिन सतुआ धानके बने अथवा जौ के बने छठे दिन कोरा उपवास करिके छे दिनका यह सौम्यकृच्छ्रव्रत कहाताहै (कितनी कितनी ये चीजें खाय इस अपेक्षामें यह समझिलेना कि जितना थोडा खानेसे प्राणोकी रसा बनी रहेगी उतना खाय बहुत नहीं ॥ ३२२ ॥

३२२अधिकोक्तिः=जाबालमुनिने चारिही दिनका सौम्यकृच्छ्रकहाहै=अथा=पिरायाकसक्तवस्तक्रचतुर्थेहन्यभोजनसवासोवैदक्षिणादद्यात्सौम्योऽथकृच्छ्रउच्यते=अर्थात्—एक दिन पीना • दूसरे सतू • तीसरे मट्टा • चौथे दिन कोरा उपवास और एक बखकी दक्षिणादान करै तो यह सौम्यकृच्छ्र कहाजाताहै ॥ ३२२ ॥

(तुलापुरुषकृच्छ्रस्यरूप)

एषात्रिरात्रमन्यासादेकस्ययथाक्रमम् । तुलापुरुषइत्येपज्ञेय पञ्चदशाहिक ३२३

अर्थ—इन पाचौका तीन रात्रि एक एकका अभ्यास यथा क्रम करने से यह पन्द्रह दिनका तुला पुरुषनाम कृच्छ्र व्रत कहाताहै=अर्थात्—यथा क्रमसे यह कि उन्हीं पूर्वोक्त तिलखली आदि पांचोमें पहिली चीजको पहिलेतीनदिन फिर दूसरी

को तीन दिन फिर तीसरोको तीन दिन फिर चौथीको तीन दिन फिर पाँचवींको तीन दिन खाकर पन्द्रह दिन करै (इसमें पन्द्रह दिनका नियम कहिदेनेसे छठे दिन कोरे व्रतकी मनायी ठहरी ॥ ३२३ ॥

३२३ अधिकोक्तिः—यसने इक्कीस दिनका तुला पुरुष्य वतायाहै—यथा—आचा समयपिरायाकांतकांचोदकसक्तुकाव ययहंयहंप्रयुंजानोवायुभस्सयहंहयम एकविंश तिराइस्तुतुलापुरुष्यउच्यते (इतिहारीतीकोऽतिर्कृत्यताग्रन्यगौरवभयान्नलिख्यते इति मिताक्षरा—अर्थात्—माङ्गु•पीना•मठा•जल•सक्तु• इनको तीन तीन दिन खाता हुआ बाबि पन्द्रह दिनके छेदिन वायु भस्मीहोय अर्थात् कोराव्रतकरै तौ यह इक्कीस रात्रिका तुला पुरुष्यव्रत कहावै (मिताक्षराकार कहितेहैं कि हारीत के वनास ग्रन्थ में यह बात बहुत बड़ी कर्त्तव्यतासे वर्त्तमानहै हम ग्रन्थ बढिजानेके भयसे उसे नहीं लिखतेहैं ॥ ३२३ ॥ अब आगे परिच्छेदमें चान्द्रायणव्रतोंके भेद और उनकेसाय भी थोडासाकच्छों का बरान कियाजायगा ॥ ३२३ ॥

अथचान्द्रायण सोमायन मासिकव्रतभेदानां नामलक्षण

विधिप्रकाशकोऽयंपरिच्छेदः पञ्चाशीतितमः (८५)

—*—

इस परिच्छेदमें चान्द्रायण मासिक व्रतके अनेक लक्षणा भेद उनकी विधि और नामों सहित प्रकाश कियेजायेंगे तिनमें प्रथम• यवमध्यचान्द्रायण•पिपीलिकामध्यचान्द्रायण फिर सबका विधान•फिर साधारणचान्द्रायण• यतिचान्द्रायण• शिशुचान्द्रायण• ऋषिचान्द्रायण• सोमायन के विधान• ये सब इसी क्रमसे लिखेजायेंगे ॥

(चान्द्रायण व्रत रूपं)

तिपितृक्षयाचरेत्पिण्डानशुक्लेशिव्यण्डसम्भितान् । एकैकं ह्रासयेत्कृष्येपिंडं चान्द्रायणं चरन् ३२४

अर्थः—चान्द्रायणको करतेहुये शुक्लपाखमें शिखीसोरके अण्डे समान पिराडों का तितिकी वृद्धिसे बढाते हुये चरै भस्मका करै फिर छायापाख में एक एक पिराड घटाताजाय—अर्थात्—शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे प्रारम्भकरै उस दिन छिपीहुई चन्द्रमा की एकही कलाहोतीहै तिसमें एक गोला दालि चावल आदि अन्नका मोरके छंदे

बराबर बनाके खाय फिर द्वितीयाको दो पिण्ड तृतीया को तीन इसी रीतिसे पूर्णा-
मासीको पन्द्रह पिण्ड खाइके अंधेरी प्रतिपदा को १५ चौदह पिण्ड खाय दौज
को १३ तेरह पिण्ड तीजको १२ बारह पिण्ड इसीप्रकार कृष्णाचतुर्दशीको एकही
ग्रास खाकर अमावास्यामें निपट कोइ कला चन्द्रमाके नहींरहतीहै उषदिन कोरा
उपवास करें तो यह चान्द्रायणा व्रत कहाताहै ॥ ३२४ ॥

३२४ अधिकोक्तिः=वशिष्टः=सकैःकवर्धयेत्पिण्डशुक्लेकष्योचह्रासयेत् इन्दुक्षयेन
भुञ्जीतस्यचान्द्रायणोविधिः=अर्थात्-वशिष्टने साफ यही कहाहै कि शुक्लपाख में
एक एक पिण्ड रोज बढ़ावै और कृष्णापाखमें एक एक रोज घटावै परन्तु इन्दुक्षय
नाम जो अमावास्याहै तिसकेरोज कुछ भी न खाय यह चान्द्रायणाकी विधि जानी
(चन्द्रमाके अयनका बदना घटना जैसा होताहै तैसाही आश्वरणा इस व्रतके कर्म
का होताहै तिससे चान्द्रायणा इसका नाम ठहिरा) जैसा यह कहागया तिसका
विशेषनाम यवमध्य चान्द्रायणा भी कहाताहै क्योंकि जौके दोनों छोर नोकें और
बीचमें सोरापन होताहै उसीप्रकार इसचान्द्रायणामें दोनोंछोर एकहीएक पिण्डखाने
से नोकें पतरी और बीचमें पूर्णमासीके ठिकाने पन्द्रह पिण्डोंकी बहुत मुद्राई फिर
दोनों तरफ जौके समान ढाल होताहै-इतियवमध्यचान्द्रायण ॥ अथपिपीलि-
कामध्यचान्द्रायणविधिः-अर्थात्-यही चान्द्रायणा जहां कृष्णापसकी प्रतिपदा से
होकर एक एक पिण्ड खाकर कियाजाय जिसमें लौटिकर पूर्णमासीका कोरा व्रत
करनाहो जो कृष्णा प्रतिपदासे एक दिन पहिले आतीहै तो फिर इसका विशेषनाम
भी पिपीलिका मध्य कहाजाय कि जैसे चीटा चीटी बीचमेंखाली और दोनों छोर
सोगरीसे मोटे हुआ करतेहैं तैसाही डौल इसचान्द्रायणाका होजाताहै (प्रकार इस
का यही है कि अंधियारी परिवार से एकएक ग्रास बढ़ाते अमावसको पन्द्रह
ग्रास खाकर उजियारी परिवार को चौदह फिर इसीतरह एक एक घटाते चौदस-
में एकही खाकर पूर्णमासीको निपट एक भी नहीं तिससे चीटोके आकार बीचमें
खालीठहिरा क्योंकि पूर्णमासी नहीनाके बीच में होती है) तथापि आचार्योंने
इसप्रकारका स्वीकार नहीं किया क्योंकि अमावास्यामें निपट विषुसय होनेसेको-
रा व्रत करना सिद्ध होचुकाहै तिसमें पन्द्रहग्रास खानेका व्योत आकर परताहै यह
विरोध अच्छानहीं-तिससे-इसी पिपीलिका मध्य चान्द्रायणाके ढगसे केवल इतना भेद क-
रनापरा मो दर्शाते हे कि पूर्वोक्त यवमध्य चान्द्रायणा के ढगसे केवल इतना भेद क-
रना चाहिये कि अंधियारी परिवारसे प्रारभकर परन्तु प्रथम दिन चौदह ग्रास भोगें

जो उसी पूर्वोक्त मार्गसे खोरहवें दिवस खातेपरदेहे फिर दूसरेदिन द्वितीयाको तेरह
 तृतीयाको बारह इसीप्रकार घटाते जाकर चौदासको एकही ग्रास खाकर अभावस
 में कोरा व्रतकरै फिर दूसरेदिन उजियारी परिव्राको एक दीयजको दो तीजको तीन
 ग्रास इसी प्रकार बढ़ाते जाकर पुराणासी को पन्द्रहग्रास खाकर उतीदिन व्रत को
 समाप्तकरै तो यह ठीक ठीक पिपीलिकासध्य कहाजायगा कि बीचों बीच अभावस
 में कोराव्रत किया गया और ग्रास भी दोनों ओर एक एक दो दो आदि बढ़ते जाकर
 दोनों ओर मोटे होगये—और इसी व्यांतका प्रसारा आगे वशिष्ठके वचनोंसे मितता
 है—यथाहवशिष्ठः—मासस्यक्षयापक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश ग्रासापचयभोजीसत्पक्ष
 श्रेयंसमापयेत् तथैवशुक्लपक्षादौगासंभुजोतचापरस ग्रासोपचयभोजीसत्पक्षश्रेयंस
 मापयेत्—अर्थात्—वशिष्ठजीने खुलासा कहिदिया है कि महीना के अंधेरे पाख की
 आदि में परिव्रा के रोज चौदह ग्रास भोगै फिर दूसरे दिन से एक एक घटाकर भो-
 गते हुये पाख पूराकरै (इस व्यांतमें अभावस कोरी रहजातीहै) तैसेही उजाते पाख
 की आदि में परिव्रा के रोज एक और ग्रास भोगै फिर दूसरे दिनसे एक एक रोज
 बढ़ाकर भोगतेहुये वाकी पक्षकी पूराकरै यहाँ पुराणासी में पूरे पन्द्रहकोर होजा-
 यँगे यह ठीक पिपीलिका सध्य चांद्रायणाका स्वल्पहै जिसकी अभावस में नहीं खा-
 ना परा ॥ ० ॥ यह शंका खड़ी रहिगईहै कि जब किसी पाखमें कोई तिथिघटि-
 जाय या बढिजाय तब इनग्रहोंकी भोजान कैसे दीक आवेगी• तिसके लिये इन्हीं
 वशिष्ठ के वचनोंपर ध्यान करना चाहिये कि अंधेरे उजरे दोनों पाखवाले जुदे जुदे
 प्रलोकों में (पक्षश्रेयंसमापयेत्) यही एकपाद आरोपित किया इसका यही तात्पर्य
 है कि पाखमें जितने दिन बाकी हों उनमें चाहें कोई तिथि घरी या बढीहो तो भी
 पक्ष का बाकी भाग समाप्त करै अर्थात् अभावस और पुराणासी ये दोनों पक्ष की
 सीमारूपी हई होतीहैं इन्हीं हईों तक ग्रासोंका घटाना या बढ़ाना समाप्त करदेना
 चाहिये किन्तु एकपाखवाले कबलोंका हिसाब दूसरे पाखतकन जाने देवै इसका
 इसीमें समाप्तकरै—इस व्याख्यासे भी यह ध्वन्यर्थ निकसा कि तिथिके बढिजानेसे
 कबल भी बढ़ाये जाय घटिजानेसे कोर भी घटाये जाय—इसका दृष्टान्त जैसे उजाते
 पाखवाली तीजको तीनग्रास खाने होतेहैं यदि उसी तृतीयाकी वृद्धिहोकर दीतीजें
 होजायँ तहाँ दोनों तीजोंको तीन तीन ग्रास खानेचाहिये• इसप्रकार जहाँ पंचमी
 की हानिहोय तहाँ उसके नामके पाँचकोर न खाने होंगे अर्थात् चौथिमें चारग्रास
 खाकर दूसरे रोज यही आपरने में छेग्रास होंगे इन्हीं दोनों दृष्टान्तसे सर्वव समझि

हेना—क्योंकि (तिथिवृद्ध्यापिंडानचरेत्) यह ३२४ मूलश्लोक में पहिला पादहे
 योगीश्वर का तिसरे भी यही नियम सिद्धहोताहै कि तिथियोंके आधीन पिंड हो-
 ते हैं ॥ ० ॥ उपयोगिविधानं—चांद्रायणाका उपयोगी विधान भी गौतमने पिपी-
 लिका मध्यकी प्रधानता से कहिकर यवमध्यपर भी अतिदेश उसका किया है
 बल्कि वही विधान सबतरह के चांद्रायणोंपर समझना=तदाहगौतमः=अथातप्रचो
 द्रायणांतस्योक्तोविधिः कृच्छ्रवपनव्रतंचरेत् श्रवोभूतांपौराणामासीमुपवसेत् आष्यायस्त्र
 संतेपयांसिनवोनव इतिवैताभिस्तर्पणा माज्यहोमोहवियश्चानुसंत्राउपस्थानंचचन्द्र-
 मसः॥ यदेवादेवहेडनमित्तचतस्रभि राज्यंजुहुयात् देवकृतस्येतिचतिसमिद्धिः (उंभः उं
 भुवः उंस्त्रः उंमहः उंजनः उंतपः उंसत्यंशः योऊर्काइट् उंजः तेजःपुरुषःधर्मःशिवः)
 इत्येतैर्ग्रासानुमन्त्रां—प्रतिमन्त्रंसानसानसःस्वाहा इतिवासर्वानितैरेव प्रासान्भंजीत॥तद्-
 प्रासप्रमाराणां२२स्याविकारेणा चरु भैक्ष्य सक्तु करण यावक शाक पयो दधि घृतमूत्र
 फलोदकानि हवींश्च उत्तरोत्तर प्रशस्तानि ॥ पौराणस्यापंचदशप्रासान्भुक्त्वा एकै
 कापचयेनापरपक्षमञ्जीयात्—अमावास्यायामुपोष्यै कैकोपचयेन० पूर्वपक्षविपरित
 मेकैयानेयचांद्रायणोमासः इति=अवचमिताक्षरा—अवप्रासप्रमारांस्याविकारेण
 ति यदुक्तंत्वालाभिप्रायं शिख्यंडपरिमितपंचप्रासभोजनाशक्तेः—क्षीरादिद्वहवियं
 शिख्यंडपरिमितत्वंतु परांपुस्तकादिनासम्पादनीयं—तथाकृच्छ्रांदाद्रामलकादीनितुप्रा-
 सपरिमाराणानि स्मृत्यंतरोक्तानिशक्तिविययाशा शिख्यंडपरिमाराणाल्लघुत्वात्तेयां-
 यत्पुनरुक्तंश्रवोभूतांपौराणामासीमुपवसेदित्यत्र चतुर्दश्यामुपवासमभिधाय पौराणस्यापंच-
 दशप्रासान्भुक्तवत्यादिना द्वाविंशदहरात्मकत्वं चांद्रायणास्योक्तंत्यसांतर प्रदर्शना
 र्थनसार्वधिकं योगीश्वर वचनानुरोधेन त्रिंशदहरात्मकस्यदर्शितत्वात् यद्येतत्सार्वधिकं
 स्यात् तदानैरन्तर्दश्यासंबन्धरे चांद्रायणानुष्ठानानुपपत्तिःस्यात् चन्द्रगत्यनुवर्तनानुप
 पत्तिप्रच=अर्थात्—गौतमका कथन है कि अब यहां से चान्द्रायणा कहिना है तिसके
 विधानका यह अनुक्रम है कि एक चांद्रायणा क्या बल्कि सभी कृच्छ्रमात्र में पहिले
 हुंडन कराइ के व्रतका आरम्भ करै तहाँ आरम्भसे सकादिन पहिले (वपनव्रतंचरेत्)
 वपनके निसिक्त व्रतआचरै अर्थात् जहां पौराणामासीसे चान्द्रायणा प्रारम्भकरना स्वीकार
 हो तहाँ दूसरेदिन सबैरे पौराणामासी आल वाली देखि पहिले दिन मुराडनकराइकेउसी
 दिन मुंडनके निसिक्त कोरा उपवासकरै(इसीप्रकार अन्यकृच्छ्रोंमें समझिलेना)पूरा-
 णामासीसे रोजका यह कृत्यकार्य है कि (आष्यायस्त्रसन्ते पर्यासि नवोनव) इत्यादि
 चिह्नवाली इतनी ब्रह्माचार्यसे तर्पणा और धोका होम और जिस किसी अन्नके प्रास

विशेष वचन घंटाघोष है • और प्रायश्चित्त का स्थलभी एक प्रकारका तीर्थ गिना जाता क्योंकि तीर्थके लक्षणा शास्त्रोक्त भी अनेक हैं तिससे प्रायश्चित्तके निर्मात्त-से चतुर्दशी में भी वचनका कुछ दोष नहीं है यह समझिलेना ॥ ३२४ ॥

अगले मूलश्लोक से दूसरी भांति के चांद्रायणा कहे जायेंगे ॥

(साधारणचांद्रायणा)

यथाकथंचित्पिंडानां चत्वारिंशोऽष्टतद्वयम् । मासेनैवोपभुंजीत चांद्रायणमथापरम् ३२५

अर्थः—यह और चांद्रायणा है कि जैसे किसी प्रकार के प्रयत्नसे हो दोसौचालीस पिंडोंका व्योत लगाकर एकहीमाम भरमें भोगे—अर्थात्—ऊपर जो तीसदिन का चांद्रायणा योगीश्वर ने कहा तिसमें समस्त २२५ दोसौ पचीसग्रास महीनाभरके होतेहैं उससे उपरालू गीतम के कहे विधान में दूसरी पूर्णमासी के पन्द्रहग्रास बढि-जानेसे २४० दोसौचालीसकौर होजातेहैं उन दोनों प्रकारसे जुदा यह प्रकार कहा चाहते हैं इसलिये २४० दोसौचालीसपिंड तीसही दिनमें भोगेजायें तिनके व्योतका कोईसा नियत लेखा एकहीसा नहीं है अर्थात् इसके लेखे में अपनी इच्छाके अनु-सार युक्ति लगानी होती है इसीसे यह कहा गया कि जैसे किसी प्रकार से होसके तैसे बारहवीसी पिण्डोंका व्योत एक महीना के दिनों पर फैलावै—उस फैलावा की इतने डौल हैं कि रोज मध्याह्न के समय आठग्रास खानेका नियम राखें अथवा चारकौर दिनमें चार कवल रातिमें खानेका नियम साधै तौ भी तीसदिनमें दोसौ-चालीस होजायेंगे अथवा एकदिन चारपिण्ड दूसरे दिन बारहपिण्ड इस डौलसे भी हिसाब ठीक आवैगा अथवा एकदिन कोरा उपवास फिर दूसरे दिन सोरह पिण्ड इकट्ठे या दिनराति में दोवार भोगे तौभी वही लेखाहै • इसीतरह अन्यप्रकार भी कल्पना किये जासकतेहैं तिनमें कोईसा एक प्रकार अपनी इच्छा और शक्ति संभव आदि के अनुकूल सोचिके जैसा कुछ पहिलेदिन संजूरकरै वही डौल तीसदिनतक चलाजाय तौ यह पूर्वाकथवमध्य और पिपीलिकामध्य दोनोंसे जुदा प्रकार (सा-धारणा) इस नामसे कहाता है (यत्तिचांद्रायणा • शिशुचांद्रायणा आदि इनके नाम भेद भी होतेहैं सो अधिकोक्ति में मनुके वचनों से देखना ॥ ३२५ ॥

३२५ अधिकोक्तिः—जितने डौल यहां दशयिं सो नामसहित मनुने भी कहेहैं—यथा—अष्टावष्टीसमश्रीयात्पिंडान्मध्यदिनेस्थितेनियतात्माहविष्यस्ययत्तिचांद्रायणां चरेत् ॥ चतुरःप्रातरत्रोयात्पिंडाच्चिप्रःसमाहितः चतुरोऽस्तमितेसूर्येशिशुचांद्रायणां

चरन् ॥ यथा कथञ्चित्पिडानांतिस्त्रीऽशीती.समाहितः सासेनाश्रवहृदिविष्यस्यचद्रस्यै
 तिसलोक्तताम=अर्थात्-मनुने यह कहा है कि जो कोई ब्राह्मण यतिचांद्रायण क-
 रनाचाहै सो ठीक दुपहरके समय अपने शरीरको बशमे राखे हुये आदपिड हविष्य
 के अर्थात् पवित्र अन्नके रोज रोज एक महीना भर भोगे तो यही यति चांद्रायण
 कहाताहै ॥ फिर कहते हैं कि यदि कोई विप्र शिशुचांद्रायण कियाचाहै सो-अ-
 पने शरीर और चित्तको साधधान राखे हुये चारकोर प्रातःकाल और चारकवल
 सूर्य अस्तहोते समय भोगे तो यही शिशु चांद्रायण कहाजाता है ॥ फिर कहते हैं
 कि हविष्य जो पवित्र अन्नहै नीवार.सामा आदि तिसके तीनअस्सी अर्थात् बारह
 बीसी पिंड जो २५० दोसीचालीस होतेहैं सो चाहें किसी प्रकारसे जैसे होमके तैसे
 एकही मासमे भोगे (अर्थात् जैसे ऊपर योगीश्वर के प्रलोक मे कहिचुके तैसे यहाँ
 भी समझने) तो इसरीतिसे करनेवाला भी चन्द्रमा के लोकमें जाकर जन्म लेताहै
 अर्थात् जिस किसीने यद्यपि कोई पाप नहीं किया जिसके प्रायश्चित्त की जरूरत
 हो बिना जरूरत के भी ऐसा व्रत करनेवाला ऐसाफल पावेगा यह तात्पर्यहै ॥ ० ॥
 ऋषिचांद्रायण-सूल प्रलोकमें पीछेसे अपर यहशब्द जो लगाया तिसका अर्थ जो
 कुछ उसीजये लिखागया सो भी ठीक है पर उसी अपर शब्दका यह भी तात्पर्य है
 कि अपरनाम और चांद्रायण जो नहीं कहे तितकी भी ग्रन्थान्तर में समझिलेना=
 यदाहयम.=धींछीचपिडानसमशीयान्नियतात्मादृढव्रत.हविष्यान्नस्यवैनासमृयिचां-
 द्रायणास्तृतम=अर्थात्-जो कोई ऋषि चांद्रायण किया चाहै सो एक मास अपने
 शरीरको अच्छे नियम से जीतिके सचाव्रत साधे हुये हविष्यान्न के तीन तीन पिंड
 रोजखाय (इसमें सिर्फ ६० नव्वे पिंडोंका हिसाब जुड़ता है ॥ ० ॥ मिताक्षराकार
 कहते हैं कि-योगीश्वर तथा मनुके कहे. यतिचांद्रायण. शिशुचांद्रायण आदि
 अनेक और यमका कहा ऋषि चांद्रायण.इन सबही में यह समझिलेना कि परि-
 वाको आदि लेकर चन्द्रमाकी गतिके अनुसार साधना करनेकी अपेक्षा इनमें नहीं
 है तिससे सिर्फ तीसदिनका महीना चाहै तिस किसी तिथिसे मानिके प्रारभ किया
 जासकता है अर्थात् तिथियोंकी घटी बढी आदि किसी कारणासेपूरे तीसदिन मानने
 केलिये यदि चौथि पचमी आदिकिसी औरही तिथिसे प्रारभ करनापरै तो भी कुछ
 दोयनहीं.परतुयदिशुक्लेरी वाउजरी परिवासेप्रारभहोसकौ तौबहुअधिक अष्टज्ञानो॥ ० ॥
 अथ सोमायन-सोमायन इसनामसेभी एक महीनेका व्रतजुदे प्रकारसेहोताहै=
 तदाहमार्कडियः=गोक्षीरंसप्लरायतु पिवेत्स्तनचतुष्टयात् स्तनत्रयात्सप्लराय सप्लरायस्तन

बलानेहों उसका नामहविय् होताहै उसीहविय् का अनुमन्वरा अर्थात् मन्त्र पढ़िके पवित्रकरण और चन्द्रमाका उपस्थान उसकेसामने खड़े होकर मन्त्रोंसे स्तुतिकरना और ॥यद्देवादेवहेडनं आदि चारकण्डवाओंसे घृत होमें और हे।मके अन्तमें देवकृतस्य इत्यादि वेद मन्त्र से समियों से घृत लेकर होमें ॥ फिर (उँभः आदिसि शिवःपर्यंत) इतने मन्त्रों से पढ़िकर अपने रोजके सामली प्राणोंको पवित्र करें—तिससे अनन्तर फिर एक एक प्राण हाथ में लेकर उन्हीं उँभः आदि सर्व मन्त्रों को बोलिकर पीछे से नमःस्वाहा यह मनमें कहिकर प्राण मुहमें धरें इसी विधिसे सब प्राणों को भोगें ॥ उन प्राणों का यह प्रसारा है कि जितना सुख पूर्वक मुहमें चलाजाय किन्तु मुखपसारना आदि विकार न करने परें (किन चीजों के प्राण होयें सो कहिते हैं) चरु अर्थात् पकाया भात वा खीरि•भैक्ष्य अर्थात् भिक्षावे मांगिलाया मिलाभूलाअन्न•सुतुआ•कनकी तन्दुल की• यावक जों का दलिया• शाक जो अयुआ सर्वां आदि का इस काम के योग्य समझि परें• दूध• दही• घृत•मूल अर्थात् आलू घुइयांसकर•कन्द आदि जो निविद्य नहों•फल जोजो इस काम योग्य समझिपरें जैसे बेल खरबूजा आदि• उदक गंगाजल आदि जो अतिशय पवित्र हों•इस कामके निमित्तमें ये सभी हविय् कहाते हैं इनमें पहिलेकी अपेसा पिछले पिछले अधिक ग्रहजानो यह रोज रोज का विधान कहिके गौतम जी प्राणों को प्रारम्भ करने का प्रकार अब कहिते हैं कि ॥ प्रथम पूर्णमासी के रोज पन्द्रह प्राण खाइके अगिले दिन दूसरे पाख की परिवा से एक एक घटाते हुये रोज खाया करें—फिर अमावस में कोरा उपवास करिके परिवसे एकएक प्राण रोज बढ़ावै तो यह पूर्णमासी दूसरी पर्यंत फिर पन्द्रह प्राण खाकर एक मास चान्द्रायरा कहाता है (इसीका विशेष नाम पिपीलिका मध्य पहिले कहिचुके है) गौतम कहिते हैं कि बिरले एक आचार्यों के सतसे यही चान्द्रायरा पहिला पाख डलटा करदेने से भी होता है (जिसका नाम यवमय्य कहासाया और विधान भी योमीचर आदिसे कहा) यह सब गौतम का कथन पूरा होचुका—इसपर नित्ताक्षरा कार कहिते हैं कि—गौतम के विधानमें प्राण का प्रसारा जो यह कहा गया कि जितना सुख से मुहमें जासके सो बाजक प्रायश्चित्तियों के अभिप्राय पर समझना क्योंकि सोर के अराडे बराबर उन्हीं के मुह में नहीं जासक्ता है और बाजक उनको समझना जो सोर के अडे बराबर पांच प्राण एक दिनमें न खाइसके—और दूध आदि पतरी हरकनी चीजें जो हविय्में गिनतीकरें तिनके प्राण सोरके अराडे समान क्योंकर होसकेंतहां उतने परिमाणवाली

पत्ते की दोनी आदि से नाप तौल करनी चाहिये— और इन्हीं प्राशों के परिमाण किसी ग्रन्थ में मुगांके अराडे समान किसीमें बहुत बड़े हरे आबरे के समान इत्यादि भेद जहां देखिए तिनको भी मनुष्यों की शक्ति के भेद पर समझि लेना क्योंकि मोरके अराडा से ये सब छोटे हैं—और जो गौतम ने चौदसि का उपवास फिर पूर्णमासी से पन्द्रह प्रास का प्रारम्भ लेकर महीनाकी दूसरी पूर्णमासी तक चान्द्रायण की समाप्ति कही तिसमें चौदसि पुनो के दो दिन बढि जाने से बत्तीस दिन होगये सो यह एक दूसरा पक्षांतर समझि लेना कि जहां कोडे बत्तीस दिनकी विशेषता से करनाचाहै सिर्फ तहांका यह नियमहै सर्वत्र नहीं क्योंकि सर्वत्रका सामान्यवही नियम है जोकि याज्ञवल्क्य आदि अनेकों ने तीस दिनका चांद्रायण उहिराया-कदाचित्त बत्तीस दिन वाला भी सर्वत्र के निमित्त माना जाय तो यह विरोध खड़ा होता है कि जब कोडे कहीं एक सम्बत्सर में निरन्तरवारइ चांद्रायण की साधना कियाचाहै तहांपूरे वारह न होसकें तथापि यदि ऐसा समाधान दियाजावै किवारइ पूरे करने के लिये एक सबत्सर से उपरालू दिनबढाये जासकतें जितसे बारहमहीने और चौबीस दिनमें प्रयोग पूरा होगा• तहां यह सबसे बड़ा व्यतिक्रम है कि चां-द्रायण चन्द्रमा की गतिके ऊपर होताहै वह गतिभी इतने दिन बढानेसे सर्वत्र छूटि जायगी कि जिसके छूटिजानेसे मुख्य क्रमका व्यतिक्रम होजायगा इति मिताक्षरा कारा॥॥एक यहवार्ता यादिरखनी चाहिये कि विधिमें चन्द्रमाका उपस्थानआदि कहिचुके हैं सो वह चन्द्रमा का उदयहुये बिना असगत है तिससे रोज रोज चंद्रोदय के समय पर विधान और पीछेसे उक्त प्राशों का भोजन किया जायगा चाहै किसी बेरा उदयहोय इसीकारण चांद्रायण व्रत सबसे कठिन कहाता और इसीसे अभावस को एकभी प्रास नहीं खायाजाता क्योंकि उस दिन बिल्कुत उदय नहींहोताहै—परन्तु ऐसा नियमभी उन्हींकी समझना जो साक्षर सज्जन विद्वान् होते सपूर्णा विधिके साथ साथ अन्यथा सुख जन उदय होने बिनाभी रात्रिमें किसी एक नियत समयपरप्रास खाकर व्रत करते हैं क्योंकि जो चन्द्रोदयके आधीन करनाचाहै तोफिर निपट व्रत का होनाभी उनसे रहिजाय तिससे उत्तम कल्पको उपेक्षासे मन्द कल्पका स्वीकार कराया जाता है (सोतन की कही विधि के प्रारम्भ में पूर्णमासी पहिले जो मुडन कराना कहा यद्यपि चतुर्दशी में क्षीर कर्मका नियेध है तथापि वाचनिक विधि के विशेष वाक्यसे कुछ दोय नहींहै) सामान्य वाक्यसे विशेष वाक्य बलवान् होता है इसी लिये (तीर्थक्षीर चतुर्दश्यां) तीर्थमें चतुर्दशी को क्षीर कराना योग्यहै यह

इथात्स्तनेनैकेनयद्वात्रिंश्रिवात्रंवायुभ्रमवेत सतस्सोमायनं नाम महाकालमयनाशनस=अ-
 र्थात्-गायकाद्ब्रह्मातदिनपी वैचारयनांसे फिर सानदिन तीनयनांसे पीवै फिरसात
 दिन दोधनांसे-पीवै फिरछे दिनतक सकथनसेपीवै फिर तीनदिनकेवल वायुपीकेरहे
 ती यह तीसदिनका सोमायन व्रत महापातकांका विनाशकरने वालाहोताहै (इसमें
 चार वा तीन आदि धनांसे दूधपीनाकहागया तिसका तात्पर्यकीवलयही संभवहै कि
 थनको सुट्टीमें बाविके दूधकी धारें मुहमें लीजायं अर्थात् वासन में दुहिकरन पीना
 चाहिये ॥ इसीप्रकार ग्रन्थान्तर में चारों सप्ताह बराबर कहिकर इकतीस दिनका
 मालव्रत कहा सोभी कुछविलक्षणहीं क्योंकि इकतीसदिनकाभी महीना बिरलाहोता
 है-तथाश्वघ्ननं (सप्ताहंचेत्येतदगोस्तनमखिलमयवीनस्तनानुद्वैतैकंज्ञयतिवींश्रयो
 पचासाश्रयदिभर्षातितदामासिसोमायनंतत)अर्थात् सातसातदिन गायके स्तनइसक्रमसे
 यदिपीवै कि पहले सप्ताह भर अखिलसमस्त अर्थात् चारोंयन दूसरे सप्ताहमेंतीनयन
 तीसरे सप्ताहमें दोहीयनचौथेसप्ताहमेंसकहीयन पीकर पीछेसे तीनादिनकोरे उपवास
 भी क्रियेअर्थ तो यह इकतीस दिनकेमहीनामेंसोमायन व्रतहोताहै-तदपिचांद्रायणा
 धर्मकमेवेतिमिताक्षरा) अर्थात् मिताक्षराकार कहितेहैं कि यह सोमायन इसनामसे
 भीचांद्रायणाकेकायदेतुल्यसमभूना-क्योंकि-हारीतनेपहिलेयहकहिकर किअबहम
 चांद्रायणाका अनुक्रम कहेगे और वह ऐसे होताहै तैगा चांद्रायणाही समझाइके सो-
 मायनका भी अतिदेश किया तिससे=अइ कहिकर मिताक्षराकार फिर कहिते हैं
 कि=उन्हीं हारीतने दूसरा एक सोमायन भी जुदा दर्शायाहै-सौ देखी=यदाहमिता-
 क्षराकारः-यत्पुनस्त्वेनकयाचतुर्थीमारभ्यशुक्लषादशीपर्यन्तधोमायनमुक्तं-यथा-च-
 तुर्यीप्रभृति चतुस्तनेनत्रिंश्रं त्रिस्तनेनत्रिंश्रं द्विस्तनेनत्रिंश्रं एकस्तनेनत्रिंश्रं=सब
 मेकस्तनप्रभृतिपुनश्चतुस्तनांतं यातेसोमचतुर्थीतनूस्तयानःपाहितस्यैनमःस्वाहा• या
 तेसोमपंचमी यथीत्येवं यथार्थास्तिथिहोमा एकमासं सनोभ्यः पूतश्चंद्रमसः समान
 तांसलोकतां सायुज्यं चगच्छति इतिचतुर्विंशतिदिनात्मकं सोमायनमुक्तं तदशक्त
 विययमितिमिताक्षरा=अर्थात्-हारीत के कथन को मिताक्षराकार दर्शाते हैं कि
 हारीतने षड्विंशरी चतुर्थीसे प्रारम्भ करिके उजियारी द्वादशोतक चौबीस दिनका
 सोमायन कहाहै कि-चौथिसे लेकर तीन दिनतक चारौयनां से दूधपीवै तीन दिन
 तानयनांसे तीनदिन दोहीयनांसे तीनदिन सकही धनसे• इसीप्रकार फिर सकथनसे
 लेकर चारयन पर्यन्त करै अर्थात् पहिले तीनदिन सकथनसे फिर तानदिन दोधनांसे
 फिर तीन दिन तीन यनांसे फिर तीन दिन चारौ यनां से (ये सब बीनां फेरे जोड़िके

चौबीसदिन होते हैं इसमें कुछ संवेदनहीं परन्तु इन्हीं सबदिनोंमें रोजरोज तिथियोंके नामसे तिथिहोम करना भी बताते हैं कि) पहिलेदिन चौथिमें चौथिके नामसे यह मंत्रबोलें (यातेसोमचतुर्थीतनःतयानःपाहि तस्यैनमःस्वाहा) दूसरेदिन पचमी तिथि में उसीके नामसे यह मंत्र बोलें (यातेसोमपंचमीतनःतयानःपाहितस्यैनमःस्वाहा) इसी प्रकारशष्ठीआदिके नाम जोड़ि जोड़ि इसीमंत्रसे रोज होमकरें • येहीतिथि होमकहाते हैं एकमास करनेसे पापसे शुद्धहोकर मनुष्य चन्द्रमाके बराबरी दर्जेको पहुंचताहै उसको चन्द्रलोकमें रहने पाताहै बल्कि चन्द्रमाके शरीरहीमें संयुक्तहोकर रहिताहै— इतना सुनाइके मिताक्षराकारकहितेहैं कि हारीतनेयहचौबीसदिनका भी सोमायन बताया सो उनकोलिये समझना कि जिनलोगोंसेपूर्वोक्त इकतीस या तीसदिनकानहो सके (इसने जोतिथियोंके होमकहे तिनमें केवल मन्वही कहिकर सामग्री कुछनहीं बताइ न कोइसा विशेष लक्षणकहा तिससेभी प्रत्यक्ष प्रतीत होताहै कि दूधकीवारें मुहमें लेते समय मुखसे और हृदय सेभी उन मन्वोंका उच्चारण करै यही स्वरूपहोम का बताया किन्तु अग्नि में नहीं) परच (इसवातका समाधान कुछनहीं थापआता और मिताक्षरा ने इसवातपर पकड़भी न खड़ीकरी कि साफ चौबीसदिनका व्यंत् वताकर हारीतने वाक्य परा करनेके अन्तमें एक महीना क्योंकहि दिया—तथापि सर्वादा प्रियके विचार से हारीतके वाक्य में हेतु गर्भित ध्वन्यर्थ देखि परताहै कि बारह दिन धनों का दूध पीनेके पहिले तीन दिन कोरा उपवास करै फिर दुबारा बारह दिन धनोंको पीकर अन्तमें तीनदिन कोरा उपवास करै (इसमें विशेष भेद इतना है किऊपर मार्कंडेय आदिकोंने महीना भरमें एकहीबार तीन दिन वायुभक्षी होना कहाया हारीतने उसके दो भाग बनाकर दोनों पखवारे के आदि अन्तमें तीन तीन दिवस वायु भक्षी होना दर्शाया) तिससे छःदिन उन्हीं चौबीस दिनोंमें जुड़िकर पूरा महीना ठहरा कदाचित् यह ध्वन्यर्थ न होता तो हारीतके मुखसे एक महीने का शब्द भी नहीं निकसता और ऊपर जो चौबीस दिनका नाम आया सो वह व्याख्या मिताक्षरा की प्रत्यक्ष है कि उसने बारह बारह दिनों का जोड़ समझाया कुछ हारीतके मुहका शब्द नहींहै • बल्कि हारीतने इसीलिये कृपा पात्र के तीन दिन छोड़िके चतुर्थीसे धनपीनेका आरम्भ करना बताया फिर इसीलिये शुक्लपात्र की द्वादशीतक धनोंकोपीकर पीछेके तीनदिन उपवासोंके अर्थवाकी रखवा दिये और छः उपवासोंका कराना यह महीना भरका नाम रख देनेसे आपही सिद्धहोता है कुछ खुल्लम कहिने की जरूरत नहींरही ॥ ३२५ ॥

यहां तक चान्द्रायणा और कृच्छ्र आदि सभी व्रत भेदोंके लक्षरामात्र कहेगये—
अत्र योगीश्वर अगिले परिच्छेद में इन सबके साथ जो कुछ विधान करना श्रेयस्कर
सो दर्शावेंगे ॥

अथ सर्वेषांपूर्वाक्तव्रतादीनामनुष्ठानसमयोपयोगक्रिया
विधिप्रकाशकोऽयं परिच्छेदः षडशोतितमः (८६)



इस परिच्छेद में चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि साधारणा सभी व्रत भेदों की क्रिया
विधि एकही कही जायगी कि जो सबके साथ काम आवै— अर्थात् जितने
व्रतहोमआदि प्रायश्चित्तोंके स्वरूप पहिले कहि चुके उनमेंसे जिसकीसो
का अनुष्ठान कोइ करना चाहै तिसके साथ रोजरोज क्याक्या क्रिया
करनी चाहिये सो सब यहां एक साथ इकट्ठी कहेंगे ॥

(साधारणी कर्तव्यता)

कुर्यात्त्रिपवणस्त्रायकीकृच्छ्रचान्द्रायणतथा । पवित्राणि जपेत्पिंडान्गायत्र्याचाभिमन्त्रयेत् ३२६

अर्थ:— त्रिपवणस्त्रायो वनिकर कृच्छ्र करै तथा चान्द्रायणा भी और पवित्र
मन्त्रोंकोजपै तथा गायत्रीसेभी पिंडोंको अभिमन्त्रितकरै—अर्थात्—कृच्छ्रयाचान्द्रायणा
कोद्विषों में पवित्र मन्त्रों को जपै और (उसमें जो पिंड नामसे गिनना प्रास खागे
कहे गये उन्हीं) पिंडों पर भी वेदके पवित्र मन्त्र पढ़ै तथा गायत्रीसेभी उन्हीं पिंडों
को पवित्र करै—इन बातोंका व्यौरवार निर्याय अत्रिकोक्ति में देखना ॥ ३२६ ॥

३२६ अधिकोक्ति—योगीश्वरने इसवचन में कृच्छ्रों और चान्द्रायणोंका मिला
भूला साधारणा एकही वर्ग दर्शाया है कि अधिक उत्तम फल चाहने वाला इस
रीति से करै (किन्तु यह तात्पर्य नहीं है कि दोनों को मिलाकर एक साथ करै)
तहां कृच्छ्र जो प्राजापत्य आदि वर्णान होचुके प्रसिद्ध हैं उनमें से जो कुछ कोइ क्रिया
चाहे यदा चान्द्रायणा क्रिया चाहै उसीका यह वाको रहा विधान है जो सर्वत्र नहीं
कहा जासक्ता था अत्र कहीते है कि—त्रिपवणस्त्रायान् का नियम लेकर उन व्रतों को
करै—परन्तु मिताक्षराकार इस पर यह अनुमत खडा करते हैं कि ३१८ तीन सौ
अठारह मूलश्लोक में जो तत्रकृच्छ्र कहा गया था तिसको छोड़िके यह नियम जानना

क्योंकि उसके मध्ये मनुने सकही बार स्नानका नियम साफ खोलिकर कहि दिया है (तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रोजलसीर्यूतानिलाय प्रतिव्यहंपिपेदुष्णान्मकृत्स्नायीसमाहितः) यह वचन उसी अर्थकोक्ति में आचूका तहां देखी—तिससे वैकालिक स्नान तप्तकृच्छ्र में न करै वाकी और सब तरहके व्रत विधानोंमें करै—व्योक्ति—मनुने इस का प्रकार भी इस तौरसे कहा है (विरहस्त्रिर्निशायांच सवासाजलसाविशेत् स्त्रीषु द्रपतितांश्चैवनाभिभायेतकर्हिचिद्) अर्थात्—कृच्छ्रादिव्रत करने वाला पुरुष तीन बार दिनके आदि अन्त मध्यमें और तीनिवार राति के आदि अन्त मध्य में स्नान के निमित्तसे वस्त्रों सहित जलाशयमें कूदि कर गोते लगावै (इस वचन का यह तात्पर्य है कि जिस किसी व्रतके विधान का प्रयोजन विशेषकर दिनमें होताहो तिस के मध्ये दिनहीमें त्रिकाल स्नान करै या जिस किसी व्रतका विधान प्रायः रात्रि में करना परै तहां रात्रिही में तीनिवार और दिनमें सामूली एकबार स्नानकरै अथवा किसी स्त्री शुद्ध आदिसे स्पर्शही अनायास होजाय या उनसे बात चीत करनीपरी हो तब उसके निमित्तसे चाहै रात्रिही या दिनहीय तत्काल स्नान करिके शुद्ध होजाय इसी लिये दूसरे अर्थश्लोकमें कहिदिया है कि स्त्री और शुद्ध और पतिर्तो से बातचीत न करै इसी ध्वन्यर्थके आशयसे छे बारका स्नान बताया कि एक दो बार से लेकर चाहै छेबार तक नहाना परै पर अपने शरीर को प्रत्येक समय शुद्ध बना राखै और यही आशय अगिले अन्य वचनोंसे भी देखिलेना किन्तु आगे चलिकर कोइ वचन दोही बारका स्नान बतावैगे तिससे छेबारका निर्विकल्प नियम नहींहै कदाचित् इसका निर्विकल्प मानाजाय तो फिर जहां दशदश हजार जपोंका आरंभ होय तिसमें पहर पहर प्रति स्नानके हेतुसे बड़ा भारी एक विघ्न खड़ा होजाय कि उस सामूली जप आदि कर्मको करने भी न देवे—हां—यह ठीकहै कि जो कोइ अति मूर्ख होनैसे जप संव आदि क्रियार्थको न करना जानै तिसकी बारम्बार स्नानका अवकाश भी मिलसक्ताहै तथा अन्य कर्मोंके अभावमें छे बारके स्नानही का यदि नियमसाधै तो यह उसकोलिये सक तपमें गिनती होसक्ताहै—इसीलिये—मितासरा कारने अपना यह अनुमत खड़ाकियाहै कि यह राति और दिनमें भी तीनतीनबार का स्नान सिर्फ उसके लिये जानना जो अति समय होके नियम साधिसके किन्तु सबके लिये नहीं =मितासरा कार फिर कहितेहै कि—वैशंपायन मुनिने दोबार भी स्नान बतायाहै सो उसकोलिये जानना जिसपर वैकालिक न होसके—तथात्र वैशंपायनः=स्नानत्रिकालमेवस्यावदिकालंवादिजन्मनः (इतितत्त्वियवगास्नाशक्तस्यवेदित

व्यसितिमिताक्षरा=अर्थात्-कृच्छ्रोंमें द्विजाती को तीनों कालमें स्नान चाहिये अथवा दोही कालकरै=और जो=गार्ग्य मुनिने (एकवासाश्चरेद्भैक्ष्यं स्नात्वा वा सोमपीडयेत्-तदतिशक्तस्यैव- एकवासाश्चरेद्भैक्ष्यं स्नात्वा वा सोमपीडयेत्) शंखेन पाक्षिकत्वाभिधानादितिमिताक्षरा) ऐसा नियम कहा है कि एकही धोतीसे स्नान करिके भिसामांगों किन्तु भीजी धारणा किये रहिके, मांगों बख निचोड़ै नहीं। यहभी नियम शक्ति वालेका समुभना जिसकी देहमें बलहो-एकही बख राखने मध्ये शंखने भी यह कहिकर दर्शाया है कि थोडासा हलुका भोजन करिके स्थंडिल परसेवै अर्थात् ऊंची माटी रेत आदिकी चबूतरा बनाके उसपर लोहिरहै कपडानहीं बिछावै ॥ स्नानविधानं-स्नान करनेका प्राविधान द्वा रीतने बताया है कि ऐसे करना= यथा=अथ बंशुद्धवतीभिः स्नात्वा अथमर्यादां तर्जले जपित्वा भीतमऽहृतं वासः परिधाय सास्नासौ स्थेनादित्यमुपतिथेत्=अर्थात्-तीनवार तीनों काल में स्नान करिके अथवा यथा संभवहो दोही कालमें स्नान करिके जल के भीतर अथमर्यादसूक्त को जपिके पश्चात् धुलाहुआ बख जो फटा पुराना न हो सो पहिन के (सदेवसौम्येदमग्रआसीत्) इत्यादि सामवेदीक सौम्य मंत्रों को पढ़ते हुये सूर्यके सन्मुख खड़े होकर उपस्थान कर्म करै (यह तो केवल स्नान करने की विधि कही चाहे तीन या दो अथवा एक ही बार का स्नानहो स्नान के साथही इतना करै ॥ अथ पवित्रमंत्रविधानं-फिर योगीश्वरने जैसा मूलश्लोकमें पवित्र मंत्र जपने कहे तिनको आसनपर बैठिके जपे- इसमें यह सन्देह रहा कि वे पवित्रमंत्र कौनहैं तिनको जपे सो सब आगे मिताक्षरा कार समुभाते हैं देखौं-पवित्राग्निच=अथमर्यादादेवकतः शुद्धवत्यस्तरस्समा इत्यादि वशिष्टादि प्रतिपादिताना मन्यतमान्यथ्याविकृष्टेयुक्तालेयुजपेत्-सावित्रीं वा-सावित्रीं वाजपेक्षित्यं पवित्राग्निचशक्ततः सर्वेष्वेवव्रतेष्वेवंप्रायश्चित्तार्थमाहृतः इति मनुस्मरणादितिमिताक्षरा=अर्थात्-पवित्र मंत्रोंके लक्षणा ८१ इकासीके परिच्छेद में वर्णन हुयेथे तहां ३०६ तीनसौ नौकी अधिकोक्तिमें वशिष्ठ के भी छे श्लोक देखौं (सर्वे वदपवित्राग्नि) इसको आदि लेकर लिखे होगे उनमें अथमर्यादा देवकत आदि अनेक मंत्रोंके नाम लक्षणा जैसे वशिष्ठजीने कहे तैसे और भी ऋषियों ने जहां कहीं पवित्र मंत्र दर्शाएहों तिन सबहोको पवित्र जानो उनमें जे कोइ सन्ध जिसके प्रयोजन वाले समझिपरै उसको उन्हींका जप करना चाहिये परच ऐसे समयोंपर करना चाहिये कि जिस बेरा प्रायश्चित्त संबंधी किसी मुख्य कामका कोइ सा नियत समय न हो अर्थात् मुख्य कार्यसि उपरालू जो फालत समय वचते दीखै तिनमें जप करना चा-

हिये जिससे मुख्यकामोंका विरोध न होसके यह तात्पर्य है—अथवा—इन मंत्रों का बोध जिसकी न होय वह सावित्री गायत्री को जपे क्योंकि मनुने भी यही नियम दर्शाया है कि चान्द्रायण और प्राजापत्य आदि ऋच्छोंमें भी सदा गायत्री जपे या अथमर्यरा आदि पवित्र मंत्रोंको या गायत्री और पवित्रोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार चाहें दोनों तरह के जप करै—और भी—चौरासी परिच्छेद में ३२० तीनसौ बीस वाली अघ्निकोक्तमें (अवजपादिनियमाः) इसी नामका पाठ देखीं उसमें गौतमने यह लिखाहै कि (रौरवयोधांजपेन्नित्यंप्रयुञ्जीत० इति तदपि पवित्रत्वादेवोक्तं नपुनर्नियमाय) प्राजापत्यादिमें रौरवयोध नाम का सामवेदोक्त जप रोज करै सो यह गौतमका कथन भी उस जघे केवल इसी अभिप्राय से समझना कि वह रौरव योध जप भी पवित्र मंत्रोंमें गिनतीहै जैसे यहां पर दर्शाए हुये अन्य मंत्रोंमें तैसा वह भी एक पवित्र मंत्रहै अर्थात् उस आज्ञासे नियमात्मक यह तात्पर्य नहींहै कि उसी को जपना चाहिये और मंत्रोंको नहीं बल्कि उससे एक निदर्शन पाया जाताहै कि प्राजापत्योंके प्रयोगमें चाहें उसको जपे चाहें किसी औरही पवित्र मन्त्रको जपे अथवा गायत्री जपे तिससे जो कोई सामवेदको न पढाहो तिसको रौरवयोधके बदले गायत्री आदिका जप करना नियम नहींहै—और जो—उन्हीं गौतमने उसी विधिके प्रसंगमें (न मोहमाय मोहमाय) इत्यादि मन्त्रोंको लिखाइके यह कहाहै कि इतनी ही आहुतें धोकी चाहिये सो इस बातको भी नियमात्मक न समझिलेना कि प्राजापत्योंमें सर्वत्र उन्हीं मन्त्रोंसे होम होता होगा सो कुछ नियम नहींहै—क्योंकि—मनु ने महाव्याहृतियोंसे भी होम करना कहाहै=यथाहमनु=महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहनम् अहिमासत्यमको व मार्जवंचसमाचरेत्=अर्थात्—कच्छ सावना के दिनों तक रोज रोज किसीकी सहायता विना अपने आपही (उंभुः उंभुवः उंस्वः उंमहः उंजनः उंतपः उंसत्यं) इन महाव्याहृतियोंसे घृतका होम करै—घृतही से क्योंकि (आज्यंहविरनादेशे नुहोतिष्टुविधीयते० इति परिग्रथवचनात्) परिशियमें यह आज्ञा लिखी गईहै कि जहां कहीं होम करने कहेहो पर कोई हवि का नाम नहीं बतायाहो तहां घृतहीसे होम किया जावे—यादि करौ कि यहांपर पवित्र मन्त्रों का वर्णन होरहाहै तिसमें महाव्याहृतियोंकी पवित्रता और उनका साधारण मंत्रत्व मनुकेवचनसे समझाया गया=उन्हीं व्याहृतियोंका साधारण मन्त्रत्व और पवित्रत्व भी यद्विंशन्मतके प्रथममें साफ साफ कहाहै=यथा=जपहोमादिथत्किचित्कच्छी त्तसम्भवेन्नचेत् सर्वव्याहृतिभिः कुर्याद्गायत्र्याप्रवावेनच (आदियद्गायाद्दक्तपर्याया

द्वितीयोपस्थानादेश्च इरां=अर्थात्-जप होम आदि और इसी आदि शब्दसे जलतर्पणा
 सूर्यका उपस्थान आदि जो कुछ कृच्छ्रोंमें कहा हो तिसका जानना या करना जहाँ
 सम्भव न देखिपरै तहाँ उन मन्त्रोंके बिना भी वही जप होम आदि सब काम व्या-
 हृतियों से गायत्रीसे और प्रणव उंकारसे भी करै अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रोंके न मिलने
 से कामकी न रोकै-इसीसे वैशम्पायनने ऐसा भी कहाहै कि (स्नात्वीपतिष्ठेदादि
 त्यं सौरोभिस्तुक्तांजलिः) अर्थात् स्नान करिके सूर्यके सन्मुख सौरो नामकी ऋ-
 चाओंको पढ़ते अंजली बाँधि खड़ा होय (इसमें सूर्यकी ऋचाओंसे उपस्थान बताया
 और पहिले इसी अधिकोक्तिमें हारोतने सोमकी ऋचाओंसे सूर्यका उपस्थान करना
 कहा था • तौ इन दोनोंका विरोध छोड़ि विकल्प सिद्ध होताहै कि चाहे इनसे करौ
 या उनसे करौ तुम्हारी इच्छा पर आरुढ़ है-इसी प्रकार और भी जे कोई पदार्थ
 इसमें कहीं पर विरोध देखिपरै तिन सबही का विकल्प मानि लेना और जो
 अविरोधी देखिपरै तिनके समस्त भेदोंका समुच्चय मानिलेना कि यहभी और वइभी
 करता चाहिये-जैसे एक टुकड़की अनेक शाखा उस टुकड़की एकही मूलपर आरुढ़
 होनेसे परस्पर भेदवाली नहीं कहातीहै-तैसे उसी शाखान्तराधिकरणा न्यायसे सब
 स्मृतियोंका मूल एकही धर्मशास्त्र रूपी टुकड़ कहाता है तिसकी अनेक शाखास्वपी
 स्मृतियां प्रसिद्ध हैं सबका एकही प्रत्यय होनेसे उन्हीं वैशम्पायन मुनिने कृच्छ्रोंके
 कर्मकी और उनमें जपकी संख्या की विशेषता तथा जप करने का प्रकार भी जुदे
 प्रकारसे कहाहै कि-ऋथमंविस्तृजं चैव तथा चैवार्धमर्षणस गायत्रीं वा जपेद्देवीं पवित्रां
 वेदमातरं शतमष्टशतं वापि सप्तमथवाऽपरम उपांशुमनसा वापि तर्पयेत्पितृदेवताः स
 नुष्यांश्चैव सूतानि प्रसास्य शिरसात्ततः=अर्थात्-ऋथम नाम के मन्त्रकी और विस्तृज
 नामके मन्त्रकी तथा अर्धमर्षण की या वेदोंकी माता अतिपवित्रा गायत्रीदेवी की
 जपे • रोज रोज कितना जपे सो कहिते हैं कि एकती या आठती या एकसहस्र या
 इससे भी अधिक अपनी शक्तिके अनुसार • किध रीतिसे जपे सो कहिते हैं कि उ-
 पांशु रीतिसे जपे या मनके भीतर जपे • उपांशुजप उसका नाम है जो कुछेक जीभ
 और ओठ हिलते चालूम होय पर शब्द उसका किसीको न छनिपरै किन्तु अपना
 शब्द अपनेको समझि परताहो और मनकी वृत्ति देवता में लगी हो • इससे दूसरा
 जप मनके भीतर वह जानना जिसके ओठ बन्द होय तिनके भीतर नोचे ऊपर की
 दाँत परस्पर न भिड़ने पावै और घाँटीमें जीभकी जड़से जप होताजाय मनकी वृत्ति
 देवताके रूपमें लगीरहे • जप करनेके बाद देवता और पितरोंका तर्पणकरै मनुष्यों

का भी तर्पण और भूतों का भी तर्पण करै सबको पीछे शिर भुंकाइ के प्रयाग करै—योगीश्वर ने मूलप्रलोकमें पवित्रसंघ जपने कहेथे तिनका च्योरा सब यहां तक निराय होचुका ॥ ० ॥ पिण्डाभिमंत्रणं च—गायत्री पढिकर पिंडोंको अभिमंत्रित करेना भी कहाया सो करना चाहिये—इसके मध्ये यमने एकजुदी विशेषता दर्शाई है कि—संगुत्स्यश्चे स्थितोपिंडं गायत्र्या चाभिमंत्रितस्य प्रायश्चात्स्यपुनः कुर्यादेत्यस्याप्ये भिमंत्रणम्—अर्थात्— पिंडोंको इसरीतिसे कि हाथकी अंगुरियों के अग्रभागमें एक पिंड थाँभिके एक संघ गायत्रीका पढ़ै तिसको खाइके आचमन करिके दूसरापिंड उसी प्रकार थाँभिके अभिमंत्रित करै पुन उसकोभी खाइके आचमन करै इसीक्रम से जितनेग्राह जिसदिन के सामूली बनहों संघको भोगै—पूर्वोक्तं निरायके अनुसार यहाँ भी यह बात दहिरी कि पिंडोंके अभिमंत्रण को मन्त्र जो गौतमने (३२४ तीन सौ चौबीसकी अधिकोक्ति में चान्द्रायण के विधानपर) दर्शाये थे कि (उँभः उँ भुवः उँस्रः उँ महः उँ जगः उँतपः उँ सत्यं यशः प्रोऊर्कड्ड उँजः तेजः पुस्यः धर्मः शिवः—इत्येतैर्ग्रामानुमंत्रणां प्रतिमंत्रं मनसानमः स्वाहा इति वासवो नैतैरेव प्रासान्भुंजीत) सो इनसे गायत्रीका विकल्प दहिरी कि चाहै गायत्री से भोगै या इन मंत्रोंसे भोगै— और जो—इन मंत्रोंसे पहिले गौतमने प्राप्त बनानेसे प्रथम उस हविष्यहीकों अभिमंत्रित करना इससंघसे बताया था कि (आप्यायत्संते पर्यासिनो नव— इति चैताभिर्हविष्यश्चानुमंत्रणां) सो यह एक जुदाकार्य होनेसे समुच्चय नहीं किया जाता है करने वालीकी इच्छारही स्वीकार करी या मत करी ॥ ० ॥ मुण्डनविधिप्रश्न—कृच्छ्र और चांद्रायण आदि व्रतोंकी यदि कोई पाप कियेविना केवल अपने अभ्युदयरूपी कृत्याणांकी अभिलाया से प्रारम्भकरै तिसको मुंडन कराने की अपेक्षा नहीं है—परन्तु जब कोई पापों को प्रायश्चित्त मध्ये इन्हींका प्रारम्भ करै तब आरम्भ करते समय प्रथम मुंडन कराना चाहिये क्योंकि (वपनव्रतं चरेदिति गौतमः) गौतम के इसवचन से यह भी कर्मोंकी विधिकी एक संग्रह है—इसका ध्योरा विशेषने दर्शाया है—यथा—कृच्छ्राणां व्रतं रूपाणां प्रभुके प्रादिवापयेत् कस्मिरोन्निश्रवावर्जं नितिकृच्छ्राणां व्रतं रूपाणां व्रतरूपीणां वपनादीन् यंगानिवक्ष्यते इति शेषः—अर्थात्— प्रायश्चित्तों में व्रतरूपी जो जो कृच्छ्र करनेहोय तिनके आरम्भ में दाड़ी मुखवालों आदिका वपन करावै परन्तु काँछ और देहके रोमा तथा शिखाके वाशोंकी छोडिके मुड़ावै—किन्तु वपन कराना भी व्रतके धर्मोंमें तिनती है कि इसके विना व्रतके धर्म नहीं पूरे होते हैं ॥ ० ॥ यह ज्ञान पहिले ७७ मतहतरि परिच्छेदमें आचुका है ३०२ तीनसौ एक मूल

प्रलोक पूर्वार्धसे देखीं० सभाके डारा प्रायश्चित्तका व्रतलेना कहा था तिसका लेना भी सिर्फ एकदिन पहिले सूचित हुआ है कि जिम्हदिन से प्रारम्भ करना चाहे तिसके पूर्वदिवस तीसरे पहर सभाके सम्मुख जाकर व्रतकी आज्ञा स्वीकार करे = यदाहवशि-
 य = सर्वोपायेभ्युसर्ज्यां व्रतानां विधिपूर्वकम् ग्रहरासंप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तोचिकीर्षिते
 दिनांतैनखरोमादीन्प्रवाप्यस्नानमाचरेत् भरुगोमयमृद्धारिपंचगव्यादिकल्पितैः स
 लापकर्यांकार्यवाह्यशौचोपासद्वये वंतभावनपूर्वेषांपंचगव्येनसंयुतम् व्रतंनिशामुखे
 ग्राह्यं वहिस्तारकदर्शने आचम्यातः परंमौनीध्यायनदुष्कृतसात्मनः सनः संतापनंतीव्र
 मुहहच्छोकसंततः = अर्थात् - प्रायश्चित्त करनेका विचार उत्पन्न होतेसमय सर्वत्र सभी
 उपायोंमें सबही व्रतोंका ग्रहरा करना विधिके सहित कहिके समुभाऊंगा - अर्थात्
 दिनके अन्तमें सौंभी जोर प्रायश्चित्ती पुरुष अपने शरीरके बाहरले अंगोंका शौच
 सिद्ध होनेके लिये बीसौंख और देहके रोमा तथा दाही मूछ आदि अच्छे मुद्दाइके
 स्नान करे० तहां राख गोबर मट्टी जल पंचगव्य आदि से बनाये हुये उबटनों करके
 मलाप कर्यरा करना चाहिये किन्तु देहमें इसप्रकारकी चीजोंसे मालिश कराइके
 मूल सुतवाना चाहिये० तिससे पहिले दाँत भी धोकर पीछे शुद्ध स्नानकरे तिस पीछे
 पंचगव्य से आचमन लेकर निपट संध्यारुमय तारे देखिपरने लगे तभी व्रतका स्वी-
 कार करे फिर ग्राम बसती से बाहर जाके शुद्ध जलका आचमन करिके इससे आगे
 मौन साधिकर अपने किये पापको याद करते हुये मनमें बारबार संताप और शोक
 भी लातेहुये उनआचरणोंका निर्वाहकरे कि जो जो काम जिस व्रतमें जपतप आदि
 करने कहे हैं - इसीप्रकार - स्त्रियों को भी व्रतोंका परिग्रह लेना चाहिये - परन्तु
 इतना भेद है कि स्त्रियों के बाल मूछ रोमा नखोंका सुबाना कटवाना नहीं चाहिये
 क्योंकि बौधायन की स्मृति में यह कहा है कि चांद्रायणा आदि ह्यच्छ व्रतों में जो
 पुरुषको विधि कही गई यही स्त्रियों को भी होती है घर मूछ बाल आदिका वपन
 मुंडन कर्म छोडिके बाकी सब होता है - यथा (चांद्रायणादिष्वेतदेवस्त्रियाः प्रस्युक्ते
 शवपनवर्जमितिवौधायनरमरसां - यहाँ - इस बातपर ध्यान देना चाहिये कि जिनके
 मिताक्षरा रूपी दीपक से इन दीपक जोड़ते हैं उन्हींने बग़िय और बौधायन के व-
 चनोंसे स्थवस्था खड़ी करी है कि जैसा वशिष्ठ के वचन में नखरोमा आदि पुरुषों
 को मुडाने कहे हैंसा बौधायनके वचनसे स्त्रियोंको नियेधजानों - परन्तु उन्हींने अपने
 लिखे वशिष्ठके दूसरे वचन में कुछ पकड़भो न खड़ी करी कि (कृच्छ्याणां व्रतरूपा
 णां शस्युक्तेषां दिवापयेत् कक्षिरोमशिखावर्जमिति) यही वशिष्ठका पहिला वचन है

इसमें पुरुषों को शिखा मुडाने का अपवाद किया सो भी सत्यप्रतीत होता है बल्कि कांडक बाल और खालमात्र के रोमोंका अपवाद किया सो भी सत्य प्रतीत होता है तथापि दूसरे वचन में उन्हीं वंशस्थने पुरुषोंको इन्हीं कर्मोंकी विधि कही तो यह एकही कर्त्तकै पूर्वापर वाक्यसे विरोध पायागया इसका कुछ समाधानभी न किया गया न इसपर ऐसे विरोध की एकड़ खड़ी करी गई—तथापि—सर्ग्यादा प्रियकै विचारसे यह समाधान प्रतीत होता है कि जब एकही मुखसे विधि और अपवाद दोनों कहेगये तो फिर मुडानेकी विधि उनके लिये समझना जो अतिशय दुराचारी अति स्वहोके पापही में बद्धि लगी राखते हैं—और रोमा आदि मुडारके अपवाद उनके लिये समझना जिनसे वैधाधीन पाप होगया हो तो फिर कुछ भी विरोध नहीं है और यही ध्वन्यर्थ अगले वचनों से मिलसक्ता है देखो ॥ ० ॥ पवन कर्म के बाबत एक जुदाभी न्याय कहा गया है—यथाहारीतः = राजावाराजपुत्रोवात्रा-ह्यगोवावहृश्रुतः केशानांबपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्केशानारक्षणार्थं तद्विद्ययां ब्र-ह्मचर्ये तद्विद्ययां तत्र तेषां दक्षिणां विद्ययां भवेत् (सतृष-महापातकादिव्योर्विद्येयाभि प्रायेणादृष्ट्यं) विद्वद्विप्रनृपस्त्रीरानेप्यतेकेशवापनस ऋते महापातकिनो गोहन्तृश्चा वकीरिणः—इति मनुस्मरणात्—अर्थात्—हारीतने कहा है कि जहाँ प्रायश्चित्ती पुरुष कोई राजा होय अथवा राजाका पुत्र होय (यहाँ पुत्रके उपलक्षणमें बद्धिया जारीरदार भी राजाके पुत्रही कहातेहैं सो समुझेजायँ) अथवा बहुश्रुत विद्वान् ब्राह्मण होय तो भी बालों का बपन मुगडन कराइकेही प्रायश्चित्त का प्रारम्भ करे छूत्कारा इससे किसी का भी नहीं है परंतु यदि नमें कोई केशोंका बचाना चाहै सो केशों की रक्षा हेतुसे इना व्रत आचरै जहाँ कहीं दुग्ना व्रत किया जाय तहाँ व्रतके पूरे होने वाली दक्षिणा भी दूनी होय (परंतु यह नियम केवल महापातक आदि बड़े श्रेयपरसमुझना क्योंकि अगले मनुवचनका साफ यही प्रयोजन है कि) विद्वान् ब्राह्मण तथा राजा तथा स्त्रियोंके बालमुडाने नहीं चाहिये परंतु महापातकी और गोहंता और अवकीर्णों ब्रह्मचारी को छोड़ि के यह नियम समुझना अर्थात् वही तीनों विद्वान् विप्र वा राजा वा स्त्री यदि महापातकी हुये हों या गोहत्या करी हो या ब्रह्मचर्य छेकर अवकीर्णों हुये हों तिनको प्रायश्चित्त के प्रारंभमें अवश्य मुडमुडाना होगा किंतु मुडाने का नियम इन पापोंसे उपरालू में समुझना ॥ ० ॥ जावाल मुनिने इस बातपर कुछ और भी जुदा प्रकार कहाहै = यथा = आरभे सर्वं कृच्छ्राणां समाप्तोच दिशेयतः आचरेन्वहः शालाग्नौ जुहुयाद्याहती-पृथक् यादक्यद्विंशतितं गोहिरण्यदिवक्षिणा

=अर्थात्—सर्व कृच्छ्रों के आरम्भ समय और समाप्ति के समय भी जुदा करके उस अग्नि में घीसे व्याहृतियाँ जुदी जुबी होमें जो घरकेबाहर की अग्नि घरसे बाहर होय किंतु ऐसा होस घरमें नहींहोता और व्रतकी समाप्ति होजाने पीछे आदमीकरे और गाय सुवर्णा आदि उत्तम वक्षिणाभी देवें ॥ ० ॥ यमने इसपर और कुछ विशेषता दर्शाई है=यथा=पश्चात्तापोनिवृत्तिश्चजानां चांगतयोदितष नीमित्तिकानां सर्वे यांतयात्रैवानुकीर्तनम्= अर्थात्—सब तरह के प्रायश्चित्तों का अंग प्रत्यंग खूपी वे काम, कहेगये हैं जिनके होनेसे व्रतोंकी सिद्धि हुआ करती है। तिनमेंसकापश्चात्ताप है कि मुझसे ऐसा कर्म होगया धिक्कार है इत्यादि। उन्हीं में, दूसरा संक निवृत्ति है कि फिर ऐसा काम कभी न मुझसे होना चाहिये अनुक प्रकारोंसे निवृत्त रहिसक्ता हूँ इत्यादि। तीसरा, ज्ञानहै कि जहांतक होसके वार वार किया करे गहिरे जल में बहुत से गोता लियाकरे मन्त्रों के विधान से ज्ञान किया करे (इसीलिये त्रिव्यवसा का विधि पहिले कहचुकेहैं) इत्यादि। चौथा अनुकीर्तनहै कि अपने, किये पापको चारखार सबको, सुनाया करे तिससे भी पापकी हानि, होतीरहती है अर्थात् मनने वालोंको थोड़ा थोड़ा बँटि जाता है [इसमें मन्देह न करना जैसे कथा पाठ पूजा के मन्त्र आदि सुनिके कुछ अच्छा फल मिलता है उसी प्रकार पापकी बात सुनिकेभी अवश्य उसका फल भाग मनने वालों को पहुँचताहै जैसे वायुके घोषसे सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों का कुछ कुछ फलभाग सबको नाकोंमें बिना चाहे पहुँचि जाताहै तैसे अच्छी बुरी दोनों भाँति की वाणी के स्वरसे कानोंके द्वारा असर पहुँचता है—इसी लिये—मनुने इनवातोंके जुदेजुदे वचन कहिकर सबका व्योरा मनभाया है=यथा=ख्यापनेनानुतापेनतपसाऽध्ययनेनच पापकृन्मुच्यतेपापात्तथादानेनचार्पादि ॥ अथायथानसोऽधर्मस्वयं कृत्वा नुभायते तथातथाह्वयेवाहिस्तेनाधर्मणमुच्यते ॥ यथायथामनस्तस्यदुःकृतं कर्म गृह्णति तथातथाशरीरं तत्तेनाधर्मं गामुच्यते ॥ कृत्वा पापं हि स तप्यतस्मात्पापात्प्रमुच्यते न च कुर्यात्पुनरिति निवृत्याप्यते तेषः ॥=अर्थात्—मनुकहितेहैं किपापी अपना पाप सुनाते रहने सेभी शुद्ध होता तथा अपने मनमें धिक्कार आदि प्रकारों से पछतावा करते रहिकर भी शुद्ध होता है और कठिन तपकरने सेभी तथावेदपाठ गायत्री आदि मन्त्रोंका जप करने से भी शुद्ध होताहै तथैव दानकरने सेभी शुद्धहोता है ॥ मनुदय अपने अधर्मकी जैसे जैसे आपही अधिक लोगोंको सुनाता है तैसे तैसे सर्पको तरह पुरानी खाल से छोडिके शुद्ध होजाता है ॥ जैसे जैसे पापीका अन्त-करणा अपने क्रिये खोटे कर्मकी निन्दा अपने मनको भीतर करताहै तैसे तैसे उसका

शरीर उसअवर्षसे वचताहै उसवचनेसेभी पहिजा पाप क्षीणहोताहै इसीलियेपूर्वाक्त यमके वचनमें ये बातेंभी प्रायश्चित्तका अग उटिहराईगई ॥ पाप होजाने पर सन्ताप करिके वह पापी शुद्धहोताहै जो सन्तापकेसाथ सेसीप्रतिज्ञारोपै कि फिर आगे को नया पाप कभी न करूँ इस प्रकार अपने चित्तको हटाकर शुद्धहोताहै तिससे प्रायश्चित्तोंका यहभी एकझंगहै ॥ यहाँ ये अनुकेवचन इसप्रसंगमें स्थापनकियेगयेहे कि प्रायश्चित्तोंकाअंग इनवातोंको सभम्भिके रोजरोजको विधिकेसाथ साधना इनकी भी करी ॥ इनकोसिवाय बहुधा वातोंका त्यागभी ब्रह्मवर्षके हेतुसे कर्तव्य है=तदाइ यम.=गात्राभ्यंगंशरीरभ्यगर्तांशुलसनुलेपनमत्रतस्योवर्जयेत्सर्वयज्ञान्यद्वलरारागत=अर्थोत्-देहकाउबटना तेलका लगाणा गिरकेश तमलनाचूषडना पानखाना सुगन्धोंका लगाना और कोईचीज ऐसी जो लगाने या खानेसेशरीरमें रागरावत या बलउत्पन्न करतीहो तिसकासेवन इनवातोंको बहुपुस्त्य नकरै जो व्रतमें लगाहो (मिताक्षराकार कहिते ह कि इत्यादि और भौतिकी कर्तव्यता जो अन्य स्मृतियों में देखिपरै सो भी जाननी चाहिये)ऊपर कही विधियों के अनुसार व्रतको धारणा करिके अवश्य पूरा करना चाहिये. अन्य या शेषभागी भी होताहै यदि नहीं पूराकरै=तदाह छागले-य=पर्वव्रतंगृहीत्वातुनाचरेत्कामतोद्दियः जीवनभवतिचांडालोमृतःश्वाच्चैवजायते=अर्थात्-पहिले व्रतको लेकर पीछे जो कोई अपनी इच्छा से नईकरै वह जीवता हुआ चांडाल कहाताहै और सरे पर कृता होके जन्मता है. यह विस्तार केवल सं-क्षय के निमित्तसे दर्शाया गया (इस परिच्छेद के विचारों में सर्वत्र ७५ पचहत्तरि परिच्छेदका संबंध मिलारहेगा कि इसके साथ उसकी भी विचारना ॥ ० ॥ इस प-रिच्छेदकी व्यवस्था में चिकित्त और यदकाल क्षातोंकी विधि यद्यपि प्रवानता स-हित कही गई है तथापि इसके साथमें ७५ पचहत्तरि परिच्छेदवाली व्यवस्था का विचार करना आवश्यकहै कि उसके द्वारा देशकाल ऋतुओंके अनुकूल विधिकर-वाइजाय अर्थात् जहाँ गरमीका देश या गरमीकी ऋतुवर्तमान हो तहाँ अवश्यभाव से यदकाल या चिकित्तका वर्तना कि प्राजाय इससेविपरीत जहाँ शीतदेश या शीत ऋतु फैलीहो तहाँ अति बलवान् देहवालेके निवाय साधारण प्रायश्चित्तोंकोज्ञान की आवश्यकता मे अधिक सन्धों पर भी चाहिये अन्यथा एक दो कालका खान चाहिये कि जिससे प्रवान कर्मोंका अवरोध न होने पावे. इसीलिये इसअधिकारिक के प्रारम्भ में तत्रअच्छेद के प्रसंगसे चर्चा इसका आचुकाहै बहुभी देखो ॥ ३२६ ॥

इति सर्वव्रतांगभूतविधिरूपनपरिच्छेदः ॥

इति सर्वकृच्छ्रादिव्रतभेदानां दानजपहोमादीनां च

स्वरूपविधायकंप्रकरणम्

• पंचपरिच्छेदस्य •

—*—

इसप्रकरणा में समस्त पाँच परिच्छेदही अर्थात् ८२व्यापी परिच्छेदको प्रारम्भसे लेकर ८६ छहासी परिच्छेदकी अन्तमें आकर यहाँ तक पाँचपरिच्छेदोंसे प्रकरणापूरा भया• क्योंकि एकही प्रयोजन के पाँच भेद जुड़े किये गये इनमें भी सबसे पिछला रक छहासीका परिच्छेद अपने संघाती चारों परिच्छेदों पर अविद्यता है तिससे सबही को साथ इसका विचार करना चाहिये ॥

अगिले परिच्छेद में यह युक्ति निकासी जायगी कि सभी व्रतदान आदि सभी पापोंपर आखड होसकते हैं परन्तु आखड करसकना बहुत कठिन है तिसका विचार बहुधा प्रकारों से दशावैगे ॥

अथ अनादिष्टपापेष्वपि चांद्रायणादिकैः सर्वैरपि व्रतभेदैः

समस्तैर्व्यस्तैवाऽऽम्नातैरनाम्नातैर्वाशुद्धिर्भवतीत्यादिव्रत

होमजपदानादीनां सर्वसाधारणविचारप्रधानोऽयं

परिच्छेदः संप्राणीतितमः (८७)

—*—

इस परिच्छेदमें प्रधानता इस बातपर आखड है कि जिन पापों पर किसी व्रत का आदेश नहीं कियाहो उनमें भी येही सब कृच्छ्र और चान्द्रायणा आदि प्रायश्चित्त बताये जासकते हैं—दूसरा—यह भी तात्पर्य है कि जिन प्रायश्चित्तों का जिन पापोंपर आदेश किया तिनमें और जिनपर उनका नहीं आदेश किया तिनमें भी सब सभीसे सद्युक्त किये जासकते हैं—इसका व्यौरा नीचे परिच्छेद विवेकसे देखी ॥

परिच्छेदविवेकः—अर्थात् इस परिच्छेद के स्वरूप मात्र का तात्पर्य विवेचन करो। चक्रमें विस्तार नहीं किया जासक्ता तिससे उसी संक्षेप का यह द्यौरा है कि—यद्यपि सर्वपापोंके नामभेद कहि कहि उनके प्रायश्चित्त भी साथही समझाते रहे • तथापि यह ससार सागर अपारहै न जानें किस बेरा किस जगह किन मनुष्यों से कैसा कोई अपूर्व पाप होजाय जिसका विशेषनाम धर्मशास्त्रमें नहीं निकसे तिस से प्रायश्चित्त विचारने वाले पण्डित की बुद्धि चक्कर खाने लगे क्योंकि जिसका नाम नहीं तिसका प्रायश्चित्त भी क्योंकर लिखा मिल सके तहां पर यह तात्पर्य नहींहै कि नाम लिखा न होने से प्रायश्चित्त न करना चाहिये अर्थात् उस पर भी प्रायश्चित्त कराया जाय और इन्हीं सब कृच्छ्र प्राजापत्य और चान्द्रायण आदिमें कोईसा बताना होगा उसीबताइ सकनेकी रीतिबड़े शोच विचारके साथ इस परिच्छेद भरमें जानी जायगी—परंतु—केवल यहीनहीं बल्कि दूसरा यह भी तात्पर्यइसी परिच्छेद मे आरूढ कियागयाहै कि जिनजिन व्रतादिक प्रायश्चित्तोंको जिन पापों पर नहीं कहा तिनपर भी करवाये जासक्ते हैं अर्थात् जिनपापों पर जिन व्रतों का नाम रक्त्वागया कि इसके करनेसे शुद्धि होजायगी सोतों किये जाँहींगे वरन उन्हीं पापोंपर वेभी कियेजासक्तेहैं कि जिनकाआदेशउनपर नहींकिया अन्यपापोंकेसाथ चाहै किसी स्थलपर कियागया हो—किंतुकृच्छ्र यहीनियम नहींहै कि जिस पापके नामसाथ जिसकिसी व्रतदान आदिप्रायश्चित्तका नाम धरागया हो उसीसे निर्विकल्प शुद्धिहोगी और किसीप्रायश्चित्तसे न होगी—इसीधार्तिका मिटाना चाहिकर यह जुदापरिच्छेद कहागया है—और दीकठीक प्रयोजन इसकायहीहै कि सबतरह के प्रायश्चित्त जोकृच्छ्र किसी बहानेसे वरान्त कियेगये सोसर्वथ सबतरहके पापों पर कराये जासक्तेहैं जहाँ जैसासंभव देखि परै कि जिस पापके ऊपर जो प्रायश्चित्त लिखा देखै और उसका साधन होसकना प्रायश्चित्तरीसे दुर्घट देखि परै तहां उसके पलटे औरही किसी प्रायश्चित्त का आदेश किया जासक्ता है जो उसीकी बराबर समझा जाय जिसकी प्रायश्चित्त पुरुष अपनी शक्ति आदि के अनुकूल कर भी सके • इतनी बड़ी कथाकी योगीश्वर (अनादिष्टेयपापेषु) इसी एक पावसे यथांचेगे सो नीचे देखि लेना • तहां इस सकही अथवा दो पादों से अनेक तरह के ध्वन्यर्थ सो समझि पाना बड़ा दुर्घट होजाता तिसकी सुगमताके निमित्त मे मितासराकारने प्र-
न्यान्तर के सग्रहसे व्यवस्था बिस्तृत करी सो सब आगे परिच्छेद भरका आलीडन मयन करिके समझी जायगी उसीका सारांश लेकर (बतौरखुलासह) सयांदा प्रिय

अनुवादकारने यह कथा निरूपणा करी अब इस कथाके अवलम्ब से उसको भी हर एक पाठक समझने अन्यथा यदि यह फालत कथा नहीं लिखी जाती तो फिर उसमेंसे कोई बात समझिपाना भाया अनुवाद होते हुये भी महासमुद्रकी गोतहखोरी से कम न होता • क्योंकि महाशय मिताक्षराकारने ऐसी अटपटी अनवेष्टे व्यवस्था धरी है कि बुद्धिमान भी समझिपावै और नहीं समझिपावै पछिताताही रहिजाय • यह नहीं कि वे उसको ह्रम रीतिसे नहीं समझाइ सक्ये या उमवातका कोई सार्गही और नहीं था क्योंकि ग्रन्थकार पुरुषोंको लिखने समझानेकी कल्पनामध्ये नाना प्रकारकी रीतें मालूम होतीहैं परन्तु (कर्तुरिच्छागरीयसी) अपनी इच्छाके आचीन जहाँपर जैसा चाहें तहाँ तैसाही लिखते हैं यहां पर उनको यही स्वीकार था • इसारा केवल यह तात्पर्यहै कि ऐसी कोई लपेट की आइ बाकी न रहिजाय जिससे मुख्य प्रयोजनके समझनेमें भ्रांति खड़ीहोय अन्यथा यही बातों ऊपर चक्र में देखो कि चार पांच पङ्क्तियोंमें कङ्कुकुके उसोका इतना बड़ा व्योरा कहा • तथापि यह मन्वेह अभी खडाहै कि जब सभी पापोंपर सभी प्रायश्चित्तों का अवल बदल होसक्ताहै तो फिर छोटे बड़ोंकी वियमता वाला विरोध क्योंकर शांत होगा कि जिन प्रायश्चित्तोंका स्वरूप छोटाहो वे क्योंकर बड़े प्रायश्चित्तों के स्थान पर शोभित होंगे इत्यादि मन्वेह सब अपने अपने ठिकाने पर निपटायें जायेंगे ॥

(अनादिष्टानामप्रयोगः)

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिर्चांद्रायणोत्तमः † ३२७ (पूर्वार्ध)

अर्थः—अनादिष्ट पापोंमें चान्द्रायणसे शुद्धि चपुनः अन्य व्रतोंसे भी (तथाच जार स्योभयत्रयोगेऽर्थांतरसिद्धिस्तु) चकारको पापों के साथ भी संयुक्त करने से दूसरा भी अर्थ सिद्ध होता है कि अनादिष्ट पापों से भी चान्द्रायण से तथैव अन्य व्रतादि कोंसे भी शुद्धि होतीहै—अर्थात्—चान्द्रायणसे भी तथैव अन्य भौतिके सब प्रायश्चित्तों से भी अनादिष्ट और आदिष्ट सबतरह के पापोंकी शुद्धि होसक्ती है यदि येष्ट विचारले कार्य कियाजाय (आदिष्ट उन पापोंको जानना जिनपर किसी प्रायश्चित्त का आदेश कियागयाहो • यहां यह तर्क है कि सभी पापोंपर किसी न किसी प्रायश्चित्तका आदेश लिखा होताहै • तिससे ऐसा अर्थ लगाना कि उन्हीं प्रायश्चित्तों के मुकाबिल उनको आदिष्ट कहिना चाहिये जिनका आदेश जिन पापों के ऊपर लिखाहो • इसी रीतिसे उन प्रायश्चित्तोंके मुकाबिल अनादिष्ट पाप समझने जिन

का आदेश जिनपर नहो • और उनको भी अनादित्य पाप जानना जिन पर निषेध किसी भी प्रायश्चित्तका नाम न धरामयाहो ऐसे देवयोगने कदाचित् हाथ आसक्तो हैं इसी लिये इनका भी इशारा जाहर किया गया (इन बातों का विस्तार ऊपर लिखिचुके तहो देखो (यदि ग्रैख विचारसे कार्य कियाजाय यह कहा सो उस ग्रैख विचारको अधिकोक्ति में सीखना । ॥ ३२७ ॥ (पूर्वाधिश्लोक) ॥

३२७ अधिकोक्ति—योगीश्वर के मूलश्लोक पूर्वार्धके अन्तमें चकार है तिसके अर्थ जो कुछ ऊपर कहि चुके उनसे उपरालू भी कुछ और तात्पर्य केवल उसी चकारसे समुच्चय मानागया है कि (च शब्दात् प्राजापत्यादिभिः कृच्छ्रैरेवसंहितैस्तन्निरपेक्षैवाशुद्धिः) प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंसे एक एक जुदे जुदेसे भी शुद्धिहोती है या कईको मिलाकर एक साथ भी करनेसे होती है इसका इष्टांत जैसे चान्द्रायण और प्राजापत्य और अतिकृच्छ्र तीनों आगे पीछे क्रमसे कियेजायँ या इनमेंसे एक ही कोई कियाजाय यथा सम्भव होय=इसका प्रमाण भी यद्विश्रामत का वचनहै कि=यानिकानिचपापानिधुरोर्युक्तशशिच कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैस्तुशोधयन्तेमनुस्त्र वीत=अर्थात्=बड़ेसे बड़े भी जे कोई पापहो तिनको मनुने सुभायाहै कि • कृच्छ्र • अतिकृच्छ्र • चान्द्रायण • इन तीनोंका क्रमसे एक साथ साधन होय तो सुचिजाते हैं • (यही इन तीनोंका समुच्चय कहागया जैसा इन तीनोंका समुच्चय तैसा और जप दान होम आदि का भी समुच्चय होसक्ता समक्षिलेना वहाँ जैसा उचित जानि परै) यही नियम नहो कि पूरे तीनों का समुच्चय होताहो किन्तु उग्रना ने दोहो का समुच्चय दर्शाया है कि=दुरितानांदुरिष्ठानांपापानांमहतामपि कृच्छ्र चान्द्रायणाचैव सर्वपापप्रणाशनम्=अर्थात्=उपपातक रूपी दुरितोका और पातकरूपी दुरिष्ठो का और महापापोंका भी सबका नाश करनेवाला कृच्छ्र और चान्द्रायणको जानो जो आगे पीछे लगना कियाजाय (जैसा इन दोनोंका समुच्चय कहा तैसा औरों का भी परस्पर दो मिलिके समुच्चय होना समक्षिलेना वहाँ जैसा प्रयोजन होय=इतना कहिकर मिताक्षराकार लिखतेहैं कि (गौतमेनतु • कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणामिति सर्वप्रायश्चित्त मनासकरणैन्देव निरपेक्षताकृच्छ्रातिकृच्छ्रयो सुचिता चान्द्रायणा स्यचतन्निरपेक्षता इतिशब्देन त्रयाणांसमुच्चय) अर्थात्=गौतम ने सर्व प्रायश्चित्तों की समस्या करिके चान्द्रायणको कृच्छ्र अतिकृच्छ्र इन दोनोंसे मगायर (निरपेक्ष) वेवास्ते ढहिराया और इन दोनों को उसी चान्द्रायण का निरपेक्ष ढहिराया और भी इति शब्दसे तीनोंका समुच्चय=फिर कहिते हैं कि (लघुसंयत्तनादियेप्राजापत्य

समाचरेत्) इस वचनमें चतुर्विंशति मतवालोंने केवल प्राजापत्यही का नैरपेक्ष्य (वे वास्तव्यो) सबसे जुदापन अनादित्य पापके मध्ये दर्शाया किन्तु • इस वचन का यह अर्थहै कि लघुदीय रूपी अनादित्य पापके मध्ये प्राजापत्य आचरै (यह वचन इस ध्वनिपर कहागया है कि अनादित्य प्रायश्चित्त वाला पाप जब कभी उत्पन्नहोगा तो प्रायः अतिछोटे पापोंमें गिनती होगी क्योंकि बड़े पापोंसे लेकर छोटां तक सब हीके जुदे जुदे नाम कहिकर उनके साथ प्रायश्चित्त भी कहे गये तिससे बड़े पापों में कोई भी अनादित्य कभी नहीं पैदा होसका है—मिताक्षराकार फिर कहितेहैं कि—गौतमने भी प्राजापत्य आदिकोंका परस्पर सबका नैरपेक्ष्य अर्थात् जुदापन भी दर्शाया है—यथा=प्रथमचरित्त्वाऽशुचिपत.कर्मण्योभवति द्वितीयचरित्त्वायदन्यममहा पातकेभ्यः पापङ्गरुतेतस्मान्मुच्यते तृतीयचरित्त्वा सर्वस्मादेनसोमुच्यते • इतिमहा पातकादपीत्यभिप्रेत=अर्थात्—इसमें निरपेक्षता जुदाई का यही एक चिह्न है कि किसी व्रतका नाम नहीं धरा चाहें कोईसा सकही तिसको पहिलीबार उसको अर्चि भर आचरित करिके अशुद्धतासे पवित्र होकर सुकर्म करनेके योग्य होजाता है फिर शुद्ध होके दूसरी बार आचरित करने से जो महापातकों के उपरालू उनसे नीचे दर्जेमें बड़ा पाप किया ही तिससे क्षुद्रि जाता है एवं तीसरी बार करने से सभी पाप मुचिजाता है अर्थात् बड़ेसे बड़ा महापातक भी मिटि जाता है—मनुने भी यह कहाहै (पराकीनामकृच्छ्रोऽयसर्वपापापनोदनः) यह पराक नाम कृच्छ्रहै सोई सब पापोंका विनाश करनेवाला है (अर्थात् छोटे पापोंपर एक बार बड़े पापों पर दो तीन बार बहुत बड़े पापोंपर अनेक आठ्ठीं साधन करनेसे अकेलाही सबतरह के पापोंपर काम देसक्ता है किसी दूसरे व्रत का शामिल करना कुछ आवश्यक नहीं यह तात्पर्य है कि पराक व्रत भी सब तरहके पापोंपर किया जासका है कुछ बही नियम नहीं कि जिसपर उसका नाम धराहो=हारीतने भी सर्वपापों पर अनेक प्रायश्चित्तों का जुदा जुदा वर्तवा करना कहाहै—यथा=चान्द्रायणायावकश्च तुलापु रुधस्ववा गवां चैवानुरामनं सर्वपापप्रणाशनम्—तथा—गोमूत्रगीमयक्षीर दधिसर्पिं क शोदकस सक्ताचोपवासप्रवृत्तपाकंसिपिशोषयेत्=अर्थात्—चांद्रायणा या यावकव्रत एक महीने गोमूत्रके रंघे जो खाकर किया जाता है या तुला पुरुष नामकाव्रत बरान होचुका है वही या गोमूत्रके पीछे फिरते रहने का व्रत बरान होचुकाहै वही अपने पापको हंसियत के बराबर साधन करने से सर्वपापों को नाश करने हार ये सब सकही सक होतेहैं—तथा—गोमूत्र•गोबर•दूध•दही•घृत•कशोदक पीना और सक

दिन कोरा उपवास करना यह चांडाल को भी शूद्र करसकाहै फिर अन्य पापोंकी क्या गिनती रही (तात्पर्य इसका भी वही है कि पाप की बड़ाई अनुसार आठत्तों साधीजाय कुछ एकहीबार करनेसे वडे पाप नहीं मिततेहें यह सर्वत्र समझे रहिना= जैसा उन्होंने इारीत ने तप्तकृच्छका रूप समुभाकर उसका फल इसरीति से कहाहै कि=स्यकृच्छोद्विरभ्यस्तःपातकेभ्यःप्रसोचयेत् विरभ्यस्तोयथान्यायशूद्रइत्यान्यपो हति=अर्थात् यह तप्त नामा कृच्छ दो बार साधन कियाहुआ उपपातकोसे छुड़ाता है सेसेही यथा न्याय तीनबार साधन कियाजाय तो यह शूद्र मारेकी इत्यासे छुड़ाताहै (सेसेही बढिया पातकों पर तीनसे भी अधिक आठत्तों कल्पित करोजाय समुभिलेना कोकि यथा न्यायका ध्वन्यर्थ यहीहै=उशनाने भी यही तात्पर्य दर्शायाहै कि कहे विनकहे सर्व पापोंपर हरकोईसा प्रायश्चित्त लगाया जासक्ताहै =यथा=यत्रोक्तयत्रवानोक्तं महापातकनाशनस प्राजापत्येनकृच्छे राशोवयेचाप्रसंशयः=अर्थात्=जहां उसकानाम कष्टिके जतायाहो या जहां कहीं नहीं भी कहाहो तो भी महापातक पर्यन्त नाशकरताहै तिससे जहांचाहै तहां प्राजापत्यनामी कृच्छ से पापोंका विशेषन करै कुछ सन्देह नहीं (सर्वत्र कहिनेका वही तात्पर्य है कि जैसा पाप हो तैसी आठत्तों बढावै=मिताक्षरा कार कहिते हैं कि प्राजापत्य आदि जिन व्रतोंके नाम अच्छे प्रसिद्ध हैं तिनको अनारिष्ट उपपातक आदि सभी में एक बार पापहोनेकी अपेक्षा यथा बारम्बारकिये अभ्यासोंकी अपेक्षा यथा संभवचाहें जुदे किसी एकही प्रायश्चित्तको लगावै अर्थात् एकहीकी अनेक आठत्तों जितनी चाहै तितनी बढावै अथवा प्रसिद्धमात्र सबही प्रायश्चित्त लगातारजोइँ अर्थात् एक परप्रचरणा इसका एक उसका एक तीसरेका इत्यादि सबका वत्तोंवा लगातारकरै तो भी कुछ दोष या विरोध कभी नहीं है-तथैव-जिन महापातक आदि में विरले व्रतोंका आदेश लिखा होय तिन आदियों में भी यदि पाप का अभ्यास बारम्बार कियागयाहो तो फिर पापकी बढवारी अनुसार चाहें उसी आदिष्ट प्रायश्चित्तकी आठत्तों बढावै चाहे जुदे नामवाले व्रतोंको लेकर उस आदिष्टकेसाथ जोड़ि लेवै= फिर कहितेहैं कि इसीलिये यमने भी (यत्रोक्तयत्रवानोक्तं) इत्यादि वचन जैसा उग्रनाका लिखागया तैसा कहाहै और=गौतमने भी उक्त निष्कृति पापोंके संग्रहात्थ ही सर्व प्रायश्चित्त सेसा पद कहाथा-तथा-जो कि उन्होंने गौतमने (प्रथमंचरित्वा द्वितीयचरित्वा इत्यादि वचनमें यहकहाथा कि तीसरा परप्रचरणा करके सभी पाप मुचिजाताहै) सो यहसभी पापकहिना भी महापातकोंके अभिप्रायपरजानना किन्तु

सबकहिनेसे तुच्छपापोंका प्रयोजनसतसमुत्तिलेना औरियह भी शोचौ कि सहापातक
 ऐसा कोई नहीं जिसका प्रायश्चित्त न कहागयाहो तिससे उन्हींपापोंकायहप्रसंगहै
 कि जिनके ऊपर कोईसा प्रायश्चित्त भी यद्यपि लिखाहो तो भी प्राजापत्य आदि
 अन्य प्रायश्चित्तभी यथा सम्भवकिवी प्रयोजनकीजरुरतमें सनस्त व्यस्त इकारों से
 जोड़े जासके हैं ॥ ० ॥ **संप्रयोजनप्रकारः**—अनन्तरोक्तत्रादि प्रायश्चित्त किसी
 कार्यान्तरमेंजोड़ेजानेके प्रकारभी अनेक हैं सो यथा क्रमसे यहां दशति हैं कि—जिन
 पापोंपर बारहवर्षका प्रायश्चित्त लिखाहो तिनमें प्राजापत्य इस प्रकार से जोड़ा
 जासक्ताहै कि उन्हीं बारह बर्यौ की अवधिमें अनेक प्राजापत्य साधन किये जायँ तो
 यह परम उत्कृष्ट फल देने वाली एक विशेषता जानो सो पापके अतिशय गहिरापन
 में यह प्राजापत्य का आदेश करना सूचित होताहै तिसका यहलेखाहै किप्राजापत्य
 नियमसे बारह दिनका प्रसिद्धहै तिससे एकमासमें आठहैं होतेहैं सालभरके पूरे तीस
 ह्येवारहबर्यौके ३६० तीनसौ साठि प्राजापत्य होतेहैं जहां पर इनका होना आव-
 प्रयुक्तहै तहां भी बिकल्पसे कियेजासक्तेहैं अर्थात् पराशक्तिमात्र पृथक् करसकेगा
 अन्यथा जिसमें इतनी शक्ति न होय सो इतनी तीनसौसाठि धेनुका गोदानकरै अर्थात्
 बारह बारह दिनपोछे एकगोदान दूधदेतीहुई सबत्साका बारहवर्ष पर्यन्त करतारहै
 तो भीउतने प्राजापत्य करनेका फल प्राप्त होताहै यदि इसकाभीवानक असम्भवहो
 तो सोरह मासे सुवर्णाकी अग्रफर्तीही तीन सौ साठि देनी चाहिये—जैसा यहस्मृत्यन्तर
 वचनहै—प्राजापत्यक्रियाऽशक्तौधेनुंदद्याद्विचक्षणः धेनोरभावेदातव्यंमूल्यंमूल्यमंतंश
 यत्—अर्थात्—जिसको प्राजापत्य करनेकीशक्ति न हो सेशा विचक्षणा पुरुष धेनुका
 दानकरै धेनुके अभावमें धेनुका मूल्यहीदेवै परन्तु निस्सन्देह धेनुके बराबर मूल्यहो
 जितनेमें आसक्तीहो—अथवा—जिसको बराबर भी देनेकी समर्थनहीं सो आधामूल्य
 देवै यद्वा सामान्यरीति से एक निठक अग्रफर्ती धेनुका मूल्य समुक्तै जैसा यह वचन
 है कि (गवामभावेनिठकंस्यातदर्द्धपादनेववा) गौआंके अभावमें निठकमूल्य कायन
 कियाजाय यद्वा उससे आधा या चौथाई अपनी शक्तिकेसमान देवै—यदि कोई पुरुष
 मूल्य भी न देसके तिसको उतने दिन जलमें बासकरना चाहिये अर्थात् जितने प्रा-
 जापत्यों की जरुरतहो सक सक प्राजापत्य के बदले एक एक दिन जलमें बास करै
 (जलमें बैठनेका प्रकार ३०४ तीनसौ चौथे मूलप्रलोकसे कहाथा उसी जघे समुत्तिलेना
 परन्तु वहां पर श्रुत पापों के हेतु से थोड़े दिन कहे गए सो नियमात्मक नहीं
 किन्तु यहां प्रकाश पापोंके प्रसंगसे प्राजापत्यों की गिनतीसे कहागया) जल में भी

देवी गायत्री दशहजारसंघ २ प्राणायाम दोस्रो ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेदसंहिता जो मंत्र ब्राह्मणरूप होती है तिसकी एकहीपारायणा—ये पांचो परस्पर सब एकसेएक बराबर मानेगयेहैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होताहै कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंके कहे आदेशरूपी प्रत्याम्नाय अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदेको सहापातकोंपर ० तीन सौसाठि ३६० से गुणाकर समझिलेना कि इतने चाहिये अर्थात् उक्त पांचोंमें सब से प्रथम कछ्छ एकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो भी ३६० ही धंकर रहेंगे सोइ तीनसौ साठि प्राजापत्यकरने पहिले भी कहिचुके हैं १ एवंगायत्री केदशहजार कहे तिन्हें यदि तीनसौसाठिसे गुणाकरोगे तो वेही ३६००००००० छत्तीस लाखहोंगे जो पहिले भी कहिचुके २ एवं प्राणायाम दोस्रोको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ७२००० बहत्तर हजार प्राणायाम करने ठहरेंगे ३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ३६००००० तीनलाख साठिहजार आहुतें करनी ठहरेंगी ४ एवं वेदकी पारायणा एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो ३६० तीनसौसाठि पारायणा करनी ठहरेंगी ५—यह व्यवस्था यहाँतक परे सहापातकोंपर कहीगई ॥ ० ॥ कदाचित् अतिपातकोंके प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह बर्यके जगह नौबर्यका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोस्रोसत्तरि कियेजायेंगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायमहोंगी वेभी चौथाईघटाकर मानीजायें अर्थात् जलमें बैठनाभी २७० दोस्रोसत्तरि दिनकारहिजायगा या इतनीधेनुदेनी ठहरेंगी याइतनी अशर्फी देनी यागायत्रीके संवृत्तीसलाखकेजगह २७०००००० सत्ताइसलाख रहि जायेंगे याप्राणायाम बहत्तरिहजारकेजगह ५४००० चौवनसहस्ररहिजायेंगे यातिल कीआहुतें तीनलाखसाठि हजारकेस्थान २७०००० दोलाख सत्तरिहजार बाकीरहि जायेंगोया वेदकीपारायणा तीनसौसाठिकेस्थान चौथाई कटिकर २७० दोस्रोसत्तरि बाकीरहिजायेंगे ॥ ० ॥ कदाचित्पातकनामके पापोंपरलेखा करनापर जिनमें बारह बर्यके जगह छः बर्यकेअर्थात् कहीगई थी तिनमें प्राजापत्य भी आवीसख्या घटाकर सिर्फ आधेके १८० एकही अस्सी रहिजायेंगे उनके बदलको चीजें भी धेनु याअशर्फी या वेदके पाठ या जल में बैठने के दिवस उतनेही एकसौ अस्सी अरवी माने जायेंगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८०००००० या प्राणायाम बहत्तरि हजारके स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठिहजार

के स्थान १८०००० एकलाख अस्सी हजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमाणा आगे चतुर्विंशति मत का वचन भी देखो=यथा= जन्मभ्रृतिपापानिवहृनिविविधानिच कृत्वावीरग्नहत्यायाः यद्वन्द्वन्तमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवादिंय साशीतिवनिनाशतम तथाष्टादशलक्षारिणा गायत्र्यावाजपेहृषः= अर्थात्-जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भोंतिसेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे इधर समझनाती उनपापोंकी शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरण करै यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसके सो आदेश ह्यपी (प्रत्याम्नाय) बदलमें १८० एकसौ अस्सी गौर्ये धनवाच होने से देखै यथा धनो नहे सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपे जो पण्डित होय अन्यथा यहभी नहीं तो फिर जलमें वास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे इधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्याआदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं परे वारहवर्षका व्रतकरै और बदले की सब चीजें दूनी करै जिनसे उसे प्रयोजन परै ॥ ० ॥ कदाचित् उपपातक नामके सेसे पापों पर लेखा करना परै कि जिनके लिये वैवार्थिक प्रायश्चित्त का नियम कहा गयाहो० तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठिकी चौथाई सिर्फ १० नब्बे रदि जायेंगे इसी प्रकार इनके बदलकी सब चीजें चौथाई चौथाई रदि जायेंगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठि प्राजापत्यां के साथ कही गईयों ॥ कदाचित् तीन सहीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां एक सहीनेमें अठारह प्राजापत्य के हिसाब से सादेसात प्राजापत्य ठहरे उनके बदल में उतनेही घेनुदान या उतनी ही अशर्फी सोरह मासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने सादे सात रोज जल में वास करने होंगे और ७५००० पचहत्तरि हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुतें ७५०० सादे सात हजार करनी चाहिये ॥ ० ॥ कदाचित् ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिनमें एकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि वारह दिनके प्राजापत्य अठारह करने होंगे अथवा उनके बदल में अठारह घेनु या अठारह घेनुका मन्त्र यथा अठारह वेद पारायणा या अठारह दिन जल में वास करना अथवा २५००० पचीस हजार जप गायत्री का यथा ५०० पांच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अठारह हजार ॥ अप्रयच्छांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः-जहां प्रायश्चित्त इस व्यौरा साथ लिखाहो कि एक सहीना चान्द्रायणा करै तहां उस चान्द्रायणा के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहै तो फिर

देवी गायत्री दशहजारमंत्र २ प्राणायाम दोसौ ३ तिलकाहोम एकहजार आहुति ४ वेद संहिता जो मंत्र ब्राह्मणरूप होती है तिसकी एकही पारायणा—ये पांचों परस्पर सब एकसे एक बराबर मानेगये हैं तिससे इनका भी बदल आपसमें होता है कि एक के बदले दूसरा किया जाय (इत्यादि चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंके कहे आदेशरूपी प्रत्याख्यान अनेक हैं) इन सब प्रत्येक जुदे जुदेको महापातकोंपर ० तीन सौसाठि ३६० से शुद्धाकर समझिलेना कि इतने चाहिये अर्थात् उक्त पांचोंमें सब से प्रथम कुछ एकही कहा तिसको तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो भी ३६० ही अंक रहेंगे सोइ तीनसौ साठि प्राजापत्यकरने पहिले भी कहिचुके हैं १ एवंगायत्री केदशहजार कहे तिन्हें यदि तीनसौसाठिसे गुणाकरोगे तो वेही ३६०००००० छत्तीस लाखहोंगे जो पहिले भी कहिचुके २ एवं प्राणायाम दोसौको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ७२००० बहत्तर हजार प्राणायाम करने ठहिरेंगे ३ एवं तिलहोम एकहजारको तीनसौ साठिसे यदि गुणा करोगे तो ३६०००० तीनलाख साठिहजार आहुतें करनी ठहिरेंगी ४ एवं वेदकी पारायणा एकहीको यदि तीनसौ साठिसे गुणा करोगे तो ३६० तीनसौसाठि पारायणा करनी ठहिरेंगी ५—यह व्यवस्था यद्दोतक परे महापातकोंपर कहीगई ॥ ० ॥ कदाचित् अतिपातकोंके प्रायश्चित्त पर लेखा करना होय जिनमें बारह बर्यके जगह नौबर्यका प्रायश्चित्त कहा गया था तिनमें प्राजापत्य भी चौथाई घटाकर तीनसौसाठि के जगह २७० दोसौसत्तर कियेजायेंगे तिनके बदलेमें जो चीजें कायमहोंगी वेभी चौथाईघटाकर मानीजायें अर्थात् जलमें बैठनाभी २७० दोसौसत्तर दिनकारहिजायगा या इतनीधेनुदेनी ठहिरेंगी याइतनी अग्रफाँ देनी यागायत्रीके संघटतीसलाखकेजगह २७००००० सत्ताइसलाख रहि जायेंगे याप्राणायाम बहत्तरहजारकेजगह ५४००० चौवनसहत्तरहजायेंगे यातिल कीआहुतें तीनलाखसाठि हजारकेस्थान २७०००० दोलाख सत्तरहजार वाकीरहि जायेंगीया वेदकीपारायणा तीनसौसाठिकेस्थान चौथाई कदिकर २७० दोसौसत्तर वाकीरहिजायेंगे ॥०॥ कदाचित्पातकनामके पापोंपरलेखा करनापर जिनमें बारह बर्यके जगहछः बर्यकीअर्थात् कहीगई थी तिनमें प्राजापत्य भी आधीसंख्या घटाकर सिर्फ आधेके १८० एकसौ अस्सी रहिजायेंगे उनके बदलकी चीजें भी धेनु याअग्रफाँ या वेदके पाठ या जल में बैठने के दिवस उतनेही एकसौ अस्सी अस्सी माने जायेंगे या गायत्री का जप अठारह लाख १८००००० या प्राणायाम बहत्तर हजारके स्थान ३६००० छत्तीस हजार करने होंगे या तिलकी आहुतें तीन लाख साठिहजार

के स्थान १८०००० एकलाख अस्सीहजार करनी होंगी=इन बातोंका प्रमाण आगे चतुर्विंशति मत का वचन भी देखो=यथा= जन्मभ्रुतिपापानिवह्निविविधानिच श्चत्वारिंशद्ब्रह्महत्यायाः यद्वन्द्वं व्रतमाचरेत् प्रत्याम्नायेगवादेयं साशीतिवनिनाशतम तथाष्टादशलक्षारिणा गायत्र्यावाजपेढधः= अर्थात्-जन्म से लेकर बहुत पाप अनेक भौतिकेभी कियेहों परन्तु ब्रह्महत्यासे इधर समझनातो उनपापोंकी शुद्धि चाहिकर छः वर्षभर प्राजापत्य आदि व्रतका आचरण करै यदि व्रतोंकी प्रक्रिया जिसपर न होसके सो आदेश रूपी (प्रत्याम्नाय) बदलमें १८०० एकसौ अस्सी गौर्ये धनवाद् होने से देखै यद्वा धनी नहो सो बदलेमें अठारह लाख गायत्री जपे जो पण्डित होय अन्यथा यहभी नहीं तो फिर जलमें बास करना आदि जो कुछ पहिले कहा वही बदला दियाजाय (ब्रह्महत्यासे इधर कहा उसका यही तात्पर्यहै कि ब्रह्महत्या आदि महापातक जिसने कियाहो वह छः वर्ष नहीं पूरे बारहवर्षका व्रतकरे और बदले की सब चीजें दूनी करे जिनसे उसे प्रयोजन परै ॥ ० ॥ कदाचित् उपपातक नामके ऐसे पापों पर लेखा करना परै कि जिनके लिये वैवार्थिक प्रार्थश्चित्त का नियम कहा गयाहो • तिनमें प्राजापत्य भी तीनसौ साठिकी चौथाई सिर्फ १० नब्बे रहि जायेंगे इसी प्रकार इनके बदल की सब चीजें चौथाई चौथाई रहि जायेंगी जोसब से ऊपर जितनी तीनसौ साठि प्राजापत्यों के साथ कही गईथीं ॥ कदाचित् तीन सहीना के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर लेखा करना परै तहां सक सहीनेमें अद्वाइ प्राजापत्य के हिसाब से साडेसात प्राजापत्य ठहरे उनके बदल में उतनेही धेनुदान या उतनी ही अशर्फी सोरह मासे वाली या उतनेही वेद पाठ करने होंगे या उतने साडे सात रोज जल में बास करने होंगे और ७५००० पचहत्तरि हजार गायत्री मन्त्र या १५०० पन्द्रह सौ प्राणायाम या तिल होम की आहुतें ७५०० साडे सात हजार करनी चाहिये ॥ ० ॥ कदाचित् ऐसे उपपातकोंपर लेखा करना होय जिन में सकही मासका व्रत करना कहागयाहो तहां यह स्पष्ट है कि बारह दिनके प्राजापत्य अद्वाइ करने होंगे अथवा उनके बदल में अद्वाइ धेनु या अद्वाइ धेनुका मन्त्र यद्वा अद्वाइ वेद पारायण या अद्वाइ दिन जल में बास करना अथवा २५००० पचीस हजार जप गायत्री का यद्वा ५०० पाँच सौ प्राणायाम या तिल होमकी आहुति २५०० अद्वाइ हजार ॥ अथचांद्रायण स्थानेप्रत्याम्नायः-जहां प्रायश्चित्त इस ध्यौरा साथ लिखाहो कि सक सहीना चान्द्रायण करै तहां उस चांद्रायण के बदले यदि प्राजापत्य किया चाहे तो फिर

(अर्द्धाङ्ग नहीं) तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो इसमें असमर्थ हो सो तीनही तीन कोइसा प्रत्याम्नाय उसके बदले करै अर्थात् चाहें तीन धेनुदान या उनका मूल्य या तीन दिन जलमें बास यावेदकी संहिताके तीनपाठ या ६०० छःसौ प्राणायाम या तीसहजार ३००० गायत्रीमन्त्र या तीन हजार ३००० तिलहोमकी आहुतें— इसव्यवस्थापर—मितासराकारकहितेहैं कि (अष्टौचान्द्रायणोदेव्याःप्रत्याम्नायाविधौ सदा) यह चतुर्विंशति मत ग्रंथमें जो कहाहै कि०चांद्रायणाकेबदलारूपी प्रत्याम्नाय की विधिमें सदाही गायत्री देवीके आठहजार चाहिये—तदपि (धनिनःपिपीलिका मध्यादिचांद्रायणाविययसितिमितासरा) अर्थात्—वह चतुर्विंशति मतका कहा भी घनीकेलिये पिपीलिकामध्य आदि नामोंकेचांद्रायणपर प्रत्याम्नाय बदलाकरनेका वियय जानना यह मितासरा ने कहा ॥ ० ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रस्यप्रत्याम्नायः— किन्तु मितासराकार कहितेहैं कि जब कभी ऐसे उपपातकों में प्राजापत्यका लेखा करनापरै जिनमें एकमहीनाभर अतिकृच्छ्र करनेकी आज्ञालिखीहोयतहाँ (तीनमहीना भरमें) साडेसात प्राजापत्यकरने चाहिये—परन्तु—मर्यादा प्रियके विचारसेजहाँ एक महीनाभर कृच्छ्राति कृच्छ्र करना लिखा हो तिसकेबदले जबकिसीको प्राजापत्य करने स्वीकार हैं तहाँ साडे सात प्राजापत्य करने चाहिये जो तीन महीना में पूरे होंगे(बल्कि इसीका प्रमारा आगे चतुर्विंशतिके वचनमें भी देखिलेना) और जो अति कृच्छ्र एक महीनाभर करने की आज्ञा लिखी हो तहाँ दोमहीना भर पाँचही प्राजापत्य करने चाहिये क्योंकि अति कृच्छ्र प्राजापत्य से दूने दर्जे में होताहै तिगुने में नहीं और कृच्छ्राति कृच्छ्र प्राजापत्य से तिगुने दर्जेमें होताहै अर्थात् जितनी कठिनाई बारह दिनकी प्राजापत्य में होती है तिससे द्विगुणा कठिनता बारह दिनके अति कृच्छ्रमें होतीहै इसका निर्णय आगेफिर भी किया जायगा—जब कि प्राजापत्य से अति कृच्छ्र की प्रतिष्ठा दूनी ठहरी तो फिर कृच्छ्राति कृच्छ्र की प्रतिष्ठा प्राजापत्य से आपही तिगुनी ठहरी क्योंकि उसमें व्रतके दिवसोंकी संख्या अधिक होनेसे बह्नापनप्रत्यसहै—जिसकी कृच्छ्रातिकृच्छ्रके स्थानीभूतसात साडेआप्राजापत्य की सामर्थ्य न हो सो बदले में साडेसात धेनु दान या उनका मूल्य की अशर्फी साडे सात या साडेसात रोजतक जलमें बास करै या साडे सात वेद की पारायणा पाठ या पचहत्तरि हजार ७५००० गायत्रीके मंत्रजपै या पन्द्रहसौ १५०० प्राणायाम करै या तिल होमकी आहुतें साडेसात हजार ७५०० होमै—इसीप्रकार—जिसको अतिकृच्छ्र के स्थानापन्न पाँचप्राजापत्योंकी सामर्थ्य न हो वह बदले में पाँचधेनु दान या मूल्य

की अशर्फी पाँच या पाँच रोजतक जलमें बासकरै या वेदकी पारायणा पाँचपढ़ै या गायत्री का जपही ५०००० पंचास हजार या प्राणायाम १००० एक हजार करै या तिलहोमकी आहुतें ५००० पाँचहजार होमै ॥ ० ॥ प्राजापत्य आदि व्रतोंके परस्पर जो छोटाई या बड़ाई होतीहै तिसका कारणा उनके दिवसोंकी संख्यासेभी होताहै परन्तु जहाँ परस्पर दोनोके दिवस बराबरहों तहाँ जिसमें कठिनता अधिक होतीहै सो बड़ा ठहिरताहै • तहाँ कितनी बड़ाई या कितनी छोटाई किसकी मानी जाय इस भेदका समझानेवाला चतुर्विंशतिका अग्रोक्त वचन देखौं—यथा—प्राजापत्येगामेकांदयाः स्नांतपनेद्वयम् पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रं तिस्रस्तुगास्तथा=अर्थात्—प्राजापत्यके बदले एक गोदानकरै सांतपनके बदले दोगायदेवै • पराक व्रतके बदले और तप्तव्रतके बदले और कृच्छ्राति कृच्छ्रके बदले तीनतीन गोदानकरै तब उनकी बराबर बदला ठहिरै और अति कृच्छ्रका नाम यद्यपि चतुर्विंशति के वचन में नहीं आया तौ भी उसके बदले में जखरत जहाँ समझी जाय तहाँ दो गाय देनीचाहिये क्योंकि कृच्छ्रातिकृच्छ्र से वह छोटा और प्राजापत्य से बड़ा है मध्यम न्याय उसका यही सिद्ध होताहै—यहाँ—प्राजापत्य की अपेक्षा सांतपन में दूना बड़ापन पायागया क्योंकि दोगाय देनीकहीं (और सांतपन छोटे बड़े कई दर्जाके होतेहैं) तिससे ३ १ ई तीनसौसोरहकी अधिकोक्तिमें उसकेवचनसे १५पंद्रहदिनका और जावालके वचन से २२ इक्कीस दिनका महासांतपन कहागया था उनके मध्ये यह दोगायवाला बदल समझना क्योंकि प्राजापत्य की अपेक्षा दूनापन उन्हीं में पायागया—और तीन सौ पन्द्रह ३ १५की अधिकोक्ति में जावाल के वचनसे सातदिनका तथा ३ १ ईतीनसौ सोरह मूलश्लोक में योगीश्वर के वचन से भी सातदिन का सांतपन कहा गया था तिसके बदले में एकही गोदान समझिलेना क्योंकि वह अपने प्रभावसे एक प्राजापत्यकी बराबर मानाजाताहै—और तीनसौ पन्द्रह ३ १५ मूल श्लोक में योगीश्वरके वचन से तथा उसकी अधिकोक्ति में शखजीके वचन से तीन दिनका यति सांतपन भी कहाथा इनदोनोंमें आवागोदान समझिलेना क्योंकि ये अर्धप्राजापत्यकी बराबर मानेजाते हैं इस आवेका प्रमाण आगे यद्विंशन्मत के वचन में देखना जहाँ (सांतपनस्यचार्ष्यं) यही पाद आवैगा (ऊर्ध्वोक्तचतुर्विंशति के वचन में—द्यात्सांतपनेद्वयं • यह पाद जो आया था तिसकी व्याख्या मिताक्षरा में कुछ नहीं यद्यपि लिखीथी तौभी इतना बिस्तार उसका सिद्ध भया सो स्थापन कियागया और यही व्याख्या निर्विकार जानौं (अत्रनिष्प्रयोजनीयाचर्याख्या) इसकीछोड़िके सि-

ताक्षराकारने भी कुछ व्याख्या जो दर्शाते तिसमें एक बोखाहे कि उन्होंने (पराक तप्त कृच्छ्रातिकृच्छ्रे) इसीचतुर्विंशति के वचन में ऐसा पदच्छेद (पराक० तप्तकृच्छ्र० अतिकृच्छ्र०) माना तिससे कई विरोध खड़ेहुये बल्कि कृच्छ्रातिकृच्छ्र के न रहनेसे अति कृच्छ्रही के दोषभेद उनको माननेपर जो अर्थार्थ में कुछ भेद नहीं है—यथाहुर्मि ताक्षराकाराः (एतच्चैकैकग्रासमज्ञीयादित्यैकैकग्रासपक्षेवेदितव्यं० पाणिपूरात्तपक्षे पुनर्वैतुडयमेव) अर्थात् वे कहते हैं कि अतिकृच्छ्रके नामसे यह तीनि गायवाला नियम उस अतिकृच्छ्र पर जानना जो नौदिन एक कोर खाने और तीनदिन कोरे उपवास करनेसे बारह दिनमें होता है—दूसरा एक मुट्ठी भर नौरोज अन्न खाकर तीनि उपवासों सहित बारहदिनमें होता है तिसके बदले दोही गाय देनीचाहिये क्योंकि यह उससे कुछ सुगम देखि परता है—यहां भी—सर्थादा प्रियके विचारसे इन दोनोंमें बड़ापन छोटापन का कुछभेद नहीं है न दिवसों की संख्यासे कुछ भेद है दोनों प्रकार बारहदिनमें सिद्ध होते हैं तहां योगीश्वरने मुट्ठी भर भात आदि कोई सा अन्न खाना कहा और सनुने एक ग्रास भर अन्नखाना कहा यह कुछभी भेद नहीं है क्योंकि एक ग्रास भी सयूर के आण्डे बराबर पहिले सिद्ध हो चुका है वही मोरका अण्डा कुछ मुट्ठी भरसे कम नहीं होता अथवा जितना अन्न जिसके मुहमें एकवार में समाये सो भी ग्रास का परिमाण कहा गया था इस प्रकार से भी कुछ भेद नहीं पाया जाता है क्योंकि जिसके मुहमें जितना अन्न जासकैगा उसके हाथकी मुट्ठीमें भी उतनाही आसकैगा कुछ अधिक नहीं कि जिसके हेतुसे तीन और दो गायका बदला दोतरह माना जासकै (बल्कि इसी भेद की चाहना से मिताक्षराकार ने उस व्याख्या में एक ग्रास एक आँडरे भरका लिख दिया है कि जिससे मुट्ठी भरके सम्मुख उसमें छोटापन समक्षपरै सो इसलिये नहीं माना जासकता है कि सनुने जिस वचन में एक एक ग्रास खाना कहा तिसमें आसलक भरकी समस्या भी कुछ नहीं है) और जो मिताक्षरा कार ही के दर्शन का प्रमाण मानै कि जो कुछ लिखा सोई सही तौभी यह प्रशंखडा होता है कि जब ऐसे अतिकृच्छ्र में तीनि गोदान माने तौफिर कृच्छ्रातिकृच्छ्र जो सबसे बड़ा बाकी रहा तिसमें कितने गोदान क्रिये जाय इसका कुछ भी उत्तर नहीं है—इतिप्रसंगादेवनिर्णयकव्याख्यानं=अथप्रकृतंप्रयोजनं=इन्हीं बहुधा विरोधोंकीदृष्टिसे ऊपरली व्याख्या जो सर्थादाप्रियनोंसङ्करी सो निर्विघ्न जानौ कि—एकग्रासवाले और मुट्ठी भर भोजनवाले दोनों अति कृच्छ्र को बराबर मानिके दोनोंमें दोहीदो गाय दानकरनेका ठीक बदलहोगा और कृच्छ्राति

कृच्छ्र के बदले में तीनगोदान करनेहोगे जैसे चतुर्विंशति के वचन में स्पष्ट लिखे देखिले। उसी वचनमें पराक परभी तीनही ३ गोदान करने कहेगये यद्यपि पराक भी वारहदिनका होताहै दिवसोंकी बढाई उसमें नहींहै परन्तु कठिनताका बडापन उसमें अधिक है कि वारहदिन कोरे उपवास करनेसे होताहै। उसीवचनमें तप्तनाम के व्रतपर भी तीनही ३ गाय देनी कही गई और तप्तकृच्छ्र का विधान भी ३१८ तीनसौ अठारह मूलश्लोक आदि में सिर्फ चारदिनका फिर मनुके वचन से वारह दिनका भी कहा था इससे अधिक नहीं परन्तु वह अपनी कठिनता से बडा माना गया है कि उसमें बहुत गरम तथापे हुये घी दूध जल पीने होते हैं तिससे उसके बदल में तीनगाय देनी कहीं कृच्छ्र विरोध इसमें नहींहै। उसी चतुर्विंशतिके वचन में कृच्छ्रातिकृच्छ्र के बदले जो तीनगाय देनी कहीं तिसका बडापन दिवसोंकी अधिकतासे भी प्रत्यक्ष है कि तीनसौ इक्कीस ३२९ मूलश्लोक में योगीश्वरने १ इक्कीस दिन थोडासा दूधपीकर साधन करना कहा और उभी जघे अधिकोक्ति में गौतमने वारहदिन जलपीके रहना कहा तो ये वारह भी इक्कीस के बराबर ठहरे क्योंकि उसमें नौदिनकी संख्या अधिक है परन्तु थोड़े दूधका सहारा देख परताहै। गौतम के विधान में यद्यपि दिवसोंकी अर्वाध केवल वारह दिनकी है परन्तु केवल जल पीके वारहदिन काटने बडे कठिन हैं कि जैसे पराकमें वारहदिन कोरे उपवास किये जातेहैं इसी कठिनतासे पराकपर तीनगायदेनी कहीथीं तैसे दोनोंतरहके कृच्छ्रातिकृच्छ्रों में तीन गाय न्यायात्मक ठहरीं—अतिकृच्छ्र वाकीरहा कि जिसका नाम चतुर्विंशतिके वचन में नहींहै तथापि उसके बदले में दीगाय देनी इस हेतुसे न्यायात्मक ठहरीं कि प्राजापत्य और कृच्छ्रातिकृच्छ्र दोनोंके बीच वाला दर्जा उसका प्रसिद्ध है और इसीलिये प्राजापत्यसे द्विगुणा उसकोमानतेहैं क्योंकि यद्यपि दिवसों की तादाद प्राजापत्य और अतिकृच्छ्र में भी बराबर वारह की होती है परन्तु सुगमता कठिनता के भेदसे आपस में छोटापन बडापन होताहै अर्थात् अति कृच्छ्र में नौदिन तक एकही ग्रास वा एकही मुट्ठी खाकर पीछे से निरन्तर तीनदिन कोरा उपवास करना होताहै तिससे पूरे वारह दिन उपवासही ठहरे और प्राजापत्य में तीनतीनदिन बाईस चौबीस आदि ग्रासोंकी खाते हुये बीच बीच कोरा उपवास हर चौकड़ी में एकही करना होताहै अर्थात् तीन उपवास तीनजघे वैदिकाने से कठिनता नहीं रहती है तिससे येही तीन उपवास और नौदिन थोडा खाना परा तिसके भी तीनही उपवास के बराबर मानेगये इसप्रकारसे छदिनके बराबरकठिनता सिद्धहुइ

और ऊपर अतिवृद्धमें बारहदिनकी कठिनता सिद्धहुई इसीसे दूने आधिक्यभेद इनमें होताहै इसीसे यहवात सिद्धहोतीहै कि छेदिनकी कठिनतावाले प्राजापत्य कृच्छ्रमें रुकनेनुदेनीकही तो फिर बारहदिनकी कठिनतावाले अतिवृद्धमें दोधेनुदेनीसिद्ध होगई कुछ सन्देह नहीं रहा ॥ ० ॥ एकादशगोदानस्यप्रत्याम्नायाः कदाचित्त उस प्रायश्चित्त से प्राजापत्यका बदल करना परै जो चालीसवें परिच्छेद में दोसौ दौंसति २६४ मूलश्लोक उत्तरार्ध से बताया था कि तीनदिन उपवास करिके दश गाय और एक आँडू वृथम दान करै—तहाँ इतने सब कृत्यके बदले साडेग्यारह प्राजापत्य करने चाहिये इस लेखसे कि दशप्राजापत्य दशगायके और एक वृथम तथा तीन उपवास दोनो मिलाकर इसके बदले डेढ़ प्राजापत्य चाहिये जो इनको न करसके तिसके लिये पूर्वोक्त रीति से अन्यद्वकारके बदल बताया जाय कि इतनेही साडेग्यारहदिन जलमें निवासकरै या वेदसहिताकीपारायणा साडेग्यारह आवृत्ति करै अथवा एकलाख पन्द्रह सहस्र ११५००० गायत्री के मन्त्र जपै या ११५०० साडेग्यारह सहस्र तिलकी आहुतै करै तोभी उसके बराबर प्रायश्चित्त मानाजाता है ॥ ० ॥ मासपयोव्रतस्यप्रत्याम्नायः कदाचित्त उस प्रायश्चित्तसे प्राजापत्यों का लेखा करना होय जो दोसौपैसति २६५ मूलश्लोक में योगीश्वरने (पयसावापि मासेन) इसी तीसरे पादसे यह कहा था कि एक महीना दूधपीके व्रतकरै—तहाँ इस महीने भरमें दूध पीना छोड़ि के बदले में अडाई प्राजापत्य किये जासक्तै हैं अथवा इन्हों अडाई के अनुसार अन्य बदल भी पूर्वोक्त रीतिके लेखे सहित कियेजासके हैं ॥ ० ॥ पराकस्यप्रत्याम्नायः जिन उपपातकोंपर पराकव्रत करना लिखाहै जो बारहदिन कोरे उपवास करने से होताहै तिसको यदि कोरे करना न चाहे तो बदलेमें तीन प्राजापत्य करने चाहिये जो बारह बारहदिनकी हिसाब से छत्तीसदिन में परे होंगे परन्तु इनमें चाईस चौबीस आदि प्राप्त खाकर करने की सुगमता कुछ होताहै इसीसे छत्तीसदिन बारहदिनके बराबर ममभ्के जायगै क्योंकि यही बराबरी पहिले चतुर्विंशति के उस वचनसे भी सिद्ध हुई थी कि जहाँपराक व्रतकेस्थानपर तोनिगाय देनीकहीं तीनिगायके न होनेमें तीन प्राजापत्य आदि अनेक बदल सिद्ध हुयेथे क्योंकि एक गायकादान एक प्राजापत्य की बराबर होताहै—यही पराकव्रत की बराबरी आगे यद्विंशन्मत के वचन से प्रत्यक्ष देखि परती है—यथा=पराकव्रत कृच्छ्रात्तकृच्छ्रं कृच्छ्रव्यंचरेत्संतपनस्यचास्यर्वमशक्तौव्रतमाचरेत्=अर्थात्-पराक-व्रत-कृच्छ्रात् कृच्छ्रात् कृच्छ्रं इनको न करसकनेमें एक एक के बदले में तीनतीन कृच्छ्रव्रत

अर्थात् प्राजापत्य करै और सांतपनके न करसकनेमें अर्घ प्राजापत्यकरै (यहाँआधा प्राजापत्य बतानेसे गोदान भी आधाही बदले में करना विद्व होगा• तिससे सांतपन में छोटापन पाया गया• इसी लिये यहाँ पर उसी सांतपन को समझना जो सिर्फ दोही दिनमें या तीनदिनमें होना कहा था उसीकेबदले छेदिनमें आधाहृच्छ करना ठीक जानौं (वल्कि इसी मूल कारण से पूर्वोक्त चतुर्विंशति के वचन में भी जहाँ सांतपनके बदले दोनाय दोनोकहीं तहाँ प्राजापत्य भी दो ठहरे तहाँ इस छोटे सांतपनपर न समुभ्ता चाहिये किन्तु वहाँपर बदलके बड़ापनसे ही सांतपन में बड़ापन पायागयाथा—इसीलिये पन्द्रह वा इक्कीस दिनके महासांतपनोंपर दोगायोंका दान-या दो प्राजापत्य करने कहेये•फिर इन्हीं दोभेदोंके बीचमें जो सातदिनवाले सांतपन होतेहैं तिनपर एक पूरा गोदान या पूरा एक प्राजापत्य करना ठीक समुभ्ता• किन्तु न्याय वही कहाताहै कि आवश्यक पदार्थोंका विभाग यथायोग्य होजाय जिनके परस्पर कुछविरोध बाकी न रहै ॥ तपुक्कच्छे तुसन्देहनिवारणं-तप्तनामो कृच्छ्रमें सन्देह बाकीरहा कि जिसकेबराबर बदलेमें तीन गोदान या तीन प्राजापत्य रूपी हृच्छ करने कहेगये सो किस तप्तके बदले किये जाय क्योंकि तप्तकृच्छ भी छोटे बड़े कई प्रकारके देखिपरते हैं जैसा ३१८ तीनसी अठारह मूल प्रलोक में योगीश्वरने चार दिनमें होनाकहा (उसीको ठूना करिके आठदिनमें भी होता कहीं सुनाहै) उसीका आधा दो दिनमें भी मिताक्षराकारने उसी अधिकोक्तिमें दर्शायाहै कि गरम दूध घी जल तीनोंको एकही दिन इकठोरे पीकर दूसरेदिवस कोरा उपवास करनेसे दोदिनका भी तप्तकृच्छ होताहै—फिर उसी अधिकोक्तिमें मनुके वचन से बारह दिन का तप्त कहागया उसका भी स्वरूप केवल वही है कि योगीश्वर के बताये चारदिन वाले को लगातार तीन वार करनेसे बारह दिन होतेहैं—इन्हीं बारह दिनका प्रमारा अत्रोक्त गौतमके वचनसे भी मिलता है कि (पयोधृतमुदकं वायु तप्तं प्रतिव्यहृपिवेत्सतप्तहृच्छ इति गौतमः) अर्थात्—दूध धृत जल वायु इन चारोंको गरम गरम तीन तीनदिन पीवै सो बारह दिनका तप्तकृच्छ कहाताहै यह गौतम ने कहा• परन्तु इससे अधिक दिन किसी ने भी नहीं कहे तिससे सबसे बड़ा बारह दिनका ठहिरा उसीके बदल मध्ये तीन गोदान या तीन प्राजापत्य ठहरे क्योंकि उसकी कठिनताके बड़ापनसे प्राजापत्योंकेद्वारा तियुने छतीस दिन बदलमें देनेपरे अन्वयथा आठ दिन वालेपर दोही प्राजापत्य समझने और चार दिनवाले पर एकही प्राजापत्य समुभ्ता और दोदिनके तप्तकृच्छपर अर्घ ही प्राजापत्य जानना•

यह सन्देशका निपटारा भया अब इन सबही को तुल्यता समुभी चाहिये सो देखो ॥ ० ॥ तुल्यानां व्रतभेदानां तुल्यत्वनिरूपणं—ऊपरही व्यवस्थाओंपर सर्वत्र ध्यान करना चाहिये कि यद्यपि वारह दिनवाले प्राजापत्य एकही महीना में अर्द्धाई सिद्ध होते हैं और इसीलिये हर एक महीने भरके व्रतोंपर अर्द्धाई प्राजापत्योंका आदेश किया गया परन्तु चान्द्रायण एकमहीनामें कतिनाइसे होता है तिसके मध्ये उस कतिनाइके बढ़ापन से तीन प्राजापत्यों का आदेश किया गया—उसके बाद चतुर्विंशतिका वचन देखो जिसमें वारह दिनका पराक भी तीन प्राजापत्यों को बराबर ठहरा—और उभी जघे वारह दिनका तत्र कच्छ भी तीन प्राजापत्यों को बराबर ठहरा—और उसी वचनमें इक्कीस दिनका कच्छातिकच्छ भी तीन प्राजापत्योंको बराबर तथा जलपीकर वारह दिनवाला भी कच्छातिकच्छ तीन प्राजापत्यों के बराबर ठहरा। बल्कि अभी योही दूर ऊपर यदत्रिंशन्मत के वचन में भी उसीका उभाया समुभाया गया कुछ सन्देश शेष नहीं रहा—तिससे—सर्वथा यह निर्णय सिद्ध हो चुका है कि चान्द्रायण पराक तत्रकच्छ कच्छातिकच्छ ये चारो व्रत परस्पर बराबर माने गये और प्राजापत्यनामका कच्छ इनको बराबर तत्र होवे कि जब उसकी निरन्तर तीन आठतियां पूरे छतीस दिनमें सावी जायें यह भी ऊपर सिद्ध हो चुका ॥ ० ॥ अथ प्राजापत्यानां च प्रत्याम्नायाः (प्राजापत्यानां स्थानेषु प्राजापत्यैस्तुलितानां निवेशनमित्यर्थः) अनन्तर लेख में तुल्यत्व निष्पत्त्या होनेका फल यही है कि जहां कहीं जितने प्राजापत्योंकी जरूरत ठहरै तहां उनके बहुत दिनोंवाली अवधिमें किफाईत शौचिकी अर्थात् योड़े दिनोंमें निपटारा करना चाहिके चान्द्रायण आदि चारोव्रत भेदमेंसे किसी एकहीका आदेश होसकता है कि जितने प्राजापत्योंकी संख्यादीय तिससे तिहाई संख्या इनकी रक्ती जाय—उसका दृष्टान्त जैसे वारह व्रतके व्रत पर ३६० तीनसी साठि प्राजापत्य नियत हो चुके हैं तिनकी तिहाई संख्या १२० एकसीबीस चाहें चान्द्रायण करी चाहें पराक चाहें तत्रकच्छ चाहें कच्छातिकच्छ करी सबहीका बराबर फल होता है—तस्मादाहुर्मिताक्षराकाराः (चान्द्रायणपराकतत्रकच्छातिकच्छास्तु प्राजापत्यवयात्मका द्वादश वार्यकव्रतस्थाने विंशत्युत्तरगतसंख्याका अनुयेयः तत्प्रत्याम्नायास्तु चेन्नादप्रखिण्ण शाः पूर्वाक्ता एवेति मिताक्षरा) अर्थात्—ये चारो जुदे २ ही तीन प्राजापत्यों की बराबर होते हैं तिस से वारह व्रत वाले प्रायश्चित्त के स्थान पर इनकी एकसी बीस १२० ही संख्याका अनुष्ठान आदेश किया जावे परन्तु प्राजापत्य के बदल

वाली चीजें धेनु दान आदि इतनी संख्या से तितुने करने होंगे अर्थात् जितने प्राजापत्यों के साथ पहिले (प्रत्यास्नायकपी) बदल कहेगये थे कि धेनु दान या वेद के पाठ आदि तिनकी तिहाई न होगी किन्तु वे उतनेही करने होंगे जिस पर चान्द्रायणा आदि न होसके यह आशय यहाँसे आगे भी सर्वत्र समझे रहिना=इती प्रकार=अति पातकों पर कि जहाँ २७० दोसौ सत्तर प्राजापत्य बताये थे उनकी भी तिहाई संख्या नव्वे ९० होती है इतनेही चांद्रायणा आदि चारों में कोई एक प्राजापत्योंके स्थानपर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=पातक नाम के पाप जो अति पातकोंसे कुछ नीचे उनके समान कहे जातेहैं=जिनपर १८० एकसौअस्सी प्राजापत्य बतायेये उनकी भी=तिहाई संख्या ६० तीनवीसी होतीहै इतनेही चांद्रायणा आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्यों के स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=तीनि वयं के प्रायश्चित्त वाले उपपातकों पर कि जहाँ नव्वे ९० प्राजापत्य दहिंराये थे उनकी भी तिहाई संख्या ३० डेढवीसी होतीहै इतनेही चांद्रायणा आदि चारोंमें कोई एक प्राजापत्योंके स्थान पर आदेश किये जासक्ते हैं=इसी प्रकार=गो वध प्रायश्चित्तके स्थलपर जहाँ तीनि सहीनेका गोत्रत कहा गयाहो तहाँ (गोसंडल नरिहाईके पीछे फिरना गोचर्म ओढना गोत्रजमें रातिको रीढ़कर गौओं की सेवा चौकसी आदि करना गोमूव आदि पंचगव्यों का संग्रह करना इत्यादि बहुत बड़े भ्रगणोंके हेतुसे उस व्रतको नहीं करता चाहै या किसी कारणसे वागक उसका न बनता दीखै (और साढे सात प्राजापत्यों का आदेश न करना चाहै तिससे उन्हीं तीन सहीनोंमें चान्द्रायणा व्रतका आदेश करै जो पूरे तीनिही चांद्रायणा किये जायँ अथवा यदि इसमें भी कुछ दिवसोंकी कृपाइत चाहै तो फिर पराक या बारहदिन वाला तपकच्छ या कच्छाति कच्छ इन्हींमें से किसी को तीन आठत्तों आदेशकरै क्योंकि ये चारोही एकसे बराबर मानेगये हैं परस्पर इनके दिवसों की क्रमा बेशो पर कुछ तर्क नहींहै केवल क्रियाकी कठिनता या सुगमतासे न्याय इनका होताहै= इसी प्रकार=रुद्धा उपपातकों पर जहाँ एक सहीने व्रत करना लिखा हो तहाँ भी एकही चांद्रायणा योगीश्वरका कहा करना चाहिये कि जिसका डोल ३२४-३२५ तीनवी चौबीस और पचीस मूल श्लोकों में दो भाँति से योगीश्वरने कहा था=इती प्रकार=सवसे छोटे प्रकीर्णक नामके पापों पर जहाँ जहाँ जित पाप के नाम साथ जो कुछ प्रायश्चित्त लिखाहो सो अवश्य छोटा होगा तिसके अनुसार सप्तभ्रूष्क के प्राजापत्यका एक पाद या दोपाद या पूराही प्राजापत्य आदेश कि प्राजासक्ताहै

उभोके अनुसार प्राजापत्यके बदल भी जो जो पहिले लिखे सो सब यथायोग्य लेखे सहित किये जासते हैं—परन्तु जो उसी एक छोटेसे पापकी आठुति अनेकवार करी गईहों तो वह भी बड़ेपापों की गणना में आजाताहै तिससे चान्द्रायणा आदि चारो बड़े प्रायश्चित्तोंमें से भी कोई एक एकही बार या दो बार आदि लगातार कियाजा-सक्ताहै=मिताक्षराकार कहिते हैं कि=इसी न्याय मार्गके अवलम्बसे औरभी जहाँ कहीं सदेह खड़ा होय तहाँ सेसीही कल्पना करनी चाहिये ॥ ० ॥ फिर कहिते हैं कि अयोक्त एक वृहस्पतिको वचन है तिसका भी वृत्तान्त समझना चाहिये=यथा वृहस्पतिः=जन्मप्रभृतियत्किंचित्पातकंचोपपातकम् तावदावर्तयेत्कृच्छ्रं यावत्प्रयश्रामभवेत्-इति (तर्वापि द्वेऽब्देपरदारो इतिगौतमोक्तं द्वैचार्यिक समानविययं तथात्रै सासिक्ताविवियय भूतोपपातकावृत्तविययवा० पातकपरामभेयेचांडालादिस्त्रीरामे द्विरभ्यासविययंच) तत्र (ज्ञानात्कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादेन्दब्रह्ममिति सकृद्द्विपूर्व गमनेकृच्छ्राब्दविधानात् तदभ्यासेद्विवर्यतुल्यंयष्टिकृच्छ्रं विधानंयुक्तमेवेति मिताक्षरा=अर्थात्-जन्म से लेकर जो कुछ पातक और उपपातक हुआहो तहाँ प्राजापत्य नामी कृच्छ्र की बारम्बार आठुती से घुमाकर लगातार तब तक साथे जब तक साठि कृच्छ्र पूरे होय—वृहस्पति ने यह कहा इस पर मिताक्षराकार कहिते हैं कि (यह साठि कृच्छ्रों का परिमान भी पातक मध्ये गौतम के कहे दो वर्य वाले वियय के समान जानो जैसा गौतम ने कहा था कि माता भगिनी आदि अपने संबंधको छोड़िके पराई दारा जो कहातीहों तिनमें संगम करनेवाला देववर्ष भर व्रत करै तैसा साठि कृच्छ्र भी पराई दारा एकवार गमन करनेके पातकपरजानना क्योंकि दोही वर्य में साठि प्राजापत्य पूरे होते हैं • तथा उपपातक उस भाँति के कि जिनके ऊपर तीन महीने या इससे भी थोडा दो महीने आदि का प्रायश्चित्त लिखा गयाहो उन्हीं पापोंको अनेक वार जिसने अभ्यास किया हो तहाँ भी अभ्यास को थोड़ी बहुत सीमा के अनुरूप साठि कृच्छ्रों तक प्रायश्चित्त की अवधि कल्पित होजाय यह तात्पर्य वा शब्दके विकल्प से समझि लेना • और इनसे बड़े पातक नामके पाप जो कहाते हैं तिनमें भी यह साठि कृच्छ्रोंकी पहुँच इस तौर से पाई जाती है कि चांडाली आदि स्त्रियोंमें दोबार सगम कियाहो तो इस पातकपर साठिकृच्छ्र करने चाहिये क्योंकि) तहाँ चांडाली गमनका प्रायश्चित्त (ज्ञानात्कृच्छ्राब्द जानि दूष्कृच्छ्रा सहित संगम करनेसे एकवर्ष कृच्छ्र करना और बिना जानि धोरखामें सगम करनेसे दो महीनेके चान्द्रायणा करना कहाहै • तो उस जानि

बुद्धि एकवार को संगम पर एक वर्ष भर कृच्छ्र व्रत को विधानसेही यह बात सिद्ध होती है कि जब कोई पुंस्य चांडालीमें दुबारा आदि संगम का अभ्यास करे तिस को दोवर्ष को बराबर कृच्छ्र करने चाहिये जो बारह दिन के हिस्साव से दो वर्ष में साठि ६० कृच्छ्र होते हैं • तिससे बृहस्पतिके वचनमें साठि कृच्छ्रोंका विधान कृच्छ्र अयोग्य नहीं ठहरा ॥ ० ॥ और जो सुसन्तुका यह वचन है कि=प्रदध्यसकृद्भ्य स्तंवाद्भिर्पूर्वमघम्महत् तच्छुद्ध्यत्यब्दकृच्छ्रे रामहतःपातकादृते-इति (तदप्युपपातकाद्यावृत्तिविययं • तथा अज्ञानादेन्द्वद्वयमिति यमोक्तैस्त्वद्वयविययभूतपातकावृत्तिविययवेतिमिताक्षरा=अर्थात्-जो पाप चाहें बड़ा भी हो और जानिके भी किया हो यदा अनेक बार उसका अभ्यास किया हो तो भी एक वर्ष भर निरन्तर लगातार कृच्छ्र करनेसे वह पाप सब शुद्धि जाता है पर महापापके बिना किन्तु एकसालभर के तीस प्राजापत्योंसे महापातक नहीं नष्ट होसक्ता है उसके लिये बढिया प्रायश्चित्त चाहिये-यह सुसन्तुने कहा (मिताक्षराकार कहितेहै कि यह अनेकवारका अभ्यास किया पाप जो तीसही प्राजापत्यसे नितिजाना कहा सोभी उपपातक आदि छोड़े पापोंका प्रयोजन समझिलेना • तथा विनाजाने किये पाप के ऊपर दो चांद्रायणा यह यम के कहे दो चांद्रायणके योग्य जे कोई पातक ठहरें तिनकी कड़े आवृत्ति जिसपर विना जाने होगई हों तिसके लिये भी यह तीस कृच्छ्रों वाला प्रायश्चित्त विकल्पसे समझना अर्थात् जहां किसी दूसरे प्रायश्चित्तकी मर्यादासे विरोध खड़ा होता हो तहां तो नहीं परन्तु जहां दूसरी मर्यादा से विरोध नहीं देखी तहां येही तीस कृच्छ्र कराये जासक्ते हैं अन्यथा दूसरी मर्यादा जो प्रधानतासे उस पापके ऊपर आरूढ़ हुईहो उसीका वर्तावा करना होगा इसीलिये वा शब्दसे विकल्प रक्खा गया है ॥ ० ॥ असभवेन्नाह्वणभोजनं-एक यह विशेषता भी समझनी श्रेय रही कि जब कोई पुंस्य या स्त्री रोगग्रस्त होने आदि कारणों से जप तप करनेमें असमर्थहो परन्तु धन धान्यसे संपन्न होय तो वह अपने करने योग्य कृच्छ्र आदि व्रतों के स्थानपर श्रेय विहाय ब्राह्मणोंकी सद्भोजन देकर उक्त व्रतोंका फल पाता है सो करे • इसके मध्ये अग्रोक्त वचन देखीं=यथा स्मृत्यतर=कृच्छ्रे पचातिकृच्छ्रे विद्युत्ता महरहस्त्रिशद्वंतृतीयचेत्वारिशचतस्ते त्रिगुणितगुणितविश्रिति स्यात्पराके कृच्छ्रे सांतपनाख्येभवतियद्भिकाविश्रितिःसैवहीना हाभ्यांचांद्रायणोस्यात्तपसिकृश्वलो भोजयेद्भिप्रमुख्यात् (अहरहरितिसर्ववसवधनीय • तृतीयःकृच्छ्रातिकृच्छ्रः अथ प्राजापत्य दिवसकल्पनया विद्विद्भिप्राणां यथिभोजनभवतीति मिताक्षरा=अर्थात्-

प्राजापत्य नामी कृच्छ्र के न कर सकने में बारह दिनतक पांच ब्राह्मणों को नित्य
 भ्रूति उत्तम भोजन देता रहे • इसी प्रकार अति कृच्छ्र के न करने में तिथिने किंतु
 पंद्रह ब्राह्मणोंको नित्यजिमावै • इसीप्रकार तीसरे कृच्छ्रातिकृच्छ्रके न करने में तीस
 विद्वानों को जिमाता रहे • और तप्तकृच्छ्रमें चालीस विप्रों को नित्य जिमावै • और
 पराक नामी कृच्छ्रमें नित्य प्रति एक बीसो तीनि गुनो गानिकर जो संख्या होतीही
 अर्थात् तीनिबीसो ब्राह्मणोंको जिमायाकरै • और बारह दिनवाले सांतपन नाम के
 कृच्छ्र में छव्वीस विप्रोंको नित्य जिमाया करै • और चांद्रायण के न करसकने में
 चौबीस विप्रोंको नित्यजिमावै वह प्रायश्चित्ती जो तपकरनेमें दुर्बलहोय (यहां सब
 सेपड़िलेप्राजापत्यमें जोपांचकहे सो बारह पंजेसादि सब होतेहैं सेमेही औरों में स-
 मझलेना ॥०॥ एक चतुर्विंशति मतके वचनमें उक्त ब्राह्मणोंकी संख्या इससे थोड़ी
 देखि परतीहै कि=विप्राद्वादश वाभोज्याःपावकेष्टिस्तथैवच अन्यावापावनीकाचि
 त्समान्याहुर्मनीयिराः इति प्राजापत्यस्थानेद्वादशविप्राणां भोजनमुक्तांतर्निर्वनबिधय
 निर्तिमित्ताक्षरा=अर्थात्-प्राजापत्य या उसकेकोई बदल भी न कर सके सो बारह
 विप्रोंको भोजनकरावै या पावकेष्टि जो पावक अग्निकेनाससे वेदोक्त कर्म होता है
 वहीकरै या औरही कोई पावनीक्रिया होय इनकी मनीयो लोग बराबर बताते हैं
 (इसमें प्राजापत्य के स्थानपर एकही एक रोज अथवा एकही दिन इकट्ठे बारह
 जिमानेकहे सो यह अतिनिधन प्रायश्चित्तीके निमित्तपरजानना यह मित्ताक्षराकार
 ने समझाया ॥ ० ॥ और उसी चतुर्विंशति मतमें एक दूसरे वचनसे चांद्रायण के
 स्थान भूत आदेश भी कहेहैं=यथाचांद्रायणोभृगारीष्टिःपावनेष्टिस्तथैवच मित्र विंदा
 पशुश्चैव कृच्छ्रं मासञ्चतथा नित्यनीमित्तिकानांचकाम्यानांचैवकर्मणाम् इथीनां
 पशुबन्धानामभवेचरःश्रुता-इति (तदपिचांद्रायणाशक्तस्य • यत्तुकृच्छ्रं मास त्रयं
 तथैतं कृच्छ्राष्टकंप्रत्याभ्यातं तदपि बतरसुखंविषयं चांद्रायणाविभिः कृच्छ्रैरिति
 दर्शितत्वाद्बलमतिप्रसंगेनेति मित्ताक्षरा=अर्थात्-चान्द्रायण के स्थानमें भृगारि इति
 नामका वेदोक्त कर्म या पावन इष्टि कर्म जो अग्निके पावन इस नामसे कहाता
 है या मित्रविंदा पशु नामका कर्म या तैसाही तीन महीने का कृच्छ्र व्रत जानौ-
 इसकोसिवाय-नित्यकर्मोंके या नैमित्तिकोंके या काम्य कर्मों के भी या पशुबन्ध
 नाम की इष्टियों के अभाव में (अर्थात् इनमें से कोई कर्म जिसे करना चांइये
 उससे वह न होसके तो यह न होनाही अभाव कहाता है तिस अभाव के स्थान में
 (चरवःस्पृताः) खीरि आदि साकल्य करने कहे इसका यही तात्पर्य है कि उन

कासोंके बदले होम करदियेजायँ—यह चतुर्विंशति मत्तका कथनहै। इसमें मिता-
सराकार केवल एक चान्द्रायणको प्रयोजनपर कहिते हैं कि (यह नियम सिर्फ उ-
सकेलिये जो चान्द्रायणको न करसके और जो चान्द्रायण के स्थानपर तीनिमहीना
के आठ वा साढ़े सात कृच्छ्र करने कहे सो उसके लिये जो बिल्कुल मुख और श-
रीरसे मजदतहो क्योंकि पहिली मुख्य व्यवस्था मे कश्चिचुके हैं कि चान्द्रायण के
स्थानपर तीनकृच्छ्र कियेजायँ तो यहतीनि और आठके अन्तरसे बड़ा विरोधआवे
सो भी उस विरोधके दग्गने हेतु चर्चा मात्र कियಾಗया कुछ आठसे प्रयोजन यहाँ
नहींहै ॥ ० ॥ ध्यान करौ कि यह परिच्छेद बहुत बड़ाहै और यह भी ठीकहै कि
इतना विस्तार नहीं किया जाता तो इन बातोंका समुझिपाना दुर्घट होता—परन्तु
इतने विस्तारका तात्पर्य केवल वहीहै जो परिच्छेद के प्रारम्भ और चक्रमे कहि
चुके और इतने बड़े विस्तारका सारमात्र योगोच्चरने सिर्फ सोरह अक्षरोंसे जताया
था देखौ तीनसौ सत्ताईसका पूर्वार्ध मूलश्लोक ॥ ३२७ ॥ इसीका उत्तरार्ध अगिले
परिच्छेदमें जाकर काम आवेगा अर्थात् उसमें विषय दूसरा जानो ॥

इतिप्रत्याम्नायानांपरिच्छेदः समाप्तः ॥

(प्रकरणांचामौ)

इत्यनादित्य प्रायश्चित्तोपायभेदेषु आदेशि-
कप्रत्याम्नायानांयुक्तिप्रकरणं ॥

इस प्रकरणा में केवल एकही ८७ सत्तासीका परिच्छेद है अर्थात् इतने लम्बे
परिच्छेदमें एकही प्रयोजनकी वार्ता वर्णन करोगई तिससे यह आपही परिच्छेद
और आपही प्रकरणाका रूप मानागया है ॥

अथ धर्मार्थेष्विचान्द्रायणकृच्छ्रादीनामुभयत्रफलसाध

नत्वम्भवतीतिगुणप्रकाशकोयंतथाऽस्यचशास्त्रस्यफ

लप्रदर्शकोयंपरिच्छेद अष्टाशीतितमोऽंतिमश्च(८८)

सबसे पहिला यही परिच्छेदहै—इस परिच्छेद अष्टासीमें यह बात जानीजायगी
कि चान्द्रायण कृच्छ्र आदि की भावना कुछ प्रायश्चित्तही के निमित्त नहीं होती

ब्रह्मिक जन्मान्तर को पापों का उदय रूप दुर्भाग्य आदि शोचन करना चाहिके भी होती और केवल पारलौकिक पुण्य रूपी धर्म चाहिके भी होती है या केवल इसी लोकमें प्रतिष्ठा आदि श्रेष्ठ फलको चाहिकर भी होती है या दोनों लोक में साधारण फलकी चाहसे भी होता है या केवल अपने मोक्षफलकी चाहसे भी होती है इत्यादि—इनके सिवाय—सर्व धर्म शास्त्र के पढ़ने और सुनने और घर में पुस्तक राखने आदि यद्वासे जो कुछ फल होते हैं सो भी सब इसी परिच्छेदमें ॥

(चान्द्रायणस्यधर्मार्थत्वंच)

धर्मार्थयश्चरेवेतच्चंद्रस्यैतिसलीकताम् ३२७

अर्थः—यही चांद्रायणा जो कोई अपने अभ्युदयकी कामनासे धर्महीके निमित्त साधनकरे सो चन्द्रलोक में पहुंचता है ॥ ३२७ ॥

३२७अधिकोक्तिः—तात्पर्य इसका यही है कि प्रायश्चित्तको जस्वरत होने विना भी यदि अपना पुण्यफल प्राप्त होना चाहिके साथे सो चन्द्रलोक में अर्थात् चन्द्रलोक भी एक प्रकारका स्वर्गही जुदा होता है तहाँ पहुँचै—सो यह फलभी एक वर्ष भर साधना करनेमध्ये जानना क्योंकि अग्रोक्त गौतम की वचन में यही तात्पर्य है—यदाहगौतमः= एकमाप्स्वाविपापोविपाप्मासर्वमेनोहति द्वितीयमाप्स्वादशपूर्वाद् दशपरान्नात्मानचैकविंशंप्रतिचपुनार्ति संवत्सरंचाप्स्वाच्चंद्रमसःसलीकतांत्रजाति= अर्थात्—श्रेष्ठ विधिकेसाथ एकचांद्रायणा पूराकरिपाइके उनपापोंसे रहितहीजाता है जो उसके संचितहोयें-पापरहित पुरुष आगामी सबतरह के पापोंको हटाता है-फिर दूसरे चांद्रायणाकी ठीक ठीक साधिके अपने दश पहिले पुसया और दश अगिली संतानोंको और बीचमें इकीसवें निज आपेको भी पवित्र करता है इसी प्रकार तीसरे आदि चांद्रायणों से फलकी वृद्धि होते होते वर्ष भर में बारह चांद्रायणा अच्छे साधिके चन्द्रमाके लोकमें स्वर्ग सुख भोगता है ॥ ३२७ ॥

(ऋच्छ्रायामपिधर्मार्थत्वं)

ऋच्छ्रुद्धर्मकामस्तुमहर्त्वाश्रियमाप्नुयात् । तथागुरुकतुफलंप्राप्तुमुसमाहितः ३२८

अर्थः—धर्मकी कामनासे ऋच्छ्र करनेवालाबड़ी श्रेष्ठ प्रतिष्ठा आदि लक्ष्मियोंको पावे जैसे गुरु यज्ञोंका कर्ता समाहित होके अपने फलको पाता है—अर्थात्—जैसे राजसूय आदि बड़े बड़े यज्ञोंका करने वाला यज्ञोंका फल (अर्थात् अपने राज्य आदि रूपों

से बड़े फलकी) पाता है तैसे यह पुरुष भी पाजापत्य आदि कई भांतिके कृच्छ्रोंको अथवा एकही किमी कृच्छ्रको समाहित होके संपूर्ण व्रतके अंग प्रत्यंगों सहित साथे जिसमें कोईसा किन्तु श्रेय न रहिजाय कि अमुके विधि को हीनता रही तो उस किये हुये कृच्छ्रका फल यही है कि उसके कुलजातिके संबंध वाली लक्ष्मीकी वृद्धि बहुत होती है अर्थात् जो कुछ व्यापार उसके कुल में या जातिमें होता हो या जिस बातकी कामना उसके हृदयमें मौजूदहो उसही की संपत्तों में अत्यंत समृद्धि होती रहती है और शोभा और सुकीर्ति और सुवृद्धि आदिकी प्रतिया वृद्धि जाती है— इसमें—सुसमाहित का अर्थ ऊपर लिखा गया तिससे यहभी तात्पर्य है कि शास्त्रार्थ से व्रतोंके अंग जैसे सिद्ध होचुके हैं तैसे पूरे अंगों विना साधना करनेसे भी फल की सिद्धि नहीं मिलती है और यहभी तात्पर्य है कि प्रायश्चित्तों के प्रयोजनमें जैसा इन्हीं व्रतोंके प्रत्यासनाय रूपा आदेश और बदलभी दर्शाये गये तैसा यहाँ धर्मकी कामना मध्ये साधन करनेमें न होगा किन्तु यहाँ जिस व्रतका संकल्प किया जाय वही पूरे अंगोंसे कर्तव्य होगा तैसेही बदल वाले कर्मभी निज अपनेही नामोंसे जुड़े किये जायेंगे—बल्कि यह भी तात्पर्य है कि जहाँ किमी व्रत की एक दो आवृत्ति करनेसे फलकी उत्पत्ति देखने में न आवे तहाँ उसी व्रतकी अनेक आवृत्तों लगातार करनी चाहिये अर्थात् निराश होके मन को न हटावै किन्तु आशा लगी रखकर निरन्तर उसमें रगड़ किये जावें तिसकी अवश्य फलकी प्राप्ति होती है (अतिसंघर्षण करैजुकोई। अनलप्रकटचन्दनतेहोई॥ ३२८ ॥ इतिचांद्रायणादीनांप्रायश्चित्तविनापिधर्मार्थत्वम् ॥

अथच

(अस्यैवधर्मशास्त्रस्य सेवनकर्तृणांफलम्)

(तत्रप्रार्थनाच ऋषिभिःकृतावरदानार्थरूपैव)

श्रुत्वेतानृपयोधमान्याज्ञवल्क्येनभाषितान् । इदमूचुर्महात्मानंयोगीन्द्रममितौजसम् ३२९ य इदंधारयिष्यंतिधर्मशास्त्रमर्तंद्रिताः । इहलोकेशयाःप्राप्यतेपास्यंतित्रिविष्टपम् ३३० विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यापनकामोपनंतथा । आयुःकामस्तथावाऽऽयुःश्रीकामोमहतीश्रियम् ३३१ इलोक त्रयमापिह्यमदायःआद्धेभावयिष्यति । पितृणां तस्य वृत्तिः स्यादक्षय्यानात्र संशयः ३३२ ब्राह्मणः पात्रतायातिक्षत्रियोविजयीभवेत् । वैश्यश्च धान्यधनवानस्यशास्त्रधारणात् ३३३ य इदं भ्रा वये द्विद्वान्द्विजान्पर्वसुपर्वसु । अश्वमेधफलं तस्य तद्रावाननुमन्यताम् ३३४ श्रुत्वेतयाज्ञवल्क्यो पिप्रीतात्मानमुनिभाषितम् । एवमस्त्वितिहोवाचनमस्करुत्वास्वयंभुवे ३३५ ॥

=अर्थात्-ऋषिलोग याज्ञवल्क्य से कहे इतने सब धर्मोंको मुनिकर (जो आचार अध्याय से लेकर यहां तक तीनि कांडों में योगीश्वर ने कहे तिनको अच्छे समुक्ति पाने पीछे) ऋषय यह कहने लगे उन अपार शक्तिमान् महात्मा योगीन्द्र को कि ॥ ३२९ ॥ जो कोई इस धर्मशास्त्र को निरालस होके धारणा करेगे वे पुरुष इस लोक में यशको पाइके स्वर्गमें जावेंगे ॥ ३३० ॥ विद्यार्थी वनिके यदि इसको धारणा करै सो पूरी विद्या की शक्ति पावै तथा जो धनकी कामना से पढ़ै सो धनको पावै जो आयु की कामनासे इसका अभ्यास करै तिसकी आयु बढिजाय श्रीशोभा संपत्ति प्रतिष्ठा आदिकी कामना राखै तिसको वही प्राप्तहीय ॥ ३३१ ॥ जो कोई याद कर्मके बीच इसका पाठ करावै अथवा इसके तीनिही प्रलोकमात्र पढिकर निमंत्रित विप्रों की मुनावै तिसके पितरों की अक्षय तृप्ति होय इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३२ ॥ ब्राह्मण होके जो इसका अभ्यास करै सो ब्राह्मणों में सत्पात्र ठहिरै क्षत्री इतकी धारणासे विजयमान् होय वैश्य इसको पढ़ै सो धन धान्यशान् होय ॥ ३३३ ॥ इतनी प्रार्थना करिके ऋषिलोग एक और प्रार्थना करते हैं कि जो कोई विद्वान् होके प्रत्येक पर्वोंमें द्विजातियों को मुनावै तिसको अद्यमेव यज्ञ कियेका फल होय यह सब जितनी प्रार्थना हम सामग्र्यवा आदि ऋषियों ने पांच प्रलोकों द्वारा आप से प्रकाशकारी सो सब तद्रूप आप स्वीकार करै अर्थात् अपने कहे शास्त्ररूपी वचनोंमें ऐसीही प्रभाव अपनी अपार शक्तिसे आरुढ करै (यह मुनिके आगे वरदान देतेहैं ॥ ३३४ ॥ इतनी मुनि लोगों की प्रार्थना मुनि के याज्ञवल्क्य भी प्रसन्न हृदय होकर स्वयंभू नाम विधाताको ध्यानमात्रसे प्रणाम करिके प्रसन्नमुखसे उत्तर वरदान देकर बोले कि यह सब इसी प्रकार होउ जो कुछ तुमने चाहा ॥ ३३५ ॥

(ग्रन्थ समाप्तिः)



समाप्तोऽयं महाश्रंपोऽधर्मशास्त्रानुवादतः मर्यादापरिपाठ्यास्योवेदवेदनवेन्दुके (१९४४) वि
 क्रमार्कस्यभूपस्यरुवातेसंवत्सरोत्तमे १ श्रीमर्यादाप्रियस्यैवस्वाऽऽयासेनादितःखलु आचारोव्यच
 हारश्चप्रायश्चित्तमितित्रयः कांडायत्रविशेषणतृतीयस्तेष्वयंजनाः २ परिच्छेदमयाःसर्वेषूपकार्या
 नुरोधतः कांडाःसच्छीघ्रवोधायसंतिकर्तुःक्रियागुणैः ३ तत्रादिभौचद्वौकांडोपूर्वमेवहिमुद्रितौ कर्तुः
 स्वातंत्र्यभावेनसप्तवर्षपरिश्रमेः आर्ग्वारूपेपुरवरेस्थितिःकर्तुर्हीयत्रवै ४ तृतीयोऽयंथनाभावकार
 णैःसुविलंबितः पंचवर्षततःसोपिसिद्धिंप्राप्तोयथापुना ५ सर्वेषामुपकारायविद्वतांसुलभायच मुं
 शीनवलकिशोरैर्धेनदत्त्वास्वकीयकम् कर्तुःसंतृप्तिपर्यन्तमौदाच्यैषणवरीयसा६ नियोजितःपुनर्वारंम
 योदाप्रियपंडितः प्रायश्चित्ताभिधस्यास्यनिर्माणेक्लिष्टकर्मणि ७ स्थितोऽप्याग्लसंज्ञीहिपत्तनप्र
 वरेह्यहम् शुद्धादुर्गाप्रसादारूपेनियुक्तस्तेनमुंशाना वर्षद्वितयकालेनतद्विदुक्तवानिमम ८ पां
 डुलेखेऽथसंपूर्णमयावत्तच्छ्रद्धोऽधितः सधमणापुरिसंप्राप्तोऽननजइतिशब्दिते ९ नगरेसर्वतः
 ख्यातिसाकेताधिपतिस्थितो मुद्रांक्लिपिगेहंतुपत्रख्यातंमहचमम् १० (गीतिः) मुंशीनवलकिशोरैः
 श्रीनवलकिशोरैरसइतिनाम्ना तस्मिन्नयंतृतीयः कांडोमुद्रितःकर्तुरसमक्षम् ११ यदातुमुद्रितः
 प्राप्तामयाकर्त्रैवलोकितः आर्ग्वेहिपुरेतिष्ठन्ज्ञातःशोधनकर्मणा १२ कर्तुरेवासमक्षत्वात् यंत्र
 दोषादिहारणैः यंत्रवेतनिकानांचप्रमादात्तुविशेषतः १३ संक्षिप्तैष्वृषिवाक्येषुगलितानिपदानि
 च बहुनिदृष्टिमायातितानिज्ञोऽध्यानिपाठकैः १४ किंचतच्छोधनाधेतुशुद्धाशुद्धविवेचनम् अ
 शुद्धशुद्धपत्रारूपयंत्रमग्रेऽभिधीयते १५ पांडुलेखानुसारेणपुस्तकैकंचशोधितम् स्वस्यैववर्तनार्था
 यतन्ममोपस्थितंजनाः १६ एवंचतुर्दशैवयंत्रयःकांडाःसुसज्जिताः (१९४४) सठवरसरेविक्र
 मस्यवेदवेदनवेन्दुके १७ मुंशीनवलकिशोरैस्त्वथसर्वान्पुनःस्वयम् मुद्रायिष्यतिभूयोऽपिसातंत्र्ये
 षेवचेऽतः १८ यतस्तेनास्यग्रथस्यकर्तुःपूर्वकतापिच प्रतिज्ञापूरिताइतिनिजोदाच्यैषणसज्जनाः १९
 स्तो आई ई त्रिभिःशब्दैर्पस्यनामअलंकृतम् सार्वभौमप्रदचैश्वर्यअपेक्षेपामयंजनाः २० भारतस्याधि
 रापुस्यसुहृत्तमसोमहान् मुंशीनवलकिशोरैःसर्वसज्जनसम्मतः २१ येनार्ग्वलेपुरेस्यभागवा
 नाहितायतु विद्याश्रमइतिरुपातापाठशालानिरूपिता २२ प्रतिज्ञायादृशीपूर्वमयाकर्त्रानिरू
 षिता व्यवहारमर्यादायाःसमाप्तोचैहृदयताम् २३ (सायथा—प्रायश्चित्ताभिधेःकांडेनप्रति
 ज्ञामयाकृता द्रव्यादिप्रतिबंधानांकारणानिविज्ञाप्यच गुरुकांडःसत्प्राप्तिभूरिद्रव्यव्ययेनतु
 सिद्धिस्तस्यचसंभावीनसहायःप्रदृश्यते प्रतिज्ञायदिकाश्चिद्द्विरेणीश्वरुपिप्यति तदाहमुच्यतेभू
 त्वाकरिष्यामिनसंशयः—इतिदत्त्वाःस्वरूपं) एवाहिमुंशीनवललेननुनंकिशोरकाव्याननभूपितेन दे
 शोविदेशेषुचपूजितेनप्रसाधिताऽहंचरुतःरुतार्थः २४ जन्मभूमिश्रमेर्गंगापारदेशोविशेषतः हदोई
 मंडलार्थनिप्रविभगिवृहत्तमे २५ साकेताविषयेशाहावाद्रुष्यातेपुरोत्तमे शनिवाजाराकेस्थानतो
 रातीरेगृहंनम २६ अग्रसंदिगिरिवर्यातशिवालयसमीपम् चसतिःकान्यकुब्जानांयत्ररुष्याता

महीं तले २७ अभूद्ररद्वाजमहापैंगोत्रेगुह्येतिविरुयातकुलेविशुद्धे विद्यावरःश्रीहरिवंशशर्मापस्ये
 ष्टदेवःखलुसिंहयाना २८ वेशीरामइतिप्रोक्तःपुत्रस्तद्रुणसन्निभःतस्यपुत्रास्त्रयोजातास्तेचधर्मविशा
 रदाः २९ ज्येष्ठःठाकुरनाथस्तुंगारामश्वमध्यमः चोक्षेज्जालइतिप्रोक्तःकनिष्ठोमत्पिताचसः ३०
 कूपारामादिपूरानानिर्मातामध्यमौधनी प्रातिभाव्यकरश्चात्प्रातिप्रत्यर्पानांचराजानि ३१ दुर्गाप्र
 सादशर्माऽहंमर्यादाप्रियसत्तमः वात्पादेवत्यजन्देशंविचरन्नर्गलेपुरे ३२ आगराइतिविरुयातेपट्टन
 प्रवरोस्थितः अत्रास्तीनोहृदिस्थान्तुमर्यादापरिपाटिकाम् ३३ ऊतवान्सुखबोधायसज्जनानांचप्रीतये
 धर्मार्थसुखमोक्षाणांमर्यादायाःप्रवृद्धये ३४ ॥

प्रगट हो कि इस पुस्तक को मत्तवे ने निज खर्च से उरुया करकर छपवाया है इसलिये
 धिना थाचइ इस छापखानेके कोई छापने का अधिकारो नहोहै

मुशो नथलकिशोर के छापेखाने में छपो मार्च सन् १८८८ ई० ।

इस पुस्तक को पण्डित रामविहारी व पण्डित बदीदीन ने शुद्ध किया ।

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुभापत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	शशा	शशा.	३०	३०	चिच्येतेषु	चिच्येतेषु
२	५०	अचरार्थः	अचरार्थः	३०	३	याग्य	योग्य
४	१८	जन्मतक	जन्मतक	३०	३५	शुद्धदोक्रिया	दोशुद्धक्रिया
०	२२	दक्षिणाग्निजन्म	दक्षिणाग्निजा जन्म	३०	२६	बडागाँइरा)	बडाठाँइरा)
८	५४	मुद्गलेजाय	मुद्गां न लेजाय	३६	१४	स्मृतत्वयसुत	स्मृतकेत्वयसुत
९	७	चिरात्रि	चिरात्र	३६	१०	नकरै-परतु =	नकरै=परतु—
९	१०	दिग्मखाः	दिग्मखाः	४०	१२	यामिथये	यामिथये
१०	३	नोद्घपयेयु	नोद्घपयेयु	४०	१०	शेषान्दद्या	शेषान्दद्या
१०	१४	पुष्पान्द्र	पुष्पान्द्र	४०	२०	शेपर है	शेपर है
११	३	पाचनेकी अधिकोक्तिमे	पाचनेकी अधिकोक्तिमे	४१	२१	मिताक्षराका	मिताक्षराकार
१३	२६	अगिरा	अगिराः	४१	२३	गर्भस्तुत्या	गर्भस्तुत्या
१३	५०	शौच	शौच	४२	१८	गर्भकेगिरनेमे	गर्भकेगिरनेमे
१६	७	मास	मास	४२	२१	आचतुर्था	आचतुर्था
१६	२०	गर्हभिया	गर्हभिया	४३	२४	सुतकाज्ञाधि	सुतकाज्ञाधि
२०	२८	कास्थिरत्व	कास्थिरत्व	४४	२	शीचकापेध	शीचकानिपेध
२१	२०	तिनका	तिनका	४५	२	अग्निहोत्रार्थ	अग्निहोत्रार्थ
२३	३	चिह्नित्यापि	चिह्नित्यापि	४५	६	जवताजी	जवताजी
२३	३	पिच्युया	पिच्युया	४५	०	तयताजी	तयताजी
२३	१२	मातापितांगिति	मातापितृांगिति	४५	६	रात्रिभिर्मसितु	रात्रिभिर्मसितु
२४	२५	पिडपानीय	पिडपानीय	४५	२६	हंस्य ततो	हंस्यततो
२४	२४	सवकोचर्यात्तुदेवै	सर्थात्सवकोद्देवै	४६	८	त्रिरात्रिमशु	त्रिरात्रिमशु
२५	७	अविभक्तधन	अविभक्तधन	४७	१०	अकिचि	अचकिच
२६	५	पोठे	पोठे	४६	२५	उटलेकर	उटलेकर
२८	१०	यावज्जीव	यावज्जीव	४६	१६	विषोडधन	विषोडकोट्टधन
३१	६	सनकरे	सनकरे	४६	१४	भवेत्येव	भवत्येव
३१	१०	भोक्तुदोष	भोक्तुदोष	५०	१३	धराना	धराना
३१	१८	सिद्धिक्रिये	सिद्धिक्रिये	५०	१६	दूतत्रामि	दूतत्रामि
३२	२६	बहुतकाल	बहुतकाल	५६	१०	विप्रोचनम्	विप्रोचनम्
३६	२८	त	त	६०	१०	य-वै	यानैव
३०	१५	पुत्रवती	पुत्रवती	६१	१०	दरानर	पश्यव
३०	१८	संस्पर्शान्तिपिष्यते	संस्पर्शान्तिपिष्यते	६२	३	अविगीत	अविगीत
३०	१८	संस्पर्शमूतकायास्तु	संस्पर्शमूतकायास्तु	६२	२१	सोमो	सोम
३०	२४	द्विजप्रचाद्रायण	द्विजप्रचाद्रायण	६३	४	आशनायन	आशनायन

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	५	दानध्ययने	दानाध्ययने	६६	१४	तातवरत्ना	तातवरत्न
६३	१०	निवाहिवले	निवाहिवले	६६	१४	तद्यौषधी	तद्यौषधीः
६३	१४	दानस्ययने	दानाध्ययने	६७	०	योग्यहै	योग्यहै
६३	१८	होतीवहा	होतीवहो	६७	८	पतनीया	पतनीय
६३	२०	चिराचमाहु	चिराचमाहु	६८	४	प्रचविष्टाया	प्रचविष्टाया
६४	५	पक्षिणी	पक्षिणी	१००	१४	विपणिय दुकान	विपणियदुकान
६६	२१	शुद्धास्यु	शुद्धास्यु	१००	१४	दुकानखेती	दुकानखेती
६८	६	पिच्छले	पिच्छले	१००	२२	दुरेत	दुरेत
६६	११	कृच्छ्रपादो	कृच्छ्रपादो	१००	२३	कुटुम्बच	कुटुम्बच
६६	१३	कृच्छ्रकद्रायणत्रत	कृच्छ्रनामकत्रत	१०१	१३	यस्यगत्र	यस्यरात्र
७३	१०	पुरोस्ति	पुरोहित	१०१	१४	तद्राष्ट्रन्दु	तद्राष्ट्रन्दु
७५	१०	क्रतुस्मरण	क्रतुस्मरण	१०३	१६	नग्नोश्चैवाव	नग्नोश्चैवाव
७६	१३	यद्दकउपल	यद्दकउपल	१०५	१२	होसके	होसके
७७	५	स्नायात्सस्पृष्ट	स्नायात्सस्पृष्ट	१०५	१५	वानाप्रस्थ	वानप्रस्थ
७७	१५	खानम्बपाक	खानप्रवपाक	१०५	१६	पितृ देवा	पितृदेवा
७७	२६	स्पृक्षा	स्पृक्षा	१०५	२०	करताहै	करतारहै
७७	२६	छुईचढा	छुईचढो	१०५	२०	भीकरता	भीकरतारहै
७७	२२	भासवायसमाजरी	भासवायसमाजरी	१०६	२०	विल्कुल	विल्कुल
७७	०	करोमुत्का	करोमुत्का	१०८	१३	यद्वाग्निसे	यद्वाग्निसे
७७	१२	करोमुत्का	करोमुत्का	१०८	१८	फलोकोमीगसे	फलोकोमीगसे
७७	१६	पकोईट	पकोईट	१०८	२०	वाग्निवागते	वाग्निवागते
७७	२८	प्रचालित	प्रचालित	१०६	३	सपदेसे	सपपदेसे
७७	३६	तोसरायहभी	तोसरायहभी	१०६	१०	पूरपूर	पूरपूर
७७	४	स्पृश्यमानव	स्पृश्यमानव	१०६	३०	दुत्तराशक्तिः	दुत्तराशक्तिः
७७	१०	कृच्छ्रचाद्रायण	कृच्छ्रप्राजापत्यचाद्रि	१००	२	विकल्प	विकल्प
६३	२१	निवाहिकरै	निवाहिकरै	१००	३६	भोजोवस्त्र	भोजोवस्त्र
६३	२२	होनयणका	होनयणकी	१०१	१५	उसे	उसे
६४	१६	नीचकेदोःकर्म	नीचकेदोःकर्म	१०१	२०	प्राणयात्रा	प्राणयात्रा
६४	१६	कर्मको	कर्मको	१०२	१०	आरोपित	आरोपित
६४	२३	जीवन	जीवन	१०२	२४	मौनसाधे	मौनसाधे
६४	३०	यकर	यकर	१०२	२८	मूलप्रलोकमे	मूलप्रलोकमे
६६	११	श्रीयोगिनि	श्रीयोगिनि	१०३	२८	इमाप्रस्थान	इमाप्रस्थान
६६	११	वदरैगुदे	वदरैगुदे	१०५	३५	(की)	(कि)

मिताक्षरा स० प्रायश्चित्तकांड का शुद्धशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६	५	मोट्टिमुट्टे	मोट्टेगुट्टे	१४६	१४	सतारी	चराचरसतारी
११६	२०	पक्षस्थी	गृहस्थी	१४६	१०	गर्भमे	बृषादिकत्वाचर या
१२१	२	तर्कनाकरनी	तर्के न करनी				नरादिक वगम देहोक्ते
१२१	२५	भर अन्यथा	भारै अन्यथा				गर्भमे
१२१	२५	विरोधापाति	विरोधापाति	१४८	१०	कक्षा प्राते	कहँसे प्राते
१२२	११	वनिपर	वनिपरै	१४८	११	याकभसमर्थः	याकतु समर्थः
१२२	३०	मानयैवत्त	मानयैवत्त	१४६	२	महापच	पचमहा
१२३	२२	ब्राह्मण प्रव्रजति	ब्राह्मण प्रव्रजति	१४६	०	घन्य	घन्य
१२४	२४	ती० ड	तीनदंड	१४६	२२	इद्रियादि	इद्रियादि
१२४	२०	प्रजापत्ये	प्रजापत्ये	१४३	११	परिभाषा	परिभाषा
१२४	२६	वैश्वानुद	वैश्वानुद	१४३	१२	विवक्तता	विवक्तता
१२४	२६	प्रमाणद	प्रमाणानुद	१४३	१०	गणवेदिभिः	गुणवेदिभिः
१२५	२१	शच मुनि.	शचरेन्मुनिः	१४३	२२	देसकै	देसकै
१२५	२६	देवस्थन	देवस्थल	१४४	६	करपिन	करपिन
१२६	१०	वयामात्रः	कथामात्रः	१४४	४	उग्देवै	उग्देवै
१२८	२१	सप्तगाराशय	सप्तगाराशय	१४५	२०	इडफटन	इडफूनि
१३१	२	परच	परच	१५०	५	यामिहवी	यामिहवी
१३१	७	शयवियोगि	शयवियोगि	१५०	०	उधर	उधुत
१३१	०	रन्येरमार	रन्येरमार	१५०	११	ठीकव्यौर	ठीकव्यौर
१३१	२४	घष्यासुद०	घष्यासु	१५८	२	सातापुत्र	सातापुत्र
१३३	५	समडू	समूड	१६६	८	श गार	श्याडक
१३३	१६	राग	राग	१६८	२	नहोकहै	नहोकहै
१३४	४	चतुष्टय	चतुष्टय	१०५	२३	दापक	दोपक
१३४	११	धारणआदि	धारणाआदि	१००	१६	अनन्नई	अनन्नई
१३८	१	यत्न	यत्न	१००	२२	सथीना	सथीना
१३६	१०	नेकुल्लमहो	नेकुल्लमहो	१०८	८	चालीसचौर इक	चालीस चौर एक
१४१	१०	आकाशी	आकाशी			तालिस	इकतालिस
१४१	१६	दृष्टिजमाचाहै	दृष्टिजमाचाहै	१०८	१४	मूड.ने	मूड
१४१	२५	वपुषा	वपुषा	१०८	१०	पाद	पाच
१४३	६	सकास	सकाश	१०८	१६	कातर	कालातर
१४३	२४	प्रलोकदेखी	परिछेदविचारै	१०६	२४	निजठिकाने	निजनिजठिकाने
१४४	८	मूलप्रलोकी	मूलप्रलोक की	१००	३	स्वेदयपप	स्वेदयपप
१४४	२१	प्रक को	प्रक की	१०१	१४	इसतय	इन सय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८१	२२	मैत्रादित्यसे	मैत्रादित्यसे	२२६	२२	हे तिसै	हेतिसै
१८३	११	पहुच	पहुच	२२६	२४	वाशब्दसेके	वाशब्दके
१८३	२१	अगभूति	अगभूत	२२०	१२	परमेश्वर	परमेश्वरने
१८३	२६	मजौरा	मंजौरा	२३०	२१	नामहो कभी	नामहैजोकभी
१८०	३	सन्तर्प्य	सन्तर्प्य	२३१	४	डकार	इन्कार
१८६	३०	करना ऊर्ध्वाक्त	करना(ऊर्ध्वाक्त	२३१	१६	मेघतुः	मेघतु
१६०	२१	समवायः	समवाय)	२३१	२०	येकोई	जेकोई
१६१	५	स्वभावहोसे	स्वभावहोसे	२३२	८	ततस्मान्	ततस्तान्
१६१	१६	विगडतेहुये	विगडतेहुये	२३२	२३	स्वर्गजितो	स्वर्गजिता
१६१	२४	परिच्छेदः ॥	परिच्छेदः ॥ १४ ॥	२३६	२०	किजिसै	किजिससे
१६२	४	(वः युष्मान्प्रति	(वः युष्मान्प्रति)	२३०	३०	यागसाधना	योगसाधना
१६४	२०	खोटे	खोटि	२४४	०	मनुष्योत्तर	मनुष्योत्तर
१६६	२०	उद्योतिश्रीम	उद्योतिश्रीम	२४६	१६	कुडासी	कुडाशो
१६८	२४	आतोहै जव	आतोहै कि जव	२४८	२	वनरः	वानरः
२०१	०	जानी	जानी	२४८	२	न्माजिरः	न्माजिरः
२०१	१४	जानो	जानो	२४८	२	खद्योतः	खद्योतः
२०५	३	उत्पन्नभुई	उत्पन्न भई	२४८	६	गयनाः	गमनाः
२०५	४	होय)	होय)	२४८	१८	कन्याद्रूप	कन्याद्रूपक
२००	१८	वयसवाले	वयसवाले	२५०	४	निरार्यः	निर्णयः
२१०	२३	भवेत्)	भवेत्)	२५०	२०	करनेवाल	करनेवाले
२१२	३४	योगमिलाप	योगमिलाप	२४१	१३	पापों के	पापोंके
२१६	१४	रचो तिनमें	रचो तिनमें	२५२	२३	त्रि दितस्य	त्रि दितस्य च
२१६	१४	विद्वान्	विद्वान्	२५३	२६	कहतीहै	कहातीहै
२१६	२१	है अर्थात्	है अर्थात्	२५४	१०	वाक्यात	वाक्यातर
२१०	१२	यमुनीप्ररी	यमनी प्ररी	२५४	२१	नार	नारः
२५०	१३	जानी	जानी	२५५	१३	अशुभजाति	अशुभजाति
२५०	१३	समुके	समुके	२५५	२२	देखाहुआ	काटाहुआ
२५०	१८	सन्धजानी	सन्धजानी	२५६	५	प्रायश्चित्तो	प्रायश्चित्तो
२५८	२२	देखपरते	देखपरते	२५६	०	क्रियेउचित	लियेउचित
२२२	२१	अप्रतक	अप्रतकनहीं	२६०	५	त्वजानान्	त्वजानान्
२२३	२६	गधतन्माच	गधतन्माच	२६०	८	प्रतसाधे	प्रतसाधे
२२४	१५	अथोता	अथोता	२६०	२५	फलभो	फलभो
२२०	२	जानी	जानी	६१	८	नेष्टवा	नेष्टवा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६१	२६	नर्ही देखोगई	नर्ही देखोगई	२६०	२०	पढेदेका	पढेदेका
२६२	१०	सोपतितात्याग	सोपतितात्याग	२६६	२	शिव्यकीस्त्रीव,इन	शिव्यकीस्त्री० यहिन
२६२	३६	ससार	ससारी	२६०	११	मेपातकौका	मेपातकौका देभातिसे
२६२	३०	जाराहो	जारीहो	२६०	२५	लेभागे	लेभागी
२६४	१५	उसैकहते	उसैकहने	२६१	११	खौलो	खौली
२६४	१०	इतन	इतने	२६२	१६	मल कमें	मूलरत्नकमें
२६५	०	कहाताहै	कहाताहै	२६२	२६	यानियिगाना	यानियिगाडना
२६६	१०	बनसेउसे	बनसेउसे	२६५	१०	नहै	नर्ही है
२६०	८	अपराधी	अपराधी	२६५	१४	होतोहै)	होतोहै (औरबेभोअम
२६०	८	अर्थात्	अर्थत्				त्यास्त है किजिनमेअ
२६०	१५	विप्रयोजित	विप्रयोजित,				भिचार ध्यभिचारो को
२६०	२६	न्याय	न्याय =				शिवाहो)
२६६	१४	अनुमन	अनुमनन	२६७	२०	जातिभ्रम्य	जातिभ्रम
२६६	२४	ढकहुये	ढकहुये	२६६	१७	पाध्य	पाध्याय
२६६	२६	कारणकोठोक	कारणकोठोक	२६६	२१	पित्या	पित्या
२६६	२०	उसकेकार्य	उसकेकार्य	२६६	२३	अन्यकारणि	अन्यकारणि
२६६	३०	रथभिचारसे	रथभिचारसे	२६६	३०	सेकुछनोचे	सेकुछनोचे
२६०	५	किसीडुबना	किसीकाडूबना	२६०	१४	अपनेधरो	अपनेकोधरो
२६०	१३	ओपध	ओपध	२६६	२६	बचनप्रभाव	बचनके प्रभाव
२६०	१४	रुप	रुप	२६०	१०	उहुतसेनाभेद	उहुतसे नामभेद
२६०	२०	तर्हामो	तर्हामो	२६०	१४	चायेगी	चायेगी
२६०	२६	अकाररानु	अकाररानु	२६०	२२	भिचायो	भिचायो
२६२	८	वेदों का	वेदों का	२६१	१५	गौतमनेउ-होगौतमने	उ-होगौतमने
२६५	१०	भियमन	भियमन	२६१	२७	उनके वस्तों	उनके वस्तों
२६३	४	पातका	पातको	२६२	८	निच हकरै	निचाहकरै
२६४	२६	सिट्टि	सिट्टि	३६२	८	प्रविष्टेत्स	प्रविष्टेत्स
२६४	२०	अग्निओभुके	अग्निनेओभुके	२६२	२१	खड्गागपाणिद्वाद	खड्गागपाणिद्वाद
२६५	१३	तोहैगुण	तोहैगुण	२६३	१४	नित्यप्रति	नित्यप्रति
२६७	६	मिलना	मिलना	२६४	६	प्रकृतिवार्ता	प्रकृतवार्ता
२६७	२०	किसीयेहो	किसीकोयेहो	२६६	१	भो न है	भोनहोहै
२६८	१२	कामाखनु	कामाखनु	२६६	१०	पायागया	पायागया
२६०	२२	प्रायश्चित्त	प्रायश्चित्त	२६०	३	उगुना	उगुना
२६०	२६	ब्रह्मोचनता	ब्रह्मोचनता	२६८	२३	कदाचिन	कदाचित्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६६	१०	हुये को	हुयेकी	३२१	१६	ब्राह्मात्मक	ब्राह्मयात्मक
२६६	१०	करता है	करताहै	३२२	३	जहामात्रा	जहायात्रा
३००	८	यताने	यतावे	३२२	१०	ताग्नेधर्मः	ताग्नेधर्मः
३०१	२५	नपुनःसर्व	नपुन सर्वा	३२३	२	द्योपदस्तु	द्योपदस्तु
३०३	२६	योग्यपात्रिका	योग्यपात्रिका	३२३	१०	घातकरै	घातकरैय
३०४	११	साधना अ	साधनाकी अ	३२३	१२	चत्रोजूता	चत्रोजूता
३०४	१०	कियाजा	कियाजाय	३२६	२२	य यती	या यती
३०४	२४	अप्राक्षणास्तु	अप्राक्षणास्तु	३३१	५	सवनस्या	सवनस्या
३०५	२४	आयोरान्भूत	आयोरान्भूत	३३२	५	घातयै	घातयै
३०६	८	योत्रय वा	योत्रिय वा	३३२	१६	ब्रह्मण	नाह्यण
३०६	६	दुच्छासा	दुच्छासा	३३३	६	मुखनिय	मुखनियम
३०६	१३	करै	करै	३३४	८	मरणच्छुट्टि	मरणाच्छुट्टि
३०६	२४	पावै०	कितपलेछुटकारापावै	३३५	२५	मद्योको	मद्योको
३०७	६	सममब्राह्म	सममब्राह्म	३३६	३०	वहिरा	वहिरा
३०७	२३	नहोसके	नहोसके	३३७	२७	मात्रवच्छेन	मात्रवच्छेदेन
३१०	२	अश्रवमेधनेभ्य	अश्रवमेधनेभ्य	३३८	८	हविर्निर्ह्र	हविर्निर्ह्र
३११	१०	भूत	भय	३३८	२६	देवना	देवाना
३१२	८	करनासपदशाने	करनाकहाउनसवदशा	३३९	५	हटै फिरै	हटाफिरै
३१२	१०	—योग्यहै कि	योग्यहै कि—	३४६	१५	दातव्य	दातव्यः
३१४	४	घतशस्त्रै	घत.शस्त्रै	३४६	२१	कुर्यान्माता	कुर्यान्माता
३१४	१२	प्रकार स	प्रकार से	३४७	३	चैनी	चैनी
३१६	१२	स्नायुनि	स्नायुनि	३४७	२०	करणान्वापि	करणान्वापि
३१६	१२	स्नायुभि	स्नायुभि	३४७	२०	भक्षयेत्त्रि	भक्षयेत्त्रि
३१७	६	अदय	पादश	३४७	१०	करै या	करैया
३१८	६	कशिराः	कशिराः	३४७	१०	चोथे या	चोथेया
३१८	२६	वैठे	कशिराः वैठे	३४७	१८	चौथेका	चौथेकाल
३१९	१४	याचिभूता	याचिभूता	३४७	२	योडभोजन	योडभोजन
३१९	२१	हरकोई	हरकोई	३४७	१५	पिण्याकया	पिण्याकया
३१९	२८	मुट्टिशतेहै	मुट्टिशतेहै	३४७	१६	पपीहुई	पपीहुई
३१९	३०	अश्रवमेधक	अश्रवमेधका	३४७	१३	मुराकेभाड	मुराकेभाड
३२०	१०	तर्कमी	यद्वतर्कमी	३४७	२६	अशकर	अशकर
३२१	३	स्वतोम्	स्वतोम्	३४१	२४	मर्पयेत	मर्पयेत्
				३५२	१६	यालाछिटकाय	यालाछिटकाय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५३	१२	मरणावजीव	मरणावजीव	३६०	१६	उदरपूर्णा	उदरपूर्णा
३५३	१०	कोईजातिवर्ण	कोईहोजातिवर्ण	३६०	२०	इसीमान्यता	इसीसेमान्यता
३५४	०	न मारै	नमारै	३६८	२४	जातकर्ण	जातकर्ण
३५४	६	देखा	देखी	३६८	३०	कारणोत्तिष्ठ	कारणोत्तिष्ठे सर्वतनेसाफ
३५४	२२	होवेहा	होवही	३६६	१८	नहीं अत्रोक्त	नहीं ॥ ० ॥ अत्रोक्त
३५५	६	राजासकृद्न्या	राजासकृद्न्या	३६६	२०	वहीदोनो	वहीदोनो
३५५	६	और कि	और है कि	३८०	२	जननी	जननी
३५५	२०	लिख्या	लिखा	३८३	१०	सुनी	सुनी
३५६	२	जहाकहो	जहाकहो	३८३	१०	और जो	और जो
३५६	६	नहींहिती	नहींहिता	३८३	१८	करावभृति	कववभृति
३५६	१६	दलुहा	दड लु	३८५	१०	लिखिपुके	लिखिपुकेतथा३६६पृष्ठ
३५६	१०	सावधानड	सावधान हो				कीपचोसर्वापत्तिसे दे
३५६	२५	कामिधान	का विधान				खी ॥ ० ॥
३५६	२६	लिख्यामात्रे	लिख्यामात्रे	३८५	१०	प्राप्त्योका	प्राप्त्योका
३५६	३०	सावित्रा	सावित्री	३८५	२०	दिनसेरडे	दिनसेपरडे
३५७	२	प्रायश्चित्त	प्रायश्चित्त	३८५	२६	जातकर्ण	जातकर्णः
३५७	५	ब्रह्मज्ञाप्रत	ब्रह्मज्ञाप्रतम्	३८६	५	कहिपुके	कहिपुके
३५७	५	इदच	इदच				कहिपुकेहैतिनसोतिह
३५८	३	हरचदिद्य	हरचदिद्य				तरिपृष्ठमें दूसरीपत्तिसे
३५८	१३	औट्म्यरताप्रमय शस्त्र	तत्रगुलिकामयमानेय	३८६	२०	यहनहोती	यहनहोती
		मितिमिताक्षरा	शस्त्रमिति मर्यादाप्रिय	३८६	२०	वचनदूही	वचनदूहीतीतीनसोपीह
			विचार (तुप चाइतिभा				तरि३८४ पृष्ठमेंसातवा
			पाया,उडुवरफलसदृश				पत्तिसे चौदहवा तक
			मुलिकाया सयोगात्—				देखी
३५८	१८	गोमयाग्नि	गोमयाग्नि	३८६	२६	त्रिपयथी	त्रिपयथी
३५९	२	सुवर्णपहा	सुवर्णपहा	३८८	६	मास चरेत्	मासचरेत्
३६०	५	नहींसभव	नहींसभव	३८८	१२	सर्गा	सर्गा
३६०	२४	इदमनसापाप	मनसापाप	३८९	२०	ससुयते	ससुयते
३६१	५	सुवर्ण	सुवर्ण	३८९	१५	शयनेयीनस्त्री	शयनेयीनश्रीव
३६१	६	पुरुषव	पुरुष	३९०	६	भोजनाशन	भोजनाशन
३६१	०	अथवा	अथवा	३९२	२	मदवा	मदवा
३६१	८	वार वर्ष	वारवर्ष	३९२	२	दूध	दूध
३६०	१६	गुहयोमात्	गुहयोमात्	३९२	१३	काभार्ये	करेभार्ये

मिताक्षरा सं प्रायश्चित्तकांड का शुद्धाशुद्धपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०१	१८	तुल	कुल्ल	४३१	२६	शुषौऽपि च	ययोऽपि च
४०२	१९	लेकर २४३	लेकर २४२	४३१	३०	वाहिये यालिसको	वाहियेयाजिसको
४०३	२०	गौयें	गौयें	४३३	१४	उचित होंगी	उचित होंगी
४१०	२२	कामारतुद्रिगु	कामातुद्रिगु	४३३	२५	अवकीर्ण	अवकीर्ण
४१०	३०	रचत में	रिचतमें	४३५	१३	करना और	करना
४११	०	अधिव्रजानौ	अधिवृद्धजानौ	४३६	१०	सशिकं	सशिक्षं
४१५	३०	सातिव	सावित	४३८	१६	जाने हूयेये	जाने हूयेये
४१६	५	भिहनना	भिहनना	४३८	२६	आकपणसे	आकपणसे
४१६	११	अधि	अधिक	४३६	२	गुठकठ	गुठकटी
४१६	२०	किन्तुइन्हैं	किनुउन्हैं	४३६	५	स्तैयोउपपा	स्तैयोपपा
४१६	२४	कृच्छ्रपादो	कृच्छ्रपादो	४४०	५	अठगुण	अठगुणा
४१८	३	देवातुध्या	देवातुध्या	४४१	८	विपसनुभक्त	विपसनुभक्ता
४१६	२४	तद्व यवहित	तद्व्यवहित	४३२	५	कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र	कृच्छ्रातिकृच्छ्र
४२०	६	पैदाकियैवा	पैदाकियाकियैवा	४४२	१०	तापवाद	तापवादः
४२०	१६	काहियुको	काहियुके	४४२	२०	होरिका	होरिका
४२०	१०	कतकि	कतकि	४४३	२६	तत्रिगुण	तत्रिगुण
४२०	२०	मोटनै	मोटनै	४४४	०	द्वपहारि	द्वपहारे
४२३	०	योक्तव	योक्त	४४५	२	अनाहितमिन्तामिन्ता	अनाहिताशिता
४२५	२	वतसि	वतावसि	४४५	०	अधिकारसो	अधिकारइसो
४२५	२१	कारयां	कारयां	४४६	१८	प्रवृत्त	प्रवृत्ति
४२६	१६	कुगैः कायैः	कुगैः कायैः	४४०	४	वाससामान्य	वाससामान्य
४२६	१०	जंजोरेके	जंजोरेके	४४०	१२	यजीज	युक्कीज
४२६	२०	जंजोरेके	जंजोरेके	४४०	१८	पुरयोमुक्तप	पुण्यमुक्तप
४२७	६	दुहिते	दुहिते	४४०	२०	इजार मंत्र	इजार औकारमंत्र
४२७	१६	स्माच्छ्रवापदे	स्माच्छ्रवापदे	४४०	२३	मौलवस्तु	मौलको वस्तु
४२७	२४	लुनेमरी	लुनेमरी	४४०	२४	इसप्रकार	इसप्रकार
४२८	३	अपालतवान	अपालतवानु	४४०	३	अधिकारवे	अधिकार ई
४२६	५	खवाये	खवाये	४५१	१२	तिते	तिते
४२६	८	धारिचदि	धारिचदि	४५१	१३	जेठोछोटी	जेठोको छोटी
४२६	१४	गौयें	गौयें	४५२	२०	तादृश्यायव	तादृश्यायव
४२६	१४	मरजायें यहाँ	मरजायें यहाँ	४५३	२४	को दारामे	को दारामे
४३०	३	दतयंपायां	दतयंपायां	४५६	१६१०	कृच्छ्रमिन्त धर्मकर्म	कृच्छ्रोऽनिश्रुतधर्मकर्म
४३०	२०	नैरयेऽधंपद	नैरयेऽधंपद			गोति (कृच्छ्रइति	गोऽतिकृच्छ्रइति

पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध
५१०	०	तद्दो	तद्दं	५५०	१६	ध्यानकरो	ध्यानकरो
५१०	१८	तभीकीड़	तभीकीड़े	५५१	३०	कहोमे	कहोसि
५१८	१३	देवे	देवै	५५३	२	अथयाज्य	अथ अयाज्य
५१८	१३	गिरावे	गिरावै	५५३	२३	संप्राजापत्य	संप्राजापत्य
५१८	२६	मान	माना	५५४	१५	मन्थमेत्य	मन्थकमेत्य
५२२	६	ब्रह्मचार्यादीनां	ब्रह्मचार्यादीनां	५५०	८	संपर्यनकुल	संपर्यनकुल
५२२	१५	आथय	आथयम	५५६	०	तद्भागाराम	तद्भागाराम
५२२	२५	परागया	धरागया	५६२	१६	प्रज्ञोष्कता	प्रज्ञोष्कता
५२३	४	मोक्षकीर्षी	मोक्षकीर्षी	५६३	१२	तिसकैसातमा	तिसकैसातमा
५२३	२०	होवती	होवती	५६३	३०	करै	करै
५२३	३०	देवताभ्यः	देवताभ्यः	५६५	१९	स्त्रीहिंसादिभिर्जायन	स्त्रीहिंसादिभिर्जायन
५२४	३	मंत्रमेलिखिदिये	मंत्रमेलिखिदिये	५६५	१४	च्छेदः/शुच	च्छेदः/शुच
५२४	३	गृहलिखितौ	गृहलिखितौ	५६६	३	पट	पट
५२६	१०	चांद्रायण	चांद्रायणे	५६०	१६	नक्षत्र	नक्षत्र
५३६	१५	योच्छिष्टभोजनोयं	योच्छिष्टभोजनोयं	५६०	१६	दशार्ध	दशार्ध
५३८	२	बाहुतिर्बुद्धौ	बाहुतोर्बुद्धौ	५६८	२५	ब्राह्मजीवी	ब्राह्मजीवी
५३८	२१	हिन्मा	हिन्मा	५६८	३०	नर्हीकितक	नर्हीकितक
५३६	२	हिन्मा	हिन्मा	५६६	१६	लिने	लिने
५४०	११	कर्त्तव्यमाभूतवादीको	कर्त्तव्यमाभूतवादीको	५७०	१३	मर्षपरायै	मर्षपरायै
५४३	२०	मर्षतयानां	मर्षतयानां	५७०	१५	भ्याविरहत	भ्याविरहत
५४३	२०	अपत्तये	अपत्तये	५७०	१८	परांमुख	परांमुख
५४४	२	छट्टेदिन	छट्टेकालकितु रात्रिस-	५७३	१२	ममाशौ	ममाशौ
५४४	२५	तानिचषे	मयतोमरोदिन	५७४	४	विरोध्यां	विरोध्यां
५४५	२६	केसगमपर	तोनचषे	५७५	१५	देखी	देखी
५४८	१६	गुटुध्यतो	केसगमपर	५७४	१०	अशौ	अशौ
५४८	२१	गुटुमाप्रो	गुटुध्यतो	५७४	२४	अशौ	अशौ
५४६	३८	गुटुको	गुटुमाप्रो	५७५	१२	लोगाचि	लोगाचि
५४०	८	चित्रवाभ्रतया	गुटुको	५७८	२६	नित्यपति	नित्यपति
५५८	११	चिनावता	चित्रियातया	५७६	८	रेष्ट्या	रेष्ट्या
५५६	१४	रजन्वलाशौ	चिनावता	५७८	२०	नेउन्हे	नेउन्हे
५४०	१२	रमपिकय	रजन्वलाशौ	५७८	२८	प्रासगिको	प्रासगिको
			रमपारच्छेदमेतत्त वि	५७९	२०	समुभौ	समुभौ
			रय	५८२	१	पत्रादि	पत्रादि

पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध
			स्वत प्राप्तहोसोखाइके स्थांडलपरसोवै				नेहोदिनों तक उक्त प्यारोज रीज जिमवै
०३६	१६	चैवाघमपणम्	चैवाघमपणम्				दृष्टतजैसे चाद्रायण में
०३६	१६	छुटकारा	छुटकारा				तोसदिनतक चौबीस
०३६	२०	जुहुयाद्याहृतो.	जुहुयात्त्याहृतो				राक्षस॥०।
०४४	२२	अनादिप्रपापौ	आदिप्रपापौ	०६२	१६	नेसमुभाया ॥	नेसमुभाया- परतुजैता
०४५	६	त्यादिभि०	त्यादिभि.				अतिनिर्धन को प्राजाप
०४८	२३	एकानिक	एकानिक				त्यके घदलेवारहशास्त्रण
०५२	२५	सातसाठे	साठेसात				कहेतेताअन्यत्रतोके उ-
०५२	२६	उनकेमूल्य	उनकेमूल्य				परलेहिसायसे कित ने
०५५	२५	तीनदिनकारा	तीनदिनकोरा				होघके उतनेउतने भी
०५६	२	वारहदिनकी	पुरेवारहदिनको				निचनिचलेसे से इन्हो
०५८	२८	जुदेरही	जुदेजुदेही				वारहकेअनुकूप समुभि
०५६	२३	कमीवेशी	कमीवेशी				लेना ॥०॥
०६०	२६	चछाद्	चछाद्।	०६२	२०	हयानभूत	स्थानीभूत
०६२	११	समुभलेना	समुभलेनाअथत्त्रिस०६३		४	औरजो	और जो
			व्रतकोसाधना कितने०६३		५	बिष्कुल	बिष्कुल
			दिनहोतीहोउसमेंउत०६४		२५	प्राप्तोतु	प्राप्तोत

इति

नामकिताय	नामकिताय	नामकिताय	नामकिताय
पद्यसंग्रह (व) वृहज्जातक वृहत्संहिता विनयपत्रिका मून व टीका सहित ब्रजविलास ब्रजविलाससारावली त्रलोत्तरखण्ड विष्णुपुराणभाषा याराहपुराण वीजककवीरदास वीजगणितदोभाग वैतालपञ्चोसो घकावलीसुमन वेद्यजीवन वैद्यमनोत्सव वैद्यप्रिया पालशिखा दी भाग (भ) भक्तमाल भक्तिपुुराण भोजप्रस्थार भाषाव्याकरण भाषातत्त्वदीपिकाव्या० भूगोलतत्त्व भाषाचन्द्रोदय भूगोलवर्णन (म) मार्कण्डेयपुराणसटीक माधवनिदान मुहूर्तचक्रदीपिका	मुहूर्तचिन्तामणि सटीक मुहूर्तमार्तण्डसटीक मुहूर्तगणपति मुहूर्तदीपक महाभारतदर्पण तथाअलगरउवीसोपर्व महाभारतसखलसिद्ध कीवनाई मिश्रितमाहात्म्य मनमोहनो मनमोहन महारामायण मनुस्मृति मंगलकोष (य) याज्ञवल्क्यस्मृति योगवासिष्ठ युगलसवाद्बोधप्रकाश यमुनालहरी युगलविलास (र) रेखागणितदोभाग रघुवमसंस्कृतवभाषादो जिन्दोमं रामायणमूलतुलसीकृत मोटेश्वरोंकी रामायणतुलसीकृतमून छोट अक्षरों की तथा मोटे औरचिक्के कागजकी रामायणतु०कृ०शापाटीप रामायणतुलसीकृतम०	रामायण शुक्रदेवली की टीका सहित मै काड रामायणटीकारामचरण की मैकाड रामायणकीमानसप्रचा० रामायण तुलसीकृतका शब्दार्थकोष रामा०तु०कृ०कारतिस रामायण तुलसीकृतकी मानसदीपिका रामायणकवितावलीतु- लसीकृतमूलवसटीक तथा श्रीवैद्यनाथजीकी टीकासहित रामायणगीतापलीमूल तथा सटीक श्रीमद्वाल्मीकीयरामा- यणभाषामैकाड रामचन्द्रिका सटीक रामायणरामविलास अद्भुत रामायण रामायणअध्यात्मविचार राम शिवाहोत्सव रसलीला रामगीता रमचन्द्रोदय व रसृष्टि रागप्रकथ रागसङ्घ रामानुजकृतकाडइतिहाम रममनूया रामायणप्रकाश राजनीति	(ल) लघुसिद्धांत कौमुदी लानचन्द्रिका लिपिपुस्तकरसेदन०तक लिगपुराण लोधेवरमाहात्म्यउद्दं व नागरी लक्ष्मी सरस्वती सराद दोनोंभाग (श) शाङ्करभरभाषाटी०सहित शिवसहस्रनाम शनिश्चरकी कथा शिवविवाहवयशापली शकर दिग्विजय शिवपुराण भाषा शकरचरित्रशुभा शङ्कारलतिका शिवसिंहमरोज शङ्कारवतीसो शुक्रवहतरौ शिखापत्र शालागीतचन्द्रिका शंकरों तभाषा शिखाग्रन्थ शिखावली शिवयोग शगारमूधाकर शोधयोग नतमथीउटीकविशरोलापकृ० इत्यादि

शुद्ध	पातक	अशुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	पातक	अशुद्ध	शुद्ध
६४२	१६	हामरुपो	हामरुपो	६०२	२२	ऽन्यत्न	ऽन्यत्र
६४५	२४	प्रतिलोभ्या	प्रतिलोभ्या	६०३	२०	योगुचदद्या	योगुचदध
६४६	१६	अधीनी	अधीनी	६०४	४	एकमन्व	एकमत्र
६४७	२५	सेसामन्व	सेनामत्र	६०४	५	जिसमन्व	जिसमत्र
६५०	५	प्रतिगृह्यपेत्	प्रतिगृह्यत्रपेत्	६०४	०	दद्या	दधं
६५०	६	त्रुभिःपाप	त्रुभिःपाव	६०४	०	मथो	मथो
६५१	१२	दखी १ घर	दखी १ ॥ घर	६०५	१०	आतिदेशिक	आतिदेशिक
६५२	५	तोनकर्म	तोनकर्म	६०५	१२	दद्या	दध
६५२	१०	चाहै	चाहै	६०५	१३	मन्व	मत्र
६५२	२०	सगति	सगति	६०५	२६	याकल	स कल
६५४	१४	चारिणोस्त्री	चारिणोस्त्री	६०६	२१	मनुमे	मनुने
६५४	२०	जिसैकोई	जिसैकोई	६०७	२३	(पृथकराभि)	(पृथकराभि)
६५५	१६	साप	साय	६०८	३०	यकाम	यकाम
६५५	२६	गृह्यायु	गृह्यायु	६०८	३०	जपेद्वारयस्य	जपेद्वारयस्य
६५६	६	पुर्ककुंभ	पुर्ककुंभ	६०९	३०	कुताप	कुंताप
६६०	१२	पर	पर	६०९	२	निचिस्तेपान्	निचिस्तेपान्
६६१	५	सहस्र	सहस्रं	६०९	५	निचिस्तेपान्	निचिस्तेपान्
६६२	३	अथैवैसे	अथैवैसे	६०९	१५	सर्वोपयात	सर्वोपयात
६६५	२५	निमण्डुये	निमण्डुये	६०९	४	सुष्टिमें	सुष्टिमें
६६८	१३	मुक्तांत	मुत्तपोत्त	६०९	३०	श्यामेध्यप्राण	श्यामेध्यप्राण
६७१	३	कियाहा	कियाहायदिवा अग्नि	६०९	३०	ऽपरायचिह्नये	ऽपरायचिह्नये
			होत्रोकीपत्नी वधकरो	६०९	३	द्वादश २	द्वादशद्विदश
			यागभिषोके अविज्ञात	६०९	४	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			गर्भकायिनाशकिया हो	६०९	५	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			अविज्ञातकायह पट	६०९	५	द्वादश २	द्वादशद्वादश
			कहसगभसे कडकाहो	६०९	२२	मोजा	द्वादशद्वादश
			नायाकडकीय नपुंसक	६०९	२६	अन्यतएव	मोजा
			वेदाहोतायह योराजव	६०९	६	प्रोक्त	अन्यतएव
			नकनममुभावायतभो	६०९	२४	शुक्रियतो	चोत्त
			तकपिनाशकियाहो	६०९	६	शनाटिक	अनुवनी
			आचेयोके	६०९	४	वृद्ध	धनादिक
६०१	१०	घृताहुतो	घृताहुतो	६१५	०	प्रमाचिनो	घृष्टि
६०२	१८	कूपमायल ३,	कूपमायल	६१६	०	महापाप	प्रमाचिनो

पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पाठ	अशुद्ध	शुद्ध
६६६	१३	पूतानिपुनति	नीतानिपुनति	०१०	१५	नामसूधेकम	नामसूधेकम
६६०	४	तिलैवाचन	तिलैवाचन	०१८	२२	नमोहायेत्यादि	नमोहमायेत्यादि
६६८	१४	य प्रातः स्तिला	य प्रातःस्तिला	०१८	२४	त्यंतरोक्तानि	त्यंतरोक्तानि
६६८	१०	चौराध्वीशेष	चौराध्वीशेष	०१६	१३	को साधना	को साधना
६६६	६	तिसषेउसकेचित्तको	तिसषेउसकेचित्तको	०१६	२१	कालोमैत्रै	कालोमैत्रै
६६६	१३	पडासाहि	षोडासाहि	०२०	२६	प्रतीतज्ञेता	प्रतीतज्ञेताहै
०००	१२	पापउसे	पापउसे	०२१	२१	इनपाचौ	इनपाचौ
०००	२२	राचको	राचिको	०२२	४	दिनकोरप्रतको	नीन कोरप्रतकी
००१	२८	विवेचनीयाना	विवेचनीयानो	०२२	११	उसनहीं	उसनहीं
००३	०	आषे ॥	आषे ॥ ३१२ ॥	०२२	२४	कार्तियिको	कार्तियिको
००३	८	परिच्छेद ३१२	परिच्छेद ॥	०२४	१०	गामभंजोत	गामभंजोत
००४	१६	सूधेस्पष्ट	सूधेस्पष्ट	०२५	१५	विकारैरो	विकारैरो
००५	१६	कोताडना	कोताडना	०२५	१०	कुकुटाडाद्रामल	कुकुटा डाद्रामल
००६	४	सर्वकापिल	सर्वकापिल	०२५	२६	कृत्यकार्ये	कृत्यकार्ये
००६	२०	कुयलेकर	कुयलेकर	०२६	१६	श्रेष्ठज्ञानो	श्रेष्ठज्ञानो
००६	२२	श्रवती)	श्रवती)	०२०	२०	पुण्यमासोपहिले	पुण्यमासोपहिले
००६	२४	वचे	वचे	०३०	२	भुग्भवेत	भुग्भवेत्
०००	२	सञ्जा	सञ्जा	०३२	१६	गिननाप्राप्त	गिननाप्राप्त
०००	५	कोरा	कोरा	०३३	३०	स्नायक्तस्य	स्नानायक्तस्य
०००	८	आटो	आटो	०३४	४	आट्टवासाठलध्याशो	आट्टवासाठलध्याशो
०००	२६	सान्तपन	सान्तपन	०३४	४	लध्याशो +	लध्याशो
०००	२०	न्यह्वे	न्यह्वे				इतिचयापाठःतत्रोभय
००८	८	दुव्य हम्	दुव्यह				मुदर (चयात् न धाशो
००८	१३	तिनको	तिनको				पाठहेनिषेवैःकुट्ट टि-
००८	२१	कृच्छार्थ	कृच्छार्थ				कानेपरवैठेआपहो आ-
००६	१०	मासिनकथित	मासिनकथितः				करमिलेवहो भोजनक-
००६	२०	एकरा चोप	एकराचोप				रै-लध्याशोषोद्गामोच-
०१४	२	इनदीनों	इनदीनों				नकरे-दीनोंअवटोके है
०१४	६	पाद चरेच्छुद्र	पादचरेच्छुद्र	०३४	८	कहिंकरदयाया	कहिंकरनियम दयाया
०१४	६	वैश्यस्यपादयेत्	वैश्यस्यपादयेत्	०३४	८	भोजनकरिके	भोजनकारके-या-ल-या-
०१४	१२	एकपादउसे	एकपादउसे				नो येसापाठतर हाने
०१५	६	उसैतिगुना	उसैतिगुना				म-उसैतिहाने त्रैजे
०१६	२२	प्रतिलोभ्येनवा	प्रतिलोभ्येनवा				कुट्ट अथकनमूलप्रादि